ऋग्वेदीयम्

ऐतरेयब्राह्मणम्

(पूर्वार्द्धम्)

सायणभाष्योपेतम् सविमर्श 'शशिप्रभा' नामहिन्दीव्याख्यया विभूषितम्

व्याख्याकारः

प्रो० उमेशप्रसादसिंहः

सम्पादकः

डॉ० जमुनापाठकः
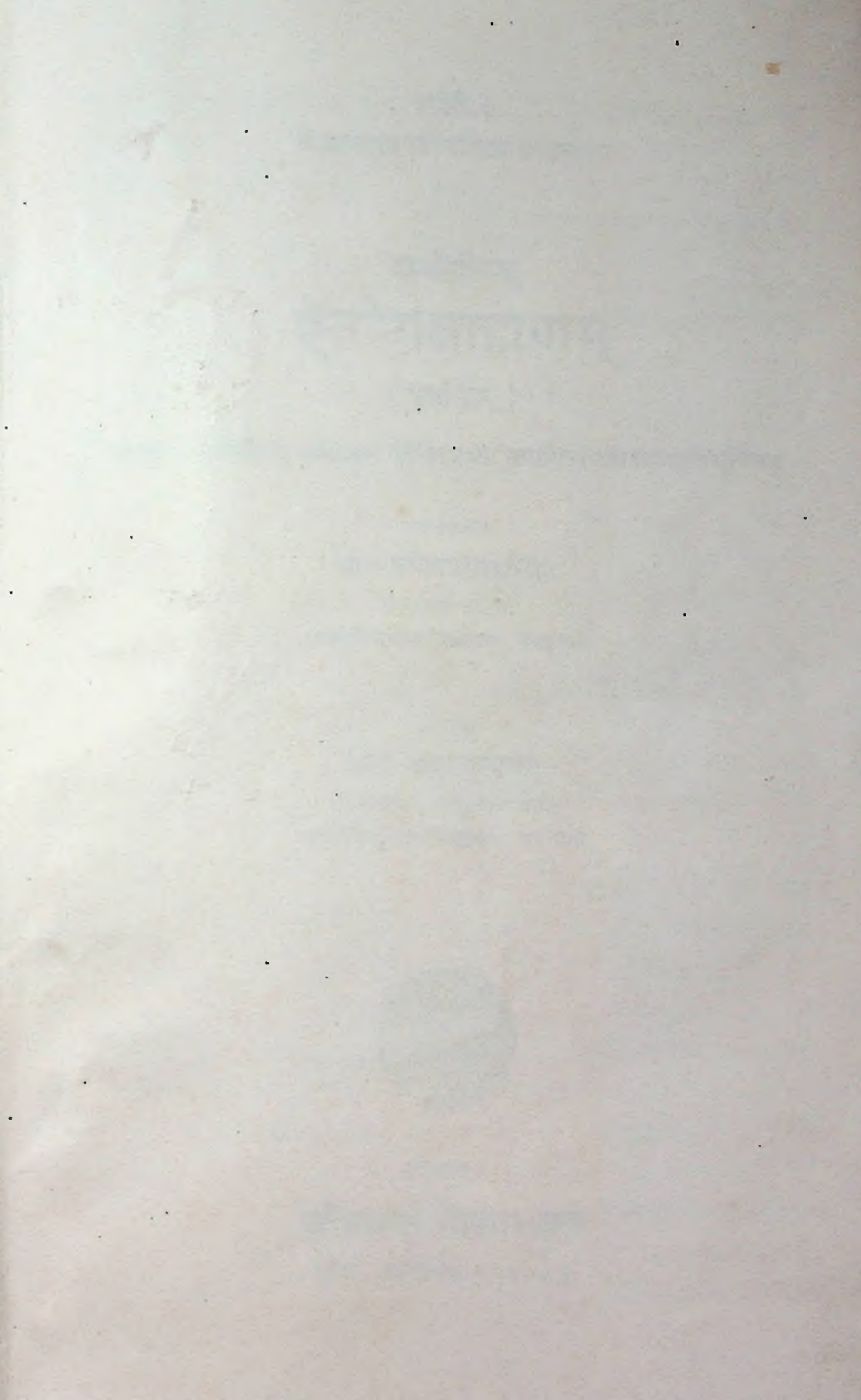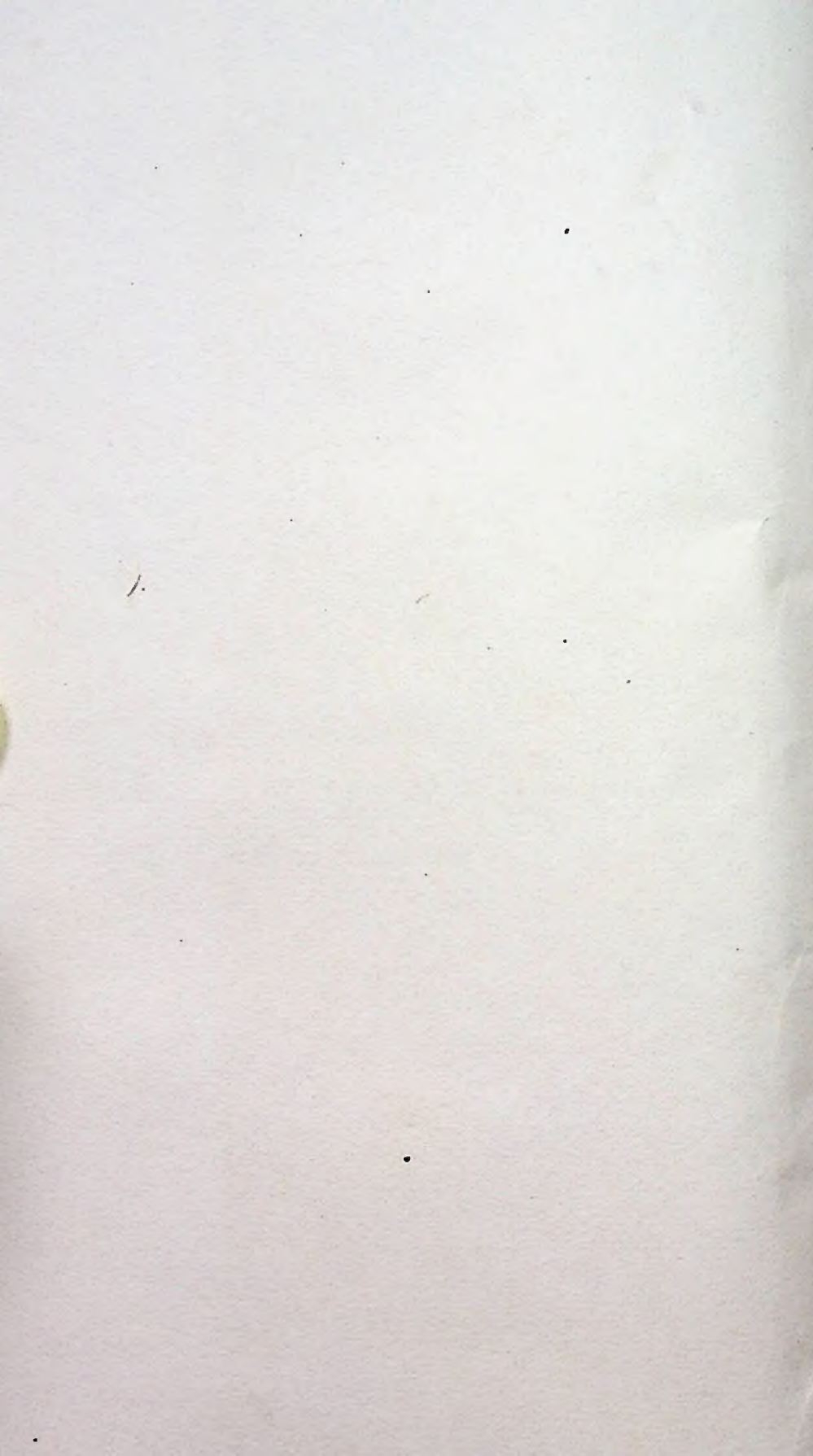
॥श्रीः॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
२७९

ऋग्वेदीयम्

ऐतरेयब्राह्मणम्

(पूर्वार्द्धम्)

सायणभाष्योपेतम् सविमर्श 'शशिप्रभा 'नामहिन्दीव्याख्ययाविभूषितम्

व्याख्याकारः
प्रो० उमेशप्रसादसिंहः
संस्कृतविभागस्थः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

सम्पादकः
डॉ० जमुनापाठकः
सेवानिवृत्तः, संस्कृतविभागतः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

प्रकाशक :
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, वाराणसी-२२१००१

ऋग्वेदीयम् ऐतरेयब्राह्मणम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे), वाराणसी–२२१००१

दूरभाष : ०५४२–२४२०४०४

ई–मेल : cvbhawan@yahoo.co.in

संस्करण २०१६ ई०

मूल्य : ₹ 3000.00 (१–२ भाग) सजिल्द

अन्य प्राप्तिस्थान :

चौखम्बा इण्डोवेस्टर्न पब्लिशर्स

के. ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन, वाराणसी–२२१००१

दूरभाष–०५४२–२३३३४३१

वेबसाइट : www.indowesternpublishers.com

❖

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

४६९७/२, भू–तल (ग्राउण्ड फ्लोर), गली नं. २१–ए, ए. अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२ दूरभाष : ०११–२३२८६५३७

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११०००७

दूरभाष—०११–२३८५६३९१

❖

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन, वाराणसी–२२१००१

दूरभाष–०५४२–२३३५२६३

सम्पादकीयम्

'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' इत्यापसतम्बीयपरिभाषानुसारं मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्द-राशिर्वेदनामाभिधेयः। मन्त्रशब्देनात्र वेदानां संहिताभागः प्रोक्तः। ब्राह्मणानि तु संहि-तानां व्याख्यानि। ब्राह्मणेषु संहितागतमन्त्राणां विविधदृष्ट्या व्याख्यानं विद्यते। तत्र ब्राह्मणान्तर्गतं ब्राह्मणारण्यकोपनिषदानि समाहृतानि। कैश्चिद् वैदिकपण्डितैः ब्राह्मण-ग्रन्थानां वेदत्वं न स्वीकृतम् मन्त्राणां व्याख्यानपरत्वात्। परञ्च तैरपि यज्ञानां महत्व-मुपयोगित्वञ्च समवेतस्वरेण स्वीकृतं भवति। वस्तुतस्तु यज्ञानां विविधदृष्ट्या प्रतिपादनं ब्राह्मणेष्वेवोपलभ्यते, न तु संहितायाम्। अत एव यज्ञानां प्रतिपादकत्वाद् ब्राह्मणानामपि वेदत्वं निश्प्रचमेव।

ऋग्यजुस्सामाथर्ववेदानां बहवः शाखाः आसन्, तत्र सर्वेषां संहिता नोपलभ्यन्ते। तासां बहूनि ब्राह्मणान्यपि भवितुमर्हन्ति। परञ्च साम्प्रतं संहितावत्सर्वाणि न, प्रत्युत कानिचिदेव दृष्टिपथमायान्ति। तेषु समुपलभ्यमानेषु ब्राह्मणेष्वैतरेयब्राह्मणस्य महत्वपूर्णं स्थानम्। यद्यपि कलेवरदृष्ट्या शुक्लयजुर्वेदस्य शतपथनामब्राह्मणं विशालतमं विद्यते परञ्च विषयप्रतिपादनदृष्ट्यैतरेयस्य महत्वमूनं न वर्तते। यतो हि विश्ववाङ्मयेषु सर्व-प्राचीनतमस्यर्ग्वेदस्य मन्त्राणां विविधदृष्ट्या सप्रयोजनं सविनियोगञ्च व्याख्यानमत्र विवेचितम्। ब्राह्मणस्यास्य 'चरैवेति चरेवैति' सूक्तिरेषा भारतीयानामेव न, प्रत्युत विश्वस्य सर्वेषां मानवानां कृते स्वकर्मणि संयोजयितुं प्रेरणास्पदम्।

ऐतरेयब्राह्मणं शाकलशाखासम्बन्धी विद्यत इत्यध्येतृणां सुदृढो विश्वासः। परञ्च तत्वतो विचार्यमाणे न केवलमेकामेव शाखामवलम्ब्य प्रवृत्तमिदं प्रत्युत शाखान्तराण्य-प्यवलम्बत इति ज्ञायते। तद्यथा—'अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानाम्', 'अग्निश्च विष्णो तप उत्तमह' (ऐ०ब्रा० १.४.८) इति मन्त्रौ प्रतीकग्रहणेन विनियुक्तौ। वेदमन्त्रद्वयं शाकल-संहितायां समाम्नातम्। एवमेवान्येऽपि मन्त्रा विनियुक्ता बहवः प्रतीकग्रहणेन, येषां शाकलसंहितायां पाठो नोपलभ्यते ऋक्शाखान्तरोक्ताऽत्र विनियुक्ताः। ब्राह्मणभागस्य सूत्राणां वाऽयं नियमो यद् यामेकां शाखावलम्ब्य तानि प्रवर्तन्ते तदा तत्रत्यान् मन्त्रान् प्रतीकमात्रं गृहीत्वा विनियुञ्जते। शाखान्तरस्थानां सत्यावश्यके विनियोगप्रसङ्गे समग्रं मन्त्रं पठित्वैव विनियुञ्जत इति। ब्राह्मणेऽस्मिन्तु शाखान्तरीया अपि मन्त्राः प्रतीकमात्र-ग्रहणेन विनियुक्ताः। अतो न एकामेव शाखामेकान्ततोऽवलम्बते ब्राह्मणमिदं किन्तु शाखान्तराण्यपीति स्पष्टमवगम्यते।

ऐतरेयो महिदासः ब्राह्मणस्यास्य कर्त्ता। ब्राह्मणमिदं पञ्चपञ्चाध्यायमितोऽष्टपञ्चिकायां

विभक्तमेवमत्र चत्वारिंशोऽध्यायः विद्यन्ते। ब्राह्मणस्यास्य मुख्यप्रतिपाद्यविषयः सोमयागः विद्यते। ब्राह्मणस्यान्तिमेऽध्यायत्रये किञ्चिदैतिहासिकं विवरणमुपलभ्यते। तत्रानेकेषां परिक्षितपुत्रजनमेजयत्यादीनां राज्ञामुल्लेखः प्राप्यते। ब्राह्मणेस्मिन् निर्दिष्टं शुनःशेपोपाख्यानं साहित्यदृष्ट्या लोकप्रियं विद्यते, करुणस्योत्पादकत्वात्।

एतादृशस्य महत्वपूर्णब्राह्मणग्रन्थस्यैकाधिकानि संस्करणानि ससायणभाष्येण प्रकाशितानि, यानि संस्कृतभाषायाः माध्यमेनाध्येतृणां कृते महदुपयोगिनि विद्यन्ते परञ्च हिन्दीभाषामाध्यमेन वेदाध्यायिनां कृते दुःसाध्यान्येव। तेषां कृत्ते तु हिन्दीभाषायां व्याख्यानेन सह ब्राह्मणस्यास्य संस्करणमपेक्षितम्। हिन्दीभाषायां व्याख्यानेन सह वाराणसीतः संस्करणमेकं प्रकाशितं परञ्चाध्येतृणां कृते तत्सम्यग्रूपेण बोधगम्यं भवितुं जिज्ञासापूरयितुञ्च नार्हति। अत एव वेदाध्यायिनां बोधगम्यत्वमवगत्य मयाऽस्य नूतनसंस्करणस्यावश्यकतामनुभूता।

तत्कार्यार्थं मया शिष्यद्वयं नियोजितम्। ब्राह्मणस्यास्य पूर्वार्धमुत्तरार्धञ्च भागद्वयं कृत्वा प्रियशिष्याय प्रो० उमेशप्रसादसिंहाय पूर्वार्धं तथा चापराय शिष्याय डॉ० दानपतितिवारीनाम्ने शिष्यो चोत्तरार्धं हिन्दीव्याख्यानार्थं समर्पितम्। शिष्यद्वयेनातिश्रमसाध्येन परिश्रमेण हिन्दीव्याख्यानं सम्पादितम्। तयोः परिश्रमेण भागद्वययुतं संस्करणमिदं प्रकाशितं भवति। कार्यस्यास्य कृतेऽहं शिष्यद्वयोरभ्युदयं कामये। अस्तु,

सम्पादकः

जमुना पाठक

जमुनापाठकः

प्राक्कथन

वेद विश्वसाहित्य के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ हैं। मानवसंस्कृति के प्राचीनतम रूप तथा विकास को समझने के लिए वेदों का परिशीलन अपरिहार्य है। मानवजाति के इतिहास के ज्ञान के लिए, भारतीय संस्कृति को समझने के लिए और भाषा-वैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए वेदों का अध्ययन आवश्यक माना जाता है। वेद भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अमूल्य निधि है, जो आज भी वैज्ञानिक उपलब्धियों के बीच अपने ज्ञान-गौरव की अक्षुण्णता का निर्बाध रूप से उद्घोष कर रहे हैं। वेदों के ही आधार पर भारतीय दार्शनिक, धार्मिक तथा सामाजिक ज्ञान के भव्य प्रासाद को प्रतिभासम्पन्न वाक् शिल्पियों ने खड़ा किया है। अत एव वेदों का अनुशीलन तथा उनके मौलिक सिद्धान्तों और तथ्यों का उद्घाटन ज्ञान के संवर्धन एवम् उन्नयन के लिए विशेष उपयोगी है।

वेद शब्द का प्रयोग मन्त्र तथा ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त किया जाता है। आपस्तम्ब ने अपने 'यज्ञ परिभाषा' 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' में मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग का नाम वेद बतलाया है। ब्राह्मण वेद का वह भाग है जो विविध यज्ञादि के विषय में मन्त्रों के विनियोग तथा उनकी विधियों का प्रतिपादन करता है, साथ ही उनके मूलभाग तथा विवरणात्मक व्याख्या को आख्यानों-उपाख्यानों के रूप में विद्यमान तत्सम्बन्धी निदर्शनों के साथ प्रस्तुत करता है।

ऋग्वेदीय ऐतरेयब्राह्मण के कर्ता महीदास माने जाते हैं, भाष्यकार सायण ने अपने भाष्य के प्रारम्भ में एक कथानक दिया है जिसके अनुसार इनकी माता का नाम इतरा था। इसी कारण ये महीदास ऐतरेय कहे जाते थे और इन्हीं के नाम पर इसका नाम ऐतरेयब्राह्मण हुआ।
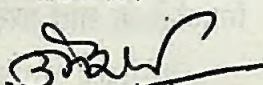
ऐतरेयब्राह्मण में ४० अध्याय हैं, प्रत्येक ५ अध्यायों की एक पञ्चिका मानी गयी है, इस प्रकार इसमें ८ पञ्चिकाएँ हैं। प्रत्येक पञ्चिका को कण्डिकाओं में बाँटा गया है और कुल २८५ कण्डिकाएँ हैं। इस ब्राह्मण में यज्ञ के होता नामक ऋत्विज् के क्रिया-कलापों का विशेष-रूप से वर्णन है। प्रथम, द्वितीय पञ्चिकाओं में 'अग्निष्टोम' में होता की क्रियाओं का वर्णन है, तृतीय-चतुर्थ पञ्चिका में प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन के समय प्रयोग में आने वाले शस्त्रों का वर्णन है और अग्निष्टोम की उक्थ्यादि विकृतियाँ सङ्क्षेप में दर्शायी गयी हैं, पञ्चम में द्वादशाह यज्ञों तथा षष्ठ में अधिक काल तक चलने वाले यज्ञों में होता और उसके सहायकों के कार्य दर्शाये गये

हैं। सप्तम में राजसूय यज्ञ और अष्टम पञ्चिका में ऐन्द्रमहाभिषेक तथा उसके आधार पर होने वाले राज्याभिषेक एवं पुरोहित का महत्व दर्शाया है। इसी पञ्चिका में ३३वाँ अध्याय शुनःशेपोपाख्यान है। इस ब्राह्मण में 'चरैवेति' का सर्वोत्तम उपदेश दिया गया है।

ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ के कई संस्करण प्रकाश में आये हैं जो संस्कृत भाषा के माध्यम से वेद का अध्ययन करने वाले के लिए महदुपयोगी हैं, किन्तु हिन्दी भाषा के माध्यम से अध्ययन करने वाले के लिए दुःसाध्य हैं। अतः हिन्दीव्याख्या के साथ इस ग्रन्थ का संस्करण तैयार करने के लिए श्रद्धेय गुरुचरण डॉ० जमुनापाठक, सेवानिवृत्त संस्कृत विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने योजना बनाया। उन्होंने इस ब्राह्मण को पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भागों में बाँटकर पूर्वार्द्ध पर व्याख्या लिखने का आदेश दिया। अक्षम होते हुए भी मैं इस कार्य को उनका आशीर्वाद मानकर स्वीकार कर लिया और लेखन कार्य में संलग्न हो गया। ग्रन्थ की गूढ़ गुत्थियों को उन्हीं गुरुचरणों के सान्निध्य में उन्हीं की कृपा से समझ सका हूँ। उन्हीं के आशीर्वाद से व्याख्या का यह कार्य पूर्ण हो सका है, अतः मैं उनका आजीवन ऋणी रहूँगा।

प्रस्तुत व्याख्या अपने उद्देश्य में कितनी सफल होगी, यह तो सुधीजन ही विचार करेंगे। इस व्याख्या को तैयार करने में अन्य जिन विद्वानों के ग्रन्थों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्राप्त हो सकी है, उन सबके प्रति नतशिरसा कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

व्याख्याकार—

रामनवमी, २०१५
वाराणसी

उमेश प्रसाद सिंह

भूमिका

ब्राह्मणसाहित्य—विश्ववाङ्मय में वेद ज्ञानविज्ञान के विशाल भाण्डागार हैं। इनमें ऐहिक और पारलौकिक–दोनों प्रकार के ज्ञान समुपलब्ध होते हैं। संहिता और ब्राह्मण–दोनों का समाहार वेद के अन्तर्गत किया गया है। जैसा कि आपस्तम्ब ने कहा है—'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' (आप०परि० १.३३)। इस परिभाषा में मन्त्र का तात्पर्य संहिता और ब्राह्मण का ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् है। ब्राह्मण के अन्तर्गत आरण्यक और उपनिषद् का भी समाहार हो जाता है। मन्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मणग्रन्थों को भी वेदान्तर्गत माने जाने में प्राचीन और अर्वाचीन आचार्यों में वैमत्य दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन वेदज्ञों ने तो ब्राह्मण-ग्रन्थों को भी वेद के अन्तर्गत माना है किन्तु अर्वाचीन वेदज्ञ स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन है कि केवल मन्त्रों का संहिताभाग ही वेद है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों का समाहार वेद के अन्तर्गत नहीं होना चाहिए; क्योंकि ब्राह्मण-ग्रन्थ मन्त्रों के व्याख्यापरक ग्रन्थ हैं।

गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणग्रन्थों के वेदत्व पर शङ्का करना अव्यावहारिक है; क्योंकि स्वामी जी भी यज्ञकर्म को सम्पादित करने से सहमत हैं और सभी ब्राह्मण-ग्रन्थों में विविध यज्ञों के विधिविधान और धार्मिक कर्मकाण्डों का सविस्तार विवेचन किया गया है। यज्ञ के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए मन्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मण-ग्रन्थों का अवबोध अपरिहार्य है। अत एव प्रारम्भ से ही मन्त्र और ब्राह्मण को वेद के अन्तर्गत समाहरित किया गया है।

ब्राह्मण शब्द का अर्थ—अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि ब्राह्मण शब्द बृह् धातु से निष्पन्न 'ब्रह्मन्' शब्द से बना है। 'ब्रह्मन्' शब्द प्रार्थना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'ब्रह्मन्' (नपुंसक लिङ्ग) शब्द से अण् प्रत्यय होने पर 'ब्राह्मण' शब्द व्युत्पन्न होता है। इस प्रकार ब्राह्मण शब्द का अर्थ–'ब्रह्मणोऽयमिति ब्राह्मणः' अर्थात् ब्रह्म से सम्बद्ध ब्राह्मण कहलाता है। अतः ब्रह्म शब्द के रुढ़ तथा प्रचलित विभिन्न अर्थों को दृष्टि में कर विद्वानों ने ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रस्तुत नामकरण पर विभिन्न मत प्रतिपादित किया है। ह्विटनी, वेस्टरगार्ड, मैक्डानल तथा कुछ अन्य यूरोपीय विद्वानों ने 'प्रार्थना एवं उपासना' अर्थ के द्योतक 'ब्रह्मन्' से ब्राह्मण शब्द की रचना मानी है। नपुंसक-लिङ्ग 'ब्रह्मन्' शब्द का अर्थ परमेश्वर है। अतः मैक्डानल ने उपर्युक्त विचार को सहमति प्रदान करते हुए कल्पना की है; क्योंकि इसमें प्रार्थना तथा उपासना के साथ-साथ ब्रह्म (परमेश्वर) सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये गये हैं। अतः इस ग्रन्थ-राशि को ब्राह्मण संज्ञा दी

गयी ।[१] ब्रह्म का एक अर्थ 'वितान' या 'परिबृंहण' है । कतिपय विद्वानों का विचार है कि ब्राह्मणों में चूँकि यज्ञीय क्रियाओं, निर्वचन, पुराकल्प, इतिहास, आख्यानादि विषयों, जिनका मूल वैदिक संहिताओं से है का विस्तार प्राप्त होता है, अतः इन्हें ब्राह्मण कहा गया है । किन्तु स्वयं ब्राह्मण-ग्रन्थों में ब्रह्म के इतर अर्थ भी मिलते हैं । शतपथब्राह्मण में 'ब्रह्म' का अर्थ मन्त्र दिया गया है ।[२] मेदिनीकोश ने ब्रह्म के इसी अर्थ को लेकर ब्राह्मण (ग्रन्थवाचक) शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है—'ब्रह्मणि नाम मन्त्रा संहृयन्ते स्पष्टीक्रियन्ते व्याख्यायन्ते यस्मिन् तादृश वेदभाग ब्राह्मण इत्यर्थः' । ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार ब्रह्म का अर्थ यज्ञ है ।[३] इस प्रकार ब्रह्म शब्द मुख्य रूप से स्तुति का वाचक होने के कारण मन्त्रों के लिए प्रयुक्त होता था; क्योंकि स्तुतियाँ मन्त्रात्मक ही हैं । इन्हीं मन्त्रात्मक 'ब्रह्मन्' का यज्ञ के विविध कर्मों में विनियोग होता है, अतः वेद का वह भाग जिसमें मन्त्रों के विनियोग आदि का उल्लेख हुआ है, वह ब्राह्मण कहलाया । मन्त्रों के विनियोगात्मक वाक्यों को ब्राह्मण कहा जाने का एक कारण यह भी था कि मन्त्रों का यज्ञ में विनियोग होने के कारण यज्ञ को 'ब्रह्मन्' कहा गया । इस प्रकार ब्रह्मन् अर्थात् यज्ञ का विधान करने वाले ग्रन्थ को ब्राह्मण कहा जाने लगा । भट्टभास्कर ने तैत्तिरीयसंहिता के भाष्य में ग्रन्थवाचक ब्राह्मण शब्द का यही अर्थ करते हुए लिखा है कि कर्मकाण्ड और उससे सम्बन्धित मन्त्रों की व्याख्या जिन ग्रन्थों के अन्तर्गत मिलती है उसे ब्राह्मण-ग्रन्थ कहते हैं ।

वस्तुतः ब्राह्मण-ग्रन्थों का अध्ययन करने के उपरान्त प्रथमतः यही तथ्य स्पष्ट होता है कि इन ग्रन्थों का प्रमुख विवेच्य विषय यज्ञ है । इनमें याज्ञिक कर्मकाण्ड की सूक्ष्म विवेचना के साथ वैदिक मन्त्रों के द्वारा तत्-तत् अनुष्ठानों की संगति स्थापित करके तथा उनकी व्याख्या करके उन्हें प्रामाणिकता प्रदान की गयी है । यज्ञों का वैज्ञानिक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक विवेचन तथा वेद मन्त्रों की व्याख्या–इन दोनों विषयों का इनमें समावेश होने के कारण ही इनका 'ब्राह्मण' नामकरण किया गया, यही कथन अधिक युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है ।

ब्राह्मण और ब्रह्मवादी—ब्राह्मण-ग्रन्थों में मन्त्रों की व्याख्या प्रासङ्गिक रूप में ही हुई है, अतः 'ब्रह्म' (मन्त्र) की व्याख्या किये जाने के कारण ये 'ब्राह्मण' नाम से अभिहित किये गये—यह कथन एकाङ्गी ही सिद्ध होता है । वस्तुतः यज्ञ से ही ब्रह्म तथा ब्राह्मण (ग्रन्थवाचक) शब्द का निकटतम सम्बन्ध है । ब्राह्मण ग्रन्थों का अन्तःसाक्ष्य भी यही प्रमाणित करता है । ब्राह्मणों में यज्ञीय विषयों के मीमांसक विद्वानों को ब्रह्मवादी संज्ञा दी गयी है । ताण्ड्यब्राह्मण में 'एवं ब्रह्मवादिनो वदन्ति' कहकर अनेक यज्ञीय गुत्थियों को

---

(१) मैकडानल–द हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ०-२६

(२) ब्रह्म वै मन्त्रः । —(शत०ब्रा०-७.१.१.४.५)

(३) ब्रह्म वै यज्ञः । —(ऐ०ब्रा०-७.४.४)

सुलझाने का प्रयास किया है।[१] शतपथब्राह्मण में ऐसे कई ब्रह्मवादियों का नामोल्लेख भी किया गया है, यथा आषाढ़ सावयस, याज्ञवल्क्य आदि।[२] इस प्रकार इन उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ की गुत्थियों को सुलझाने वाले मीमांसक ब्रह्मवादी कहे जाते थे तथा जिन गोष्ठियों में ये अपने विचारों को प्रस्तुत करते थे वे गोष्ठियाँ 'ब्रह्मोद्य' कही जाती थीं। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों के उक्त नामकरण का सीधा सम्बन्ध ब्रह्मोद्य तथा ब्रह्मवादियों से है, न कि ब्राह्मणजाति से। उपर्युक्त ब्रह्मोद्य तथा ब्रह्मवादी संज्ञाएँ उस भ्रम का सहज ही निराकरण करने में समर्थ हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों का सम्बन्ध ब्राह्मणजाति से है। अत: यह कहना उचित होगा कि जिस प्रकार यज्ञ की गुह्यतम गुत्थियों को सुलझाने वाले मीमांसक ब्रह्मवादी कहे जाते थे, उसी प्रकार यज्ञ की गूढ़ मीमांसा से सन्निविष्ट होने के कारण प्रस्तुत ग्रन्थों का नामकरण ब्राह्मण किया गया। निरुक्त में ब्राह्मणों के निर्देश 'इति विज्ञायते' भी प्रत्यक्षत: इसी परिभाषा की ओर इङ्गित कर रहा है; क्योंकि दुर्गाचार्य ने इसकी व्याख्या 'एवं ब्राह्मणे अपि विचार्यमाणे ज्ञायते' की है।[३] अत: सङ्क्षिप्त रूप में कह सकते हैं कि ब्रह्म के व्याख्यापरक ग्रन्थ ही ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ का लक्षण—मन्त्र के समान ही ब्राह्मण शब्द के कई लक्षण किये गये हैं और स्वरूप के विषय में मीमांसाग्रन्थों में पर्याप्त विवेचन किया गया है। आपस्तम्बयज्ञपरिभाषा[४] के अनुसार 'जो कर्म में प्रवृत्त करें वे ब्राह्मण हैं'। जैमिनि[५] ने 'जो मन्त्र नहीं है, वह ब्राह्मण हैं'–ऐसा ब्राह्मण का लक्षण किया है। अर्थात् जो मन्त्र से अवशिष्ट भाग है वह ब्राह्मण है, यही ब्राह्मण का लक्षण है। सायण ने भी इसी लक्षण को स्वीकार किया है।[६]

विधि शब्द वाच्य ब्राह्मण का लक्षण जैमिनि तथा भाष्यकार शबर स्वामी ने इस प्रकार दिया है—

हेतुर्निर्वचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणकल्पना।।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य तु।
एतद्वै सर्ववेदेषु नियतं विधिलक्षणम्।।[७]

---

(१) ता०ब्रा०–६.४.१५
(२) शत०ब्रा०–१.१.१.७
(३) दुर्गाचार्य की निरुक्त टीका–३.११; २.१८
(४) कर्म चोदना ब्राह्मणानि। —(आप०यज्ञ परिभाषा-१.१.३२)
(५) शेषः ब्राह्मणशब्दः। —(जै०मी०सू०–२.१.३३)
(६) सायण, ऋ०भा०भू०, पृ०-३५
(७) शाबरभाष्य–२.१.८

इसका सङ्क्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(१) **हेतु**—ब्राह्मण द्वारा किये गये विधान के समर्थन में जो कारण का कथन किया जाता है, उसे हेतु कहते हैं। जैसे–'सूर्पेण जुहोति तेन ह्यन्नं क्रियते'।

(२) **निर्वचन**—जहाँ किसी शब्द की निरुक्ति अर्थात् उस शब्द को वैसा कहे जाने का कारण बतलाया जाता है, उसे निर्वचन कहते हैं।

(३) **निन्दा**—जहाँ पर किसी पदार्थ का निषेध करना होता है, वहाँ उसकी निन्दा की गयी है।

(४) **प्रशंसा**—जहाँ पर किसी पदार्थ का विधान करना होता है, वहाँ उसकी प्रशंसा की गयी है।

(५) **संशय**—जहाँ पर किसी विधेय पदार्थ में सन्देह हो, उसे संशय कहते हैं।

(६) **विधि**—जिसमें कर्म का विधान किया जाय, उसे विधि कहते हैं।

(७) **परक्रिया**—जहाँ पर विधान किया हुआ कर्म किसी अन्य के द्वारा किया जाय उसे परक्रिया कहते हैं।

(८) **पुराकल्प**—जहाँ पर पूर्वकल्प की बात कही गयी हो, उसे पुराकल्प कहते हैं।

(९) **व्यवधारण कल्पना**—जहाँ पर विशेष अवधारणा अर्थात् निश्चय ही कल्पना की जाय, उसे व्यवधारण कल्पना कहते हैं।

(१०) **उपमान**—जहाँ पर किसी कर्म की उपमा दूसरे कर्म से दी जाय उसे उपमान कहते हैं।

उपलब्ध ब्राह्मणग्रन्थ—सम्प्रति ऋग्वेद के दो ब्राह्मणग्रन्थ उपलब्ध होते हैं–ऐतरेयब्राह्मण और शाङ्खायनब्राह्मण। कतिपय आचार्य शाङ्खायनब्राह्मण को कौषीतकि-ब्राह्मण नाम से भी अभिहित करते हैं। यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय हैं–कृष्णयजुर्वेद और शुक्लयजुर्वेद। कृष्णयजुर्वेद का तैत्तिरीयब्राह्मण और शुक्लयजुर्वेद का शतपथब्राह्मण उपलब्ध है। शुक्लयजुर्वेद की दो शाखाएँ माध्यन्दिन और काण्व उपलब्ध हैं। दोनों शाखाओं का ब्राह्मण शतपथ नाम से ही अभिहित है किन्तु दोनों में भेद है। माध्यन्दिन शतपथ में सौ अध्याय और काण्वशतपथ में एक सौ चार अध्याय हैं। सम्प्रति सामवेद के सर्वाधिक आठ ब्राह्मणग्रन्थ उपलब्ध हैं—ताण्ड्य, षड्विंश, मन्त्रदैवत, आर्षेय, सामविधान, संहितोपनिषद्, वंश और जैमिनीयब्राह्मण। अथर्ववेद का सम्प्रति अकेला गोपथब्राह्मण उपलब्ध है।

ऐतरेयब्राह्मण

स्वरूप—यह ब्राह्मण ऋग्वेद की शाकल शाखा से सम्बन्धित है। इसके रचयिता

'महीदास ऐतरेय' हैं। यह सर्वप्रथम उल्लेखनीय ब्राह्मण है। इस ब्राह्मण का प्रधान विषय सोमयाग है ऐतरेयब्राह्मण में चालीस अध्याय, आठ पञ्चिकाएँ हैं तथा दो सौ पच्चासी कण्डिकाएँ हैं। प्रत्येक पञ्चिका में पाँच अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय में ६-१४ तक कण्डिकाएँ हैं। कण्डिकाओं को खण्ड भी कहा जाता है। इस ब्राह्मण के अन्तिम दस अध्यायों की रचना पीछे की मानी जाती है; क्योंकि ये दस अध्याय ऐतिहासिक आख्यानों से पूर्ण हैं। इसका पूर्णरूपेण वर्णन नीचे लिखे उल्लेखों से स्पष्ट होता है।

इस ब्राह्मण की प्रथम पञ्चिका में पाँच अध्याय हैं, जिसके पहले अध्याय में छः खण्ड, दूसरे में पाँच खण्ड, तीसरे में छः खण्ड, चौथे में नौ खण्ड तथा पाँचवें में चार खण्ड हैं। ***द्वितीय पञ्चिका*** में भी पाँच अध्याय हैं, जिसके पहले अध्याय में दस खण्ड, दूसरे में आठ खण्ड, तीसरे में छः खण्ड, चौथे में आठ खण्ड तथा पाँचवें में नौ खण्ड हैं। ***तृतीय पञ्चिका*** में पाँच अध्याय हैं, जिसके पहले अध्याय में दस खण्ड, दूसरे में आठ खण्ड, तीसरे में छः खण्ड, चौथे में आठ खण्ड तथा पाँचवें में नौ खण्ड हैं। ***चतुर्थ पञ्चिका*** में भी पाँच अध्याय हैं, जिसके पहले अध्याय में छः खण्ड, दूसरे में आठ खण्ड, तीसरे में आठ खण्ड, चौथे में छः खण्ड तथा पाँचवें में चार खण्ड हैं। ***पञ्चम पञ्चिका*** में पाँच अध्याय हैं, जिसके प्रथम अध्याय में पाँच खण्ड, दूसरे में दस खण्ड, तीसरे में चार खण्ड, चौथे में छः खण्ड तथा पाँचवें में नौ खण्ड हैं। ***षष्ठ पञ्चिका*** में पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में तीन खण्ड, दूसरे में पाँच खण्ड, तीसरे में आठ खण्ड, चौथे में आठ खण्ड तथा पाँचवें में भी आठ खण्ड हैं। ***सप्तम पञ्चिका*** में पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में एक खण्ड, दूसरे में ग्यारह खण्ड, तीसरे में छः खण्ड, चतुर्थ में आठ खण्ड तथा पाँचवें में आठ खण्ड हैं। ***अष्टम पञ्चिका*** में भी पाँच अध्याय हैं, जिसके प्रथम अध्याय में चार खण्ड, दूसरे में छः खण्ड, तीसरे में तीन खण्ड, चतुर्थ में आठ खण्ड तथा पाँचवें में पाँच खण्ड हैं।

विषयवस्तु—ऐतरेयब्राह्मण की प्रथम पञ्चिका में श्रौत संस्था की प्रकृति, अग्निष्टोम संस्था की दीक्षा, विधि आदि को वर्णित किया गया है। इसी क्रम में आगे चलकर सोमक्रय, आतिथ्येष्टि, अग्नि, मन्थन, घर्माभिषव (प्रवर्ग्य), मन्त्र, सोम-सम्बन्धित आख्यायिकाएँ, उपसद, अग्निप्रणयन एवं सोमप्रणयन आदि विषयों का सविषद वर्णन उपलब्ध होता है।

द्वितीय पञ्चिका में यूपोच्छ्रपणं, यूपाञ्जन, आप्रिसूक्त, पर्यग्निकरण, मनोतासूक्त, प्रातरनुवाक, कवष ऋषि की कथा, ऐन्द्रवायवग्रह, ग्रहों का विधान और आज्य-शस्त्र का स्वरूप आदि विषय वर्णित है।

तृतीय पञ्चिका में प्रउगशस्त्र की प्रशंसा, माध्यन्दिनसवन में क्रियामान सोमाभिषव सम्बन्धित कर्म, निष्केवल्यशस्त्र, पित्र्येष्टि यज्ञ की दक्षिणा का विधान, अङ्गहविर्याग

धानाकर्मादियाग तृतीयसवन में होने वाले कार्य-वैश्वदेवशस्त्र, अग्निमारुतशस्त्र, पशु-पुरोडाशयाग, स्विष्टकृतयाग, पत्नीसंयाज, अवभृथेष्टि एवं अग्निष्टोम समाप्ति सूचक उदवसानीया इष्टि आदि विषय सन्निहित हैं।

चतुर्थ पञ्चिका में अग्निष्टोमयाग के पश्चात् आने वाले अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम आदि यागों के स्तोत एवं गावों का विधान है। इसके अन्त में संवत्सर सत्रादि की संख्या का साधन करने के लिए प्रथम दिन साध्य यागों का वर्णन मिलता है। इसमें गवामयन, आदित्यानामयन तथा अङ्गिरसामयन मुख्य है।

पञ्चम पञ्चिका में द्वादशाह के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम एवं दशम दिन के क्रतु की रचना और उसकी रूप-समृद्धि, अक्षर-समृद्धि तथा छन्द-समृद्धि आदि का वर्णन उनके शस्त्रों एवं स्तोत्रों के साथ किया गया है, तत्पश्चात् पृष्ठषडह, अग्निहोत्र, होम-प्रशंसा, सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन, होतृकर्म, अध्वर्युकर्म और उद्गातृकर्म तथा ब्रह्मत्त्व कर्म का सम्बन्ध क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद से दर्शाया गया है।

षष्ठ पञ्चिका में संवत्सर सत्रों का वर्णन, उनकी अहः सम्पत्ति, सत्रों में पढ़े जाने वाले स्तोत्र एवं शस्त्रों का विधान, वेदमन्त्रों से उत्पन्न होने वाले विशिष्ट शिल्प जिसमें ऋचाओं के विभिन्न प्रकार के (एक सूक्त से दूसरे सूक्त में) विहरण जिन शस्त्रों में होता है, उनका वर्णन किया गया है। उन शस्त्रों में वालखिल्य सूक्त, वृषाकपि सूक्त तथा एवयामरुत आदि सूक्त मुख्य हैं। अन्त में नराशंस, कारव्य, परिच्छिति, भूतेच्छद, देवनीथ तथा दिशा क्लृप्ति आदि मन्त्रों का शस्त्रों के मध्य पाठ करने का विधान वर्णित है।

सप्तम पञ्चिका में श्रौत हविर्द्रव्य के रूप में छाग (अज) को ग्रहण किया गया है। उस छाग के किन-किन अङ्गों को कौन-कौन देवता ग्रहण करते हैं, इसको सविस्तार वर्णित किया गया है। यज्ञ में समागत समस्त ऋत्विजों द्वारा अथवा दीक्षित यजमान अथवा उनकी पत्नी द्वारा यज्ञ कर्म में होने वाले प्रमादों के प्रायश्चित्त का भी उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार यज्ञभूमि मार्जार आदि पशुओं के मृत होने पर अथवा यजमान के परिवार में किसी स्त्री के प्रसूता होने आदि विविध प्रकार के अप्रासङ्गिक कर्म होने पर उसकी निवृत्ति के लिए विभिन्न देवताओं को उद्देश्य बनाकर तज्जन्य दोष-निवृत्ति का विधान है। तदनन्तर शुनःशेप का उपाख्यान तथा पूर्व में सम्पादित यज्ञों का एवं उनमें भाग लेने वाले ऋत्विजों का अनुसरण, क्षत्रिय यजमान द्वारा सम्पादित होने वाले यज्ञों का तथा याग में प्रयुक्त पुरोडाश आदि के भक्षण का विधान है।

अष्टम पञ्चिका में राजसूय यज्ञ के पश्चात् साम्राज्य, भौज्य, स्वराज्य, पारमेष्ठ्य, महाराज्य तथा आधिपत्य आदि महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ऐन्द्रमहाभिषेक के विधान

का वर्णन किया गया है, साथ ही साथ ऐन्द्रमहाभिषेक की विधि का भी विवेचन किया गया है। इसके बाद पूर्वकल्प के ऐसे विशिष्ट राजाओं के नामों का उल्लेख किया गया है, जिन्होंने ऐन्द्रमहाभिषेक की विधिय्रों का सम्पादन करके दीर्घकाल तक पृथ्वी के साम्राज्य को अपने अधीन कर रखा था।

इसके पश्चात् पुरोहित के धार्मिक एवं राजनीतिक क्रिया-कलापों का वर्णन है। अन्त में पञ्चमहाभूत, विद्युत, वृष्टि, चन्द्रमा, अग्नि तथा आदित्य आदि देवताओं का सर्जन एवं विसर्जन के क्रम को वर्णित करते हुए 'ब्रह्मपरिमर' नाम का अभिचारी प्रयोग बतलाया गया है। इस क्रिया के ज्ञान द्वारा ज्ञानयज्ञ की प्रतिष्ठा की गई है जिसमें अखिल कर्मों की परिसमाप्ति हो जाती है।

महत्त्व—ऋग्वेद से सम्बद्ध यह ब्राह्मण यज्ञ में 'होतृ' नामक ऋत्विज के विशिष्ट क्रिया-कलापों का विशेष विवरण प्रस्तुत करता है। इसके साथ सोमयाग के नाना प्रकार के स्वरूप तथा इतिहास को बतलाने में विशेष गौरव रखता है। धार्मिक दृष्टि से ऐतरेय-ब्राह्मण की समालोचना में अनेक नवीन तथा प्रमाणिक ज्ञान प्राप्त होते हैं, जिनका अनुशीलन हमें बतलाता है कि तत्कालीन समाज में विष्णु की महिमा विशिष्ट स्थान पर थी। इसमें देवताओं के चार प्रकार के गुण बतलाये गये हैं—(१) देवता शक्ति से युक्त होते हैं। (२) वे परोक्षप्रिय होते हैं। (३) वे एक-दूसरे के घर में नहीं रहते। (४) वे मर्त्यों को अमरत्व प्रदान करते हैं।[१]

ऐतरेयब्राह्मण के अन्तिम तीन अध्यायों में कुछ ऐतिहासिक विवरण भी उपलब्ध होते हैं। इसके अनुसार भारत के पूर्वी सीमा में विदेह आदि अनेक जातियों का राज्य था। दक्षिण में भोज राज्य तथा पश्चिम में 'निच्य' और 'अपाच्य' राज्य था और उत्तर में कुरु और मद्र का राज्य था तथा मध्य देश में कुरु एवं पाञ्चालों का राज्य था। इस तरह इस ब्राह्मण में अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के भी नाम आये हैं। जैसे–परीक्षित-पुत्र जनमेजय, मनु-पुत्र शर्यात, उग्रसेन-पुत्र युधांश्रौष्ठि, पिजवन-पुत्र सुदास और दुष्यन्त पुत्र भरत आदि। इसी प्रकार मत्स्य, काशी, कुरुक्षेत्र एवं खाण्डव आदि स्थानों का उल्लेख है।

शुनःशेप के आख्यान के कारण यह ब्राह्मण वैदिक ग्रन्थों में चिरस्मरणीय है। शुनःशेप ऋग्वेद के ऋषि तथा प्रथम मण्डल के अनेक सूक्तों (२४ से २७ तक) के द्रष्टा हैं। शुनःशेप का आख्यान बड़ा ही करुणोत्पादक होने के कारण साहित्यिक दृष्टि से भी लोकप्रिय हैं।[२] राजा हरिश्चन्द्र वरुण की दया से प्राप्त पुत्र को वरुण देवता के लिए बलि देना चाहते हैं। समर्थ होने पर वह पुत्र 'रोहित' जङ्गल में चला जाता है। राजा हरिश्चन्द्र

---

(१) ऐत०ब्रा०-७.६, ३.३३
(२) बलदेव उपाध्याय–वैदिक कहानियाँ, पृ०-३८-५८

उदर-व्याधि से ग्रसित हो जाते हैं। जब इस घटना का पता रोहित को चलता है तो वह जङ्गल से घर की ओर लौटने लगते हैं। बीच रास्ते में इन्द्र उन्हें लौटने से मना करते हैं, फिर भी वह घर को लौट आते हैं; परन्तु अजीगर्त नामक ब्राह्मण से उसके मध्यम पुत्र शुनःशेप को गायों की दक्षिणा देकर खरीद लेते हैं। वरुण के यज्ञ में पिता ही अपने पुत्र को बलि देने के लिए दक्षिणा लेकर तैयार हो जाता है; परन्तु अनेक देवताओं की अभ्यर्थना के बल पर पुत्र शुनःशेप अपना प्राण बचा लेते हैं। विश्वामित्र उनको पोष्य पुत्र बना लेते हैं। उनके जिन पचास पुत्रों को यह घटना मान्य नहीं होती, उन्हें पिता के अभिशाप से आर्यदेश की प्रान्त भूमि में म्लेच्छ जाति के रूप में परिणत होना पड़ता है।

इस आख्यान को अनेक पश्चिमी वेदज्ञ वैदिक युग में मनुष्यों के बलिदान का परिचायक मानते हैं[१]; परन्तु भारतवर्ष में आर्यधर्म में मनुष्य की बलि देने का कहीं भी कोई विधान नहीं मिलता। शाङ्खायनश्रौतसूत्र में पुरुषमेध की राजसूय के समय योजना का वर्णन तो मिलता है, वह वास्तविक नहीं है, प्रत्युत काल्पनिक तथा प्रतीकात्मक है। रोहित को घर लौटने से इन्द्र ने रोककर 'चरैवेति-चरैवेति' की ज़ो सुन्दर शिक्षा दी है, वह आर्य जाति के अभ्युदय का सम्बल है। कर्म की दृढ़ उपासना ही आर्य संस्कृति का मेरुदण्ड है। आर्य धर्म कर्मण्यता का पक्षपाती और अकर्मण्यता का प्रतिद्वन्दी है।

यह आख्यान आर्यों के दक्षिण देशों में प्रसार के इतिहास तथा समय का पूर्ण साक्षी है। ऐतरेयब्राह्मण के काल में ही ब्राह्मण लोग अपनी अभ्यस्त सीमा के बाहरी प्रान्तों में जाकर निवास करने लगे थे। ऐतरेयब्राह्मण का भौगोलिक सम्बन्ध मध्य देश से ही था; क्योंकि मध्यदेश का उल्लेख बड़े अभिमान के साथ किया गया है और वह ध्रुव तथा प्रतिष्ठा माना गया है[२]; परन्तु ऋग्वेद के समान इसका भी प्रचार-प्रसार आजकल महाराष्ट्र देश में ही है। इसलिए 'ड' के स्थान पर 'ळ' का बहुत्व प्रयोग इस ब्राह्मण में मिलता है। इस प्रकार इस विशिष्ट विशेषताओं के कारण ऐतरेयब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों में अपना विशेष स्थान रखने में गौरव प्राप्त करता है।

कालनिर्धारण—वेदों की भाँति ब्राह्मण ग्रन्थों के काल-निर्धारण में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। एक तरफ पाश्चात्य विद्वान् तथा उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों का समुदाय है। दूसरी तरफ आर्य इतिहास को जीवित रखने वाले तथा प्रामाणिकता की कसौटी पर खरे उतरने वाले भारतीय विद्वान् हैं। ब्राह्मणों का रचना-काल आरण्यकों एवं उपनिषदों का पूर्ववर्ती रहा है--यह तथ्य मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान् कीथ, मैक्समूलर, वेबर

(१) जर्मन विद्वान् हिले ब्राण्ट इससे मनुष्य बलिदान की प्रथा की वैदिक युग में वास्तविक मानते हैं; परन्तु डॉ० कीथ ने इसका सप्रमाण खण्डन किया है।

(२) श्रुतायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि।

आदि एवं भारतीय विद्वानों ने ब्राह्मणों का समय लगभग ८००-६०० वर्ष ई०पू० माना है। भारतीय विद्वान् पण्डित भगवद् दत्त, युधिष्ठिर मीमांसक, बालकृष्ण दीक्षित एवं लोकमान्य तिलक आदि ने ब्राह्मणों का समय सामान्यतया ३५०० विक्रम पूर्व से ३००० विक्रम पूर्व तक निर्धारित करने का सफल प्रयास किया है। इन लोगों के अनुसार ब्राह्मणों का समय महाभारतकालीन सिद्ध होता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनकी रचना एक ही समय में न होकर विभिन्न काल में सम्पन्न हुई थी। इस प्रकार विशालकाय ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना में एक दीर्घ अवधि का समय लगा होगा। ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का समय भी विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर सामान्यतः १०००-९०० वर्ष ईषा पूर्व तक मानना तर्कसङ्गत प्रतीत होता है। एक ही वेद की संहिता से सम्बद्ध होने पर भी कौषीतकिब्राह्मण ऐतरेयब्राह्मण के बाद की रचना प्रतीत होती है। इस प्रकार विषय-वस्तु की दृष्टि से कौषीतकिब्राह्मण ऐतरेयब्राह्मण का अनुगामी होने के कारण भी अर्वाचीन सिद्ध होता है। इस प्रकार कौषीतकिब्राह्मण को काल की दृष्टि से ऐतरेय को परवर्ती माना गया है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण साक्ष्यों के सूक्ष्म विवेचन से भारतीय आर्य-परम्परा ही श्रेयस्कर प्रतीत होती है। पाश्चात्य एवम् उनके अनुयायी भारतीयों का विचार तर्कसङ्गत नहीं लगता। कुछ प्रमाण जरूर उनकी सत्यता को घोषित करते हैं; परन्तु पण्डित भगवद् दत्त, युधिष्ठिर मीमांसक, प्रोफेसर वासुदेवशरण अग्रवाल एवम् अन्य मनीषियों के साक्ष्य के सामने टिक नहीं पाते। अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि शतपथ का समय ३००० ईसा पूर्व तथा ऐतरेय ब्राह्मण का समय ३००० के तुरन्त बाद का तथा शाङ्खायन का समय आरण्यक ग्रन्थों के समय का होगा। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण का सङ्कलन-काल विक्रम से ३०४४ वर्ष पूर्व मानना तर्कसङ्गत है। इस प्रकार ५००० ईसा वर्ष पूर्व ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना हुई होगी। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण का रचनाकाल भी ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना का प्रारम्भिक काल ही रहा होगा।

ऐतरेयब्राह्मण के कर्त्ता—ऐतरेयब्राह्मण की रचना का श्रेय 'महिदास ऐतरेय' को मिलता है। षड्गुरुशिष्य ने ऐतरेयब्राह्मण की सुखप्रदावृत्ति में इन्हें किसी याज्ञवल्क्य नामक ब्राह्मण की इतरा नामक द्वितीय स्त्री का पुत्र बतलाया है।[1] सायण ने भी ऐतरेय-ब्राह्मण के भाष्य के उपोद्घात में 'ऐतरेय' नाम की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में एक परम्परागत कथानक प्रस्तुत किया है।[2] इसके अनुसार किसी महर्षि की अनेक पत्नियों में एक का नाम इतरा

(१) आसीद् विप्रो याज्ञवल्क्यो द्विभार्यस्तस्य द्वितीयामितरेति चाहु। —(इति०ऐ०ब्रा० षड्-गुरुशिष्य प्रथम अध्याय, पृष्ठ-४)।

(२) कस्यचिद् खलु महर्षेर्वह्वः पत्नयो विद्यन्ते स्म। तासां मध्ये कस्या चिदितरेति नामधेयम्। तस्या इतरायाः पुत्रों महिदास कुमारः। —(ऐ०ब्रा० पर सायणभाष्य)

था, जिसके पुत्र महिदास थे। पिता का स्नेह अन्य पत्नियों के पुत्रों पर अधिक था। उन्होंने किसी यज्ञसभा में महिदास को हटाकर अन्य पुत्रों को गोद में बैठाया। खिन्नमुख महिदास को देखकर इतरा ने अपनी कुलदेवता भूमि का स्मरण किया। भूमि देवता दैवी स्वरूप धारण कर यज्ञसभा में प्रकट हुयी।[१] उन्होंने महिदास को एक दिव्य सिंहासन पर ही बैठाया[२] और उनको अन्य कुमारों की अपेक्षा अधिक पाण्डित्य भी प्रदान किया साथ ही साथ यह वर भी दिया कि उन्हें ब्राह्मण प्रतिभासित होगा। इस अनुग्रह से महिदास के मन में ४० अध्याय का ब्राह्मण प्रादुर्भूत हुआ। इसके बाद आरण्यकरूप ब्राह्मण भी उन्हीं के मन से अविर्भूत हुआ।

स्कन्दपुराण के एक अन्य कथानक के अनुसार हारीत ऋषि के वंश में माण्डूक ऋषि तथा इतरा नामक स्त्री से उत्पन्न होने के कारण इनका 'ऐतरेय' पड़ा।[३] बचपन से ही ये 'ॐ नमो भागवते वासुदेवाय' मन्त्र का जप करने लगे थे। ये किसी से बोलते नहीं थे। इसलिए माण्डूक ने पिङ्गा नामक दूसरी स्त्री से विवाह किया जिससे उन्हें चार पुत्र हुए, जो बड़े ही विद्वान् थे। अतः उनका सम्मान हुआ। इतरा ने अपने पुत्र से कहा कि तेरे गुणवान् न होने के कारण तेरें पिता मेरा अपमान करते हैं। अतः अब मैं देह त्याग दूँगी। तब ऐतरेय ने उन्हें धर्म का उपदेश देकर देहत्याग के विचार पर परावृत्त कर दिया। अन्त में भगवान् विष्णु ने उन दोनों को साक्षात् दर्शन देकर आशीर्वाद दिया। बाद में भगवान् के आदेशानुसार कोटितीर्थ पर होने वाले हरिमेश्य के यज्ञ में जाकर वेदार्थ पर उन्होंने प्रवचन किया। हरिमेश्य ने इनका पूजन कर अपनी कन्या से इनका विवाह कर दिया। ऐतरेय आरण्यक में इनका अनेक बार उल्लेख है, किन्तु वहाँ कहीं भी उन्हें उस ग्रन्थ का कर्त्ता नहीं कहा गया है[४]। ऐतरेय-उपनिषद् भाष्य में भी इन्हें इतरा के तपोबल से उत्पन्न माना गया है[५]। ब्रह्मसूत्र के मध्यभाष्य में इनके सम्बन्ध में ब्रह्माण्डपुराण से एक श्लोक भी उद्धृत किया गया है[६]। भागवत् पुराण के टीकाकार के अनुसार इन्हें हरि का अवतार कहा गया है।[७]

---

(२) ऐ०ब्रा० षड्गुरुशिष्य, पृष्ठ-८
(३) ऐ०आ० षड्गुरुशिष्य, भूमिका।
(४) इति स्कन्दपुराण-१.२४२.२८-३०
(५) ऐ०आ०-२.१.८, ३.७
(६) प्रादुर्वभूत भगवांस्तपसेतराया, नारायणो........दासत्वत: स महिदास इति प्रसिद्ध।
—(इति० ऐ०आ०, मध्वभाष्यम्)।
(६) महिदासाभिज्ञो जज्ञे इतरायास्तपो बलात्।
साक्षात् स भगवान् विष्णु स्तन्नं वैष्णवं धात्॥ (इति ब्रह्मणाण्डे, द्र० बा०सू०भ०भा०)।
(७) भागवतपुराण-२.७.१९, विजयध्वज।

कीथ महोदय के अनुसार यह सम्भव है कि महिदास ऐतरेय, ऐतरेयब्राह्मण के सम्पादक हैं। इसी विचारधारा को मानने वाले अन्य पाश्चात्य विद्वान् औफ्रेक्ट भी हैं।[१] इस प्रकार सायण इन्हें परम्परानुसार इतरा और आनन्द तीर्थ विशाल के पुत्र और नारायण का अवतार बताते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में इनके एक सौ सोलह वर्ष तक जीवित रहने की बात कही गयी है[२]।

अत: यह नि:सन्दिग्ध है कि ये एक प्रख्यात ऋषि थे। शाङ्खायनगृह्यसूत्र में[३] निर्दिष्ट ऐतरेय एवं महैतरेय नामों के उल्लेख से इसकी पुष्टि हो जाती है। 'महिदास' शब्द की व्युत्पत्ति चुरादिगणीय पूजार्थक 'मह्' धातु, दानार्थक 'मञ्' धातु और आसनार्थक 'आस्' धातु से होती है।

ऐतरेयब्राह्मण का प्रतिपाद्य

सोमयाग—इस यज्ञ में सोमरस मुख्य हवनीय द्रव्य होता है। इसी कारण इस यज्ञ का नाम सोमयाग हुआ। सोम एक लता विशेष है। पूर्वकाल में यह विशेष स्थानों पर होती थी आजकल सोम सर्वथा उच्छिन्न हो गया है। इसके अभाव में अनुकल्प रूप में 'पूती' नामक एक लता विशेष का याज्ञिक लोग उपयोग करते हैं।

सोमयज्ञ एकाह से लेकर संवत्सर पर्यन्त किये जाते हैं। एक दिन में सम्पन्न होने वाला यज्ञ 'एकाह' कहलाता है। दो दिन में सम्पन्न होने वाला यज्ञ 'द्विरात्र कहलाता है, इसी प्रकार बारह रात्रि पर्यन्त होने वाला यज्ञ 'अहीन' कहा जाता है। त्रयोदश रात्रि से प्रारम्भ करके सहस्र संवत्सर पर्यन्त किये जाने वाला यज्ञ 'सत्र' कहा जाता है। इनमें त्रयोदश रात्रि से 'शतरात्रि' पर्यन्त किये जाने वाला यज्ञ 'रात्रिसत्र' कहा जाता है तथा इसके बाद के सब यज्ञ केवल 'सत्र' कहे जाते हैं। 'द्वादशाह यज्ञ' को अहीन और 'सत्र' दोनों प्रकार का माना जाता है।

सोम यज्ञ करने वाले यजमान को अपने देश के राजा से भूमि की याचना करनी होती है[४]। यहाँ तक की राजा को भी यज्ञ करने के लिए आदित्य से भूमि की याचना करनी होती थी। इस उक्ति से प्रकट होता है कि भूमि का आधिपत्य दिव्य था और राजा देवताओं के प्रतिनिधि के रूप में यज्ञ करने के लिए भूमि प्रदान करता था।

सोमयज्ञों में 'ज्योतिष्टोम यज्ञ' को 'सायण' ने सबसे मुख्य यज्ञ माना है[५]। 'ऐतरेय-ब्राह्मण' में सोमयज्ञों के रूप में केवल 'ज्योतिष्टोम' यज्ञ का ही वर्णन किया गया है, अन्य

---

(१) The Aitareya aranyaka by A.B. Keith, p.16 in the introduction.

(२) छा०उ०-३.१६७ (३) शा०गृ०सू०-४.१०.३

(४) ऐ०ब्रा०-३४.२

(५) एष वाव प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोम:। —(ऐ०ब्रा० (सायण)-१.१ भूमिका)

तीन सोम यज्ञों का केवल नामोल्लेख है, वे हैं–गोष्टोम, आयुष्टोम, चतुष्टोम[१]।

'ज्योतिष्टोम यज्ञ' के नामकरण के विषय में कहा गया है कि अग्नि ऊपर जाकर प्रकाश का रूप धारण करता है, अतः इसे परोक्ष रूप से ज्योतिष्टोम कहा गया है; क्योंकि देवता परोक्षप्रिय होते हैं।[२] 'ज्योतिष्टोम यज्ञ' की सात संस्थाएँ होती हैं—(१) अग्निष्टोम, (२) अत्यग्निष्टोम, (३) उक्थ्य, (४) षोडशी, (५) वाजपेय, (६) अतिरात्र और (७) आप्तोर्याम। ऋग्वेदीय ब्राह्मण में अग्निष्टोम, उक्थ्य षोडशी तथा अतिरात्र–इन चार संस्थाओं का ही वर्णन किया गया है, अन्य तीन संस्थाओं का नहीं।

अग्निष्टोम यज्ञ—अग्निष्टोम यज्ञ को सभी सोम यज्ञों का आदर्श रूप माना गया है। यह यज्ञ सभी सोम यज्ञों की प्रकृति है। उक्थ्यादि छः सोम संख्या विकृति यज्ञ है।[३] अग्निष्टोम यज्ञ की प्रशंसा करते हुए कहा गया है—'जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार सभी सोमयज्ञ अग्निष्टोम में मिल जाते हैं।[४] अग्निष्टोम यज्ञ के आरम्भ में अग्नि की स्तुति की जाती है और अन्तिम स्तोत्र अग्नि को ही सम्बोधित करके पढ़ा जाता है। अतः इसका नाम 'अग्निष्टोम' पड़ा[५]। इस यज्ञ के मुख्य कृत इस प्रकार हैं—पुरोहितवरण, दीक्षणीयेष्टि (यजमान की दीक्षा), प्रायणीय इष्टि (आरम्भ वाली इष्टि), सोमक्रय, अतिथ्येष्टि (सोम की आतिथ्य करने वाली इष्टि), प्रवर्ग्य एवं उपसद्, अग्निप्रणयन, अग्निषोम प्रणयन, हविर्धान-प्रणयन, पशुयज्ञ, सोम अभिषणव, सोम की आहुति देना एवं सोमयज्ञ करना उदयनीयेष्टि और अवभृथ स्नान।

सर्वप्रथम यज्ञ के पुरोहितों का वरण किया जाता है, जो वेदज्ञ, निर्लोभी, तपस्वी और यशस्वी ब्राह्मण हो।[६] इनकी संख्या सोलह होती है। वरण के बाद इनको मधुपर्क अर्पण किया जाता है। यजमान अपने देश के राजा से यज्ञ-सम्पादन हेतु भूमि को दान-स्वरूप प्राप्त करने की याचना करता है।[७]

इस कृत्य के बाद दीक्षणीय-इष्टि का सम्पादन होता है। इसके फलस्वरूप यजामन दीक्षित समझा जाता है। इसमें अग्नि और विष्णु देवताओं को उद्दिष्ट करके ग्यारह कपालों के पुरोडाश की आहुति प्रदान की जाती है। इस इष्टि का सम्पादन अमावस्या अथवा पूर्णिमा को किया जाता है। दीक्षा की क्रिया में यजमान के पुनर्जन्म का

---

(१) ऐ०ब्रा० (सायण)-२४.५, सायण भूमिका। —(ऐ०ब्रा० (सायण)-१.१)
(२) अथ यदूर्ध्वं सन्तं ज्योतिभूतमस्तुवंस्तस्माज्ज्योतिस्तोमस्तं ज्योतिस्तोमं सन्तं ज्योतिष्टोम इत्याचक्षते.....। —(ऐ०ब्रा० (सायण)–१४.५)
(३) अग्निष्टोमः प्रकृतिः कृत्स्नस्यापि अनुष्ठेयस्य। —(ऐ०ब्रा०–१.१)
(४) ऐ०ब्रा०–४१.५ (५) ऐ०ब्रा०–१४.५
(६) ऐ०ब्रा०–१५.२ (७) ऐ०ब्रा०–३४.२

भावनिहित है। यजमान के लिए क्रियमाण कृत्य सद्यजात शिशु के समान होता है। दीक्षित पुरुष मौन रहता हुआ ऐसे स्थान पर निवास करता है, जहाँ पर सूर्य का प्रकाश न पहुँचे। नये वस्त्रों को धारण करके ऊपर से मृगचर्म को धारण करता है। विभिन्न देवता-विषयक अनुवाक्या और याज्या मन्त्रों का पाठ करता हुआ, विभिन्न कामनाओं की पूर्ति हेतु स्विष्टकृत् संयाज्या में विभिन्न छन्दों वाले मन्त्रों का उच्चारण करता है। सत्य बोलने का व्रत लेता है। इस दीक्षा का फल संस्रव-दोष से मुक्ति बतायी है।[१]

दीक्षणीय-इष्टि के उपरान्त प्रायणीय-इष्टि का कृत्य किया जाता है[२] जिसका अभिप्राय प्रारम्भ में क्रियमाण कृत्य से है। इसमें चरु (चावल) को पकाकर अदिति को आहुति दी जाती है।

इसके अतिरिक्त आज्य की चार आहुतियाँ पथ्यास्वस्ति, अग्नि, सोम और सविता देवों के लिए अर्पित की जाती है। तेज, ब्रह्मवर्चस्, अन्न, पशु, सोमपान और स्वर्ग की प्राप्ति हेतु क्रमशः पूर्व, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम और ऊर्ध्व दिशा में आहुति दी जाती है। होता सभी छन्दों के प्रतीक रूप में त्रिष्टुप्, गायत्री और जगती छन्दों वाले मन्त्रों का उच्चारण करता है। प्रयुक्त मन्त्रों में प्र, नी, पथि, स्वस्ति शब्दों का प्रयोग होता है।

प्रायणीय-इष्टि के अनन्तर 'सोमक्रय' का कृत्य सम्पन्न होता है।[३] सोम को संवत्सर के तेरहवें महीने (अधिमास) में खरीदा जाता है। खदीरते समय सुब्रह्मण्या पुरोहित के साथ रहता है।[४] इसके मूल्य के रूप में बछिया को दिया जाता है। बछिया की संज्ञा 'सोमक्रयणी' है।[५] खरीदकर सोम को गाड़ी में लाया जाता है। गाड़ी को प्रथम पूर्वाभिमुख, फिर दक्षिणाभिमुख और अन्त में उत्तराभिमुख चलाते हैं तथा उत्तराभिमुख रहते हुए ही सोम को नीचे उतारते हैं। इस समय गाड़ी का एक बैल छोड़ दिया जाता है और एक बैल गाड़ी से जुता रहता है। नीचे उतार कर वेदी के अन्दर मृगचर्म पर रखा जाता है।

सोमक्रय के अनन्तर सोम के स्वागत में 'आतिथ्य-इष्टि' का सम्पादन होता है।[६] इस इष्टि का प्रमुख देवता विष्णु हैं। इनके लिए नौ कपालों का पुरोडाश बनाया जाता है। तदुपरान्त अरणिमन्थन से अग्नि को उत्पन्न किया जाता है।[७] सविता, द्यावापृथिवी और अग्नि देवों की ऋचाओं का पाठ किया जाता है। यदि अग्नि शीघ्र प्रज्वलित न हो तो

---

(१) द्वयोर्बहूनां वा यजमानानां सम्भूयसोमाभिषवः संस्रवः, स च महान्दोषः तस्मिन्नैव देशे तस्मिन्नैव काले मत्सरग्रस्तैर्यजमानैः प्रवर्तित्त्वात्। –(ऐ०ब्रा० (सायण भाष्य)-१.३)

(२) ऐ०ब्रा०–२.१-५; कौ०ब्रा०–७.५-९

(३) ऐ०ब्रा०–३.१-३; कौ०ब्रा०–७.१०

(४) ऐ०ब्रा०–२६.३ (५) ऐ०ब्रा०–५.१; कौ०ब्रा०–६.१०

(६) ऐ०ब्रा०–३.१-३; कौ०ब्रा०–८.१-२

(७) ऐ०ब्रा०–३.४-७

समझा जाता है कि राक्षसों ने अग्नि को पकड़े हुए है। तब राक्षस-हनन विषयक ऋचाओं का पाठ होता है प्रज्ज्वलित अग्नि को आह्वनीय कुण्ड में रखते हैं। अन्त में यज्ञशेष का भक्षण किया जाता है।

आतिथ्य-इष्टि के अनन्तर 'प्रवर्ग्य-इष्टि' का सम्पादन किया जाता है।[१] सूत्र-ग्रन्थों में 'प्रवर्ग्य-इष्टि' को एक स्वतन्त्र यज्ञ प्रतिपादित किया गया है।[२] इस कृत्य से यजमान के लिए दैवी शरीर के प्राप्ति की कल्पना की गयी है। मिट्टी का एक पात्र निर्मित किया जाता है, जिसकी संज्ञा 'महावीर' है। इसके अतिरिक्त दो अन्य पात्र निर्मित किये जाते हैं। पात्र में घृत को गर्म करते हैं। उबलते हुए घृत में गौ तथा बकरी का दूध मिलाया जाता है। इस प्रकार मिश्रित गर्म दूध व घृत की संज्ञा 'घर्म' है। इस 'घर्म' की आहुति मुख्य रूप से ब्रह्मा, सविता, वाक्, बृहस्पति आदि को दी जाती है।

प्रवर्ग्य-इष्टि के अनन्तर उपसद्-इष्टि का सम्पादन होता है[३] जिसमें घृत की आहुतियाँ अग्नि, सोम और विष्णु देवों के लिए अर्पित की जाती है। आज्य भागों, प्रयाजों और अनुयाजों की क्रियाएँ नहीं की जाती। तीन सामिधेनियों और तीन देवताओं के याज्या मन्त्रों का पाठ किया जाता है। उपसद् के मन्त्रों से ज्ञात है कि वे लोहे, सोने और चाँदी के दुर्गों की ओर सङ्केत करते हैं।[४] उपसद् के समय महावेदी का निर्माण, सोमवृद्धि आदि विविध कृत्य किये जाते हैं। इनके मध्य 'तनूनप्त्र-क्रिया'[५] की जाती है। इस क्रिया के द्वारा पुरोहित और यजमान घृत को छूकर सत्य-भाषण करने की प्रतिज्ञा करते हैं। तदनन्तर सोमपान, सोम-अभिषवण, हविर्धान, अग्नि प्रणयन[६], कुशप्रस्तारण, आदि विविध कृत्य करने के उपरान्त पशु बलि का कृत्य किया जाता है जो विशेष रूप से अग्नि और सोम को उद्दिष्ट करके सम्पादित होता है।

पशु-इष्टि[७]—सर्वप्रथम सोम यज्ञ में पशु-बलि के लिए पशु बाँधने हेतु यूप का निर्माण किया जाता है, यह खदिर, बिल्व और पलाश के काष्ठ से बनाया जाता है। पशु-बलि का भाव यह प्रतिपादित करता है कि दीक्षित यजमान देवों को प्राप्त हो जाता है। पशु-बलि के द्वारा वह देवों से अपने को छुड़ा लेता है। वध के समय पशु के चारों ओर अग्नि को घुमाया जाता है। आप्री मन्त्रों के द्वारा पशु को शुद्ध किया जाता है। पशु-वध

(१) ऐ०ब्रा०–४.१-५; कौ०ब्रा०–८.३-७
(२) आपस्तम्बश्रौतसूत्र १५.५.१२; बौधायनश्रौतसूत्र–९.६ तथा वैदिक धर्म और दर्शन, पृष्ठ–४१२
(३) ऐ०ब्रा०–४.६-९; कौ०ब्रा०–८.८-९
(४) वैदिक धर्म और दर्शन, पृ०-४०६ पर टिप्पणी नं०-२
(५) ऐ०ब्रा०–५.१ (६) कौ०ब्रा०–९.१
(७) ऐ०ब्रा०–६.१ से -७.४ तक; कौ०ब्रा०–१०.१-६

के समय पशु के लिए स्वर्ग जाने की कामना की जाती है। पशु-वध के कृत्य में माता-पिता, भाई-बहन आदि परिवार के सभी सदस्यों का सहयोग रहता है। पशु संज्ञपन (वध) के समय मल-मूत्र आदि को छिपाने के लिए एक गर्त खोदा जाता है। पशु के नीचे दर्भ बिछाते हैं। वधकर्त्ता दो होते हैं। एक की संज्ञा 'शमिता' और दूसरे की संज्ञा 'अध्रिगु' है। वध के समय पशु के पैर उत्तर और आँखें सूर्य की ओर होती है। वध के बाद त्वचा को प्रथम निकालते हैं, तदनन्तर वपा निकाली जाती है। पशु के एक भाग को काटकर पृथक् किया जाता है। वपा को स्रुवा में डालकर भूनते हैं और घृत के साथ उसकी आहुति दी जाती है। इस 'पशु-इष्टि' में चावल के पुरोडाश की आहुति का विशेष भाग है। इस समय पुरोडाश की आहुति में ही पशु की कल्पना किये जाने का सङ्केत है जिससे पशु-वध का निषेध होता है।

पशु-इष्टि के अनन्तर प्रातरनुवाक का उच्चारण किया जाता है।[१] सूर्योदय के पूर्व जब पक्षी भी नहीं जागते उस समय अध्वर्यु 'होता' को प्रातरनुवाक (प्रातःकाल की स्तुति) करने के लिए आदेश देता है। यह स्तुति अग्नि, उषा एवं अश्विनों के लिए कही जाती है; क्योंकि ये देव प्रातःकाल आते हैं। प्रातरनुवाक के समय अग्नीध्र या प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज् निर्वाप (आहुतियों की सामग्री) निकालता है। इसमें ग्यारह कपालों वाली एक रोटी इन्द्र के लिए, इन्द्र के घोड़ों के लिए धाना (भुने हुए जौ), पूषा के लिए करम्भ (दही से मिला जौ का सत्तु), सरस्वती के लिए दही तथा मित्र एवं वरुण के लिए पयस्या (मट्ठा) होता है। इसके उपरान्त अन्य अनेक कृत्य किये जाते हैं।[२] प्रातरनुवाक के समय दीर्घ-आयु, यज्ञ, प्रजा, पशु, पाप से मुक्ति, स्वर्ग आदि की प्राप्ति हेतु सौ, तीन सौ साठ, सात सौ बीस, आठ सौ, सहस्र अथवा अपरिमित मन्त्रोच्चारण का विधान है।

सोम अभिषवण—तदनन्तर सोम रस निकालने का कृत्य किया जाता है।[३] दो प्रकार के जलों का प्रयोग होता है। प्रथम जल की संज्ञा 'वसतीवरी' है, जो 'सूर्य-रात्रि' में लाया जाता है। दूसरे जल की संज्ञा 'एकधना' है, जो उसी दिन प्रातःकाल लाया गया होता है। इन दोनों प्रकार के जलों को 'होता' नामक पुरोहित वेदि पर रखता है। तदनन्तर इन जलों से सोम को भिगोकर निचोड़ा जाता है। यह कृत्य माध्यन्दिन-सवन में आँख पर पट्टी बाँधकर किया जाता है। सोम पीसने के लिए पत्थर का प्रयोग होता है। इस समय सोम-विषयक सूक्तों के अतिरिक्त अन्य सौ अथवा अपरिमित ऋचाओं का पाठ किया जाता है।[४] सोम-अभिषवण के समय प्रयोग में आने वाले उपकरण हैं–चर्म, दो तख्ते,

(१) ऐ०ब्रा०–६.५-८; कौ०ब्रा०–११.१-८
(२) ऐ०ब्रा०–८.८
(३) ऐ०ब्रा०–८.१-६; कौ०ब्रा०–१२.१-८
(४) ऐ०ब्रा०–२६.१

द्रोणकलश, दशपवित्र, पूतभृत्, आधवनीय, उदंचन और चमस।[१] तदनन्तर अन्य अनेक कृत्यों के साथ पात्र पर पात्र रखे जाते हैं। सोम से जो पात्रपूरित किये जाते हैं उनका नाम— ऐन्द्रावायव, मैत्रावरुण, शुक्र, मन्थी, आग्रायण, उक्थ्य और ध्रुव हैं।

जो प्रात:सवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन करके जल में प्रवेश करता है, वह वरुण हो जाता है, इसीलिए इसमें वरुण सम्बन्धी पुरोडाश समर्पित किया जाता है।

शस्त्र एवं स्तोत्र—अग्निस्तोम यज्ञ में शस्त्रों के वाचन के सात प्रकार हैं— (१) मौनरूप से जप, (२) आहाव एवं प्रतिगर, (३) तूष्णींशसः, (४) निविद् या पुरोरुक्, (५) सूक्त, (६) उक्थ्यंवाचि शब्दों का जप; (७) याज्या।[२]

शस्त्र और स्तोत्र शब्दों का अर्थ है कि स्तुति करना। स्तोत्र स्तुति में स्वर सहित गायन होता है। शस्त्र स्तुति में स्वर का समावेश नहीं होता।[३] अग्निष्टोम यज्ञ में इनकी संख्या बारह-बारह है।[४] प्रात:सवन में पाँच स्तोत्र गाये जाते हैं, बाहिष्पवमान स्तोत्र तथा चार आज्य स्तोत्र। माध्यन्दिन पवमान स्तोत्र तथा चार पृष्ठ स्तोत्र। सायंसवन में दो 'स्तोत्र', आर्भव पवमान तथा अग्निष्टोम साम।

बारह शस्त्र ये हैं—प्रात:सवन में आज्यशस्त्र, प्रउगशस्त्र, मैत्रावरुणशस्त्र, ब्राह्मणच्छंसीशस्त्र एवं अच्छावाकशस्त्र। माध्यन्दिनसवन में मरुत्वतीयशस्त्र, निष्केवल्यशस्त्र, मैत्रावरुणशस्त्र, ब्राह्मणच्छंसीशस्त्र एवं अच्छावाक्शस्त्र। सायंसवन में दो शस्त्र होता है– वैश्वदेवशस्त्र व अग्निमारुतशस्त्र।[५]

उक्थ्य यज्ञ—अग्निष्टोम के बाद सोम यज्ञ के विकृति रूप यज्ञों में उक्थ्य यज्ञ का उल्लेख हुआ है।[६]

इस सोम यज्ञ में अग्निष्टोम के स्तोत्रों तथा शस्त्रों के अतिरिक्त अन्य तीन उक्थ्य स्तोत्र और तीन उक्थ्य शस्त्र पाये जाते हैं। इस प्रकार सायंकालीन सोमरस निकालते समय गाये जाने वाले स्तोत्र एवं पढ़े जाने वाले शस्त्र, छन्द कुल पन्द्रह होते हैं।[७]

षोड्शी यज्ञ—इस यज्ञ में उक्थ्य के पन्द्रह स्तोत्रों एवं शस्त्रों के अतिरिक्त एक अन्य स्तोत्र एवं शस्त्र का गायन और पाठ होता है। इस प्रकार स्तोत्रों और शस्त्रों की संख्या सोलह होती है। सोलह अक्षर के बाद 'ओ३म्' पद का उच्चारण किया जाता है। सोलह

---

(१) ऐ०ब्रा०–३५.६
(२) आश्वलायनश्रौतसूत्र–५.१०.२१.२४
(३) पूर्वमीमांसासूत्र–७.२.१७
(४) ऐ०ब्रा०–१४.१
(५) इन शस्त्रों का विस्तृत विवेचन डॉ० जमुनापाठक द्वारा सम्पादित ऐतरेयाण्यक की भूमिका में दिया गया है। इसे वहीं देख लेना चाहिए।
(६) ऐ०ब्रा०–१५.६-६; कौ०ब्रा०–१६.११
(७) ऐ०ब्रा०–१४.३

पदों का निविद् रखा जाता है। इसलिए इस यज्ञ का नाम 'षोडशी यज्ञ' है इस यज्ञ में पिङ्गल अश्व या खच्चर की दक्षिणा दी जाती है।[१]

अतिरात्र यज्ञ[२]—षोड्शी स्तोत्र के अनन्तर अतिरात्र संज्ञक सामों का गायन इस यज्ञ के अन्त में होता है। इसमें उन्नीस स्तोत्र और उन्नीस शस्त्र होते हैं। यह एक दिन और एक रात्रि में पूर्ण होता है, अतः इसका नाम अतिरात्र है। इसके अतिरिक्त स्तोत्र एवं शस्त्र रात्रि के समय स्तोत्रों एवं शस्त्रों के चार आवर्तों में कहे जाते हैं। इनकी अपर संज्ञा 'पर्याय' भी है। एक सहस्त्र मन्त्रों वाले आश्विन् शस्त्र का प्रातरनुवाक की रीति से किया जाता है।

अत्यग्निष्टोम यज्ञ—कर्मकाण्ड में इस यज्ञ के पृथक् अस्तित्व को नहीं माना जाता अपितु अग्निष्टोम यज्ञ अथवा षोडशी यज्ञ के समान ही प्रतिपादित किया जाता है।[३] इसमें षोडशी यज्ञ से एक स्तोत्र और एक शस्त्र अधिक रहता है।

आप्तोर्याम यज्ञ—इस यज्ञ का अतिरात्र के अन्तर्गत परिगणन है। इसमें तैंतीस स्तोत्र और तैंतीस शस्त्र होते हैं। अग्नि, इन्द्र, विश्वेदेव एवं विष्णु के लिए क्रमशः एक-एक सोम की आहुति दी जाती है। इसका सम्पादन पशु-हित के लिए किया जाता है।[४]

सोम यज्ञों के भेद

एकाह यज्ञ—अग्निष्टोम तथा अन्य सोमयज्ञ एकाह कहते जाते हैं। इन यज्ञों में प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन में एक ही दिन में तीन बार सोमरस का पान किया जाता है।[५]

अहीन यज्ञ—इन यज्ञों का सम्पादन बारह दिनों तक किया जाता है। इनकी समाप्ति पर अतिरात्र यज्ञ करने का विधान है। दीक्षा और उपसद कृत्यों के दिनों को यदि इसमें सम्मिलित कर लिया जाय तो इसकी अवधि एक मास हो जाती है।

सत्र यज्ञ—ऐसे यज्ञों को 'सत्र' कहा जाता है, जो दीर्घकाल की अवधि तक के लिए सम्पादित किये जाते हैं। इनका सम्पादन बारह दिनों से लेकर एक वर्ष या इससे अधिक रहता है। सत्रयज्ञों की प्रकृति 'द्वादशाह यज्ञ' को माना गया है।

द्वादशाह यज्ञ—'ऐतरेयब्राह्मण' में इस यज्ञ का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है।[६] इसका परिगणन अहीन और सत्र-इन दोनों यज्ञों में किया जाता है। इस यज्ञ में तीन त्र्यह (नौ दिन) एक दशवीं और दो अतिरात्र होते हैं। द्वादशाह 'प्रायणीय' से प्रारम्भ होकर

---

(१) ऐ०ब्रा०-१६.१-४
(२) ऐ०ब्रा०-१४.३ तथा १६.५-६
(३) वैदिक धर्म और दर्शन, पृ०-४१५
(४) आश्वलायनश्रौतसूत्र-९.११.१
(५) आश्वलायनश्रौतसूत्र-८.५.११
(६) ऐ०ब्रा०, अध्याय १९ से २४ तक

'उदयनीय' पर समाप्त होता है। ये दोनों अतिरात्र दिवसों के होते हैं। पृष्ठषडह के आरम्भिक कृत्यों के रूप में इसमें चार छन्दोभ होते हैं और एक अतिवाक्य दिन जो कि दसवाँ होता है। पृष्ठषडह के सभी छः दिनों में पृष्ठ स्तोत्र भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। प्रथम दिन रथन्तर स्वर में, द्वितीय दिन बृहत् में, तृतीय दिन वैरूप में, चतुर्थ दिन वैराज में, पञ्चम दिन शाक्वर में और षष्ठ दिन रैवत साम होता है।

ऋत्विजों की संख्या सोलह होती है, जोकि मुख्य कृत्यों से पूर्व दीक्षा प्राप्त करते हैं। दीक्षा का समय शिशिर-ऋतु में शुक्ल पक्ष को उत्तम माना गया है। दीक्षा से पूर्व प्रजापति के लिए पशु-आलम्भन किया जाता है। इस यज्ञ की उत्पत्ति प्रजापति के अङ्गों से प्रतिपादित की गयी है। इस यज्ञ का सम्पादन श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए किया जाता है, जिस तथ्य को एक आख्यायिका के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया गया है कि 'एक बार देवों ने इन्द्र को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ नहीं माना तो इन्द्र ने श्रेष्ठता प्राप्ति हेतु द्वादशाह यज्ञ का सम्पादन किया।[१]

गवामयन यज्ञ—यह सत्र-यज्ञ सांवत्सरिक सत्र यज्ञों का आधार है।[२] इसका अभिप्राय गौ = सूर्य की किरणों के मार्ग से है। इस सत्र का प्रारम्भ फाल्गुन या चैत्रमास की पूर्णिमा पर या माघ की पूर्णिमा के चार दिन पूर्व किया जाता है।[३] इस सत्रयज्ञ में छः मास पूर्वार्द्ध में और छः मास उत्तरार्द्ध में होते हैं। मध्य में विषुवन्त दिवस होता है। जिसके मुख्य कृत्य इस प्रकार हैं—

प्रायणीय अतिरात्र (आरम्भिक दिन) एक चतुर्विंश दिवस (उक्थ्य) जिस पर चौबीस गुने स्तोम का प्रयोग होता है। पाँच मास जिनमें प्रत्येक चार अभिप्लव षडह के चौबीस दिन, एक पृष्ठ्य षडह के छः दिवस होते हैं। छठे महीने में तीन अभिप्लव षडह, एक पृष्ठ्य षडह इस प्रकार कुल चौबीस दिवस होते हैं, एक अभिजित् दिवस (अग्निष्टोम) तीन स्वरसाम दिवस मिलाकर ये अट्ठाईस दिवस होते हैं। महीना पूरा करने के लिए दो दिवसों का आधान कर दिया जाता है। इसके बाद मध्य दिवस 'विषुवत्' आता है। इस दिन एकविंश स्तोम का पाठ तथा अतिग्राह्य सोमपात्र सूर्य तथा किसी अपराधी को दिया जाता है।

संवत्सर के उत्तरार्द्ध के में सातवें महीने में तीन स्वर साम दिन, एक विश्वजित् दिन (अग्निष्टोम), एक पृष्ठ्य षडह तथा तीन अभिप्लव षडह रहते हैं। इस प्रकार ये अट्ठाईस दिन हुए, पूर्व की भाँति दो दिनों का आधान करके महीना पूरा किया जाता है। इससे आगे

---

(१) ऐ०ब्रा०-१९.३
(२) ऐ०ब्रा०-१७.६-८ तक तथा १८वाँ अध्याय सम्पूर्ण।
(३) ऐ०ब्रा०-१९.४

के चार मासों (आठवाँ, नवाँ, ग्यारहवाँ) में एक-एक पृष्ठ्य षडह तथा चार-चार अभिप्लव षडह होते हैं। बारहवें मास में तीन अभिप्लव षडह, एक आयुष्टोम दिवस, एक गोष्टोम दिवस, दशरात्र, महाव्रत और उदयनीय दिवस होते हैं।

राजकर्तृक यज्ञ—सामाजिक प्रतिष्ठा में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति राजा होता है। प्रत्येक व्यक्ति की अभिलाषा इस प्रकार के पद को प्राप्त करने की होती है। ब्राह्मण-काल में राजा का पद भी विभिन्न यज्ञों के माध्यम से सम्भव था। अतः राजसूय, राज्याभिषेक, अश्वमेध आदि यज्ञों का विकास हुआ। राजत्व से सम्बन्ध होने के कारण इन यज्ञों का 'राजकर्तृक' नाम पड़ा।

ऐन्द्रमहाभिषेक[१]—यह एक ऐसा राजत्व सम्बन्धी यज्ञ था जिसे देवों ने इन्द्र को ओजस्वी, साहसी और पराक्रमी मानकर राजा बनाने के लिए किया था। इन्द्र के लिए ऋचाओं से वेदमयी आसन्दी (सिंहासन) को तैयार किया था। देवताओं ने बृहद् और रथन्तर सामों को आसन्दी के अगले दो पाद बनाया था। वैरूप और वैराज को पिछले दो पाद, शाक्वर रैवत को ऊपर का शीर्ष, नैधस और कालेय को बगल के तख्ते, ऋचाओं का ताना, साम का बाना, यजुषों को बीच का छिद्र भाग, यश को विस्तर, श्री को तकिया बनाया। इस प्रकार सिंहासन को तैयार करके सविता और बृहस्पति ने इसके अगले पाद को पकड़ा, वायु और पूषा ने पिछले पाद को, मित्र और वरुण ने दो ऊपर के तख्ते को और अश्विनों ने दो बगल के तख्तों को पकड़ा। इन्द्र ने इस सिंहासन पर वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, मरुत्, अङ्गिरा आदि के बाद आरोहण किया।

सिंहासन पर आरोहण के समय इन्द्र ने कामना की कि मैं सिंहासन पर साम्राज्य, भौज्य, स्वाराज्य, वैराज्य, राज्य, पारमेष्ठ्य,महाराज्य, आधिपत्य और स्वावश्य–इन विविध शासन प्रणालियों की प्राप्ति के लिए आरोहण करता हूँ।

सिंहासन पर आरोहण करने के बाद देवों ने इन्द्र के गुणों की घोषणा करते हुए कहा कि आज साम्राज्य का सम्राट्, भोज शासन-प्रणाली के राजा का पिता, पारमेष्ठ्य का परमेष्ठी क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है। सम्पूर्ण प्राणी जगत् का अधिपति, प्रजा का रक्षक, असुरों का हन्ता, ब्राह्मणों और धर्म का रक्षक उत्पन्न हो गया है। इस प्रकार घोषणा किये जाने के पश्चात् प्रजापति ने उदुम्बर और पलाश की आर्द्र शाखा से उसका अभिषिञ्चन किया।

इस अभिषेक की क्रिया के बाद वसु देवों ने साम्राज्य की प्राप्ति के लिए पूर्व दिशा में इन्द्र का अभिषेक किया, रुद्र देवों ने दक्षिण दिशा में भोज्य के लिए, आदित्यों ने पश्चिम दिशा में स्वराज्य के लिए, विश्वेदेवों ने उत्तर दिशा में वैराज्य के लिए, साध्य और

---

(१) ऐ०ब्रा०–३८.१-३

आप्त्य देवों ने बीच की ध्रुवा दिशा में राज्य के लिए, मरुतों और अङ्गिरसों ने ऊर्ध्व दिशा में पारमेष्ठ्य, महाराज्य, आधिपत्य और स्वावश्य के लिए इन्द्र का अभिषेक किया। इस प्रकार अभिषिक्त इन्द्र ने सब दिशाओं को जीत लिया।

यह ऐन्द्र महाभिषेक ही परवर्ती राजाओं के राज्याभिषेक का मूल प्रतीत होता है। कहा गया है कि जो ऋत्विज् क्षत्रिय को उपर्युक्त आठ शासन प्रणालियों का अधिपति बनाना चाहे वह ऐन्द्र महाभिषेक की रीति से उस क्षत्रिय का राज्याभिषेक करें।[१]

ऐन्द्र महाभिषेक के समान राज्याभिषेक से अभिषिक्त, जनमेजय, शर्यातमानव, शतानीक, सत्राजित्, विश्वकर्मा, सुदासपर्वत, अङ्ग, भरत दौष्यन्ति, पाञ्चाल आदि अनेक राजाओं का उल्लेख है, जिन्होंने अभिषेक के प्रभाव से सर्वत्र विजयी होकर प्रभूत सम्पत्ति का अर्जन किया था।[२]

राजसूय यज्ञ एवं राज्याभिषेक[३]—राजसूय यज्ञ का सम्पादन केवल क्षत्रिय वर्णस्थ जन करते थे। विश्वास किया जाता था कि इस यज्ञ के सम्पादन से राजा बनता है।[४] इस कृत्य के सम्पादन से पूर्व फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन दीक्षा का विधान है। तदनन्तर 'अनुमति' और 'निर्ऋति' को आहुतियाँ दी जाती हैं। महीने के पन्द्रहवें दिन से एक वर्ष तक चातुर्मास्य इष्टियों का सम्पादन होता है। चातुर्मास्य वाले पर्वों के बीच पूर्णिमा एवं अमावस्या के मासिक यज्ञ होते हैं। फाल्गुन मास में शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन 'शुनासीरीय यज्ञ' के साथ चातुर्मास्य यज्ञों की परिसमाप्ति होती है। राजसूय यज्ञ का मुख्य कृत्य अभिषेक होता है। इसमें क्षत्रिय को राजा घोषित किया जाता है। दीक्षा के बाद क्षत्रिय ब्राह्मणोचित वेशभूषा धारण करके अभिषेक के कृत्यों का सम्पादन करता है।

अभिषेक के समय प्रयुक्त सामग्री—उदुम्बर की आसन्दी (सिंहासन) जिसके पाये प्रादेश मात्र स्थूल होते हैं। आसन्दी मूँज के बन्धन से बँधी होती है और व्याघ्रचर्म से आच्छादित की जाती है। एक उदुम्बर की शाखा, उदुम्बर का चमस होता है, चमस में आठ वस्तुएँ होती हैं—दही, घृत, मधु, धूप में बरसने वाला वर्षा का जल, शष्प, तोक्म (अङ्कुर), सुरा और दूर्वा। 'स्फ्य' से रेखा खींचकर आसन्दी को वेदी के प्राची दिशा में स्थापित किया जाता है। तदनन्तर अभिषिक्त होने वाला क्षत्रिय आसन्दी पर पीछे से आरूढ़ होते समय दोनों हाथों से आसन्दी को पकड़ कर दाहिनी जाँघ से भूमि का स्पर्श करके कहता है कि हे आसन्दी! अग्नि गायत्री छन्द से, सविता उष्णिक् छन्द से,

---

(१) ऐ०ब्रा०–३९.१ (२) ऐ०ब्रा०–३९.७-९

(३) इस सम्पूर्ण कृत्य का विशद विवेचन द्रष्टव्य ऐ०ब्रा० अध्याय ३६-३९ तक।

(४) शत०ब्रा०–९.३.४.८

सोम अनुष्टुप् छन्द से, बृहस्पति बृहती छन्द से, मैत्रावरुण पंक्ति छन्द से और इन्द्र त्रिष्टुप् छन्द से, विश्वेदेव जगती छन्द से तुझ पर आरूढ़ होवें, तत्पश्चात् मैं राज्य, साम्राज्य, वैराज्य, पारमेष्ठ्य, महाराज्य, आधिपत्य, स्वावश्य और अतिष्ठ्य के लिए तुझ पर आरूढ होऊँ।

आसन्दी पर बैठ जाने पर पुरोहित उदुम्बर की जल में भीगी शाखा को क्षत्रिय के सिर पर रखकर जल की शान्ति के लिए ऋचाओं का पाठ करता है। राजा को सम्बोधित करके कहता है कि 'तेरी भद्रा माता ने तुझे महान् साम्राज्य करने के लिए उत्पन्न किया है'। तत्पश्चात् सविता, अश्विन्, पूषा, अग्नि, इन्द्र–इन देवों से शक्ति प्राप्ति की कामना की जाती है।

तदनन्तर अन्य विविध कृत्यों के सम्पादन के बाद सोमरस का पान करके राजा आसन्दी से नीचे उतरता है और अपने राज्य की सुख-समृद्धि के लिए पुरोहित को तीन बार प्रणाम करके जय, अभिजय, विजय और संजय के लिए आशीर्वाद प्राप्त करता है। प्रतीकात्मक रूप से शत्रु को पराजित करने का कृत्य किया जाता है।

इस कृत्य के बाद राजा महल में जाकर यज्ञीय कृत्य का सम्पादन करता है, जिसमें पुरोहित चार कास्यपात्रों से घी की आहुति देता है। इस समय राजा को शुनःशेप का आख्यान विशेष रूप से सुनाया जाता है।[१]

अश्वमेध यज्ञ—यह क्षत्रिय के लिए विजय प्राप्ति के अनन्तर सम्पाद्यमान विशेष कृत्य है, जिसके द्वारा राजा अपनी शक्ति व प्रभाव की स्थापना करता है। इस यज्ञ की विशेष-विधि और कर्त्तव्यों का इस ब्राह्मण में उल्लेख नहीं किया गया है। केवल उन सार्वभौम राजाओं की सूचना मात्र है, जिन्होंने इस यज्ञ का अनुष्ठान किया और सम्पादन के बाद प्रभूत धन-सम्पत्ति दक्षिणा-स्वरूप ऋत्विज् ब्राह्मण को वितरित किया।[२]

ऋत्विज्—जिन विभिन्न यज्ञों का विवेचन ऊपर किया गया है, उन सभी यज्ञों में विभिन्न ऋत्विजों की आवश्यकता अपेक्षित है; क्योंकि सूक्ष्म और रहस्यात्मक क्रियाएँ कर्मकाण्ड के विशेषज्ञ ऋत्विजों द्वारा की सम्पाद्य हैं। इन यज्ञों में एक से सोलह ऋत्विजों की आवश्यकता होती है।[३] इन सभी ऋत्विजों को चार वर्गों के विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार हैं—

(क) होतृवर्ग—इस वर्ग में 'होता' मुख्य ऋत्विज् होता है और तीन इसके सहायक होते हैं—मैत्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत। ब्राह्मण-साहित्य में होतृवर्ग के कार्यों का ही मुख्य रूप से उल्लेख किया गया है। यज्ञ-विधि में देवताओं का आह्वान करने के कारण

(१) ऐ०ब्रा०–३३.६ (२) ऐ०ब्रा०–३९.७-९

(२) आश्वलायनश्रौतसूत्र–४.१.६; आपस्तम्बश्रौतसूत्र–१०.१.९; ऐ०ब्रा०–९.८

इसका यह नाम हुआ।[१] यज्ञ में इसका कृत्य ऋग्वेद की ऋचाओं का शंसन करना है।[२] यह यजमान के कल्याण के लिए यज्ञ-कृत्य में प्रवृत्त होता है; परन्तु किसी कारण से रुष्ट होकर यजमान का अनर्थ भी कर सकता है।[३]

(ख) अध्वर्युवर्ग—इस वर्ग में अध्वर्यु ऋत्विज् मुख्य और तीन सहायक ये हैं—प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, पोता। इसका कार्य यज्ञ-विधि में यजुर्वेद के यजुषों का पाठ करना है।[४] यह सोम अभिषवण के समान की भी देख-रेख करता है[५] और विशेष कृत्यों के लिए होतृ वर्ग को आदेश होता है।[६]

(ग) उद्गातृवर्ग—इस वर्ग में उद्गाता प्रमुख ऋत्विज् और प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता, सुब्रह्मण्या–ये तीन इसके सहायक होते हैं। यज्ञ-विधि में सामगान करना इसका मुख्य कार्य है।[७]

ब्रह्मावर्ग—इस वर्ग में मुख्य ऋत्विज् ब्रह्मा तथा ब्राह्मणाच्छंसी, अग्नीध्र और होता इसके सहायक ऋत्विज् हैं। यद्यपि इसका अपना वेद अथर्ववेद है, तथापि यह अन्य सभी वेदों का ज्ञाता भी होता है। यह यज्ञ का अध्यक्ष होता है। ऋक्, यजु और साम के उच्चारण में त्रुटि होने पर ब्रह्मा से निवेदन किया जाता है और वह उस त्रुटि का मार्जन करके यज्ञ को शुद्ध करता है। इसी कारण ब्रह्मा को यज्ञ का चिकित्सक कहा गया है।[८]

विविधि यज्ञों के कार्य—'अग्निहोत्र' नामक यज्ञ में केवल 'अध्वर्यु' नामक ऋत्विज् की आवश्यकता होती है। अग्न्याध्येय, दर्शपूर्णमास आदि यज्ञों में अध्वर्यु, अग्नीध्र, होता एवं ब्रह्मा–इन ऋत्विजों की आवश्यकता होती है। चातुर्मास्य यज्ञों में पाँच ऋत्विजों की आवश्यकता होती है—चार दर्शपूर्णमास यज्ञ में वर्णित ऋत्विज् एवं एक प्रतिप्रस्थाता ऋत्विज्। पशुबन्ध यज्ञ में इनके अतिरिक्त मैत्रावरुण नामक छठा ऋत्विज्

---

(१) कस्मात्तं होतेत्याचक्षते यद्वाव स तत्र यथा भोजनं देवता अमुमावहामुमाव हेत्यावाहयति तदेव होतुर्होतृत्त्वं होता भवति। —(ऐ०ब्रा०–१.२)

(२) ऐ०ब्रा०–२५.७; कौ०ब्रा०–६.११

(३) ऐ०ब्रा०–१०.५; ११.३, ७; १२.८, ११

(४) ऐ०ब्रा०–२५.७; कौ०ब्रा०–६.११

(५) ऐ०ब्रा०–३५.६

(६) ऐ०ब्रा०–५.४; ६.२,५

(७) ऐ०ब्रा०–८.४; २५.७; कौ०ब्रा०–६.११

(८) ऐं०ब्रा०–२५.९; कौ०ब्रा०–६.११ तथा ब्राह्मणि वै यज्ञः प्रतिष्ठितः। यद्वै यज्ञस्य स्खलितं वोल्बणं भवति ब्राह्मण एव तत्राहुः। तत्स त्र्यया विद्या भिषज्यति।

—(कौ०ब्रा०–६:१२)

भी होता है। सोम यज्ञों में सभी सोलह ऋत्विजों की आवश्यकता होती है।

दक्षिणा—यज्ञ कर्म में ऋत्विजों को दिये गये दान को 'दक्षिणा' कहा जाता है। क्षत्र यज्ञ का पुनः सन्धान (दक्षता) इस कर्म के द्वारा होती है, अतः इसे दक्षिणा नाम से अभिहित करना अन्वर्थक है।[१] इसके बिना यज्ञकर्म खण्डित हो जाता है। यज्ञ कर्म के निष्पादन में यजमान के अतिरिक्त ऋत्विजों की सहायता अनिवार्य है। इन सबका सम्मिलित कर्म यजमान के यज्ञकर्म का स्वरूप सम्पादन करना है। कर्म द्वारा ऋत्विजों का आत्मप्राण भी इस यज्ञाग्नि में प्रविष्ट रहता है। यज्ञकर्म से उत्पन्न होने वाला यज्ञफल तब तक यज्ञकर्त्ता यजमान की निजी सम्पत्ति नहीं बन सकता जब तक कि वह उन ऋत्विजों के कर्मानुगत फल को यज्ञ फल से बाहर न निकाल दे। इसके निकालने का उपाय ही 'दक्षिणा' दान है। वेद के विद्वान् ऋत्विजों ने जितना श्रम किया, उसके प्रतिरूप में शास्त्र-विहित गौ, वस्त्र, हिरण्य, रजत आदि देने से उनका स्वत्व यज्ञ फल से निवृत्त हो जाता है[२] और यज्ञफल एक मात्र यजमान की निजी सम्पत्ति बन जाता है।

दक्षिणा दान एक शास्त्रीय कर्म है, अतः अधिकारी भेद से ही दानपात्र की व्यवस्था है। यज्ञ कराने वाले ऋत्विजों की आवश्यकता के अनुसार दक्षिणा की कल्पना नहीं की जाती। विभिन्न यज्ञों में विभिन्न ऋत्विजों के लिए विभिन्न प्रकार की 'दक्षिणा' दान स्वरूप प्रदान करने का विधान है। यथा राजसूय यज्ञ में होता को हजार गौ, स्वर्ण का आसन, खच्चरों सहित चाँदी का रथ, अध्वर्यु को गौ और स्वर्ण का आसन दक्षिणा स्वरूप प्रदान करने का विधान है।[३]

राज्याभिषेक के बाद तथा विजय के उपरान्त अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन करके प्रभूत दक्षिणा विसर्जित करने का उल्लेख अनेकशः हुआ है। जिसमें हजार गौ, आयताकार खेत[४], दस हजार हाथी, दस हजार दासियाँ, अट्ठासी हजार वस्त्र आदि दक्षिणा स्वरूप प्रदान किये गये हैं।[५]

संस्करण—सर्वप्रथम मार्टिंग हाग ने १८६३ में अंग्रेजी व्याख्या के साथ इस ग्रन्थ को सम्पादित कर बम्बई से प्रकाशित किया। थ्यूडर आउफ्रैक्ट ने १८७९ ई० में सायण-भाष्य के सारांश के साथ बोन से प्रकाशित किया। चार भाग में सम्पूर्ण सायणभाष्य के साथ १८९४-१९०६ ई० में सत्यव्रत सामश्रमी महोदय ने सम्पादित कर कलकत्ता से प्रकाशित किया। पण्डित काशीनाथ शास्त्री आगाशे ने सायणभाष्य के साथ दो भागों में सम्पादित कर १८९६ ई० में आनन्दाश्रम पूना से प्रकाशित किया। अनन्त कृष्ण शास्त्री

---

(१) दक्षिणाभिर्वै यज्ञं दक्षयति। कौ०ब्रा०-१५.१

(२) ऐ०ब्रा०-३.२ (३) ऐ०ब्रा०-३३.६

(४) ऐ०ब्रा०-३९.६ (५) ऐ०ब्रा०-३९.८

ने षड्गुरुशिष्य की सुखप्रदा वृत्ति के साथ तीन भागों में (अपूर्ण) १९४२-१९५२ में त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित किया था। ए०बी० कीथ द्वारा १९२० में (हार्वर्ड ओरियण्टल सीरीज़ २५वीं जिल्द) अंग्रेजी में अनूदित हुआ। इसके अतिरिक्त निर्णय सागर से १९२५ में मूलमात्र छपा था। पण्डित गङ्गाप्रसाद उपाध्याय ने विक्रम संवत् २००६ में ऐतरेयब्राह्मण का हिन्दी अनुवाद के साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित किया था। इसके बाद डॉ० सुधाकर मालवीय ने १९८० ई० में ऐतरेयब्राह्मण को सायण-भाष्य और हिन्दी अनुवाद के साथ दो भागों में वाराणसी से प्रकाशित किया।

प्रस्तुत संस्करण—ऐतरेयब्राह्मण के अनेक संस्करण सायणभाष्य के साथ प्रकाश में आये हैं जो संस्कृत भाषा के माध्यम से वेदाध्यायियों के लिए महदुपयोगी है, किन्तु हिन्दी भाषा के माध्यम से अध्ययन करने वाले वेदपाठियों के लिए दुरूह है। यद्यपि हिन्दी के साथ डॉ० सुधाकर मालवीय का संस्करण उपलब्ध है किन्तु अध्येताओं के लिए सुगम नहीं है। इसके माध्यम से अध्येता ब्राह्मण-वाक्यों का भाव तो समझ सकते हैं किन्तु शब्दों के ज्ञान से अनभिज्ञ ही रहते हैं। अतः इस संस्करण में शब्दों के ज्ञान के द्वारा वाक्यों के भाव को स्पष्ट किया गया है। इस संस्करण में ऐतरेयब्राह्मण में प्रयुक्त शब्दों को देकर उसकी हिन्दी दी गयी है जिससे अध्येता सुगमतापूर्वक शब्दों के अर्थ से परिचित हो जाते हैं। इसके साथ ही साथ गूढ़ विषयों को समझने के लिए स्थल-स्थल पर 'विमर्श' का संयोजन किया गया है जिससे गूढ़ तथ्य सरलतापूर्वक बोधगम्य हो जाता है।

विषयानुक्रमणी

द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

अष्टमोऽध्यायः

नवमोऽध्यायः

दशमोऽध्यायः

द्वादशोऽध्यायः

त्रयोदशोऽध्यायः

चतुर्दशोऽध्यायः

पञ्चदशोऽध्यायः

सप्तदशोऽध्यायः

अष्टादशोऽध्यायः

विंशोऽध्यायः

अथैकविंशोऽध्यायः

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

त्रयोविंशोऽध्यायः

चतुर्विंशोऽध्यायः

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

अथ षड्विंशोऽध्यायः

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अथ त्रिंशोऽध्यायः

अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

अथ द्वित्रिंशोऽध्यायः

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्याय:

चतुस्त्रिंशोऽध्याय:

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

अथ अष्टात्रिंशोऽध्यायः

अथ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

सायणाचार्यकृतभाष्यभूमिका

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थनामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥१॥

यस्य निःश्वसितं[1] वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥२॥

यत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्कमहीपतिः ।
आदिशन्माधवाचार्यं[2] वेदार्थस्य प्रकाशने ॥३॥

ये पूर्वोत्तरमीमांसे ते व्याख्यायातिसङ्ग्रहात् ।
कृपालुर्माधवाचार्यो[3] वेदार्थं वक्तुमुद्यतः ॥४॥

ननु कोऽयं वेदो नाम? के वा तस्य विषयप्रयोजनसम्बन्धाधिकारिणः? कथं वा तस्य प्रामाण्यम्? न खल्वेतस्मिन् सर्वस्मिन्नसति वेदो व्याख्यानयोग्यो भवति। अत्रोच्यते—इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः। अलौकिकपदेन प्रत्यक्षानुमाने व्यावर्त्येते। अनुभूयमानस्य स्रक्चन्दनवनितादेरिष्टप्राप्तिहेतुत्वम्, औषधादेरनिष्टपरिहारहेतुत्वं च प्रत्यक्षतः सिद्धम्, स्वेनानुभविष्यमाणस्य पुरुषान्तरगतस्य च तथात्वमनुमानगम्यम्। एवं तर्हि भाविजन्मगतमप्यनुमानगम्यमिति चेत्, न; तद्विशेषस्यानवगमात्[4]। न खलु ज्योतिष्टोमादिरिष्टप्राप्तिहेतुः, कलञ्जभक्षणवर्जनादिरनिष्टपरिहारहेतुरित्यमुमर्थं वेदव्यतिरेकेणानुमानसहस्रेणापि तार्किकशिरोमणिरप्यवगन्तुं शक्नोति, तस्माद् अलौकिकोपायबोधको वेद इति लक्षणस्य नातिव्याप्तिः।

अत एवोक्तम्—

'प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥' इति ।

स एवोपायो वेदस्य **विषयः**। तद्बोध एव **प्रयोजनम्**। तद्बोधार्थी च**अधिकारी**। तेन सहोपकार्योपकारकभावः **सम्बन्धः**।

---

(१) 'निश्वसिता, निश्वासितम्' इति वा पाठौ ।
(२) 'आदिशत्सायणाचार्यो'इति वा पाठः ।
(३) 'कृपालुः सायणाचार्यो'—इति मुद्रितेषु ऐतरेयारण्यक–तैत्तिरीयारण्यक–सामवेदीय–छन्द–आरण्यक–भाष्येषु ताण्ड्याद्यष्टब्राह्मणभाष्येषु च पाठः ।
(४) 'तद्विशेषस्यानभिगमात्' इति वा पाठः ।

नन्वेवं सति स्त्रीशूद्रसहिताः सर्वेऽपि वेदाधिकारिणः स्यु? इष्टं मे स्यादनिष्टं मा भूदित्याशिषः सार्वजनीनत्वात्। मैवम्। स्त्रीशूद्रयोः सत्यप्युपायबोधार्थित्वे हेत्वन्तरेण वेदाधिकारस्य प्रतिबद्धत्वात्; उपनीतस्यैवाध्ययनाधिकारं ब्रुवच्छास्त्रमनुपनीतयोः स्त्रीशूद्रयोर्वेदाध्ययनमनिष्टप्राप्तिहेतुरिति बोधयति। कथं तर्हि तयोस्तदुपायावगमः? पुराणादिभिरिति ब्रूमः।

अत एवोक्तम्—

'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
इति भारतमाख्यानं मुनिना कृपया कृतम्॥'[१] इति।

तस्मादुपनीतैरेव त्रैवर्णिकैर्वेदस्य सम्बन्धः। तत्प्रामाण्यं तु बोधकत्वात् स्वत एव सिद्धम्। पौरुषेयवाक्यं तु बोधकमपि सद्भ्रान्तिमूलत्वसम्भावनया तत्परिहाराय अन्यप्रमाणमपेक्ष्यैव प्रमाणम्। न तु वेदः मूलप्रमाणमपेक्षते; तस्य नित्यत्वेन कर्तृदोषशङ्काया अनुदयात्। एतदेव जैमिनिना सूत्रितम्—'तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्'[२]—इति॥

ननु वेदोऽपि कालिदासादिवाक्यवत् पौरुषेय एव ब्रह्मकार्यत्वश्रवणात्—

'...................ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुः तस्मादजायत[३]॥ इति श्रुतेः।

अत एव भगवान् बादरायणः 'शास्त्रयोनित्वात्'[४] इति सूत्रेण ब्रह्मणो वेदकारणत्वम-

---

(१) भाग०पु० १.४.२५

(२) मी०सू० १.१.५। 'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे, तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्' इति सम्पूर्णं सूत्रम्। तत्रेदमित्थं व्याख्यातं शबरस्वामिना स्वभाष्ये—'औत्पत्तिक इति नित्यं ब्रूमः। उत्पत्तिर्हि भाव उच्यते लक्षणया। अवियुक्तः शब्दार्थयोर्भावः सम्बन्धो, नोत्पन्नयोः पश्चात् सम्बन्धः। औत्पत्तिकः शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः, तस्य अग्निहोत्रादिलक्षणस्य धर्मस्य निमित्तं प्रत्यक्षादिभिरनवगतस्य। कथम्? उपदेशो हि भवति। उपदेश इति विशिष्टस्य शब्दस्योच्चारणम्। व्यतिरेकश्च ज्ञानस्य। न हि तदुत्पन्नं ज्ञानं न विपर्येति, न तच्छक्यते वक्तुम्, नैतदेवमिति। यथा भवति—यथा विज्ञायते, न तथा भवति—यथैतन्न विज्ञायते, तथैतदिति। अन्यदस्य हृदये अन्यद् वाचि स्यात्। एवं वदतो विरुद्धमिदं गम्यते अस्ति नास्ति वेति, तस्मात् प्रमाणम् अनपेक्षत्वात्। न ह्येवं सति प्रत्ययान्तरमपेक्षितव्यं पुरुषान्तरं वाऽपि। अयं प्रत्ययो ह्यसौ। बादरायणग्रहणं बादरायणस्येदं मतं कीर्त्यते, बादरायणं पूजयितुम्। नात्मीयं मतं पर्युदासितम्'।

(३) ऋ० १०.९०.९।

(४) ब्र०सू० १.१.३। तदिदमेवं व्याख्यातवन्तः श्रीशङ्करभगवत्पादाः—महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थविद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः

वोचत्। मैवम्, श्रुतिस्मृतिभ्यां नित्यत्वावगमात्।

'वाचा विरूप नित्यया'[१] इति श्रुतेः।

'अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा'[२] इति स्मृतेश्च।

बादरायणोऽपि वेदताधिकरणे सूत्रयामास—'अत एव च नित्यत्वम्'[३] इति। तर्हि परस्परविरोध इति चेत्, न नित्यत्वस्य व्यावहारिकत्वात्। सृष्टेरूर्ध्वं संहारात् पूर्वं व्यवहारकालः। तस्मिन्नुत्पत्तिविनाशादर्शनात्। कालाकाशदयो यथा नित्या एवं वेदोऽपि व्यवहारकाले कालिदासादिवाक्यवत् पुरुषविरचितत्वाभावान्नित्यः। आदिसृष्टौ तु कालाकाशादिवदेव ब्रह्मणः सकाशाद् वेदोत्पत्तिराम्नायते। अतो विषयभेदान्न परस्परविरोधः। ब्रह्मणो निर्दोषत्वेन वेदस्य कर्तृदोषाभावात् स्वतस्सिद्धं प्रामाण्यं तदवस्थम्। तस्माल्लक्षणप्रमाणसद्भावाद्। विषयप्रयोजनसम्बन्धाधिकारिसत्त्वात्। प्रामाण्यस्य सुस्थित्वाच्च वेदो व्याख्यातव्य एव।[४]

ननु वेदार्थावबोधे विध्यभावाद् बोधसाधनं व्याख्यानं व्यर्थमिति चेत्; न, अध्ययनविधेर्बोधपर्यवसायित्वात्।[५] एतच्च भट्टगुरुमतानुसारिभिर्बहुधा प्रपञ्चितम्। आम्नायते च—

कारणं ब्रह्म। न हीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति।

(१) ऋ० ८.७५.६। तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्॥ 'हे विरूप = नानारूपैतन्नामक महर्षे त्वम्; तस्मै = प्रसिद्धाय; अभिद्यवे = अभिगततृप्तये वृष्णे = वर्षकायाग्नये नित्यया = उत्पत्तिरहितया, वाचा = मन्त्ररूपया, सुष्टुतिं नूनमिदानीं चोदस्व। स्तुहीत्येवमृषिः स्वात्मानं ब्रवीति यजमानो वा होतारं विरूपम्'—इति तत्रत्यं सायणभाष्यम्।

(२) महाभा० १२.२३२.२४। 'आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः'—इति चैतच्छ्लोकस्यापरार्धः ब्रह्मसूत्रस्य शाङ्करभाष्ये दृश्यते न तु महाभारते।

(३) ब्र०सू० १.३.२९। अत एव नियताकृतेर्देवादेर्जगतो वेदशब्दप्रभवत्वात् वेदशब्दे नित्यत्वमपि प्रत्येतव्यमिति तत्रत्यं शाङ्करभाष्यम्।

(४) ननु कोऽयं वेदः......इत्यारभ्य व्याख्यातव्य एवेत्यन्तो ग्रन्थः तै०सं० सायणभाष्यभूमिकायामिपि दृश्यते।

(५) अध्ययनविधिश्चैषः—

'यस्तित्याज सखिविदं न तस्य वाच्यपि भागोऽस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ इति।

(ऋ०सं० १०.७१.६)

'अग्निं वै जातं' 'सुकृतस्य पन्थामिति' तस्मात् 'स्वाध्यायोऽध्येतव्य' इति च (तै० आ० २.१५)।

(i) 'यदधीतमविज्ञातं[१] निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित् ॥'

(ii) 'स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् अधीत्य वेद न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥[२]

(iii) 'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च'[३] इति।

एवं तर्हि ज्ञानस्य पृथग् विधानादध्ययनं पाठमात्रमिति चेत्, अस्तु नाम, वर्णयन्त्येवमेव शाङ्करदर्शनानुसारिणः।

क्रतुविधिव्यतिरेकेणानुष्ठानान्यथानुपपत्त्या वेदार्थज्ञानस्य प्रापितत्वान्नैतद् विधेयमिति चेत्, तर्हि द्विविधबलाद् वेदनमात्रेण स्वतन्त्रं किञ्चिदपूर्वमस्तु। श्रूयते ह्यनुष्ठानज्ञानयोः स्वतन्त्रं पृथक् फलम्—

'सर्वं पाप्मानं तरति, तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उ चैनमेवं वेद'[४]। इति।

अल्पप्रयाससाध्येन वेदनेन तत्सिद्धौ बह्वायाससाध्यमनुष्ठानं व्यर्थं स्यादिति चेत्, न; तरणीयाया ब्रह्महत्याया मानसिक-कायिकत्वविभेदेन तारतम्योपपत्तेः। मनसा सङ्कल्पिता, वाचाऽभ्यनुज्ञाता परहस्तेन कारिता स्वयं कृता, पुनः पुनः कृता चेत्येवं तारतम्येनावस्थिता ब्रह्महत्याऽनेकविधा। अतस्तरणमप्यनेकविधम्, यथा स्वर्गो बहुविधस्तद्वत्। 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत', 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत'[५], इत्यादावुच्चावचकर्मणामेकविधफलासम्भवात् स्वर्गो बहुधोऽभ्युपगन्तव्यः। तथा ब्रह्महत्यादिपापनिवृत्तेरपि बहुविधत्वात् वेदनेनापि काचित् ब्रह्महत्या विवर्तत इति योग्यतानुसारेण कल्पताम्। किञ्च तत्तद्विधिसमीपे 'य एवं वेद'—इति वचनानि वेदनफल[६] ब्रुवते। तान्यर्थवाद रूपाणीति चेत्, अस्तु नाम। सहामह एवैतमपराधं तेषां वचनानां विधेयार्थप्रशंसापरत्वात्। तर्हि 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः', इति न्यायेन स्वार्थे प्रामाण्यं नास्तीति चेत्, न। महातात्पर्यस्य विधेयविषयत्वेऽप्यवान्तरतात्पर्यस्य स्वार्थविषयतानिवारणात्। 'ग्रावाणः प्लवन्ते' इत्यर्थवादस्यापि स्वार्थे प्रामाण्यं प्रसज्येतेति चेत्, न प्रमाणान्तरबाधित्वात्। 'द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते'[७] इत्याद्यर्थवादस्य तु बाधाभावेऽप्यनुवादत्वान्न स्वार्थे प्रामाण्यम्। वेदनफलवचनानि तु नानुवाद-

---

(१) मुद्रितसंहिताभाष्यभूमिकायां निरुक्ते च (१.६.१) 'यद्गृहीत' एष एव पाठः। पातञ्जलमहाभाष्यस्य पश्पशाह्निके तु 'यदधीत' इति।

(२) निरु० १.६। 'वचनद्वयं शाखान्तरगतम्' इति ऋ०सं० सा०भा० भूमिकायाम्।

(३) पा०महा० पस्पशाह्निके चोद्धृतमिदं वचनम्।

(४) तै०सं० ५.३.१२.२। (५) द्र० तै०ब्रा० २.१।

(६) 'वेदनादेव फलम्' इति वा पाठः। (७) तै०सं० ५.१.७.३

कानि नापि बाध्यानि। तस्मादर्थवादत्वेऽप्यस्तेषां स्वार्थे प्रामाण्यम्। अन्यथा मन्त्रार्थ-वादादिभ्यो वेदादीनां विग्रहादिमत्त्वं न सिध्येत्।

अत एवोक्तम्—

विरोधे गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधा मतः ॥[१] इति।

किं बहुना। विद्यत एवावश्यं वेदनमात्रादपूर्वम्। अतो वेदनाय वेदो व्याख्यायते।

तस्य च वेदस्य भागद्वयं कल्पसूत्रकारैरुदाहृतम्—'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'[२]—इति। तत्र मन्त्र विषया विचाराः[३] संहिताव्याख्याने द्रष्टव्याः, ब्राह्मणलक्षणं तु द्वितीयाध्यायस्य प्रथमपादे विचारितम्—

'नाऽस्त्येतद्ब्राह्मणेत्यत्र लक्षणं विद्यतेऽथवा।
नाऽस्तीयन्तो वेदभाग इति क्लृप्तेरभावतः ॥

मन्त्रश्च ब्राह्मणं चेति द्वौ भागौ तेन मन्त्रतः।
अन्यद् ब्राह्मणमित्येतद् भवेद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥[४] इति।

चातुर्मास्येष्विदमाम्नायते—'एतद् ब्राह्मणान्येव पञ्च हवींषि'[५]—इति। तत्र ब्राह्मणस्य लक्षणं नास्ति, कुतः? वेदभागानामियत्तानवधारणेन ब्राह्मणभागेष्वन्यभागेषु च वाच्य-लक्षणस्याव्याप्त्यतिव्याप्त्योः शोधयितुमशक्यत्वादिति चेत्, न; भागद्वयानङ्गीकारेण मन्त्र-व्यतिरिक्तो भागो ब्राह्मणमिति लक्षणस्य निर्दोषत्वात्।

ननु ब्रह्मयज्ञप्रकरणे मन्त्रब्राह्मणव्यतिरिक्ता इतिहासादयो भागा आम्नायन्ते,—'यद् ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः'।[६] इति? मैवम्; विप्रपरिव्राज-कन्यायेन ब्राह्मणाद्यवान्तरभेदानामेवेतिहासादीनां पृथगभिधानात्। 'देवासुराः संयता आसन्'[७] इत्यादय इतिहासाः। 'इदं वा अग्ने नैव किञ्चनासीन्न द्यौरासीत्'[८] इत्यादिकं जगतः प्रागनवस्थानमुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्। कल्पस्तु आरुणकेतुकचयन-प्रकरणे समाम्नायते—'इति मन्त्राः कल्पोऽत ऊर्ध्वं यदि बलिं हरेत्'[९] इति। अग्नि-चयने—'यमगाथाभिः परिगायति'[१०] इति विहिता मन्त्रविशेषा गाथाः। मनुष्यवृत्तान्त-प्रतिपादिका ऋचो नाराशंस्यः।[११] तस्मात् मन्त्रब्राह्मणव्यतिरिक्तवेदभागाभावान्मन्त्रव्यति-

(१) मीमांसार्थसंग्रहे चोद्धृतमिदं वचनं व्याख्यातं च सोदाहरणम्।
(२) आप०प०परि०सू० ३४ (३) मन्त्रविचाराः इति वा पाठः।
(४) जै०न्या०वि० २.१.८.२४,२५ (५) तै०ब्रा० १.६.४.३; ७.१.१।
(६) तै०आ० २.९ (७) तै०सं० १.५.१.१ (८) तै०सं० २.२.९.१
(९) तै०आ० १.२६.१ (१०) तै०सं० ५.१.८.२
(११) ऐ०आ० २.९.२ भाष्ये तूदाहृतम्—'होता यक्षन्नराशंसम् (वा०सं० २१.३१) इति।

रिक्तं ब्राह्मणमित्येतल्लक्षणं सुस्थितम् ॥

तस्य लक्षणस्य 'अग्निर्वै देवानामवमः'[१] इत्यादिग्रन्थे विद्यमानत्वाद् इदं ब्राह्मणम्। सच्चेश्वरानुग्रहाद् इतरायाः पुत्रेण लब्धत्वाद् ऐतरेयमित्युच्यते। महर्षीणां तत्तद्वेदभाग-लाभः स्मर्यते,—

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥[२]—इति।

प्रकृतस्य तु ब्राह्मणस्य ऐतरेयकत्वे सम्प्रदायविद एतामाख्यायिकामाचक्षते—'कस्य चित् खलु महर्षेर्बह्व्यः पत्नयो विद्यन्ते स्म। तासां मध्ये कस्याश्चिदितरेति नामधेयम्। तस्या इतरायाः पुत्रो महिदासाख्यः कुमारः। एतच्चारण्यककाण्डे समाम्नायते—'एतद्ध स्म वै तद्विद्वान् महिदास ऐतरेयः'[३]— इति तदीयस्य तु पितुर्भार्यान्तरपुत्रेष्वेव स्नेहातिशयः; न तु महिदासे। ततः कस्याञ्चिद् यज्ञसभायां स महिदासमवज्ञाय यान् पुत्रान् स्वोत्सङ्गे स्थापयामास। तदानीं खिन्नवदनं महिदासमवगत्येतराख्या तन्माता स्वकीयकुलदेवतां भूमिमनुसस्मार। सा च भूमिर्देवता दिव्यमूर्तिधरा सती यज्ञसभायां समागत्य महिदासाय दिव्यं सिंहासनं दत्त्वा तत्रैनमुपवेश्य सर्वेष्वपि कुमारेषु पाण्डित्याधिक्यमवगमयैतद्ब्राह्मण-प्रतिभासनरूपं वरं ददौ। तदनुग्रहात् तस्य महिदासस्य मनसा 'अग्निर्वै देवानामवमः'[४] इत्यादिकं 'स्तृणुते'[५]—इत्यन्तं चत्वारिंशदध्यायोपेतं ब्राह्मणं प्रादुरभूत्। तत ऊर्ध्वम्—'अथ महाव्रतम्'[६] इत्यादिकम्—'आचार्याः'[७] इत्यन्तमारण्यकव्रतरूपं च ब्राह्मणमाविर-भूत्'—इति।

तस्यैतरेयस्य प्रादुर्भूते चत्वारिंशदध्यायोपेते ब्राह्मणे चतुःसंस्थो 'ज्योतिष्टोमः प्रथमं विधीयते।[८] यावत्। ततो गवामयनम्[१०] तत आदित्यानामयनम्[११] ततोऽङ्गिरसामयनम्।[१२]

---

(१) ऐ०ब्रा० १.१.१ (२) महाभा० १२.२१०.१९
(३) ऐ०आ० २.१.८.२ (४) ऐ०ब्रा० १.१.१ (५) ऐ०ब्रा० ८.५.५
(६) ऐ०आ० १.१.१.१ (७) ऐ०आ० ३.२.६.९
(८) अहो चित्रमेतत्? महानाम्न्याख्यमन्त्रात्मकस्य चतुर्थारण्यकस्यात्रैतरेयत्वेन कथं न ग्रहणं कृतमिति? तद्भाष्यशेषे तूक्तमिदम्—तदिदं नवसंख्यानामृचां पुरीषपदानाञ्च प्रतिपादकं ग्रन्थजातं यद्यपि कर्मकाण्डे पठितुं युक्तं तथाप्यरण्ये एवाध्येतव्यमित्यभि-प्रेत्य चतुर्थारण्यकत्वेनात्र पठितम्'—इति (ऐ०आ० ४.१.१)।
(९) ऐ०ब्रा० १.१७ ख० ५ यावत्। तत्रापि प्रथमाध्याये दीक्षणीयेष्टिः, द्वितीये प्रायणी-येष्टिः उदयनेष्टिश्च, तृतीये आदित्येष्ट्यादयः, चतुर्थेऽभिष्टवादयः, पञ्चमे सोमक्रयाद्या इत्येवमुत्तरत्र बोध्यम्।
(१०) ऐ०ब्रा०–१७.६; (११) ऐ०ब्रा०–१८.३-८
(१२) ऐ०ब्रा०–१८.३-८। गवामयनमादित्यानामयनमङ्गिरसामयनं चैते संवत्सरसत्रविशेषाः।

ततो द्वादशाहः[१] ततोऽन्यत्सर्वम् ।[२] प्रासङ्गिकमिति द्रष्टव्यम् । गोष्टोमायुष्टोमादिषु सोमयागेषु ज्योतिष्टोमस्य[३] प्राथमम्यमुक्तम्[४]—'एष वाव प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोमः'—इति श्रुतेः ।[५] तस्य ज्योतिष्टोमस्य सप्तसंस्थोपेतस्य[६] अग्निष्टोमः, उक्थ्यः, षोडशी, अतिरात्रश्चेत्येताश्चतस्रः संस्थाः अत्रानुक्रमेण वक्ष्यन्ते ।[७] तस्मिन्नापि चतुष्टये अग्निष्टोमः प्रकृति,[८] कृत्स्नस्यानुष्ठेयस्य तस्मिन्नग्निष्टोमे प्रत्यक्षश्रुत्यैवोपदिष्टत्वात् । 'प्रकर्षेण क्रियते साकल्येनानुष्ठेयमुपदिश्यते यस्यां सा प्रकृतिः'—इति हि तच्छब्दव्युत्पत्तिः । उक्थ्यादयस्तु विकृतयः; विशेषस्यैव तत्र प्रत्यक्षोपदेशेन सम्पादितत्वात् । अवशिष्टं तु सर्वमनुष्ठेयं 'प्रकृतिवद् विकृतिः कर्त्तव्या'—इति न्यायेनैव सम्पाद्यते ।[९] अत एवोपजीव्यत्वादग्निष्टोम एवादौ वक्तव्यः ॥

(१) ऐ०ब्रा० अ० १९-२४ ।

(२) ऐ०ब्रा० अ० २५-४० । अग्निहोत्रादिकम्, पञ्चङ्गविभागादिकम्, राजयज्ञे स्तोत्रशास्त्रयोर्विशेषादिकञ्चेति यावत् ।

(३) "अथ यदेनमूर्ध्वं सन्तं ज्योतिर्भूतमस्तुयंस्तस्मात् ज्योतिः–स्तोमं सन्तं ज्योतिष्टोमित्याचक्षते"—इति ऐ०ब्रा० ३.४.५ । ज्योतिष्टोमशब्देन सोमयागोऽभिधीयते ।

(४) ज्योतिष्टोमं प्रथममुपयन्त्यस्मिन्नेव तेन लोके प्रतितिष्ठन्ति गोष्टोमं द्वितीयमुपयन्त्यन्तरिक्ष एव तेन प्रतिष्ठिन्त्यायुष्टोमं तृतीयमुपयन्त्यमुष्मिन्नेव तेन लोके प्रतितिष्ठन्ति"—इति तै०सं० ७.४.११.१ । ज्योतिष्टोमपद्धतिस्तु का०श्रौ०सू० ७.११ अध्यायेषु द्रष्टव्या ।

(५) एष वाव प्रथमो यज्ञानां य एतेनानिष्ट्वाथान्येन यजेत गर्त्तपत्यमेव तज्जीयते वा प्र वा मीयते' इति ता०ब्रा० १६.१ । 'एष प्रथमः सोमः । षडुत्तरे'—इति का०श्रौ० सू० १०.९.२५.२७

(६) अग्निष्टामोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजयेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम इति संस्थाः'—इति आश्व०श्रौ० ६.११.१ । सर्वे सोमयागाः संस्थया सप्तविधा एवेत्यर्थः'—इति च तत्र तट्टीकोपसंहारः । तदेवं सोमसम्पाद्य एक एव ज्योतिष्टोमः अग्निष्टोमाद्याख्यः सप्तविधः । तद्यथा—अग्निष्टामसाम्ना यज्ञायज्ञीयाख्येन यज्ञसमाप्तिर्यत्र सोऽयमग्निष्टोमः; तत्रैवाग्निष्टोमे राजन्यस्य षोडशिनं गृह्णीयादिति आग्निमारुतादूर्ध्वं षोडशिग्रहस्य स्तुतशस्त्रे यदा भवतस्तदा सोऽत्यग्निष्टोम इत्युच्यते । एवमुक्थ्यादयश्च ।

(७) तत्राग्निष्टोमः प्रथमाध्यायादि पञ्चदशाध्यायीयचतुर्थखण्डान्तं यावदुक्तः, पञ्चदशाध्यायीयान्तखण्डयोरुक्थ्यः, षोडशाध्यायीयादिचतुःखण्डेषु षोडशी, ततः पञ्चमषष्ठखण्डयोः सप्तदशाध्यायीयाद्यखण्डपञ्चके चातिरात्र इति विवेकः । 'एतद्वा अग्निष्ठोमं प्रथममुपयन्त्यथोक्थ्यमथ षोडशिनमथातिरात्रमनुपूर्वम्'—इति तै०सं० ७.४.१०.१।

(८) "अग्निष्टोम एकाहानां प्रकृतिः"—इति च आप०य०परि०सू० १४१ ।

(९) न प्रकृतावूहो विद्यते । विकृतौ यथार्थमूहः"—इति आप०य०परि०सू० १३३, १३४ । अति देशोहबाधाभ्युच्चयरूपः प्रकृतिविकृतिविचारस्तु जैमिनिदर्शने सप्तमाष्टमनवमदशमाध्यायेषु विशेषतः कृतो द्रष्टव्यः ।

यद्यपि तस्याग्निष्टोमस्य प्रक्रमेऽवश्यमृत्विग्वरणं वक्तव्यम्; 'सोमेन यक्ष्यमाणो ब्राह्मणानार्षेयानृत्विजो वृणीत,–इत्यापस्तम्बेनाभिधानात्[1] तथापि ऋग्वेदस्य होतृवक्तव्य-प्रतिपादकत्वात्।[2] ऋत्विग्वरणस्य तु हौत्रत्वाभावात् तदुपेक्ष्येहेष्टिरादौ विधीयते।[3]

ऋग्वेदस्य हौत्रत्वं समाख्याबलात् तृतीयाध्यायस्य तृतीयपादे विचारितम्—

'वेदत्रयोक्तधर्माणामृत्विग्भिः सङ्गतस्त्रिभिः।
अनियत्या नियत्या वाऽनियतिर्वाऽनिरूपणात्॥

हौत्रत्वादिसमाख्यानं नियतेर्गमकं स्वतः।
निर्बाधं चान्यक्तच्च तेनात्र विनियोजकम्॥[4]

याज्यापुरोनुवाक्यादयो धर्मा ऋग्वेदे प्रोक्ताः, दोहननिर्वापादयो यजुर्वेदे, आज्य-स्तोत्रपृष्ठस्तोत्रादयः सामवेदे, तत्रस्यैवैते धर्मा इति नियामकस्य दुर्निरूपत्वाद् येन केना-प्यृत्विजा यः कोऽपि धर्म इच्छया सङ्गच्छत इति चेत्, **मैवम्**; हौत्रमाध्वर्यवमौद्गात्रमिति समाख्यानेन नियतिर्बोध्यते; न च समाख्यानस्य बाधकं किञ्चित् पश्यामः। तस्मादबोध-कत्वबाधितत्वयोरप्रामाण्यकारणयोरभावाच्छ्रुतिलिङ्गादिपञ्चकवत् प्रमाणेन[5] समाख्यानेन धर्मा व्यवस्थाप्यन्ते।

नन्विष्टेरप्यध्वर्युकर्तृकत्वाद्यजुर्वेदे कर्तव्यता; न त्वत्रेति चेत्, सत्यम्। तथापीष्टि-गतयोर्याज्यानुवाक्ययोर्हौत्रत्वेनात्र वक्तव्यत्वादिष्टेरनुक्तौ याज्यानुवाक्ये कुत्रत्ये इति विशेष-सम्बन्धस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् तदवबोधाय प्रथममिष्टिर्विधातव्या॥

॥ इति सायणाचार्यभाष्यभूमिका ॥

---

(१) आप०श्रौ० १०.१.१

(२) तथाहि—"ऋग्वेदेनैव हौत्रमकुर्वत यजुर्वेदेनध्वर्यवं सामवेदेनोद्गीथम्"–इति शत० ब्रा० ११.५.८.४। "तदादुर्महावदा३: यदृचैव हौत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्-गीथं व्यारब्धा त्रयी विद्या भवति। अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति? त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात्"—इति चेहोपरिष्टात् ५.५.८। एवमापस्तम्बोऽप्याह—"ऋग्वेदेन होता करोति, सामवेदेनोद्गता, यजुर्वेदेनाध्वर्युः, सर्वैर्ब्रह्मा, वचनाद् विप्रतिषेधाद् वान्यः कुर्यात्"—इति आ०य०परि०सू० १९-२३

(३) अष्टिः = दीक्षणीयेष्टिः। दीक्षणीयार्थस्त्वग्रे (ऐ०ब्रा० १.४.४) द्रष्टव्यः।

(४) जै०न्या०वि० ३.३.६.१३।

(५) तथा च जैमिनिदर्शनसूत्रम्—"श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-रामाख्यानां समवाये-पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्"—इति ३.३.१४।

ऋग्वेदीयम्

ऐतरेयब्राह्मणम्

(पूर्वार्द्धम्)

॥ ॐ ब्रह्मपुरुषाय नमः ॥

ऐतरेयब्राह्मणम्

(पूर्वार्द्धम्)

(श्रीमत्सायणाचार्यप्रणीतभाष्यसमलङ्कृतम् 'शशिप्रभा'नामहिन्दीव्याख्योपेतञ्च)

अथ प्रथमपञ्चिकायाम्

प्रथमोऽध्यायः

अथ प्रथमः खण्डः

(सोमयाग-निरूपण)

(तत्रादौ अग्निविष्णुदेवतयोः प्रशंसनम्)

सायणभाष्यम्—अतस्तामिष्टिं विधातुं तद्देवतारूपमग्निं विष्णुं चाऽऽदौ प्रशंसति—

ॐ अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः ॥१॥

हिन्दी—**देवानाम्** देवताओं में **अग्निः वै अवमः** अग्नि ही प्रथम (स्थानीय) और **विष्णुः परमः** विष्णु अन्तिम (स्थानीय है)। **तदन्तरेण** उन (अग्नि और विष्णु) के मध्य में **अन्याः सर्वाः देवताः** अन्य (इन्द्र, वरुण, वायु, आदित्य इत्यादि) सभी देवताओं का स्थान है ॥

सा० भा०—योऽयमग्निरस्ति, सोऽयं देवतामध्ये अवमः प्रथमो द्रष्टव्यः। यस्तु 'विष्णुः' सोऽयं 'परमः' उत्तमः। वैशब्द उक्तार्थे मन्त्रप्रसिद्धिद्योतनार्थः। 'अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानां सङ्गतानामुत्तमो विष्णुरासीत्' इति हि मन्त्र आम्नायते।[१] यद्वा वैशब्द उपपत्ति-प्रसिद्ध्यर्थः। उपपत्तिश्चैवं योजनीया। यद्यपि देवशब्दः साधारणत्वात् सर्वदेवतावाची तथाऽप्यत्र प्रकरणबलादग्निष्टोमाङ्गेषु शस्त्रेषु प्रतीयमानाः प्रधानदेवता विवक्ष्यन्ते। शस्त्राणि च द्वादश।[२] तेष्वाज्यशस्त्रं प्रथमम्, तस्मिंश्च 'भूरग्निर्ज्योतिः' इत्यग्निराम्नातः।[३]

---

(१) इयमेवर्क् आग्नावैष्णवस्य हविषो याज्या इति वक्ष्यति (१.४.८)।

(२) तत्र आज्यशस्त्रं १०.५-९; प्रउगशस्त्रं ११.१-४; मरुत्वतीयं शस्त्रं १२.४-१०; निष्केवल्यं शस्त्रं १२.११-१३; आग्निमारुतं शस्त्रं १३.९-१४।

(३) 'आग्नेयं होताज्यं शंसति'–इत्यादि १०.५.४-१७।

आग्निमारुतं शस्त्रमन्तिमम्, तस्मिन् 'विष्णोर्नुकम्' इति विष्णुराम्नातः ।[१] एवमग्निष्टोमसंस्थायां शास्त्रपाठापेक्षमग्नेः प्राथम्यं विष्णोरुत्तमत्वं च । यद्वा, सर्वासु संस्थासूक्तन्यायेनाग्नेः प्राथम्यं विष्णोरुत्तमत्वम्, अन्तिमसंस्थायामाप्तोर्यामाख्यायां त्रयस्त्रिंशत् स्तोत्रशस्त्रोपेतायामन्तिमं स्तोत्रं शस्त्रं च वैष्णवमिति तदपेक्षया द्रष्टव्यम् । यद्वा, प्रथमायां दीक्षणीयेष्टावग्निरिज्यते । अन्तिमायामुदवसानीयेष्टौ वैष्णवी पूर्णाहुतिर्वाजसनेयिभिराम्नाता । सर्वथाऽपि स्तोतव्यान् यष्टव्यांश्च देवानपेक्ष्याग्नेः प्राथम्यं विष्णोरुत्तमत्वं च युक्तम् । तदन्तरेण तयोः प्रथमोत्तमयोरग्नाविष्ण्वोर्मध्ये तत्तच्छस्त्रप्रतिपाद्याः 'अन्याः' इन्द्रवाय्वादयः 'सर्वाः' प्रधानदेवताः वर्तन्ते । तस्मात् सर्वदेवतानामुभयतो रक्षकवदवस्थितावग्नाविष्णू प्रशस्तावित्यर्थः ॥

सौमिकेषु यष्टव्यासु स्तोतव्यासु च सर्वासु देवतास्वग्नाविष्णू प्रशस्य तद्देवताकामिष्टं विधत्ते—

(दीक्षणीयेष्टिविधानम्)

आग्नावैष्णवं पुरोळाशं निर्वपन्ति दीक्षणीयमेकादशकपालम् ।।२।।

हिन्दी—दीक्षणीयम् दीक्षणीय इष्टि में **अग्नावैष्णवम्** (उस) अग्नि और विष्णु (देवता) से सम्बन्धित **एकादशकपालम्** ग्यारह कपालों (पुरोडाश पकाने के लिए मिट्टी के बने तवा-विशेष) वाले **पुरोडाशम्** पुरोडाश (पीसे आटे को गूथकर पकायी गयी हविर्द्रव्य-विशेष = लिट्टी) को **निर्वपन्ति** निर्वाप (समर्पित) करते हैं ॥

सा० भा०—अग्निश्च विष्णुश्चाग्नाविष्णू तावुभौ परस्परव्यासक्तौ यस्य पुरोडाशस्यैका देवता सोऽयमाग्नावैष्णवः ।[२] यथोक्त देवतां प्रति हविष्ट्वेन प्रदेयद्रव्यरूपः पक्वः पिष्टपिण्डः पुरोडाश इत्युच्यते ।[३] डकारस्यात्र ळकारः, एतच्छाखाध्ययनसम्प्रदायेन प्रापितः ।[४] शकटावस्थापितव्रीहिसङ्घान्निष्कृष्य मुष्टिचतुष्टयपरिमितानां व्रीहीणां शूर्पे

(१) 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचम् (ऋ० १०.१५४.१) इति वैष्णवीं शंसति' इति १३.१४.४ । 'आग्निमारुते शस्त्रे वैश्वानरीयेण सूक्तेन प्रतिपद्यते'–इति नि० ७.६.४ ।

(२) 'सास्य देवता'—इति पा०सू० ४.२.२४ ।

(३) पुरोडाशपाकादिप्रकारस्तु आपस्तम्बीयश्रौतसूत्रे (१.२२-२५) आद्यप्रश्नीयसप्तमाष्टमपटलयोः कात्यायनीयश्रौतसूत्रे २.४.५ च द्रष्टव्यः । "अतुङ्गमनूपाकृतिं कर्मस्येव प्रतिकृतिमश्वसफमात्रं करोति, यावन्तं वा मन्यते" (आप०श्रौ० १.२५.४-५) इति सूत्राभ्यां पुरोडाशस्वरूपं चाधिगम्यम् । 'पुरोडाशमेव कूर्म भूत्वा सर्पन्तम्'—इति च शत०ब्रा० १.६.२.३ । तैत्तिरीयब्राह्मणीये पौरोडाशिके काण्डे (३.२.४-८) च ।

(४) तथाहि—"द्वयोश्चास्य स्वरयोर्मध्यमेत्य सम्पद्यते स डकारो ळकारः"—इति ऋक्प्राति० १.५२ ।

प्रक्षेपो निर्वापः। तत्पूर्वको यागोऽत्र निर्वापेणोपलक्ष्यते। आग्नावैष्णवं पुरोडाशमिति सामानाधिकरण्येनावगतस्य द्रव्यदेवतासम्बन्धस्य यागमन्तरेणानुपपन्नत्वात्। सति तु यागे सम्बन्ध उपपद्यते।

"उद्दिश्य देवतां द्रव्यत्यागो यागोऽभिधीयते" ॥

इति यागलक्षणस्य **पूर्वाचार्यैरुक्तत्वात्**। निर्वपन्तीत्ययं शब्दो न वर्तमानार्थः। किन्तु विध्यर्थः। स च लकारो लिङर्थो लेडिति[1] इति सूत्रेण विध्यर्थो द्रष्टव्यः। एवं च सति शाखान्तरेण संवादो भवति। तथा च **तैत्तिरीया** विस्पष्टं विधिमामनन्ति—'आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्दीक्षिष्यमाणः'[2] इति। तत्रैकप्रयोगापेक्षमेकवचनम्। अत्र तु बहुप्रयोगगतं सत्रगतं वा यजमानबहुत्वमपेक्ष्य निर्वपन्तीति बहुवचनम्। यद्वा, छन्दसो वचनव्यत्ययः।[3] सोमयागे प्रवृत्तस्य यजमानस्य संस्कारो दीक्षणम्, तस्य च संस्कारस्य हेतुः कर्मविशेषो दीक्षणीयाशब्दवाच्यः। तस्य च कर्मविशेषस्य वाचकेन शब्देन तत्कर्मसाधनमुपलक्ष्यते। ततो दीक्षणीयाख्यकर्मसाधनं पुरोडाशमिति सामानाधिकरण्यमुपपन्नम्। एकादशसु संस्कृतः पुरोडाश एकादशकपालः।[4] तेषु हि पुरोडाशः श्रप्यते ॥[5]

अत्र प्रथमोत्तमयोरग्नाविष्ण्वोः पुरोडाशदेवतात्वे फलितं दर्शयति—

(अग्नाविष्णवोर्मध्येऽन्येभ्यो देवेभ्यो निर्वापः)

सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽनन्तरायं निर्वपन्ति ।। ३ ।।

हिन्दी—एनम् अनन्तरायम् इन दोनों (देवताओं) के मध्य में **सर्वाभ्यः तद्देवताभ्यः** उन (इन्द्रादि) सभी देवताओं के लिए **निर्वपन्ति** निर्वाप करते हैं (जिससे कोई देवता छूटने न पावे) ॥

सा० भा०—'तत्' तेनाऽऽग्नावैष्णवत्वेन तयोरग्नाविष्ण्वोर्मध्यवर्तिनीनां सौमिकीनां सर्वासां देवतानामुपलक्षितत्वाद् 'अनन्तरायं' निरवशेषं काचिदपि देवताऽ-

---

(१) पा०सू० ३.४.७

(२) तै०सं० ५.५.१.४

(३) 'व्यत्ययो बहुलम्'—इति पा०सू० ३.१.५८।

(४) 'संस्कृतं भक्ष्याः'—इति पा०सू० ४.२.१६

(५) एकादश कपालस्थापनप्रकारस्त्वेवम्—पूर्वं मध्यममुपदधाति, ततः पुरस्तात् तृतीयम्, मध्यमाद् दक्षिणं चतुर्थम्, पूर्वमेकस्य कपालस्यान्तरालं परिशिष्य पञ्चमम्, चतुर्थपञ्चमयोरन्तराले षष्ठम्, चतुर्थस्य पश्चात् सप्तमम्, तस्य पश्चादष्टमम् सर्वेभ्य उत्तरतो नवमदशमैकादशानि प्राक्संस्थानि। किञ्च पुरोडाशस्य कूर्माकारोक्त्या वृत्ताकारत्वप्रसिद्धेः यावत्कपालं प्रथनविधेश्च तदर्थकपालचितेरपि अर्थाद् वृत्ताकारत्वम्। कपालानि तु घर्षणाद्युपायेन तथा करणीयानि यथा च कपालचितिक्षेत्रं वृत्तं सम्पूर्येत।

विशिष्टा यथा न भवति तथैनं पुरोडाशं यजमानाः निर्वपन्त्येव। अनेन निर्वापेण सर्वा देवतास्तृप्यन्तीत्यर्थः। यथा वैयाकरणाः प्रत्याहारेष्वाद्यन्तयोर्वर्णयोर्ग्रहणेन मध्यपातिनां सर्वेषां वर्णानां ग्रहणमिच्छन्ति।[१] न्यायस्तदीय एवं व्यवह्रियते—'तन्मध्यव्यपतितस्तग्रहणेन गृह्यते' इति।[२] यथा वा लोके भुञ्जानानामेकपङ्क्तावुपविष्टानामाद्यन्तयोर्ब्राह्मणयोः परितोषेण मध्यवर्तिनः सर्वे परितुष्टा इति निश्चितम्, तथेदं द्रष्टव्यम्॥

नन्वग्नाविष्ण्वोरेव निर्वापे सम्बन्धः श्रूयते, न तु मध्यवर्तिदेवतानाम्, तत्कथं तासां तृप्तिरित्याशङ्क्य तत्सिद्ध्यर्थं तयोरेव सर्वदेवतान्तर्भावं दर्शयति—

(अग्नाविष्ण्वोः सर्वदेवतान्तर्भावप्रदर्शनम्)

अग्निर्वै सर्वा देवता विष्णुः सर्वा देवताः॥४॥

हिन्दी—(अग्नि और विष्णु की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अग्निः वै सर्वाः देवताः** अग्नि ही सभी देवता हैं और **विष्णुः वै सर्वाः देवताः** विष्णु ही सम्पूर्ण देवता हैं॥

सा० भा०—अग्नेः सर्वदेवतारूपत्वे श्रुत्यन्तरप्रसिद्धिद्योतनार्थो वैशब्दः। तथा च **तैत्तिरीयाः** पौरोडाशिके काण्डे[३] समानन्ति—"ते देवा अग्नौ तनूः सन्यदधत तस्मादाहुः 'अग्निः सर्वा देवताः' इति"।[४] सौमिकेऽपि काण्डे[५] श्रूयते—'देवासुराः संयत्ता आसन् ते देवा बिभ्यतोऽग्निं प्राविशन् तस्मादाहुः 'अग्निः सर्वा देवताः' इति"—इति।[६] विष्लृ व्याप्तावित्यस्माद्धातोरुत्पन्नो विष्णुशब्दः।[७] व्याप्तिश्च सर्वजगदुपादानकारणत्वेन सर्वात्मकत्वादुपपद्यते। अत एव स्मरन्ति—'भूतानि विष्णुर्भुवनानि विष्णुः' इति॥

---

(१) तथा चैतत् पाणिनीयं सूत्रम्—"आदिरन्त्येन सहेता" इति पा०सू० १.१.७०।

(२) 'येन विधिस्तदन्तस्य' इति पाणिनीयसूत्रस्य (१.१.७२) पतञ्जलिकृते महाभाष्ये पठितैषा परिभाषा, परिभाषेन्दुशेखरे च व्याख्याता (८९)।

(३) संहितायाः प्रथमकाण्डीयः प्रथमप्रपाठकः समग्र एवेष्टिकाण्ड उच्यते, तत्रैवान्त्यांशः पौरोडाशिक इत्यपि। ब्राह्मणस्य तृतीयकाण्डीयो द्वितीयप्रपाठकश्च तस्यैव शेषः।

(४) तै०ब्रा० ३.२.८.१०

(५) संहितायाः प्रथमकाण्डीयं द्वितीयादि प्रपाठकत्रयं सौमिकं काण्डम्। षष्ठकाण्डं च तद्ब्राह्मणम्। तत्राप्यवान्तरकाण्डानि नव। तदुक्तमनुक्रमण्याम्—"अध्वरप्रभृति त्रीणि-तद्विधिर्वाजपेयकौ। सर्वाः शुक्रियकाण्डे च नवेन्दोरिति धारणा"—इति। तथा च अध्वरकाण्डम्, ग्रहकाण्डम्, दक्षिणाकाण्डम्, तत्त्रयविधिकाण्डम्, वाजपेयमन्त्रकाण्डम्, वाजपेयविधिकाण्डम्, सवकाण्डम्, शुक्रियमन्त्रकाण्डम्, शुक्रियविधिकाण्डम् चेति नवकाण्डात्मकं सौमिकं काण्डम्।

(६) तै०सं० ६.२.२

(७) निघ० ३.१७.१२; ४.२.३८। निरु० ५.२.३; १२.२.७-८

सर्वदेवतात्मकत्वेनाग्नाविष्णू प्रशस्य प्रकारान्तरेण पुनः प्रशंसति—

(अग्नाविष्णुपुरोडाशयोः यज्ञस्याद्यन्तत्वम्)

**एते वै यज्ञस्यान्त्ये तन्वौ यदग्निश्च विष्णुश्च तद्यदाग्ना-
वैष्णवं पुरोळाशं निर्वपन्त्यत एव तद्देवानृध्नुवन्ति ।।५।।**

हिन्दी—(प्रकारान्तर से अग्नि और विष्णु की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अग्निः च विष्णुः च** जो अग्नि और विष्णु हैं **एते वै** ये ही **यज्ञस्य अन्त्ये तनुवौ** (इस सोम सम्बन्धी) याग के (प्रारम्भ और) अन्त वाले दोनों किनारे (अर्थात् आदि और अन्त में विद्यमान रहने वाले) हैं। **तद् यत्** तो जो **अग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति** अग्नि और विष्णु से सम्बन्धित पुरोडाश का निर्वाप करते हैं, **अत एव** इसलिए **तद्देवान्** उन देवताओं को **ऋध्नुवन्ति** दोनों ओर से पकड़ कर (यजमान) रोके रहता है ।।

सा०भा०—अग्निश्च विष्णुश्चेत्यनयोर्देवतयोर्यच्छरीरद्वयमस्ति, 'एते' उभौ 'तन्वौ' यज्ञस्यान्त्ये सोमयागस्याऽऽदावन्ते च वर्तमाने। आद्या चान्त्या चेति विवक्षायामेकशेषेणान्त्ये इति भवति। यथा माता च पिता चेत्यत्र पितरावित्येकशेषः, तद्वत्। आद्यन्तवर्तित्वं चाग्निर्वै देवानामवम' इत्यत्रैवोपपादितम्।[१] तत्तथा सत्याद्यन्तवर्तित्वे सति तादृशदेवताकं 'पुरोडाशं निर्वपन्तीति यदस्ति तत्तेन यथोक्तनिर्वापेणान्ततो यागस्याऽऽदावन्ते च देवान् सर्वानृध्नुवन्त्येव परिचरन्त्येव। तमेतं सार्थवादं दीक्षणीयेष्टिविधिं **तैत्तिरीयाः** अपि विस्पष्टमामनन्ति—'आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपेद्दीक्षिष्यमाणोऽग्निः सर्वा देवता विष्णुर्यज्ञो देवताश्चैव यज्ञं चाऽऽरभतेऽग्निरवमो देवानां विष्णुः परमो यदाग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपति देवता एवोभयतः परिगृह्य यजमानोऽवरुन्धे' इति ।।[२]

इदानीं यथोक्तविधौ ब्रह्मवादिचोद्यमुद्भावयति—

(तयोमध्ये पुरोडाशविभक्तिनिर्देशनम्)

**तदाहुर्यदेकादशकपालः पुरोळाशो द्वावग्नाविष्णू कैनयो-
स्तत्र क्लृप्तिः, का विभक्तिरिति ।।६।।**

हिन्दी—(उपर्युक्त कपालों की संख्या विषय में ब्रह्मवादियों के प्रश्न को दिखला रहे हैं—) **तदाहुः** उस (उपर्युक्त) विषय में कुछ ब्रह्मवादी कहते हैं—**यद् एकादशकपालः पुरोडाशः** जो ग्यारह कपालों वाला पुरोडाश होता है, **द्वौ अग्नाविष्णू** (उसके) अग्नि और विष्णु दो ही देवता हैं। **अनयोः** इन दोनों (देवताओं) में (बाँटने का) **का क्लृप्तिः** क्रम क्या है और **का विभक्तिः** (दोनों का) विभाजन किस प्रकार (होना चाहिए)? (तात्पर्य यह है कि ग्यारह कपालों वाले पुरोडाश को दो देवताओं में किस प्रकार

(१) द्र० १.१.१, (२) तै०सं० ५.५.१.४

बाँटा जाय और किस क्रम से बाँटा जाय?) ॥

सा० भा०—'तत्' तत्र कपालसंख्यायां ब्रह्मवादिन आहुश्चोदयन्ति। एकादशसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाश एकमेव द्रव्यम्, तस्य भोक्तारौ 'द्वौ' देवौ। अनयोर्द्वयोः समप्रधानत्वेन विषमांशस्यायुक्तत्वात् 'तत्र' द्रव्ये का क्लृप्तिर्विभागकल्पना निमित्तं किं स्यात्? 'का विभक्तिः' निमित्तविशेषाभावे नैमित्तिको विभागविशेषः कथं घटेत? 'इति' शब्दश्चोद्यसमाप्त्यर्थः ॥

ब्रह्मवादिष्वेव मध्ये अभिज्ञानां चोद्यपरिहारमुद्भावयति—

अष्टाकपाल आग्नेयः, अष्टाक्षरा वै गायत्री, गायत्रमग्नेश्छन्दः, त्रिकपालो वैष्णवः, त्रिर्हीदं विष्णुर्व्यक्रमत, सैनयोस्तत्र क्लृप्तिः सा विभक्तिः ॥७॥

हिन्दी—(ब्रह्मवादियों के प्रश्न का समाधान दिखला रहे हैं—) **अष्टाकपालः आग्नेयः** अग्नि (देवता) से सम्बन्धित आठ कपाल वाला (पुरोडाश होता है) क्योंकि **अष्टाक्षरा वै गायत्री** गायत्री (छन्द) आठ अक्षरों वाली होती है और **गायत्रमग्नेः छन्दः** गायत्री अग्नि (देवता) का छन्द होता है। **त्रिकपालः वैष्णवः** विष्णु (देवता) से सम्बन्धित तीन कपाल वाला (पुरोडाश होता है) क्योंकि **विष्णुः** विष्णु ने **इदम्** इस (सृष्टि) को **त्रिः व्यक्रमत** तीन (पदों में) व्यक्रमित किया (नापा) था। **तत्र** इस विषय में **एनयोः** इन (अग्नि और विष्णु) में (पुरोडाश के विभाजन का) **सा क्लृप्तिः** वहीं क्रम है और **सा विभक्तिः** वहीं विभाजन है ॥

सा० भा०—अष्टसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशभागोऽग्नेः सम्बन्धी। स च सम्बन्धश्छन्दोद्वारा द्रष्टव्यः। गायत्र्याख्यं छन्दोऽग्नेः सम्बन्धि, तयोरग्निगायत्र्योः प्रजापतिमुखजन्यत्वसाम्यात्। एतच्च मुखजन्यत्वं **तैत्तिरीयाः** सप्तमकाण्डे पठन्ति—'प्रजापतिरकामयत प्रजायेयेति स मुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत तमग्निर्देवताऽन्वसृज्येत गायत्रीछन्दः'[१] इति। तस्याश्च गायत्र्याः पादाक्षरेष्वष्टत्वं संख्या दृश्यते। सोऽयं यथोक्तपुरोडाशभागस्याग्नेश्च सम्बन्धः। त्रिषु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशभागो विष्णोः सम्बन्धी। 'हि' यस्मात् कारणाद् विष्णुरिदं सर्वं जगत्त्रिर्व्यक्रमत त्रिरावृत्तेन स्वकीयपादविक्षेपेण व्याप्तवान्। तथा च मन्त्र आम्नायते—'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्' इति 'त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः'[३] इति च। 'सा' यथोक्ताऽष्टत्वसंख्या त्रित्वसंख्या चैनयोर्देवयोस्तत्र पुरोडाशे क्लृप्तिर्विभागकल्पनाहेतुः। तदनुसारेण विभक्तिस्तादृशो विभागोऽवगन्तव्यः ॥

---

(१) तै०सं० ७.१.१.४ (२) ऋ० १.२२.१७

(३) ऋ० १.२२.१८।

इत्थं सार्थवादेन विधिवाक्येन दीक्षणीयेष्टिं विधाय तस्यामेवेष्टौ प्रतिष्ठाकामस्य पुरोडाशमपोद्य द्रव्यान्तरं विधत्ते—

(पुरोडाशमपोद्य द्रव्यान्तरविधानम्)

घृते चरुं निर्वपेत योऽप्रतिष्ठितो मन्येत ।।८।।

हिन्दी—(प्रतिष्ठा की कामना वाले को घृतयुक्त चरु देने का विधान कर रहे हैं—) **यः अप्रतिष्ठितः मन्येत** तो अपने को अप्रतिष्ठित (पुत्रादिरूप प्रजा और गवादिरूप पशु से रहित) समझे वह **घृते चरुं निर्वपेत** घृत से चरु (अर्थात् घृतयुक्त चरु) का निर्वाप करे ॥

सा० भा०—पुत्रादिप्रजया गवादिपशुभिश्च रहितत्वमप्रतिष्ठितत्वं तादृशोऽहमिति मन्यमानो यजमानः प्रतिष्ठार्थं घृतेन तण्डुलैश्चरुं निष्पादयेत् ॥

अप्रतिष्ठितत्वस्याऽऽत्यन्तिकदोषत्वं दर्शयति—

अस्यां वाव स न प्रतितिष्ठति यो न प्रतितिष्ठति ।।९।।

हिन्दी—**यः न प्रतितिष्ठति** जो प्रतिष्ठित (प्रजा और पश्वादि से सम्पन्न) नहीं होता, **सः अस्यां वाव न प्रतितिष्ठति** वह उस (पृथिवी) पर समादरित नहीं होता है ॥

सा० भा०—'यो' यजमानः प्रजापशुरूपया प्रतिष्ठया वर्जितः 'सोऽस्यां वाव' कृत्स्नायामप्येतस्यां भूमौ 'न प्रतितिष्ठति' श्लाघ्यो न भवति। तस्मादप्रतिष्ठा परिहर्तव्येत्यर्थः ॥

घृतचरुणा तत्परिहारं दर्शयति—

(घृतचरुणाप्रतिष्ठितदोषपरिहारः)

तद्यद्घृतं तत्स्त्रियै पयः, ये तण्डुलास्ते पुंसस्तन्मिथुनं मिथुनेनैवैनं तत्प्रजया पशुभिः प्रजनयति प्रजात्यै ।।१०।।

हिन्दी—(घृत में पके हुए चरु का परिहार दिखला रहे हैं—) (घृत में पके हुए चरु में) **तद् यद् घृतम्** जो यह घृत है **तत् स्त्रियै पयः** वह स्त्री का रक्त (रज) है और ये **तण्डुलाः** जो चावल है **ते पुंसः** वे पुरुष (के वीर्य) हैं। **तद् मिथुनः** इस प्रकार वे (घृत और चावल मिलकर) मिथुन हो जाते हैं। **मिथुनेन एव** इस मिथुन के द्वारा ही **एनम्** इस (यजमान) को **प्रजया पशुभिः** प्रजा और पशुओं से **प्रजनयति** प्रतिष्ठा के योग्य करता है, अतः **प्रजात्यै** प्रतिष्ठारूप प्रजनन के लिए (यह घृत में पका हुआ चरु होता है) ॥

सा० भा०—तत्तत्र घृतपक्वे चरौ यद्घृतमस्ति तत्स्त्रियै[1] पयः स्त्रियाः शोणितम्।

---

(१) 'षष्ठ्यर्थे चतुर्थीति वाच्यम्' इति पा०सू० २.३.६२ वा० १।

द्रवत्वसाम्येन पयः शब्दः शोणितमुपलक्षयति। विलीनस्य घृतस्येषद्रक्तत्वसाम्येन योषिद्वीर्यत्वमुपचर्यते। चरौ ये तण्डुलाः सन्ति ते पुंसो रेत इति शेषः। श्वेतत्वं त्वत्र साम्यम्। तद्घृततण्डुलोभयात्मकं चरुद्रव्यं मिथुनसदृशं तत्तस्मात् कारणान्मिथुनरूपेणैव चरुद्रव्येणैवेनं यजमानं पुत्रादिप्रजया गवादिपशुभिश्च प्रजनयति प्रवर्धयति। तस्मादिदं चरुद्रव्यं प्रजात्यै प्रजननाय प्रतिष्ठारूपाय सम्पद्यत इत्यर्थः ॥

चरोः प्रतिष्ठाहेतुत्ववेदनं प्रशंसति—

(प्रतिष्ठाहेतुत्ववेदनप्रशंसनम्)

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥११॥

हिन्दी—(घृत में पके हुए चरु की प्रतिष्ठा-हेतुता के ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (घृत में पके हुए चरु की प्रतिष्ठा-हेतुता को) जानता है, वह **प्रजया पशुभिः** प्रजा और पशुओं से **प्रजायते** (प्रतिष्ठा रूप) प्रजनन को प्राप्त करता है ॥

सा० भा०—तावेतौ पुरोडाशचरुपक्षावापस्तम्बेन दर्शितौ—'दीक्षणीयायास्तन्त्रं प्रक्रमयति। आग्नावैष्णवमेकादशकपालं निर्वपत्याग्नावैष्णवं वा घृते चरुम्, पुरोडाशो ब्रह्मवर्चसकामस्य, घृते चरुः प्रजाकामस्य पशुकामस्य वाऽऽदित्यं घृते चरुं द्वितीयं प्रजाकामस्य पशुकामस्यैके समामनन्ति'[१] इति ॥

उक्तया दीक्षणीयेष्टेः कालं विधत्ते—

(दीक्षणीयेष्टिकालविधानम्)

आरब्धयज्ञो वा एष आरब्धदेवतो यो दर्शपूर्णमासाभ्यां यजत आमावास्येन वा हविषेष्ट्वा पौर्णमासेन वा तस्मिन्नेव हविषि तस्मिन् बर्हिषि दीक्षेतैषा एका दीक्षा ॥१२॥

हिन्दी—(दीक्षणीयेष्टि के काल का विधान कर रहे हैं—) **यः दर्शपूर्णमासाभ्यां यजते** जो दर्श और पूर्णमास से यजन करता है, **एष आरब्ध यज्ञः वै आरब्धदेवतः** यह यज्ञ का आरम्भ करने वाला और देवताओं (की पूजा) का आरम्भ करने वाला होता है। **अमावास्येन पौर्णमासेन वा हविषा** अमावास्या और पूर्णमास की हविष् से **इष्ट्वा** यजन करके **तस्मिन् एव हविषि** उसी हविष् के अनुष्ठित हो जाने पर **तस्मिन्नेव बर्हिषि** उसी कुश पर **एषा दीक्षेत** यह दीक्षणीयेष्टि करनी चाहिए। **एका दीक्षा** यह एक दीक्षा (इष्टि) है ॥

---

(१) आप०श्रौ०-१०.४.२.३

सा० भा०—यः पुमान् दर्शपूर्णमासाभ्यां यजते तेन सर्वोऽपि यज्ञः प्रारब्धः सर्वस्य तदपेक्षितत्वात्। सोमयागस्य दर्शपूर्णमासविकृतित्वाभावेऽप्यङ्गादीनां दीक्षणीयाप्रायणीयादीनामिष्टीनां तद्विकृतित्वादस्ति तदपेक्षा। अग्निहोत्रस्य तदङ्गानां च तन्निरपेक्षत्वेऽप्याहवनीयाद्यग्निसापेक्षत्वादग्नीनां च पवमानेष्टिसाध्यत्वादिष्टीनां दर्शपूर्णमासविकृतित्वादस्ति परम्पराया तदपेक्षाऽतस्तदनुष्ठानेन सर्वस्यापि यज्ञस्य प्रारम्भः सिद्ध्यति। यद्यपि यज्ञारम्भेणैव तदीयदेवतानां पूजयितुमारम्भः सिद्ध एव तथाऽपि प्राधान्यख्यापनार्थमारब्धदेवत इति पुनर्देवताभिधानम्। यस्माद्दर्शपूर्णमासयाजिना सर्वोऽपि यज्ञ आरब्धप्रायोऽत एव देवतानां पूजाऽप्यारब्धप्राया तस्मादारब्धस्य सोमयागस्यानुष्ठेयत्वाद्दर्शपूर्णमासानुष्ठानादूर्ध्वं दीक्षेत दीक्षणीयेष्टिं कुर्यात्। अमावास्याकाले कर्तव्यं हविरामावास्यं[1] तद्वत् पौर्णमासं च। हविःशब्दोऽत्र यज्ञमुपलक्षयति। वाशब्दौ समुच्चयार्थौ। अमावास्यादिसम्बन्धिना पौर्णमासीसम्बन्धिना च यज्ञेनेष्ट्वा दीक्षेत। उक्तार्थ एव तस्मिन्नित्यादिना प्रपञ्च्यते। हविःशब्दवद् बर्हिःशब्दोऽपि यज्ञोपलक्षकः। तस्मिन्नामावास्याख्ये हविषि यज्ञे तस्मिन् पौर्णमासाख्ये हविषि यज्ञे तस्मिन् पौर्णमासाख्ये बर्हिषि यज्ञेऽनुष्ठिते सति पश्चादेव दीक्षेत। तदाह **आश्वलायनः**—'दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वेष्टिपशुचातुर्मास्यैरथ सोमेन'[2] इति। यजेतेति शेषः। इष्टिराग्रयणेष्टिः।[3] पशुर्निरूढपशुबन्धः।[4] **आपस्तम्बोऽप्याह**—'अथ दर्शपूर्णमासावारभते। ताभ्यां संवत्सरमिष्ट्वा सोमेन पशुना वा यजते'[5] इति। एतच्छब्दादुत्तर उकारोऽपिशब्दपर्यायः। एषाऽप्येका दीक्षा। एवमुक्ते सत्यन्याऽपि काचिद्दीक्षाऽस्तीति सूचितं भवति। अत एवाऽऽ**श्वलायन** इष्टिपूर्वत्वं सोमपूर्वत्वं चेत्युभौ पक्षावुदाजहार—'ऊर्ध्वं दर्शपूर्णमासाभ्यां यथोपपत्त्येके प्रागपि सोमेनैके'[6] इति। उपपत्तिर्द्रव्यादिसम्पत्तिस्तामनतिक्रम्येति यथोपपत्तिः। दर्शपूर्णमासाभ्यामूर्ध्वं द्रव्यादिसम्पत्तौ सत्यां सोमेन यजेतेति केषांचिन्मतं ताभ्यां प्रागपि सम्पत्तौ सोमपानमित्यपरेषां मतम्। तैत्तिरीयाश्चेष्टिपूर्वत्वमभिप्रेत्य वसन्तादिकालविशेषेष्वाधानमाम्नाय पुनः सोमपूर्वत्वमभिप्रेत्य कालनियममन्तरेणाऽऽधानमामनन्ति—'अथो खलु यदैवैनं यज्ञ उपनमेत्। अथाऽऽदधीत सैवास्यर्धिः'[7] इति। आप-

---

(१) 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्' इति पा०सू० ४.३.१६।

(२) आश्व०श्रौ० ४.१.१।

(३) 'आग्रयणमैन्द्राग्नमग्रपाकस्य व्रीहीणां यवानां च' का०श्रौ० ४.६। 'आग्रयणं व्रीहिश्यामाकयवानाम्' आश्व०श्रौ० २.२.९। ''या आहिताग्निराग्रयणेनानिष्ट्वा नवान्नं प्राश्नीयात् तस्य का प्रायश्चितिः'' ऐ०ब्रा० ७.९१। 'आग्रयणेष्ट्या यजते'—इति च शत०ब्रा० २.४.३.१।

(४) का०श्रौ० षष्ठाध्यायो द्रष्टव्यः। तै०ब्रा० २.२.२.३; ३.६.३।

(५) आप०श्रौ० ५.२३.२। कात्यायनोऽप्याह— दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽन्येन यजेतेति श्रुतेः— इति ७.१.१।

(६) आश्व०श्रौ० ४.१.२। (७) तै०ब्रा० १.१.२ ८।

स्तम्बोऽपीदमेव सोमाधानमभिप्रेत्य वसन्तादिकालविशेषप्रतीक्षां वारयति—'नर्तून् सूर्क्षेन्न नक्षत्रम्'[1] इति। तस्मात् पक्षद्वयम् ॥

चोदकप्राप्तां पञ्चदशसंख्याम्[2] अपवदितुं संख्यान्तरं विधत्ते—

(सप्तदशसामिधेनीविधानम्)

सप्तदश सामिधेनीरनुब्रुयात् ।।१३।।

हिन्दी—सप्तदश सामिधेनीः अनुब्रूयात् (उस होता को) सत्रह सामिधेनियों का अनुवाचन करना चाहिए ॥

विमर्श—सामिधेनी संज्ञक ऋचाएँ इस प्रकार हैं—'प्र वो वाजा' (ऋ० ३.२७.१), 'अग्न आ याहि' (ऋ० ६.१६.१०), 'तं त्वा' (ऋ० ६.१६.११), 'स नः पृथु' (ऋ० ६.१६.१२), 'ईळेन्यो' (ऋ० ३.२७.१३), 'वृषा अग्निः' (ऋ० ३.२७.१४), 'वृषणं त्वा' (ऋ० ३.२७.१५), 'अग्नि दूतम्' (ऋ० १.१२.१), 'समिध्यमानो' (ऋ० ३.२७.४), 'समिद्धो' (ऋ० ५.२८.५), 'आ जुहोता' (ऋ० ५.२८.६)–ये ग्यारह सामधेनी ऋचाएँ हैं। इनमें प्रथम 'प्र वो वाजा' और 'आ जुहोता' का तीन-तीन बार पाठ करने से इनकी संख्या पन्द्रह हो जाती है। इनके मध्य से 'पृथुपाजा' (ऋ० ३.२७.५) और 'तं स बाधो०' (ऋ० ३.२७.६)–इन दो धाय्या का पाठ होता है। धाय्या ऋचाओं के साथ पन्द्रह सामिधेनी का पाठ करने पर उनकी संख्या सत्रह हो जाती है।

सा० भा०—'प्र वो अभिद्यत'[3] इत्याद्या एकादशसंख्याका[4] ऋचो वह्निसमिन्धन-हेतुत्वात् सामिधेन्य इत्युच्यन्ते।[5] तासु 'त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमाम्' इति[6] वचनात्ताः पञ्चदश सम्पद्यन्ते। प्रकृतावेध विहितासु पञ्चदशस्वृक्षु चोदकप्राप्तासु ये समिध्यमानसमिद्धवत्यौ द्वे

---

(१) आप०श्रौ० ५.३.२१। "अथ नक्षत्राणि; कृत्तिकासु ब्राह्मण आदधीत वसन्तो ब्राह्मणस्य सोमेन यक्ष्यमाणे नर्तुं सूर्क्षेन्न नक्षत्रम्" इति तत्र पाठः। न सूर्क्षेत् = नाद्रियेत—इति तट्टीका रौद्रदत्ती। 'सोमेन यक्ष्यमाणो नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रम्'—इति आश्व०श्रौ० २.१.१५।

(२) तथाहि प्रकृती 'पञ्चदश सामिधेनीरन्वाह'—इति तै०सं० २.५.८.२।

(३) ऋ० ३.२७.१।

(४) यद्यपि मूले द्वादशपठितास्तथाप्यन्तयोः पुरुषभेदेन विकल्पितत्वाद् एकादशैव।

(५) पा०सू० ४.३.१२० वा० १०। 'सामिधेनीभिर्होता तस्मात् सामिधेन्यो नाम'—इति शत०ब्रा० १.३.५.१। तासामुत्पत्तिस्त्वेवमाम्नायते—"ऋषेर्ऋषेर्वा एता निर्मिता यत्सामिधेन्यः"—इति तै०सं० २.५.७.५। भिन्नेभ्यः ऋषिभ्यः प्रवर्तितास्ताः सामि-धेन्यः'—इति च तत्र भाष्ये सायणः।

(६) तै०सं० २.५.७.१।

ऋचौ[1] तयोर्मध्ये धाय्याभिधेये ऋचौ प्रक्षेप्तव्ये।[2] तथाच आश्वलायनः—'दीक्षणीयायां धाय्ये विराजौ[3] इति। तत्र 'पृथुपाजा अमर्त्यो'[4] इत्येका 'तं सबाधो यतस्रुचः'[5] इति द्वितीया। एतच्च प्रयोगसंग्रहकारेणोदाहृतम्—'अथ दीक्षणीयायां धाय्ये भवतः शोचिष्केशस्तमीमहे पृथुपाजास्तं सबाधः' इति। 'अग्नये समिध्यमानायानुब्रूहि'[6] इत्येवमध्वर्युणा प्रेषितो होता[7] सामिधेनीः सप्तदशानुब्रूयात् ॥

तामेतां संख्यां प्रशंसति—

(सप्तदशसंख्याप्रशंसन्)

सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवो हेमन्त-शिशिरयोः समानेन तावान् संवत्सरः संवत्सरः प्रजा-पतिः ॥१४॥

हिन्दी—(सत्रह संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सप्तदशः वै प्रजापतिः** प्रजापति सत्रह (अवयवों वाले) हैं। **द्वादश मासाः** बारह महीने और **हेमन्तशिशिरयोः समानेन** हेमन्त तथा शिशिर ऋतु के समान होने के कारण **पञ्च ऋतवः** पाँच ऋतुएँ (इस प्रकार यह संख्या सत्रह) हैं। **तावान् संवत्सरः** उतने काल वाला ही संवत्सर होता है। **संवत्सरः प्रजापतिः** (उचित वर्षा इत्यादि का निष्पादन करके प्रजा का पालन करने से) संवत्सर ही प्रजापति है ॥

सा०भा०—सप्तदश चावयवा यस्य प्रजापतेः सोऽयं सप्तदशस्तस्मिन्नर्थे वैशब्दोक्तप्रसिद्धिर्द्वादशेत्यादिना स्पष्टीक्रियते। चैत्राद्या मासा द्वादश प्रसिद्धाः। यद्यपि षड् वा

(१) समिध्यमाना ऋक् (तै०ब्रा० ३.५.२) नवमसामिधेनी ऋ० ३.२७.४। समिद्धवती ऋक् तु (तै०ब्रा० १.३.५.२) दशमसामिधेनी–ऋ० ५.२८.५। तथा चाश्वलायनः "अथ सामिधेन्यः"—इत्युपक्रम्याह–'समिध्यमानो अध्वरे समिद्धो अग्न आहुतेति"—इति आश्व०श्रौ० १.२.७।

(२) सामिधेन्य ऋच एकादशैव। तासु प्रथमस्या अन्तिमायाश्च त्रिस्त्रिः पाठेन पञ्चदशसङ्ख्या पूरणीया भवति। सप्तदशसंख्यायाः पूरणीयत्वे तु पृथुपाजेत्याद्यपरर्ग् द्वयस्य तासु प्रक्षेपोऽपि विधीयते। एवमेकविंशतित्वे सम्पादनीये षण्णामप्यृचां प्रक्षेपणीयता विहिताः। ताः प्रक्षेपणीयर्च एव धाय्या उच्यन्ते (ऐ०ब्रा० ३.२.७)। तत्र धाय्ययोर्धाय्यानां वा प्रक्षे-पस्तु समिध्यमानसमिद्धवत्योर्मध्ये एव भवति। ते च ऋचौ सामिधेनीषु दशम्येकादश्यौ।

(३) आश्व०श्रौ० ४.२.१। (४) ऋ० ३.२७.५।

(५) ऋ० ३.२७.६। (६) शत०ब्रा० १.३.५.२।

(७) "अग्नये समिध्यमानायानुब्रूहीति संप्रेष्यति"—इति आप०श्रौ० २.१२.१। 'होतेति० शेषः' इति, ब्रूहीत्युकारः प्लावयितव्यः'—इति च तट्टीका। 'ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहान-मादेः'–इति च पा०सू० ८.२.९१।

ऋतव[1] इति श्रुत्यन्तराल्लोकप्रसिद्धेश्च वसन्ताद्याः षट्संख्याकास्तथाऽपि शीतत्वसाम्येन हेमन्तशिशिरावेकीकृत्य पञ्चसंख्योच्यते। द्वादशभिर्मासैस्तन्मेलनात्मकपञ्चर्तुभिश्च यावान्कालो भवति तावान्कालः संवत्सर इत्युच्यते। स च संवत्सरस्तदृतूचितवर्षादिनिष्पादनेन प्रजानां पालकत्वात् प्रजापतिस्तदीयत्वेन सप्तदशसंख्या प्रशस्तेत्यर्थः ॥

सप्तदशसंख्यावेदनं प्रशंसति—

(सप्तदशसङ्ख्यावेदनप्रशंसनम्)

प्रजापत्यायतनाभिरेवाऽऽभी राध्नोति य एवं वेद ॥१५॥

हिन्दी—(सत्रह संख्या के ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य) को जानता है, वह **प्रजापत्यायतनाभिः एव** प्रजापति के आयतन स्वरूप (अर्थात् आश्रयभूत सामिधेनियों) से **अभि राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है ॥

सा० भा०—संवत्सरात्मकः प्रजापतिरायतनमाश्रयो यासां सामिधेनीनां ताः प्रजापत्यायतनास्तदीयसंख्योपेतत्वात्तदायतनत्वं तादृशीभिराभिः सामिधेनीभिर्वेदिता राध्नोति समृद्धो भवति। सति वेदने तदनुष्ठानप्रवृत्तेः फलप्राप्तिसमृद्धिरुपपद्यते।

अत्र मीमांसोदाह्रियते। पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थपादे द्वयं चिन्तितम् —

"दर्शादीष्ट्वा सोमयागः क्रमोऽयं नियतो न वा।
उक्तेराद्यो न सोमस्याऽऽधानानन्तरताश्रुतेः" ॥[2]

दर्शपूर्णमासाविष्ट्वा सोमेन यजेतेति[3] क्त्वाप्रत्ययेनावगम्यमानः क्रमो नियतः इति चेत्, मैवम्। 'सोमेन यक्ष्यमाणोऽग्नीनादधीत' इत्याधानानन्तरताया अपि श्रवणात्।[4] तस्मादिष्टि-सोमयोः पौर्वापर्यं न नियतम् ॥

"विप्रस्य सोमपूर्वत्वं नियतं वा न वाऽग्रिमः।
उत्कर्षतो मैवमग्नीषोमीयस्यैव तच्छ्रुतेः" ॥

'इष्टिपूर्वत्वं सोमपूर्वत्वं च विकल्पितम्' इति यदुक्तं तत्र ब्राह्मणस्य सोमपूर्वत्वं नियतम्। कुतः, उत्कर्षश्रवणात्। 'आग्नेयो वै ब्राह्मणो देवतया। स सोमेनेष्ट्वाऽग्नीषोमीयो भवति। यदेवादः पौर्णमासं हविः, तत्तर्ह्यनुनिर्वपेत्। तर्हि स उभयदेवतो भवति'[5] इति। अस्यायमर्थः–'प्रजापतेर्मुखादग्निर्ब्राह्मणश्चेत्युभावुत्पन्नौ।[6] ततो ब्राह्मणस्याग्निरेक एव

---

(१) ऐ०ब्रा० ३.१.६ (२) जै०वि०न्या० ५.४.९-१० अधि० ३।
(३) तै०सं० २.५.६।
(४) यः सोमेन यक्ष्यमाणोऽग्नीनादधीत, नर्तुं स प्रतीक्षेन्न नक्षत्रम्–इति तत्पूर्णपाठः।
(५) तै०सं० ५.५.१। (६) तै०सं० ७.१.२.४।

देवतेत्याग्नेय एव ब्राह्मणः। न तु सौम्यः, सोमस्य तद्देवतात्वाभावात्। यदा स ब्राह्मणः सोमेन यजेत तदा सोमोऽप्यस्य देवतेत्यग्नीषोमीयो भवति। तस्याग्नीषोमीयस्य ब्राह्मणस्यानुरूपं पौर्णमासमग्नीषोमीयपुरोडाशरूपं हविः सोमादूर्ध्वमनुनिर्वपेत्। तदा स ब्राह्मणे देवताद्वयसम्बन्धी भवति' इति। यद्यप्यत्र कर्मान्तरं किंचिद् विधीयते–इति कश्चिन् मन्यते, तथाऽपि 'पौर्णमासं हविः' इति विस्पष्टप्रत्यभिज्ञानान्न कर्मान्तरं किन्तु दर्शपूर्णमासयोः सोमादूर्ध्वमुत्कर्षः। तस्माद् विप्रस्य सोमपूर्वत्वमेव नियतमिति प्राप्ते, ब्रूमः नात्र दर्शशब्दः पूर्णमासशब्दो वा कश्चिद् यागवाची श्रूयते। पौर्णमासमित्येतत्तद्धितान्तं हविर्विशेषणत्वेनोपन्यस्यते।[१] तच्च हविरग्नीषोमीयपुरोडाशरूपमिति देवताद्वयेन संस्तवादवगम्यते। तस्मादेकस्यैव हविष उत्कर्षः, न तु कृत्स्नयोर्दर्शपूर्णमासयोः। तथा सति ब्राह्मणस्यैकस्मिन्नेवाग्नीषोमीयपुरोडाशे सोमपूर्वत्वनियमः। इतरत्र क्षत्रियवैश्ययोरिवास्यापीष्टिपूर्वत्वसोमपूर्वत्वे विकल्प्येते ॥

तृतीयाध्यायस्य षष्ठे पादे चिन्तितम्—

"सामिधेनीः सप्तदश प्रकृतौ विकृतावुत ।
पूर्ववत्प्रकृतौ पाञ्चदश्येनैतद् विकल्प्यते ॥
विकृतौ साप्तदश्यं स्यात् प्रकृतौ प्रक्रियाबलात् ।
पाञ्चदश्यावरुद्धत्वादाकाङ्क्षाया निवृत्तता ॥"[२]

अनारभ्य श्रूयते—'सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात्' इति। 'प्र वो वाजा' इत्याद्या अग्निसमिन्धनार्था ऋचः सामिधेन्यः।[३] तासां साप्तदश्यं पूर्वन्यायेन प्रकृतिगतम्, यदि प्रकृतौ 'पञ्चदश सामिधेनीरन्वाहेति'[४] विधिः स्यात् तर्हि पाञ्चदश्यसाप्तदश्ये विकल्पेयातामिति प्राप्ते, ब्रूमः—विकृतावेव साप्तदश्यं निविशते प्रकृतौ पाञ्चदश्यावरुद्धायां सामिधेनीनां संख्याकाङ्क्षाया अभावात्। न च पाञ्चदश्यसाप्तदश्यवाक्ययोः समानबलत्वादवरोधाभावः–इति शङ्कनीयं पाञ्चदश्ये प्रकरणानुग्रहस्याधिकत्वात्। तस्मान्मित्रविन्दाध्वरकल्पादिविकृतौ साप्तदश्यमवतिष्ठते।[५] न चात्र पूर्वन्यायोऽस्ति, साप्तदश्यस्य चोदकप्राप्त्यभावेन पुनर्विधानदोषाभावात्।

(१) 'सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्'–इति पा०सू० ४.३.१६ पौर्णमासं हविरिदमेषामपि' इति स्फुटम् तै०ब्रा० ३.७.४.४।
(२) जै०न्या०वि० ३.६.९.३-४।
(३) तै०ब्रा० ३.५.२.१-१२।
(४) तै०सं० २.५.८.२।
(५) मित्राविन्देष्टिः वाजसनेयके श्रूयते। शत०ब्रा० ११.४.३.२०। सांख्या०श्रौ० ३.७.१। का०श्रौ० ५.१२.१। अध्वरकल्पस्तु हविर्यज्ञविशेषः। सोऽपि वाजसनेयके एव। शत०ब्रा० १.१.४.७, ६.६.१.४।

"साप्तदश्यं तु वैश्यस्य विकृतौ प्रकृतावुत ।
पूर्ववच्चेन्न सङ्कोचान्नित्यनैमित्तिकोक्तिः ॥
गोदोहनेन प्रणयेत्कामीत्येतदुदाहरत् ।
भाष्यकारस्तदप्यस्तु न्यायस्यात्र समत्वतः ॥"[१]

'सप्तदशानुब्रूयाद् वैश्यस्य' इति[२] स्थितं वैश्यनिमित्तकं साप्तदश्यं पूर्वन्यायेन विकृतिगतमिति चेत्, मैवम्। नैमित्तिकेनानेन वचनेन प्रकृतिगतस्य नित्यस्य पाञ्चदश्यस्य वैश्यव्यतिरिक्तविषयतया सङ्कोचनीयत्वात् । नित्यं सामान्यरूपतया सावकाशत्वेन दुर्बलम् । नैमित्तिकं तु विशेषरूपत्वनिरवकाशत्वाभ्यां प्रबलम् । तस्माद् वैश्यनिमित्तकं साप्तदश्यं प्रकृताववतिष्ठते ।

अत्र भाष्यकारोऽन्यदुदाजहार[३]—चमसेनापः प्रणयेद् गोदोहनेन पशुकामस्येति। तत्र प्रकृतेश्चमसेनावरुद्धत्वाद् गोदोहनं विकृताविति पूर्वः पक्षः । कामनानिमित्तकेन गोदोहनेन नित्यस्य चमसस्य निष्कामविषयतया सङ्कोचनीयत्वाद् प्रकृतावेव गोदोहनमिति राद्धान्तः ।

दशमाध्यायस्याष्टमपादे चिन्तितम्—

"सामिधेनीसाप्तदश्यं वैमृधादावपूर्वगीः ।
संहृतिर्वोपकारस्य क्लृप्त्याऽऽद्योऽस्त्वाज्यभागवत् ॥
सामिधेन्यश्चोदकाप्ताः साप्तदश्यं तु वैमृधे ।
पुनर्वाक्येन संहार्यमनारभ्योक्तिचोदितम्" ॥[४]

अनारभ्य किञ्चिदाम्नायते–'सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात्' इति । तथा वैमृधे[५]ऽध्वरकल्पायां, पशौ चातुर्मास्येषु, मित्रविन्दायामाग्रयणेष्ट्यादौ च पुनः साप्तदश्यं विहितम् । यद्यप्यनारभ्याधीतानां प्रकृतिगामित्वं न्याय्यं तथाऽपि श्रुतेन पाञ्चदश्येनावरुद्धत्वाद् विकृतिष्वेव निविशते । तथा सति वैमृधादिषु विकृतिष्वनारभ्यत्वादप्राप्ताः सप्तदश सामिधेन्यः प्राकरणिकेन विधिना पुनर्विधीयमाना गृहमेधीयाज्यभागवत्क्लृप्तोपकारत्वेनेतिकर्तव्यताकाङ्क्षां पूरयन्त्यश्चोदकं लोपयन्त्यो वैमृधादेरपूर्वकर्मतां गमयन्ति । साप्तदश्यं त्वनारभ्यवादप्राप्तमनूद्यत इति प्राप्ते, ब्रूमः वैमृधादिषु सामिधेन्य आज्यभागवन्न विधियन्ते, किन्तु चोदकप्राप्ता अनूद्य साप्तदश्यं विधीयते । तच्च साप्तदश्यं वैमृधादिप्रकरणेष्वाम्नातैर्विधिभिः कासुचिदेव विकृतिषु प्राप्तमनारभ्यवादेन तु सर्वासु विकृतिषु तत्रानारभ्यवादी विलम्बते प्रथमं

(१) जै०न्या०वि० ३.६.१०.५-६।
(२) तै०सं० २.५.१.२।
(३) मीमांसाभाष्यकारः शबरस्वामी। जै०सू० ३.६.१०
(४) जै०न्या०वि० १०.८-९, १७-१९।
(५) वैमृधेष्टिः तै०सं० २.५.२.४। शत०ब्रा० ९.५.२.५।

विधेयस्य साप्तदश्यस्य सामधेनी सम्बन्धमवबोध्य तत्सम्बन्धान्यथानुपत्या क्रतुप्रवेशं परिकल्प्य प्रकृतौ पाञ्चदश्यपराहतत्वेन विकृतिषु सर्वासु निवेशः क्रियत इति विलम्बः। प्राकरणिकैर्विधिभिः सामिधेनीसम्बन्ध एव बोधनीयः। विकृतौ तद्विशेषे च प्रवेशो न कल्पनीयः प्रत्यक्षप्रकरणपाठेनैव तत्सिद्धेः। तत्र साप्तदश्यस्य वैमृधादिविकृतिविशेषसम्बन्धे सहसा प्रतितन्त्रे सति तद्विरोधात् सर्वप्रकृतिसंबन्धो न कल्पयितुं शक्यः। अनारभ्यवादस्तु चोदकप्राप्तस्य पाञ्चदश्यस्य घाधकः। सर्वथाऽपि चतुर्धाकरणवदुपसंहारो न त्वाज्यभागवदपूर्वं कर्म॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य प्रथमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के प्रथम अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा०भा०—दीक्षणीयेष्टिं निरूप्य तत्प्रशंसार्थमिष्टिशब्दनिर्वचनं दर्शयति—

(इष्टि शब्दनिर्वचनम्)

यज्ञो वै देवेभ्य उद्क्रामत् तमिष्टिभिः प्रैषमैच्छन्यदिष्टिभिः प्रैषमैच्छंस्तदिष्टीनामिष्टित्वं तमन्वबिन्दन्॥१॥

हिन्दी—(दीक्षणीयेष्टि का विधान करके उसकी प्रशंसा करने के लिए इष्टि शब्द के निर्वचन को दिखला रहे हैं—) **यज्ञं वै देवेभ्यः उदक्रामत्** यज्ञ देवताओं से दूर चला गया। **तम्** उस (यज्ञ) को (देवताओं ने) **इष्टिभिः** (दीक्षणीया और प्रायणीया इत्यादि) इष्टियों द्वारा **प्रैषम् ऐच्छन्** खोजने की इच्छा किया। **यद् इष्टिभिः प्रैषम् इच्छन्** जो (देवताओं ने) इष्टियों द्वारा खोजने की इच्छा किया **तद् इष्टीनाम् इष्टित्वम्** वही इष्टियों का इष्टित्व है। **तम् अन्वविन्दन्** (उन देवताओं ने इष्टियों द्वारा) उस (यज्ञ) को क्रमशः प्राप्त कर लिया।

सा०भा०—ज्योतिष्टोमाभिमानी यज्ञपुरुषः केनापि निमित्तेनापरक्तो देवेभ्योऽपक्रान्तवान्। तं यज्ञं देवा दीक्षणीयाप्रायणीयादिभिरिष्टिभिः प्रैषमन्वेष्टुमैच्छन्। इच्छन्ति यज्ञमाभिरितीष्टिशब्दव्युत्पत्तिः। यजतिधातोरिष्टिभिशब्दः सर्वत्र प्रसिद्धः।[१] अत्र त्विच्छतिधातोरिति विशेषः।[२] अन्विष्य तं यज्ञमनुक्रमेण लब्धवन्तः।

---

(१) 'श्रुयजीषिस्तुभ्यः करणे'–इति पा सू० ३.३.९४ वा० १। अमरकोष ३.४.४१।
(२) 'मन्त्रे वृषेषयचमनविदभूवीरा उदात्तः' इति पा०सू० ३.३.९६।

तल्लाभवेदनं प्रशंसति—

अनुवित्तयज्ञो राध्नोति य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी—(इसके वेदन के फल को दिखला रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है वह **अनुवित्तयज्ञः राध्नोति** (उस अनुष्ठान से) यज्ञ को प्राप्त कर समृद्ध हो जाता है।

सा०भा०—पुनरपि दीक्षणीयादीष्टिप्रशंसार्थं तास्विष्टिषु विद्यमानानामाहुतीनां वाचकं शब्दं निर्वक्ति—

(आहूतिशब्दनिर्वचनम्)

आहूतयो वै नामैता। यदाहुतय एताभिर्वै देवान् यजमानो ह्वयति तदाहुतीनामाहूतित्वम् ।।३।।

हिन्दी—(आहुति शब्द का निर्वचन—) वस्तुतः **आहूतयः** (दीर्घ तकारयुक्त) आहूति (आह्वान करना) को **आहुतयः** नाम आहुति कहा जाता है। **यद् एताभिः** जो इन (आहुतियों) से **यजमानः** यजमान **देवान् ह्वयति** देवताओं को बुलाता है, **तद् आहुतीनाम् आहूतित्वम्** वही आहुतियों का आहूतित्व (आहुति कहलाना) है।

सा०भा०—आहुतय इत्युकारेण ह्रस्वेनाऽऽहूतय इत्येवं दीर्घेण युक्तं द्रष्टव्यम्। ह्वयत्याभिरिति तद्व्युत्पत्तिः। जुहोतिधातोरुत्पन्नः शब्दः पूर्वं प्रसिद्धः।[१] अयं तु ह्वयति-धातोरुत्पन्न इति विशेषः ।।[२]

इष्टीराहुतीश्च मिलित्वा प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

(ऊतिशब्दनिर्वचनम्)

ऊतयः खलु वै ता नाम याभिर्देवा यजमानस्य हवमायन्ति, ये वै पन्थानो याः स्रुतयस्ता वा ऊतयस्त उ एवैतत्स्वर्गयाणा यजमानस्य भवन्ति।।४।।

हिन्दी—**याभिः देवाः** जिनके द्वारा देवतागण **यजमानस्य** यजमान के **हवम् आयन्ति** आह्वान को (सुनकर) आते हैं और **ताः वै नाम ऊतयः** वे ही ऊतियाँ कहलाती हैं। **ये वै पन्थानः** जो भी मार्ग हैं, और **याः वै स्रुतयः** जो (इस मार्ग की अवयव रूप) आहुतियाँ हैं **ताः वै ऊतयः** वे दोनों ही ऊतियाँ कही गयी हैं। **ते एव एतत्** वे

---

(१) 'तृन्विधावृत्विक्षु चानुपसर्गस्येति वक्तव्यम्' इति पा०सू० ३.२.१३५ वा० १। 'नप्तृ-नेष्ट्र' —इतिउणा० २५२। 'जुहोतेत्यौर्णवाभः'–इति निरु० ७.१५।

(२) ह्वातव्यः'–इति, 'होतारं ह्वातारम्'–इति च निरु० ४.४.५; ७.१५।

ही ये **यजमानस्य** यजमान के लिए **स्वर्गयाणाः भवन्ति** स्वर्ग को प्राप्त कराने का मार्ग होते हैं।

सा०भा०—हूयन्ते देवा अस्मिन्निति हवोऽत्र सोमयागो याभिरिष्टिभिस्तत्र ताभिराहुतिभिश्च निमित्तभूताभिर्देवा यजमानस्य यज्ञमागच्छन्ति ता इष्टय आहूतयश्चोतय इत्येतन्नाम प्रतिपद्यन्ते। खलुशब्दो वैशब्दश्च प्रसिद्ध्यर्थः। अवन्ति रक्षन्तीत्यवतेर्धतोरूतिशब्दः प्रसिद्धः। आयन्त्यागच्छन्ति याभिरित्याङ्पूर्वस्यायतिधातोर्वा वर्णविकारेणोतिशब्दः। यद्वा तस्मादेव धातोः स्वर्गप्रापकत्वाभिप्रायेण शब्दो व्युत्पाद्यते।[१] ये केचित् पन्थान इष्टिरूपाः स्वर्गस्य प्रौढमार्गाः सन्ति याश्च स्रुतयस्तन्मार्गावयवरूपा आहुतयः सन्ति ता द्विविधा ऊतय इत्युच्यन्ते। त उ एवैतत्त एवैते द्विविधा अपि मार्गा यजमानस्य स्वर्गयाणाः स्वर्गप्रापका भवन्ति॥

पुनरपीष्टिप्रशंसार्थं तदङ्गभूतयोर्याज्यानुवाक्ययोर्वक्तरि प्रयुज्यमानं होतृशब्दं निर्वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्नमवतारयति—

(होतृशब्दनिर्वचनम्)

तदाहुर्यदन्यो जुहोत्यथा योऽनु चाऽऽह यजति च कस्मात् तं होतेत्याचक्षत इति ।।५।।

हिन्दी—(होतृ शब्द के निर्वचन के लिए ब्रह्मवादियों के प्रश्न की अवतारणा कर रहे हैं—) **तदाहुः यत्** उस विषय में कुछ ब्रह्मवादी प्रश्न करने हैं कि **अन्यः जुहोति** (होता से) अन्य (अध्वर्यु) आहुति देता है **अथ** तब **यः च अनु आह** जो अनुवाक्या पढ़ता है और जो **यजति च** याज्या करता है **तम्** उस (अनुवाक्या और याज्या पढ़ने वाले) को **कस्मात्** किस कारण से **होता इति आचक्षते** होता कहा जाता है।

सा०भा०—तत्तास्विष्टिषु किञ्चिच्चोद्यमाहः। यद्यस्मात् कारणाद्धोतुरन्योऽध्वर्युर्जुहोति तस्मात् तत्कारणात् तद्धातुनिष्पन्नो होतृशब्दस्तस्याध्वर्योर्युक्तः। याज्ञिकास्तु तमध्वर्युं होतेति नाऽऽचक्षते। अथ यः पुमान् अनु चाऽऽह पुरोनुवाक्यां चानुब्रूते यजति च याज्यां च पठति तं पुमांसमनुवक्तेति यष्टेति चानभिधाय कस्मात् कारणाद्धोतेत्याचक्षते। इतिशब्दः प्रश्नसमाप्त्यर्थः॥

अभिज्ञानामभिप्रेतं प्रश्नस्योत्तरं दर्शयति—

यद्वाव स तत्र यथाभाजनं देवता अमुमावहामुमावहेत्यावाहयति तदेव होतुर्होतृत्वं होता भवति ।।६।।

हिन्दी—(होता शब्द का निर्वचन करते हुए उत्तर दे रहे हैं—) **यद् वाव** ... जो वह (होता) **तत्र** वहाँ (याग में) **यथाभाजनम्** यथायोग्य **देवताः** देवताओं को **अमुम्**

(१) 'ऊतिः' निघ० ४.२.१५; 'ऊतिरवनात्'–इति च निरु० ५.१.३।

आवह अमुम् आवह अमुक (देवता) को बुलाओ, अमुक (देवता) को बुलाओ **इति** यह कह कर **आवाहयति** बुलाता है, **तदेव होतुः होतृत्वम्** वही होता का होतृत्व (होता होने का गुण) है। अतः **होता भवति** (वह) होता (बुलाने वाला) है।

सा० भा०—'यद्वाव' यस्मादेव कारणाद्याज्यानुवाक्योर्वक्ता स पुमांस्तत्र यागे यथाभाजनं यथास्थानं सर्वा देवता आवाहयति-अमुमग्निमावह, अमुं सोममावहेति[1] तदेव तस्मादेव कारणाद्याज्ञिकप्रसिद्धस्य होतुस्तन्नाम सम्पन्नम्। अत्र ण्यन्तस्य वहधातोश्छान्दस्या प्रक्रियया होतृशब्दनिष्पत्तिर्न तु जुहोतिधातोस्तस्माद्धोकर्तृत्वाभावेऽप्यावाहयितृत्वसद्भावाद्धोतृत्वमुपपन्नमित्ययं याज्यानुवाक्ययोर्वक्ताऽपि होता भवत्येव ॥

होतृत्ववेदनं प्रशंसति—

होतेत्येनमाचक्षते य एवं वेद ॥७॥

हिन्दी—(होतृत्व के वेदन की प्रशंसा करते हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (होतृत्व को) जानता है **एनम् इस** (जानने वाले) को **होता इति आचक्षते** होता कहा जाता है।

सा० भा०—याज्ञिका एनं वेदितारं होतारं मुख्यो होतेति कथयन्ति। हौत्रे कर्मणि कुशलो भवतीत्यर्थः ॥[2]

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य प्रथमाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के प्रथम अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—इत्थमिष्ट्याहूत्यूतिहोतृशब्दानां निर्वचनेन दीक्षणीयेष्टिं प्रशस्य तयेष्ट्या दीक्षितस्य संस्कारविशेषान् विधातुं प्रस्तौति—

(दीक्षितस्य संस्कारविधानम्)

पुनर्वा एतमृत्विजो गर्भं कुर्वन्ति यं दीक्षयन्ति ॥१॥

हिन्दी—(दीक्षणीयेष्टि इत्यादि द्वारा दीक्षित के संस्कार-विशेष को कह रहे हैं—)

---

(१) "अग्निमग्न आवह। सोममावह। अग्निमावह" इत्यादयः तै०ब्रा० ३.५ ३-२।
(२) 'तस्य धर्म्यम्' 'अण् महिष्यादिभ्यः'–इति पा०सू० ४.४.४७, ४८।

यं दीक्षयन्ति जिस (यजमान) को (ऋत्विक्) दीक्षित करते हैं। **एतम्** इस (यजमान) को **ऋत्विजः पुनर्वै गर्भं कुर्वन्ति** ऋत्विक् लोग मानो पुनः गर्भ में धारण करते हैं (अर्थात् गर्भ स्थानीय शिशु के समान उसकी रक्षा करते हैं) ॥

सा० भा०—यं यजमानं दीक्षणीयेष्ट्या दीक्षितं कुर्वन्ति तं यजमानं पुरा मातापितरौ कञ्चित् कालं गर्भं कृतवन्तौ पुनरप्येनमिदानीमृत्विजो यज्ञकाले गर्भं कुर्वन्ति गर्भवदसौ संस्कारैः पालनीय इत्यर्थः ॥

एकं संस्कारं विधत्ते—

(अद्भिरभिषेचनसंस्कारः)

अद्भिरभिषिञ्चन्ति ।।२।।

हिन्दी—(अब संस्कार को कह रहे हैं। उनमें से प्रथम संस्कार में जल से अभिषिञ्चन—) **अद्भिः अभिषिञ्चन्ति** जलों से अभिषिञ्चन करते हैं ॥

सा० भा०—अप्सु स्नपयन्तीत्यर्थः। एतदेवाभिप्रेत्य तैत्तिरीया यजमानस्य वपनादूर्ध्वं स्नानमामनन्ति—'अङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्तोऽप्सु दीक्षातपसी[1] प्रावेशयन्। अप्सु स्नाति साक्षादेव दीक्षातपसी अवरुन्धे'[2] इति। यजमानस्य स्नानकर्तृत्वेऽपि ऋत्विजां स्नापयितृत्वमभिप्रेत्याभिषिञ्चन्तीत्युक्तम् ॥

उक्तानामपां प्रशंसामाह—

(अपां प्रशंसनम्)

रेतो वा आपः सरेतसमेवैनं तत्कृत्वा दीक्षयन्ति ।।३।।

हिन्दी—(जल की प्रशंसा—) **रेतः वै आपः** जल वीर्यरूप है **तत्** उस (अभिषेक) से **एनम्** इस (यजमान) को **सरेतसं कृत्वा** वीर्य-सम्पन्न बनाकर **दीक्षयन्ति** दीक्षित करते हैं ॥

सा० भा०—कार्यकारणयोरभेदादपां रेतस्त्वं वैराजदेहगताद्रेतस आप उत्पन्नाः। तथा चाऽऽरण्यके सृष्टिप्रकरणे समाम्नायते—'शिश्नाद्रेतो रेतस आपः'[3] इति। यद्वा, मनुष्यादिशरीरगतं रेतोमूत्रादिकमपां कार्यम्। तच्च **गर्भोपनिषद्याम्नातम्**—'अस्मिन् पञ्चात्मके शरीरे यत्कठिनं सा पृथिवी यद् द्रवं तदापः' इति। तत्तेनाभिषेचनेनैनं यजमानं सरेतसं पुत्रोत्पादनसमर्थं कृत्वा संस्कुर्वन्ति ॥

---

(१) 'मुण्डनादिसंस्कारो दीक्षा, आहारादिनियमस्तपः, अप्सु स्नानेन तदुभयमव्यवधानेन प्राप्नोति'—इति च तद्भाष्यं सायणीयम्।

(२) तै०सं० ६.१.१ २।

(३) ऐ०आ० २.४.१.६।

संस्कारान्तरं विधत्ते—

(नवनीतेनाभ्यञ्जनसंस्कारः)

नवनीतेनाभ्याञ्जन्ति ।।४।।

हिन्दी—(द्वितीय संस्कार नवनीत से अभ्यञ्जन—) **नवनीतेन अभ्यञ्जयन्ति** नवनीत से अभ्यञ्जन (सम्पूर्ण शरीर में लेपन) करते हैं ॥

सा० भा०—सर्वस्मिन्नपि शरीरेऽनुलेपयन्तीत्यर्थः ॥

नवनीतस्य गर्भस्थानीययजमानयोग्यतां दर्शयति—

आज्यं वै देवानां, सुरभि घृतं मनुष्याणाम्, आयुतं पितॄणां, नवनीतं गर्भाणां तद्यन्नवनीतेनाभ्यञ्जन्ति स्वेनैवैनं तद् भागधेयेन समर्धयन्ति ।।५।।

हिन्दी—**आज्यं वै देवानाम्** आज्य (पिघला घृत) देवताओं के लिए, **सुरभि घृतं मनुष्याणाम्** सुरभि घृत (जमा हुआ घृत) मनुष्यों के लिए, **आयुतं पितॄणाम्** आयुत (आधा पिघला) घी पितरों के लिए और **नवनीतं गर्भाणाम्** नवनीत (ताजा मक्खन) गर्भस्थ शिशु के लिए होता है। **तद् यत्** तो जो **नवनीतेन अभ्यञ्जन्ति** नवनीत से अनुलेपन करते हैं, इससे **एनम्** इस (यजमान) को **स्वेन एव भागधेयेन** उसके ही *भाग* से **समर्धयन्ति** समृद्ध करते हैं ॥

सा० भा०—आज्यघृतयोर्भेदः **पूर्वाचार्यैरुदाहृतः**—"सर्पिर्विलीनमाज्यं स्याद् घनीभूतं घृतं विदुः"[१] इति। ईषद्विलीनमायुतं सुरभि योग्यं प्रियमित्यर्थः। घृतायुतनवनीतेष्वप्येतत्पदमनुवर्तते। ननु तैत्तिरीया घृतस्य देवप्रियत्वमामनन्ति—'घृतं देवानामस्तु पितॄणां निष्पक्वं मनुष्याणाम्'[२] इति। ईषद्विलीनं मस्तु। निःशेषेण विलीनं निष्पक्वम्।[३] नायं दोष उभयत्र नवनीतप्रशंसारूपार्थवादत्वेन घृताज्ययोर्व्यत्ययेन पाठेऽपि विरोधाभावात्। तथा सति नवनीतस्य गर्भयोग्यत्वे सति यदि नवनीतेनाभ्यङ्गं कुर्युस्तदानीमेनं यजमानं स्वोचितेनेव भागेन समृद्धं कुर्वन्ति ॥

नेत्रयोरञ्जनेन संस्कारं विधत्ते—

(नेत्रयोरञ्जनसंस्कारः)

आञ्जन्त्येनम् ।।६।।

---

(१) 'विलीनार्धमायुतं तु नवनीतो यतो घृतम्' इत्याहुः।   (२) सं० ६.१.१.४।

(३) नवनीतस्य पाकजन्यस्तिस्रोऽवस्थाः;–पक्वम्, ईषत्पक्वम्, निःशेषपक्वं च। द्रव्यन्तरप्रक्षेपेण सुरभि निःशेषपक्वम्। अत एव बह्वृचाः पठन्ति–'आज्यं वै देवानाम्' इति तै०ब्रा० १.१.३ इति तत्रैव सा०भा०।

हिन्दी—(तृतीय संस्कार—) **एनम् अञ्जन्ति** इस (यजमान) के (दोनों आँखों में अञ्जन लगाते हैं ॥

सा० भा०—अक्ष्णोर्दृष्टिप्रसाददहेतुत्वेनाञ्जनं प्रशंसति—

(अञ्जनस्य प्रशंसा)

तेजो वा एतदक्ष्योर्यदाञ्जनं सतेजसमेवैनं तत्कृत्वा दीक्षयन्ति ।।७।।

हिन्दी—(अञ्जन की प्रशंसा करते हैं—) **यद् आंजनम्** जो आखों में अञ्जन लगाना है **एतत्** यह **अक्ष्णयोः तेजः** यह आखों का तेज रूप है। इससे **एनम्** इस (यजमान) को **सतेजसं कृत्वा** तेजसम्पन्न करके **दीक्षयन्ति** दीक्षित करते हैं ॥

सा० भा०—आञ्जनस्याक्षितेजस्त्वं लोके प्रसिद्धम्। तत्प्रकारविशेषः शाखान्तरे 'दक्षिणं पूर्णमाङ्क्ते'[1] इत्यादिना विहितः ॥

संस्कारान्तरे विधत्ते—

(दर्भपिञ्जूलैः पवित्रकरणम्)

एकविंशत्या दर्भपिञ्जूलैः पावयन्ति ।।८।।

हिन्दी—(चतुर्थ संस्कार—) **एकविंशत्या** इक्कीस **कुशपिञ्जूलैः** कुशमुष्ठिकाओं से **पावयन्ति** (मार्जन करके यजमान को) पवित्र करते हैं ॥

सा० भा०—दर्भपिञ्जूलशब्देन कुशसंघा उच्यन्ते। तैरेकविंशतिसंख्याकैर्यजमानं मार्जयित्वा शुद्धं कुर्युः ॥[2]

यद्यप्यसावभिषेकेणैव शुद्धस्तथाऽप्यतिशयेन शुद्धिरित्येवमभिप्रायं दर्शयति—

शुद्धमेवैनं तत्पूतं दीक्षयन्ति।।९।।

हिन्दी—**शुद्धमेव एनम्** (स्नान से) पवित्र हुए इस (यजमान) को **पूतम्** पवित्र करके **दीक्षयन्ति** दीक्षित करते हैं ॥

सा० भा०—पूर्वमपि शुद्धमेव सन्तमेनं यजमानं पुनरपि तत्तेन कुशसङ्घमार्जनेन पूतं कृत्वा संस्कुर्वन्ति। यद्यपि शाखान्तरे[3]—'द्वाभ्यां पावयति अहोरात्राभ्यामेवैनं पावयति त्रिभिः पावयति' इत्यादिना संख्यान्तरविषया बहवः पक्षा उपन्यस्तास्तथाऽप्येते सर्वे

---

(१) तै०सं० ६.१.१.५,६। तद्यथा—'दक्षिणां पूर्वमाङ्क्ते; सव्यं हि कुतः सतूलत्वनियमः'-इत्यादि तत्र सा०भा०। शत० ब्राह्मणेऽपि "अथाक्ष्यावनक्ति"—इत्यादि ३.१.३.१०-१७।

(२) तु० आप०श्रौ० १० ७.५। 'अथैनमुत्तरेण बहिः प्राग्वंशाद् दर्भपिञ्जूलैः पावयति'।

(३) तै०सं० ६.१.१.७,८। तन्मन्त्रा अपि तत्रैव पुरस्तात् १.२.१।

एकविंशतावन्तर्भावादवयुत्यानुवादरूपाः प्रशंसार्थाः । अत एव तत्रान्तिमे पर्याय एकविंशत्या पावयतीत्युपसंहारः कृतः ॥[१]

उक्तैः संस्कारैः संस्कृतस्य दीक्षितस्य प्राचीनवंशाख्यशालाप्रवेशं विधत्ते—

(यजमानस्य प्राचीनवंशाख्यशालां प्रवेशः)

दीक्षितविमितं प्रपादयन्ति ॥१०॥

हिन्दी—(पञ्चम संस्कार—) **दीक्षितविमितं** दीक्षित व्यक्ति के लिए विशेषरूप से निर्मित स्थान विशेष (प्राचीनवंशशाला) पर **प्रतिपादयन्ति** (दीक्षित यजमान को) ले जाते हैं ॥

सा० भा०—दीक्षितस्य प्रवेशार्थं विशेषेण निर्मितः प्राचीनवंशो दीक्षितविमितस्तं प्रवेशयेयुः ॥

पूर्वत्र दीक्षितस्य गर्भत्वाभिधानादौचित्येन प्राचीनवंशं योनित्वेन प्रशंसति—

(योनित्वेन प्राचीनवंशप्रशंसनम्)

योनिर्वा एषा दीक्षितस्य यद्दीक्षितविमितं योनिमेवैनं तत्स्वां प्रपादयन्ति ॥११॥

हिन्दी—**यद्दीक्षितविमितं** जो दीक्षितव्यक्ति के लिए विशेष रूप से निर्मित स्थान-विशेष है **एषा दीक्षितस्य योनिः** यह दीक्षित की योनि है। **तत्** उस (दीक्षितविमित में ले जाने) से **एनम्** इस (यजमान) को **स्वां योनिमेव** अपनी योनि को ही **प्रपादयन्ति** प्राप्त कराते हैं ॥

सा० भा०—प्राचीनवंशस्य योनित्वोपचारात् तत्तेन प्राचीनवंशप्रवेशेन स्वकीययोनि-प्रवेशः सम्पाद्यते। सोऽयं प्रवेशः शाखान्तरे विस्पष्टमाम्नायते—'बहिः पावयित्वाऽन्तः प्रपादयति मनुष्यलोक एवैनं पावयित्वा पूतं देवलोकं प्रणयति'[२] इति । आपस्तम्बोऽप्याह—'आवो देवास ईमह इति पूर्वया द्वारा प्राग्वंशं प्रविश्य'[३] इति ॥

तस्य दीक्षितस्य कंचिन्नियमं विधत्ते—

(तत्र दीक्षितस्य नियमविशेषकथनम्)

तस्माद् ध्रुवाद्योनेरास्ते च चरति च ॥१२॥

हिन्दी—अतः **तस्मात् ध्रुवाद्योनेः** उस स्थिर योनि में **आस्ते** बैठता है और **चरति**

---

(१) द्वाभ्याम्, त्रिभिः, पञ्चभिः, षड्भिः, सप्तभिः, नवभिः, एकविंशत्या ।
(२) तै०सं० ६.१.२.१।
(३) आप०श्रौ० १०.८.१।

च सञ्चरण करता है ॥

सा० भा०—अत्र तिस्रः पञ्चम्यः सप्तम्यर्थे द्रष्टव्याः। तस्मिन् दीक्षितार्थं निर्मितदेवयजनाख्ये स्थिरस्थाने स दीक्षित उपवेशनं सञ्चरणं च कुर्यात् ॥

विहितमर्थं प्रशंसति—

तस्माद् ध्रुवाद्योनेर्गर्भा धीयन्ते च प्र च जायन्ते ॥१३॥

हिन्दी—(क्योंकि लोक में भी) **तस्माद् ध्रुवाद् योनेः** उस स्थिर योनि में **गर्भाः** गर्भ **धीयन्ते च** धारणा किये जाते है और **प्रजायन्ते च** (वहीं से) उत्पन्न होते हैं ॥

सा० भा०—यस्माद् गर्भस्थानीयस्य दीक्षितस्य स्थिरे देवयजनस्थाने योनिरूप उपवेशनं सञ्चरणं च तस्माल्लोकेऽपि स्थिरे योनिमध्ये नवसंख्याकान् मासान् गर्भा धार्यन्ते तस्मादेव स्थिराद्योनिमध्यादुत्पद्यन्ते ॥

तस्य दीक्षिस्य देवयजनाद् बहिर्निर्गमनं निषेधति—

(यजमानस्य प्राचीनवंशतः बहिर्गमननिषेधः)

तस्माद् दीक्षितं नान्यत्र दीक्षितविमितादादित्योऽभ्युदियाद्वाऽभ्यस्तमियाद्वाऽपि वाऽभ्याश्रावयेयुः ॥१४॥

हिन्दी—(दीक्षित के उस स्थान से बाहर जाने का निषेध कर रहे हैं—) **तस्माद् दीक्षितविमितात्** उस (दीक्षित के लिए) विशेषरूप से बने हुए स्थान-विशेष से **अन्यत्र** अन्य स्थान पर **दीक्षितम्** दीक्षित को अभिलक्षित करके **आदित्यः** आदित्यदेव **न अभ्युवियात्** न उदित होवें **न अभ्यस्तमियात्** न अस्त होवे और **न अभ्याश्रावयेयुः** न तो ऋत्विग् गण वार्तालाप करें। अर्थात् (दीक्षित उस स्थान से बाहर न जाये) ॥

सा० भा०—यस्माद् दीक्षितस्योपवेशनसञ्चरणयोर्देवयजनमेव स्थानं तस्मात् कारणाद् दीक्षितविमिताद् देवयजनदेशादन्यत्र बहिर्देशे दीक्षितमभिलक्ष्याऽऽदित्यो नोदियान्नास्तमियाच्च। किञ्चर्त्विजो यं बहिरवस्थितं दीक्षितमभिलक्ष्याऽऽश्रावणादिकं न कुर्युः।[१] यद्यपि ध्रुवाद्योनेरास्ते चरतिविधानादेवायमर्थः सिद्धस्तथाऽपि मलमूत्रविसर्गाद्यावश्यककार्यार्थं कदाचिद् बहिर्निर्गमनमभ्युपगम्य तत्र विशेषाभिधानमेतत्। कालान्तरे कथञ्चिद् गमनेऽप्युदयास्तमयाश्रवणादिकालेषु सर्वथा न निर्गच्छेदित्यर्थः। तदेतद् दृष्टान्तपुरःसरं शाखान्तरे[२] प्रपञ्चितम्—'गर्भो वा एष यद्दीक्षितो योनिर्दीक्षितविमितं यद्दीक्षितो दीक्षितविमितात् प्रवसेद् यथा योनेर्गर्भः स्कन्दति तादृगेव तत्र प्रवस्तव्यमात्मनो गोपीथाय'[३] इति ॥

---

(१) तु० आश्व०श्रौ० १२.८, आप०श्रौ० १०.१५.५।
(२) तै०सं० ६.२.५.४।
(३) द्र० शत०ब्रा० ३.२.१।

संस्कारन्तरं विधत्ते—

(दीक्षितस्य वाससाच्छादनसंस्कारः)

वाससा प्रोर्णुवन्ति ।।१५।।

हिन्दी—(षष्ठ संस्कार वस्त्र से आच्छादन—) **वाससा प्रोर्णुवन्ति** (अब ऋत्विग्-गण दीक्षित यजमान को) वस्त्र से आच्छादित करते (वस्त्र पहनाते) हैं ।।

सा० भा०—ऋत्विजो यजमानं वस्त्रेणाऽऽच्छादयेयुः ।।

गर्भस्थानीयं दीक्षितं प्रत्यौचित्येन वस्त्रस्योल्बत्वं दर्शयति—

(वस्त्रस्योल्बत्वकथनम्)

उल्बं वा एतद्दीक्षितस्य यद्वास उल्बेनेवैनं तत् प्रोर्णुवन्ति ।।१६।।

हिन्दी—(वस्त्र की उल्बणता—) **यद् वासः** जो वस्त्र है, **एतद् दीक्षितस्य** यह (वस्त्र) दीक्षित (दीक्षित यजमान) को **उल्बेन इव प्रोर्णुवन्ति** मानो उल्ब से ही आच्छादित करते हैं ।।

सा० भा०—उल्बशब्देन गर्भस्याभ्यन्तरं चर्म सर्ववेष्टनमुच्यते । अयमर्थः शाखान्तरे स्पष्टीकृतः—'गर्भो वा एष यद्दीक्षित उल्बं वासः प्रोर्णुते तस्माद् गर्भाः प्रावृता जायन्ते'[१] इति ।।

वाससो बहिर्वेष्टनान्तरं विधत्ते—

(दीक्षितस्य कृष्णाजिनेनाच्छादानसंस्कारः)

कृष्णाजिमुत्तरं भवति ।।१७।।

हिन्दी—(सप्तम संस्कार–कृष्णाजिन से आच्छादन—) **उत्तरम्** वस्त्राच्छादन के बाद उस पर **कृष्णाजिनं भवति** कृष्णमृगचर्म को लपेटा जाता है) ।।

सा० भा०—बहिर्वेष्टनत्वसाम्येन कृष्णाजिनस्य जरायुरूपत्वं दर्शयति—

(कृष्णाजिनस्य जरायुरूपत्वम्)

उत्तरं वा उल्बाज्जरायु[२] जरायुणैवैनं तत् प्रोर्णुवन्ति ।।१८।।

हिन्दी—**उल्बाद् उत्तरम्** उल्ब के ऊपर (यह कृष्णमृगचर्म) **जरायुः वै** जरायु रूप ही होता है । **तत्** उस (कृष्णाजिन के लपेटने) से **एनम्** इस (यजमान) को **जरायुणा एव** जरायु से ही **प्रोर्णुवन्ति** आच्छादित करते हैं ।।

---

(१) तै०सं० ६.१.३.२।

(२) येनाविष्टतो जायते गर्भस्तदुल्बं भवति । यत् पुनर्गर्भावरणं गर्भाशय एव तिष्ठति तज्जरायुर्भवति' इति गोविन्दस्वामी ।

संस्कारान्तरं विधत्ते—

(मुष्टिद्वयबन्धनसंस्कारः)

मुष्टीं कुरुते ।।१९।।

हिन्दी—(अन्य संस्कार-मुष्टिबन्धन—) **मुष्टीं कुरुते** (यजमान) मुट्ठी बाँधता है ।।

सा० भा०—यजमानो हस्तयोर्मुष्टिं कुर्यात् । तत्प्रकार आपस्तम्बेन स्पष्टमभिहितः—'अथाङ्गुलीर्न्यञ्चति । स्वाहा यज्ञं मनसेति द्वे स्वाहा दिव इति द्वे स्वाहा पृथिव्या इति द्वे स्वाहोरोरन्तरिक्षादिति द्वे स्वाहा यज्ञं वातादारभ इति मुष्टीकरोति'[१] इति ।।

गर्भसाम्येन यज्ञस्य सर्वदेवतानां च धारणेन प्रशंसति—

(मुष्टिद्वयप्रशंसनम्)

मुष्टी वै कृत्वा गर्भोऽन्तः शेते, मुष्टी कृत्वा कुमारो जायते, तद्यन्मुष्टी कुरुते यज्ञं चैव तत्सर्वाश्च देवता मुष्ट्योः कुरुते ।।२०।।

हिन्दी—(मुष्टिबन्धन की प्रशंसा कर रहे हैं—) **मुष्टी कृत्वा** मुट्ठी बाँधे हुए ही **गर्भः** गर्भस्थ शिशु **अन्तः** योनि के भीतर **शेते** शयन करता है, **मुष्टी कृत्वा** मुट्ठी बाँधे हुए **कुमारः जायते** शिशु पैदा होता है। **तद् यद् मुष्टी कुरुते** तो जो (दीक्षित) मुट्ठी बाँधता है **तत्** उस (मुट्ठी बाँधने) से **यज्ञं च** यज्ञ को और **सर्वान् च देवताः** सभी देवताओं को **मुष्ट्योः कुरुते** (अपनी) दोनों मुट्ठी में कर लेता है ।।

सा० भा०—गर्भस्य मुष्टीद्वये शास्त्रप्रसिद्ध्यर्थो वैशब्दः । जायमानस्य मुष्टिद्वयं लोके प्रसिद्धम् । मुष्टिमध्ये यज्ञधारणं शाखान्तरेऽप्याम्नातम्—'मुष्टी करोति वाचं यच्छति यज्ञस्य धृत्यै'[२] ।।

प्रकारान्तरेण मुष्टिद्वयं प्रशंसति—

तदाहुर्न पूर्वदीक्षिणः संसवोऽस्ति, परिगृहीतो वा एतस्य यज्ञः, परिगृहीता देवता नैतस्याऽऽर्तिरस्त्यपरदीक्षिण एव यथा तथेति ।।२१।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से दोनों मुट्ठी बाँधने की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस (मुट्ठी) के विषय में कुछ वेदज्ञ कहते हैं—**पूर्वदीक्षिणः संसवः न अस्ति** पहले दीक्षित (व्यक्ति) का संसव (एक स्थान पर दो या दो से अधिक यजन करने वालों का सोमाभिषव करने का दोष) नहीं होता । **एतस्य** इस (यजमान) का **यज्ञः परिगृहीतः** यज्ञ मुट्ठी में होता

---

(१) आप०श्रौ० १०.११.३.४।

(२) तै०सं० ६.१.४.३।

है और **देवताः परिगृहीताः** देवता मुट्ठी में होते हैं। **अपरदीक्षिणः यथा** बाद में दीक्षणीया इष्टि करने वाले को जिस प्रकार **आर्तिम् अस्ति** दुःख होता है, **एतस्य तथा न** इस (पहले दीक्षणीया इष्टि करने वाले) को उस प्रकार (दुःख) नहीं होता है ॥

सा० भा०—तत्तत्र मुष्ट्योः करणे ब्रह्मवादिनः कश्चिद् गुणमाहुः। द्वयोर्बहूनां वा यजमानानां संभूय सोमाभिषवः 'संसवः'। स च महान् दोषस्तस्मिन्नेव देशे तस्मिन्नेव काले मत्सरग्रस्तैर्यजमानैः प्रवर्तितत्वात्। नद्या वा पर्वतेन वा व्यवधानरहितयोः समीपवर्तिनोः परस्परमन्त्रध्वनिसवनयोग्ययोर्देशयोः स्पर्धमानाभ्यां यजमानाभ्यां प्रवर्तितौ यौ सोमयागौ तयोरयं संसवाख्यो दोषः। तथा च सूत्रकार आह—'संसवोऽनन्तर्हितेषु नद्या वा पर्वतेन वा'[१] इति। सोऽयं दोषः पूर्वदीक्षिणो नास्ति। एकस्मिन्नेव दिवसे द्वयोर्यजमानयोर्मध्ये यः पूर्वं दीक्षणीयेष्टिं करोति स पूर्वदीक्षी। एतस्य मुष्ट्योर्मध्ये यज्ञः परिगृहीतः सर्वाश्च देवताः परिगृहीताः। तदानीमितरसंबन्धिनो यज्ञस्याप्रवृत्तत्वेन तत्र गच्छाम इत्येवं यज्ञस्य देवतानां वाऽऽलोचनाभावात्। पश्चाद् दीक्षणीयेष्टिकुर्वाणस्यापरदीक्षितस्य यज्ञो देवताश्च सुलभा न भवन्ति पूर्वमन्येन यजमानेनावरुद्धत्वात्। तस्माद् अपरदीक्षिण आर्तियो विनाशो यथाऽस्ति तथा पूर्वदीक्षिण आर्तिर्नैवास्ति। 'संवेशाय त्वोपवेशाय त्वा' इत्यादिमन्त्रेण येयं संसवप्रायश्चित्ताहुतिः[२] सेयमपरदीक्षिणैव कर्तव्या न पूर्वदीक्षिणेत्यर्थः। इतिशब्दो ब्रह्मवादिवचनसमाप्त्यर्थः ॥

यदेतत् कृष्णाजिनवेष्टनं विहितं तस्यावभृथगमनात् प्रागेवोन्मोचनं विधत्ते—

(अवभृथगमनात्पूर्वं कृष्णाजिनस्योन्मोचनम्)

उन्मुच्य कृष्णाजिनमवभृथमभ्यवैति, तस्मान्मुक्तो गर्भो जरायो-र्जायन्ते ॥ २२ ॥

हिन्दी—**कृष्णाजिनम् उन्मुच्य** (अब यजमान) कृष्णमृगचर्म को उतार कर (योनि-स्थानीय देवयजन से निकल कर) **अवभृथम् अभ्यवैति** अवभृथ (= स्नान) के लिए जाता है (क्योंकि लोक में भी) **तस्माद् जरायोः मुक्तः गर्भः** उस जरायु से मुक्त हुए ही शिशु **जायन्ते** जन्म लेते हैं ॥

सा० भा०—योनिस्थानीयाद् देवयजनदेशान्निर्गत्यावभृथगमनं गर्भरूपस्य दीक्षितस्य जन्मस्थानीयं जन्म च लोके जरायुरूपवेष्टने छिन्ने सति पश्चात् सम्पद्यते। तस्मादत्रापि जरायुस्थानीयं कृष्णाजिनमुन्मुच्य जन्मस्थानीयमवभृथदेशगमनं कुर्यात् ॥

कृष्णाजिनवद्वाससोऽपि प्रसक्तमुन्मोचनं वारयति—

---

(१) आश्व०श्रौ० ६.६.११।

(२) तत्र संवेशाय त्वेत्यादयः पञ्च मन्त्राः तै०सं० ३.१७.१।

(कृष्णाजिनोन्मोचनकाले वस्त्रोन्मोचननिषेधः)

सहैव वाससाऽभ्यवैति, तस्मात् सहैवोल्बेन कुमारो जायते ।।२३।।

हिन्दी—लोक में **उल्बेण सहैव** उल्ब के साथ ही **कुमारः जायते** शिशु उत्पन्न होता है **तस्मात्** अतः **वाससा सहैव अभ्यवैति** (वह यजमान) वस्त्र के साथ आच्छादित हुआ ही अवभृथ स्नान करता है ।।

सा० भा०—उल्बाख्यस्याभ्यन्तरवेष्टनस्य जन्मकालेऽप्यनिवृत्तिदर्शनादुल्बस्थानीय-वस्त्रास्यावभृथगमनकालेऽप्यनुवृत्तिर्द्रष्टव्या ।।

अथ मीमांसा । पञ्चमाध्यायस्य तृतीयपादे[1] चिन्तितम्—

"इष्टिदण्डादिभिर्दीक्षा किंवेष्ट्यैवोक्तितोऽग्रिमः ।
युक्तः संस्कार इष्ट्यैव दण्डादेर्व्यञ्जकत्वतः" ।।

ज्योतिष्टोमे श्रूयते—'आग्नावैष्णमेवकादशकपालं निर्वपेद्दीक्षिष्यमाणः'[2] इति । अन्यदपि श्रुतम्—'दण्डेन दीक्षयति कृष्णाजिनेन दीक्षयति'[3] इति । अत्रेष्टिवद्दण्डादीनामपि साधनत्वविधानात् सर्वैरियं चेत्, मैवम् । इष्टेः क्रियारूपत्वात् संस्कारहेतुत्वं युक्तं दण्डादयस्तु न पुरुषं संस्कर्तुं प्रभवन्ति । न चैवं दण्डादिवैयर्थ्यं दीक्षितोऽयमित्यभिव्यक्तिरूपस्य दृष्टप्रयोजनस्य सद्भावात् तस्मादिष्ट्यैव दीक्षा सिध्यति ।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य प्रथमाध्याये तृतीयः खण्डः ।।३।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—विवक्षितस्य हौत्रस्योपोद्घातत्वेन दीक्षणीयेष्टिं विधाय तां च बहुधा प्रशस्य प्रसङ्गाद् दीक्षितसंस्कारा विहिताः ।

अथ विवक्षितं हौत्रं विधत्ते—

---

(१) जै०न्या०वि० ५.३.११.२१।
(२) तै०सं० ५.६.१.४।
(३) तै०सं० ६.१.३.२।

(विवक्षितहोत्रविधानम्)

(तत्र अनीजानस्य प्रथमद्वितीयोराज्यभागस्य पुरोनुवाक्याद्वयम्)

'त्वमग्ने सप्रथा असि' 'सोम यास्ते मयोभुव' इत्याज्यभागयोः पुरोनुवाक्ये अनुब्रूयाद्यः पूर्वमनीजानः स्यात् तस्मै ।।१।।

हिन्दी—(अब विवक्षित हौत्र का विधान कर रहे हैं—) **यः पूर्वम् अनीजानः स्यात्** जो (यजन करने वाला) पहले कभी (सोमयाग का) यजन नहीं किया हुआ है, **तस्मै** उस (यजमान) के लिए (दीक्षणीयेष्टि के पश्चात्) 'त्वमग्ने सप्रथा असि' और 'सोम यास्ते मयोमुवः' इत्यादि दोनों क्रमशः आज्यभाग की **पुरोनुवाक्ये** दो पुरोनुवाक्या को **अनुब्रूयात्** (अध्वर्युद्वारा प्रेषित होता) कहे ॥

सा०भा०—यो यजमान पूर्वं सोमयागं न कृतवानिदानीं क्रियमाण एव प्रथमः प्रयोगस्तस्मै यजमानाय तदर्थं दीक्षणोयेष्टौ प्रथमस्याऽऽज्यभागस्य 'त्वमग्ने'[१] इति पुरोनुवाक्या। द्वितीयस्य 'सोम यास्ते'[२] इति पुरोनुवाक्या। तदुभयमध्वर्युणा प्रेषितो होताऽनुब्रयात्[३] ॥

उक्तस्य प्रथममन्त्रस्य प्रथमप्रयोगानुकूल्यं दर्शयति—

त्वया यज्ञं वितन्वत इति यज्ञमेवास्मा एतद् वितनोति ।।२।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त प्रथम मन्त्र 'त्वमग्ने स प्रथा' इत्यादि के पहले प्रयोग करने की अनुकूलता को दिखला रहे हैं—) (उक्त मन्त्र 'त्वमग्ने ' के तृतीय पाद) **'त्वया यज्ञं वितन्वते'** अर्थात् 'हे अग्नि! तुम्हारे द्वारा ऋत्विक् यज्ञ को विस्तृत करते हैं' के द्वारा **अस्मै** इस (यजन करने वाले) के लिए **यज्ञमेव** यज्ञ को ही **वितनोति** विस्तृत करते हैं ॥

सा०भा०—तस्मिन् मन्त्रे त्वयेत्यादिस्तृतीयः पादः[४] तस्यायमर्थः—हे अग्ने, क्रियमाणमस्मद्यज्ञमिममृत्विजस्त्वया त्वत्प्रसादेन वितन्वते विस्तारयन्तीति। एतदेतेन मन्त्रवचनेनास्मै यजमानाय यज्ञं वितनोत्येव पूर्वमविस्तारितमपि यज्ञमिदानीं विस्तारयन्त्येव ॥

अधिकारिविशेषेण प्रकारान्तरं विधत्ते—

(ईजानस्य प्रथमद्वितीययोराज्यभागस्य पुरोनुवाक्याद्वयम्)

'अग्निः प्रत्नेन मन्मना', 'सोम गीर्भिष्ट्वा वयम्' इति यः पूर्वमीजानः

---

(१) ऋ० ५.१३.४ । (२) ऋ० १.९१.९ ।

(३) आश्व०श्रौ०-'प्रेषितो जपति' १.१.२७ 'द्वे द्वे तु याज्यानुवाक्ये' २.१.७। देवतलक्षणा याज्यानुवाक्याः' २.१४.१८।

(४) पूर्णपाठस्त्वेवम्-"त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः। त्वया यज्ञं वितन्वते"—इति ।

स्यात् तस्मै ।।३।।

हिन्दी—यः पूर्वम् ईजानः स्यात् जिस (यजन करने वाले) ने पहले (सोमयाग) यजन किया है **तस्मै** उस (यजन करने वाले) के लिए 'अग्निः प्रत्नेन मन्मना' और 'सोम गीर्भिष्ट्वा वयम्' **इति** इससे (दीक्षणीयेष्टि में क्रमशः प्रथम और द्वितीय पुरोनुवाक्या करनी चाहिए)।

सा० भा०—यो यजमानः पूर्व सोमयागं कृतवांस्तस्मै यजमानार्थं पुनः सोमयागप्रयोगे दीक्षणीयेष्टौ 'अग्निः प्रत्नेन'[१] इति प्रथमस्याऽऽज्यभागस्य पुरोनुवाक्या। सोम गीर्भिरिति[२] द्वितीयस्य ।।[३]

तत्र प्रथम मन्त्रस्य पुनः प्रयोगानुकूल्यं दर्शयति—

प्रत्नमिति पूर्वं कर्माभिवदति ।।४।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त प्रथम मन्त्र 'अग्निः प्रत्नेन' इत्यादि के पहले प्रयोग करने की अनुकूलता को दिखता रहे हैं—) मन्त्र में प्रयुक्त **'प्रत्नम् इति'** इस शब्द से **पूर्वं कर्म** पूर्व में (सम्पादित सोमयाग नामक) कर्म को **अभिवदति** कहता है ।।

सा० भा०—तस्मिन् मन्त्रे यत्प्रत्नमिति पदं तेन पदेन पूर्वमनुष्ठितं सोमयागाख्यं कर्माभिधीयते। "पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरंतनाः"[४] इति प्रत्नशब्दस्याभिधानकारैः पुरातनपर्यायत्वाभिधानात् ।।

ईजानादीजानभेदेन व्यवस्थितं यन्मन्त्रचतुष्टयमुक्तं सोऽयं पूर्वः पक्ष इत्यभिप्रेत्य दूषयति—

तत्तन्नाऽऽदृत्यम् ।।५।।

हिन्दी— (पूर्व में यजन करने वाले और न करने वाले यजमान के भेद से व्यवस्थित 'त्वमग्न' इत्यादि चार मन्त्रों को कहा गया है, वह पूर्वपक्ष है। इस पक्ष में दोष को दिखला रहे हैं—) **तत्तत्** वह वह (पूर्व में याग करने वाले और न करने वाले के विषय में कहे गये मन्त्र) **न आदृत्यम्** आदर करने योग्य (स्वीकार करने योग्य) नहीं है ।।

स० भा०—तत्र दीक्षणीयेष्टिगतयोराज्यभागयोस्त्वमग्न इत्यादिकमनुब्रूयादिति यन्मतमस्ति तन्मतं नाऽऽदरणीयम् ।।

किं तर्ह्यादरणीयमित्याशङ्क्याऽऽह—

---

(१) ऋ० ८.४४.१२।   (२) ऋ० १.९१.११।

(३) आश्व०श्रौ० १.५.३५। तै०ब्रा० ३.५.६.४,५; तै०सं० २.६.२।

(४) अमरकोश ३.१.७७।

(स्वपक्षे पुरोनुवाक्याद्वयम्)

'अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्', 'त्वं सोमासि सत्पतिः' इति वार्त्रघ्नावेव कुर्यात् ।।६।।

हिन्दी—(अब अपने पक्ष को कह रहे हैं—) 'अग्निर्वृत्राणि जङ्घनत्' और 'त्वं सोमासि सत्पतिः'–**इति** इन **वार्त्रघ्नौ एव कुर्यात्** दोनों वृत्रघ्न–सम्बन्धी (आज्यमाग की क्रमशः प्रथम और द्वितीय पुरोनुवाक्या) को करना चाहिए ।।

सा०भा०—वृत्रं शत्रुं हन्तीति वृत्रहा । वृत्रघ्नः संबन्धिनौ मन्त्रौ वार्त्रघ्नौ । वृत्राणि जङ्घनदिति तल्लिङ्गात् तत्संबन्धित्वम् । अग्निर्वृत्राणीति[1] प्रथमस्याऽऽज्यभागस्य पुरोनुवाक्या त्वं सोमासीति[2] द्वितीयस्य[3] ।।

एतयोर्मन्त्रयोरानुकूल्यं दर्शयति—

वृत्रं वा एष हन्ति यं यज्ञ उपनमति तस्माद् वार्त्रघ्नावेव कर्तव्यौ ।।७।।

हिन्दी—(इन दोनों की अनुकूलता को दिखता रहे हैं—) **यं यज्ञे उपनमति** जिस (यजन करने वाले) को यज्ञ में प्रेरित करता है, **एषः** यह (यजन करने वाला) **वृत्रं वै हन्ति** वृत्ररूप (पाप) को विनष्ट करता है । **तस्मात्** इसी कारण **वार्त्रघ्नौ एव कर्त्तव्यौ** वृत्र के मारने से सम्बन्धित (दोनों मन्त्रों) का पाठ करना चाहिए ।।

सा०भा०—यं यजमानं यज्ञ उपनमति सोमयागे प्रेरयति एष यजमानो वृत्रं पापरूपं शत्रुं हन्त्येव तस्मात् कारणाद् वृत्रहत्यासम्बन्धिनावेव मन्त्रौ कर्तव्यौ । यथा प्रथममन्त्रे वृत्राणि जङ्घनदिति लिङ्गमस्ति तथा द्वितीयेऽपि त्वं राजोत वृत्रहेति लिङ्गं विद्यते । तस्मादुभयोरपि तत्संबन्धित्वं पूर्वोक्तयोस्तु पक्षयोर्वितन्वते प्रत्नमित्यानुकूल्यलिङ्गं प्रथमयोरेव मन्त्रयोर्दृश्यते न तूत्तरयोस्तस्मात् तन्नाऽऽदरणीयमिति दूषयित्वोभयलिङ्गसद्भावादयं पक्षः स्वीकृतः ।।

आज्यभाग्यरूपेऽङ्गकर्मणि पुरोनुवाक्यायुग्मं विधाय प्रधानकर्मणि हविषि याज्यानुवाक्ये विधत्ते—

(प्रधानहविषि याज्यानुवाक्याविधानम्)

अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानामग्निश्च विष्णो तप उत्तमं मह इत्याग्नावैष्णवस्य हविषो याज्यानुवाक्ये भवतः ।।८।।

हिन्दी—(आज्यभागरूप अङ्गकर्म में पुरोनुवाक्या का विधान करके अब प्रधानकर्म में हवि की याज्या और अनुवाक्या का विधान कर रहे हैं—) 'अग्निर्मुखं प्रथमो देवानाम्' और 'अग्निश्च विष्णो तप उत्तमं मह' इति–वे दोनों (मन्त्र) **अग्नावैष्णवस्य**

(१) ऋ० ६.१६.३४।　(२) ऋ० १.९१.५।
(३) आश्व०श्रौ० १.५.२९। तै०ब्रा० ३.५.६.१,२; तै०सं० २.६.२।

हविषः अग्नि और विष्णु की हविष की क्रमशः **याज्यानुवाक्ये भवतः** अनुवाक्या और याज्या होते हैं ॥

विमर्श—(१) देवता के स्मरणार्थ उच्चारित मन्त्र पुरोनुवाक्या और हवि प्रदान करने वाला मन्त्र याज्या कहलाता है।

(२) 'अग्निर्मुखं' और 'अग्निश्च'–ये दोनों मन्त्र ऋग्वेद संहिता में उपलब्ध नहीं हैं। इन दोनों ऋचाओं को आश्वलायनश्रौतसूत्र ४.२.३ में पढ़ा गया है। ये दोनों मन्त्र इस प्रकार हैं—

(१) अग्निर्मुखं प्रथमो देवतानां सङ्गतानामुत्तमो विष्णुरासीत्।
यजमानाय परिगृह्य देवान् दीक्षयेदं हविरागच्छतं नः ॥

(२) अग्निश्च विष्णो तप उत्तमं महो दीक्षापालाय वनं तं हि शक्रा।
विश्वेर्देवैर्यज्ञियैः संविदानौ दीक्षामस्मै यजमानाय धत्तम् ॥

सा० भा०—प्रथमनिर्दिष्टत्वादग्निर्मुखमित्येषा[1] पुरोनुवाक्या पश्चान्निर्दिष्टत्वादग्निश्चेति[2] याज्या।[3] यद्यप्यर्थानुसारेणानुवाक्यायाज्ये भवत[4] इति विधातव्यं तथाऽप्यल्पाच्तरमिति व्याकरणसूत्रानुसारेण[5] याज्याशब्दस्य पूर्वनिपातो द्रष्टव्यः ॥

तयोर्ऋचोः कर्मानुकूल्यं दर्शयति—

(ऋग्द्वयोः कर्मानुकूलत्वम्)

आग्नावैष्णव्यौ रूपसमृद्धे एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति ॥९॥

हिन्दी—(अग्निर्मुखम्' इत्यादि दोनों ऋचाओं की कर्मानुकूलता को दिखला रहे हैं—) **आग्नावैष्णव्यौ** अग्नि और विष्णु देवताक (ये उपर्युक्त) दोनों ऋचाएँ **रूपसमृद्धे** (कर्मानुकूल) रूप से समृद्ध हैं। **यद् रूपसमृद्धम्** जो (ये अपने) रूप से समृद्ध हैं **एतद्**

---

(१) तै०सं० २.४.३.३

(२) तै०सं० २.४.३.४। ऋचावेतेऽन्यशाखीये गम्येते; आश्वलायनेन हि प्रपठ्य विहिते (श्रौ० ४.२.३)। तैत्तिरीय पाठस्तु किञ्चिद् भिन्न एवेति।

(३) 'सर्वेषामग्रेऽग्रेवाक्यास्ततो याज्याः'—इति आश्व०श्रौ० ३.७.३।

(४) याज्यानुवाक्यास्ततो दर्शयति—'पुरस्ताल्लक्ष्मा पुरोऽनुवाक्या भवति, जातानेव...। उपरिष्टाल्लक्ष्मा याज्या; जनिष्यमाणानेव इति तै०सं० २.६.२.३। मन्त्रप्रतिपाद्याया देवताया नामधेयं लक्ष्म। तद्यस्यामृचि पूर्वार्द्धे विद्यते सा पुरोऽनुवाक्या; तन्नाम यस्यामुत्तरार्द्धे विद्यते सा याज्या। तद्यथा—अग्निर्मूर्द्धा। अनुवाक्यातिष्ठन्नन्वाहः आसीनो याज्यां यजति'—इति च शत०ब्रा० १.४.२.१८,१९।

(५) पा०सू० २.२.३४।

वै यज्ञस्य समृद्धम् यही यज्ञ की समृद्धि हैं। **यत् क्रियमाणम् कर्म** जो कर्म जैसा किया जाने वाला है वैसा ही **ऋक् अभि वदति** (यह) ऋचा कह रही है ॥

सा० भा०—अग्निश्च विष्णुश्च ययोर्ऋचोः प्रतिपाद्ये देवते भवतस्ते उभे ऋचावाग्नावैष्णव्यौ ।[१] ते च कर्मानुकूल्येन रूपेण समृद्धे । न च रूपसमृद्धवैयर्थ्यं शङ्कनीयम् । कर्मणो यदङ्गं रूपसमृद्धं भवत्येतदेव यज्ञस्याङ्गेषु समृद्धं सम्पूर्णं न तु तस्मिन्किञ्चिदपि वैकल्यमस्ति । केयं रूपसमृद्धिरिति चेत्? पठ्यमानेयमृगनुष्ठीयमानं कर्माभिवदति साकल्येन ब्रवीतीति यदस्ति, एषैव रूपसमृद्धिः ॥

मन्त्रप्रतिपाद्यदेवताप्रशंसाद्वारेण पुनरपि मन्त्रौ प्रशंसति—

(अग्नेर्विष्णोश्च दीक्षापालत्वेन प्रशंसनम्)

अग्निश्च ह वै विष्णुश्च देवानां दीक्षापालौ, तौ दीक्षाया ईशाते, तद्यदाग्नावैष्णवं हविर्भवति यौ दीक्षाया ईशाते तौ प्रीतौ दीक्षां प्रयच्छतां यौ दीक्षयितारौ तौ दीक्षयेतामिति ।।१०।।

हिन्दी—(मन्त्र में प्रतिपादित देवता द्वारा पुनः मन्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **देवानाम्** देवताओं में **अग्निः च विष्णुः च ह वै** (प्रथम स्थानीय) अग्नि और (अन्तिम स्थान वाले (विष्णु) **देवानां दीक्षापालौ** देवताओं में दीक्षा के रक्षक हैं, **तौ दीक्षायाः ईशाते** वे दोनों दीक्षा के स्वामी हैं। **तद् यत्** तो जो **आग्नावैष्णवं हविः भवति** अग्नि और विष्णु (देवता) से सम्बन्धित हविष् होती है और **यौ दीक्षायाः ईशाते** जो दोनों दीक्षा के स्वमी हैं **तौ** वे दोनों (अग्नि और विष्णु) **प्रीतौ** प्रसन्न होकर **दीक्षां प्रयच्छताम्** दीक्षा को प्रदान करते हैं। **यौ दीक्षितारौ** जो दीक्षा प्रदान करने वाले हैं, **तौ दीक्षयेताम्** वे दोनों दीक्षा को प्रदान करें ॥

सा० भा०—योऽयमग्निः सर्वेषां देवानां प्रथमो यश्च विष्णुः सर्वेषामुत्तमस्तावुभौ देवानां मध्ये दीक्षाख्यस्य च व्रतस्य पालयितारौ तावुभौ दीक्षाया ईशाते स्वमिनौ भवतस्तस्मात्तयोर्दीक्षपालकत्वं युक्तम् । तथा सति यद्यग्नाविष्णुदेवताकं हविर्दीक्षणीयेष्टौ भवति तदानीं यौ दीक्षायाः स्वामिनौ देवौ तौ प्रीतौ यजमानाय दीक्षां प्रयच्छताम् । उक्तस्यैव व्याख्यानं यौ दीक्षयितारावित्यादिकम् । इतिशब्दोऽभिप्रायपरामर्शार्थः ।[२] अनेनाभिप्रायेणाऽऽग्नावैष्णवं हविः क्रियते । तस्मान्मन्त्रप्रतिपाद्यावग्नाविष्णू प्रशास्तावित्यर्थः ॥

अनेनाभिप्रायेण मन्त्रगतं छन्दः प्रशंसति—

---

(१) 'विमुक्तादिभ्योऽण्', 'देवताद्वन्द्वे च', 'इद्वृद्धौ'. 'इद्वृद्धौ' विष्णोः प्रतिषेधः—इति पा०सू० ५.२.६१; ६.३.२८; वा० १।

(२) 'इतिकरणोऽर्थनिर्देशार्थः'—इत्यादि पात०भा० १.१.६ आह्निके द्रष्टव्यम् । ऋ०प्राति० १.१९। अमरकोश ३.३.२४५। हे०अने०को० ७.२१,२२।

(मन्त्रगतछन्दसः प्रशंसनम्)

त्रिष्टुभौ भवतः सेन्द्रियत्वाय ।।११।।

हिन्दी—(मन्त्रगत छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **त्रिष्टुभौ भवतः** ('अग्निमुखं' इत्यादि दोनों ऋचाएँ) त्रिष्टुप् छन्द वाली है; (जो यजमान की) **सेन्द्रियत्वाय** इन्द्रियशक्ति से सम्पन्न करने के लिए होती हैं ।।

सा० भा०—त्रिष्टुप्छन्दस इन्द्रियसाधनत्वेनेन्द्रियरूपत्वं श्रुत्यन्तरे श्रुतम्—'इन्द्रियं वै त्रिष्टुप्'[1] इति अतो मन्त्रगतं छन्दो यजमानस्य सेन्द्रियत्वाय भवति ।।

अथ मीमांसा । द्वादशाध्यायस्य चतुर्थपादे चिन्तितम्—

"पुरोनुवाक्यया याज्या विकल्प्या वा समुच्चिता ।
पुरेवाऽऽद्यः समाख्यानाद् वचनाच्च समुच्चयः" ।।[2]

देवताप्रकाशनकार्यस्यैकत्वाद् याज्ययोर्यथा विकल्पः, तथैवैकयुग्मगतयोरिति चेत् मैवम्। पुरोनुवाक्येति समाख्याया उत्तरकालीनयाज्यामन्तरेणानुपपत्तेः। किञ्च 'पुरोनुवाक्यामनूच्य याज्यया जुहोति' इति प्रत्यक्षवचनेन देवतोपलक्षणहविःप्रकाशनकार्यभेदोक्तिपुरःसरं साहित्यं विधीयते ।[3] तस्मात् समुच्चयः ।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य प्रथमाध्याये चतुर्थः खण्डः ।।४।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के प्रथम अध्याय के प्रथम चतुर्थ की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—प्रधानस्य हविषो याज्यानुवाक्ये विधाय स्विष्टकृद्रूपस्य यागस्य फलविशेषाय च्छन्दोविशेषयुक्तयाज्यानुवाक्ये विधातुकामः प्रथमं द्वे ऋचौ विधत्ते—

---

(१) तै०ब्रा० १.७.९२। तत्र तु त्रिष्टुगिति पाठः। 'गायत्री पुरोऽनुवाक्या भवति, त्रिष्टुग् याज्या'–इति (तै०सं० २.६.२.५) च तद्विधायकं वचनम्।

(२) जै०न्या०वि० १२.४.४।

(३) पुरोऽनुवाक्या देवतास्मरणार्था भवति, याज्या तु हविः प्रदानार्था। तथाहीयं शातपथश्रुतिः 'ह्वयति वाऽनुवाक्यया, प्रयच्छति याज्यया'—इति शत०ब्रा० १.७.२.१७। अत एवाश्वलायनेन च सूत्रितम्—'सर्वेषामग्रेऽग्रेऽनुवाक्यास्ततो याज्या'—इति ३.७.३।

(स्विष्टकृद्रूपस्य यागस्य याज्यानुवाक्याविधानम्)

(तत्र ब्रह्मवर्चसकामस्य गायत्रीछन्दस्कयोर्विधानम्)

गायत्र्यौ स्विष्टकृतः संयाज्ये कुर्वीत तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामः ।।१।।

हिन्दी—(प्रधान हविष् की याज्या और अनुवाक्या का विधान करके अब स्विष्टकृत् रूप याग के फल-विशेष के लिए छन्दोविशेष से युक्त याज्या और अनुवाक्या का विधान करने के लिए दो ऋचाओं को कह रहे हैं—) **तेजस्कामः ब्रह्मवर्चस्कामः** तेज की कामना वाला और ब्रह्मवर्चस् की कामना करने वाला यजमान **गायत्र्यौ** गायत्री छन्दस्क ऋचाओं को **स्विष्टकृतः संयाज्ये कुर्वीत** स्विष्टकृत् की पुरोनुवाक्या और याज्या करें ।।

सा० भा०—'स हव्यवाळमर्त्य'[१] इत्येका गायत्री । 'अग्निर्होता पुरोहित'[२] इत्यपरा गायत्री । ते उभे स्विष्टकृद्यागस्य[३] संयाज्ये कुर्यात् । कीदृशोऽधिकारी? तेजः शरीरकान्तिः । ब्रह्मवर्चसं श्रुताध्ययनसम्पत्तिः । तदुभयकामोऽत्राधिकारी । संयाज्याशब्दार्थमाश्वलायनं आह— 'स्विष्टकृतः संयाज्ये इत्युक्ते सौविष्टकृती प्रतीयात्'[४] इति स्विष्टकृत्संबधिन्यो याज्यानुवाक्ये इत्यर्थः ।।

गायत्र्या उक्तफलसाधनत्वमुपपादयति—

तेजो वै ब्रह्मवर्चस गायत्री ।।२।।

हिन्दी—क्योंकि **तेजः वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री** गायत्री (छन्द) ही तेज और ब्रह्मवर्चस वाली है ।।

सा० भा०—'तत्सवितुर्वरेण्यम्'[५] इत्यस्यामृचि यद् गायत्रीछन्दस्तस्य तेजोब्रह्मवर्चससाधनत्वेन तद् रूपत्वं लोके प्रसिद्धम् । स्नानधौतवस्त्रदर्भतिलकधारणपुरःसरं गायत्रीं जपतो ब्राह्मणस्य देहे काचिदाकारशोभा दृश्यते तदिदं तेजः । स च जपिता वेदमधीते तदर्थं च शृणोति तदिदं ब्रह्मवर्चसम् ।।

वेदनपुरःसरमनुष्ठातृफलं दर्शयति—

तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं विद्वान् गायत्र्यौ कुरुते ।।३।।

---

(१) ऋ०सं० ३. ११.२।

(२) ऋ०सं० ३.११. १।

(३) 'स्विष्टकृद्यागानुमन्त्रणम्' तै०सं० १.६.२.४। तद्ब्राह्मणम्, तन्निर्वचनसूत्रको मन्त्रश्च सायण-भाष्ये स्विष्टकृद्यागविधिस्तु द्र०तै०सं० २.६.६.५। तद्विचारास्तु द्र०–जै०न्या०वि० ३.४.१९, ३५; पुनः ३६, ३७, ततः ४.१.२८-३२।

(४) श्रौ०सू० २.१.२१।

(५) ऋ०सं० ३. ६२.१०।

हिन्दी— (इस तथ्य को जानने वाले अनुष्ठाता के लिए फल को कह रहे हैं—) **यः एवंविद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **गायत्र्यौ कुरुते** गायत्री से सम्बन्धित दो (ऋचाओं) की (पुरोनुवाक्या और याज्या) करता है वह **तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति** तेज-सम्पन्न और ब्रह्मवर्चस से युक्त होता है ॥

सा० भा०—यद्यपि विधिवाक्येऽनुष्ठानमात्रात्फलमुक्तं तथाऽपि वेदनपूर्वकानुष्ठाने तस्मिन्नेव फले कश्चिदतिशयो द्रष्टव्यः ॥

फलान्तराय च्छन्दोन्तरं विधत्ते—

(आयुष्कामस्योष्णिक्छन्दस्कयोर्विधानम्)

उष्णिहा वाऽऽयुष्कामः कुर्वीत ।।४।।

हिन्दी—(आयु की कामना करने वाले के लिए अन्य छन्द का विधान कर रहे हैं—) **उष्णिहा वा आयुष्कामः** अथवा आयु की कामना वाला उष्णिहा (उष्णिक्) छन्द वाली ऋचाओं कर पाठ करे ॥

सा० भा०—'अग्ने वाजस्य गोमत'[१] इत्येकोष्णिक् । 'सं इधानो वसुष्कविः''[२] इत्यपरा । ते उभे शतसंवत्सरपर्यन्तायुष्कामः कुर्वीत ॥

गायत्र्या अप्यक्षरचतुष्टयेनोष्णिक्छन्दसोऽधिकत्वाद्[३] आयुर्वृद्धिहेतुत्वं युक्तमित्यभिप्रेत्योष्णिगायुषोरभेदमाह—

आयुर्वा उष्णिक् ।।५।।

हिन्दी—क्योंकि **आयुः वै उष्णिक्** उष्णिक् आयु वाला है ॥

सा० भा०—पूर्ववद् वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं विद्वानुष्णिहौ कुरुते ।।६।।

हिन्दी—**यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार (उष्णिक् को आयुरूप) जानने वाला **उष्णिहौ कुरुते** उष्णिक् छन्द वाली ऋचाओं से (पुरोनुवाक्या और याज्या करता है, वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण वायु को प्राप्त करता है ॥

फलान्तराय च्छन्दोन्तरं विधत्ते—

(स्वर्गकामस्यानुष्छन्दस्कयोर्विधानम्)

अनुष्टुभौ स्वर्गकामः कुर्वीत ।।७।।

---

(१) ऋ०सं० १.७९.४।
(२) ऋ०सं० १.७९.५।
(३) तथाचेदं पिङ्गलसूत्रम्—'चतुरश्चतुरः प्राजापत्यायाः' इति–३.११।

हिन्दी— स्वर्गकामः स्वर्ग की कामना वाला (यजमान) **अनुष्टुभौ कुर्वीत** अनुष्टुप् छन्द वाले (पुरोनुवाक्या और याज्या को) करे ॥

सा० भा०—त्वमग्ने वसून् इति द्वे[1] अनुष्टुभौ ॥

अनुष्टुभर्गहेतुत्वमुपपादयति—

द्वयोर्वा अनुष्टुभोश्चतुःषष्टिरक्षराणि त्रय इम ऊर्ध्वा एकविंश लोका एकविंशत्यैकविंशत्यैवेमाँल्लोकान् रोहति स्वर्ग एव लोके चतुः-षष्टितमेन प्रतितिष्ठति ।।८।।

हिन्दी—(अनुष्टुप् छन्द की स्वर्गहेतुता को कह रहे हैं—) **द्वयोः वै अनुष्टुभोः** दो अनुष्टुप् छन्द वाली ऋचाओं के **चतुःषष्ठिः अक्षराणि** चौंसठ अक्षर होते हैं **त्रयः इमे लोकाः ऊर्ध्वाः** ये (पृथिवी, अन्तारिक्षत और द्युलोक) तीन लोक, एक के ऊपर एक अवस्थित हैं **इमान् लोकान्** इन लोकों को **एकविंशत्या एकविंशत्या** इक्कीस-इक्कीस की अक्षर संख्या से **रोहति** आरोहरण करता है। **चतुःषष्ठितमेन** चौसठवें (अक्षर) से **स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठति** स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥

सा० भा०—श्रुत्यन्तरे[2] 'द्वात्रिंशादक्षराऽनुष्टुप्' इत्यभिधानाद् द्वयोरनुष्टुभोर्मिलित्वा चतुःषष्टिसंख्याकान्यक्षराणि सम्पद्यन्ते।[3] इमे पृथिव्यन्तरिक्षस्वर्गरूपा एकैकस्मादूर्ध्वत्वेन वर्तमानाः प्रत्येकमेकविंशत्यवयवसमूहरूपा लोकास्त्रयो विद्यन्ते। तेष्वेकैकं लोकमेकै-काक्षरगतयैकविंशतिसंख्यया यजमान आरोहति। अन्तिमेन चतुःषष्टितमेनाक्षरेण तृतीये स्वर्ग एव लोके यजमानः प्रतितिष्ठति स्थिरोऽवतिष्ठते ॥

वेदनं प्रशंसति—

प्रतितिष्ठति य एवं विद्वाननुष्टुभौ कुरुते ।।९।।

हिन्दी—(इस तथ्य के ज्ञान की प्रसंसा कर रहे हैं—) **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **अनुष्टुभौ कुरुते** अनुष्टुप् छन्दस्क (ऋचाओं) की (पुरोनुवाक्या और याज्या) करता है, **प्रतितिष्ठति** वह प्रतिष्ठित होता है ॥

सा० भा०—फलान्तराय च्छन्दोन्तरं विधत्ते—

(यशस्कामस्य बृहतीछन्दस्कयोर्विधानम्)

बृहत्यौ श्रीकामो यशस्कामः कुर्वीत ।।१०।।

---

(१) ऋ०सं० १.४५.१-२। (२) तै०सं० २.५.१०.३।

(३) अनुष्टुबनुष्टोभनात्। 'गायत्रीमेव त्रिपदां सतीं चतुर्थेन पादेनानुष्टोभति। इति च ब्राह्मणम् (दै०ब्रा० ३)–इति निरु० ७.१२। 'द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप् चत्वारोऽष्टाक्षराः समाः' ऋक्प्राति० १६.३७।

हिन्दी—**श्रीकामः यशस्कामः** (धन धान्यादि) सम्पत्ति और यश की कामना करने वाला यजमान **बृहत्यौ कुर्वीत** दो बृहती छन्दस्क (ऋचओं) की (पुरोनुवाक्या और याज्या) करे ।।।

सा० भा०—श्रीर्धनधान्यादिसंपत्तिः । यशः सत्कुलदानादिजन्या कीर्तिः । एना वो अग्निमिति द्वे[१] (उदस्य शोचिरस्यात्'[२]— इति) बृहत्यौ । श्रीयशसोः कारणत्वेन ।।

बृहत्यास्तदुभयरूपत्वं दर्शयति—

श्रीर्वै यशश्छन्दसां बृहती ।।११।।

हिन्दी—क्योंकि **बृहती** जो बृहती छन्द है, वह **छन्दसाम्** छन्दों की **श्रीः यशः** श्री और यश है ।

सा० भा०—गायत्र्यादीनां छन्दसां मध्ये या बृहती सैव श्रीरूपा यशोरूपा च। सर्वेषां छन्दसां पशुसंपादनमात्सर्ये सति बृहत्या विजयमाप्तायाः पशुरूपत्वाच्छ्रीरूपत्वम्। तथा च तैत्तिरीया आमनन्ति—'छन्दांसि पशुष्वाजिमयुस्तान्बृहत्युदजयत्तस्माद् बार्हताः पशव उच्यन्ते'[३] इति । इतरच्छन्दोभिराश्रितत्वादपि श्रीरूपत्वं त एवाऽऽमनन्ति—'यानि च च्छन्दांस्यत्यरिच्यन्त । यानि च नोदभवन् तानि निर्वीर्याणि हीनान्यमन्यन्त । साऽब्रवीद् बृहतीम् । मामेव भूत्वा मामुपस् श्रयत'[४] इति । मध्यं ह्येषामङ्गानामात्मा मध्यं छन्दसां बृहतीति मध्यत्वेन प्रशंसनाद्यशोरूपत्वमपि द्रष्टव्यम् ।।

वेदनं प्रशंसति—

श्रियमेव यश आत्मन् धत्ते य एवं विद्वान् बृहत्यौ कुरुते ।।१२।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार (छन्दों के श्री और यश रूप बृहती) को जानने वाला विद्वान् **बृहत्यौ कुरुते** बृहती छन्द से पुरोनुवाक्या और याज्या करता है, वह **आत्मन्** अपने भीतर **श्रियम् यशः एव धत्ते** श्री और यश को धारण करता है ।।

सा० भा०—एवकारः श्रीयशसोः समुच्चयार्थः ।।

अहीनसत्राद्युतरयज्ञप्राप्तिकामस्य च्छन्दोन्तरं विधत्ते—

(यज्ञकामस्य पङ्क्तिछन्दस्कयोर्विधानिम्)

पङ्क्ती यज्ञकामः कुर्वीत ।।१३।।

हिन्दी— **यज्ञकामः** यज्ञ की कामना करने वाला (यजमान) **पङ्क्तीः कुर्वीत** दो

---

(१) ऋ०सं० ७.१६.१।   (२) ऋ०सं० ७.१६.३।
(३) सं० ५.३.२.३-४।   (४) तै०ब्रा० १.५.१२.३।

पङ्क्ति छन्दस्क ऋचाओं की पुरोनुवाक्या और याज्या को करें ॥

सा० भा०—अग्नि तं मन्य इति द्वे[1] पङ्क्ती ॥

यज्ञस्य पङ्क्तिसम्बन्धित्वं दर्शयति—

पाङ्क्तो वै यज्ञः ॥१४॥

हिन्दी—क्योंकि **पाङ्क्तः वै यज्ञः** यज्ञ (आहुति इत्यादि) पाँच संख्या वाला है ॥

सा० भा०—वैशब्दो वक्ष्यमाणबहुविधपाङ्क्तत्वप्रसिद्धिप्रदर्शनार्थः ॥

वेदनं प्रशंसति—

उपैनं यज्ञो नमति य एवं विद्वान् पङ्क्ती कुरुते ॥१५॥

हिन्दी—(इस पाङ्क्त छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार (पाँच संख्या वाले यज्ञ को) जानने वाला **पङ्क्ती कुरुते** पङ्क्ति छन्दस्क (पुरोनुवाक्या और याज्या) करता है **एनं यज्ञः उपनमति** इस (यजमान) के प्रति यज्ञ झुक जाता है ॥

सा० भा०—वीर्यप्राप्त्यर्थं छन्दोन्तरं विधत्ते—

(वीर्यकामस्य त्रिष्टुप्छन्दस्कयोर्विधानम्)

त्रिष्टुभौ वीर्यकामः कुर्वीत ॥१६॥

हिन्दी—**वीर्यकामः** वीर्य की कामना करने वाला (यजमान) **त्रिष्टुभौ कुर्वीत** दो त्रिष्टुप् छन्दस्क (ऋचाओं) की (पुरोनुवाक्या और याज्या) करें ॥

सा० भा०—द्वै विरूपे चरत इति द्वे[2] त्रिष्टुभौ ॥

त्रिष्टुप्छन्दसो वीर्यसाधनत्वेन तद्रूपत्वं दर्शयति—

ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप् ॥१७॥

हिन्दी—क्योंकि **त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् छन्द **ओजः इन्द्रियं वीर्यम्** बल का हेतु, इन्द्रिय और बल है ॥

सा० भा०—वीर्यं शरीरबलम्। तच्चौजस इन्द्रियस्य चोपलक्षणम्। ओजो बलहेतुरष्टमो धातुः ।[3] इन्द्रियं चक्षुरादिपाटवम् ॥

वेदनं प्रशंसति—

ओजस्वीन्द्रियवान् वीर्यवान् भवति य एवं विद्वांस्त्रिष्टुभौ कुरुते ॥१८॥

---

(१) ऋ०सं० ५.६.१-२। (२) ऋ०सं० १.१५.१-२।

(३) निघ० २.९.१। अमरकोष ३.३.२३३। छा०उप० ३.१३.५। 'ओजस्तेजसि धातूनामवष्टम्भप्रकाशयोः । बले च दीप्तौ च'–इति विश्वः ३.१९। रघु० ५.३७।

हिन्दी—यः एवं विद्वान् जो इस प्रकार (त्रिष्टुप् को ओज इत्यादि रूप में) जानने वाला **त्रिष्टुभौ कुरुते** त्रिष्टुप् छन्दस्क (पुरोनुवाक्या और याज्या) करता है, वह **ओजस्वी इन्द्रियवान् वीर्यवान् भवति** ओज से युक्त, इन्द्रिय-सम्पन्न और वीर्यवान् होता है ॥

सा० भा०—गवादिपशुप्राप्तये छन्दोन्तरं विधत्ते—

(पशुकामस्य जगतीछन्दस्कयोर्विधानम्)

जगत्यौ पशुकामः कुर्वीत ।।१९।।

हिन्दी—पशुकामः पशु की कामना करने वाला (यजमान) **जगत्यौ कुर्वीत** दो जगती छन्दस्क ऋचाओं से (क्रमशः पुरोनुवाक्या और याज्या) करें ॥

सा० भा०—'जनस्या गोपा' इति द्वे[1] जगत्यौ ॥

पशूनां जगतीछन्दः साध्यत्वेन तत्सम्बन्धं दर्शयति—

जागता वै पशवः ।।२०।।

हिन्दी—क्योंकि **जागताः वै पशवः** पशु जगती छन्द से सम्बन्धित होते हैं ॥

सा० भा०—वेदनं प्रशंसति—

पशुमान् भवति य एवं विद्वाञ्जगत्यौ कुरुते ।।२१।।

हिन्दी—यः एवं विद्वान् जो इस प्रकार (पशुओं को जगती छन्द से सम्बन्धित) जानने वाला **जगत्यौ कुरुते** जगती छन्दस्क ऋचाओं की (पुरोनुवाक्या और याज्या करता है, वह **पशुमान् भवति** पशुओं से सम्पन्न होता है ॥

सा० भा०—अत्तुं योग्यमन्नं कामयमानस्य च्छन्दोन्तरं विधत्ते—

(अन्नकामस्य विराट्छन्दस्कयोर्विधानम्)

विराजावन्नाद्यकामः कुर्वीत ।।२२।।

हिन्दी— अन्नाद्यकामः अन्न की कामना करने वाला (यजमान) **विराजौ कुर्वीत** विराट् छन्दस्क दो (ऋचाओं) की (पुरोनुवाक्या और याज्या) करे ॥

सा० भा०—'प्रद्धो अग्न' 'इमो अग्न' इति द्वे[2] विराजौ ॥[3]

अन्नस्य विराजनहेतुत्वेन विराड्रूपत्वमाह—

---

(१) ऋ०सं० ५.११.१-२।

(२) ऋ०सं० ७.१.३,१८।

(३) 'प्रेद्धो अग्न' 'इमो अग्न' इति संयाज्ये विराजावित्युक्त एते प्रतीयात्' आश्व०श्रौ० २.१.३०।

अन्नं वै विराट् ।।२३।।

हिन्दी—क्योंकि **अन्नं वै विराट्** विराट् छन्द अन्न रूप होता है ।।

सा० भा०—तदेव स्पष्टयति—

तस्माद्यस्यैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति तद्विराजो विराट्त्वम् ।।२४।।

हिन्दी—**तस्मात्** इस (विराट् के अन्न रूप होने) के कारण **इह लोके** इस (लोक) में **यस्य भूयिष्ठम् अन्नं भवति** जिसके पास अधिक अन्न होता है, **सः एव** वही **भूयिष्ठं विराजति** अत्यधिक प्रतिष्ठित होता है। **तद् विराजः विराट्त्वम्** यही विराट् की विराटता है ।।

सा० भा०—यस्मादन्नस्य विराजनहेतुत्वं तस्मात् कारणादिह लोके यस्यैव पुरुषस्यान्नं प्रभूतं भवति स एव जनमध्येऽत्यन्तं शोभते तस्माद् विराजत्यनेनेति व्युत्पत्त्या विराट्शब्दो निष्पन्नः ।।

वेदनं प्रशंसति—

वि स्वेषु राजति, श्रेष्ठः स्वानां भवति य एवं वेद ।।२५।।

हिन्दी—**यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस विराट् की विराटता को) जानता है; वह **स्वेषु विराजति** अपनों में विराजमान रहता है और **स्वानां श्रेष्ठं भवति** अपने लोगों में श्रेष्ठ होता है ।।

सा० भा०—यः पुमान् विराजो महिमानं वेत्ति स पुमान् स्वकीयेषु ज्ञातिषु मध्ये विशेषेण राजति लौकिकसामर्थ्येन शोभते। तथा स्वीयानां ज्ञातीनां मध्ये वृत्तविद्याविनयादिभिः श्रेष्ठो भवति ।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य प्रथमाध्याये पञ्चमः खण्डः ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के प्रथम अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—काम्ये संयाज्ये नानाविधे विधाय नित्ये संयाज्ये विधातुं विराट्छन्दः प्रशंसति—

(नित्यसंयाज्याविधानम्)

(तत्र विराट्छन्दसः प्रशंसा)

अथो पञ्चवीर्यं वा एतच्छन्दो यद्विराट् ।।१।।

हिन्दी—(कामना वाले की पुरोनुवाक्या और याज्या को कहने के बाद नित्य पुरोनुवाक्या और याज्या का विधान करने के लिए विराट् छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् विराट् छन्दः** जो विराट् छन्द है, **एतत् पञ्चवीर्यम्** यह पाँच प्रकार की शक्तियों वाला होता है ।।

सा० भा०—अथो काम्यसंयाज्याकथनानन्तरं नित्ये संयाज्ये कथ्येते इति शेषः । विराडाख्यं यच्छन्दोऽस्ति एतच्छन्दः पञ्चविधवीर्योपेतत्वेन प्रसिद्धम् ।।

तदेव विस्पष्टयति—

यत्त्रिपदा तेनोष्णिहागायत्र्यौ यदस्या एकादशाक्षराणि पदानि तेन त्रिष्टुब् यत्त्रयस्त्रिंशदक्षरा तेनानुष्टुभ्, न वा एकेनाक्षरेण च्छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्यां, यद्विराट् तत्पञ्चमम् ।।२।।

हिन्दी—(उपर्युक्त कथन को स्पष्ट कर रहे हैं—) **यत् त्रिपदा** (विराट् छन्द) जो तीन पादों वाला होता है, **तेन** उस (तीन पादों वाला) होने से **उष्णिहागायत्र्यौ** उष्णिक् और गायत्री के समान होता है । **यद् अस्याः एकादशाक्षराणि पदानि** जो इस (विराट्) के ग्यारह अक्षर वाले पाद होते हैं **तेन** उस (पाद में ग्यारह अक्षरों के होने) से **त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् के समान होता है । **यत् त्रयस्त्रिंशाक्षरा** जो (यह छन्द) तैंतीस अक्षरों वाला होता है, **तेन** उससे **अनुष्टुप्** अनुष्टुप् के समान है क्योंकि **एकेन अक्षरेण** एक अक्षर से अथवा **द्वाभ्याम्** दो (अक्षरों) से (न्यून या अधिक होने पर) **छन्दांसि नैव वियन्ति** छन्द नहीं ही बदलता है । **यद् विराट्** जो विराट् है । **तत्पञ्चमम्** वही पञ्चम शक्ति है ।।

विमर्श—(१) विराट् छन्द के तीनों पादों में मिलाकर तैंतीस अक्षर होते हैं और अनुष्टुप् छन्द के चारों पादों में कुल मिलाकर बतीस अक्षर होते हैं किन्तु एक अथवा दो अक्षरों के कम अथवा अधिक होने होने से छन्द बदलाता नहीं है अतः तैंतीस अक्षरों वाला विराट् भी बत्तीस अक्षर वाले अनुष्टुप् के समान ही है ।

सा० भा०—यस्मात्कारणादियं विराट् पादत्रयोपेता तेन कारणेनोष्णिग्रूपा गायत्रीरूपा च भवति तयोरपि पादत्रयोपेतत्वेन समत्वादतस्तयोरुभयोर्वीर्यं विराज्यस्ति। यस्मात् कारणादस्या विराजः पादा एकादशाक्षरोपेतास्तेन कारणेनेयं त्रिष्टुब्रूपा भवति तदीयं वीर्यं प्राप्नोति । यस्मात्कारणादियं त्रयस्त्रिंशदक्षरोपेता तेन कारणेनानुष्टुब्रूपा तदीयं वीर्यं प्राप्नोति । यद्यप्यनुष्टुब् द्वात्रिंशदक्षरा तथाऽप्येकेनाक्षरेण न्यूनेनाधिकेन वा छन्दांसि नैव नश्यन्ति । तथा द्वाभ्यामक्षराभ्यां न्यूनाभ्यामधिकाभ्यां वा न नश्यन्ति । "एको हि दोषो गुणसंनिपाते निमज्जतीन्दोः

किरणेष्विवाङ्कः'' इति न्यायात्। नुन त्रिंशदक्षरा विराडिति श्रूयते तत्र 'प्रेद्धो अग्ने'[१] इत्यस्यामृचि एकोनत्रिंशदक्षराणि 'इमो अग्ने'[२] इत्यस्यामृचि द्वात्रिंशदक्षरापण्यतस्तयोर्न विराट्त्वमिति चेत्, मैवम्। न वा एकेनाक्षरेणेति वाक्येनैव परिहृतत्वात्[३]। यस्माद् विराट् तस्मादेतदीयं पञ्चमं वीर्यमस्ति॥

एवंविधविराड्वेदनं प्रशंसति—

सर्वेषां छन्दसां वीर्यमवरुन्धे, सर्वेषां छन्दसां वीर्यमश्नुते, सर्वेषां छन्दसां सायुज्यं सरूपतां सलोकतामश्नुतेऽन्नादोऽन्नपतिर्भवत्यश्नुते प्रजयाऽन्नाद्यं य एवं विद्वान् विराजौ कुरुते ।।३।।

हिन्दी—(उपर्युक्त प्रकार वाले विराट् की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार (उपर्युक्त तथ्य को) जानने वाला **विराजौ कुरुते** दो विराट् छन्दस्क (पुरोनुवाक्या और आज्या) करता है वह **सर्वेषां छन्दसाम्** (गायत्री इत्यादि) सभी छन्दों के **वीर्यम् अवरुन्धे** सामर्थ्य को अभिमुख कर लेता है, **सर्वेषां छन्दसाम्** सभी छन्दों के **वीर्यम् अश्नुते** बल को प्राप्त करता है और **सर्वेषां छन्दसाम्** सभी छन्दों के (देवताओं को) **सायुज्यं सरूपतां सलोकताम् अश्नुते** सहभाव, समानरूपता और समान स्थान में निवास को प्राप्त करता है। **अन्नादः अन्नपतिः भवति** अन्न को खाने वाला और अन्न का स्वामी होता है। **प्रजया अन्नाद्यं च अश्नुते** (पुत्रादि) प्रजा के साथ अन्न को प्राप्त करता है॥

सा० भा०—गायत्र्युष्णिक्त्रिष्टुबनुष्टुब्विराड्रूपाणां सर्वेषां छन्दसां यत्सामर्थ्यमस्ति तदयं वेदिताऽवरुन्धेऽभिमुखी करोति। कृत्वा चाश्नुते प्राप्नोति। तथा सर्वच्छन्दोभिमानि-देवानां सायुज्यं सहभावं सरूपतां समानरूपत्त्वं सलोकतामेकस्थाननिवासं च प्राप्नोति। अन्नादोऽन्नभक्षणसमर्थो नीरोगः। अन्नपतिर्बह्वन्नस्वामी भवति न केवलं स्वयमेव किन्तु स्वकीयया पुत्रादिप्रजया सहान्नाद्यमश्नुते॥

इत्थं छन्दः प्रशस्येदानीं विधत्ते—

(विराट्छन्दस्कयोः संयाज्ययोर्विधानम्)

तस्माद् विराजावेव कर्तव्ये ।।४।।

---

(१) ऋ०सं० ७.१.३।   (२) ऋ०सं० ७.१.१८।

(३) वस्तुतः त्रिंशदक्षरैव विराट् सर्ववेदप्रसिद्धा; तथा ह्याम्नातं तैत्तिरीयैः स्फुटम्—'त्रिंशदक्षरा विराट्'—इति तै०सं० २.५.१०.३। 'विराजो दिशः'—इति (४.५) च वैदिकछन्दः-सूत्रं तदनुगतम्। इह त्वाद्याया एकाक्षरन्यूनत्वेन छन्दःशास्त्रमते निचृदिति विशेषणान्वितं विराट्त्वम्, अपरायास्तु स्वराड्विशेषणान्वितमित्यभिप्रायः। पि० ६.१९,२०।

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **विराजौ एव कर्त्तव्ये** दो विराट् छन्दस्क (ऋचाओं) वाली (पुरोनुवाक्या और याज्या) करनी चाहिए ॥

सा० भा०—यस्माद् विराजो ह्युक्तमहिमाऽस्ति तस्मादित्यर्थः ॥

तयोः प्रतीकद्वयं दर्शयति—

(विराट्छन्दस्कमन्त्रप्रतीकद्वयम्)

प्रेद्धो अग्न इमो अग्न इत्येते ।।५।।

हिन्दी—(उस नित्य पुरोनुवाक्या और याज्या की विराट् छन्दस्क ऋचाओं को सङ्केतित कर रहे हैं—'प्रेद्धो अग्ने' और 'इमो अग्ने' ये विराट् छन्दस्क दो (ऋचाएँ हैं) ॥

विमर्श—(१) 'प्रेद्धो अग्ने' (ऋ०७.१.३) में उनतीस और 'इमौ अग्ने' (ऋ० ७.१.१८) में बत्तीस अक्षर है किन्तु एक अथवा दो अक्षरों की कमी अथवा अधिकता से छन्द नहीं बदलता–इस सिद्धान्त के अनुसार इनमें विराट् छन्द है ।

सा० भा०—इत्थं दीक्षणीयेष्टौ स्विष्टकृतः संयाज्ये विधाय दीक्षितस्य सत्यवदनं विधत्ते—

(दीक्षितस्य सत्यवदनविधानम्)

ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा तस्माद्दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम् ।।६।।

हिन्दी—(दीक्षणीयेष्टि में स्विष्टकृत् की दो संयाज्याओं का विधान करके यजन करने वाले दीक्षित के लिए सत्य बोलने का विधान कर रहे हैं—) **ऋतं वाव दीक्षा** ऋत ही दीक्षा है और **सत्यं दीक्षा** सत्य दीक्षा है । **तस्मात्** इस कारण से **दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्** दीक्षित व्यक्ति को सत्य ही बोलना चाहिए ॥

सा० भा०—मनसा यथा वस्तुचिन्तमृतशब्दाभिधेयं वाचा यथावस्तुकथनं सत्यशब्दाभिधेयं तदुभयात्मिका दीक्षा तद्वैकल्ये विनश्यति । यस्मादेवं तस्माद्दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यं न तु किंचिदप्यनृतं वदेत् ॥[1]

---

(१) 'मानसमर्थतथात्वम् ऋतम् । वाचिकमर्थतथात्वं सत्यम् । तदुभयहेतुका दीक्षा भवति । तद्धेतुत्वात् ताच्छब्द्यम् । तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम् इति मनः पूर्वरूपं वागुत्तररूपम्' इति मनोऽप्यतथ्यं मनुष्याणां किं पुनर्वागिति प्रतिपादनार्थम् ऋतत्वमन्तरेण वाचः सत्यत्वाभावात् सत्यग्रहणमेवं कृतं न त्वनृतं ज्ञातव्यम्' इति भट्टभास्करः' ।

'यथार्थवादित्वम् ऋतम् । यथादृष्टार्थवादित्वं सत्यम् । अनयोर्दीक्षास्थित्यर्थत्वाद् दीक्षासामानाधिकरण्यम् । तत्र यथार्थवादित्वस्यानुष्ठातुमशक्यत्वाद् यथादृष्टार्थवादित्वमेव विदधाति—तस्माद् दीक्षितेनेति'–इति गोविन्दस्वामी ।

तु० श०ब्रा०–१.१.१.४ : सत्यम् इव देवा अनृतं मनुष्याः ।

तदशक्याभिधानमित्यभिप्रेत्यानुजिघृक्षया प्रकारान्तरं विधातुं प्रस्तौति—

अथो खल्वाहुः कोऽर्हति मनुष्यः सर्वं सत्यं वदितुं, सत्यसंहिता वै देवा अनृतसंहिता मनुष्या इति ।।७।।

हिन्दी—(सत्य बोलने के विषय में कुछ याज्ञिकों का कथन—) **अथो खलु आहुः** अब (इस सत्य बोलने के विषय में कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं—**सर्वं सत्यं वदितुम्** सम्पूर्ण सत्य बोलने के लिए **कः मनुष्यः अर्हति** कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है (अर्थात् कोई नहीं) क्योंकि **सत्यसंहिता वै देवाः** देवता ही सत्य से युक्त होते है और **अनृतसंहिताः मनुष्याः** मनुष्य असत्य से युक्त होते हैं ॥

सा० भा०—प्रकारान्तरप्रारम्भार्थोऽयमथोशब्दः । ब्रह्मवादिन एवमाहुः खलु मनुष्यः को नाम सर्वं वाक्यं सत्यं वदितुमर्हति न कश्चिदपि तथा कर्तुं शक्नोति। देवा एव सत्यसंहिताः सत्ये तात्पर्यवन्तः मनुष्यास्तु प्रायेणानृते तात्पर्ययुक्ताः इतिशब्दो ब्रह्मवादिवचनसमाप्त्यर्थः ॥

इदानीं सत्यवदनफलसिद्ध्यर्थं प्रकारान्तरं विधत्ते—

विचक्षणवतीं वाचं वदेत् ।।८।।

हिन्दी—(अब सत्य बोलने के फल की प्राप्ति के लिए प्रकारान्तर का विधान कर रहे हैं—) **विचक्षणवतीं वाचं वदेत्** विचक्षण-सम्पन्न वाणी को बोलना चाहिए ॥

सा० भा०—विचक्षणेत्यक्षरचतुष्टयात्मकोऽयं मन्त्रस्तद्युक्तं वाक्यं प्रयुञ्जीत । देवदत्त विचक्षण गामानय यज्ञदत्त विचक्षण गां बधानेत्येवं तत्प्रयोगः । यदाहाऽऽपस्तम्बः—'चनसित विचक्षण इति नामधेयान्तेषु दधाति, चनसितेति ब्राह्मणं, विचक्षणेति राजन्यवैश्यौ'[१] इति ॥

विचक्षणेति मन्त्रस्य सत्यवदनपूर्तिहेतुत्वं प्रतिपादयति—

(विचक्षणशब्दस्य चक्षुःपर्यायत्वम्)

चक्षुर्वै विचक्षणं वि ह्येनेन पश्यतीति ।।९।।

हिन्दी—(विचक्षण को बतला रहे हैं—) **चक्षुः वै विचक्षणम्** नेत्र ही विचक्षण है **अनेन हि विपश्यति** क्योंकि इस (नेत्र) द्वारा ही (वस्तुवत्त्व को) विशेष रूप से देखता है ॥

सा० भा०—चक्षुरिन्द्रियमेव विचक्षणशब्दवाच्यं तदेव स्पष्टीक्रियते । चक्षिङ्दर्शन

---

(१) आप०श्रौ०सू० १०.१२.७,८। 'चनसितं विचक्षणमिति च प्रातिपदिकनिर्देशः। न विभक्तिर्विवक्षिता । एतद्दर्शयति—'चनसितेति ब्राह्मणम्'—आमन्त्रयेतेति शेषः । आमन्त्रयेतेत्येव भारद्वाजः । तद्यथा—देवदत्त चनसित, मित्रपाल विचक्षण ।'' इति तट्टीका। 'विचक्षण-चनसिनवती वाचम्' इति कात्या०श्रौ० ७.५.७।

इत्यस्माद्धातोरयं शब्दो निष्पन्नः। तथा सति विशेषेण वस्तुतत्वमेनेनाऽऽचष्टे पश्यतीति विचक्षणं नेत्रम्। तस्माच्चक्षुर्विचक्षणमिति पर्यायौ। उक्तनिर्वचनप्रदर्शनार्थ इतिशब्दः ॥

अस्त्वेवं तयोः पर्यायत्वं कथमेतावता सत्यसम्पूर्तिसिद्धिरित्याशङ्क्याऽऽह—

एतद्ध वै मनुष्येषु सत्यं निहितं यच्चक्षुः ॥१०॥

हिन्दी—यत् चक्षुः जो नेत्र है, **एतद् वै** यह ही **मुनष्येषु सत्यं निहितम्** मनुष्यों में सत्य रूप से निहित है ॥

सा० भा०—प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणानां[१] मध्ये प्रत्यक्षप्रमितिसाधनं यच्चक्षुरिन्द्रियमस्ति एतदेव मनुष्येषु सर्वेषु सत्यं निहितं यथावस्तुज्ञानसाधनत्वेनाभिमतं तस्माच्चक्षुष्पर्यायविचक्षणशब्दप्रयोगेण सत्यसम्पूर्तिर्भवति ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां चक्षुषो यथावस्तुदर्शनसाधनत्वं साधयति—

तस्मादाचक्षाणमाहुरद्रागिति स यद्यदर्शमित्याहाथास्य श्रद्दधति यद्यु वै स्वयं पश्यति न बहूनां चनान्येषां श्रद्दधाति ॥११॥

हिन्दी—(अन्वय-व्यातिरेक के द्वारा नेत्र की ही यथावस्तु दर्शन की साधनता को सिद्ध कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **आचक्षाणम् आहुः** (किसी बात को) कहने वाले (व्यक्ति) से लोग कहते हैं कि **अद्राग् इति** क्या तुमने देखा है? **सः यदि अदर्शम् इति आह** वह (बात का कहने वाला) यदि कहे कि हाँ, मैंने देखा है, **अथ अस्य श्रद्धधति** तो उसमें लोग विश्वास कर लेते हैं। **यदि उ वै स्वयं पश्यति** अथवा यदि वह स्वयं देखता है तो **न बहूनाम् च** न तो बहुत लोगो का और **न अन्येषाम्** न अन्य लोगों का **श्रद्दधाति** विश्वास करता है ॥

सा० भा०—यस्माच्चक्षुषस्तत्त्वदर्शनहेतुत्वं मनुष्याणामभिप्रेतं तस्माल्लोके सभायामागत्य काञ्चिद्वार्तामाचक्षाणं पुरुषं प्रति सभ्या एवमाहुरद्रागिति किंत्वेवमेवाद्राक्षीरित्यर्थः। स च पुरुषो यद्यहमेवाद्राक्षमिति ब्रूयात्तदाऽस्य वचनं सत्यमिति सभ्याः सर्वे श्रद्दधति विश्वासं कुर्वन्ति। तदिदमेकमुदाहरणम्। 'यद्यु वा' इत्ययं निपातसमूह उदाहरणान्तरप्रदर्शनार्थं। अथवा कश्चित् पुमान् स्वयमेव चक्षुषा स्कन्धमूलाद्युपेतं स्थाणुं पश्यति। अन्ये बहवः पुरुषा दूरवर्तिनाऽपश्यन्तः पुरुषोऽयमित्याचक्षते। चनशब्दोऽपिशब्दार्थः। बहूनामप्यन्येषां वचनमयं पुरुषो न श्रद्दधाति किंतु स्वकीयं चाक्षुषं दर्शनमेव श्रद्दधाति। वाजसनेयिनोऽप्यामनन्ति—'द्वौ विवदमानावेवाऽऽयातावहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति,

---

(१) 'स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानश्चतुष्टयम्'—इति तै०आर० १.२.१। 'तदेतत् स्मृत्यादिचतुष्टयमवगतिकारणभूतं (धर्मस्य) प्रमाणम् —इति तद्भाष्यम् सा०। 'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि'—इति गौ०सू० १.१.३।

तस्मा एव श्रद्दध्याम'[१] इति। तैत्तिरीयाश्चाऽऽमनन्ति—'अनृतं वै वाचा वदति। अनृतं मनसा ध्यायति। चक्षुर्वै सत्यम्। अद्रागित्याह। अहमदर्शमिति। तत्सत्यम्'[२] इति ॥

तथाविधचक्षुःपर्यायस्य विचक्षणशब्दस्य सत्यसम्पूर्तिहेतुत्वमुपपाद्य पूर्वोक्तं विधिमुपसंहरति—

तस्माद् विचक्षणवतीमेव वाचं वदेत् सत्योत्तरा हैवास्य वागुदिता भवति भवति ॥१२॥

हिन्दी—(उक्त कथन का उपसंहार का रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **विचक्षणवतीम् एव वाचं वदेत्** विचक्षण सम्पन्न वाली ही बोलना चाहिए। **अस्य** इस (सत्य बोलने वाले) की **सत्योत्तरा ह एव वाग्** सत्य से इतर (असत्य) वाणी भी **उदिता भवति** सत्य ही हो जाती है ॥

सा० भा०—'अस्य' विचक्षणशब्दोपेतवचनवादिनो[३] या वागस्ति सा सत्योत्तरा स्वरूपेणानृताऽपि विचक्षणेतिमन्त्रसामर्थ्येन सत्यभूयिष्ठैव भवति। अनृतदोषो न स्पृशतीत्यर्थः।[४] भवतिशब्दस्याभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः ॥[५]

---

(१) शत० ब्रा० १.३.१.२७। चक्षुषा वै सम्राट् पश्यन्तमाहुरद्राक्षीरिति स आहाद्राक्षमिति तत् सत्यं भवति'—इति च पुनस्तत्रैवोपरिष्टात् १४.६.१०.९; बृ०उप० ४.१.४।

(२) तै० ब्रा० १.१.४.२। 'नानृतं वदेत्'—इति (तै०सं० २.५.५.६) विधौ विचारितं च मीमांसायाम् जै०सू० ३.४.१२,१३। तदधिकरणं चोद्धृतं सव्याख्यानं तत्रैव तैत्तिरीयसंहिताभाष्ये सायणेन 'अनृतं न वदेदेषः पुंधर्मो वानुवादगी—इत्यादि जै०न्या०वि० ३.४.४।

(३) सामाश्रमीमते तु 'विलक्षणवतीमेव वाचं वदेत्' इत्यस्य वचनस्य हि दृष्टविषयमात्रकथन-विधानेऽदृष्टविषयकथननिषेधे च तात्पर्यम्। विचक्षणेतिमन्त्रयुक्तमिथ्याकथनोऽपि न दोषः इति नाभिप्रेतो ब्राह्मणकृत इति। चनसितविक्षणान्वितनामधेयग्रहणस्य विधानं तु इतः पृथक् (आप०श्रौ० १०.१३.७,८; कात्या०श्रौ ७.५.७। लाट्या०श्रौ० ३.३.१४) दीक्षितधर्मान्तरमिति दिक्।

(४) 'सत्यस्य चक्षुषो वाचकस्य विचक्षणशब्दस्य मन्त्रस्थानीयस्य प्रयोगेण परस्य सत्यस्य वस्तुनः स्मरणात् सत्योत्तरैव वागनेनोदिता भवति। सत्यप्यसत्यवदने तेन दोषेण न लिप्यते। यद्वा परवस्तुस्मरणमहिम्ना क्वचिदप्यसत्यवाङ् नोत्पद्यते'—इति भट्टभास्करः।

(५) दीक्षणीयेष्टिरेव सर्वेष्टिरेवमूलम्। वक्ष्यति हि 'दीक्षणीयेष्टिस्तायते तामेवानु याः काश्चेष्टयस्ताः सर्वा अग्निष्टोममपियन्ति'—इति (३.४.२) सैषा प्रथमेष्टिः शत०ब्रा० ३ ये काण्डे प्रथमाध्यायतो द्वितीयाध्यायीय-द्वितीयब्राह्मणान्तं यावच्छ्रूयते; तैत्तिरीये सांहितिक-ब्राह्मणो च ६.१.१-४। एवं-आश्व० श्रौ० ४.२. १-१७। आप० श्रौ० १०.४-२०। कात्या०श्रौ० ७.१म कण्डिकातः ५म देवेन दीक्षितधर्माश्च कतिचिद् सङ्गृह्य प्रदर्शिताः ॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्ये प्रथमपञ्चिकायां प्रथमाध्याये षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के प्रथम अध्याय के षष्ठ खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य प्रथमपञ्चिकायाः प्रथमोध्यायः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के प्रथम अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ प्रथमपञ्चिकायाम्
द्वितीयोऽध्यायः
अथ प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—प्रथमे दीक्षणीयेष्टिस्तत्स्तुतिस्तत्र संस्कृतिः ।
याज्यानुवाक्ये संयाज्याः सत्योक्तिश्चेति वर्णिता ।।१।।

अथ प्रायणीयादिकं[1] विधातुं द्वितीयोऽध्याय आरभ्यते । तत्राऽऽदौ प्रायणीयशब्दार्थं वदति—

(प्रायणीयादिकविधानम्)

(तत्र प्रायणीयेष्टिविधानम्)

स्वर्गं वा एतेन लोकमुपप्रयन्ति यत्प्रायणीयस्तत्प्रायणीयस्य प्राय-णीयत्वम् ।।१।।

हिन्दी—(अब प्रायणीयेष्टि का विधान कर रहे हैं । सर्वप्रथम प्रायणीय शब्द का अर्थ कर रहे हैं—) **यत् प्रायणीयः** जो प्रायणीय कर्म किया जाता है, **एतेन** इस (प्रायणीय कर्म) के द्वारा **स्वर्गं लोकम् उपप्रयन्ति** स्वर्ग लोक की समीपता को प्राप्त करते हैं, वही **प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम्** प्रायणीय (कर्म) की सामीप्य-प्राप्ति का हेतुभूत होने के कारण प्रायणीयता है ।

सा० भा०—प्रायणीयाख्यो यः कर्मविशेषोऽस्त्येतेन यजमानाः स्वर्गं लोकं सामीप्येन प्राप्नुवन्ति। तस्मात् प्रयन्त्यनेनेति व्युत्पत्त्या तत्प्रायणीयनाम सम्पन्नम् ।।

अथ विधास्यमानौ प्रायणीयोदयनीयाख्यौ कर्मविशेषौ स्तस्तौ सह प्रशंसति—

(प्रायणीयोदयनीययोरिष्ट्योः प्रशंसनम्)

प्राणो वै प्रायणीय उदान उदयनीयः समानो होता भवति; समानौ हि प्राणोदानौ; प्राणानां क्लृप्त्यै प्राणानां प्रतिप्रज्ञात्यै ।।२।।

---

(१) 'दीक्षान्ते प्रायणीयम्' का०श्रौ० ७.५.१३। 'दीक्षान्ते राजक्रयः । तदहः प्रायणीयेष्टिः' आश्व०श्रौ० ४.२.१८; ३.१ । दीक्षाहःसु परिसमाप्तेषु अनन्तरं यदहः, तस्मिन्नहनि राजक्रयः कर्त्तव्यः; सोमः क्रेतव्य इत्यर्थः । यस्मिन्नहनि सोमः क्रेष्यते, तदहः प्रायणीयानामेष्टिः कार्या'—इति तट्टीका गा०ना० ।

हिन्दी—(अब प्रायणीय और उदयनीय कर्म की प्रशंसा कर रहे हैं—) **प्राणः वै प्रायणीयः** प्राण ही प्रायणीय और **उदानः उदयनीयः** उदान ही उदयनीय है। **समानः होता भवति** (इन दोनों कर्मों में याज्या और पुरोनुवाक्या करने वाला) होता समान है। **समानौ वै प्राणोदानौ** क्योंकि प्राण और उदान-दोनों (एक ही वायु-विशेष होने के कारण) समान हैं (अतः प्रायणीय और उदयनीय दोनों कर्म) **प्राणानां क्लृप्त्यै** प्राण-वायु की कार्य-क्षमता के लिए और **प्राणानां प्रतिप्रज्ञात्यै** प्राणवायु के प्रकृष्ट ज्ञान के लिए होते हैं।

सा० भा०—प्राणवायोः प्रायणीयकर्मणश्च प्रशब्दसाम्यादभेदः। उदानवायोरुदय-नीयकर्मणश्चोच्छब्दसाम्यादभेदः। किञ्च प्राणीयोदयनीययोः कर्मणोर्याज्यानुवाक्यादिप्रयोगार्थ-मेक एव होता भवति। प्राणोदानवायू चैकदेहवर्तित्वादेकेन होत्राऽनुष्ठेयाभ्यां कर्मभ्यां समा-नावतो वायुविशेषयोश्चाभेदः।[१] तच्च कर्मद्वयानुष्ठानं प्राणवायूनां क्लृप्त्यै स्वस्वव्यापार-सामर्थ्याय भवति। तथा प्राणवायूनां प्रत्येकमयं प्राणोऽयमुदान इत्यादिविशेषस्य प्रज्ञानाय भवति। तस्मात् कर्मद्वयं प्रशस्तमित्यर्थः[२]॥

अथ देवताविशेषविधानायाऽऽख्यायिकामुपक्रमते—

(प्रायणीयेष्टिविधानार्थमाख्यायिका)

यज्ञो वै देवेभ्य उपक्रामत् ते देवा न किञ्चनाशक्नुवन्। कर्तुं न प्राजानंस्तेऽब्रुवन्नदितिं त्वयेमं यज्ञं प्रजानामेति सा तथेत्यब्रवीत् सा वै वो वरं वृणा[३] इति, वृणीष्वेति; सैतमेव वरमवृणीत मत्प्रायणा यज्ञाः सन्तु मदुदयना इति तथेति तस्मादादित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य[४] उदयनीयो वरवृतो ह्यस्याः ॥३॥

हिन्दी—(अब देवता-विशेष के विधान के लिए आख्यायिका का उपक्रम कर रहें हैं—) **यज्ञः वै** यज्ञ (सोमयाग किसी कारणवशात् अपरक्त होकर) **देवेभ्यः उपक्रामत्**

---

(१) प्राणन्ति जीवितुमारभन्तेऽनेनेति प्राणः। प्रयन्ति स्वर्गं गन्तुं प्रारभन्तेऽनेनेति प्रायणीयः। एवं व्युत्पत्त्यादिसाम्यात् प्राणस्थानीयः प्रायणीयः। तथा उदनन्ति ऊर्ध्वं जीवन्त्यनेनेत्युदानः। उद्यन्ति ऊर्ध्वं स्वर्गं यन्ति प्राप्नुवन्त्यनेनेत्युदयनीयः। एवं व्युत्पत्त्यादिसाम्याद् उदान-स्थानीय उदयनीयः। यस्मादेवं तस्मात् प्रायणीयोदयनीययोः समान एक एव होता भवति'—इति भट्टभास्करः।

(२) द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये (यज्ञस्य) इति निरु० १३.१.७। 'शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यं बाहू प्रायणीयोदयनीयौ' शत०ब्रा० ३.२.३.२०। आतिथ्येष्टि तृतीयाऽध्याये वक्ष्यंति।

(३) वृङःकर्मण्यच्, वरणीयम्। वृणै, इट्, 'एते ऐ'-इति पा०सू० ३.४.९३।

(४) 'दित्यदित्या०'—पा०सू० ४.१.८५ इत्यनेन अदितेर्ण्यः।

देवताओं के समीप से दूर चल गया। **ते देवाः** वे देवतागण **न किञ्चन् अशक्नुवन्** कुछ भी नहीं कर सके और **कर्तुं न प्राजानन्** (यज्ञ) करने (की विधि) को जान भी नहीं सके। **ते अदितिम् अब्रुवन्** तब उन (देवताओं) ने अदिति से स्तुति किया कि **त्वया इमं यज्ञं प्राजानाम** (हे अदिति!) तुम्हारे अनुग्रह द्वारा इस यज्ञ को जानने में हम समर्थ होवें। **सा** तब उस (अदिति!) ने (देवताओं से) **तथा इति अब्रवीत्** ठीक है–इस प्रकार (स्वीकार करते हुए) कहा कि **वः वरं वृणै** मैं तुम लोगों से (एक) वर माँगती हूँ। (तब उन देवताओं ने कहा कि) **वृणीष्व** (अपना वर हम से) माँगो। फिर **सा एतमेव वरम् अवृणीत** उस (अदिति) ने यह वर माँगा कि **यज्ञाः** यज्ञ **मत्प्रायणाः** मुझ से ही प्रारम्भ होने वाले और **मदुदयनाः सन्तु** मुझ से ही समाप्त होवें। पुनः (देवताओं ने कहा कि) **तथा** ठीक है। **तस्मात्** इसी कारण **प्रायणीयः उदयनीयः चरुः** प्रारम्भ वाला और अन्त वाला चरु **आदित्यः भवति** अदिति से सम्बन्धित होता है (अर्थात् अदिति के लिए दिया जाता है), **वरवृतः हि अस्याः** क्योंकि यह इस (अदिति) द्वारा माँगा गया वर है।

सा० भा०—योऽयं यज्ञः सोमयागाभिमानी पुरुषः सोऽयं केनापि निमित्तेनापरक्तः सन् देवसकाशादुत्क्रम्य गतवान्। यज्ञपुरुषे गते सति ते देवाः किमपि यज्ञाङ्गं कर्तुं शक्तिरहितास्तदभिज्ञानरहिताश्चाभवन्। ततस्ते सर्वे समागत्यादितिं प्रार्थितवन्तो हेऽदिते त्वत्प्रसादेन वयमिमं यज्ञं कर्तुं ज्ञातुं च शक्ता भूयास्मेति। ततोऽदितिरङ्गीकृत्य ज्ञापयितुमुक्ता चरुरूपेणैतं वरमवृणीत ये सोमयागास्ते सर्वे मत्प्रायणा मदुपक्रमा मदुदयना मदवसानाश्च सन्त्विति तस्य वरस्य देवैरङ्गीकृतत्वात् प्रायणीयः प्रारम्भकालीनेष्टिगतश्चरुरदितिदेवताकः कर्तव्य उदयनीयः समाप्तिकालिनोऽपि चरुरदितिदेवताकः कर्तव्यः[१]। यस्मादस्या अदितेस्तादृशश्चरुर्वरेण प्रार्थितस्तस्मात्तथाऽनुष्ठानं युक्तम्।[२] तमिममर्थं तैत्तिरीयाश्चाऽऽमनन्ति—'देवा वै देवयजनमध्यवसाय दिशो न प्राजानंस्तेऽन्योन्यमुपाधावंस्त्वया प्रजानाम त्वयेति तेऽदित्या समध्रियन्त त्वया प्रजानामेति साऽब्रवीद् वरं वृणै मत्प्रायणा एव वो यज्ञा मदुदयना आसन्निति तस्मादादित्यः प्रायणीयो यज्ञात्तामादित्य उदयनयः'[३] इति ॥

अदितेर्वरान्तरं दर्शयति—

अथो एतं वरमवृणीत मयैव प्राची दिशं प्रजानाथाग्निना दक्षिणां सोमेन प्रतीचीं सवित्रोदीचीमिति ।।४।।

हिन्दी—(अदिति द्वारा माँगे गये अन्य वर को दिखला रहे हैं—) **अथो एतं वरम्**

---

(१) तदेवं प्रायणीयेष्ट्या सोमयाग आरभ्यते, उदयनीयेष्ट्या च स समाप्यते इति व्यक्तम्।

(२) अदितिदेवता 'अदितिरदीना देवमाता'—इत्यादिना, 'अदितिर्दाक्षायणिः'—इत्यादिना ४.४.२; ११.३.२ च निरुक्ते व्याख्याता। द्र०–तैत्ति०आर० १.८.२१।

(३) तै०सं० ६.१.५.१।

अवृणीत और (अदिति द्वारा) यह वर भी माँगा गया कि **मया एव प्राचीं दिशम्** तुम लोग मेरे द्वारा ही पूर्व की दिशा को **अग्निना दक्षिणाम्** अग्नि के द्वारा दक्षिण दिशा को, **सोमेन प्रतीचीम्** सोम के द्वारा पश्चिमादिशा को और **सवित्रा उदीचीम्** सविता के द्वारा उत्तर दिशा को **प्रजानाथ** प्रकृष्ट रूप से जानो।

सा० भा०—अथो अपि चेत्यर्थः। मयेत्यादिना वरः प्रपञ्च्यते। हे देवा यूयमिदं देवयजनं समीचीनमित्येव बहुधा विचारयन्तस्तदर्थं बहुषु देशेषु पर्यटन्तो दिग्भ्रमं प्राप्य प्राच्यादिदिशं न ज्ञातवन्तोऽतो भवता दिग्विशेषज्ञापनायाहमग्निः सोमः सविता चेत्येते चत्वारश्चतुर्षु देशेष्ववस्थिताः। तथा सति यत्राहमस्मि सा प्राची दिगित्येव मयैव प्राची दिशं बुध्यध्वम्। एवमग्न्यादिभिर्दक्षिणादयस्तिस्रो दिशो बोद्धव्याः। इत्येष द्वितीय वरः। एते देवा अनेन चरुणा तत्र यष्टुं योग्या इति तात्पर्यार्थः ॥[१]

तत्र प्रथमं यागं विधत्ते—

(प्रायणीयेष्टौ पूर्वदिशायां पथ्यदेवतायाः यजनम्)

पथ्यां यजति ॥५॥

हिन्दी—(उनमें प्रथम पथ्या नामक देवविशेष के याग को कह रहे हैं—) **पथ्यां यजति** वह (होता) पथ्या नामक देव-विशेष का यजन करता है।

सा० भा०—पथ्येति देवताया नामधेयम्।[२] यद्यपि शाखान्तरे—'पथ्यां' स्वस्ति यजति प्राचीमेव तया दिशं प्रजानाति'[३] इति पथ्या स्वस्तिरित्येतावन्नामधेयमाम्नातं तथाऽपि भीमशब्दवन्नामैकदेशेनात्र व्यवहारः। ननु पूर्वत्र मयैव प्राचीं दिशं प्रजानाथेत्यदितेर्वाक्य-माम्नातमिह तु पथ्यां यजतीत्युक्तौ पूर्वापरविरोध इति चेन्नायं दोषः। अदितिदेवताया एव पथ्यारूपं मूर्त्यन्तरमिति वक्तुं शक्यत्वात् ॥

उक्तं विधिमनूद्य प्रशंसति—

---

(१) अस्याः श्रुतेर्दिगुपदेशे एव वा स्यात् तात्पर्यम्।

(२) 'पथ्या स्वस्तिः'–पन्था अन्तरिक्षम्, तन्निवासात्'—इति, तन्निगमगत–'देवगोपा'–इत्येतत्पदस्य व्याख्यानाय च पुनः 'देवी गोप्त्री, देवान् गोपायत्विति देवा एनां गोपायन्त्विति वा—इति च निरु० ११.१३। 'देवाः–माध्यमिका द्युस्थाना वा रश्मयः'—इति च तट्टीका। तदित्थमन्तरिक्षस्थिता कल्याणसत्ता एव 'पथ्यास्वस्ति' इति, अवगम्यते।

(३) तै०सं० ६.१.५.२। द्र०–'पथ्या स्वस्तिरग्निः सोमः सवितादितिः' आश्व०श्रौ० ४.३.२; द्र०–आश्व०श्रौ० ६.१४.३।

'अदितेरेव खल्ववस्थान्तरम् उषोलक्षणं पथ्यास्वस्तिरुच्यते। पथि साध्वी पथ्या शोभनविभूतिहेतुः प्रजानां स्वस्तिः। यत्र चोषा उदेति सा प्राची भवति'–इति भट्टभास्करः।

यत्पथ्यां यजति तस्मादसौ पुर उदेति पश्चाऽस्तमेति[1] पथ्यां ह्येषोऽनुसञ्चरति ।।६।।

हिन्दी—(उक्त विधि को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् पथ्यां यजति** जो (पूर्व दिशा में) पथ्या नामक देवविशेष का यजन करता है **तस्मात्** इसी कारण **असौ पुरः उदेति** यह (आदित्य) पूर्व दिशा में उदित होता है और **पश्च अस्तम् एति** पश्चिम दिशा में अस्त होता है तथा **पथ्यां हि एषः अनुसञ्चरति** पथ्या नामक देवविशेष का अनुसरण करते हुए (दिन में) सञ्चरण करता है ॥

सा० भा०—यद्यस्मात् कारणात् पूर्वस्या दिश्यवस्थिता पथ्यां देवतां यजति तस्मात् कारणादसावादित्यः पुरः पूर्वस्यां दिश्युदेति पश्चात् पश्चिमायां दिश्यस्तमेति । हि यस्मात्कारणादेष आदित्यः पथ्याख्यां देवतामनुसृत्य संचरति तस्मात्पूर्वापरयोरुदयास्तमयावुपपन्नौ । न च पूर्वदिशः पथ्यासंबन्धेऽपि पश्चिमदिशः स नास्तीति वाच्यम् । उदयनीयायां पश्चिमदिशि पथ्याया यक्ष्यमाणत्वात् । द्वयोर्दिशोस्तत्संबन्धे सति आदित्यस्य तदनुसंचारो युक्तः ॥

दक्षिणदिग्वर्तिनोऽग्नेर्यागं विधत्ते—

(दक्षिणदिग्वर्तिनोऽग्नेर्यजनम्)

अग्निं यजति ।।७।।

हिन्दी—(दक्षिण दिशा में विद्यमान अग्नि के याग का विधान कर रहे हैं—) **अग्निं यजति** (वह होता दक्षिण दिशा में) अग्नि का यजन करता है ।

तं विधिमनूद्य प्रशंसति—

यदग्निं यजति तस्माद् दक्षिणतोऽग्र ओषधयः पच्यमाना आयन्त्याग्नेय्यो ह्योषधयः ।।८।।

हिन्दी—(उस विधि को कह कर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अग्निं यजति** (होता दक्षिण दिशा में) जो अग्नि का यजन करता है **तस्मात्** इसी कारण **दक्षिणतः अग्रे** (विन्ध्यपर्वत के) दक्षिण दिशा में पहले **पच्यमानाः ओषधयः** पकती हुई ओषधियाँ **आयन्ति** आती हैं, **आग्नेयः हि ओषधयः** क्योंकि ओषधियाँ अग्नि से सम्बान्धित होती हैं ।

सा० भा०—यस्मादत्र देवानां दिग्विशेषज्ञापनाय दक्षिणस्यां दिश्यवस्थितमग्निं यजति तस्मात् कारणाद्विन्ध्यपर्वतस्य दक्षिणभागे यवगोधूमचणकादिधान्यप्राचुर्यम्। तानि च धान्यानि माघफाल्गुनयोः पच्यन्त इति पश्चाद्भावीनि। दक्षिणदिग्भागे तु यवादिप्राचुर्याभावात्। प्राचुर्याणि च व्रीह्यादीनीति कार्तिकमार्गशीर्षयोः पच्यमानत्वादग्रे पाकोऽभिहितः। हि यस्मात्कारणादोषधयः आग्नेय्य आसां पाकस्याग्न्यधीनत्वात्। यथौदनरूपेण बाह्यपाकोऽ-

(१) 'पश्च पश्चा च छन्दसि'—इति पा०सू० ५.३.३३। इत्यनेन पश्चादर्थे निपातितः।

ग्न्यधीनं एवं बीजरूपेण सस्यपाकोऽपि तदन्तर्वर्त्यग्न्यधीन इति द्रष्टव्यम्। तस्मादग्निसंबन्धिन्यां दक्षिणस्यां दिश्यग्रे पाको युक्तः।

पश्चिमदिश्यवस्थितस्य सोमस्य यागं विधत्ते—

सोमं यजति ।।९।।

हिन्दी—(पश्चिम दिशा में विद्यमान सोम के यजन का विधान कर रहे हैं—) **सोमं यजति** (पश्चिम दिशा में होता) सोम का यजन करता है।

तं विधिमनूद्य प्रशंसति—

(पश्चिमदिग्वर्तिनः सोमस्य यजनम्)

यत्सोमं यजति तस्मात् प्रतीच्योऽप्यापो बहव्यः स्यन्दन्ते सौम्या ह्यापः ।।१०।।

हिन्दी—(उस विधि को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् सोमं यजति** (पश्चिम दिशा में) जो सोम का यजन करता है **तस्मात्** इसी कारण **प्रतीच्यः अपि आपः वहव्यः स्यन्दन्ते** पश्चिम की ओर जल (नादियाँ) अधिक बहती है। **सोम्याः हि आपः** क्योंकि जल सोम से सम्बधित होते हैं।

सा० भा०—यस्मादापः सोमसंबन्धिन्यः[१] सोमस्यामृतकिरणत्वात् तस्माद् बहव्य आपः प्रतीच्योऽपि प्रत्यङ्मुख्योऽपि सत्यः स्यन्दन्ते। पश्चिमसमुद्रसमीपे प्रवहन्तीनां नदीनां पश्चिमाभिमुखत्वदर्शनात्। सोमस्यात्र पश्चिमदिश्यवस्थितत्वेन तदीयानामपां तन्मुखत्वं युक्तम्।

उत्तरदिश्यवस्थितस्य सवितुर्यागं विधत्ते—

(उत्तरदिग्वर्तिनः सवितुर्यजनम्)

सवितारं यजति ।।११।।

हिन्दी— (उत्तर दिशा में सविता के याग का विधान कर रहे हैं—) **सवितारं यजति** (वह उत्तर दिशा में) सविता का यजन करता है।

तं विधिमनूद्य प्रशंसति—

यत्सवितारं यजति तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते ।।१२।।

हिन्दी—(इस विधि को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् सवितारं यजति**

---

(१) (i) अपो सौम्यत्वं सोमस्य वृष्टिहेतुतया। वृष्टिहेतुत्वं च सूर्यरश्मित्वात् सोमस्य। तथाहि श्रुतिः—'सुषुम्नः सूर्यरश्मिः'—इति गोविन्दस्वामी। (ii) 'सोममण्डलप्रभवत्वात् सर्वासामपाम्' इति भट्टभास्करः। (iii) इदमर्थे 'सोमाट्ट्यण्' पा०सू० ४.२.३०।

(उत्तर दिशा में) जो सविता का यजन करता है **तस्मात्** इसी कारण **उत्तरतः पश्चात्** उत्तर और पश्चिम से **अयं पवमानः भूयिष्ठं पवते** यह वायु अधिकता से चलता है **हि एषः** क्योंकि यह (वायु) **सवितृप्रसूतः पवते** सविता द्वारा प्रेरित होकर ही चलता है।

सा० भा०—सविता प्रेरको देवः सोऽत्र यस्मादुत्तरस्यां दिश्यवतिष्ठते तस्मात्तेन सवित्रा प्रेरितो वायुरुत्तरपश्चिमयोरन्तरालवर्तिन्यां वायव्यां दिशि भूयिष्ठं पवतेऽत्यधिकं सञ्चरति।

ऊर्ध्वदिग्वर्तिन्या अदितेर्यागं विधत्ते—

(ऊर्ध्वदिग्वर्तिन्यदितेर्यजनम्)

उत्तमामदितिं यजति ।।१३।।

हिन्दी—(ऊपर की दिशा में अदिति के याग का विधान कर रहे हैं—) **उत्तमाम् अदितिं यजति** ऊपर की दिशा में अदिति का यजन करता है।

सा० भा०—उत्तमां मूर्धावस्थितामित्यर्थः। अत एव तैत्तिरीया आमनन्ति—'पथ्यां स्वस्तिमयजन्प्राचीमेव तया दिशं प्रजानन्नग्निना दक्षिणां सोमेन प्रतीचीं सवित्रोदीचीमदित्योर्ध्वाम्'[१] इति।

उक्तं विधिमनूद्य प्रशंसति—

यदुत्तमामदितिं यजति तस्मादसाविमां वृष्ट्याऽभ्युनत्त्यभिजिघ्रति ।।१४।।

हिन्दी—(इस विधि को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् उत्तमाम् अदितिं यजति** जो ऊपर की ओर अदिति का यजन करता है **तस्मात्** इसी कारण **असौ इमां वृष्ट्या अभ्युनत्ति** वह (द्युलोक) इस (पृथिवी) को वर्षा द्वारा चारो ओर से गीला करता है और **अभिजिघ्रति** (ग्रीष्म में) चारो ओर से (जल को) सोख लेता है।

सा० भा०—यस्मादूर्ध्वदिग्वर्तिनां तस्मादूर्ध्वदिग्वर्तिनां द्यौरिमामधोवर्तिनीं स्वकीयया वृष्ट्याऽभ्युनत्ति सर्वतः क्लेदयति। पुनरपि घर्मकालेऽभिजिघ्रति भूमिगतं रसमाभिमुख्येनाऽऽदत्ते। अत्र पथ्यादीनां चतसृणां देवतानामाज्येन यागः। अदितेस्तु चरुणेति द्रष्टव्यम्। तदाह आपस्तम्बः—'चतुर आज्यभागान् प्रतिदिशं यजति पथ्यां स्वस्तिं पुरस्तादग्निं दक्षिणतः सोमं पश्चात् सवितारमुत्तरतो मध्येऽदितिं हविषा'[२] इति।।

यथोक्तदेवतागतां संख्यां प्रशंसति—

पञ्च देवता यजति पाङ्क्तो यज्ञः सर्वा दिशः कल्पन्ते कल्पते यज्ञोऽपि ।।१५।।

---

(१) तै०सं० ६.१.५.२। (२) आप०श्रौ० १०.२१.११।

हिन्दी—(इन देवताओं की संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) इस प्रकार **पञ्च देवताः यजति** (पथ्या, अग्नि, सोम, सविता और अदिति-इन) पाँच देवताओं का यजन करता है। **पङ्क्तो यज्ञः** (पाँच देवताओं वाला यह यज्ञ पाँच संख्या वाला है। **सर्वा दिशः** सभी (ऊर्ध्व को लेकर पाँच) दिशाएँ **कल्पन्ते** समर्थ होती हैं। इस प्रकार **यज्ञः अपि कल्पते** यज्ञ भी स्वप्रयोजन में समर्थ होता है।

सा० भा०—पथ्याद्यदित्यन्ताः पञ्च देवता यज्ञस्य पञ्चसंख्यायोगात् पाङ्क्तत्वं बहुधा वक्ष्यतेऽतां यज्ञे देवताविषया पञ्चसंख्या युक्ता। दिशोऽपि प्राच्याद्या ऊर्ध्वान्ताः पञ्चसंख्याकाः। अतो देवतागतपञ्चसंख्यया गताः सर्वा दिशः कल्पन्ते समर्था भवन्ति। पूर्वमविज्ञाताः सत्यो ज्ञाता भवन्तीत्यर्थः। यज्ञोऽप्यन्या कल्पते स्वप्रयोजनसमर्थो भवति॥

वेदनं प्रशंसति—

तस्यै जनताय कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति ॥१६॥

हिन्दी—(इस याग की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस याग में **एवं विद्वान् होता भवति** इस प्रकार जानने वाला होता रहता है **तस्य जनताय कल्पते** उस जन-समुदाय के लिए (वह होता) समर्थ होता है।

सा० भा०—यत्र यस्यां जनतायां याज्ञिकजनमूहे होता प्रायणीयदेवतानां वेदिता भवति तस्यां जनतायामयं होता स्वप्रयोजनसमर्थो भवति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेय-
ब्राह्मणभाष्यस्य द्वितीयाध्याये प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय अध्याय के प्रथम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

प्रायणीयेष्टिं विधाय तत्र प्रयाजानां काम्यप्रकारविशेषं विधत्ते—

(प्रयाजाहुतिरूपप्रायणीयाङ्गकर्मविधानम्)

(ब्रह्मवर्चसकामस्य प्रागपवर्गत्वम्)

यस्तेजो ब्रह्मवर्चसमिच्छेत् प्रयाजाहुतिभिः प्राङ्स इयात्, तेजो वै ब्रह्मवर्चसं प्राची दिक् ॥१॥

हिन्दी—(प्रायणीयेष्टि का विधान करके अब इस प्रयाजों के काम्यप्रकार विशेष का विधान कर रहे हैं—) **यः** जो (यजमान) **तेजः ब्रह्मवर्चसम् इच्छेत्** तेज और ब्रह्मवर्चस्

की कामना करें **सः** वह **प्रयाजाहुतिभिः** प्रयाज संज्ञक आहुतियों से **प्राङ् इयात्** पूर्वदिशा की ओर यजन करे क्योंकि **प्राची दिक्** पूर्व की दिशा **तेजः ब्रह्मवर्चसं वै** तेज और ब्रह्मवर्चस रूप वाली है।

सा० भा०—'समिधो यजति' तनूनपातं यजतीत्यादिना विहिताः पञ्च प्रयाजाहुतयः।[१] तासां प्रकृतावनुष्ठानप्रकार आपस्तम्बेन दर्शितः—'पञ्च प्रयाजान् प्राचो यजति। प्रतिदिशं वा समिधः पुरस्तात्तनूनपातं दक्षिणत इडः पश्चाद्बर्हिरुत्तरतः स्वाहाकारं मध्ये' इति।[२] स प्रकारोऽत्र चोदकप्राप्तस्तमपोह्य शरीरकान्तिश्रुताध्ययनसम्पत्तिं च कायमानस्य प्रकारान्तरं विधीयते। यः पुमांस्तेजो ब्रह्मवर्चसमिच्छेत् स पुमान् प्रयाजाहुतिभिः प्राङियात्। प्रागपवर्गास्ता आचरेदित्यर्थः। आदित्योदयेन प्राच्यास्तेजस्त्वं तदाभिमुख्येन गायत्रीजपानुष्ठानाद् ब्रह्मवर्चसत्वं च ॥

वेदनं प्रशंसति—

तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं विद्वान् प्राङेति ।।२।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं विद्वान्** जो इस तथ्य को जानने वाला **प्राङ् एति** पूर्व दिशा में जाता है वह **तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति** तेजवान् और ब्रह्मवर्चस् से सम्पन्न हो जाता है।

अन्नाद्यकामस्य दक्षिणापवर्गत्वं विधत्ते—

(अन्नाद्यकामस्य दक्षिणापवर्गत्वम्)

योऽन्नाद्यमिच्छेत् प्रयाजाहुतिभिर्दक्षिणा स इयादन्नादो वा एषोऽन्नपतिर्यदग्निः ।।३।।

हिन्दी—**यः अन्नाद्यम् इच्छेत्** जो अन्न की कामना करें **सः प्रयाजाहुतिभिः दक्षिणा इयात्** वह प्रयाज आहुतियों के साथ दक्षिण दिशा में यजन करें; क्योंकि **यद् अग्निः** जो अग्नि है, **एषः अन्नादः अन्नपतिः** यह अन्न खाने वाला और अन्न का स्वामी है।

सा० भा०—दक्षिणस्यां दिश्यवस्थितो योऽग्निः सोऽग्निरन्नादः। भक्षितस्यान्नस्योदराग्निना जीर्यमाणत्वात् संस्येष्ववस्थाय व्रीह्यादिपाकहेतुतत्वात् स्थाल्यादिष्ववस्थायौदनपाकहेतुत्वादन्नपतित्वम्। अतोऽन्नकामस्य दक्षिणापवर्गत्वं युक्तम् ॥

वेदनं प्रशंसति—

---

(१) समिधो यजति हेमन्तमेवावरुन्धे'-इति तै०सं० २.६.१.१। तन्मन्त्राः तै०ब्रा० ३.५.५ द्रष्टव्याः।

(२) आप०श्रौ० २.१७.१.२।

अन्नादोऽन्नपतिर्भवत्यश्नुते प्रजयाऽन्नाद्यं य एवं विद्वान् दक्षिणैति ।।४।।

हिन्दी—यः एवं विद्वान् जो इस प्रकार जानने वाला **दक्षिणा एति** दक्षिण दिशा में जाता है, वह **अन्नादः अन्नपतिः भवति** अन्न को खाने वाला और अन्न का स्वामी होता है तथा **प्रजया अन्नाद्यम् अश्नुते** (पुत्रादि) प्रजा के साथ अन्न को प्राप्त करता है।

पशुकामस्य प्रत्यगपवर्गत्वं विधत्ते—

(पशुकामस्य प्रत्यगपवर्गत्वम्)

यः पशूनिच्छेत् प्रयाजाहुतिभिः प्रत्यङ् स इयात् पशवो वा एते यदापः।।५।।

हिन्दी— यः पशून् इच्छेत् जो पशुओं की कामना करें **सः प्रयाजाहुतिभिः प्रत्यङ् इयात्** वह प्रयाजाहुतियों के साथ पश्चिम दिशा की ओर यजन करे; क्योंकि **यद् आपः** जो जल हैं **एते पशवः एव** ये पशु रूप वाले हैं।

सा० भा०—प्रत्यग्दिश्यवस्थितस्य सोमस्य संबन्धिन्य आप इति पूर्वमुक्तं तासां चापां पानद्वारेण तृणोत्पादनद्वारेण वा पशूपकारित्वात् पशुत्वमतः पशुकामस्य तथाविधप्रत्यगपवर्गत्वं युक्तम्।।

वेदनं प्रशंसति—

पशुमान् भवति य एवं विद्वान् प्रत्यङ्ङेति ।।६।।

हिन्दी—यः एवं विद्वान् जो इस प्रकार जानने वाला **प्रत्यङ् एति** पश्चिम दिशा की ओर जाता है वह **पशुमान् भवति** पशुसम्पन्न होता है।

अहीनाद्युत्तरक्रतुषु सोमपानं कामयमानस्योत्तरापवर्गत्वं विधत्ते—

(सोमपानकामस्योत्तरापवर्गत्वम्)

यः सोमपीथमिच्छेत् प्रयाजाहुतिभिरुदङ् स इयादुत्तरा ह वै सोमो राजा ।।७।।

हिन्दी—यः सोमपीथम् इच्छेत् जापे सोम पान करने की कामना करे **सः प्रयाजाहुतिभिः** वह प्रयाजाहुतियों के साथ **उदङ् इयात्** उत्तर दिशा की ओर यजन करे; क्योंकि **उत्तरा ह वै सोमो राजा** राजा सोम (उत्तर दिशा में उत्पन्न होने के कारण) उत्तर दिक् रूप हैं।

सा० भा०—यः सोमवल्लीरूपो राजमानत्वेन राजा तस्योत्तरस्यां दिशि प्रभूतत्वात् तद्रूपत्वमतः सोमपानद्वाराऽस्योत्तरापवर्गत्वं युक्तम्।।

वेदनं प्रशंसति—

प्र सोमपीथमाप्नोति य एवं विद्वानुदङ्ङेति ।।८।।

हिन्दी—**यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **उदङ् एति** उत्तर दिशा की ओर जाता है, यह **सोमपीथं प्राप्नोति** सोमपान को प्राप्त करता है।

स्वर्गकामस्याऽऽहवनीये प्रयाजहोमविधिमर्थवादेनोन्नयति—

(स्वर्गकामस्योर्ध्वापवर्गत्वम्)

स्वर्ग्यैवोर्ध्वा दिक्सर्वासु दिक्षु राध्नोति ।।९।।

हिन्दी—**स्वर्ग्यैव ऊर्ध्वा दिक्** ऊपर की दिशा स्वर्ग लोक के लिए है (अतः ऊपर की दिशा की भावना करते हुए आहवनीय के मध्य में प्रयाजाहुति द्वारा यजन करने वाला) **सर्वासु दिक्षु** सभी दिशाओं में **राध्नोति** समृद्ध होता है।

सा० भा०—येयमेर्ध्वा दिक्स्वर्गाय हितैव तस्मात् स्वर्गकाम ऊर्ध्वा दिशं भावयन्नाहवनीयमध्ये प्रयाजान् यजेतेत्यर्थः। यथा स्वर्गं प्राप्नोति तथा सर्वासु दिक्षु स समृद्धश्च भवत्यतः समृद्धिकामो मध्ये यजेतेत्यवगन्तव्यम्।।

वेदनं प्रशंसति—

सम्यञ्चो वा इमे लोकाः सम्यञ्चोऽस्मा इमे लोकाः श्रियै दीद्यति य एवं वेद ।।१०।।

हिन्दी— **सम्यञ्चः वै इमे लोकाः** ये (पृथिव्यादि) लोक (स्वोचित) भोग प्रदान करने वाले हैं। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, **अस्मै** इसके लिए **इमे सम्यञ्चः लोकाः** ये स्वोचित भोग प्रदान करने वाले लोक **श्रियै दीद्यति** सम्पत्ति के लिए प्रकाशित होते हैं।

सा० भा०—इमे भूरादयस्त्रयो लोकास्ते सम्यञ्चः स्वोचितभोगप्रदा अतो य एवमाहवनीयमध्ये होमं वेदास्मै यजमानाय भूरादय इमे लोकाः सम्यञ्चः स्वस्वोचितभोगप्रदाः सन्तः श्रियै धनधान्यादिसम्पदे दीद्यति प्रकाशन्ते।।

इत्थं काम्यान् प्रयाजहोमप्रकारान् विधाय पूर्वोक्तप्रायणीयदेवताः क्रमेण स्तोतुं प्रथमदेवतां प्रशंसति—

(पथ्यायागस्य प्रशंसनम्)

पथ्यां यजति यत्पथ्यां यजति वाचमेव तद्यज्ञमुखे संभरति ।।११।।

हिन्दी— पूर्वोक्त प्रायणीय देवताओं की क्रम से स्तुति करने के लिए प्रशंसा कर रहे हैं। उनमें प्रथम पथ्या नामक देवविशेष की प्रशंसा—) **पथ्यां यजति** पथ्या नामक देवविशेष का यजन करता है। **यत्पथ्यां यजति** जो पथ्या नामक देवता-विशेष का (प्रयाजाहुतियों से) यजन करता है **तत् यज्ञमुखे** वह सोमयाग के प्रारम्भ में **वाचमेव सम्भरति** (मन्त्ररूप) वाणी को ही सम्पादित करता है।

सा० भा०—पथ्याभिधां देवतां यजतीति पूर्वोक्तविधिरत्र स्मारितः प्रयाजविधिभिर्व्यवहितत्वात्। स्तोतव्यस्य स्मारणमपेक्षितम्। स्मारितस्य स्तुतावन्वेतुं पुनरनुवादः। पथ्यायागेन यज्ञमुखे सोमयागप्रारम्भे वाचमेव मन्त्ररूपा संभरति संपादयति। यतो यज्ञानुष्ठानरूपाय मार्गाय हिता पथ्या मन्त्ररूपा वाक्तादृश्यतः पथ्यायाग एव वाक्संपादनम्॥

अग्न्यादिकाश्चस्रो देवताः प्रशंसति—

(अग्निसोमादीनां प्रशंसनम्)

प्राणापानावग्नीषोमौ प्रसवाय सविता प्रतिष्ठित्या अदितिः ॥१२॥

हिन्दी—(अग्नि इत्यादि चारों देवताओं की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अग्निषोमौ प्राणापानौ** अग्नि और सोम प्राण और अपान हैं। **सविता प्रसवाय** सविता देव (यज्ञ कर्म की) प्रेरणा प्रदान करने के लिए तथा **अदितिः प्रतिष्ठित्यै** अदिति (पृथिवी पर) अवस्थान के लिए हैं।

सा० भा०—मुखनासिकाभ्यो बहिः संचरन्नुच्छ्वासरूपो वायुः प्राणः। स ह्यौष्ण्यं शरीरे जनयति। ततोऽग्नेः प्राणरूपत्वं प्रतिनिकृत्य मुखनासिकाभ्यामन्तःसंचरन् वायुरपानः। स च शरीरे शैत्यं जनयतीति निश्वासस्य सोमरूपत्वम्। सविता देवः प्रसवाय यज्ञकर्मणि प्रेरणायोपयुज्यते। अदितिभूमिः प्रतिष्ठित्यै स्थिरावस्थानायोपयुज्यते॥

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रथमां देवतां स्तौति—

पथ्यामेव यजति यत्पथ्यामेव यजति वाचैव तद्यज्ञं पन्थामपि नयति ॥१३॥

हिन्दी—(प्रकारान्तर से पथ्या नामक देवविशेष की प्रशंसा कर रहे हैं—) **पथ्यामेव यजति** पथ्या नामक देवविशेष का ही (प्रयाजाहुतियों से) यजन करता है। **यत् पथ्यामेव यजति** जो पथ्या नामक देवविशेष का ही यजन करता है **तद् यज्ञं पन्थामपि नयति** वह यज्ञ को (मन्त्र रूप वाणी से समीचीन अनुष्ठान के) पथ पर ले जाता है।

सा० भा०—अत्रैवकारः पूर्वोक्तस्तुतिविशेषः। तस्यायमर्थः—देवतान्तरं परित्यज्य प्रथमतः पथ्यामेव यजति। ईदृशं यजनं यदस्ति तत्तेन यजनेन मन्त्ररूपया वाचैव च क्रियमाणं यज्ञं वैकल्यपरिहारेण समीचीनमनुष्ठानमार्गं प्रापयति देवतान्तरस्य प्रथमयागे तु नैतत् सम्भवतीति॥

द्वितीयाद्या देवता प्रशंसति—

चक्षुषी एवाग्नीषोमौ प्रसवाय सविता प्रतिष्ठित्या अदितिः ॥१४॥

हिन्दी—(अग्नि इत्यादि अन्य देवताओं की प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) **अग्नीषोमौ** अग्नि और सोम **चक्षुषी** दोनों नेत्र रूप हैं तथा **सविता प्रसवाय** सविता देव

प्रेरित करने के लिए और **अदितिः प्रतिष्ठित्यै** अदिति स्थिर अवस्थान के लिए हैं।

सा० भा०—अग्निषोमयोस्तेजस्वित्वाद् दिग्विशेषज्ञानहेतुत्वाच्चक्षुरिन्द्रियरूपत्वम्। चतुर्थपञ्चमदेवतयोस्तु पूर्वोक्तस्तुतिरेव समीचीनेत्यभिप्रेत्य पुनस्तत्पाठः।।

अग्नीषोमयोश्चक्षुःस्वरूपत्वे कोऽतिशय इत्याशङ्क्याऽऽह—

चक्षुषा वै देवा यज्ञं प्राजानंश्चक्षुषा वा एतत्प्रज्ञायते यदप्रज्ञेयं तस्मादपि मुग्धश्चरित्वा यदैवानुष्ठ्या चक्षुषा प्रजानात्यथ प्रजानाति ।।१५।।

हिन्दी—(अग्नि और सोम की नेत्रहेतुता को कह रहे हैं—) **चक्षुषा वै देवाः** चक्षु द्वारा ही देवताओं ने **यज्ञं प्राजानन्** यज्ञ को जाना। **यद् अप्रज्ञेयम्** जो अप्रज्ञेय है **चक्षुषा वै** चक्षु द्वारा ही **एतत् प्रज्ञायते** वह जाना जाता है। **तस्मात्** इसी कारण (लोक में भी) **मुग्धः चरित्वा** दिग्भ्रमित (व्यक्ति भ्रमित) होकर **यदा एव** जिस समय **अनुष्ठ्या चक्षुषा प्रजानाति** अनुष्ठान रूप चक्षु से (दिग्वशेष को) जान लेता है **अथ** इसके बाद तब **प्रजानाति** (अपने उचित मार्ग को) जानता है।

सा० भा०—देवाः पुरा यज्ञपुरुष उत्क्रान्ते सत्यन्विष्य चक्षुषैव प्रज्ञातवन्तः। लोकेऽपि यद्वस्तु सहसा प्रज्ञातुमशक्यं तदेतच्चक्षुषैव प्रज्ञायते। तस्मादित्यादिना तदेवोदाह्रियते। यस्माद् दुर्ज्ञेयमपि चक्षुषा ज्ञातुं शक्यं तस्मादेव कारणाल्लोके मुग्धो दिङ्मोहं प्राप्तः पुरुषो वनेषु बहुधा चरित्वा 'यदैव' यस्मिन्नेव कालेऽनुष्ठ्या[1] केनापि प्रयत्नविशेषेण पर्वतारोहणादिरूपेण सूर्योदयादिरूपं दिग्विशेषलिङ्गं चक्षुषा प्रजानाति। अथ तदानीमेव ग्रामादिमार्गं प्रजानाति। तस्माच्चक्षुःस्वरूपाभ्यामग्नीषोमाभ्यां दिग्विशेषज्ञानं युक्तम्।।

अथादितेः प्रतिष्ठाहेतुत्वं प्रपञ्चयति—

(अदितेः प्रतिष्ठाहेतुत्वप्रशंसनम्)

यद्वै तद्देवा यज्ञं प्राजानन्नस्यां वाव तत्प्राजानन्नस्यां समभरन्नस्यै वै यज्ञस्तायतेऽस्यै क्रियतेऽस्यै संभ्रियत इयं ह्यदितिस्तदुत्तमामदितिं यजति यदुत्तमामदितिं यजति यज्ञस्य प्रज्ञात्यै स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै ।।१६।।

हिन्दी—(अब अदिति की प्रतिष्ठा-हेतुता को कह रहे हैं—) **यद्वै देवाः यज्ञं प्रजानान्** जिस समय देवताओं ने यज्ञ को जाना **तद् अस्यामेव प्राजानन्** उस (यज्ञ)

---

(१) शतपथव्याख्यायाम् 'अनुष्ठ्या = अनुक्रमेण'–इत्याह हरिस्वामी (१.४.२.१७; ५.१.६)। सायणेन तूक्तं तत्राऽपि 'अनुष्ठ्या = अनुष्ठानेन' –इति (२.१.२.१२)। वस्तुतो वेदेषु अनुष्ठी-अनुष्ठु-अनुष्ठा-अनुष्ठान-शब्दाः समानार्था इत्येव गम्यते। तत्रानुष्ठीशब्दस्य तृतीयैकवचने रूपमनुष्ठ्येति, अनुष्ठुशब्दस्यानुष्ठुयेति (ऋ०सं० ४.४.१४) च।

को इस (पृथिवी) पर ही जाना। **अस्यां सम्भरन्** इस (पृथिवी) पर (साधनों को) एकत्रित किया, **अस्यै वै यज्ञस्तायते** इसी (भूमि) पर यज्ञ का विस्तार किया जाता है, **अस्यै क्रियते** इसी पर (खेती) की जाती है और **अस्यै सम्भ्रियते** इसी पर (उस खेती के साधनों को) एकत्रित किया जाता है। **इयं हि अदितिः** यह (पृथिवी) ही अदिति रूप है। **तत् उत्तमाम् अदितिं यजति** इस लिए अन्त में अदिति का ही यजन करता है। **यद् उत्तमाम् अदितिं यजति** जो अन्त में अदिति का यजन करता है वह **यज्ञस्य प्रज्ञात्यै** यज्ञ के प्रकृष्ट ज्ञान के लिए और **स्वर्गस्य लोकस्य अनुख्यायै** स्वर्ग लोक के अवज्ञान के लिए होता है।

सा० भा०—पूर्वत्र चक्षुषा वै देवा यज्ञं प्राजानन्निति यदुक्तं तत्प्रज्ञानं यद्वै यस्मिन्नेव काले सम्पन्नं तत्तस्मिन् कालेऽस्यां वाव प्राजानन् भूमावेव यज्ञपुरुषं प्रज्ञातवन्तः। ततोऽस्यां भूमौ समभरन्यज्ञसाधनानि सम्पादितवन्तः। अस्यै वा अस्यामेव भूमौ समभरन्यज्ञसाधानानि सम्पादितवन्तः। अस्यै वा अस्यामेव भूमौ यज्ञस्तायते विस्तीर्यते। न केवलं यज्ञस्यैव भूमिराधारः किंतु लौकिकं कृष्यादिकमप्यस्यां क्रियते तत्साधनमप्यस्यां सम्पाद्यते। न च भूमेः प्राशस्त्ये सत्यदितेः किमायातमिति वाच्यम्। हि यस्मादियं भूमिरदितिः। तत् तस्माददितिमुत्तमां चरमदेवतां यजति। ईदृशं यजनं यदस्ति तत्क्रियमाणस्य यज्ञस्यादितिद्वारा देवेषु प्रज्ञानाय सम्पद्यते। तच्च देवप्रज्ञानं यजमानस्य स्वर्गलोकावगमाय भवति।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य द्वितीयाध्याये द्वितीयः खण्डः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय अध्याय के द्वितीय खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—प्रायणीयेष्टौ काम्यान् प्रयाजप्रकारान् विधाय देवताश्च प्रशस्य तासां देवतानां सम्बन्धिन्यौ याज्यानुवाक्ये क्रमेणाभिसंधातुं प्रस्तौति—

(प्रायणीयदेवतादिकविधानम्)

(तत्र याज्यानुवाक्यानिर्देशनम्)

देवविशः कल्पयितव्या इत्याहुस्ताः कल्पमाना अनु मनुष्यविशः कल्पन्त इति सर्वा विशः कल्पन्ते कल्पते यज्ञोपि ।। १ ।।

हिन्दी—(प्रायणीयेष्टि में काम्य प्रयाज प्रकारों का विधान करके और उसके देवताओं

की प्रशंसा करके उन देवताओं से सम्बन्धित याज्या और अनुवाक्या के क्रमशः अभिधान के लिए प्रस्तावित कर रहे हैं—) **देवविशः कल्पयितव्याः** (इस याग में) देवताओं में प्रजा (मरुत इत्यादि) की कल्पना करनी चाहिए–**इति आहुः** ऐसा (ब्रह्मवादी) कहते हैं। **ताः कल्यमानाः अनु** उन कल्पित (मरुत् इत्यादि प्रजा देवताओं) का अनुसरण करके **मनुष्यविशः कल्पन्ते** मनुष्यों की प्रजाएँ भी (उनके अनुग्रह से) सम्पादित की जाती हैं। इस प्रकार **सर्वाः विशः** सभी (देव और मनुष्य की) प्रजाएँ **कल्पन्ते** (यजमान की) सम्पादित होती हैं। (उनके सम्पादित होने पर द्रव्य-प्राप्ति से) **यज्ञः अपि कल्पते** यज्ञ भी सम्पादित होता है।

सा० भा०—विश इत्ययं शब्दः प्रजामात्रवाची वैश्यजातिविशेषवाचि वा। सन्ति हि देवेष्वपि जातिविशेषाः। अग्निर्बृहस्पतिश्च देवेषु ब्राह्मणौ। 'अग्ने महाँ असि ब्राह्मणभारत'[1]। 'ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिः' इति श्रुतेः।[2] क्षत्रियादिजातयस्तु सृष्टिप्रकरणे वाजसनेयिभिः स्पष्टमेवाऽऽम्नाताः—'तंच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत क्षत्रं यान्येतानि देवताक्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशानः' इति। 'स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वे देवा मरुतः' इति। 'तमथ शौद्रं वर्णमसृजत पूषणम्' इति।[3] एवमादित्यो वै दैवं क्षत्रमित्यादिकमुदाहार्यम्।[4] एवं सति देवेषु विशो वैश्य गतिरूपाः प्रजा मरुदादयो याः सन्ति ता अस्मिन् यागे कल्पयितव्याः संपादयितव्या इत्येवं ब्रह्मवादिन आहुः। कल्पमानाः संपन्नास्ता देवविशोऽनुसृत्य मनुष्यविशोऽपि तदनुग्रहात् संपद्यन्त इत्येवं दैव्यो मानुष्यश्च सर्वा विशो यजमानस्य संपद्यन्ते। तासु संपन्नासु द्रव्यलाभाद्यज्ञोऽपि कल्पते स्वप्रयोजनसमर्थो भवति॥

एतद्वेदनं प्रशंसति—

तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् होता भवति ॥ २॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (याग) में **एवं विद्वान् होता भवति** इस प्रकार जाने वाला होता रहता है, **तस्यै जनतायै कल्पते** (वहाँ) उन मनुष्यों के लिए (भी यज्ञ) सम्पादित करता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।

प्रथमं देवतायाः पुरोनुवाक्यां विधत्ते—

---

(१) तै०ब्रा० ३.५.३। तै०सं० २.५.९.१ तथा शत०ब्रा० १.४.२.२ व्याख्यानं द्रष्टव्यम्।
(२) तै०सं० २.२.९.१! 'ब्रह्म हि ब्राह्मणः' शत०ब्रा० ५.१.१.११; १३.१.५.३।
(३) शत०ब्रा० १४.४.२.२३-२५ = बृ०उप० १.४.११-१५।
(४) उपरिष्टादिहैव ७.४.२।

(प्रथमदेवतायाः पथ्यायाः पुरोनुवाक्या)

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वस्वित्यन्वाह ।।३।।

हिन्दी—(प्रथम देवता की पुरोनुवाक्या को बतला रहे हैं—) 'स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु' अर्थात् हे मरुत्! मरुदेश रूपी मार्गों में हमें जल प्रदान करके कल्याण करो' **इति अन्वाह** इस संकेतित ऋचा से (पथ्या नामक देवविशेष की पुरोनुवाक्या करनी चाहिए)।

सा० भा०—स एष प्रथमपादः कृत्स्नाया ऋचः प्रतीकग्रहणार्थः।[१]

अस्यामृचि देवविशां वाचकं मरुच्छब्दं दर्शयितुमवशिष्टं पादत्रयं पठति—

स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वरित नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातनेति ।।४।।

हिन्दी—(इस उपर्युक्त ऋचा में देवविश वाचक मरुत् शब्द को दिखलाने के लिए अवशिष्ट तीन पादों को पढ़ रहे हैं—) **अप्सु** जल में और **वृजने स्वर्वति** निर्जन स्वर्गयुक्त मार्ग में **स्वस्ति** हमारा कल्याण करे, **पुत्रकृथेषु योनिषु** पुत्र उत्पन्न करने वाली स्त्रियों में **नः स्वस्ति** हमारा कल्याण करे (अर्थात् गर्भ की रक्षा करें) और **रायेषु स्वस्ति मरुत दधातन** धनप्राप्ति में मरुत देव हमारा कल्याण करें तथा धारण करें।

सा० भा०—इतिशब्दो मन्त्रसमाप्त्यर्थः। मन्त्रस्यायमर्थः– हे मरुतो! नोऽस्माकं धन्वसु पथ्यासु मरुदेशरूपेषु मार्गेषु स्वस्ति दधातन जलप्रदानेन क्षेमं कुरुत। किञ्च सतीष्वप्यप्सु वृजने वर्जिते जनशून्ये स्वर्वति स्वर्गयुक्ते मार्गे स्वस्ति दधातन। यथा पुत्रकृथेषु पुत्रोत्पत्तिकरणेषु योनिषु कलत्रेषु नोऽस्माकं स्वस्ति दधातन तथा राये धनाय स्वस्त्यस्तु।[२]

अस्यामृचि मरुच्छब्दः कथमेतावता विशां कल्पनमित्याह—

मरुतो वै देवानां विशः, ता एवैतद्यज्ञमुखेऽचीक्लृपत् ।।५।।

हिन्दी—**मरुतः वै देवानां विशः** मरुत् देव ही देवताओं में प्रजा है **ताः एव** उन (मरुत) को ही **यज्ञमुखे अचीक्लृपत्** यज्ञ के प्रारम्भ में कल्पित किया जाता है।

सा० भा०—एतदैतेन मरुच्छब्दोपेतमन्त्रपाठेन यज्ञमुखे यज्ञप्रारम्भरूपे कर्मणि ता देवानां विशोऽचीक्लृपत् कल्पितवान् भवति।

छन्दोबाहुल्यमभिधाय प्रशंसति—

सर्वैश्छन्दोभिर्यजेदित्याहुः, सर्वैर्वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयंस्तथैवैतद्यजमानः, सर्वैश्छन्दोभिरिष्ट्वा स्वर्गं लोकं

---

(१) तथा च सूत्रम्–'ऋचं पादग्रहणे–इति आश्व०श्रौ० १.१.१७।

(२) ऋ० १०.६३.१५।

जयति ।।६।।

हिन्दी—(छन्द की बहुलता को कहकर उनकी प्रशंसा करते हैं—) **सर्वैः छन्दोभिः यजेत्** सभी छन्दों के द्वारा यजन करना चाहिए **इत्याहुः** ऐसा ब्रह्मवादी लोग कहते हैं, **सर्वैः छन्दोभिः इष्ट्वा** सभी छन्दों के द्वारा यजन करके **देवाः स्वर्गं लोकम् अजयन्** देवताओं ने स्वर्ग लोक को जीत लिया तथा उसी प्रकार **एतत् यजमानः** यह यजमान **सर्वैः छन्दैः इष्ट्वा** सभी छन्दों द्वारा यजन करके **स्वर्गं लोकं जयति** स्वर्ग लोक को प्राप्त कर लेता है।

सा० भा०—स्पष्टोऽर्थः।।

मन्त्रविशेषान् मन्त्रच्छन्दांसि च पञ्चानां देवानां क्रमेणोदाहरति—

(पञ्चदेवानां क्रमेण याज्यानुवाक्ये)

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठेति पथ्यायाः स्वस्तेस्त्रिष्टुभावग्ने नय सुपथा राये अस्माना देवानामपि पन्था-मगन्मेत्यग्नेस्त्रिष्टुभौ; त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा या ते धामानि दिवि या पृथिव्यामिति सोमस्य त्रिष्टुभावा विश्वदेवं सत्पतिं य इमा विश्वा जातानीति सवितुर्गायत्र्यौ सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं महीमू षु मातरं सुव्रतानामित्यदितेजगत्यौ ।।७।।

हिन्दी—(पाँचों देवताओं के लिए मन्त्र-विशेष और छन्द विशेष को क्रम से उदाहरित कर रहे हैं—) 'स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु' (यह अनुवाक्या) और 'स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठ' (यह याज्या) **इति** ये दो ऋचाएँ **पथ्यायाः स्वस्तेः** मार्ग के कल्याण के लिए **त्रिष्टुभौ** त्रिष्टुप् छन्द वाले हैं। 'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्' (यह अनुवाक्या) और 'आ देवानामपि पन्थामगन्म' (यह याज्या) **इति** ये दो ऋचाएँ **अग्नेः** अग्नि के लिए **त्रिष्टुभौ** त्रिष्टुप् छन्द वाली हैं। 'त्वे सोम प्रचिकितो मनीषा' (यह अनुवाक्या) और 'या ते धामानि दिवि या पृथिव्याम्' (यह याज्या) **इति सोमस्य त्रिष्टुभौ** ये दो ऋचाएँ सोम के लिए त्रिष्टुप् छन्दस्क है। 'आ विश्वदेवं सत्पतिं' (यह अनुवाक्या) और 'य इमा विश्वा जातानि' (यह याज्या) **इति सवितुः गायत्र्यौ** से दो ऋचाएँ सविता के लिए गायत्री छन्द वाली हैं। 'सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं (यह अनुवाक्या) और 'महीमू षु मातरं सुव्रतानाम् (यह याज्या) **इति अदितेः जगत्यौ** ये दो ऋचाएँ अदिति देव के लिए जगती छन्द वाली हैं।

सा० भा०—'स्वस्ति नः'[१] इत्यनुवाक्या। स्वस्तिरिद्धीति[२] याज्या। अग्ने नयेत्यनु-

---

(१) ऋ०सं० १०.६३.१५। (२) ऋ०सं० १०.६३.१६।

वाक्या।[3] आ देवानामिति[4] याज्या। त्वं सोमेत्यनुवाक्या।[5] या ते धामानीति[6] याज्या। आ विश्वदेवमित्यनुवाक्या।[7] य इमेति[8] याज्या। सुत्रामाणम्[9] इत्यनुवाक्या। महीमू ष्विति[10] याज्या।

नन्वत्र त्रीण्येव च्छन्दास्युक्तानि न तु सर्वाणीत्याशङ्क्याऽऽह—

एतानि वाव सर्वाणि च्छन्दांसि गायत्रं त्रैष्टुभं जागतमन्वन्यान्येतानि हि यज्ञे प्रतमामिव क्रियन्ते ।।८।।

हिन्दी—**गायत्रं त्रैष्टुभं जागतम्** गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती **एतानि वाव सर्वाणि छन्दांसि** ये ही तीन सभी (छन्दों में मुख्य) छन्द हैं **अन्यानि** अन्य (छन्द) **एतानि अनु** इनके अनुसारण करने वाले हैं **यज्ञे हि** क्योंकि यज्ञ में **प्रतमाम् इव कियन्ते** (ये ही) प्रचुर रूप से प्रयोग में लाये जाते हैं।

सा० भा०—मुख्यानि सर्वाणि च्छन्दांसि त्रीण्येव। इतराणि तु मुख्यान्यनुसृत्य वर्तन्ते। मुख्यत्वमेवैतानि हीत्यादिना स्पष्टीक्रियते। हि यस्मात्कारणादेतानि त्रीणि यज्ञे प्रतमामिव क्रियन्तेऽत्यन्तप्राचुर्येणैव प्रयुज्यते ततो मुख्यत्वम्।

एतद् वेदनं प्रशंसति—

एतैर्ह वा अस्य च्छन्दोभिर्यजतः सर्वैश्छन्दोभिरिष्टं भवति य एवं वेद ।।९।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है, वह **एतैः ह छन्दोभिः** इन्ही छन्दों के द्वारा **यजतः अस्य** यजन करते हुए इस (यजमान) के **सर्वैः छन्दोभिः** सभी छन्दो द्वारा **इष्टं भवति** यजन किया गया होता है।

सा० भा०—स्पष्टोऽर्थः।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य द्वितीयाध्याये तृतीयः खण्डः ।।३।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) ऋ०सं० १.१८.१।　　(२) ऋ०सं० १०.२.३।
(३) ऋ०सं० १.११.१।　　(४) ऋ०सं० १.९१.४।
(५) ऋ०सं० ५.८२.७।　　(६) ऋ०सं० ५.८२.९।
(७) ऋ०सं० १०. ६३ १०।
(९) वा०सं० २१.५। आश्व०श्रौ० ४.३.२। कात्या०श्रौ० १९.७.१६।

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—पञ्चानां देवतानां क्रमेण याज्यानुवाक्ये उदाहृते अथ संयाज्ये वक्तव्ये तत्राऽऽदौ तावदुदाहृता याज्यानुवाक्याः प्रशंसति—

(पथ्यादीनां पञ्चदेवानां क्रमेण संयाज्ये)

ता वा एताः प्रवत्यो नेतृमत्यः पथिमत्यः स्वस्तिमत्य एतस्य हविषो याज्यानुवाक्या एताभिर्वा इष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयंस्तथैवैतद् यजमान एताभिरिष्ट्वा स्वर्गं लोकं जयति ।।१।।

हिन्दी—(पाचों देवताओं के क्रम से अनुवाक्या और याज्या को कहकर अब संयाजा को कहने लिए पहले उदाहरित अनुवाक्या और याज्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **एतस्य हविषः** इस (प्रायणीयेष्टि के) हविष के **ताः एताः वै याज्यानुवाक्याः** वे ये अनुवाक्या और याज्या हैं जो **प्रवत्यः नेतृमत्यः पथिमत्यः स्वस्तिमत्यः** 'प्र' शब्द से युक्त, नेतृ शब्द से युक्त, पथि शब्द से युक्त और स्वस्ति शब्द से युक्त हैं। **एताभिः इष्ट्वा** इन (मन्त्रों) से यजन करके **देवाः** देवताओं ने **स्वर्गं लोकम् अजयन्** स्वर्गलोक को जीत लिया। **तथा** उसी प्रकार **एतद् यजमानः** यह यजमान **एताभिः इष्ट्वा** इन्हीं (मन्त्रों) से यजन करके **स्वर्गं लोकं जयति** स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

सा० भा०—स्वस्ति नः पथ्यास्वित्याद्या महीमू षु मातरमित्यन्ता दशर्चो याः पूर्वमुदाहृतास्ता एवैताः प्रशब्द-नेतृशब्द-पथिशब्द-स्वस्तिशब्दवत्यः। तत्र प्रशब्दः स्वस्तिरिद्धि प्रपथे त्वं सोम प्रचिकित इत्यत्र श्रूयते। नेतृशब्दोऽग्ने नयेत्यत्र श्रूयते। नयतिधातोः। कर्तुस्तत्रावगमात्; पथिशब्दोऽग्ने नय सुपथा, आ देवानामपि पन्थामित्यत्र श्रूयते। स्वस्तिशब्दः स्वस्ति नः पथ्यासु स्वस्तिरिद्धीत्यत्र श्रूयते। तथा सति च्छत्रिन्यायेन सर्वा अप्येता ऋचः प्रादिभिः शब्दैर्युक्ता इति वक्तुं शक्याः। एवं सत्युत्कर्षद्योतकैरेतैः शब्दैर्युक्ता एता ऋचः प्रायणीयेष्टिगतस्य हविषो याज्यानुवाक्याः प्रशस्ता भवन्ति। एताभिर्वा इत्यादेरर्थो विस्पष्टः।।

प्रथमायामृचि चतुर्थ पादमादाय तत्रत्यस्य मरुच्छब्दस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यां तात्पर्यं दर्शयति—

तासु पदमस्ति स्वस्ति राये मरुतो दधातनेति मरुतो ह व देवविशोऽन्तरिक्षभाजनास्तेभ्यो ह योऽनिवेद्यः स्वर्गं लोकमेतीश्वरा हैनं नि वा रोद्धोर्वि वा मथितोः, स यदाह स्वस्ति राये मरुतो दधातनेति तं मरुद्भ्यो देवविड्भ्यो यजमानं निवेदयति न ह वा एनं मरुतो देवविशः स्वर्गं लोकं यन्तं निरुन्यते न विमथ्नते ।।२।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के चतुर्थपाद में विद्यमान मरुत् शब्द का अन्वय और व्यतिरेक से तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **तासु** उन (ऋचाओं) के (प्रथम मन्त्र में) **पदमस्ति** (चतुर्थ) पाद इस प्रकार है—'स्वस्ति राये मरुतो दधातन अर्थात् हे मरुतो! हमको कल्याणकारी धन में प्रतिष्ठित करो' **इति** यहाँ प्रयुक्त **मरुतः** मरुत् **देवविशः अन्तरिक्षभाजनाः** देवताओं की प्रजा और अन्तरिक्षलोक में रहने वाले हैं। **यः तेभ्यः** जो उन (मरुतों) को **अनिवेद्य** निवेदन न करके **स्वर्गम् एति** स्वर्गलोक को जाता है, **एनम्** इस यजमान को (मरुद् देव) **नि वा रोद्धोः** रोकने **विवा मथितः** अथवा विनष्ट करने में **ईश्वराः** समर्थ हो जाते हैं। अतः **सः यद् आह** वह (होता) जो यह कहता है कि **'स्वस्ति राये मरुतः दधातन'** अर्थात् काल्याण युक्त धन में मरुद्देव हमें स्थापित करें तो **तं यजमानम्** उस यजमान के लिए **देवविड्भ्यः मरुद्भ्यः** देवों में प्रजास्वरूप मरुतों से **निवेदयति** (होता) निवेदन करता है जिससे **देवविशः मरुतः** देवो में प्रजा स्वरूप मरुद्देव **स्वर्गं लोकं यन्तम् एनम्** स्वर्ग लोक जाते हुए इस (यजमान) को **न वै निरुन्धते** न तो रोकते हैं और **न विमथ्नते** न विनष्ट करते हैं।

सा० भा०—तासु पूर्वोक्तास्वृक्षु पदं पादस्तस्मिन् पादे प्रोक्ता मरुतो देवानां वैश्या अन्तरिक्षे निवसन्ति।[१] एनं यजमानं नि वा रोद्धोः[२] स्वर्गमनं निरोद्धुं वा वि वा मथितः[३] विशेषेण मथितुमालोडयितुं विनाशयितुं वा ते मरुत ईश्वराः[४] समर्थाः सोऽयं व्यतिरेकः। बाधस्यात्रोपन्यस्तत्वात्। स यदाहेत्यादिरन्वयः। उक्तबाधसमाधानस्य तत्रोपन्यासात्। यदि होता 'स्वस्ति राय' इत्यादिपादं पठेत् तदानीं मरुद्भ्यो यजमानं निवेदयति। ततो मरुतः स्वर्गं लोकं गच्छन्तं यजमानं नैव निरुन्धते नापि विमथ्नते नापि विनाशयन्ति।।

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्ति हैनमत्यर्जन्ति स्वर्गं लोकमभि य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—**यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **एनम्** इस (यजमान) को (मरुत्) **स्वर्गं लोकम् अभि** स्वर्ग लोक को अभिलक्षित करके **स्वस्ति ह अत्यर्जन्ति** अत्यधिक कल्याण प्रदान करते हैं।

सा० भा०—स्वर्गमभिलक्ष्य जिगमिषुमेनं वेदितारं स्वस्ति क्षेमो यथा भवति तथा मरुतोऽतिशयेन प्रापयन्ति।।

इत्थमुक्ताः प्रधानहविषो याज्यानुवाक्याः प्रशस्य संयाज्ये विधत्ते—

विराजावेतस्य हविषः स्विष्टकृतः संयाज्ये स्यातां ये त्रयस्त्रिंशदक्षरे ।।४।।

---

(१) 'अथातो मध्यस्थाना देवगणाः। तेषां मरुतः प्रथमागमिनो भवन्ति'—इत्यादि निरु० ११.१३। ते च रुद्रपुत्राः ऋ०सं० १.८६.१; १.३९.४। सा०भा०।

(२-४) 'ईश्वरे तोसुन्-कसुनौ' पा०सू० ३.४.१३।

हिन्दी—(याज्यानुवाक्या की प्रशंसा करके अब दो संयाज्याओं का विधान कर रहे हैं—) **एतस्य स्विष्टकृतः हविषः** इस (प्रायणीयेष्टि) के स्विष्टकृत आहुति की **संयाज्ये** दो संयाज्याएँ **विराजौ स्याताम्** विराट् छन्दस्क होती हैं, **ये त्रयस्त्रिंशद् अक्षरे** जो तैंतीस अक्षर वाली होती हैं।

सा० भा०—विराट्छन्दस्कानां बहूनां विद्यमानत्वात् त्रयस्त्रिंशदक्षरशब्देन ते ऋचौ विशेष्येते।।

तयोर्ऋचोः प्रथमपादावुदाहरति—

सेदग्निरग्नीरँत्यस्त्वन्यान्' 'सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपातीत्येते ।।५।।[१]

हिन्दी—(उन दोनों ऋचाओं के प्रथम पादों को उदाहरित कर रहे हैं—) 'सेदग्निरँग्नी त्यस्त्वन्यान्' और 'सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति' **इत्येते** ये दो मन्त्र हैं।

विराजौ प्रशंसति—

विराड्भ्यां वा इष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयंस्तथैवैतद् यजमानो विराड्भ्यामिष्ट्वा स्वर्गं लोकं जयति ।।६।।

हिन्दी—(विराट् छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **विराड्भ्यां वै इष्ट्वा** इन दो विराट् छन्दस्क (मन्त्रों) से यजन करके **देवाः स्वर्गं लोकम् अजयन्** देवताओं ने स्वर्ग लोक को जीत लिया। **तथा** उसी प्रकार **एतद् यजमानः** यह यजमान **विराड्भ्याम् इष्ट्वा** इन दो विराट् छन्द वाले मन्त्रों से यजन करके **स्वर्गं लोकं जयति** स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

सा० भा०—तथैवैतदिति दार्ष्टान्तिकप्रतिज्ञा 'यजमानः' इत्यादिकं तद्विवरणम्।।

ऋचोरवस्थितामक्षरसंख्यां प्रशंसति—

ते त्रयस्त्रिंशदक्षरे भवतस्त्रयस्त्रिंशद्वै देवा अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशाऽऽदित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च तत्प्रथमे यज्ञमुखे देवता अक्षरभाजः करोत्यक्षरेणाक्षरेणैव तद्देवतां प्रीणाति, देवपात्रेणैव तद्देवतास्तर्पयति ।।७।।

हिन्दी— (ऋचाओं में विद्यमान तैंतीस अक्षरों की संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ते त्रयस्त्रिंशद् अक्षरे भवतः** वे दोनों मन्त्र तैंतीस अक्षरों वाले हैं। **अष्टौ वसवः** आठ वसुगण, **एकादश रुद्राः** ग्यारह रुद्रगण, **द्वादश आदित्याः** बारह आदित्यगण **प्रजापतिश्च वषट्कारः च** प्रजापति और वषट्कार **त्रयस्त्रिंशद वै देवाः** ये तैंतीस

---

(१) ऋ०सं० ७.१.१४,१५। आश्व०श्रौ० ४.३.२।

देवता हैं। (इस प्रकार यह विराट् छन्दस्क मन्त्रों के अक्षरों और देवताओं की संख्या समान है। **तत्** इस (संख्या की समानता) से **प्रथमे यज्ञमुखे** पहले यज्ञ के प्रारम्भ में ही (होता) **देवताः** (वसु इत्यादि) देवताओं को **अक्षरभाजः करोति** अक्षर की समानता का भागी बना देता है क्योंकि **अक्षरेण अक्षरेण** प्रत्येक अक्षर से **तद्देवताम्** उन देवताओं को **प्रीणाति** प्रसन्न करता है और **देवपात्रेण एव तद्देवताः तर्पयति** मानो देवपात्र रूपी (अक्षर) से ही देवताओं को तृप्त करता है।

सा० भा०—वषट्कारो देवताविशेषः तत्तथा सति देवतानामक्षराणां च संख्यासाम्ये सति। यज्ञमुखं यज्ञोपक्रमः। स च सुत्यादिने प्रातरनुवाकादिना भविष्यति। तदपेक्षया प्रायणीयेष्टिः प्रथमं यज्ञमुखम्। तस्मिन् यज्ञमुखे वस्वादिकाः सर्वदेवतासंख्यासाम्यादक्षरभाजः करोति। तत्तेन देवतानामक्षरप्रापणेनैकैकां देवतामेकैकेनाक्षरेण तोषयति। देवानां पात्रं फलमेकैकमक्षरं तेनैव तत्तदानीं देवतास्तर्पयति प्रीणातीत्यस्यैव विवरणमेतत्।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य द्वितीयाध्याये चतुर्थः खण्ड ।।४।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—संयाज्ये विधाय प्रयाजानूयाजविषये किंचिद्विशेषविधानं पूर्वपक्षत्वेन शाखान्तरीयमतमुपन्यस्यते—

(प्रयाजवदनुयाजवत् कर्त्तव्यमिति विधिः)

प्रायजवदननुयाजं कर्त्तव्यं प्रायणीयमित्याहुर्हीनमिव वा एतदीङ्खितमिव यत्प्रायणीयस्यानुयाजा इति ।।१।।

हिन्दी—(संयाज्याओं का विधान करके प्रयाज और अनुयाज के विषय में कुछ विधान को पूर्वपक्ष के रूप में अन्य शाखा वालों के मत को उपन्यसित कर रहे हैं—) **प्रयाजवत्** प्रयाज (यज्ञ के प्रारम्भ में दी जाने वाली आहुतियाँ) से युक्त **अननुयाजम्** अनुयाज यज्ञ के अन्त में दी जाने वाली आहुतियों से रहित **प्रायणीयं कर्त्तव्यम्** प्रायणीयेष्टि करना चाहिए—**इत्याहुः** ऐसा कुछ लोग कहते हैं; क्योंकि **यत् प्रायणीयस्य अनुयाज्या** जो प्रायणीयेष्टि की अनुयाज्या होती है, **एतत्** यह **ईङ्खितमिव** विलम्बित के समान **हीनम् इव** हीन (लुप्त) होती है।

सा० भा०—प्रायणीयेष्टेर्दर्शपूर्णमासविकृतित्वाच्चोदकेन प्रयाजा अनूयाजाश्च प्राप्ताः 'समिधो अग्न आज्यस्येत्याद्या मन्त्रसाध्या ये प्रयाजाः[१] देवं बर्हिरित्याद्या मन्त्रसाध्यास्त्रयोऽनूयाजाः[२] प्रायणीयाख्यं कर्म प्रयाजोपेतमनूयाजवर्जितं[३] कर्तव्यमिति शाखान्तरीया आहुः[४]। तत्रैषा युक्ति प्रायणीयस्यानूयाजा इति यदस्ति तदेतद्धीनमिव वै तस्यैव व्याख्यानमीतिङ्क्तमिवेति विलम्बितमित्यर्थः।[५] अनूयाजेष्विज्यमानेषु कर्मणि विलम्बो भवेत् तस्मान्न यष्टव्या अनूयाजाः। इतिशब्दः पूर्वपक्षसमाप्त्यर्थः। यथा प्रायणीये कर्मण्यनुयाजा वर्ज्यन्ते, तथैवोदयनीये कर्मणि प्रयाजा वर्जनीया इति पूर्वपक्षाभिप्रायः। तमेतं तैत्तिरीया विस्पष्टमामनन्ति—'प्रयाजवदननूयाजं प्रायणीयं कार्यमनूयाजवदप्रयाजमुदयनीयम्'[६] इति॥

स्वोक्तं पूर्वपक्षं निराचष्टे—

तत्तन्नाऽऽदृत्यं प्रयाजवदेवानुयाजवत् कर्तव्यम् ॥ २॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त पूर्वपक्ष का निराकरणकर रहे हैं—) **तत्तत्** इस (प्रायणीय कर्म) में वह (पूर्वोक्त मत) **अनादृत्यम्** समादरणीय (मानने योग्य) नहीं है। अतः **प्रयाजवद् अनुयाजवत् कर्त्तव्यम्** प्रयाज और अनुयाज से युक्त (प्रायणीयेष्टि) करना चाहिए।

सा० भा०—तस्मिन् प्रायणीये कर्मणि तत्कर्मानुयाजवर्जनरूपं नाऽऽदरणीयम्।

वर्जने बाधमुपन्यस्यति—

प्राणा वै प्रयाजाः, प्रजाऽनुयाजा, यत्प्रयाजानन्तरियात् प्राणांस्तद्यजमानस्यान्तरियाद्, यदनुयाजानन्तरियात् प्रजां तद्यजमानस्यान्तरियात् ॥ ३॥

हिन्दी—(उस विषय में बाधा को उपन्यसित कर रहे हैं—) **प्राणः वै प्रयाजाः**

---

(१) तै०ब्रा० ३.५.५ १-५। (२) तै०ब्रा० ३.५.९ १-३।

(३) अनुयाजमिति दीर्घमध्यपाठस्तैत्तिरीयाणाम्, बह्वृचां तु अनुयाजमिति ह्रस्वमध्य एव; वक्ष्यति चैतदनुपदं स्वयं भाष्यकारोऽपि। परमदृष्टेषु सर्वेष्वेवैतरेयभाष्येषु दीर्घमध्यः, तदत्र लिपिकारप्रमादप्रवाह एव हेतुर्गम्यते।

(४) तथाहि–शत०ब्रा० "तदिळन्तं भवति, नानुयाजान् यजन्ति"–इत्यादि "तस्मादिळान्तं भवति, नानुयाजान् यजन्ति"–इत्यन्तम् (३.४.१.२६)। तथा कात्या० 'उत्तरं वा प्रकृत्य-नुग्रहानुयाजप्रतिषेधाभ्याम्' (७.५.२४) इति।

(५) 'हीनं लुप्तम्, ईङ्क्तिं चलितम्। यदा अनूयाजा अपि क्रियन्ते तदा खल्वग्निष्टोमाख्यं प्रधानकर्म विलम्बितानुष्ठानमभवत्। हीनमिव भवति। लुप्तं प्रधानकर्म यद् गुणकर्मसु विस्तारः क्रियते इत्येव हीनमिव मन्तव्यम्। तथा चलितं न्यूनं प्रधानकर्म यत् तद्धित्वागुणकर्मसु श्रद्धां कुर्वन्ति इत्येव चलितमिव मन्तव्यम्'–इति भट्टभास्करः।

(६) तै०सं० ६.१.५.३।

(प्रथम अक्षर की समानता के कारण) प्रयाज (यजमान के) प्राण स्वरूप और **प्रजा अनुयाजा** (अनु = पश्चात् उत्पन्न होने के कारण) अनुयाज (यजमान की पुत्रादि) प्रजा स्वरूप हैं। **यत् प्रयाजान् अन्तरियात्** यदि प्रयाजों को त्याग दे **तद् यजमानस्य प्राणान् अन्तरियात्** तो यजमान के प्राणों को छोड़ देता है और **यद् अनुयाजान्** जो अनुयाजों को छोड़ दे **तद् यजमानस्य प्रजाम् अन्तरियात्** तो यजमान की (पुत्रादि) प्रजा को छोड़ देता है।

सा० भा०—प्रथमशब्दसामान्यात् प्रथमभावित्वाद् प्रयाजा यजमानस्य प्राणरूपाः। पश्चाद्भावित्वादनुयाजाः पुत्रादिरूपाः। यदा प्रयाजा वर्ज्यन्ते तदा यजमानसम्बन्धिनां प्राणानामन्तरायो विच्छेदःस्यात्। अनुयाजवर्जने पुत्रादिविच्छेदः। अयमेव पूर्वपक्षबाधस्तैत्तिरीयैराम्नातः—'तत्तथा न कार्यमात्मा वै प्रयाजाः प्रजाऽनूयाजा यत्प्रयाजानन्तरियादात्मानमन्तरियाद् यदनूयाजानन्तरियात् प्रजामन्तरियात्'[1] इति। यद्यपि प्रायणीये प्रयाजवर्जनमप्रसक्तं तथाऽप्युदयनीये तैत्तिरीयोपन्यस्तं प्रयाजवर्जनमभिप्रेत्वायं बाधोपन्यासः॥

इत्थं पूर्वपक्षे बाधमुपन्यस्य चोदकैः प्राप्तस्योभयानुष्ठानस्य प्रतिप्रसवरूपं सिद्धान्तं विधत्ते—

तस्मात् प्रयाजवदेवानुयाजवत् कर्तव्यम् ॥४॥

हिन्दी—तस्मात् प्रयाजवत् अनुवाजवत् कर्तव्यम् इसी कारण प्रयाजयुक्त और अनुयाजयुक्त यजन करना चाहिए।

सा० भा०—यस्मादन्यतरत्यागे बाधस्तस्मादित्यर्थः। तैत्तिरीया अप्येतदामनन्ति—'प्रयाजवदेवानूयाजवत्प्रायणीयं कार्यं प्रजायवदनूयाजवदुदयनीयम्'[2] इति। अत्र सर्वत्रैतरेयपाठेऽनुयाज इति ह्रस्व उकारः। तैत्तिरीयपाठे दीर्घ इति विवेकः॥

चोदकप्राप्तान् पत्नीसंयाजान् समिष्टयजुश्च निषेधति—

(पत्नीसंयाजानां समिष्टयजुषः निषेधः)

पत्नी न संयाजयेत् संस्थितयजुर्न जुहुयात्[3] ॥५॥

---

(१) तै०सं० ६.१.५.४

(२) तै०सं० ६.१.५.५।

(३) (i) पत्न्यनुष्ठेयाश्चत्वारो यागाः पत्नीसंयाजा उच्यन्ते। (कात्या० १०.८.१०)। चतस्रो देवता यजति पत्नी स्वगा करोति (शत०ब्रा० १.७. ६-१५)। तैत्तिरीयकेऽपि—'सोमं यजति' इत्यादि 'आज्येन पत्नीसंयाजाः' —(तै०सं० २.६.१०) तन्मन्त्रादिविधयस्तु तद्ब्राह्मणे ३.५.१२.१३। जै०सू० चैतन्मूलकमधिकरणमेकमारचितम् (३.२.२०-अधि १०)। (ii) पत्नीस्तु न संयाजयेत्—इति आप०श्रौ० १०.२१.१४।
अथ समिष्टयजुर्जुहोति (शत०ब्रा० १.७.३.२५-२७) तथा तैत्तिरीयकेऽपि

हिन्दी—(पत्नी के संयाज करने और संस्थित यजु: से यजन का निषेध–) **पत्नी न संयाजयेत्** पत्नी संयाजाओं को न करे और **संस्थितयजुः न जुहुयात्** संस्थितयजु: से भी होम नहीं करना चाहिए।

ततः किमित्यपेक्षायामाह—

तावतेव यज्ञोऽसंस्थितः ।।६।।

हिन्दी—**तावता एव** इतने से ही **यज्ञः असंस्थितः** यज्ञ पूर्ण नहीं होता।

सा० भा०—तदानीं यज्ञस्य समाप्तत्वादुत्तरकालीनं सोमक्रयादिकं न प्रवर्तेत। एतेषामननुष्ठानमात्रेण यज्ञोऽसमाप्तो भवति। तत उत्तरानुष्ठानं निर्बाधं प्रवर्तते।।

कंचिद्विशेषं विधत्ते—

(निष्कासस्थापनविधानम्)

प्रायणीयस्य निष्कासं निदध्यात् तमुदयनीयेनाभिनिर्वपेद् यज्ञस्य संतत्यै यज्ञस्याव्यवच्छेदाय ।।७।।

हिन्दी—(प्रायणीयेष्टि के विषय में कुछ विशेष का विधान कर रहे हैं–) **यज्ञस्य सन्तत्यै** यज्ञ की निरन्तरता के लिए और **यज्ञस्य अव्यवच्छेदाय** यज्ञ की अव्यवच्छिन्नता के लिए **प्रायणीयस्य तं निष्कासम्** प्रायणीयेष्टि का अवशिष्ट (निष्कासित) भाग को (किसी पात्र में) **निदध्यात्** रखना चाहिए।

सा० भा०—भाण्डगतो लेपरूपो हविःशेषो निष्कासः। प्रायणीयकर्मसंबन्धिनं निष्कासं कस्मिंश्चित्पात्रे स्थापयेत्। ततः सुत्यादिने[१] सोमयागस्यावसान उदयनीयेष्टिगतेन हविषा सह तं निष्कासं समभिनिर्वपेत्। एवं सति प्रायणीयशेषस्यानुवर्तनात् सोमयागः संततो भवति न तु तस्य विच्छेदः प्राप्नोति। तैत्तिरीयाश्चाऽऽमनन्ति—'प्रायणीयस्य निष्कास उदयनयमभिनिर्वपति सैव सा यज्ञस्य सन्ततिः'[२] इति।।

(सं० ६.६.२.१। एतद् विधानं च तत्पुरस्तादेव श्रुतं द्रष्टव्यम् (२.६.१०) तत्रैवेदमप्युक्तं सायणेन—'देवा गातुविदः' इत्ययं मन्त्रः (वा०सं० ८.२१) इष्टिसम्पूर्तिकारित्वात् समिष्टयजुरित्युच्यते। स च मन्त्र आध्वर्यकाण्डे समाम्नातो व्याख्यातश्च'—इति। तत्र चाध्वर्यवे (तै०सं० १.१.४४) समिष्टयजुर्होमो निरूपितः। 'नव समिष्टयजूँषि जुहोति'—इत्यादि शत०ब्रा० ४.४.४.१ द्रष्टव्यम्। 'समिन्द्रेण' इति (वा०सं० ८.१५)। द्र० कात्या०श्रौ० १०.८.११।

(१) सुत्यालक्षणमिहैव चतुर्थाध्यायान्ते वक्ष्यति भाष्यकारः—'यस्यां क्रियायां सोमः सूयते अभिषूयते, सा सुत्या'—इति। तथा च सुत्यादिने इत्यस्य अभिषवक्रियादिवसे इत्यर्थः।

(२) तै०सं० ६.१.५.५।

प्रकारान्तरमाह—

अथो खलु यस्यामेव स्थाल्यां प्रायणीयं निर्वपेत् तस्यामुदयनीयं निर्वपेत्[१] तावतैव यज्ञः संततोऽव्यवच्छिन्नो भवति ।।८।।

हिन्दी—**अथो खलु** अथवा **यस्यामेव स्थाल्याम्** जिस स्थाली में **प्रायणीयं निर्वपेत्** प्रायणीयेष्टि (के पुरोडाश) का निर्वाप करे **तस्यामेव** उसी (स्थाली) में ही **उदयनीयं निर्वपेत्** उदयनीयेष्टि (के पुरोडाश) का निर्वाप करना चाहिए। **तावता एव** उसी से ही **यज्ञः संततः अव्यवच्छिन्नः भवति** यज्ञ निरन्तर और अव्यवच्छिन्न होता है।

सा० भा०—नात्र निष्कासोऽपेक्षितः किंतु स्थाल्येकत्वमात्रेण यज्ञस्य संततत्वाद् व्यवच्छेदराहित्यं सिध्यति। सातत्यव्यवच्छेदराहित्ययोरर्थत एकत्वेऽप्यन्वयव्यतिरेकरूपत्वेन पृथगुपन्यासः।

अथ प्रायणीयोदयनीयेष्ट्योर्याज्यानुवाक्याव्यत्यासं विधातुं प्रस्तौति—

(प्रायणीयोदयनीयेष्टौ याज्यानुवाक्यानां व्यत्यासविधानम्)

अमुष्मिन् वा एतेन लोके राध्नुवन्ति नास्मिन्नित्याहुर्यत्प्रायणीयमिति प्रायणीयमिति निर्वपन्ति प्रायणीयमिति चरन्ति प्रयन्त्येवास्माल्लोकाद् यजमाना इति ।।९।।

हिन्दी—(अब प्रायणीयेष्टि और उदयनीयेष्टि की अनुवाक्या और याज्या के व्यत्यास का विधान करने के लिए प्रस्तावित कर रहे हैं—) (यजन करने वाला) **एतेन अमुष्मिन् वै लोके** इस (कर्म) से उस (स्वर्ग) लोक में ही **राध्नुवन्ति** समृद्धि को प्राप्त करते हैं, **न अस्मिन्** इस (लोक में) नहीं–**इत्याहुः** ऐसा ब्रह्मवादियों ने कहा है, (क्योंकि जब वे) **प्रायणीयम् इति प्रायणीयम् इति** प्रायणीय, प्रायणीय इस प्रकार (कहकर) **निर्वपन्ति** निर्वाप करते हैं और **प्रायणीयमिति चरन्ति** प्रायणीय 'इस प्रकार कह कर आहुति देते हैं' तब **यजमानाः** यजन करने वाले लोग **अस्मात् लोकात् प्रयन्ति** इस लोक से प्रस्थान कर जाते हैं।

सा० भा०—प्राणीयमिति निर्वपन्ति प्रायणीयमिति चरन्ति ब्रह्मवादिनः कंचिद्दोषमाहुः। प्रायणीयमित्येवं विधिनोपेतं यत्कार्यमस्ति एतेन कर्मणा यजमानाः स्वर्गलोक एव समृद्धिं प्राप्नुवन्ति नास्मिँल्लोके। कथमिति चेत्। प्रायणीयमित्येतन्नाम मनसा कृत्वा निर्वपन्ति। चरणकालेऽपि तथैव चरन्ति। चरणमाहुतिप्रक्षेपः। तस्य च नाम्नोऽयमर्थः। अनेन कर्मणा यजमाना अस्माल्लोकात् प्रयन्त्येव न त्वस्मिँल्लोके कंचित्कालं प्रतितिष्ठन्ति। तस्मात् प्रायणीयनाम संपन्नमिति। श्रौत इतिशब्दो ब्रह्मवाद्युद्भावितदोषसमाप्त्यर्थः।।

---

(१) 'तस्यामेव स्थाल्यामनिष्कासितायां श्रपयति' इति आप०श्रौ० १३.२३.२।

अथ तद्दोषसमाधानं विधत्ते—

अविद्ययैव तदाहुर्व्यतिषजेद् याज्यानुवाक्याः ।।१०।।

हिन्दी—(उपर्युक्त दोष का समाधान दिखला रहे हैं—) **अविद्यया एव तदाहुः** अज्ञानता के कारण ही वे ऐसा कहते हैं (क्योंकि प्रायणीयेष्टि और उदयनीयेष्टि में) **याज्यानुवाक्याः व्यतिषजेत्** याज्या और अनुवाक्या का व्यतिषङ्ग (उलट फेर) होना चाहिए।

सा०भा०—अज्ञानेनैव ब्रह्मवादिनस्तद्वचनमाहुः। न त्वत्र तदुक्तदोषोऽस्ति। तद्दोषानुदयाय स्वस्ति नः पथ्यास्वित्यारभ्य महीमू षु मातरमित्यन्तानां याज्यानुवाक्यानां व्यतिषङ्गं कुर्यात्।।[1]

तमेव व्यतिषङ्गं विस्पष्टयति—

याः प्रायणीयस्य पुरोनुवाक्यास्ता उदयनीयस्य याज्याः कुर्याद् या उदयनीयस्य पुरोनुवाक्यास्ताः प्रायणीयस्य याज्याः कुर्याद्, तद-व्यतिषजत्युभयोर्लोकयोर्ऋद्ध्या उभयोर्लोकयोः प्रतिष्ठित्या, उभयो-र्लोकर्ऋध्नोत्युभयोर्लोकयोः प्रतितिष्ठति ।।१०।।

हिन्दी—(उस व्यतिषङ्ग को स्पष्ट कर रहे हैं—) **याः प्रायणीयस्य पुरोनुवाक्या** जो प्रायणीयेष्टि पुरोनुवाक्या होती है **ताः उदयनीयस्य याज्या** उनको उदयनीयेष्टि की याज्या करनी चाहिए और **याः उदयनीयस्य पुरोनुवाक्या** जो उदयनीयेष्टि की पुनोनुवाक्या होती है **ताः प्रायणीयस्य याज्या कुर्यात्** उनको प्रायणीयेष्टि की याज्या करनी चाहिए। **उभयोर्लोकयो ऋध्यै** दोनों लोकों की समृद्धि के लिए और **उभयोर्लोकयोः प्रतिष्ठित्यै** दोनों लोकों की प्रतिष्ठा के लिए **तद् व्यतिषजति** यह उलट फेर करता है। (इस उलट फेर से) **उभयोर्लोकयोः ऋध्नोति** दोनों लोकों को समृद्ध करता है और **उभयोर्लोकयोः प्रतितिष्ठति** और दोनों लोकों में प्रतिष्ठित रहता है।

सा०भा०—तत्तेन याः प्रायणीयस्येत्युक्तप्रकारेण व्यतिषङ्गः संपद्यते। स च लोकद्वये भोग्यवस्तुसमृद्ध्यै स्थैर्येणावस्थानाय भवति। तथाऽनुष्ठानेन यजमानो लोकद्वये समृद्धः प्रतिष्ठितश्च भवति। यथोक्तदोषसमाधाने तैत्तिरीया आमनन्ति—'याः प्रायणीयस्य याज्यास्ता उदयनीयस्य पुरोनुवाक्या कुर्यात् प्राङमुं लोकमारोहेत् प्रमायुकः स्याद्याः प्रायणीयस्य पुरोनुवाक्यास्ता उदयनीयस्य याज्याः करोत्यस्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठति'[2] इति।।

व्यतिषङ्गवेदनं प्रशंसति—

---

(१) विपरीताश्च याज्यानुवाक्या' आश्व०श्रौ० ६.१४.४।
(२) तै०सं० ६.१.५।

प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।१२।।

हिन्दी—(इस व्यतिषङ्ग के ज्ञान के फल की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **प्रतितिष्ठाति** वह प्रतिष्ठित होता है।

सा० भा०—योऽयं प्रथमखण्डे प्रायणीयोदयनीययोरदितिदेवताकश्चरुर्विहितस्तमिमं प्रशंसति।।

(अदितेश्चरुप्रशंसनम्)

आदित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य उदयनीयो यज्ञस्य धृत्या यज्ञस्य बर्सनद्ध्यै यज्ञस्याप्रस्रसाय ।।१३।।

हिन्दी—(प्रथम खण्ड में विहित अदिति के चरु की प्रशंसा कर रहे हैं—) **आदित्यः चरुः प्रायणीय भवति** प्रायणीयेष्टि में अदिति के लिए चरु होता है और **आदित्यः उदयनीयः** उदयनीयेष्टि में आदित्य के लिएं (होता है) (यह प्रारम्भ और अन्त में होने कारण) **यज्ञस्य धृत्यै** यज्ञ के धारण के लिए **यज्ञस्य बर्सनद्ध्यै** यज्ञ की बर्स (विशेष प्रकार की गाँठ) को बाँधने के लिए और **यज्ञस्य अप्रस्रवाय** यज्ञ की स्थिरता के लिए होता है।

सा० भा०—सोमयागस्याऽऽदौ प्रायणीयेष्टिः। अन्ते चोदनीयेष्टिस्तयोरुभयोरयमदितिदेवताकश्चरुः। सोऽयं तस्य यज्ञस्य धारणाय मण्याकारो ग्रन्थिविशेषः।[1] तस्य बन्धनं तत्सिद्ध्यर्थमुभयत्राऽऽदित्यचरुकरणम्। बन्धनस्थानीयेन चरुणा यज्ञस्य धारणं सिध्यति। सति च धारणे यज्ञाङ्गं किंचिदपि स्रस्तं लुप्तं न भवति। ततो यज्ञस्याप्रस्रंसायोभयतश्चरुः।

अत्र दृष्टान्तमाह—

तद्यथैवाद इति ह स्माऽऽह तेजन्या उभयतोऽन्तयोरप्रस्रंसाय बर्सौ नह्यत्येवमेवैतद्यज्ञस्योभयतोऽन्तयोरप्रस्रंसाय बर्सौ नह्यति यदादित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य उदयनीयः ।।१४।।

हिन्दी—(इस विषय में दृष्टान्त कह रहे हैं—) **तद् एव अदः** तो यह (दृष्टान्त) **ह स्म आह** (ब्रह्मवादियों द्वारा) कहा गया है कि **यथा** जिस प्रकार (लोक में) **तेजन्याः उभयतः अन्तयोः** रस्सी के दोनों किनारों पर **अप्रस्रंसाय** प्रकृष्ट रूप से नहीं सरकने के लिए **बर्सौ नह्यति** (एक-एक इस प्रकार दो मणि के आकार की) गाँठ बाधते हैं **एवमेव** इसी प्रकार **यद् आदित्यः चरुः प्रायणीयः** जो (प्रारम्भ में) प्रायणीयेष्टि में अदिति का चरु होता है और **आदित्यः उदयनीयः भवति** अन्त में उदयनीयेष्टि अदिति का चरु होता

---

(१) बर्सेन बन्धनेन रज्ज्वादिना नर्द्धिः बर्सनर्द्धिः। यथा वंशादिकं रज्ज्वादिनोभयोरन्तयोर्बध्यते एवमेकया देवतया उभयोरन्तयोर्यज्ञो बध्यते'—इति भट्टभास्करः।

है, **एतद् यज्ञस्य उभयतः अन्तयोः** यज्ञ के दोनों किनारों (आदि और अन्त) में **अप्रस्रंसाय** (यज्ञ को) न सरकने के लिए **बर्सौ नह्यति** मणि के आकार वाली गाँठ बाँधता है।

सा० भा०—अदो वक्ष्यमाणं निदर्शनं यथा भवति तथा दार्ष्टान्तिकमित्येवं कश्चिद् ब्रह्मवाद्याह स्म तेजन्या इत्यादिना। तावेव दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकौ स्पष्टीक्रियेते। तेजनी रज्जुस्तस्या उभयोरन्तयोरप्रस्रंसाय विश्लेषनिवारणाय लौकिकः पुरुषो बर्सौ नह्यति मण्याकारौ ग्रन्थी बध्नाति। एवमेव चरुद्वयं यदस्ति तदेतद् यज्ञस्योपक्रमोपसंहाररूपयोरूभयोरन्तयोरशैथिल्याय मण्याकाररबन्धनस्थानीयं भवति॥

येयं प्रायणीये पथ्याख्या प्रथमा देवताऽस्ति, उदयनीये तस्या उत्तमात्वमर्थवादेनोन्नयति—

पथ्ययैवेतः स्वस्त्या प्रयन्ति पथ्यां स्वस्तिमभ्युद्यन्ति स्वस्त्येवेतः प्रयन्ति स्वस्त्युद्यन्ति स्वस्त्युद्यन्ति ॥१४॥

हिन्दी—**इतः** इस (आज्य हविष् वाले देवताओं) में **पथ्यया स्वस्त्या** 'पथ्या स्वस्ति' इस प्रकार **प्रयन्ति** प्रारम्भ करते हैं और **पथ्यां स्वस्तिम् उद्यन्ति** 'पथ्या स्वस्ति' से समापन करते हैं। इस प्रकार **स्वस्ति प्रयन्ति** स्वास्ति से ही प्रारम्भ करते है और **स्वस्ति उद्यन्ति** स्वस्ति के साथ समाप्त करते हैं।

सा० भा०—इतःशब्दः षष्ठ्यर्थे वर्तते। आसामाज्यहविष्कानां देवतानां मध्ये पथ्ययैव स्वस्त्यैतच्छब्दद्वयाभिहितयैव देवतया प्रयन्ति प्रारभन्ते प्रायणीये तां देवतां प्रथमं यजन्तीत्यर्थः। पथ्यां स्वस्तिमभिशब्दद्वयाभिहिता देवतामभिलक्ष्योद्यन्ति समापयन्ति। उदयनीये तां देवतामुत्तमां यजन्तीत्यर्थः। स्वस्त्याख्याया देवताया आद्यन्तयोर्यागे। उदयनीये तां देवतामुत्तमां यजन्तीत्यर्थः। स्वस्त्याख्याया देवताया आद्यन्तयोर्यागे सति यजमाना 'इतः' अस्मिन् कर्मणि[१] स्वस्त्ये क्षेम एव यथा भवति तथा प्रयन्ति प्रारभन्ते। तथा स्वस्त्युद्यन्ति क्षेमेण समापयन्ति। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः॥

अथ मीमांसा। एकादशाध्यायस्य द्वितीयपादे चिन्तितम् —

प्रायणीयस्य निष्कासे यो निर्वापोऽर्थकर्म तत् ॥
निष्कासप्रतिपत्तिर्वोदयनीयस्य संस्कृतिः ॥२१॥
उताऽऽद्यः पूर्ववन्नैवं मुख्यस्य प्रकृतत्वतः ॥
मध्योऽस्तु नोपयोक्तव्यसंस्कारस्य गुरुत्वतः ॥२२॥[२]

---

(१) 'इतो लोकाद्' इति भट्टभास्करगोविन्दस्वामिन्नौ।
(२) जै०न्या०वि० ११.२.१६.६३-६६।

ज्योतिष्टोमे श्रूयते—'प्रायणीयस्य निष्कास उदयनीयमभिनिर्वपति' इति।[१] अत्र पूर्वन्यायेन निष्कासद्रव्यकमुदयनीयसमानधर्मकमन्यदर्थकर्मेत्याद्यः पक्षः। मुख्यस्योदयनीस्य प्रकृतत्वाद् भिन्नप्रकरणाम्नातावभृथधर्मातिदेशवदुदयनीस्य धर्मातिदेशस्याप्यसंभवान्नार्थकर्मत्वम्। यदि तर्हि निष्कासप्रतिपत्तिरिति मध्यमः पक्षोऽस्तु। सोऽपीत्थं न संभवति, उपयुक्तसंस्कारादुपयोक्ष्यमाणसंस्कारस्य गरीयस्त्वात्। तस्माद् उदयनीयस्य संस्कारः।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्ये प्रथमपञ्चिकायां द्वितीयाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय अध्याय के पञ्चम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधबीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य प्रथमपञ्चिकायाः द्वितीयोध्यायः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) तै०सं० ६.१.५.५।

अथ प्रथमपञ्चिकायाम्
तृतीयोऽध्यायः
अथ प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— प्रायणीया तदङ्गं च देवतादिकमीरितम् ।
तथैवोदयनीया च तद्विशेषाश्च वर्णिताः ॥१॥[1]

अथ सोमप्रवहणाङ्गमन्त्रादयो वक्तव्याः । तत्राऽऽदौ सोमक्रयणस्य दिशं विधत्ते—

(सोमक्रयदिङ्निरूपणम्)

प्राच्यां वै दिशि देवाः सोमं राजानमक्रीणंस्तस्मात् प्राच्यां दिशि क्रीयते ।।१।।

हिन्दी—(अब सोम प्रवहण के अङ्गभूत मन्त्रों को कहने के लिए सर्वप्रथम सोमक्रय की दिशा का विधान कर रहे हैं—) **देवाः** देवताओं ने **प्राच्यां वै दिशि** (प्राचीनवंश से) पूर्व दिशा में राजानं सोमम् राजा सोम को **अक्रीणन्** खरीदा था **तस्मात्** इसी कारण **प्राच्यां दिशि** पूर्व दिशा में क्रीयते (सोम) खरीदा जाता है ।

सा० भा०—प्राचीनवंशात् पूर्वस्यां दिशि देवैः पुरा सोमस्य क्रीतत्वादृत्विग्भिरपि तथा सोमः क्रेतव्य इत्यर्थः।[2]

प्रसङ्गात् सोमविक्रयिणः प्रत्यवायं दर्शयति—

तं त्रयोदशान् मासादक्रीणंस्तस्मात् त्रयोदशो मासो नानुविद्यते, न वै सोमविक्रय्यनुविद्यते पापो हि सोमविक्रयी ।। २।।

हिन्दी—(प्रसङ्गवश सोम-विक्रेता के प्रत्यवाय को दिखला रहे हैं—) **तम्** उस (सोम) को देवताओं ने) **त्रयोदशान् मासाद् अक्रीणन्** तेरहवें महीने से खरीदा था **तस्मात्** इसी कारण **त्रयोदशो मासः** तेरहवाँ महीना (अधिमास) **नानुविद्यते** अनुकूल नहीं होता । **सोमविक्रयी वै** सोम का विक्रेता भी **नानुविद्यते** शिष्टाचार के अनुकूल नहीं होता

---

(१) द्वितीयाध्यायार्थसङ्ग्रहश्लोक एषः । तत्र पञ्चसु खण्डेसु क्रमात् १—प्रायणीयेष्टिः, २—प्रयाजाहुतिरूपं प्रायणीङ्गकर्म, ३—प्रायणीयदेवतादिकम्, ४—उदयनीयानुष्ठेयविशेषाश्चेति पञ्चार्था उपदिष्टा इत्यर्थः ।

(२) सोमक्रयाख्यायिकादिकं तु पञ्चमे वक्ष्यति; सोमक्रयप्रकारादयस्त्वाध्वर्यवेषु विशेषतः श्रुताः।

अतः **सोमविक्रयी हि पापः** सोमविक्रेता भी पापी होता है।

सा० भा०—पुरा संवत्सरस्य त्रयोदश मासाः सन्ति नेदानीम्। देवास्त्रयोदशस्य मासस्याभिमानिनः पुरुषात् तं सोमं क्रीतवन्तः। यस्मात् तदभिमानी पुरुषः सोमविक्रयी तस्माल्लोके तदीयस्त्रयोदशमासो नानुविद्यते शुभकर्मानुकूलो नास्ति। मेषादिसंक्रान्त्यादि-रहितत्वान् मलमास इत्यभिप्रेत्य तस्मिन् मासे शिष्टाः शुभकर्माणि वर्जयन्ति। अत एवेदानी-मपि सोमविक्रयी शिष्टाचारस्यानुकूलो नैव विद्यते। सोमविक्रयिणः पापरूपत्वे श्रुत्यन्तर-प्रसिद्धिद्योतनार्थो हिशब्दः। अत एव श्रुत्यन्तरे तद्विषयो मन्त्र एवं व्याख्यायते—'अस्मे ज्योतिः सोमविक्रयिणि तम[1] इत्याह। ज्योतिरेव यजमाने दधाति। तमः सोमविक्रयिणमर्प-यति'[2] इति।[3] अत्र तमः शब्दः पापवाची।

क्रयादूर्ध्वं प्राचीनवंशं प्रति नीयमाने सोमे पठितव्यानामृचामष्टसंख्यामादौ प्रशंसति—

(प्राचीनवंशं प्रति नीयमाने सोमे पठितव्यानामृचामष्टसंख्यानां प्रशंसनम्)

तस्य क्रीतस्त मनुष्यानभ्युपावर्तमानस्य दिशो वीर्याणीन्द्रियाणि व्युदसीदंस्तान्येकयर्चाऽवारुरुत्सन्त तानि नाशक्नुवंस्तानि द्वाभ्यां तानि तिसृभिस्तानि चतसृभिस्तानि पञ्चभिस्तानि षड्भिस्तानि सप्त-भिर्नैवावावरुन्धत तान्यष्टाभिरवारुन्धताष्टाभिराश्नुवत यदष्टाभिर-वारुन्धताष्टाभिराश्नुवत तदष्टानामष्टत्वम् ।। ३।।

हिन्दी—(सोम खरीदने के बाद उसे प्राचीनवंश के प्रति ले जाये जाने पर पठनीय आठ ऋचाओं की आठ संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **क्रीतस्य सोमस्य मनुष्यान् अभ्युपावर्तमानस्य** (उस) खरीदे गये और (खरीदने वाले यजमान) मनुष्यों के समीप आने वाले सोम के **वीर्याणि इन्द्रियाणि** वीर्य (बल प्रदान का सामर्थ्य) और इन्द्रियों की पटुता **दिशः व्युदसीदन्** दिशाओं में व्याप्त (समाहित) हो गयी। **तानि** उन (वीर्य और इन्द्रिय पटुत्व) को **एकया ऋचा** एक ऋचा द्वारा **अवारुरुत्सन्त** (यजमानों ने) रोकने का प्रयत्न किया किन्तु **तानि न अशक्नुवन्** उनको (रोकने में) असमर्थ हो गये। **तानि**

(१) तै०सं० १.२.७।

(२) तै०सं० ६.१.१०.४।

(३) 'अस्मे ज्योतिः'—इत्येकः, 'सोमविक्रयिणि तमः'—इत्यपरः, तैत्तिरीयके श्रूयते। सं० १.२.७। तयोरेव व्याख्यानायेदं ब्राह्मणम्। तत्राद्यस्य विनियोग एवं प्रोक्त आपस्तम्बेन 'अस्मे ज्योतिरिति शुक्लामूर्णास्तुकां यजमानाय प्रयच्छति-इत्यादि (१०.२६.११), द्वितीयस्य चैवम्—'कृष्णामूर्णास्तुकामद्भिः क्लेदयित्वेदमहं सर्पाणां दन्दशूकानां ग्रीवा उपग्रथ्नामीत्युपग्रथ्य तया सोमविक्रयिणं विध्यति सोमविक्रयिणि तम इति'—इति (१४)। 'अविलोमभिर्निर्मितस्तन्तुः, ऊर्णास्तुका'—इति तै०सा०भा०।

द्वाभ्याम् उनको दो (ऋचाओं) द्वारा, **तानि तिसृभिः** उनको तीन (ऋचाओं) द्वारा, **तानि चतसृभिः** उनको (चार ऋचाओं) द्वारा, **तानि पञ्चभिः** उनको पाँच (ऋचाओं) द्वारा, **तानि षड्भिः** उनको छः (ऋचाओं) द्वारा और **तानि सप्तभिः** उनको सात (ऋचाओं) द्वारा (रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु) **न एव अवरुन्धन्त** (उनको) नहीं रोक सके। **तानि अष्टाभिः अवरुन्धन्त** उनको आठ (ऋचाओं) से रोक लिया और **अष्टाभिः आश्नुवत** और आठ (ऋचाओं) से प्राप्त कर लिया। **यद् अष्टाभिः अवारुन्धत** जो आठ (ऋचाओं) से रोका और **अष्टाभिः आश्नुवत** आठ (ऋचाओं) से प्राप्त किया **तद् अष्टानाम् अष्टत्वम्** वही आठ का (प्राप्त करने के कारण अश् धातु से) अष्टत्व है।

सा० भा०—क्रीतः सोमो यदा मनुष्यान् यजमानादीनभिलक्ष्यागच्छति तदानीं तस्य सोमस्य दिगादीनि व्युदसीदन् विशेषेणोत्सन्नान्यभवन्। दिक्शब्देनाधिष्ठानमुपलक्ष्यते। सोमं नेतुं यदधिष्ठानं यच्च वीर्यं सोमनिष्ठं बलप्रदानसामर्थ्यं यच्चेन्द्रियचक्षुरादिपाटवहेतुत्वं तत्सर्वं विनष्टम्। तदानीं ते यजमाना ये मनुष्यास्तानि दिगादीन्येकयर्चाऽवरोद्धुं स्वाधीनं कर्तुमैच्छत्। ततस्तान्यवरोद्धुं नाशक्नुवन्। एवं द्वित्वादिसप्तपर्यन्तया मन्त्रसंख्यया नैवावरोधं कृतवन्तः। अष्टसंख्यया त्ववरोधं कृतवन्तः। अष्टसंख्यया त्ववरोधं कृत्वा तानि दिगादीनि प्राप्तवन्तः। अष्टसंख्यया तस्मादवरुध्यन्त। एभिर्नश्यन्तेऽश्नुवत एभिरिति वा व्युत्पत्त्याऽष्टशब्दो निष्पन्नः॥

एतद् वेदनं प्रशंसति—

अश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद ॥४॥

हिन्दी—(इस ज्ञान कर प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **यद् यत् कामयते** जो जो कामना करता है, **अश्नुते** (उसको) प्राप्त करता है।

सा० भा०—तत्काम्यमश्नुत इति योज्यम्॥

इदानीमष्टसंख्या विधत्ते—

तस्मादेतेषु कर्मस्वष्टावष्टावनूच्यन्त इन्द्रियाणां वीर्याणामवरुद्ध्यै ॥५॥

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **एतेषु कर्मसु** इन कर्मों में **इन्द्रियाणां वीर्याणाम् अवरुद्ध्यै** इन्द्रिय-सामर्थ्य और बल की प्राप्ति के लिए **अष्टौ अष्टौ अनूच्यन्ते** आठ-आठ (ऋचाओं) का पाठ (होता द्वारा) किया जाता है।

सा० भा०—इदानीं प्रस्तुतं सोमप्रवहणाख्यं[१] यत्कर्म तत्र करिष्यमाणं कर्मान्तरं तथाविधेषु प्रत्येकमष्टावष्टावृचो होताऽनुब्रूयात्। तथाऽष्टसंख्ययेन्द्रियाणि वीर्याणि चावरुद्धानि भवन्ति॥

---

(१) तत्र सोमप्रवहण्यो नामाष्टौ ऋच उत्तरस्मिन्नेव खण्डे विधास्यन्ते।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य तृतीयाध्याये प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के तृतीय अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

मन्त्रगतां संख्यां विधाय तन्मन्त्रान् विधातुमादौ प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(सोमप्रवहणीनां प्रैषमंत्रः)

सोमाय क्रीताय प्रोह्यमाणायानुब्रू३हीत्याहाध्वर्युः ।।१।।

हिन्दी—(मन्त्रों की संख्या का विधान करके उन मन्त्रों का विधान करने के लिए पहले प्रैषमन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **क्रीताय प्रोह्यमाणाय सोमाय** (हे होता!) खरीदे गये और (प्राचीनवंश के समीप) लाये जाते हुए सोम के लिए **अनुब्रूहि** अनुकूल (ऋचा) का शंसन करो–**इत्याह अध्वर्युः** अध्वर्यु (होता से) इस (प्रैष मन्त्र) को कहता है।

सा० भा०—यः सोमः क्रीतः स क्रयदेशात् प्राचीनवंशं प्रति प्रोह्यते नीयते तदर्थ-मनुकूला ऋचो हे होतरनुक्रमेण ब्रू३हि। तमेवं प्रैषमन्त्रमध्वर्युः पठेत्।

अथ होतुः प्रथमामृचं विधत्ते—

(सोमप्रवहणीयानामष्टमन्त्राणां निर्देशनम्)

भद्रादभि श्रेयः प्रेहीत्यन्वाह ।।२।।

हिन्दी—(होता द्वारा पाठ किये जाने वाली प्रथम ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'भद्रादभि श्रेयः प्रेहि' **इत्यन्वाह** इस ऋचा का (होता) अनुवाचन करता है।

विमर्श—(१) भद्रादभि श्रेयः ऋचा इस प्रकार है—

भद्रादभि श्रेयः प्रेहि बृहस्पतिं पुर एता ते अस्तु।
अथेमवस्य वर आ पृथिव्या आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः ॥

अर्थात् हे सोम! मङ्गलकारी (भूलोक रूपी क्रयस्थान) से श्रेष्ठ (स्वर्गलोक स्थानीय प्राचीनवंश) को अभिलक्षित करके प्रकर्षरूप से जाओ। बृहस्पति तुम्हारे आगे-आगे चलने वाले होवे। (जाने के बाद) पृथिवी के चारो ओर श्रेष्ठ अपने अवस्थान के योग्य स्थान का चयन करो। हे सर्ववीर! तुम पापरूप शत्रुओं को दूर करो।

सा० भा—सेयमृक्तैत्तिरीयशाखायामेवमाम्नाता[१]—

'भद्रादभि श्रेयः प्रेहि बृहस्पति पुर एता ते अस्तु ।
अथेमवस्य वर आ पृथिव्या आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः ॥'[२] इति।

तस्यायमर्थः—हे सोम भद्रान् मङ्गलाद् भूलोकरूपात् तस्मात् क्रयदेशाच्छ्रेयः श्रेष्ठं स्वर्गलोकस्थानीयं प्राचीनवंशदेशमभिलक्ष्य प्रेहि प्रकर्षेण गच्छ । तथा गच्छतस्ते बृहस्पतिः पुर एता पुरतो गन्ताऽस्तु । अथ गमनादूर्ध्वं पृथिव्याः सम्बन्धिन्या समन्ताद् वरे श्रेष्ठे देवयजन ईमवस्येदं तवावस्थानयोग्यं स्थानं निश्चिनु । सर्वेभ्यो वीरः शूरस्त्वं शत्रून् पापरूपान् यज्ञविद्वेषिण आरे कृणुहि दूरे कुरु निराकुर्वित्यर्थः ॥

तस्यामृचि प्रथमपादं व्याचष्टे—

अयं वाव लोको भद्रस्तस्मादसावेव लोकः श्रेयान् स्वर्गमेव तल्लोकं यजमानं गमयति ॥ ३ ॥

हिन्दी—(उपर्युक्त ऋचा के प्रथम पाद का व्याख्यान कर रहे हैं—**अयं वाव लोकः भद्रः** यह लोक ही मङ्गलयुक्त है । अतः **तस्मात्** इस लोक से **असौ एव लोकः श्रेयान्** यह (स्वर्गलोक) ही श्रेष्ठ है । (उस प्रथमपाद के पाठ के द्वारा होता) **यजमानम्** यजमान को **तल्लोकम् स्वर्गमेव** उस स्वर्ग लोक को **गमयति** भेजता है।

सा० भा०—तत्तेन प्रथमपादपाठेन। स्पष्टमन्यत् ॥

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

बृहस्पतिः पुर एता ते अस्त्वति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मैवास्मा एतत्पुरोगवमकर्ण वै ब्रह्मण्वद्रिष्यति ॥ ४ ॥

हिन्दी—(द्वितीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'बृहस्पतिः पुर एता ते अस्तु' अर्थात् बृहस्पति तुम्हारे आगे आगे चलें' इति (यहाँ प्रयुक्त बृहस्पति शब्द) है। **ब्रह्म वै बृहस्पतिः** ब्रह्म ही बृहस्पति है। **एतत्** इसके प्रयोग से **ब्रह्म एव** ब्रह्म को ही **अस्मै** इस (यजमान) के लिए **पुरोगवम्** पुरोगामी **अकः** करता (बनाता) है। **ब्रह्मण्वत्** ब्रह्म से युक्त (कर्म) **न वै रिष्यति** विनष्ट नहीं होता है।

सा० भा०—बृहस्पतेर्ब्रह्मत्वं ब्राह्मणजातिमत्त्वं 'ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिः' इत्यादिश्रुत्यन्तरे[३] प्रसिद्धम्। एतदेतेन द्वितीयपादपाठेनास्मै यजमानार्थं ब्रह्मैव ब्राह्मणमेव

---

(१) न तु स्वशाखीयेति यावत्। अत एवाश्वलायनेन प्रपठ्य विहितः, न तु प्रतीकग्रहणमात्रेणेति द्रष्टव्यम् (आश्व०श्रौ० ४.४.२)। एषा शैली कल्पसूत्रकाराणां प्रायः सर्वत्रैव।

(२) तै०सं० १.२.३.३।

(३) तै०सं० २.२.९.१। इहाप्युपरिष्टात् 'ब्रह्म वै बृहस्पतिः, क्षत्रं सोम आसीत्' इति २.५.६।

पुरोगवं पुरोगन्तारमकः करोति। ब्रह्मण्वद् ब्राह्मणसहायोपेतं कर्म न वै रिष्यति सर्वथा नाशं न प्राप्नोति ॥

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

अथेमवस्व वर आ पृथिव्या इति देवयजनं वै वरं पृथिव्यै देवयजन एवैनं तदवसाययत्यारे शत्रून् कृणुहि सर्ववीर इति द्विषन्तमेवास्मै तत्पाप्मानं भ्रातृव्यमपबाधतेऽधरं पादयति ।।५।।

हिन्दी—(तृतीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'अथेमवस्य वर आ पृथिव्याः' अर्थात् 'पृथिवी के वरणीय स्थान में इसे स्थापित करो' इति यहाँ **देवयजनं वै पृथिव्याः वरम्** देवयजन (नामक स्थान-विशेष) ही पृथिवी का वरणीय स्थान है। **तद्** इस (पाठ) से **देवयजने एव** देवयजन (स्थान) में ही **एनम्** इस (सोम) को **अवसाययत** स्थापित करता है। (चतुर्थ पाद में) 'आरे शत्रून् कृणुहि सर्ववीरः' अर्थात् 'सर्ववीर! तुम पापरूप शत्रुओं को दूर करो' **इति** इस (पाठ) से **अस्मै** इस (यजमान) के **द्विषन्तम्** द्वेष करने करने वाले और **पाप्मानं भ्रातृव्यम्** पापी भातृव्य (बान्धव) को **अपबाधते** विनष्ट कर देता है तथा **अधरं पादयति** निम्नस्थान में गिरा देता है ॥

सा०भा०—देवयजनाख्यस्य यागदेशस्य पृथिवीसंबन्धिश्रेष्ठस्थानत्वात् तत्रैवैनं सोमं तत्तेन तृतीयपादपाठेनास्मै यजमानाय द्वेषं कुर्वन्तं पापरूपं शत्रुमपबाधते। अधरं पादयतीति। निकृष्टं पदं प्रापयतीत्यर्थः ॥

होत्राऽनुपक्तव्या द्वितीयाद्यास्तिस्र ऋचो विधत्ते—

सोम यास्ते मयोभुव इति तृचं सौम्यं गायत्रमन्वाह सोमे राजनि प्रोह्यमाणे स्वयैवैनं तद्देवतया स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ।।६।।

हिन्दी—(अब होता द्वारा पठित द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ ऋचा को कह रहे हैं—) 'सोम आस्ते मयोभुवः' **इति गायत्र्यं सौम्यं तृचम्** इस गायत्री छन्दस्क सोम देवता वाले तृच का **अन्वाह** अनुवाचन करता है। इस प्रकार **सोमे राजनि प्रोह्यमाणे** सोम राजा के ले जाने के समय **स्वया एव देवतया** अपने ही अर्थात् सोम देवता वाले और **स्वया एव छन्दसा** अपने ही छन्द (गायत्री) से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा०भा०—तिसृणामृचां संवातस्तृचः[१] स च सोमदेवताको गायत्रीछन्दस्कश्च सोमानयनकाले तं तृचमनुब्रूयात्।[२] तत्तेनानुवचनेन स्वात्मरूपया देवतया स्वकीयच्छन्दसा चैनं सोमं समृद्धं करोति। अत्र नीयमानद्रव्यविशेषः सोमो मन्त्रदेवताऽप्यसावेव तस्मात्

---

(१) 'ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि'—इति पा०सू० ६.१.३४ वा १।

(२) स च तृचः ऋ०सं० १.९१.९-११। आश्वलायनेनाप्य. विहितः (४.४.४)।

स्वात्मरूपत्वं गायत्री द्युलोकात् सोममानीतवतीति तैत्तिरीयाः कद्रुश्चेत्यनुवाके समामनन्ति।[१] तस्माच्छन्दसः स्वकीयत्वम् ॥

पञ्चमीमृचं विधत्ते—

सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेनेत्यन्वाह ।।७।।

हिन्दी—(पञ्चमी ऋचा को कह रहे हैं—) 'सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन अर्थात् सभी यजमान इत्यादि यशरूप में प्राप्त सोम से आनन्दित होते हैं' **इत्यन्वाह** इस ऋचा को पढ़ता है।

सा० भा०—सा च संहितायामेवमाम्नाता—

सर्वे नन्दन्ति यशसाऽऽगतेन स[illegible] सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय[२]॥ इति।

तस्या ऋचोऽयमर्थः—सर्वे सखायो यजमानप्रभृतयः 'सख्या' सोमरूपेण नन्दन्ति तुष्यन्ति। कीदृशेन सख्या। 'यशसा' यशोहेतुना। आगतेन समीपं प्राप्तेन। 'सभासाहेन' विद्वत्सभां विद्याप्रसङ्गेन सहतेऽभिभवति सभासहस्नादृशेन। स तादृशः सोमरूपः सखैषामृत्विग्यजमानानां 'किल्बिषस्पृत्' किल्बिषात् पापात् स्पृणोति पालयति किल्बिषस्पृत्। पितुशब्दोऽन्नवाची।[३] तस्य सनिर्दानं येन सोमेन लभ्यते सोऽयं 'पितुषणिः'। सोमस्य पापनिवारकत्वमन्नप्रदानेन सर्वशास्त्रप्रसिद्धिद्योतनार्थो हि-शब्दः। तथाऽयं सोमो वाजिनशब्दाभिधेयेन्द्रियाय वीर्याय वाऽरं हितोऽलमत्यन्तहितो भवतीति॥

तस्या ऋचः प्रथमं पादं व्याचष्टे—

यशो वै सोमो राजा सर्वो ह वा एतेन क्रीयमाणेन नन्दति यश्च यज्ञे लप्स्यमानो भवति यश्च न ।।८।।

हिन्दी—(इस 'सर्वे नन्दन्ति' ऋचा के प्रथम पाद की व्याख्या कर रहे हैं—) **यशो वै सोमो राजा** सोम राजा ही यशरूप हैं। **एतेन क्रीयमाणेन** इस क्रय किये जाते हुए सोम से **यः च यज्ञे लप्स्यमानः** जो (ऋत्विक्) यज्ञ में धन करने वाले है **यश्च न** और जो (धन प्राप्त करने वाले) नहीं हैं **सर्वे वै नन्दन्ति** सभी प्रसन्न होते हैं।

सा० भा०—यशःकारणात् सोमस्य यशस्त्वम्। यः पुमानृत्विग् भूत्वा यज्ञे धनं लप्स्यते यश्च द्रष्टुमागतो न तु धनार्थी सर्वोऽप्यसौ[४] सोमक्रयणं दृष्ट्वा तुष्यति॥

---

(१) तै०सं० ६.१.६.१। तथा शतपथेऽपि द्रष्टव्यम्–दिवि वै सोम आसीत्–इत्यादि ३.२.४।
(२) ऋ० १० ७१.१०।
(३) पितुरित्यन्ननाम; पातेर्वा; पिबतेर्वा प्यायतेर्वा'–इत्यादि निरु० ९.२४।
(४) यश्च यज्ञे भागं लभते देवतात्वेन कर्तृत्वेन वा यश्च न लभते स सर्वः–इति गोविन्दस्वामी।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

सभासाहेन संख्या सखाय इत्येष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा यत्सोमो राजा ।।९।।

हिन्दी—(द्वितीयपाद को दिखला कर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) 'सभासाहेन संख्या सखायः' अर्थात् (यह सोम) ब्राह्मणसभा में प्रधानता को प्राप्त करता है **इति** यहाँ **यत् सोमः** राजा जो सोम राजा है, **एषः वै सखा ब्राह्मणानां सभासाहः** यह (सोम) ही ब्राह्मणों की सभा में प्रधान मित्र होता है।

सा०भा०—योऽयं राजमानः सोमः सोऽयं ब्राह्मणसभामभिभवति। सर्वे ब्राह्मणाः सोमाधीना भवन्तीत्यर्थः।।

तृतीयपादे प्रथमं पदमनूद्य व्याचष्टे—

किल्बिषस्पृदित्येष उ एव किल्बिषस्पृत्[1] ।।१०।।

हिन्दी—(तृतीय पाद के प्रथम शब्द 'किल्विषस्पृत्' को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) **किल्बिषस्पृत्** (ऋचा के तृतीय पाद में) किल्बिषस्पृत् अर्थात् पाप को विनष्ट करने वाला (प्रयुक्त है)। **एषः उ एव किल्बिषस्पृत्** यह (सोम) ही (यश के द्वारा) पापों (दोषों) को विनष्ट करने वाला है।

सा०भा०—योऽयं सोमोऽस्ति एष उ एव किल्बिषात् (स्पृणोति) पालयति सर्वकामहेतोः सोमयागस्य पापक्षयायानुष्ठातुं शक्यत्वात्।।

यज्ञानुष्ठाने च प्रवृत्तानामृत्विग्यजमानानां कः किल्बिषप्रसङ्ग इत्याशङ्क्याऽऽह—

यो वै भवति यः श्रेष्ठतामश्नुते स किल्बिषं भवति ।।११।।

हिन्दी—(यज्ञ के अनुष्ठान में प्रवृत्त ऋत्विक् और यजमानों में दोष को कह रहे हैं—) **यः वै** जो (पुरुष) **भवति** (यज्ञ में प्रवृत्त) होता है और **यः श्रेष्ठताम् अश्नुते** जो (वहाँ भी) श्रेष्ठता को प्राप्त कर लेता है **सः** वह (पुरुष) **किल्विषं भवति** (यज्ञ के समापन की व्यग्रता के कारण मन्त्र का अभीष्टोच्चारण न करता हुआ) दोष का भागी होता है।

सा०भा०—यः पुमान् प्रौढे यज्ञे प्रवृत्तो भवति तत्रापि यः श्रेष्ठतां प्रयोगपाटवाभिमान-मश्नुते प्राप्नोति स तादृशः पुरुषः कर्मसमाप्तिव्यग्रतया पण्डितंमन्यत्वेन वाग्वैकल्यं कुर्वन् किल्बषं भवति पापं प्राप्नोति।।

तमेतं पापप्रसङ्गं विस्पष्टयति—

---

(१) किल्बिषस्पृक् किल्बिषो यजमानः विपरीतलक्षणया अकिल्बिषः। अन्धः सहस्राक्ष इतिवत्। तं स्पृशतीति सोमः किल्बिषस्पृक्—इति गोविन्दस्वामी।

(व्यग्रतयानुष्ठानस्य निषेधः)

तस्मादाहुर्माऽनुवोचो मा प्रचारीः किल्बिषं नु मा यातयन्निति ।।१२।।

हिन्दी—**तस्माद् आहुः** इसी दोष की सम्भावना के कारण (यजमान) कहते हैं कि **मा अनुवोचः** (हे होता! चञ्चल मन से पुरोनुवाक्या का) अनुवाचन मत करो और **मा प्रचारीः** (हे अध्वर्यु! व्यग्रता के साथ) यज्ञ का विस्तार (सम्पादन) मत करो जिससे **किल्बिषं मा नु यातयन्** (क्षिप्रता के कारण यज्ञ) दोष को न प्राप्त कर सकें।

सा० भा०—यस्मादृत्विजां किल्बिषं संभाव्यते तस्माद्यजमाना एवमाहुर्हे होतस्त्वं माऽनुवोचोऽन्यचित्तः सन् पुरोनुवाक्यां मा पठ। हेऽध्वर्यो मा प्रचारीर्व्यग्रतया प्रचारमन्यथाऽनुष्ठानं मा कार्षीः। नु क्षिप्रं कुर्वन्तो भवन्तः किल्बिषं मा यातयन्मा प्राप्नुवन्तः। इतिशब्दो यजमानानामुक्तिसमाप्तौ। इत्थं संभावितात् किल्बिषात् सोमः पालयति।।

तृतीयपादे द्वितीयपदमनूद्य व्याचष्टे—

पितुषणिरित्यन्नं वै पितु, दक्षिणा वै पितु, तामेनेन सनोत्यन्नसनिमेवैनं तत्करोति ।।१३।।

हिन्दी—(तृतीय पाद के द्वितीय पद का व्याख्यान कर रहे हैं—) **पितुषणिः** (तृतीय पाद का द्वितीय शब्द) **पितुषणिः** है जिसमें **अन्नं वै पितु** पितु शब्द अन्न का वाचक है। **दक्षिणा वै पितु** पितु का अर्थ दक्षिणा भी है। **एनेन** इस (सोमयाग कराने) के कारण (ऋत्विकों को यजमान) **ताम् सनोति** उस (दक्षिणा) को देता है। **तत्** इसी (पितुः शब्द के पाठ) द्वारा **अन्नसनिम् एव** (सोमरूप) अन्नदान का निमित्त भूत **करोति** बनाता है।

सा० भा०—अन्नवाची पितुशब्दो लब्धव्यत्वसाम्याद्दक्षिणामप्युपलक्षयति। तां दक्षिणामेतेन सोमेन निमित्तभूतेन सनोति ऋत्विग्भ्यो ददाति। तत्तेन पितुशब्दपाठेनैनं सोमामन्नसनिमन्नदाननिमित्तभूतमेव करोति।।

चतुर्थं पादमनूद्य तत्र वा वाजिनशब्दं व्याचष्टे—

अरं हितो भवति वाजिनायेतीन्द्रियं वै वीर्यं वाजिनम् ।।१४।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद के वाजिन शब्द का व्याख्यान कर रहे हैं—) अरं हितो भवति वाजिनाय' इति इस (चतुर्थ पाद में) **वाजिनम् इन्द्रियं वीर्यं वै** वाजिन् शब्द का अर्थ हैं—इन्द्रियों की शक्ति।

वेदनं प्रशंसति—

आजरसं हास्मै वाजिनं नापच्छिद्यते य एवं वेद ।।१५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है **अस्मै** इस (जानने वाले) के लिए **आजरसम्** वृद्धावस्था तक **वाजिनं न**

अपच्छिद्यते इन्द्रिय और बल क्षीण नहीं होता है।

सा० भा०—जरासमाप्तिर्यन्तं वेदितुरिन्द्रियवीर्ययोरपच्छेदो न भवति॥

षष्ठीमृचं विधत्ते—

आगन् देव इत्यन्वाह ॥१६॥

हिन्दी—(षष्ठी ऋचा को कह रहे हैं—) आगन् देव '**इति अन्वाह** (होता) इस ऋचा का वाचन करता है।

विमर्श—(१) आगन् देव (ऋ० ४.५३.७) ऋचा इस प्रकार है—

आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्।
स नः क्षपाभिरहमिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु॥

अर्थात् सोम देव इस कर्म में आवें। (आकर) ऋतुओं के साथ निवासस्थान को समृद्ध करें। हमारे प्रेरक वे सोम देव हम लोगों को रात्रि और दिन के द्वारा प्रसन्नता प्रदान करे तथा सन्तान से युक्त धन हमारे लिए सम्यक् रूप से प्राप्त करावे।

सा० भा०—स च मन्त्रः संहितायामाम्नातः—

'आगन् देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु[१]॥ इति।

तस्यायमर्थः—सोमो 'देव' आगन्निह कर्मण्यागच्छतु। आगत्य च 'ऋतुभिः' सह 'क्षयं' निवासथानं 'वर्धतु' वृद्धिं प्रापयतु। नोऽस्माकं 'सविता' प्रेरकः स देवः 'सुप्रजां' शोभनापत्यमिषमन्नं च 'दधातु' सम्पादयतु। स देवो नोऽस्मान् क्षपाभिरात्रिभिरहोभिश्च 'जिन्वतु' प्रीणयतु। तथा प्रजोपेतं धनमस्मे समिन्वत्वस्मासु सम्यक् प्रापयत्विति॥

अस्या ऋचः प्रथमपादे पूर्वभागं व्याचष्टे—

आगतो हि स तर्हि भवति ॥१७॥

हिन्दी—**तर्हि** क्रय करने के बाद **सः आगतः हि भवति** वह (सोम) आ गया रहता है।

सा० भा०—तर्हि तस्मिन् क्रयोत्तरकाले स सोम आगतो भवतीति प्रसिद्धम्॥

उत्तरभागमनूद्य व्याचष्टे—

ऋतुभिर्वर्धतु क्षयमित्यृतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य तैरेवैनं तत्सहाऽऽगमयति ॥१८॥

हिन्दी—(ऋचा के प्रथम पाद के उत्तरभाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे

---

(१) ऋ० ४.५३.७।

हैं—) **ऋतुभिर्वर्धतु क्षयम्** अर्थात् 'ऋतुओं के साथ निवास-स्थान को समृद्ध करो' **इति** यहाँ **ऋतवः** ऋतुएँ **सोमस्य राज्ञः राजभ्रातरः** राजा सोम के राज-भ्राता हैं। **यथा** जिस प्रकार (लोक में) **मनुष्यस्य** मनुष्य का (मनुष्य जातीय भाई होता है)। **तत्** उस (मन्त्र के वाचन) से (होता) **तैः सह** उन (ऋतुओं) के साथ **एनम्** इस (सोम) को **आगमयति** (इस कर्म में) ले आता है।

सा० भा०—यथा लोके कस्यचित्मनुष्यस्य भ्रातरोऽपि मनुष्यजातीयास्तथा राजजातीयस्य सोमस्य भ्रातरोऽपि राजजातीयाः। तत्तेन मन्त्रभागपाठेन तैर्ऋतुभिर्भ्रातृभिः सहैनं वोममस्मिन् कर्मण्यागमयति ॥

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

दधातु नः सविता सुप्रजामिषमित्याशिषमाशास्ते ॥१९॥

हिन्दी—(द्वितीय पाद को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) 'दधातु नः सविता सुप्रजामिषम्' अर्थात् सविता देव हमें सुप्रजा और अन्न प्रदान करें' **इति आशिषम् आशास्ते** इस (वाचन द्वारा होता) अपने आशीर्वचन को व्यक्त करता है।

सा० भा०—आशासनीयोपेक्षणीयः प्रजादिपदार्थ आशीस्तामनेन पादपाठेनाऽऽशास्ते ॥

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु' इत्यहानि वा अहानि रात्रयः क्षपा अहोरात्रैरेवास्मा एतामाशिषमाशास्ते, 'प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु' इत्याशिषमेवाऽऽशास्ते ॥२०॥

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय और चतुर्थ पाद को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) **'स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु'** अर्थात् वे ही देव रात और दिन (धनादि) से हमे प्रसन्न करें' **इति अहानि वै अहानि** यहाँ अहः शब्द दिन और **रात्रयः क्षपा** क्षपा रात्रि का वाचक है अतः **अहोरात्रैरेव** दिन और रात्रि के द्वारा ही **अस्मै** इस (यजमान) के लिए **एताम् आशिषं आशास्ते** इस आशीर्वाद की कामना करता है। **'प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु'** अर्थात् प्रजा से युक्त धन हमारे लिए प्रहान करें' **इत्याशिषमेव आशास्ते** इस (चतुर्थ पाद द्वारा भी यजमान के लिए होता) आशार्वाद की कामना करता है।

सा० भा०—लोकप्रसिद्धान्यहान्येवात्र मन्त्रोक्तान्यहानि। अहोभिरिति वक्तव्ये वर्णविकारेणाहभिरित्युक्तत्वात्।[१] शब्दान्तरभ्रमं व्युदसितुमिदं व्याख्यानम्। एवमत्र व्याख्यातव्यः

(१) 'कालहलच्स्वरकर्तृयङाञ्च व्यत्ययमिच्छति'—इति पा०सू० ३.१.८५ वा०।

पदविशेषो नास्ति किंत्वाशीः प्रार्थनरूपं तात्पर्यमेवेत्यभिप्रेत्यैवकारः प्रयुक्तः॥

सप्तमीमृचं विधत्ते—

या ते धामानि हविषा यजन्तीत्यन्वाह ॥२१॥

हिन्दी— (सप्तमी ऋचा का विधान कर रहे हैं–) 'याते धामानि हविषा यजन्ति' **इति अन्वाह** (होता) इस (ऋचा) का वाचन करता है।

विमर्श—(१) 'याते धामानि' (ऋ० १.९१.१९) ऋचा इस प्रकार हैं—

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्॥

अर्थात् (हे सोम! तुम्हारे उत्तरवेदि इत्यादि) जिन स्थानों को यजमान लोग **हविषा यजन्ति** हविष्द्वारा यजन करते हैं, तुम्हारे वे सभी स्थान यज्ञ के चारो ओर व्याप्त होवें। तुम हमारे गायों की वृद्धि करने वाले, सभी आपदाओं को विनष्ट करने वाले, शोभन पुत्रादि देने वाले होवो। हे सोम! हमारे पुत्रादियों की हिंसा न करने वाले तुम हमारे घरों पर प्रकृष्ट रूप से आओ।

सा॰भा॰—सेयमृक्संहितायामाम्नाता—

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥[१]

तस्यायमर्थः—हे सोम ते तव धामानि यान्युत्तरवेद्यादिस्थानानि यजमाना हविषा यजन्ति ते तव ता विश्वा तानि सर्वाणि स्थानानि व्याप्येति शेषः। ततो भवान् यज्ञं 'परिभूरस्तु' परितः प्राप्तवान् भवतु। किञ्च। त्वं गयस्फानो गयानामस्मदीयानां गवां वर्धयिता प्रतरणः प्रतारयिता सर्वापदुत्तारणहेतुः सुवीरः शोभनपुत्रपौत्रादिप्रदो भवेति शेषः। हे सोमावीरहाऽस्मदीयानां वीरपुरुषाणां हननमकुर्वाणो दुर्यानस्मदीयगृहान् प्रति प्रचर प्रकर्षेण गच्छ॥

अत्र प्रथमपादस्य स्पष्टार्थत्वबुद्ध्या व्याख्यानमुपेक्ष्य द्वितीयपादमपि स्पष्टार्थाभिप्रायेणैव पठति—

ता ते विश्वा परिभूरस्तु[२] यज्ञम् ॥२२॥

हिन्दी—(द्वितीय पाद की स्पष्टार्थता के अभिप्राय से कह रहे हैं—) **ता ते विश्वा परिभूः अस्तु** तुम्हारे वे (सभी गुण) सभी स्थानों में चारो ओर से व्याप्त होवें। **यज्ञम्** (तब तुम) यज्ञ को प्राप्त होवों।

---

(१) ऋ० १.९१.१९।
(२) द्र०–'व्यत्ययो बहुलम्'—इति पा०सू० ३.१.८५ इत्यनेन लिङ्गवचनव्यत्ययौ।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

गयस्फानः प्रतरणः सुवीर इति गवां नः स्फावयिता प्रतारयितै-धीत्येव तदाह ।।२३।।

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय पाद को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) (ऋचा के तृतीय पाद में) '**गयस्फानः** गायों की वृद्धि करने वाला, **प्रतरणः** आपत्तियों को विनष्ट करने वाला और **सुवीरः** सुन्दर सन्तान को देने वाला' **इति** यह कहा गया है। यहाँ **गवां नः स्फावयिता** गयस्फानः का अर्थ—हमारी गायों की वृद्धि करने वाला और **प्रतारयिता** प्रतरणः का अर्थ—आपत्तियों को दूर करने वाला है।

सा०भा०—स्फावयिता वर्धयिता।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यानिति गृहा वै दुर्या बिभ्यति वै सोमाद्राज्ञ आयतो यजमानस्य गृहाः, स यदेतामन्वाह शान्त्यैवैनं तच्छमयति सोऽस्य शान्तो न प्रजां न पशून् हिनस्ति ।।२४।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) '**अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्** अर्थात् हे सोम! हमारे वीर पुत्रादियों की हिंसा न करते हुए हमारे गृहों में प्रकृष्टरूप से आओ' **इति** यहाँ (ऋचा के चतुर्थ पाद में) **गृहाः वै दुर्याः** दुर्या शब्द गृह का वाचक है। **आयतः सोमाद् राज्ञः** आये हुए सोम राजा से **यजमानस्य गृहाः** यजमान के घर वाले लोग **बिभ्यति** (परिचर्या के विषय में) भयभीत रहते हैं। **सः यद् एताम् अन्वाह** वह (होता) जो (ऋचा के चतुर्थपाद का वाचन करता है, **तत्** उस (पाठ) से **शान्त्या एव एनं शमयति** शन्ति की हेतुभूत इस (राजा सोम) को शान्त करता है और **शान्तः सः** शान्त हुआ वह (राजा सोम) **अस्य** इस यजमान के **न प्रजां न पशून् हिनस्ति** न तो सन्तान की और न तो पशुओं की हिंसा करता है।

सा०भा०—आयत आगच्छतः सोमाद्राज्ञो यजमानस्य गृहा गृहवर्तिनो वीरपुरुषाः केनापि परिचर्यावैकल्येन राजा कोपं करिष्यतीति मत्वा तस्मात् सर्वे बिभ्यति तदानीं स होता यद्येतामवीरहेतिपदयुक्तामृचमन्वाह तत्तेनानुवचनेन शान्त्या शान्तिहेतुभूतया सुवीरपदोक्तयैवैनं राजानं शमयति शान्तं करोति। स च राजा शान्तः सन्नस्य यजमानस्य पुत्रादिकां प्रजां गवादिपशूंश्च न हिनस्ति।।

अष्टमीमृचं विधत्ते—

इमां धियं शिक्षमाणस्य देवेति वारुण्या परिदधाति ।।२५।।

हिन्दी—(अष्टमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'इमां धियं शिक्षमाणस्य देव' इति

वारुण्या इस वरुण देवता वाली ऋचा से **परिदधाति** (होता) परिधान (अनुवाचन का समापन) करता है।

विमर्श—(१) 'इमां धियं' इत्यादि (ऋ० ८.४२.३) ऋचा इस प्रकार है–

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि।
यथाऽस्ति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम।।

अर्थात् हे वरुण! इस (यज्ञानुष्ठान विषयक) वृद्धि का अभ्यास करते हुए (यजमान) के यज्ञ-विषयक वीर्य और यज्ञविषयक प्रज्ञान को सम्यग्रूपेण उपदिष्ट करो, जिस वाणीरूपी नौका से सम्पूर्ण पापों को अतिशयरूप से पार करें, ऐसी अच्छी प्रकार से पार करने वाली नौका पर बहुलता से हम लोग आरोहण करते हैं।

सा० भा०—इयमृग्वरुणदेवताका तया परिदधाति। अनुवचनं समापयेदित्यर्थः।

सेयमृक्संहितायामेवमाम्नाता—

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि।
यथाऽपि विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम'[१]।।

तस्यायमर्थः—हे वरुण देवेमां धियं यज्ञानुष्ठानविषयां बुद्धिं शिक्षमाणस्याभ्यस्यतो यजमानस्य क्रतुं यज्ञविषयं वीर्यं दक्षं कौशलं यज्ञविषयप्रज्ञानं संशिशाधि सम्यगुपदिश। यया वाग्रूपया नावा विश्वा दुरिता सर्वाणि पापान्यतितरेम। तादृशी सुतर्माणं सुष्ठुतरणहेतुं वाग्रूपां नावमधिरुहेमाऽऽधिक्येनाऽऽरोहणं कुर्म इति।

वारुण्या समापने कारणमाह—

(वारुण्या सोमप्रवहणीयपाठसमापनकारणम्)

वरुणदेवत्यो वा एष तावद्यावदुपनद्धो यावत्परिश्रितानि प्रपद्यते स्वयैवैनं तद्देवतया स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ।। २६ ।।

हिन्दी—(वरुण देवताक ऋचा से अनुवाचन के समाप्त करने के कारण को कह रहे हैं—) **यावद् उपनिबद्धः** जब तक (सोम वस्त्र इत्यादि से) बँधा रहता है और **यावत् परिश्रितानि** जब तक (प्राचीनवंश इत्यादि यज्ञस्थान में) लाया जाता है **तावत् एषः** तब तक यह (सोम) **वरुण देवत्यः प्रपद्यते वै** वरुण देवता से सम्बन्धित होता है और **एनम्** इस (सोम) को **स्वया एव तद्देवतया** अपने ही देवता (वरुण) से तथा **स्वेन च्छन्दसा** अपने ही छन्द (त्रिष्टुप्) से **समर्धयति** (होता) समृद्ध करता है।

सा० भा०—यावत्कालं सोम उपनद्धो वस्त्रादिना बद्धः स्याद्यावच्च परिश्रितानि

---

(१) ऋ० ८.४२.३।

प्राचीनवंशदिस्थानानि प्रतिपद्यते तावदेष सोमो वरुणदेवताको बन्धनस्य वरुणपाशाधीनत्वाद्[१] आवरणस्यापि वरुणाधीनत्वात्।[२] तत्तया सति वारुण्या परिदधानो होता स्वयैव सोमसंबन्धिन्यैव देवतया स्वेन संबन्धिना छन्दसा तमेनं सोमं समृद्धं करोति।[३] ऋचस्त्रिष्टुप्छन्दः। सा च त्रिष्टुप्, सोममाहर्तुं द्युलोके गत्वा दक्षिणां तपश्चाऽऽहृतवती। तथा च शाखान्तरे श्रूयते—'सा दक्षिणाभिश्च तपसा चाऽऽगच्छत्'[४] इति। तस्मादिदं छन्दः सोमस्य स्वकीयम्।

प्रथमपादे शिक्षमाणस्येति पदं व्याचष्टे—

शिक्षमाणस्य देवेति शिक्षते वा एष यो यजत ।।२७।।

हिन्दी—(ऋचा के प्रथम पाद में विद्यमान शिक्षमाणः शब्द की व्याख्या कर रहे हैं—) **'शिक्षमाणस्य देव** अर्थात् हे देव! अभ्यास करते हुए (यजमान का)' **इति** इस कथन से, **यः यजते** जो याग करने वाला होता है, **एषः शिक्षते** यह शिक्षा (अभ्यास) करता है।

सा० भा०—पुनः पुनरभ्यासः शिक्षा यजनशीलस्य सोऽस्ति ॥

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधीति वीर्यं प्रज्ञानं वरुणं सशिशाधीत्यैव तदाह ।।२८।।

हिन्दी—(द्वितीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि** अर्थात् हे वरुण (इस अनुष्ठानविषयक) कुशलता और प्रज्ञान को सम्यक् प्रकार से उपदिष्ट करो' **इति** यहाँ वरुण **वीर्यं प्रज्ञानं संशिशाधि** हे वरुण! वीर्य और प्रज्ञान का अभ्यास कराओ—**इत्याह** यह कहा गया है।

द्वितीयार्धमनूद्य व्याचष्टे—

यथाऽति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेमेति यज्ञो वै सुतर्मा नौः, कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौर्वाग्वै सुतर्मा नौर्वाचमेव तदारुह्य तया स्वर्गं लोकमभि संतरति ।।२९।।

हिन्दी—(ऋचा के उत्तरार्ध को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) 'यथाऽति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम' अर्थात् 'जिस वाक् रूप नौका से हम सम्पूर्ण

(१) उदुत्तमं वरुण पाशम् (ऋ० १.२४.१५) इत्यादि च तत्र मन्त्रलिङ्गम्।
(२) 'वरुणो वृणोतीति सतः'–इति निरु० १०.३।
(३) 'वारुणो वै क्रीतः सोम उपनद्धः'–इत्यादि, वारुण्यर्चा परिचरति स्वयैवैनं देवतया परिचरतीत्यन्तम् ब्राह्मणम् तै०सं० ६.१.११) एतदीयमन्त्रास्तु १.२.७-९।
(४) तै०सं० ६.१.६.२।

पापों को पार कर लें उस अच्छी प्रकार से पार उतरने योग्य नौका पर हम लोग आरोहरण करें'। यहाँ **यज्ञो वै सुतर्मा नौः** यज्ञ ही अच्छी प्रकार से तरण करने योग्य नौका है, **कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौः** कृष्णमृगचर्म ही अच्छी प्रकार से पार करने योग्य नौका है और **वाग्वै सुतर्मा नौः** वाणी ही सुष्टु तरणयोग्य नौका है। (इन तीनों अर्थों में) **वाचम् एव अवरुह्य** वाणी (रूप नौका) पर ही सवार होकर **तया** उस (वाणीरूप नौका) के द्वारा **स्वर्गं लोकम्** स्वर्ग लोक को **अभि संतरति** चारो ओर से सम्यग्रूपेण तरण कर जाता है।

सा० भा०—यत्र यज्ञस्य वा कृष्णजिनस्य वा प्रस्तावस्तत्र तत्परत्वेन सुतर्मशब्दो व्याख्येयः। इह तु मन्त्ररूपा वाग्विवक्षिता। तत्तेन मन्त्रापाठेन वाग्रूपामेव नावमारुह्य तया नावा स्वर्गमभिलक्ष्य सम्यक् स्वर्गं तरति।

उक्ताः सर्वा ऋचः प्रशंसति—

ता एता अष्टावन्वाह रूपसमृद्धाः ।।३०।।

हिन्दी—(उन पूर्वोक्त सभी ऋचाओं की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ताः एताः अष्टौ अन्वाह** उन (पूर्वोक्त) इन आठ (ऋचाओं) का (होता) वाचन करता है (जो विवक्षितार्थ कथन के कारण) **रूपसमृद्धाः** अपने रूप से समृद्ध हैं ।।

सा० भा०—विवक्षितार्थप्रतिपादकेन रूपेण समृद्धाः[१]।।

तामेव समृद्धिं विशदयति—

एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति ।।३१।।

हिन्दी—एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम् यही यज्ञ की समृद्धता है कि **यद् रूपसमृद्धम्** जो (यज्ञ अपने) रूप से समृद्ध (अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग से परिपूर्ण) है, **यत् क्रियमाणं कर्म** जिस किये जाते हुए कर्म को **ऋग् अभिवदति** ऋचा कहती है। (यही उसकी रूप-समृद्धि है)।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

आद्यन्तयोर्ऋचोरावृत्तिं विधत्ते—

तासां त्रिः प्रथमान्वाह त्रिरुत्तमाम् ।।३२।।

हिन्दी—(उन आठ ऋचाओं में प्रथम और अन्तिम ऋचा की तीन बार आवृति का

---

(१) एता एवष्टावृचः सोमप्रवहण्य उच्यन्ते। आश्वलायनेन तु विहिता विशेषतः (आश्व०श्रौ० ४.४.१, ४, ६); तथा कात्यायनेनापि का०श्रौ० ७.९.३२-३४। तत्र सोमस्योपोत्था-नादिमन्त्रास्तु तै०सं० १.२.८ अनु०। तद् ब्राह्मणं च ६.१.११ अनु०।

विधान कर रहे हैं—) **तासाम्** उन (आठ ऋचाओं) में **प्रथमाम् त्रिः** प्रथम (ऋचा) को तीन बार और **उत्तमा त्रिः** अन्तिम (ऋचा) को तीन बार **अन्वाह** अनुवाचन करता है।

आवृत्तिसहितानामृचां संख्या प्रशंसति—

ता द्वादश संपद्यन्ते, द्वादश वै मासाः संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिः ।।३३।।

हिन्दी—(आवृत्ति के साथ पठित ऋचाओं की संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ताः द्वादश सम्पद्यन्ते** वे (प्रथम और अन्तिम ऋचा की तीन बार आवृत्ति करने पर उनकी संख्या) बारह हो जाती है। **द्वादश वै मासाः संवत्सरः** संवत्सर बारह महीनों वाला होता है। **संवत्सरः प्रजापतिः** संवत्सर प्रजापति-स्वरूप है।

वेदनं प्रशंसति—

प्रजापत्यायतनाभिरेवाऽऽभी राध्नोति य एवं वेद ।।३४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **प्रजापत्यायतनाभिः एव** प्रजापतिरूप आयतनों (स्थानों) के द्वारा ही **अभीराध्नोति** सभी ओर से समृद्धि को प्राप्त करता है।

आवृत्तिं प्रशंसति—

त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह यज्ञस्यैव तद्बसौ नह्यति स्थेम्ने बलायाविस्रंसाय ।।३५।।

हिन्दी—(प्रथम और अन्तिम ऋचा की तीन-तीन बार आवृति की प्रशंसा कर रहे हैं—) **त्रिः प्रथमाम्** तीन बार प्रथम (ऋचा) और **त्रिः उत्ताम्** तीन बार अन्तिम (ऋचा) का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है, **तत्** उस (प्रथम और अन्तिम ऋचा में तीन-तीन बार वाचन) से **स्थेम्ने** स्थिरता के लिए, **बलाय** शक्ति के लिए और **अविस्रंसयाय** अशिथिलता के लिए **यज्ञस्य बसौं नह्यति** यज्ञ दोनों किनारों को बाँधता है।

सा० भा०—तत्तेनाऽऽवर्तनेन बसौं रज्ज्वा उभयोरन्तयोः स्थितौ मण्याकारौ ग्रन्थी तद्वदत्रापि नह्यति बध्नाति। तच्च बन्धनं स्थेम्ने स्थैर्याय भवति। तस्यैवान्वयव्यतिरेकाभ्यां व्याख्यानं प्राबल्यमविस्रंसनं च॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्यस्य तृतीयाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के तृतीय अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—सोमप्रवहणीर्ऋचो विधाय सोमस्य शकटादवरोहणं विधत्ते—

(सोमस्य शकटादवरोहणम्)

अन्यतरोऽनड्वान्युक्तः स्यादन्यतरो विमुक्तोऽथ राजानमुपावहरेयुः ।।१।।

हिन्दी—(सोम को क्रय का विधान करके सोम को लाने वाले शकट से उतारने का विधान कर रहे हैं—) जिस शकट में **अन्यतरः अनड्वान्युक्तः** एक बैल जुडा हो और **अन्यतरः विमुक्तः** एक (बैल) खुला **स्यात्** होवे (ऐसे शकट से) **राजाननम्** (सोम) राजा को **उपावहरेयुः** उतारना चाहिए। (अर्थात् शकट से सोम उतारते समय एक बैल को शकट में बाँधे रहना और एक को शकट से अलग कर देना चाहिए)।

सा० भा०—क्रयदेशे सोमं शकटे प्रक्षिप्य प्राचीनवंशसमीपे समानीय शकटबद्धयोरनडुहोर्मध्येकंचिदनड्वाहं विमुच्येतरमनवमुच्य राज्ञानं शकटादधस्तादृत्त्विज उपावहरेयुः । युक्तः शकटे बद्धो विमुक्तः शकटाद्वियोजितः ।।

उभयोरनडुहोर्विमोचने दोषमुपन्यस्यति—

(उभयोरनडुहोर्विमोचने दोषविधानम्)

यदुभयोर्विमुक्तयोरुपावहरेयुः पितृदेवत्यं राजानं कुर्युः ।।२।।

हिन्दी—(दोनों बैलों के शकट से अलग कर देने पर दोष को कह रहे हैं—) **यद् उभयोः विमुक्तयोः** यदि दोनों बैलों के शकट से अलग कर दिये जाने पर **उपावहरेयुः** (सोम को शकट से) उतारे तो **राजानं पितृदेवत्यं कुर्युः** तो (सोम) राजा को पितृदेवता से सम्बन्धित कर देते हैं।

सा० भा०—राज्ञः सोमस्य पितृभिः स्वीकृतत्वादयं सामो देवयोग्यो न भवेत् ।।

उभयोरनडुहोः शकटयोगेऽपि दोषमाह—

(उभयोरनडुहोः शकटयोगेऽपि दोषकथनम्)

यद्युक्तयोरयोगक्षेमः प्रजा विन्देत्ताः प्रजाः परिप्लवेरन् ।।३।।

हिन्दी—(दोनों बैलों के शकट में जुड़े रहने पर भी दोष को कह रहे हैं—) **यद् युक्तयोः** यदि दोनों (बैलों) के जुडे रहने पर **परिप्लवेरन्** (सोम को शकट से) उतारे तो **प्रजा अयोगक्षेमम् विन्देत्** प्रजाएँ योग (धनादि की प्राप्ति) और क्षेम (प्राप्त धन की रक्षा) के अभाव को प्राप्त करती हैं।

सा० भा०—अप्राप्तस्य धनादेः संपादनं योगः। प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः। योगसहितः

क्षेमो योगक्षेमस्तदभावः प्रजाः पुत्रादिका विन्देल्लभेत् प्राप्नुयात्।।

योऽनड्वान् विमुक्तस्तच्छालासदां प्रजानां रूपं यो युक्तस्तच्च क्रियाणां, ते ये युक्तेऽन्ये विमुक्तेऽन्य उपावहरन्त्युभावेव ते क्षेमयोगौ कल्पयन्ति ।।४।।

हिन्दी— यः अनड्वान् विमुक्तः जो बैल (शवट से) विमुक्त होता है, **तत्** वह **शालासदां प्रजानां रूपम्** वह घर में रहने वाले (पुत्रादि) प्रजाओं का रूप है और **यः युक्तः** जो जुड़ा होता है **तत् च** वह **क्रियाणाम्** (लौकिक और वैदिक) क्रियाओं का (रूप) है। **ते ये युक्ते अन्ये वियुक्ते** वे जो (शकट से) जुड़े हुए और जो मुक्त होने पर **उपावहरन्ति** (सोम को शकट) से उतारते हैं; **ते** वे **उभौ एव क्षेमयोगौ कल्पयन्ति** क्षेम और योग दोनों को ही सम्पादित (प्राप्त) करते हैं।

सा० भा०—योऽनड्वान् विमुक्तस्तदेतच्छालासदां गृहावस्थितानां प्रजानां पुत्रादीनां रूपम्। योऽनड्वानधस्ताच्छकटे युक्तस्तच्च क्रियाणां लौकिकानां वैदिकानां च रूपम्। यद्वा चक्रमस्यास्तीति चक्रि शकटं तेन चक्रिणा यान्तीति शकटमारुह्य गच्छन्त्यः प्रजाश्चक्रिया-स्तासां रूपम्। एवं सति ते ये यजमानानां मध्ये ये केचिद् बुद्धिमन्तो यजमाना अन्ये युक्त एकस्मिन्ननडुहि शकटबद्धेऽन्ये विमुक्त इतरतस्मिन्ननडुहि शकटाद्वियोजिते सति सोममुपा-हवरन्ति ते बुद्धिमन्त उभावेव क्षेमं योगं च सम्पादयन्ति। तमिममर्थं तैत्तिरीयाश्चाऽऽ-मनन्ति—'यदुभौ विमुच्याऽऽतिथ्यं गृह्णीयाद्यज्ञं विच्छिन्द्यादुभावविमुच्य यथाऽनागतायाऽऽ-तिथ्यं क्रियते तादृगेव तद्विमुक्तोऽन्योऽनड्वान्भवत्यविमुक्तोऽन्योऽथाऽऽतिथ्यं गृह्णाति यज्ञस्य संतत्यै''[१] इति। नन्वेकत्र सोमावरोहणकाल उच्यत इतरत्राऽऽतिथ्येष्टिकाल इति न समान-विषयत्वमिति चेन्न। उभयोरेककालीनत्वात्।।

अथाऽऽख्यायिकामुखेन सोमोपावहरणस्यैशानीं दिशं विधत्ते—

(आख्यायिकाद्वारा सोमोपाहरणस्य दिग्विधानम्)

देवासुरा वा एषु लोकेषु समयतन्त, त एतस्यां प्राच्यां दिश्ययतन्त, तांस्ततोऽसुरा अजयंस्ते दक्षिणस्यां दिश्ययतन्त, तांस्ततोऽसुरा अजयंस्ते प्रतीच्यां दिश्ययतन्त, तांस्ततोऽसुरा अजयंस्त उदीच्यां दिश्ययतन्त, तांस्ततोऽसुरा अजयंस्त उदीच्यां प्राच्यां दिश्ययतन्त, ते ततो न पराजयन्त सैषा दिगपराजिता तस्मादेतस्यां दिशि यतेत वा यातयेद्वेश्वरो हानृणाकर्तोः ।।५।।

हिन्दी—(अब अख्याधिका द्वारा सोम को ले आने की दिशा का विधान कर रहे

(१) तै०सं० ६.२.१.१।

हैं—) **देवासुराः** देवताओं और असुरों ने ही **एषु लोकेषु** इन लोकों में **समयतन्त** परस्पर युद्ध किया। **ते** उन लोगों ने **एतस्यां प्राच्यां दिशि** इस पूर्व दिशा में **अयतन्त** युद्ध किया **ततः** तब **तान्** उन (देवताओं) को **असुराः अजयन्** असुरों ने जीत लिया। **ते दक्षिणस्यां दिशि अयतन्त** पुनः उन लोगों ने दक्षिण दिशा में युद्ध किया। **ततः तान् असुराः अजयन्** तब उन (देवताओं) को असुरों ने पराजित कर दिया **ते प्रतीच्यां दिशि अयतन्त** तब उन लोगों ने पश्चिम दिशा में युद्ध किया **ततः तान् असुराः अजयन्** तब उन (देवताओं) को असुरों ने पराजित कर दिया। **ते उदीच्यां दिशि अयतन्त** उन लोगों ने उत्तर दिशा में युद्ध किया **ततः तान् असुराः अजयन्** तब उन (देवताओं) को असुरों ने पराजित कर दिया। **ते उदीच्यां प्राच्यां दिशि अयतन्त** पुनः उन लोगों ने पूर्वोत्तर दिशा (ईशान कोण) में युद्ध किया **ततः ते न पराजयन्त** तब वे (राक्षस) (देवताओं को) पराजित नहीं कर सके; क्योंकि **सा एषा दिग् अपराजिता** वही (पूर्वोक्त) यह (पूर्वोत्तर) अपराजित दिशा है। **तस्मात्** इसी कारण **एतस्यां दिशि** इस (पूर्वोक्त) दिशा में **यतेत वा यातयेद् वा** प्रयत्न करना चाहिए अथवा प्रयत्न कराना चाहिए । **ह अनृणाकर्तोः ईश्वरः** क्योकि इससे वह ऋणमुक्त होने में समर्थ हो जाता है।

सा० भा०—समयतन्त सङ्ग्राममकुर्वन्। प्राच्यादिषु चतुसृषु दिक्षु देवानां पराजय आसीत्। ऐशान्यां दिशि नास्ति पराजयः। तस्मात्तस्यां दिशि सोमोपावहरणाय यतेत प्रयत्नं कुर्याद्वा यातयेत्प्रयत्नं कारयेद्वा। एवमेव वैकल्यराहित्यं कर्तुं प्रभुर्भवति। अथवा सोमस्य राज्ञो विजयित्वेनोत्तरत्र प्रशंसा कर्तुं देवासुरा वा इत्यादिना लौकिकस्य राज्ञ ऐशान्यां दिशि स्वकीयभृत्यप्रेरणं प्रतिपादितम्।।

इदानीं सोमस्य जयहेतुत्वं दर्शयति—

(सोमस्य जयहेतुत्वकथनम्)

ते देवा अब्रुवन्नराजतया वै नो जयन्ति, राजानं करवामहा इति, तथेति, ते सोमं राजानमकुर्वंस्ते सोमेन राज्ञा सर्वा दिशोऽजयन्नेष वै सोमराजा यो यजते, प्राचि तिष्ठत्यादधति, तेन प्राचीं दिशं जयति, तं दक्षिणा परिवहन्ति, तेन दक्षिणां दिशं जयति, तं प्रत्यञ्चमावर्तयन्ति, तेन प्रतीचीं दिशं जयति, तमुदीचस्तिष्ठत, उपावहरन्ति, तेनोदीचीं दिशं जयति ।।६।।

हिन्दी—(अब सोम की विजय-हेतुता को कह रहे हैं—) **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने परस्पर कहा कि **नः अराजतया वै** हम लोगों के राजाविहीन होने के कारण ही (प्राच्यादि दिशाओं में) **जयन्ति** (असुर लोग हम लोगों को) पराजित कर देते हैं। तो **राजानं करवामहै** हम लोग राजा को बना लें। **तथा** (सभी लोगों ने स्वीकार करते हुए

कहा) ठीक है। तब **ते सोमं राजानम् अकुर्वन्** उन (देवताओं) ने सोम को राजा बनाया। **ते सोमेन राज्ञा** उन (देवताओं) ने सोम राजा के सहयोग से **सर्वाः दिशः अजयन्** सभी दिशाओं को जीत लिया। अतः **यः यजते** जो (सोमयाग) करता है। **एषः सोमराजा** यही सोमराजा (सोम है राजा जिसका ऐसा) होता है। (सोम वहन करने वाले शकट पर) **प्राचि तिष्ठति** पूर्वाभिमुख स्थित होकर **आदधति** (सोम को) रखता है **तेन** इस (पूर्वाभिमुख होकर सोम रखने) से **प्राची दिशं जयति** (यजन करने वाला) पूर्व दिशा को जीत लेता है। **तं दक्षिणा परिवहन्ति** उस (शकट) को वे दक्षिण की ओर मोड़ कर ले जाते हैं; **तेन दक्षिणां दिशं जयति** उस (दक्षिण की ओर मोड़ कर चलाने) से दक्षिण दिशा को जीत लेते हैं। **तं प्रत्यञ्चम् आवर्तयन्ति** पुनः उस (रथ) को पश्चिम दिशा में मोड़ते हैं। **तेन प्रतीचीं दिशं जयति** उस (पश्चिम की ओर मोड़ने) से पश्चिम दिशा को जीत लेता है। **तम् उदीचः तिष्ठतः** उस शकट के उत्तर ओर रहने पर **उपावहरन्ति** (सोम को) उतारते हैं। **तेन उदीचीं दिशं जयति** उस (उत्तर की ओर से उतारने) से उत्तर दिशा को जीत लेता है।

सा० भा०—ते देवाः परस्परमेवमब्रुवन्, अस्माकं राजाभावात् प्राच्यादिदिक्षु पराजय आसीदसुराणां जय आसीत्। ततो राजानं संपादयाम इति विचार्य सोममेव राजानं कृत्वा प्राच्यादिदिक्षु जयं प्राप्ताः। एवं सति यो यजमानः सोमयागं करोति, एष एव सोमराजा। सोमो राजा यस्येति बहुव्रीहिः। अतः सोमाख्यस्वामिनः प्रचारादयं यजमानः सर्वत्र जयति। तत्कथमिति चेत्तदुच्यते। सोमवाहनार्थे शकटे प्राचि तिष्ठति प्राङ्मुखेऽवस्थिते सत्यृत्विजस्तत्र सोममादधाति प्रक्षिपन्ति तेन सोमसंबन्धिशकटस्य प्राङ्मुखत्वेन यजमानः प्राच्यां दिशि जयं प्राप्नोति। शकटस्थितं सोमं दक्षिणा परिवहन्ति शकटं दक्षिणाभिमुखत्वेन पर्यावृत्य वहन्ति तेन दक्षिणस्यां दिशि जयः। ततः शकट प्राङ्मुखमावर्तयन्ति तेन प्रतीच्यां दिशि जयः। तमुदीचस्तिष्ठत उदङ्मुखत्वेनावस्थिताच्छकटात्तं सोममुपावहरन्ति तेनोदङ्मुखत्वेनोदीच्यां दिशि जयः। एवं सोमराजप्रसादाद् यजमानः सर्वा दिशो जयति। अत्रार्थवादेन विधय उन्नेयाः।[1] प्राङ्मुखे शकटे सोममादध्युः। ततो दक्षिणाभिमुखत्वेन परिवहेयुः। ततः प्रत्यङ्मुखत्वेनाऽऽवर्तयेयुः। तत उदङ्मुखाच्छकटात् सोममुपावहरेयुरिति। एतत्सर्वमभिप्रेत्याऽऽपस्तम्बः संजग्राह—'प्रच्यवस्व भवस्पते इति प्राञ्चोऽभिप्रयाय प्रदक्षिणमावर्तन्ते' इति 'अग्रेण प्राग्वंशं प्रागीषमुदगीषं वा शकटमवस्थाप्य'[2] इति॥

वेदनं प्रशंसति—

सोमेन राज्ञा सर्वा दिशो जयति य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य

(१) विधेयास्त्विह चत्वारः; त एव प्रदर्श्यन्ते 'प्राङ्मुख' इत्यादिना।

(२) आप०श्रौ० १०.२९.१-११।

को) जानता है वह **सोमेन राज्ञा** सोम राजा के सहयोग से **सर्वाः दिशः जयति** सभी दिशाओं को जीत लेता है।

सा० भा०— अत्र शब्दादेव श्रुतस्यापि सर्वा दिशो जयतीति वाक्यस्य द्विरावृत्ति: कर्तव्या ॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य तृतीयाध्याये तृतीय: खण्ड: ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के तृतीय अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—सोमोपावहरणं विधायाऽऽतिथ्येष्टिरूपं कर्म विधत्ते—

(आतिथ्येष्टिविधानम्)

हविरातिथ्यं निरुप्यते सोमे राजन्यागते ।।१।।

हिन्दी—(सोम के उतारने का विधान करके उसके आतिथ्येष्टि रूप कर्म का विधान कर रहे हैं—) **सोमे राजनि आगते** सोम राजा के (प्राचीनवंश के पास) आ जाने पर (उसके सम्मान के लिए) **आतिथ्यं हविः निरुप्यते** आतिथ्य से सम्बन्धित हवि का निर्वपन करते हैं।

सा० भा०—प्राचीनवंशसमीपं सोमे राजनि समागते सति तस्यातिथिरूपत्वात् तदीय-मातिथ्याख्यकर्मसबन्धि हविर्निर्वपेत् । यद्यप्यस्य हविषोऽतिथिर्देवता न भवति विष्णुदेव-ताया वक्ष्यमाणत्वात् तथाऽपि सोमस्यातिथिरूपस्योपचाराय क्रियमाणत्वादातिथ्यमिति कर्मनाम युक्तम्॥

एतमेवाभिप्रायं विस्पष्टयति—

सोमो वै राजा यजमानस्य गृहानागच्छति तस्मा एतद्धविरातिथ्यं निरुप्यते । तदातिथ्यास्याऽऽतिथ्यत्वम् ।।२।।

हिन्दी—(उपर्युक्त कथन के अभिप्राय को स्पष्ट कर रहे हैं—) **सोमः वै राजा** राजा सोम **यजमास्य गृहान् आगच्छति** यजन करने वाले के घर आते हैं; तब **तस्मै** उस (राजा सोम के लिए **एतद् आतिथ्यं हविः** यह अतिथि-सम्बन्धी हवि **निरूप्यते** प्रदान की जाती है **तद् आतिथ्यस्य आतिथ्यत्वम्** यही आतिथ्य का अतिथि होना होता हैं।

सा० भा०—तिथिविशेषमनपेक्ष्य भोजनार्थं कस्यांचिद्गृहं प्रत्यकस्माद्यः समागतः सोऽतिथिः। सोमोऽपि तथाविधत्वादतिथिरित्युच्यते। तत्संबन्धित्वादातिथ्यमिति नामधेयम्॥[१]

हविर्विशेषं विधत्ते—

(नवकपालहविर्द्रव्याणां विधानम्)

नवकपालो भवति, नव वै प्राणाः, प्राणानां क्लृप्त्यै प्राणानां प्रतिप्रज्ञात्यै ॥३॥

हिन्दी—(अतिथि-सम्बन्धी हविद्रव्य-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **नवकपालः भवति** नव कपालों में पकाया गया (पुरोडाश हविष्) होता है। **नव वै प्राणाः** वस्तुतः प्राण भी नौ (संख्या वाले) हैं। अतः **प्राणानां क्लृप्त्यै** प्राणों के स्वव्यापार-सामर्थ्य के लिए और **प्राणानां प्रतिप्रज्ञाप्त्यै** प्राणों के प्रज्ञान के लिए (ये नौ कपाल वाले पुरोड़ाश होते हैं)।

सा० भा०—नवसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशो नवकपालः। पुरुषस्य शिरोगतेषु सप्तसु च्छिद्रेषु वर्तमानाः सप्त प्राणाः। अधोभागावस्थितयोर्वर्तमानौ द्वौ। एवं नवसंख्याकाः प्राणाः। तथा चान्यत्र श्रूयते—'सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ' इति। एवं सति कपालगता नवसंख्या प्राणानां क्लृप्त्यै स्वव्यापारसामर्थ्याय भवति। सामर्थ्ये च प्राणोऽयमीदृश इति सर्वैः प्राणाः प्रज्ञाता भवन्ति॥

द्रव्यं विधाय देवतां विधत्ते—

(विष्णुदेवत्यविधानम्)

वैष्णवो भवति, विष्णुर्वै यज्ञः, स्वयैवैनं तद्देवतया स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ॥४॥

हिन्दी—(हविर्द्रव्य का विधान करके अब देवता का विधान कर रहे हैं—) **वैष्णवः भवति** (वह पुरोडाश) विष्णुदेवता वाला होता है क्योंकि **विष्णुः वै यज्ञः** विष्णु ही यज्ञ रूप है अतः **एनम्** यह (यज्ञ) को **स्वया एव तद्देवतया** उसके ही अपने देवता से और **स्वेन छन्दसा** अपने ही छन्द से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

---

(१) (i) "अथ यस्मादातिथ्यं नाम। अतिथिर्वा एष तस्यागच्छति यत् सोमः क्रीतस्तस्मा एतद् यथा राज्ञे वा ब्राह्मणाय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेत्, तदह मानुषं हविर्देवानामेवमस्मा एतदातिथ्यं करोति। तदाहुः—पूर्वोऽतीत्य गृह्णीयादिति यत्र वा अर्हन्तमागतं नापचायन्ति क्रुध्यति वै स तत्र हापचितो भवति"—इत्यादि शत०ब्रा० ३.३.२.२,३। (ii) 'क्रीतं सोमं शकटे संस्थाप्य प्राचीनवंशं प्रति आनीयमानेऽभिमुखे यामिष्टिं निर्वपति, सेयमातिथ्या'–इति मी०अधि०टी० ४.२.१४।

सा० भा०—विष्णुर्देवता यस्य पुरोडाशस्य सोऽयं वैष्णवः। विष्णोर्व्यापित्वात् सर्वयज्ञस्वरूपत्वम्। तथा सत्यातिथ्येष्टेरपि यज्ञत्वाद्विष्णुः स्वकीया देवता भवति। तया देवतयैनं समृद्धं करोति। यद्यप्यत्र मन्त्राविहितत्वात्तच्छन्दो न प्रकृतं तथापि यज्ञस्य विहितत्वाद्याज्यानुवाक्ययोरवश्यंभावेन च्छन्दोऽर्थसिद्धम्। तेन स्वकीयेन च्छन्दसा यज्ञं समृद्धं करोति। ते च याज्यानुवाक्ये आश्वलायनेन दर्शिते—'इदं विष्णुर्विचक्रमे' 'तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम्'[१] इति। तयोश्च गायत्रीत्रिष्टुप् चेति च्छन्दोद्वयम्। तेन च्छन्दोद्वयेनास्य यज्ञस्य समृद्धिः॥

अत्र शाखान्तरोक्तानग्नेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वेत्यादिकांश्च निर्वापमन्त्रान् हृदि[२] निधाय तत्प्रशंसारूपमर्थवादं दर्शयति—

(शाखान्तरीयनिर्वापमन्त्रप्रशंसनम्)

सर्वाणि वाव च्छन्दांसि च पृष्ठानि च सोमं राजानं क्रीतमन्वायन्ति। यावन्तः खलु वै राजानमनुयन्ति तेभ्यः सर्वेभ्य आतिथ्यं क्रियते ।।५।।

हिन्दी—सर्वाणि वाव छन्दांसि सभी छन्द और **पृष्ठानि** (बृहद, रथन्तर, वैरूप इत्यादि रूप) पृष्ठ (नामक स्तोत्र) (सोम के अनुचर होकर) **क्रीतं सोमं राजानम्** खरीदे गये सोम राजा के **अन्वायन्ति** पीछे-पीछे (यजमान के घर) आते हैं अतः **यावन्तः एव** जितने भी (छन्दों और पृष्ठों के अभिमानित देवता) **राजानम् अनुयन्ति** (सोम) राजा के पीछे-पीछे (यजन करने वाले के घर) आते हैं। **तेभ्यः सर्वेभ्यः** उन सभी देवताओं के लिए **आतिथ्यं क्रियते** आतिथ्य किया जाता है।

सा० भा०—गायत्री त्रिष्टुबित्यादीनि सर्वच्छन्दांसि बृहद्रथंतरवैरूपादिसामसाध्यानि पृष्ठस्तोत्राणि। तदुभयाभिमानिनो देवा अनुचराः सन्तो राजानमनु यजमानगृहं प्रत्यागच्छन्ति। अतो राज्ञा सहाऽऽगतेभ्यः सर्वेभ्यः सहाऽऽतिथ्यं कर्तव्यम्। तथा सत्यग्नेरातिथ्यमसीत्यादिमन्त्रैः[३] सर्वेषामनुचराणां गायत्र्यादीनां तृप्तिर्भवतीत्यर्थः। तथा च **तैत्तिरीया** आमनन्ति—'यावद्भिर्वै राजाऽनुचरैरागच्छति सर्वेभ्यो वै तेभ्य आतिथ्यं क्रियते छन्दांसि खलु वै सोमस्य राज्ञोऽनुचराण्यग्नेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वेत्याह गायत्र्या एवैतेन करोति सोमस्याऽऽतिथ्यमसि विष्णवे त्वेत्याह त्रिष्टुभ एवैतेन करोति' इत्यादि।[४] अत्राऽऽतिथ्येष्टिमध्येऽग्निमन्थनमापस्तम्ब

---

(१) आश्व०श्रौ० ४.५.३। ऋ०सं० १.२२.१७; १.१५४.५।

(२) तै०सं० १.२.१०.१-५।

(३) तै०सं० ६.२.१.१।

(४) अग्नेरातिथ्यमसीति पञ्च निर्वापमन्त्राः तै०सं० प्रथमे काण्डे (१.२.१०.१-५) श्रुताः, षष्ठे (६.२.१.२) च ते व्याख्याताः, आपस्तम्बेन विहिताश्च 'अग्नेरातिथ्यमसीत्येतैः प्रतिमन्त्रम्'–इति (१०.३०.८)।

आह—'चतुर्होत्रातिथ्यमासाद्य संभारयजूंषि व्याचष्टे। यजमानं वाचयतीत्येके। पशुवन्निर्मथ्यः सामिधेन्यश्च'[१] इति। आश्वलायनोऽप्याह—'आतिथ्येलान्ता तस्यामग्निमन्थनम्'[२] इति।

तदिदमग्निामन्थनं विधत्ते—

(अग्निमन्थनविधानम्)

अग्निं मन्थन्ति सोमे राजन्यागते। तद्यथैवादो मनुष्यराज आगतेऽन्यस्मिन् वाऽर्हत्युक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्त एवमेवास्मा एतत्क्षदन्ते यदग्निं मन्थन्त्यग्निर्हि देवानां पशुः ।।६।।

हिन्दी—(अब अग्निमन्थन का विधान कर रहे हैं—) **सोमे राजनि आगते** सोम राजा के (यजमान के घर) आ जाने पर **अग्निं मन्थन्ति** अग्नि का मन्थन (मन्थन द्वारा अग्नि का उत्पादन) करते हैं। **तद्यथा** जैसे कि **अदः मनुष्यराजे आगते** (लोक में) मनुष्य राजा के आ जाने पर **अन्यस्मिन्** अथवा अन्य (किसी महान् पुरुष के) आ जाने पर **उक्षाणं वा वेहतं वा** (किसी) वृषभ अथवा गर्भघातक (बाँझ) गाय को **क्षदन्ते** मारते हैं, **एवमेव** इसी प्रकार **अस्मै** इस (सोम) के लिए **एतत् क्षदन्ते** यह (अग्नि मन्थन) करते हैं। **यद् अग्निं मन्थन्ति** जो अग्नि का मन्थन करते हैं **अग्निः हि देवानां पशुः** क्योंकि अग्नि ही देवताओं में पशु-स्थानीय है (अर्थात् जिस प्रकार बैल सोम का वहन करता है उसी प्रकार अग्नि भी देवताओं के हविष् को ले जाता है)।

सा० भा०—लोके यथैवादोऽतिथिसत्करणं तथैव सोमस्यापि तत्सत्कारणं द्रष्टव्यम्। तावेतौ दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकौ मनुष्यराज इत्यादिना स्पष्टीक्रियेते। महति मनुष्यभूपतौ वाऽन्यस्मिंश्चिद्विद्यावृत्तादिसंपन्नत्वेनार्हति पूज्ये महति ब्राह्मणेऽब्राह्मणे वा[३] गृहं प्रत्यागते सत्यतिथिसत्कारार्थं शास्त्रकुशलाः शिष्टाः कंचिदुक्षाणं वृषभं वा 'वेहतं' गर्भघातिनीं वृद्धां गां वा 'क्षदन्ते' हिंसन्ति। अयं सत्कारः स्मृतिषु प्रसिद्धो युगान्तरधर्मो द्रष्टव्यः[४]। एवमेवात्रापि, 'अग्नि मन्थन्ति' इति यदस्ति, 'एतदस्मै' सोमायातिथिसत्कारार्थं 'क्षदन्ते' अग्नेर्देवपशुत्वात्। यथाऽनड्वान् हव्यं वहति; तथाऽग्निरपि हव्यं वहति तस्मादग्नेः पशुसाम्यम्।

अत्र **मीमांसा** । सप्तमाध्याये तृतीयपादे चिन्तितम्—

---

(१) आप०श्रौ० १०.३१.१०-१२।

(२) आश्व०श्रौ० ४.५.१,२।

(३) षडर्घ्या भवन्ति। आचार्य ऋत्विक् स्नातको राजा विवाह्यः प्रियोऽतिथिरिति इति गो० गृह्य० ३.१०.२२,२३।

(४) शत०ब्रा० ३.४.१.२। गो०गृह्य० ४.१०.१। 'महोक्षं वा महाजं श्रोत्रियायोपकल्पयेत्'—इति याज्ञ०सं० १.१.९। 'दाशगोघ्नौ सम्प्रदाने'—इति पा०सू० ३.४.७३। 'गोघ्नोऽतिथि' सि०कौ०।

वैष्णवे त्रिकपाले वैष्णवान्नवकपालतः ।
धर्मातिदेशः स्यान्नो वा विद्यतेऽत्राग्निहोत्रवत् ॥
श्रुत्या वैष्णवशब्दोऽयं देवताया विधायकः ।
स गौणवृत्तिमाश्रित्य धर्मान्नातिदिशत्यतः[१] ॥

आतिथ्येष्टौ वैष्णवो नवकपालो विहितः। तत्र श्रुतौ वैष्णवशब्दो राजसूयगते वैष्णवे त्रिकपाले प्रयुज्यमानोऽग्निहोत्रशब्दवन्नवकपालधर्माननतिदिशतीति पूर्वः पक्षः। विष्णुर्देवता यस्येति विग्रहे विहिततद्धितप्रत्ययो[२] देवतामभिधत्ते, न तु धर्मान्। तस्मान्नातिदिशति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य तृतीयाध्याये चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के तृतीय अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा॰भा॰—अग्निमन्थनं विधाय तत्रत्या ऋचो विधातुं प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(अग्निमन्थनीयानां प्रैषमन्त्रः)

अग्नये मथ्यमानायानुब्रूहीत्याहाध्वर्युः ॥१॥

हिन्दी—(अग्निमन्थन का विधान करके उसमें प्रयुक्त मन्त्रों का विधान करने के लिए प्रैष मन्त्र को कह रहे हैं—) '**अग्नये मथ्येमानाय** मथ्यमान अग्नि के लिए **अनुब्रूहि** मन्त्र का पाठ करो–**इति अध्वर्युः आह** इस प्रकार अध्वर्यु (होता से प्रैष को) कहता है।

सा॰भा॰—तत्र प्रथमामृचं विधत्ते—

(अग्निमन्थनीयत्रयोदशमन्त्रविधानम्)

अभि त्वा देव सवितरिति सावित्रीमन्वाह ॥२॥

हिन्दी—(अग्निमन्थन वाली ऋचाओं में प्रथम ऋचा का विधान कर रहे हैं—) '**अभित्वा देव सवितः' इति सावित्रम् अन्वाह** इस सविता देवता वाली (ऋचा) को (होता) पढ़ता है।

सा॰भा॰—सविता देवता गायत्र्या ऋचः, सा सावित्री। अत्र च, अभि त्वा देव सवितरिति सविता मन्त्रदेवत्वेन श्रूयते तस्मादियमृक्सावित्री[३]॥

(१) जै॰न्या॰मा॰वि॰ ७.३.६.१७। (२) 'सास्य देवता'–इति पा॰सू॰ ४.२.२४।
(३) ऋ॰ १.२४.३।

अत्र प्रैषानुवचनमन्त्रयोर्वैयाधिकरण्यरूपं चोद्यमुद्भावयति—

तदाहुर्यदग्नये मथ्यमानायानुवाचाऽऽहाथ कस्मात्सावित्रीमन्वाहेति ।।३।।

हिन्दी—(इस विषय में प्रश्न की उद्भावना कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ वेदज्ञ) प्रश्न करते हैं—'**अग्नये मथ्यमानाय अनुवाच** मथ्यमान अग्नि के लिए वाचन करो' **आह** यह (अध्वर्यु द्वारा होता के लिए) कहा गया है, **अथ कस्मात्** तो किस कारण से (होता) **सवित्रीम् अन्वाह** सविता से सम्बन्धित (ऋचा) का वाचन करता है?

सा०भा०—तत्तत्र ब्रह्मवादिनश्चोद्यमाहुः। यद्यस्मात्कारणादध्वर्युरग्नये मथ्यमानायेत्यग्नयेऽनुकूलया वाचा प्रैषमन्त्रमाह तत्तस्मात्कारणादाग्नेयी होत्राऽनुवक्तव्या तां परित्यज्याथानन्तरं कस्मात्कारणाद्धोता सावित्रीमृचमनुब्रूते। इतिशब्दश्चोद्यसमाप्त्यर्थः।

तस्य चोद्यस्योत्तरमाह—

सविता वै प्रसवानामीशे। सवितृप्रसूता एवैनं तन्मन्थन्ति तस्मात्सावित्रीमन्वाह ।।४।।

हिन्दी—(उसका उत्तर दे रहे हैं—) **सविता वै प्रसवानाम् ईशे** सविता ही प्रेरणा देने वालों का स्वामी है **सवितृप्रसूता एव** सविता द्वारा प्रेरित हुआ ही **एनं तद् मन्थन्ति** इस (अग्नि) को वे मन्थन करते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **सावित्रीम् अन्वाह** सविता से सम्बन्धित (ऋचा) का अनुवाचन करता है।

सा०भा०—योऽयं सविता देवः स एव प्रसवानां कर्मस्वनुज्ञानामीशे स्वामी भवति। तथा सति तत्तेन मन्त्रपाठेन सवित्राऽनुज्ञाता एव सन्त एनमग्निं मन्थन्ति। तस्मात्कारणात्सावित्रीमृचमनुब्रूयात्।।

द्वितीयामृचं विधत्ते—

मही द्यौः पृथिवी च न इति द्यावापृथिवीयामन्वाह[1] ।।५।।

हिन्दी—(द्वितीय ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'मही द्यौः पृथिवी च नः' **इति द्यावापृथिवीयाम् अन्वाह** इस द्यावापृथिवी से सम्बन्धित (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है।

सा०भा०—द्यौश्च पृथिवी च देवते यस्या ऋचः सेयं द्यावापृथिवीया।

अत्रापि पूर्ववच्चोद्यपरिहारौ दर्शयति—

तदाहुर्यदग्नये मथ्यमानायानुवाचाऽऽहाथ कस्माद्द्यावापृथिवीया-

---

(१) ऋ० १.२२.१३।

मन्वाहेति, द्यावापृथिवीभ्यां वा एतं जातं देवाः पर्यगृह्णंस्ताभ्यामेवा-द्यापि परिगृहीतस्तस्माद्द्यावापृथिवीयामन्वाह ।।६।।

हिन्दी—(इस ऋचा के विषय में भी शङ्का और उसके समाधान को दिखला रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कतिपय वेदज्ञ) प्रश्न करते हैं कि (अध्वर्यु होता से) **'मथ्यमानाय अग्नये अनुवाच** मथ्यमान अग्नि के लिए अनुवाचन करो' **इति आह** यह कहता है **अथ कस्मात्** तब किस कारण से **द्यावापृथिवीयाम् अन्वाह** (होता) द्यावापृथिवी से सम्बन्धित (ऋचा) का अनुवाचन करता है? (उत्तर—) **एतं जातम्** इस उत्पन्न हुए (अग्नि) को **देवाः** देवताओं ने **द्यावापृथिवीभ्यां वै** द्यावापृथिवी के मध्य से ही **पर्यगृह्णन्** पकड़ लिया और **ताभ्यामेव** उन्हीं दोनों (द्यावापृथिवी) के मध्य से ही **अद्यापि परिगृहीतः** आज भी (अग्नि को) पकड़ा जाता है **तस्मात्** इसी कारण **द्यावापृथिवीयाम् अन्वाह** (होता) द्यावापृथिवी से सम्बन्धित ऋचा का पाठ करता है।

सा० भा०—पुरा कदाचिद्देवा उत्पन्नमग्निं द्यावापृथिवीभ्यां परिगृहीतवन्तः। अद्यापि ताभ्यामेव परिगृहीतो दृश्यते। पावकोऽग्निर्भूम्या परिगृहीतः प्रकाशकसूर्यरूपोऽग्निर्दिवा परिगृहीतः। तस्मादग्निपरिग्रहाय द्यावापृथिवीदेवताकाया ऋचोऽनुवचनं युक्तम्॥

तृतीयाद्यास्तिस्र ऋचो विधत्ते—

त्वामग्ने पुष्करादधीति[1] तृचमाग्नेयं गायत्रमन्वाहाग्नौ मथ्यमाने। स्वयैवैनं तद्देवतया स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ।।७।।

हिन्दी—(तृतीय से लेकर पञ्चम तक इन तीन ऋचाओं का विधान कर रहे हैं–) **मथ्यमाने अग्नौ** अग्नि के मन्थन करते समय **'त्वामग्ने पुष्करादधि' इति आग्नेयं गायत्रं तृचम्** इस अग्नि देवता वाले गायत्री छन्दस्क तृच का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है। **तत्** इससे **एनम्** इस (अग्नि) को **स्वया देवतया** अपने देवता और **स्वेन छन्दसा एव** अपने (गायत्री) छन्द से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—अस्य तृचस्याग्निदेवताकत्वेन वैयाधिकरण्यचोद्यानुदयात् स्वयैवेत्यादिना प्रशंसैव क्रियते। गायत्रीछन्दोऽग्नेः स्वकीयमुभयोः प्रजापतिमुखजन्यत्वात्।

प्रथमायाऽमृचि द्वितीयपादमनूद्य प्रशंसति—

अथर्वा निरमन्थतेति रूपसमृद्धमेतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति ।।८।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा 'त्वामग्ने' के द्वितीय पाद को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे

---

(१) ऋ० ६.१६.१३-१५।

हैं—) **'अथर्वा निरमन्थत** अथर्वा ऋषि ने सम्पूर्ण रूप से मन्थन किया' **इति** इस कथन से **रूपसमृद्धम्** (यह अग्निमन्थनरूप कर्म अपने ही) स्वरूप से समृद्ध है। **एतद् वै यज्ञस्य समृद्धम्** यही यज्ञ की समृद्धि है। **यद् रूपसमृद्धम्** जो रूप से समृद्ध है, वह **क्रियमाणं कर्म** किये जाते हुए (अग्निमन्थन) कर्म को **ऋगभिवदति** ऋचा कह रही है।

सा० भा०—अथर्वाख्य ऋषिर्निशेषेण मन्थनं कृतवानित्युच्यते। तदेतद्वचनमग्निमन्थनस्याऽऽनुकूल्येन रूपेण समृद्धम्।

इत्थमुक्तास्वग्निमन्थनास्वृक्षु पञ्चस्वनूक्तासु षष्ठप्रभृतीनामृचामनुवचनात् पूर्वं नैमित्तिकाः काश्चिदृचो विधत्ते—

(तत्र नैमित्तिकानां रक्षोघ्नानां नवानामृचामनुवाचनविधानम्)

स यदि न जायेत यदि चिरं जायेत राक्षोघ्न्यो गायत्र्योऽनूच्याः ।।९।।

हिन्दी—सः यदि न जायेत वह (अग्नि) यदि उत्पन्न न हो अथवा **यदि चिरं जायेत्** यदि देर से उत्पन्न हो तो **राक्षोघ्न्यः गायत्र्यः अनूच्याः** (इस अग्नि की उत्पत्ति के लिए) राक्षसविनाशक गायत्री छन्द वाली (ऋचा) का पाठ करना चाहिए।

सा० भा०—पञ्चानामृचामनुवचने सति तस्मिन् काले यदि सोऽग्निर्नोत्पद्येत तत उत्पत्तिलिङ्गं धूमादिरूपं यदि न दृश्येत दृश्यमानेऽपि वा लिङ्गे यदि सहसा नोत्पद्यते किंतु विलम्बेन तदानीं सहसा तदुत्पत्त्यर्थं रक्षोहननलिङ्गोपेता गायत्रीछन्दस्का ऋचोऽनुब्रूयात्।

प्रतीकग्रहणेन ता ऋचो दर्शयति—

अग्ने हंसिन्य[१] त्रिणमित्येताः ।।१०।।

हिन्दी—(उस रक्षोघ्न ऋचाओं को दिखला रहे हैं—) 'अग्ने हंसि' इत्यादि **त्रिणम्** नव ऋचाओं वाला (रक्षोघ्न सूक्त है) **इति एताः** इन (नौ ऋचाओं) का वाचन करें।

सा० भा०—अग्ने हंसीत्यादिके सूक्ते[१] नवर्चो विद्यन्ते। एता रक्षोहननलिङ्गकाः।।[२]

तासामनुवचने प्रयोजनमाह—

रक्षसामपहत्यै ।।११।।

हिन्दी—इन ऋचाओं का पाठ **रक्षसाम् अपहत्यै** राक्षसों के विनाश के लिए होता है।

कः प्रसङ्गो रक्षसामित्याशङ्क्याऽऽह—

---

(१) ऋ०सं० १०.११८.१-९।

(२) तथा चानुक्रम्यते—'अग्ने हंस्युरुक्षय आमहीयव आग्नेयं राक्षोघ्नं गायत्रं तु'—इति। आश्वलायनेनापि सूत्रितम्—अजायमाने त्वेतस्मिन्नेवावसानेऽग्ने हंसिन्यत्रिणमिति सूक्तमावपेत' इति श्रौ० २.१६.३,४।

रक्षांसि वा एनं तर्ह्यालभन्ते यर्हि न जायते यर्हि चिरं जायते ।।१२।।

हिन्दी—**यर्हि न जायते** जब अग्नि उत्पन्न नहीं होता अथवा **यर्हि चिरं जायते** जब देर से उत्पन्न होता है, **तर्हि** तब तक **एनम्** इस (अग्नि) को **रक्षांसि आलभन्ते** राक्षस-लोग पकड़े रहते हैं।

सा०भा०—यस्मिन् काले मथ्यमानस्य वह्नेः सर्वथाऽनुत्पत्तिर्विलम्बो वा भवेत्तदानीमेवं वह्निं रक्षांस्येवाऽऽलभन्ते संस्पृशन्ति प्रतिबध्नन्तीत्यर्थः। ततो रक्षोहननाय ता ऋचः पठनीयाः॥

नैमित्तिका ऋचो विधाय प्रकृतामेव षष्ठीमृचं विधत्ते—

स यद्येकस्यामेवानूक्तायां जायेत यदि द्वयोरथोत ब्रुवन्तु जन्तव इति जाताय जातवतीमभिरूपामनुब्रूयात् ।।१३।।

हिन्दी—(प्रकृत रूप वाली षष्ठी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **यदि एकस्यामेव अनूक्तायां** यदि एक ही ऋचा के वाचन कर देने पर **जायेत्** (अग्नि) उत्पन्न हो जाय अथवा **यदि द्वयोः** यदि दो (ऋचाओं) के (पाठ कर देने पर उत्पन्न हो जाय) **अथ** तब **जाताय** (अग्नि की) उत्पत्ति के लिए 'उत ब्रुवन्तु जन्तवः' **इति** इस **जातवतीम् अभिरूपाम्** जन्म वाचक शब्द वाली अभिरूप (ऋचा) का **अनुब्रूयात्** (होता) अनुवाचन करे।

सा०भा०—राक्षोघ्नीनामृचां मध्ये यद्येकस्यामेव पठितायां स वह्निर्जायेत यदि वा द्वयोः पठितयोरुत्पद्येत। एवं तृतीयादीनामुलक्षणम्। अथेदानीमुत्पत्तिलक्षण एव, उत ब्रुवन्त्वित्येताम्[1] 'अनुब्रूयात्'। सा च जातायाभिरूपा जातस्याग्नेरनुकूला। तदेवाऽऽनुकूल्यं जातवतीमितिशब्देन स्पष्टीक्रियते। जातं जन्मवाचिपदं तदस्यामस्तीति जातवती तस्या ऋचो द्वितीयः पाद एवं पठ्यते—'उदग्निर्वृत्रहाऽजनि' इति। तस्मिन्नजनीति जन्मवाचकं पदमस्ति।

अस्या ऋचोऽभिरूपत्वं प्रशंसति—

यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।१४।।

हिन्दी—**यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो यज्ञ के अभिरूप है, **तत् समृद्धम्** वह यज्ञ की समृद्धि है।

सप्तमीमृचं विधत्ते—

आ यं हस्ते न खादिनमिति ।।१५।।

हिन्दी—(सप्तमी ऋचा को कह रहे हैं—) 'आ यं हस्ते न खादिनम्' **इति** इस (सप्तमी ऋचा का होता वाचन करें)।

---

(१) ऋ०सं० १.७४.३।

सा० भा०—अनुब्रूयादिति शेषः। सा च संहितायां पठिता—

'आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति।
विशामग्निं स्वध्वरम्'[१]॥

तस्या अयमर्थः–यंशब्दः प्रसिद्धवाची। नशब्द उपमार्थः। यं मन्थनेन प्रसिद्धम् 'अग्नि हस्ते न' हस्ते इव ऋत्विजः 'आ बिभ्रति' समन्ताद्धारयन्ति। तत्तदृत्विजां हस्ताभ्यां मन्थनं हस्तधारणसदृशं शिशुं जातं नेत्यनेन दृष्टान्तोऽभिधीयते। जातं शिशुमिव। यथा सद्यः समुत्पन्नं शिशुं हस्ताभ्यां धारयन्ति तद्वत्। कीदृशमग्निं विशां स्वध्वरम्, शोभनोऽध्वरो यागो यस्याग्नेः सोऽयं स्वध्वरः। विशां प्रजानामृत्विग्यजमानरूपाणामध्वरनिष्पादकम्। पुनरपि कीदृशम्। खादिनं हविरादीनां भक्षकमिति।

अस्यामृचि प्रथमपादे हस्तशब्देन विवक्षितमर्थं दर्शयति—

हस्ताभ्यां ह्येनं मन्थन्ति ।।१६।।

हिन्दी—(इस ऋचा में प्रयुक्त 'हस्त' शब्द के विवक्षितार्थ को दिखना रहे हैं—) **हस्ताभ्यां हि** दोनों हाथों से ही **एनं मन्थन्ति** इस (अग्नि) का मन्थन करते हैं (अत एव हस्त में धारण की प्राप्ति होती है)।

सा० भा०—हि यस्मादेनमग्निं हस्ताभ्यां मन्थन्ति तस्माद्धस्ते धारणमुपपद्यते॥

द्वितीयपादे पूर्वभागमनूद्य तात्पर्यं दर्शयति—

शिशुं जातमिति शिशुरिव वा एष प्रथमजातो यदग्निः ।।१७।।

हिन्दी—(द्वितीय पाद के पूर्वभाग का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **शिशुं जातम्** (ऋचा के द्वितीय पद के पूर्वभाग में प्रयुक्त) शिशुं जातम् (का तात्पर्य है—) **यद् अग्निः** जो अग्नि है **एषः** यह **प्रथमजातः** प्रथमतः उत्पन्न हुआ **शिशुः इव** शिशु के समान होता है।

सा० भा०—योऽग्निर्मन्थनेन प्रथममुत्पन्न एष शिशुना सदृश इत्येतस्य भागस्य तात्पर्यम्॥

द्वितीयपादस्योत्तरभागं तृतीयपादं चानुवदति—

न बिभ्रति विशामग्निं स्वध्वरमिति ।।१८।।

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीय पाद के उत्तर भाग और तृतीय पाद का अनुवाद कर रहे हैं—) न विभ्रति विशामग्निं स्वध्वरम् **इति** यह (ऋचा के द्वितीय पाद का उत्तर भाग और तृतीय पाद है)।

---

(१) ऋ०सं० ६.१६.४०।

सा०भा०—अत्र नेति पदं व्याचष्टे—

यद्वै देवानां नेति तदेषामो३मिति ॥१९॥

हिन्दी—(ऊपर प्रयुक्त 'न' शब्द का व्याख्यान कर रहे हैं—) **यद्वै देवानां न** जो देव-सम्बन्धी ऋचा में यह 'न' शब्द है, **तद् एषाम् ओम् इति** वह इन (ऋचाओं) में 'ओम्' (स्वीकार करना) अर्थ वाला है।

सा०भा०—देवानां संबन्धिनि मन्त्रे क्वचित्क्वचिन्नेति पदं यदेवास्ति तदेषां देवप्रतिपादकानां मन्त्राणां नेति पदमोमित्येतस्मिन्नर्थे वर्तते।[1] लोके प्रतिषिद्धवाची नेति शब्दो वेदेऽङ्गीकारवाची[2]। न ओमित्यस्य पदस्यार्थे वर्तते। तथा सति लोकवैपरीत्यस्य दृष्टत्वादुपमार्थोऽपि वक्तुं शक्यते। तदेतदुभयं निरुक्तकारेणोक्तम् —नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्' इति। 'उपरिष्टादुपचार उपमार्थीयः'[3] इति च। अयं च नेति शब्दः शिशुं जातं नेत्युपमेयादुपरिष्टात् प्रयुज्यते। तस्मादुपमार्थी। देवानामित्यत्र देवप्रतिपादकानां मन्त्राणां संबन्धीति व्याख्यातम्। यद्वा दकारवकारयोर्विपर्यासेन वेदानां संबन्धीति व्याख्येयम्॥

अष्टमीमृचं विधत्ते—

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तममिति प्रह्रियमाणायाभिरूपा ॥२०॥

हिन्दी—(अष्टमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **'प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम्'** अर्थात् "हे ऋत्विजो! देवताओं की कामना के लिए अतिशय रूप से धन के स्वामी मथित अग्नि को आहवीयाग्नि कुण्ड में डालो' **इति** यह ऋचा **प्रह्रियमाणाय** (आहवीयाग्नि कुण्ड में अग्नि के) प्रक्षेप के लिए **अभिरूपा** अनुरूप है।

सा०भा०—अनुवक्तव्येति शेषः[4]। आहवनीये प्रक्षिप्यमाणोऽयं मथितोऽग्निः प्रह्रियमाणस्तस्येयमृगनुरूपा। कथमिति चेत्तदुच्यते। देववीतये देवानां कामायाभिलाषाय वसुवित्तममतिशयेन हविर्लक्षणधनाभिज्ञं देवं मथितमग्निं हे ऋत्विजः प्रभरत, आहवनीये प्रहरत प्रक्षिपत। तस्मात् प्रह्रियमाणानुरूपत्वम्। अत्र 'जातायानुब्रू३हि'[5] इत्यध्वर्युणा प्रेषितो होता पूर्वोक्तामुत ब्रुवन्तु जन्तव इत्येतामनुब्रुयात्। तथा प्रह्रियमाणायानुब्रू३हीत्येवं प्रेषितः प्र देवमित्यादिकामृचं ब्रूयात्। एवमुत्तरा अपि च। तदेतत्सर्वं तैत्तिरीयाः संगृह्याऽऽमनन्ति—'अग्नये मथ्यमानायानुब्रू३हीत्याह। सावित्रीमृचमन्वाह सवितृप्रसूता एवैनं मन्थन्ति। जाता-

---

(१) 'यद्वै नेत्यृचि ओमिति तत्'–इति च शत०ब्रा० १.४.१.३।

(२) वक्ष्यति च परस्तात्—'ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम्'–इति ऐ०ब्रा० ७.३.६।

(३) नि० १.४

(४) 'प्र देवं देववीतय इति (ऋ०सं० ६.१६.४१) द्वे'–आश्व०श्रौ० २.१६.७।

(५) ब्रूहि प्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः'–इति (पा०सू० ८.२.९१) प्लुतिः।

यानुब्रू३हि प्रह्रियमाणायानुब्रू३हीत्याह काण्डे काण्ड एवैनं क्रियमाणे समर्धयति। गायत्री सर्वाऽन्वाह[1] इति।।

प्र देवमित्यस्या ऋचः प्रह्रियमाणायाभिरूपत्वे यज्ञाङ्गसमृद्धिरूपं प्रयोजनं दर्शयति—

यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।२१।।

हिन्दी—यद् यज्ञे अभिरूपं जो (अग्नि) यज्ञ के अनुरूप है, (वह यज्ञ) समृद्ध होता है।

अस्या ऋचस्तृतीयपादमनुवदति—

आ त्वे योनौ निषीदत्विति ।।२२।।

हिन्दी—'आते योनो निषीदतु' अर्थात् वह आकर अपने स्थान पर बैठे' **इति** यह (ऋचा का तृतीय पाद है)।

सा० भा०—अयं मथितोऽग्निरागत्य स्वे योनौ स्वकीयस्थान आहवीयाख्ये नितरामुपविशत्विति पादस्यार्थः ।।

तस्मिन् पादे योनिपदं व्याचष्टे—

एष ह वा अस्य स्वो योनिर्यदग्निरग्नेः ।।२३।।

हिन्दी—(इस पाद मे प्रयुक्त योनि शब्द का व्याख्यान कर रहे हैं—) **यद् अग्निः** जो यह (आहवनीय) अग्नि है, **एषः** यह (आहवनीयाग्नि) ही **अस्य अग्नेः** इस (मथित) अग्नि का **स्वः योनिः** अपना स्थान है।

सा० भा०—आहवनीयाख्यो योऽग्निरस्ति, एष वा अस्य मथितस्याग्नेः स्वकीयं स्थानम्।।

नवमीमृचं विधत्ते—

आ जातं जातवेदसीति ।।२४।।

हिन्दी—(नवमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'आ जातं जातवेदसि' **इति** इस (नवमी ऋचा का होता वाचन करता है)।

सा० भा०—अनुब्रूयादिति शेषः। सा चैवं संहितायामाम्नाता—

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम्। स्योन आ गृहपतिम्[2]।।

अस्यायमर्थः—कीदृशमाहवनीयस्य प्रीतिहेतुमतिथिम्। इदानीमागतत्वाददतिथिरूपम्। स्योने सुखकर आहवनीय आ गृहपतिमागत्य गृहस्वामित्वेन वर्तमानम्।।

तस्यामृचि प्रथमपादे पदद्वयं व्याचष्टे—

---

(१) तै०सं० ६.३.५३। (२) ऋ०सं० ६.१६.४२।

जात इतरो जातवेदाः इतरः ।।२५।।

हिन्दी—(इस ऋचा के जात और जातवेदस्–इन दो पदों का व्याख्यान कर रहे हैं—) **इतरः जातः** एक (मन्थन से सद्यः उत्पन्न अग्नि) जात कहलाता है और **इतरः जातवेदः** अन्य (पहले से सिद्ध आहवनीय अग्नि सद्यः उत्पन्न अग्नि को यहाँ जानता है अतः) जातवेद कहा जाता है।

सा०भा०—इतर इदानीं मथितोऽग्निः सद्यःसमुत्पन्नत्वाज्जात इत्युच्यते। इतरः पूर्वसिद्धाहवनीयोऽग्निरिदानीं जातमग्निं वेत्तीति जातवेदा इत्युच्यते।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

प्रियं शिशीतातिथिमित्येष ह वा अस्य प्रियोऽतिथिर्यदग्निरग्नेः।।२६।।

हिन्दी—(द्वितीय पाद को कहकर व्याख्यान कर रहे हैं—) 'प्रियं शिशीतातिथिम्' **यद् अग्निः** जो (मन्थन से उत्पन्न) अग्नि है **एषः ह वै** यह ही **अस्य अग्नेः** इस (जातवेद) अग्नि का **प्रियः अतिथिः** प्रिय अतिथि है।

सा०भा०—योऽग्निर्मन्थनेनोत्पन्न एष एवास्य पूर्वसिद्धस्याहवनीयस्याग्नेः प्रियश्चा-तिथिश्च।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

स्योन आ गृहपतिमिति शान्त्यामेवेनं तद्दधाति ।।२७।।

हिन्दी—(तृतीय पाद की व्याख्या कर रहे हैं—) 'स्योन आ गृहपतिः' **इति** यहाँ **शान्त्याम्** शान्ति रूप (आहवनीयाग्नि) में ही **एनम्** इस (मन्थन से उत्पन्न अग्नि) को **दधाति** स्थापित करता है।

सा०भा०—स्योने सुखरूपे पूर्वाग्नौ स्थापनं यदस्ति तत्तेन स्थापनेन नूतनमेवमग्निं शान्त्यामेव स्थापयति। पूर्वाग्नेः सुखनिवासहेतुत्वाच्छान्तित्वम्।।

दशमीमृचं विधत्ते—

अग्निनाऽग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्य इत्यभिरूपा ।।२८।।

हिन्दी—(दशमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **अग्निना** (आधारभूत आहवनीय) अग्नि से अनुगृहीत **कविः गृहपतिः युवाः** क्रान्तद्रष्टा, (यजमान के) गृह का पालक और नूतन (मन्थन द्वारा उत्पन्न) **हव्यवाट्** हविष् को देवताओं तक ले जाने वाला तथा **जुह्वास्यः** जुहुरूप मुख वाला **अग्निः** अग्नि **समिध्यते** सम्यक् रूप से प्रज्वलित की जाती है। **इति अभिरूपा** यह (ऋचा) कर्म के अनुरूप है।

सा० भा०—अनूच्येति शेषः। अस्या अयमर्थः—अग्निाऽऽधारभूतेनाऽऽहवनीये-नानुगृहीत इदानीं प्रहृतोऽग्निः सम्यग् दीप्यते। कीदृशोऽग्निः। कविर्विद्वानाकूताभिज्ञोऽत एव गृहपतिर्यजमानस्य गृहस्य पालकः। युवा नूतनः। देवेभ्यो हव्यं वहतीति हव्यवाट्, होमसाधनभूतः। जुहूरेवाऽऽस्यं मुखं यस्यासौ जुह्वास्यः। सेयमृक्[१] प्रह्रियमाणाग्निगुण-कीर्तनात्तस्याग्नेरनुरूपा।।

तदेतदानुरूप्यं प्रशंसति—

यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।२९।।

हिन्दी—यद् यज्ञे अभिरूपम् जो यह ऋचा यज्ञ के अनुरूप है **तत्समृद्धम्** वह (यज्ञ की) समृद्धि है।

एकादशीमृचं विधत्ते—

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्ततेति ।।३०।।

हिन्दी—(एकादशी ऋचा को दिखला रहे हैं—) 'त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तत' अर्थात् हे (मन्थनोत्पन्न) अग्ने! तुम (आहवनीय) अग्नि द्वारा प्रदीप्त किये जाते हो, हे विप्र! ब्राह्मण के द्वारा प्रदीप्त किये जाते हो—इति (होता) इस (ऋचा) का (वाचन करता है)।

सा० भा०—अनुब्रूयादिति शेषः। हे नूतनाग्ने त्वं सिद्धेनाऽऽहवनीयेनाग्निना समि-ध्यस इति तृतीयपादगतेन[२] पदेन योज्यम्। उभयोरग्न्योर्विद्यमानत्वात् सम्यगनुष्ठाननिर्वाह-कत्वाद् वा सच्छब्दवाच्यत्वम्। 'अग्ने महा असि ब्राह्मणभारत'[३] इति श्रुतेर्ब्राह्मणजात्यभि-मानित्वाद् विप्रत्वम्।।

तदेतदुभयं विशदयति—

विप्र इतरो विप्र इतरः सन्नितरः सन्नितरः ।।३१।।

हिन्दी—(ऋचा में) **इतरो विप्रः** एक अन्य (मन्थनोत्पन्न अग्नि) विप्र है **इतरः विप्रः** दूसरा (अन्य आहवनीय अग्नि) भी विप्र है। **इतरः सत्** एक (सद्यः मन्थनोत्पन्न अग्नि) अच्छा है और **इतरः सत्** दूसरा (आहवनीयाग्नि) भी अच्छा है।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

सखा सख्या समिध्यस इत्येष ह वा अस्य स्व सखा यदग्निरग्नेः ।।३२।।

---

(१) ऋ०सं० १.१२.६।
(२) स एष तृतीयपादः—'सखा सख्या समिध्यसे'—इति सं० ८.४३.१४।
(३) तै०ब्रा० ३.५.३।

हिन्दी—(तृतीय पाद को कहकर व्याख्या कर रहे हैं—) '**सखा सख्या समिध्यसे** अर्थात् हे मित्ररूप (मन्थनोत्पन्न अग्ने)! मित्र रूप (आहवनीय अग्नि) द्वारा प्रज्वलित होते हो'—**इति** यहाँ **यदग्निः अग्नेः** जो (आहवीय) अग्नि का (मित्रता का) सम्बन्ध है, (प्रदीप्त) अग्नि और वह **एषः ह वा** यह (आहवनीयाग्नि) ही **अस्य सखा** इस (मन्थनोत्पन्न अग्नि का) मित्र है।

सा० भा०—योऽग्निराहवनीयाख्य एष एवास्याग्नेर्मथितस्य स्वकीयः सखा॥

द्वादशीमृचं विधत्ते—

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु। स्वेषु क्षयेषु वाजिनमिति[1]॥३३॥

हिन्दी—(द्वादशी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) (होता तं मर्जयन्त इस द्वादशी ऋचा का वाचन करता हैं)। **मन्त्रार्थ**—(हे ऋत्विक्)! **सुक्रतुम्** शोभन यज्ञ के निर्वाहक, **आजिषु पुरोयावानम्** युद्धों में आगे-आगे चलने वाले और **स्वेषु क्षयेषु वाजिनम्** अपने (आहवनीयादि) गृहों में अन्न-सम्पन्न अथवा जाते हुए **तम्** उस (मन्थनोत्पन्न अग्नि) को **मर्जयन्त** शोधित करो।

सा० भा०—अनुब्रूयादिति शेषः। हे ऋत्विजस्तं नूतनमग्निं मर्जयन्त शोधयन्त। कीदृशं शोभनस्य क्रतोर्निर्वाहकम्। आजिषु सङ्ग्रामेषु पुरोयावानं पुरोगन्तारम्। स्वेषु क्षयेषु स्वकीयेषु गृहेष्वाहवनीयादिषु वाजिनमन्नवन्तं गच्छन्तं वा॥

क्षयशब्देनात्राऽऽहवनीयाग्निरूपगृहविवक्षां दर्शयति—

एष ह वा अस्य स्वः क्षयो यदग्निरग्नेः ॥३४॥

हिन्दी— (ऋचा में प्रयुक्त क्षय शब्द की आहवनीयाग्निरूप विवक्षा को दिखला रहे हैं—) **एषः यद् अग्निः** यह जो (आवहनीय) अग्नि है वह **अस्य अग्नेः** इस (मन्थनोत्पन्न) अग्नि का **स्वः क्षयः** अपना घर है।

त्रयोदशीमृचं विधत्ते—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा इत्युत्तमया परिदधाति ॥३५॥[2]

हिन्दी— (त्रयोदशी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' **इति** इस **उत्तमया** अन्तिम (ऋचा के वाचन) से **परिदधाति** (अग्नि-मन्थन का) समापन करता है।

सा० भा०—उत्तमया चानया परिधाति, अनुवचनं समापयेत्। यदाहाऽऽश्वलायनः—'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा इति परिदध्यात्' 'सर्वत्रोत्तमां परिधानीयेति विद्यात्' इति ॥[3]

(१) ऋ० ८.८४.८।   (२) ऋ० १.१६४.५०; १०.९०.१६।
(३) आश्व०श्रौ० २.१६.७,८।

उदाहृतमृच: पादं व्याचष्टे—

यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त यदग्निनाऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् ।।३६।।

हिन्दी—**यद् अग्निना अग्निम् अयजन्त** जो (मन्थनोत्पन्न) अग्नि से (आहवनीय) अग्नि का यजन किया, **यज्ञेन** (उसी) यज्ञ से **देवाः यज्ञम् अयजन्त** देवतओं (पूर्वसिद्ध ऋत्विजों) नें यज्ञ का यजन किया। इससे **ते स्वर्गं लोकम् आयन्** वे (देवता) स्वर्गलोक को प्राप्त किये।

सा० भा०—अग्निना प्रह्रियमाणेन नूतनेन पूर्वसिद्धमाहवनीयाग्निमयजन्तः पूजितवन्त इत्ति यदस्ति तेन कारणेन यज्ञेन वै देवा यज्ञमयजन्तेत्युच्यते। उभौ यज्ञशब्दौ स्वकारणभूतमग्निद्वयमुपलक्षयतः। देवशब्देनेदानीं देवत्वेन वर्तमानाः पूर्वसिद्धा ऋत्विजो विवक्षिताः। ते च पूर्वमनुष्ठितेन यागेन स्वर्गलोकं प्राप्ताः।।

अवशिष्टं पादत्रयं पठत्ति—

तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा इति ।।३७।।

हिन्दी—('यज्ञेन यज्ञं' ऋचा के अवशिष्ट तीन पादों को दिखला रहे हैं—) (यजन करने वालों द्वारा जो ज्योतिष्टोम इत्यादि का अनुष्ठान किया गया) **तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्** वे (सभी संपादित अनुष्ठान) प्रथम (सृष्टि के आदिकाल में) धर्म (सुकृत) थे। **ते ह महिमानं नाकम्** उन (यजन करने वालों) ने स्वर्ग (महत्वपूर्ण भोग) को **सचन्त** प्राप्त किया, **यत्र** जिस (लोक) में **पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति** पूर्ववर्ती (सृष्टिकाल में) यज्ञादि के सम्पादक देवता लोग विद्यमान हैं।

सा० भा०—इदानीं देवत्वेन वर्तमानैः पूर्वसिद्धैर्ऋत्विग्यजमानैर्यानि ज्योतिष्टोमादीनि कर्माण्यनुष्ठितानि तानि सर्वाणि प्रथमानि धर्माण्यादिसृष्टिकालीनानि सुकृतसाधनान्यासन्। ते ह ते चानुष्ठातारो महिमानो महत्त्वोपेता नाकं सचन्त कं सुखमकं दुःखं तद्रहितो भोगो नाकस्तं संप्राप्तवन्तः। यत्र यस्मिल्लोके पूर्वे साध्याः पूर्वसृष्टिगता यज्ञादिसाधका इदानीं यज्ञादिभिः साध्यत्वेन वर्तमाना देवाः सन्ति वर्तन्ते तं नाकं सचन्तेति पूर्वत्रान्वयः।।

चतुर्थपादस्य तात्पर्यं दर्शयति—

छन्दांसि वै साध्या देवास्तेऽग्रेऽग्निनाऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् ।।३८।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **छन्दांसि वै साध्याः देवाः** (गायत्र्यादि) छन्द ही सिद्ध देवता है, **ये** जिन्होंने **अग्रे** सर्वप्रथम **अग्निना अग्निम्**

अयजन्त (मन्थनोत्पन्न) अग्नि के द्वारा (आहवनीय) अग्नि का यजन किया और **ते** उन लोगों ने **स्वर्गं लोकम् आयन्** स्वर्ग लोक को प्राप्त किया।

सा॰भा॰—छन्दांसि वै गायत्र्यादिच्छन्दोभिमानिन एव साध्या इदानीं जनैः पूज्या देवास्तेऽग्रे च पूर्वसृष्टाग्निना मथितेनाग्निनाऽऽहवनीयमग्निमयजन्त पूजितवन्तः। ते च तेन यागेन स्वर्गं प्राप्ताः।

न केवलं छन्दोदेवा एव चतुर्थपादे विवक्षिताः किन्त्वन्येऽपीत्याह—

आदित्याश्चैवेहाऽऽसन्नङ्गिरसश्च तेऽग्रेऽग्निनाऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् ।।३९।।

हिन्दी—(चतुर्थपाद के अन्य अर्थ को बतला रहे हैं—) **आदित्याः च अङ्गिरसः च** आदित्य गज और अङ्गिरागज **इह आसन्** इस (सृष्टि) में (पहले) उत्पन्न हुए थे। **ते अग्रे अग्निना अग्निम् अयजन्त** उन लोगों ने सर्वप्रथम (मन्थनोत्पन्न) अग्नि के द्वारा (आहवनीय) अग्नि का यजन किया और **ते स्वर्गं लोकम् आयन्** उन्होंने स्वर्ग लोक को प्राप्त किया था।

सा॰भा॰—इदानीमादित्यशब्देनाभिधेया देवा अङ्गिरःशब्देनाभिधेया ये चर्षयस्ते द्विविधा अपीहैवाऽऽसन्भूमावेव पूर्वसृष्टौ मनुष्यरूपेणावस्थिताः। तेऽग्र इत्यादि पूर्ववत्। तदेवं चतुर्थपादतात्पर्यद्वयमुक्तम्। यद्वा छन्दासीत्यादिकमेव चतुर्थपादतात्पर्यम्। आदित्यादिकमितरपादतात्पर्यमिति द्रष्टव्यम्।।[1]

येयमाहवनीयेऽग्नौ मथिताग्निप्रक्षेपलक्षणाहुतिस्तां प्रशंसति—

सैषा स्वर्ग्याहुतिर्यदग्न्याहुतिर्यदि ह वा अप्यब्राह्मणोक्तो यदि दुरुक्तोक्तो यजतेऽथ हैषाऽऽहुतिर्गच्छत्येव देवान्न पाप्मना संसृज्यते ।।४०।।

हिन्दी—(आहवनीयाग्नि में मन्थनोत्पन्न अग्नि के प्रक्षेपरूप आहुति प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अग्न्याहुतिः** जो यह (आहवनीयाग्नि में मन्थनोत्पन्न) अग्नि की आहुति है **सा एषा स्वर्ग्याहुतिः** वह यह स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली आहुति होती है। **यदि ह वै अपि अब्राह्मणोक्तः** यदि ब्राह्मण ग्रन्थ में कहे गये से रहित (अर्थात् अपनी बुद्धि से अनुष्ठान करने वाला) अथवा **यदि दुरोक्तोक्तः** यदि विधि-रहित **यजते** यजन करता है **अथ** तब भी **एषा आहुतिः देवान् गच्छति** यह आहुति देवताओं को प्राप्त होती है और **पाप्मना न संसृजते** (यजन करने वाला) पाप से संसृत (सम्पृक्त) नहीं होता है।

---

(१) एष मन्त्रः सायणेन संहिताभाष्ये पञ्चधा व्याख्यातः यास्केन च स्वमते आख्यानमते चेति द्विधा व्याख्यातः (१२.४१)। आदित्यादीनामप्यर्था नैरुक्तमते विभिन्ना एव (२.६.१३)।

सा॰ भा॰—अग्निरूपद्रव्याहुतिर्या विद्यते सैषा स्वर्गाय हिता।[१] 'यदि हेत्यादिना स्वर्गत्वमेव स्पष्टीक्रीयते। ब्राह्मणं विधायकं वाक्यम्, तेन प्रेरितो ब्राह्मणोक्तः, तद्विपरीतः पण्डितंमन्यः स्वबुद्ध्यैव यत्किंचिद् योऽनुतिष्ठति सोऽयम् 'अब्राह्मणोक्त'। पुरुषेणान्यथाऽवबुद्धं विधिवाक्यं दुरुक्तम्, तेन प्रेरितो दुरुक्तोक्तः। अथवा स्मृतिष्वब्राह्मणत्वेन प्रतिपादितो योऽस्ति सोऽयमब्राह्मणोक्तः।।

तद्यथा— अब्राह्मणास्तु षट्प्रोक्ता इति शातातपोऽब्रवीत् ।
आद्यस्तु राजभृत्यः स्याद्द्वितीयः क्रयविक्रयी ।।
तृतीयो बहुयाज्याख्यश्चतुर्थोऽश्रौतयाजकः ।
पञ्चमो ग्रामयाजी च षष्ठो ब्रह्मबन्धुः स्मृतः[२] ।। इति।

यद्यपि याजनाध्यापनप्रतिग्रहा ब्राह्मणस्य जीवनहेतुत्वेन विहितत्वाद्[३] अनिषिद्धास्तथाऽपि यावता जीवनं निष्पद्यते तावदेव याजनं शास्त्रेणाङ्गीकृतम्। यस्तु सत्यपि जीवने धनाधिक्यवाञ्छया याजनशीलः सोऽत्र बहुयाजी विवक्षितः। यः पुमान् श्रौतकर्मण्यधिकृतोऽनादरेण स्वयं श्रौतं नानुतिष्ठति, अन्यानपि नानुष्ठापयपि किंतु स्मार्तकर्मपरः सन्ननुतिष्ठत्यनुष्ठापयति सोऽयमश्रौतयाजकः। ग्रामे नगरे च योग्यायोग्याश्च यावन्तः सन्ति, धनाभिलाषेण तावता सर्वेषां याजका ग्रामनगरयाजी। यः पुमान् प्रातः सूर्योदयात् प्राक् सन्ध्यां नोपास्ते, सायं चास्तमयात् प्राङ्नोपास्ते, सोऽयं ब्रह्मबन्धुः। एते षडब्राह्मणत्वेन स्मृतिषूक्ताः। दुष्टान्यपवादरूपाणि वचनानि दुरुक्तानि, तैरभिशस्तो दुरुक्तोक्तः। 'अब्राह्मणोक्तो' वा 'दुरुक्तोक्तो' वा यद्यपि 'यजते' अथाऽप्येषाऽऽहवनीये हुता मथिताऽग्न्याहुतिर्देवान् प्राप्नोत्येव। ततो यजमानस्य पापसंसर्गो न भवति।।

वेदनं प्रशंसति—

गच्छत्यस्याऽऽहुतिर्देवान्नास्याऽऽहुतिः पाप्मना संसृज्यते य एवं वेद ।।४१।।

हिन्दी— (इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है **अस्य आहुतिः** उस (जानने वाले) की आहुति **देवान् गच्छति** देवतओं को प्राप्त होती है और **अस्य आहुतिः पाप्मना न संसृज्यते** उसकी आहुति पाप

(१) स्वर्ग्या। 'तस्मै हितम्'—इति पा॰सू॰ ५.१.५।

(२) 'अब्राह्मणास्तु षट् प्रोक्ता ऋषिणा तत्त्ववादिना। आद्यो राजभृतस्तेषां द्वितीयः क्रयविक्रयी। तृतीयः बहुयाज्यः स्याच्चतुर्थे ग्रामयाजकः। पञ्चमस्तु वृतस्तेषा ग्रामस्य नगरस्य च। अनागतां तु यः पूर्वां सादित्यां चैव पश्चिमाम्। नोपासीत द्विजः सन्ध्यां स षष्ठोऽब्रह्मणः स्मृतः। इति वा पाठः।

(३) षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः।।—इति मनुः १०.७६।

(दोष) से सम्पृक्त नहीं होती।

सा० भा०—उक्तार्थवेदिता यद्यपि यत्किंचित्कर्म विकलमनुतिष्ठति तथाऽपि तत्सर्वं सकलं भवति।।

न्यूनाधिकसंख्याभ्रमव्युदासाय विहितानामृचां संख्यां दर्शयति—

ता एतास्त्रयोदशान्वाह रूपसमृद्धाः ।।४२।।

हिन्दी—(ऋचाओं में न्यूनाधिकता के निवारण के लिए उनकी संख्या को दिखला रहे हैं—) **ताः एताः त्रयोदश** उन इन (पूर्वोक्त) तेरह (ऋचाओं) को **अन्वाह** (होता अग्निमन्थन में) पढ़ता है; क्योंकि **रूपसमृद्धाः** (वे ऋचाएँ अग्निमन्थन के) रूप से समृद्ध हैं।

सा० भा०—राक्षोघ्नीनां नैमित्तिकत्वात्[1] परित्यागेनेतरास्त्रयोदशसंख्याकाः[2]। ताश्च मथ्यमानस्य जायमानस्य प्रह्रियमाणस्याऽऽहवनीयेन संसृज्यमानस्य च प्रतिपादनेनानुकूलेनैव रूपेण समृद्धाः।

तामेतां समृद्धिं प्रशंसति—

एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति ।।४३।।

हिन्दी—(उस समृद्धि की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् रूपसमृद्धम्** जो (ऋचाएँ) रूप से समृद्ध है, **एतद् यज्ञस्य समृद्धम्** यह यज्ञ की समृद्धि है। **यत् क्रियमाणं कर्म** जिस किये जाते हुए कर्म को ऋक् **अभिवदति** ऋचा कहती है।

आद्यन्तयोर्ऋचोरावृत्तिविधिमावृत्तानां संख्याप्रशंसां वेदनप्रशंसामावृत्तिप्रशंसा च दर्शयति—

तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां, ताः सप्तदश संपद्यन्ते, सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्तावान् संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिः, प्रजापत्यायतनाभिरेवाऽऽभी राध्नोति य एवं वेद, त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह यज्ञस्यैव तद्बसौ नह्यति स्थेम्ने बलायाविस्रंसाय ।।४४।।

हिन्दी—(उन तेरह ऋचाओं में प्रथम और अन्तिम ऋचा की तीन-तीन आवृत्ति को कह रहे हैं—) **तासाम्** उन (तेरह ऋचाओं में) **प्रथमां त्रिः** प्रथम (ऋचा) को तीन बार और **उत्तमां त्रिः** अन्तिम (ऋचा) को तीन बार **अन्वाह** पढ़ता है। **ताः सप्तदशः सम्पद्यन्ते** वे (प्रथम और अन्तिम ऋचा की तीन तीन बार आवृत्ति करने पर) सत्रह हो जाती

---

(१) द्र० इतः परस्तात् (३.५.९)।

(२) एतास्त्रयोदशर्च्वस्तैत्तिरीयसंहितायामनुक्रमेणैवैकत्राम्नाताः (३.५.११) वस्तुतोऽत्र नैमित्तिकसहिताः साकल्येनेह द्वाविंशतिः ऋचो विहिताः।

हैं। **सप्तदशः वै प्रजापतिः** प्रजापति सत्रह (संख्या वाला) होता है—**द्वादशमासाः पञ्चर्तवः** बारह महीने और पाँच ऋतुएँ। **तावान् संवत्सरः** इतना संवत्सर होता है। **संवत्सरः प्रजापतिः** संवत्सर प्रजापितरूप है। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है, वह **प्रजापत्यायतनाभिः एव** प्रजापति के आयतन द्वारा **अभि राध्नोति** (सफलता को) चारो ओर से प्राप्त करता है। जो **त्रि प्रथमां त्रिः उत्तमाम्** तीन बार प्रथम और तीन बार अन्तिम (ऋचा) को **अन्वाह** (होता) बाँचता है, **तत्** उससे **यज्ञस्यैव बर्सौ** यज्ञ के (आदि और अन्त वाली) दोनों गाठों की **स्थेम्ने** स्थिरताके लिए, **बलाय** बल के लिए और **विस्रंसाय** यज्ञ के शिथिल न होने के लिए **नह्यति** बाँधता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य तृतीयाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के तृतीय अध्याय के पञ्चम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—आतिथ्येष्टिमध्ये कर्तव्यमग्निमन्थनमुक्त्वा तदिष्टिशेषं विधत्ते—

(आतिथ्येष्टौ इष्टिशेषविधानम्)

(तत्राज्यभागयोः पुरोनुवाक्याद्वयविधानम्)

समिधाऽग्निं दुवस्यताऽऽप्यायस्व समेतु त इत्याज्यभागयोः पुरोनुवाक्ये भवत आतिथ्यवत्यौ रूपसमृद्धे एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति।।१।।

हिन्दी—(आतिथ्येष्टि में करणीय अग्नि-मन्थन को कह कर उस इष्टि के अवशिष्ट भाग का विधान कर रहे हैं—) 'समिधाऽग्निं दुवस्यत' और 'आप्यायस्व समेतु ते' इति ये दो ऋचाएँ **आज्यभागयोः** आज्यभाग की **पुरोनुवाक्ये** दो पुरोनुवाक्या हैं। **आतिथ्यवत्यौ** (पूर्ववर्तीऋचा के द्वितीय पाद में अतिथि शब्द होने के कारण) ये दोनों ऋचाएँ अतिथि शब्द से युक्त है अतः **रूपसमृद्धे** दोनों (इष्टि के) रूप से समृद्ध है। **यद् रूपसमृद्धम्** जो रूप से समृद्ध हैं **एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम्** यह यज्ञ की समृद्धि है; **यत् क्रियमाणं कर्म** जो किया जाता हुआ (सोम का आतिथ्यरूप) कर्म है, इसको **ऋग् अभिवदति** ऋचा सभी प्रकार से कह रही है।

सा० भा०—'समिधाऽग्निम्'[1] इति प्रथमाज्यभागस्य पुरोनुवाक्या। 'आप्यायस्व समेतु ते'[2] इति द्वितीयस्य। प्रथममन्त्रस्य द्वितीयपादे घृतैर्बोधयतातिथिमिति श्रूयमाणत्वादातिथ्यवत्यौ॥

तदेतदाक्षिपति—

(तत्राक्षेपकथनम्)

सैषाऽऽग्नेय्यतिथिमती न सौम्याऽतिथिमत्यस्ति यत्सौम्याऽतिथिमती स्याच्छश्वत्सा स्यात् ॥२॥

हिन्दी—(इस पुरोनुवाक्या वाली 'समिधाऽग्नि' इत्यादि ऋचाओं के विषय में आक्षेप को दिखला रहे हैं—) **सा एषा** वह (पूर्वोक्त) यह (प्रथमा ऋचा) **आग्नेयी अतिथिमती** अग्नि देवताक अतिथि वाली है किन्तु (द्वितीय ऋचा) **सौम्या न अतिथिमती अस्ति** सोम-देवताक है (परञ्च) अतिथि वाली नहीं है। **यत् सौम्या अतिथिमती स्यात्** यदि सोम देवताक (द्वितीय ऋचा) अतिथि शब्द वाली होती तो **शश्वत् सा स्यात्** वह (ऋचा) निश्चित रूप से (सोमसम्बन्धी पुरोनुवाक्या) होती।

सा० भा०—सौम्या त्वतिथिब्दोपेता नास्ति। आ प्यायस्वेत्यस्यामृच्यतिथिशब्दस्याश्रवणात्। यदि सौम्याऽतिथिशब्दोपेता स्यात्तदानीं शश्वदवश्यं सा सौम्या पुरोनुवाक्या भवेत्। न त्वसावतिथिमती। तस्मादातिथ्यवत्याविति द्विवचनमयुक्तमित्यार्थः॥

आक्षेपं समाधत्ते—

(आक्षेपसमाधानम्)

तत्त्वेवैषाऽतिथिमती यदापीनवती ॥३॥

हिन्दी—(इस आक्षेप का समाधान कर रहे हैं—) **यद् आपीनवती** (यह दूसरी ऋचा) जो आपीन शब्द से युक्त है, **तत् तु एव एषा** अतः यह (ऋचा) **अतिथिमती** उस (अतिथि शब्द) से ही युक्त है।

सा० भा०—तुशब्द आक्षेपनिवारणार्थः। आपीनमभिवृद्धिस्तद्वाचकस्याऽऽप्यायस्वेति शब्दस्य विद्यमानत्वादियं सौम्याऽऽपीनवती। यदापीनवत्त्वमस्ति, एतदेवैतेनाऽऽपीनवत्त्वेनैवैषा सौम्याऽतिथिमती संपद्यते। आपीनवत्त्वस्यातिथ्युपलक्षकत्वात्॥[3]

तदेवोपलक्षकत्वं विशदयति—

---

(१) ऋ० ८.४४.१।
(२) ऋ० १.९१.१६।
(३) अत एवाह चाश्वलायनः—'धाय्ये, अतिथिमन्तौ,—समिधाग्निं दुवस्यताप्यायस्व समेतु त इति' इति श्रौ० ४.५.३।

यदा वा अतिथिं परिवेविषत्या पीन इव वै स तर्हि भवति ।।४।।

हिन्दी—**यदा वै अतिथिं परिवेविषति** जब अथिति को पात्र में भोजन डाल कर भोजन कराता है **तर्हि सः पीनः इव भवति** तब वह (अतिथि) मानों (भोजनपूर्ति से) वृद्धिं को प्राप्त कर लेता है। (अतः वृद्धिवाचक 'आप्यास्व' शब्द अतिथि को उपलक्षित करता है)।

सा० भा०—तमतिथिं गृहस्वामी यदैव परिवेविषति परिवेषणेन पात्रे भोज्यप्रक्षेपणेन भोजयति तर्हि तस्मिन् भोजनोत्तरकाले सोऽतिथिरापीन इवोदरपूर्त्या वृद्धिं प्राप्त इव भवत्येव। तस्माद् वृद्धिवाचक आप्यायस्वेति शब्दोऽतिथिलक्षकः। अतो द्विवचनं पुरोनुवाक्यात्वं च युक्तम्।।

आज्यभागयोर्याज्यां विधत्ते—

(आज्यभागयोर्याज्याद्वयविधानम्)

तयोर्जुषाणेनैव यजति ।।५।।

हिन्दी—(अब आज्य भाग की याज्या को कह रहे हैं—) **जुषाणा एना एव** 'जुषाणा' से प्रारम्भ होने वाले दो मन्त्रों से **तयोः यजति** उन दोनों (याज्याभागों) का यजन (याज्या) करता है।

सा० भा०—प्रकृतावाम्नातौ 'जुषाणोऽग्निराज्यस्य वेतु'। जुषाणः सोम आज्यस्य हविषो वे तु' इति च। तेनैव[१] मन्त्रेण यजेत। अग्निर्वृत्राणीत्यादिके प्रकृतिगते पुरोनुवाक्ये चोदकप्राप्ते अपोद्य यथा समिधाऽग्निमित्यादिके विहिते तद्वद्याज्यान्तरप्रसक्तिं वारयितुं विधिः।।

प्रधानस्य हविषो याज्यानुवाक्ये विधत्ते—

इदं विष्णुर्वि चक्रमे तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यामिति वैष्णव्यौ ।।६।।

हिन्दी—(प्रधान हविष् की याज्या और अनुवाक्या को कह रहे हैं—) 'इदं विष्णुर्वि चक्रमे' और 'तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम्' **इति वैष्णव्यौ** ये दोनों विष्णु से सम्बधित (ऋचाएँ याज्या और अनुवाक्या हैं।)।

सा० भा०—याज्यानुवाक्ये कुर्यादिति शेषः।[२]

तयोर्विभागं विधत्ते—

त्रिपदामनूच्य चतुष्पदया यजति ।।७।।

---

(१) 'जुषाणः'–इतिपदयुक्तमन्त्रद्वयेनेति भावः। तौ मन्त्रौ तै०ब्रा० ३.५.६ आम्नातौ।
(२) आश्व०श्रौ० ४.५.३।

हिन्दी—(इन दोनों ऋचाओं के याज्या और अनुवाक्या होने का विधान कर रहे हैं—) **त्रिपदाम् अनूच्य** 'इदं विष्णुः' इस तीन पादों वाली (ऋचा का पुरोनुवाक्या के रूप में) वाचन करके (होता) **चतुष्पदया यजति** 'तदस्य प्रियम्' इस चाद पादों वाली (ऋचा) से यजन करता (= याज्या के रूप से पाठ करता) है।

सा० भा०—इदं विष्णुः[१], इति त्रिपदा, तां पुरोनुवाक्यारूपेणानुब्रूयात्। 'तदस्य प्रियम्'[२] इति चतुष्पदा तया यजेति। याज्यारूपेण तां पठेत्।

ऋग्द्वयगतां पादसंख्यां प्रशंसति—

सप्त पदानि भवन्ति; शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं, सप्त वै शीर्षन् प्राणाः शीषन्नेव तत्प्राणान् दधाति ।।८।।

हिन्दी—(दोनों ऋचाओं की पाद-संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सप्त पदानि भवन्ति** (दोनों ऋचाओं में मिलकर) सात पाद होते हैं। **यद् आतिथ्यम्** जो आतिथ्येष्टि है **एतद् यज्ञस्य शिरः एव** यह यज्ञ का शिरस्थानीय है और **सप्त वै शीर्षन् प्राणाः** और शिर में (दोनों नाक के छिद्र, दो आँख के छिद्र, दो कान के छिद्र और एक मुख के छिद्र में स्थित इस प्रकार) सात प्राण होते हैं। **तत्** इससे **शीर्षन् एव प्राणान् दधाति** शिर में ही प्राणों को प्रतिष्ठापित कराता है।

सा० भा०—आतिथ्येष्टेर्यज्ञशिरोरूपत्वाच्छिरसि च्छिद्रवर्तिनां प्राणानां सप्तत्वादत्र पादसंख्यया यज्ञस्य शिरसि सप्त प्राणाः स्थापिता भवन्ति।।

संयाज्ये विधत्ते—

(स्विष्टकृतः संयाज्ययोर्विधानम्)

होतारं चित्ररथमध्वरस्य प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्व इति स्विष्टकृतः संयाज्ये भवत आतिथ्यवत्यौ रूपसमृद्धे; एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म कियमाणमृगभिवदति ।।९।।

हिन्दी—(अब दो संयाज्याओं का विधान कर रहे हैं—) 'होतारं चित्ररथमध्वरस्य' और 'प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्व', इति ये दोनों ऋचाएँ **स्विष्टकृतः संयाज्ये भवतः** स्विष्टकृत् की दो संयाज्याएँ होती हैं। **आतिथ्यवत्यौ** (प्रथम और द्वितीय ऋचा का चतुर्थ पाद) अतिथि शब्द से युक्त है अतः **रूपसमृद्धे** दोनों रूप से समृद्ध हैं। **यद् रूपसमृद्धम्** जो रूप की समृद्धि है, **एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम्** यही यज्ञ की समृद्धि है। **यत्क्रियमाणं कर्म** जिस किये जाते हुए कर्म को **ऋग् अभिवदति** ऋचा कह रही है।

---

(१) ऋ० १.२२.१७।
(२) ऋ० १. १५४.५।

सा० भा०—'होतारम्'[१] इति पुरोनुवाक्या। 'प्रप्रायम्'[२] इति याज्या। प्रथमाया ऋचश्च-तुर्थपादे श्रिया त्ववग्निमतिथिं जनानामिति श्रूयमाणत्वादातिथ्यवत्त्वम्। द्वितीयस्या अपि चतुर्थपादे घृतानो दैव्यो अतिथिरिति॥

मन्त्रद्वयगतं छन्दः प्रशंसति—

त्रिष्टुभौ भवतः सेन्द्रियत्वाय ॥१०॥

हिन्दी—(दोनों ऋचाओं के छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सेन्द्रियत्वाय** इन्द्रियशक्ति से सम्पन्न करने के लिए **त्रिष्टुभौ भवतः** दोनों (ऋचाएँ) त्रिष्टुप् छन्द वाली होती हैं।

सा० भा०—'इन्द्रियं वै त्रिष्टुप्'[३] इति श्रुत्यन्तरात् त्रिष्टुभ इन्द्रियहेतुत्वम्॥

अत्रेडाभक्षणादूर्ध्वभाविकर्तव्यमपि चोदकेन प्राप्त, तदेतद्वारयति—

(ईडाभक्षणादूर्ध्वभाविकर्त्तव्यम्)

इळान्तं भवतीळान्तेन वा एतेन देवा अराध्नुवन्यदातिथ्यं, तस्मादि-ळान्तमेव कर्तव्यम् ॥११॥

हिन्दी—**इळान्तं भवति** (आतिथ्येष्टिरूप कर्म) इळान्त (अर्थात् अन्त में अन्नभक्षण तक) होता है। **यद् आतिथ्यम्** जो आतिथ्य कर्म है; **एतेन इडान्तेन वै** इस इडान्त तक होने वाले (आतिथय कर्म) से ही **देवाः अराध्नुवन्** देवताओं ने समृद्धि को प्राप्त किया। **तस्मात्** इसी कारण **इडान्तमेव कर्तव्यम्** (आतिथ्य कर्म को) अन्न-भक्षण तक ही करना चाहिए।

सा० भा०—पुरोडाशसंबन्धि यदेतदिडाभागभक्षणं तदन्तमेवाऽऽतिथ्येष्टिरूपं कर्म भवेत्। तावतैव समृद्धिसिद्धेः। द्विविधमिडाभक्षणम्। अनुयाजयागात् पूर्वमुत्तरकालीनं च॥

तयोः पूर्वकालीनमत्रान्तत्वेन दर्शयतुमनुयाजान् निषेधति—

प्रयाजानेवात्र यजन्ति नानुयाजान् ॥१२॥

हिन्दी—**अत्र** इस (आतिथ्य) में **प्रयाजान् एव यजन्ति** प्रयाजों से ही यजन करते हैं; **न अनुयाजान्** अनुयाजों से यजन नहीं करते हैं।

अनुयाजानां यजने दोषं प्रकटयति—

(अनुयाजानां यजने दोषः)

प्राणा वै प्रयाजानुयाजास्ते य इमे शीर्षन् प्राणास्ते प्रयाजा

---

(१) ऋ० १०.१.५।
(२) ऋ० ७.८.४।
(३) तै०सं० २.४.११.२; ३.२.९ ३; तै०ब्रा० १.७.९.२

येऽवाञ्चस्तेऽनुयाजाः स योऽत्रानुयाजान् यजेद्यथेमान् प्राणानालुप्य शीर्षं धित्सेत्तादृक्तत् ।।१३।।

हिन्दी— (अनुयाज से यजन करने में दोष को दिखला रहे हैं—) **प्राणाः वै प्रयाजानुयाजाः** प्राण ही प्रयाज और अनुयाज है। **ये इमे शीर्षन् प्राणाः** जो ये शीर्षस्थ (शिर में विद्यमान) प्राण है **ते प्रयाजाः** वे प्रयाज है, और **ये अवाञ्चः** जो नीचे अपान इत्यादि प्राण हैं **ते अनुयाजाः** वे अनुयाज हैं। **यो अत्र अनुयाजान् यजेत** जो यहाँ अनुयाज का यजन करता है, **अथ** तब **सः इमान् प्राणान् आलुप्य** वह इन (अपान इत्यादि) प्राणों का छेदन करके **शीर्षं धित्सेत्** शिर में स्थापित करता है।

सा० भा०—प्रशब्दसाम्यात् प्रयाजानां प्राणत्वं तदनुवर्तित्वसाम्यादनुयाजानामपि प्राणत्वम्। तथा सति ते य इमे शीर्षन् प्राणाः शिरस्यवस्थिताः श्वासादिकारिणः प्राणा ये केचित् सन्ति ये प्रयाजरूपाः प्रकृष्टसाम्यादुत्तमाङ्गवर्तित्वेन प्राणानां प्रकृष्टत्वम्। प्रयाजानां प्रथमानुष्ठानत्वेन प्रकृष्टत्वम्। ये त्ववाञ्चो नाभेरधस्ताद् वर्तमाना अपानवाय्वादयस्तेऽनुयाजरूपा निकृष्टत्वसाम्यादपानवाय्वानदीनां मध्याङ्गवर्तित्वेन निकृष्टत्वम्। अनुयाजानां पश्चाद्भावित्वे निकृष्टत्वम्। एवं सति यः पुमानत्राऽऽतिथ्येष्टावनुयाजान् यजेल्लोके कश्चिद्यथेमानवाग्देशवर्तिनोऽपानवाय्वादीनालुप्य च्छित्वा शीर्षं धित्सेत्, शिरसि स्थापयितुमिच्छेत्, तादृक्तत्, तथैव स पुमानस्तत्कर्तुमिच्छेत्। यज्ञशिरःस्थानीयातिथ्यकर्मण्यनुष्ठानमयुक्तं तथा पुत्रादिप्रजास्थानीयानामनुयाजानां यज्ञशिरस्थानीयेऽनुष्ठानमयुक्तमित्यपि द्रष्टव्यम्।[1]

दोषान्तरमाह—

अतिरिक्तं तत्समु वा इमे प्राणा विद्रे ये चेमे ये चेमे ।।१४।।

हिन्दी—(अन्य दोष को कह रहे हैं–) **ये च इमे** जो ये (शिर में रहने योग्य) और **ये च इमे** जो ये (अधोवर्ती नीचभाग में स्थित) प्राण हैं, **ते समु विद्रे** वे सभी एकत्रित होकर शिर में अवस्थित होवे। **तत् अतिरिक्तम्** उससे अतिरिक्त (प्राण के लिए) कोई स्थान नहीं है।

सा० भा०—ये चेमे शिरसि योग्याः प्राणा येऽप्यमी नीचदेशस्थिताः प्राणास्ते सर्वे समुविद्रे संभूयैकत्र शिरस्यवतिष्ठेरन्। तच्चातिरिक्तं योग्यस्थानीयादधिकं शिरोरूपमातिथ्यं कर्म चक्षुरादीनामेव प्राणानां योग्यस्थानं न त्वधोदेशवतिनामपानादीनां तत्रावकाशोऽस्तीत्यर्थः।

---

(१) 'प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजा इति ब्राह्मणम्'–इति निरु० ८.३.७। प्राणा वै प्रयाजाः अपाना अनुयाजास्तस्मात् प्रयाजाः प्राञ्चो हूयन्ते तद्धि प्राणरूपम् प्रत्यञ्चोऽनुयाजास्तदपानरूपम्—इति शत०ब्रा०–११.२.७.२७।

नन्वनुयाजानामनुष्ठानाभावे कर्माङ्गसाकल्यलक्षणः फलविशेषो न प्राप्येतेत्या-शङ्क्याऽऽह—

तद्यदेवात्र प्रयाजान् यजन्ति नानुयाजांस्तत्र सकाम उपाप्तो योऽनुयाजेषु योऽनुयाजेषु ।।१५।।

हिन्दी—**तत् यत्** तो जो **अत्र प्रयाजान् यजन्ति** इस (आतिथ्य कर्म) में प्रयाजों का ही यजन करते हैं—**न अनुयाजान्** अनुयाजों का यजन नही करते हैं तो **तत्र** वहाँ **अनुयाजेषु सकामः उपात्तः** अनुयाजों की कामना (प्रयाजों में ही) प्राप्त हो जाती है।

सा० भा०—तत्तस्मिंन्नातिथ्यकर्मणि यदि प्रयाजानेव यजन्ति न त्वनुयाजांस्तदानी-मनुयाजेषु यः कामः फलविशेषः स सर्वोऽपि तत्र कर्मणि प्राप्तो भवति। यथा लोके कंचिदान्दोलिकादिभारं बहत्सु बहुषु मध्ये कस्यचिदशक्तौ सत्यामवशिष्टा एव वहन्ति तद्वदित्यर्थः। द्विरभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।[1]

अत्र मीमांसा। दशमाध्यायस्य सप्तमपादे चिन्तितम् —

प्रायणीयातिथ्ययोः किं विकल्पः शंय्विडान्तयोः ।
नियमो वा विकल्पः स्यान्निषेधपरिसंख्यया।।
शंय्विडान्तत्ववाक्याच्च नियमो विधिमात्रतः।
नित्यानुवादो नञ्वाक्यं दोषबाहुल्यमन्यथा।।[2]

ज्योतिष्टोमे श्रूयते—'शंय्वन्ता प्रायणीय संतिष्ठते न पत्नीः संयाजयन्ति।[3] इडान्ता आतिथ्याः संतिष्ठन्ते, नानुयाजान् यजति' इति[4]। प्रकृतौ यदा होता 'तच्छंयोः'[5] इति जपति[6], तदानीमध्वर्युः परिधीनग्नौ प्रक्षिपति[7] । तदाह कल्पसूत्रकारः—'अनूच्यमाने शंयु-वाक आहवनीये परिधीन् प्रहरति'[8] इति। ततो हविःशेषेषु भक्षितेषु पत्नीः संयाजयन्ति, इति

---

(१) तु० शत०ब्रा० ३.४.१.१-२६। तै०सं० ६.२.१.२; १.२.१०। आश्व०श्रौ० ४.५. १-७। कात्या०श्रौ० ८.१.१-१८। आप०श्रौ० १०.३०.२१।
(२) जै०न्या०वि० १०.७.१२.३८-३९।
(३) शत०ब्रा० ३.२.३.२३।
(४) शत०ब्रा० ३.४.१.२.६। आप०श्रौ० १०.२१.१३-१४; ३१.१४-१५। आश्व०श्रौ० ४.३.२; ५.१। कात्या०श्रौ०७.५.२२-२७; ८.१.१८।
(५) तै०ब्रा० ३.५.११.१।
(६) शंयुवाक मन्त्रव्याख्या तु तै०सं० २.६.१० द्रष्टव्या।
(७) 'परिधीन् परिदधाति....गन्धर्व इति' (वा०सं० २.३)-इति कात्या०श्रौ० २.८.१।
(८) आप० १२.६.७।

क्रमः। पत्नीसंयाजानामुपरि फलीकरणहोमप्रायश्चित्तहोमकपालोद्वासनैरिष्टिः समाप्यते। एवं स्थिते विकृतिरूपायाः प्रायणीयेष्टेः शंयुवाकान्तत्वम्, आतिथ्येष्टेरिडाभक्षणान्तत्वं च विकल्पितं स्यात्। कुतः, निषेधविधिवाक्याभ्यां प्रकरणद्वयप्रतीतेः। तथा हि—शंयवन्तत्वेडान्तत्वविधिनैवोपरितनपत्नीसंयाजानुयाजनिषेधे पुनर्निषेधवचनं परिसंख्यार्थम्। पत्नीसंयाजानुयाजव्यतिरिक्ते नास्ति निषेधः—इति परिसंख्या। तेन प्रकृतिवद्यथाप्राप्तं कपालोद्वासनान्तत्वमनयोरिष्ट्यौः प्रतीयते। विधिवाक्येन च शम्विडान्तत्वम्; तेन व्रीहियवद् विकल्पः। इति प्राप्ते ब्रूमः—विधिमात्रस्यात्र प्रवृत्तेः। संय्वन्तत्वमिडान्तत्वं च तयोः प्रतिनियतम्। पत्नीसंयाजाद्यभावस्त्वर्थसिद्धः। ततो नञ्पदयुक्तमुपरितनं प्रतिषेधवाक्यं नित्यानुवादः[1] सन्नर्थवादः अन्यथा बहवो दोषाः प्रसज्येरन्। विकल्पे तावदष्टौ दोषाः प्रसिद्धाः,[2] परिसंख्यायां च त्रयो दोषाः[3]। विधिपरिसंख्याभ्यां वाक्यभेदोऽपरो दोषः[4]। ततः शंय्वडान्तत्वं नियतम्।

तत्रैवान्यच्चिन्तितम्—

तत्रैव शंय्विडे पूर्वे वा स्वेच्छयाऽथवा।
परे एवाथवा पूर्वे एवाऽऽद्यो द्विविधश्रुतेः ॥

निषेधस्यार्थवत्त्वाय परे एवानुवादगीः।
पूर्वेकवाक्यतां याति पूर्वे एवाविरोधतः ॥[5]

प्रायणीयातिथ्येयार्निर्णीते शंय्विडे पुनः संदिह्येते। प्रकृतौ द्विविधे शंय्विडे-पत्नीसंयाजेभ्यः पुरस्तादुपरिष्टाच्च विहिते। ते चात्र चोदकप्राप्ते। तत्र द्विविधश्रुतेः-अर्थे चोदकेनातिदिष्टे सति विशेषनियामकाभावादिच्छया स्वीकार्ये, इत्येकः पक्षः। यदि प्रायणीया पूर्वशय्वन्ता, आतिथ्या च पूर्वेडान्ता स्यात् तदानीमन्तत्वविधिनैव ताभ्यां शंय्विडाभ्यामूर्ध्वं प्राप्तानां

---

(१) 'नित्यप्राप्तमनुवदति। यथा नान्तरिक्षे न दिवि अग्निश्चेतव्य इति'—इति शबरः।

(२) विकल्पश्च द्विविधः—व्यवस्थितः ऐच्छिकश्च। तत्र इच्छाविकल्पेऽष्टौ दोष प्रमाणत्वाप्रमाणत्वपरित्यागप्रकल्पना प्रत्युज्जीवनहानिभ्यां प्रत्येकमष्टदोषता'–इति व्रीहिभिर्यजेत, 'यवैर्यजेत'–इति चैतदुदाहरणम्। कात्यायनसूत्रे तद्व्याख्यायां तद्पद्धतौ चैष विचारः कृतः (श्रौ० १.४.१३-१९)। मीमांसाया द्वादशाध्यायीयतृतीयपादे तु विकल्प विचारा बहव उपदिष्टाः, तत्र 'एकार्थस्तु विकल्पेरन्, समुच्चये ह्यावृत्तिः स्यात् प्रधानस्य' इति कृतं गुणविकल्पलक्षणम् (१२.३.१०)।

(३) विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति। तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते-इति, 'श्रुतार्थस्य परित्यागादश्रुतार्थस्यकल्पनात्। प्राप्तस्य बाध इत्येवं परिसंख्या त्रिदूषणा'—इति च, एतयोरुदाहरणदीनि च मीमांसार्थसङ्ग्रहे द्रष्टव्याणि।

(४) 'य एव हि श्रुतस्यार्थस्योत्सर्गे दोषः, स एवाश्रुतकल्पनायाम्'-इत्येवाहात्र शबरः।

(५) जै०न्या०वि० १०.७.१३.४०-४२।

पत्नीसंयाजानामनुयाजानां च वारितत्वात् निषेधो व्यर्थः स्यात्। परयोः शंय्विडयोरन्तत्वे तु ताभ्यां शंय्विडाभ्यां पूर्वप्राप्तानां तेषामनिवारणात्तन्निवारणाय सार्थको निषेधः। तस्मात् — परे एव शंय्विडे ग्राह्ये, इति द्वितीयः पक्षः। निषेधोऽयं नित्यानुवादः-इत्युक्तम्। स च पूर्वयोः शंय्विडयोरन्तत्वेऽप्येकवाक्यतामापद्यानुवादकत्वेनोपपद्यते। असंजातविरोधिन्यौ हि पूर्वे शंय्विडे। तस्मात्—ते एव ग्राह्ये—इति राद्धान्तः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्ये प्रथमपञ्चिकायां तृतीयाये षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के तृतीय अध्याय के षष्ठ खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य प्रथमपञ्चिकायाः तृतीयोध्यायः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के तृतीय अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ प्रथमपञ्चिकायाम्
चतुर्थोऽध्यायः
अथ प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— सोमप्रवाहिका अग्निमन्थनीया ऋचस्तथा ।
आतिथ्यास्तद्विशेषाश्च तृतीयाध्याय ईरिताः ॥१॥

अथ प्रवर्ग्यादयो वक्तव्याः । तदर्थमादावाख्यायिकामाह—

(प्रवर्ग्येष्टिविधानम्)

(तत्राख्यायिका)

'यज्ञो वै देवेभ्य उदकामन्न वोऽहमन्नं भविष्यामीति, नेति देवा अब्रुवन्नन्नमेव नो भविष्यसीति तं देवा विमेथिरे सहैभ्यो विहतो न प्रबभूव ते होचुर्देवा न वै न इत्थं विहतोऽलं भविष्यति हन्तेमं यज्ञं संभरामेति तथेति तं संजभ्रुः ॥१॥

हिन्दी—(अब प्रवर्ग्य इत्यादि को कहने के लिए इसके अर्थवाद के रूप में आख्यायिका को कह रहे हैं—) **यज्ञः वै देवेभ्यः उदक्रामन्** यज्ञ (प्रवर्ग्य) देवताओं के पास से यह कह रह दूर चला गया कि **वः अन्नम् अहं न भविष्यामि** मैं तुम लोगों के लिए अन्न नहीं होऊँगा। **देवाः अब्रुवन्** देवताओं ने कहा कि **न इति** नहीं, **अन्नमेव नः भविष्यसि** तुम तो हम लोगों के लिए अन्न होवो। **देवाः** (ऐसा कहकर) देवताओं ने **तम्** उस (प्रवर्ग्य) को **विमेथिरे** (भर्त्सना इत्यादि द्वारा) विविध प्रकार से हिंसित किया। **विहतः** बाधित हुआ (वह प्रवर्ग्य) **एभ्यः** इन (इन देवताओं) के लिए **न प्रबभूव** पर्याप्त नहीं हुआ (अर्थात् अन्नरूप नहीं हुआ)। तब **ते देवाः ह ऊचुः** उन देवताओं ने परस्पर कहा कि **हन्त** खेद है, **इत्थं विहतः** इस प्रकार प्रताड़ित (यह प्रवर्ग्य) **नः वै** हम लोगों के लिए **अलं न भविष्यति** पर्याप्त नहीं होगा, अतः **इमं यज्ञं सम्भराम** इस (प्रवर्ग्य) यज्ञ का सम्पादन करें, **इति तथा** इस प्रकार निश्चय करके **तां संजभ्रुः** उस (प्रवर्ग्य) को सम्यग्रूप से पुष्ट किया।

सा० भा०—यज्ञशब्देनात्र प्रवर्ग्यो विवक्षितः। तदभिमानी देवः केनापि निमित्तेना-परक्तोऽन्येभ्यो देवेभ्य उत्क्रान्तवान्। हे देवा युष्माकमहमन्नं न भविष्यामीत्येवमुत्क्रमणकाले प्रोक्तवान्। ततो देवास्तदुत्क्रमणं नेति प्रतिषिध्य सर्वथा त्वमस्माकमन्नं भवेति प्रार्थितवन्तः।

प्रवर्ग्याख्ये कर्मणि यद्धविस्तद्देवानामन्नं तदभिमानी च पुरुषो देवैः प्रार्थितं तदन्नत्वं नाङ्गीचकार। तमनङ्गीकुर्वाणं प्रवर्ग्यं पुरुषं देवा विमेथिरे ताडनभर्त्सनादिभिर्हिंसितवन्तः। स च प्रवर्ग्यो देवैर्विशेषेण बाधित एभ्यो देवेभ्यो न प्रबभूव प्रभूतो नाभूत, अन्नत्वेनावस्थातुं न शक्त इत्यर्थः। ततो देवाः परस्परमेवं विचारितवन्तः। एवं विहतो विशेषेण बाधितः प्रवर्ग्यो नोऽस्माकमन्नं नैव भविष्यतीति सम्पूर्णमन्नं न भविष्यति तमिमं प्रवर्ग्याख्यं यज्ञं संभरामोचितैः साधनैः सम्यक् पोषयामेति। संपूर्तिहेतुदर्शननिमित्तजन्यहर्षद्योतनार्थो हन्तशब्दः[१]। तथेति परस्परमङ्गीकृत्य तं प्रवर्ग्यं संजभ्रुः साधनसंपादनेन सम्यक् पोषितवन्तः।

अथ हविरादीनां साधनानां सम्पादनं विधत्ते—

(प्रवर्ग्यसाधनानां सम्पादनविधानम्)

तं संभृत्योचुरश्विनाविमं भिषज्यतमित्यश्विनो वै देवानां भिषजावश्विनावध्वर्यू तस्मादध्वर्यू घर्मं संभरतः।।२।।

हिन्दी—(अब हवि इत्यादि साधनों के सम्पादन का विधान कर रहे हैं—) **तं सम्भृत्य** (प्रवर्ग्ययाग के लिए उपयोगी) उस (महावीर इत्यादि को) एकत्रित करके **अश्विनौ ऊचुः** (देवताओं ने) अश्विन् देवों से कहा कि **इमं भिषज्यतम्** इस (हिंसित प्रवर्ग्य-पुरुष) की चिकित्सा करो। क्योंकि **अश्विनौ वै देवानां भिषजौ** अश्विन् ही देवताओं के चिकित्सक हैं और **अश्विनौ अध्वर्यू** अश्विन् ही (देवताओं के) अध्वर्यु हैं। **तस्मात्** इसी कारण **अध्वर्यू घर्मं सम्भरतः** दो अध्वर्यु (अध्वर्यु और प्रतिस्थाता) घर्म (प्रवर्ग्ययाग के साधन) को इकट्ठा करते हैं।

सा० भा०—देवाः प्रवर्ग्यकर्मोपयुक्तमहावीरादिसंभारं संभृत्य स्वकीयावश्विनौ प्रत्येवमूचुः—हे अश्विनाविमम् प्रवर्ग्यपुरुषदेहमस्माभिर्हिंसितं युवां भिषज्यतमौषधैरेतस्य समाधानं कुरुतामिति। देवानां मध्ये भिषजावेवाश्विनौ तस्मात्तत्प्रार्थनं युक्तम्। किञ्च। देवानां यज्ञकर्मण्यश्विनावध्वर्यू। अत एवान्यत्र कस्यचन्मन्त्रस्य ब्राह्मणे पठ्यते—'अश्विनोर्बाहुभ्यामित्याह। अश्विनौ हि देवानामध्वर्यू आस्ताम्'[२] इति। अतोऽपि कारणादश्विनोर्यज्ञसमाधानकारणं युक्तम्। तस्मात्कारणादध्वर्यू। उभाभ्यामश्विभ्यां यज्ञशरीरं चिकित्सितं तस्मादिदानीमप्यध्वर्यू घर्मं संभरतः प्रवर्ग्यसाधनं संपादेयाताम्। तदेतत् तैत्तिरीया देवा वै सत्रमासतेत्यस्मिन्ननुवाके[३] प्रवर्ग्यविषयमुपाख्यानं प्रपञ्चयन्ति। तस्मिन्नाख्याने यज्ञस्य प्रवर्ग्यरूपं शिरो धनुषः

---

(१) 'हन्तेत्याभिमुख्ये'—इति षड्गुरुशिष्यः, 'हन्तेत्यन्तःकरणवृत्तेरभिप्रायस्य सूचनम् एवमभिप्रायं कृतवन्त' इत्यर्थः—इति गोविन्दस्वामी।

(२) अश्विनोर्बाहुभ्यामिति मन्त्रस्तु तैत्तिरीयाम्नाये संहितायां (१.३.१.१) तस्य ब्राह्मणमपि तत्रैवाग्रे (२.६.४.१); ब्राह्मणग्रन्थेऽपि बहुत्र (३.२.२.१;९.१); आरण्यकेऽपि च (५.२.५)।

(३) तै०आ० ५.१।

कोट्या छिन्नमित्युक्त्वा पश्चादेतदाम्नायते—'तेनाथ शीर्ष्णा यज्ञेन यजमानानाशिषोऽवारुन्धत। न सुवर्गं लोकमभ्यजयन्। ते देवा अश्विनावब्रुवन्। भिषजौ वै स्थः। इदं यज्ञस्य शिरः प्रतिधत्तमिति। तावब्रूतां वरं वृणावहै। ग्रह एव नावत्रापि गृह्यतामिति। ताभ्यामेतमाश्विनमगृह्णन्। तावेतद्यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्ताम्। यत्प्रवर्ग्यस्तेन स शीर्ष्णा यज्ञेन यजमाना अवाऽऽशिषोऽरुन्धत। अभि सुवर्गं लोकमजयन्। यत्प्रवर्ग्यं प्रवृणक्ति यज्ञस्यैव तच्छिरः प्रतिदधाति'[1] इति॥

प्रवर्ग्यसाधनानि संपादितवतोस्तयोरनुज्ञापनमन्त्रं प्रैषमन्त्रं च विधत्ते—

(प्रवर्ग्यस्यानुज्ञापनमन्त्रः प्रैषमन्त्रश्च)

तं संभृत्याऽऽहतुर्ब्रह्मन् प्रवर्ग्येण[2] प्रचरिष्यामो होतरभिष्टुहीति ॥ ३ ॥

हिन्दी—(प्रवर्ग्य साधनों को सम्पादित करने वाले अध्वर्यु और प्रतिस्थाता के लिए अनुज्ञापन मन्त्र और प्रैष मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **तं सम्भृत्य** उस (प्रवर्ग्यसाधन) को एकत्रित करके **आहतुः** वे दोनों अर्ध्वयु और (प्रतिस्थाता) कहते हैं कि **ब्रह्मन् प्रवर्ग्येण प्रचरिष्यामः** हे ब्रह्मन्! हम (ऋत्विग्गण) प्रवर्ग्य (नामक याग) से अनुष्ठान करेंगे। (यह अनुज्ञापन मन्त्र है) **होतः** '**अभिष्टुहि** हे होता! तुम (प्रवर्ग्य की) स्तुति करो' (यह प्रैष मन्त्र है)।

सा० भा०—तं प्रवर्ग्यकर्मोपयुक्तं साधनसमूहं संभृत्य संपाद्य चतुर्णामध्वर्यूणां मध्येऽध्वर्युः प्रतिप्रस्थाता चेत्येतावुभावध्वर्यू ब्रह्माणं होतारं च प्रत्येवं ब्रूयाताम्। हे ब्रह्मन् वयमृत्विज सर्वे प्रवर्ग्याख्येण कर्मणा प्रचरिष्यामोऽनुष्ठास्यामः। सोऽयमनुज्ञापनमन्त्रः[3]। हे होतस्त्वमभिष्टुहि प्रवर्ग्यस्तुतिरूपाः सर्वा ऋचः पठ। सोऽयं प्रैषमन्त्रः[4]। इतिशब्दो मन्त्रद्वयसमाप्त्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्यस्य चतुर्थाध्याये प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) तै०आ० ५.१.५-७।

(२) प्रवर्ग्यशब्दः कर्मविशेषवचनः, प्रवृज्यतेऽस्मिन् इति।

(३) ऋ०खिल० ३.२२; यजु० १३.३; अथर्व० ४.१.१।

(४) आश्व०श्रौ० ४.६.१।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—होतुरभिष्टवार्थास्वृक्षु प्रथमामृचं विधत्ते—

(अभिष्टवस्यैकविंशत्यृचां विधानम्)

ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तादिति'[१] प्रतिपद्यते ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं तद्भिषज्यति ।।१।।

हिन्दी—(होता के द्वारा की जाने वाली स्तुति के लिए ऋचाओं का विधान कर रहे हैं। उनमें प्रथमा ऋचा—) 'ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्' इति इस ऋचा से **प्रतिपद्यते** (होता स्तुति का) प्रारम्भ करता है। **ब्रह्म वै** (इस ऋचा में प्रयुक्त) ब्रह्म शब्द **बृहस्पतिः** बृहस्पति के लिए है अतः **तत्** इस (ऋचा) के द्वारा **ब्रह्मणा एव** ब्रह्म से ही **एनं भिषज्यति** इस (प्रवर्ग्य) की चिकित्सा करता है।

सा० भा०—प्रतिपद्यतेऽनेन मन्त्रेण होताऽभिष्टवं प्रारभत इत्यर्थः। अस्मिन् मन्त्रे ब्रह्मशब्देन देवानां मध्ये ब्राह्मणजातिरूपो बृहस्पतिरुच्यते। तस्मादनेन मन्त्रेणोपक्रमे सति ब्रह्मणैव ब्राह्मणजात्यैवैनं प्रवर्ग्यं तदा भिषज्यति चिकित्सते।।

द्वितीयामृचं विधत्ते—

'इयं पित्रे राष्ट्र्येत्यग्र'[२] इति वाग्वै राष्ट्री वाचमेवास्मिंस्तद्दधाति ।।२।।

हिन्दी—(द्वितीया ऋचा—) 'इयं पित्रे राष्ट्र्या' इति इस (ऋचा) से (होता स्तुति करता है)। **वाग् वै राष्ट्री** (इस ऋचा में प्रयुक्त तृतीयान्त) राष्ट्री शब्द वाणी के लिए कहा गया है। **तत्** इस (ऋचा के पाठ) से **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य) में **वाचमेव दधाति** वाणी को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—अस्मिन् मन्त्रे तृतीयान्तो राष्ट्रीशब्दो वाचं ब्रूते। तत्तेन मन्त्रपाठेनास्मिन् प्रवर्ग्ये वाचमेव संपादयति।।

तृतीयामृचं विधत्ते—

'महान्मही अस्तभाय द्विजात'[३] इति ब्राह्मणस्पत्या ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं तद्भिषज्यति ।।३।।

हिन्दी—(तृतीया ऋचा—) 'महान्मही अस्तभाय द्विजात' इति **ब्राह्मस्पत्या** इस ब्राह्मणस्पति देवताक (ऋचा) से (होता स्तुति करता है)। **ब्रह्म वै बृहस्पतिः** बृहस्पति ही ब्रह्म हैं **तत्** इस (ऋचा) के पाठ से **ब्रह्मणा एव** ब्रह्म के द्वारा ही **एनम्** इस (प्रवर्ग्य) की **भिषज्यति** चिकित्सा करता है।

---

(१) आश्व०श्रौ० ४.६.१। (२) आ०श्रौ० ४.४.१ (३) तै०आ० ४.४.२

सा० भा०—अस्य मन्त्रस्य चतुर्थपादे बृहस्पतिर्देवतेति श्रूयमाणत्वाद् बृहस्पतेश्च ब्राह्मणस्वामित्वादियमृग्ब्राह्मणस्पत्या॥

चतुर्थीमृचं विधत्ते—

'अभि त्यं देवं सवितारमोण्योरिति' सावित्री प्राणो वै सविता प्राणमेवास्मिंस्तद्दधाति ।।४।।

हिन्दी—(चतुर्थी ऋचा—) 'अभित्यं देव सवितारमोण्योः' इति सावित्री इस सविता देवता वाली (ऋचा) से (होता स्तुति करता है)। **प्राणः वै सविता** प्राण ही सवितारूप है **तत्** इस (ऋचा के पाठ से) **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य) में **प्राणमेव दधाति** प्राण को ही प्रतिष्ठित करता है।

सा० भा०—सवितारमिति श्रुतत्वादियमृक्सावित्री। पठनीयेति शेषः। प्राणस्य देहेन्द्रियप्रेरकत्वात्। तत्तेन मन्त्रेणास्मिन् प्रवर्ग्ये प्राणमेव संपादयति। ता एताश्चतस्र ऋचः शाखान्तरगता आश्वलायनेन पठिता द्रष्टव्याः[१] ॥

पञ्चमीमृचं विधत्ते—

'सं सीदस्व महाँ असीत्येवैनं समसादयन् ।।५।।

हिन्दी—(पञ्चमी ऋचा—) 'सं सीदस्व महाँ असि' इति इस मन्त्र से **एनम्** इस (प्रवर्ग्यसंज्ञक महावीर) को **समसादयन्** (खर नामक संतापन स्थान पर) स्थापित करना चाहिए।

सा० भा०—अनेन[२] मन्त्रेणैनं प्रवर्ग्याख्यं महावीरं खरशब्दाभिधेये संतापनस्थाने समसादयन् स्थापयेयुरित्यर्थः[३]॥

षष्ठीमृचं विधत्ते—

'अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा' इत्यज्यमानायाभिरूपा यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।६।।

हिन्दी—(षष्ठी ऋचा—) 'अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा' इति यह (ऋचा) **अज्यमानाय अभिरूपा** (महावीर नामक पात्र में) घी लगाने के लिए अनुरूप है। **यद् यज्ञे अनुरूपम्** जो यज्ञ (कर्म) के अनुरूप है **तत्समृद्धम्** वही (यज्ञ की) समृद्धि है।

सा० भा०—अस्मिन् मन्त्रे[४] अञ्जन्तीति पदस्य श्रुतत्वादाज्येनाज्यमानाय महावीरा-

---

(१) आश्व०श्रौ० ४.६.३.१-४ (२) ऋ० १.३६.९

(३) सं सीदस्व महाँ असीति संसाद्यमाने—इति कल्पः (आश्व०श्रौ० ४.६.३)।

(४) ऋ० ५.४३.७।

ख्याय पात्राय येयमृगभिरूपा भवति[१]।

सप्तमीमारभ्य द्वादशपर्यन्ताः षड्ऋचो विधत्ते—

'पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया' 'यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने' 'भवा नो अग्ने सुमना उपेताविति द्वे द्वे अभिरूपे यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।७।।

हिन्दी—(सप्तमी से लेकर द्वादशी तक छः ऋचाओं का विधान कर रहे हैं–) 'पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया' ये दो ऋचाएँ 'यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने' ये दो ऋचाएँ और 'भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ' ये दो ऋचाएँ **अभिरूपे** (यज्ञ के) अनुरूप है। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो ये यज्ञ के अनुरूप है, **तत् समृद्धम्** उससे (यज्ञ) समृद्ध होता है।

सा० भा०—पतङ्गमिति संहितायामाम्नातयोर्द्वयोः[२] प्रतीके[३]। 'यो नः सनुत्य' इति द्वयोः प्रतीके[४]। 'भवा नो अग्ने' इति द्वयोः[५]। एतासां सर्वासामभिष्टूयमानार्थप्रतिपादकत्वादभिरूपत्वम्। तच्चात्रैतास्वृक्षु बुद्धिमता योजनीयम्।।

त्रयोदशीमारभ्य सप्तदशीपर्यन्ताः पञ्चर्चो विधत्ते—

'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथिवीमिति' पञ्च[६] राक्षोघ्न्यो रक्षसामपहत्यै ।।८।।

हिन्दी—(त्रयोदशी से लेकर सप्तदशी तक पाँच ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'कृणुष्व पाजः प्रसृतिं न पृथिवीम्' **इति पञ्च रक्षोघ्न्यः** ये पाँच (ऋचाएँ) राक्षसों का विनाश करने वाली हैं। **रक्षसाम् अपहत्यै** अतः राक्षसों को मारने के लिए (होता इनका पाठ करता है)।

सा० भा०—अष्टादशीमारभ्यैकविंश्यन्ताश्चतस्र ऋचो विधत्ते—

परि त्वा गिर्वणो गिरोऽधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचः शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यदपश्यं गोपामनिषद्यमानमिति चतस्र एकपातिन्यः ।।९।।

हिन्दी—(अष्टादशी से लेकर एकविंशी तक चार ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'परि त्वा गिर्वणो गिरः', 'अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचः', 'शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यत्' और 'अपश्य गोपामनिषद्यमानम्' **इति चतस्रः एकपातिन्यः** ये चार (ऋचाएँ) एकपातिनी (एक-एक ऋचा के प्रतीक) हैं।

(१) 'अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा इत्यज्यमाने'—इति कल्पः ४.६.३।
(२) पतङ्ग...... उपेताविति द्वृचाः'—इति कल्पः ४.६.३।
(३) ऋ० १०.१७७.१,२।
(४) ऋ० ६.५.४,५।
(५) ऋ० ३.१८.१,२।
(६) ऋ० ४.४.१-५।

सा० भा०—एकस्य मन्त्रस्य पातः प्रतीकमेकपातः सोऽयं यास्वृक्षु ता एकपातिन्यः।[१] 'परित्वा गिर्वणः'[२] इति यत्प्रतीकं तत्संहितायां क्रमेणाऽऽम्नातानां चतसृणां प्रतीकमित्याशङ्क्येत चतस्र इति ब्राह्मणेऽभिधानात्, एवम् 'अधि द्वयोः'[३] 'शक्रं ते'[४] 'अपश्यं गोपाम्'[५] इति त्रिषु प्रतीकेषु शङ्कोदियात्, तदव्यावृत्त्यर्थमेकपातिन्य इत्युच्यते। एकैकस्या ऋचः प्रतीकान्येतानि मिलित्वा चतस्र इति तात्पर्यार्थः॥

संख्यान्तरभ्रमव्युदासायोक्तमन्त्रगता संख्यां प्रशंसति—

ता एकविंशतिर्भवन्ति ॥१०॥

हिन्दी—(इन ऋचाओं की संख्या को कह रहे हैं—) **ताः** वे (उपर्युक्त ऋचाएँ) **एकविंशतिः भवन्ति** (संख्या में) इक्कीस हैं।

तां संख्यां प्रशंसति—

एकविंशोऽयं पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैकविंशस्तमिममात्मानमेकविंशं संस्कुरुते ॥११॥

हिन्दी—(इस इक्कीस संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **दश हस्त्या अङ्गुलयः** दश हाथ की अङ्गुलियाँ **दश पाद्याः** दश पैर की (अङ्गलियाँ) और **आत्मा एकविंशति** और इक्कीसवीं आत्मा इस प्रकार **एकविंशः अयं पुरुषः** यह पुरुष इक्कीस संख्या वाला है। **तम् इमम् एकविंशम् आत्मानम्** उस इस इक्कीसवीं आत्मा को **संस्कुरुते** (ऋचाओं की इक्कीस संख्या से) संस्कारित किया जाता है।

सा० भा०—अयं पुरुषो मनुष्यदेहो जीवनोपेतः, एकविंशतिसंख्यानामवयवानां समूहरूपत्वादेकविंश इत्युच्यते। दश हस्त्या इत्यादिना तदेव स्पष्टी क्रियते। आत्मशब्देन मध्यदेहो जीवात्मा वाऽभिधीयते। संख्यासामन्यात्तैर्मन्त्रैरात्मानमेव संस्करोति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्यस्य चतुर्थाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

(१) 'एकैकस्मिन् प्रतीके एकैकोपाया इत्यर्थः' इति गोविन्दस्वामी।
(२) ऋ० १.१०.१२।　(३) ऋ० १. ८३.३।
(४) ऋ० ६.५८.१।　(५) ऋ० १.१५४. ३१, १०. १७७.३।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—अथैकसूक्तगताः काश्चिदृचो विधत्ते—

(अभिष्टवस्य त्रयोदशर्चां विधानम्)

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्निति नव पावमान्यो नव वै प्राणाः प्राणानेवास्मिंस्तद्दधाति ।।१।।

हिन्दी—(एक सूक्तगत नौ ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्' **इति नव पावमान्यः** इस पवमान देवता वाले (सूक्त में) नौ ऋचाएँ है। **नव एव प्राणाः** प्राण भी नौ ही होते हैं। **तत्** उस (ऋचाओं के वाचन) से (होता) **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य के अभिमानित पुरुष) में **प्राणान् एव दधाति** प्राणों को ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—अस्मिन् 'स्रक्वे द्रप्सस्येति' सूक्ते[1] पवमानदेवताका ऋचो नवसंख्याकाः। अतः संख्यासाम्यात्तत्पाठेनास्मिन् प्रवर्ग्याभिमानिनि पुरुषे नवच्छिद्रवर्तिनः प्राणानवस्थापयति।।

एतन्मन्त्रगतस्य वेनशब्दस्य नाभिपरत्वमभिप्रेत्य प्रशंसति—

वेनोऽस्माद्वा ऊर्ध्वा अन्ये प्राणा वेनन्त्यवाञ्चोऽन्ये तस्माद्वेनः प्राणो वा अयं सन्नाभेरिति तस्मान्नाभिस्तन्नाभेर्नाभित्वं प्राणं वास्मिंस्तद्दधाति ।।२।।

हिन्दी—(उपर्युक्त ऋचा में प्रयुक्त वेन शब्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) (उपर्युक्त मन्त्र के पाठ में होता अयं शब्द का उच्चारण करते हुए नाभि की ओर सङ्केत करता है कि) **वेनः** यह वेन है। **अस्माद् ऊर्ध्वा** इस (वेन = नाभि) से ऊपर **अन्ये प्राणाः** अन्य (अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों में विद्यमान) प्राण और **अवाञ्चः अन्ये** नीचे की ओर (अर्थात् उपस्थादि इन्द्रियों में विद्यमान प्राण) **वेनन्ति** विचरण करते हैं। **तस्माद्** उसी (प्राण के वेन = विचरण क्रिया) के कारण **वेनः प्राणः वै** वेन (नाभि) प्राणस्वरूप है। **तस्मात्** इसलिए **नाभेः अयं सन्** नाभि में यह (विचरण) करने से **नाभिः** (वेन) नाभि कहलाता है। **तद् नाभेः नाभित्वम्** यही नाभि का नाभित्व (नाभि होना) है। **तत्** उस (पाठ) से (होता) **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य) में **प्राणं दधाति** प्राण को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—शरीरमध्येऽवस्थितं नाभिं हस्तेनाभिनीय प्रदर्शयन्नयं वै वेन इत्युच्यते। तस्य नाभेर्वेनत्वं कथमिति चेदुच्यते। अस्मान्नाभेरूर्ध्वा अन्ये प्राणाश्चक्षुरादयः केचित्प्राण-

---
(१) ऋ० ९.७३।

विशेषा वेनन्ति चरन्ति। तथा नाभेरवाञ्चोऽपानवाय्वादयः केचिद्वेनन्ति चरन्ति। तस्माद्वेनन्त्यस्मादवधिभूतान्नाभेरिति व्युत्पत्त्या वेनशब्दवाच्यो नाभिः। नाभिंशब्दवाच्यत्वं कथमिति चेत्तदुच्यते। अयं नाभिः प्राणाधारत्वेन स्वयं प्राणरूपः सन्नितरानूर्ध्ववर्तिनोऽधोवर्तिनश्च प्राणानुद्दिश्य प्रत्येकं नाभेर्नाभैषीरित्येवं वदन्निव मर्दायारूपत्वेनावस्थितस्तस्मादयं देहमध्यवर्ती नाभिर्भवति। नैव भीति कुर्वित्यभिप्रेत्य मर्यादात्वेनावस्थानमेव नाभेर्नाभिशब्दप्रवृत्तिनिमित्तम्। तस्मादयं वेन इति मन्त्रपाठेन प्राणमेवास्मिन् प्रवर्ग्ये स्थापयति॥

अथैकामृचं विधत्ते—

'अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा'[1] इति ॥ ३॥

हिन्दी—'अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा' इति इस ऋचा का वाचन करता है।

अथैकत्र समाम्नातमृग्द्वयमन्यत्र समाम्नातामेकामृचं विधाय सह प्रशंसति—

'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते' 'तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे'[2] 'वियत्पवित्रं धिषणा अतन्वतेति' पूतवन्तः प्राणास्त इमेऽवाञ्चो रेतस्यो मूत्र्यः पुरीष्या इत्येतानेवास्मिंस्तद्दधाति ॥ ४॥

हिन्दी—'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते', 'तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदे' और 'वियत्पवित्रं धिषणा अतन्वत' **इति पूतवन्तः प्राणाः** ये (ऋचाएँ पवित्र शब्द का प्रयोग होने के कारण) पवित्र करने वाली प्राणस्थानीय हैं। **इमे** ये (प्रत्येक ऋचाएँ) **अवाञ्चः** (यज्ञ पुरुष के) अधोभाग में स्थित **रेतस्य मूत्र्यः पुरीष्या इति** क्रमशः वीर्य, मूत्र और पुरीष के लिए हैं। **तत्** इन (ऋचाओं के पाठ से) **एतस्मिन्** इस प्रवर्ग्य में **एतान् एव दधाति** इन (प्राणों) को ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—अत्र वियत्पवित्रमित्येषा शाखान्तरगता सूत्रकारेण पठिता।[3] त्रिष्वप्येतेषु मन्त्रेषु शुद्धिवाचिनः पवित्रशब्दस्य विद्यमानत्वाद् एते पूतवन्तः। यज्ञपुरुषस्य प्राणस्थानीयाः पूर्वमुदाहृता मन्त्रविशेषा यज्ञपुरुषस्य नाभेरूर्ध्वभाविप्राणस्थानीयाः पवित्रं ते विततमित्याद्यास्त्रयो मन्त्रा ये सन्ति त इमे नाभेरवाञ्चोऽधोदेशप्राणस्थानीयास्तेषु रेतसे हित एकः प्राणो[4], मूत्राय हितोऽपरः प्राणस्तयोरुभयोर्गोलकद्वारस्यैकत्वेऽपि स्वरूपेणेन्द्रियभेदात् पृथङ्निर्देशः। द्वारान्तरसंचारी पुरीषाय हितस्तृतीयः प्राण इत्युक्तानेतानेव त्रीन् प्राणान् मन्त्रत्रयपाठेनास्मिन् प्रवर्ग्ये स्थापयति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्यस्य चतुर्थाध्याये तृतीयः खण्डः ॥३॥

---

(१) ऋ० १०.१२३.१ (२) ऋ० ९.८३. १,२।
(३) आश्व०श्रौ० ४.६.३। (४) (रेतस्यः) 'तस्मै हितम्'—इति पा०सू० ५.१.५।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के तृतीय खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अथ सूक्तविशेषा विधातव्याः। तत्रैकोनविंशत्यृचं सूक्तं विधत्ते—

(अभिष्टवस्य षट्सप्तत्यृचां विधानम्)

'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे'[1] इति ब्राह्मणस्पत्यं ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं तद्भिषज्यति ।।१।।

हिन्दी—(सूक्त विशेषों का विधान करने के लिए सर्वप्रथम उन्नीस ऋचाओं वाले सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'गणानां त्वा गणपतिं हवामहे' **इति ब्राह्मणस्पत्यं** यह बृहस्पति देवता वाला (सूक्त) है; क्योंकि **ब्रह्म वै बृहस्पतिः** ब्रह्म ही बृहस्पति-स्वरूप है। **तत्** इस (सूक्त के ऋचाओं के पाठ) से **ब्रह्मणा एव** ब्रह्म के द्वारा ही **एनम्** इस (प्रवर्ग्य) की **भिषज्यति** (होता) चिकित्सा करता है।

सा० भा०—तस्मिन् सूक्ते प्रथमाया ऋचस्तृतीयपादे 'ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत' इति श्रूयमाणत्वादिदं सूक्तं ब्रह्मणस्पतिदेवताकम्। ब्रह्म वा इत्यादिकं पूर्ववद् व्याख्येयम्।

तृचात्मकं सूक्तान्तरं विधत्ते—

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामेति घर्मतन्वः सतनुमेवैनं तत्सरूपं करोति ।।२।।

हिन्दी—(तृचात्मक अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नाम' **इति घर्मतन्वः** यह तृच घर्म की तनु (प्रवर्ग्य-पात्र) है। **तत्** इस (तृच के पाठ) से **एनम्** इस (प्रवर्ग्य) को **सतनुमेव सरूपम् करोति** शरीर-सम्पन्न शोभनरूप वाला करता है।

सा० भा०—अस्मिन् सूक्ते[2] पठिताः प्रथश्चेत्यादयस्तिस्र ऋचो घर्मतन्वः प्रवर्ग्यस्य शरीरस्थानीयास्तन्मन्त्रपाठेनैवं प्रवर्ग्यं सतनुं शरीरोपेतं करोति। सतनुमित्यस्यैव व्याख्यानं सरूपमिति। यद्वा तस्मिञ्शरीरे शोभनरूपसहितं प्रवर्ग्यं करोति॥

अस्मिन् सूक्ते प्रथमाद्वितीययोर्ऋचोर्यौ चतुर्थौ पादौ तावनूद्य प्रशंसति—

रथन्तरमाजभारा वसिष्ठः । भरद्वाजो बृहदाचक्रे अग्नेरिति बृहद्रथन्तरवन्तमेवैनं तत्करोति ।।३।।

हिन्दी—(इस सूक्त की प्रथम और द्वितीय ऋचा के चतुर्थ पाद को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) (प्रथम ऋचा के चतुर्थ पाद) 'रथन्तरमाजभारा वसिष्ठः' और

(१) ऋ० २.२३।   (२) ऋ० १०.१८१।

(द्वितीय ऋचा के चतुर्थपाद 'भरद्वाजौ बृहदाचक्रे अग्नेः' इति ये (दोनों पाद क्रमशः रथन्तर और बृहत् शब्द से युक्त हैं)। तत् इनके (पाठ) से **एनम्** इस (प्रवर्ग्य) को **बृहद्रथन्तरं करोति** रथन्तर (नामक साम) और बृहत् (नामक साम) से युक्त करता है।

सा० भा०—सामद्वयवाचिरथन्तरशब्दबृहच्छब्दयोरत्र श्रूयमाणत्वात् तत्पाठेन प्रवर्ग्यं सामद्वयोपेतं करोति।[1]

तृचान्तरं सूक्तात्मकं विधत्ते—

'अपश्यं त्वा मनसा चेकितानमिति' प्रजावान् प्राजापत्यः प्रजामेवास्मिंस्तद्दधाति ।।४।।

हिन्दी—(तृचात्मक अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'अपश्यं त्वा मनसा चेकितानम्' **इति प्रजावान् प्राजापत्यः** यह (तृच) प्रजापति के पुत्र प्रजावान् (द्वारा दृष्ट है)। **तत्** इस (तृच के पाठ) से (होता) **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य) में **प्रजामेव दधाति** प्रजा को ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—एतत्सूक्तगतानां तिसृणामृचां[2] पृथग्विनियोगम् आश्वलायन आह—'अपश्यं त्वेत्येतस्याऽऽद्ययश यजमानमीक्षते द्वितीयया पत्नी तृतीययाऽऽत्मानम्'[3] इति। अस्य च सूक्तस्य ऋषिः प्रजावानित्येतन्नामकः। स च प्रजापतेः पुत्रः। तदीयपाठेन प्रजां संपादयति।।

सूक्तान्तरे नवसंख्या ऋचो विधत्ते—

का राधद्धोत्राऽऽश्विना वामिति नव विच्छन्दसस्तदेतद्यज्ञस्यान्तस्त्यं विक्षुद्रमिव वा अन्तस्त्यमणीय इव च स्थवीय इव च तस्मादेता विच्छन्दसो भवन्ति ।।५।।

हिन्दी—(द्वादश ऋचाओं वाले अन्य सूक्त की नौ ऋचाओं के पाठ का विधान कर रहे हैं—) (इस सूक्त की) नौ ऋचाएँ 'का राधद्धोत्राऽश्विना वाम्' **इति नव विच्छन्दसः** विविध प्रकार के छन्दों वाली नौ ऋचाएँ हैं। **तद् एतत्** वे ये (नौ ऋचाएँ) **यज्ञस्य अन्तस्त्यम्** यज्ञ का उदर स्थानीय है (जिस प्रकार लोक में किसी का) **अन्तस्त्यम्** उदर **विक्षुद्रमिव अणीयः इव च स्थवीयः इव च** छोटे अथवा बड़े होते हैं **तस्मात्** इसलिए **एताः विच्छन्दसः भवन्ति** ये उदर स्थानीय ऋचाएँ (छोटी-बड़ी) विविध छन्दों वाली हैं।

सा० भा०—'का राधद्' इत्यस्मिन् सूक्ते[4] विद्यमान ऋचो नवसंख्याकाः। ताश्च

---

(१) तच्च सामद्वयं सामगानामारण्यके २.१.२१; १.१.२७। तयोर्योन्यृचौ तु छ०आ० ३.१.५.१,२। तयोर्विधायकवचनानि च ता०ब्रा० ७.६.६,५।

(२) ऋ० १०.१८३.१-३। (३) आश्व० श्रौ० ४.६.३। (४) ऋ० १.१२०

विविधेन च्छन्दसा युक्ता:। तच्च विविधत्वम् अनुक्रमणिकायाम् उक्तम् 'आद्या गायत्री द्वितीया ककुप्तृतीयाचतुर्थ्यौ काविराण्नष्टरूप्यौ पञ्चमी तनुशिरा'[१] षष्ठ्यक्षरैरुष्णिग्[२] विष्टारबृहतो कृतिर्विराट्[३] तिस्रो गायत्र्यः'[४] इति। यद्यप्येतद् द्वादशर्चं सूक्तं तथाऽपि नवैवर्चोऽत्रापेक्षिता इति नवेत्युक्तम्। तदेतत्सूक्तं प्रवर्ग्याख्यस्य यज्ञस्यान्तस्त्यमुदरगतावयवस्वरूपम्। लोकेऽप्यन्तस्त्यं शरीरमध्यस्थावयवजातम्। विक्षुद्रमिव वै विविधत्वेन तारतम्येन स्वल्पमेव भवति। तद्यथा—किञ्चिन्मांसनाड्यादिकमणीय इव च, अत्यन्तं सूक्ष्ममेव भवति। अन्यच्च मांसनाड्यादिकं स्थवीय इव च, अत्यन्तं स्थूलमेव भवति। यस्मादुदरगतमवयवजातमीदृशं तस्मात्तत्स्थानीया एता ऋचो विच्छन्दसो भवन्ति।।

उत्तमलोकप्राप्तिहेतुत्वेन ता ऋचः प्रशंसति—

एताभिर्हाश्विनोः कक्षीवान्प्रियं धामोपागच्छत् स परमं लोकमजयत् ।।६।।

हिन्दी—(उत्तम लोक की प्राप्ति के कारणभूत इन ऋचाओं की प्रशंसा कर रहे हैं—) **एताभिः** इन (ऋचाओं द्वारा) **कक्षीवान्** कक्षीवान् नामक ऋषि ने **अश्विनोः प्रियं धाम उपागच्छत्** अश्विन् देवों के प्रिय स्थान को प्राप्त कर लिया और **सः परमं लोकम् अजयत्** इन्होंने परम लोक को जीत लिया (प्राप्त किया)।

सा० भा०—कक्षीवानित्येतन्नामकः कश्चिदृषिः। स च 'का राधद्' इत्येताभिर्ऋग्भिर्जयं कृत्वा अश्विनोर्यत्प्रियं धाम स्थानं तत् प्राप्नोत्। ततस्ताभ्यामनुगृहीतस्ततोऽप्युत्तमं लोकं जितवान्।।

एतद्वेदनं प्रशंसति—

उपाश्विनोः प्रियं धाम गच्छति जयति परमं लोकं य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी—**यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है, वह **अश्विनोः प्रियं धाम गच्छति** अश्विनों के प्रिय स्थान को जाता है और **परमं लोकं जयति** और परम लोक को प्राप्त कर लेता है।

सा० भा०—पञ्चर्चं सूक्तान्तरं विधत्ते—

---

(१) 'प्रथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री'—इति (१.६)। 'मध्यमश्चेत् ककुप्'—इति (३.२) नवकयोर्मध्ये जागतः काविराट्'—इति (४.५), 'नव वैराजत्रयोदशैर्नष्टरूपी' इति—(४.६), 'एकादशिनोः परः षट्कस्तनुशिरा'—इति (३.३) च कात्यायनीयऋक्सर्वानुक्रमण्यां परिभाषा खण्डे द्रष्टव्यः।

(२) षष्ठी-ऋक् यद्यपि पादसङ्ख्ययोष्णिक् न भवति, तथाप्यक्षरसङ्ख्ययोष्णिगित्यर्थः।

(३) 'अष्टिनोर्मध्ये दशकौ विष्टारबृहती'—इति (४.७) च, ऋक्सर्वा०।

(४) दशम्याद्यास्तिस्रो गायत्र्यः; परं नेह विनियोज्याः।

'आभात्यग्निरुषसामनीकमिति' सूक्तम्[१] ।।८।।

हिन्दी—(पाँच ऋचाओं वाले अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **'आभात्यग्निरुषसामनीकम्' इति सूक्तम्** इस सूक्त से (होता स्तुति करता है)।

सा० भा०—अभिष्टवार्थं पठेदिति सर्वत्र द्रष्टव्यम्।।

प्रथमाया ऋचश्चतुर्थपादं पठित्वा तन्मुखेन सूक्तं प्रशंसति—

पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छेत्यभिरूपं यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।९।।

हिन्दी—(इस सूक्त की प्रथम ऋचा के चतुर्थ पाद का पाठ करके उसके द्वारा सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) ('प्रथम ऋचा के चतुर्थपाद) **'पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ' इति अभिरूपम्** यह (घर्म शब्द का प्रयोग होने के कारण घर्म के) अनुरूप है। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो यह (सूक्त) यज्ञ के अनुरूप है, **तत्** उसके (पाठ से) **समृद्धम्** (यज्ञ की) समृद्धि होती है।

सा० भा०—हे अश्विनौ पीपिवांसमभिप्रवृद्ध घर्ममच्छ प्रवर्ग्यमभिलक्ष्येत्येवमस्मिन् पादेऽवगम्यते। एतत्सूक्तं प्रवर्ग्यस्यानुरूपम्।।

सूक्तगतं छन्दः प्रशंसति—

तदु त्रैष्टुभं वीर्यं वै त्रिष्टुब्वीर्यं वास्मिंस्तद्दधाति ।।१०।।

हिन्दी—(सूक्तगत छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तदु त्रैष्टुभम्** वह सूक्त त्रिष्टुप् छन्द वाला है। **त्रिष्टुप् वीर्यम्** त्रिष्टुप् शक्तिरूप है। **तत्** इस (सूक्त के पाठ) से **अस्मिन्** इस (प्रबर्ग्य) में **वीर्यमेव दधाति** शक्ति को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—तदु तच्च सूक्तम्।।

अष्टर्चं सूक्तान्तरं विधत्ते—

'ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे' इति सूक्तमक्षी इव कर्णाविव नासेवेत्यङ्गसमाख्याऽयमेवास्मिंस्तदिन्द्रियाणि दधाति ।।११।।

हिन्दी—(अब आठ ऋचाओं वाले अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **'ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे' इति सूक्तम्** यह सूक्त **अक्षी इव कर्णौ इव नासा इव** नेत्र, कानों और नासिका के समान **अङ्गसमाख्या** अङ्गों का कथन करने वाला है। **तद्** इस (सूक्त के पाठ) से **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य) में **अयम् इन्द्रियाणि दधाति** यह (होता) इन्द्रियसामर्थ्य को स्थापित करता है।

सा० भा०—तस्य सूक्तस्य[२] पञ्चम्यामृचि द्वितीयपाद एवमाम्नातः—'अक्षी इव

(१) ऋ० ५.७६.१-५। (२) ऋ० २.३९.१-८।

चक्षुषा यातमर्वाक्' इति। षष्ठ्यामृच्युत्तरार्धमेवामाम्नातम्—'नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे' इति एवं च सत्यङ्गसमाख्याऽयमेवाक्षिकर्णनासादिरूपाण्यङ्गानि पुनः पुनः कथयन्नेव तस्मिन् घर्म इन्द्रियाणि स्थापयति।

सूक्तगतं छन्दः प्रशंसति—

तदु त्रैष्टुभं वीर्यं वै त्रिष्टुब्वीर्यमेवास्मिंस्तद्दधाति ।।१२।।

हिन्दी—(सूक्तगत छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तदु त्रैष्टुभम्** वह सूक्त त्रिष्टुप् छन्द वाला है। **वीर्यं वै त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् छन्द शक्तिरूप है। **तद्** उस (सूक्त के पाठ) से **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य) में **वीर्यमेव दधाति** शक्ति को ही प्रतिष्ठापित करता है।

पञ्चविंशत्यृचं सूक्तान्तरं विधत्ते—

'ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये' इति सूक्तम्[1] ।।१३।।

हिन्दी—(पचीस ऋचाओं वाले अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **'ईळे द्यावा-पृथिवी पूर्वचित्तये' इति सूक्तम्** इस सूक्त से (होता स्तुति करता है)।

प्रथमाया ऋचो द्वितीयपादमुदाहृत्य तद्द्वारा सूक्तं प्रशंसति—

अग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टय इत्यभिरूपं यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।१४।।

हिन्दी—(सूक्त की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद के द्वारा सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) **'अग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये' इति अभिरूपम्** यह (प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद में घर्म सुरुचं का प्रयोग होने से घर्म के) अनुरूप है। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो (यह) यज्ञ के अनुरूप है, **तत्समृद्धम्** वह (यज्ञ की) समृद्धि है।

सा॰ भा॰—अग्निमित्यादिके द्वितीयपादे सुरुचं घर्ममिति शोभनदीप्तियुक्तः प्रवर्ग्यः पठितस्तस्मादिदं सूक्तमनुरूपम्।।

तत्सूक्तगतं छन्दः प्रशंसति—

तदु जागतं जागता वै पशवः पशूनेवास्मिंस्तद्दधाति ।।१५।।

हिन्दी—(सूक्तगत छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तदु जागतम्** वह (सूक्त) जगती छन्द वाला है। **जागताः वै पशवः** पशु भी जगती छन्द से सम्बन्धित होते हैं। **तत्** इस (सूक्त के पाठ) से **अस्मिन्** इस (प्रवर्ग्य) में **पशून् एव दधाति** पशुओं को ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा॰ भा॰—पुरा कदाचित्सोममाहर्तुं[2] द्युलोके गता जगती तमाहर्तुमशक्ता सती पशून् दीक्षां चाऽऽहृतवती तस्मात् पशवो जागता। एतच्च कद्रूश्चेत्यनुवाके तैत्तिरीयैः

(१) ऋ॰ १.११२.१-२५। (२) तै॰सं॰ ६.१.६.२।

समाम्नातम्—'सा पशुभिश्च दीक्षया चाऽऽगच्छत्तस्माज्जगती छन्दसां पशव्यतमा' इति। अतस्तदीयपाठेन पशून् संपादयति॥

सूक्तगतास्वृक्षु सर्वासु विद्यमानमर्थमुपजीव्य सूक्तं प्रशंसति—

याभिरमुमावतं याभिरमुमावतमित्येतावतो हात्राश्विनौ कामान् ददृशतुस्तानेवास्मिंस्तद्दधाति तैरेवैनं तत्समर्धयति ।।१६।।

हिन्दी—**याभिः अमुम् आवतम्** 'जिन (रक्षाओं) के द्वारा इसकी सुरक्षा किया' और **याभिः एनम् आवतम्** जिन (रक्षाओं) के द्वारा इसकी सुरक्षा किया—**इति** इस प्रकार (इस सूक्त की भी ऋचाओं में कहा गया है) **एतावतः कामान् ह** उतनी ही कामनाओं को **अत्र** इस कर्म में **अश्विनौ ददृशतुः** अश्विन् देव प्रदान करें। **तत्** इस (सूक्त के पाठ) से **तान् एव अस्मिन् दधाति** उन (कमनाओं) को (होता) इस (प्रवर्ग्य) में प्रतिष्ठापित करता है और **तैः एव एनं समर्धयति** उन्हीं (मन्त्रों) से ही इस (प्रवर्ग्य) को समृद्ध करता है।

सा० भा०—अस्य सूक्तस्य प्रथमायामृचि द्वितीयार्धमेवाम्नातम्—'याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विनाऽऽगतम्' इति। तस्यायमर्थः—हे अश्विनौ युवामंशाय तन्नाम्नः पुरुषस्योपकाराय भरे युद्धे कारं विजयं कृत्वा याभिरूतिभिः पालनैरंशनामकं तं पुरुषं जिन्वथः प्रीणयथस्ताभिरू षु तादृशीभिरेवोतिभिः पालनैरागतमिह कर्मणि समागच्छतमिति। द्वितीयस्यामृचि द्वितीयार्द्धमेवमाम्नातम्—'याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिराश्विनाऽऽगतम्' इति'। तस्यायमर्थः—हे अश्विनाविष्टयेऽभीष्टसिद्ध्यर्थं कर्मण्यनुष्ठीयमाने लौकिके वैदिके वा सर्वस्मिन् कर्मणि याभिरूतिभिर्धियः प्राणिनां बुद्धीरवथो रक्षथस्ताभिरेवोतिभिरागच्छतमिति। एवं सर्वास्वप्यृक्ष्वर्थोऽनुसंधेयः। तमर्थं सर्वं सामान्यवाचिना सर्वनामशब्देन परामृश्य श्रुतिर्याभिरित्येकेन वाक्येन संगृह्णाति याभिरूतिभिरमुमीदृशमावतं युवां रक्षितवन्ताविति। सर्वेषामृगर्थानां संग्राहिकां वीप्सामभिप्रेत्य याभिरमुमावतमिति द्विः पठ्यते। तास्वृक्षु यावन्तः कामाः श्रूयन्ते तावन्तः कामा इह कर्मण्यश्विनौ ददृशतुः कटाक्षेणानुगृहीतवन्तौ। तत्सूक्तपाठेन तानेव सर्वान् कामानस्मिन् प्रवर्ग्ये यजमाने वा संपादयति ते च कामाः समृद्धाः संपद्यन्ते॥

अन्यां काञ्चिदृचं विधत्ते—

'अरूरुचद् उषसः पृश्निरग्रिय' इति रुचितवती; रुचमेवास्मिंस्तद्दधाति[1] ।।१७।।

हिन्दी—(अन्य किसी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **'अरूरुचद् उषसः पृश्निरग्रिय' इति रुचितवती** यह (ऋचा) रुचित शब्द से सम्पन्न है। **तत्** इस (ऋचा के पाठ) से

---

(१) ऋ० ९.८३.३।

अस्मिन् रुचमेव दधाति इस (प्रवर्ग्य) में कान्ति को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—अस्यामृच्यरूरुचदिति श्रुतत्वाद् रुचितमभीष्टं कान्तिर्वाऽस्यामस्तीत्यसौ रुचितवती सा पठनीया। तस्याः पूर्वोक्तसूक्ते[1] स्थानविशेष आश्वलायनेन दर्शितः—'प्रागुत्तमाया[2] अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय इत्यावपेतोत्तरेणार्धर्चेन पत्नीमीक्षेत'[3] इति। तन्मन्त्रपाठेन यजमाने कान्तिं संपादयति॥

सूक्तस्यान्तिमयर्चाऽभिष्टवे पूर्वभागस्य समापनं विधत्ते—

'द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानित्युत्तमया परिदधाति ॥१८॥

हिन्दी—(सूक्त की अन्तिम ऋचा से कर्म के समापन का विधान कर रहे हैं—) 'द्युभिंरक्तुभिः परि पातमस्मान्' **इति उत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से (कर्म का) समापन करता है।

तस्या ऋचोऽवशिष्टं पादत्रयमनूद्य कृत्स्नं मन्त्रतात्पर्यं दर्शयति—

'अरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौरित्येतैरेवैनं तत्कामैः समर्धयति ॥१९॥

हिन्दी—('द्युभिरक्तुभिः' इस ऋचा के अन्तिम तीन पादों को दिखला कर सम्पूर्ण ऋचा के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) हे अश्विनौ! **द्युभिः** कान्ति से अथवा द्युलोकगत भोगों से **अक्तुभिः** (घृत तैल इत्यादि) रञ्जन साधनों से, **अरिष्टेभिः** हिंसा परिहारों से और **सौभगेभिः** शोभन भाग्यो से **अस्मान् परिपातम्** हम लोगों की सभी ओर से पालन (अथवा रक्षा) करो तत्पश्चात् **मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः** मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और द्यु इत्यादि देवगण **ममहन्ताम्** मेरी स्तुति के अनुरूप होवे। **तत्** इस (ऋचा के पाठ) से (होता) **एतैः एव कामैः** इन्हीं कामनाओं के साथ **एनं समर्धयति** इस (प्रवर्ग्य) को समृद्ध करता है।

सा० भा०—तस्या ऋचोऽयमर्थः—हे अश्विनौ द्युभिर्दीप्तिभिर्द्युलोकोचितभोगैर्वाऽक्तुभिरञ्जनसाधनद्रव्यैराज्यतैलादिभिररिष्टेभिर्हिंसापरिहारैः सौभगेभिः सर्वभोगसंपत्तिलक्षणैः सौभाग्यैश्चास्मान् पातं रक्षतम्। तत्तथा सत्यनन्तरं नोऽस्मान् मित्रावरुणादितिसमुद्रपृथिवीद्युदेवताः सर्वा अपि ममहन्तामतिशयेन पूजयन्त्विति। तन्मन्त्रपाठेनैनं यजमानमेतैरेव कामैर्द्युभिरक्तुभिरित्यादिशब्दोक्तैः फलैः समृद्धं करोति॥

---

(१) 'तस्याः' अरूरुचदित्येतस्याः, 'पूर्वोक्तसूक्ते' ईळेद्यावेति सूक्ते (ऋ० १.११२)।

(२) 'उत्तमायाः' पञ्चविंशतितमायाः अन्तिमायाः 'प्राक्' पूर्वम्; चतुर्विंशतितमाया ऊर्ध्वमिति यावत्। 'द्युभिरक्तुभिः'—इत्येषैव ऋक् ईळेद्यावेतिसूक्तस्यान्त्या।

(३) आश्व०श्रौ० ४.६.३।

अभिष्टवस्य[1] पूर्वभागमुपसंहरति—

(अभिष्टवस्य पूर्वभागसमाप्तिकथनम्)

इति नु पूर्वं पटलम् ।।२०।।

हिन्दी—(स्तुति के पूर्वभाग के उपसंहार को कह रहे हैं—) इति नु पूर्वपटलम् इस प्रकार (ब्रह्मजज्ञानम् से लेकर पृथिवी उत तक स्तुति से) पूर्वभाग की समाप्ति होती है।

विमर्श—(१) यहाँ स्तुति के पूर्वभाग और उत्तरभाग की कल्पना की गयी है। इस पूर्वभाग में कुल मिलाकर १०७ ऋचाओं का पाठ होता करता है। स्तुति के पूर्व और उत्तर भाग के विभाजनका कारण यह है प्रत्येक भाग के प्रथम और अन्तिम ऋचा की आवृति की जाती है।

सा० भा०—ब्रह्मजज्ञानमित्यारभ्य पृथिवी उत द्यौरित्यन्तेनोक्तप्रकारेणाभिष्टवस्य पूर्वो भागो वर्णितः[2]। अत्र भागद्वयकल्पनमेकैकस्मिन् भागे प्रथमोत्तमयोर्ऋचोरावृत्त्यर्थम्।

अत एवोक्तम्—

आद्यान्त्यात्रित्वसिद्ध्यर्थं पटलद्वितयं कृतम्।
अन्यथाऽभिष्टवस्यैक्यात् त्रित्वं तत्रैव वै भवेत् ।।[3]

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य चतुर्थाध्याये चतुर्थः खण्डः ।।४।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—पटलान्तरं प्रतिजानीते—

---

(१) अभिष्टवनं नाम घर्मस्य संस्कारोऽभिधानरूपः। एतच्च 'घर्ममभिष्टुहि' इति सम्प्रैषादवगतम्। तत्र यत् क्रियान्तरमीक्षमाणादि तदानुषङ्गिकम्, तदपि वचनात् कर्तव्यमेव'—इति आश्वलायन-वृत्तौ नारायणः। एतदभिष्टवनं च अध्वर्युप्रेषितेन होत्रा ऋगावानं यथास्यात्तथा कर्तव्यं भवति (आश्व०श्रौ० ४.६.१-३)। 'ऋचमृचमनवानमुक्त्वा प्रणुत्यावस्येत्'—इति च तत्रैव ऋगावानलक्षणम् (४.६.२)।

(२) आश्वलायनोऽप्याह—'इति नु पूर्वं पटलम्'—इति ४.६.३।

(३) ऋक्प्राति० ४.७; ६.४।

(अभिष्टवस्योत्तरपटलारम्भविधानम्)

अथोत्तरम्[१] ।।१।।

हिन्दी—अथोत्तरम् अब (प्रवर्ग्य के पूर्वभाग के कथन के बाद) उत्तरभाग (के मन्त्र-समूहों) को (कहा जा रहा है)।

सा० भा०—पटलमुच्यत इति शेषः। पटलशब्दः समूहवाची। 'समूहः पटलं न ना' इत्यभिधानकारैरुक्तत्वात्[२]। उत्तरभागस्थो मन्त्रसमूहः कथ्यते इत्यर्थः।

तत्रैकविंशतिसंख्याका ऋचस्तत्तत्प्रतीकग्रहणेन विधत्ते—

(तत्राभिष्टवस्य पुनरेकविंशत्यृचां विधानम्)

'उप ह्वये सुदुधां धेनुमेतां' 'हिं कृण्वती वसुपत्नी वसूनाम्' 'अभि त्वा देव सवितः' 'समी वत्सं न मातृभिः' 'सं वत्स इव मातृभिः' 'यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूः' 'गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं' 'नमसेदुप सीदत' 'संजानाना उपसीदन्नभिज्ञ,' 'आ दशभिर्विवस्वतः' 'दुहन्ति सप्तैकां' 'समिद्धो अग्निरश्विना' 'समिद्धो अग्निर्वृषणा रतिर्दिवः' 'तदु प्रयक्षतममस्य कर्म' 'आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय' 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' 'अधुक्षत्पिप्युषीमिषम्' 'उप द्रव पयसा गोधुगोषमा' 'आ सुते सिञ्चत श्रियम्' 'आ नूनमश्विनोर्ऋषिः' 'समु त्ये महतीरपः' इत्येकविंशतिरभिरूपा यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम्।।२।।

हिन्दी—(उत्तरभाग में विहित इक्कीस ऋचाओं के प्रतीकों को कह रहे हैं—) 'उप ह्वये सुदुधां धेनुमेताम्' 'हिं कृण्वती वसुपत्नी वसूनाम्', 'अभि त्वा देव सवितः', 'समी वत्सं न मातृभिः', 'सं वत्स इव मातृभिः', 'यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूः','गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं', 'नमसेदुप सीदत' 'संजानाना उपसीदन्नभिज्ञः', 'आ दशभिर्विवस्वतः', 'दुहन्ति सप्तैकां' 'समिद्धो अग्निरश्विना', 'समिद्धो अग्निर्वृषणा रतिर्दिवः', 'तदु प्रयक्षतम-मस्य कर्म', 'आत्मन्वन्नभो दुह्यते घृतं पय', 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते', 'अधुक्षत्पिप्युषीमिषम्', 'उप द्रव पयसा गोधुगोषमा','आ सुते सिञ्चत श्रियम्','आ नूनमश्विनोर्ऋषिः', और 'समु त्ये महतीरपः' **इति एकविंशति** ये इक्कीस **अभिरूपाः** प्रवर्ग्य के अनुरूप (ऋचाएँ) हैं। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो ये (ऋचाएँ) यज्ञ के अनुरूप है **तत्** उन (ऋचाओं के पाठ) से **समृद्धम्** (यज्ञ) समृद्ध होता है।

---

(१) आश्वलायनोऽप्येवमेवाह 'अथोत्तरम्'—इति। अत्रापि ऋगावानं प्रयोजनीयम्; अपि च 'अनभिहिङ्कृत्य' (४.७.३) इत्यधिकम्।

(२) अमरकोष ३.३.२०१।

सा० भा०—विहितास्वृक्षु, 'उप ह्वये'[१] इति प्रथमा। 'हिं कृण्वति'[२] इति द्वितीया। 'अभि त्वा'[३] इति तृतीया। 'समीवत्सम्'[४] इति चतुर्थी। 'संवत्स इव'[५] इति पञ्चमी। 'यस्ते स्तन'[६] इति षष्ठी। 'गौरमीमेद्'[७] इति सप्तमी। 'नमसेत्'[८] इत्यष्टमी। 'संजानानाः'[९] इति नवमी। आ दशभिः'[१०] इति दशमी। 'दुहन्त सप्तैकाम्'[११] इत्येकादशी। 'समिद्धो अग्निरश्विना'[१२] इति द्वादशी। 'समिद्धो अग्निर्वृषणारतिर्दिव'[१३] इति त्रयोदशी। एतदुभयं शाखान्तरगतम् आश्वलायनेन पठितम्। 'तदु प्रयक्षतम्'[१४] इति चतुर्दशी। 'आत्मन्वन्निति'[१५] पञ्चदशी। उत्तिष्ठेति[१६] षोडशी। तस्या विनियोगम् आश्वलायन आह—"उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इत्येतामुक्त्वाऽवतिष्ठते"[१७] इति। अधुक्षदिति[१८] सप्तदशी। तद्विनियोगमाह—दुग्धायामधुक्षदिति। उपद्रवेत्यष्टादशी[१९]। तद्विनियोगं चाऽऽह—आह्रियमाण उपद्रवेति। सेयं शाखान्तरगतत्वा आश्वलायनेन पठिता[२०]। 'आ सुते'[२१] इत्येकोनविंशी। आ नूनमिति[२२] विंशी। अनयोर्व्यत्ययेन प्रयोगमाह—"आसिच्यमान आनूनमश्विनोर्ऋषिरिति गव्य आ सुते सिञ्चत श्रियमित्याज"[२३] इति। 'समु त्ये'[२४] इत्येकविंशी। तद्विनियोगं चाऽऽह—"आसिक्तयोः समु त्ये"[२५] इति सेयमृचामेकविंशतिधर्मदुहो धेनोर्दोहनस्यानुरूपा। तास्वृक्षु दोहनोचितानां दृश्यमानत्वात्॥

अथ षण्णामृचां प्रतीकानि क्रमेणाऽऽदाय तद्विनियोगं दर्शयति—

(षड्भिर्मन्त्रैः षण्णां कर्मणां विधानम्)

'उदुष्य देवः सविता हिरण्ययेत्यनूत्तिष्ठति, 'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरित्यनुप्रैति, 'गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षतीति[२६] खरमवेक्षते, 'नाके सुपर्णमुपयत्पतन्तमित्युपविशति'[२७] 'तप्तो वां घर्मो न क्षतिः स्वहोता' 'उभा पिबतमश्विनेति पूर्वाह्णे यजति ।।३।।

हिन्दी—(अब छः ऋचाओं के प्रतीक को क्रम से देकर इनके विनियोग को दिखला रहे हैं—) 'उदुष्य देवः सविता हिरण्यया' इति अनूत्तिष्ठति इस (ऋचा) से (होता सभी

---

(१) ऋ० १.१६४.२६। (२) ऋ० १.१६४.२७। (३) ऋ० १.२४.३।
(४) ऋ० ९.१०४.२। (५) ऋ० ९.१०५.२। (६) ऋ० १.१६४.४९।
(७) ऋ० १.१६४.२८। (८) ऋ० ९.११.६। (९) ऋ० १.७२.५।
(१०) ऋ० ८.७२.८। (११) ऋ० ८.७२.७। (१२) अथर्व० ७.७७.२,१।
(१३) आश्व०श्रौ० ४.७.४ (१४) ऋ० १.६२.६। (१५) ऋ० ९.७४.४।
(१६) ऋ० १.४०.१। (१७) आश्व०श्रौ० ४.७.४। (१८) ऋ० ८.७२.१६।
(१९) अथर्व० ७.७७.६। (२०) आश्व०श्रौ० ४.७.४। (२१) ऋ० ८.७२.१३।
(२२) ऋ० ८.९.७। (२३) आश्व०श्रौ० ४.७.४। (२४) ऋ० ८.७.२२।
(२५) आश्व०श्रौ० ४.७.४। (२६) ऋ० ९.८३.४। (२७) ऋ० १०.१२३.६।

पुरोहितों के) पीछे खड़ा होता है। 'प्रैतु ब्राह्मणस्पते' **इति अनुप्रैति** इस (ऋचा का पाठ करते हुए) आगे को बढ़ता है। 'गन्धर्व इत्था पदमस्य रक्षति' **इति खरम् अवेक्षते** इस (ऋचा) से खर को देखता है। 'नाके सुपर्णमुपयत्पन्तम्' **इति उपविशति** इस (ऋचा) से बैठ जाता है। इसके बाद 'तप्तो वां घर्मो न क्षतिः स्वहोता' और 'उभा पिबतमश्विना' **इति पूर्वाह्णे यजति** इनसे पूर्वाह्ण में यजन करता (याज्या रूप में पढ़ता) है।

सा० भा०—महावीरमादायोत्तिष्ठत्स्वन्येषु[1] होतोदुष्य देवः[2] इत्यनेन मन्त्रेण तान-नूत्तिष्ठेत्। तेषु गच्छत्सु 'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः[3] इति मन्त्रेणानुगच्छेत्। 'खरः' प्रवृञ्जनस्थानम्। तप्तो वामित्येषा[4] शाखान्तरगत्वात् सूत्रकारेण पठिता।[5] उभा पिबतमिति[6] स्वशाखागता ताभ्यामुभाभ्यां पूर्वाह्णे यजति। तदुभयं याज्यारूपेण पाठेन पठेत्। प्रवर्ग्यस्य कालद्वयेऽ-प्यनुष्ठेयत्वात् पूर्वाह्ण इति विशेष्यते॥

विनियोगसहितं मन्त्रान्तरं विधत्ते—

(अनुवषट्कारमन्त्रः)

अग्ने वीहीत्यनुवषट्करोति स्विष्टकृद्भाजनम् ॥४॥

हिन्दी—(विनियोग के सहित अन्य ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'अग्ने वीहि' **इति अनुवषट्करोति** इस (ऋचा) से अनुवषट् करता है। **स्विष्टकृद् भाजनम्** (वह अनुवषट्कार) स्विष्टकृत् स्थानीय होता है।

सा० भा०—पूर्वोक्तयोर्याज्ययोः पाठान्ते वौषडिति यदुच्चारणं सोऽयं प्रथमो वषट्-कारः। तत ऊर्ध्वमग्ने वीहीत्युच्चार्य वौषडिति यत्पठनं सोऽयमनुवषट्कारः। एतं मन्त्रं होता पठेत्। हे अग्ने वीहि खाद भक्षयेत्यर्थः[7]। घर्मस्य यजेत्यध्वर्युणा प्रेषितो होता पूर्वोक्तं याज्याद्वयं सवषट्कारं यदा पठति तदानीमध्वर्युरश्विना घर्मं पातमिति मन्त्रेण जुहोति। पुनरप्यग्ने वीहीति होत्रा पठिते सत्यध्वर्युः स्वाहेन्द्रावडिति जुहोति। तदेतत् सर्वम् **आपस्तम्ब** आह—'आश्राव्य प्रत्याश्राविते संप्रेष्यति घर्मस्य यजेत्यश्विनः घर्मं पातमिति वषट्कृते जुहोति। स्वाहेन्द्रावडित्यनुवषट्कृते[8] इति। यदेतदनुवषट्कारे यजनं तदेतत्स्विष्टकृद्भाजनं स्विष्टकृत्स्थानीयमित्यर्थः॥

यथा पूर्वाह्णे याज्यापाठस्तथाऽपराह्णकालानुष्ठानेऽपि विधत्ते—

यदुस्त्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽस्य पिबतमश्विनेत्यपराह्णे यजत्यग्ने वीही-

---

(१) तथैव सूत्रकारस्य विधानात् (आश्व०श्रौ० ४.७.४)।
(२) ऋ० ६.७१.४। (३) ऋ० १.४०.३। (४) अथर्व० ७.७७.५।
(५) आश्व०श्रौ० ४.७.४। (६) ऋ० १.४६.१५। (७) ऋ० १०.१२३.६।
(८) आप०श्रौ० १५.१०.११।

त्यनुवषट्करोति स्विष्टकृद्भाजनम् ।।५।।

हिन्दी—(जिस प्रकार पूर्व में याज्या का पाठ होता है उसी प्रकार अपराह्णकाल में भी विधान कर रहे हैं—) 'यदुस्त्रिया स्वाहुतं घृतं पयः' और 'अस्य पिबतमश्विना **इति अपराह्णे यजति** इन दो मन्त्रों से अपराह्ण में यजन करता (याज्यपाठ करता) है। 'अग्नि वीहि' **इति अनुवषट्करोति** इस मन्त्र से अनुवषट् करता है; जो **स्विष्टकृद्भाजनम्** स्विष्टकृत् के स्थान वाला होता है।

सा० भा०—'यदुस्त्रियास्वाहुतम्' इत्येषा शाखान्तरगतत्वाद् आश्वलायनेन पठिता।[1] अस्य पिबतमिति स्वशाखागता।[2] अन्यत् सर्वं पूर्ववत्।

अत्र मुख्यस्विष्टकृद्रहितत्वात्तल्लोपमाशङ्क्य परिहरति—

त्रयाणां ह वै हविषां स्विष्टकृतेन समवद्यन्ति सोमस्य घर्मस्य वाजिन-स्येति स यदनुवषट्करोत्यग्नेरेव स्विष्टकृतोऽनन्तरित्यै।।६।।

हिन्दी—(यहाँ मुख्य वषट्कार की रहितता के कारण उसके लोप की आशङ्का का परिहार कर रहे हैं—) **सोमस्य घर्मस्य वाजिनस्य** सोमरस, घर्म (प्रवर्ग्य हवि) और मट्ठा, इस प्रकार **त्रयाणां हविषाम्** तीनों हविषों के **स्विष्टकृतेन** स्विष्टकृत से **समवद्यन्ति** अवदान करते हैं। **सः यद् अनुवषट्करोति** वह (होता) जो बाद में वषट्कार करता है, वह **स्विष्टकृतः अग्नेः अनन्तरित्यै** स्विष्टकृत् अग्नि के लोप के निवारण के लिए होता है।

सा० भा०—सोमो बल्लीरसः। घर्मः प्रवर्ग्यहविः। वाजिनमामिक्षानुनिष्पादि नीरम्। एतेषां स्विष्टकृदर्थमवदानं न कुर्युः। न चैतावता तल्लोपः। स होताऽनुवषट्करोतीति यदस्ति तदेतत्स्विष्टकृन्नामकस्याग्नेरनन्तरित्यै। अन्तरायो लोपस्तन्निवृत्त्यर्थं भवति।।

अथ ब्रह्मणः शाखान्तरप्रसिद्धेन मन्त्रेण जपं विधत्ते—

(प्रवर्ग्यस्य ब्रह्माद्वारा जपमन्त्रः)

'विश्वा आशा दक्षिणासादिति' ब्रह्मा जपति ।।७।।

हिन्दी—(अब ब्रह्मा द्वारा किये गये जप का विधान कर रहे हैं—) 'विश्वा आशा दक्षिणासात्' **इति ब्रह्मा जपेत्** इस मन्त्र का ब्रह्मा जप करता है।

सा० भा०—इयमृगाश्वलायनेन पठिता।।[3]

प्रासङ्गिकं ब्रह्मजपं विधाय होमादूर्ध्वं होत्रा पठनीया ऋचः सप्त विधत्ते—

---

(१) आश्व०श्रौ० ४.७.४। (२) ऋ० ८.५.१४।
(३) आश्वश्रौ० ४.७.४। तु० अथर्व० ७.७३.३।

(होमादूर्ध्वं होत्रा पठनीया सप्तर्चः)

'स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु घर्मः' 'समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो' 'द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति' । 'सखे सखायमभ्याववृत्स्व', 'ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतय', 'ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसः', 'तं घेमित्था नमस्विन, इत्यभिरूपा यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।८।।

हिन्दी—(प्रासङ्गिक ब्रह्मजप का विधान करके होम के बाद होता द्वारा पठनीय सात ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु घर्मः', 'समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो', 'द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति', 'सखे सखायमभ्याववृत्स्व'; 'ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतय', 'ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसः' और 'तं घेमित्था नमस्विन', **इति अभिरूपः** ये (सात ऋचाएँ प्रवर्ग्य के) अनुरूप है। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो यज्ञ के अनुरूप है, **तत्** इन (ऋचाओं के पाठ) से **समृद्धम्** (यज्ञ) समृद्ध होता है।

सा० भा०—स्वाहाकृत इत्येषा प्रथमा। सा च शाखान्तरगतत्वाद् आश्वलायनेन पठिता।[१] 'समुद्रादूर्मिमिति[२] द्वितीया। 'द्रप्सः समुद्रमिति[३] तृतीया। सखे सखायमिति[४] चतुर्थी। 'ऊर्ध्व ऊ षु णः'[५] इति पञ्चमी। 'ऊर्ध्वो नः पाहीति[६] षष्ठी। 'तं घेमित्थेति[७] सप्तमी। घर्म प्रकाशकत्वादेता 'अभिरूपाः'।।

होतुरेकयर्चा प्रवर्ग्यहविः शेषभक्षणप्रतीक्षां विधत्ते—

(होत्रा प्रवर्ग्यहविःशेषभक्षणाकाङ्क्षा)

पावकशोचे तव हि क्षयं परीति भक्षमाकाङ्क्षते ।।९।।

हिन्दी—(एक ऋचा द्वारा होता के प्रवर्ग्य के अवशिष्ट हवि के भक्षण की प्रतीक्षा का विधान कर रहे हैं—) 'पावकशोचे तव हि क्षयं परि' **इति भक्षम् आकाङ्क्षते** इस (ऋचा) से (होता प्रवर्ग्य के अवशिष्ट हवि के) भक्षण करने की इच्छा करता है।

सा० भा०—समन्त्रकं भक्षणं विधत्ते—

(होत्रा समन्त्रकं हविःशेषभक्षणम्)

हुतं हविर्मधु हविरिन्द्रतमेऽग्नावश्याम ते देव घर्म । मधुमतः पितुमतो वाजवतोऽङ्गिरस्वतो नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीरिति घर्मस्य भक्षयति ।।१०।।

---

(१) आश्व०श्रौ० ४.७.४। तु० अथर्व० ७.७३.३।
(२) ऋ० १.१२३.२। (३) ऋ० १०.१२३.८। (४) ऋ० ४.१.३।
(५) ऋ० १.३६.१३। (६) ऋ० १.३६.१४। (७) ऋ० ८.६९.१७।

हिन्दी—(मन्त्र के साथ अवशिष्ट हवि के भक्षण का विधान कर रहे हैं—) **हे देव घर्म** हे प्रवर्ग्य देव! **इन्द्रतमे अग्नौ** अतिशय ऐवश्वर्य-सम्पन्न अग्नि में **हविः हुतम्** (प्रवर्ग्य नामक) हविष होम कर दी गयी है। **मधुमतः** मधुरता-सम्पन्न, **पितुमतः** अन्न के साधन-भूत और **वाजवतः** गतिमान् (स्वर्ग प्राप्ति के साधन भूत) **ते** तुम्हारे **मधु हविः** (अवशिष्ट) मधुर हवि को **अश्याम** हम लोग भक्षण करें। **ते नमः अस्तु** तुम्हें नमस्कार है **मा मा हिंसीः** हमारी हिंसा मत करो, **इति घर्मस्य भक्षयति** इस (मन्त्र) से (अवशिष्ट) घर्म को (होता) भक्षण करता है।

सा॰ भा॰—अतिशयेनायमैश्वर्यवानिन्द्रतमस्तादृशेऽग्नौ प्रवर्ग्याख्यं हविर्हुतं तच्च मधु माधुर्योपेतं हे धर्म प्रवर्ग्य देवरूप देव ते त्वदीयं हविः शेषमश्याम भक्षयेम। कीदृशस्य ते मधुमतो माधुर्योपेतस्य पितुमतोऽन्नवतोऽन्नसाधनस्य वाजवतो गतिमतः स्वर्गप्राप्ति-साधनस्य। अङ्गिरस्वतः, अङ्गिरोभिर्महर्षिभिरनुष्ठानकाले भक्षितत्वेन तद्युक्तस्य। ईदृशाय ते तुभ्यं नमोऽस्तु। मां भक्षयन्तं मा हिंसीरित्यनेन मन्त्रेण घर्मस्य शेषं भक्षयेत्। अयं मन्त्रोऽन्येषा-मपि भक्षयितॄणां साधारणोऽत एव तैत्तिरीयैरप्याम्नातः॥[१]

अथ होतुर्मन्त्रद्वयं विधत्ते—

(**पात्राणां संसादने होतुर्मन्त्रद्वयम्**)

'श्येनां न योनिं सदनं धिया कृतम्' 'आ यस्मिन् सप्त वासवा' इति संसाद्यमानायान्वाह ॥११॥

हिन्दी—(भक्षण के बाद हविपात्र को नीचे रखने का विधान कर रहे हैं—)'श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतम्' और 'आ यस्मिन् सप्त वासवाः' **इति संसाद्यमानाय अन्वाह** इन दो मन्त्रों को (भक्षण किये गये प्रवर्ग्यपात्र को) नीचे रखने के लिए पढ़ता है।

सा॰ भा॰—'श्येनो न योनिमिति'[२] पूर्वा। 'आ यस्मिन् सप्तेत्यपरा। सेयं शाखान्तर-गत्वाद् आश्वलायनेन पठिता।[३] यदा प्रवर्ग्यपात्राणि संसाद्यन्ते तदा होता मन्त्रद्वयमिदमनु-ब्रूयात्॥

बहुषु दिनेषु पूर्वाह्णापराह्णयोः प्रवर्ग्याख्यं कर्मानुष्ठीयते तत्रोत्तमदिनेऽपराह्णकालीने प्रव-र्ग्याख्ये कांचिदृचमधिकां विधत्ते—

(**उत्तमदिने पराह्णकाले समधिकर्क्पाठविधानम्**)

हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यमिति यदहरुत्सादयिष्यन्तो भवन्ति ॥१२॥

हिन्दी—(जिस दिन प्रवर्ग्य पात्र को उठाना चाहे उस अन्तिम दिन अपराह्ण काल में

---

(१) तै॰आ॰ ४.१०.११। तत्रैव पञ्चमप्रपाठके एतन्मन्त्रस्य व्याख्यानमपि सार्थवादम् (८. ४०-४५)। (२) ऋ॰ ९.७१.६। (३) आश्व॰श्रौ॰ ४.७.४।

किसी ऋचा के अधिक पाठ करने का विधान कर रहे हैं—) **यद् अहः उत्सादयिष्यन्तः भवन्ति** जिस दिन प्रवर्ग्य का समापन करने की इच्छा हो उस दिन 'हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यम्' इस (ऋचा का पाठ) करना चाहिए।

सा०भा०—यदहर्यस्मिन्नहन्युत्सादयिष्यन्तः प्रवर्ग्यमुद्वासयितुमुद्युक्ता भवन्ति तस्मिन्नहनि 'हविर्हविष्म'[1] इत्येतामृचमधिकामुपोत्तमरूपामावपेत्।।

अथ कयाचिदृचाऽभिष्टवस्य समाप्तिं विधत्ते—

(अभिष्टवस्य समापनविधानम्)

'सूयवसाद् भगवती हि भूया'[2] इत्युत्तमया परिदधाति ।।१३।।

हिन्दी—(अब किसी ऋचा द्वारा अभिष्टव की समाप्ति का विधान कर रहे हैं—) 'सूयवसाद् भगवती हि भूया' **इत्युत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से कर्म समापन करता है।

सा०भा०—अन्तिमात् प्राचीनेषु प्रवर्ग्येषु पूर्वोक्तामधिकामप्रक्षिप्यैवानया परिदध्यात्। अन्तिमे तु तां प्रक्षिप्य पश्चादनया परिदध्यात्। तदाह **आश्वलायनः**—'सूयवसाद्भगवती हि भूया' इति परिदध्यादुत्तमे प्रागुत्तमाया हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यमित्यावपेत'[3] इति।।

अथ पूर्वोक्तस्य प्रवर्ग्यकर्मणः प्रशंसार्थं मिथुनव्यापाराकारेण रूपकं दर्शयति—

(देवमिथुनरूपेण प्रवर्ग्यप्रशंसनम्)

तदेतद् देवमिथुनं यद्घर्मः स यो घर्मस्तच्छिश्नं यौ शफौ तौ शफौ योपयमनी ते श्रोणिकपाले यत्पयस्तदरेतस्तदिदमग्नौ देवयोन्यां प्रजनने रेतः सिच्यतेऽग्निर्वै देवयोनिः सोऽग्नेर्देवयोन्या आहुतिभ्यः संभवति ।।१४।।

हिन्दी—(अब पूर्वोक्त प्रवर्ग्य कर्म की प्रशंसा के लिए मिथुनव्यापार से रूपक को दिखला रहे हैं—) **यद् घर्मः** जो घर्म है **तद् एतद् देवमिथुनं** वह यह देवों का जोड़ा है। **सः यः घर्मः** वह जो घर्म (महावीर नामक प्रवर्ग्य का पात्र विशेष) है **तत् शिश्नम्** वह शिश्नरूप है। **यौ शफौ** जो दोनों शफ (गर्म घर्म को उठाने के लिए गूलर की बनी सड़सी) हैं, **तौ शफौ** वे जननेन्द्रिय के (पार्श्व भाग वाले) दो शफ है। **यः उपयमनी** जो उपयमनी (नीचे आधार के लिए गूलर की बनी दर्वी) हैं, **ते श्रोणिकपाले** वे श्रोणी की दो अस्थियाँ है। **यत्पयः** जो (महावीर में विद्यमान तप्त घृत में डाला जाने वाला) दूध है, **तद् रेतः** वह वीर्य है। **तद् इदं रेतः** वह यह (घृत मिश्रित दूध रूप) वीर्य **देवयोन्यां प्रजनने अग्नौ** देवों की योनि (उत्पत्ति स्थान अग्नि) में **सिच्यते** सिञ्चित किया जाता है। **अग्निर्वै**

(१) ऋ० ९.८३.५। (२) ऋ० १.१६४.४०। (३) आश्व०श्रौ० ४.७.४,५।

देवयोनिः अग्नि ही देवताओं के उत्पत्ति-स्थान स्वरूप है। इससे **सः** वह (यजन करने वाला) **देवयोन्याः अग्नेः** देवयोनिरूप अग्नि से **आहुतिभ्यः** आहुतियों द्वारा **सम्भवति** (देवरूप में) उत्पन्न होता है।

सा० भा०—'यद्धर्म:' प्रवर्ग्याख्यं यत्कर्मास्ति 'तदेतद्देवमिथुनं' देवसंबन्धिमिथुन-व्यापार:। तत्कथमिति चेत्, उच्यते—'स यो घर्म:' प्रवर्ग्यहविराश्रयभूतो महावीराख्यो मृन्मयपात्रविशेषो योऽसावस्ति[१] 'तच्छिश्नं' प्रजननेन्द्रियरूपम्। तप्तस्य महावीरस्य हस्ताभ्यां ग्रहीतुमशक्यत्वात् तद्ग्रहणसमर्थोदुम्बरकाष्ठनिर्मितौ 'शफौ' शफनामानौ विद्येते, 'तौ' प्रजननेन्द्रियस्य पार्श्ववर्तिनौ शफाविव संदृश्येते च, उदुम्बरकाष्ठाभ्यां शफनामकाभ्यां महावीरस्य मध्यमभागे धृतत्वात्। तस्याधस्तादाधारार्थमुदुम्बरकाष्ठनिर्मितोपयमनीशब्दवाच्या दर्वी 'या' विद्यते सेयं शरीरसंबन्धिनी ते 'श्रोणिकपाले' श्रोणिद्वयमध्यगतमस्थिद्वयम्। उपयमन्या एकत्वेऽप्यधस्तान्महावीरस्य कदाचिद्दक्षिणभागे कदाचिद्वामभागे तद्धारणात् कपालद्वयरूप-त्वम्। महावीरगते तप्त आज्ये प्रक्षेप्तव्यं 'यत्पयस्तद्रेत:' स्वरूपम्। 'तदिदं' रेतोरूपमाज्यमिश्रं पयोऽग्नौ देवयोनिरूपे 'प्रजनने' उत्पत्तिस्थाने 'रेत: सिच्यते' रेतोरूपेण प्रक्षिप्यते। अग्ने-र्देवयोनित्वप्रसिद्ध्यर्थो वैशब्द:। अग्ने: कर्मण्यनुष्ठाय देवरूपेण जायमानत्वात् सा प्रसिद्धि-र्द्रष्टव्या। सैव प्रसिद्धि: सोऽग्नेरित्यादिना स्पष्टीक्रियते। स यजमानो देवयोनिरूपादग्नेरनुष्ठिताभ्य आहुतिभ्यश्च देवतारूप: संभवत्युत्पद्यते।

उक्तार्थवेदनं तद्वेदनपूर्वकमनुष्ठानं च प्रशंसति—

ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयो वेदमयो ब्रह्ममयोऽमृतमयः संभूय देवता अप्येति य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेतेन यज्ञक्रतुना यजते ।।१५।।

हिन्दी—(अनुष्ठान के ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो (यजन करने वाला) इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है। और **यः च एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **एतेन यज्ञक्रतुना** इस यज्ञानुष्ठान से **यजते** यजन करता है।, वह **ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयः वेदमयः ब्रह्ममयः अमृतमयः सम्भूय** ऋक्सम्पन्न,

---

(१) तप्ते घृते पय: प्रक्षेपादिना प्रणीयते 'घर्म:' खाद्यविशेष:; स एव प्रक्षेप: प्रवृञ्जनमुच्यते; तादृशप्रवृञ्जननिबन्धनैवास्य कर्मण: समाख्या 'प्रवर्ग्य' इति। तत्र च घर्मपाकाय मृन्निर्मिति: कटाहविशेष एव महावीर:। गौण्या तु वृत्या घर्म:; प्रवर्ग्य:, महावीर:—इति त्रीण्येव पदानि समानार्थानीति विवेक:। 'यदा मृद्वराहविहतवल्मीकवपादिसम्भारै: सम्भ्रियमाण-त्वदशापन्नो भवति। तदा प्रजापतिरित्येवास्य नाम, सर्वात्मना सम्भृतत्वदशापन्नस्य सम्राडिति नाम; प्रवृञ्जनदशापन्नस्य घर्म इति नाम, उद्वासनदशापन्नस्य महावीर इति नाम; एताभिर्दशाभिरवस्थात् यत् स्वरूपम्, तेन रूपेणादित्य इति नाम; स प्रवर्ग्य एवमेतानि नामान्यकुरुत'—इति तै०आ० ५.११.१ सा०भा०। तथा शत०ब्रा० १४.१.१.१०-११ एवमादिकं तु सर्वं स्तुत्यर्थं बोध्यम्।

यजुस्सम्पन्न, सामसम्पन्न, समस्त वेदसम्पन्न, ब्रह्मयुक्त और अमरता से सम्पन्न होकर देवता अप्येति सभी देवताओं के समष्टिरूप को प्राप्त करता है।

सा०भा०—वेदशब्देनाथर्ववेदः सर्ववेदसमष्टियुक्तिर्वोच्यते। ब्रह्मशब्देन हिरण्यगर्भः। अमृतशब्देन परमात्मा। ता एकैकदेवताः सर्वाः संभूयैकीकृत्य समष्टिरूपमप्येति प्राप्नोति। वेदमात्रेण शनैस्तत्प्राप्तिर्वेदनपूर्वकानुष्ठानेन तु सहसेति विशेषो द्रष्टव्यः।[१]

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य चतुर्थाध्याये पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के पञ्चम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा०भा०—प्रवर्ग्याख्यं कर्म[२] परिसमाप्योपसदाख्यं कर्म वक्तुमाख्यायिकामाह—

(उपसदिष्टिविधानम्)

(तत्राख्यायिकाकथनम्)

देवासुरा वा एषु लोकेषु समयतन्त ते वा असुरा इमानेव लोकान् पुरोऽकुर्वत यथौजीयांसो बलीयांस एवं ते वा अयस्मयीमेवेमामकुर्वत रजतामन्तरिक्षं हरिणीं दिवं ते तथेमाँल्लोकान् पुरोऽकुर्वत ते देवा अब्रुवन् पुरो वा इमेऽसुरा इमाँल्लोकानक्रत पुर इमाँल्लोकान् प्रतिकरवामहा इति तथेति ते सद एवास्याः प्रत्यकुर्वताऽऽग्नीध्रमन्तरिक्षाद्धविर्धाने दिवस्ते तथेमँल्लोकान् पुरः प्रत्यकुर्वत ।।१।।

हिन्दी—(प्रवर्ग्य नामक कर्म को समाप्त करके उपसद् नामक कर्म को कहने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **देवासुरा वै** देवताओं और असुरों ने **एषु लोकेषु** इन (तीनों) लोकों के विषय में **समयतन्त** परस्पर युद्ध किया। **ते असुराः वै** उन असुरों

(१) 'अल्पप्रयाससाध्येन वेदनेन'—इत्यादि पूर्वोक्तं संभृत्यैवेदमुक्तम्।

(२) तथा चेमानि प्रवर्ग्यकर्माणि;—शन्तिपाठः, महावीरनिर्माणम्, तत्संस्काराः, प्रैषाः, महावीरस्थापनम्, तदभिमन्त्रणम् अभिमन्त्रितस्य तस्यावेक्षणम्, महावीरस्थे तप्ते आज्ये पयः प्रक्षेपरूपं प्रवृञ्जनम्, तथा प्रणीतस्य घर्मस्याहवनीये यागः, तच्छेषेणाग्निहोत्रहोमः, तत्रैव द्रव्यादिद्रव्यपूरणरूपमुद्वासनम्, विविधनैमित्तिकघर्मप्रायश्चित्तानि, घर्मभक्षणम्, मार्जनञ्चेति। तै०आ० ४.५। कात्या०श्रौ० २६।

ने **इमान् एव लोकान्** इन (तीनों) लोकों को **पुरः अकुर्वत** प्राकार से परिवेष्टित नगर बनाया **यथा** जिस प्रकार (लोक में) **औजीयांसः बलीयांसः** ओजस (शारीरिक शक्ति) से सम्पन्न और बल (सैन्य-शक्ति) सम्पन्न (राजा लोग प्रौढ़ दुर्गों का निर्माण करते हैं) **एवम्** उसी प्रकार **ते** उन (असुरों) ने **इमाम् अयस्मयींमेव** इस (पृथिवी लोक) को लौह प्राकार से युक्त दिया। **अन्तरिक्षं रजताम्** अन्तरिक्षलोक को रजत प्राकार से आवेष्टित और **दिवं हरिणीम्** द्युलोक को सुवर्णप्राकार से परिवेष्टित **अकुर्वत** कर दिया। **तथा ते इमान् लोकान्** इस प्रकार उन (राक्षसों) ने इन (तीनों) लोकों को **पुरः अकुर्वत** नगर बना लिया। तब **ते देवाः** उन देवताओं ने **अब्रुवन्** परस्पर कहा कि **इमे असुराः** इन असुरों ने **इमान् लोकान्** इन (तीनों) लोकों को **पुरः वै अक्रत** अपना नगर बना लिया तो **इमान् लोकान्** इन लोकों को **पुरः प्रति करवामहै** हम लोग (इन असुरों के प्रतिकूल) अपने नगरों को बनावें। **तथा इति** (सभी देवताओं ने इस कथन को स्वीकार करते हुए कहा कि हम-लोग) वैसा ही करें। तब **ते** उन (देवताओं) ने **अस्याः सदः** इस (पृथिवी) से प्रतिकूल सदस् (नामक मण्डप) **अन्तरिक्षाद् आग्नीध्रम्** अन्तरिक्ष से आग्नीध्र (नामक अग्नि-कुण्ड) और **दिवः हविर्धाने** द्युलोक से दो हविर्धानों (सोमहवि रखने का पात्र-विशेष) को **प्रत्यकुर्वत** (असुरों के) प्रतिकूल निर्माण किया। **तथा** इस प्रकार **ते** उन (देवताओं) ने **इमान् लोकान्** इन (सदस् इत्यादि) लोकों को **पुरः प्रत्यकुर्वत** (राक्षसों के) नगर के प्रतिकूल बनाया।

विमर्श—(१) सोमयाग के सौमिक वेदि में प्राचीन वंश नामक स्थान से पूर्व सदस् नामक स्थान होता हैं उत्तरवेदि के पूर्व का भाग प्राचीनवंश कहलाता है जहाँ सोम रखा जाता है।

सा० भा०—देवाश्चासुराश्च लोकत्रयविषये समयतन्त परस्परं युद्धं कृतवन्तः। तदानीमसुरा इमानेव भूरादींस्त्रींल्लोकान् पुरोऽकुर्वत प्राकारपरिवेष्टितानि नगराणि कृतवन्तः। यथा लोके महान्तो राजानोऽभ्यधिकेनौजसा शरीरशक्त्या संपन्ना अभ्यधिकेन सैन्यरूपेण बलेन च संपन्नाः प्रौढानि दुर्गाणि कुर्वन्ति, एवमेते कृतवन्तः। तत्रेमां भूमिमयस्मयीं लोहप्राकारयुक्तामकुर्वत। अन्तरिक्षं लोकं च रजताप्राकारवेष्टितां पुरीमकुर्वत। द्युलोकं हरिणीं हिरण्मयीं सुवर्णप्राकारवेष्टितां पुरीमकुर्वत। तथेत्युक्तनगरनिर्माणकृतस्योपसंहारः। तमिममर्थं सर्वं तैत्तिरीयाः संक्षिप्याऽऽमनन्ति—'तेषामसुराणां तिस्रः पुर आसन्नयस्मय्यवमाऽथ रजताऽथ हरिणी'[१] इति। ततस्ते देवा विचारयन्तः परस्परमिदमब्रुवन्। असुरा इमे भूरादीनिमाँल्लोकान् पुरो वै स्वकीयनगराण्येव कृतवन्तः। अतो वयमपीमान् भूरादील्लोकान् पुरोऽस्मदीयनगराणि प्रतिकरवामहै, असुराणां प्रतिकूलानि संपादयाम इत्येवं विचारं परस्पराङ्गीकृत्य त्रिषु लोकेष्वसुराः क्वचिद्देशविशेषे यथा स्वकीयानि नगराणि कृतवन्तस्तथा देवा अस्याः पृथिव्याः सकाशात्

(१) तै०सं० ६.२.३.१

सद एव प्रत्यकुर्वत। सौमिकवेद्यां प्राचीनवंशात् पूर्वभाविसदोनामकमण्डपमेवासुरप्रतिकूलमकुर्वत। अन्तरिक्षलोकादाग्नीध्रनामकं धिष्ण्यमकुर्वत।[1] द्युलोकाद्धविर्धाननामके द्वे शकटे[2] अकुर्वत। ते तथेत्यादिरुक्तार्थोपसंहारः। असुरनिर्मितपुरत्रयप्रतिकूलं सदआग्नीध्रहविर्धानरूपत्रयं कृतवन्तः। असुरैर्लोकत्रये प्रौढासु तिसृषु दुर्गरूपासु पुरीषु निर्मितासु देवाश्च स्वरक्षार्थं सदः प्रभृतीनि त्रीणि दुर्गाणि कृत्वा विजयं प्राप्ताः।

तं विजयं दर्शयति—

(देवानां विजयकथनम्)

ते देवा अब्रुवन्नुपसद उपायामोपसदा वै महापुरं जयन्तीति तथेति ते यामेव प्रथमामुपसदमुपायंस्तयैवैनानस्माँल्लोकादनुदन्त यां द्वितीया तयाऽन्तरिक्षाद्यां तृतीयां तया दिवस्तांस्तथैभ्यो लोकेभ्योऽनुदन्त ।।२।।

हिन्दी—(अब देवताओं के विजय को दिखला रहे हैं—) **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने परस्पर कहा कि **उपसदः उपायाम** हम लोग उपसद (नामक होम) का सम्पादन करें; क्योंकि कि **उपसदा वै** उपसद के द्वारा ही **महापुरं जयन्ति** (दुर्गरूप) महापुर को जीतते हैं। **तथा** (उन्होंने परस्पर स्वीकार करते हुए कहा कि) वैसा ही करें। **ते** उन (देवताओं) ने **याम् एव प्रथमां उपसदम्** जिस प्रथम उपसद (आहुति) को **उपायन्** सम्पादित किया, **तया एव** उसी प्रथम उपसद के सम्पादन से **एनान्** इन (असुरों) को **अस्माद् लोकात्** इस (पृथिवी) लोक से **अनुदन्त** बाहर कर दिया। '**यां द्वितीयाम्** जिस दूसरे (उपसद आहुति को सम्पादित किया) **तया अन्तरिक्षात्** उस (द्वितीय उपसद के सम्पादन) से अन्तरिक्ष लोक से (राक्षसों को निकाल दिया) और **यां तृतीयाम्** जिस तृतीय (उपसद आहुति का सम्पादन किया) **तया दिवः** उस तृतीय (उपसद आहुति के सम्पादन) से द्युलोक से (असुरों को बाहर कर दिया)। **तान् तथैव** उन (असुरों) को उस प्रकार **एभ्यः लोकेभ्यः** इन (तीनों) लोकों से **अनुदन्त** बाहर से निकाल दिया।

सा० भा०—विजयार्थिनस्ते देवाः परस्परमिदमब्रुवन्। उपसदाख्यान् होमानुपाया-

(१) धिष्ण्यमिति सिकतोपकीर्णानां पुरीषस्थलानां नामधेयम्। तत्र 'आग्नीध्रीयं पूर्वम्, षट् सदसि;–प्रत्यङ्मुखद्वारमपरेण होतुः, दक्षिणापूर्वेणौदुम्बरी मैत्रावरुणस्य, होतृधिष्ण्यमुत्तरेण चतुरः समान्तरान् ब्राह्मणाच्छंसि-पोतृ-नेष्टृच्छावाकानाम्; आग्नीध्राद् दक्षिणं सम्प्रति वेद्यन्ते दक्षिणामुखो मार्जालीयम्'–इति (कात्य०श्रौ० ८.६.१६-२२) अष्टौ धिष्ण्यानि विहितानि। तत्र निरूढेऽग्निप्रणयनानन्तरं चाग्नीध्रीयधिष्ण्ये एव प्रथममग्निग्रहणम्, ततो होतृधिष्ण्यादौ (कात्या० श्रौ० ६.१०.१४)।

(२) सोमरूपहविर्धारके द्वे शकटे हविर्द्धाने इत्युच्येते। सदोमण्डपाद् दक्षिणस्यां तयोर्मण्डपे भवतः।

मानुतिष्ठाम। लोकेषूपसदा वै परकीयदुर्गसमीपावस्थानेन दुर्गावरोधरूपेणैव महत्या सेनया दुर्गवेष्टनेन सर्वे राजानो महतीं दुर्गरूपां पुरं जयन्ति। अतो वयमप्युपसदनहेतुभूतान् होमान् करवामेति विचार्य तिस्र उपसदो हुत्वा लोकत्रयनिर्मिताभ्यो दुर्गरूपाभ्यः पुरीभ्योऽसुरान्निःसारितवन्तः। तत्र 'या ते अग्नेऽयाशया तनूः' इत्यनेन[१] मन्त्रेण साध्योपसत्प्रथमदिनेऽनुष्ठितत्वात् प्रथमा। 'या ते अग्नेरजाःशया तनूः इत्यनेन[२] मन्त्रेण साध्या द्वितीयदिनेऽनुष्ठेयत्वाद् द्वितीया। 'या ते अग्ने हरःशयेति[३] मन्त्रेण साध्या तृतीयदिनेऽनुष्ठेयत्वात् तृतीया।[४] युद्धेन ताः पुरीर्जेतुमाशक्ता देवा उपसद्धोमैर्जितवन्तः। तथा च शाखान्तरे श्रूयते—'ते देवा जेतुं नाशक्नुवन्नुपसदैवाजिगीषन्'[५] इति। लोकत्रयान्निःसारिताश्चासुरा यदा वसन्ताद्यृतुदेवाञ्शरणं प्राप्तास्तदा तदानीमेवैकैकस्मिन्दिने द्विर्द्विरनुष्ठेयाभिः षड्भिस्तानसुरान् वसन्ताद्यृतुदेवताभ्यो निःसारितवन्तः॥

तमिममर्थं दर्शयति—

ते वा एभ्यो लोकेभ्यो नुत्ता असुरा ऋतूनश्रयन्त ते देवा अब्रुवन्नुपसद एवोपायामेति तथेति त इमास्तिस्रः सतीरुपसदो द्विर्द्विरेकैकामुपायंस्ताः षट्समपद्यन्त षड्वा ऋतवस्तान् वा ऋतुभ्योऽनुदन्त ॥ ३ ॥

हिन्दी—**एभ्यः लोकेभ्यः नुत्ताः** इन (तीनों) लोकों से बाहर किये गये **ते असुराः** उन असुरों ने **ऋतून् अश्रयन्त** ऋतुओं का आश्रय लिया **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने पुनः परस्पर कहा कि **उपसद एव उपायाम** हन लोग उपसद आहुतियों का ही सम्पादन करें। **तथा इति** (उन देवताओं ने परस्पर स्वीकार करते हुए) उसी प्रकार करें। उनमें **एकैकाम्** एक-एक (उपसद आहुति) को **द्विःद्विः उपायन्** दो-दो बार सम्पादित किया। **ताः षट् समपद्यन्ते** वे सभी (आहुतियाँ) छः हो गयीं और **षट् वै ऋतवः** ऋतुएँ भी छः होती हैं। इससे **तान् वै ऋतुभ्यः अनुदन्त** उन (असुरों) को ऋतुओं से भी बाहर कर दिया।

सा० भा०—ततो मासाञ्शरणं प्राप्यावस्थितानामसुराणां षड्दिनेष्वनुष्ठिताभिरावृत्ताभिर्द्वादशोपसद्भिर्निःसरणं कृतं तदिदं दर्शयति—

ते वा ऋतुभ्यो नुत्ता असुरा मासानश्रयन्त ते देवा अब्रुवन्नुपसद एवोपायामेति तथेति त इमाः षट्सतीरुपसदो द्विर्द्विरेकैकामुपायंस्ता

---

(१) तै०सं० ६.२.३.१। (२) वा०सं० ५.७१।
(३) वा०सं० ५.८२। (४) वा०सं० ५.८३।
(५) तैत्तिरीयसंहितायां त्वेवं पाठः—'या ते अग्नेऽयाशया रजाशया हराशया तनूर्वर्षिष्ठा-गह्वरेष्ठोऽग्रं वचो अपावधी त्वेषं वचो अपावधी स्वाहा—इति १.२.११,२। अत्र या ते अग्नेऽयाशया रजाशया हराशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेठेत्येतादृश आम्नातः, तस्मिन्नयाशयादिपदत्रयेण त्रयो मन्त्रा भवन्ति'–इत्यादि च तत्र सायणः।

द्वादश समपद्यन्त द्वादश वै मासास्तान् वै मासेभ्योऽनुदन्त ।।४।।

हिन्दी—**ऋतुभ्यः नुत्ताः** ऋतुओं से बाहर किये गये **ते वै असुराः** उन असुरों ने **मासान् आश्रयन्त** मासों का आश्रय ले लिया। तब **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने परस्पर कहा कि **उपसद एव उपायाम** हम लोग उपसद (आहुति) का ही सम्पादन करें। **तथा** (पुनः परस्पर) उसी प्रकार करने का (निश्चय किया)। **ते इमाः षट् सती उपसदः** वे ये छः उपदसद (आहुतियाँ) हैं। उनमें **एकैकाम्** एक-एक उपसद (आहुति) को **द्विः द्विः उपायन्** दो दो बार सम्पादित किया। **ताः द्वादश समपद्यन्त** इस प्रकार वे (उपसद आहुतियाँ) बारह हो गयीं और **द्वादश वै मासाः** (संवत्सर में) बारह मास होते हैं। इससे **तान् एव मासेभ्यः अनुदन्त** इन (असुरों) को मासों से बाहर निकाल दिया।

सा० भा०—मन्त्रत्रयेण दिनत्रयेऽनुष्ठेयास्तिस्रः पुनरप्यावृत्त्याऽन्यस्मिन् दिनत्रयेऽनुष्ठिताः षड्भवन्ति। एकैकस्मिन् दिने द्विरनुष्ठिता द्वादश संपद्यन्ते।

अनेनैव न्यायेन द्वादशसु दिनेष्वनुष्ठिताभिश्चतुर्विंशतिभिरुपसद्भिरर्धमासदेवताभ्यो निःसारितवन्त इत्येतद्दर्शयति—

ते वै मासेभ्यो नुत्ता असुरा अर्धमासानश्रयन्त ते देवा अब्रुवन्नुपसद एवोपायामेति तथेति त इमा द्वादश सतीरुपसदो द्विर्द्विरेकेकामुपायंस्ताश्चतुर्विंशतिः समपद्यन्त चतुर्विंशतिर्वा अर्धमासास्तान् वा अर्द्धमासेभ्योऽनुदन्त ।।५।।

हिन्दी—**मासेभ्यः नुत्ताः** मासों से निकाले गये **ते वै असुराः** उन असुरों ने **अर्धमासान् अश्रयन्त** अर्धमासों का आश्रय ग्रहण किया। तब फिर **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने (विचार करके) कहा कि **उपसद एव उपायम** हम लोग उपसद का ही सम्पादन करें। **तथा** (उन देवताओं ने) वैसा ही किया। **ते** उन देवताओं ने **इमाः द्वादश सतीः उपसदः** इन बारह हुई उपसद आहुतियों में **एकैकम् द्विः द्विः उपायन्** प्रत्येक का दो-दो बार सम्पादन किया। **ताः चतुर्विंशतिः समपद्यन्त** वे चौबीस हो गयी और **चतुर्विंशतिः वै अर्धमासाः** (संवत्सर में) चौबीस अर्धमास होते हैं। इससे **तान् अर्धमासेभ्यः अनुदन्त** उन (असुरों) को अर्धमासों से बाहर कर दिया।

सा० भा०—ततोऽहोरात्रदेवौ शरणं गतानामसुराणां कालविशेषद्वयानुष्ठानेन निःसारणं दर्शयति—

ते वा अर्द्धमासेभ्यो नुत्ता असुरा अहोरात्रे अश्रयन्त ते देवा अब्रुवन्नुपसदावेवोपायामेति तथेति ते यामेव पूर्वाह्ण उपसदमुपायंस्तयैवैनानह्नोऽनुदन्त यामपराह्णे तया रात्रेस्तांस्तथोभाभ्यामहोरात्रा-

भ्यामन्तरायन् ।।६।।

हिन्दी—**अर्धमासेभ्यः नुत्ताः** अर्धमासो से बाहर किये गये **ते वै असुराः** उन असुरों ने **अहोरात्रे अश्रयन्त** दिन और रात में आश्रय लिया। **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने परस्पर (विचार करके) कहा कि **उपसदौ एव उपायाम** हम लोग दो उपसद (आहुतियों) का सम्पादन करें। **तथा** (देवताओं ने) उस प्रकार ही किया। **ते पूर्वाह्णे** उन (देवताओं) ने पूर्वाह्ण में **याम् उपसदम् उपायन्** जिस उपसद (आहुति) का सम्पादन किया **तया एव** उस (आहुति) द्वारा ही **एनान् अह्नः अनुदन्त** इन (असुरों) को दिन से बाहर निकाल दिया और **याम् अपराह्णे** जिस (उपसद आहुति) को अपराह्ण में (सम्पादित किया) **तया रात्रेः** उस (आहुति) द्वारा रात्रि से (बाहर निकाल दिया)। **तथा** इस प्रकार **उभाभ्याम् अहोरात्राभ्याम्** दिन और रात्रि दोनों से **अन्तरायन्** (देवताओं ने असुरों को) बाहर निकाला दिया।

सा० भा०—अन्तरायन्नन्तरितान् कृतवन्तो निःसारितवन्त इत्यर्थः।।

एकैकस्मिन् दिन एकैकस्या उपसदो द्विरनुष्ठानाय कालद्वयविशेष विधत्ते—

तस्मात् सुपूर्वाह्ण एव पूर्वयोपसदा प्रचरितव्यं स्वपराह्णेऽपरया तावन्तमेव तद्द्विषते लोकं परिशिनष्टि ।।७।।

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **पूर्वाह्ण एव पूर्वया उपसदा** पूर्वाह्ण में पूर्व वाले उपसद से और **अपराह्णे** अपराह्ण में **अपरया** दूसरे (उपसद) से **प्रचरितव्यम्** सम्पादन करना चाहिए। **तावन्तमेव** उतने समय तक (अर्थात् दिन और रात्रि के सन्धि काल तक) **लोकम्** उस स्थान को **द्विषते** द्वेष करने वाले के लिए **परिशिनष्टि** रिक्त रखता है।

सा० भा०—यस्मात् पूर्वाह्णापराह्णौ कालविशेषावहोरात्राभ्यां शत्रूणां निःसारणे हेतू तस्मात्तस्मिन्नेव कालद्वयेऽनुष्ठातव्यम्। एवं सति यावानहोरात्रयोः संधिकालस्तावन्तमेव द्विषते द्वेषिणे लोकं स्थानविशेषं परिशिनष्टि। इतरस्मात्कालान्निःसारितत्वेन सन्ध्याकाल एवासुराणां परिशिष्यते।

अत्रैकैकस्मिन् दिने द्विर्द्विरनुष्ठेया उपसदो ज्योतिष्टोमे त्रिषु दिनेष्वनुष्ठेयाः। अग्निचयने षट्सु दिनेषु। अहीनसत्रयोर्द्वादशदिनेषु। तथा च तैत्तिरीयैराम्नातम्—'तिस्र एव साह्नस्योपसदो द्वादशाहीनस्य यज्ञस्य सवीर्यत्वाय'[१] इति। तथा 'षडुपसदोऽग्नेश्चित्यस्य भवन्ति' इति श्रुत्यन्तरं द्रष्टव्यम्। आश्वलायनस्त्वेवमाह—'एकाहानां तिस्रः षड्वाऽहीनानां द्वादश चतुर्विंशतिः संवत्सर इति सत्राणाम्'[२] इति। गवामयनाख्ये संवत्सर इत्यर्थः।

अथा मीमांसा। पञ्चमाध्यायस्य तृतीयपादे चिन्तितम्—

---

(१) तै०सं० ६.२.५ १। (२) आश्व०श्रौ० ४.८.१३-१६।

आवृत्तरुपसत्स्वेषा संघस्यैकैकशोऽथवा ।
त्रिरध्यायं पठेत्यादाविव स्यात् समुदायगा ॥

प्रथमा मध्यमाऽन्त्येति प्राकृतक्रमसिद्धये ।
एकैकस्या द्विरभ्यासे षट्संख्याऽपि प्रसिध्यति[१] ॥

अग्नौ श्रुयते—'षडुपसदः' इति। तत्र चोदकप्राप्तानां तिसृणामुपसदां पूर्वन्यायेनाऽऽवृत्त्या षट्संख्या संपादनीया। सा चाऽऽवृत्तिर्दण्डकलितवत्समुदायस्य युक्ता। यथा दण्डेन भूप्रदेशं संमिमानः पुरुष आमूलाग्रं कृत्स्नं दण्डं पुनः पुनः पातयति न तु दण्डस्य प्रत्यवयवं पृथगावृत्तिं करोति। यथा वा 'त्रिवारं' रुद्राध्यायं जपति' इत्यत्र कृत्स्न एवाध्याय आवर्त्यते न त्वध्यायैकदेशः। एकैकोऽनुवाकः पृथगेव त्रिः पठ्यते। तथा तिसृणामुपसदां समुदाय आवर्तनीयः—इति चेत्, मैवम्। प्राकृतक्रमबाधप्रसङ्गात्। प्रकृतौ हि दीक्षानन्तरभाविनि दिने होतव्या प्रथमोपसत्। तत ऊर्ध्वदिने द्वितीया। ततोऽप्यूर्ध्वदिने तृतीया। ता एताः सकृदनुष्ठाय पुनरुपरितनदिनेऽनुष्ठीयमानायाः प्रथमायाः प्रथमात्वमपैति, चतुर्थीत्वमायाति। तस्मात् प्राकृतक्रमसिद्धये प्रथमां दिनद्वयेऽभ्यस्य ततो द्वितीयां द्विरभ्यस्येत् इत्येवं स्वस्थानविवृद्ध्या तासामावृत्तिः कार्या। न चाध्यायदृष्टान्तो युक्तः। अनुवाकसमुदायस्यैवाध्यायत्वाद् अध्यायस्यैव चाऽऽवृत्तिविधानात्। न त्विह समुदास्योपसत्त्वमस्ति। तस्मात्—प्रत्येकमुपसदावर्तनीया॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य चतुर्थाध्याये षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के षष्ठ खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—अथोपसदः प्रशंसति—

(उपसदः प्रशंसनम्)

जितयो वै नामैता यदुपसदोऽसपत्नां वा एताभिर्देवा विजितिं व्यजयन्त ॥१॥

हिन्दी—(अब उपसद की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् उपसदः** जो उपसद (नामक आहुतियाँ) हैं **एताः जितयः** नाम ये जिति (विजय के हेतुभूत) कहलाती हैं। **एताभिः**

(१) एवमेवाख्यायिकापूर्वकमुपसद्विधानं शतपथेऽपि ३.४.४.१-२७; तथा तैत्तिरीयकेऽपि सं० ६.२.३.४।

देवताः इन (आहुतियों) के द्वारा देवताओं ने **असपत्नां** शत्रु से रहित **विजितिं व्यजयन्त** विजय को विशेष रूप से प्राप्त किया।

सा० भा०—उपसदो याः सन्त्येता जितयो वै नाम। जयहेतुत्वाज्जितय इत्येवं नाम प्रतिपद्यन्ते। जयहेतुत्वमेवासपत्नामित्यादिना स्पष्टी क्रियते। देवा एताभिरुपसद्भिरसपत्नां वैरिरहितामेव विजितिं विशिष्टं जयं व्यजयन्त विशेषेण प्राप्तवन्तः॥

वेदनं प्रशंसति—

असपत्नां विजितिं विजयते य एवं वेद ॥ २॥

हिन्दी—(इसके ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (उपसद के शत्रुओं को पराजित करने के कारणभूत होने को) जानता है वह **असपत्नां विजितिं विजयते** शत्रुरहित होकर विजय को प्राप्त करता है।

सा० भा०—सामान्याकारेण वेदनं प्रशस्य पुनः पूर्वोक्तार्थवादानुक्रमेण विशेषाकारेण प्रशंसति—

यां देवा एषु लोकेषु यामृतुषु यां मासेषु यामर्धमासेषु यामहोरात्रयोर्विजितिं व्यजयन्त तां विजितिं विजयते य एवं वेद ॥ ३॥

हिन्दी—(अर्थवाद के क्रम से विशेष रूप से उपसद की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **तां विजितिं विजयते** उस विजय को प्राप्त करता है **याम् देवाः एषु लोकेषु** जिस (विजय) को देवताओं ने इन तीनों लोकों में **याम् ऋतुषु** जिसको ऋतुओं में **यां मासेषु** जिनको मासों में **याम् अर्धमासेषु** जिसको अर्धमासों में और **याम् अहोरात्रयोः** जिसको दिन तथा रात्रि में **व्यजयन्त** जीता (प्राप्त किया) था।

अथ तानूनप्त्रस्य नाम निर्वक्तुमाख्यायिकामाह—

(तानूनप्त्रकर्मविधानम्)

(तत्र तानूनप्त्रनामनिर्वचनार्थमाख्यायिका)

ते देवा अबिभयुरस्माकं विप्रेमाणमन्विदमसुरा आभविष्यन्तीति ते व्युत्क्रम्यामन्त्रयन्ताग्निर्वसुभिरुदक्रामदिन्द्रो रुद्रैर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः ॥४॥

हिन्दी—(तानूनप्त्र के नाम का निर्वचन करने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **ते देवाः** (असुरों के साथ युद्ध के लिए उद्यत) वे देवता लोग **अबिभयुः** डर गये कि **अस्माकम्** हम (देवता) लोगों के **विप्रेमाणम् अन्विदम्** वैमनस्य को जान कर **असुराः** असुर लोग **आभविष्यन्ति** (हमारे राज्य को) चारो ओर से प्राप्त कर लेगे। तब **ते व्युत्कम्य** वे (देवता लोग) (अपने दल के साथ उस स्थान से) हट कर **आमन्त्रयत**

(अपने मन्त्रियों के साथ) विचार करने लगे। **अग्निः वसुभिः** अग्नि वसुओं के साथ, **इन्द्रः रुद्रैः** इन्द्र रुद्रों के साथ, **वरुणः आदित्यैः** वरुण आदित्यों के साथ और **बृहस्पतिः विश्वैर्देवैः** बृहस्पति विश्वे देवों के साथ **उदक्रामत्** अलग हो गये (और विचार करने लगे)।

सा० भा०—असुरैः सह युद्धार्थमुद्यता देवाः स्वसेनाया मध्ये परस्परमेकैकस्य सेनानीत्वलक्षणं ज्यैष्ठ्यमभ्युपगच्छन्तः परस्परविरोधिनो भूत्वाऽपसृत्याबिभयुर्मनसि भीतिं प्राप्ताः। केनाभिप्रायणेति तदुच्यते। अस्माकं विप्रेमाणमनु परस्परप्रेमराहित्यमनुवीक्ष्यासुरा इदमस्मदीयं राज्यमाभविष्यन्ति सर्वतः प्राप्स्यन्तीति। ततस्ते देवा व्युत्क्रम्य परस्परविभागेन तस्माद्देशादपसृत्य स्वसम्बन्धिभिर्मन्त्रिभिः सहामन्त्रयन्त पर्यालोचनं कृतवन्तः। ततस्तत्राग्निर्देवो वसुभिरष्टमन्त्रिभिः सहितः पृथगुदक्रामत्। एवमिन्द्रो रुद्रैः सह वरुण आदित्यैः सह बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः सह पृथगुदक्रामत्। अत्र चतुर्विधैव विभाग उक्तः। शाखान्तरे तु पञ्चधा। तथा चाऽऽम्नायते—'देवासुराः संयत्ता आसंस्ते देवा मिथो विप्रिया आसन तेऽन्योन्यस्मै ज्यैष्ठ्यायाऽऽतिष्ठमानाः पञ्चधा व्यक्रामन्। अग्निर्वसुभिः सोमो रुद्रैरिन्द्रो मरुद्भिर्वरुण आदित्यैर्बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः'[१]॥

एवं परस्परं विभज्यावस्थितानां देवसमूहानां पर्यालोचनपूर्वकं कृत्यं दर्शयति—

(देवानां पर्यालोचनपूर्वककृत्यम्)

ते तथा व्युत्क्रम्यामन्त्रयन्त तेऽब्रुवन् हन्त या एव न इमाः प्रियतमास्तन्वस्ता अस्य वरुणस्य राज्ञो गृहे संनिदधामहै ताभिरेव नः स न संगच्छातै यो न एतदतिक्रामाद्य आलुलोभयिषादिति तथेति ते वरुणस्य राज्ञो गृहे तनूः संन्यदधत ।।५।।

हिन्दी—(इस प्रकार परस्पर अलग होकर अवस्थित देवमसूहों के पर्यावलोचनपूर्वक कृत्य को दिखला रहे हैं—) **ते** उन देवताओं ने **व्युत्क्रम्य** परस्पर अलग-अलग दल बनाकर **आमन्त्रयन्त** विचार किया। **ते अब्रुवन्** उन (देवताओं) ने कहा—**हन्त** अहा **याः एव नः इमाः प्रियतमाः तन्वः** जो यह हमारा अत्यन्त प्रिय (स्त्री पुत्रादि) शरीर है, **ताः** उस (शरीर) को **अस्य वरुणस्य राज्ञः गृहे** इस राजा वरुण के घर में **संनिदधामहै** हम लोग (बन्दी रूप से) रख देवे। **यः न = अतिक्रम्य** हम लोगों में जो (इसका) अतिक्रमण करके और **आलुलोभयिषात्** (उन स्त्री पुत्रादि को) लोभित करने (अर्थात् लोभ देकर लौटाने) की इच्छा करे तो **सः** वह **ताभिः एव न सङ्गच्छाते** उन (स्त्री पुत्रादि) के साथ कभी भी न मिल पावे। **तथा** (इस प्रकार उन देवताओं ने) वैसा ही किया और **ते**

(१) तै०सं० ६.२.२.१। शतपथे तु मूले एव सूचितः शाखान्तरसंवादः 'एके आहुः'–इति ३.४.२.१।

उन (देवताओं) ने **तनूः** (स्त्री पुत्रादि) शरीरों को **राज्ञः वरुणस्य गृहे** राजा वरुण के घर **संन्यदधत** रख दिया।

सा॰ भा॰—स्वकार्यहानिनिमित्तदुःखपरिहारोपायदर्शननिमित्तहर्षद्योतनार्थो हन्त-शब्दः। अस्माकमत्यन्तं प्रिया याः पुत्रकलत्रादिरूपास्तन्वः सन्ति, 'ताः' सर्वा अस्य वरुणस्य राज्ञो गृहे संनिदधामहै बन्दीरूपेण स्थापयामः। तथा सति नोऽस्माकं मध्ये यः कोऽप्येत-दतिक्रामादुल्लङ्घयेत्, उल्लङ्घ्य चाऽऽलुलोभयिषात् स्वपुत्रकलत्रादीनेव लोभयितुमिच्छेत्, गुप्तमनुष्यमुखेनाऽऽनेतुमिच्छेन्नोऽस्माकं मध्ये स तादृशः पुरुषस्ताभिरेव न संगच्छातै पुत्रकलत्रादिभिर्न संगच्छताम्। इत्येतं समयं सर्वेऽप्यङ्गीकृत्य वरुणगृहे स्वपुत्रादिशरीराणि स्थापितवन्तः। परस्पराविरोधे सति वयमेवासुराणामिदं लोकत्रयं साधयाम इति विचार्येमं समयं कृतवन्तः। सोऽयं शाखान्तरे स्पष्टमाम्नायते—'तेऽमन्यन्तासुरेभ्यो वा इदं भ्रातृव्येभ्यो रध्यामो यन्मिथो विप्रियाः स्मो या न इमाः प्रियास्तनुवस्ताः समवद्यामहै ताभ्यः स निर्ऋच्छाद्यो न प्रथमोऽन्योन्यस्मै द्रुह्यात्'[१] इति।।

इदानीं निवर्चनं दर्शयति—

(तानूनप्त्रशब्दनिर्वचनम्)

ते यद्वरुणस्य राज्ञो गृहे तनूः संन्यदधत तत्तानूनप्त्रमभवत् तत्तानू-नप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम् ।।६।।

हिन्दी—(अब 'तनूनप्त्र' के निर्वचन को दिखला रहे हैं—) **ते** उन (देवताओं) ने **वरुणस्य राज्ञः गृहे** राजा वरुण के घर में **यत् तनूः संन्यदधत** जो (स्त्री पुत्रादि) शरीरों को रखा **तत् तानूनप्त्रम् अभवत्** वह तानूनप्त्र (नामक कर्म) हुआ। **तत् तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम्** वही तानूनप्त्र की तानूनप्त्रता (तानूनप्त्र होना) है।

सा॰ भा॰—यस्माद् वरुणगृहे पुत्रादितनूरवस्थाप्य परस्परसख्यायाऽऽज्यस्पर्शनं शपथ-रूपं कृतवन्त इति शेषः। तस्मादिदमाज्यस्पर्शनाख्यं तानूनप्त्रं कर्माभवत्।[२] इदं च कर्माऽऽ-पस्तम्बेन विस्पष्टमभिहितम्—'आतिथ्यायां ध्रौवात्स्रुचि चमसे वा तानूनप्त्रं समवद्यति। चतुरवत्तं पञ्चावत्तं वा पतये त्वा गृह्णामीत्येतैः प्रतिमन्त्रमनाधृष्टमसीति यजमानसप्तदशा[३] ऋत्विज-

---

(१) तै॰सं॰ ६.२.२.१।

(२) अध्वर्युप्रभृतिषोडशर्त्विजो यजमानश्च मिथो द्रोहशून्या भवन्त एकमत्या यज्ञकार्यं सम्पादयितुं घृतस्पर्शनपूर्वकं समन्त्रं यत् शपथकरणं तदेव 'तानूनप्त्रं' कर्म; परस्परेर्षाद्वेषादिशून्या एव वयं यथाविधियागकार्यसम्पादनाय यतिष्याम इत्याकारः स्वीकार इति। एवं तनूः न याति इत्यस्मिन्नर्थे तानूनप्त्रशब्दो वर्तते। तत् तानूनप्त्रं शरीररक्षणमित्यर्थः।

(३) 'अध्वर्यु प्रतिप्रस्थातारं नेष्टारमुन्नेतारमित्यध्वर्यून्।
ब्रह्माणं ब्राह्मणाच्छंसिनमाग्नीध्रं पोतारमिति ब्रह्मणः।

स्तानूनप्त्रं समवमृशन्त्यनु मे दीक्षामिति यजमान[१] इति। तनूनां पुत्रादिशरीराणां नप्त्रं न तपत? (पतन) मतिशयितं निमित्तीकृत्य क्रियमाणत्वादस्य कर्मणस्तानूनप्त्रं नाम संपन्नम्॥

प्रसङ्गाल्लोकव्यवहारे कंचिद्धर्मं दर्शयति—

तस्मादाहुर्न सतानूनप्त्रिणे द्रोग्धव्यमिति ।।७।।

हिन्दी—(प्रसङ्गवश लोक-व्यवहार में किसी धर्म को दिखला रहे हैं—) **तस्माद् आहुः** इसी कारण (वेदज्ञ लोग) कहते है कि **सतानूनाप्त्रिणे** सतानूनप्त्री (शपथ करने वाले) से **न द्रोग्धव्यम्** द्रोह नहीं करना चाहिए।

सा०भा०—यस्माद्देवाः परस्परद्रोहपरिहाराय शपथं कृतवन्तस्तस्माद् ब्रह्मवादिन एवमाहुः। सतानुनप्त्रिणे सह शपथकारिणे न द्रोग्धव्यम्। इतिशब्दस्तदुक्तिसमाप्त्यर्थः। देवसंबन्धिशपथविशेषवाचिना तानूनप्त्रशब्देन शपथमात्रमुपलक्ष्यते। बहुभिः सह क्रियामाणं तानूनप्त्रं यस्यास्ति सोऽयं सतानूनप्त्री॥

प्रासङ्गिकं परिसमाप्य प्रकृतमनुसरति—

तस्माद्विदमसुरा नान्वाभवन्ति ।।८।।

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **असुराः** असुरलोग **इदम्** इस (लोकत्रय) को **न अन्वाभवन्ति** नहीं प्राप्त कर पाते हैं।

सा०भा०—तस्मादु तस्मादेव कारणाद्देवानां परस्परसख्यरूपादसुरा इदं लोकत्रयं नान्वाभवन्ति नैव समन्तात् प्राप्नुवन्ति। यद्यप्येतत् तानूनप्त्रं कर्मोपसद्भ्यः पूर्वमनुष्ठेयं[२] तथाऽप्युपसत्प्रयुक्तविजयप्रसङ्गेन बुद्धिस्थत्वादत्राभिहितम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य चतुर्थाध्याये सप्तमः खण्डः ॥७॥

होतारं मैत्रावरुणमच्छावाकं ग्रावस्तुतमिति होतॄन् ।
उद्गातारं प्रस्तोतारं प्रतिहर्तारं सुब्रह्मण्यमित्युद्गातॄन् ।
सदस्यं सप्तदशं कौषीतकिनः समामनन्ति ॥'

इति आप०श्रौ० १०.१.९-१०।

(१) आप०श्रौ० ११.१.१-३।

(२) अत एव कात्यायनेन 'इडान्तं भवति'–इति (८.१.१८) आतिथ्यं समाप्य, ध्रौवग्रहणं च विधाय, शपथग्रहणं तानूनप्त्रं प्रोच्य, निह्नवादि सुब्रह्मण्याह्वानं च व्यवस्थाप्य सूत्रितम् —'प्रवर्ग्योपसदावतः'–इति (८.२.१५)। 'अतः सुब्रह्मण्याह्वानादूर्ध्वं प्रवर्ग्योपसदौ भवतः। पूर्वं प्रवर्ग्यः तत उपसदिति। उपसदिति वक्ष्यमाणाया इष्टेः संज्ञा'–इति च तट्टीका। तथैवापस्तम्बोऽप्याह (१०.३१.१५, १६; ११.१.१.-१४; २.१-१२)।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ अष्टमः खण्डः

सा० भा०—अथाऽऽतिथ्यकर्मण्यास्तीर्णस्यैव बर्हिष उपसत्स्वनुवृत्तिं विधत्ते—

शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यं ग्रीवा उपसदः समानबर्हिषी भवतः समानं हि शिरोग्रीवम् ।।१।।

हिन्दी—(अब आतिथ्य कर्म में बिछाये गये कुश की उपसत् में अनुवृत्ति का विधान कर रहे हैं—) **यद् आतिथ्यम्** जो आतिथ्य (नामक कर्म) है **एतद् यज्ञस्य शिरः** यह यज्ञ का शिर-स्थानीय है और **उपसदः ग्रीवा** उपसद ग्रीवा-स्थानीय है। **समानबर्हिषि** एक ही कुश पर दोनों का सम्पादन करना चाहिए क्योंकि **समानं हि शिरो ग्रीवम्** शिर और ग्रीवा समान होते हैं।

सा० भा०—अथाऽऽतिथ्यकर्मणो यज्ञशिरोरूपत्वादुपसदां च ग्रीवारूपत्वात्तयोरवयवयोर्मध्ये लोके विच्छेदादर्शनादत्राप्यविच्छेदायाऽऽतिथ्योपसत्कर्मणी 'समानबर्हिषी' एकबर्हिषा युक्ते कर्तव्ये। आतिथ्यकर्मण्यास्तीर्णं बर्हिर्नाग्नौ प्रहृतम्। इडान्तत्वेन तत्र कर्मसमापनात्। तच्चाऽऽपस्तम्बेनोक्तम्—'इडान्ता संतिष्ठते, धारयन्ति ध्रौवमाज्यम्'[1] इति। शाखान्तरे च बर्हिषोऽनुवृत्तिराम्नाता—'यदातिथ्यायां बर्हिस्तदुपसदां तदग्नीषोमीयस्य' इति।।

अथोपसत्सु द्रव्यदेवताविधानार्थं प्रस्तौति—

(उपसत्सु द्रव्यदेवताविधानप्रस्तावनम्)

इषु वा एतां देवाः समस्कुर्वत यदुपसदस्तस्या अग्निरनीकमासीत् सोमः शल्यो विष्णुस्तेजनं वरुणः पर्णानि तामाज्यधन्वानो व्यसृजंस्तया पुरो भिन्दन्त आयन् ।।२।।

हिन्दी—(अब उपसद् में द्रव्यदेवता के अभिधान के लिए प्रस्तावित कर रहे हैं—) **यद् उपसदः** जो (अग्न्यादि) उपसद देवता हैं **एतां देवाः इषु समस्कुर्वत** उनको देवताओं ने बाण बनाया। **तस्या अग्निः अनीकम्** उस (बाण का) अग्नि मुख तथा **सोमः शल्यः** सोम शल्य (लोहे वाला भाग), **विष्णुः तेजनम्** विष्णु नोक और **वरुणः पर्णानि** वरुण पर्ण (बाण के मूल के पंख) **आसीत्** थे। **ताम्** उस (बाण) को **आज्यधन्वानः**

---

(१) आप०श्रौ० १०.३१.१५,१६।

आज्यरूपी धनुष वाले देवताओं ने **व्यसृजन्** छोड़ा। **तया** उस (बाण के छोड़ने) से **पुरः भिन्दन्तः** (असुरों के) दुर्ग को विनष्ट करके (देवता लोग) **आयन्** आये।

सा० भा०—यदुपसदो या उपसद्देवता अग्न्यादिकाः सन्ति, एतामग्न्यादिरूपामिषुं वै बाणमेव देवाः समस्कुर्वत संस्कृतवन्तः, अग्न्यादीन् बाणावयवरूपेण संयोजितवन्त इत्यर्थः। योऽयमग्निः सोऽयं तस्या इषोरनीकं मुखमासीत्। पत्रयुक्ताद् बाणमूलादूर्ध्ववर्ती भागो मुखं तस्योपरि वर्तमानो लोहविशेषः शल्यं तस्य लोहस्य तीक्ष्णमग्रं तेजनम्। पर्णानि बाणमूले स्थापितानि पक्षिणां पत्राणि शल्यादिरूपेणाग्निसोमविष्णुवरुणा योजिताः। वरुणोऽत्र प्रशंसार्थमेवापादीयते न तु देवतात्वेन तदीययोर्याज्यानुवाक्ययोरनभिधास्यमानत्वात्। अत एव शाखान्तरे वरुणं परित्यज्याग्न्यादय आम्नायन्ते—'त इषुं समस्कुर्वताग्निमनीकं सोमं शल्यं विष्णुं तेजनम्'[१] इति। तामेतामिषुं देवा आज्यधन्वानः सन्तो विसृष्टवन्तः। तया विसृष्टयेष्वा तेषामसुराणां पुरो भिन्दन्तो विदारयन्त आयन्नागच्छन्॥

इदानीं द्रव्यदेवतां विधत्ते—

(द्रव्यदेवताविधानम्)

तस्मादेता आज्यहविषो भवन्ति ।।३।।

हिन्दी—(अब द्रव्यदेवता का विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** उस (अग्नि के बाणरूप और आज्य के धनुष रूप होने) के कारण **आज्यहविषः भवन्ति** (उपसद में अग्न्यादि देवताओं के लिए) आज्य का हविष् होती है।

सा० भा०—यस्मादग्न्यादयो बाणरूपाः, आज्यं च धनुःस्वरूपम्, तस्मादाज्यहविष्का एता अग्न्यादिदेवता उपसत्सु भवेयुः॥

उपसदङ्गभूतं व्रतोपायनं विधत्ते—

(उपसदङ्गभूतव्रतोपायनविधानम्)

चतुरोऽग्रे स्तनान् व्रतमुपैत्युपसत्सु चतुःसंधिर्हीषुरनीकं शल्यस्तेजनं पर्णानि।।४।।

हिन्दी—(उपसद् के अङ्गभूत व्रतोपायन का विधान कर रहे हैं—) **उपसत्सु** उपसदों (के सम्पादन) में **अग्रे** प्रथम दिन (सायंकाल) **चतुरः स्तनाम्** (गाय के) चार स्तनों (के दूध) का **व्रतम् उपेति** व्रत (दुग्धपान) करता है; क्योंकि **अनीकं शल्यः तेजनं पर्णानि** मुख, शल्य, तेजन और पंख **चतुः सन्धिः हि इषुः** इन चार सन्धियों वाला बाण होता है।

सा० भा०—'उपसत्सु' अनुष्ठीयमानासु, 'अग्रे' प्रथमदिने सायंकाले 'चतुरः स्तनान् व्रतमुपैति' व्रतशब्देनात्र पयःपानमुच्यते—गोश्चतुर्षु स्तनेषु यावत्पयस्तावत् पूर्वोक्तस्य बाण-

---

(१) तै०सं० ६.२.३.१।

स्य चतुःसंधित्वादनीकाद्यवयवचतुष्टयोपेतत्वात् स्तनानां चतुःसंख्या युक्ता॥

अनेनैव प्रकारेण द्वितीयोपसद्दिने प्रातःसायंकालयोस्तृतीयदिनस्य प्रातःकाले चैकैकन्यूनाः स्तनसंख्या विधत्ते—

त्रीन् स्तनान् व्रतमुपैत्युपसत्सु त्रिषन्धिर्हीषुरनीकशल्यस्तेजनं, द्वौ स्तनौ व्रतमुपैत्युपसत्सु द्विषन्धिर्हीषुः शल्यश्च ह्येव तेजनं चैकं स्तनं व्रतमुपैत्युपसत्स्वेका ह्येवेषुरित्याख्यायत एकया वीर्यं क्रियते ॥५॥

हिन्दी—(यजमान उपसत् के द्वितीय दिन) **त्रीन् स्तनान्** (गाय के) तीन स्तनों (के दूध) को **व्रतम् उपैति** व्रत करता है; क्योंकि **उपसत्सु** उपसदों में **इषुः** बाण **अनीकं शल्यः तेजनम्** मुख, शल्य और तेजन **त्रिसन्धिः हि** तीन सन्धियों वाला होता है। (उपसत् के तृतीय दिन) **द्वौ स्तनौ व्रतम्** (गाय के) दो स्तनों (के दूध) का व्रत है; क्योंकि **उपसत्सु** उपसदों में **इषुः** बाण **शल्यः च एव तेजनं हि** शल्य और तेजन **द्वि षन्धिः** दो सन्धियों वाला होता है। (उपसत् के चतुर्थ दिन) **एकं स्तनं व्रतम् उपैति** एक स्तन वाले (दूध का) व्रत करता है; क्योंकि **उपसत्सु** उपसदों में **एका एव इषुः** एक ही बाण होता है—**इत्याख्यायते** ऐसा कहा गया है और **एकया वीर्यं क्रियते** एक ही (बाण) द्वारा पराक्रम किया जाता है।

सा०भा०—एतासां स्तनसंख्यानामुक्ताः कालविशेषा आपस्तम्बेनोदाहृताः—'चतुरः सायं दुह्यात्त्रीन् प्रातर्द्वौ सायमेकमुत्तमः'[१] इति॥

यथोक्तं संख्याविशेषं प्रशंसति—

परोवरीयांसो वा इमे लोका अर्वागंहीयांसः परस्तादर्वाचीरुपसद उपैत्येषामेव लोकनामभिजित्यै ॥६॥

हिन्दी—(यथोक्त संख्या-विशेष की प्रशंसा कर रहे हैं—) **इमे लोकाः** ये (पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु आदि) लोक **परोवरीयांसः** ऊपर अत्यधिक विस्तृत है और **अर्वाग् अंहीयांसः** नीचे के (लोक) अत्यन्त सङ्कुचित हैं। **एषामेव लोकानां अभिजित्यै** इन्हीं लोकों के विजय के लिए **उपसदः** उपसद **परस्ताद् अर्वाचीः** क्रमशः न्यून होते हुए सम्पादित होता है।

सा०भा०—इमे पृथिव्यन्तरिक्षद्युसप्तलोकाः[२] परोवरीयांसः परस्तादूर्ध्वभागे निवसन्तोऽत्यन्तं विस्तृताः। अर्वागधोभागेऽहीयांसोऽतिशयेनाणुवत्सङ्कुचिताः। सत्यलोकादणुर्द्यु-

---

(१) आप०श्रौ० ११.४.१०।

(२) पौराणिकमतेनैमौ लेखौ सायणस्य; वस्तुतस्त्रय एव लोकाः, द्युलोकनामसूर्यमण्डलात् पृथिव्या अतिक्षुद्रत्वे च श्रुतेस्तात्पर्यमितिदिक्।

लोकस्तस्मादप्यणुरन्तरिक्षलोकस्तमादप्यणुर्भूलोकः। एवं सत्युपसदोऽपि परस्तादूर्ध्वलोकस्थानीयात् प्रथमदिनादारभ्य तत्तद्दिनान्तरदिनेषु स्तनसंख्याह्रासेनार्वाचीरुपैत्यनुतिष्ठतीति यदस्ति तेषामेव लोकानामभिजयाय भवति।।

अथ पूर्वाह्णापराह्णयोर्व्यवस्थिताः सामिधेनीर्विधत्ते—

(पूर्वाह्णापराह्णयोः सामधेनीविधानम्)

'उपसद्याय मीळ्हुषे'[१] 'इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः' इति, तिस्रस्तिस्रः सामिधेन्यो रूपसमृद्धा एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति ।।७।।

हिन्दी—पूर्वाह्ण और अपराह्ण में व्यवस्थित उपसद कर्म में सामिधेनी का विधान कर रहे हैं—) 'उपसद्याय मीळ्हुषे' और 'इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वने' **इति तिस्रः तिस्रः सामिधेन्यः** ये तीन-तीन सामिधेनियाँ (क्रमशः पूर्वाह्ण और अपराह्ण में पढ़ी जाती है जो) **रूपसमृद्धा** अपने रूप से समृद्ध (पूर्ण) हैं। **यद् रूपसमृद्धम्** जो यह रूप से समृद्ध हैं, **एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम्** यह ही यज्ञ की समृद्धि है **यत् क्रियमाणं कर्म** जो किया जाता हुआ कर्म है, इसको **ऋग् अभिवदति** ऋचा कहती है।

सा० भा०—उपसद्यायेत्याद्या आम्नातास्तिस्र[२] ऋचः पूर्वाह्ण सामिधेन्यः। 'इमां मे अग्ने' इत्यादिका आम्नातास्तिस्र[३] ऋचोऽपराह्णे सामिधेन्यः। मन्त्रान्तरशङ्काव्यदासेन वैशब्दार्थः कृत्स्नार्थपाठः 'उपसद्यायोपसदं वनेः' इत्युपशब्दयोगेन रूपसमृद्धिः[४]।।

याज्यानुवाक्या विधत्ते—

(याज्यानुवाक्यानां विधानम्)

जघ्निवतीर्याज्यानुवाक्याः कुर्यात् ।।८।।

हिन्दी—(याज्या और अनुवाक्या का विधान कर रहे हैं—) **जघ्निवतीः याज्यानुवाक्या कुर्यात्** हन् धातु से युक्त ऋचा की याज्या और अनुयाक्या करना चाहिए।

सा० भा०—हन्तिधात्वर्थयुक्ता जघ्निवतीः।।

तथाविधा ऋच उदाहरति—

---

(१) 'ळ्हकारतामेति स एव चास्य ढकारः सन्नूष्मणा संप्रयुक्तः'–इति ऋक् प्राति० १.५२।

(२) ऋ० ७.१५.१-३। (३) ऋ० २.६.१-३।

(४) 'इमं मे अग्ने समिधम्'—इति प्रतीकवानस्त्यपरोऽपि मन्त्रः (ऋ० १०.७०.१) परम् 'उपसदं वनेः'—इत्यंशस्य उपसद्रूपसमृद्धिहेतुभूतस्य तत्राश्रवणान्नात्र तस्य ग्रहणप्रसक्तिरिति भावः।

'अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्' 'य उग्र इव शर्यहा' 'त्वं सोमासि सत्पतिर्गयस्फानो अमीवहेदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रीणि पदा वि चक्रमे इत्येताः ।।९।।

हिन्दी—(हन् धातु से युक्त ऋचाओं को उदाहरित कर रहे हैं—)'अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्' (यह पुरोनुवाक्या), 'य उग्र इव शर्यहा' (यह याज्या), 'त्वं सोमासि सत्पतिः' (यह पुरोनुवाक्या), 'गायस्फानो अमी वह' (यह याज्या) 'इदं विष्णुर्वि चक्रमे' (यह अनुवाक्या) 'त्रीणिपदा वि चक्रमे' (यह याज्या) **इति एताः** ये (ऋचाएँ) हैं।

सा० भा०—'अग्निर्वृत्राणीति'[1] पुरोनुवाक्या। 'य उग्र इवेति'[2] याज्या। 'त्वं सोमेति'[3] पुरोनुवाक्या। 'गयस्फानः'[4] इति याज्या। 'इदं विष्णुरिति'[5] पुरोनुवाक्या। 'त्रीणि पदेति'[6] याज्या। एताश्चाग्न्यादिदेवानां क्रमेण द्रष्टव्याः ।।

याः पूर्वाह्णे पुरोनुवाक्या उक्तास्तासामपराह्णे याज्यात्वं तथा तत्रत्यानां याज्यानामपराह्णे पुरोनुवाक्यात्वं च विधत्ते—

विपर्यस्ताभिरपराह्णे यजति ।।१०।।

हिन्दी—**विपर्यस्ताभिः अपराह्णे यजति** अपराह्ण में (उन ऋचाओं के) विपर्यय द्वारा (अर्थात् पुरोनुवाक्या को याज्या के स्थान पर और याज्या ऋचाओं को पुरोनुवाक्या के स्थान पर) करके यजन = पाठ करता है।

सा० भा०—यथोक्तयाज्यानुवाक्यायुक्ताया उपसदः प्रशंसति—

घ्नन्तो वा एताभिर्देवाः पुरो भिन्दन्त आयन् यदुपसदः ।।११।।

हिन्दी—(इस याज्यानुवाक्या से युक्त उपसद की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् उपसदः** जो उपसद् है उसके **एताभिः** इन (ऋचाओं) के द्वारा **पुरः भिन्दन्तः** (असुरों के) दुर्गों के भेदन करते हुए और **घ्नन्तः वै देवाः** (असुरों को) हिंसित करते हुए देवता लोग **आयन्** आगमन किये।

सा० भा०—या उक्तमन्त्रोपेता उपसदः सन्ति, एताभिर्देवा असुराणां तिस्रः पुरो विदारयन्तोऽसुरांश्च हिसन्त आगताः ।।

उदाहृतासु याज्यानुवाक्यासु सर्वासु यदेकविधं छन्दो दृश्यते न तु विलक्षणं तदन्वयव्यतिरेकाभ्यां विशदयति—

सच्छन्दसः कर्तव्या न विच्छन्दसः ।।१२।।

---

(१) ऋ० ६.१६.३४। (२) ऋ० ६.१६.३९। (३) ऋ० १.९१.५।
(४) ऋ० १.९१.१२। (५) ऋ० १.२२.१७। (६) ऋ० १.२२.१८।

हिन्दी—(उपर्युक्त याज्या और अनुवाक्या की सभी ऋचाओं के समान छन्द में होने की अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा प्रशंसा कर रहे हैं—) **सच्छन्दसः कर्तव्याः** (उपर्युक्त) समान छन्दस्क (ऋचाओं) से याज्या और अनुवाक्या करना चाहिए, **विच्छन्दसः न** विषम छन्दस्क ऋचाओं की नहीं।

सा० भा०—समानं छन्दो यासां ताः सच्छन्दसः। विलक्षणं छन्दो यासां ता विच्छन्दसः॥

वैलक्षण्ये बाधमाह—

यद्विच्छन्दसः कुर्याद् ग्रीवासु तद्गण्डं दध्यादीश्वरो ग्लावो जनितोः ।।१३।।

हिन्दी—(विच्छन्द वाली ऋचाओं से याज्या और अनुवाक्या करने में बाधा को दिखला रहे हैं—) **यद् विच्छन्दसः कुर्यात्** यदि विषम छन्दस्क ऋचाओं से याज्या और अनुवाक्या करे तो **ग्रीवासु** (उपसदस्थानीय) ग्रीवा में **गण्डं दध्यात्** गण्डमाला (नामक रोग) उत्पन्न करें। **तत्** इस (विषम छन्दस्क याज्यानुवाक्या करने) से **ग्लावः जनितः ईश्वरः** (होता) गण्डमाला उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है।

सा० भा०—विलक्षणच्छन्दसामनुष्ठाने ग्रीवास्थानीयासूपसत्सु गण्डमालाख्यरोगस्थानीयं दोषं दध्याद् उत्पादयेत्। तथा सति होता यजमानस्य ग्लानिविशेषाञ्जनितोरुत्पादयितुमीश्वरः समर्थो भवेत्॥

अस्वपक्षे बाधमुक्त्वा स्वपक्षमुपसंहरति—

तस्मात् सच्छन्दस एव कर्तव्या न विच्छन्दसः ।।१४।।

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **सच्छन्दसः एव कर्त्तव्याः** समान छन्दस्क (याज्या और अनुवाक्या को) करना चाहिए, **न विच्छन्दसः** विषम छन्द वाला नहीं।

उपसदामाज्यहविष्कत्वं प्रशंसति—

(आज्यहविष्कत्वेनोपसदां प्रशंसनम्)

तदु ह स्माऽऽहोपाविर्जानश्रुतेय उपसदां किल वै तद्ब्राह्मणे यस्मादप्यश्लीलस्य श्रोत्रियस्य मुखं व्येव ज्ञायते तृप्तमिव रेभतीवेत्याज्यहविषो ह्युपसदो ग्रीवासु मुखमध्याहितं तस्माद्ध स्म तदाह ।।१५।।

हिन्दी—(उपसदों में आज्य की हविष् होने की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तदु उपसदाम्** उन उपसदों के विषय में **तद् ब्राह्मणे** तत्सम्बन्धी ब्राह्मण में **जानश्रुतेयः उपाविः ह स्म आह** जनश्रुति के पुत्र उपावि (नामक ऋषि) ने कहा है–**यस्मात्** इसलिए **अश्लीलस्य श्रोत्रियस्य मुखम्** कुरूप श्रोत्रिय का मुख **तृप्तम् इव** तृप्ति से युक्त और **रेभती इव**

(वेदशास्त्र के पाठ से युक्त होने के कारण) प्रशंसनीय के समान **व्येव ज्ञायते** विशेष रूप से मालूम होता है। इसी प्रकार **आज्यहविषः उपसदः** आज्य की हविष् वाला उपसद **ग्रीवासु मुखम् अध्याहितम्** ग्रीवा में मुख पर आश्रित होती है। **तस्माद् ह** इसी कारण **तदाह** (ऋषि ने) इस प्रकार कहा है।

सा०भा०—तदु ह तस्मिन्नेवोक्तार्थे कश्चिद्वृत्तान्त उच्यत इति शेषः। उपाविर्नामकः कश्चिदृषिः स तु जानश्रुतेयः, जनश्रुतायाः स्त्रिया अपत्यं स पुमानुपसदां किल वै, उपसन्नामकानां कर्मणामेव विधायके ब्राह्मणे तद्वाक्यमाह स्म। किमाहेति तदुच्यते—यस्मात्कारणादश्लीलस्यापि कुरूपस्य श्रोत्रियस्य वेदशास्त्रविदो मुखं तृप्तमिव दैन्यहीनतया तृप्तियुक्तमेव रेभतीव वेदशास्त्रपाठोपेतत्वाच्छंसन्निव व्येव ज्ञायते विशेषेणावश्यं प्रतीयते—इत्येतदृषेर्वचनम्। तस्य वचनस्याभिप्राय उच्यते—ग्रीवास्थानीया उपसद आज्यहविष्का अत एव शोभमानाः। लोकेऽपि शोभमानासु ग्रीवासु, अध्याहितमाश्रितं मुखं श्रोत्रियसंबन्धितृप्त्याद्युपेतं दृश्यते। तस्मात् कारणाच्छोभनग्रीवाहितमुखसाम्यमाज्यहविष्कत्वमित्यभिप्रेत्य स ऋषिस्तद्वाक्यमाह[1]॥

अथा मीमांसा। चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयपादे चिन्तितम् —

'यदातिथ्याबर्हिरेतदुपसत्स्वतिदेशनम् ।
साधारण्यविधिर्वाऽद्यस्तदीयस्योपसंहृतेः ॥
बर्हिःश्रुत्यैकताभानान्नातिदेशस्य लक्षणा ।
आतिथ्ययोपसद्भिश्च बर्हिरेतत्प्रयुज्यते ॥[2]

ज्योतिष्टोमे श्रूयते—यदातिथ्यायां बर्हिस्तदुपसदां तदग्नीषोमीयस्य चेति। क्रीतं सोमं शकटेऽवस्थाप्य प्राचीनवंशं प्रत्यानयन्नेऽभिमुखो यामिष्टिं निर्वपति सेयमातिथ्या। तत ऊर्ध्वं त्रिषु दिनेष्वनुष्ठीयमाना उपसदः। औपवसथ्ये दिनेऽनुष्ठेयः सोऽग्नीषोमीयः। तत्र आतिथ्येष्टौ विहितं यद्बर्हिस्तद्यदि तस्या इष्टेराच्छिद्योपसत्सु विधीयेत तदानीमातिथ्याविधानमनर्थकं स्यात्। यदि तत्रोपयुक्तमितरत्र विधीयते विनियुक्तविनियोगरूपो विरोधः स्यात्। तस्मादातिथ्याबर्हिषो ये धर्मा आश्ववालत्वादयस्ते धर्मा उपसत्सूपसंह्रियन्त इत्यतिदेशपरं वाक्यमिति प्राप्ते ब्रूमः—बर्हिःशब्दस्य धर्मातिदेशपरत्वे लक्षणा प्रसज्येत। श्रुत्या तु बर्हिष आतिथ्योपसदग्नीषोमीयेष्वेकत्वं प्रतिभात्यतः साधारण्यमत्र विधेयम्। आतिथ्यार्थं यद्बर्हिरुपादीयते तन्न केवलमातिथ्यार्थं किंतूपसदर्थमग्नीषोमीयार्थं चोपादेयमिति विधिवाक्यस्यार्थः। तस्मादातिथ्योपसदग्नीषोमीयास्त्रयोऽप्यस्य बर्हिषः प्रयोजकाः।

द्वादशाध्यायस्य प्रथमपादे चिन्तितम्—

---

(१) वक्त्रनुक्तौ तु सर्वत्र स्वयं महिदासैतरेय एव वक्तेत्याह—इति षड्गुरुशिष्यः।
(२) जै०न्या०वि० ४.२.१४.२९-३०।
(३) जै०न्या०वि० १२.१.१९.४२-४३।

आतिथ्यादिगते बर्हिष्युक्षणादि पृथङ्न वा ।
आद्योऽतन्त्रप्रसङ्गत्वान्न प्रसङ्गानिवारणात् ।।[१]

"यदातिथ्यायां बर्हिस्तदुपसदां तदग्नीषोमीयस्येति श्रुतं तत्र बर्हिस्त्रयाणां साधारणमिति चतुर्थे निरूपितम्।[२] तस्मिन् साधारणे बर्हिषि प्रोक्षणादिसंस्काराः प्रतिकर्म पृथगनुष्ठेयाः। कुतः? तन्त्रप्रसङ्गयोरत्रासंभवात्। न तावत्तन्त्रमस्ति, दर्शगतयागत्रयवदेककालीनत्वाभावात्। नापि प्रसङ्गः, एकस्य तन्त्रमध्येऽन्ययोरपठितत्वाद् इति प्राप्ते ब्रूमः—बर्हिष एकत्वात्सकृत्प्रोक्षणादिभिः संस्कारे पुनः प्रोक्षणाद्यपेक्षा नास्ति। ते च प्रोक्षणादयः प्राथम्यादातिथ्यायां कार्याः। तत उपसत्स्वग्नीषोमीये च प्रसङ्गसिद्धिर्न वारयितुं शक्यते"।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य चतुर्थाध्याये अष्टमः खण्डः ।।८।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के अष्टम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ नवमः खण्डः

सा० भा०—अथोपसत्सु प्रयाजाननुयाजांश्च निषेधति—

(उपनिसत्सु प्रयाजानुयाजानां निषेधः)

देववर्म वा एतद्यत्प्रयाजाश्चानुयाजाश्चाप्रयाजमननुयाजं भवतीष्वै संशित्या अप्रतिशराय ।।१।।

हिन्दी—(अब उपसदों में प्रयाजों और अनुयाजों का निषेध कर रहे हैं—) **यत् प्रयाजाश्च अनुयाजाश्च** जो प्रयाज और अनुयाज हैं **एतद् देववर्म वै** ये देवताओं के कवचरूप है अतः **इष्वै संशित्यै** (अपने) बाण की सम्यग्रूपेण तीक्ष्णता के लिए और **अप्रतिशराय** (अपने पर किये गये) बाणप्रहार की शङ्का के परिहार के लिए **अप्रयाजम् अननुयाजं भवति** (उपसद) प्रयाज और अनुयाज से रहित किया जाता है।

सा० भा०—ये प्रयाजा ये चानुयाजाः सन्ति तदुभयं देवानां वर्म वै कवचस्थानीयम्। अत एव शाखान्तरे समामनन्ति—'यत्प्रयाजा अनूयाजा इज्यन्ते, वर्मै वा एतद्यज्ञाय क्रियते, वर्म यजमानाय भ्रातृव्याभिभूत्यै'[२] इति। एवं सत्युपसदाख्यं कर्म प्रयाजानुयाजरहितं कर्तव्यं कवचस्यानुपयुक्तत्वात्। परकीयप्रहाराद् रक्षार्थं हि कवचं संपाद्यते। नात्र परप्रहारः संभवति।

---

(१) जै०न्या०वि० ४.२.१४.३०। (२) तै०सं० २.६.१.५।

पूर्वोक्ताया इषोस्तीक्ष्णत्वेन सकृत् प्रयोगादेव मारितेषु शत्रुषु प्रहर्तॄणामभावात्। एवं सति यदि कवचं संपाद्यते तदानीं स्वकीयाया इषोरतीक्ष्णत्वं शङ्क्येत स्वस्य च शत्रुभिः संपादिता प्रतिहिंसा शङ्क्येत, तच्चायुक्तम्। तस्मादिष्वै संशित्यै स्वकीयस्य बाणस्य सम्यक्तीक्ष्णत्वार्थमप्रतिशराय स्वेषु शत्रुकर्तृकप्रतिहिंसायाः शङ्कापरिहारार्थं च प्रयाजानुयाजवर्जनं युक्तम्। तथा च **आश्वलायन** आह—'स्विष्टकृदादि लुप्यते प्रयाजा आज्यभागौ च'[1] इति। स्विष्टकृदादिष्वन्तर्भावादनुयाजलोपो युक्त एव॥

अत्राग्नीषोमविष्णुरूपाणां देवानां बहुत्वेनाऽऽश्रावणार्थमुत्तरस्माद्देशादाहवनीयस्य दक्षिणदेशं प्रत्यसकृदतिक्रमणं प्राप्तं तद् वारयितुमाह—

(आश्रावणविधानम्)

सकृदतिक्रम्याऽऽश्रावयति यज्ञस्याभिक्रान्त्या अनपक्रमाय ।। २।।

हिन्दी—(वेदि और आहवनीयाग्नि के मध्य स्थान में अनेक बार प्राप्त उलङ्घन के निवारण के लिए कह रहे हैं—) **यज्ञस्य अभिक्रान्त्यै** यज्ञ की अभिक्रान्ति के लिए और **अनपक्रमाय** (यज्ञ के) अनपक्रमण के लिए **सकृद् अतिक्रम्य** (होता वेदि और आहवनीयाग्नि के मध्य) एक बार अतिक्रमण करके **आश्रावयति** (मन्त्रों को खड़े होकर) सुनाता है।

सा० भा०—वेद्याहवनीययोर्मध्ये सकृदेवातिक्रम्य दक्षिणादिश्यवस्थितो बहुषु यागेषु प्रत्येकमाश्रावणं कुर्यात्। एवं सत्युपसद्यज्ञस्य सर्वत आक्रमणं भवति स्थैर्यं भवति। अन्यथा पुनः पुनरुत्तरस्यां दिशि गमने लब्धावसरः सन्यज्ञोऽप्यपक्रामेत्।[2] तस्मात् सकृदेवातिक्रमणं युक्तम्। तदाहाऽऽपस्तम्बः—'ध्रौवादष्टौ जुह्वां गृह्णाति चतुर उपभृति घृतवति शब्दे जुहूपभृतावादाय दक्षिण सकृदतिक्रान्त उपांशुयाजवत् प्रचरति'[3] इति॥

अथ समन्त्रकं सोमाप्यायनं विधातुं प्रस्तौति—

(सोमस्याप्यायनविधानम्)

तदाहुः क्रूरमिव वा एतत् सोमस्य राज्ञोऽन्ते चरन्ति यदस्य घृतेनान्ते चरन्ति घृतेन हि वज्रेणेन्द्रो वृत्रमहन् ।। ३।।

हिन्दी—(मन्त्र के साथ सोमाप्यायन का विधान करने के लिए प्रस्तावना कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में ब्रह्मवादी इस प्रकार कहते हैं—**यद् सोमस्य राज्ञः अन्ते**

---

(१) आश्व०श्रौ० ४.८.८।

(२) अभिक्रान्त्यै अभिक्रमणाय भवति अनभिक्रान्तश्च नातिदूरं गतः। प्रयाजानुयाजानामननुष्ठाने सकृदभिक्रमणे चोपसद्यागः चोपसद्यागः शीघ्रमनुष्ठितो भवतीत्यर्थः—इति गोविन्दस्वामी।

(३) आप०श्रौ० ११.३.९-१०।

जो सोमराजा के समीप **घृतेन** घृत से **चरन्ति** (तानूनप्त्र संज्ञक कर्म को) सम्पादित करते है, **एतद् अस्य अन्ते क्रूरमिव** यह इस (सोम) के समीप क्रूरता करने के समान होता है; क्योंकि **घृतेन हि वज्रेण** घृतरूप वज्र से **इन्द्रः वृत्रम् अहन्** इन्द्र ने वृत्र को मारा था।

सा० भा०—तत्तत्र ब्रह्मवादिन एवमाहुः—सोमस्य राज्ञोऽन्ते समीपे घृतेन द्रव्येण तानूनप्त्रसंज्ञकं कर्म चरन्त्यनुतिष्ठन्तीति यदस्ति तदेतत् सोमस्य राज्ञः समीपे क्रूरमिव वै, उग्रमेव कर्म चरन्ति। हि यस्मात् कारणाद् घृतरूपेण वज्रेणेन्द्रो वृत्रं हतवान्, तस्माद् घृतकर्म क्रूरम्। तच्छाखान्तरे विस्पष्टमाम्नातम्—'घृतं खलु वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन्नन्तिकमिव खलु वा अस्यैतच्चरन्ति यत्तानूनप्त्रेण चरन्ति'[१] इति॥

तस्य क्रूरकर्मणः परिहाराय विधत्ते—

(तानूनप्त्रस्य क्रूरकर्मनिवारणम्)

दद्यदंशुरंशुष्टे देव सोमाऽऽप्यायतामिन्द्रायैकधनविद आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्वाऽऽप्याययास्मान् सखीन्। सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामुदृचमशीयेति राजानमाप्याययन्ति यदेवास्य तत्क्रूरमिवान्ते चरन्ति तदेवास्यैतेनाऽऽप्याययन्त्यथो एनं वर्धयन्त्येव ।।४।।

हिन्दी—(तानूनप्त्र के क्रूर कर्म के परिहार के लिए विधान कर रहे हैं—) **देव सोम** हे सोम देव! **एकधनविदः** केवल (सोमरूप) धन को जानने वाले **ते अंशुः अंशुः** तुम्हारे अवयव **आप्यायताम्** वृद्धि को प्राप्त होवें। **तुभ्यम् इन्द्रः आप्यायताम्** तुम्हारे लिए इन्द्र वृद्धि को प्राप्त करें और **इन्द्राय त्वम् आप्यायस्व** इन्द्र के लिए तुम वृद्धि को प्राप्त करो। **अस्मान् सखीन्** मित्र के समान हम लोगों को **सन्न्या मेधया आप्यायय** क्षेम और मेधा के द्वारा वृद्धि को प्राप्त कराओ। **देव सोम** हे सोम देवता! **ते स्वस्ति** तुम्हारे कल्याण को प्राप्त करुँ—**इति राजानम् आप्याययन्ति** इस (मन्त्र) से (सोम) राजा को जल से प्रोक्षण करते हैं। **यदेव अस्य अन्ते क्रूरमिव चरन्ति** (इस प्रकार) जो इस सोम के समीप कूरता के समान आचरण करते हैं **अस्य** इस (सोम) के प्रति **तदेव** उस (कूरता) को ही **एतेन** इस (जल से प्रोक्षण) के द्वारा **आप्याययन्ति** शान्त करते हैं और **एनं वर्धयन्ति एव** इस सोम को बढ़ाते भी हैं।

सा० भा०—यद्यस्मात्कारणात् सोमस्य राज्ञः समीपे घृतसाधनकं तानूनप्त्रं कर्म क्रूरं तत् तस्मात्कारणात् क्रौर्यपरिहारायांशुरंशुरिति मन्त्रेण[२] सोमं राजामनमाप्याययेयुः। जलेन

(१) तै०सं० ६.२.२.४।

(२) तैत्तिरीयसंहतायामप्येष मन्त्रः श्रूयते (१.२.११.१), परं तत्र इमे पाठा इतो विभिन्नाः—'अंशुं शुष्टे', 'प्यायय सखीन्', 'सुत्या मशीय'—इति। 'आशिषमेवैतामाशास्ते'—इति च तद् ब्राह्मणम् (तै०सं० ६.२.२)। वाजसनेयिनाञ्च 'सुत्या मशीय'—इत्येव।

प्रोक्षणमाप्यायनम्। एवं सति यत्क्रूरमाचरितं तत्सर्वमेतेन प्रोक्षणेनाऽऽप्याययन्ति शमयन्ति। अपि चैनं सोमं वर्धयन्त्येव। मन्त्रस्यायमर्थः—हे सोम देव, इन्द्राश्र तत्त्वदीयोऽशुस्त्वदवयव आप्यायता वर्धताम्। कीदृशायेन्द्राय? एकधनविदे। सोमरूपं यदेकं धनं तद्वेति विन्दते वेत्येकधनवित्। तस्मा एकधनविदे। तुभ्यं तदर्थमिन्द्रो वर्धतामिन्द्रार्थं च त्वं वर्धस्व। सखीनस्मान् सन्या क्षेमेण मेधया यज्ञप्रतिपादकग्रन्थधारणाशक्त्या चाऽऽप्यायय वर्धय। हे सोम देव ते स्वस्ति क्षेमोऽस्तु। यस्यां क्रियायां सोमः सूयतेऽभिषूयते सा सुत्या। उदुत्तमा समाप्तिविषर्यग्यस्यां सुत्यायां सेयमुदृक्तां सुत्यामुदृचमशीय प्राप्नुयां विघ्नमन्तरेण समाप्तिपर्यन्तमनुतिष्ठेयमिति।[१] श्रौत इतिशब्दो मन्त्रसमाप्त्यर्थः॥

समन्त्रकं निह्नवं विधत्ते—

(सोमस्य निह्नवविधानम्)

द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत्सोमो राजा तद्यद् 'एष्टा राय एष्टा वामानि प्रेषे भगाय। ऋतमृतवादिभ्यो नमो दिवे नमः पृथिव्या' इति प्रस्तरे निह्नुवते द्यावापृथिवीभ्यामेव तं नमस्कुर्वन्त्यथो एने वर्धयन्त्येव वर्धयन्त्येव ॥५॥

हिन्दी—(मन्त्र के सहित निह्नव का विधान कर रहें हैं—) **यत् सोमः राजा** जो सोम राजा हैं **एषः द्यावापृथिव्योः गर्भः वै** द्यु और पृथिवी के गर्भ स्वरूप हैं। **तद् यद्** तो जो **'एष्टा रायः' इति प्रस्तरे निह्नुवते** इस मन्त्र से प्रस्तर (कुश के दो बण्डलों) को निह्नव करते हैं (= वेदि के दक्षिण किनारे पर रख देते हैं)। इस प्रकार **द्यावापृथिवीभ्यामेव** द्यावापृथिवी के लिए ही **नमस्कुर्वन्ति** नमस्कार करते हैं **अथ** और **एनं वर्धयन्ति एव** ये दोनों (सोम) को बढ़ाते है। **मन्त्रार्थ—एष्टः** हे प्रस्तर अथवा सोम! **इषे** अन्न के लिए और **भगाय** भाग्य के लिए **राय** धनों को और **वामानि** अन्य कामनाओं को (प्रदान करो)। **ऋतवादिभ्यः** सत्यवादी देवताओं अथवा ऋत्विक् और यजन करने वाले के लिए **ऋतम्** सत्य (कहता हूँ)। **नमः दिवे नमः पृथिव्यै** द्युलोक और पृथिवी लोक के लिए नमस्कार है।

सा० भा०—यः सोमो राजा, एष द्यावापृथिव्योरेव गर्भः। यद्यस्मादेवं तत्तस्माद् गर्भरक्षार्थं प्रस्तर एतन्नामके दर्भमुष्टौ निह्नवते संप्रणयन्ति नमस्कारोपचारं कुर्युरित्यर्थः। तदेतद्द्यावापृथिवीभ्यामित्यादिना स्पष्टी क्रियते। अपि चैने द्यावापृथिव्यौ वर्धयन्त्येव। उत्साहयुक्ते कुर्वन्त्येव। निह्नवप्रकार आपस्तम्बेन दर्शितः—'अथ निह्नवते—दक्षिणे वेद्यन्ते प्रस्तरं निधाय दक्षिणान् पाणिनुत्तानाम् कृत्वा सव्यान्नीच एष्टा रायः प्रेषे भगायेति'[२] इति। अस्मादभ्युदयमिच्छतीत्येष्टा प्रस्तरः सोमो वा। देहीति पदमध्याहर्तव्यम्। हे एष्टः, इषे अन्नार्थं

(१) वा०सं० ५.७.१।   (२) आप०श्रौ० ११.१.१२।

भगाय सौभाग्यार्थं च रायो धनानि प्रदेहि। यद्वा, एष्टेति। प्रथमान्तं तदानीं प्रददात्वित्यध्याहारः। किञ्च, एष्टा वामान्यन्यानपि कामान् प्रददातु ऋतवादिभ्यः सत्यवादिभ्यो देवेभ्य ऋत्विग्यजमानेभ्यो वा। ऋतं सत्यं वदामीति शेषः। तदेव सत्यवचनं स्पष्टवचनं स्पष्टमुच्यते। दिवे द्युलोकदेवतायै नमोऽस्तु। पृथिव्यै भूलोकदेवतायै नमोऽस्त्विति।[१] श्रौत इतिशब्दो मन्त्रसमाप्त्यर्थः। वर्धयन्त्येवेत्यभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

अत्र मीमांसा—दशमाध्यायस्य सप्तमे पादे चिन्तितम्—

उपसत्सु निषिद्धेभ्यः शिष्टं सर्वं समाचरेत् ।
यावदुक्तमुताऽऽद्योऽस्तु चोदकस्यानिवारणात् ।।

स्रौवाघारे पुनः श्रुत्या शिष्टस्य परिसंख्यया ।
अपूर्वार्थत्वतो वाऽन्त्योऽनुवादः प्रतिषेधगीः ।।[२]

ज्योतिष्टोमे विहितासूपसत्सु पठ्यते—'अप्रयाजास्ता अननुयाजाः'[३] इति। तत्र निषिद्धान् प्रयाजानुयाजान् वर्जयित्वाऽवशिष्टं चोकदप्राप्तमङ्गजातं सर्वमाचरणीयमिति प्राप्ते, ब्रूमः—प्रकृतौ विहित एव स्रौवाघारः पुनरिह विधीयते। स च चोदकप्राप्तमन्यत्सर्वमङ्गजातं परिसंचष्टे। अन्यथा पुनर्विधानवैयर्थ्यात्। ननु पुनर्विधानं प्रतिप्रसवार्थमत एव श्रुतिरत्र स्रौवाघारमभावशङ्कानिराकरणपूर्वकं विदधाति—'नान्यामाहुतिं पुरस्ताज्जुहुयाद्यन्यामाहुतिं पुरस्ताज्जुहुयादन्यन्मुखं कुर्यात् स्रुवेणाऽऽघारमाघारयति'[४] इति। अयमर्थः—स्रौवाघारः सर्वत्र यज्ञस्य मुखं तथा सति यदि कश्चिन्मन्द उपसत्प्रयोगादौ स्रौवाघारमहुत्वा तस्य स्थाने कांचिदन्यामाहुति जुहुयात् तदा मुखव्यत्यासेन प्रत्यवायं प्राप्नुयात्। तस्मात् स्रौवाघार आदौ कर्तव्य इति नैतद्युक्तम्। चोदकप्राप्तस्याऽऽघारस्याकस्मादभावशङ्काया अयुक्तत्वात्। तस्मात् परिसंख्यार्थ एव पुनर्विधिः। आहुत्यन्तरनिन्दा तु तच्छेषभूतोऽर्थवादः। यदि परिसंख्या साऽपि परिसंख्यार्थ एव पुनर्विधिः। आहुत्यन्तरनिन्दा तु तच्छेषभूतोऽर्थवादः। यदि परिसंख्या साऽपि त्रिदोषेत्युच्यते तर्हि गृहमेधीयवदपूर्वं कर्मास्तु।[५] प्रयाजादिनिषेधो नित्यानुवादः। सर्वथा यावदुक्तमत्रानुष्ठेयम्'[६]।।

---

(१) वा०सं० ५.७२। तै०सं० १.२.११.२।
(२) जै०न्या०वि० १०.७.१४.४३,४६।
(३) कात्या०श्रौ० ६.१०.२२, २३।
(४) स्रुवेणाघारमाघारयति यज्ञस्य प्रज्ञात्यै—इति तै०सं० ६.२.३.३।
(५) जै०न्या०वि० १०.७.९.२४-३३।
(६) उपसदिष्टेरङ्गभूतानि तानूनप्त्रादीनि कर्माणि शत०ब्राह्मणे २४ अध्याये विहितानि; तै०सं० १.२.११; ६.२.२-६; तथा कल्पसूत्रेषु च; आश्व०श्रौ० ४.५.३८। आप०श्रौ० ११.१.१-१२। कात्या०श्रौ० ८.१.२४। तत्रैव च वृत्तौ 'अथ सौकर्याय उपसदः प्रयोग उच्यते'—इत्यादिना उपसदिष्टि प्रयोगः समन्ताद् वर्णितः। अथातिथ्येष्टौ प्रकृतिवत्

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य चतुर्थाध्याये नवमः खण्डः ॥९॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के नवम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'—नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य प्रथमपञ्चिकायाः चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

'कुशमयः प्रस्तरो भवति। उपसदिष्टौ तु आश्ववालः प्रस्तरः (तै०सं० ६.२.१; कात्या०श्रौ० ८.१.१३)। आश्ववालाः काषाख्या दर्शविशेषाः'—इति तत्रोक्तं सायणेनेति।

अथ प्रथमपञ्चिकायाम्
पञ्चमोऽध्यायः
अथ प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— अभिष्टवोपसत्तानूनमप्त्राप्यायननिह्नवाः ।
कथिता घर्मसंभारा व्रतोपायनमेव च ।।१।।

(सोमक्रयार्थाख्यायिकाकथनम्)

सोमो वै राजा गन्धर्वेष्वासीत्तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन् कथमयमस्मान् सोमो राजाऽऽगच्छेदिति सा वागब्रवीत् स्त्रीकामा वै गन्धर्वा मयैव स्त्रिया भूतया पणध्वमिति नेति देवा अब्रुवन् कथं वयं त्वदृते स्यामेति साऽब्रवीत् क्रीणीतैव यर्हि वाव वो मयाऽर्थो भविता तर्ह्येव वोऽहं पुनरागन्ताऽस्मीति तथेति तया महानग्न्या भूतया सोमं राजानमक्रीणन् ।।१।।

हिन्दी—(सोमक्रय इत्यादि का विवेचन किया जा रहा है। उस विषय में सोमक्रय को कहने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **सोमो वै राजा** राजा सोम **गन्धर्वेषु आसीत्** गन्धर्वों (के संरक्षण) में थे। **तम्** उस (सोम) को **देवाश्च ऋषयश्च** (मित्र इत्यादि) देवताओं और (वसिष्ठ इत्यादि) ऋषियों ने **कथमयं सोमः** राजा किस प्रकार ये राजा सोम **अस्मान् आगच्छेद् इति** हमारे पास आवें (प्राप्त होवे)—**अभ्यध्यायन्** विचार किया। तब **सा वाग् अब्रवीत्** उस (गन्धर्वों के स्वभाव की जानने वाली) वाणी ने कहा कि **स्त्रीकामाः वै गन्धर्वाः** गन्धर्व स्त्री की कामना करने वाले होते हैं अतः **स्त्रियाभूतया मया एव पणध्वम्** स्त्रीरूप को प्राप्त मेरे द्वारा (मुझे गन्धर्वों को मूल्य के रूप में देकर सोम को) खरीद लो। तब **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने कहा कि **न इति** नहीं (ऐसा नहीं होगा) क्योंकि **त्वदृते** तुम्हारे बिना **कथं वयं स्याम** कैसे हम लोग रहेंगे (अर्थात् तुम्हारे बिना हम लोग नहीं रह सकते)। पुनः **सा अब्रवीत्** उस (वाणी) ने कहा कि **क्रीणीता एव** (मुझे मूल्यरूप में) बेच दो। **यर्हि वाव** जब भी **मया अर्थो भविता** तुम लोगों को मेरी आवश्यकता होगी **तर्हि एव** उसी समय ही **वः अहं पुनरागन्ता अस्मि** तुम्हारे पास मैं पुनः आजाऊँगी। **तथा इति** (देवताओं ने) वैसा ही किया। **तया एव महानग्न्या भूतया** उसी अत्यन्त नग्नभूत (अर्थात् कुमारी रूप वाणी) के बदले में **सोमं**

राजानम् अक्रीणन् सोम राजा को खरीद लिया।

सा० भा०—स्वानभ्राजेत्यादिनामधारिणो गन्धर्वा द्युलोके सोमस्य रक्षकाः। तच्च शाखान्तरे मन्त्रव्याख्यानब्राह्मणे श्रूयते—'स्वानभ्राजेत्याह। एतेषाममुष्मिँलोके सोममरक्षन्'[१] इति। अथवा विश्वावसुप्रभृतयः सोमस्यापहन्तारो गन्धर्वाः। तदपि तत्रैव श्रुतम्—'तं सोममाह्रियमाणं गन्धर्वो विश्वावसुः पर्यमुष्णात्स तिस्रो रात्रीः परिमुषितोऽसत्'[२] इति। तेषु गन्धर्वेषु यः सोम आसीत्तं सोमं मित्रादयो देवा वसिष्ठादिऋषयश्च केन प्रकारेण सोमोऽस्मान् प्राप्नुयादिति विचारितवन्तः। तदानीं गन्धर्वहृदयाभिज्ञा वाग्देवी देवानब्रवीत्। गन्धर्वाः सर्वेऽपि स्त्रीलम्पटा, अहं च स्त्री भूत्वा तिष्ठाम्यथो मया पणध्वं सोममूल्यत्वेन मां गन्धर्वाणामग्रे कुरुतेति। ततो देवा अनङ्गीकृत्य त्वदृते त्वां वाचं विना वयं कथं स्याम मन्त्ररूपवाग्राहित्ये सति कर्मणामप्रवृत्तेः केन प्रकारेण वयं जीवामेति वाचमब्रुवन्। ततो वाग्देवानब्रवीत्। संदेहं मा कुरुतावश्यं मया मूल्येन क्रीणीत यदैव मया युष्माकं प्रयोजनं भविष्यति तदैवाहं पुनरपि युष्मान् प्राप्स्यामीति। ततो देवा अङ्गीकृत्य तया वाचा सोममक्रीणन्। कीदृश्या महानग्न्या। महती चासौ नग्नी च महानग्नी तया। रूपसंपत्तिविवक्षया महत्त्वमुच्यते। बाल्यविवक्षया नग्नत्वम्। भूतया तदानीमेव कुमारीरूपेण निष्पन्नया। तदेतच्छाखान्तरे स्पष्टमाम्नातम्—'ते देवा अब्रुवन् स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः स्त्रिया निष्क्रीणामेति। ते वाचं स्त्रियमेकहायनीं कृत्वा तया निष्क्रीणन्'[३] इति॥

इदानीं सोमक्रयं विधत्ते—

(सोमक्रयविधानम्)

तामनुकृतिमस्कन्नां वत्सतरीमाजन्ति सोमक्रयणी तया सोमं राजानं क्रीणन्ति ।। २।।

हिन्दी—(अब सोम के क्रय का विधान कर रहे हैं—) **ताम् अनुकृतिम्** उस स्त्रीरूप वाणी के अनुकरण के रूप में **अस्कन्नां वत्सरीम्** अप्राप्त यौवन वाली बछिया को **सोमक्रयणीम्** सोम खरीदने का साधन **आजन्ति** बनाते हैं। **तया** उस (बछिया) के बदले **सोमं राजानं क्रीणन्ति** सोम राजा को (विक्रेता से) खरीदते हैं।

सा० भा०—तामनृकृतिं तां स्त्रीरूपां वाचमनुक्रियमाणां निष्पन्नां तत्सदृशीमित्यर्थः। अस्कन्नां वीर्यस्कदनरहितामप्राप्तयौवनां वत्सतरीमतिशयेन बालां सोमक्रयसाधनभूतां कांचिद्गामाजन्ति संपादयेयुरित्यर्थः। तया तादृश्या गवा सोमं राजानं क्रीणन्ति क्रीणीयुः। तां गां मूल्यरूपेण दत्त्वा सोमं स्वीकुर्युः ॥

मूल्यत्वेन सोमविक्रयणे दत्ता या गौस्तस्याः पुनर्मूल्यान्तरदानेन स्वीकरणं विधत्ते—

(१) तै०सं० ६.१.१०.५। स्वानभ्राज'—इति मन्त्रस्तु तैत्तिरीयसंहिताम्नातः (१.२.७)।
(२) तै०सं० ६.१.६.५। (३) तै०सं० ६.१.६.५।

तां पुनर्निष्क्रीणीयात् पुनर्हि सा तानागच्छत् ।।३।।

हिन्दी—(मूल्य देकर उस बछिया को पुनः वापस ले लेने का विधान कर रहे हैं—) **ताम्** उस (सोम के मूल्य के रूप में दी गयी बछिया) को **पुनः निष्क्रिणीयात्** पुनः (उसका मूल्य देकर सोम-विक्रेता से) खरीद लेना चाहिए क्योंकि **सा** वह (आख्यायिका में प्रोक्त वाणी) **तान्** उन (देवताओं) के पास **पुनः हि आगच्छत्** पुनः वापस आ गयी थी।

सा० भा०—यस्मादियं वाग्गन्धर्वेभ्यो निष्क्रम्य पुनस्तान् देवान् प्राप्नोत् तस्मात्सोम-क्रयण्याः पुनरादानं युक्तम्। वाचो वृत्तान्तः शाखान्तरे स्पष्टमाम्नातः—'सा रोहिद् रूपं कृत्वा गन्धर्वेभ्योऽपक्रम्याऽऽतिष्ठत्तद्रोहितो जन्म ते देवा अब्रुवन्नयं युष्मदक्रमीन्नास्मादुपावर्तेते विह्वयामहा इति ब्रह्मगन्धर्वा अवदन्नगायन् देवाः सा देवान् गायन्नुपावर्तत तस्माद् गायन्तं स्त्रियः कामयन्ते'[१] इति।।

मन्त्राणां मन्द्रध्वनिं विधत्ते—

(मन्त्राणां मन्द्रध्वनिविधानम्)

तस्मादुपांशु वाचा चरितव्यं सोमे राजनि क्रीते गन्धर्वेषु हि तर्हि वाग्भवति साऽग्नावेव प्रणीयमाने पुनरागच्छति ।।४।।

हिन्दी—(मन्त्रों की मन्द्रध्वनि का विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी (सोमक्रय के बाद वाणी के गन्धर्वों के पास रहने के) कारण **उपांशु वाचा चरितव्यम्** (मन्त्र को) उपांशु वाणी से बोलना चाहिए क्योंकि **सोमे राजनि क्रीते** सोम राजा के खरीद लिये जाने पर **तर्हि** तब **गन्धर्वेषु हि वाग् भवति** वाणी गन्धर्वों (के संरक्षण) में होती है। **सा** वह (वाणी) **अग्नौ एव प्रणीयमाने** अग्नि का प्रणयन हो जाने पर **पुनः आगच्छति** पुनः वापस हो जाती है।

सा० भा०—सोमक्रयादूर्ध्वकाले मूल्यरूपा वाग्देवी गन्धर्वेषु तिष्ठति पुनरप्यग्नौ प्रणीयमाने देवानागच्छति। यस्मादेवं तस्मात् सोमक्रयादूर्ध्वमग्निप्रणयनात् प्राग्वाचोपांशु चरितव्यम्। यथा परैर्ध्वनिर्न श्रूयते तथा मन्त्रपाठादिकं कर्तव्यमित्यर्थः।।

अत्र मीमांसा। द्वादशाध्यायस्य चतुर्थपादे चिन्तितम् —

क्रयणेषु विकल्पः स्यात्साहित्यं वाऽग्रिमी यतः।
कार्यैक्यामानतेर्लाभाद्दशोक्तेश्च समुच्चयः ।।[२]

"अजया क्रीणति, हिरण्येन क्रीणति, वाससा क्रीणाति"–इत्यादीनि बहूनि सोमक्रय-साधनानि द्रव्याण्यम्नातानि।[३] तेषां कार्यैक्याद्विकल्पः–इति चेन्मैवम्। बहुभिर्द्रव्यैर्विक्रेतुरा-

(१) तै०सं० ६.१.६.५,६। (२) जै०न्या०वि० १२.४.७.४।
(३) तै०सं० ६.१.६-१०।

नतेः सौलभ्याद् 'दशभिः क्रीणाति' इति संख्योक्तेश्च[१] समुच्चयः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य पञ्चमोऽध्याये प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चम अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—सोमक्रयमभिधायाग्निप्रणयनीया ऋचो विधातुमादौ प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(अग्निप्रणयनीयर्चां प्रैषमन्त्रः)

अग्नये प्रणीयमानायानुब्रूहीत्याहाध्वर्युः ॥१॥

हिन्दी—(सोमक्रय का कथन करके अब अग्निप्रयणीय ऋचाओं के कहने के लिए पहले प्रैष मन्त्र को कह रहे हैं—) (हे होता) **प्रणीयमानाय अग्नेः** (उत्तरवेदि पर) लायी जाती हुई अग्नि के लिए **अनुब्रूहि** अनुकूल (मन्त्र) को पढ़ो—'**इत्यध्वर्युः आह** इस (प्रैष मन्त्र) को अध्वर्यु कहता है।

सा० भा०—प्राचीनवंशगत आहवनीयेऽवस्थितस्याग्नेः सौमिक्यामुत्तरवेद्यां नयनं यदस्ति तदेतदत्राग्निप्रणयनं[२] तत्कुर्वन्नध्वर्युरग्नये प्रणीयमानायानुब्रूहीति प्रैषमन्त्रं होतार-मुद्दिश्य पठेत्[३]॥

तत्र होत्राऽनुवक्तव्यास्वष्टास्वृक्षु प्रथमामृचं विधत्ते—

---

(१) तथाहि 'एकहायन्या (सोमक्रयण्या) क्रीणाति' 'अजया क्रीणाति' 'हिरण्येन क्रीणाति' तै०सं० ६.१.६-१०। द्र० आप०श्रौ० १०.२५.१५। तै०सं० ६.१.१० सा०भा०, आप०श्रौ० १०.२६.७। सर्वत्र चाद्या सोमक्रयणी (आरुण्यादिलक्षणा एकहायनी गौः) ग्राह्येति।

(२) उक्तम् (२.१७) अग्निप्रणयनम्'—इति (३.१.७)' 'पश्वर्थं ह्यग्निप्रणयनम्, तस्य च श्वःसुत्यानिमित्तम्'—इति (१२.४.१३) 'सदोहविर्धानान्याग्नीध्रीयाग्नीषोमप्रणयन-वसतीवरीग्रहणानि पश्वर्थानि भवन्ति, सुत्यार्थान्येके'—इति (१.२.४.१५) इत्या-द्याश्वलायनीयसूत्राणि पर्यालोच्यानि। 'अत्र प्रवर्ग्यमुद्वास्य पशुबन्धवदग्निं प्रणयति'—इत्यादि आप०श्रौ० ११.५.९।

(३) तथाहि कल्पसूत्रम्—पश्चाद् दार्शपौर्णमासिकाया वेदेरुपविश्य प्रेषितोऽग्निप्रणयनीयाः प्रतिपद्यते'—इति आश्व०श्रौ० २.१७.२।

(होत्रा पठितव्या अष्टर्चः)

(तत्र ब्राह्मणयजमानाय प्रथमर्चा)

'प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम्। हव्या नो वक्षदानुषगिति'[१] गायत्रीं ब्राह्मणस्यानुब्रूयात् ।।२।।

हिन्दी—(उस अग्निप्रणयन में होता द्वारा पठनीय आठ ऋचाओं में ब्राह्मण यजमान के लिए प्रथम ऋचा को कह रहे हैं—) 'प्र देवं देव्या' **इति गायत्रीम्** इस गायत्री (ऋचा) का **ब्राह्मणस्य** (यजन करने वाले) ब्राह्मण के लिए **अनुब्रूयात्** (होता) अनुवाचन करें। **मन्त्रार्थ**—हे ऋत्विक्! **देवं जातवेदसम्** जतवेदस् देव को **देव्या धिया** उस (जातवेदस्) को प्रसन्न करने वाली भावना से युक्त बुद्धि द्वारा **प्रभरत** (उत्तरवेदि के प्रति) प्रकृष्ट रूप से ले आओ। (यह जातवेदस्) **नः हव्याः** हमारे हविषों को **आनुषक् वक्षत्** उत्तरवेदि पर अनुषक्त होकर (देवताओं तक) ले जावे।

सा० भा०—हे ऋत्विजो जातवेदसं देवं देव्या तद्रूपप्रकाशिकया तद्भावनायुक्तया धिया प्रभरत प्रकर्षेणोत्तरवेदिं प्रति हरत नयत। अयं च जातवेदा आनुषगुत्तरवेद्यामनुषक्तः सन्नो हव्या, अस्मदीयानि हवींषि वक्षद्देवान् प्रति वहतु। इत्यृगेषा गायत्रीछन्दस्का तां ब्राह्मणस्य यजमानस्य होताऽनुब्रूयात्।।

तदेतत्प्रशंसति—

गायत्रो वै ब्राह्मणस्तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री तेजसैवैनं तद्ब्रह्म-वर्चसेन समर्धयति ।।३।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त ऋचा के गायत्री छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **गायत्री वै ब्राह्मणः** गायत्री ब्राह्मण से सम्बधित है तथा **गायत्री वै तेजः ब्रह्मवर्चसम्** गायत्री तेज और ब्रह्मणर्चस् है। इस प्रकार **एनम्** इस (यजन करने वाले ब्राह्मण) को **तेजसा ब्रह्म-वर्चसेन** तेज और ब्रह्मवर्चस से **तद्** इस (ऋचा के पाठ) से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—ब्राह्मणस्य प्रजापतिमुखजन्यत्वसाम्येन गायत्रीसम्बन्धः। तेजो वा इत्या-दिकं पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

क्षत्रियस्य यजमानस्य योगेऽन्यामृचं विधत्ते—

(क्षत्रिययजमानाय प्रथमर्चा)

'इमं महे विदथ्याय शूषमिति'[२] त्रिष्टुभ राजन्यस्यानुब्रूयात् ।।४।।

हिन्दी—(क्षत्रिय यजमान के लिए प्रथम ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'इमं महे विदथ्याय शूषम्' **इति त्रिष्टुभः** यह त्रिष्टुप् छन्दस्क ऋचा **राजन्यस्य अनुब्रूयात्** क्षत्रिय

(१) ऋ० १०.१७६.२। (२) ऋ० ३.५४.१।

यजमान का (होता) अनुवाचन करें।

तदेतत्प्रसंशसति—

त्रैष्टुभो वै राजन्य ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुबोजसैवैनं तदिन्द्रियेण वीर्येण समर्धयति ।।५।।

हिन्दी—(इस मन्त्र के छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **त्रैष्टुभो वै राजन्यः** त्रिष्टुप् (छन्द) क्षत्रिय से सम्बन्धित है। **त्रिष्टुप् ओजो इन्द्रियं वीर्यं वै** त्रिष्टुप् ओज, इन्द्रिय और बल रूप वाला है। **तद्** इस (ऋचा के पाठ) से **एनम्** इस (यजन करने वाले क्षत्रिय) को **ओजसा इन्द्रियेण बलेन** ओज, इन्द्रिय और बल से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—त्रिष्टुब्राजन्ययोः प्रजापतिबाहुजन्यत्वेन संबन्धः। एतदपि गायत्रीब्राह्मणयोरिव सप्तमकाण्डे तैत्तिरीयैराम्नातम्—'उरसो बाहुभ्यां पञ्चदश निरमिमीत तदिन्द्रो देवताऽवसृजत त्रिष्टुप्छन्दो बृहत्साम राजन्यो मनुष्याणाम्'[1] इति। ओजो वा इत्यादिकं पूर्ववद्व्याख्येयम्।।

तस्या ऋचो द्वितीयपादं पठति—

'शश्वत्कृत्व ईड्याय प्रजभ्रुरिति' ।।६।।

हिन्दी—(उस ऋचा के द्वितीय पाद को दिखला रहे हैं—'शश्वत्कृत्वः ईड्याय प्रजभ्रुः' अर्थात् शूषम् सुख का हेतु भूत **इमं** इस (अग्नि) को **महे विदथ्याय** महान् लाभ के लिए **शश्वकृत्वः ईड्याय** सर्वदा स्तुति करने योग्य (क्षत्रिय के याग) के लिए **प्रजभ्रुः** (उत्तरवेदि पर) प्रकृष्ट रूप से लाया जाता है।

सा० भा०—उक्तस्य पादद्वयस्यायमर्थः-शूषं सुखहेतुमिमग्निं महे विदथ्याय महते वेदनाय लाभाय तस्तिद्ध्यर्थं शश्वत्कृत्वो बहुकृत्व ईड्याय प्रजाभिः स्तुत्याय राजन्याय राजन्यस्य यागसिद्ध्यर्थं प्रजभ्रुः प्रकर्षेण हृतवन्त उत्तरवेद्यां नीतवन्त इति। श्रौत इतिशब्दो द्वितीयपादसमाप्त्यर्थः।।

तत्पादपठनेन ज्ञातीनां मध्ये यजमानस्य श्रैष्ठ्यं दर्शयति—

स्वानामेवैनं तच्छ्रैष्ठ्यं गमयति ।।७।।

हिन्दी—(इसके पाठ से ज्ञातिजनों में यजमान की श्रेष्ठता को दिखला रहे हैं—) **तत्** इस (दो पादों के पाठ) से **स्वानामेव** अपने (ज्ञातिजनों) में **एनम्** इस (क्षत्रिय) को **श्रैष्ठ्यं गमयति** श्रेष्ठता को प्राप्त कराता है।

तस्या ऋच उत्तरार्धं पठति—

---

(१) तै०सं० ७.१.१.४।

'शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्र' इति ।।८।।

हिन्दी—(उस ऋचा के उत्तरार्ध को दिखला रहे हैं—) इस ऋचा का उत्तरार्ध इस प्रकार है—**दम्येभिः अनीकैः** शत्रुसेना को अभिभूत करने में समर्थ अपनी सेनाओं के साथ (लाया जाता हुआ अग्नि) **नः शृणोतु** हमारी (स्तुति) को सुने तथा **दिव्यैः** देवलोक योग्य भोगों के साथ **अग्निः अजस्रः शृणोतु** अग्नि निरन्तर (हमारी स्तुति) को सुनते रहें।

सा० भा०—दम्येभिः परकीयसेनां दमयितुमर्हैरनीकैः स्वकीयैः सैन्यैः सहायं प्रणीयमानोऽग्निर्नोऽस्मान् शृणोतु। एते यजमानाः सम्यगनुतिष्ठन्तीत्येवं स्वकीयदूतमुखादवगच्छतु। यद्वा, दमो गृहं तद्योग्यैर्दम्यैर्गृहरक्षणार्थमवस्थापितैरित्यर्थः। किञ्चायमग्निर्दिव्यैर्देवलोकयोग्यैभोगैः सहाजस्रो निरन्तरमस्मद् गृहे वर्तमानोऽस्मदीयां स्तुतिं शृणोत्विति। श्रौत इतिशब्द उत्तरार्धसमाप्त्यर्थः।।

उक्तवेदनं प्रशंसति—

आजरसं हास्मिन्नजस्रो दीदाय य एवं वेद ।।९।।

हिन्दी—(उपर्युक्त ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, **अस्मिन्** उसके (घर) में (अग्नि) **आजरसम्** वृद्धावस्था तक **अजस्रः दीदाय** निरन्तर दीप्त होती रहती है।

सा० भा०—वेदितुर्जरासमाप्तिपर्यन्तमस्मिन्नेतदीये गृहेऽजस्रो नैरन्तर्येण वर्तमानोऽग्निर्दीदाय दीप्यते।।

वैश्यस्य यजमानस्यान्यामृचं विधत्ते—

(वैश्ययजमानाय प्रथमर्चा)

'अयमिह प्रथमो धायि धातृभिरिति'[१] जगती वैश्यस्यानुब्रूयात् ।।१०।।

हिन्दी— (अब वैश्य यजमान के लिए प्रथम ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **'अयमिह प्रथमो धायि धातृभिः' इति जगती** इस जगती छन्दस्क (ऋचा) का **वैश्यस्य** वैश्य (यजमान) के लिए **अनुब्रूयात्** (होता) अनुवाचन करें।

तदेतत्प्रशंसति—

जागतो वै वैश्यो जागताः पशवः पशुभिरेवैनं तत्समर्धयति ।।११।।

हिन्दी—(इस ऋचा की प्रशंसा कर रहें हैं—) **जागतो वैश्यः** वैश्य जगती छन्द से सम्बन्धित है और **जागताः पशवः** पशु भी जगती छन्द से सम्बन्धित होते हैं **तद् एनं समर्धयति** इस (मन्त्र के शंसन) से यह (यजमान) को समृद्ध करता है।

---

(१) ऋ० ४.७.१।

सा० भा०—प्रजापतिमध्यदेशजन्यत्वसाम्येन जगतीसंबन्धः। एतदपि शाखान्तरे समाम्नातम्—'मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत तं विश्वे देवा देवता अन्वसृज्यन्त जगती छन्दो वैरूपं साम वैश्यो वै मनुष्याणाम्'[1] इति। जागता इत्यादिकं पूर्ववद्व्याख्येयम्।

चतुर्थपादमनूद्य प्रशंसति—

'वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विश इत्यभिरूपा यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।१२।।

हिन्दी—(इस ऋचा के चतुर्थ पाद की प्रशंसा कर रहे हैं—) 'वनेषु चित्रं विभ्वं विशे विश' **इति अभिरूपा** यह (विश का प्रयोग होने के कारण वैश्य के यज्ञ के) अनुरूप है। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो यह (वैश्य के) यज्ञ के अनुरूप है, **तत् समृद्धम्** वह (यज्ञ की) समृद्धि है।

सा० भा०—अत्र तत्तद्वैश्यवाचिनो वीप्सायुक्तस्य विशशब्दस्य श्रूयमाणत्वाद्वैश्यं प्रत्यनुरूपत्वम्।।

इत्थं जातिभेदेन प्रथमाया ऋचो व्यवस्थामभिधाय जातित्रयसाधारणभूतां द्वितीयमृचं विधत्ते—

(वर्णत्रयकृते द्वितीयर्चा)

'अयमु ष्य प्र देवयुरिति'[2] ।।१३।।

हिन्दी—(वर्ण के अनुसार अलग-अलग प्रथमा ऋचा की व्यवस्था को कह कर अब तीनों वर्णों के लिए साधारण द्वितीय ऋचा को कह रहे हैं—) 'अयमु ष्य प्र देवयुः' **इति** इस (द्वितीय ऋचा का होता पाठ करता है)।

सा० भा०—सोमक्रयणकाले यद्वाच उपांशुत्वं विहितं[3] तस्यास्मिन् काले विसर्गं विधत्ते—

(वाचः विसर्गः)

अनुष्टुभि वाचं विसृजते ।।१४।।

हिन्दी—(सोमक्रयण के समय जो वाणी के उपांशु रूप से पाठ करने का विधान किया गया है। उसके समापन का विधान कर रहे हैं—) **अनुष्टुभिः वाचं विसृजते** ('अयमुष्य' इन अनुष्टुप् ऋचा) के साथ (उपांशु) वाणी को विसर्जित करता है।

सा० भा०—अयमु ष्येत्येतस्यामृच्युपांशुरूपां 'वाचं' विसृजेत्।।[3]

---

(१) तै०सं० ७.१.१.५। (२) ऋ० १०.१७६.३।
(३) द्र० इतः पूर्वम् १७८ पृ०।

तदेतत्प्रशंसति—

वाग्वा अनुष्टुब्वाच्येव तद्वाचं विसृजते ।।१५।।

हिन्दी— (अनुष्टुप् छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **वाग् वै अनुष्टुप्** अनुष्टुप् (छन्द) वाणी रूप है। **तत्** उस (अनुष्टुप् छन्दस्क ऋचा के पाठ) से **वाचि एव** वाणी में ही **वाचं विसृजते** (उपांशु) वाणी को विसर्जित करता है।

सा०भा०—अयमु ष्येत्यस्या अनुष्टुप्छन्दस्कत्वादनुष्टुभो वाग्रूपत्वस्य सर्वश्रुति-प्रसिद्धत्वादनुष्टुब्रूपाया वाच्येवोपांशुध्वनिरूपां वाचं तन्मन्त्रपाठेन विसृजते[1]।।

एतन्मन्त्रगतप्रथमपादस्य पूर्वभागमनूद्य व्याचष्टे—

'अयमु ष्यः' इति यदाहायमु स्याऽऽगमं या पुरा गन्धर्वेष्ववात्स-मित्येव तद्वाक्प्रब्रूते ।।१६।।

हिन्दी—(उक्त ऋचा के प्रथम पाद के पूर्वभाग को कह कर व्याख्या कर रहे हैं—'अयमु ष्यः' **इति यदाह** (ऋचा के प्रथम पाद में) जो 'अयमु ष्यः' कहा गया है **तद् वाग् प्रब्रूते** उसको वाणी कह रही है कि **या पुरा गन्धर्वेषु अवात्सम्** जो पहले मैं गन्धर्वों के संरक्षण में थी अब **अयमु ष्य** वह यह मैं वापस आ गयी हूँ (अतः यह यज्ञ के अनुरूप है)।

सा०भा०—ब्राह्मणगतोऽयंशब्दोऽत्र स्त्रीलिङ्गत्वेन परिणेयः। तच्छब्दपर्यायस्य त्यच्छब्दस्य टाबन्तस्य स्येति रूपं भवति। एवं सत्ययमु ष्य इति मन्त्रो यदाह तत्र वाग्देव-तेत्थं ब्रूते। कथमिति तदुच्यते। पुरा गन्धर्वेषु याऽहं वागवात्सं स्थिताऽस्मि स्याऽऽगमं सेयमेवाऽऽगममिदानीमागताऽस्मीति। अतो वाग्देवतयैवमुच्यमानत्वादत्रार्धर्चोऽभियुक्त इत्यर्थः।।

तृतीयामृचं विधत्ते—

(तृतीयर्चा)

'अयमग्निरुरुष्यतीति'[2] ।।१७।।

हिन्दी—(अब तृतीय ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'अयमग्निरुरुष्यति' **इति** यह (तृतीया ऋचा) है।

सा०भा०—अनुब्रूयादित्यनुक्तस्थलेष्वनुवर्तते।।

---

(१) आश्वलायने अग्निप्रणयनीयानामासां सर्वासामेव पाठादनन्तरं वाग्विसर्गो विहितः। तथाहि तत्सूत्रम्—'परिधाय तस्मिन्नेवासन उपविश्य, भूर्भुवः स्वरिति वाचं विसृजेत'—इति २.१७.१०।

(२) ऋ० १०.१७६.४।

एतत्पदार्थप्रसिद्धं वैशब्देन दर्शयति—

अयं वा अग्निरुरुष्यति ।।१८।।

हिन्दी—अयं वै अग्निः यह (प्रणीयमान) अग्नि ही **उरुष्यति** (कर्मनिष्पादन द्वारा) रक्षा करती है।

सा० भा०—अयं प्रणीयमानोऽग्निर्यजमानमुरुष्यति कर्मनिष्पादनेन रक्षतीत्येतत्प्रसिद्धम्।।

द्वितीयपादमनूद्य तात्पर्यं दर्शयति—

'अमृतादिव जन्मनः' इत्यमृतत्वमेवास्मिंस्तद्दधाति ।।१९।।

हिन्दी—(द्वितीय पाद के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) 'अमृतादिव जन्मनः' अर्थात् मरणधर्म से रहित देवता रूप अग्नि जन्म से (रक्षा करता है) **इति तत्** इसके पाठ से **अस्मिन्** इस (यजन करने वाले) में **अमृतत्वमेव** अमरता को **दधाति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—'अमृतात् मरणरहिताद्देवतारूपाज्जन्मनो यथा रक्षा संपद्यते। न हि मरणराहित्यादधिका रक्षा क्वचिदस्ति। तद्वदियमग्निकर्तृका रक्षेत्यर्थः। तत्तेन मन्त्रपाठेनामृतत्वमेव देवत्वमेवास्मिन् यजमाने संपादयति।।

द्वितीयार्धमनुवदति—

'सहसश्चित् सहीयान् देवो जीवातवे कृतः' इति ।।२०।।

हिन्दी—(उत्तरार्ध का अनुवाद कर रहे हैं—) **देवः** अग्नि देव **जीवातवे** जीवनौषधि के लिए **सहीयान् सहसश्चित्** प्रबलपुरुष से भी अतिशयरूप से प्रबल **कृतः** बनाया गया है–**इति** यह (ऋचा का उत्तरार्ध) है।

सा० भा०—देवोऽग्निर्जीवातवेऽस्माकं जीवनौषधाय सहसश्चित्प्रबलादपि पुरुषात्सहीयानतिशयेन प्रबलीकृतो निष्पादित इत्युत्तरार्धस्यार्थः।।

तमिममर्थं विस्पष्टयति—

देवो ह्येष एतज्जीवातवे कृतो यदग्निः ।।२१।।

हिन्दी— (उक्त उपर्युक्त अर्थ को स्पष्ट कर रहे हैं—) **यद् अग्निः** जो अग्नि है, **एषः देवः** यह देव **जीवातवे** जीवनौषधि के लिए **कृतः** सम्पादित किये जाते हैं।

सा० भा०—योऽग्निरस्त्येष देव एतेनोत्तरार्धपाठेन जीवनौषधाय संपादितो भवति।।

चतुर्थ्या ऋचः पूर्वार्धं पठति—

(चतुर्थी ऋचा)

'इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि' इति[१] ।।२२।।

हिन्दी—(चतुर्थ-ऋचा के पूर्वार्ध को दिखला रहे हैं—) हे अग्ने **पृथिव्याः** पृथिवी-स्थान से (पहले उत्तर वेदि रूप) **इडायाः पदे नाभा** इडा के पद नाभि (रूपी स्थान) में **वयम्** हम लोग **त्वा अधि** तुमको रखते हैं—**इति** यह (चतुर्थ ऋचा का पूर्वार्ध) है।

सा०भा०—पृथिव्या नाभा भूमिस्थानात् प्रागुत्तरवेद्यां नाभिस्थानीये धिष्ण्ये हे अग्ने त्वा निधीमहीति वक्ष्यमाणपदेन संबन्धः। नाभिरेव विशेष्यते—इळायाः पद इति। इळाशब्दो गोवाची। इळाख्यां देवतां प्रकृत्य 'गौर्वा अस्यै शरीरमिति'[२] श्रुतत्वात्। इळेऽनन्ते सरस्वतीति वाङ्नामसु श्रुतत्वात्।[३] तस्याः पदं घृतनिष्पीडनेन प्रशस्तम्, सा यत्र यत्र न्यक्रामत्ततो घृतमपीड्यत इति श्रुतेः। तत्पदरूपत्वविशेषेणोत्तरवेदिनाभिः प्रशस्यते। यद्वा सोमक्रयण्या गोपदपाँसुरस्यां नाभौ प्रक्षिप्यत इति तत्पदरूपत्वम्।।

नाभे पररूपत्वं विशदयति—

एतद्वा इळायास्पदं यदुत्तरवेदीनाभिः ।।२३।।

हिन्दी—(नाभि की पररूपता का विस्तार कर रहे हैं—) **यद् उत्तर वेदीनाभिः** जो उत्तरवेदि की नाभि है **एवद्वै इळायास्पदम्** यही इडास्पद है।

तृतीयं पादमनूद्य व्याचष्टे—

जातवेदो नि धीमहीति नि धास्यन्तो ह्येनं भवन्ति ।।२४।।

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय पाद को कहकर व्याख्यान कर रहे हैं—) 'जातवेदो नि धीमहि' **इति हि** इससे **एनम्** इस (अग्नि) को **निधास्यन्तः भवन्ति** (वेदिस्वरूप नाभि पर ऋत्विग्गण) प्रतिष्ठित करने के लिए उद्यत होते हैं।

सा०भा०—एनमग्निं वेदिनाभौ निधास्यन्तः स्थापयितुमुद्युक्ता भवन्त्युत्विजस्तमान्निधीमहीत्युपपन्नम्।

चतुर्थं पादमनूद्य व्याचष्टे—

---

(१) ऋ० ३.२९.४। (२) तै०सं० १.७.२।

(३) निघण्टौ पृथिवी-वाक्-अन्न-गो-नामसु आम्नातमिडा पदम् (१.१.१५; ११.३.२; ७.१३; ११.७)। निरुक्ते (८.२.१०) 'तिस्रो देव्यः' भारतीळासरस्वत्यः। इळायूथस्य माता-इत्यस्य (ऋ० ५.४१.१९) भाष्ये 'इळा' भूमिः, 'यूथस्य' गोसङ्घस्य 'माता' निर्मात्री। यद्वा 'इळा' गोरूपधरा मनोः पुत्रीत्याहुः। यद्वा 'यूथस्य' मरुद्गणस्य निर्मात्री 'इळा' माध्यमिकी वाक्—इत्याह सायणः। मनोः पुत्रीत्यैतिहासिकविवरणं तु वाजसनेयिनस्तैत्तिरीयाश्चामनन्ति (शत०ब्रा० १.८.१.७-११; तै०सं० २.६.७.१)।

'अग्ने हव्याय वोळ्हवे' इति हव्यं हि वक्ष्यन् भवति ।।२५।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद को कहकर व्याख्यान कर रहे हैं—) **अग्ने वोढवे** अर्थात् हे अग्ने! हव्य को ले जाने के लिए (तुम्हें हम स्थापित करते हैं)— **इति** इसके द्वारा **हव्यं वक्ष्यन् भवति** (अग्नि) हव्य के ले जाने के लिए उद्यत होता है।

सा० भा०—हे अग्ने हविर्वोढुं त्वां निधीमहीति पूर्वत्रान्वयः। हव्यं वक्ष्यन् वोढुमुद्युक्तो भवन्नग्निस्तस्माद्वोढव इत्येतदुचितम्॥

पञ्चम्यां ऋचः पूर्वार्धं पठति—

(पञ्चमी ऋचा)

'अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिमिति'[1] ।।२६।।

हिन्दी—(अब पञ्चमी ऋचा के पूर्वार्ध को दिखला रहे हैं—) **स्वनीक अग्ने** अपनी सेनाओं से सम्पन्न हे अग्ने! **विश्वेभिः देवैः** सम्पूर्ण देवताओं साथ **प्रथमः** अग्रगण्य होकर **उर्णावन्तं योनिम्** उर्णा (ऊन) से सम्पन्न (उत्तरवेदि रूपनाभि) स्थान पर **सीद** बैठो– **इति** यह (पञ्चम ऋचा का पूर्वार्ध है)।

सा० भा०—स्वनीकं शोभनसैन्योपेत हे अग्ने विश्वेभिः सर्वैर्देवै सह त्वं प्रथमो मुख्यः सन्नूर्णावन्तमूर्णायुक्तमुत्तरवेदिनाभिस्थानं सीद प्राप्नुहि।

तत्पाठेनोक्तार्थसिद्धिं दर्शयति—

विश्वैरेवैनं तद्देवैः सहाऽऽसादयति ।।२७।।

हिन्दी—(उसके पाठ से अर्थ-सिद्धि को दिखला रहे हैं—) **विश्वैः एव देवैः** सम्पूर्ण देवताओं के साथ ही **एनम्** इस (अग्नि) को **आसादयति** स्थापित करता है।

तृतीयचतुर्थपादौ क्रमेणानूद्य व्याचष्टे—

'कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे' इति कुलायमिव ह्येतद्यज्ञे क्रियते यत्पैतुदारवाः परिधयो गुग्गुलूर्णास्तुकाः सुगन्धितेजनानीति 'यज्ञं नय यजमानाय साधु' इति यज्ञमेव तदृजुधा प्रतिष्ठापयति ।।२८।।

हिन्दी—(अब पञ्चम ऋचा के तृतीय और चतुर्थ पाद को क्रमशः कहकर व्याख्यान कर रहे हैं—) **'कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे'** (हे अग्ने!) पक्षी के घोसले के समान और घृतसम्पन्न (यज्ञ के) प्रेरक (यजमान) के लिए (स्थापित करो)—इति इस (तृतीय पाद के कथन) से **यत् पैतुदारवाः परिधयः** जो देवदारु की लकड़ी की परिधियाँ **गुग्गुलूर्णास्तुकाः** गुग्गुलु, ऊन तथा **सुगन्धितेजनानि** सुगन्धि तेजन (नामक तृणविशेष) को **यज्ञे क्रियते**

(१) ऋ० ६.१५.१६।

यज्ञ में रखा जाता है **एतत् कुलायमिव** यह (पक्षी के) घोसले के ही समान होता है। **'यज्ञं नय यजमानय साधु'** अर्थात् यजमान के लिए यज्ञ को सम्यग्रूपेण ले आओ—**इति** इस (चतुर्थपाद के कथन से) **तद् यज्ञमेव ऋजुधा प्रतिष्ठापयति** उस यज्ञ को ही सरलतापूर्वक प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—कुलायो नीडं पक्ष्यादिनिवासस्थानसदृशं तद्वानयं यज्ञो घृतवान्। तं घृतवन्तं यज्ञं सवित्रे प्रेरकायानुष्ठात्रे यजमानाय तदुपकारार्थं साधु नय सत्यं निष्पादय। तत्कुलायित्वं तृतीयपादेऽभिहितम्। तत्कुलायमिवेत्यादिना स्पष्टी क्रियते। पितुदारुः खदिरवृक्ष इत्येके। देवदारुवृक्ष इत्यन्ये। तत्संबन्धिनः पैतुदारवाः परिधयोऽस्यामुत्तरवेद्यां स्थाप्यन्ते। गुग्गुलु प्रसिद्धं धूपसाधनम्। ऊर्णास्तुका अविसंबन्धिरोमविशेषाः। सुगन्धितेजनं तृणविशेषः। यस्य मूलानि घर्मकाले पानीयमध्ये स्थाप्यन्ते। एत उत्तरवेद्यां स्थापिताः संभाराः।[१] यथा कुलायः काष्ठतृणादिभिर्निष्पाद्यते तद्वदत्र यज्ञे परिधिकाष्ठादिसद्भावात् कुलायित्वम्। यज्ञं नयेति चतुर्थपादे यद्यदुक्तं तेन यज्ञमेव तदृजुधा, ऋजुप्रकारेण प्रतिष्ठितं करोति॥

षष्ठ्या ऋचः प्रथमं पादं पठित्वा व्याचष्टे—

(षष्ठी ऋचा)

'सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्'[२] इत्यग्निर्वै देवानां होता तस्यैष स्वो लोको यदुत्तरवेदीनाभिः ॥२९॥

हिन्दी—(षष्ठ ऋचा के प्रथम पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्' अर्थात् हे होम निष्पादक अग्नि! विज्ञान-सम्पन्न तुम (उत्तरवेदिरूप) अपने स्थान पर बैठो' **इति** यहाँ (कहा गया) **अग्निः वै देवानां होता** अग्नि ही देवताओं का होता (नामक ऋत्विक्) है। **तस्य** (होता होने के कारण) उस (अग्नि) का **यदुत्तरवेदीनाभिः** जो उत्तरवेदिरूप नाभि है। **एषः स्व लोकः** यह अपना स्थान होता है।

सा० भा०—हे होतर्होमनिष्पादकाग्ने चिकित्वान् विज्ञानवांस्त्वं स्व उ लोके स्वकीय एव स्थान उत्तरवेदिनाभिरूपे सीदोपविश। अग्नेर्देवहोतृत्वादुत्तरवेदिनाभेस्तदीयस्थानत्वाच्च प्रथमपादार्थ उपपन्नः॥

द्वितीयपादमनूद्य तत्रत्यस्य यज्ञशब्दस्य यजमानपरत्वं दर्शयति—

'सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ' इति यजमानो वै यज्ञो यजमानायैवैतामाशिषमाशास्ते ॥३०॥

---

(१) इमा एवाग्निसम्भारास्तैत्तिरीयसंहितायां च साख्यायिकाः समाम्नाताः (६.२.८)

(२) ऋ० ३.२९.८।

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीयपाद को कह कर वहाँ प्रयुक्त यज्ञ शब्द की यजमानपरता को दिखला रहे हैं—) 'सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ' अर्थात् हे अग्नि! (यज्ञन करने वाले को) पुण्य करने वालों के स्थान में रखो—**इति** यहाँ कहा गया **यजमानः वै यज्ञः** यजमान ही यज्ञ रूप है। इससे **यजमानायैव एनाम् आशिषम् आशास्ते** यजमान के लिए ही इस आशीष को देता है।

सा० भा०—यज्ञं यष्टारं सुकृतस्य योनौ पुण्यकर्मणां स्थाने सादय हे अग्ने स्थापय। इज्यत इति व्युत्पत्त्या यज्ञशब्दः सर्वत्र यागवाची। इह तु यजतीति व्युत्पत्त्या। यष्टारमाचष्टे। अतस्तदर्थमेवाऽऽशीः प्रार्थिता भवति।

उत्तरार्धमनूद्य तत्रत्यस्य वयःशब्दस्य प्राणवाचित्वं दर्शयति—

'देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः' इति प्राणो वै वयः, प्राणमेव तद् यजमाने दधाति ।। ३१ ।।

हिन्दी—(ऋचा के उत्तरार्ध को कह कर वहाँ प्रयुक्त वयः शब्द की प्राणवाचिता को कह रहे हैं—) **देवावीः अग्ने** हे देवताओं के प्रिय अग्नि! **हविषा देवान् यजासि** हविष् के द्वारा देवताओं का यजन करने वाले हो। **यजमाने** यजमान में **बृहद् वयः धाः** महान् प्राण को धारण कराओं–**इति** यहाँ प्रयुक्त **वयः** वय शब्द **प्राणः वै** प्राण का वाचक है। **तद्** इसके (पाठ) से **यजमाने** यजन करने वाले व्यक्ति में **प्राणमेव दधाति** (होता) प्राण को ही धारण कराता है।

सा० भा०—देवान्वेति कामयत इति देवावीः[1] देवप्रिय हे अग्ने त्वं देवप्रियत्वाद्देवान्हविषा यजासि पूजयसि। यजमाने वयः प्राणं बृहदधिकं यथा भवति तथा धाः, धेहि स्थापय। अत्र वयःशब्देन प्राण उपलक्ष्यते। बाल्यादिवयोविशेषहेतोरायुषो निमित्तत्वात् 'यावदस्मिञ्शरीरे प्राणो वसति तावदायुः'[2] इति श्रुतेः। तस्मादुत्तरार्धपाठेन प्राणमेव यजमाने स्थापयतीति।।

सप्तम्या ऋचः प्रथमपादमनूद्य व्याचष्टे—

(सप्तमी ऋचा)

'नि होता होतृषदने विदानः'[3] इत्यग्निर्वै देवानां होता तस्यैतद्धोतृषदनं यदुत्तरवेदीनाभिः ।। ३२ ।।

हिन्दी—(सप्तमी ऋचा के प्रथम पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे

(१) देवावीः देवानां भक्षणहेतो' इति गोविन्दस्वामी।
(२) कौषी०उ० ३.२। द्र०–'प्राणो हि भूतानामायुः'–इत्यादि तैत्ति० ८.३।
(३) ऋ० २.९.१।

हैं—) 'नि होता होतृषदने विदानः' अर्थात् हे होतारूप (अग्नि)! होतृसदन (होता के स्थान = उत्तरवेदिनाभिरूप स्थान) में क्रियमाण कर्म का विचार करते हुए (आसीन होवो)—इति यह **अग्निर्वै देवानां होता** अग्नि ही देवताओं का होता (बुलाने वाला) है। **यद् उत्तरवेदीनाभिः** जो उत्तरवेदि रूप नाभि है **तद् एतद्** वही **अस्य** इस (अग्नि) के लिए **होतृषदनम्** होतृसदन (अग्निरूप होता के बैठने का स्थान) है।

सा॰भा॰—होता होमनिष्पादकोऽग्निस्तादृशस्य स्वस्य होतुः योग्यस्थान उत्तर-वेदिनाभिरूपे विदानः क्रियमाणं कर्म विचारयन्। असददिति वक्ष्यमाणेनान्वयः। अग्निर्वा इत्यादिव्याख्यानं विस्पष्टम्॥

द्वितीयं पादमनूद्यासददिति पदं व्याचष्टे—

'त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः' इत्यासन्नो हि स तर्हि भवति ॥३३॥

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर असदत् शब्द का व्याख्यान कर रहे हैं—) 'त्वेषो दीदिवां असदत् सुदक्षः' अर्थात् स्वयं दीप्यमान, दूसरों को दीपित करने वाला और सुकुशल (अग्नि) बैठा है'—**इति तर्हि** इससे प्रणयनकाल में **सः** वह अग्नि **आसन्नः भवति** समीप में रहता है।

सा॰भा॰—कीदृशोऽग्निः। त्वेषः स्वयं दीप्यमानः। दीदिवानन्येषामपि दीपकः। सुदक्षः सुष्टुकुशलः। तादृशोऽग्निरासन्नो वेदिता भवति। स तर्हि तस्मिन् प्रणयनकाले सोऽग्निर्यस्मादुत्तरवेदिनाभेरासन्नस्तस्मादसददित्युचितम्॥

तृतीयपादनूद्य वसिष्ठशब्दार्थं दर्शयति—

'अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः' इत्यग्निर्वै देवानां वसिष्ठः ॥३४॥

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय पाद के कहकर उसमें प्रयुक्त 'वसिष्ठ' शब्द के अर्थ को दिखला रहे हैं—) 'अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः' अर्थात् हिंसारहित कर्म में प्रकृष्ट मति वाले और सर्वाधिक निवास देने वाले (अग्नि बैठे हैं)—**इति** यहाँ **अग्निर्वै देवानां वसिष्ठः** अग्नि ही देवताओं को सर्वाधिक निवास देने वाला है–यह कहा गया है।

सा॰भा॰—अदब्धे हिंसारहिते व्रते कर्मणि प्रकृष्टा मतिर्यस्याग्नेः सोऽयमदब्धव्रत-प्रमतिः। वसिष्ठोऽतिशयेन निवासहेतुः।[१] हविर्वहनेन देवानां स्वस्वस्थाने निवासहेतुत्वादग्ने-र्वसिष्ठत्वम्॥

चतुर्थ पादमनुद्य व्याचष्टे—

'सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः' इत्येषा ह वा अस्य सहस्रंभरता यदेनमेकं सन्तं बहुधा विहरन्ति ॥३५॥

---

(१) वसेः प्रशस्यार्थादिष्ठनि टिलोपः। 'वसिष्ठो वसीयान्' इति गोविन्दस्वामी।

हिन्दी—(ऋचा के चतुर्थ पाद के कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) 'सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः' अर्थात् सभी का भरण करने वाले और पवित्रजिह्वा वाले अग्नि हैं— इति यहाँ **यद् एनमेकं सन्तं बहुधा विहरन्ति** जो स्वरूप से एक होते हुए भी (ऋत्विक् लोग अनेक स्थानों में) विविध प्रकार से ले जाते हैं, **एषा ह वै** यही **अस्य** इस (अग्नि) की **सहस्रंभरता** सहस्रंभरता है।

सा० भा०—अयमग्निर्बहुषु धिष्ण्येषु विहृतः सन्ननेकस्वरूपभरणात् सहस्रंभरः। मन्त्रपूतहविःस्वीकारेण शुचिजिह्वः शुद्धा जिह्वा यस्यासौ शुचिजिह्वः स्वरूपेणैकमेव सन्तमग्निमृत्विजो बहुधिष्ण्येषु बहुधा विहरन्तीति यदस्ति, एषैवाग्नेः सहस्रंभरता॥

वेदनं प्रशंसति—

प्र ह वै साहस्रं पोषमाप्नोति य एवं वेद ॥३६॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **साहस्रं पोषं प्र आप्नोति** असंख्य पुष्टता को प्रकृष्ट रूप से प्राप्त करता है।

सा० भा०—अत्र सहस्रसंख्योपेतं पोषं गोसुपर्णादिपुष्टिं वेदिता प्राप्नोति॥

अष्टमीमृचं विधत्ते—

(अष्टमी परियानीया ऋचा)

'त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पा इत्युत्तमया परिदधाति[1] ॥३७॥

हिन्दी—(अष्टमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पा' अर्थात् 'हे अग्नि तुम (देवताओं के) दूत और हम लोगों के आत्यधिक पालन करने वाले हो'— **इत्युत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से समापन करता है।

सा० भा०—त्वं दूत इत्यनयाऽन्तिमयाऽग्निप्रणयनीया ऋचः समापयेत्।[2] हे अग्ने त्वं दूतोऽसि 'अग्निर्देवानां दूत आसीत्' इति श्रुतेः।[3] त्वमेव नोऽस्माकं परस्पा अतिशयेन पालयिताऽसि॥

अवशिष्टं पादत्रयं पठति—

---

(१) ऋ० २.९.२।

(२) मूले यदस्ति 'परिदध्यात्'–इति एतस्यैव व्याख्यानं समापयेदिति। 'सर्वत्रोत्तमां परिधानीयेति विद्यात्' इति (आश्व०श्रौ० २.१६.८) कल्पशास्त्रात्।

(३) तै०ब्रा० ३.५२ 'प्रवो वाजाः'– इत्याद्या याः सामिधेन्य ऋचः आम्नाताः, तत्र 'अग्निं दूतं वृणीमहे (ऋ० १.१२.१)'–इत्येषाष्टमी तस्या एव व्याख्यानपरं ब्राह्मणमाम्नातं तैत्तिरीयसंहितायाम् (२.५.८.५) 'अग्निर्देवानां दूत आसीदुशना काव्योऽसुराणाम्'– इत्यादि।

'त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता। अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनाम-प्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः इति ।।३८।।

हिन्दी— (अष्टमी ऋचा के अवशिष्ट तीनों पादों को कह रहे हैं—) **वृषभ** हे श्रेष्ठ (अग्ने)! **वस्य आ** तुम सभी ओर से निवास को देने वाले, **प्रणेता** (बहुत से कर्मों के) प्रेरक **त्वम्** तुम **नः** हम लोगों को **तोकस्य तनूनाम्** सन्तान और शरीरों के **तने** विस्तार में **अप्रयुच्छन्** प्रमाद न करते हुए और **दीयत्** प्रकाश करते हुए **गोपाः बोधि** रक्षक होकर सर्वदा जानो।

सा० भा०—हे वृषभ श्रेष्ठाग्ने त्वमासमन्ताद्वस्यो निवासहेतुः प्रणेता बहुषु कर्मसु प्रेरको नोऽस्माकं तोकस्यापत्यस्य तनूनां शरीराणां च 'तने' विस्तारेऽप्रयुच्छन् प्रमादमकुर्वन् दीद्यत् प्रकाशयन्गोपा रक्षकः सन्, 'बोधि' बुध्यस्य सर्वदा चित्तेऽनुगृहाणेत्यर्थः।

उक्तार्थामृचं प्रशंसति—

अग्निर्वै देवानां गोपा अग्निमेव तत्सर्वतो गोप्तारं परिदत्त आत्मने च यजमानाय च यत्रैवं विद्वानेतया परिदधात्यथो सं वत्सरीणामेवैता स्वस्तिं कुरुते ।।३९।।

हिन्दी—(उपर्युक्त अर्थ वाली ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अग्निर्वै देवानां गोपाः** अग्नि ही देवताओं का रक्षक है। **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतया परिदधाति** इस (ऋचा) से समापन करता है। **अग्निमेव** अग्नि को ही (होता) **आत्मने च यजमानाय च** अपने लिए और यजमान के लिए **सर्वतः गोप्तारं परिदधाति** सभी ओर से रक्षक बनाता है और **एतां संवत्सरीणाम्** इस संवत्सर में निरन्तर **स्वस्तिं कुरुते** क्षेम करता है।

सा० भा०—यत्र यस्मिन्कर्मणि एवमुक्तं मन्त्रमहिमानं विद्वानेतयाऽन्तिमया समापयति सं होताऽग्नेर्देवरक्षरत्वमभिप्रेत्याऽऽत्मार्थं यजमानार्थं चाग्निमेव सर्वतो रक्षकं परिदत्ते स्वीकरोति। किञ्च। संवत्सरीणामेवास्मिन् संवत्सरे निरन्तरमेवैतां स्वस्ति क्षेमं कुरुते।।

न्यूनाधिकसंख्याभ्रमं व्युदसितुमाह—

ता एता अष्टावन्वाह रूपसमृद्धाः एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति ।।४०।।

हिन्दी—**ताः रूपसमृद्धाः अष्टौ अन्वाह** उन (उपर्युक्त) यज्ञ के रूप से समृद्ध आठ (ऋचाओं) का (होता) अनुवाचन करता है। **यद् रूपसमृद्धम्** जो यह रूप से समृद्ध है **एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम्** यही यज्ञ की समृद्धि है क्योंकि **यत् क्रियमाणं कर्म** इस किये

जाते हुए कर्म को **ऋग् अभिवति** ऋचा कह रही है।

सा० भा०—प्रणीयमानस्याग्नेः प्रकाशकत्वादेतासां रूपसमृद्धिः॥[१]

आद्यन्तयोर्ऋचोरावृत्तिं विधत्ते—

(आद्यन्तयोर्ऋचोरावृत्तिविधानम्)

तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां, ता द्वादश संपद्यन्ते, द्वादश वै मासाः संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिः, प्रजापत्यायतनाभिरेवाऽऽभी राध्नोति य एवं वेद; त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह यज्ञस्यैव तद्बसौं नह्यति, स्थेम्ने बलायाविस्त्रंसाय ॥४१॥

हिन्दी—(इन आठ ऋचाओं में प्रथम और अष्टम ऋचा की आवृत्ति को कह रहे हैं—) **तासाम्** उन (आठ ऋचाओं) में **प्रथमां त्रिः** प्रथम (ऋचा) का तीन बार और **उत्तमां त्रिः** और अन्तिम (ऋचा) का तीन बार **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है। इस प्रकार **ताः** वे (ऋचाएँ) **द्वादश सम्पद्यन्ते** बारह हो जाती हैं। **द्वादश वै मासाः संवत्सरः** संवत्सर बारह महीनों वाला होता है और **संवत्सरः प्रजापतिः** संवत्सर प्रजापतिरूप है। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजापत्यायतनाभिः एव** प्रजापति के आयतन द्वारा **अभिराध्नोति** सभी ओर से समृद्धि को प्राप्त करता है। **त्रिः प्रथमाम्** तीन बार प्रथम ऋचा को और **त्रिः उत्तमाम्** तीन बार अन्तिम ऋचा का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है। **तद्** उस (अनुवाचन) से **स्थेम्ने** स्थिरता के लिए, **बलाय** बल के लिए और **अविस्त्रंसाय** (यज्ञ के) फिसलन-रहितता के लिए **यज्ञस्यैव बसौं नह्यति** यज्ञ के दोनों ओर की (आदि-अन्त वाली) गाठों को बाँधता है।

सा० भा०—पूर्ववद्व्याख्येयम्।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य पञ्चमोऽध्याये द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चम अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—अथ हविर्धानप्रवर्तनीया ऋचो विधातुमादौ प्रैषं विधत्ते—

---

(१) एतासामष्टानामृचां पाठप्रकारादयोऽपि उपदिष्टा आश्वलायनेन २.१७.३-१०।

(हविर्धानप्रवर्तनीयर्चां प्रैषमन्त्रः)

हविर्धानाभ्यां प्रोह्यमाणाभ्यामनुब्रूहीत्याहाध्वर्युः ।।१।।

हिन्दी—(अब हविर्धान-प्रवर्तनीय ऋचाओं का विधान करने के लिए प्रारम्भ में प्रैष मन्त्र का विधान कर हैं—) **प्रोह्यमाणाभ्यां हविर्धानाभ्याम्** हे होता! (प्राचीनवंश से उत्तरवेदि पर) ले जाये जाते हुए दोनों हविर्धानों के लिए (ऋचाओं का) **अनुब्रूहि** अनुवाचन करो' **इति अध्वर्युः आह** इस (प्रैष) को अध्वर्यु कहता है।

सा० भा०—हविः सोमरूपं धत्तो धारयत इति हविर्धाने द्वे शकटे। तयो स्वरूपमापस्तम्बो दर्शयति—'प्रयुक्तः पूर्वे शकटे बद्धयुगे प्रकटिशम्ये प्रक्षाल्य तयोः प्रथमग्रथितान्विस्रस्य नवान्प्रज्ञातान् कृत्वाऽग्रेण प्राग्वंशमभितः पृष्ठ्यामव्यपनयन् परिश्रिते सच्छदिषी अवस्थापयति[1] इति। तयोर्हविर्धानयोः प्राचीनवंशस्य पुरोभागमुपक्रम्योत्तरदेशपर्यन्तं नयनं प्रवर्तनं तदपि स एवाऽऽह—'प्राची प्रेतमध्वरमित्युक्तं गृह्णन्तं प्रवर्तयन्ति,[2] इति। तत्प्रवर्तनकालेऽध्वर्युर्होतारं प्रति हविर्धानाभ्यामित्यादिप्रैषमन्त्रं प्रब्रूयात्।।

होत्राऽनुवचनीयानामृचां मध्ये प्रथमामृचं विधत्ते—

(हविर्धानप्रवर्तनीयर्ग्विधानम्)

(तत्र प्रथमा ऋचा)

'युजे वा ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिरित्यन्वाह[3]; ब्रह्मणा वा एते देवा अयुञ्जत यद्धविर्धाने ब्रह्मणैवैने एतद्युक्ते न वै ब्रह्मण्वद्रिष्यति ।।२।।

हिन्दी—(होता द्वारा अनुवचनीय ऋचाओं में से प्रथमा ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नामोभिः' अर्थात् 'हे हविर्धाने (शकटद्वय)! ब्रह्म ने पूर्ववर्ती काल में तुम दोनों को स्तुतियों से जोड़ा था'—**इति अन्वाह** इस (मन्त्र का होता) अनुवाचन करता है। **यद् हविधाने** जो दोनों हविर्धान हैं, **एते** इनको **देवाः** देवताओं ने **ब्रह्मणा अयुञ्जन्त** ब्राह्मण (के मुख) से जोड़ा था। **यद् ऐने हविधनि** जो ये दोनों हविर्धान को **ब्रह्मणा** ब्राह्मण (के मुख से जोड़ा था) इससे **ब्रह्मण्वद् न वै रिष्यति** ब्राह्मण से युक्त (कर्म) विनष्ट नहीं होता है।

सा० भा०—हे हविर्धाने वां युवां ब्रह्म युजे ब्रह्मणा युनक्तीत्येवं मन्त्रे यदुक्तमेतत् पाठेन ब्राह्मणमुखेनैव हविर्धाने युक्ते भवतः। पूर्वं देवैस्तथा कृतत्वात्। एतद्युक्तं ब्रह्मण्वद् ब्राह्मणोपेतं कर्म नैव विनश्यति तस्माद्युक्तोऽयं मन्त्रः।

द्वितीयाद्यास्तिस्र ऋचो विधत्ते—

(१) आप०श्रौ० ११.६.३। (२) आप०श्रौ० ११.६.११।
(३) ऋ० १०.१३.१।

(द्वितीयाद्यास्तिस्र ऋचः)

प्रेतां यज्ञस्य शंभुवेति[१] तृचं द्यावापृथिवीयमन्वाह ।।३।।

हिन्दी—(द्वितीय से लेकर चतुर्थ तक तीन ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'प्रेतां यज्ञस्य शं भुव'—**इति द्यावापृथिवीयं तृचम्** इस द्यावापृथिवी देवता वाली तीन ऋचाओं का–**अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—मध्यमायामृचि द्यावा नः पृथिवी इममिति श्रूयमाणत्वादयं तृचो द्यावापृथिवीयः।।

अस्य तृचस्य हविर्धानप्रतिपादकत्वाभावाद् वैयधिकरण्यमित्याक्षिप्य समाधत्ते—

तदाहुर्यद्धविर्धानाभ्यां प्रोह्यमाणाभ्यामनुवाचाऽऽहाथ कस्मात्तृचं द्यावा-पृथिवीयमन्वाहेति, द्यावापृथिवी वै देवानां हविर्धाने आस्तां, त उ एवाद्यापि हविर्धाने; ते हीदमन्तरेण सर्वं हविर्यदिदं किंच तस्मात्तृचं द्यावापृथिवीयमन्वाह ।।४।।

हिन्दी—(इस तृच के हविर्धान का प्रतिपादक न होने के कारण आक्षेप करके उसका समाधान दे रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में कुछ ब्रह्मवादी आक्षेप करते हैं कि **प्रोह्य-माणाभ्यां हविर्धानाभ्याम्** जब (उत्तरवेदि पर) ले जाये जाते हुए दो हविर्धानों के लिए **'अनुवाच** (हे होता) अनुवाचन करो'—**आह** (इस प्रकार अध्वर्यु द्वारा प्रैष) कहा गया है, तब **कस्मात्** किस कारण **द्यावापृथिवीयं तृचम्** द्यावापृथिवी देवता वाले तृच का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है? (समाधान) **द्यावापृथिवी वै देवानां हविर्धाने आस्ताम्** द्यावापृथिवी ही देवताओं के दोनों हविर्धान थे और **ते एव** वे ही **अद्यापि हविर्धाने** आज भी दो हविर्धान हैं; क्योंकि **यद् इदं सर्वं किञ्च हविः** जो यह सब कुछ भी हवि (इस लोक में) दी जाती है, **ते हि इदम् अन्तरेण** वह सभी इन दोनों (द्यावा और पृथिवी) के मध्य में ही (दी जाती है)। **तस्मात्** इसी कारण **द्यावापृथिवीयं तृचम्** द्यावापृथिवी से सम्बन्धित तृच का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है।

स० भा०—यद्यप्यत्र हविर्धानयोरनुकूलया वाचा प्रैषमाह तथाऽपि द्यावापृथिवीय-स्तृचो न व्यधिकरणः पुरा द्यावापृथिव्योरेव हविर्धानत्वात्। अद्यापि द्यावापृथिव्यावेव हविर्धाने। तत्कथमिति चेदुच्यते। यस्माल्लोके यत्किंचिद्धविरस्ति तदिदं सर्वं ते अन्तरेण द्यावापृथिव्योर्मध्ये वर्तते तस्माद् द्यावापृथिव्योर्हविर्धानत्वात्तदीयस्य तृचस्यानुवचनं युक्तम्।।

पञ्चमीमृचं विधत्ते—

---

(१) ऋ० २.४१.१९-२१।

(पञ्चमी ऋचा)

'यमे इव यतमान यदैतमिति;[१] यमे इव ह्येते यतमाने प्रबाहुगितः ।।५।।

हिन्दी—(पञ्चमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'यमे इव यातमाने यदेतम्' अर्थात् 'तुम जुड़वे के समान जगदुपकार के लिए जाते हो', **इति** यह (पञ्चमी ऋचा का प्रथमापाद) है। **यमे इव** जिस प्रकार लोक में जुड़वा बहने साथ-साथ चलती हैं उसी प्रकार **यतमाने एते** (जगत् के उपकार के लिए) प्रयत्न करती हुई ये दोनों (हविर्धानियाँ) **प्रबाहुक्** परस्पर समानता से साथ में विद्यमान रह कर **इतः** साथ-साथ चलती हैं।

सा० भा०—यमशब्द एकस्या मातुरुदरे सहोत्पन्नस्य शरीरद्वयस्य वाचकः। यमे इव यथा लोके तादृश्यौ द्वे कन्यके सह वर्तते तथेमे शकटे यतमाने जगदुपकारार्थं प्रयत्नं कुर्वती यस्मात्कारणादैतमागवती इत्येतस्य पादस्यार्थः प्रसिद्ध इति हिशब्दो द्योतयति। युगपदुत्पन्नकन्यकाद्वयवदेवैते प्रबाहुक्परस्परसादृश्येन सहैव वर्तमाने इतः प्रचरतः। तदेतल्लोके प्रसिद्धमेव दृश्यते।।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः' इति देवयन्तो ह्येने मानुषाः प्रभरन्ति'।।६।।

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'प्र वां भरन् मानुषा देवयन्तः' अर्थात् 'तब देवताओं को चाहने वाले मनुष्य तुमको प्रकृष्ट रूप से अनुष्ठित करते हैं' **इति देवयन्तः हि एने** इस प्रकार ये दोनों देवों की इच्छा करने वाले हैं अतः **मानुषाः प्रभरन्ति** मनुष्य अनुष्ठित करते हैं।

सा० भा०—यच्छब्दस्य पूर्वपादेऽभिहितत्वात्तच्छब्दोऽस्मिन् पादेऽध्याहर्तव्यः। यस्मात्प्राण्युपकारार्थं प्रयतमाने स्थिते तस्मात्कारणाद्देवयन्तो यष्टव्यत्वेन देवानिच्छन्तो मानुषा ऋत्विग्यजमाना हे हविर्धाने वां युवां प्रभरन् प्रकर्षेण संपादयन्ति। एतत्पदार्थस्य याज्ञिकप्रसिद्धिद्योतनार्थो हिशब्दः।।

द्वितीयार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः' इति सोमो वै राजेन्दुः सोमायैवैने एतद् राज्ञ आसदेऽचीक्लृपत् ।।७।।

हिन्दी—(ऋचा के उत्तरार्ध को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) (हे हविर्धाने) तुम दोनों **स्वमु लोकं विदाने** अपने स्थान को जानते हुए **आसीदतम्** आसीन होवो और (तुम दोनों) **नः इन्दवे** हमारे सोम के लिए **स्वासस्थे भवतम्** अपने आसन पर बैठो—**इति** यहाँ **इन्दुः वै सोमो राजा** इन्दु शब्द सोम राजा का वाचक है। अतः इस (के पाठ)

(१) ऋ० १०.१३.२।

से **सोमाय राज्ञे एव** सोम राजा के लिए ही **आसदे** बैठने का स्थान **अचीक्लृपत्** कल्पित करता है।

सा० भा०—हे हविर्धाने उभे युवां प्रवर्तमाने सतो स्वमु लोकं स्वकीयमेव स्थाने विदाने ज्ञातवती आसीदतं तत्र स्थितिं प्राप्नुतं नोऽस्मदीयायेन्दवे सोमाय स्वासस्थे सशोभन आसने स्थितिं प्राप्ते भवतम्। अत्रेन्दुशब्देन सोमो राजोच्यते। अत एव तत्पाठेन सोमराजार्थमासद आसादनायावस्थानायाचीक्लृपत् कल्पितवान् भवति॥

षष्ठीमृचं विधत्ते—

(षष्ठी ऋचा)

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वच इति[1] ॥८॥

हिन्दी— (षष्ठी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'अधि द्वयोरदध उक्थ्यं वचः' अर्थात् 'दो (आच्छादनों) के मध्य उक्थ्य के योग्य वाणी को रखते हैं' इति यह (षष्ठं ऋचा का प्रथम पाद है।)

सा० भा०— हविर्धानाख्ययोः शकटयोरुपरि सोमस्यावस्थानाय गृहकारेण परितो वेष्टनमुपर्याच्छादनं यत्क्रियते तदेतदाच्छादनं छदिःशब्दवाच्यम्। तादृशे द्वे छदिषी द्वयोर्हविर्धानयोरवस्थाप्य तयोश्छदिषोरुपरि तृतीयं छदिर्हविर्धानयोरुदाहृतयोरवस्थाप्यते। तदेत् **तैत्तिरीया** आमनन्ति—'दण्डो वा ओदुम्बरस्तृतीयस्य हविर्धानस्य वषट्कारेणाक्षमाच्छिनद्यत्तृतीयं छदिर्हविर्धानयोरुदाह्रियते तृतीयस्य हविर्धानस्यावरुध्यै'[2] इति। तदेतत्तृतीयच्छदिरवस्थापनम्। एतन्मन्त्रप्रथमपादे प्रस्तूयते। यद्द्वयोश्छदिषोरध्यदधा उपरि तृतीयं छदिर्निधीयते तदिदमुक्थ्यं वच उक्थ्यशस्त्रनामकं यद्यज्ञियं कर्म तद्योग्यं वचो मन्त्रापाठस्तद्रूपमिदं छदिरिति च्छदिषः प्रशंसा॥

अस्मिन् पादे पूर्वभागस्यार्थो याज्ञिकप्रसिद्ध इत्यभिप्रेत्य हिशब्दयुक्तेन वाक्येन व्याचष्टे—

द्वयोर्ह्येतत्तृतीयं छदिरधि निधीयते ॥९॥

हिन्दी—(प्रथम पाद के पूर्वभाग का व्याख्यान—) **द्वयोः अधि** दोनों के ऊपर **एतत् तृतीयं छदि निधीयते** यह तृतीय छदि रखते हैं।

विमर्श—(१) अधिद्वय मन्त्र से दोनों हविर्धानों के ऊपर तीसरा आच्छादन रखा जाता है। वस्तुतः हविर्धान नामक दो शकट सोम को रखने के लिए होते हैं। जिन पर सोम को ढक कर रखने के लिए घेरा बनाकर घर के रूप में आच्छादित कर दिया जाता है। इस आच्छादन को छदि कहा जाता है।

उत्तरभागं व्याचष्टे—

---

(१) ऋ० १.८३.३। (२) तै०सं० ६.२.९.४।

'उक्थ्यं वच' इति यदाह यज्ञियं वै कर्मोक्थ्यं वचो यज्ञमेवैतेन समर्धयति ।।१०।।

हिन्दी—(प्रथम पाद के उत्तर भाग का व्याख्यान कर रहे हैं—) **'उक्थ्यं वचः' इति यदाह** (ऋचा के प्रथम पाद के उत्तर भाग में) जो यह 'उक्थ्यं वचः' कहा गया है उसमें **यज्ञियं वै कर्म उक्थ्यम्** यज्ञ-सम्बन्धी कर्म ही उक्थ्य है और **वचः यज्ञमेव** वाणी ही यज्ञरूप है। **एतेन समर्धयति** इसी (वाणी) द्वारा (यज्ञ को) समृद्ध करता है।

सा० भा०—उक्थ्यं वच इति यत्पदद्वयं मन्त्रो ब्रूते तेन पदद्वयेन शस्त्रपाठाख्यं यज्ञसंबन्धिकर्मोच्यते। तस्मादेतेन मन्त्रपाठेन यज्ञमेव समृद्धं करोति।।

द्वितीयतृतीयपादौ पठति—

यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः। असंयत्तां व्रते ते क्षेति पुष्यतीति ।।११।।

हिन्दी—(षष्ठ ऋचा के द्वितीय और तृतीय पाद को कह रहे हैं—) **'यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः'** जो दोनों (हविर्धान) नियतस्रुक्-युक्त होम में जोड़े के रूप से परस्पर युक्त हुए पूजित होते हैं। हे इन्द्र! **ते व्रते** तुम्हारे कर्म में **असंयतः** शान्त (अध्वर्यु) **क्षेति** निवास करता है तथा **पुष्यति** (उस कर्म को) पुष्ट करता है—**इति** यह (ऋचा का द्वितीय और तृतीय पाद है।

सा० भा०—यदा तृतीयं छदिर्निधीयते तदानीं ये हविर्धानेस्तस्ते उभे यतस्रुचा नियतस्रुग्युक्ते कृतहोमे हुतसोमे मिथुना मिथुनवत्परस्परयुक्ते सपर्यतः पूजिते भवतः। अयमर्थः- द्वयोरुपरि तृतीये छदिषि व्यवस्थापिते सति विवाहहोमादूर्ध्वं परस्परसंयुक्तौ मिथुररूपौ स्त्रीपुरुषौ यथा पूज्येते तथा हविर्धाने हविषा पूजिते भवत इति। संपूर्वो यतिधातुः सङ्ग्रामे वर्तते। तेन क्रौर्यगुणो लक्ष्यते। संयत्तः क्रूरः। असंयत्तः शान्तः। अत्रेन्द्रसंबोधनमध्याहर्तव्यम्। हे इन्द्र शान्तोऽध्वर्युस्ते व्रते त्वदीये कर्मणि क्षेति निवसति पुष्यति तच्च कर्म पुष्टं करोति।।

एतस्य तृतीयपादस्य तात्पर्यं दर्शयति—

यदेवादः पूर्वं यत्तवत्पदमाह तदेवैतेन शान्त्या शमयति ।।१२।।

हिन्दी—(षष्ठ ऋचा के तृतीयपाद का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **'यद् एव अदः पूर्वं यत्तवत्' पदम् आह** जो यह पहले 'यत्' शब्द से युक्त (संयत्त) शब्द कहा गया है, **तद् एव** वह (संयत्त) शब्द ही **एतेन शान्त्या शमयति** इस शन्ति द्वारा शान्त करता है।

सा० भा०—यत्तवत्पदवाच्यस्तृतीयः पादः। अत्र व्रतपदात् पूर्वं यदेवादो यदिदं यत्तवत्पदं यत्तशब्दोपेतं संयत्त इति पदं तेन युद्धवाचिना यत्क्रौर्यं द्योतितं तदेव कौर्यमेतेनासंयत्तः पुष्यतीति पदद्वयेन प्रतीतया शान्त्या होता शमयति।।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वत इत्याशिषमाशास्ते ।।१३।।

हिन्दी—(चतुर्थपाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं-) 'भद्राशक्तिर्यजमानाय सुन्वते' अर्थात् '(सोमसवन करने वाले) यजमान के लिए कल्याणकारी शक्ति प्राप्त होवे'—**इति** इससे **आशिषम् आशास्ते** आशीर्वाद को कहा गया है।

सा०भा०—'सुन्वते' सोमाभिषवं कुर्वते यजमानाय 'भद्रा' कल्याणरूपा शक्तिर्भवत्विति शेषः। अनेन पादेन प्रार्थनीयं प्रार्थयते।।

सप्तमीमृचं विधत्ते—

(सप्तमी ऋचा)

'विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविरिति'[1] विश्वरूपामन्वाह ।।१४।।

हिन्दी—(सप्तमी ऋचा कर विधान कर रहे हैं—) 'विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः' अर्थात् क्रान्तद्रष्टा (सविता देव) सम्पूर्ण रूपों को (अपने शरीर में) धारण करता है' **इति विश्वरूपाम् अन्वाह** इस विश्वरूप (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है।

सा०भा०—कविर्मेधावी मन्त्रप्रतिपाद्यो देवः सविता विश्वा रूपाणि शुक्लकृष्णादीनि बहूनि रूपाण्याभरणत्वेन प्रतिमुञ्चते स्वशरीरे स्थापयति। अत्र रूपशब्दस्य विश्वशब्दस्य च विद्यमानत्वाद् इयमृग्विश्वरूपशब्दाभिधेया।।

तस्या अनुवचने होतुः किंचिदितिकर्तव्यतामाह—

(सप्तमर्गनुवाचने रराटीक्षणविधानम्)

स रराट्यामीक्षमाणोऽनुब्रूयात् ।।१५।।

हिन्दी—(उस सप्तमी ऋचा के अनुवाचन में होता द्वारा किसी कर्त्तव्य-विशेष को कह रहे हैं—) **सः** वह (होता) **रराट्याम् ईक्षमाणः** रराटी (हविर्मण्डप के पूर्व द्वार पर लटकायी गयी कुश की माला) के देखते हुए **अनुब्रूयात्** अनुवाचन करें।

सा०भा०—हविर्धानमण्डपस्य चिकीर्षितस्य प्राच्यां द्वारि बन्धनीया दर्भमाला रराटी। द्वितीयार्थे सप्तमी। तां दर्भमालां पश्यन्ननुब्रूयात्।

अस्या ऋचो रराट्यनुरूपत्वं दर्शयति—

विश्वमिव हि रूपं रराट्याः शुक्लमिव च कृष्णमिव च ।।१६।।

हिन्दी—(सप्तमी ऋचा की रराटी से अनुरूपता को दिखला रहे हैं—) **रराट्याः** रराटी का **शुक्लमिव कृष्णमिव** सफेद और कृष्ण जैसा **विश्वमिव हि रूपम्** विविध रूप होता है।

---

(१) ऋ० ५.८१.२।

सा० भा०—दर्भमालाया अत्यन्तशुष्कास्तृणविशेषाः शुक्ला दृश्यन्ते। अशुष्कास्तु कृष्णा अतो विश्वमिव बहुविधमिव दर्भमालायाः स्वरूपं तेन विश्वा रूपाणीत्ययं मन्त्रोऽनुकूलः।।

होतुरेतद्वेदनं प्रशंसति—

विश्वं रूपमवरुन्ध आत्मने च यजमानाय च यत्रैवं विद्वानेतां रराट्यामीक्षमाणोऽन्वाह ।।१७।।

हिन्दी—(होता के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (याग) में **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतां रराट्याम् ईक्षमाणः** इस रराटी को देखते हुए **अन्वाह** (इस ऋचा का) अनुवाचन करता है, वह **आत्मने च यजमानाय च** अपने लिए और यजन करने वाले के लिए **विश्वं रूपम् अवरुन्धे** विविध रूप (वस्तु) को रोक लेता है।

सा० भा०—विश्वं प्रजापश्वादिविविधवस्तुस्वरूपम्।।

अष्टम्याऽनुवचनसमाप्तिं विधत्ते—

(अष्टमी परिधानीया ऋचा)

'परि त्वा गिर्वणो गिर' इत्युत्तमया परिदधाति[1] ।।१८।।

हिन्दी—(अष्टमी ऋचा द्वारा अनुवाचन के समापन को कह रहे हैं–) **'परि त्वा गिर्वणो गिर' इति उत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से (कर्म का) समापन करता है।

परिधानस्य कालं विधत्ते—

स यदैव हविर्धाने संपरिश्रिते मन्येताथ परिदध्यात् ।।१९।।

हिन्दी—(समापन-काल का विधान कर रहे हैं—) **सः** वह (होता) **यदैव** जब **हविर्धाने संपरिश्रिते** हविर्धान को अपने (स्थान रख कर) सम्यक् प्रकार से ढक दिया है, **मन्येत** ऐसा समझ ले **अथ** इसके बाद **परिदध्यात्** (अनुवाचन) का समापन करे।

सा० भा०—यस्मिन्नेव काले प्रवर्तिते द्वे शकटे संपरिश्रिते स्वस्थानेऽवस्थाप्य सम्यगाच्छादिते इति स होता मन्येत तत्तदानीं समापयेत्।।

होतुरेतद्वेदनं प्रशंसति—

अनग्नंभावुका ह होतुश्च यजमानस्य च भार्या भवन्ति यत्रैवं विद्वानेतया हविर्धानयोः संपरिश्रितयोः परिदधाति ।।२०।।

हिन्दी—(होता के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (कर्म) में **एवं**

---

(१) ऋ० १.१०.१२।

विद्वान् इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतया** इस (ऋचा) से **सम्परिश्रितयोः हविर्धानयोः** दोनों हविर्धानों को सम्यक् प्रकार से ढक देने पर **परिदध्याति** समापन करता है, वहाँ **होतुः च यजमानस्य च** होता और यजमान की **भार्याः अनग्नंभवुकाः भवन्ति** पत्नियाँ नग्नता से रहित (अर्थात् कपड़े पहने हुई) होती हैं।

सा० भा०—अनग्नंभावुका आच्छादनबाहुल्यसंपत्त्या नग्नत्वरहिताः॥

हविर्धानयोः परिश्रयणकालं ज्ञात्वा परिदध्यादित्युक्तं स कालः कथं ज्ञायत इत्याशङ्क्याऽऽह—

यजुषा वा एते संपरिश्रियेते यद्धविर्धाने यजुषैवैने एतत्परिश्रयन्ति ।।२१।।

हिन्दी—**यद् हविर्धाने** जो दोनों हविर्धान हैं **एते** ये **यजुषा वै संपरिश्रियेते** यजुष् द्वारा सम्यक् प्रकार से आच्छादित किये जाते हैं। अतः **एतत्** इसके पाठ से **यजुषा एव** यजुष् द्वारा ही **एने परिश्रयन्ति** इन दोनों को सभी ओर से आच्छादित करते हैं।

सा० भा०—यद्धविर्धाने ये शकटे विद्येते एते 'यजुषा वै' यजुर्मन्त्रेणैव[1] संपरिश्रिते भवतः, तदेव कथमिति? तदुच्यते—अध्वर्यव एते हविर्धाने यजुषैव परिश्रयन्तीत्येतत्प्रसिद्धमिति शेषः तदेतद् आपस्तम्बो दर्शयति—'विष्णोः पृष्ठमसीति।[2] तेषु मध्यमं छदिरध्यूहति। अरत्निविस्तारं नवायामम्'[3] इति॥

परिधानस्य कालं विधत्ते—

(परिधानविधिः)

तौ यदैवाध्वर्युश्च प्रतिप्रस्थाता चोभयतो मेथ्यौ निहन्यातामथ परिदध्यात् ।।२२।।

हिन्दी—(समापन-काल का विधान कर रहे हैं—) **अध्वर्युः च प्रतिस्थाता च** अध्वर्यु ओर प्रतिस्थाता **तौ** वे दोनों **उभयतः मेथ्यो निहन्यताम्** दोनों ओर से मेथी (एक विशेष प्रकार की लकड़ी) का निहनन करें **अथ** इसके बाद **परिदध्यात्** (होता) समापन करें।

सा० भा०—अध्वर्युर्दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीमीषाग्रभागावस्थापनकाष्ठं स्थापयति। तदेतच्छाखान्तरे श्रूयते—'दिवो वा विष्णवुत वा पृथिव्या इत्याशीः पदयर्चा[4] दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीं निहन्ति'[5] इति। उत्तरस्य तु प्रतिप्रस्थाता करोति। तदेतदुभयम् आपस्तम्बो दर्शयति—'दिवो वा विष्ण इत्यध्वर्युर्दक्षिणस्य हविर्धानस्य मेथीं[6] निहन्तीति

---

(१) तै०सं० १.२.१३.३। (२) तै०सं० ६.२.९। (३) आप०श्रौ० ११.८.१।
(४) तै०सं० १.२.१३.२। (५) तै०सं० ६.२.९.३।
(६) 'कर्णातदः कीलम्। तदनु तत्समीपे। मेथीमवष्टम्भनस्तम्भनम्'-इति वृत्तिः।

तस्यामीषां निनह्यति'—'एवमुत्तरस्य प्रतिप्रस्थाता विष्णोर्नुकमित्युत्तरं कर्णात्तर्दमनु'[१]—इति च। प्रतिप्रस्थाता विष्णोर्नु कमित्युक्त्वाऽस्य[२] हविर्धानस्य 'उत्तरं कर्णात्तर्दम्' अपि। तस्मिन् मेथीनिहननकाले परिदध्यात्'इति॥

यद्यप्ययं कालः परिश्रयणकालात् प्राचीनस्तथाऽपि तत्समीपवर्तित्वात् पूर्वविधिना सह नात्यन्तं विरोध इत्येतद्दर्शयति—

अत्र हि ते संपरिश्रिते भवतः ॥२३॥

हिन्दी—**अत्र हि** इसी समय **ते संपरिश्रिते भवतः** वे दोनों (हविर्धान) आच्छादित किये जाते हैं।

सा०भा०—अत्र मेथीनिहननदेशे तत्समीपवर्तिनि काले परिश्रयणं क्रियते॥

ऋक्संख्यादिकं दर्शयति—

ता एता अष्टावन्वाह रूपसमृद्धा, एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूप-समृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति। तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां, ता द्वादश संपद्यन्ते, द्वादश वै मासाः संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिः प्रजापत्यायतनाभिरेवाऽऽभी राध्नोति य एवं वेद, त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह यज्ञस्येव तद्बसौं नह्यति, स्थेम्ने बलायाविस्रंसाय ॥२४॥

हिन्दी—(इस कर्म में ऋचाओं की संख्या इत्यादि को दिखला रहे हैं—) **'ताः एताः रूपसमृद्धाः' अष्टौ अन्वाह** (होता) उन पूर्वोक्त इन (कर्म के अनुरूप) रूप से समृद्ध आठ (ऋचाओं) का अनुवाचन करता है। **यद् रूपसमृद्धम्** जो यह (यज्ञ के) रूप से समृद्ध है, **एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम्** यह ही यज्ञ की समृद्धि है **यत् क्रियमाणं कर्म** जो किये जाते हुए कर्म को **ऋग् अभिवदति** ऋचा कहती है। **तासाम्** उन (आठ ऋचाओं) में **त्रिः प्रथमाम् त्रिः उत्तमाम् अन्वाह** तीन बार प्रथम (ऋचा) का और तीन बार अन्तिम (ऋचा) का अनुवाचन करता है । **ताः द्वादश सम्पद्यन्ते** इस प्रकार वे (ऋचाएँ) बारह हो जाती हैं। **द्वादश वै मासा संवत्सरः** संवत्सर बारह मासों वाला होता है और **संवत्सरः प्रजापतिः** संवत्सर प्रजापतिरूप है। अतः **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **प्राजापत्यायतनाभिरेव** प्रजापति के आयतनों (स्थानों) से ही **अभी राध्नोति** (इस कर्म को) समृद्ध करता है। **त्रिः प्रथमां त्रिः उत्तमाम् अन्वाह** तीन बार प्रथम और तीन बार उत्तम (ऋचा) का अनुवाचन करता है **तद्** उससे **यज्ञस्यैव बसौं** यज्ञ के दोनों (आदि वाली और अन्त वाली) गाठों को **स्थेम्ने** स्थिरता के लिए, **बलाय** बल के लिए और

---

(१) आप०श्रौ० ११.७.३.४। (२) तै०सं० १.२.१३.३।

अविस्रंसाय शिथिल न होने के लिए **नह्यति** बाँध देता है।

सा० भा०—पूर्ववद्[१] व्याख्येयम्।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य पञ्चमोऽध्याये तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चम अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अथाग्नीषोमप्रणयनीया ऋचो विधातुमादौ प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(अग्नीषोमयोः प्रणयनम्)

(तत्र अग्नीषोमप्रणयनीयर्चां प्रैषमन्त्रः)

अग्नीषोमाभ्यां प्रणीयमानाभ्यामनुब्रूहीत्याहाध्वर्युः ॥१॥

हिन्दी—(अग्नीषोम के प्रणयनीय ऋचाओं का विधान करने के लिए प्रैष मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) हे होता! **प्रणीयमानाभ्याम् अग्नीषोमाभ्याम्** ले जाये जाते हुए अग्नि और सोम के लिए (अनुरूप ऋचाओं का) **अनुब्रूहि** अनुवाचन करो, **इत्यध्वर्युः आह** इस प्रकार अध्वर्यु (प्रैष मन्त्र को) कहता है।

सा० भा०—योऽयमग्निः प्राचीनवंशाख्यायाः शालाया मुखे द्वारभागे पूर्वसिद्धाहवनीयरूपेणावतिष्ठते तस्माच्छालामुखीयादग्नेः सकाशात् कियानप्याग्नीध्रीये धिष्ण्ये नेतव्यः। सोमश्च पूर्वं शालामुखीयसमीपेऽवस्थितस्तेनाग्निना सहाऽऽनीतः सन् पुनरपि हविर्धानमण्डपे नेतव्यः। तदिदमग्नीषोमप्रणयनं तदर्थं होतारं प्रत्यध्वर्युः प्रैषमन्त्रं ब्रूयात्। तदेतत् सर्वम् **आपस्तम्ब** आह—'शालामुखीये प्रणयनीयमिध्ममादीप्य सिकताभिरुपयभ्याग्नीषोमाभ्यां प्रणीयमानाभ्यामनुब्रूहीति संप्रेष्यति'[२] इति। अग्निप्रथमाः सोमप्रथमा वा प्राचीमभिप्रव्रजन्त्याग्नीध्रीयेऽग्निं प्रतिष्ठाप्येति[३] स च सोमो जिगाति गातुविदित्यपरया

---

(१) 'शिरो वा हविर्धानम्'—इत्यादि शत०ब्रा० ३.५.३। तैत्तिरीयकेऽपि तथैव विहितम् (६.२.९-११) एतदीय मन्त्राः अपि तत्रैव श्रुताः (१.२.१३)। 'हविर्धाने प्रवर्त्तयन्ति'—इत्यादि आश्व०श्रौ० ४.९.१-९। 'प्रोक्ष्य बर्हिः'—इत्यादि आप०श्रौ० ११.६-८। 'अग्निं प्रणीय सदोहविर्धानाग्नीध्रहोतृधिष्ण्यान् यथोक्तम्'—इत्यादि च कात्या०श्रौ० ६.१०.१४।

(२) आप०श्रौ० ११.१७.२।

(३) आप०श्रौ० ११.३.४।

द्वारा[1] हविर्धानं राजानं प्रपादयतीति[2] च॥

अग्नीषोमप्रणयनीयास्वृक्षु प्रथमामृचं विधत्ते—

(अग्नीषोमप्रणयनीयर्ग्विधानम्)

(तत्र प्रथमा ऋचा)

साऽवीर्हि देव प्रथमाय पित्र इति सावित्रीमन्वाह ।।२।।

हिन्दी—(अग्नि और सोम के प्रणयनीय ऋचाओं में प्रथम ऋचा को कह रहे हैं—) 'साऽवीर्हि देव प्रथमाय पित्रे' **इति सावित्रीम् अन्वाह** इस सविता देवता वाली (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—सेयं शाखान्तरगतत्वात्[3] सूत्रकारेण पठिता।[4] तस्यास्तृतीयपादेऽस्मभ्यं सवितरिति श्रुतत्वादियं सावित्री॥

अथ वैयधिकरण्यमाशङ्क्य समाधत्ते—

तदाहुर्यदग्नीषोमाभ्यां प्रणीयमानाभ्यामनुवाचाऽऽहाथ कस्मात् सावित्री-मन्वाहेति सविता वै प्रसवानामीशे सवितृप्रसूता एवैनौ तत्प्रणयन्ति तस्मात् सावित्रीमन्वाह ।।३।।

हिन्दी—(इस विषय में वैयधिकरण्य की आशङ्का करके उसका समाधन कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में कुछ (ब्रह्मवादी शङ्का करते हुए) कहते हैं—(जब अध्वर्यु प्रैष कहता है कि) **प्रणीयमानाभ्याम् अग्नीषोमाभ्याम्** लाये जाते हुए अग्नि और सोम के लिए (अभिलक्ष्य करके) **अनुवाच** अनुवाचन करो, **अथ कस्मात्** तब किस कारण से **सावित्रीम् अन्वाह** सविता देव से सम्बन्धित (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है? (समाधान) **सविता वै प्रसवानाम् ईशः** सविता ही प्रेरणा देने वालों का स्वामी है। **तत्** इसके पाठ से **सवितृप्रसूता एव** सविता द्वारा प्रेरित करने से ही **एनौ** इन दोनों (अग्नि और सोम) का प्रणयन करते हैं **तस्मात्** इसी कारण **सवित्रीम् अन्वाह** (होता) सविता देव वाली (ऋचा) का अनुवाचन करता है)।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।

द्वितीयां विधत्ते—

---

(१) 'उभयतोद्वारं हविर्धानं भवित'—इति शत०ब्रा० ३.५.३.७।

(२) आप० ११.३.८। (३) अथर्व०सं० ७.१४.३।

(४) तद्यथा— सावीर्हि देव प्रथमाय पित्रे वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै।
अथास्मभ्यं सवितर्वार्याणि दिवोदिव आ सुवा भूरि पश्वः॥
(आश्व०श्रौ० ४.१०.१)

(द्वितीया ऋचा)

''प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति' ब्राह्मणस्पत्यामन्वाह[1] ।।४।।

हिन्दी—(द्वितीय ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'प्रैतु ब्रह्मणस्पति:' **इति ब्राह्मणस्पत्याम् अन्वाह** इस ब्रह्मणस्पति देवता वाली (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है।

अत्रापि वैयधिकरण्यमाशङ्क्य समाधत्ते—

तदाहुर्यदग्नोषोमाभ्यां प्रणीयमानाभ्यामनुवाचाऽऽहाथ कस्माद् ब्राह्मणस्पत्यामन्वाहेति ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मैवाऽऽभ्यामेतत् पुरोगवमकर्ण वै ब्रह्मण्वद्रिष्यति ।।५।।

हिन्दी—(इस ऋचा के विषय में भी वैयधिकरण्य की शङ्का करके इसका समाधान दे रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में कुछ ब्रह्मणवादी (शङ्का करते हुए) करते हैं—(अध्वर्यु प्रैष द्वारा कहता है कि) **प्रणीयमानाभ्याम् अग्नीषोमाभ्याम्** लाये जाते हुए अग्नि और सोम को अभिलक्ष्य करके **अनुब्रूहि** अनुवाचन करो **अथ कस्मात्** तो किस कारण से **ब्राह्मणस्पत्याम् अन्वाह** ब्राह्मणस्पति से सम्बन्धित ऋचा का अनुवाचन करता है? (समाधान—) **ब्रह्म वै बृहस्पतिः** बृहस्पति ही ब्रह्म रूप है। **तत्** इस (पाठ) से **ब्रह्म वै** ब्रह्म को ही **आभ्यां पुरोगवम् अकर्ण** इन दोनों (अग्नि और सोम) का नेता करता है **ब्रह्मण्वद् न रिष्यति** ब्राह्मण की सहायतायुक्त (कर्म) का विनाश नहीं होता ।

सा० भा०—पुरोगवं ब्राह्मणमेव पुरोगन्तारमकः करोति ब्राह्मणोपेतस्य कर्मणो विनाशाभावात् तद्युक्तम्।।

द्वितीयपादमुपजीव्य तामृचं प्रशंसति—

प्र देव्येतु सूनृतेति ससूनृतमेव तद्यज्ञं करोति तस्माद् ब्राह्मणस्पत्यामन्वाह ।।६।।

हिन्दी—(द्वितीय पाद को उपजीवन करके उस ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) 'प्र देव्येतु सूनृता' **इति** इस (ऋचा के द्वितीय पाद) से **यज्ञं ससुनृतमेव करोति** यज्ञ को सत्यवचन (प्रियवचन) से सम्पन्न करता है। **तस्मात्** इसी कारण **ब्राह्मणस्पत्याम् अन्वाह** होता ब्रह्मणस्पति देवता वाली (ऋचा) का अनुवाचन करता है।

सा० भा०—सूनृता प्रियवचनरूपा वाग्देवी प्रैतु ब्रह्मण सह पुरो गच्छत्विति द्वितीयपादे श्रूयते तत्पाठेन यज्ञं ससूनृतमेव प्रियवचनयुक्तमेवं करोति।।

तृतीयाद्यास्तिस्र ऋचो विधत्ते—

---

(१) ऋ० १.४०.३। 'पत्यन्ताण्ण्यः'-इति पा०सू० ४.१.८५।

(तृतीयाद्यास्तिस्त्र ऋचः)

'होता देवो अमर्त्यः'[१] इति तृचमाग्नेयं गायत्रमन्वाह सोमे राजनि प्रणीयमाने ।।७।।

हिन्दी—(तृतीय से लेकर पञ्चमपर्यन्त तीन ऋचाओं का विधान कर रहे हैं–) 'होता देवो अमर्त्यः' **इति आग्नेयं गायत्रं तृचम्** इस अग्नि देवता वाले गायत्री छन्दस्क तृच का **सोमे राजनि प्रणीयमाने** सोम राजा के ले जाये जाने पर **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—जुहोत्यस्मिन्नग्नाविति होताऽग्निः। अतो होतृशब्दश्रवणाद् इदमाग्नेयम्।।

आग्नेयस्य सोमप्रणयनानुकूल्यं दर्शयति—

सोमं वै राजानं प्रणीयमानमन्तरेणैव सदो हविर्धानान्यसुरा रक्षांस्य-जिघांसंस्तमग्निर्मायया‌ऽत्यनयत् ।।८।।

हिन्दी—(अग्नि की सोम प्रणयनानुकूलता को दिखला रहे हैं—) **सदोहविर्धानानि अन्तरेण** सदस् और हविर्धानों के मध्य में **प्रणीयमानं सोमं राजानम्** लाये जाते हुए सोम राजा को **असुराः रक्षांसि जिघांसन्** असुरों और राक्षसों ने विनष्ट करने की इच्छा किया, **तम् अग्निः मायया अत्यनयत्** उस (सोम) को अग्नि देव अपनी माया से ले आये (अतः सोम प्रणयन में अग्निदेवताक ऋचा का अनुवाचन युक्तिसङ्गत है)।

सा० भा०—यदिदं सदोनामकं मण्डपं यच्च हविर्धाननामकं मण्डपं शकटद्वयं च तान्यन्तरेण तेषां मध्येऽसुराश्च रक्षांसि च नीयमानं सोमं हन्तुमैच्छन्। तं भीतं सोममग्निः स्वकीयया मायया तानसुरांस्तानि रक्षांस्यतिक्रम्य नीतवान्। तस्मात् सोमप्रणयनेऽप्याग्नेयस्य योग्यत्वमस्ति। असुराणां रक्षसां चावान्तरजातिभेदो द्रष्टव्यः।।

प्रथमाया[२] ऋचो द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

पुरस्तादेति माययेति मायया हि स तमत्यनयत् तस्मादस्याग्निं पुरस्ताद्धरन्ति ।।९।।

हिन्दी—(इस तृच की प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'पुरस्तदेति मायया' अर्थात् माया से (अग्नि) आगे चलता है—इति यहाँ क्योंकि **मायया हि सः तम् अत्यनयत्** माया से ही वह (अग्नि) उस (सोम) को ले आया, **तस्मात्** इसी कारण **अग्निम् अस्य पुरस्ताद् हरन्ति** अग्नि को इस (सोम) के आगे (आग्नीध्र पर्यन्त) (ऋत्विक् लोग) ले आते हैं।

---

(१) ऋ० ३.२७.७।

(२) यदुक्तं 'तृतीयाद्यास्तिस्त्र ऋचः'–इति तत्र य प्रथमा, तस्या इति भावः ।

सा० भा०—मायया सहितोऽग्निः पुरस्ताद् गच्छतीति द्वितीयपादे श्रूयते। यस्मात् सोऽग्निर्मायया शक्त्या भीतिस्थानमतिलङ्घ्य तं सोममनयत् तस्मादु तस्मादेव कारणादस्य सोमस्य पुरस्तादाग्नीध्रपर्यन्तमग्निमृत्विजो हरन्ति।।

षष्ठीमारभ्य चतस्र विधत्ते—

(षष्ठीमारभ्य चतस्र ऋचः)

'उप त्वाऽग्ने दिवे' 'उप प्रियं पनिप्नतमिति तिस्रश्चैकां चान्वाह ।।१०।।

हिन्दी—(षष्ठी से लेकर नवमी तक चार ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'उप त्वाऽग्ने दिवे' **इति तिस्रः च** इन तीन और 'उप प्रियं पनिप्नतम्' **एकां च** एक (ऋचा) का (इस प्रकार चार ऋचाओं का) **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—'उप त्वाऽग्ने' इत्यादिकाः क्रमेणाऽऽम्नातास्तिस्र[1] उप प्रियमित्येका[2]।।

उक्तस्य तृचस्योक्तायाश्चैकस्या अनुवचनमुपपादयति—

ईश्वरौ ह वा एतौ संयन्तौ यजमानं हिंसितोर्यश्चासौ पूर्व उद्धृतो भवति यमु चैनमपरं प्रणयन्ति तद्यत्तिस्रश्चैकां चान्वाह संजानानावेवैनौ तत्संगमयतिप्रतिष्ठायामेवैनौ तत्प्रतिष्ठापयत्यात्मनश्च यजमानस्य चाहिंसायै ।।११।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त तृच और एक ऋचा के अनुवाचन को उपपादित कर रहे हैं—) **यः चासौ पूर्वः उद्धृतः भवति** जो यह (अग्नि) पहले लाकर (उत्तरवेदि पर) स्थापित की जाती है और **यमु चैनं अपरं प्रणयन्ति** जिस इस (अग्नि) को बाद में (आग्नीध्र धिष्ण्य के प्रति) ले आते हैं। **एतौ संयन्तौ** ये दोनों (अग्नियाँ) परस्पर (अपनी आहुति के लिए) युद्ध करती हुई **यजमानं हिंसितोः ईश्वरौ** यजमान को विनष्ट करने में समर्थ होती हैं। **तद् यत् तिस्रश्च एकां च** तो जो तीन और एक (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है **तत्** उस (ऋचा के पाठ से) **संजानानौ एव एनौ** इन दोनों को परपर संयुक्त करके **सङ्गमयति** एक दूसरे से जोड़ता है। **तत्** इन (ऋचाओं से अनुवाचन) से **एनौ प्रतिष्ठायाम्** इन दोनों (अग्नियों) को (उनके) अभीष्ट स्थान (उत्तरवेदि और आग्नीध्र) पर (होता) **आत्मनः च यजमानस्य च** अपने और यजन करने वाले के **अहिंसायै** हिंसा के निवारण के लिए **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—यश्चासावग्निः पूर्वमुद्धृतः पूर्वभावी सन्नुत्तरवेद्यामानीय स्थापितः। यमप्यपरमग्निमिदानीमाग्नीध्रधिष्ण्यं प्रति प्रणयन्ति। एतावुभावग्नी संयन्तौ ममैवाऽऽहुति-

---

(१) ऋ० १.१.७-९। (२) ऋ० ९.६७.२९।

रित्येवं सङ्ग्रामं कुर्वन्तौ[१] यजमानं हिंसितोरीश्वरौ हिंसितुं समर्थौ। तथा सति यदि तिस्रश्चैकां चानुब्रूयात् तदानीमेतौ द्वावप्यग्नी संजानानावेव परस्परैकमत्ययुक्तावेव कृत्वा संगमयत्यन्योन्यं संयोजयति। तिसृष्वृक्षु नमो भरन्त एमसीति पूर्वोद्धृतस्याग्नेर्नमस्कारः श्रूयते। एकस्यामृच्यगन्म बिभ्रतो नम इति प्रणीयमानस्याग्नेर्नमस्कारः श्रुतस्तेन तुष्टौ परस्परद्वेषं परित्यजतः। तत्तथा सत्येतावुभावग्नी प्रतिष्ठायामेवोत्तरवेद्याग्नीध्रलक्षणस्वस्वोचितस्थान एव प्रतिष्ठापयति। तच्च होतुरात्मनश्च यजमानस्य च हिंसापरिहाराय भवति।

दशमीमृचं विधत्ते—

(दशमी ऋचा)

अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो'[२] इत्याहुत्यां हूयमानायामन्वाह।।१२।।

हिन्दी—(दशमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'अग्नि जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो' **इत्यहुत्यां हूयमानायाम्** आहुति देते समय (होता) इस मन्त्र का **अन्वाह** अनुवाचन करता है।

सा० भा०—आहुतिस्तु यजुर्वेदविहिता। तयैवेत्यृचाऽऽग्नीध्रे जुहोति[३] 'सुवर्गस्य लोकस्याभिजित्यै'[४] इति। सा चाऽऽपस्तम्बेन स्पष्टीकृता—'आग्नीध्रीयेऽग्निं प्रतिष्ठाप्याग्ने नयेत्यर्धमाज्यशेषस्य जुहोति'[५] इति। तदाहुतिकाले होताऽग्ने जुषस्वेत्येतामनुब्रूयात्।।

तामेतां प्रशंसति—

अग्नय एव तज्जुष्टिमाहुतिं गमयति ।।१३।।

हिन्दी—(इस ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तत्** इस ऋचा के पाठ से **अग्नये एव** अग्नि के लिए ही **जुष्टिम् आहुतिम्** जुषस्व शब्द से युक्त आहुति को **गमयति** देता है।

सा० भा०—जुषस्वेति मन्त्रेऽभिधानादाहुतिमग्नेः प्रियं संपादयति।।

एकादशीमारभ्य तिस्र ऋचो विधत्ते—

(एकादशीमारभ्य त्रिस्र ऋचः)

'सोमो जिगाति गातुविदिति'[६] तृचं सौम्यं गायत्रमन्वाह सोमे राजनि प्रणीयमाने, स्वयैवैनं तद्देवतया स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ।।१४।।

---

(१) 'संयन्तौ स्पर्धमानौ'–इति गोविन्दस्वामी। (२) ऋ० १.१४४.७।

(३) 'अग्ये नय सुपथेति नयवती'–इति तत्र सायणः। सा च ऋक् ऋ० १.१८९.१; तै०सं० १.४.४३ १; वा०सं० ५.३६, ७.४३.४०.१६।

(४) तै०सं० ६.६.१.१। (५) आप०श्रौ० ११.१७.४।

(६) ऋ० ३.६२.१३-१५।

हिन्दी—(एकादशी ऋचा से लेकर त्रयोदशी ऋचा तक तीन ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) **सोमे राजनि प्राणीयमाने** सोम राजा को ले आते समय 'सोमो जिगाति गातुविद्' **इति सौम्यं गायत्रं तृचम्** इस सोम देवता वाली गायत्री छन्दस्क तीन ऋचाओं का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है। **तत्** इस (ऋचा के पाठ) से **स्वया एव देवतया** अपने ही देवता से और **स्वेन छन्दसा** अपने ही छन्द से **एनम्** इस (सोम) को **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—मन्त्रे सोमदेवताया एव प्रतिपाद्यत्वात् सोमात्मकस्येयं स्वकीयदेवता गायत्र्या सोमस्य द्युलोकादाहृतत्वात्[1] छन्दोऽपि स्वकीयम्॥

अस्य तृचस्यान्तिमं पादमादाय व्याचष्टे—

सोमः सधस्थामासददित्यासत्स्यन्हि स तर्हि भवति ॥१५॥

हिन्दी—(इस तृच के अन्तिम पाद 'सोमः सधस्थामासद्' की व्याख्या कर रहे हैं—) 'सोमः सधस्थमासत्' अर्थात् सोम (हविर्धान रूप) सहावस्थान को प्राप्त करके बैठता है'—**इति** इस पाठ के समय **सः** वह (सोम) **तर्हि आसत्स्यन् भवति** तब (हविर्धान के) समीप अवस्थित होता है।

सा० भा०—अयं सोमः सधस्थं हविर्धानाभ्यां सहावस्थानप्रदेशं प्राप्याऽऽसदासन्नोऽभूत्। यस्मात् स सोमस्तर्हि तत्पादपाठकाल आसत्स्यन्भवति हविर्धानदेशस्याऽऽसन्नतां करिष्यन् वर्तते तस्मात् सधस्थमासददिति युक्तम्॥

अस्य तृचस्यानुवचनदेशं विधत्ते—

तदतिक्रम्यैवानुब्रूयात् पृष्ठत एवाऽऽग्नीध्रं कृत्वा ॥१६॥

हिन्दी—(इस तृच के अनुवाचन के स्थान का विधान कर रहे हैं—) **तद् अधिक्रम्य** उस (आग्नीध्र स्थान) का अतिक्रमण करके **आग्नीध्रं पृष्ठतः एव कृत्वा** आग्नीध्र वेदि को पीछे की ओर करके **अनुब्रूयात्** (होता) अनुवाचन करे।

सा० भा०—पूर्वोक्तायामाहुत्यामध्वर्युणा हूयमानायां होता तृचमुपक्रम्यानुब्रुवाणो गच्छंस्तदाग्नीध्रस्थानमतिक्रम्यैवाऽऽग्नीध्रं पृष्ठत एव कृत्वा तं पादमनुब्रूयात्। अतिक्रम्येत्यस्यैव पृष्ठतः कृत्वेति व्याख्यानम्॥

चतुर्दशीमृचं विधत्ते—

(चतुर्दशी ऋचा)

'तमस्य राजा वरुणस्तमश्विनेति'[2] वैष्णवीमन्वाह ॥१७॥

---

(१) द्र० तै०ब्रा० ३.२.१.१।		(२) ऋ० १.१५६.४।

हिन्दी—(चतुर्दशी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना' **इति वैष्णवीम् अन्वाह** इस विष्णुदेवता वाली (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—व्रजं च विष्णुरिति चतुर्थपादे श्रुतत्वात्॥

अवशिष्टं पादत्रयं पठति—

क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः। दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुत इति ॥१८॥

हिन्दी—(अवशिष्ट तीन पादों को कह रहे हैं। पूरी ऋचा का अर्थ इस प्रकार हैं—) **अस्य राजा** इस (उपनिबद्ध सोम) का राजा **वरुणः** वरुण **तम्** उस (यज्ञ) की (सेवा करता है)। **अश्विना मारुतस्य वेधसः** दोनों अश्विन्, वायु और ब्रह्म **क्रतुं सचन्ते** यज्ञ की सेवा करते हैं। **दक्षम्** (देवताओं में) कुशल **विष्णुः** विष्णु ने **उत्तमम् अहर्विदम्** श्रेष्ठ और दिन को जानने वाले सोम को **दाधार** (प्रयणयन-काल में) धारण किया है और **सखिवान्** (सोम से) मैत्री सम्पन्न होकर **अपोर्णुते** (सोम के प्रवेश द्वार को) खोलते हैं।

सा० भा०—अस्या ऋचोऽयमर्थः—अस्य सोमस्योपनद्धस्य राजा स्वामी वरुणस्तं क्रतुं यागं सचत इत्यध्याहारः। अश्विना उभावश्विनौ देवौ मारुतो वायुर्वेधा ब्रह्मा च क्रतुं सचन्त समवयन्ति। मारुतस्य वेधस इति प्रथमार्थे षष्ठ्यौ। विष्णुर्देवो दक्षं देवानां तृप्तौ कुशलमत एवोत्तममहर्विदं श्रुत्या दिनाभिज्ञं सोमं दाधार प्रणयनकाले धृतवान्। तथा विष्णुः सखिवान् सोमरूपेण सख्या युक्ततया तद्वान् व्रजं सोमस्थानं हविर्धानमपोर्णुतेऽपगताच्छादनं करोति सोमस्य प्रवेशाय द्वारं विवृणोतीत्यर्थः। विष्णुर्दाधारापोर्णुते चेति समुच्चयार्थश्चकारः॥

उक्तमन्त्रतात्पर्यं विस्पष्टयति—

विष्णुर्वै देवानां द्वारपः स एवास्मा एतद्द्वारं विवृणोति ॥१९॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त मन्त्र के तात्पर्य को स्पष्ट कर रहे हैं—) **विष्णुर्वै देवानां द्वारपः** विष्णु ही देवताओं के द्वारपाल हैं। **सः एव** वे (विष्णु) ही **अस्मै** इस (सोम) के लिए **एतद्द्वारं विवृणोति** इसके द्वार को खोलते हैं।

पञ्चदशीमृचं विधत्ते—

(पञ्चदशी ऋचा)

'अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवासीति'[1] प्रपाद्यमानेऽन्वाह ॥२०॥

हिन्दी—(पञ्चदशी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **प्रपाद्यमाने** (सोम के हविर्धान के) समीप में प्राप्त होने पर (आ जाने पर) (होता) 'अन्तश्च प्रागा अदतिर्भवासि'—इति

---

(१) ऋ० ८.४८.२।

अन्वाह इस (ऋचा) का अनुवाचन करता है।

सा० भा०—सोमे हविर्धानं प्राप्यमाणे सत्येतामृचमनुब्रूयात्॥

षोडशीमृचं विधत्ते—

(षोडशी ऋचा)

'श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतमित्यासन्ने'[1] ॥२१॥

हिन्दी—(षोडशी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **आसन्ने** (सोम के हविर्धान के) सन्निकट होने पर 'श्येनो न योनिं सदनं धिया कृतम्' अर्थात् श्येन पक्षी के समान (यजमान और ऋत्विक् की) वृद्धि से सम्पादित गृह (हविर्धान को सोम) प्राप्त करता है, **इति** इस (ऋचा का होता अनुवाचन करता है)।

सा० भा०—आसन्ने हविर्धानं प्रति सोमे समीपवर्तिनि सत्येतामनुब्रूयात्। नकार उपमार्थः। यथा श्येनः पक्षी तत्र संचारं कृत्वा योनिं स्वस्थानं प्राप्नोति तथा धिया यजमानर्त्विग्बुद्ध्या कृतं संपादितं सदनं हविर्धानं प्रति सोम एषतीति वक्ष्यमाणेन संबन्धः॥

द्वितीयपादमनुवदति—

हिरण्ययमासदं देव एषतीति ॥२२॥

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीय पाद को कह रहे हैं—) 'हिरण्ययमासदं देव एषति' अर्थात् सुवर्ण के समान आसन पर (सोम) बैठते हैं'–**इति** यह (ऋचा का द्वितीय पाद है)।

सा० भा०—हिरण्यं सुवर्णसदृशं कृष्णाजिनमासदमुपवेशनयोग्यं सोमो देव एषति प्राप्नोति। इषु गताविति धातुः॥[2]

हिरण्ययशब्दं व्याचष्टे—

हिरण्मयमिव ह वा एष एतद्देवेभ्यश्छदयति यत्कृष्णाजिनम् ॥२३॥

हिन्दी—(हिरण्मय शब्द का व्याख्यान कर रहे हैं—) **यत् कष्णाजिनम्** जो कृष्ण मृग का चर्म है वह **हिरण्ययम् इव** सुवर्ण के समान होता है। **एतद् देवेभ्यः छदयति** इसी को देवताओं के लिए (अध्वर्यु) बिछाता है।

सा० भा०—हविर्धानस्य शकटस्योपरि सोमस्थापनार्थे कृष्णाजिनमास्तृणन्ति। तथा च **आपस्तम्ब** आह—'दक्षिणस्य हविर्धानस्य नीडे पूर्ववत् कृष्णाजिनास्तरणं राज्ञः सादनम्'[3] इति। यदेतत्कृष्णजिनमस्ति तदेतद्धिरण्मयमिव ह वै सुवर्णनिर्मितासनमिव देवार्थमेषोऽध्वर्युश्छदयत्यास्तृणाति। तस्मान्मन्त्रे हिरण्ययमित्युपपन्नम्॥

---

(१) ऋ० ९.७१.६। (२) छन्दसि विकरणव्यत्ययः- पा०सू० ३.१.८५।
(३) आप०श्रौ० ११.१७.१०।

एतन्मन्त्रविधिमुपसंहरति—

तस्मादेतामन्वाह ।।२४।।

हिन्दी—(इस मन्त्र-विधि का उपसंहार कर रहे हैं—) **तस्माद्** इसी कारण **एताम्** इस (ऋचा) का होता **अन्वाह** अनुवाचन करता है।

सा० भा०—यस्मादासन्नदेशस्यानुकूलेयमृक्तस्मादेतामनुब्रूयात्।।

सप्तदश्या समापनं विधत्ते—

(परिधानीया सप्तदशी ऋचा)

'अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा' इति[1] वारुण्या परिदधाति ।।२५।।

हिन्दी—(सप्तदशीं ऋचा से कर्म के समापन को कह रहें हैं—) 'अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदाः' **इति वारुण्या परिदधाति** इस वरुण देवता वाली (ऋचा) से (अनुवाचन करके) समापन करता है।

सा० भा०—चतुर्थपादे 'वरुणस्य व्रतानि' इति श्रवणादियं वारुणी।।

तस्याः सोमसम्बन्धं दर्शयति—

वरुणदेवत्यो वा एष तावद्यावदुपनद्धो यावत्परिश्रितानि प्रपद्यते स्वयैवैनं तद्देवतया स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ।।२६।।

हिन्दी—(इस ऋचा के सोम से सम्बन्ध को कह रहे हैं—) **यावद् उपनिबद्धः** जब तक (सोम) बँधा रहता है और **यावत् परिश्रितानि प्रपद्यते** जब तक (हविर्धान की) समीपता को प्राप्त करता है **तावद् एषः** तब तक यह (सोम) **वरुणदेवत्यः वै** वरुण देवता वाला रहता है। **तत्** इस (ऋचा के पाठ) से (उस सोम को) **स्वया एव देवतया** अपने ही देवता से और **स्वेन छन्दसा** अपने ही छन्द से **समर्धयति** (होता) समृद्ध करता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

अथात्र नैमित्तिकमृगन्तरं विधत्ते—

(नैमित्तिकान्या ऋचा)

तं यद्युप वा धावेयुरभयं वेच्छेरन्नेवा वन्दस्य वरुणं बृहन्तमित्येतया परिदध्यात् ।।२७।।

हिन्दी—(अब अन्य नैमित्तिक ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **तम्** उस (यजमान) के समीप **यदि उपधावेयुः** यदि (उसके) अन्य बान्धव (आश्रय के लिए) जावे अथवा

(१) ऋ० ८.४२.१।

अभयं वा इच्छेरन् (शत्रुओं से भयभीत होकर उससे) अभय की इच्छा करें तो 'एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तम्' **इति एतया परिदध्यात्** इस (ऋचा) से (होता) समापन करें।

सा० भा०—तं यजमानमितरे बान्धवो जीवार्थिनो यद्युप वा धावेयुः प्राप्नुयुः। अथवा वैरिभ्यो भीता अभयं यजमानसमीपे यदीच्छेरंस्तदानीमेवा वन्दस्व[1] इत्येतया परिदध्यात्॥

होतुरेतद्वेदनप्रशंसापूर्वकमेतद्विधिमुपसंहरति—

यावदभ्यो हाभयमिच्छति यावद्भ्यो हाभ्यां ध्यायति तावद्भ्यो हाभयं भवति यत्रैवं विद्वानेतया परिदधाति; तस्मादेवं विद्वानेतयैव परिदध्यात् ।।२८।।

हिन्दी—(होता के इस ज्ञान की प्रशंसा करते हुए विधि का उपसंहार कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (यज्ञ) में **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतया परिदधाति** इस (ऋचा) से समापन करता है, वह **यावद्भ्यः ह अभयं ध्यायति** जितने लोगों के लिए अभय का ध्यान करता है **तावद्भ्यः अभयं भवति** उतने लोगों के लिए अभय होता है। **तस्मात्** इसी कारण **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतया एव परिदध्यात्** इसी (ऋचा) से समापन करे।

सा० भा०—यत्र यागे यथोक्तार्थं विद्वान् होतैतया परिदध्यात् तत्र यजमानो यावद्भ्यो बन्धुभ्यो हृद्रोगपरिहाररूपमभयमिच्छत्यथवा वैरिभीतिपरिहाररूपमभयं ध्यायति तावद्भ्यः सर्वेभ्यस्तादृशमभयं भवति। तस्मादेवा वन्दस्वेत्ययैव परिदध्यात्॥

मन्त्रगतसंख्यादिकं दर्शयति—

ता एताः सप्तदशान्वाह रूपसमृद्धा एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कामं क्रियमाणमृगभिवदति। तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां, ता एकविंशतिः सम्पद्यन्ते, एकविंशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः ।।२९।।

हिन्दी—(मन्त्रगत संख्या इत्यादि को दिखला रहे हैं—) **ताः एताः सप्तदश अन्वाह** (होता) उन (पूर्वोक्त) इन सप्तदश (ऋचाओं) का अनुवाचन करता है। **रूपसमृद्धाः** जो (कर्मानुसार अर्थविवक्षा के कारण) रूप से समृद्ध हैं। **यद् रूपसमृद्धम्** जो (यह) (अपने) रूप से समृद्ध है, **एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम्** यही यज्ञ की समृद्धि है; **यत्क्रियमाणं कर्म** जिस सम्पादित किये जाते हुए कर्म को **ऋग् अभिवदति** ऋचा कहती है। **तासाम्** उन (ऋचाओं) में **त्रिः प्रथमां त्रिः उत्तमाम्** तीन बार प्रथम ऋचा का और तीन बार अन्तिम (ऋचा) का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है। **ताः एकविंशति सम्पद्यन्ते** वे

---

(१) ऋ० ८.४२.२।

(ऋचाएँ) इक्कीस हो जाती हैं। **द्वादश मासाः** बारह महीने **पञ्चर्तवः** पाँच ऋतुएँ **त्रयः इमे लोकतः** ये तीन लोक और **असौ आदित्यः** यह आदत्यि—इस प्रकार **एकविंशो वै प्रजापतिः** प्रजापति भी इक्कीस संख्या वाला है।

सा० भा०—उक्तसंख्याप्रशंसार्थमेकविंशतिसंख्यपूरण आदित्ये बहून् गुणान् दर्शयति—

उत्तमा प्रतिष्ठा तद्देवं क्षत्त्रं सा श्रीस्तदाधिपत्यं तदब्रध्नस्य विष्टपं तत्प्रजापतेरायतनं तत्स्वाराज्यम् ।।३०।।

हिन्दी—**उत्तमा प्रतिष्ठा** जो (आदित्य का) सर्वाधिक ऊँचा स्थान है; **तद् देवं क्षत्रम्** वह देवता की क्षत्रिय जाति है **सा श्रीः** वह श्री है, **तद् आधिपत्यम्** वह आधिपत्य है, **तद् ब्रध्नस्य विष्टपम्** वह आदित्य का स्थानरूप स्वर्ग है, **तत्प्रजापतेः आयतनम्** वह प्रजापित का निवास-स्थान है और **तत् स्वाराज्यम्** वही (परतन्त्रता से रहित) स्वाराज्य है।

सा० भा०—योऽयमादित्योऽसावुत्तमा प्रतिष्ठा। तल्लोकानां स्थैर्येणावस्थानात्। तदादित्यस्वरूपमेव दैवं क्षत्त्रं देवसम्बन्धिनी क्षत्रजातिः। 'आदित्यो वै देवं क्षत्रम्' इत्यन्यत्राभिधानात्।[१] सा श्रीरादित्याप्राप्तिरेव भोग्यवस्तुसंपत्तिः। तदादित्यमण्डलमाधिपत्यं स्वामित्वप्रापकम्। 'आदित्य एषां भूतानामधिपतिः' इति श्रवणात्।[२] तन्मण्डलं ब्रध्नस्याऽऽदित्यस्य विष्टपं[३] स्थानभूतम्, तदेव मण्डलं प्रजापतेरप्यायतनं स्थानम्।[४] आदित्यमण्डले प्रजापत्युपासनस्याभिधानात्। तदेव मण्डलं स्वाराज्यं पारतन्त्र्याभावात्।

उपसंहरति—

ऋध्नोत्येतमेवैताभिरेकविंशत्यैकविंशत्या ।।३१।।

हिन्दी—(अब उपसंहार कर रहे हैं—) **एकविंशत्या** (इन) इक्कीस (ऋचाओं) द्वारा **एताम्** इस (यजन करने वाले) को **ऋध्नोति** (होता) समृद्ध करता हैं।

सा० भा०—एकविंशतिसंख्याभिरेताभिर्ऋग्भिरेतं यजमानं समृद्धं करोत्येव।[५] अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

(१) ऐ०ब्रा० ७.४.२। (१) ऐ०ब्रा० ७.४.२।
(३) ब्रध्न आदित्याः, तस्य स्थानं त्रिविशिष्टपं विष्टप इति स्वर्गादित्ययोः साधारणनामत्वादिह स्वर्गार्थं परिगृहीरतम्–इति गोविन्दस्वामी।
(४) प्रजापतिर्गृहस्थः प्रजोत्पादनात् साधु। गृहस्थस्याप्यादित्यायतनत्वादपवर्गावस्थायां प्रजापतेरायतनमित्यच्यते–इति गोविन्दस्वामी।
(५) द्र० आश्व०श्रौ० ४.१०.१-१३। आप०श्रौ० ११.१७.१-१०। तै०सं० १.३५; ६.२.२। कात्या०श्रौ० ८.७.३,४। शत०ब्रा० ३.३.६.९।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य पञ्चमोऽध्याये चतुर्थः खण्डः ।।४।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चम अध्याय के चतुर्थ खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य प्रथमपञ्चिकायाः पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चम अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अग्निर्वै षट्। स्वर्गं वै पञ्च। प्राच्यां वै षट्। यज्ञो वै नव। सोमो वै चत्वारि ।।

(प्रथम पञ्चिका के) प्रथम अध्याय में 'अग्निर्वै' इत्यादि से प्रारम्भ छः खण्ड, द्वितीय अध्याय में 'स्वर्गं वै' इत्यादि से प्रारम्भ पाँच खण्ड, तृतीय अध्याय में 'प्राच्यां वै' इत्यादि से प्रारम्भ छः खण्ड, चतुर्थ अध्याय में 'यज्ञो वै' इत्यादि से प्रारम्भ नौ खण्ड और पञ्चम अध्याय में 'सोमो वै' इत्यादि से प्रारम्भ चार खण्ड हैं।

अग्निर्वै, प्रयाजवद्, गणानांत्वा दश ।।

(इस प्रकार प्रथम पञ्चिका में) 'अग्निर्वै' से प्रारम्भ खण्डों का प्रथम दशक, 'प्रयाजवद्' से प्रारम्भ द्वितीय दशक और 'गणनांत्वा' से प्रारम्भ तृतीय दशक है। इस प्रकार इस पञ्चिका में कुल तीस खण्ड हैं ।।

।। इत्यैतरेयब्राह्मणे प्रथमपञ्चिकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण की प्रथमपञ्चिका के पञ्चम अध्याय की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

।। इत्यैतरेयब्राह्मणे प्रथमा पञ्चिका ।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण की प्रथमा पञ्चिका की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयपञ्चिकायाम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

[अथ षष्ठोऽध्यायः]

प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—राजक्रयब्राह्मणमुक्तमादौ वह्नेः प्रणीतिप्रतिपादिकाश्च ।
तथा हविर्धानविवर्तनार्था अग्नेश्च सोमस्य च या ऋचः स्युः ।।[१]

अथ षष्ठाध्यायेऽग्नीषोमीयपशुर्वक्तव्यः। तत्राऽऽदौ यूपं वक्तुमाख्यायिकामाह—

(अग्निषोमीयपशुविधानम्)

(तत्राख्यायिकाकथनम्)

यज्ञेन वै देवा ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकमायंस्तेऽबिभयुरिमं नो दृष्ट्वा मनुष्याश्च ऋषयश्चानु प्रज्ञास्यन्तीति; तं वै यूपेनैवायोपयंस्तं यद्यूपेनै-वायोपयंस्तद्यूपस्य यूपत्वं; तमवाचीनाग्रं निमित्योर्ध्वा उदायंस्ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन् यज्ञस्य किंचिदेषिष्यामः प्रज्ञात्या इति; ते वै यूपमेवाविन्दन्नवाचीनाग्रं निमितं; ते विदुरनेन वै देवा यज्ञमयूयुपन्निति, तमुत्खायोर्ध्वं न्यमिन्वंस्ततो वै ते प्र यज्ञमजानन् प्र स्वर्गं लोकम् ।।१।।

हिन्दी—(षष्ठ अध्याय में अग्नीषोमीय पशु का विधान करना है। उसमे सर्वप्रथम यूप को कहने के लिए आख्यायिका का विधान कर रहे हैं—) **यज्ञेन वै देवाः** यज्ञ के द्वारा ही देवताओं ने **ऊर्ध्वा स्वर्गं लोकम् आयन्** (पृथिवी लोक से) ऊपर वाले स्वर्ग लोक को प्राप्त किया । **ते अबिभयुः** वे (देवता) भयभीत हो गये कि **मनुष्याः च ऋषयः च** मनुष्यगण और ऋषिगण **नः यज्ञं दृष्ट्वा** हमारे (द्वारा किये गये) यज्ञ को देखकर **अनु प्रज्ञास्यन्ति** जान जाएगें और (हमारा) अनुकरण करके (हमारे) समान हो जाएँगे। (अतः

---

(१) अथ पूर्वाध्यायार्थं संग्रह उच्यते राजक्रयेति श्लोकेन। तथा च पञ्चमाऽध्याये ये चत्वारः खण्डाः श्रुताः, तत्र क्रमेण सोमक्रयार्थाख्यायिकाकथनपूर्वको वाग्विसर्गः । अग्नि-प्रणयनीया ऋचः, हविर्धानप्रोह्यमाणीया ऋचः, अग्निषोमप्रणयनीया ऋचश्चेति चत्वारोऽर्था विहिता इति निष्पन्नम् ।

उन भयभीत देवताओं ने) **तं यूपेन एव अयोपयन्** (मनुष्यों और ऋषियों को व्यामोहित करने के लिए) उस (अपने द्वारा किये गये यज्ञ को) यूप से मिला दिया, **तद् यूपस्य यूपत्वम्** वही (यूपन रोकने के कारण) यूप का यूपत्व (यूप होना) है। **तम् अवाचीनाग्रं निमित्य** उस (यूप) का अगला भाग नीचे करके (पृथिवी में) रख कर (गाड़ कर) **ऊर्ध्वा उदायन्** ऊपर (स्वर्ग लोक को) चले गये। **ततो वै** तब **देवानां यज्ञस्य किञ्चित् प्रज्ञात्यै एषिष्यामः** देवताओं द्वारा किये गये यज्ञ-सम्बन्धी कुछ चिह्न को हम लोग कुछ जान पावें' (इस उद्देश्य से) **ते मनुष्याः च ऋषयश्च** उन मनुष्यों और ऋषियों ने वहाँ **अवाचीनाग्रं निमितं यूपमेव अविन्दन्** नीचे की ओर अग्रभाग करके गाड़े गये (केवल) यूप को ही प्राप्त किया और **ते विदुः** उन्होंने जान लिया कि **अनेन देवाः यज्ञम् अयूयुपन्** इस (यूप) से ही देवताओं ने यज्ञ को (उलटपुलट कर) मिश्रित कर दिया है। (उन मनुष्यों और ऋषियों ने) **तम् उत्खाय** उस (यूप) को उखाड़ कर **ऊर्ध्वं न्यमिन्वन्** (उसका अगला भाग) ऊपर की ओर करके पुनः गाड़ दिया। **ततः वै ते यज्ञं प्रजानन्** तब उन्होंने यज्ञ को प्रकृष्ट रूप से जाना और **प्र स्वर्गं लोकम्** (उसे सम्पादित करके) स्वर्ग लोक को प्राप्त किया।

सा० भा०—पुरा कदाचिद्देवा ज्योतिष्टोमं यज्ञमनुष्ठाय तत्फलभूतं स्वर्गं प्राप्तास्तत्र चावस्थाय भीतिं प्राप्ताः। केनाभिप्रायेणेति स उच्यते। ये मनुष्या वर्णाश्रमधर्मप्रवृत्ता ये च ऋषयस्तपसि प्रवृत्तास्ते सर्वेऽप्यस्मदीयमिमं यज्ञं दृष्ट्वा स्वयमप्यनुष्ठाय स्वर्गे समागत्यास्मान् प्रज्ञास्यन्ति ततोऽस्मत्समा भविष्यन्ति। ततस्ते देवा भीता मनुष्याणामृषीणां च व्यामोहाय तमेव स्वकीयं यज्ञं यूपस्तम्भेनैवायोपयन् मिश्रितवन्तः। अन्यथानुष्ठानरूपं भ्रममुत्पादितवन्त इत्यर्थः। यस्मात्कारणाद्यूपेनैव तं यज्ञमयोपयन्नन्यथा कृतवन्तस्तस्माद्योपनसाधनत्वाद्यूपनाम संपन्नम्। केन क्रमेण व्यामोहितवन्त इति। उच्यते—तं यूपं पूर्वमूर्ध्वाग्रं सन्तमिदानीमवाचीनाग्रमधोमुखं निमित्य निरवायोर्ध्वाभिमुखा उद्गतास्तदानीं मनुष्या ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्तु यज्ञभूमिमागत्य यज्ञस्य संबन्धि चिह्नं यत्किञ्चिदवगमिष्यामस्तच्च देवानुष्ठितस्य प्रज्ञात्यै संपद्यत इत्यभिप्रेत्य यज्ञभूमिं सर्वतः परीक्ष्य यज्ञचिह्नमिदमिति यूपमेवाविन्दन्नलभन्त। कीदृशं यूपमवाचीनाग्रं निमितमधोमुखत्वेन निखातं ततस्ते मनुष्या ऋषयश्चैवं विदुः। कथमिति, तदुच्यते—अनेनैवाधोमुखेन यूपेन देवा अस्मद्भ्रमाय स्वकीयं यज्ञं मिश्रितवन्त इति। ततस्तमधोमुखं निखातं यूपमुत्खाय पुनरूर्ध्वाभिमुखं न्यमिन्वन्निखातवन्तः। ततो यथाशास्त्रमवस्थितेन यूपेन मनुष्या ऋषयश्च देवैरनुष्ठितं यज्ञं प्रज्ञाय स्वर्गं लोकं प्राजानन्। तं यज्ञमनुष्ठाय स्वर्गं गता इत्यर्थः। सोऽयमर्थः शाखान्तरे संगृहीतः—'यज्ञेन वै देवाः सुवर्गं लोकमायंस्तेऽमन्यन्त मनुष्या। नोऽन्वाभविष्यन्तीति ते यूपेन योपयित्वा सुवर्गं लोकमायंस्तमृषयो यूपेनैवानु प्राजानंस्तद्यूपस्य यूपत्वम्'[1] इति।

इदानीं यूपनिखननं विधत्ते—

(१) तै०सं० ६.३.४.७।

(यूपनिखननविधानम्)

तद्यद्यूप ऊर्ध्वो निमीयते यज्ञस्य प्रज्ञात्यै, स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै।।२।।

हिन्दी—(अब यूपनिखनन का विधान कर रहे हैं—) **तद् यद् यूपः ऊर्ध्वः निमीयते** तो जो यूप ऊपर की ओर मुख करके गाड़ते हैं, वह **यज्ञस्य प्रज्ञाप्त्यै** यज्ञ की जानकारी के लिए और **स्वर्गस्य लोकस्य अनुख्यात्यै** स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिए होता है।

सा० भा०—निमीयते निखातव्य इत्यर्थः ॥

तस्य यूपस्य तक्षणेनाष्टाश्रित्वं विधीयते—

वज्रो वा एष यद्यूपः सोऽष्टाश्रिः कर्तव्योऽष्टाश्रिर्वै वज्रस्तं तं प्रहरति द्विषते भ्रातृव्याय वधं योऽस्य स्तृत्यस्तस्मै स्तर्तवै ।।३।।

हिन्दी—**यद् यूपः** जो यह यूप है **वज्रो वै एषः** यह वज्ररूप है। **सः अष्टाश्रिः कर्त्तव्यः** उस (यूप) को आठ धारों वाला करना चाहिए क्योंकि **अष्टाश्रिः वै वज्रः** (लोक में) वज्र आठ धारों (कोणों) वाला होता है। अतः **द्विषते भ्रातृव्याय** द्वेष करने वाले शत्रु के (विनाश के) लिए **तं तं प्रहरति** उस (वज्र) को और उस (यूप) को (यजन करने वाला व्यक्ति) प्रहार के लिए प्रयोग करता है। **यो अस्य स्तृत्यः** इस (यजन करने वाले) का जो (व्यक्ति) वध्य होता है, **तस्मै स्तर्तवे** उसके वध के लिए (यह आठ धारों से सम्पन्न होता है)।

सा० भा०—यूपस्य वज्रांशत्वेन वज्रत्वम्। तच्च शाखान्तरे श्रूयते—'इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्स त्रेधा व्यभवत्स्फ्यस्तृतीयं रथस्तृतीयं यूपस्तृतीयम्'[१] इति। लोके वज्रस्याष्टकोणत्वात् तद्रूपस्य यूपस्याप्यष्टाश्रित्वं कुर्यात्। 'द्विषते भ्रातृव्याय वधं' द्वेषं कुर्वतः शत्रोर्वधहेतुः तं वज्रं तं यूपं च पुरुषः प्रहरति। प्रहारार्थं प्रयुङ्क्ते। अतो वज्रवत्प्रहरणसामर्थ्याद्यूपस्याष्टाश्रित्वं युक्तम्। 'यः' शत्रुः 'अस्य' यजमानस्य 'स्तृत्यो' हिंस्यो भवति 'तस्मै स्तर्तवै' तस्य शत्रोर्हिंसार्थमिदमष्टाश्रित्वम्।

अष्टाश्रित्वसिद्धये यूपस्य यद्वज्रत्वमुक्तं तदेव शत्रोरप्रियहेतुत्वेनोपपादयति—

(यूपस्य वज्रत्वम्)

वज्रो वै यूपः स एष द्विषतो वध उद्यतस्तिष्ठति तस्माद्धाप्येतर्हि यो द्वेष्टि तस्याप्रियं भवत्यमुष्यायं यूपोऽमुष्यायं यूप इति दृष्ट्वा ।।४।।

हिन्दी—**वज्रो वै यूपः** यूप वज्ररूप होता है। **सः एषः द्विषतः** वह यह (यूप)

---

(१) तै०सं० ५.२.६.२। वाजसनेयिभिस्तु तच्चातुर्धाकरणमाम्नातम्। तथाहि—इन्द्रो ह यत्र वृत्राय राजन्यबन्धवः'–इति शत०ब्रा० १.२.४.२।

द्वेष करने वाले (शत्रु) के **वधे उद्यतः तिष्ठति** वध के लिए उद्यत होकर विद्यमान रहता है। **तस्मात्** इसी कारण ही **एतर्हि** यहाँ **यो द्वेष्टि** जो द्वेष (शत्रुता) करता है, **तस्य अप्रियं भवति** उस (द्वेष करने वाले) का अप्रिय होता है, (जो शत्रु के विरोधी यजमानों के यूप को) **दृष्ट्वा** देख कर **अमुष्य अयं यूपः अमुष्य अयं यूपः** अमुक व्यक्ति का यह यूप है, अमुक व्यक्ति का यह यूप है' (यह कहता है)।

सा० भा०—यो यूपोऽस्ति स एव शत्रोर्वधे निमित्तभूते सति स्वयमुद्यतस्तिष्ठत्युद्योगवानवतिष्ठतेऽतो वज्रत्वम्। यस्मादेवं पुराऽऽसीत्तस्मादिदानीमपि यः शत्रुर्यजमानं द्वेष्टि तस्य शत्रोर्विरोधियजमानानां यूपस्य दर्शनेन महदप्रियं भवति। अमुष्य विरोधिनो यूप इति निश्चये सत्यप्रियं न तु यूपमात्रदर्शनेन ॥

अथ कामनाविशेषेण यूपस्य प्रकृतिभूता वृक्षविशेषा वक्तव्याः। तत्राऽऽदौ खदिरवृक्षं विधत्ते—

(कामनाविशेषेण यूपस्य वृक्षविशेषविधानम्)

(तत्र स्वर्गकामनया खादिरयूपविधानम्)

खादिरं यूपं कुर्वीत स्वर्गकामः खादिरेण वै यूपेन देवाः स्वर्गं लोकमजयंस्तथैवैतद्यजमानः खादिरेण यूपेन स्वर्गं लोकं जयति ।।५।।

हिन्दी—(कामना-विशेष के लिए अलग-अलग लकड़ी से यूप बनाने का विधान करने के लिए पहले खदिर की लकड़ी से यूप के बनाने का विधान कर रहे हैं—) **स्वर्गकामः** स्वर्ग की कामना करने वाला (यजमान) **खादिरं यूपं कुर्वीत** खदिर (की लकड़ी) का यूप बनावे क्योंकि **खदिरेण वै यूपेन** खदिर (की लकड़ी से बने) यूप से ही **देवाः** देवताओं ने **स्वर्ग लोकम् अयजन्** स्वर्ग लोक को जीता (प्राप्त किया) था। **तथैव** उसी प्रकार ही **यजमानः** यजन करने वाला **खदिरेण यूपेन** खदिर (की लकड़ी) से बने यूप के द्वारा **स्वर्गं लोकं जयति** स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

फलद्वयार्थं बिल्ववृक्षं विधत्ते—

(अन्नाद्यपुष्ट्योः कामनया बैल्वयूपम्)

बैल्वं यूपं कुर्वीतान्नाद्यकामः पुष्टिकामः समां समां वै बिल्वो गृभीतस्तदन्नाद्यस्य रूपमामूलाच्छाखाभिरनुचितस्तत्पुष्टेः ।।६।।

हिन्दी— (अब बिल्व की लकड़ी के यूप का विधान कर रहे हैं–) **अन्नद्यकामः पुष्टिकामः** अन्नाद्य की कामना करने वाला और पुष्टि की कामना करने वाला (यजमान) **बैल्वं यूपं कुर्वीत** बिल्व (बेल) का यूप बनावे। **समां समां वै** प्रत्येक समय में ही **बिल्वः**

गृभीतः बेल फल को धारण करता है। अतः **तद् अन्नाद्यस्य रूपम्** वह (बिल्व) अन्नाद्य का रूप है और **आमूलात् शाखाभिः** वह जड़ से लेकर शाखापर्यन्त **अनुचितः** क्रम से बढ़ता रहता है, अतः **तत् पुष्टेः** वह पुष्टि का (रूप है)।

सा० भा०—समां समां तस्मिंस्तस्मिन्संवत्सरे बिल्ववृक्षो गृभीतः फलैर्गृहीतः, तच्च फलग्रहणमदनयोग्यस्यान्नस्य रूपम्। बिल्वफलानि भुञ्जानैर्भक्ष्यन्ते। मूलमारभ्य शाखाभिरनुक्रमेणोपचितो बिल्ववृक्षस्तत्रोपचयनं पुष्टेः स्वरूपं तस्मात् फलद्वयं युक्तम्॥

अध्वर्योर्वेदनं प्रशंसति—

पुष्यति प्रजां च पशूंश्च य एवं विद्वान् बैल्वं यूपं कुरुते ॥७॥

हिन्दी—(अध्वर्यु के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं–) **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला (अध्वर्यु) **बैल्वं यूपं कुरुते** बिल्व का यूप बनाता है, वह **प्रजां च पशून् च पुष्यति** प्रजा और पशुओं को पुष्ट करता है।

लोकप्रसिद्ध्या बिल्वस्य प्रशस्ततां द्रढयति—

(बिल्बस्य प्रशंसा)

यदेव बैल्वां३ बिल्वं ज्योतिरिति वा आचक्षते ॥८॥

हिन्दी—(लोक में प्रसिद्धि से बिल्व की श्रेष्ठता को दृढ़ कर रहे हैं—) **यदेव बैल्वान्** जो विल्ब का (यूप बनाता है) वह उचित ही करता है क्योंकि **बिल्वं ज्योतिः** (लोक में) बिल्व (श्रीवृक्ष होने के कारण) ज्योति-स्वरूप है—**इति वै आचक्षते** ऐसा ही ब्रह्मवादी लोग कहते हैं।

सा० भा०—अत्र किंपदमव्याहृत्य योजनीयम्। हे अध्वर्यो किमत्र बैल्वं यूपं कृतवानासि, तत्सम्यग्भवता कृतम्। बिल्ववृक्षस्वरूपं वृक्षमध्ये श्रीवृक्षनामकत्वेन लक्ष्मीस्वरूपत्वात् पूज्यत्वेन ज्योतिर्भवति। प्लुतिस्तु प्रशंसाद्योतकध्वन्यभिनयार्था।[१] यदेव यस्मादेव कारणाद् ब्रह्मवादिन एवमाचक्षते, तस्माद् बैल्वो यूपोऽतिप्रशस्त इत्यर्थः॥

एतद्वेदनं प्रशंसति—

ज्योतिः स्वेषु भवति श्रैष्ठः स्वानां भवति य एवं वेद ॥९॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **स्वेषु ज्योतिः भवति** अपने (ज्ञातिजनों) में ज्योति-स्वरूप (प्रकाशमान) होता है और **स्वानां श्रैष्ठः भवति** अपने लोगों में श्रेष्ठ होता है।

सा० भा०—स्वेषु ज्ञातिषु ज्योतिस्तेजस्वी श्रेष्ठः श्रुतवृत्तसंपन्नः॥

---

(१) 'अनुदात्तं प्रश्नान्तभिपूजितयोः'–इति पा०सू० ८.२.१००।

पुनः फलद्वयाय वृक्षान्तरं विधत्ते—

(तेजःब्रह्मवर्चसयोः कामनया पालाशयूपः)

पालाशं यूपं कुर्वीत तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामस्तेजो वै ब्रह्मवर्चसं वनस्पतीनां पलाशः ।।१०।।

हिन्दी—(अब पलाश की लकड़ी के यूप का विधान कर रहे हैं—) **तेजस्कामः ब्रह्मवर्चसकामः** तेज की कामना करने वाला और ब्रह्मवर्चस् की कामना करने वाला **पालाशं यूपं कुर्वीत** पलाश (की लकड़ी) का यूप बनावे। **वनस्पतीनां पलाशः** वनस्पतियों में पलाश **तेजो वै ब्रह्मवर्चसम्** तेज और ब्रह्मवर्चस् रूप है।

सा० भा०—तेजः शरीरकान्तिः। ब्रह्मवर्चसं श्रुताध्ययनसंपत्तिः। पुष्पाणामतिरक्तत्वेन पलाशस्य तेजस्त्वं परब्रह्मत्वश्रवणाद् ब्रह्मवर्चसत्वम्। तथा च शाखान्तरे श्रूयते—'देवा वै ब्रह्मन्नवदन्त तत्पर्ण उपाश्रृणोत्'[1] इति। एवमादि।।[2]

अध्वर्योरेतद्वेदनं प्रशंसति—

तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं विद्वान् पालाशं यूपं कुरुते ।।११।।

हिन्दी— (अध्वर्यु के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं-) **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला (अध्वर्यु) **पालाशं यूपं कुरुते** पलाश (की लकड़ी) का यूप बनाता है, वह **तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति** तेज से सम्पन्न तथा ब्रह्मवर्चस् से युक्त होता है।

बिल्वात् पलाशं प्रशंसति—

(बिल्वात्पलाशप्रशंसनम्)

यदेव पालाशां३ सर्वेषां वा एष वनस्पतीनां योनिर्यत्पलाशस्तस्मात् पलाशस्यैव पलाशेनाऽऽचक्षतेऽमुष्य पलाशममुष्य पलाशमिति ।।१२।।

हिन्दी—(बिल्व की अपेक्षा पलाश की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यदेव पलाशान्** जो पलासों का (यूप बनाता है) तो (वह उचित ही करता है)। **यत्पलाशः** जो पलाश है **एषः वनस्पतीनां योनिः** यह वनस्पतियों की योनि है। **पलाशस्य** पलाश वृक्ष को **पलाशेन** (पत्तों के वाचक) पलाश (नाम) से **आचक्षते** कहा जाता है। **तस्मात्** इसी कारण **अमुष्य पलाशम् अमुष्य पलाशम्** यह अमुक वृक्ष का पता है, यह अमुक वृक्ष का पत्ता है—ऐसा कहा जाता है।

सा० भा०—हे अध्वर्यो किं पालाशं यूपं कृतवानसि तत्सम्यक्कृतमिति प्रशंसार्था

(१) तै०सं० ३.५.७.२। (२) द्र० तै०ब्रा० १.२.१.६। एष चाग्न्याधाने पर्णाहराय विनियुज्यते–द्र० आप०श्रौ० ५.२.४।

प्लुति:। किञ्च पलाश: सर्ववनस्पतीनां कारणभूतस्तस्माद्योनित्वात् पलाशाख्यस्यैव वृक्षस्य संबन्धिना पलाशशब्देन सर्ववृक्षाणां पत्रमाचक्षते व्यवहरन्ति अमुष्य न्यग्रोधस्य पलाशं पत्रममुष्य चूतवृक्षस्य पलाशं पत्रमेवं सर्ववृक्षसंग्रहार्था वीप्सा। पलाशशब्द: पुंलिङ्गो वृक्ष-विशेषवाची। नपुंसकलिङ्ग: पत्रवाची। 'पलाश: किंशुक: पर्ण:' 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छद: पुमान्'[१] इत्यभिधानकारैरुक्तत्वात्। यस्मात् प्लुतिप्रयोगो यस्माच्च सर्ववृक्षयोनित्वं तस्मात् पलाशयूप: प्रशस्त इत्यर्थ:।।[२]

वेदनं प्रशंसति—

सर्वेषां हास्य वनस्पतीनां काम उपाप्तो भवति य एवं वेद ।।१३।।

हिन्दी— (इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **य: एवं वेद** जो इस प्रकार जानना है, **अस्य** उसको **सर्वेषां वनस्पतीनाम्** सभी वनस्पतियों से सम्बन्धित **काम:** कामना **उपाप्त: भवति** प्राप्त हो जाती है।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्यस्य षष्ठाध्यायस्य प्रथम: खण्ड: ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीय: खण्ड:

यूपं विधाय तस्याञ्जनादिमन्त्राम् वधातुमादौ प्रैषं विधत्ते—

(यूपाञ्जनानुवचनीयानामृचां प्रैषमन्त्र:)

अञ्ज्मो यूपमनुब्रूहीत्याहाध्वर्यु: ।।१।।

हिन्दी—(यूप का विधान करके उसके अञ्जनादि मन्त्रों का विधान करने के लिए पहले प्रैष का विधान कर रहे हैं—) 'हे होता!' **अञ्ज्म: यूपम्** हम यूप को घृत से अञ्जन कर रहे (चुपोड़ रहे) हैं, **इति अध्वर्यु: आह** इस (प्रैष मन्त्र) को अध्वर्यु कहता है अत: **अनुब्रूहि** (उसके) अनुकूल (मन्त्रों का) वाचन करो' ।

सा०भा०—'यूपमञ्ज्मो' यूपस्य घृतेनाञ्जनं कूर्म:। हे होतस्तदनुरूपामृचं ब्रूहीत्येव-मध्वर्यु: प्रैषं ब्रूयात्। स च प्रौषो विकल्पेनाऽऽपस्तम्बेन दर्शित:—'यूपायाज्यमानायानु-

---

(१) अमरकोष २.४.२९,१४।

(२) यूप्या वृक्षा: पलाशखदिरबिल्वरौहीतका:—इत्यादि आप०श्रौ० ७.१.१५,१६।

ब्रूहीति संप्रेष्यति अज्यमानायानुब्रूहीति, अञ्जो यूपमनुब्रूहीति वा'[1] इति। एवमध्वर्युणा प्रेषितो होताऽञ्जनकाले वक्ष्यमाणा ऋचोऽनुब्रूयात्। अञ्जनं त्वापस्तम्बेन दर्शितम्—'अथैनमसंस्कृतेनाऽऽज्येन यजमानोऽग्रत: शकलेनानक्त्यैन्द्रमसीति चषालमङ्क्त्वा सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्य इति प्रतिमुच्य देवस्त्वा सविता मध्वावऽनक्त्विति स्रुवेण संततमविच्छिन्दन्नग्निष्ठामश्रिमनक्ति' इति ॥

एतस्मिन्नञ्जनकालेऽनुवचनीयामृचं विधत्ते—

(यूपस्याञ्जनकालेऽनुवचनीयर्ग्विधानम्)

(तत्र प्रथमा ऋचा)

'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्त:'[2] इत्यन्वाह ।।२।।

हिन्दी—(इस अञ्जन के समय अनुवचनीय ऋचा को कह रहे हैं—) 'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्त:' अर्थात् हे यूप! देवताओं कीं पूजा करने की कामना करते हुए (ऋत्विक्) तुमको घृताक्त करते हैं'—**इत्यन्वाह** (होता) इस (ऋचा) का अनुवाचन करता है।

सा० भा०—हे यूप त्वां देवयन्तो देवान् पूजयितुमिच्छन्त ऋत्विजोऽञ्जन्ति घृतेनाक्तं कुर्वन्ति।।

एतत्पादार्थस्य याज्ञिकप्रसिद्धिं दर्शयति—

अध्वरे ह्येनं देवयन्तोऽञ्जन्ति ।।३।।

हिन्दी—(इस पादार्थ की याज्ञिक प्रसिद्धि को दिखला रहे हैं—) क्योंकि **अध्वरे** अध्वर में **देवयन्त:** देवताओं की पूजा करने की कामना करने वाले (ऋत्विक्) एनम् **अञ्जन्ति** इस (यूप) को घी से चुपोड़ते हैं।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'वनस्पते मधुना दैव्येन' इत्येतद् वै मधु दैव्यं यदाज्यम् ।।४।।

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'वनस्पते मधुना दैव्येन' अर्थात् 'हे यूप! द्विव्यमधु (घृत) से (तुमको अञ्जन करते हैं); क्योंकि **यदाज्यम्** जो घृत है, **एतद्वै दैव्यं मधु** वही देवता-सम्बन्धी मधु है।

सा० भा०—हे वनस्पते यूप मधुरेण देवयोग्येनाऽऽज्येन त्वामञ्जन्तीति पूर्वत्रान्वय:।।

द्वितीयार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे' इति यदि

(१) आप०श्रौ० ७.१०.१। (२) तदेव ७.१०.२,३

च तिष्ठासि यदि च शयासै द्रविणमेवास्मासु धत्तादित्येव तदाह ।।५।।

हिन्दी—(ऋचा के उत्तरार्ध को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) हे यूप! **यद् ऊर्ध्वं तिष्ठा** जो तुम ऊर्ध्व मुख होकर स्थित हो, **यद्वाः** अथवा **अस्याः मातु उपस्थे** इस माता (पृथिवी) की गोद में **क्षयः** तुम्हारा शयन हुआ है, ऐसे तुम **इह** इस (कर्म) में **द्रविणा** धनों को **धत्तात्** (हम लोगों के लिए) प्रदान करो। **इति** यहाँ **यदि च तिष्ठासि** यदि खड़े हो अथवा **यदि च शयासैः** यदि शयन किये हो (तो भी) **अस्मासु द्रविणमेव धत्तात्** हम लोगों के प्रति धन को प्रदान करो—**इति एव तदाह** यही उस (यूप) से कहा गया है।

सा०भा०—हे यूप त्वं यदूर्ध्वाग्रः संस्तिष्ठा अवटे स्थितोऽभवः। यद्वा जगन्मातुरस्याः पृथिव्या उपस्थ उपरि क्षयो निवासस्ते शयनं स्यात् सर्वथाऽपीह कर्मणि द्रविणा धनान्यस्मदपेक्षितानि धत्तात् संपादयतु। अयमुत्तरार्धस्यार्थो यदि चेत्यादिना स्पष्टीकृतः।।

द्वितीयामृचं विधत्ते—

(द्वितीया ऋचा)

'उच्छयस्व वनस्पते'[१] इत्युच्छ्रीयमाणायाभिरूपा यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।६।।

हिन्दी—(द्वितीय ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **'उच्छ्रयस्व वनस्पते** अर्थात् हे वनस्पते। ऊपर को उठो'—**इति उच्छ्रियमाणाय अभिरूपा** यह (ऋचा यूप को) उठाने के लिए अनुरूप है। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो यज्ञ में अनुरूप है **तत् समृद्धम्** वह (यज्ञ की) समृद्धि है।

सा०भा०—हे वनस्पते त्वमुच्छ्रयस्व शयनं परियज्योच्छ्रितो भव। उच्छ्रयस्वेत्युक्तत्वादुच्छ्रीयमाणाय यूपायेयमृगभिरूपा। तदेतदुच्छ्रयणमापस्तम्बेन दर्शितम्—'यूपायोच्छ्रीयमाणायानुब्रूहीति संप्रेष्यत्युच्छ्रीयमाणायानुब्रूहीति वोदिवं स्तभानान्तरिक्षं पृणेत्युच्छ्रयति'[२] इति।।

'वर्ष्मन् पृथिवी अधि' इत्येतद्वै वर्ष्म पृथिव्यै यत्र यूपमुन्मिन्वन्ति ।।७।।

हिन्दी—(इस ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'वर्ष्मन् पृथिव्या अधि' अर्थात् पृथिवी के स्थान से ऊपर उठो–**इति** यहाँ **यत्र यूपम् उन्मिनन्ति** जहाँ (पृथिवी पर) यूप को गाड़ते हैं, **एतद्वै पृथिव्यै वर्ष्म** यही पृथिवी का घर हैं।

सा०भा०—पृथिव्याः संबन्धिनि वर्ष्मञ्शरीरवत्प्रधानभूतेऽस्मिन् देशेऽध्युपर्युच्छ्रय-

---

(१) ऋ० ३.७.३। (२) आप०श्रौ० ७.१०.६,७।

स्वेति पूर्वत्रान्वयः। ऋत्विजो यत्र वेदि तत्पूर्वदेशयोरन्तराले यूपमुन्मिन्वन्त्यूर्ध्वतया निखनन्ति सोऽयं देशः पृथिव्या वर्ष्मेति।।

मन्त्रे तृतीयं पादमनूद्य व्याचष्टे—

'सुमिती मीयमानो वर्चोधा यज्ञवाहसे' इत्याशिषमाशास्ते ।।८।।

हिन्दी—(मन्त्र के तृतीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) सुमिती मीयमानो वर्चोधा यज्ञवाहसे' अर्थात् शोमन प्रक्षेप से स्थापित यूप यज्ञनिर्वाहक (यजन करने वाले) के लिए तेज को धारण करावे' **इति आशिषम् आशास्ते** इससे आशीर्वाद को कहता है।

सा० भा०—सुमिती सुमित्या शोभनेन प्रक्षेपेण स्थापनेन मीयमानः स्थाप्यमानो यज्ञवाहसे यज्ञनिर्वाहकाय यजमानाय वर्चोधा वर्चसां दीप्तीनां धाता संपादयिता तेन यूपी विशेष्यते। वर्चोधा इत्येतदाशीः प्रार्थना।।

तृतीयामृचं विधत्ते—

(तृतीया ऋचा)

'समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तादिति'[१] ।।९।।

हिन्दी—(तृतीय ऋचा को कह रहे हैं—) 'समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्तात्' अर्थात् प्रज्वलित (आहवनीयाग्नि) के पूर्व की ओर आश्रित होकर विद्यमान है'—**इति** इस (तृतीया ऋचा का होता अनुवाचन करता है)।

सा० भा०—अन्वाहेत्यनुवर्तते। अयं यूपः समिद्धस्य प्रदीप्तस्याऽऽहवनीयस्य पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि श्रयमाण आश्रित्य वर्तमानः।।

एतत्पदार्थस्य याज्ञिकप्रसिद्धिं दर्शयति—

समिद्धस्य ह्येष एतत्पुरस्ताच्छ्रयते ।।१०।।

हिन्दी—(इस पदार्थ की याज्ञिक-प्रसिद्धि को दिखला रहे हैं—) **एषः** यह (यूप) **समिद्धस्य** प्रज्वलित (आहवनीयाग्नि) के **पुरस्तात्** पूर्व दिशा में **श्रयते** खड़ा रहता है।

सा० भा०—अर्धमन्तर्वेद्यर्धं बहिर्वेदि यूपस्थापनादाहवनीयपूर्वदिगाश्रयणम्।।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्' इत्याशिषमेवाऽऽशास्ते।।११।।

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम्** अर्थात् अविनाशी, वीरतासम्पन्न ब्रह्मतेज को देते हुए'—**इति**

(१) ऋ० ३.८.२।

आशिषमेव आशास्ते यह आशीर्वाद को कहता है।

सा० भा०—अजरमविनाश सुवीरं कल्याणपुत्रदिसमृद्धिकारणम्। ब्रह्म परिवृढमिदं कर्म वन्वानः संभजमानो यूपः। अजरादिशब्दैरेतस्मिन् पादे प्रार्थनं शंसते ।।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'आरे अस्मदमतिं बाधमानः' इत्यशनाया वै पाप्माऽमतिस्तामेव तदारान्नुदते यज्ञाच्च यजमानाच्च ।।१२।।

हिन्दी—(तृतीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'आरे अस्मदमतिं बाधमानः' अर्थात् हमारी दुर्बुद्धि को हमसे दूर करते हुए' **इति अशनाया वै पाप्मा** क्षुधा का ही पाप **अमतिः** अमति है। **तत्** इसके अनुवाचन से **ताम् एव** उस (क्षुधा के पाप) को ही **यज्ञात् यजमानात्** यज्ञ से और यजमान से **आरात् नुदते** दूर कर देता है।

सा० भा०—अमतिर्बुद्धिभ्रंशस्तामस्मद्यजमानर्त्विग्भ्य आरे दूरे यथा भवति तथा बाधमानो यूपः। एतत्पादगतेनामतिशब्देन क्षुधा वा पापं वाऽभिधीयते। तयोर्बुद्धिभ्रंशहेतुत्वादस्मदित्यनेन यज्ञो यजमानश्च विवक्षितः। ताभ्यां दुर्बुद्धिर्दूरे निराक्रियते।।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'उच्छ्रयस्व महते सौभगायेत्याशिषमेवाऽऽशास्ते ।।१३।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'उच्छ्रयस्व महते सौभगाय' अर्थात् हे वनस्पते! (यजमान के) महान् सौभाग्य के लिए उठो, **इति आशिषमेव आशास्ते** इस पाठ से (यजमान के लिए) आशीष को ही कहता है।

सा० भा०—हे वनस्पते यजमानस्याधिकसौभाग्यसिद्ध्यर्थमुच्छ्रितो भव। अस्मिन् पाद आशीर्विस्पष्टा।।

चतुर्थीमृचं विधत्ते—

'ऊर्ध्व ऊ षु ऊतये तिष्ठा देवो न सवितेति'[1] ।।१४।।

हिन्दी—(चतुर्थ ऋचा को कह रहे हैं—) ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता' अर्थात् हे यूप! हमारे रक्षण के लिए ऊपर स्थित सूर्य के समान हमारी रक्षा के लिए तुम ऊपर स्थित होवों' **इति** इस (चतुंर्थ ऋचा का होता अनुवाचन करता है)।

सा० भा०—हे यूप नोऽस्माकमूतये रक्षणायोर्ध्व ऊर्ध्वाकार एव सुतिष्ठ स्थितिं कुरु। तत्र दृष्टान्तः सविता देवो न सूर्यो देव इव स यथास्मद्रक्षणायोर्ध्वस्तिष्ठति तद्वत्त्वमपीत्यर्थः।।

एतत्पूर्वार्धगतस्य नशब्दस्य निषेधार्थत्वं परित्यज्याङ्गीकारवाचित्वात्तेनात्रोपमार्थो वि-

---

(१) ऋ० १.३६.१३।

वक्षित इत्येतद्दर्शयति—

यद्वै देवानां नेति तदेषामोमिति तिष्ठ देव इव सवितेत्येव तदाह ।।१५।।

हिन्दी—(ऋचा के इस पूर्वार्ध भाग में प्रयुक्त 'न' शब्द की उपमार्थता को दिखला रहे हैं—) **यद्वै देवानां नेति** जो वेदों में 'न' शब्द प्रयुक्त है, **तदेषाम् ओम् इति** वह इन (वेदों) में ओम् अर्थात् स्वीकारार्थ प्रयुक्त है। अतः (देवो न सविता का अर्थ है—) **देव इव सविता** अर्थात् सविता देव के समान (स्थित होवो)—**इति एव तदाह** यही कहा गया है।

सा० भा०—देवानां देवप्रतिपादकमन्त्राणा वर्णव्यत्ययेन वा वेदानां संबन्धि नेति यत्पदमस्ति तदेषां वेदानां संबन्धिनि प्रयोगे ओमित्येतस्मिन्नर्थे वर्तते। तथा सत्यङ्गीकार्यस्यार्थस्य विवक्षितत्वादत्रोपमार्थे विवक्षिते सति तिष्ठ देव इवेत्यादिवाक्यार्थो लभ्यते।।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'ऊर्ध्वो वाजस्य सनितेति' वाजसनिमेवैनं तद्धनसां सनोति ।।१६।।

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता'** अर्थात् ऊपर को उठा हुआ यह (यूप) अन्न को देने वाला होवे' **इति तत्** इसके पाठ से **एनम्** इस (यूप) को **वाजसनिमेव** अन्न को प्रदान करने वाला और **धनसाम्** धन देने वाला **सनोति** बनाता है।

सा० भा०—अयं यूप ऊर्ध्वः सन् वाजस्यान्नस्य सनिता दाता तत्तेन पादपाठेनैनं यूपं वाजसनिमेवान्नदातारमेव सनोति करोतीत्यर्थः। एतस्योपलक्षणत्वाद्धनसां सुवर्णादिदातारं च करोति।।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे' इति च्छन्दांसि वा अञ्जयो वाघतस्तैरेतद्देवान् यजमाना विह्वयन्ते मम यज्ञमागच्छत मम यज्ञमिति ।।१७।।

हिन्दी—(ऋचा के चतुर्थ पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे'** अर्थात् (यज्ञों में प्रयुक्त) वाणी द्वारा और (यज्ञ का) वहन करने वाले (ऋत्विक्) के साथ में हम (यजमान) विशेषरूप से (देवताओं का आवाहन कर रहे हैं)—इति यहाँ प्रयुक्त **अञ्जयः छन्दांसि वै** अञ्जि वेद ही है और **वाघतः तैः एतद्देवान् यजमानाः वाघत** का अर्थ है—उन ऋचाओं से यजन करने वाले हम यजमान इन दवेताओं को **विह्वयन्ते** विशेषरूप से आहूत करते हैं कि **मम यज्ञम् आगच्छत मम यज्ञम्** मेरे यज्ञ में आओं, मेरे यज्ञ में (आओ)।

सा० भा०—यद्यस्मात् कारणादञ्जिभिः क्रत्वभिव्यक्तिकारिभिर्वाग्भिर्वाघद्भिः क्रत्वनु-

च्छानभरं वहद्भिर्ऋत्विग्भिः सहिता यजमाना वयं विह्वयामहे विशेषेण देवानाह्वयामस्त-स्माद्यूप त्वमूर्ध्वस्तिष्ठेति योज्यम्। अत्राङ्गिवाघच्छब्दाभ्यामृत्विग्रूपमापन्नाश्छन्दोभिमानिनो देवा उच्यन्ते। एतत्पादपाठे छन्दोभिर्नानामन्त्रैर्ऋत्विग्भिः पठ्यमानैस्तैर्यजमाना देवान् विशेषेण ह्वयन्ति। भो देवा ममैव यज्ञमागच्छतेत्येक एवमन्येऽपि। सर्वसंग्रहार्थेयं वीप्सा॥

होतुरेतद्वेदनं प्रशंसति—

यदि ह वा अपि बहव इव यजन्तेऽथ हास्य देवा यज्ञमेव[१] गच्छन्ति यत्रैवं विद्वानेतामन्वाह ॥१८॥

हिन्दी—(होता के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र एवं विद्वान्** जिस (यज्ञ) में इस प्रकार जानने वाला (होता) **एताम् अन्वाह** इस (ऋचा) का अनुवाचन करता है **यदि ह वा अपि एव बहवः यजन्ते** यदि एक ही समय में बहुत से लोग यजन करते हैं **अथ ह** तब भी **अस्य यज्ञमेव** इस (अन्न-सम्पन्न यजमान) के यज्ञ में ही **देवाः गच्छन्ति** देवगण जाते हैं।

सा० भा०—यद्यप्येकस्मिन् काले बहवो यजमाना यजन्त एव यागं कुर्वन्त्येव तथाऽप्यस्यैव विदुषोऽन्नयुक्तस्यैव यजमानस्य यज्ञं प्रति देवा आगच्छन्ति॥

पञ्चमीमृचं विधत्ते—

(पञ्चमी ऋचा)

'ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दहेति'[२] ॥१९॥

हिन्दी—(पञ्चमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'ऊर्ध्वो न पाह्यंहसो निकेतुना विश्वं समत्रिणम्' अर्थात् हे यूप! तु ऊँचे उठकर प्रज्ञा के द्वारा पाप से हमारी रक्षा करो और खाने वाले सभी (राक्षसों) को सम्यक् प्रकार से विनष्ट करो' **इति** इस (ऋचा) का (होता अनुवाचन करता है)।

सा० भा०—हे यूप, त्वमूर्ध्वः सन् केतुना प्रज्ञया नोऽस्मानंहसः पापान्निपाहि नितरां पालयन्त्रिणं भक्षणशीलं राक्षसादि विश्वमपि संदह समूहीकृत्य भस्मीकुरु॥

तस्य पूर्वार्धस्य तात्पर्यं दर्शयति—

रक्षांसि वै पाप्माऽत्रिणो रक्षांसि दहेत्येव तदाह ॥२०॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त पञ्चम ऋचा के पूर्वोक्त पूर्वार्ध का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **रक्षांसि वै पाप्मा अत्रिणः** राक्षस और पाप ही अत्रि है। (अतः मन्त्र में) **रक्षांसि पाप्मानं**

---

(१) 'यज्ञमैव' इति हाग संपादित पुस्तके पाठः स च चिन्त्यः।
(२) ऋ० १.३६.१४।

दह राक्षसों और पापों को विनष्ट करो—इत्याह यह कहा गया है।

सा० भा०—यानि रक्षांसि सन्ति यश्च पाप्मा विद्यते तत्सर्वमत्रिञ्शब्देन विवक्षितम्। अत उभयदहनं मन्त्रप्रार्थितं भवति॥

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

कृधो न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे' इति यदाह कृधी न ऊर्ध्वा चरणाय जीवस इत्येव तदाह ।।२१।।

हिन्दी—(पञ्चम ऋचा के तृतीयपाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे'** अर्थात् 'हे यूप! रथारोहण के साथ जीवन के लिए अथवा आचारयुक्त जीवन के लिए हम लोगों को उन्नत करो'—**इति यदाह** यह जो कहा गया है कि **चरथाय जीवसे** आचार-सम्पन्न जीवन के लिए **नः ऊर्ध्वा कृधि** हम लोगों को उन्नत करो—**इति एव तदाह** यही यहाँ कहा गया है।

सा० भा०—चशब्दः पूर्ववाक्येण समुच्चयार्थः। अपि च हे यूप रथाय जीवसे रथारोहणपूर्वकाय जीवनाय। यद्वा चरथायेत्येकमेव पदम्। चरथं चरणमाचारस्तस्मै जीवनाय च नोऽस्मानूर्ध्वानुच्छ्रितान् कृधि कुरु, इत्यनेन पादेन मन्त्रो यदाह तत्तत्र चरणस्य विवक्षितत्वादस्मदुक्तमेवार्थं मन्त्र आह॥

चरथायेति शब्दमाश्रित्य तात्पर्यमभिधाय जीवस इति शब्दमाश्रित्य तद्दर्शयति—

यदि ह वा अपि नीत इव यजमानो भवति परि हैवैनं तत्संवत्सराय ददाति।।२२।।

हिन्दी—**यदि ह वै नीतः इव यजमानः भवति** यदि (यजमान मृत्यु द्वारा) ले जाये हुए के समान होता है अर्थात् यदि यजमान मृत्यु को प्राप्त करने वाला हो तो **तत्** इसके पाठ से **एनम्** इस (यजमान) को (होता) **परि संवत्सराय ददाति** (मृत्यु का) परिहार करके सवत्सर के लिए आयु देता है।

सा० भा०—यद्यपि यजमानो मृत्युना नीत एव भवति तथाऽपि तत्पादपाठेन मृत्युं परिहृत्यैनं संवत्सरायाऽऽयुष्प्रदाय कालात्मने ददाति॥

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'विदा देवेषु नो दुव' इत्याशिषमेवाऽऽशास्ते' ।।२३।।

हिन्दी—(पञ्चमी ऋचा के चतुर्थ पाद को कहकर उसकी व्याख्या कर रहे हैं—) 'विदा देवेषु नो दुव' अर्थात् हमारी (इस) सेवा को देवताओं में प्रचारित करो' **इति आशिषमेव आशास्ते** इस के पाठ से (होता यजमान के लिए) आशीर्वाद को ही कहता है।

सा० भा०—नोऽस्मदीयं दुवः परिचरणं देवेषु विदा वेदय कथयेत्यर्थः। अनेन स्वकर्मणां सफलत्वं प्रार्थयते॥

षष्ठीमृचं विधत्ते—

(षष्ठीऋचा)

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नामिति[1] ॥२४॥

हिन्दी—(षष्ठी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'जातो जायते सुदिनत्वे अह्नाम्' अर्थात् यह यूप नित्य प्रादुर्भूत होकर भी (यागयुक्त) दिन के लिए उत्पन्न होता है'—इति इस (षष्ठी ऋचा) का (होता अनुवाचन करता है)।

सा० भा०—अयं यूपो जातो नित्यप्रादुर्भूतोऽप्यह्नां दिवसानां मध्ये सुदिनत्वे याग-युक्तस्याह्नः सुदिनत्वाय जायते॥

एतमेवार्थं दर्शयति—

जातो ह्येष एतज्जायते ॥२५॥

हिन्दी—(इसी अर्थ का विधान कर रहे हैं—) क्योंकि **जातो हि एषः** उत्पन्न हुआ ही यह (यूप) **एतत् जायते** इस प्रकार उत्पन्न होता है।

सा० भा०—एतदेतेन पादपाठेन॥

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'समर्य आ विदथे वर्धमान' इति वर्धयन्त्येवैनं तत् ॥२६॥

हिन्दी—(षष्ठी ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'समर्य आ विदथे वर्धमानः' अर्थात् लोगों से युक्त यज्ञस्थल पर सभी ओर से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (यूप विद्यमान रहता है)—**इति तत्** इस ऋचा के पाठ से **एनम्** इस (यूप) को **वर्धयन्ति** वृद्धि को प्राप्त कराते हैं।

सा० भा०—समर्ये मनुष्यैर्यजमानादिभिर्युक्ते विदथे यज्ञदेश आसमन्ताद् वर्धमानो यूप आस्ते तत्पादपाठेन यूपं वर्धन्त्येव॥

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'पुनन्ति धीरा अपसो मनीषेति' पुनन्त्येवैनं तत् ॥२७॥

हिन्दी—(तृतीय पाद को कहकर व्याख्यान कर रहे हैं—) पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा' अर्थात् धीसम्पन्न कर्म के निमित्तभूत अपनी बुद्धि से पवित्र करते हैं—**इति तत्**

---

(१) ऋ० ३.८.५।

(ऋचा के) इस (भाग के) पाठ से एनं पुनन्ति इस (यूप) को शुद्ध करते हैं।

सा० भा०—धीरा धीमन्तो यजमानादयोऽपसः कर्मणो निमित्तभूतान् मनीषा स्वकीयया मनीषया बुद्ध्या पुनन्ति तमिमं यूपं शोधयन्ति। तत्तेन तृतीयपादपाठेन।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'देवया विप्र उदियर्ति वाचमिति' देवेभ्य एवैनं तन्निवेदयति ।।२८।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'देवया विप्र उदियर्ति वाचम्' अर्थात् ब्रह्मण देवता तक जाने वाली (यूपस्तुति रूप) वाणी का उच्चारण करते हैं, **इति तत्** इस पाठ से **देवेभ्यः एव** देवताओं के लिए **एनम्** इस (यूप) को **निवदेयति** निवेदित करता है।

सा० भा०—विप्रो ब्राह्मण ऋत्विक्संघो देवया देवगामिनी वाचं यूपस्तुतिमुदियर्ति, उद्गमयत्युच्चारयतीत्यर्थः। तत्तेन चतुर्थपादपाठेनैनं यूपं देवेभ्यः कथयति।

सप्तम्या समापनं विधत्ते—

(सप्तमी परिधानीया ऋचा)

'युवा सुवासाः परिवीत आगात्' इत्युत्तमया[१] परिदधाति ।।२९।।

हिन्दी—(सप्तमी ऋचा से कर्म के समापन का विधान कर रहे हैं—) 'युवा सुवासाः परिवीत आगात्' अर्थात् सुन्दर वस्त्र पहन कर आते हुए युवक के समान (यह यूप भी रस्सी से) चारो ओर से वेष्ठित हुआ आता है' **इत्युत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से (कर्म का) समापन करता है।

सा० भा०—उक्तास्वृक्षु येयमन्तिमा तयाऽनुवचनं समापयेद्यथा लोके सुवासाः शोभनवस्त्रोपेतो युवा यौवनयुक्तः पुरुषोऽग्रत आगच्छति, एवमयं यूपः परितो रशनया वेष्टित आगादिह कर्मण्यायातः।

यद्वा युवशब्देन यूपस्य प्राणरूपत्वं विवक्ष्यते तामेतां विवक्षां दर्शयति—

प्राणो वै युवा सुवासाः सोऽयं शरीरैः परिवृतः ।।३०।।

हिन्दी—(ऋचा में प्रयुक्त युवा शब्द से यूप की प्राणरूपता की विवक्षा कर रहे हैं—) **प्राणो वै युवा सुवासाः** प्राण ही (शरीर रूप) सुन्दर वस्त्र धारण करने वाला युवक है, **सः अयं शरीरैः परिवृतः** वह यह (प्राण) शरीराङ्गों से आच्छादित रहता है।

सा० भा०—कदाचिदपि जरारहितत्वात् प्राणस्य युवत्वं प्राणवेष्टनरूपत्वाच्छरीरावयवानां वस्त्ररूपत्वमीदृशप्राणरूपत्वेन यूपः प्रशस्यते॥

---

(१) ऋ० ३.८.४।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'स उ श्रेयान् भवति जायमानः' इति श्रेयाञ्छ्रेयान् ह्येष एतद्भवति जायमानः ।।३१।।

हिन्दी— (ऋचा के द्वितीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'स उ श्रेयान् यजमान:' अर्थात् वह (यूप) ही (कर्म में) उत्पन्न होता हुआ श्रेष्ठतर होता है— **इति एतद् जायमानः** यह (यूप) उत्पन्न होता हुआ **श्रेयान् श्रेयान् भवति** (छेद करके छीला जाने पर) श्रेष्ठ और (घृत से चुपोड़े जाने पर) श्रेष्ठतर होता है।

सा० भा०—ततः स उ स एव यूपो जायमानः कर्मणि निष्पद्यमानः श्रेयान् दिने दिने प्रशस्यतरो भवति। प्रथमतश्छेदनेन प्रशस्तत्वं ततस्तक्षणेन प्रशस्तत्वमञ्जनेन ततोऽपीत्येवंविधविवक्षया श्रेयाञ्श्रेयानिति वीप्सा प्रयुक्ता।।

उत्तरार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः' इति ये वा अनूचानास्ते कवयस्त एवैनं तदुन्नयन्ति ।।३२।।

हिन्दी—(ऋचा के उत्तरार्ध को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **तम्** उस (यूप) को **मनसा स्वाध्यः देवयन्तः** मन से ध्यान करते हुए और देवताओं की कामना करते हुए **धीरासः कवयः** बुद्धिमान ब्रह्मवादी **उन्नयन्ति** (स्तूयमान गुणों से) उत्कृष्ट बनाते हैं—**इति तत्** इस प्रकार इसके पाठ से **ये वै अनूचानाः** जो ये अनूचान (वेदज्ञ) हैं, **ते एव कवयः** वे ही कवि हैं। **ते एव एनम् उन्नयन्ति** वे (कविलोग) ही इस (यूप) को उत्कृष्ट करते हैं।

सा० भा०—तं यूपं धीरा बुद्धिमन्तः कवयोऽनूचानादय उन्नयन्ति स्तूयमानैर्गुणैरुच्छ्रितं कुर्वन्ति। कीदृशाः कवयः, स्वाध्यः सुष्ठ्वासमन्ताद्ध्यायतीति स्वाधीस्तस्य बहुवचनं सुधिय इत्यर्थः। मनसा स्वकीयेन देवयन्तो देवानाप्तुमिच्छन्तः। उक्त एवार्थो ये वाऽनूचाना इत्यादिना स्पष्टीकृतः।

अत्र प्रथममञ्मो यूपमनुब्रूहीति प्रेषितो यथाऽञ्जन्ति त्वामिति प्रथमामन्वाह तथा यूपायोच्छ्रीयमाणायानुब्रूहीति[१] प्रेषित उच्छ्रयस्वेत्याद्या ऋचः पञ्चानुब्रूयात्। तथा यूपाय परिवीयमाणायानुब्रूहीति[२] प्रेषितो युवा सुवासा इत्येतामनुब्रूयात्।।

उक्तमन्त्रसंख्यादिकं दर्शयति—

ता एताः सप्तान्वाह रूपसमृद्धा, एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं, यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति, तासां त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमां,

---

(१) आप०श्रौ० ७.१०.६। (२) आप०श्रौ० ७.११.४।

ता एकादश संपद्यन्त, एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप् त्रिष्टुबिन्द्रस्य वज्र इन्द्रायतनाभिरेवाऽऽभी राध्नोति य एवं वेद, त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह; यज्ञस्यैव तद्बर्सौ नह्यति स्थेम्ने बलायाविस्रंसाय ।। ३ ३ ।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त ऋचाओं की संख्या इत्यादि को दिखला रहे हैं—) **ताः एताः रूपसमृद्धाः सप्त अन्वाह** (वह होता) उन इन (कर्म के) अनुरूप सात (ऋचाओं) का अनुवाचन करता हैं। **यद् रूपसमृद्धम्** जो यह रूप की समृद्धि (अनुरूपता) है **एतद्वै यज्ञस्य समृद्धम्** यही यज्ञ की समृद्धि है। **यत् क्रियमाणं कर्म ऋग् अभिवदति** जिस किये जाते हुए कर्म को ऋचा कहती है। **तासाम्** उन (सात ऋचाओं) में **त्रिः प्रथमां त्रिः उत्तमाम्** तीन बार प्रथम और तीन बाद अन्तिम (ऋचा) का **अन्वाह** अनुवाचन करता है। **ताः एकादश सम्पद्यन्ते** (इस प्रकार) वे ऋचाएँ ग्यारह हो जाती हैं। **एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् छन्द ग्यारह अक्षरों वाला होता है। **त्रिष्टुप् इन्द्रस्य वज्रः** त्रिष्टुप् छन्द इन्द्र का वज्ररूप हैं। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **इन्द्रायतनाभिः** एव इन्द्र रूप आयतन से **अभिराध्नाति** सभी ओर समृद्धि को प्राप्त करता है । **त्रिः प्रथमां त्रि उत्तमाम् अन्वाह** तीन बार प्रथम और तीन बार अन्तिम (ऋचा) का अनुवाचन करता है **तद्** उससे **यज्ञस्य बर्सौ** यज्ञ की दोनों (प्रारम्भिक और अन्तिम) गाठों को **स्थेम्ने** स्थिरता के लिए, **बलाय** मजबूती के लिए और **अविस्रंसाय** शिथिल न होने के लिए **नह्यति** बाँधता है।

सा० भा०—त्रिष्टुभ इन्द्रस्य वज्रत्वमर्थवादान्तरे द्रष्टव्यम्।।

अथ मीमांसा—द्वादशाध्यायस्य तृतीयपादे चिन्तितम्।

'उद्दिवेत्युच्छ्रयस्वेति विकल्पो वा समुच्चयः।
विकल्पः स्मारकत्वैक्यात्प्रकारान्यत्वोऽन्तिमः[१]।।'

यूपस्योच्छ्रयणे करण एष मन्त्रोऽध्वर्युणा पठ्यते[२]—'उद्दिवँस्तभानान्तरिक्षं पृण पृथिवीमुपरेण दृँह'[३] इति। उच्छ्रीयमाणाय यूपाय प्रेषितेन होत्राऽयं मन्त्रः पठ्यते[४]—'उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि'[५] इति। अनयोर्यूपोच्छ्रयणस्मारणमेकमेव कार्यं तस्माद् विकल्प इति चेत्। मैवम्। करणमन्त्रः 'उच्छ्रयणं करोमि' इत्येवं स्मारयति। हौत्रस्तु

---

(१) जै०न्या०वि० १२.३.१६.३६.३८।
(२) तथा चाध्वर्युवेदे एवं विहितः—पृणेत्याहैषां लोकानां विधृत्यै' इति तै०सं० ६.३.४। तथापस्तम्बोऽप्याह ७.१०.७।
(३) तै०सं० १.३.६१।
(४) तथा चात्र होतृवेदे विहितः—'उच्छ्रयस्व वनस्पत इत्युच्छ्रीयमाणायाभिरूपा' इति। तथाश्वलायनोऽप्याह ३.१.९।
(५) ऋ० ३.८.३।

क्रियमाणमुच्छ्रयणमनुवदन्नध्वर्योः 'यूपोच्छ्रणं कर्तव्यम्' इत्येवंविधां स्मृतिं जनयति। तत्र स्मार्यमाणस्योच्छ्रयणस्यैकत्वेऽपि कर्तव्यमित्यस्य करोमित्यस्य च स्मृतिप्रकारस्यान्यत्वान्न कार्यैक्यं तेन समुच्चयः॥

तत्रैवान्यच्चिन्तितम्—

"उच्छ्रयस्व समिद्धस्येत्यादीनां किं विकल्पना।
समुच्चयो वा कार्यैक्यादाद्योऽनुस्मृतयेऽन्तिमः ॥"

उच्छ्रयस्वेव[१] इत्येका 'समिद्धस्य श्रयमाणः'[२] इति द्वितीया, ऊर्ध्व ऊ षु ण[३] इति तृतीया, ऊर्ध्वो नः पाहीति[४] चतुर्थी। ता एताः क्रियमाणमनुवदन्त्यो होत्रा पठ्यन्ते। तासां यूपोच्छ्रयणकर्तव्यतास्मरणस्य कार्यस्यैकत्वाद् विकल्प इति। चेत्, मैवम्। प्रथममन्त्रेणोत्पन्नयाः स्मृतेरुत्तरोत्तरमनुस्मृतेः पृथक्प्रयोजनत्वात्। तस्मात् समुच्चयः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्यस्य षष्ठाध्याये द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के द्वितीय खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—यूपाञ्जनादिसंबद्धा ऋचो विधाय यूपविषयं किञ्चिद् विचारमवतारयति—

(अनुप्रहरणविचारः)

तिष्ठेद् यूपाः३अनुप्रहरे३त्, इत्याहुः ॥१॥

हिन्दी—(अब यूप विषयक कुछ विचार को अवतरित कर रहे हैं—) **तिष्ठेद् यूपाः अनुप्रहरेत्** (कर्म की समाप्ति हो जाने पर यह) यूप (अपने) स्थान पर रहे अथवा अग्नि में डाल दिया जाय—**इत्याहुः** इस (द्वैध स्थिति पर विचार करने के लिए कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं।

सा० भा०—कर्मणि समाप्ते सति पश्चादयं यूपः किं स्वस्थाने तिष्ठेत् किं वा तं यूपं वह्नौ प्रहरेदित्येवं विचारं ब्रह्मवादिन आहुः। विचारार्थं[५] प्लुतिद्वयम्॥

तत्र कामनाविशेषेण स्थितिपक्षं स्वीकरोति—

---

(१) ऋ० ३.८.३। (२) ऋ० ३.८.२। (३) ऋ० १.३६.१३।
(४) ऋ० १.३६.१४। (५) 'विचार्यमाणानाम्'–इति पा०सू० ८.२.९७।

तिष्ठेत् पशुकामस्य ।।२।।

हिन्दी—(इस विषय में कामना-विशेष से अपने स्थान पर रखने के पक्ष को स्वीकार कर रहे हैं—) **पशुकामस्य** पशु की कामना करने वाले (यजमान) का (यूप) **तिष्ठेत्** अपने स्थान ही रहना चाहिए।

सा० भा०—तदेतदुपपादयितुमाख्यायिकामाह—

(यूपावस्थानविषयकाख्यायिका)

देवेभ्यो वै पशवोऽन्नाद्यायाऽऽलम्भाय नातिष्ठन्त तेऽपक्रम्य प्रतिवावदतोऽतिष्ठन्नास्मानालप्स्यध्वे नास्मानिति ततो वै देवा एतं यूपं वज्रमपश्यंस्तमेभ्य उदश्रयंस्तस्माद् बिभ्यत उपावर्तन्त तमेवाद्याप्युपावृत्तास्ततो वै देवेभ्यः पशवोऽन्नाद्यायाऽऽलम्भायातिष्ठन्त ।।३।।

हिन्दी—(इस विषय में आख्यायिका को कह रहे हैं—) **देवेभ्यः अन्नाद्याय आलम्भाय पशवः न अतिष्ठन्त** कभी देवताओं के (दधि रूप) अन्नभक्षण के लिए और (कर्मों में) आलम्भन के लिए पशु खड़े नहीं हुए। **ते** वे (पशु) **अपक्रम्य** उन (देवताओं से) दूर जाकर **प्रतिवावदतः** बार-बार इस प्रकार प्रत्युत्तर देते हुए खड़े हो गये कि हे देवताओं! **न अस्मान् आलप्स्यध्वे न अस्मान्** तुम लोग हम लोगों को नहीं प्राप्त कर सकते, हम लोगों को (कभी भी) नहीं प्राप्त कर सकते। **ततो वै देवाः** तब देवताओं ने **तम् एभ्यः उदश्रयन्** उस (वज्ररूप) यूप को इन (पशुओं को भयभीत करने) के लिए ऊपर करके गाड़ दिया। **तस्माद् बिभ्यतः उपावर्तन्त** उस (वज्ररूप यूप) से भयभीत हुए वे (पशु) वापस लौट आये। **वै** (इसलिए) **अद्यापि तमेव उपावृत्ताः** आज भी उस यूप की ओर (मुख करके पशु) खड़े होते हैं। **ततः** तभी से ही **देवेभ्यः अन्नाद्याय आलम्भाय पशवः अतिष्ठन्त** देवताओं के (दधि रूप) अन्न के लिए और कर्मों में आलम्भन के लिए पशु खड़े रहते हैं।

सा० भा०—पुरा कदाचिद्देवेभ्यो देवानामन्नाद्याय पयोदध्याद्यन्नभक्षणायाऽऽलम्भायाग्नीषोमीयवायव्यादिपश्वालम्भनकर्मणे च पशवो नातिष्ठन्त नाङ्गीकृतवन्तोऽनङ्गीकृत्य ते पशवो देवेभ्योऽपक्रम्य प्रतिवावदतः प्रत्युत्तरं पुनः पुनर्वदन्तो दूरेऽतिष्ठन्। किं तदुत्तरमिति? तदुच्यते—हे देवा यूयं कदाचिदपि नास्मानालप्स्यध्वेऽस्मान् पशूनालब्धुं कर्मणि विशसितुं समर्था न भविष्यथ। पुनरपि नास्मानितिवाक्यावृत्तिरादरार्था। सर्वथैवास्मदालम्भो न घटिष्यते। तत्प्रत्युत्तरं श्रुत्वा देवाः पशुभीतिहेतुमेतं यूपं वज्ररूपमपश्यन्। यूपस्य वज्रत्वश्रुतिः पूर्वमेवोदाहृता। तं यूपमेभ्यः पश्वर्थमुदश्रयन्, ऊर्ध्वमवस्थापयन्। तस्मादुच्छ्रिताद् यूपाद् बिभ्यतः पशवो देवानुपावर्तन्त। यस्मादेवं पूर्वं वृत्तं तस्माद् इदानीमपि यागेषु तमेव

यूपमुद्दिश्य पशव उपावृत्ता दृश्यन्ते। ततो देवानां दध्याद्यन्नाय कर्मस्वालम्भाय च पशवोऽङ्गीकृतवन्तः॥

एतद्वेदनं यूपावस्थानं च प्रशंसति—

तिष्ठन्तेऽस्मै पशवोऽन्नाद्यायाऽऽलम्भाय य एवं वेद यस्य चैवं विदुषो यूपस्तिष्ठति ।।४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान और यूपावस्थान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है और **यस्य च एवं विदुषः** इस प्रकार जानने वाले जिस (यजमान) का **यूपः तिष्ठति** यूप खड़ा रहता है **अस्मै** इस यजमान के **अन्नाद्याय आलम्भाय** (दुग्धादि रूप) अन्न भक्षण के लिए और (कर्मों में) आलम्भन के लिए **पशवः तिष्ठन्ते** पशु खड़े रहते हैं।

सा॰भा॰—यस्य यजमानस्येत्यर्थः॥

अथ फलविशेषाय प्रहरणपक्षमुपादत्ते—

(यूपस्यानुप्रहरणविधानम्)

अनुप्रहरेत् स्वर्गकामस्य ।।५।।

हिन्दी—(फल-विशेष के लिए प्रहरण पक्ष का समर्थन कर रहे हैं—) **स्वर्गकामस्य** स्वर्ग की कामना करने वाले (यजमान) का (यूप) **अनुप्रहरेत्** (कर्म की समाप्ति पर) अग्नि में डाल देना चाहिए।

सा॰भा॰— कर्मसमाप्तिमनु तं यूपमग्नौ प्रक्षिपेत्॥

तदेतदुपपादयति—

तमु ह स्मैतं पूर्वेऽन्वेव प्रहरन्ति ।।६।।

हिन्दी—(इसको उपपादित कर रहे हैं—) **पूर्वे** पहले (स्वर्ग की कामना वाले यजमान) **तमु एतम्** उस इस (यूप) को **अनु प्रहरन्ति एव** (कर्म-समाप्ति के) बाद में अग्नि में ही डाल देते हैं।

सा॰भा॰—पूर्वे यजमानाः स्वर्गकामाः कर्मसमाप्तिमनु तमेतं यूपं प्रहरन्त्येव॥

तत्रैव युक्त्यन्तरमाह—

यजमानो वै यूपो यजमानः प्रस्तरोऽग्निर्वै देवयोनिः सोऽग्नेर्देवयोन्या आहुतिभ्यः संभूय हिरण्यशरीर ऊर्ध्वः स्वर्गं लोकमेष्यतीति ।।७।।

हिन्दी—(उस विषय में अन्य युक्ति को कह रहे हैं—) **यजमानः वै यूपः** यूप ही यजमानरूप है और **यजमानः प्रस्तरः** प्रस्तर नामक दर्भमुष्टि यजमान है। **अग्निर्वैरूप**

देवयोनिः अग्नि देवताओं का उत्पत्ति-स्थान है। **सः** वह (यजमान) **देवयोन्या अग्नेः** देवयोनिरूप अग्नि में **आहुत्या** आहुति द्वारा **हिरण्यशरीर सम्भूय** हिरण्य शरीर वाला होकर **ऊर्ध्वः** ऊपर की ओर **स्वर्गं लोकम् एष्यति** स्वर्गलोक को जाएगा (प्राप्त करेगा)।

सा० भा०—योऽयं यूपोऽस्ति यश्च प्रस्तराख्यो दर्भमुष्टिस्तयोर्यजमानवत्कर्मणि मुख्यत्वाद् यजमानत्वापचारः। अग्निश्च देवानां योनिः कारणमग्निसाध्यकर्मणो देवजन्महेतुत्वात्। एवं त्वोपचारः। एवं सति स यजमानो देवयोन्या अग्नेस्तस्मिन् हुताद् यूपादाहुतिभिश्च संभूय देवजन्म प्राप्य सुवर्णमयशरीर ऊर्ध्वाभिमुखः स्वर्गं लोकं प्राप्स्यति। तस्मात् स्वर्गकामस्य यूपप्रहरणं युक्तम्॥

ननु इदानींतनैः स्वर्गकामैः क्रतोर्यूपो न प्रह्रियत इत्याशङ्क्य तेषां प्रतिनिधिं दर्शयति—

अथ ये तेभ्योऽवर आसंस्त एतं स्वरुमपश्यन् यूपशकलं तं तस्मिन् कालेऽनुप्रहरेत् तत्र स काम उपाप्तो योऽनुप्रहरणे तत्र स काम उपाप्तो यः स्थाने॥८॥

हिन्दी—ये तेभ्यः अवरे आसन् उन (अनुष्ठान करने वाले ऋषियों) से परवर्ती जो (याग-सम्पादन करने वाले) थे, **ते** उन लोगों ने **एतं यूपशकलं स्वरुम्** इस यूप के स्वरु नामक टुकड़े को **अपश्यन्** देखा। **तम्** उस (यूप के स्वरु नामक टुकड़े) को **तस्मिन् काले** उसी (यूप के प्रक्षेप) के समय **अनुप्रहरेत्** फेंक देना चाहिए। **तत्र अनुप्रहरणे** इस अनुप्रहरण के समय **यः कामः** जो कामना होती है, **सः उपात्तः** वह प्राप्त हो जाती है और **तत्र यः स्थाने** जो वहाँ खड़े रहने पर होती है, **सः कामः उपात्तः** वह कामना प्राप्त हो जाती है।

सा० भा०—पूर्वसिद्धेभ्योऽनुष्ठातृभ्य ऋषिभ्योऽवरे ये केचिदर्वाचीना इदानींतना यजमाना आसंस्ते सर्वे यूपस्य प्रतिनिधित्वेन यूपशकलमेतं स्वरूनामकं स्वल्पं काष्ठखण्डमपश्यन्। तस्मादिदानींतनो यजमानस्तस्मिन् यूपप्रहरणकाले तं स्वरुमनुप्रहरेत्।[1] एतच्च शाखान्तरे श्रूयते—'देवा वै संस्थिते सोमे प्रस्रुचोऽहरन् प्र यूपं तेऽमन्यन्त यज्ञवेशसं वा इदं कुर्म इति ते प्रस्तरस्रुचां निष्क्रयणमपश्यन्, स्वरुं यूपस्य संस्थिते सोमे प्रस्तरं प्रहरति जुहोति स्वरुमयज्ञवेशसाय'[2] इति। तथा सति यूपप्रहरणे यः काम उक्तः स कामस्तत्र स्वरुप्रहरणे प्राप्तो भवतीति यूपप्रतिनिधित्वेन स्वरोः प्रक्षिप्तत्वात्। यश्च यूपस्थाने पशुप्राप्तिलक्षणः काम उक्तः सोऽपि तत्र प्रक्षेपणपक्षे प्राप्तो भवति यूपस्य स्वरूपेणावस्थितत्वात्। तदेतत्स्वरुप्रहरणम् आपस्तम्बेन दर्शितम्—'जुह्वां स्वरूमवदायानूयाजान्ते जुहोति द्यां ते धूमो गच्छतु'[3] इति।

---

(१) 'अथ यस्मात् स्वरूर्नाम? एतस्माद् वै-एषोऽपच्छिद्यते, तस्यैतत् स्वमेवारुर्भवति, तस्मात् स्वरुर्नाम'–इति शत०ब्रा० ३.७.१.२४।

(२) तै०सं० ६.३.४.९। (३) आप०श्रौ० ७.२७.४।

अथाग्नीषोमीयपश्वालम्भं विधत्ते—

(अग्नीषोमीयपश्वालम्भनविधानम्)

सर्वाभ्यो वा एष देवताभ्य आत्मानमालभते यो दीक्षतेऽग्निः सर्वा देवताः सोमः सर्वा देवताः स यदग्नीषोमीयं पशुमालभते सर्वाभ्य एव तद्देवताभ्यो यजमान आत्मानं निष्क्रीणीते ।।९।।

हिन्दी—(अब अग्नीषोमीय पशु के आलम्भन का विधान कर रहे हैं—) **यः दीक्षते** जो व्यक्ति (सोमयाग में) दीक्षा ग्रहण करता है, **एषः सर्वाभ्यः एव देवताभ्यः** वह सभी देवताओं के लिए **आत्मानम् आलभते** अपने को आलभन के लिए समर्पित कर देता है। **अग्निः सर्वाः देवताः** अग्नि ही सम्पूर्ण देवता रूप वाला है और **सोमः सर्वाः देवताः** सोम सभी देवताओं के रूप वाला है। **सः यद् अग्नीषोमीयं पशुम् आलभते** जो अग्नि और सोम से सम्बन्धित पशु का आलभन करता है, **सः यजमानः** वह (सोमयाग का) यजन करने वाला (व्यक्ति) **सर्वाभ्यः एव देवताभ्यः** सम्पूर्ण ही देवताओं से **आत्मानं निष्क्रीणीते** अपने को खरीद लेता है।

सा० भा०—यो यजमानो दीक्षते सोमयागे दीक्षां प्राप्नोति स यजमानः सर्वदेवतार्थमात्मानमेव पशुत्वेनाऽलब्धुमुपक्रमते। अत्र च योऽग्निर्यश्च सोमस्तावुभौ सर्वदेवतात्मकावग्नेराहुत्यधिकरणत्वेन सोमस्य च होमद्रव्यत्वेन च सर्वोपकारत्विात्। तथा सत्यग्नीषोमदेवताकपश्वालम्भनेन सर्वदेवतानां सकाशाद्यजमानः स्वात्मानं निष्क्रीणीतवान् भवति। तस्मादग्नीषोमीयः पशूरालब्धव्यः। सोऽयमर्थः श्रुत्यन्तरे संगृहीतः—'पुरा खलु वावैष मेधायाऽऽत्मानमारभ्य चरति यो दीक्षते यदग्नीषोमीयं पशुमालभत आत्मनिष्क्रयणमेवास्य'[१] इति।।

अथ पूर्वोत्तरपक्षाभ्यां पशुशरीरस्य रूपविशेषं निश्चिनोति—

(पशुशरीररूपविशेषविधानम्)

तदाहुर्द्विरूपोऽग्नीषोमीयः कर्तव्यो द्विदेवत्यो हीति, तत्तन्नाऽऽदृत्यं, पीव इव कर्तव्यः, पीवोरूपा वै पशवः कृशित इव खलु वै यजमानो भवति तद्यत् पीवा पशुर्भवति यजमानमेव तत्स्वेन मेधेन समर्धयति ।।१०।।

हिन्दी—(अब पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष के द्वारा पशुशरीर के रूपविशेष का निर्धारण कर रहे हैं—) (पूर्वपक्ष) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं—**द्विरूपः अग्नीषोमीयः कर्त्तव्यः** अग्नि और सोम से सम्बन्धित पशु को दो रूप वाला (सफेद

(१) तै०सं० ६.१.११.६।

और काला) होना चाहिए क्योंकि **द्वि देवत्यः** (वह पशु) दो देवताओं से सम्बन्धित होता है। (समाधान) **तद् न आदृत्यम्** यह (कथन) आदर करने योग्य (मानने योग्य) नहीं है। **पीवः इव कर्त्तव्यः** वस्तुतः स्थूल (शरीर वाले पशु) का (आलभन) करना चाहिए क्योंकि **पीवो रूपाः वै पशवः** पशु स्थूल (शरीर वाले) ही होते है और **यजमानः खलु वै कृशितः इव भवति** यजन करने वाला (व्यक्ति) (याग के दिन थोड़ा दूध लेने के कारण) कृश (दुबले शरीर) के समान होता है। **तद् यत्** तो जो **पीवः पशुः भवति** (अग्नीषोमीय) पशु स्थूल शरीर वाला होता है, **तत् स्वेन मेधेन** वह अपने (यज्ञ के साधनभूत) मेध से **यजमानमेव** यजन करने वाले व्यक्ति को ही **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—तत्तत्राग्नीषोमीयपशौ ब्रह्मवादिनः पूर्वपक्षमाहुः। यस्मादस्य पशोरग्निश्च सोमश्चेत्येते द्वे देवते तस्मात् तदनुसारेण यः पशुर्द्विरूपः शुक्लकृष्णादिवर्णद्वयोपेतः स कर्तव्य इति तदेतद् ब्रह्मवादिमतमनादरणीयम्। किं तु पीव इव शरीरपुष्ट्या स्थूल एव पशु कर्तव्यः। लोके हि पशवः पीवोरूपा वै मेदोवृद्ध्या वै प्रायेण स्थूलरूपा एव भवन्ति। यजमानस्तु पश्वनुष्ठानदिने कृशित इवोपसद्दिनेषु स्वल्पक्षीराहारेण तदानीं कृश एव भवति। यत्तथा सति यद्ययं पशुः स्थूलो भवेत्तत्तेन पशुस्थौल्येन कृशशरीरं यजमानमेव स्वेन मेधेन स्वकीययज्ञसाधनरूपेण समृद्धं करोति॥

पुनरपि पूर्वोत्तरपक्षाभ्यां पशुलक्षणस्य हविषः शेषभक्षणमुपपादयितुं पूर्वपक्षमाह—

(पशुलक्षणस्य हविषः शेषभक्षणविवेचनम्)

(तत्रपूर्वपक्षः)

तदाहुर्नाग्नीषोमीयस्य पशोरश्नीयात् पुरुषस्य वा एषोऽश्नाति योऽग्नीषोमीयस्य पशोरश्नाति, यजमानो ह्येतेनाऽऽत्मानं निष्क्रीणीत इति ॥११॥

हिन्दी—(पुनः पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष द्वारा पशुरूप हवि के शेषभाग के भक्षण को उपादित करने को लिए पूर्वपक्ष को कह रहे हैं—) **तदाहुः** उस (पशुरूप हवि के शेषभाग के विषय में कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं—**अग्नीषोमीयस्य पशोः न अश्नीयात्** अग्नीषोमीय पशु के (अवशिष्ट मांसरूप हवि को) नहीं खाना चाहिए। **यो अग्नीषोमीयस्य पशोः अश्नाति** जो अग्नीसोम से सम्बन्धित पशु की (अवशिष्ट हवि) का भक्षण करता है, **एषः पुरुषस्य एव अश्नाति** यह पुरुषरूप (अवशिष्ट हवि) का ही भक्षण करता है क्योकि **यजमानः हि** यजन करने वाला **एतेन** इस (पशु) के बदले ही **आत्मानं निष्क्रीणीते** अपने को (देवताओं से) खरीदता है।

सा० भा०—तत्तत्र पशौ पूर्वपक्षिण आहुरग्नीषोमीयस्य पशोर्मांसं नाश्नीयाद् यस्तद्भक्षयत्यसौ पुरुषस्य मांसमेव भक्षयति। यस्माद्यजमान एतेन पशुना स्वात्मानं निष्क्रीणीते

तस्मात् तत्स्वरूपोऽयं पशुः। इतिशब्दः पूर्वपक्षसमाप्त्यर्थः।।

तं निराकृत्य सिद्धान्तमाह—

(सिद्धान्तपक्षः)

तंत्तन्नाऽऽदृत्यं, वार्त्रघ्नं वा एतद्धविर्यदग्नीषोमीयोऽग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रो वृत्रमहंस्तावेनमब्रूतामावाभ्यां वै वृत्रमवधीर्वरं ते वृणावहा इति वृणाथामिति तावेतमेव वरमवृणातां श्वः सुत्यायां पशुं स एनयोरेषोऽ-च्युतो वरवृतो ह्येनयोस्तस्मात्तस्याशितव्यं चैव लीप्सितव्यं च ।।१२।।

हिन्दी—(उस पूर्वपक्ष का निराकरण करके सिद्धान्त को कहते हैं—) **तत् तत् न आदृत्यम्** (ब्रह्मवादियों का) वह (कथन) आदरयोग्य नहीं है, क्योंकि **यद् अग्नीषोमीयः** जो अग्नि और सोम से सम्बन्धित पशु है, **एतद् वार्त्रघ्नं वै** यह वृत्र को मारने वाले (इन्द्र) से सम्बन्धित है। **अग्नीषोमाभ्यामेव** अग्नि और सोम की सहायता से ही **इन्द्रः वृत्रम् अहन्** इन्द्र ने वृत्र को मारा था। **तौ एवं एनम् अब्रूताम्** उन दोनों (अग्नि और सोम) ने इस (इन्द्र) ने कहा कि **आवाभ्यां वै वृत्रम् अवधीः** हम दोनों की सहायता से ही तुमने वृत्र को मारा है अतः **ते वरं वृणावहै** तुम से हम दोनों वर माँगते हैं। **वृणाथाम् इति** (तब इन्द्र ने कहा कि) तुम दोनों वर माँगो। **तौ** उन दोनों (अग्नि और सोम) ने **श्वः सुत्यायम्** सोमाभिषव के अगले दिन **पशुम्** पशु को **एतम् वरम् अवृणा-ताम्** वर रूप में माँगा। **सः एषः एनयोः** वह यह पशु इन दोनों द्वारा **अच्युतः वरवृतः** निश्चित रूप से वर में माँगा गया है। **तस्मात्** इसी कारण **अस्य** इस (पशु) का मांस **अशितव्यम्** भक्षण करना चाहिए और **लीप्सितव्यं च** (अधिक भक्षण करने के लिए) लिप्सा करना चाहिए।

सा० भा०—तत्पूर्वपक्षिभिरुक्तमनादरणीयं योऽग्नीषोमीयः पशुरस्ति एतद्वार्त्रघ्नं वृत्रहत्यानिमित्तं हविः। कथमेतदिति, तदुच्यते—अग्नीषोमाभ्यां निमित्तभूताभ्यामिन्द्रो वृत्रं हतवान्।

अस्यार्थस्य श्रुत्यन्तरद्योतनार्थो वैशब्दः। सोऽयमर्थः श्रुत्यन्तरे 'त्वष्टा हतपुत्र' इत्यनुवाके प्रपञ्चितः। वृत्रे हते समीन्द्रं प्रत्यग्नीषोमावेवमब्रूतां हे इन्द्र वां निमित्तं वृत्रं हतवानसि। अतो वृत्रवधस्य निमित्तभूतावावां तव सकाशाद् वरं प्रार्थयावहै। इत्युक्त्वा वरं प्रार्थितवन्तौ श्वः सुत्यायां परेद्युः सोमाभिषवे प्रसक्ते सति पूर्वदिने पशुरूपं वरं वृतवन्तौ। स एष पशुरेनयोरग्नीषोमयोरच्युतोऽवश्यं कर्तव्यः, वरेण वृतत्वात्। तस्मादेवं प्रशस्तत्वात् तस्य पशोर्मांसमशितव्यं चैव सर्वदा भक्षितव्यमेव। न केवलं भक्षणं किंतु लीप्सितव्यं च भक्षणात् पूर्वमादरेण महता लब्धुमेष्टव्यमपि। तावेतौ पूर्वोत्तरपक्षौ शाखान्तरे संगृहीतौ—'तस्मान्नाऽऽ-श्यं पुरुषनिष्क्रयणमथो खल्वाहुरग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रो वृत्रमहन्निति यदग्नीषोमीयं पशुमा-

लभते वार्त्रघ्न एवास्य स तस्माद्वाऽऽश्यम्'[१] इति।

अत्र मीमांसा—प्रथमाध्याये चतुर्थपादे चिन्तितम्—

"यजमानः प्रस्तरोऽत्र गुणो वा नाम वा स्तुतिः।
सामानाधिकरण्येन स्यादेकस्यान्यनामता॥
गुणो वा यजमानोऽस्तु कार्ये प्रस्तरलक्षिते।
अंशांशित्वाद्यभावेन पूर्ववन्नात्र संस्तुतिः॥
अर्थभेदादनामत्वं गुणश्चेत्प्रह्रियेत सः।
यागसाधकताद्वारा विधेयप्रस्तरस्तुतिः॥"[२]

इदमाम्नायते—'यजमानः प्रस्तरः' इति। तत्र यजमानस्य प्रस्तरशब्दो नामधेयं यागेनेत्यादाविव सामानाधिकरण्यादित्येकः पक्षः। गुणविधिरित्यपरः। तत्रापि यजमानकार्ये जपादौ प्रस्तरस्याचेतनस्य समार्थ्याभावात् गुणत्वं नास्ति। प्रस्तरकार्ये स्रुग्धारणादौ यजमानस्य शक्तत्वाद् यजमानरूपो गुणो विधीयते। एवं सति पश्चाच्छ्रुतस्य प्रस्तरशब्दस्य कार्यलक्षकत्वेऽपि प्रथमश्रुतो यजमानशब्दो मुख्यवृत्तिर्भविष्यति। न चात्र पूर्वन्यायेन स्तुतिः संभवति। अष्टाकपालद्वादशकपालयोरिवांशांशित्वाभावात्। 'वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता, ऊर्जोऽवरुध्यै'[३] इतिवत्स्तुतिरिति चेत्। न, क्षिप्रत्वादिधर्मवत्कस्यचिदुत्कस्याप्रतीतेः। तस्मान्नामगुणयोरन्यतरत्वमिति प्राप्ते ब्रूमः— गोमहिषयोरिवार्थभेदस्यात्यन्तप्रसिद्धत्वान्न नामधेयत्वं युक्तम्। गुणपक्षेऽग्नौ प्रहरणस्य प्रस्तरविषयत्वाद्यजमाने प्रहृते सति कर्मलोपः स्यात्। तस्मात् विधेयः प्रस्तरो यजमानशब्देन स्तूयते। यथा 'सिंहो देवदत्तः' इत्यत्र सिंहगुणेन शौर्यादिनोपेतो देवदत्तः सिंह इत्याख्यायते तथा यजमानगुणेन यागसाधनत्वेन युक्त प्रस्तरो यजमानशब्देन स्तूयते। एवं 'यजमानो वै यूपो यजमानः प्रस्तरः' इत्यादिषु द्रष्टव्यम्॥

चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयपादे[४] चिन्तितम् —

स्वरुं कुरुत इत्यत्र स्वरुर्यूपात्पृथक्क्रियाम्।
प्रयोजयेन्न वाऽऽद्योऽस्तु विशिष्टस्य विधानतः॥
आद्यस्य यूपखण्डस्य स्वरौ तस्य विशेषणे।
विहिते लाघवं तस्मादनुनिष्पन्न एव सः॥[५]

---

(१) तै०सं० ६.१.१६.६। (२) जै०न्या०वि० १.४.१३.२३।

(३) तै०सं० २.१.१.१।

(४) तेषाञ्च सूत्राणां द्विर्व्याख्यानमुक्तं शबरस्वामिना। तदाह च तन्त्ररत्नाकरः—व्याख्यानानन्तरं तु विस्तरोक्तस्य संक्षेपमात्रार्थं कृतं भाष्यकारेण'—इति।

(५) जै०न्या०वि० ४.२.१.१-७।

अग्नीषोमीयपशौ श्रूयते—'यूपस्य स्वरुं करोति'[१] इति। तत्र यूपो यथा छेदनस्य प्रयोजकः, तथा स्वरूरपि च्छेदनं प्रयोजयति। कुतः करोतीत्यनेन विशिष्टविधिप्रतीतेः। करोतिधातोर्भावना मुख्योऽर्थः। तत्र यूपशब्दोपलक्षितः खदिरादिवृक्षः करणं छेदनादिरिति-कर्तव्यता, 'छिन्नेन वृक्षेण स्वरुरुत्पादनीय' इति विशिष्टविधिः।[१] उत्पन्नस्य स्वरोर्विनियोग एवामाम्नातः—'स्वरुणा पशुमनक्ति'[२] इति। तस्मात्स्वरुश्छेदनस्य प्रयोजक इति प्राप्ते ब्रूमः—छिद्यमाजस्य यूपस्य यः प्रथमः पतितः शकलः स स्वरुरिति स्वरुत्वनाममात्रविधौर्लाघवात् यूपवत् वरुर्न च्छेदनस्य प्रयोजकः, किंतु यूपप्रयुक्ते छेदने स्वयमनुनिष्पद्यते'' इति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अग्नीषोमीयं पशुं विधाय तत्रैकादश प्रयाजान् विधत्ते—

(अग्नीषोमीयपशोः प्रयाजानां विधानम्)

आप्रीभिराप्रीणाति ॥१॥

हिन्दी—(अग्नीषोमीय पशु का विधान करके अब ग्यारह प्रयाजाओं का विधान कर रह हैं—) **आप्रीभिः आप्रीणाति** आप्री संज्ञक मन्त्रों द्वारा (होता) प्रसन्न करता है।

सा० भा०—तेषां प्रयाजादीनां याज्याः प्रीतिहेतुत्वादाप्रीशब्देनोच्यन्ते। एतच्च शाखान्तरे श्रुतम्—'आप्रीभिराप्नुवन्, तदाप्रीणामाप्रीत्वम्'[३] इति। ताभिराप्रीसंज्ञकाभिः प्रयाजादि-

(१) शत० ब्रा० ३.७.१.२४। कात्या० श्रौ० १.७.१७।

(२) तै०सं० ५ ५.७.१। 'स्वरूमन्तर्धाय स्वधितिना पशुं समनक्ति घृतेनाक्तौ पशुं त्रायेथामिति शिरसि। न वा स्वधितिना स्वरूणैव' इति आप० श्रौ० ७.१४.११-१२।

(३) अत एवोक्तं यास्केन—'अथात आप्रियः। आप्रियः कस्मात्? आप्नोतेः प्रीणातेर्वा 'आप्रीभिराप्रीणाति'–इति च ब्राह्मणम्–इति निरु० ८.२.१। इत आरभ्य अध्यायान्तं यावदाप्रीविचारः। द्र०—'यज्ञो वै प्रजापतिः आप्रीरपश्यत्, ताभिर्वै मुखत आत्मानमाप्रीणीत; यदेता आप्रियो भवन्ति'–इत्यादि तै०सं० ४.७.८.३। 'अथाप्रीभिश्चरन्ति यो दीक्षते तस्य रिरिचान इव आत्मा भवति; तमेताभिराप्रीभिराप्याययन्ति; तदाप्यायन्ति, तस्मादाप्रियो नाम। तस्मादाप्रीभिश्चरन्ति। ते वा एते एकादशप्रयाजा भवन्ति'–इत्यादि च शत०ब्रा० ३.८.१; पुनरश्वमेधप्रकरणे 'तम् (पशूम्) एताभिराप्रीभिराप्रीणात्' इत्याद्यपि ११.८.३.५।

भिराप्रीणाति देवताः, सर्वत्र प्रीणयेत् तत्प्रीत्यर्थं याज्या पठेदित्यर्थः।।

ताः प्रशंसति—

तेजो वै ब्रह्मवर्चसमाप्रियस्तेजसैवैनं तद् ब्रह्मवर्चसेन समर्धयति।।२।।

हिन्दी—(उन आप्री-संज्ञक मन्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **आप्रियः** आप्री मन्त्र **तेजः** (आज्यद्रव्य के कारण) तेज स्वरूप और **ब्रह्मवर्चसम्** (शास्त्रीप संस्कार का साधन होने से) ब्रह्मवर्चस् स्वरूप है। **तत्** इस (आप्री = याज्या के पाठ) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **तेजसा** तेज से और **ब्रह्मवर्चसेन** ब्रह्मवर्चस् से **समर्धयति** (होता) समृद्ध करता है।

सा० भा०—आज्यद्रव्यकत्वात् तेजस्त्वं शास्त्रीयसंस्कारसाधनत्वाद् ब्रह्मवर्चसत्वम्। तेन याज्यापाठेन यजमानस्य तदुभयं समृद्धं भवति।।

प्रथमं प्रयाजं विधत्ते—

समिधो यजति ।।३।।

हिन्दी—(प्रथम प्रयाज का विधान कर रहे हैं—) **समिधः यजति** समिध नामक याग को करता है।

विमर्श—(१) समित् नामक देवता होने के कारण यह याग समिध कहलाता है अथवा समित् नामक एक याग विशेष है।

सा० भा०—समिन्नामकदेवतात्वद्यागोऽपि समिध इत्यनेन शब्देनोच्यते। समिन्नामकयागं कुर्यादित्यर्थः। यद्वा हौत्रप्रकरणत्वात् समिद्देवताविषयां याज्यां पठेदित्यर्थः। तत्प्रकारं बौधायन आह—'यदा जानाति समिद्भ्यः प्रेष्येति तन्मैत्रावरुणः प्रेष्यति होता यक्षदग्निं समिधा सुषमिधा समिद्धमित्यथ होता यजति समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे तावेवमेव व्यतिषङ्गमुत्तरेण मैत्रावरुणः प्रेष्यति, उत्तरेणोत्तरेण होता यजति' इति। अस्यायमर्थः— समिद्भ्यः प्रेष्येति मन्त्रेणाध्वर्युर्मैत्रावरुणं प्रेष्यति तदानीमयं मैत्रावरुणः प्रैषसूक्तेन 'होता यक्षदग्निं समिधा'[१] इत्यनेन प्रथममन्त्रेण होतारं प्रेष्यति होताऽप्याप्रीसूक्ते[२] 'समिद्धो अद्य'[३] इत्येता प्रथमयाज्यां पठति। एवमुत्तरत्राध्वर्युर्मैत्रावरुणहोतारौ परस्परसंनिद्धौ स्वस्वमन्त्रयागं कुर्यातामिति तत्र प्रथमा याज्येति।।

अथ समिद्देवतां प्रशंसति—

---

(१) तै०ब्रा० ३.६.२।

(२) 'समिद्धो अद्य' इत्येकादशर्च नवमं (ऋ० १.१८८) सूक्तमांगस्त्यम्। पशावगस्त्यानामेकादशप्रयाजरूपमिदमाप्रीसूक्तम्।

(३) ऋ० १.१८८.१।

प्राणा वै समिधः, प्राणा हीदं सर्वं समिन्धते यदिदं किञ्च, प्राणानेव तत्प्रीणाति, प्राणान् यजमाने दधाति ।।४।।

हिन्दी—(समित् नामक देवता की प्रशंसा कर रहे हैं—) **प्राणाः वै समिधः** प्राण ही (सम्यक्प्रकार से प्रकाशन का हेतु होने के कारण) समिध है क्योंकि **यद् इदं किञ्च** यह जो कुछ भी (प्राणिसमूह) है **इदं सर्वम्** इन सभी को **समिन्धते** सम्यक् रूप से प्रकाशित करते है। अतः **तत्** इस (आज्या के पाठ) से **प्राणान् एव प्रीणाति** प्राणों को ही (होता) प्रसन्न करता है और **यजमाने** यजन करने वाले व्यक्ति में (प्राणों को प्रतिष्ठापित करता है)।

सा० भा०—'समिधः' समिन्धनस्य सम्यक् प्रकाशहेतवः प्रथमप्रयाजदेवताः। प्राणस्वरूपदेवताया एकत्वेऽपि समिध इति बहुवचनं पूजार्थम्। जगति 'यत्किञ्चिदिदं' शरीरजातमस्ति तत्सर्वं प्राणाः 'समन्धिते' प्रकाशयन्ति; अतस्तेषां समिद्रूपत्वम् तत्तेन याज्यापाठेन प्राणानेव तोषयति तद्यजमानेऽपि प्राणान् संपादयति। अत्र प्रयाजानां क्रमेण समिधः, तनूनपात्, नराशंसः, इळः, दुरः, उषासानक्ता, दैव्याहोतारा, तिस्रो देव्यः, त्वष्टा, वनस्पतिः, स्वाहाकृतयः, इत्येता देवताः। वशिष्ठशुनकात्रिवध्र्यश्वराजन्यानां नराशंसो द्वितीयः। अन्येषां तनूनपाद्द्वितीयः।।

तद्देवताविषयां द्वितीयां याज्यां विधत्ते—

तनूनपातं यजति प्राणो वै तनूनपात्स हि तन्वः पाति प्राणमेव तत्प्रीणाति, प्राणं यजमाने दधाति ।।५।।

हिन्दी—(उस देवता से सम्बन्धित द्वितीय याज्या को कह रहे हैं—) **तनूनपातं यजति** (आप्रीसूक्तगत) तनूनपात का यजन करता है। **प्राणः वै तनूनपात्** प्राण ही (शरीर का पोषण करने के कारण) तनूनपात् है; क्योंकि **सः हि तन्वः पाति** वह (प्राण) शरीर की रक्षा करता है। **तत्** इसके पाठ से **प्राणमेव प्रीणाति** प्राण को ही (होता) प्रसन्न करता है और **यजमाने प्राणं दधाति** यजमान में प्राण को प्रतिष्ठित करता है।

सा० भा०—अत्राध्वर्युप्रैषकारमापस्तम्ब आह—'समिद्भ्यः प्रेष्येति प्रथमं संप्रेष्यति। प्रेष्य प्रैष्येतीतरान्'[१] इति। अतोऽस्माद् द्वितीयपर्याये प्रेष्येति मन्त्रेणाध्वर्युर्मैत्रावरुणं प्रेष्यति। स च मैत्रावरुणः प्रैषसूक्तगतेन 'होता यक्षत्तनूनपातम्' इत्यनेन द्वितीयमन्त्रेण होतारं प्रेष्यति। स तु होताऽऽप्रीसूक्तगतां तनूनपादित्येतां द्वितीयां याज्यां पठेत्। तनूं शरीरं न पातयतीति तनूनपात्। शरीरे वसति प्राणे न पतति किंतु प्राणः शरीराणि चालयति अतस्तनूनपाद्देवस्य प्राणरूपत्वम्।।

---

(१) आप०श्रौ० ७.१४.७।

द्वितीयप्रयाजयाज्यान्तरं विधत्ते—

नराशंसं यजति; प्रजा वै नरो, वाक्शंसः, प्रजां चैव तद्वाचं च प्रीणाति, प्रजां च वाच च यजमाने दधाति ।।६।।

हिन्दी—(द्वितीय प्रयाज के लिए अन्य याज्या का विधान कर रहे हैं—) **नराशंसं यजति** आप्रीसूक्तगत नराशंस का यजन करता है; क्योंकि **प्रजा वै नरः** प्रजा ही नर है और **वाक् शंसः** वाणी शंस है। **तत्** इससे **प्रजां च वाचं च प्रीणाति** प्रजा और वाणी को प्रसन्न करता है तथा **प्रजां च वाचं च यजमाने दधाति** यजमान में प्रजा और वाणी को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—अध्वर्युप्रेषितो मैत्रावरुणो होता यक्षन्नराशंसमिति[१] मन्त्रेण होतारं प्रेष्यति होता नराशंसस्येति याज्या पठेत्। नरान् मनुष्याञ्शंसति वाचा स्तौतीति नराशंसः। तथा सति प्रजाया नरशब्दवाच्यत्वाद् वाचश्च शंसनहेतुत्वादुभयप्रीतिर्यजमानेऽपि तदुभयसंपत्तिः। अनयोरुभयोर्मन्त्रयोरधिकारिभेदेन व्यवस्थामापस्तम्ब आह—'नराशंसो द्वितीयः प्रयाजो वसिष्ठशुनकानाम् तनूनपादितरेषां गोत्राणाम्'[२] इति॥

तृतीयां प्रयाजयाज्यां विधत्ते—

इळो यजत्यन्नं वा इळोऽन्नमेव तत्प्रीणात्यन्नं यजमाने दधाति ।।७।।

हिन्दी—(तृतीय प्रयाज की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **इळः यजति** इळा का यजन करता है क्योंकि **इडः अन्नं वै** इडा ही अन्न है। **तत्** इससे **अन्नमेव प्रीणाति** अन्न को ही प्रसन्न करता है और **अन्नं यजमाने दधाति** यजमान में अन्न को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—"होता यक्षत्"[३] 'अग्निमीळे'[४] ईळित इति प्रेषितो होता 'आजुह्वान'[५] इत्येतां याज्यां पठेत्। इष्यत इति व्युत्पत्त्याऽन्नमिट्शब्दवाच्यम्॥

चतुर्थीं विधत्ते—

बर्हिर्यजति, पशवो वै बर्हिः, पशूनेव तत्प्रीणाति, पशून् यजमाने दधाति ।।८।।

हिन्दी—(चतुर्थी याज्या का विधान कर रहे हैं—) **बर्हिः यजति** कुश का यजन करता है क्योंकि **पशवः वै बर्हिः** पशु ही (पोषण का हेतु होने से) बर्हि हैं। **तत्** इससे **पशून् एव प्रीणाति** पशुओं को ही प्रसन्न करता है और **यजमाने पशून् दधाति** यजमान

(१) ऋ० १.१३.३।
(२) आप०श्रौ० (इष्टिहौत्रकल्पः) ४.११.१६।
(३) ऋ० १.१३९.१०।
(४) ऋ० १.१.१।
(५) ऋ० १०.११०.३।

में पशुओं को धारण कराता है।

सा० भा०—'होता यक्षद् बर्हिः सुष्टरीम्' इति मन्त्रेण प्रेषितो होता 'प्राचीनं बर्हिः'[१] इत्येतां याज्यां पठेत्। बृंहणस्य पोषणस्य हेतुर्बर्हिः, पशवश्च क्षीरादिदानेन तादृशत्वाद् बर्हिः स्वरूपाः॥

अथ पञ्चमीं विधत्ते—

दुरो यजति, वृष्टिर्वै दुरो वृष्टिमेव तत्प्रीणाति, वृष्टिमन्नाद्यं यजमाने दधाति।।९।।

हिन्दी—(अब पञ्चमी याज्या का विधान कर रहे हैं—) **दुरः यजति** दुर (द्वार देवता) का यजन करता है। **वृष्टिः वै दुरः** (जीवन का द्वार होने के कारण) वृष्टि ही द्वार है। **तत्** इससे **वृष्टिमेव पृणाति** वृष्टि को ही प्रसन्न करता है और **वृष्टिम् अन्नाद्यं यजमाने दधाति** यजमान में वृष्टि और अन्नाद्य को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—होता यक्षद्दूर ऋष्वा इत्यादिना मन्त्रेण प्रैषितो 'व्यचस्वतीरुर्विया'[२] इत्येतां याज्यां पठेत्। दुरो द्वारदेवतां वृष्टिश्च जीवनद्वारा॥

षष्ठीं विधत्ते—

उषासानक्ता यजति, अहोरात्रे वा उषासानक्ताऽहोरात्रे एव तत्प्रीणात्यहोरात्रयोर्यजमानं दधाति ।।१०।।

हिन्दी—(षष्ठी याज्या का विधान कर रहे हैं—) **उषासनक्ता यजति** उषा और रात्रि का यजन करता है; क्योंकि **अहोरात्रे वै उषासानक्ता** दिन और रात्रि ही उषासानक्ता है। **तत्** इससे **अहोरात्रे एव प्रीणाति** दिन और रात्रि को ही प्रसन्न करता है तथा **अहोरात्रयोः यजमानं दधाति** दिन और रात्रि में यजमान को प्रतिष्ठित करता है।

सा० भा०—होता यक्षदुषासानक्तेति मन्त्रेण प्रेषित 'आ सूष्वयन्ती'[३] इत्यादिका याज्यां पठेत्। उषः शब्दस्य नक्तशब्दस्य चाहोरात्रविषयत्वं लोकप्रसिद्धम्॥

सप्तमीं विधत्ते—

दैव्या होतारा यजति, प्राणापानौ वै दैव्या होतारा, प्राणापानावेव तत्प्रीणाति, प्राणापानौ यजमाने दधाति ।।११।।

हिन्दी— (सप्तमी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **दैव्या होतारा यजति** दिव्य होताओं का यजन करता है; क्योंकि **प्राणपानौ वै दैव्या होतारा** प्राण और अपान ही दिव्य होता होते हैं। **तत्** इससे **प्राणापानौ एव प्रीणाति** प्राण और अपान को ही प्रसन्न

---

(१) ऋ० १०.११०.४। (२) ऋ० १०.११०.५ (३) ऋ० १०.११०.६

करता है तथा **प्राणयानौ यजमाने दधाति** यजमान में प्राण और अपान को प्रतिष्ठापित करता है।

सा०भा०—होता यक्षदैव्या होतारेति मन्त्रेण प्रेषितो 'दैव्या होतारा प्रथमा'[१] इति याज्यां पठेत्।।

अष्टमी विधत्ते—

तिस्रो देवीर्यजति, प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यस्ता एव तत्प्रीणाति ता यजमाने दधाति ।।१२।।

हिन्दी—(अष्टमी याज्या का विधान कर रहे हैं—) **तिस्रः देवीः यजति** तीन देवियों का यजन करता है क्योंकि **प्राणः अपानः व्यानः वै** प्राण, अपान और व्यान ही **तिस्रः देव्यः** तीन देवियाँ है। **तत्** उससे **ताः एव** उन (प्राण, अपान और व्यान) को **प्रीणाति** प्रसन्न करता है तथा **ताः यजमाने दधाति** उन्हें यजमान में प्रतिष्ठापित करता है।

सा०भा०—होता यक्षत्तिस्र इत्यादिमन्त्रेण प्रेषित 'आ नो यज्ञम्'[२] इति याज्यां पठेत्। इळा सरस्वती भारतीतिशब्दैरभिधेया देव्यो यथा तिस्र एवं प्राणापानव्याना अपि संख्या-साम्यात् तिस्रो देव्यः।।

नवमीं विधत्ते—

त्वष्टारं यजति, वाग्वै त्वष्टा वाग्घीदं सर्वं ताष्टीव वाचमेव तत्प्रीणाति वाचं यजमाने दधाति ।।१३।।

हिन्दी—(नवमी याज्या का विधान कर रहे हैं—) **त्वष्टारं यजति** त्वष्टा का यजन करता है; क्योंकि **वाग् वै त्वष्टा** वाणी ही त्वष्टा है और **ताष्टीव वाग् हि इदं सर्वम्** त्वष्टा सम्बन्धी (काट-छाट की ध्वनि रूप) वाणी ही यह सब कुछ है। **तत्** इससे **वाचमेव प्रीणाति** वाणी को ही प्रसन्न करता है और **वाचं यजमाने दधाति** यजमान में वाणी को धारण कराता है।

सा०भा०—होता यक्षत्त्वष्टारमिति मन्त्रेण प्रेषितो होता 'य्र इमे द्यावापृथिवी'[३] इति याज्यां पठेत्। तक्षू त्वक्षू तनूकरणं इत्यत्र त्वक्षीत्यादिधातोरुत्पन्नः शब्दस्त्वष्टारं देवतामाचष्टे। वाचश्च तक्षणहेतुत्वात्त्वष्टृत्वं तदेव वाग्घीत्यनेन स्पष्टीक्रियते। यस्मादिदं सर्वं जगद्वाक् ताष्टीव तक्षतीव यथा तक्षणेन काष्ठं प्रौढमपि सूक्ष्मं भवति। एवं महान्तोऽपि पर्वतादयोऽल्पेनैव शब्देन गृह्यन्ते। तदेतज्जगत्तष्टमिव भवति।।

दशमीं विधत्ते—

---

(१) ऋ० १०.११०.५-७　　　　(२) ऋ० १०.११०.८

(३) ऋ० १०.११०.९

वनस्पतिं यजति, प्राणो वै वनस्पतिः, प्राणमेव तत्प्रीणाति प्राणं यजमाने दधाति ।।१४।।

हिन्दी—(दशमी याज्या को कह रहे हैं—) **वनस्पतिम् यजति** वनस्पति का यजन करता है; क्योंकि **प्राणो वै वनस्पतिः** प्राण ही वनस्पति है अतः **तत्** इससे **प्राणमेव प्रीणाति** प्राण को ही प्रसन्न करता है और **प्राणं यजमाने दधाति** यजमान में प्राण को धारण कराता है।

सा०भा०—होता यक्षद्वनस्पतिमित्यादिमन्त्रेण 'उपावसृजद्'[1] इति याज्यां पठेत्। वनस्पतिजन्यफलानां प्राणावस्थितिहेतुत्वाद्वनस्पतेः प्राणत्वम्।।

एकादशीं विधत्ते—

स्वाहाकृतीर्यजति, प्रतिष्ठा वै स्वाहाकृतयः प्रतिष्ठायामेव तद्यज्ञमन्ततः प्रतिष्ठपयति ।।१५।।

हिन्दी—(एकादशी याज्या को कह रहे हैं—) **स्वाहाकृतीः यजति** स्वाहाकृतियों का यजन करता है क्योंकि **प्रतिष्ठाः वै स्वाहाकृतयः** स्वाहकृतियाँ प्रतिष्ठा है। **तत्** इससे **अन्ततः** (कर्म के) अन्त में **यज्ञम्** यज्ञ को **प्रतिष्ठायामेव प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठा में ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा०भा०—होता यक्षदग्निं स्वाहेति मंत्रेण प्रेषितः 'सद्यो जातः'[2] इति याज्यां पठेत्। स्वाहाकृतीनामाहुतिसमाप्तिहेतुत्वात्प्रतिष्ठात्वं तन्मन्त्रपाठेनैनं यज्ञमन्ततः समाप्त्यवसरे प्रतिष्ठायामेव वैकल्यराहित्यरूपायां 'प्रतिष्ठापयति'[3]।।

दशतो बहुविधानामाप्रीसूक्तानामाम्नातत्वाद् विकल्पः स्याद् इत्याशङ्क्याधिकारिभेदेन व्यवस्थां विधत्ते—

ताभिर्यथऋष्याप्रीणीयाद्यद्यथऋष्याप्रीणाति[4],–यजमानमेव तद्बन्धु-

---

(१) ऋ० १०.११०.१० (२) ऋ० १०.११०.११।

(३) तै०ब्रा० ३.२ अनुवाके 'होता यक्षदिग्नम्'—इत्यादयः एकादशप्रयाजविषया द्वादश मैत्रावरुण प्रैषमन्त्राः, तृतीये 'समिद्धो अद्य मनुषः'—इत्याद्याः द्वादश होतुर्याज्याश्च एतद्। ब्राह्मणविधिक्रमत एव श्रुताः। माध्यन्दिन्यां च तथा आप्रियः २१.१२-२२, प्रयाजप्रैषमन्त्राश्च २१.२९-४० द्रष्टव्याः। 'तान्येकादशाप्रीसूक्तानि'–इत्यादि नैरुक्तम्, दुर्गाचार्यकृतं तद्व्याख्यानं चेहालोच्यम् (८.३.७)।

(४) द्र०–'एकादश प्रयाजा सर्वेषाम्'—इति आश्व०श्रौ० ३.२.१-८। अत्र यथऋषिपक्षे भगवता शौनकेनैषः श्लोक उक्तः—

'कण्वाङ्गिरोऽगस्त्यशुनका विश्वामित्रोऽत्रिरेव च ।
वसिष्ठः कश्यपो वाध्र्यश्वो जमदग्निरथोत्तमः ।।

ताया नोत्सृजति ।।१६।।

हिन्दी—(दश से भी अधिक आप्री सूक्तों का वेद में कथन होने के कारण विकल्प होता है कि किस आप्री सूक्त से यजन करना चाहिए। इसकी व्यवस्था कर रहे हैं—) **ताभिः यथऋष्याप्रीणीयाति** जो ऋषियों का क्रम से यजन करता है उससे **यजमानमेव** यजमान को ही **तद्बन्धुताया** (ऋषियों) को बन्धुता से **न उत्सृजति** दूर नहीं करता है।

सा० भा०—'नोत्सृजति' न निःसारयति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—आप्रियो विधाय पर्यग्निकरणा ऋचो विधातुमादौ प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(पर्यग्निकरणर्चां विधानम्)

(तत्र प्रैषमन्त्रः)

पर्यग्नये क्रियमाणायानुब्रूहीत्याहाध्वर्युः ।।१।।

हिन्दी—(पर्यग्निकरण की ऋचाओं का विधान करने के लिए प्रारम्भ में प्रैषमन्त्र का विधान कर रहे हैं—) हे होता! **क्रियमाणाय पर्यग्नये अनुब्रूहि** किये जाते हुए पर्यग्निकरण (के अनुरूप ऋचाओं) का अनुवाचन करो—**इति अध्वर्युः आह** यह अध्वर्यु (प्रैष मन्त्र) कहता है।

सा० भा०—पर्यग्निकरणस्य स्वरूपम् आपस्तम्बो दर्शयति—'आहवनीयादुल्मुकमादायाऽऽग्नीध्रः परि वाजपतिः[1] इति त्रिः प्रदक्षिणं पर्यग्निकरोति पशुम्'[2] इति। एवं परितः क्रियमाणायाग्नये योग्या ऋचो हे मैत्रावरुण त्वमनुब्रूहि। अनेनैव मन्त्रेणाध्वर्युः प्रेषयेत्॥

तदेवम्—तत्र दशानां सूक्तानां प्रथमं कण्वानाम् ऋ० १.१३। द्वितीयं तद्वर्जितानामङ्गिरसाम् ऋ० १.१४२। तृतीयमगस्त्यानाम् ऋ० १.१८८। चतुर्थं शुनकाम् ऋ० २.३। पञ्चम विश्वामित्राणाम् ऋ० ३.४। षष्ठमत्रीणाम् ऋ० ५.५। सप्तमं वसिष्ठानाम् ७.२। अष्टमं कश्यपानाम् ऋ० ९.५। नवमं वाध्र्यश्वानाम् ऋ० १०.७। शुनकवाध्र्यश्ववर्जितानां भृगूणां दशमम् ऋ० २.११०।

(१) ऋ० ४.१५.३। (२) आश्व०श्रौ० ७.१५.२।

मैत्रावरुणेनानुवक्तव्यास्तिस्र ऋचो विधत्ते—

(मैत्रावरुणेन पठनीया तिस्रो ऋचः)

'अग्निर्होता नो अध्वरे'[१] इति तृचमाग्नेयं गायत्रमन्वाह पर्यग्नि-क्रियमाणे स्वयैवैनं तद्देवतया स्वेन च्छन्दसा समर्धयति ।।२।।

हिन्दी—(मैत्रावरुण द्वारा अनुवचनीय तीन ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'अग्निर्होता नो अध्वरे' इति **आग्नेयं गायत्रम्** इस अग्नि देवता वाले गायत्री छन्दस्क तीन (ऋचाओं) का **पर्यग्निक्रियमाणे** पर्यग्निकरण करते समय (मैत्रावरुण नामक ऋत्विक्) अनुवाचन करता है। **तत्** इस (अनुवाचन से) **एनम्** इसको **स्वया एव देवतया** (उसके) अपने ही देवता और **स्वेन छन्दसा** अपने ही छन्द से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—पशोः परितोऽग्निरित्यस्मिन्नर्थे पर्यग्नीत्युच्यते। तस्मिन् क्रियमाणे तृचं मैत्रावरुणोऽनुब्रूयात्। तदाहाऽऽश्वलायनः—'प्रेषितो मैत्रावरुणोऽग्निर्होता न इति तृचं पर्यग्नयेऽन्वाह'[२] इति। तृचस्याऽऽदावग्निरित्युक्तत्वादाग्नेयत्वं छन्दश्च तृचस्य गायत्रं परितः क्रियमाणोऽग्निरेव मन्त्रप्रतिपाद्योऽपि। स एवातः स्वयैव देवतयेत्युच्यते। अग्निगायत्र्यो-र्मुखजन्यत्वसाम्याच्छन्दसः स्वत्वम्। नोऽस्माकमध्वरे यज्ञेऽयमग्निर्होता यज्ञनिष्पादक इति तस्य पादस्यार्थः।।

द्वितीयं पादमनूद्य व्याचष्टे—

वाजी सन्परिणीयत इति वाजिनमिव ह्येनं सन्तं परिणयन्ति।।३।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'वाजी सन् परिणीयते** अर्थात् (वह अग्नि) अन्नसम्पन्न अथवा गतिसम्पन हुआ चारो ओर घुमाया जाता है' इति इसके द्वारा **वाजिनम् इव सन्त हि एनम्** अन्न-सम्पन्न हुए के समान इस (अग्नि) को **परिणयन्ति** चारो ओर घुमाते हैं।

सा० भा०—अयमग्निर्वाज्यन्नप्रदानेनान्नवान् गतिमान् वा तादृशः सन्नृत्विग्भिः पशोः परितो नीयते। तत्पादपाठेनैनमग्निं वाजिनमेव सन्तमृत्विजः परितो नयन्ति।।

द्वितीयस्या ऋचः पूर्वार्धमनूद्य तात्पर्यं दर्शयति—

परित्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिवेति[३] एष हि रथीरिवाध्वरं परियाति।।४।।

---

(१) ऋ० ४.१५.१-३। (२) आश्व०श्रौ० ३.२.९।

(३) ऋ० ४.१५.२।

हिन्दी—(द्वितीय ऋचा के पूर्वार्ध को कहकर उसका तात्पर्य दिखला रहे हैं—) 'परि त्रिविष्टयध्वरं यात्यग्नी रथीरिव' अर्थात् रथी के समान अग्नि यज्ञ के चारो ओर जाता है'—इति इसका तात्पर्य है–**एषः** यह अग्नि **रथीः इव** रथी के समान **अध्वरं परियाति** यज्ञ के चारो ओर जाता है।

तृतीयस्या ऋचः प्रथमपादमनूद्य व्याचष्टे—

परि वाजपतिः कविरिति[1] एष हि वाजानां पतिः ।।५।।

हिन्दी—(तृतीय ऋचा के प्रथमपाद को कह कर उसका व्याख्यान करे हैं—) 'परि वाजपतिः कविः' अर्थात् अन्न का स्वामी क्रान्त द्रष्टा (अग्नि) (चारो ओर जाता है) '**इति हि**' क्योंकि यहाँ **एषः हि** यह (अग्नि) **वाजानां पतिः** (अन्न को भक्षण करने के कारण) अन्नों का स्वामी है।

सा० भा०—'कविः' अनूचानः। 'ये वा अनूचानास्ते कवयः' इति श्रुतेः।[2] तादृशोऽग्निर्वाजपतिरन्नस्वामी। एष हीत्यादिना तदर्थप्रसिद्धिरुच्यते। अन्नभक्षकत्वाद् वाजपतिः॥

अथ होतारं प्रति मैत्रावरुणप्रैषार्थं मैत्रावरुणं प्रत्यध्वर्योः प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(होतारं प्रति मैत्रावरुणस्योपप्रैषमन्त्रः)

अत उपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्य इत्याहाध्वर्युः ।।६।।

हिन्दी—(होता के प्रति मैत्रावरुण के प्रैष के लिए मैत्रावरुण के प्रति अध्वर्यु द्वारा कहे गये प्रैषमन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **अतः** इस (पर्यग्निकरण मन्त्र के पश्चात् '**होत** हे होता **देवेभ्यः हव्या उपप्रेष्य** देवताओं की हवि के लिए निर्देश करो'—**इति अध्वर्युः आह** इस (प्रैष मन्त्र) को अध्वर्यु कहता है।

सा० भा०—अतः पर्यग्निकरणानुवचनादूर्ध्वमध्वर्युरुपप्रेष्येत्यादिकं प्रैषमन्त्रं पठेत्। होतर्देवेभ्यो हवींष्युपप्रेष्य प्रेरयेति तस्यार्थः। अत्र मैत्रावरुणस्य होतृसमीपे वरणीयत्वाद्धोतृशब्द उपलक्षकः। तथा सति मैत्रावरुणं प्रत्यध्वर्योर्मन्त्रो भविष्यति॥

अथ मैत्रावरुणेन पठनीयं मन्त्रं विधत्ते—

(मैत्रावरुणेन पठनीयो मन्त्रः)

अजैदग्निरसनद्वाजमिति मैत्रावरुण उपप्रैषं प्रतिपद्यते ।।७।।

हिन्दी—(अब मैत्रावरुण द्वारा अनुवचनीय मन्त्र को कह रहे हैं—) **अग्निः अजैत्** अग्नि विजय को प्राप्त करे और **वाजम् असनत्** (हविरूप) अन्न को खादे'—इति

(१) ऋ० ४.१५.३।

(२) 'एते वै कवयो यदृषयः'—इति शत०ब्रा० १.४.२.८।

उपप्रैषम् इस उपप्रैप को **मैत्रावरुणः प्रतिपद्यते** मैत्रावरुण प्रतिपादित करता है।

सा० भा०—अत्र शामित्रदेशं प्रति नीयमानस्य पशोः पुरतो य उल्मुकाकारोऽग्निर्गच्छति सोऽग्निरजैज्जयतु। पशोः पुरस्तादग्नेर्गमनं शाखान्तरे श्रूयते—'अग्निना पुरस्तादेति रक्षसामपहत्यै'[१] इति। तस्याग्नेर्जयो नाम हविःसंपादनसामर्थ्यं सोऽग्निर्वाजमन्नं हविर्लक्षणमसनत्। अस्य मन्त्रस्यान्तः 'उपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्य' इति श्रूयते।[२] यतो होतारं प्रति मैत्रावरुणो मुख्यस्याध्वर्युप्रैष्यस्य समीपवर्तित्वादयमुपप्रेष्यः॥

अत्र ब्रह्मवादिनां चोद्यं वैयधिकरण्यरूपमुद्भावयति—

तदाहुर्यदध्वर्युर्होतारमुपप्रेष्यत्यथ कस्मान् मैत्रावरुण उपप्रैषं प्रतिपद्यत इति ।।८।।

हिन्दी—(अब इस विषय में ब्रह्मवादियों के प्रश्न को कह रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मणवादी) कहते हैं कि **यद् अध्वर्युः होतारम् उपप्रेष्यति** जब अध्वर्यु होता के लिए उपप्रैष कहता है। **अथ कस्मात्** तो किस कारण से **मैत्रावरुणः उपप्रैषं प्रतिपद्यते** मैत्रावरुण उपप्रैष का प्रतिपादन करता है?

सा० भा०—अध्वर्युप्रयुक्ते मन्त्रे होतुः संबोधितत्वान्मैत्रावरुणस्य मन्त्रपाठे वैयधिकरण्यम्॥

तस्य चोद्यस्य परिहारं दर्शयति—

(अन्यमनस्कस्य यज्ञीयवाक्प्रयोगनिषेधः)

मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणो, वाग्यज्ञस्य होता, मनसा वा इषिता वाग्वदति, यां ह्यन्यमना वाचं वदत्यसुर्या वै सा वागदेवजुष्टा तद्यन्मैत्रावरुण उपप्रैषं प्रतिपद्यते मनसैव तद्वाचमीरयति तन्मनसेरितया वाचा देवेभ्यो हव्यं संपादयति।।९।।

हिन्दी—(उपर्युक्त प्रश्न का समाधान दिखला रहे हैं—) **मैत्रावरुण यज्ञस्य मनः वै** मैत्रावरुण (नामक ऋत्विक्) यज्ञ का मन-स्थानीय है और **होता यज्ञस्य वाग्** होता (नामक ऋत्विक्) यज्ञ का वाणी-स्थानीय है। **मनसा वै ईषिता वाग् वदति** मन के द्वारा प्रेरित हुआ ही वाणी को बोलता है। **अन्यमना या वाचं वदति** जो बिना मन से वाणी को बोलता है, **सा वाग् अदेवजुष्टा असुर्या** वह देवताओं को प्रिय न लगने वाली आसुरी

(१) तै०सं० ६.३.८.२।

(२) सोऽयं मन्त्रः—'अजैदग्निः असनद् वाजं नि देवो देवेभ्यो हव्यवाट् प्राज्ञोभिर्हिन्वानः धेनाभिः कल्पमानः यज्ञस्यायुः प्रतिरन् उपप्रेष्य होतः हव्या देवेभ्यः'—इति तै० ब्रा० ३.६.५.१।

होती है। **तद् यत्** तो जो **मैत्रावरण उपप्रैषं प्रतिपद्यते** मित्रावरुण उपप्रैष को प्रतिपादित करता है **तत्** उससे **मनसा एव वाचम् ईरयति** मन के द्वारा ही वाणी को प्रेरित करता है और **तद्मनसा ईरितया वाचा** उस मन द्वारा प्रेरित वाणी से **देवेभ्यः हव्यं सम्पादयति** देवताओं के लिए हविष् का सम्पादन करता है।

सा० भा०—यज्ञपुरुषस्य मैत्रावरुणो मनःस्थानीयो होता तु वाक्स्थानीयः। लोके हि मनसैव प्रेरिता वाक्शब्दमुच्चारयति। यदा त्वन्यमनस्कः पुरुषो वाचं ब्रूते सा वागसुर्याऽसुराणां प्रिया न तु देवजुष्टा देवानां न प्रिया। तथा सति यदि मैत्रावरुणः प्रथममुपप्रैषं ब्रूते। मनसैव वाक्प्रेरिता भवति। ततो मनसा प्रेरितया वाचा देवेभ्यो हव्यं संपादितं भवति। अन्यथा तद्धविरसुरेभ्यः संपादितं स्यात्। तस्मादध्वर्युणा होतारमित्येवं संबोधितेऽपि मैत्रावरुणोक्तप्रैष-पूर्वकमेव होतृवचनं युक्तम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—मैत्रावरुणोपप्रैषादूर्ध्वं होतुरध्रिगुप्रैषो बौधायनेन दर्शितः—'यदा जानात्युपप्रेष्य होतर्हव्या देवेभ्य इति तं मैत्रावरुणः प्रेष्यत्यर्जदग्निरित्यथ होताऽध्रिगुमन्वाह दैव्याः शमितारः' इति। अध्रिगुः कश्चिद्देवः पशुविशसनस्य कर्ता तं प्रति होता दैव्याः शमितार इत्यादिकं प्रैषमन्त्रमनुब्रूयादिति तस्य सूत्रवाक्यस्यार्थः॥

तमिमं सूत्रोक्तमन्त्रं[1] विधत्ते—

(अध्रिग्रुं प्रति होतुः प्रैषमन्त्रः)

दैव्याः शमितार आरभध्वमुत मनुष्या इत्याह[2] ।।१।।

हिन्दी—(अध्रिग्रु के प्रति होता द्वारा कहे गये 'दैव्या शमितार' इत्यादि प्रैषमन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **हे दैव्याः** देवसम्बन्धी और **मनुष्याः** मनुष्य-सम्बन्धी **शमितारः** पशु की हिंसा करने वाले! **आरभध्वम्** (मारने का उपक्रम) प्रारम्भ करो'—**इति आह** इस

---

(१) 'सूक्तोक्तमर्थं' इति वा पाठः।

(२) तै०सं० ३.६.६। एष चाध्रिगुप्रैषमन्त्रोऽन्यशाखीय इति कल्पकारेण प्रपठ्य विहितः (आश्व० ३.३.१)।

प्रकार (होता अधिग्रु से प्रैष मन्त्र को) कहता है।

सा० भा०—हे दैव्या देवसंबन्धिनः शमितारः पशुविशसनकारिण आरभध्वं विशसनस्योपक्रमं कुरुतोत मनुष्या अपि मनुष्यरूपा अपि शमितार आरभध्वमित्यादिकमध्रिगुप्रैषमन्त्रं होता पठेत्।।

यथोक्तमन्त्रस्य प्रथमपादं व्याचष्टे—

(शाखान्तरीयाधिग्रुप्रैषस्य पूर्वार्द्धस्य व्याख्यानम्)

ये चैव देवानां शमितारो ये च मनुष्याणां तानेव तत्संशास्ति।।२।।

हिन्दी—(उक्त 'देव्याः शमितारः' मन्त्र के प्रथम पाद का व्याख्यान कर रहे हैं–) **ये च देवानां** जो देवताओं के और **ये च मनुष्याणाम्** जो मनुष्यों के **शमितारः** पशुओं का मेध करने वाले हैं **तान् एव** उन्हीं को ही **तत्** इस (प्रथम पाद) के द्वारा **शंसास्ति** प्रेरित करता है।

सा० भा०—तत्तेन प्रथमपादभागेन द्विविधजातीयाञ्शमितॄन् प्रेरयति।।

मन्त्रस्य द्वितीयभागमनुवदति—

उपनयत मेध्या दुर आशासाना मेधपतिभ्यां मेधमिति ।।३।।

हिन्दी—(मन्त्र के द्वितीयभाग को कह रहे हैं—) 'उपनयत मेध्या दुर आशासाना मेधपतिभ्यां मेधम्' अर्थात् यज्ञ के स्वामी (यजमान) और उसकी पत्नी के लिए अथवा अग्नि ओर सोम के लिए यज्ञ की स्तुति करने वाले हे शमिता! तुम मेध्य पशुरूप हवि को (अथवा मेध के लिए शस्त्र को) ले आओ । **इति** यह ऋचा का उत्तरार्ध है।

सा० भा०—प्रारम्भे किं कर्तव्यमिति चेत्; तदुच्यते—मेध्या मेधार्हा दुरो द्वारा हविर्मार्गान् विशसनहेतीर्वोपनयत संनिधापयत; मेधपतिभ्यां यज्ञस्वामिपत्नीयजमानार्थमग्नीषोमदेवतार्थं वा मेधं यज्ञमाशसानाः प्रार्थयमाना हे शमितारो यूयमुपनयत।।

अत्र मेधशब्दं च व्याचष्टे—

(मेधशब्दव्याख्यानम्)

पशुर्वै मेधो यजमानो मेधपतिर्यजमानमेव तत्स्वेन मेधेन समर्धयति।।४।।

हिन्दी—(अब मेध शब्द और मेधपति' शब्द का व्याख्यान कर रहे हैं—) **पशुर्वै मेधः** पशु ही मेध है और **यजमानः मेधपतिः** यजमान मेध का स्वामी है। इस प्रकार होता **यजमानमेव** यजन करने वाले को ही **स्वेन मेधेन** उसी के अपने मेध से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

मतान्तरानुसारेण मेधपतिशब्दस्यार्थं दर्शयति—

अथो खल्वाहुर्यस्यै वाव कस्यै च देवतायै पशुरालभ्यते सैव मेधपतिरिति ।।५।।

हिन्दी—(अन्य मत के अनुसार 'मेधपति' शब्द के अर्थ को दिखला रहे हैं—) **अथो खलु आहुः** इस विषय में निश्चित रूप से (कुछ ब्रह्मवादी लोग) कहते हैं कि **यस्यै कस्यै देवतायै पशुः आलभ्यते** जिस किसी देवता के लिए पशु का आलभन किया जाता है, **सः एव मेधपतिः** वह (देवता) ही मेध का स्वामी होता है।

सा० भा०—अस्तु मेधपतिशब्दो देवतापरस्तावता च को लाभ इत्याशङ्क्याऽऽह—

स यद्येकदेवत्यः पशुः स्यान्मेधपतय इति ब्रूयाद् यदि द्विदेवत्यो मेधपतिभ्यामिति यदि बहुदेवत्यो मेधपतिभ्य इत्येतदेव स्थितम् ।।६।।

हिन्दी—(देवतापरक मेधपति शब्द के लाभ को बतला रहे हैं—) **यदि एकदेवत्यः पशुः स्यात्** यदि एक देवता से सम्बन्धित पशु हो तो **सः मेधपतये इति ब्रूयात्** वह 'मेध के स्वामी के लिए'—यह कहे **द्विदेवत्यः** दो देवताओं के लिए हो तो **मेधपतिभ्याम्** द्विवचन में मेधपतियों के लिए' यह कहे और **यदि बहुदेवत्यः** यदि बहुत से देवताओं से सम्बन्धित हो तो **मेधपतिभ्यः** इति 'मेध के स्वामियों के लिए' ऐसा कहे। **एतदेव स्थितम्** यही विधान है।

तृतीयभागमनुवदति—

प्रास्मा अग्निं भरतेति ।।७।।

हिन्दी—(अब मन्त्र के तृतीय भाग को कह रहे हैं—) 'प्रास्मा अग्निभरत' अर्थात् हे शमिताओ! इस पशु के लिए पहले अग्नि ले आओ।

सा० भा०—अस्मै पश्वर्थं हे शमितारोऽग्निं प्रभरत प्रथमं नयत।।

अग्नेः प्रथमतो नयनमुपपादयितुमाख्यायिकामाह—

पशुर्वै नीयमानः स मृत्युं प्रापश्यत् स देवान्नान्वकामयतैतुं तं देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमयिष्याम इति स तथेत्यब्रवीत् तस्य वै मे युष्माकमेकः पुरस्तादैत्विति तथेति तस्याग्निः पुरस्तादैत् सोऽग्निमनु प्राच्यवत।।८।।

हिन्दी—(अग्नि को पहले लाने के विषय में आख्यायिका को कह रहे है—) **सः नीयमानः पशुः** (शमित्र स्थान को ले जाये जाने वाले) उस पशु ने **मृत्युं प्रापश्यत्** प्रकृष्ट रूप से मृत्यु को देखा। **सः देवान् अनु एतुम् न अकामयत्** वह देवताओं के पीछे जाने के लिए इच्छा नहीं किया। **तं देवाः अब्रुवन्** तब देवताओं ने उस (पशु) से कहा कि हे

पशु! **एहि** आओ **त्वा स्वर्गं लोकं गमिष्यामः** तुम्हारे साथ हम लोग स्वर्गलोक को जाएँगे। **सः तथा इति अब्रवीत्** उस (पशु) ने (स्वीकार करते हुए कहा कि) ठीक है। **अग्निः तस्य पुरस्ताद् एति** अग्नि उस (पशु) के आगे-आगे गमन किया। **सः अग्निमनु प्राच्यवत** वह (पशु) अग्नि के पीछे-पीछे चला।

सा० भा०—शामित्रदेशं प्रति नीयमानः पशुः प्रत्यक्षेण मृत्युं दृष्टवान्। ततः स पशुर्देवानन्वेतुं नान्वकामयताऽऽगन्तुं नैच्छत्। ततो देवाः पशुं प्रत्येवमब्रुवन् हे पशो त्वमागच्छ, त्वया सह वयं सर्वे स्वर्गं गच्छाम इति। पशुश्च तदङ्गीकृत्य देवान् प्रत्येवमब्रवीत्, युष्माकं मध्ये कश्चिद्देवो मम पुरस्ताद् गच्छत्विति। तद्वचनमङ्गीकृत्याग्निर्देवस्तस्य पशोः पुरस्तादगच्छत्। ततः स पशुस्तमग्निमनु स्वयमपि तुष्टः सन्प्रकर्षेणागच्छत्। तस्मादग्निं प्रभरतेत्येतद्युक्तम्।।

उक्तमर्थं लोकप्रसिद्ध्या द्रढयति—

तस्मादाहुराग्नेयो वाव सर्वः पशुरग्निं हि सोऽनु प्राच्यवतेति ।।९।।

हिन्दी—(उक्त अर्थ को लोक-प्रसिद्धि द्वारा दृढ़ कर रहे हैं—) **तस्माद् ह आहुः** इसी कारण यह कहा जाता है, **सर्वः पशुः आग्नेयः वाव** सभी पशु अग्नि से सम्बन्धित है; क्योंकि **अग्निं हि अनु** अग्नि के पीछे-पीछे **सः प्राच्यवत** वह पशु चला था।

सा० भा०—यस्मादग्निमनु पशुः प्रागच्छत् तस्मादाग्नेयः सर्वः पशुरित्येवं याज्ञिकलोकप्रसिद्धिः। अत एव सर्वं पशुमग्नौ जुह्वति।।

यस्मादेवं प्रसिद्धिस्तस्मादेव कारणात् पशोः पुरस्तादग्निं नयेयुरित्येतमर्थं प्रसङ्गाद् विधत्ते—

तस्माद् अस्याग्निं पुरस्ताद्धरन्ति ।।१०।।

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **अग्निम् अस्य पुरस्ताद् हरन्ति** अग्नि को इस (पशु) के आगे लाते हैं।

सा० भा०—तस्मादु तस्मादेव।।

चतुर्थभागमनूद्य व्याचष्टे—

स्तृणीत बर्हिरित्योषध्यात्मा वै पशुः पशुमेव तत्सर्वात्मानं करोति।।११।।

हिन्दी—(मन्त्र के चतुर्थ भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'स्तृणीत बर्हिः' अर्थात् हे शामिताओ! कुश को बिछा दो। **ओषध्यात्मा वै पशुः** (खायी गयी ओषधियों के पशु के अवयव रूप में परिणत होने के कारण) पशु ओषध्यात्मक होता है, **तत्** इस (कुश बिछाने) से **पशुमेव** पशु को ही **सर्वात्मानं करोति** सभी अङ्गों से पूर्ण बनाता है।

सा० भा०—संज्ञपनस्थानं नीतस्य पशोरधस्तादुपाकरणसाधनयोर्बर्हिषोरन्यतरदबर्हिर्हि शमितार उपक्षिपत। पशुभक्षितानामोषधीनां पश्ववयवत्वेन परिणतत्वात् पशोरोषध्यात्मत्वम्, अतस्तद्भागपाठेन पशुं सर्वौषध्यात्मानं करोति॥

पञ्चमभागमनूद्य व्याचष्टे—

(मात्राद्यनुज्ञाग्रहणम्)

अन्वेनं माता मन्यतामनु पिताऽनुभ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्य इति जनित्रैरवैनं तत्समनुमतमालभन्ते ।।१२।।

हिन्दी—(मन्त्र के पञ्चम भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **एनं माता अनुमन्यताम्** (संज्ञपनीय पशु की) माता इस (संज्ञपनीय पशु के संज्ञपन) के लिए अनुमति देवे, **पिता अनु** (इसका) पिता अनुमति देवे, **सगर्भ्यः भ्राता अनु** सहोदर भाई अनुमति देवे, और **सयूथ्यः सखा अनु** (इसके) यूथ वाले मित्र अनुमति देवे' **इति तत्** इस प्रकार इस पाठ से **जनित्रैः** जन्म से सम्बन्धित अन्य (पशुओं) द्वारा **अनुमतमेनम्** अनुमति को प्राप्त हुए इस (पशु) को **आलभन्ते** संज्ञपित करते हैं।

सा० भा०—संज्ञप्यमानमेनं पशुं मात्रादयोऽङ्गी कुर्वताम्। समाने गर्भे भवः सगर्भ्य एकोदरो भ्रातृविशेषणमेतत्, समाने यूथे भवः सयूथ्यः पशुसमूहाद् व्यावर्तक-विशेषणमेतत्। तद्भागपाठेनैनं पशुं जनित्रैस्तज्जन्मसंबन्धिभिः पश्वन्तरैरनुज्ञातं कृत्वा पश्चा-दालभन्ते ॥

षष्ठं भागमनूद्य व्याचष्टे—

(पदामुदीचीकरणम्)

उदीचीनाँ अस्य पदो निधत्तात् सूर्यं चक्षुर्गमयताद् वातं प्राणमन्व-वसृजतादन्तरिक्षमसुं दिशः श्रोत्रं पृथिवीं शरीरमित्येष्वेवैनं तल्लोके-ष्वादधाति ।।१३।।

हिन्दी—(षष्ठ भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) '**अस्य पदः उदीचीनान् निधत्तात्** इस (संज्ञपनीय पशु) के पैरों को उत्तर दिशा में स्थापित करो, **चक्षुः सूर्यं गमयतात्** नेत्र को सूर्य देवता के लिए प्राप्त कराओ, **प्राणं वातम् अनु अन्वसृजतात्** प्राण को वायुदेवता के प्रति प्राप्त कराओ, **असुम् अन्तरिक्षम्** जीव को अन्तरिक्ष के प्रति, **श्रोत्रं दिशः** श्रोत्र को दिशाओं के प्रति और **शरीरं पृथिवीम्** शरीर को पृथिवी के प्रति प्राप्त कराओ' **इति तत्** इस पाठ से **एनम्** इस (संज्ञपनीय पशु) को **एषु लोकेषु आदधाति** इन लोकों में प्रतिष्ठित करता है।

सा० भा०—संज्ञप्यमानस्य पशोः पदः पादानुदीचीनानुत्तरदिग्गतान्निधत्तात् स्थापयत।

चक्षुरिन्द्रियं सूर्यदेवतां प्रापयत। प्राणं वायुदेवतां प्रत्यन्ववसृजतात् प्रापयत। असुं जीवमन्तरिक्षं प्रापयत। श्रोत्रं दिग्देवतां प्रापयत। शरीरं पृथिवीं प्रापयत। तद्भागपाठेनैनं पशुमेष्वेव यथोक्तदेवतासंबन्धिषु लोकेषु स्थापयति।।

सप्तमभागमनूद्य व्याचष्टे—

(त्वक्छेदनविधानम्)

एकधाऽस्य त्वचमाच्छ्यतात् पुरा नाभ्या अपि शसो वपामुत्खिदतादन्तरेवोष्माणं वारयध्वादिति पशुष्वेव तत्प्राणान् दधाति ।।१४।।

हिन्दी—(सप्तम भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **एकधा अस्य त्वचम् आच्छ्यतात्** एक प्रकार से विच्छेदरहिता से **अस्य** इस (मेध्य पशु) के त्वचा को सभी ओर से उतार लो (इसके शरीर से अलग कर लो), **नाभ्यः अपि शसः पुरा** नाभिच्छेदन (नाभि को काटने) से भी पहले **वपाम् उत्खिदत** इसकी वपा (अतड़ियों) को निकाल लो और **उष्माणम् अन्तः एव वारयध्वात्** (इसकी) सांस को (इसका मुख बन्द करके) भीतर हो रोक दो–**इति** इस प्रकार **तत्** इस (पाठ) से **पशुषु एव प्राणान् दधाति** पशुओं में ही प्राणों की प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—एकधैकविधया विच्छेदराहित्येनास्य त्वचाच्छ्यतात्समन्ताच्छिन्नां कुरुत। नाभ्या अपि शसश्छेदात् पूर्वमेव वपामुत्खिदतादुद्धरत। ऊष्माणमुच्छ्वासमन्तरेव वारयध्वान्निवारयत पिहितास्यं संज्ञपयतेत्यर्थः। तद्भागपाठेन पशुष्वेव प्राणान् संपादयति।।

अष्टमभागमनूद्य व्याचष्टे—

(वक्षाद्यङ्गानां परिचयः)

श्येनमस्य वक्षः कृणुतात् प्रशसा बाहू, शला दोषणी, कश्यपेवांसाऽच्छिद्रे श्रोणी, कवषोरू स्रेकपर्णाऽष्ठीवन्ता षड्विंशतिरस्य वङ्क्रयस्ता अनुष्ठ्योच्च्यावयताद् गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतादित्यङ्गान्येवास्य तद्गात्राणि प्रीणाति ।।१५।।

हिन्दी—(अष्टमभाग को कह कर व्याख्यान कर रहे हैं—) **अस्य वक्षः श्येनं कृणुतात्** इस (पशु) के वक्ष को श्येन पक्ष के आकार वाला बना दो, **बाहू प्रशसा** दोनों बाहुओं को कुल्हाड़ी के आकार वाला, **दोषणी शला** प्रकोष्ठों (पीछे के दोनों पैरों) को भाले की नोक के आकार वाला, **अंसौ कश्यप इव** दोनों कन्धों को कच्छप के आकार वाला, **श्रोणी अच्छिद्रे** दोनों श्रोणी (कूल्हे) को छिद्ररहित, **ऊरू कवषा** दोनों जङ्घाओं को (तलवार के) ढाल के आकार वाला, **अष्ठीवन्तो स्रेकपर्णा** दोनों घुटनों को कनैर वृक्ष के पतों को आकार वाला, कर दो। **अस्य वङ्क्रयः षड्विंशतिः** इसकी पसली की

छब्बीस हड्डियाँ हैं, **ताः अनुष्या उच्च्यावयतात्** उनको क्रमानुसार निकाल लो, **अस्य गात्रं अनूनं कृणुतात्** इस (पशु) के प्रत्येक अङ्ग को सम्पूर्ण रूप से रखो—**इति** इस प्रकार **तत्** इस (पाठ) से **अस्य** इस (पशु के) **अङ्गानि गात्राणि एव प्रीणाति** शरीरावयवरूप अङ्गों को प्रसन्न करता है।

सा० भा०—श्येनं श्येनाकृतिकमस्य पशोर्वक्षः कुरुत। बाहू प्रशसा प्रकृष्टच्छेदनौ कुरुत। दोषणी प्रकोष्ठौ शला कृणुताच्छलाकाकारौ कुरुत। उभावप्यंसौ कश्यपाकारौ कुरुत। श्रोणी उभे अप्यच्छिद्रे अनूने कुरुत। अस्य पशोर्वङ्क्रयो वक्राणि पार्श्वास्थीनि षड्विंशतिर्भवन्ति। ताः सर्वा अनुष्ठ्यानुक्रमेण स्वस्थानगतान्युच्च्यावयतोद्धरत। गात्रं गात्रं सर्वमप्यदनीयमङ्गमनूनं कृणुतादविकलं कुरुत। तद्भागपाठे तस्य पशोरङ्गान्येवावयवरूपाण्येव गात्राणि प्रीणाति। गात्रशब्दः शरीरे तदवयवे च वर्तते। अतोऽत्रावयवविवक्षां द्योतयितुमङ्गानीति निर्देशः॥

नवमभागमनूद्य व्याचष्टे—

(पुरीषगूहनस्थानखननम्)

ऊवध्यगोहं पार्थिवं खनतादित्याहौषधं वा ऊवध्यमियं वा ओषधीनां प्रतिष्ठा, तदेनत्स्वायामेव प्रतिष्ठायामन्ततः प्रतिष्ठापयति ॥१६॥

हिन्दी—**ऊवध्यगोहम्** पुरीष के छिपाने के स्थान को **पार्थिवं खनतात्** भूमि को खोदो—**इति ऊवध्वम् औषधं वै** (पशुभक्षित औषधि का विकार होने के कारण) पुरीष औषधि रूप ही है। **इयं वै ओषधीनां प्रतिष्ठा** यह पृथिवी ही ओषधियों की प्रतिष्ठा (आश्रय) है। **तत्** इसके पाठ से **एनम्** इस (पुरीष) को **अन्ततः** अन्त में **स्वायामेव प्रतिष्ठायाम्** उसकी अपनी ही प्रतिष्ठा में **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—ऊवध्यगोहं पुरीषगूहनस्थानं पार्थिवं खनतात्पृथिवीसंबन्धमेव खनत। अत्रोवध्यशब्देनौषधमेवोच्यते, पुरीषस्य पशुभक्षितस्यौषधिविकारत्वात्। ओषधीनां चेयमेव भूमिः प्रतिष्ठाऽऽश्रयः तत्तथा सत्येनमूवध्यं स्वकीयायामेव प्रतिष्ठायां भूमिरूपायामन्ततः पशुविशसनान्ते प्रतिष्ठापयति॥

अत्र मीमांसा—नवमाध्याये चिन्तितम् —

अविकारो विकारो वा स्यान्मेधपतिशब्दयोः।
विकारे स्वामिदेवार्थ एकार्थो वाऽन्तिमेऽपि किम् ॥

स्वाम्यर्थो देवतार्थो वा स्यादन्याय्यत्वतोऽग्रिमः।
अर्थभेदाद्विकारोऽत्र द्वावर्थौ शब्दयोर्द्वयोः ॥

मन्त्रैक्यादर्थ एकोऽत्र स्वाम्यस्मिन्नाययाय द्विता।

देवार्थाशीर्देव एकाऽधिष्ठाने द्वे द्विधेरणम्[१] ॥

अध्रिगुप्रैषनिगदस्य[२] आदाविदमाम्नायते—दैव्याः शमितार आरभध्वमुत मनुष्या। उपनयत मेध्या दुर आशासाना मेधपतिभ्यां मेधम्'[३] इति। शाखान्तरे तु 'मेधपतये मेधमिति। अयमर्थः—शमितारः पशुघातिनो द्विविधाः—दैव्या मानुषाश्च, तानुभयान् संबोध्य होता कर्तव्यविशेषान्निर्दिशति—'प्रारम्भः कर्तव्यः। मेधो यज्ञः, तद्योग्यान्दुरः पदार्थान्हिंसाहेतून्निहाऽऽनयत। किं कुर्वन्तः? यज्ञपतिभ्यां यज्ञपतये वा यज्ञमाशासानाः' इति तत्रैकवचनान्तस्य द्विवचनान्तस्य मेधपतिशब्दस्य बहुपशुयुक्तासु विकृतिष्वनूहः, ऊहो वेति संशयः। ऊहपक्षेऽपि किंवेकवचनान्तस्य यजमानोऽर्थः, द्विवचनान्तस्याग्नीषोमौ देवते इत्येवमर्थभेदः। किं वा शब्दद्वयस्यैक एवार्थ इति संशयः। एकार्थत्वपक्षेऽपि यजमान एवार्थः, देवतैव वेति संशयः। अत्राग्नीषोमीये पशौ यजमानः, अग्नीषोमौ चेति त्रयो मेधस्य पतयस्तेष्वेकवचनस्य द्विवचनस्य चान्यायनिगदत्वेन प्रकृतावविवक्षितस्य वचनस्य विकृतावनूह इत्याद्यः पक्षः। प्रकृतौ समवेतार्थत्वे संपादयितुं शक्ये सत्यन्यायनिगदत्वाभावाद् विकृतावूहः कर्तव्य इति द्वितीयः पक्षः। अस्मिन् द्वितीयपक्षेऽपि प्रकृतावुपन्यस्यप्रकारेणार्थभेदाद् विकृतिषु द्विबहुयजमानयुक्तास्वहीनादिषु यजमानानुसारेणैकवचनान्त ऊहनीयः। अनेकपशुयुक्तासु विकृतिषु देवतानुसारेण द्विवचनान्त ऊहनीयः। सोऽयं शाखाविकल्पेन प्रथमः पक्षः। शाखाभेदेन पाठभेदेऽपि मन्त्रभेदाभावादर्थभेदो न युक्तः। किं त्वेक एवार्थ इति पक्षान्तरम्। तदाऽपि देवतायाः संप्रदानत्वेन स्वामित्वाभावान्मेधपतिशब्दयोग्यता नास्तीति यजमान एव तच्छब्दार्थः। तस्मिन् यजमान स्वत एकत्वं जायया सह द्वित्वमित्येकवचनद्विवचने उभे अपि समवेतार्थे। ततो यजमानद्वयोपेतायां विकृतावेकवचनान्तो द्वित्वेनोहनीयः। द्विवचनान्तो बहुत्वेनेति पूर्वः पक्षः। मेधस्य यजमानार्थत्वं नैवाऽऽशासनीयम्। तस्य सिद्धत्वात्। देवतार्थत्वं त्वाशासनीयम्। ततो मेधमाशासाना इत्येतद्देवतायां समवेतार्थम्। संप्रदानस्याप्युद्देश्यत्वेन प्राधान्यान्मेधपतित्वमविरुद्धम्। देवत्वाकारेणैकत्वादग्नित्वसोमत्वाकारेण द्वित्वाच्चैकवचनद्विवचने उपपन्ने। तस्माद्देवतानुसारेण विकृतावूह इति सिद्धान्तः।

तत्रैवान्यच्चिन्तितम् —

"आदित्येष्वेकवाच्येष ऊह्यो नो वोह्यतेऽन्यवत् ।
गणार्थत्वादनूहोऽतो विकल्पः प्रकृताविव" ॥[४]

---

(१) जै०न्या०वि० ९.३.१२.३२-४०।
(२) परसम्बोधनार्थाः मन्त्रा निगदाः। ते च यजूंष्येव; 'यजूंषि वा तद्रूपत्वात्'—इत्यादुक्तेः (जै०सू० २.१.१३.४०-४५)। अध्वर्युप्रैषनिगदमन्त्रं तु तैत्तिरीयाः समामनन्ति (तै०ब्रा० ३.६.६.१-४) 'अथ होताध्रिगुमन्वाह दैव्या क्षमितार इति' इति च तत्कल्पः।
(३) तै०ब्रा० ३.६.६। (४) जै०न्या०वि० ९.३.१३.४१-४२।

प्रजापशुसंपत्तिकामस्य बहुदेवत्यः पशुराम्नायते—'यः कामयेत प्रथेयं पशुभिः प्र प्रजया जायेयेति स एतामविवशामादित्येभ्यः कामायाऽऽलभेत'[१] इति। वशा वन्ध्या, कामाय कामुकेभ्य इत्यर्थः। अत्र चोदकप्राप्तो मेधपतय इत्येकव..नान्तः शब्द आदित्यानां बहुत्वाद् बहुवचनान्त्वेनोहनीयः। यथा मेधपतिभ्यामिति द्विवचनान्त ऊह्यते। यथा वा प्रास्मा इत्येकवचनान्त ऊह्यते तद्वदिति चेत्। मैवम्। प्रकृतावग्नीषोमयोर्गणैकत्वमेकवचनान्तो ब्रूते। आदित्यानामपि गणैकत्वं समानमित्यनूहः। तस्मादविकृत एकवचनान्त इतरेण सह प्रकृताविवात्रापि विकल्प्यते॥

तत्रैवान्यच्चिन्तितम्—

"कृष्णग्रीवादिकेऽनूह ऊहो वा नास्य पूर्ववत्।
देवत्वं न गणस्यात ऊहो बह्वभिधित्सया" ॥[२]

यूपैकादशिन्याम्[३] अग्न्यादिदेवताकाः पशव आम्नाताः—प्रैवाऽऽग्नेयेन वापयति। मिथुनं सारस्वत्या करोति। रेतः सौम्येन दधाति। प्रजनयति पौष्णेन'[४] इत्यादिना। ते च स्वनामभिरन्यत्राऽऽम्नाताः—'आग्नेयः कृष्णग्रीवः। सारस्वती मेषी। बभ्रुः सौम्यः। पौष्णः श्यामः'[५] इत्यादिना। तत्रास्यैकवचनान्तस्य मेधपतिशब्दस्याऽऽदित्येष्विव नोह इति चेत्। मैवम्, वैषम्यात्। आदित्यगणस्य तत्रदेवत्वम्, इह त्वेकैकस्य पृथग्देवत्वम्। अतो बहून्देवानभिधातुं बहुवचनान्तत्वमूहनीयम्॥

तत्रैवान्यच्चिन्तितम्—

द्विपश्वोश्चक्षुराद्यूहो न वोहः पशुभेदतः।
तेजोमात्रस्य सूर्यादावेकीभावादनूहनम् ॥[६]

अग्नीषोमीयपशावध्रिगुप्रैषे पशुसंबन्धिचक्षुरदीनां सूर्यादिसंसर्ग आम्नायते—'सूर्य चक्षुर्गमयतात् वातं प्राणमन्ववसृजतात्? दिशः श्रोत्रम्' इत्यादि। 'मैत्रं'[७] श्वेतमालभेत, वारुणं कृष्णमिति[८] विहितयोर्द्वयोः पश्वोर्मन्त्रगताश्चक्षुरादिशब्दा द्विवचनान्तत्वेनोहनीयाः।

---

(१) तै०सं० २.१.२.३। (२) जै०न्या०वि० ९ ३ १४-४३।

(३) अग्निष्टोमे स्तोमायनसंज्ञा विकल्पत आग्नेय-सारस्वत-सौम्य-पौष्ण-बार्हस्पस्तयवैश्वदेव-ऐन्द्र-मारुतैन्द्राग्न-सावित्र-वारुणाः सवनीया पशवो भवन्ति। तेषामेकादशानां नियोजनार्थमेक एव यूपः' प्रतिपशु एकैको वा यूपो भवति। एकादशानां वर्ग एकादशिनी, तस्याम्; तस्मिन् पक्षे इति यावत् (कात्या० श्रौ० ८.८.६.२६) एषा तु यूपैकादशिनी शतपथे (३.८.५) 'प्रजापतिर्वै प्रजाः ससृजानः'—इत्याख्यानपूर्विका विहिताः तथा तै०सहितायां च 'प्रजापतिः प्रजा असृजत'—इत्यादिना (६.६.५)।

(४) तै०सं० ६.६.५.१। (५) वा०सं० २९.४८।

(६) जै०न्या०वि० ९.३.१०.२७,२८। (७) तै०ब्रा० ३.६.६.२।

(८) तै०सं० २.१.९.२।

कुतः—पशुभेदेन चक्षुरादीनां भेदादिति चेत्। मैवम्। न खल्वत्रेन्द्रियाधिष्ठानं शरीरगतगोलकं चक्षुःशब्देन विवक्षितम्। तद्विवक्षायामेकस्मिन्नपि पशौ गोलकभेदादेकवचनान्तचक्षुःशब्दस्यानन्वयप्रसङ्गाद्, गोलकस्य सूर्यादिप्राप्त्यसंभवाच्च। यत्तु रूपदर्शनादिसामर्थ्यलक्षणं तेजोमात्रम्, तदत्र चक्षुरादिशब्दैर्विवक्षितम्। तच्च पश्वनेकत्वेऽपि ततो निर्गत्य सूर्यादावेकीभूतत्वात् समुद्रप्रविष्टनदीवन्न भेदेनावतिष्ठते। तस्मान्नास्त्यूहः॥

तत्रैवान्यच्चिन्तितम् —

एकधेत्यविकारः स्यादभ्यासो वा सहत्वतः।
आद्यो मैवं प्राकृतस्य सकृत्त्वस्योचितत्वतः॥[१]

तस्मिन्नेवाध्रिगुप्रैषे श्रूयते—'एकधाऽस्य त्वचमाच्छ्यतात्'[२] इति। छिन्धीत्यर्थः। तत्र द्वयोः पश्वोरेकधेत्यस्य शब्दस्य नास्ति विकारः। कुतः? तस्य शब्दस्येह सहत्ववाचित्वात्;—'एकधा गाः पाययति' इत्यत्र योगपद्ये प्रयोगदर्शनात्। पश्वनेकत्वेऽपि त्वगुत्पाटनस्यैककालीनत्वं बहुपुरुषकर्तृकत्वं च घटत इति प्राप्ते, ब्रूमः—प्रकृतावेकस्मिन्पशौ यौगपद्यलक्षणोऽर्थे न संभवति ततः सकृत्त्वं तस्य शब्दस्यार्थः—त्वगियमवयवशो बहुकृत्वो न च्छेत्तव्या किंतु सर्वाऽपि सकृदेकप्रयत्नेनेत्युक्त भवति। यत्प्रकृतौ सकृत्त्वं तदेव विकृतावुचितम्। ततः प्रतिपशु सकृत्त्वमभिधातुम् 'एकधा' इत्ययं मन्त्रोऽभ्यसितव्यः॥

तत्रैवान्यच्चिन्तितम्—

सादृश्यमुत साकल्यं श्येनाद्युक्तौ विवक्षितम्।
प्रसिद्धसंनिधेराद्यस्तत्सत्त्वादखिलोद्धृतिः[३] ॥

अध्रिगुप्रैषे वचनमेतदाम्नायते—'श्येनमस्य वक्षः कृणुतात्' इति। तत्र-यथा '[४]अमी पिष्टपिण्डाः सिहाः क्रियन्ताम्' इत्युक्ते प्रसिद्धसिंहसंनिधानात्पिष्टपिण्डेषु सिहसादृश्यं कर्तव्यतया प्रतीययते, तथैव अस्य पशोर्वक्षः श्येनं कृणुतात् इत्यत्र श्येनसादृश्यं वक्षसि कर्तव्यतया प्रतीयते। ततो वक्षः उद्धृत्य कर्तनाद्युपायेन पक्षचरणचञ्च्वादिकं संपाद्य श्येनसंस्थानं कर्तव्यमिति प्राप्ते, ब्रूमः—वंक्षसि श्येनसादृश्यं स्वत एव पूर्वमस्ति। ततो यथा 'तत्र नश्यति तथा साकल्येनोद्धरणीयम्' इति विवक्षया श्येनशब्दः प्रयुज्यते। तथा सति हविरविकलं भवति। अंसादिष्वनेनैव न्यायेन साकल्यविवक्षया तत्तद्रूपकोक्तिर्द्रष्टव्या।[५] एतदेवाभिप्रेत्य श्रूयते—'गात्रं गात्रमस्यानूनं कृणुतात्'[६] इति।

तत्रैवान्यच्चिन्तितम्—

(१) जै०न्या०वि० ९.३.११२९-३१। (२) तै०ब्रा० ३.६.६.२।
(३) जै०न्या०वि० ९.४.६.२५-२७। (४) तै०ब्रा० ३.६.६.२।
(५) तथा च अंशो कच्छपौ, दोषणी शलाके, कवषौ करवोरपत्रे इत्यादि (तै०ब्रा० ३.६.६)।
(६) तै०ब्रा० ३.६.६.३।

प्रशसेत्यसिरर्थः स्यात्स्तुतिर्वा छेदनादसिः ।
स्तुतिः कात्स्न्र्याय बाह्वोः स्यात्स्वधितिश्छेदसाधानम् ॥[१]

अध्रिगुप्रैषे वाक्यान्तरमाम्नातम्—'प्रशसा बाहू'[२] इति। 'शसु हिंसायाम्' इत्यस्माद्धातोः सोपसर्गादुत्पन्नस्य सकारान्तप्रातिपदिकस्य तृतीयैकवचनान्तस्य 'प्रशसा' इति रूपं भवति। तच्चासेर्वाचकम् तदेतत्केनचिद्ब्राह्मणवाक्येनानूद्यते—"दश 'प्रयाजानिष्ट्वाऽऽह शासमाहरेति। असिवै शास इत्याचक्षते"[३] इति। सोऽयमसिर्बाह्वोश्छेदनहेतुः। तस्माद् दृष्टार्थलाभादसिः 'प्रशसा' इत्यस्य पदस्यार्थ इति चेत्। मैवम्। 'शंसु स्तुतौ' इत्यस्माद्धातोरयमुत्पन्नः। 'प्रशसौ' इत्यस्य द्वितीयाद्विवचनान्तस्य शब्दस्य च्छान्दस औकारलोप आकारदेशे च कृते 'प्रशसा' इति भवित।[४] बाह्वोः प्रशस्तत्वं नाम कात्स्न्र्यम्। 'प्रशसा बाहू कृणुतात्' इत्युक्ते निःशेषेणोद्धर्तत्यौ बाहू। इत्येतादृशो दृष्टार्थो लभ्यते। नात्र च्छेदनसाधनत्वमसेः संभवति स्वधितेस्तत्साधानत्वेन विहितत्वात्। तस्मात् स्तुतिरेवास्य शब्दस्यार्थः। तथा सति बाहुवृद्धौ बहुवचनान्तत्वेन प्रशसा' इति पदमूहनीयम्।[५]

तत्रैवान्यच्चिन्तितम् —

षड्विंशातिर्वङ्क्रयोऽस्येत्यनूहः स्यादुतोह्यते ।
ऊहेऽपि वचनान्यत्वमस्येत्यावर्त्यतेऽथ वा ॥

षड्विंशतेरुताभ्यासः समस्तोक्तिर्भवेदुत ।
अनूहोऽकरणत्वेन दृष्टलाभात्तदूहनम् ॥

संख्यायाश्च पशोर्युक्तेर्वङ्क्रीणां मुख्यतावशात् ।
अमी पक्षा युज्यतेऽन्त्यस्ता अनुष्ठ्येति शेषतः ॥[६]

अध्रिगुप्रैषे वाक्यमिदमाम्नायते—'षड्विंशतिरस्य वङ्क्रयस्ता अनुष्ठ्योच्च्यावयतात्'[७] इति। अयमर्थः—'वङ्क्रयो वक्राणि पार्श्वास्थीनि। तान्यस्य पशोः षड्विंशतिसंख्याकानि, एकैकस्मिन् पार्श्वे त्रयोदशानामवस्थितत्वात्। ताश्च वङ्क्रीनुष्ठ्यानुष्ठायानुक्रमेण गणयित्वेति यावत्। उच्च्यावयतादुद्धरताद्' इति। सोऽयं मन्त्रो वङ्क्रीणामुद्धरणे करणतया न विनियुक्तः। किं तु संज्ञपनात् प्राक्पशौ नीयमाने होत्रा प्रयुज्यते। ततोऽसमवेतार्थत्वाद-

---

(१) जै०न्या०वि० ९.४.५.२३-२४। (२) तै०ब्रा० ३.६.६२।

(३) शत०ब्रा० ३.८.१.४।

(५) 'सुपां सुलुक्'—इति पा०सू० ७.१.३९। प्रशासावित्यत्र द्वितीया द्विवचनस्य छान्दस आत्वे प्रशसेति भवति'—इत्येवं वक्तव्यम्॥

(५) बहुषु पशुषु संज्ञप्तेषु 'प्रशसा बाहू'—इति निगद एव 'प्रशसान् बाहून्'—इति पठितव्यमिति भावः।

(६) जै०न्या०वि० ९.४.१.१-१६। (७) तै०ब्रा० ३.६.६.३।

नूहः—इत्याद्यः पक्षः। अकरणत्वेऽपि नादृष्टार्थत्वम्, वक्ष्यमाणार्थस्मारकत्वेन दृष्टार्थलाभात्। तस्मात्प्रकृतौ समवेतार्थतया विकृतावूहः। तदाऽपि चत्वारः पक्षाः। तत्र संख्या मुख्यत्वेन प्रकाश्यते। तेन द्वयोः पश्वोर्द्विगुणितां षड्विंशतिसंख्यां प्रकाशयितुं द्विवचनान्ततया षड्विंशतिशब्द ऊहनीयः—इत्याद्यः पक्षः। पशोश्चोदितत्वेन मुख्यत्वात्तद्वाचकं षष्ठ्यन्तम् 'अस्य' इति पदं पश्वनुसारेणाऽऽवर्तनीयमिति-द्वितीयः पक्षः। युक्तिर्योगः। षड्विंशतिसंख्यायाश्च पशुना सह संबन्धात्तस्य मुख्यत्वात् प्रतिपशुं विभक्तसंख्यां प्रकाशयितुं षड्विंशतिपदस्याभ्यासः—इति तृतीयः पक्षः। अत्र सर्वत्र मुख्यानुसारेण पदान्तराण्यूहनीयानि। संख्येयानां वङ्क्रीणां मुख्यत्वात् तासामियत्ता समस्य वक्तव्या। ततो 'द्वापञ्चाशदनयोर्वङ्क्रयः। अष्टसप्ततिरेषां वङ्क्रय'[१] इत्येवं यथायोगमूहनीयमिति—चतुर्थः पक्षः। अयमेव सिद्धान्तो वाक्यशेषानुगुण्यात्। ता अनुष्ठ्येत्ययं वाक्यशेषः। स च व्याख्यातः।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—यद्यप्यध्रिगुप्रैषमन्त्रो न समाप्तस्तथाऽप्यनन्तरभागे बहुवक्तव्यसद्भावात् खण्डान्तरं कृतम्।

दशमं भागमनूद्य व्याचष्टे—

(शाखान्तरीयस्याधिग्रुप्रैषस्योत्तरार्द्धस्य व्याख्यानम्)

अस्ना रक्षः संसृजतादित्याह तुषैर्वै फलीकरणैर्देवा हविर्यज्ञेभ्यो रक्षांसि निरभजन्नस्ना महायज्ञात् स यदस्ना रक्षः संसृजतादित्याह रक्षांस्येव तत्स्वेन भागधेयेन यज्ञान्निरवदयते ।।१।।

हिन्दी—(षष्ठ खण्ड में प्रोक्त मन्त्र के दशम भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'अस्ना रक्षः संसृजतात्** रुधिर से राक्षसों को संयोजित करो'—**इत्याह** इस (मन्त्र) का (होता) अनुवाचन करता है। वास्तव में **देवाः** देवताओं ने **फलीकरणैः तुषैः** (धान की) भूसी और थोड़े से चावलों के द्वारा **रक्षांसि** राक्षसों को **हविर्यज्ञेभ्यः**

(१) षड्विंशतिरस्य वङ्क्यः'—इत्येष एव निगदः। द्विपशुस्थले 'द्विपञ्चाशदनयोर्वङ् क्रयः'—इति पठनीयः। एवं त्रिपशुस्थले 'अष्टसप्ततिरेषां वङ्क्रयः'—इति।

(दर्शपूर्णमास इत्यादि) हविष् वाले यज्ञों से **निरभजन्** अलग कर दिया और **महायज्ञाद् अस्ना** रुधिर के द्वारा (ज्योतिष्टोमादि) महायज्ञों से (अलग कर दिया), तो **यद् अस्ना रक्षः संसृजतात्** जो रुधिर से राक्षसों को वियोजित कर दो' **इति सः आह** यह वह (होता) कहता है **तत्** इस कथन से (वह होता) **रक्षांसि एव** राक्षसों को ही **स्वेन भागधेयेन** उनके अपने भाग को देकर **यज्ञात् निरस्यति** यज्ञ से अलग कर देता है।

सा० भा०—अस्नाऽसृजा रुधिरेण रक्षः संसृजतान्मांसाभिलाषव्यावृत्त्यर्थं राक्षसान् रक्तेनैव संयोजयत। एनं मन्त्रभागं होता ब्रूयात्। किमर्थमेतदिति? तदुच्यते—पुरा देवास्तु-षैर्व्रीहिगतैर्हेयांशैः फलीकरणैस्तण्डुललेशैश्च दर्शपूर्णमासादिहविर्यज्ञेषु समागतानि रक्षांसि तोषयित्वा तेभ्यो यज्ञेभ्यो निरभजन् हविर्भागरहितान्यकुर्वन्। महायज्ञे ज्योतिष्टोमादिके समा-गतानि रक्षांसि पशुरक्तेन तोषयित्वा तस्माद्यज्ञान्निरभजन् निःसारितवन्तः। हविर्यज्ञेभ्यो निःसारणं शाखान्तरे दर्शपूर्णमासप्रकरणे मन्त्रव्याख्याने समाम्नातम्—'रक्षसां भागोऽ-सीत्याह[१] तुषैरेव रक्षांसि निरवदयते'[२] इति। तदेतदापस्तम्बेनोक्तम्—'मध्यमे पुरोडाश-कपाले तुषानोप्य रक्षसां भागोऽसीत्यधस्तात् कृष्णाजिनस्योपवपति'[३] इति। महायज्ञान्निः-सरणमग्नषोमीयपशुप्रकरणे तैत्तिरीयैराम्नातम्—'रक्षसां भागोऽसीति स्थविमतो बर्हि-रङ्क्त्वाऽपास्यत्यस्यैव रक्षांसि निरवदयतः'[४] इति। स्थविमतः स्थौल्ययुक्ते बर्हिर्मूलभाग इत्यर्थः। एतदपि सूत्रकारेण स्पष्टीकृतम्—'बर्हिषोऽग्र सव्येन पाणिनाऽऽदत्ते' तं मध्यं यत आर्च्छति तदुभयतो लोहितेनाङ्क्त्वा रक्षसां भागोऽसीत्युत्तरमपरमवान्तरदेशं निरस्य'[५] इति। एवं सति यद्यस्ना रक्ष इति भागं पठेत् तदानीं रक्षांसि स्वकीयभागेन युक्तानि कृत्वा महायज्ञान्निरवदयते निःसारयति॥

अथास्नेत्येतस्य मन्त्रभागस्य पाठं पूर्वपक्षत्वेनाऽऽक्षिपति—

तदाहुर्न यज्ञे रक्षसां कीर्तयेत् कानि रक्षांस्यृतेरक्षा वै यज्ञ इति॥२॥

हिन्दी—(मन्त्र में 'आस्ना रक्षः' इस मन्त्र भाग के पाठ के विषय में पूर्वपक्ष के रूप में आक्षेप कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **यज्ञे रथसाम्** यज्ञ में राक्षसों का **न कीर्तयेत्** नाम नहीं लेना चाहिए क्योंकि **ऋते रक्षा यज्ञः वै** राक्षसों से रहित ही यज्ञ होता है।

सा० भा०—तत्तत्र मन्त्रभागे चोद्यवादिन आहुः। कथमिति, उच्यते—यज्ञे प्रवर्तमाने सति कानिचिदपि रक्षांसि न कीर्तयेत्। जातिविशेषानपेक्ष्य बहुवचननिर्देशः। राक्षसा वान्तर-जातीनां मध्ये राक्षसमसुरं पिशाचं वा न कंचिदपि कीर्तयेत्। जातिविशेषाः श्रुत्यन्तरे सैन्यद्वयोपन्यासे श्रूयन्ते—'देवा मनुष्याः पितरस्तेऽन्यत आसन्नसुरा रक्षांसिपिशाचास्तेऽ-

---

(१) तै०सं० १.१.५.२। (२) तै०ब्रा० ३.२.५.११। (३) आप०श्रौ० १.२०.९।
(४) तै०सं० ६.३.९.२। (५) आप०श्रौ० ७.१८.१३,१४।

न्यत:'[१] इति। अकीर्तने हेतुमृतेरक्षा इतिपदेनोपन्यस्यति। तदेतत् समस्तमेकमेव पदम्। ऋतशब्दो वर्जनवाची। वर्जितं रक्षो यस्मिन् यज्ञे सोऽयमृतेरक्षाः। यज्ञे हि हविर्भागत्वाद्देवा एव नामग्रहणमर्हन्ति न तु रक्षःप्रभृतयः। तस्मादेतं मन्त्रभागं न कीर्तयेत्—इत्याक्षेपवादिनामभिप्रायः।।

समाधत्ते—

तदु वा आहुः कीर्तयेदेव ।।३।।

हिन्दी—(उपर्युक्त पूर्वपक्ष का समाधान कर रहे हैं—) **तदु वै आहुः** इस विषय में (सम्प्रदायविद् समाधान को) कहते हैं कि **कीर्तयेत् एव** (आस्ना रक्षः' इस मन्त्र भाग का) अनुवाचन करना ही चाहिए।

सा०भा०—तदु वै तस्मिन्नेवास्ना रक्ष इति मन्त्रभागे संप्रदायविदः समाधानमाहुः। यद्यपि तत्र रक्षोनामास्ति तथाऽपि तं भागं कीर्तयेदेव।।

तत्रोपपत्तिमाह—

यो वै भागिनं भागान्नुदते चयते वैनं स यदि वैनं न चयतेऽथ पुत्रमथ पौत्रं चयते त्वेवैनमिति ।।४।।

हिन्दी—(उपर्युक्त समाधान के विषय में उपपत्ति को कह रहे हैं—) **यः वै भागिनः** जो जिस भाग का भागीदार है, उसको **भागाद् नुदने** (यदि उसके) भाग से अलग कर देता है तो **सः एनं चयते** वह (विनष्टभाग) इसको नष्ट कर देता है। **यदि वा एनं न चवते** यदि इसको विनष्ट नहीं करता तो **अथ पुत्रम् अथ पौत्रम् चवते** इस (यजमान) के पुत्र और पौत्र को नष्ट करता है।

सा०भा०—यः पुमान् भागिनं भागार्हं सन्तमन्यं पुरुषं तदीयाद्भागान्नुदते नाशयत्येनं विनाशयितारं स नष्टभागः संश्चयते वैनं च्यावयत्येव। यदि वा यदा कदाचिद् विनाशयितुः प्राबल्ये सति तदानीमेनं न चयते न च्यावयति। अथापि कालान्तरे तदीयं पुत्रं पितृद्वेषेण विनाशयति तदाऽप्यशक्तौ पौत्रं वा विनाशयति। किं बहुना भागभ्रष्टो मनसि द्वेषं गृहीत्वा स्वविरोधिनमेनं भ्रंशयितारं यदा कदाचित्केनापि द्वारेण चयते त्वेव विनाशयत्येवेत्यनेनाभिप्रायेण मन्त्रभागं कीर्तयेदेवेत्यभिज्ञैरुक्तम्। यद्यपि रक्षसां हविर्भागो नास्ति तथाऽपि यज्ञे तुषकणादिदेवानर्हभागोऽस्त्येव, तस्मात् कीर्तनपक्ष एव युक्तः।।

तत्रैतस्य मन्त्रभागस्य कीर्तने कञ्चिद्विशेषं विधत्ते—

स यदि कीर्तयेदुपांशु कीर्तयेत्तिर इव वा एतद्वाचो यदुपांशु तिर इवैतद् यद् रक्षांसि ।।५।।

(१) तै०सं० २.४.१.१।

हिन्दी—(इस मन्त्रभाग के अनुवाचन में कुछ विशेष विधान कर रहे हैं–) **यदि सः कीर्तयेत्** यदि वह अनुवाचन करे तो **उपांशु कीर्तयेत्** उपांशु अनुवाचन करे। **यद् उपांशुः** जो उपांशु (वाचन) है **एतद् वाचः तिरः इव** यह वाणी का तिरोहित रूप है और **यद् रक्षांसि** जो राक्षस हैं **एतत् तिरः इव** ये भी छिपे ही रहने वाले हैं।

सा० भा०—स याज्ञिको यज्ञे रक्षसां नामधेयं द्वेषपरिहाराय यदि कीर्तयेत् तदाऽप्युपांशु परैर्यथा न श्रूयेत तथा कीर्तयेत्। वाचः संबन्धि यदुपांशुकीर्तनमेतत्तिर इव तिरोहितमिव भवति। यथा कुड्यादिव्यवहितं स्तम्भादिकं चक्षुषा न दृश्यते तथैवोपांशुकथितं न श्रूयते। रक्षांसीति यदस्त्येतदपि तिर इव चोरवद्यज्ञे रक्षसां गूढचारित्वात्। तस्मात् तदीयकीर्तनस्योपांशुत्वं युक्तम्॥

विपक्षे बाधं दर्शयति—

अथ यदुच्चैः कीर्तयेदीश्वरो हास्य वाचो रक्षोभाषो जनितोः ॥६॥

हिन्दी—(विपक्ष में बाधा को दिखला रहे हैं—) **अथ यदि उच्चै कीर्तयेत्** अब यदि ऊँची ध्वनि से उच्चारण करता है तो **अस्य वाचः** उसकी वाणी **रक्षोभावः जनितोः ईश्वरः** राक्षस भाषा को उत्पन्न करने में समर्थ हो जाती है।

सा० भा०— अथोपांशुवैलक्षण्येन यद्युच्चैः कीर्तयेदस्य कीर्तयितुः संबन्धिनीर्वाचो रक्षोभाषो जनितोर्जनयितुमयमीश्वरो भवति। रक्षोभिर्भाष्यत इति रक्षोभाष्, इत्यस्य स्त्रीलिङ्गस्य द्वितीयाबहुवचनं रक्षोभाष इति। तदेतद्वाच इत्यस्य विशेषणम्। अस्योच्चैः कीर्तयितुर्या वाचः सन्ति ताः सर्वा रक्षः प्रोक्तवाग्रूपेणोत्पादयितुमयं संकीर्तयिता समर्थो भवतीति॥

कोऽयं समर्थ इत्याशङ्क्य तं विशेषाकारेण दर्शयति—

योऽयं राक्षसीं वाचं वदति सः ॥७॥

हिन्दी— **यः अयं राक्षसीं वाचं वदति** जो वह राक्षसों की भाषा बोलता है **सः** वह (राक्षसों की भाषा को उत्पन्न करने वाला होता है)।

सा० भा०—लोके यः पुमान् रक्षसां वाचं परभर्त्सनरूपामुच्चध्वनित्वेन भीतिकरी वाचं ब्रूते स पुमांस्तामप्युच्चैः कीर्तयन् रक्षसां वागुत्पादको भवति॥

काऽसौ राक्षसी वागित्याशङ्क्याऽऽह—

यां वै दृप्तो वदति, यामुन्मत्तः सा वै राक्षसी वाक् ॥८॥

हिन्दी—(राक्षसी वाणी को बतला रहे हैं—) **दृप्तः वै यां वदति** (लोक में) अभिमान (तिरस्कार) से सम्पन्न होकर और **याम् उन्मत्तः** बुद्धि रहितता से रहित होकर जिस (वाणि) को व्यक्ति बोलता है, **सा वै राक्षसी वाक्** वही राक्षसी वाणी कहलाती है।

सा०भा०—धनविद्यादिना दृप्तो दर्पं प्राप्तः परतिरस्कारहेतुं यां वाचं वदत्युन्मत्तश्च बुद्धिराहित्यात् पूर्वापरसंबन्धरहितां यां वाचं वदति सेयमुभयविधाऽपि राक्षसी वाक्।।

एतद्वेदनं प्रशंसति—

नाऽऽत्मना दृप्यति नास्य प्रजायां दृप्त आजायते य एवं वेद ।।९।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **न आत्मना दृप्यति** स्वयं अभिमान नहीं करता और **अस्य प्रजायां न दृप्तः आ जायते** उसकी (पुत्रादि) सन्तान में (कोई) अभिमानी नहीं पैदा होता है।

सा०भा०—वेदिता स्वयमपि दर्पं नाऽऽप्नोति तदा स्वीयायां प्रजायां कश्चिदपि दृप्तो नोत्पद्यते।।

एकादशं भागमनूद्य व्याचष्टे—

वनिष्ठुमस्य मा राविष्टोरूकं मन्यमाना नेत् वस्तोके तनये रविता रवच्छमितार इति ये चैव देवानां शमितारो ये च मनुष्याणां तेभ्य एवैनं तत् परिददाति ।।१०।।

हिन्दी—(मन्त्र के एकादश भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'हे शमिताओं **अस्य** इस (पशु) के **वनिष्ठम्** वनिष्ठु (वपा के समीप वाले उलूक के आकार वाले मांस खण्ड) को **उरूकं मन्यमाना** उलूक (पक्षी) समझते हुए **मा राविष्ट** मत काटो जिससे **वः** तुम (शमिताओं) के **तोके तनये** पुत्र ओर पौत्र में **रविता न इत्** रोने वाले न होवे, **इति** इस प्रकार **तत्** इस (पाठ) से **ये देवानाम्** जो देवताओं में और **ये मनुष्याणाम्** जो मनुष्यों में **शमितारः** (पशु का) हनन करने वाले होते हैं, **तेभ्यः** उन (शमिताओं) के लिए **एनम्** इस (मांसखण्ड) को **परिददाति** समर्पित करता है।

स०भा०—हे शमितारो दैव्या मानुष्याश्च वनिष्ठुं वपायाः समीपवर्तिनं मांसखण्ड-मस्य पशोः संबन्धिनमुरूकमुलूकाख्यं पक्षिसदृशं मन्यमाना विशेषाकारेण विजानन्तो मा राविष्ट मैव लवनं कुरुत। उलूकसदृशो वनिष्ठुर्यथा वर्तते तथैवोद्धरत, न तु मध्यतश्छिन्नं कुरुतेत्यर्थः। एवं कुर्वतां वो युष्माकं संबन्धिनि तोके पुत्रे तनये तदीयापत्ये च रविता शब्दयिता नेन्नैव रवद्भूयात्। यथाशास्त्रं छेदने क्रियमाणे भवतां गृहे पुत्रपौत्रादिकं निमित्ती-कृत्य रोदिता न भविष्यतीत्यर्थः। तद्भागपाठेन देवानां मध्ये ये शमितारः सन्ति मनुष्याणां च मध्ये ये सन्ति तेभ्य एव सर्वेभ्य एनं वनिष्ठुं परिददात्यवैकल्याय समर्पयति।।

द्वादशं भागमनूद्य व्याचष्टे—

अध्रिगो शमीध्वं सुशमि शमीध्वं शमीध्वमध्रिगा३ उ इति त्रिर्ब्रूयाद-पापेति चाध्रिगुर्वै देवानां शमिताऽपापो निग्रभीता शमितृभ्यश्चैवैनं

तन्निग्रभीतृभ्यश्च संप्रयच्छति ।।११।।

हिन्दी—(मन्त्र के द्वादश भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **अध्रिगो** हे अध्रिगु! **शमीध्वम्** (विशसन इत्यादि के द्वारा पशु का) संस्कार करो, **सुशमि शमीध्वम्** सुष्ठु प्रकार से (शास्त्रानुसार) संज्ञपन करो। **अध्रिगा** हे अध्रिग! **शमीध्वम्** संज्ञपन करो, **इति त्रिः ब्रूयात्** यह तीन बार कहना चाहिए तथा **अपाप इति** 'पाप से रहित' (इस शब्द को भी तीन बार कहना चाहिए)। **अध्रिगुः वै देवानां शमिता** देवताओं के बीच संज्ञपन करने वाला अध्रिगु होता है और **अपापः निग्रभीता** (ध्यान इत्यादि द्वारा निग्रह करने वाला है अतः) वह अपाप होता है। **तत्** इस पाठ से **शमितृभ्यः च निग्रभीतृभ्यः च** समिताओं और निग्रहीताओं के लिए **एनम्** इस पशु को **सम्प्रयच्छति** संज्ञपन के लिए प्रदान करता है।

सा० भा०—हे अध्रिगो, एतन्नामकदेवेषु शमितृषु मुख्यदेवा यूयं सर्वे शमीध्वं विशसनादिना पशुं संस्कुरुध्वम्। पुनरपि विशेषाकारेणोच्यते सुशमि सुष्ठु शमनं शास्त्रीयं विशसनं यथा भवति तथा शमीध्वं शमयत संज्ञपयत। अध्रिगादौ प्लुतिर्दूरादाह्वानार्था। ओकारस्य प्लुतिवेलायामाकार उकारश्चेति वर्णद्वयं संपद्यते।[1] तथाविधा यूयमितरैः सह यूयं सुशमीध्वं सर्वथा शमयत न तूपचरितं शमनं कुरुत। क्रूरकर्मेति[2] कृत्वा तदुपेक्षणं मा भूदिति पुनः पुनर्वचनम्। अध्रिगो शमीध्वमित्यादिकं वाक्यत्रयसमुदायं त्रिवारमावर्तयेत्। अपापेत्यपि तत्संबन्धिनं त्रिवारमावर्तयेत्। तदेतद् आश्वलायन आह—'अध्रिग्वादि त्रिरुक्त्वा'[3] इति। अध्रिगो अपापदेवः (?)। सोऽयमपापवाची शाखान्तरे पठ्यते—'अध्रिगुश्चापापश्चोभौ देवानां शमितारौ'[4] इति। अत्र तु तदवान्तरविशेषोऽभिधीयते। देवानां मध्ये यः शमिता हन्ता सोऽध्रिगुर्यश्च ध्यानादिना निग्रभीता निग्रहस्य कर्ता सोऽयमपापः। तद्भागपाठेनाध्रिगुप्रभृतिभ्यः शमितृभ्यश्चापापप्रभृतिभ्यो निग्रहीतृभ्यश्चैनं पशुं संज्ञपनाय प्रयच्छति।।

अध्रिगुमन्त्रपाठानन्तरं जप विधत्ते—

(अध्रिगुमन्त्रपाठान्तरं जपविधानम्)

शमितारो यदत्र सुकृतं कृणवथास्मासु तद्यद् दुष्कृतमन्यत्र तदित्याहाग्निर्वै देवानां होताऽऽसीत्, स एनं वाचा व्यशाद्, वाचा वा एनं होता विशास्ति तद्यदर्वाग्यत्परः कृन्तन्ति यदुल्बणं यद्विथुरं क्रियते

---

(१) 'एचो०' पा०सू० ८.२.१०७।

(२) क्रूरकर्मत्वेवं विहितम्—'संज्ञपयन्ति अध्वर्युः'–इति० आप०श्रौ० ७.१६.५.६। 'मायुः शब्दः, तमकुर्वन्तमित्यर्थः—इति च तट्टीका। तच्छब्दरोधाय मुखे धानादीन् प्रवेशयति निग्रभिता। तदुक्तं कात्यायनेन—'संगृह्य मुखं तमयन्त्यवाश्यमानम्'—इति ६.५.१८।

(३) आश्व०श्रौ० ३.३.४। (४) तै०ब्रा० ३.६.६.४।

शमितृभ्यश्चैवैनत् तन्निग्रभीतृभ्यश्च समनुदिशति स्वस्त्येव होतोन्मुच्यते, सर्वायुः सर्वायुत्वाय ।।१२।।

हिन्दी—(अध्रिगु मन्त्र के पाठान्तर जप का विधान कर रहे हैं—) (होता कहता है कि) **शमितारः** हे शमिताओ! **यद् अत्र** जो इस (पशु के संज्ञपन कर्म) में **सुकृतं कृणवथ** सुकृत करते हो **तद् अस्मासु** वह हम लोगों के प्रति रहे और **यद् दुष्कृतं तद् अन्यत्र** जो दुष्कृत्य करते हो वह अन्यत्र चला जाय, (होता इस मन्त्र का जप करके दक्षिण की ओर घूम जाता है। अब इस मन्त्र के अर्थ को बतला रहे हैं—) (जब देवताओं ने यजन किया उस समय) **अग्निः वै देवानां होता आसीत्** अग्नि ही देवताओं का होता था। **सः एव एनं वाचा व्यशात्** उस (अग्नि) ने ही इस (पशु) को (अध्रिगु प्रैष वाली) वाणी से अलग किया था। अतः **होता वाचा वै एनं विशास्ति** होता वाणी द्वारा इस (पशु) का विच्छेदन करता है। **तद्** तो **यद् अर्वाक् यत् परः कृतन्तन्ति** जो उसके आगे का भाग और जो पीछे का भाग काटते हैं; उनमें **यद् उल्बजं यद् विथुरं क्रियते** जो अतिरिक्त और जो न्यून कार्य किया जाता है, **तत्** इस (पाठ) से **एनत् शभितृभ्यः च निग्रभीतृभ्यः च** इस समिताओं के लिए और निग्रहीताओं के लिए **समनुदिशति** सम्यक् रूप से निर्देश करता है। (इस मन्त्र के जप से) **होता स्वस्त्या एव उन्मुच्यते** होता कल्याण द्वारा (पाप से अपने को) मुक्त कर देता है और **सर्वायुः** सम्पूर्ण आयु को (प्राप्त करता है)। (इस प्रकार यह) **सर्वायुत्वाय** (यजन करने वाले व्यक्ति के) सम्पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए भी होता है।

सा० भा०—हे शमितारो यदत्र पशुविशसनकर्मणि यत्सुकृतं कृणवथास्मासु तत्। यद्दुष्कृतमन्यत्र तदिति जपित्वा दक्षिणावृदावर्तन इति। एतन्मन्त्रार्थमग्निर्वा–इत्यादिनोच्यते। यदा देवा यज्ञं कुर्वन्ति तदानीं तेषां मध्येऽग्निरेव होताभूत्। स एनं पशुं वाचाऽध्रिगुप्रैषरूपया व्यशाद विशसनं कृतवान्। अध्रिगुप्रैष आरभध्वं शमीध्वमित्यादिप्रेरणवाचकानां पदानां बहूनां विद्यमानत्वादस्त्येव होतुर्वाचिकं विशसनम्।[1] तथा सति पशोरर्वाग्भागे यत्कृन्तन्ति यच्च परः परभाग उत्तमाङ्गे कृन्तन्ति तस्मिन्नुभयस्मिन्नपि च्छेदने यदुल्बणं शास्त्रार्थादतिरिक्तं क्रियते यच्च विथुरं न्यूनं क्रियते, तत्सर्वमेनत् पशुशमितृभ्यो निग्रभीतृभ्यश्च समनुदिशति, तेन मन्त्रजपेन सम्यक् कथयतीति वाचा होता स्वस्त्येव क्षेमेणैव पापान् मुच्यते सर्वायुमृत्युरहितश्च भवति यजमानस्याप्यपमृत्युराहित्याय।।

एतद्वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ।।१३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस रहस्य

(१) द्र० अध्रिगुशब्दनिर्वचनम्, तत्प्रैषमन्त्रव्याख्यानादिकञ्च निरु० ५.११।

को) जानता है, वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

सा० भा०—अत्र मीमांसा। नवमाध्यायस्य चतुर्थपादे चिन्तितम्—

पक्षी वपाऽथवोरूको रलयोरविशेषितः।
पक्षी वपा संनिधानाद् भ्रान्तिच्छेदनिषेधतः ॥[1]

अध्रिगुप्रैषे वचनमिदम् आम्नायते—'वनिष्ठुमस्या मा राविष्टोरूकं मन्यमानाः'[2] इति। वनिष्ठुर्वपासमीपवर्ती कश्चित्पश्वङ्गविशेषः। तं मा राविष्ट तस्य लवनं मा कुरुतेति व्यत्ययेन लकारस्य रेफः[3]। किं कुर्वन्तः—उरूकं मन्यमानाः। वनिष्ठावुरूकबुद्धिं कुर्वन्त इत्यर्थः। अत्र—उरूकशब्देन काकविरोधी कश्चिद् उलूकनामा पक्षिविशेषोऽभिधीयते। कुतः—रलयोरविशेषात्। 'पर्यङ्कः, पल्यङ्कः, लोमानि, रोमाणि' इत्यादि दर्शनात्। उरूकशब्दः सादृश्यलक्षकः। 'पक्षिसदृशं वनिष्ठुं विवेकेन मन्यमाना मा राविष्टेति वाक्यार्थः। तस्मादुरूकशब्दः पक्षीति प्राप्ते, ब्रूमः—उरूकशब्देनात्र वपा लक्ष्यते। कुतः,—वनिष्ठुसंनिधानात्। साहित्यसंनिधानादुरूकत्वभ्रान्तिवनिष्ठौ संभवति। भ्रान्तिप्राप्तं लवनमत्र निषिध्यते। 'उरूकं मन्यमाना वनिष्ठुं मा राविष्ट' इत्युक्तत्वात्। वपालवनकाले भ्रान्त्या वनिष्ठोर्यल्लवनं तस्य निषेधे सति दृष्टार्थो लभ्यते, भ्रान्तिनिवारणस्य दृष्टत्वात्। त्वत्पक्षे वनिष्ठोर्लवनमेव नास्ति। तच्चायुक्तम्। हृदयाद्यङ्गवद्वनिष्ठोर्लवितव्यत्वात्। 'वनिष्ठुमग्नीध्रे षडवत्तँ संपादयति'[4] इत्याद्यनुष्ठानविधानात्। ततो लवननिषेधस्यासमवेतार्थत्वेनादृष्टार्थो मन्त्रपाठः प्राप्नुयात्। तस्माद्वपावचन उरूकशब्दः। यद्यपि वपायामप्रसिद्धस्याऽप्युरु विस्तीर्णमुको मेदो यत्रेत्यवयवार्थद्वारा मेदस्विन्यां वपायां युक्त उरूकशब्दः। एवं सत्यनेकवपासु विकृतिष्वेकवचनान्त उरूकशब्द ऊहनीयः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाश ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये
द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) सप्तमः खण्डः ॥७॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के सप्तम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ अष्टमः खण्डः

सा० भा०—अध्रिगुप्रैषं समाप्य पुरोडाशं विधातुं बहुभिः पर्यायैरुपेता काचिदाख्यायिकोच्यते। तत्र प्रथमं पर्यायं दर्शयति—

---

(१) जै०न्या०वि० ९.४.४.२२। (२) तै०ब्रा० ३.६.६.३।
(३) द्र० पा०सू० ३.४. ९८। (४) आप०श्रौ० ७.२६.६।

(पशुपुरोडाशविधानार्थमाख्यायिका)

पुरुषं वै देवाः पशुमालभन्त तस्मादालब्धान्मेध उदक्रामत्, सोऽश्वं प्राविशत् तस्मादश्वो मेध्योऽभवदथैनमुत्क्रान्तमेधमत्यार्जन्त स किंपुरुषोऽभवत् ।।१।।

हिन्दी—(अध्रिगु प्रैष का विधान करके पुरोडाश विधान के लिए बहुत से पर्यायो से युक्त किसी आख्यायिका को कह रहे हैं उसमें प्रथम पर्याय—) **देवाः** देवताओं ने **पुरुषं पशुम् आलभन्त** पुरुष को ही पशुरूप बनाकर (उस पुरुष का ही यज्ञ करने लिए) आलभन किया। **तस्माद् आलब्धात्** उस आलम्भित (पुरुषरूप पशु) से **मेधः उत्क्रामत्** मेध (यज्ञ के योग्य हविर्भाग) निकल कर (अन्यत्र) चला गया। **सः अश्वं प्राविशत्** वह (हविर्भाग) अश्व में प्रवेश कर गया। **तस्मात्** इसी कारण **अश्वः मेध्यः अभवत्** अश्व यज्ञ की हविष् के योग्य हो गया। **अथ** इसके बाद **उदक्रान्तमेधम् एनम्** निकल गये हविर्भाग वाले इस (पुरुषरूप पशु) को **अत्यार्जन्त** (देवताओं ने) अत्यधिक तिरस्कृत कर दिया। **सः किंपुरुषः अभवत्** वह (तिरस्कृत पुरुषपशु) किन्नर हो गया।

सा०भा०—पुरा कदाचिद्देवाः स्वकीये यज्ञे पुरुषं मनुष्यं पशुमालभन्त पशुं कृत्वा तेन पशुना यष्टुमुद्युक्ताः। तस्मादालब्धाद्यष्टुमुद्युक्तान्मनुष्यपशोर्मेधो मेध्यो यज्ञयोग्यो हविर्भाग उदक्रामन्मनुष्यं परित्यज्यान्यत्रागच्छत्। गत्वा च स भागोऽश्वं प्राविशत्। यस्मादेवं तस्मादश्वो यज्ञयोग्योऽभवत्। अथ तदानीमुत्क्रान्मेधं परित्यक्तहविर्भागमेनं मनुष्यं देवा अत्यार्जन्तातिशयेन वर्जितवन्तः। तस्मिन्पशुत्वमपि नाकुर्वन्। देवैः स्वीकृत्य परित्यक्तः स मनुष्यः किंपुरुषः किन्नरावान्तरजातीयः।।

द्वितीयं पर्यायं दर्शयति—

तेऽश्वमालभन्त, सोऽश्वादालब्धादुदक्रामत्, स गां प्राविशत्, तस्माद् गौर्मेध्योऽभवदथैनमुत्क्रान्तमेधमत्यार्जन्त स गौरमृगोऽभवत् ।।२।।

हिन्दी—(अब द्वितीय पर्याय को कह रहे हैं—) **ते अश्वम् आलभन्त** उन (देवताओं) ने अश्व का आलभन किया। **सः आलब्धाद् अश्वात्** वह (यज्ञ के योग्य हविर्भाग) आलभन किये गये अश्व से **उदक्रामत्** निकल कर अन्यत्र चला गया। **सः गां प्राविशत्** वह (हविर्भाग) गाय में प्रविष्ट हो गया। **तस्मात्** इसी कारण **गौः मेध्यः भवति** गाय यज्ञ के (हविष् के) योग्य हो गयी। **अथ** इसके बाद **उत्क्रान्तमेधम् एनम्** निकल गये (हविर्भाग) वाले इस (अश्व पशु) को **अत्यार्जन्त** (देवताओं ने) तिरस्कृत कर दिया। **सः गौरमृगः अभवत्** वह (तिरस्कृत अश्व) नीलगाय हो गया।

सा०भा०—आलब्धादश्वान्मेधो यज्ञयोग्यभाग उत्क्रम्य गां प्राविशत्, स गौर्यज्ञयोग्य आसीत्। तदानीमयोग्यत्वेन त्यक्त सोऽश्वो गौरमृगोऽभवद्, यस्य शृङ्गावपि

लोमशौ भवतः॥

तृतीयपर्यायं दर्शयति—

ते गामालभन्त, स गोरालब्धादुदक्रामत्, सोऽविं प्राविशत्, तस्माद-विर्मेध्योऽभवदथैनमुत्कान्मेधमत्यार्जन्त, स गवयोऽभवत्, तेऽविमा-लभन्त सोऽवेरालब्धादुदक्रामत्, सोऽजं प्राविशत्, तस्मादजो मेध्योऽ-भवदथैनमुत्क्रान्तमेधमत्यार्जन्त, स उष्ट्रोऽभवत् ।।३।।

हिन्दी—(तृतीय पर्याय को कह रहे हैं—) **ते गाम् आलभन्त** उन (देवताओं) ने गाय का आलभन किया। **सः आलब्धाद् गौः** वह (यज्ञ के योग्य हविर्भाग) आलभन की गयी गाय से **उदक्रामत्** निकल कर अन्यत्र चला गया। **सः अविं प्राविशत्** वह (हविर्भाग) भेड़ में प्रवेश कर गया। **तस्मात्** इसी कारण **अविः मेध्यः अभवत्** भेड़ यज्ञ के योग्य पशु हो गया। **अथ** इसके बाद **उत्क्रान्तमेधम् एनम्** निकल गये (हविर्भाग) वाली इस गाय (पशु) को **अत्यार्जन्त** (देवताओं) ने तिरस्कृत कर दिया। **सः गवयः अभवत्** वह (तिरस्कृत गो) बैल हो गया। **ते अविम् आलभन्त** (तब) उन (देवताओं) ने भेड़ का आलभन किया। **सः आलब्धात् अवेः** वह (हविर्भाग) आलभन की गयी उस (भेड़) से **उद्क्रामत्** निकल कर अन्यत्र चला गया। **सः अजं प्राविशत्** वह (हविर्भाग) बकरे में प्रविष्ट हो गया। **तस्मात्** इसी कारण **अजः मेध्यः अभवत्** बकरा यज्ञ के योग्य हो गया। **अथ उत्क्रान्त मेधम् एनम्** तब निकल गये (हविर्भाग) वाले इस (बकरे) को **अत्यार्जन्त** (देवताओं ने) तिरस्कृत कर दिया। **सः उष्ट्रः अभवत्** वह (तिस्कृत बकरा) ऊँट हो गया।

सा० भा०—अजादयः प्रसिद्धाः। उष्ट्रो दीर्घग्रीवः॥

अजं पुनरपि प्रशंसति—

सोऽजे ज्योक्तमामिवारमत तस्मादेष एतेषां पशूनां प्रयुक्ततमो यदजः।।४।।

हिन्दी—(अज की पुनः प्रशंसा कर रहे हैं—) **सः** वह (हविर्भाग) **अजे** बकरे में **ज्योक्तमाम् इव** अत्यधिक चिरकाल तक **आरमत्** निवास किया। **तस्मात्** इसी कारण **यद् अजः** जो बकरा है **एषः** यह (बकरा) **एतेषां पशूनाम्** इन (पूर्वोक्त गवादि) पशुओं में **प्रयुक्ततमः** अत्यधिक प्रयुक्त हुआ।

सा० भा०—स मेधाख्यो यज्ञयोग्यभागस्मस्मिन्नजे ज्योक्तमामिवातिशयेन चिरकाल-मेवारमत क्रीडितवांस्तस्माच्चिरकालमेव सद्भावाद्योऽयमजोऽस्ति स एष एतेषां पूर्वोक्तानां पशूनां मध्ये प्रयुक्ततमः शिष्टैरतिशयेन प्रयुक्तः॥

पञ्चमं पर्यायं दर्शयति—

तेऽजमालभन्त, सोऽजादालब्धादुदक्रामत, स इमां प्राविशतु, तस्मा-

दियं मेध्याऽभवदथैनमुत्क्रान्तमेधमत्यार्जन्त, स शरभोऽभवत् ।।५।।

हिन्दी— (पञ्चम पर्याय को कह रहे हैं—) **ते अजम् आलभन्त** उन (देवताओं) ने बकरे का आलभन किया। **सः आलब्धाद् अजात्** वह (हविर्भाग) आलभन किये गये उस (बकरे) से **उदक्रामत** निकलकर अन्यत्र चला गया। **सः इमां प्राविशत्** वह (हविर्भाग) इस (पृथिवी) में प्रवेश कर गया। **तस्मात्** इसी कारण **इयं मेध्या अभवत्** यह (पृथिवी) यज्ञ के योग्य हो गयी। **अथ उत्क्रान्तमेधम् एनम्** तब निकल गये (हविर्भाग) वाले इस (बकरे) को **अत्यार्जन्त** (देवताओं ने) तिरस्कृत कर दिया। **सः शरभः अभवत्** वह (तिरस्कृत बकरा) शरभ (सिंह को हिंसित करने वाला पशुविशेष) हो गया।

सा॰भा॰—इमां पृथिवीम्। शरभोऽष्टभिः पादैरुपेतः सिंहघाती मृगविशेषः।।

अत्र प्रसङ्गात् कंचिद्धर्मविशेषं दर्शयति—

त एत उत्क्रान्तमेधा अमेध्याः पशवस्तस्मादेतेषां नाश्नीयात् ।।६।।

हिन्दी—(अब प्रसङ्गवश किसी धर्म-विशेष को दिखला रहे हैं—) **उत्क्रान्तमेधा ते एते** निकल गये (हविर्भाग) वाले वे ये **पशवः** (मनुष्य, अश्व, गो, अवि और अज) पशु **अमेध्याः** यज्ञ के (हविर्भाग के) योग्य नहीं हैं। **तस्मात्** इसी कारण **एतेषाम्** इनका (मांस) **न अश्नीयात्** नहीं खाना चाहिए।

सा॰भा॰—मनुष्याश्वगोव्यजेभ्यो मेधस्योत्क्रमणक्रमेण निष्पन्नास्त एते किंपुरुषादयो मेधराहित्याद् यज्ञयोग्याः पशवो नाऽऽसन्।[1] अत एतेषां पशूनां संबन्धि मांसं नाश्नीयात्।।

अत्र पुरोडाशं विधत्ते—

(पुरोडाशविधानम्)

तमस्यामन्वगच्छन्, सोऽनुगतो व्रीहिरभवत्, तद्यत्पशौ पुरोळाश-मनुनिर्वपन्ति समेधेन नः पशुनेष्टमसत्, केवलेन नः पशुनेष्टम-सदिति ।।७।।

---

(१) आदिकाले वरमेधस्य प्राचुर्यमासीत्—एतेनानुमीयते, ततस्तदनुकल्पोऽश्वमेधः प्रचलितः। एवं क्रमेण शरभान्तो मेध्यश्चलितः, ततो जीवहिंसने ग्लानिमनुभूय तदनुकल्पत्वं पुरोडाशस्य मत्त्वैव 'पिष्ट-पशुः' प्रारब्धः, योऽनुष्ठितः सम्प्रति च प्रायः षड्विंशत्यब्दतः प्राक् काश्यामसीतीरे पेशवावंशधरेणेति। शतपथेऽप्येवम्—पुरुषो हि प्रथमः पशूनाम्'—इत्यादि ६.२.१.१८। घृतपशुः पिष्टपशुश्च म०सं० ५.३७। उक्तं च तथा—'दधि मधु घृतमापो धाना भवन्त्येतद्वै पशूनां रूपम्—इति तै०सं० २.३.२.८। 'पशवो वै। पुरोडाशः'—इति च ७.१.९। इहानुपदं वक्ष्यति च 'स वा एष पशुरेवालभ्यते यत् पुरोळाशः'—इति (९ खण्डे)।

हिन्दी—(अब पुरोडाश का विधान कर रहे हैं—) **अस्यां** इस (पृथिवी) में (प्रवेश किये) **तम्** उस (हविर्भाग) को **अन्वगच्छन्** (देवताओं ने) अनुगमन किया। **अनुगतः सः** (देतवओं द्वारा) अनुगमन किया जाता हुआ वह (हविर्भाग) **व्रीहिः अभवत्** धान हो गया। **तद् यत्** तो जो **पशौ अनु** पशु (के आलभन के) पश्चात् **पुरोडाशं निर्वपन्ति** पुरोडाश का निर्वाण करते हैं, वह **नः** हमारे लिए **समेधेन पशुना** यज्ञ योग्य (हविर्भाग) वाले पशु ही से **इष्टम् असत्** अभीष्ट होता है। इस प्रकार **नः** हम लोगों को (अन्य साधन की निरपेक्षा से) **केवलेन पशुना असत्** केवल (मेधपूर्ण) पशु ही अभीष्ट होना चाहिए।

सा० भा०—तं मेधाख्यं हविर्भागमस्यां पृथिव्यां प्रविष्टं ग्रहीतुं देवा अन्वगच्छन्। स च मेधो देवैरनुगत उत्क्रान्तुमशक्तः सन्सहसा व्रीहिरभवत्। तथा सति यदि पशौ पुरोडाशमनुनिर्वपन्ति पश्वालम्भानन्तरमेव निर्वपेयुः, तदानीं नोऽस्माकं समेधेन यज्ञयोग्यहविर्भागयुक्तेन पशुनेष्टसदिष्टं भवति। पुरोडाशनिर्वापर्तॄणां कोऽभिप्राय इति, सोऽभिधीयते। नोऽस्माकं केवलेन साधनान्तरनिरपेक्षेण मेधपूर्णेन पशुनेष्टमस्त्विति तदभिप्रायः॥

वेदनं प्रशंसति—

समेधेन हास्य पशुनेष्टं भवति, केवलेन हास्य पशुनेष्टं भवति य एवं वेद ॥८॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, **अस्य** इसका **समेधेन पशुना इष्टं भवति** मेध (हविर्भाग) से युक्त पशु से (याग करना) इष्ट होता है और **अस्य** इस यजन करने वाले का **केवलेन पशुना इष्टं भवति** अन्य साधन की निरपेक्षा से) केवल (मेध पूर्ण) पशु ही इष्ट होता है।

सा० भा०—समेधेनेत्यस्यैव वाक्यस्य व्याख्यानं केवलेनेत्यादि। तदेतत् सर्वं श्रुत्यन्तरसंगृहीतम्—'पशुमालभ्य पुरोडाशं निर्वपति समेधमेवैनमालभते'[1] इति॥

अत्र मीमांसा—

उपकारी संस्कृतिर्वा पुरोडाशः पशूदितः।
तद्धितोक्त्या द्वयोर्देवभेदादुपकृतिर्मता॥

संदशान्निश्चितेऽङ्गत्वे दृष्टोऽर्थः स्मृतिसंस्कृतिः।
देवान्तरं चेद्विकृततावग्नीषोमनिवर्तनम्॥[2]

ज्योतिष्टोमाङ्गभूताग्नीषोमीयपशौ श्रूयते—'अग्नीषोमीयस्य वपां प्रचर्याग्नीषोमीय-

---

(१) तै०सं० ६.३.१०.१।

(२) जै०न्या०वि० १०.११.१९-२३।

मेकादशकपालं त्तिर्वपति'[१] इति। तत्र पशावुक्तः पुरोडाशः। स किं पशोरारादुपकारकः, उत पशुदेवतासंस्कारः इति संदेहः।[२] तत्राग्नीषोमीयं पशुमालभेतेति[३] पशुविधौ तद्धितोक्त्याऽग्नीषोमदेवता यथा गुणत्वेन पशौ विधीयते तथा पशुपुरोडाशेऽपि। तथा सति विधिभेदेन विधेयदेवताभेदात् संस्कारो न युक्तः। गुणत्वं च संस्कार्यविरोधीति पूर्वोक्तम्, तस्मात् पशोरारादुपकारकः इति प्राप्ते ब्रूमः। देवताभेदवादिना तावदिदं वक्तव्यम्–पशुः पुरोडाशश्चेत्युभौ किं स्वतन्त्रौ यागौ, किं वाऽङ्गाङ्गिरूपौ। तत्रापि किमङ्ग किं वाऽङ्गीति। तत्र पशुधर्मैरुभयतः संदष्टस्य पुरोडाशस्य स्वतन्त्राङ्गित्वे तयोः पशुप्रकरणपाठबाध्यत्वादभिमतमुपकारकत्वं न सिध्येत्। अङ्गत्वेऽपि दृष्टसंभवाददृष्टकल्पनमन्याय्यम्। भवति चात्र दृष्टं पुरोडाशवाक्यगतेन पशुदेवतायाः संस्क्रियमाणत्वात्। एवं च सति पशुवाक्ये गुणत्वेन प्रतीयमानायाः अपि देवतायाः पुरोडाशवाक्ये प्राधान्यावगमात्संस्कार्यत्वमविरुद्धम्। तस्मात्पशुदेवतासंस्कारः पुरोडाशः। एवं च सत्यग्नीषोमीयपशुविकृतौ वायव्यपशावग्नीषोमदेवतायां निवृत्तायां तदीयपशुपुरोडाशेऽपि सा निवर्तत इति बाधः फलिष्यति।।

यद्वा, द्वादशाध्यायस्य प्रथमपदे चिन्तितम्—

"पश्वर्थानुष्ठितैर्नास्ति पुरोडाश उपक्रिया।
अस्ति वा विध्यभावान्नो ह्यर्थतस्त्वस्तु लोकवत् ।।"[४]

अग्नीषोमीये पशौ यानि चोदकप्राप्तानि प्रयाजादीन्यङ्गान्यनुष्ठितानि, तैः पशुपुरोडाश उपकारो नास्ति। कुतः,—तदुपकारबोधकस्य विधेरभावात्। चोदकस्तु 'दर्शपूर्णमासवत्पशुरनुष्ठेयः' इत्येवंरूपत्वात्पशावेव तदुपकारं बोधयति। ननु पशुपुरोडाशस्यापीष्टिविकृतित्वात्तत्रापि चोदकोऽस्तीति चेत्। बाढम्। अत एव भिन्नचोदकबलात्पुरोडशोपकाराय प्रयाजाद्यङ्गानि पृथगनुष्ठेयानीति प्राप्ते,–ब्रूमः। यद्यपि 'पश्वर्थैः पुरोडाशस्योपकारः' इत्येतादृशं शास्त्रं नास्ति, तथाऽप्ययमुपकारोऽर्थप्राप्तो न निवारयितुं शक्यते। यथा प्रदीपस्य वेदिकार्यम्, निर्मितस्यार्थसिद्धं मार्गप्रकाशकत्वमनिवार्यम्, तथा पशुतन्त्रमध्येऽनुष्ठीयमानस्य पुरोडाशस्य पश्वर्थैरङ्गैरुपकारः केन वार्यत। तस्मादन्यार्थैरप्यस्तूपकारः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) अष्टमः खण्डः ।।८।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के अष्टम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) तै०सं० ६.३.१।
(२) क्रियारूपाणि च द्विविधानि उपयुज्यते'—इति लौ०मी०अर्थ०।
(३) तै०सं० ६.१.११.६। (४) जै०न्या०वि० १२.१.१-६।

अथ नवमः खण्डः

सा० भा०—विहितं पशुपुरोडाशं प्रशस्य पश्चाद् वपादियाज्या विवक्षुरादौ तं प्रशंसति—

(पुरोडाशयागस्य प्रशंसनम्)

स वा एष पशुरेवाऽऽलभ्यते यत्पुरोळाशः ।।१।।

हिन्दी—(विहित पुरोडाशदि की प्रशंसा करके अब वपादि याज्या को कहने की इच्छा से पहले उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् पुरोडाशः** जो यह पुरोडाश है **सः वै एषः** वह यह ही **पशुः एव आलभते** (पशुशरीर की समानता के कारण) पशु का ही आलम्भन होता है।

सा० भा०—पशुशरीरसादृश्यादयं पुरोडाशोऽनुष्ठितः पश्वालम्भ एव भवति।।

तदेतत्सादृश्यं विशदयति—

(पशुपुरोडाशयोः सादृश्यकथनम्)

तस्य यानि किंशारूणि तानि रोमाणि, ये तुषाः सा त्वग्ये फलीकरणास्तदसृग्यत्पिष्टं किक्कसास्तन्मांसं यत्किञ्चित्कं सारं तदस्थि ।।२।।

हिन्दी—(पुरोडाश और पश्वालम्भन के सदृशता का विस्तार कर रहे हैं—) **तस्य** उस (धान) के **यत् किंशारुणि** जो पुवाल हैं **तानि रोमाणि** वे (पशु के) रोमरूप है, **ये तुषाः** जो (प्रथम कूटने से निकली) भूसी है **सा त्वक्** वह (पशु का) चर्म रूप है, **ये फलीकरणाः** जो फलीकरण (चावल को साफ करने के लिए कूटने से निकला हुआ शेषांश) है, **तद् असृक्** वह (पशु का) रक्त रूप है, **यत् पिष्टम् किक्कसाः** जो (पीसने से बना) आटा और कण है, **तद् मांसम्** वह पशु का मांस रूप है और **यत्किञ्चित् सरम्** जो कुछ अवशिष्ट (धान का) कठोर भाग है **तद् अस्थि** वह (पशु का) अस्थिरूप है।

सा० भा०—तस्य व्रीहिबीजस्य संबन्धीनि यानि किंशारूणि बुसपलालादीनि तानि पशुरोमस्थानीयानि ये तुषास्तण्डुलवेष्टनरूपाः प्रथमावघातेन परित्याज्याः सा तुषसमष्टिः पशुत्वक्स्थानीया, ये फलीकरणास्तण्डुलश्वैत्यार्थेनावघातेन हेया अंशास्तत्सर्वमसृक्पशुरक्तस्थानीयम्। यत्पिष्टं तण्डुलपेषणेन निष्पन्नं पिण्डयोग्यं रूपं ये च किक्कसाः सूक्ष्माः पिष्टावयवास्तत्सर्वं पशुमांसस्थानीयम्। यत्किञ्चित्कं सारं स्वार्थे कप्रत्ययः किञ्चिदन्यद्व्रीहिसंबन्धिकाठिन्यरूपं सारं तत्पशोरस्थिस्थानीयम्। एवं पशुसाम्यात् पुरोडाशस्य पशुत्वम्।।

एवं सति यत्फलितं तद्दर्शयति—

सर्वेषां वा एष पशूनां मेधेन यजते यः पुरोळाशेन यजते ।।३।।

हिन्दी—**यः पुरोडाशेन यजते** जो पुरोडाश से यजन करता है **एषः वै** मानो वह **सर्वेषां पशुनां मेधेन यजते** सभी पशुओं के (मांसरूप हवि) से यजन करता है।

सा० भा०—पुरोडाशयाग एव सर्वपशुसंबन्धियज्ञयोग्यहविर्यागः। सर्वपशुसंबन्धश्च 'पुरुषं वै देवा' इत्यादिना प्रपञ्चितः।।

लौकिकोक्त्या प्राशस्त्यं द्रढयति—

तस्मादाहुः पुरोळाशसत्रं लोक्यमिति ।।४।।

हिन्दी—(लौकिकोक्ति द्वारा प्रशंसा को दृढ़ कर रहे हैं—) **तस्माद् आहुः** इस (पुरोडाशभाग के सभी यागों का सार) होने के कारण (याज्ञिक लोग) कहते हैं कि **पुरोडाशसत्रम्** पुरोडाश का अनुष्ठान **लोक्यम्** प्रेक्षणीय होता है।

सा० भा०—यस्मात् पुरोळाशयागः सर्वपशुसारभूतस्तस्मात् पुरोडाशानुष्ठानं लोक्यं प्रेक्षणीयमिति याज्ञिका आहुः। अत एव प्रैषमन्त्रे 'पुरोडाशा अलङ्कुरु' इत्येवमाम्नातम्।।[१]

अथ वपादीनां क्रमेण याज्या विवक्षुरादौ वपायाज्यां विधत्ते—

(वपायाज्याविधानम्)

'युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान्'[२]
इति वपायै यजति।।५।।

हिन्दी—(अब वपा इत्यादि की क्रमानुसार याज्या कहने के लिए पहले वपा की याज्या का विधान कर रहे हैं—) '**अग्निः च सोम** हे अग्नि और सोम **सक्रतू युवम्** समान कर्म वाले तुम दोनों ने **एतानि रोचनानि** इन दीप्यमान (नक्षत्रों) को **दिवि अधत्तम्** द्युलोक में स्थापित किया है। **अग्नीषोमौ** हे अग्नि और सोम! **युवम्** तुम दोनों ने **सिन्धून् गृभीतान् अभिशस्तेः अवद्यात्** समुद्र के समान प्रौढ़ (राजा मन्त्री इत्यादि पुरुषों अथवा यजन करने वालों) को युद्ध में (ब्राह्मणवध इत्यादि) पापों से आक्रान्त लोगों को **अमुञ्चतम्** मुक्त किया है—**इति वपायै यजति** (इस मन्त्र का) वपा के होम के लिए यजन (याज्या के रूप में अनुवाचन) करता है।

सा० भा०—हे सोम त्वं चाग्निश्च युवमेतावुभौ युवामेतानि सर्वैर्दृश्यमानानि रोचनानि प्रकाशरूपाणि नक्षत्रादीनि दिवि द्युलोकेऽधत्तम्। कीदृशौ युवां, सक्रतू समानकर्माणौ, हे अग्नीषोमौ युवां स्वकायत्वेन स्वीकृतान् सिन्धून् समुद्रवत्प्रौढान् राजामात्यादीन् पुरुषान् यजमानादीन् वाऽभिशस्तेः सङ्ग्रामादिषु ब्राह्मणवधादिरूपादपवादादवद्यात्तन्निमित्तं दुरिताच्चामुञ्चतं मुक्तानकुरुतम्। एतत्पश्वादिकर्मानुष्ठानेन जनापवादो दुरितं च नश्यतीत्यर्थः।

(१) शत०ब्रा० ४.२.५.११। (२) ऋ० १.९३.५।

वपायै जयतीति वपाहोमार्थमृचं याज्यात्वेन पठेदित्यर्थः॥

पूर्वोत्तरपक्षाभ्यामेतां याज्यां प्रशंसति—

सर्वाभिर्वा एष देवताभिरालब्धो भवति यो दीक्षितो भवति तस्मादाहुर्न दीक्षितस्याश्नीयादिति स यदग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतानिति वपायै यजति, सर्वाभ्य एव तद्देवताभ्यो यजमानं प्रमुञ्चति, तस्मादाहुरशितव्यं वपायां हुतायां यजमानो हि स तर्हि भवतीति ।।६।।

हिन्दी—(पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष द्वारा इस याज्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः दीक्षितः भवति** जो (यजन करने वाला यज्ञ के लिए) दीक्षित होता है **एषः** यह (दीक्षित हुआ व्यक्ति) **सर्वाभिः देवताभिः** सभी देवताओं द्वारा **आलब्धः भवति** (अपनी हवि देने के लिए) स्वीकार किया गया होता है, **तस्माद् आहुः** इसी कारण (कुछ पूर्वपक्षी विद्वान्) कहते हैं कि **दीक्षितस्य न अश्नीयात्** (यज्ञ के लिए) दीक्षित पुरुष का भोजन न ही करना चाहिए। किन्तु **सः** वह (होता) 'अग्नीषोमावमुञ्चतम्' अर्थात् (हे अग्नि और सोम) पाप से आक्रान्त (इस यजमान) को मुक्त करो—**इति यद् यजति** इस (याज्या) का जो अनुवाचन करता है, **तत्** इस (अनुवाचन) से **यजमानम्** यजन करने वाले (व्यक्ति) को **सर्वाभ्यः देवताभ्यः एव** सभी देवताओं से ही **प्रमुञ्चति** प्रकृष्ट रूप से मुक्त करता है। **तस्माद् आहुः** इसी कारण (याज्ञिक लोग) कहते हैं कि **वपायां हुतायाम्** वपा का होम हो जाने पर **अशितव्यम्** (यजमान का) भोजन करना चाहिए; क्योंकि **तर्हि** तब (वपा का होम हो जाने पर) **सः यजमानः भवति** (देवताओं के अवरोध से मुक्त होकर) वह (दीक्षित व्यक्ति) यजमान हो जाता है।

सा० भा०—यः पुमान् यज्ञार्थो दीक्षितो भवत्येष सर्वाभिरपि देवताभिः स्वकीयहविर्दानार्थमारब्धः स्वीकृतो भवति। तस्मादेतदीयस्य द्रव्यस्य देवताभिरवरुद्धत्वाद्दीक्षितस्य गृहे नाश्नीयादित्येवं पूर्वपक्षिण आहुः। तत्र होता यद्यग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतानित्येतं याज्यायाश्चतुर्थपादं पठेत् तदा तेन पाठेन सर्वाभ्यो देवताभ्यो यजमानं होता मोचयति। तस्मात्कारणाद् वपाहोमे निष्पन्ने सति तद्गृहे भोक्तव्यम्। तर्हि तस्मिन् वपाहोमोत्तरकाले स दीक्षितो यजमानो भवति। पूर्वं तु दीक्षित एव न तु यजमानः। इदानीं यागस्य निष्पन्नत्वादयं यजमानः। तथा सति देवतावरोधान्मुक्तस्य गृहे भोक्तुं शक्यमिति सिद्धान्तिन आहुः॥

अथ पुरोडाशस्य याज्यां विधत्ते—

(पुरोडाशस्य याज्याविधानम्)

'आऽन्यं दिवो मातरिश्वा जभारेति'[१] पुरोळाशस्य यजति ।।७।।

---

(१) ऋ० १.९३.६।

हिन्दी—(अब पुरोडाश की याज्या को कह रहे हैं—) 'आऽन्यं दिवो मातरिश्वा जभार' अर्थात् (अग्नि और सोम में से) अन्य (सोम राजा) को मातरिश्वा (नामक वायुदेव) ने आहरित कर लिया'—**इति पुरोडाशस्य यजति** इस (मन्त्र) का (होता) पुरोडाश के (होम में) याज्या करता है।

द्वितीयपादमनूद्य पादद्वयस्य सहैव तात्पर्यं दर्शयति—

अमथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेरितीत इव च ह्येष इत इव च मेधः समाहृतो भवति ।।८।।

हिन्दी—(उपर्युक्त याज्या मन्त्र के द्वितीय पाद को कहकर प्रथम और द्वितीय पादों का एक साथ तात्पर्य दिखला रहे हैं—) 'अमथ्नादन्य परि श्येनो अद्रेः' और श्येन (रूप अध्वर्यु) ने अन्य (अग्नि) को पर्वत से (उत्पन्न काष्ठ द्वारा) मथित किया' **इति इतः इव** यह इस प्रकार है अर्थात् वह मेध मनुष्य से, अश्व से, गो से, भेड़ से और बकरे से पृथिवी में चला गया था अतः **मेधः समाहृतः भवति** मेध (पुरोडाश रूप में भूमि से) समाहृत होता है।

सा० भा०—मातरिश्वा वायुरन्यमग्नीषोमयोरन्यतरं सोमाख्यदेवं दिवो द्युलोकादाजभाराऽऽहृतवान्। गायत्रीरूपं कृत्वा वायुः सोममानीतवान्, इति प्रथमपादस्यार्थः। श्येनो बलवत्पक्षी, तादृशोऽध्वर्युरन्यमुभयोर्देवयोरन्यतरमग्निमद्रेः पर्वतजन्यात् काष्ठादरणिरूपात् पर्यमथ्नात् परितो मथनं कृतवानिति द्वितीयपादार्थः। एष मेधो यज्ञयोग्यः पुरोडाशोऽपीत इव चेत इव चास्मान् मनुष्यादस्मादश्वाद् गोरवेदजाच्च भूम्याः समाहृतः। एवं सतीतस्तत आनयनसाम्यात् पुरोडाशस्येयमग्नीषोमप्रतिपादिका याज्यां योग्येत्यर्थः।।

पुरोडाशसंबन्धिस्विष्टकृतो याज्यां विधत्ते—

(पुरोडाशस्य स्विष्टकृतो याज्याविधानम्)

'स्वदस्व हव्या समिषो दिदीहीति'[1] पुरोळाशस्विष्टकृतो यजति ।।९।।

हिन्दी—(पुरोडाश सम्बन्धी स्विष्टकृत् की याज्या का विधान कर रहे हैं—) 'स्वदस्व हव्या समिषो दिदीहि' अर्थात् हे स्विष्टकृद् अग्ने! हविष् को स्वादसम्पन्न बनाओ और अन्न को हमारे लिए प्रदान करो—**इति पुरोडाशस्विष्टकृतः यजति** (होता) इस पुरोडाश के स्विष्टकृत् (याज्या मन्त्र) का अनुवाचन करता है।

सा० भा०—हे स्विष्टकृदग्ने हव्या हवींषि स्वदस्व स्वादूनि कुर्विषोऽन्नानि संदिदीहि सम्यक् प्रयच्छेत्येतस्य पादस्यार्थः।।

तामेतां याज्यां प्रशंसति—

(१) ऋ० ३.५४.२२।

हरिरेवास्मा एतत्स्वदयतीषमूर्जमात्मन्धत्ते ।।१०।।

हिन्दी—(उपर्युक्त याज्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **एतत्** इस (याज्या के अनुवाचन) से **अस्मै** इस (यजन कर्ता अथवा कर्म की सिद्धि) के लिए **हविः एव स्वदयति** हविष् को ही स्वादिष्ट बनाता है तथा **इषम् ऊर्जम्** (ओदन इत्यादि) अन्न और (दुग्धादि) रस को **आत्मन् धत्ते** अपने में प्रतिष्ठित करता है।

सा० भा०—एतेन याज्यापाठेनास्मै कर्मसिद्ध्यर्थं यजमानार्थं वा हविरेव स्वादूकरोति य इषमोदनमूर्जं क्षीरादिरसं चाऽऽत्मन् धत्ते होता स्वात्मानि संपादयति।।

पुरोडाशीस्विष्टकृद्यागादूर्ध्वं पशुपुरोडाशसंबन्धीळोपाह्वानं विधत्ते—

(पशुपुरोडाशसम्बन्धीडोपाह्वानम्)

इळामुपह्वयते पशवो वा इळा, पशूनेव तदुपह्वयते पशून् यजमाने दधाति ।।११।।

हिन्दी—(पुरोडाश सम्बन्धी स्विष्टकृत याग के बाद पशु पुरोडाश विषयक आह्वान का विधान कर रहे हैं—) **इडाम् उपह्वयते** (तब होता) इडा का आह्वान करता है। **पशवः वै इडा** पशु ही इडा रूप हैं। **तद्** इस (इडा के आह्वान) से **पशून् एव उपह्वयते** पशुओं का ही आह्वान करता है और **यजमाने पशून् दधाति** यजन करने वाले (पुरुष) में पशुओं को ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—इळोपहूता सह दिवेत्यादिना[1] सूत्रगतेन, उपहूतं रथन्तरं सह पृथिव्येत्यादिना[2] शाखान्तराम्नातेन मन्त्रेण वेळाख्यां देवतामुपह्वयते। गौर्वा अस्यै शरीरमिति श्रुत्यन्तरादिष्टदेवतायाः पशुरूपत्वम्।[3] तत्तेनोपह्वानेन पशूनेवाऽऽह्वयति। यजमाने च पशुन् सम्पादयति ।।[4]

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) नवमः खण्डः ।।९।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के नवम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) आश्व०श्रौ० १.७.७। (२) तै०ब्रा० ३.५.८.१।

(३) द्र० शत०ब्रा० १.८.१.२४।

(४) व्याख्यातं चैतदिडाह्वानं तै०सं० २.६.७। शतपथेऽप्येवमेव १.८.१.११।

अथ दशमः खण्डः

सा० भा०—अथ हृदयाद्यङ्गरूपस्य प्रधानहविषोऽवदानकाले किंचित्सूक्तं विधातुं प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(हृदयाद्यङ्गावदानसूक्तविधौ प्रैषमन्त्रः)

मनोतायै हविषोऽवदीयमानस्यानुब्रूहीत्याहाध्वर्युः ।।१।।

हिन्दी—(अब हृदयाद्यङ्गरूप प्रधान हविष् के अवदान के समय किसी सूक्त का विधान करने के लिए प्रैष मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) '**हविषः अवदीयमानस्य मनोतायै अनुब्रूहि** (हे होता!) हविष् का अवदान किये जाते हुए मनोता (नामक देवता) के लिए (अनुरूप मन्त्र का) अनुवाचन करो—**इति अध्वर्युः आह** इस प्रकार अध्वर्यु (प्रैष मन्त्र को) कहता है।

सा० भा०—देवानां मनांस्योतानि दृढं प्रविष्टानि यस्यां देवतायां सा मनोता। तदर्थं हृदयाद्येकादशाङ्गरूपं हविरवदीयते ।।

तस्य हविषोऽनुकूला ऋचोऽनुब्रूहीत्यध्वर्युः प्रैषमन्त्रं पठन् सूक्तं[१] विधत्ते—

(हविषोऽनुरूपं सूक्तनिर्देशनम्)

'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतेति' सूक्तमन्वाह ।।२।।

हिन्दी—(उस हविष् के अनुरूप ऋचाओं के अनुवाचन के लिए सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता (हे अग्नि!) तु प्रथम मनोता (विचारों को बुलाने वाले) हो'—**इति सूक्तम् अन्वाह** इस सूक्त का (मैत्रावरुण) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—त्वं ह्यग्न इत्यादिकं त्रयोदशर्चं सूक्तं[२] तन्मैत्रावरुणो ब्रूयात्। तदाह बौधायनः—'यदा जानाति मनोतायै हविषोऽवदीयमानस्यानुब्रूहीति तदा मैत्रावरुणो मनोतामन्वाह 'त्वं ह्यग्ने प्रथमः' इति।।

अत्र वैयधिकरण्यलक्षणं चोद्यमवतारयति—

तदाहुर्यदन्यदेवत्य उत पशुर्भवत्यथ कस्मादाग्नेयोरेव मनोतायै हविषोऽवदीयमानस्यान्वाहेति ।।३।।

हिन्दी—(इस सूक्त के अनुवाचन के विषय में शङ्का की अवतारणा कर रहे हैं–) **तदाहुः यत्** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **अन्यदेवत्यः उत् पशुः भवति** जब पशु अन्य देवता से सम्बन्धित होता है तो **कस्मात्** किस कारण से **हविषः**

---

(१) मनोतासूक्तमिदम्। तदाहाश्वलायनः—'मनोतायै' इत्यादि ३.६.१। तै०ब्रा० ३.६.१० एतदेव सूक्तम्।	(२) ऋ० ६.१.१-१३।

अवदीयमानस्य मनोतायै हविष का अवदान किये जाते हुए मनोता के लिए **आग्नेयीः** अग्नि देवता वाली (ऋचाओं) का **अन्वाह** अनुवाचन करता है।

सा० भा०—अत्र हविरग्नीषोमदेवत्यं सूक्तगता ऋच: केवलाग्निदेवताका:। तत्र यस्मात्कारणात् पशुरन्यदेवत्य उत देवतान्तरयुक्त खलु भवति तस्मात्कारणाद्वैयधिकरण्यमिदं तच्चायुक्तमिति ब्रह्मवादिनश्चोद्यमाहु: ।।

तस्य समाधानं दर्शयति—

तिस्रो वै देवानां मनोतास्तासु हि तेषां मनांस्योतानि, वाग्वै देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि, गौर्वै देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतान्यग्निर्वै देवानां मनोता तस्मिन् हि तेषां मनांस्योतान्यग्नि: सर्वा मनोता अग्नौ मनोता: संगच्छन्ते, तस्मादाग्नेयीरेव मनोतायै हविषोऽवदीयमानस्यान्वाह ।।४।।

हिन्दी—(उसका समाधान दे रहे हैं—) **देवानाम् तिस्रः मनोताः** देवताओं में (वाक्, गौ और अग्नि ये) तीन मनोता देवता हैं; क्योंकि **तासु** उन (तीन मनोता देवतओं) में **तेषाम्** उन (देवताओं) के **मनांसि ओतानि** मन ओतप्रोत हैं। **वाग् वै देवानां मनोता** वाणी ही देवताओं का मनोता देवता हैं, क्योंकि **तस्यां हि तेषां मनांसि ओतानि** उस (वाणी) में ही उन (देवताओं) के मन ओत-प्रोत हैं, **गौः वै देवानां मनोता** गाय ही देवताओं का मनोता है; क्योंकि **तस्यां हि तेषां मनांसि ओतानि** उसमें ही देवताओं का मन ओत-प्रोत है और **अग्निः वै देवानां मनोता** अग्नि ही देवताओं का मनोता है; क्योंकि **तस्मिन् हि तेषां मनांसि ओतानि** उस (अग्नि) में ही उन (देवताओं) के मन ओत-प्रोत है। **अग्नौ मनोताः सङ्गच्छन्ते** अग्नि में सभी मनोता सङ्गत रहते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **हविषः अवदीयमानस्य मनोतायै** हविष् का अवदान किये जाते हुए मनोता के लिए **आग्नेयीः एव अन्वाह** अग्नि देवता वाली (ऋचाओं) का **अन्वाह** अनुवाचन करता है।

सा० भा०—वाग्गौरग्निरित्येतासु देवतासु देवमन: समासक्तत्वात्तिस्रोऽपि देवता मनोतेत्युच्यन्ते। ताश्च तिस्र: सर्वा मनोता अग्निस्वरूपा एवाग्नौ तासां संगतत्वात्। संगतिश्च तदीयहविषोऽग्न्याधारकत्वात्। तस्मादग्नेर्मुख्यत्वादग्निदेवताका ऋचोऽनुब्रूयात्।।

अथ हृदयाद्यङ्गरूपस्य प्रधानहविषो याज्यां विधत्ते—

(हृदयाद्यङ्गस्य प्रधानहविषो याज्याविधानम्)

'अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्येति'[१] हविषो यजति ।।५।।

हिन्दी—(अब हृदयाद्यङ्गरूप प्रधान हविष् की याज्या का विधान कर रहे हैं—)

(१) ऋ० १.१३.७।

'अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य' अर्थात् हे अग्नि और सोम! उपस्थित हवि को ग्रहण करो'—**इति हविषः यजति** इस (हृदयाद्यङ्गरूप प्रधान) हविष् की (याज्या का) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—अग्नीषोमेत्यादिकां याज्यां पठेदित्यर्थः॥

अस्या याज्याया हविरानुकूल्यं दर्शयति—

हविष इति रूपसमृद्धा प्रस्थितस्येति रूपसमृद्धा ॥६॥

हिन्दी—(इस याज्या की हविष् से अनुरूपता को दिखला रहे हैं—) (यह हृदयादि हविष् वेदि पर उपस्थित है) यहाँ **हविषः इति रूपसमृद्धा** हविषः' यह पद होने से (याज्या) रूप से समृद्ध है और **प्रस्थितस्य इति** प्रस्थितस्य इस शब्द से भी (याज्या) रूप से समृद्ध है।

सा० भा०—इदं हृदयादिक हविः प्रस्थितं वेद्यामासादितं याज्यायां हविषः प्रस्थितस्येति पदद्वयं श्रुतं तस्मादियमनुकूला॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वाभिर्हास्य समृद्धिभिः समृद्धं हव्यं देवानप्येति य एवं वेद ॥७॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है **अस्य** इस (यजन करने वाले) की **सर्वाभिः समृद्धिभिः** सभी समृद्धियों से **समृद्धं हव्यम्** समृद्ध हविष् **देवान् अप्येति** देवताओं तक जाती है।

सा० भा०— हविषो यथाशास्त्रमवदानपाकविशेषः परस्परं हृदयादीनामसंकीर्णत्वमित्यादयो याः समृद्धयोऽपेक्षितास्ताभिः संपूर्णं भूत्वा तद्धविर्देवान् प्राप्नोति॥

अथा वनस्पतियागं विधत्ते—

(वनस्पतियागविधानम्)

वनस्पतिं यजति, प्राणो वै वनस्पतिः ॥८॥

हिन्दी—(अब वनस्पतियाग का विधान कर रहे हैं—) **वनस्पतिं यजति** वनस्पति (देवता) का यजन करता है क्योंकि **प्राणः वै वनस्पतिः** वनस्पति (जीवन होने के कारण) प्राण है।

सा० भा०—वनस्पतिर्वृक्षस्तथाविधशरीरयुक्तां देवतां यजेत्। तत्प्रकार **आपस्तम्बेन** दर्शितः—'जुह्वामुपस्तीर्य सकृत्पृषदाज्यस्योपहत्य द्विरभिघार्य वनस्पतयेऽनुब्रूहि वनस्पतये प्रेष्येति संप्रैषौ वषट्कृते जुहोति'[१] इति। अत्र वनस्पतेर्वृक्षशरीरस्य जीवाविष्टत्वात्

(१) आप०श्रौ० ७.२५.१५।

प्राणरूपत्वम् ॥[१]

यष्टुर्वेदनं प्रशंसति—

जीवं हास्य हव्यं देवानप्येति यत्रैव विद्वान् वनस्पतिं यजति ॥९॥

हिन्दी—(यजन करने वाले के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र एवं विद्वान्** जिस (याग) में इस प्रकार जानने वाला **वनस्पतिं यजति** वनस्पति (देवता) का यजन करता है, **अस्य** इस (यजन करने वाले) का **जीवं हव्यम्** प्राणयुक्त हविष् **देवान् अप्येति** देवताओं तक पहुँचती है।

सा० भा०—विदुषो यष्टुर्हविरेवं प्राणोपेतं चेतनं भूत्वा तद्धविर्देवानाप्नोति॥

अथ स्विष्टकृद्यागं विधत्ते—

(स्विष्टकृद्यागविधानम्)

स्विष्टकृतं यजति, प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत्, प्रतिष्ठायामेव तद्यज्ञमन्ततः प्रतिष्ठापयति ॥१०॥

हिन्दी—(अब स्विष्टकृत् याग का विधान कर रहे हैं—) **स्विष्टकृतं यजति** स्विष्टकृत याग का यजन करता है; क्योंकि **स्विष्टकृत् वै प्रतिष्ठा** स्विष्टकृत् प्रतिष्ठारूप है। **तत्** इस (यजन) से **यज्ञम्** यज्ञ को **अन्ततः** अन्त में **प्रतिष्ठायामेव प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठा में ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—वैकल्यपरिहारेण स्विष्टकृत्त्वापादनात् स्विष्टकृतः प्रतिष्ठात्वम्। तद्यागानुष्ठानेनेमं यज्ञमन्ततः समाप्त्यवतरे प्रतिष्ठायां स्थापयति॥

इळोपह्वानं विधत्ते—

इळामुपह्वयते पशवो वा इळा पशूनेव तदुपह्वयते पशून् यजमाने दधाति, दधाति ॥११॥

हिन्दी—(अब इडा के आह्वान का विधान कर रहे हैं—) **इडाम् उपह्वयते** (होता) इडा को आहूत करता है क्योंकि **पशवः वै इडा** पशु ही इडारूप हैं। **तत्** इस (आह्वान) से **पशून् एव उपह्वयते** पशुओं का ही आह्वान करता है और **यजमाने पशून् दधाति** और यजमान में पशुओं को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्। पुरोडाशेडा पूर्वखण्डेऽभिहितेह तु पश्विडेति विशेषः।

---

(१) यास्कस्याभिमतविरुद्धं व्याख्यानम्। तेन ह्युक्तम्–यज्ञसंयोगाद् राजा स्तुतिं लभेत। राजसंयोगाद् युद्धोपकरणानि। तेषां रथः प्रथमगामी भवति इति। आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्व आत्मायुधमात्मेषवः—इत्यादि च निरु० ९.११, ७.४।

अत्र सर्वत्र यद्यच्चोदकतः प्राप्तं तस्य सर्वस्य विधिमनूद्य प्रशंसा कृतेति द्रष्टव्यम्। दधातीतिपदाभ्यासोऽध्याय समाप्त्यर्थः।।

अथ मीमांसा—दशमाध्यायस्य चतुर्थपादे चिन्तिम्—

मनोतामन्त्र ऊहोऽस्ति वायव्ये नास्ति वाऽस्त्यसौ।
आग्नेय्येवेति वचनं प्रकृतौ सार्थकं यतः।।
अग्नीषोमावग्निनैव लक्ष्येतां वचनं विना।
अनर्थका तत्र वाक्याद् विकृतावूहवारणम्।।[1]

'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता'[2] इत्ययं मनोतामन्त्रोऽग्नीषोमीयपशौ पठितः।[3] वायव्यपशावप्ययं चोदकप्राप्तः। तत्र—'त्वं हि वायो प्रथमः' इत्येवमूहोऽस्ति। यत्तु वचनं—यद्यप्यन्नदेवत्यः पशुरग्नेय्येव मनोता कार्येति। तत्प्रकृतौ पठितं तत्रैव वचनं सार्थकम्। द्विदेवत्यपशावेकवचनमन्त्रस्य प्रकरणपठितस्याप्ययोग्यत्वशङ्कया पुनर्विधानार्थत्वात् ।।[4]

मैवम् 'छत्रिणो गच्छन्ति' इत्यादिवन्मन्त्रगतस्याग्निशब्दस्याग्नीषोमलक्षकत्वेनायोग्यत्वशङ्काया अनुदयात्। अतः प्रकृतावनर्थकं तद्वाक्यं विकृतावूहनिवारणेन चरितार्थं भवति। तस्माद्—ऊहो नास्ति।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षष्ठाध्याये) दशमः खण्डः ।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय के दशम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवाचार्यदेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'—नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य द्वितीयपञ्चिकायाः प्रथमोध्यायः ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षष्ठ अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) जै०न्या० १०.४.२२.४२। (२) ऋ० ६.१.१ (३) तै०ब्रा० ३.६.१०।
(४) अत एवाहाश्वलायनः—तत्र प्रैषै करत एवाग्नीषोमावेवमित्यैतरेयिणः। अन्यत्र द्विदेवतान्मैत्रावरुणदेवते च। तथा दृष्टत्वात्। प्रकृत्या गाणगारिः। उत्पन्नानां स्मृत आम्नायेऽनर्थभेदे निरर्थो विकारः—इति श्रौ० ३.६.३—७ सूत्र।

अथ द्वितीयपञ्चिकायाम्
द्वितीयोऽध्यायः
[अथ सप्तमोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—यूपोऽथ यूपाञ्जनमाप्रियश्च पर्यग्न्युपप्रैषमथाध्रिगुश्च ।
पशौ पुरोडाशविधिर्मनोता वनस्पतिस्विष्टकृदिडास्तुतिश्च ।।१।।

अथ सप्तमाध्याये पशुप्रैषप्रातरनुवाकौ वक्तव्यौ तत्र पर्यग्निकरणस्तुत्यर्थामाख्यायिकामाह—

(पर्यग्निकरणस्तोतुमाख्यायिका)

देवा वै यज्ञमतन्वत तांस्तन्वानानसुरा अभ्यायन्, यज्ञवेशसमेषां करिष्याम इति तानाप्रीते पशौ पुर इव पर्यग्नेर्यूपं प्रति पुरस्तादुपायंस्ते देवाः प्रतिबुध्याग्निमयीः पुरस्त्रिपुरं पर्यास्यन्त यज्ञस्य चाऽऽत्मनश्च गुप्त्यै, ता एषामिमा अग्निमय्यः पुरो दीप्यमाना भ्राजमाना अतिष्ठंस्ता असुरा अनपधृष्यैवापाद्रवंस्तेऽग्निनैव पुरस्ताद् असुररक्षांस्यपाघ्नताग्निना पश्चात् ।।१।।

हिन्दी—(सप्तम अध्याय में पशुप्रैष और प्रातरनुवाक का कथन करना है। उनमें पर्यग्निकरण की स्तुति के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **देवाः वै यज्ञम् अतन्वत** (पहले कभी) देवताओं ने यज्ञ का विस्तार किया। **तन्वानान् तान्** (यज्ञ का) विस्तार करने वाले उन (देवताओं) की ओर **असुराः अभ्यायन्** असुर लोग आ गये। **एषां यज्ञवेशसम् करिष्यामः** इन (देवताओं) के यज्ञ में हम लोग बाधा उपस्थित करेगें—**इति** इस प्रकार कहते हुए **पशौ आप्रीते** पशु के (प्रयाजों द्वारा) तर्पित होने पर और **पर्यग्नेः पुरः इव** पर्यग्निकरण से पहले **पुरस्तात्** पूर्व दिशा की ओर से **यूपं प्रति** यूप के प्रति **तान् उपायन्** उन (देवताओं) के समीप आगमन किये। **ते देवाः प्रतिबुध्य** उन देवताओं ने (उन राक्षसों के आगमन को) जान कर **यज्ञस्य च आत्मनः च गुप्त्यै** यज्ञ की और अपनी सुरक्षा के लिए **अग्निमयीः पुरःस्त्रिपुरं पर्यासन्त** (पशु के चारो ओर) अग्निमय तीन प्राकारों को बना दिया। **एषाम्** इन (देवताओं) के **ताः इमाः अग्निमय्यः पुरः** उस इस अग्निमय प्राकार **दीप्यमानाः भ्राजमानाः** जलते हुए और प्रकाशित होते हुए **अतिष्ठन्** (पशु के चारो ओर) स्थित हो गये। **ताः असुराः** वे असुर **अनपधृष्य एव** (उस अग्निमय प्राकारों

का) उलङ्घन करके **अपाद्रवन्** भाग गये। **ते** उन (देवताओं) ने **अग्निना एव** (प्राकाररूप) अग्नि के द्वारा ही **पुरस्तात्** पूर्व दिशा की ओर से और **अग्निना** (प्राकार रूप) अग्नि द्वारा **पश्चात्** पश्चिमदिशा से **असुररक्षांसि** असुर राक्षसों को **अपाघ्नत** मार डाला।

सा० भा०—पुरा कदाचिद्देवा यज्ञमतन्वत विस्तारितवन्तः। यद्यपि पूर्वमीमांसाकर्तृभिर्नवमाध्याये देवानामशरीरत्वात् कर्माधिकारो नास्तीत्युक्तं[१] तथाऽपि प्रशंसार्थत्वेन स्वार्थतात्पर्याभावाद्[२] अविरोधः। यद्वोत्तरमीमांसाकर्तृभिः शरीरमङ्गीकृत्य विद्याधिकारोपपादनाद्[३] इतरेषां[४] शरीरराहित्यमृत्विगादिवत् कर्मकाले प्रत्यक्षशरीरं नास्तीति तदभिप्रायम्। कर्माधिकारनिराकरणस्य कर्मसाध्यस्य स्वर्गस्य प्राप्तत्वात् तत्प्रयोजनाभावाभिप्रायम्। जगदनुग्रहार्थं तु तेषां शरीरिणमस्त्येवाधिकार इत्यभिप्रेत्य यज्ञमतन्वतेत्यत्रोच्यते। तान् देवान् यज्ञविस्तारिणोऽभिलक्ष्यासुरा आगच्छन्। केनाभिप्रायेणेति, तदुच्यते—एषां देवानां यज्ञवेशसं यज्ञविघातं करिष्याम इति तदभिप्रायः। कदा कुत्र समागता, इति तदुच्यते—पशावाप्रीते प्रयाजैरतर्पिते सति पर्यग्नेः पुर इव पर्यग्निकरणात् पूर्वस्मिन् काले यूपं प्रति पुरस्तान् पूर्वदेशे तान् देवानसुरा उपागच्छन्। ते देवास्तदागमनं निश्चित्याग्निमयोः पुरोऽग्निप्राकारास्त्रिपुरं वेष्टत्रयं यथा भवति तथा पर्यास्यन्त पशोः पुरतः प्रक्षिप्तवन्तः। तच्च प्रक्षेपणं यज्ञस्य देवानां स्वरूपस्य च रक्षणाय भवति। एषां देवानां संबन्धिन्यस्ताः पुरः पशोः परितो ज्वलन्त्योऽन्धकारं निवर्त्य तं देशं प्रकाशयन्त्योऽतिष्ठन्। ता अग्निमयीः पुरोऽनपधृष्यैव तिरस्कारमकृत्वैवापाद्रवन्नपगताः। तत्र देवास्तेन च प्राकाररूपेणाग्निना पूर्वस्यां दिश्यसुरान्.रक्षांसि च हतवन्तः पश्चादप्यग्निनैव हतवन्तः॥

अथ पर्यग्निकरणं विधत्ते—

(पर्यग्निकरणविधानम्)

तथैवैतद्यजमाना यत्पर्यग्निं कुर्वन्त्यग्निमयीरेव तत्पुरस्त्रिपुरं पर्यस्यन्ते यज्ञस्य चाऽऽत्मनश्च गुप्त्यै, तस्मात् पर्यग्निं कुर्वन्ति, तस्मात् पर्यग्नयेऽन्वाह ।। २।।

हिन्दी—(अब पर्यग्निकरण का विधान कर रहे हैं—) **तथा एव** उसी प्रकार ही

(१) जै०न्या०वि० ९.१.४.६–१०; अधि० १५.४२–४४; अधि० १३,६.७.३२।
(२) तथाप्याह शबरस्वामी—'असद्वृत्तान्तान्वाख्यानं वेदस्य प्रसज्येत'—इति जै०सू० १.२.१० भाष्ये। (३) जै०न्या०वि० १.३.९.२६–३३।
(४) 'इतरेषाम्' नैरुक्तानाम्। तथाहि—'अपि वा कर्मपृथक्त्वाद् यथा होताध्वर्युर्ब्रह्मोद्गातेत्यप्येकस्य सतः'—इति निरु० ७.२.१। तत्रैव तत उत्तरम्—'अथाकारचिन्तनं देवतानाम्'—इत्युपक्रम्य 'अपुरुषविधाः स्युः'—इत्यादिना (७.७.२–३) यास्केन इन्द्रादीनां विग्रहाद्यभाव एव सिद्धान्तितः।

एतद्यजमानाः ये यजन करने वाले लोग **यत्पर्यग्निं कुर्वन्ति** जो पर्यग्नि करते हैं, **तत्** इस (पर्यग्निकरण) से **यज्ञस्य च आत्मनः च गुप्त्यै** यज्ञ की और अपनी सुरक्षा के लिए **अग्निमयीः एव पुरः** अग्निमय प्राकार को **त्रिपुरं पर्यस्यन्ते** तीन बार पर्यग्नि करते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **पर्यग्निं कुर्वन्ति** पर्यग्नि करते हैं। **तस्मात्** इसी लिए **पर्यग्नये अन्वाह** पर्यग्नि के लिए अनुवाचन करते हैं।

सा० भा०—यथा देवैरग्निप्राकाराः कृतास्तथैवैतद्यतमानानां पर्यग्निकरणम्। अतो यद्येतत्कुर्युस्तदानीमग्निप्राकारवेष्टनं पशोः परितः प्रक्षिपन्ति। तच्च यज्ञस्य चाऽऽत्मनश्च रक्षणाय भवति। तस्मादवश्यं पर्यग्निकरणमपेक्षितं तदर्थमनुवचनं चापेक्षितम्। तत्र पर्यग्निकरणम् **आपस्तम्बो** विस्पष्टयति—'आहवनीयादुल्मुकमादायाऽऽग्नीध्रः परि वाजपति कविः'[1] इति त्रिः प्रदक्षिणं पर्यग्निं करोति पशुम्[2] इति। अनुवचनं पूर्वमेवाग्निर्होता नः[3] इत्यादिना दर्शितम्॥

पर्यग्निकरणादूर्ध्वं पशोः शामित्रदेशं प्रत्यानयनं विधत्ते—

(पशोः शामित्रदेशं प्रत्यायनम्)

तं वा एतं पशुमाप्रीतं सन्तं पर्यग्निकृतमुदञ्चं नयन्ति ॥३॥

हिन्दी—(पर्यग्निकरण के बाद पशु को शामित्र स्थान में लाने का विधान कर रहे हैं—) **आप्रीतं सन्तम्** (प्रयाजों से) सन्तुष्ट हुए और **पर्यग्निकृतम्** पर्यग्नि किये गये **तं वै एतं पशुम्** उस इस पशु को **उदञ्चं नयन्ति** उत्तर की ओर मुख करके ले जाते हैं।

सा० भा०—प्रयाजैस्तोषितं पर्यग्निकरणेन रक्षितां पशुमुदङ्मुखं कृत्वा नयेयुः॥

नीयमानस्य पशोः पुरतो नेतव्यं विधत्ते—

(नीयमानस्य पशोः पुरतः उल्मुकानयनम्)

तस्योल्मुकं पुरस्ताद्धरन्ति ॥४॥

हिन्दी—(ले जाते हुए पशु के आगे-आगे जलती हुई उल्का को ले जाने का विधान कर रहे हैं—) **तस्य पुरस्तात्** उस (ले जाये जाते हुए पशु) के आगे-आगे **उल्मुकं नयन्ति** उल्मुक (जलती लकड़ी) को ले जाते हैं।

सा० भा०—तदेतदुभयम् **आपस्तम्बेन** स्पष्टीकृतम्—'आहवनीयादुल्मुकमादायाऽऽग्नीध्रः पूर्वः प्रतिपद्यते शमिता पशुं नयति उरोरन्तरिक्षेत्यन्तरा चात्वालोत्करावुदञ्चं पशुं नयन्ति'[4] इति ॥

---

(१) ऋ० ४.१५.३। (२) आप०श्रौ० ७.१५.२।
(३) ऋ० ४.१४.१। (४) आप०श्रौ० ७.१५.८-१०।

पशोः पुरतो वह्निनयनं प्रशंसति—

(वह्निनयनप्रशंसनम्)

यजमानो वा एष निदानेन यत्पशुरनेन ज्योतिषा यजमानः पुरोत्योतिः स्वर्गं लोकमेष्यतीति तेन ज्योतिषा यजमानः पुरोज्योतिः स्वर्गं लोकमेति ।।५।।

हिन्दी—(पशु के आगे-आगे ले जायी जाती हुई अग्नि की प्रशंसा कर रहे हैं–) **यत् पशुः** जो यह (ले जाया जाता हुआ) पशु है, **एषः निदानेन यजमानः वै** वह सूक्ष्म दृष्टि से निरूपित होने के कारण यजमान ही होता है। **अनेन ज्योतिषा** इस (पशु के आगे ले जाये जाने वाली) ज्योति से **यजमानः पुरोज्योतिः** यजमान पुरोवर्ती ज्योति से युक्त हुआ **स्वर्गं लोकम् एष्यति** स्वर्गलोक को प्राप्त करेगा। इस प्रकार **तेन ज्योतिषा** उस ज्योति द्वारा **यजमानः** (प्रकाशित) यजमान **पुरोज्योतिः** पुरोज्योति से युक्त होकर **स्वर्गं लोकम् एति** स्वर्गलोक को जाता है।

सा०भा०—यः पशुरस्त्येष निदानेन सूक्ष्मदृष्टिनिरूपणेन यजमान एव भवति। पशुना स्वात्मनो निष्क्रीतत्वात् पशोर्यजमानत्वम्। पशोः पुरतो नीयमानज्योतिषा यजमानः पुरोवर्तिदीपयुक्तो भूत्वा स्वर्गं लोकं प्रयास्यति यथा राजामात्यादिः पर्यटने रात्रौ पुरोवर्तिदीपयुक्तो गच्छति तद्वदित्यभिप्रेत्योल्मुकं पुरस्तान्नयन्ति। तदभिप्रायानुसारेणैव यजमानोऽपि तथा स्वर्गं लोकं प्राप्नोति। तदेतदग्नेः पुरतो नयनं शाखान्तरेऽप्याम्नातम्—'यर्हि पशुमानाप्रीतमुदञ्च पशुं नयन्ति तर्हि तस्य पशुश्रपणमाहरेत्तेनैवैनं भागिनं करोति'[1] इति।।

शामित्रदेशं नीतस्य पशोर्हननस्थले बर्हिष्प्रक्षेपं विधत्ते—

(हननस्थले बर्हिष्प्रक्षेपणम्)

तं यत्र निहनिष्यन्तो भवन्ति तदध्वर्युर्बर्हिरधस्तादुपास्यति ।।६।।

हिन्दी—(शामित्र-स्थल पर लाये गये पशु के हननस्थल पर कुश के प्रक्षेप का विधान कर रहे हैं—) **यत्र** जहाँ **तम्** उस (पशु) को **निहनिष्यन्तः भवन्ति** मारा जाएगा **तद्** उसको **अध्वर्युः** अध्वर्यु **अधस्ताद् बर्हि उपास्यति** नीचे (भूमि पर) कुश को प्रक्षिप्त करता है।

सा०भा०—तं पशुं यस्मिन् देशे हनिष्याम इत्येवं मन्यन्ते तस्मिन् देशेऽध्वर्युर्भूमौ बर्हिः प्रक्षिपेत्। तदेनच्छाखान्तरे समन्त्रकमाम्नातम्—'पृथिव्याः संपृचः पाहीति बर्हिरुपास्यत्यस्कन्दायास्यकत्रं हि तद्यद्बर्हिषि स्कन्दत्यथो बर्हिषदमेवैनं करोति'[2] इति।

(१) तै०सं० ३.१.३.२।

(२) तै०सं० ६.३.८.२। 'पृथिव्याः' इति मन्त्रस्तु तै०सं० १.३.८.२।

तदेतदापस्तम्बेन स्पष्टीकृतम्—'अथ पर्यग्निकृत उल्मुकं निदधाति सा शामित्रस्तं दक्षिणेन प्रत्यञ्चं पशुमवस्थाप्य पृथिव्याः संपृचः पाहीति तस्याधस्ताद् बर्हिरुपास्यत्युपाकरण-योरन्यतरत्तस्मिन् संज्ञपयन्ति[1] प्रत्यक्शिरसमुदीचीनपादम्'[2] इति॥

पशोरधो बर्हिष्प्रक्षेपं प्रशंसति—

(बर्हिष्प्रक्षेपप्रशंसनम्)

यदेवैनमद आप्रीतं सन्तं पर्यग्निकृतं बहिर्वेदि नयन्ति बर्हिषदमवैनं तत्कुर्वन्ति ।।७।।

हिन्दी—(पशु के नीचे कुश के प्रक्षेप की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् एव** जो **अदः आप्रीतं सन्तम्** इस (प्रयाजों द्वारा) सन्तुष्ट हुए और **पर्यग्निकृतम्** पर्यग्नि किये गये **एनम्** इस (पशु) को **बहिर्वेदि नयन्ति** (सोम वाली) वेदि के बाहर संज्ञपन के लिए ले जाते हैं, तो **तत्** उस (कुश के प्रक्षेप) से **एनम्** इस (पशु) को **बर्हिषदं कुर्वन्ति** कुश पर ही स्थित करते हैं।

सा० भा०—प्रयाजैस्तोषितं पर्यग्निकरणेन रक्षितं पशुं सौमिकवेदेर्बहिर्भागे संज्ञ-पनाय नयन्तीत्यदो यस्ति तदानीमेनं पशुं बर्हिषदमेव दर्भेऽवस्थितमेव कुर्वन्ति। यद्वा, बर्हिषदं यज्ञेऽवस्थितं वेद्यामवस्थितं कुर्वन्ति। बाह्यदेशे नयनदोषं परिहरतीत्यर्थः॥

पशोः पुरीषस्थापनार्थमवटखननं विधत्ते—

(पुरीषगोपनार्थमवटखननम्)

तस्योवध्यगोहं खनन्ति ।।८।।

हिन्दी—(पशु के पुरीष को रखने के लिए गड्ढा खोदने का विधान कर रहे हैं—) **तस्य** उस (पशु) के **उवध्यगोहं कुर्वन्ति** मलमूत्र के छिपाने के स्थान (गड्ढे) को खोदते हैं।

सा० भा०—ऊवध्यं पुरीषं, तस्य गोहं गोपनस्थानं तत्कुर्युः। अस्य खननस्य काल आपस्तम्बेन दर्शितः—'ऊवध्यगोहं पार्थिवं खनतादियभिज्ञायोवध्यगोहं खनति'[3] इति। होता त्वाध्रिगुप्रैषमन्त्रे[4] यदोवध्यगोहमिति वाक्यं पठति तदा खनेदित्यर्थः॥

तदेतदूवध्यगोहखननं प्रशंसति—

औषधं वा ऊवध्यमियं वा ओषधीनां प्रतिष्ठा तदेनत्स्वायामेव प्रतिष्ठायामन्ततः प्रतिष्ठापयन्ति ।।९।।

---

(१) शमितार इति शेषः। 'अक्षतस्य मारणं सञ्ज्ञपनम्'—इति तट्टीका।
(२) आप०श्रौ० ७.१६. २-५। (३) आप०श्रौ० ७.१६.१।
(४) स मन्त्रः तैत्तिरीयब्राह्मणे ३.६.६ अनुवाके आम्नातः, इह षष्ठाध्यायीय षष्ठसप्तमखण्डयोः व्याख्यातश्च ।

हिन्दी— (मलमूत्र को छिपाने के लिए गड्ढे के खोदने की प्रशंसा कर रहे हैं—) **औषधं वै ऊवध्यम्** ऊवध्य (पशु का पुरीष) (पशु द्वारा खायी गयी वनस्पति का विकार होने के कारण) ओषधि रूप है। **इयं ओषधीनां प्रतिष्ठा** यह (पृथिवी) ही ओषधियों का आश्रय होती है। **तत्** इस (कर्म) से **अन्ततः** अन्त में **एनत्** इस (पशु के पुरीष) को **स्वामेव प्रतिष्ठायाम्** उसके अपने ही आश्रय-स्थान में **प्रतिष्ठापयन्ति** प्रतिष्ठापित करते हैं।

सा० भा०—तदेतदर्थवादवाक्यं पूर्वाध्यायमन्त्रप्रसङ्गे व्याख्यातम्॥

अथ पशुपुरोडाशं[१] प्रशंसितुं प्रश्नमुत्थापयति—

तदाहुर्यदेष हविरेव यत्पशुरथास्य बह्वपैति लोमानि त्वगसृक्कुष्ठिकाः शफा विषाणे स्कन्दति पिशितं केनास्य तदापूर्यत इति ॥१०॥

हिन्दी—(अब पशु-पुरोडाश की प्रशंसा के लिए प्रश्न को उपस्थापित कर रहे हैं—) **तदाहुः यत्** इस (पशु) के विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) पूछते हैं कि **यत्पशुः** जो पशु हैं, **एषः हविः एव** यह हविष् ही है (तो इसके किसी भी अङ्ग का फेंकना उचित नहीं है)। **अथ** तब **अस्य बहु अपैति** इस (पशु) के बहुत से (अङ्गों) को फेंक दिया जाता है। (जैसे कि) **लोमानि** बाल, **त्वक्** त्वचा **असृक्** रक्त, **कुष्ठिकाः** अधपका भोजन, **शफाः** खुर, **विषाणे** दोनों सींगें, **पिशितम्** अधकटा मांस जो **स्कन्दति** भूमि पर गिर जाता है। **तत्** तो **अस्य** इस (अङ्ग) की **केन आपूर्यते** किस प्रकार से पूर्ति की जाती है।

सा० भा०—तत्तत्र पशौ चोद्यवादिन आहुः। यद्यदा यः पशुरस्त्येष सर्वोऽपि हविरेव कृत्स्नस्य पशोरुपाकृतत्वात्। अथ तदानीं कस्याप्यवयवस्यापनयो न युक्तः। इह तु बह्ववयवजातमपैति। तद्यथा लोमानि रोमाणि त्वक्चर्मासृग्रक्तं कुष्ठिका उदरवर्तिनो भक्षितास्तृणादयः शफाः खुरा विषाणे शृङ्गद्वयमेतत्सर्वमपैत्यग्नौ होमाभावात्। किञ्च पिशितं मांसं यत्किञ्चित्स्कन्दति भूमौ पतति तदप्यपैति। एवं सति केन प्रकारेणास्य पशोः संबन्धि तत्सर्वमवयवजातं समन्तात् पूर्यत इति प्रश्नः॥

तस्योत्तरमाह—

यदेवैतत्पशौ पुरोळाशमनु निर्वपन्ति तेनैवास्य तदापूर्यते ॥११॥

हिन्दी—(पूर्वपक्षी के उस उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर कह रहे हैं–) **यद् एव एतत्पशौ अनु** जो यह पशु के आलम्भन का अनुसरण करके **पुरोडाशं निर्वपन्ति** पुरोडाश का निर्वाप करते हैं। **तत् तेन** उस (पुरोडाश के निर्वाप) से **अस्य आपूर्यते** इस पशु के फेंके गये अङ्ग) को पूरा करते हैं।

---

(१) 'पश्वर्थः पुरोडाशः पशुपुरोडाशः'—इति आप०श्रौ० ७.२२.१ टी०।

सा० भा०—पश्वालम्भनमनुसृत्य पुरोळाशं निर्वपन्तीति यदिदमस्ति तेनैवास्य पशोः सबन्धि तत्सर्वमवयवजातं पूरितं भवति॥

तदेतदुपपादयति—

पशुभ्यो वै मेधा उदक्रामंस्तौ व्रीहिश्चैव यवश्च भूतावजायेतां तद्य-त्पशौ पुरोळाशमनुनिर्वपन्ति समेधेन नः पशुनेष्टमसत्, केवलेन नः पशुनेष्टमसदिति ।।१२।।

हिन्दी—(उक्त कथन का उपपादन कर रहे हैं—) **पशुभ्यः वै मेधाः निष्क्रामन्** पशुओं से जब (यज्ञ के लिए उपयुक्त) हविर्द्रव्य निकल गया तो **तौ व्रीहि चैव यवः च भूतौ** वे धान और यव होकर **अजायेताम्** उत्पन्न हुए। **तद् यत् पशौ अनु** जो पशु का अनुक्रमण करके **पुरोडाशं निर्वपन्ति** पुरोडाश का निर्वाप करते हैं (तो वे मानते हैं कि) **नः समेधेन पशुना इष्टम् असत्** हमारा हविर्भाग से युक्त पशु द्वारा इष्ट हो गया और **नः केवलेन पशुना इष्टम् असत्** हमारा केवल (अन्य साधन से रहित) पशु द्वारा इष्ट हो गया।

सा० भा०—मनुष्याश्वादिभ्यः सकाशान्मेधा यज्ञयोग्या भागा उदक्रामन्। तदेतत् 'पुरुषं वै देवा' इत्यस्मिन् खण्डे प्रपञ्चिम्। उत्क्रान्तमेधा भूमौ प्रविश्य व्रीहिर्यवश्चेति यौ धान्यविशेषौ विद्येते तावुभौ भूतौ तद्रूपतां प्राप्तावजायेतां भूमेः सकाशादुत्पन्नौ। तद्यत्पशावि-त्यादिकं तस्मिन्नेव खण्डे व्याख्यातम्।

तदेतद्वेदनं प्रशंसति—

समेधेन हास्य पशुनेष्टं भवति, केवलेन हास्य पशुनेष्टं भवति य एवं वेद ।।१३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्य** इस (यजमान) का **समेधेन पशुना इष्टं भवति** (यज्ञ के योग्य) हविर्द्रव्य से युक्त पशु द्वारा इष्ट होता है और **अस्य केवलेन पशुना इष्टं भवति** इस (यजमान) का केवल (अन्य साधन से रहित) पशु द्वारा इष्ट होता है।

सा० भा०—एतदपि तत्रैव व्याख्यातम्। पुनरप्यत्रोक्तिर्यवप्रशंसार्था। पूर्वत्र व्रीहिमात्रे प्राशस्त्यम्। इह तु व्रीहियवावुभावपि प्रशस्येते इति विशेषः॥

अत्र यदेष हविरेव यत्पशुरित्युक्तं तत्र कश्चिद्विशेषो दशमाध्यायस्य सप्तमपादे चिन्तितः—

"पशुः कृत्स्नो हविः किं वा प्रत्यङ्गं हविरन्यता।
आद्यश्चोदनया　　　　मैवमवदानपृथक्त्वतः॥"[1] इति॥

---

(१) जै०न्या०वि० १०.७.१.१-२।

'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' इत्यत्र कृत्स्नस्य पशोरेकहविष्ट्वं युक्तम्। कुतः, अग्नीषोमदेवतां प्रति द्रव्यत्वेन पशोश्चोदित्वात्। न हि हृदयाद्यङ्गं साक्षात् पशुर्भवतीति प्राप्ते, ब्रूमः—"हृदयस्याग्रेऽवद्यत्यथ जिह्वाया अवद्यति वक्षसोऽवद्यति दोष्णोरवद्यति पार्श्वयोरवद्यति" इत्यादिना हृदयाद्यङ्गानामवादानानि पृथगाम्नायन्ते।[१] अवदानं च हविष्ट्वप्रयोजकः संस्कारः। पुरोडाशादौ होतुमवादीयमानत्वदर्शनात्। हविः शब्दः स्वकर्मव्युत्पत्त्या होमयोग्यं द्रव्यं ब्रूते। पश्वाकृतिचोदना तु हृदयाद्यङ्गद्वारेण देवतासम्बन्धाद् उपपद्यते। तस्मात्—प्रत्यङ्गं हविर्भेदः ॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तमाध्याये) प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा०भा०—अथ स्तोकानुवचनीया[२] विधातुमादौ प्रैषमन्त्रं विधत्ते—

(स्तोकावचनीयायाः प्रैषमन्त्रः)

तस्य वपामुत्खिद्याऽऽहरन्ति, तामध्वर्युः स्रुवेणाभिघारयन्नाह स्तोकेभ्योऽनुब्रूहीति ॥१॥

हिन्दी—(अब बूँद के अनुरूप अनुवचनीय मन्त्रों का विधान करने के लिए पहले प्रैष मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **तस्य** उस (पशु) की **वपाम् उत्खिद्य** वपा को निकाल कर **आहरन्ति** ले आते हैं और **अध्वर्युः तां स्रुवेण अभिघारयन्** अध्वर्यु उस (वपा) को (स्रुवा से) अभिघारित करते हुए (उस पर घी गिराते हुए) **आह** (प्रैष मन्त्र) कहता है- **स्तोकेभ्यः अनुब्रूहि** हे होता! बूदों के लिए (अनुरूप ऋचा) का अनुवाचन करो।

सा०भा०—तस्य पशोर्वपामुदरगतां वस्त्रसदृशीमुत्खिद्योद्धृत्य होतार्थमाहरन्ति। तां च वपामध्वर्युरभिघारयन् प्रैषमन्त्रं ब्रूयात्। तदेतदापस्तम्बो विशदयति—'त्वामु ते दधिरे हव्यवाहमिति स्रुवेण वपामभिजुहोति प्रादुर्भूतेषु स्तोकेषु स्तोकेभ्योऽनुब्रूहीति संप्रेष्यति'[३] इति॥

(१) तै०सं० ६.३.१०.४।

(२) 'अग्निसंयोगाद् ये मेदसो विन्दवश्चोतन्ति, ते स्तोकाः'—इति आप०श्रौ०टी० ७.२०.३। द्विशूलया शाखया धार्यमाणाया वपाया उपरि 'त्वामु ते दधिरे'— इति मन्त्रेण आज्ये हुते सति तत्सकाशात् पतन्तो विन्दवः स्तोकाः—इति च सा०भा० (तै०सं० १.३.९)।

(३) आप०श्रौ० ७.२०.२-३।

तस्य प्रैषिकस्य तात्पर्यं दर्शयति—

तद्यत्स्तोका श्चोतन्ति सर्वदेवत्या वै स्तोका नेन्म इमेऽनभिप्रीता देवान् गच्छानिति ।।२।।

हिन्दी—(उस प्रैषिक के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **तद् यत्** जो ये **स्तोकाः श्चोतन्ति** (गीली वपा से) बूदें टपकती हैं (तो वह सोचता है कि) **स्तोकाः सर्वदेवत्याः वै** ये बूदें सभी देवताओं वाली हैं तो **इमे अनभिप्रीताः इमे स्तोकाः** मुझसे अप्रसन्न हुई ये बूँदें **देवान् न गच्छान्** देवताओं के पास न चली जाँय (अतः बूँदों को प्रसन्न करने के लिए अनुवाचन किया जाता है)।

सा० भा०—तत्तस्यां वपायां तदानीमेव क्लिन्नायामार्द्रायां श्रप्यमाणायां यदा स्तोका नीरबिन्दवः श्चोतन्ति निर्गत्याधः पतन्ति तदानीं सर्वदेवानां प्रियत्वादिमे स्तोकाः स्वयमनभिप्रीता अस्मासु प्रीतिरहिता देवान् गच्छान् गमिष्यन्ति। तथा सति महदेतदस्माकं भयकारणं तन्मा भूदित्यभिप्रेत्य स्तोकप्रीणनार्थमिदं प्रैषानुवचनम्। अत्र नेदित्ययं शब्दः परिभयार्थः।।

अथानुवचनं विधत्ते—

(अनुवाचनमन्त्राः)

जुषस्व सप्रथस्तममित्यन्वाह ।।३।।

हिन्दी—(अब अनुवाचन मन्त्र को कह रहे हैं—) 'जुषस्व सप्रथस्तमम्'—**इति अन्वाह** इस ऋचा का अनुवाचन करता है।

सा० भा०—तस्यानुवचनस्य काल आश्वलायनेन दर्शितः—'वपायां श्रप्यमाणायां प्रेषितः स्तोकेभ्योऽन्वाह जुषस्व सप्रथस्तममिमं नो यज्ञमिति' इति। अत्रानुवचनवक्ता मैत्रावरुणः। तदाह बौधायनः—'यदा जानाति स्तोकेभ्योऽनुब्रूहीति तदा मैत्रावरुणः स्तोकीया अन्वाह जुषस्व सप्रथस्तमम्' इति।।

तस्या ऋचो द्वितीयतृतीयपादमनुवदति—

वचो देवप्सरस्तमम् । हव्या जुह्वान आसनीति ।।४।।

हिन्दी—(उस ऋचा के द्वितीय और तृतीय पाद को कह रहे हैं। सम्पूर्ण ऋचा का अर्थ इस प्रकार है–) हे अग्ने! **हव्याः आसनि जुह्वानः** (हमारे द्वारा प्रदत्त) हविषों को (अपने) मुख में लेते हुए **सप्रथस्तमम्** अत्यन्त विस्तृत और **देवप्सरस्तमम्** देवतओं को अतिशय रूप से प्रसन्न करने वाले **वचः** स्तोत्रों का **जुषस्व** सेवन करो।

सा० भा०—सर्वस्या ऋचोऽयमर्थः—हे अग्ने हव्या हवींष्यस्मदीयानि आसन्यास्ये मुखे जुह्वानः प्रक्षिपन् वचोस्मदीयं स्तोत्रं जुषस्व सेवस्व। कीदृशं वचः, सप्रथस्तममतिशयेन प्रथसा विस्तरेण सहितं देवप्सरस्तमं देवानामतिशयेन प्रीणयितृ।।

अत्राऽऽसनीतिपदस्याभिप्रायं दर्शयति—

अग्नेरैवनांस्तदास्ये जुहोति ।।५।।

हिन्दी—(मन्त्र में प्रयुक्त 'आसनि' शब्द के अभिप्राय को दिखला रहे हैं—) **तत्** इस (अनुवाचन) से एनान् इस (बूँदो) को **अग्नेः आस्ये एव** अग्नि के ही मुख में **जुहोति** होम करता है।

सा०भा०—तत्तेन मन्त्रपाठेन स्तोकनाग्नेरेव मुखे जुहोति।।

अनुवचनीयामेकामृचं विधाय पुनरप्यनुवचनीयं पञ्चर्चं सूक्तं[1] विधत्ते—

'इमं नो यज्ञममृतेष धेहि' इति सूक्तमन्वाह ।।६।।

हिन्दी—(अनुवचनीय एक ऋचा को कहकर पुनः अनुवचनीय पाँच ऋचाओं वाले सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'इमं नो यज्ञममृतेष धेहि' अर्थात् हमारे इस यज्ञ को देवताओं में प्रतिष्ठापित करो'—**इति सूक्तम् अन्वाह** इस सूक्त का अनुवाचन करता है।

सा०भा०—जातवेद इति सम्बोधनं वक्ष्यते। नोऽस्मदीयमिमं यज्ञममृतेषु देवेषु धेहि स्थापय।।

द्वितीययपादमनूद्य व्याचष्टे—

'इमा हव्या जातवेदो जुषस्वेति' हव्यजुष्टिमाशास्ते ।।७।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) 'इमा हव्या जातवेदो जुषस्व' अर्थात् हे जातवेद! इन हव्यों का सेवन करो—**इति हव्यजुष्टिम् आशास्ते** इस (पाद) में हवि के द्वारा प्रसन्न होने की कामना की गयी है।

सा०भा०—जुषस्वेत्यभिधानाद्धविः सेवायाः प्रार्थनम्।।

तृतीयापादमनूद्य व्याचष्टे—

'स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्येति मेदसश्च हि घृतस्य च भवन्ति ।।८।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के तृतीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) 'स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य' अर्थात् हे अग्ने! होम की जाती हुई वपा और घृत की बूदों का भक्षण करो'—इति यहाँ (कही गयी बूँदें) **मेदसः च घृतस्य च** मेदस् की और घृत की होती हैं।

सा०भा०—हे अग्ने मेदसो वपाया हूयमानस्य च घृतस्य ये स्तोका बिन्दवः सन्ति तेषां मध्ये स्वादून्बिन्दूनित्यध्याहारः। प्राशानेति वक्ष्यमाणेनान्वयः। अत्र ये स्तोकाः पतन्ति यस्मान्मेदसश्च घृतस्य च संबन्धिनो भवन्ति तस्माद्युक्तोऽयं वादः।।

(१) ऋ० ३.२१.१-५।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'होतः प्राशान प्रथमो निषद्य' इत्यग्निर्वै देवानां होताऽग्ने प्राशान प्रथमो निषद्येत्येव तदाह ।।९।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के चतुर्थ पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) 'होतः प्राशान प्रथमो निषद्य' अर्थात् हे होम-सम्पादक अग्नि! तुम पहले बैठकर (बूदों का) प्राशन करो'। **अग्निर्वै देवानां होता** अग्नि ही देवताओं का होता (बुलाने वाला) है अतः **अग्ने प्राशान् प्रथमो निषद्य** हे अग्ने! पहले बैठकर प्राशन करो' **इत्येव आह** उस (पाठ) से यह ही कहा गया है।

सा० भा०—हे होतर्होमनिष्पादकाग्ने त्वं प्रथमो मुख्यः सन्निषद्योपविश्य स्तोकान् प्राशान् भक्षय। यद्यपि होतृशब्दोऽत्र प्रयुक्तस्तथाऽप्यग्नेरेव देवहोतृत्वादग्निमेव सबोध्य चतुर्थपादो ब्रूते।।

अस्मिन् सूक्ते द्वितीयस्या ऋचः पूर्वार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः' इति मेदसश्च ह्येव हि घृतस्य च भवन्ति ।।१०।।

हिन्दी—(इस सूक्त के द्वितीय ऋचा के पूर्वार्ध को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) '**पावक** हे शोधक अग्ने! **ते** तुम्हारे लिए **घृतवन्तः मेदसः** घृत से युक्त मेद की **स्तोकाः श्चोतन्ति** बूँदे टपक रही हैं'—**इति हि** क्योंकि **मेदसः च ह्येव घृतस्य भवन्ति** (टपकने वाली बूँदे) वपा की और घृत की ही होती हैं।

सा० भा०—हे पावक शोधकाग्ने ते त्वदर्थं मेदसो वपायाः सबन्धिनो घृतवन्तो घृतसहिताः स्तोका बिन्दवः श्चोतन्ति। अत्र मेदःसंबन्धे घृतसंबन्धे च पृथक्प्रसिद्धिं वक्तुं मेदसश्च ह्येव हि घृतस्य चेति हिशब्दद्वयम्।।

उत्तरार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'स्वधर्म देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम्' इत्याशिषमाशास्ते ।।११।।

हिन्दी—(द्वितीय ऋचा के उत्तरार्ध को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) **देववीतये** देवतओं के भक्षण के लिए **नः** हमारे **श्रेष्ठम्** अत्यन्त प्रशस्त और **वार्यम्** सभी द्वारा वरणीय **स्वधर्मम्** अपने (कुलोचित यगादि अनुष्ठानरूप) धर्म को **धेहि** धारण करो'—**इति आशिषम् आशास्ते** यहाँ आशीर्वाद को कहा गया है।

सा० भा०—देववीतये देवानां भक्षणाय नोऽस्माकं स्वधर्मं कुलोचितयागादावनुष्ठानरूपं धर्म धेहि सम्पादयं कीदृशं धर्म, श्रेष्ठमतिप्रशस्तम्। अत एव वार्यं सर्वैर्वरणीयम्। अत्र स्वधर्मं धेहीत्यनेनाऽशीःप्रतीयते।।

तृतीयस्या ऋचः पूर्वार्द्धमनूद्य व्याचष्टे—

'तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य' इति घृतश्चुतो हि भवन्ति।।१२।।

हिन्दी—(तृतीय ऋचा के पूर्वार्ध को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'सन्त्य अग्ने हे फल प्रदान करने वाले अग्ने! **विप्राय तुभ्यम्** मेधासपन्न तुम्हारे लिए **घृतश्चुतः स्तोकाः** घृत से टपकने वाली बूँदे हैं—**इति घृतश्चुतः भवन्ति** क्योंकि ये बूँदे घृत से ही टपकती हैं।

सा०भा०—सन्तिर्दानं तामर्हतीति सन्त्यो हे सन्त्य फलप्रदानकुशलाग्ने विप्राय मेधाविने तुभ्यं त्वदर्थं स्तोका बिन्दवो घृतश्चुतो घृतस्राविणो वर्तन्ते। अत्र घृतश्रावित्वप्रसिद्धिं हिशब्देन दर्शयति।।

उत्तरार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव' इति यज्ञसमृद्धिमाशास्ते ।।१३।।

हिन्दी—(तृतीय ऋचा के उत्तरार्ध को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) हे अग्ने! **ऋषिः श्रेष्ठः** ऋषिरूप और श्रेष्ठ तुम **समिध्यसे** (हम लोगों के द्वारा) प्रज्वलित किये जाते हो, अतः **यज्ञस्य प्राविता भव** (हम लोगों के) यज्ञ के प्रकृष्ट रूपेण रक्षा करने वाले होवो।

सा०भा०—हे अग्ने, ऋषिर्द्रष्टा श्रेष्ठः प्रशस्ततमश्च समिध्यसेऽस्माभिः प्रज्वाल्यसे। अतो यज्ञस्यास्मदीयस्य प्राविता प्रकर्षेण रक्षिता भव। अत्र यज्ञरक्षणवचनेन यज्ञसमृद्धिप्रार्थनम्।।

चतुर्थ्या ऋचः पूर्वार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य' इति मेदसश्च ह्येव हि घृतस्य च भवन्ति ।।१४।।

हिन्दी—(चतुर्थ ऋचा के पूर्वार्ध को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **अध्रिगो शचीवः अग्ने** हे शक्तिशाली और हे घृतरश्मि वाले शक्ति से सम्पन्न अग्नि! **मेदसः इति हि** क्योंकि (ये बूँदे) **मेदसः घृतस्य** मेद और घृत की **स्तोकासः श्चोतन्ति** बूँदें तुम्हारे लिए टपक रही है—**च घृतस्य च भवन्ति** मेद की और घृत की होती हैं।

सा०भा०—हे अध्रिगो घृतरश्मे हे शचीवः शक्तिमन्नग्ने मेदसो वपायाः संबन्धिनो घृतस्य स्तोकासो बिन्दवस्तुभ्यं त्वदर्थं श्चोतन्ति क्षरन्ति। अत्रापि हिशब्दद्वयं पूर्ववत्।।

उत्तरार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'कविशस्तो बृहता भानुनाऽऽगा हव्या जुषस्व मेधिर' इति हव्यजुष्टिमेवाऽऽशास्ते ।।१५।।

हिन्दी—(चतुर्थ ऋचा के उत्तरार्ध को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) हे अग्ने! **कविशस्तः** विद्वान् (ऋत्विकों) द्वारा स्तुति किये गये और **बृहता भानुना** महान् तेज से (सम्पन्न हुए) तुम **आगा** (यहाँ) आओ तथा **मेधिरे** हे मेधा सम्पन्न (अग्ने)! **हव्या जुषस्व** हविषों का सेवन करो। **इति जुष्टिमेव आशास्ते** यहाँ हविष् के सेवन के लिए प्रार्थना की गयी है।

सा० भा०—हे अग्ने त्वं कविशस्तो विद्वद्भिर्ऋत्विग्भिः सन्बृहता भानुना महता तेजसा युक्त आगा आगच्छ। हे मेधिर यज्ञयोग्यास्मदीयानि हव्यानि जुषस्व। तदेतद्धविः-सेवायाः प्रार्थनम्।।

पञ्चम्या ऋचश्चतुरोऽपि पादाननुवदति—

'ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे। श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि' इति ।।१६।।

हिन्दी—(पञ्चमी ऋचा के चारो पादों को कह रहे हैं—) हे अग्ने! **वयम्** हम (यजन करने वाले) लोग **ते** तुम्हारे लिए **मध्यतः उद्भृतम्** (पशु के) मध्य भाग से निकाली गयी **ओजिष्ठं मेदः** सर्वाधिक बलसम्पन्न वपा को **ददामहे** दे रहे हैं। **वसो** हे (सभी लोगों को) निवास देने वाले (अग्नि)! **ते** तुम्हारे लिए **अधित्वचि** (वपा में अधिश्रित और) त्वचा में स्थित **स्तोकाः श्चोतन्ति** बूँदे अधिकता से टपक रही हैं; **तान्** उन (बूँदों को) **देवशः** देवताओं की तुष्टि के लिए **वीहि** पान करो।

सा० भा०—हे अग्ने त्वदर्थमोजिष्ठं बलवत्तमं मेदो वपारूपं मध्यतः पशोर्मध्य-भागादुद्धृतमुत्कृष्य संपादितं वयं यजमानास्ते तुभ्यं प्रददामहे प्रकर्षेण दद्मः। हे वसो सर्वेषां निवासहेतोऽधित्वचि वपायामधिश्रिताः स्तोका बिन्दवस्ते त्वदर्थं श्चोतन्ति क्षरन्ति। देवशस्तत्तद्देवतुष्ट्यर्थं तान् स्तोकान् प्रति वीहि प्रत्येकं पिब।।

एतन्मन्त्रतात्पर्यं दर्शयति—

अभ्येवैनांस्तद्वषट्करोति यथा 'सोमस्याग्ने वीहीति' ।।१७।।

हिन्दी—(उपर्युक्त मन्त्र के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **'अग्ने सोमस्य वीहि** हे अग्ने सोम की (बूँदो का) पान करो' **इति यथा** इसी के समान **तत्** इस 'ओजिष्ठं ते' (ऋचा के पाठ) से **एनान्** इन (बिन्दुओं) का **अभिवषट्करोति** वषट्कार करता है।

सा० भा०—तत्तेन मन्त्रपाठेनैतान् स्तोकानभिवषट्कारमन्त्रं पठति। यथा सोमस्येत्यादिमन्त्रस्तद्वत्।।

इदानीं स्तोकान् प्रशंसति—

तद्यत् स्तोका श्चोतन्ति सर्वदेवत्या वै स्तोकास्तस्मादियं स्तोकशो

वृष्टिर्विभक्तोपाचरति ।।१८।।

हिन्दी—(अब स्तोकों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तद् यत् स्तोकाः श्चोतन्ति** तो जो बूँदें टपकती हैं। **सर्वदेवत्याः वै स्तोकाः** वे बूँदें सभी देवताओं से सम्बन्धित होती हैं। **तस्मात्** इसी कारण **वृष्टिः** वर्षा **स्तोकशः विभक्तः** बूँदों के रूप में विभक्त होकर **उपाचरति** भूमि के ऊपर आती हैं।

सा०भा०—तत्तस्यां वपायां यद्यस्मात्कारणात्स्तोका श्चोतन्ति ते च स्तोकाः देवतानां प्रिया एव तस्माद्देवानुग्रहादियं वृष्टिर्लोके स्तोकशः प्रतिबिन्दुभिर्विभक्ता सती भूसमीपमागच्छति।।[1]

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितयाध्याये (सप्तमाध्याये) द्वितीयः खण्डः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयः खण्डः

सा०भा०—अथ वपाप्रशंसां हृदि निधाय तदुपयोगिनं कंचित्प्रश्नमुत्थापयति—

(वपाप्रशंसायां प्रश्नद्वयम्)

तदाहुः काः स्वाहाकृतीनां पुरोनुवाक्याः, कः प्रैषः का याज्येति।।१।।

हिन्दी—(अब वपा की प्रशंसा को हृदय में रखकर उसके लिए उपयोगी किसी प्रश्न को उठा रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) प्रश्न करते हैं कि **स्वाहाकृतीनां का पुरोनुवाक्या** स्वाहकृतियों के लिए पुरोनुवाक्या कौन है, **कः प्रैषः** प्रैष कौन है और **का याज्या** याज्या कौन होती है।

सा०भा०—स्वाहाकृतिशब्देनान्तिमप्रयाजदेवता उच्यन्ते। तासां देवतानां पुरोनुवाक्याप्रैषयाज्यासु ज्ञानरहिता ब्रह्मवादिनः पृच्छन्ति।।

तस्या प्रश्नस्योत्तरमाह—

'या एवैता अन्वाहैताः पुरोनुवाक्या, यः प्रैषः स प्रैषो, या याज्या

(१) 'वायो वीहि स्तोकानामित्याह, तस्माद् विभक्ताः स्तोका अवपद्यन्ते'—इति तै०सं० ६.३.९। 'वायो वीहि स्तोकानामिति बर्हिषोऽग्रमधस्ताद् वपाया उपास्यति'—इति च आप०श्रौ० ७.२०.१। 'वायो वीहि' मन्त्रस्तु तै०सं० १.३.९.२। 'स्तोक्या जुहोति या एव वर्ष्या आपस्ता अवरुन्धे'—इत्यादि च तै०ब्रा० ३.८.६.२.३।

सा याज्या ।।२।।

हिन्दी—(उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर कह रहे हैं—) **याः एव एताः अन्वाह** (यह मैत्रावरुण (जुषस्व सप्रथ इत्यादि ऋचाओं) का जो अनुवाचन करता है **एताः पुरोनुवाक्याः** ये (ऋचाएँ) (स्वाहाकृतियों की) पुरोनुवाक्या होती है, **यः प्रैषः** जो प्रैष कहा गया है **सः प्रैषः** वही (स्वाहाकृतियों का) प्रैष है और **या याज्या** जो याज्या कही गयी है, **सा आज्या** वही आज्या है।

सा० भा०—वपासंबन्धिस्तोकार्थं प्रेषितो मैत्रावरुणो जुषस्वेत्यादयो या एवैता अन्वाह, एता एव[१] स्वाहाकृतीनां पुरोनुवाक्या भवन्ति। न त्वन्याः सन्ति। अनेन वपाप्रशंसा सूचिता। प्रैषसूक्ते होता यक्षदग्नि स्वाहाऽऽज्यस्येति प्रयाजान्तिमो यः प्रैष आम्नातः[२] स एष प्रैषः। आप्रीसूक्ते येयमुत्तमा याज्यारूपेणाऽऽम्नाता[३] सैव स्वाहाकृतिदेवतानां याज्या। तदेतत् सर्वमज्ञानप्रश्नस्योत्तरम्॥

पुनरपि तथाविधं प्रश्नान्तरमुत्थापयति—

तदाहुः का देवताः स्वाहाकृतय इति।।३।।

हिन्दी— (पुनः तद्विषयक प्रश्न उपस्थापित करते हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) प्रश्न करते हैं कि **का देवताः स्वाहाकृतयः** स्वाहाकृतियाँ किस देवता से सम्बन्धित होती हैं?

सा० भा०—अग्निवाय्वादिवत् स्वाहाकृत्याख्या अपि प्रसिद्धाः काश्चिन्न सन्ति तस्मादेताः का इत्यज्ञात्वा प्रश्नः॥

तस्योत्तरं दर्शयति—

विश्वे देवा इति ब्रूयात् ।।४।।

हिन्दी—(उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर को दिखला रहे हैं—) **विश्वेदेवाः** विश्वे देव (इसके देवता है)—**इति ब्रूयात्** यह कहना चाहिए।

सा० भा०—प्रसिद्धा ये देवाः सन्ति ते सर्वे स्वाहाकृत्याख्या इत्यभिज्ञात उत्तरं ब्रयात्॥

तदेतदुपपादयति—

तस्मात् 'स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः' इति यजन्तीति ।।५।।

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **'स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः** स्वाहाकार से संस्कृत

---

(१) पूर्वस्मिन् खण्डे निहिताः षट् स्तोकानुवचनीया एवेत्यर्थः।

(२) तै०ब्रा० ३.६.३.११। (३) तै०ब्रा० ३.६.४.१२।

हवि का सभी देवता भक्षण करें—इति इस पाद से यजन्ति (अन्तिम प्रयाज का) यजन करते हैं।

सा० भा०—अस्या अन्तिमप्रयाजयाज्यायाश्चतुर्थपाद एवमाम्नातः 'स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः'[१] इति। तस्य पादस्यायमर्थः— स्वाहाकारेण संस्कृतं हविः सर्वे देवा भक्षयन्त्विति। एवं सति स्वाहाकृतिनामकाः सर्वे देवास्तस्मात् स्वाहाकृतमित्यादिपाद-सहितेन मन्त्रेणान्तिमं प्रयाजं यजति। मन्त्रलिङ्गमेवं स्वाहाकृतिशब्देन सर्वदेवताभिधाने प्रमाणमित्यर्थः। पशोः पर्यग्निकरणात् पूर्वं प्रयाजकाले दशैव प्रयाजा इष्टा अन्तिम-प्रयाजस्त्ववस्थापितः। तदुक्तम् आपस्तम्बेन—'दशेष्ट्वैकादशायाऽऽज्यमवशिनष्टि'[२] इति। सोऽयमवशिष्टोऽन्तिमप्रयाजो 'जुषस्व सप्रथस्तमम्'[३] इत्यादिः स्तोकानुवचनादूर्ध्वं वपा-होमात् प्राग् इज्यते। अतो व्यवहितात्वादन्तिमप्रयाजविषयः पुरोनुवाक्याप्रैषयाज्याप्रश्नो युक्तः वपासमीपवर्तित्वादेव स्तोकानुवचनमन्त्राणामेतदीयपुरोनुवाक्यात्वं चोपपन्नम्। अनु-ष्ठानस्य व्यवधानेऽपि प्रैषयाज्ये तत्तदनुवाकोक्ते[४] एवेति स्मर्यते।।

अथ वपाहोमं प्रशंसितुमाख्यायिकामाह—

(वपाहोमप्रशंसितुमाख्यायिका)

देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाऽऽहुतिभिः स्वर्गं लोकमजयंस्तेषां वपायामेव हुतायां स्वर्गो लोकः प्राख्यायत ते वपामेव हुत्वाऽनादृत्येतराणि कर्माण्यूर्ध्वाः स्वर्गं लोकमायंस्ततो वै मनुष्याश्च ऋषयश्च देवानां यज्ञवास्त्वभ्यायन् यज्ञस्य किञ्चिदेषिष्यामःप्रज्ञात्या इति तेऽभितः परिचरन्त ऐत्पशुमेव निरान्त्रं शयानं ते विदुरियान्वाव किल पशुर्यावती वपेति ।।६।।

हिन्दी—(अब वपा होम की प्रशंसा के लिए आख्यायिका के कह रहे हैं—) **देवाः** देवताओं ने **यज्ञेन श्रमेण तपसा आहुतिभिः** (ज्योतिष्टोम इत्यादि) यज्ञ के द्वारा (तीर्थाटन इत्यादि) श्रमद्वारा, (चान्द्रायण व्रत इत्यादि) तपस्या द्वारा, और (कूष्माण्डादि) आहुतियों द्वारा **स्वर्गं लोकम् अजयन्** स्वर्ग लोग को जीत लिया (प्राप्त कर लिया)। **तेषाम्** उन (देवताओं) के (याग में) **हुतायां वपायाम् एव** आहुति दिये गये वपा में ही **स्वर्गः लोकः प्रख्यायत** स्वर्ग लोक प्रख्यात हुआ। अतः **ते वपामेव हुत्वा** उन देवताओं ने वपा की ही आहुति देकर और **इतराणि कर्माणि अनाहुत्य** अन्य कर्मों का तिरस्कार करके **ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकम्** ऊर्ध्वमुख होकर स्वर्ग लोक को प्राप्त किया। **ततः** उसके

---

(१) ऋ० १०.११०.११। (२) आप०श्रौ० ७.१४.८।
(३) ऋ० १.७५.१। (४) तै०ब्रा० ३.६.३,४ अनु०।

बाद **मनुष्याः ऋषयः** मनुष्यगण और ऋषि लोग **देवानां यज्ञवास्तु** देवताओं के यज्ञ के स्थान पर '**यज्ञस्य प्रज्ञाप्त्यै किञ्चिद् एष्यामः** हम लोग भी यज्ञ सम्बन्धी कुछ प्रकृष्ट ज्ञान का अन्वेषण करके जाने'—**इति अभ्यायन्** यह (सोचकर) आये। **ते अभितः परिचरन्तः** उन (मनुष्यों और ऋषियों) ने (यज्ञ-विषयक कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिए यज्ञ स्थल पर) सभी ओर विचरण किया। (वहाँ उन्होंने) **निरान्त्रं शयानं पशुम् एत्** निकली हुई अतड़ियो वाले (भूमि पर) सोते हुए (पड़े हुए) पशु को पाया। इससे **ते विदुः** उन (मनुष्यों और ऋषियों) ने जान लिया कि **यावतीः वपा** जितनी वपा होती है **इयान्वेव खलु पशुः** उतना ही पशु है।

सा० भा०—पुरा कदाचिद्देवा ज्योतिष्टोमादियागेन तीर्थयात्रादिश्रमेण कृच्छ्चान्द्रायणादितपसा कूष्माण्डगणहोमादिगताभिराहुतिभिश्च स्वर्गं लोकं प्राप्ताः। अनन्तरं मनुष्याश्च ऋषयश्च यज्ञसंबन्धि किञ्चिदुत्तममङ्गमन्विष्य निश्चेष्याम इति विचार्य तत्प्रज्ञानाय यज्ञानां ज्ञानाय देवानां यज्ञभूमिं प्रत्यागच्छन्। आगत्य च ते मनुष्यादयस्तदन्वेषणार्थं तस्यां यज्ञभूमौ परितश्चरन्तः। निरान्त्रं निरङ्गं शयानं भूमौ पतितं पशुमेवैत् प्राप्तवन्तः। वपाया देवैरुत्कृत्य हुतत्वादयं पशुर्निरान्त्रो दृष्टः। यद्यप्यान्त्रशब्दः पुरीतद्वाची तयाऽप्यत्र तेन वपोपलक्ष्यते। मनुष्यादयः स्वमनस्येवं विदुर्निश्चितवन्तः—वपा यावती विद्यत एतावानेव किल पशुरन्यथा कथं देवा वपामेव हुत्वा शिष्टान्यङ्गान्युपेक्षितवन्तः। तथा पशौ सारभूतमङ्गं वपेति॥

आख्यायिकामुखेन वपां प्रशस्य श्रुतिः स्वयमपि साक्षात् प्रशंसति—

(ऋचाद्वारा वपाप्रशंसनम्)

स एतावानेव पशुर्यावती वपा ।।७।।

हिन्दी—(आख्यायिका द्वारा वपा की प्रशंसा करके श्रुति=वेद द्वारा की गयी प्रशंसा को कह रहे हैं—) **यावती वपा** जितनी वपा है **एतावान् एव सः पशुः** उतना की वह पशु (यजनीय) होता है अर्थात् पशु का वपा वाला भाग ही हविष् के योग्य होता है, अन्य भाग नहीं)।

सा० भा०—पशुशरीरमध्ये वपा यावती विद्यत एतावानेव मुख्यः पशुः, 'हविरदन्तु देवाः'[१] इति मन्त्रे वपायाः सर्वदेवहविष्ट्वाभिधानात्॥

कोऽभिप्राय इत्याशङ्क्याऽऽह—

अथ यदेनं तृतीयसवने श्रपयित्वा जुह्वति भूयसीभिर्न आहुतिभिरिष्टमसत् केवलेन नः पशुनेष्टमसदिति ।।८।।

हिन्दी—**अथ तृतीयसवने** अब तृतीयसवन में **यद् एनं श्रपयित्वा जुह्वति** जो इस

---

(१) ऋ० १०.११०.११।

(पशु की वपा को छोड़ कर अन्य भागों) को पकाकर आहुति देता है' (इसका अभिप्राय यह है कि) **भूयसीभिः आहुतिभिः** बहुत सी आहुतियों से **नः इष्टम् असत्** हमारा (यज्ञ) इष्ट होवे और **केवलेन पशुना** (अन्य द्रव्यों की अपेक्षा से रहित) केवल पशु से (हमारा यज्ञ) **इष्टम् असत्** इष्ट होवे।

सा० भा०—अथ वपायाः पशुसारत्वे सत्येनमवशिष्टं पशुं तृतीयसवने श्रपयित्वा जुह्वतीति यदस्ति तत्र जुह्वतामयमभिप्रायः—यद्यपि वपायाग एव स्वर्गाय पर्याप्तस्तथाऽपि नोऽस्माकं भूयसीभिर्बहुलाभिराहुतिभिरिष्टिमस्तु[1] केवलेन द्रव्यान्तरनिरपेक्षेण निरवशेषेण नोऽस्मदीयेन पशुनेष्टमस्त्विति। अत्राधिकं नैव दोषायेति लौकिकन्यायेन तृतीयसवने पश्वङ्गहोमो न तु वपाया न्यूनत्वबुद्ध्येत्यर्थः॥

वेदनं प्रशंसति—

भूयसीभिर्हास्याऽऽहुतिभिरिष्टं भवति, केवलेन हास्य पशुनेष्टं भवति य एवं वेद ।।९।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्य** इसका (यज्ञ) **भूयसीभिः आहुतीभिः** बहुत आहुतियों से **इष्टं भवति** इष्ट होता है और **अस्य** उस (जानने वाले) का (यज्ञ) **केवलेन पशुना** (अन्य द्रव्य की अपेक्षा न करते हुए) केवल पशु से **इष्टं भवति** इष्ट होता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तमाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथः चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—आज्याद्याहुतीनां प्राशस्त्यप्रसिद्धेस्तद्वद्वपाहुतिरपि प्रशस्तेति विवक्षया ताभिः सहैतामाहुतिं प्रशंसति—

(आज्याद्याहुतिभिः सह वपाहुतेः प्रशंसनम्)

सा वा एषाऽमृताहुतिरेव यद्वपाहुतिरमृताहुतिरग्न्याहुतिरमृताहुतिराज्याहुतिरमृताहुतिः सोमाहुतिरेता वा अशरीरा आहुतयो, या वै

---

(१) मूले असदिति लेटो रूपम्, तस्यैवार्थोऽयम्।

काश्चाशरीरा आहुतयाऽमृतत्वमेव ताभिर्यजमानो जयतिं ।।१।।

हिन्दी—(वपा की आहुति की पुनः प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् वपाहुतिः** जो वपा की आहुति है **सा एषा अमृताहुतिः** वह यह अमृत की आहुति होती है। **अमृताहुतिः अग्न्याहुतिः** (आतिथ्य कर्मों में आहवनीय) अग्नि में (प्रक्षेप रूप) आहुति भी अमृत की आहुति होती है। **आज्याहुतिः अमृताहुतिः** घृत की आहुति भी अमृत की आहुति होती है। **सोमाहुतिः अमृताहुतिः** सोम की आहुति भी अमृत की आहुति है। **एताः वै अशरीराहुतयः** ये (उपर्युक्त चारो आहुतियाँ) शरीर-रहित आहुतियाँ है। अतः **याः काः च वै अशरीराहुतयः** जो कुछ भी शरीर-रहित आहुतियाँ है, **ताभिः** उन (आहुतियों) के द्वारा **यजमानः अमृतत्वमेव जयति** यजन करने वाला व्यक्ति (चिरजीवनरूप) अमरता को ही जीत लेता (प्राप्त कर लेता) है।

सा०भा०—या वपाहुतिरस्ति सैषा स्वयममृताहुतिर्देवानाममृते यावती प्रीतिस्तावत्प्रीतेर्वपाहुतौ विद्यमानत्वात्। आतिथ्यकर्मसु मथितस्याग्नेराहवनीयाग्नौ प्रक्षेपरूपा येयमाहुतिः साऽप्यमृताहुतिः। अमृतत्वाख्यस्य देवत्वस्य प्राप्तिहेतुत्वात्। याऽप्यान्या काचिदाज्याहुतिः साऽप्यमृताहुतिरमृतं वा आज्यमिति श्रुतेः। याऽप्यन्या सोमाहुतिः साऽपि। 'अपाम सोमममृता अभूम'[1] इति सोमस्यामृतत्वप्राप्तिसाधनत्वश्रवणात्। या एताश्चतस्र आहुतय स्ताः सर्वा अशरीराः शीघ्रमरणयुक्तशरीरप्राप्तिसाधनत्वाभावात्। अत एव याः काश्चिद् अशरीरा आहुतयः सन्ति ताभिर्यजमानश्चिरजीविनौ रूपममृतत्वं देवत्वमेव प्राप्नोति।।

पुनः प्रकारान्तरेण वपां प्रशंसति—

सा वा एषा रेत एव यद्वपा प्रेव वै रेतो लीयते प्रेव वपा लीयते शुक्लं वै रेतः शुक्ला वपाऽशरीरं वै रेतोऽशरीरा वपा यद्वै लोहितं यन्मांसं तच्छरीरं तस्माद् ब्रूयाद् यावदलोहितं तावत्परिवासयेति ।।२।।

हिन्दी—(पुनः अन्य प्रकार से वपा की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् वपा** जो वपा है, **सा एषा रेतः एव** वह यह वीर्य है; क्योंकि **रेतो वै प्रलीयते एव** (जिस प्रकार योनि में सिक्त) वीर्य निश्चित रूप से प्रकृष्ट रूप से लुप्त हो जाता है (उसी प्रकार) **वपा प्रलीयते एव** (अग्नि में होम की गयी) वपा भी लुप्त हो ही जाती है। **शुक्लं वै रेतः** जिस प्रकार वीर्य सफेद वर्ण वाला होता है (उसी प्रकार) **शुक्ला वपा** वपा भी सफेद वर्ण वाली होती है। **अशरीरं वै रेतः** (जिस प्रकार) वीर्य शरीर-रहित होता है। (उसी प्रकार) **अशरीरा वपा** वपा भी शरीररहित होती है। **यद् वै लोहितं यद् मांसम्** जो रुधिर और जो मांस है **तत् शरीरम्** वह शरीर है। **तस्मात्** इसी कारण **ब्रूयात्** (याज्ञिक वपा निकालने वाले

(१) ऋ० ८.४८.३।

से) कहे कि **यावद् अलोहितम्** जितना रुधिर से रहित (श्वेत) भाग है **तावत् परिवासय** उतना (वपा वाला भाग) काट कर निकालो।

सा० भा०—येयं वपाऽस्ति सेयं रेत एव तत्सादृश्यात्। कथं सादृश्यमिति, तदुच्यते—रेतो योन्यां निषिक्तं सत्प्रलीयत एव वपाऽप्यग्नौ हुता प्रलीयत एव—इदमेकं सादृश्यं, शुक्लवर्णत्वं द्वितीयमशरीरत्वं तृतीयम्। तस्मात् प्रजोत्पादकरेतोवद्वपा प्रशस्ता। न च वपायाः शरीरमध्येऽवस्थानाच्छरीरत्वं शङ्कनीयम्। यदेव लोहितं रक्तमस्ति यच्च मांसम्। अनेन मुग्धबालादि प्रसिद्धास्त्वगस्थ्यवयवा उपलक्ष्यन्ते। अतो बालादिप्रसिद्धं रक्तमांसादिकमेव मुख्यं शरीरम्। न तु वपायां रेतसि वा बालप्रसिद्धिरस्ति। ततस्तयोरशरीरत्वम्। यस्माद् वपाशरीरयोर्विभाग उक्तस्तस्माद्याज्ञिको वपोद्धरणकर्तारं प्रत्येवं ब्रूयात्-वपायाः स्वरूपं यावदलोहितं रक्तरहितं श्वेतं भवति तावत्सर्वं परिवासय च्छिन्धीति। तदेवं वपा प्रशस्ता।।[१]

तस्या अवदाने विशेषं विधत्ते—

(अवदाने विशेषविधानम्)

सा पञ्चावत्ता भवति यद्यपि चतुरवत्ती यजमानः स्यादथ पञ्चावत्तैव वपा ।।३।।

हिन्दी—(उस वपा के अवदान में विशेष विधान कर रहे हैं—) **सा पञ्चावत्ता भवति** वह (वपा) पाँच अवदानों (भागों वाली) होती है। **यद्यपि यजमानः चतुरवत्ती स्यात्** यद्यपि यजन करने वाला चार अवदानों वाला होता है। **अथ पञ्चावत्ता वै वपा** तब भी वपा पाँच भागों वाली ही होनी चाहिए।

सा० भा०—द्विविधा यजमानाश्चतुरवत्तिमनः पञ्चावत्तिनश्चेति। चतुर्भिरवदानैर्युक्तश्चतुरवत्ती पञ्चभिर्युक्ताः पञ्चावत्तिनः। एवं स्थिते वपा पञ्चभिरवदानैर्युक्ता कर्त्तव्या। तत्र पञ्चावत्तिनो यजमानस्य स्वत एव पञ्चावदानानि प्राप्तानि। यस्तु चतुरवत्ती तस्यापि पञ्चावदानानि वपाया कुर्यात्।।

तान्येतानि पञ्चापि विभज्य दर्शयति—

आज्यस्योपस्तृणाति हिरण्यशल्को वपा हिरण्यशल्क आज्यस्योपरिष्टादभिघारयति ।।४।।

हिन्दी—(उन पाँचों को विभाजित करके दिखला रहे हैं—) **आज्यस्य उपस्तृणाति** घृत से लेप करता है। पुनः **हिरण्यशल्कः** सुवर्ण का टुकड़ा **वपा** पुनः वपा **हिरण्यशल्कः** तत्पश्चात् हिरण्य का टुकडा रखकर **उपरिष्टात्** ऊपर से **आज्यस्य अभिघारयति** घृत से

(१) 'प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्'—इत्यादिना वपाविधानम् तै०सं० २.१.१.४। द्र० तत्रैव ६.३.५;९.५; तै०ब्रा० २.८.४.४। शत० ब्रा० १३.७.१.९। कात्या०श्रौ० २०.७.७।

अभिघार करता है अर्थात् घृत की बूँदे टपकाता है।

सा० भा०—आज्यास्याऽऽज्येनेत्यर्थः। तदेतद् आपस्तम्बेन स्पष्टमुक्तम्—'जुह्वा-मुपस्तीर्य हिरण्यशकलमवधाय कृत्स्नां वपामावदाय हिरण्यशकलमुपरिष्टात् कृत्वाऽभिधार-यत्येवं पञ्चावत्त भवति। चतुरवत्तिनोऽपि पञ्चावत्ततैव स्यात्'[1] इति॥

हिरण्यरहितस्य प्रकारान्तरेण पञ्चावदानानि प्रश्नोत्तराभ्यां दर्शयति—

(आज्यस्य हिरण्यप्रतिनिधित्वम्)

तदाहुर्यद्धिरण्यं न विद्येत कथं स्यादिति द्विराज्यस्योपस्तीर्य वपाम-वदाय द्विरुपरिष्टादभिघारयति ॥५॥

हिन्दी—**तदाहुः** इस विषय में (कतिपय ब्रह्मवादी) पूछते हैं कि **यद् हिरण्यं न विद्येत** यदि सुवर्ण न हो तो **कथं स्यात्** किस प्रकार करना चाहिए। (उत्तर—) **आज्यास्य द्विः उपस्तीर्य** घृत से दो बार उपस्तरण करके **वपाम् अवदाय** (उस पर) वपा को रखकर **उपरिष्टाद् द्विः अभिघारयति** ऊपर से (घृत से) दो बार अभिघारण करता है।

आज्यस्य हिरण्यप्रतिनिधित्वमुपपादयति—

अमृतं वा आज्यममृतं हिरण्यं, तत्र स काम उपाप्तो य आज्ये, तत्र स काम उपाप्तो यो हिरण्ये, तत्पञ्च संपद्यन्ते ॥६॥

हिन्दी— (घृत की सुवर्ण के प्रति प्रतिनिधिता को दिखला रहे हैं–) **अमृतं वै आज्यम्** घी अमृत रूप है और **अमृतं हिरण्यम्** सुवर्ण अमृत रूप है। **यः आज्ये कामः** जो घृत में कामना होती है **सः तत्र उपात्तः** वह सभी वहाँ (हिरण्य में) प्राप्त होती है और **यः हिरण्ये कामः** जो सुवर्ण में कामना होती है **सः तत्र उपात्तः** वह सभी वहाँ (आज्य में) प्राप्त होती है। **तत्** अतः **पञ्च सम्पद्यन्ते** पाँच (अवदान) सम्पादित होते हैं।

सा० भा०—आज्यस्य स्वादुत्वेन हिरण्यस्य च दर्शनीयत्वेन प्रियत्वामृतत्वमेवं सति यत्र हिरण्यं प्रक्षिप्यते तत्राऽऽज्यप्रयुक्तो यः कामः स प्राप्तो भवति। यत्र त्वाज्यं प्रक्षिप्यते तत्र हिरण्यप्रयुक्तो यः कामः स प्राप्तो भवति। तस्मादाज्येन हिरण्येन पञ्चावदानानि संपद्यन्ते॥

अवदानगतां पञ्चसंख्यां प्रशंसति—

(अवदानगतपञ्चसंख्याप्रशंसनम्)

पाङ्क्तोऽयं पुरुषः पञ्चधा विहितो लोमानि त्वङ्मांसमस्थि मज्जा स यावानेव पुरुषस्तावन्तं यजमानं संस्कृत्याग्नौ देवयोन्यां जुहोत्यग्निर्वै

---

(१) आप०श्रौ० ७.२०.९-११।

देवयोनिः सोऽग्नेर्देवयोन्या आहुतिभ्यः संभूय हिरण्यशरीर ऊर्ध्वः स्वर्गं लोकमेति ।।७।।

हिन्दी—(अवदानगत पाँच संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **लोमानि त्वक् मांसम् अस्थिः मज्जा** लोम, त्वचा, मांस, अस्थि और मज्जा–इस प्रकार **पञ्चधा विहितः** पाँच प्रकार से विहित **अयं पुरुषः** यह पुरुष **पाङ्क्तः** पाँच भागों से युक्त है। **यावान् एव सः पुरुषः** वह पुरुष जितनी संख्या वाला है **तावन्तं यजमानं संस्कृत्य** उतनी (संख्या) में यजमान को (होता) संस्कारित करके **देवयोन्याम् अग्नौ जुहोति** देवताओं की योनिरूप अग्नि में आहुति देता है; क्योंकि **अग्निः वै देवयोनिः** अग्नि ही देवताओं की योनि (उत्पत्ति-स्थान) है। **सः** वह (यजन करने वाला) **देवयोन्याः अग्नेः** देवताओं के उत्पत्ति स्थान अग्नि से **आहुतिभ्यः सम्भूय** आहुतियों द्वारा सम्यक् रूप से उत्पन्न होकर **हिरण्यशरीरः** सुवर्ण सदृश शरीर से सम्पन्न हुआ **ऊर्ध्वः स्वर्गं लोकम् एति** ऊपर गमन करने वाले स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

सा० भा०—पञ्चभिरवदानैः पुरुषस्य पाङ्क्तत्वं तद्योगाच्च लोमादिभिः पञ्चभिर्निष्पादितत्वात्। तस्मात् पञ्चभिरवदानैः पुरुषो यावल्लोमादिपञ्चावयवोपेतोऽस्ति तावन्तं सर्वमपि यजमानं संस्कृत्याग्नौ देवत्वप्राप्तिकारणे हुतवान् भवति। अग्नेश्च यागद्वारा देवजन्मकारणत्वम्। एवं सति स यजमानो देवत्वकारणादग्नेः स्वेनानुष्ठिताभ्य आहुतिभ्यः समष्टिरूपेणोत्पद्य सुवर्णवर्णशरीरयुक्त ऊर्ध्वगामी स्वर्गं प्राप्नोति।।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तामाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—अथ प्रातरनुवाको वक्तव्यः। तदर्थमादौ प्रैषं विधत्ते—

(प्रातरनुवाकार्थं प्रैषमन्त्रः)

देवेभ्यः प्रातर्यावभ्यो होतरनुब्रूहीत्याहाध्वर्युः ।।१।।

हिन्दी— (प्रातरनुवाक को कहने के लिए प्रारम्भ में प्रैष मन्त्र का विधान कर रहे हैं–) '**होतः** हे होता (सुत्या के दिन) **प्रातर्यावभ्यः देवेभ्यः** प्रातः आने वाले देवताओं के लिए **अनुब्रूहि** (अनुरूप ऋचाओं) का अनुवाचन करो—**इति अध्वर्युः आह** इस (प्रैष

मन्त्र) को अध्वर्यु कहता है।

सा० भा०—सुत्यादिने प्रात:काले यान्ति यज्ञभूमिं गच्छन्तीति प्रातर्यावाणस्तादृशेभ्यो देवेभ्यस्तत्प्रीत्यर्थं हे होतरनुकूला ऋचो ब्रूहि तमेतं प्रैषमन्त्रमध्वर्यु: पठेत्।

तं मन्त्रं व्याचष्टे—

(प्रातरनुवाकीया ऋचा)

एते वाव देवाः प्रातर्यावाणो यदग्निरुषा अश्विनौ त एते सप्तभिः सप्तभिश्छन्दोभिरागच्छन्ति ।।२।।

हिन्दी—(उस उपर्युक्त प्रैष मन्त्र का व्याख्यान कर रहे हैं—) **यदग्निः उषा अश्विनौ** जो वे अग्नि, उषा और अश्विन् देव हैं, **एते वा देवाः प्रातर्यावाणः** ये ही देवता प्रात:काल आने वाले हैं। **ते** वे (देवता) **सप्तभिः सप्तभिः छन्दोभिः** सात-सात छन्दों से युक्त (ऋचाओं) द्वारा **आगच्छन्ति** यज्ञ में आते हैं।

सा० भा०—योऽयमग्निर्या चोष:कालाभिमानिनी देवता यौ चाश्विनावेत एव देवा: प्रैषमन्त्रे प्रातर्यावाण इति विशेष्यन्ते। तत्कथमिति, तदुच्यते—त एते देवा: प्रत्येकं सप्तच्छन्दोयुक्ताभिर्ऋग्भिर्यज्ञभूमिमागच्छन्ति तस्मात् प्रातर्यावाण:। सप्तभि: सप्तभिरिति वीप्सा प्रत्येकं संख्यान्वयार्था। ताश्च ऋच: सर्वा आश्वलायनेन "आपो रेवती: क्षयथ"[१] इत्यादिग्रन्थेनोदाहृता:। तत्र 'उप प्रयन्त:–इत्यादिषु[२] च्छन्दो गायत्रम्। 'त्वमग्ने वसून्'[३] इत्यादिष्वनुष्टुप्छन्द:। अबोध्यग्नि:[४] इत्यादिषु त्रिष्टुप्छन्द:। एना वो अग्निम्[५] इत्यादिषू बृहती छन्द:। अग्ने वाजस्य[६] इत्यादिषूष्णिक्छन्द:। जनस्य गोपा[७] इत्यादिषु जगती छन्द:। अग्निं तं मन्ये[८] इत्यादिषु पङ्क्तिश्छन्द:। तान्येतानि सप्त च्छन्दांस्याग्नेये क्रतौ प्रातरनुवाके द्रष्टव्यानि।[९] प्रति ष्या सूनरी[१०] इत्यादिषु गायत्री छन्द:। उषो भद्रेभि:[११] इत्यादिष्वनुष्टुप्। इदं श्रेष्ठम्[१२] इत्यादिषु त्रिष्टुप्। प्रत्यु अदर्शि[१३] इत्यादिषु बृहती। उषस्तच्चित्रमा भर[१४] इत्यादिषूष्णिक्। एता उ त्या[१५] इत्यादिषु जगती। महे नो अद्य[१६] इत्यादिषु पङ्क्ति:। तान्येतान्युषस्य

---

(१) आश्व०श्रौ० ४.१३.७। (२) ऋ० १.७४.१। (३) ऋ० १.४५.१।
(४) ऋ० ५.१.१। (५) ऋ० ७.१६.१। (६) ऋ० १.७९.४।
(७) ऋ० ५.११.१। (८) ऋ० ५.६.१।
(९) 'उपप्रयन्त इत्याग्नेय: क्रतु:'—इति आश्व०श्रौ० ४ १३.७-८।
(१०) ऋ० ४.५२.१। (११) ऋ० १.४९.१।
(१२) ऋ० १.११३.१। (१३) ऋ० ७.८१.१।
(१४) ऋ० १.९२.१३। (१५) ऋ० १.९२.१।
(१६) ऋ० ५.६९.१।

प्रातरनुवाके सप्त च्छन्दांसि[१]। एषो उषा[२] इत्यादिषु गायत्री। यदद्य[३] इत्यादिष्वनुष्टुप्। आ मात्यग्निः[४] इत्यादिषु त्रिष्टुप्। इमा उ वाम्[५] इत्यादिषु बृहती। अश्विना वर्तिः[६] इत्यादिषूष्णिक्। अबोध्यग्निर्ज्म[७] इत्यादिषु जगती। प्रति प्रियतमम्[८] इत्यादिषु पङ्क्तिः। तान्येतान्यश्विने प्रातरनुवाके सप्त च्छन्दांसि[९]॥ तैरेतैः सप्तभिः सप्तभिः प्रत्येकं छन्दोभिर्देवानामागमनं द्रष्टव्यम्॥

एतद्वेदनं प्रशंसति—

आऽस्य देवाः प्रातर्यावाणो हवं गच्छन्ति य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है **प्रातर्यावाणः देवाः** प्रातःकाल आने वाले देवता **अस्य हवम्** उस (जानने वाले) के यज्ञ को **गच्छन्ति** प्राप्त करते हैं।

सा० भा०—हूयतेऽत्रेति हवो यज्ञोऽस्य वेदितुर्हवमुक्ता देवाः प्राप्नुवन्ति॥

प्रैषमन्त्रे 'देवेभ्योऽनुब्रूहीति' यदुक्तं तदुपपादयितुं प्रातरनुवाकस्य देवसंबन्धं विशदयति—

प्रजापतौ वै स्वयं होतरि प्रातरनुवाकमनुवक्ष्यत्युभये देवासुरा यज्ञमुपावसन्नस्मभ्यमनुवक्ष्यत्यस्मभ्यमिति स वै देवेभ्य एवान्वब्रवीत् ।।४।।

हिन्दी—(प्रातरनुवाक के देवताओं के सम्बन्ध का विस्तार कर रहे हैं—) **प्राजापतौ वै स्वयं होतरि प्रातरनुवाकम् अनुवक्ष्यति** प्रजापति के स्वयं होता होकर प्रातरनुवाक के अनुवाचन के लिए उद्यत होने पर **देवासुरा उभये** देवता और असुर दोनों **यज्ञम् उपावसन्** यज्ञ के समीप आ गये और **'अस्मभ्यम् अनुवक्ष्यति अस्मभ्यम्** हमारे लिए कहेगे, हमारे लिए कहेंगे—**इति** इस प्रकार (वे कहने लगे)। तब **सः वै देवेभ्यः एव अन्वब्रवीत्** उस (प्रजापति) ने देवताओं के लिए (प्रातरनुवाक का) अनुवाचन किया।

सा० भा०—पुरा कदाचित् कस्मिंश्चिद् यज्ञे प्रजापतिः स्वयं होता भूत्वा प्रातरनुवाकमनुवक्तुमुद्यत स्तस्मिन्ननुवक्ष्यति देवाश्चासुराश्चास्मभ्यमस्मदर्थमेवानुवक्ष्यतीति प्रत्येकमभिप्रेत्य तं यज्ञमुपेत्य तत्राऽऽसन्निति। अस्मभ्यमिति वीप्सा वर्गद्वयस्य प्रत्येकमन्वयार्थम्।

---

(१) अथौषस्यः। प्रति इत्युषस्यः क्रतुः—इति आश्व०श्रौ० ४ १४.१-२।
(२) ऋ० ७.७४.१।
(३) ऋ० ५.७३.१।
(४) ऋ० ५.७६.१।
(५) ऋ० ७.७४.१।
(६) ऋ० १.९२.१६।
(७) ऋ० १.१५७.१।
(८) ऋ० ५.७५.१।
(९) 'अथाश्विनः। एषो उषाः प्रति प्रियतममिति पाङ्क्तम्। इत्येतेषां छन्दसां पृथक् सूक्तानि प्रातरनुवाकः'—इति आश्व०श्रौ० ४.१५.१-२।

तदानीं प्रजापतिरसुरानुपेक्ष्य देवार्थमेवान्वब्रवीत्। ततः प्रातरनुवाकस्य पूर्वोक्तैरग्न्यादिभिर्देव-संबन्धः।।

प्रातरनुवाकस्य देवोत्कर्षहेतुत्वं तदभावस्यासुरपराभवहेतुत्वं च दर्शयति—

ततो वै देवा अभवन् पराऽसुराः ।।५।।

हिन्दी—(अब देवताओं उत्कर्षहेतुता और असुरों की पराभवहेतुता को दिखला रहे हैं—) **ततः** उस (देवताओं के लिए प्रातरनुवाक अनुवाचन) के बाद **देवाः** देवताओं ने **अभवन्** उत्कर्ष को प्राप्त किया और **असुराः परा** असुरों ने पराभव को (प्राप्त किया)।

सा० भा०—अभवन् भूतिमुत्कर्षं प्राप्ताः। असुरास्तु पराभवन्नपकर्षं प्राप्ताः।।

वेदनं प्रशंसति—

भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद।।६।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **आत्मना भवति** स्वयं उत्कर्ष को प्राप्त करता है। **अस्य द्विषन्** इस (जानने वाले) से द्वेष करने वाले **पाप्मा भ्रातृव्यः** पापी शत्रु **परा** पराभव को (प्राप्त करते हैं)।

सा० भा०—आत्मना भवति स्वयमुत्कृष्टो भवति। तदीयस्तु भ्रातृव्यः पराभवति।।

प्रातरनुवाकशब्दस्य निर्वचनं दर्शयति—

(प्रातरनुवाकशब्दनिर्वचनम्)

प्रातर्वै स तं देवेभ्योऽन्वब्रवीद् यत्प्रातरन्वब्रवीत् तत्प्रातरनुवाकस्य प्रातरनुवाकत्वम्।।७।।

हिन्दी—(प्रातरनुवाक शब्द का निर्वचन कर रहे हैं—) **सः** उस (प्रजापति) ने **देवेभ्यः** देवताओं के लिए **प्रातः** प्रातःकाल **तम्** उस (अनुवाक = ऋक्समूह) का **अन्वब्रवीत्** क्रम से अनुवाचन किया। **तत्** वही **प्रातरनुवाकस्य प्रातरनुवाकत्वम्** प्रातरनुवाक का प्रातरनुवाक होना है।

सा० भा०—प्रातःकाल एव स प्रजापतिस्तमनुवाकमृक्समूहं देवार्थमनुक्रमेणाब्रवीत्। यस्मादेवं तस्मात् प्रातरनुवाक इति नाम संपन्नम्।।

तस्य प्रातरनुवाकस्य कालविशेषं विधत्ते—

(प्रातरनुवाकस्य कालविशेषः)

महति रात्र्या अनूच्यः, सर्वस्यै वाचः सर्वस्य ब्रह्मणः परिगृहीत्यै, यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते, तस्य वाचं प्रोदितामनुप्रवदन्ति तस्मान् महति रात्र्या अनूच्यः ।।८।।

हिन्दी—(प्रातरनुवाक के कालविशेष का विधान कर रहे हैं—) **रात्र्याः** (अग्नीषोमीय पशु के अनुष्ठान करने वाले औपवसथ्य नामक दिन की) रात्रि के **महति** अधिक भाग के (शेष रह जाने) पर **सर्वस्यै वाचः** सम्पूर्ण वाणी और **सर्वस्य ब्रह्मणः** सम्पूर्ण वेद की **परिगृहीत्यै** प्राप्ति के लिए **अनूच्यः** (प्रातरनुवाक नामक अनुवाक का) अनुवाचन करना चाहिए। **यः वै भवति** जो (वेदादि का ज्ञाता) होता है और **यः वै श्रेष्ठताम् अश्नुते** जो (इस लोक में) श्रेष्ठता को प्राप्त करता है, **तस्य वाचम्** उसकी कही गयी वाणी को (पहले कहा जाता है), तथा **प्रोदिताम्** (अन्य भृत्यादि द्वारा) कही गयी (वाणी) को **अनुप्रपदन्ति** बाद में कहते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **महति रात्र्याः** रात्रि के अधिक भाग के अवशिष्ट होने पर **अनूच्यः** (प्रातरनुवाक के मन्त्रों का) अनुवाचन करना चाहिए।

सा० भा०—रात्र्याः पूर्वस्यौपवसथ्याख्यस्य[१] दिनस्याग्नीषेमीयपश्वनुष्ठानयुक्तस्य या रात्रिस्तस्या रात्रेः संबन्धिनि शेषे महत्यवतिष्ठमाने सति प्रातरनुवाकाख्य ऋक्समूहो वक्तव्यः। एतदुक्तं भवति—यस्मिन् काले प्रारब्धः प्रातरनुवाकस्तमसोपघातात् पुरैव समापयितुं शक्यः स्यात् तदा प्रारब्धव्य इति। तथाविधमनुवचनं लौकिक्याः सर्वस्या वाचो ब्रह्मणो वेदस्य सर्वस्यापि परिग्रहाय भवति। यो वा इत्यादिना लौकिको न्याय उच्यते। लोके यः पुमान् भवत्यैश्वर्यं प्राप्नोति, यश्च विद्यावृत्तादिभिःश्रेष्ठत्वं प्राप्नोति, तस्योभयविधस्य पुरुषस्य संबन्धिनी वाच प्रोदितां प्रथमत उक्तामनु पश्चात् सर्वे भृत्याः शिष्याश्च प्रवदन्ति। तस्मात्तत्रापि राजाचार्यादिवाक्स्थानीयः प्रातरनुवाकः स्वेतरवैदिकलौकिकसर्ववाक्प्रवृत्तेः पूर्वं रात्र्याः संबन्धिनि महत्यवशिष्टे काले पाश्चात्ययामेऽनुवक्तव्यः। यद्यप्ययमुषःकालो न तु प्रातःकालस्तथाऽपि प्रातःकालसमीपवर्तित्वात् प्रातरनुवाकत्वं द्रष्टव्यम्।।

पाश्चात्ययामेऽपि कंचिद्विशेषं विधत्ते—

पुरा वाचः प्रवदितोरनूच्यः ।।९।।

हिन्दी—**वाचः प्रवदितः पुरा** (रात्रि में पक्षी इत्यादि के) बोलने से पहले **अनूच्यः** (प्रातरनुवाक के मन्त्रों के) पाठ करना चाहिए।

सा० भा०—रात्रौ निद्रां कुर्वन्तः प्राणिन उषःकाले प्रबुध्य वाचं प्रवदन्ति; तस्मात्

---

(१) उपसदामन्तिमं सुत्याहाच्च पूर्वमग्नीषोमीयाहरेवौपवसथ्यमुच्यते। तथाहि वक्ष्यत्युपरिष्टादिहैव—'अथौपवसथ्य महा'—इत्यादि ७.५.६। 'अग्नीषोमीयसम्बन्धिदिनमुपवसथशब्देनोच्यते। उपवसथसम्बन्धिकम् औपवसथ्यम्—इति कात्या०श्रौ० ८.३.६ टी० या० दे०। 'तेऽस्य विश्वे देवा गृहानागच्छन्ति, तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति, स उपवसथः'—इति (१.१.१.७) 'उपवसथेऽग्नीषोमीयं पशुमालभते'—इति (१.४.४.११), 'उपवसथे नाश्नीयात्'—इति च (९.५.१.६) शत०ब्रा०। तैत्तिरीयेऽप्येवमेव (ब्रा० १.५.९.७)। औपवसथ्यकर्माणि च कात्यायनीयाष्टमाध्यायादितोऽवगन्तव्यानि।

प्रवदितोः प्रवचनात् पूर्वमेवायमनुवक्तव्यः॥

विपक्षे बाधकमाह—

यद्वाचि प्रोदितायामनुब्रूयाद् अन्यस्यैवैनमुदितानुवादिनं कुर्यात् ॥१०॥

हिन्दी—यत् प्रोदितायां वाचि जो (निद्रा त्याग कर जागते हुए व्यक्ति की) वाणी बोलने के बाद **अनुब्रूयात्** अनुवाचन किया जाता है तो **अन्यस्य एव** दूसरे की ही **उदिताम्** कही गयी (वाणी) का **अनुवादिनं कुर्यात्** अनुवाद करता है।

सा०भा०—निद्रां परित्यज्य प्रबुद्धैः पुरुषैर्वाचि प्रोदितायां यदि पश्चाद् ब्रूयात् तदानीमेतं प्रातरनुवाकमुदितानुवादिनं कुर्यात्। अन्यैरुदिता या वाक् तदनुवादित्वे सति भृत्यादिशिष्यादिरूपत्वं स्यान्न तु राजाचार्यादिरूपत्वम्॥

स्वपक्षं निगमयति—

तस्मान्महति रात्र्या अनूच्यः ॥११॥

हिन्दी— तस्मात् इति कारण **महति रात्र्याः** रात्रि के अधिक भाग के (अवशिष्ट) रहने पर ही **अनुब्रूयात्** (प्रातरनुवाक के मन्त्रों का) अनुवाचन करना चाहिए।

अपरं विशेषं विधत्ते—

पुरा शकुनिवादादनुब्रूयात् ॥१२॥

हिन्दी— (प्रातरनुवाक के अन्य विशेष को कह रहे हैं—) **शकुनिवादात् पुरा** पक्षियों को बोलने से पहले **अनुब्रूयात्** (प्रातरनुवाक के मन्त्रों का) अनुवाचन करना चाहिए।

सा०भा०—शकुनयः पक्षिणा उषःकाले प्रबुध्य वदन्ति ध्वनिं कुर्वन्ति तस्माद् वादात् पूर्वमेवानुब्रूयात्॥[1]

तदेतदुपपादयति—

निर्ऋतेर्वा एतन्मुखं यद्वयांसि यच्छकुनयस्तद्यत्पुरा शकुनिवादादनुब्रूयान्मायज्ञियां वाचं प्रोदितामनु प्रवदिष्मेति, तस्मान्महति रात्र्या अनूच्यः॥१३॥

हिन्दी— (उपर्युक्त कथन का उपपादन कर रहे हैं—) **यद्वयांसि यत् शकुनयः** जो पक्षी हैं और जो पक्षि-विशेष है **एतत् निर्ऋतेः मुखम्** यह (मृत्यु के राक्षसरूप देवता) निर्ऋति का मुख है। **तद् यत् शकुनिवादात् पुरा** तो जो पक्षियों के बोलने के पहले **अनुब्रूयात्** (प्रातरनुवाक के मन्त्रों का) अनुवाचन करता है, तो **'अयज्ञियां प्रोदितां**

(१) 'अथैतस्या रात्रेर्विवासकाले प्राग् वयसां प्रवादात् प्रातरनुवाकायामन्त्रितः'—इत्यादि आश्व०श्रौ० ४.१३.१-६।

वाचम् अनु यज्ञ से असम्बद्ध (पक्षियों की) वाणी से बाद **मा प्रवदिष्म** (प्रातरनुवाक के मन्त्रों का) हम अनुवाचन न करे—**इति** यही (पक्षियों के बोलने से पहले प्रातरनुवाक के मन्त्रों के अनुवाचन का अभिप्राय है)। **तस्मात्** इसी कारण **महति रात्र्याः** अधिक रात्रि के (अवशिष्ट) रहने पर **अनूच्यः** (प्रातरनुवाक के मन्त्रों का) अनुवाचन करना चाहिए।

सा० भा०—निर्ऋतिः काचिद् राक्षसरूपा मृत्युदेवता।[१] यानि वयांसि ये च शकुनय एतत्सर्वं मृत्युदेवताया मुखम्। अत्र वयःशब्देन पक्षिसामान्यमुच्यते शकुनिशब्देन पक्षिविशेषः।[२] येषां संचारादध्वनीष्टानिष्टसूचकतया मनुष्या व्यवहरन्ति ते शकुनयः। यस्मादुभयं मृत्युमुखं यद्यदि तदुभयध्वनेः पुराऽनुब्रूयात् तदानीं प्रोदितां प्रथमत उक्तामयज्ञियां यज्ञसंबन्धरहितां वाचमनु मा प्रवदिष्म प्रातरनुवाकं पश्चादुक्तवन्तो मा भवामेति होतुरभिप्रायो भवति। अतो महति रात्रिशेषेऽवस्थिते सति शकुनिवादशङ्कानुदयात् तदानीमेवानूच्यः॥

पक्षान्तरं विधत्ते—

(प्रातरनुवाकविषये पक्षान्तरविधानम्)

अथो खलु यदैवाध्वर्युरुपाकुर्यादथानुब्रूयात् ॥१४॥

हिन्दी— (इस विषय में अन्य पक्ष को कर रहे हैं—) **अथो खलु** अथवा **यदा एव अध्वर्युः उपाकुर्यात्** जब अध्वर्यु उपाकरण (प्रैषमन्त्र का पाठ) करे **अथ अनुब्रूयात्** तब अनुवाचन करना चाहिए।

सा० भा०—अध्वर्योरुपाकरणं प्रैषमन्त्रपाठः[३]। स एव प्रातरनुवाकस्य कालः॥

तदेतदुपपादयति—

यदा वा अध्वर्युरुपाकरोति वाचैवोपाकरोति वाचा होताऽन्वाह वाग्घि ब्रह्म तत्र स काम उपाप्तो यो वाचि च ब्रह्मणि च ॥१५॥

हिन्दी—(उपर्युक्त कथन का उपपादन कर रहे हैं—) **यदा वै अध्वर्युः उपाकरोति** जब अध्वर्यु उपाकरण ('प्रैष मन्त्र का पाठ) करता है, **वाचा एव उपाकरोति** तब (वैदिक) वाणी से ही उपाकरण करता है और **वाचा होता अन्वाह** (वैदिक) वाणी से ही होता अनुवाचन करता है। **वाग् हि ब्रह्म** वाणी ही ब्रह्म है। **तत्र** वहाँ **यः कामः** जो कामना **वाचि च ब्रह्मणि च** वाणी में और ब्रह्म में (होती है) **सः उपात्तः** वह प्राप्त होती है।

---

(१) द्र० मार्क०पु० ४७,३७।

(२) 'भूमौ चरन्तः कुक्कुटायः शकुनयः, नभस्येव चरन्तो गृध्रादयः पक्षिणो वयांसि' इति भट्टभास्करः।

(३) प्राग् वाचं प्रवदितोः प्रातरनुवाकोपाकरणं देवेभ्यः प्रातर्यावभ्योऽनुब्रूहीति समिधमादधत्'— इति कात्या०श्रौ० ९.१.१०।

सा० भा०—अध्वर्योरुपाकरणं प्रैषमन्त्ररूपा वैदिकवाचैव सम्पद्यते। होतुरनुवचनमपि वैदिकवाचा भवति। यस्मादुभयविधा वाग्ब्रह्म वेदरूपं तस्मादुपकरणानन्तरभाविनाऽनुवचनेन लौकिकवाचि वैदिकवाचि यत्फलं भाविनं तत्प्राप्नोति। अत्र कालविशेषः शाखान्तरेऽप्याम्नातः—'पुरा वाचः प्रवदितोः प्रातरनुवाकमुपाकरोति यावत्येव वाक् तामवरुन्धे'[१] इति। उपाकरणं च **आपस्तम्बेन** स्पष्टीकृतम्—'पुरा वाचः पुरा वा वयोभ्यः प्रवदितो प्रातरनुवाकमुपाकरोति प्रातर्यावभ्यो देवेभ्योऽनुब्रूहि ब्रह्मन् वाचं यच्छ प्रतिप्रस्थातः सवनीयान्निर्वप सुब्रह्मण्य सुब्रह्मण्यामाह्वयेति संप्रेष्यति'[२] इति।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितयाध्याये (सप्तमाध्याये) पञ्चमः खण्डः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—अथ प्रातरनुवाके प्रथमामृचं विधातुमाख्यायिकामाह—

(प्रातरनुवाके प्रथमर्चो विधातुमाख्यायिका)

प्रजापतौ वै स्वयं होतरि प्रातरनुवाकमनुवक्ष्यति सर्वा देवता आशंसन्त मामभि प्रतिपत्स्यति मामभीति स प्रजापतिरैक्षत यद्येकां देवतामादिष्टामभि प्रतिपत्स्यामीतरामेकेन देवता उपाप्ता भविष्यन्तीति स एतामृचमपश्यदापो रेवतीरित्यापो वै सर्वा देवता, रेवत्यः स एतयर्चा प्रातरनुवाकं प्रत्यपद्यत ताः सर्वा देवताः प्रामोदन्त मामभि प्रत्यपादि मामभीति ।।१।।

हिन्दी— (प्रातरनुवाक में प्रथमा ऋचा के विधान करने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **प्रजापते वै स्वयं होतरि** प्रजापति के स्वयं होता होकर **प्रातरनुवाकं अनुवक्ष्यति** प्रातरनुवाक का अनुवाचन करने के लिए उद्यत होने पर **सर्वाः देवता आशंसन्त** सभी देवतओं ने अपेक्षा किया कि **मामभि प्रतिपत्स्यति मामभि** मुझको अभिलाक्षित करके प्रारम्भ करेगे, मुझको अभिलक्षित करके प्रारम्भ करेगे। **सः प्रजापतिः ऐक्षत** तब प्रजापति ने सोचा कि **यदि एकाम् आदिष्टां देवताम् अभि** यदि (मन्त्र से अभिलक्षित) एक देवता को अभिलक्षित करके **प्रतिपत्स्यामि** प्रारम्भ करूँगा तो **इतराः** अन्य (देवता)

---

(१) तै०सं० ६.४.३.१। (२) आश्व०श्रौ० १२०३०१४,१५।

कुपित हो जाएँगे। अतः **एकेन देवताः उपाप्ताः भविष्यन्ति** एक (मन्त्र) से सभी देवता प्राप्त हो जाएँगे—**इति** ऐसा (विचार करके) **सः** उस (प्रजापति) ने (सभी देवताओं की सिद्धि के लिए) 'आपो रेवतीः' **एतम् ऋचम् अपश्यत्** इस ऋचा का दर्शन किया क्योंकि **आपः वै सर्वाः देवताः** जल ही सभी देवरूप है। **सः** उस (प्रजापति) ने **एतया ऋचा** इसी ऋचा से **प्रातरनुवाकं प्रतिपद्यत** प्रातरनुवाक का प्रतिपादन किया। उससे **मामभि प्रत्यपादि मामभि** मुझ को अभिलक्षित करके (प्रजापति ने) प्रतिपादन किया है, मुझको अभिलक्षित करके प्रतिपादन किया है—**इति ताः सर्वाः देवताः प्रमोदन्ते** यह (सोच कर) सभी देवता प्रसन्न हो गये।

सा० भा०—प्रजापतौ वै स्वयमेव होतृत्वं प्राप्य कस्मिंश्चिद्यज्ञे प्रातरनुवाकमनुवक्तुमुद्युक्ते सति सर्वा अपि देवताः प्रत्येकं मामभिलक्ष्य प्रतिपत्स्यति प्रारम्भं करिष्यतीत्येवमाशंसन्तापेक्षां कृतवन्तः। मामभीति वीप्सा सर्वसंग्रहार्था। मद्देवत्ययैवर्चा प्रारम्भ इति सर्वासां देवतानां प्रत्येकमाशामवलोक्य स प्रजापतिः स्वमनसि विचारितवान्। स एव विचारो यदीत्यादिना स्पष्टीक्रियते। आदिष्टां केनचिन्मन्त्रेण प्रतिपादितामेकां देवतामभिलक्ष्य यद्यहं प्रतिपत्स्यामि प्रारम्भं करिष्यामि तदानीमितरा देवता कुप्येयुरिति शेषः। तस्मात् कारणान्मे मम केन प्रकारेण देवताः सर्वा अप्युपाप्ता उपक्रमे प्राप्ता भविष्यन्ति। एवं विचार्य स प्रजापतिः सर्वदेवतासिद्ध्यर्थम् 'आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः'[१] इत्येतामृचमपश्यत्। तत्राप्शब्देन रेवतीशब्देन च सर्वा देवता उक्ता भवन्ति। आप्नुवन्तीत्यापः। रायो धनानि यासां सन्तीति रेवत्यः।[२] यज्ञभूमिप्राप्तिर्धनवत्त्वं च सर्वासु देवतासु विद्यते तस्मात् सर्वदेवताप्रतिपादिकेयमृक्। स प्रजापती रेवत्यैवोपक्रान्तवान्। तेन सर्वा देवताः प्रत्येकं मामभिलक्ष्य प्रारम्भः कृत इति प्रहृष्टवत्यः। वीप्सा पूर्ववत्।।

अथार्थवादेन विधिमुन्नयति—

(अर्थवादेन विधेरुन्नयनम्)

सर्वा हास्मिन् देवताः प्रातरनुवाकमनुब्रुवति प्रमोदन्ते ।।२।।

हिन्दी—(अब अर्थवाद द्वारा विधि का उन्नयन कर रहे हैं—) **अस्मिन् प्रातरनुवाकम् अनुब्रुवति** (इस ऋचा से) इस प्रातरनुवाक का प्रारम्भ करने पर **सर्वाः देवताः ह** सभी देवता ही **प्रमोदन्ते** प्रसन्न होते हैं।

सा० भा०—स एतयर्चा प्रातरनुवाकं प्रतिपद्यत इति शेषः। यः पुमानापो रेवतीरित्येतया प्रातरनुवाकं प्रारभतेऽस्मिन् प्रारभ्यानुब्रुवति सर्वा देवताः प्रहृष्यन्ति तस्मादनयैवर्चा प्रारभेतेति विधिरुन्नेयः।।

---

(१) ऋ० १०.३०.१२। (२) आश्व०श्रौ० ४.१३.६,७।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वाभिर्हास्य देवताभिः प्रातरनुवाकः प्रतिपन्नो भवति य एवं वेद।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है **अस्य ह प्रातरनुवाकः** इस ज्ञा प्रातरनुवाक **सर्वाभिः देवताभिः** सभी देवताओं से **प्रतिपन्नः भवति** सम्पन्न होता है।

सा० भा०—तदेतद् आश्वलायनेनाभिहितम्—'अन्तरेण युगधुरावुपविश्य प्रेषितः प्रातरनुवाकमनुब्रूयान् मन्द्रेणाऽऽपो रेवतीः क्षयथा हि वस्व उप प्रयन्त इति सूक्ते'[१] इति।।

आपो रेवतीरित्येतामृचमाख्यायिकया प्रशंसति—

(आख्यायिकाद्वारा तदृक्प्रशंसनम्)

ते देवा अबिभयुरादातारो वै न इमं प्रातर्यज्ञमसुरा यथौयजीयांसो बलीयांस एवमिति तानब्रवीदिन्द्रो मा बिभीत त्रिषमृद्धमेभ्योऽहं प्रातर्वज्रं प्रहर्ताऽस्मीत्येतां वाव तदृचमब्रवीद् वज्रस्तेन यदपोनप्त्रीया वज्रस्तेन यत्त्रिष्टुब्वज्रस्तेन यद्वाक् तमेभ्यः प्राहरत् तेनैनानहंस्ततो वै देवा अभवत् पराऽसुराः ।।४।।

हिन्दी—('आपो रेवतीः' इस ऋचा की आख्यायिका द्वारा प्रशंसा कर रहे हैं—) (किसी समय प्रजापति के प्रातनुवाक का अनुवाचन करने पर उनके समीप आये हुए) **ते देवाः** वे देवता **अविभयुः** भयभीत हो गये कि **यथा ओजीयांसः बलीयांसः** जिस प्रकार (लोक में) ओजसम्पन्न और बलवान् शत्रु (धन का अपहरण कर लेते हैं) **एवम्** इसी प्रकार **असुराः** असुर लोग **नः इमं प्रातर्यज्ञम्** हमारे इस प्रातःयज्ञ (प्रातरनुवाक) को **आदातारः वै** अपहरण कर लेने वाले होगे अर्थात् अपहृत कर लेगे। **तान् इन्द्रः अब्रवीत्** उन (देवताओं) से इन्द्र ने कहा कि **मा विभीत** तुम लोग भयभीत मत होवो। **एभ्यः** इन (असुरों) के लिए **प्रातः** प्रातः काल **त्रिषमृद्धम् वज्रम्** तीन प्रकार से समृद्ध वज्र को **अहं प्रहर्त्ता अस्मि** प्रहार करूँगा। (तब उन्होंने) **एतां तद् ऋचम् अब्रवीत्** इस उस (आपो रेवती ऋचा) को कहा। यह ऋचा **यद् अपोनप्त्रीया** जो अपोनप्तृ (नामक) देवता वाली है **तेन वज्रः** इस कारण वज्र है, **यत् त्रिष्टुप्** जो त्रिष्टुप् छन्द वाली है **तेन वज्रः** इस कारण भी यह वज्र है और **यद् वाक्** जो वाणी रूप है **तेन वज्रः** इस कारण भी यह वज्र है। **तम्** उस (तीन प्रकार से समृद्ध ऋग्रूप वज्र) को **एभ्यः** इन (असुरों) के लिए **प्रहरत** (इन्द्र ने) प्रहार किया और **तेन एनान् अहन्** उस (ऋग्रूप वज्र) से इन (असुरों) को मार डाला। **ततो वै** तभी से **देवाः अभवन्** देवता लोग (विजयी) हुए और

---

(१) ऋक्सर्वा० १०.३०।

असुराः परा असुर लोग पराभूत हो गये।

सा० भा०—पुरा कदाचित् प्रजापतौ प्रातरनुवाकमनुब्रुवति सति तत्समीप आगता देवा अबिभयुर्भीतिं प्राप्ताः। केनाभिप्रायेणेति, तदुच्यते—यथा लोके केचिच्छत्रव ओजसोऽतिशयेनौजसा सप्तधातुना युक्तत्वात् पुष्टशरीरा बलीयांसो महता सैन्येन युक्तत्वादतिशयेन प्राबल्यादागत्य धनमपहरन्ति, एवमसुरा नोऽस्मदीयमिमं प्रातर्यज्ञं प्रातरनुवाकरूपमादातारो वा आदास्यन्त्येवापहरिष्यन्त्येवेति। तदानीमिन्द्रो मा बिभीत भीतिं मा कुरुतेति तान् देवानब्रवीत्। कथं भीत्या अभाव इति, तदुच्यते—अहमिन्द्र एवैभ्योऽसुरेभ्योऽसुरविनाशार्थं प्रातःकाले 'त्रिषमृद्धं' त्रिभिः प्रकारैः समृद्धं प्रबलं वज्रं 'प्रहर्ताऽस्मि' तेषामुपरि प्रक्षेप्स्यामि। ततो हे देवा अस्माकं भीतिर्मा भूत्। इत्युक्त्वा तत्तदानीमेतां वावाऽऽपो रेवतीरिति याऽस्ति तामृचमेवाब्रवीत्। तस्या ऋचस्त्रिप्रकारवज्रत्वं कथमिति, तदुच्यते-यद् यस्मात्कारणादपोनप्त्रीया सा ऋगपोनप्तुदेवताका। तथा च **अनुक्रमणिकाकारः**—यस्मिन् सूक्ते साऽस्ति तस्य सूक्तस्य देवतां ब्रूते 'प्रदेवत्रा पञ्चोना कवष ऐलूष आपमपोनप्त्रीयं वा' इति। तेनापोनप्तृदेवताकत्वेन कारणेनायं मन्त्रों वज्रः संपन्नः। सोऽयमेकः प्रकारः। अपोनप्ता देवोऽतिक्रूरस्तत्तदीयाया ऋचे वज्रत्वं युक्तम्। यस्मादियं त्रिष्टुप्छन्दस्का तेनापि प्रकारेण वज्रत्वम्। 'इन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुप्' इति श्रुत्यन्तरे वीर्यरूपत्वश्रवणाद् वज्रत्वम्। सोऽयं द्वितीयः प्रकारः। यस्मादियं वाग्रूपा तेनापि प्रकारेण वज्रत्वम्। 'स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्तीत्यत्र'[१] शब्दरूपाया वाचो वज्रत्वश्रवणात्। सोऽयं तृतीयः प्रकारः। तमेवं त्रिषमृद्धमृग्रूपं वज्रमेभ्योऽसुरेभ्यः प्राहरत् तेनैनानसुरानहनद्धतवान्। तत एवासुरवधाद्देवा विजयिनोऽभवन्नसुराश्च पराभवन्।

वेदनं प्रशंसति—

भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद।।५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **आत्मना भवति** स्वयं प्रकृष्ट होता है और **द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यः** द्वेष करने वाला

(१) 'स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्'—इति पा०शि० १०४। तदाहृतश्च पा०महाभा० १.१.१। स च वाग्वज्रमन्त्रः 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व'—इति तैत्तिरीसंहितायामसकृत् श्रुतः (२.४.१२.१;५.२.१)। 'तत्र मन्त्रगतस्वरापराधो निमित्तम्। तथाहि—इन्द्रस्य शातयितेन्द्रशत्रुरिति विवक्षायां तत्पुरुषसमासस्यान्तोदात्तत्वेन भवितव्यम्; आद्युदात्तस्त्वयं शब्दः प्रयुक्तः, स च बहुव्रीहितां द्योतयति। बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदमिति पूर्वपदाद्युदात्तत्वविधानात्। सति बहुव्रीहाविन्द्रः शातयिता यस्येत्यर्थो भवति। सोऽयं मन्त्रगतः स्वरापराधः। अपराधाभावे सति उन्नतया ज्वालया यजमानस्य कार्यसिद्धिः सूचिता भवति। अपराधे त्ववनतया ज्वालया यजमानस्य कार्यसिद्ध्यभावः सूच्यते'—इति सा०भा०।

पापी शत्रु **परा भवति** परभूत हो जाता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम् ।।

अस्या ऋचस्त्रिरावृत्ति विधत्ते—

(तस्या ऋचः त्रिरावृत्तिविधानम्)

तदाहुः स वै होता स्याद् य एतस्यामृचि सर्वाणि च्छन्दांसि प्रजनयेदित्येषा वाव त्रिरनूक्ता सर्वाणि च्छन्दांसि भवत्येषा छन्दसां प्रजातिः ।।६।।

हिन्दी—(इस ऋचा की तीन बार आवृति का विधान कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस (ऋचा) के विषय में (ब्रह्मवादी) कहते है कि **यः** जो (होता) **एतस्याम् ऋचि** इस ऋचा में **सर्वाणि छन्दांसि प्रजनयेत्** सभी छन्दों का निष्पादन कर सके **सः वै होता स्यात्** वह ही प्रमुख होता (नामक ऋत्विक्) होता है। **एषा** यह **त्रिः अनूक्ता** तीन बार अनुवाचन की गयी (ऋचा) **सर्वाणि छन्दांसि भवति** सभी छन्दों वाली हो जाती है क्योंकि **एषा छन्दसां प्रजातिः** यह (ऋचा) छन्दों का उत्पत्ति-स्थान है।

सा० भा०—तत्तस्यामापो रेवतीरित्यृचि ब्रह्मवादिना एवमाहुः—यः पुमानेतस्यामृचि सर्वाणि च्छन्दांस्युत्पादयेत् स एव मुख्यो होता स्यान्न त्वन्य इति। एतद् ब्रह्मवादिनां वचनं श्रुत्वा कश्चिदभिज्ञः सर्वच्छन्दसामुत्पादनप्रकारं ब्रूते-येयमृगनूक्ता सेयमेव त्रिः पठिता सती सर्वच्छन्दसां स्वरूपं भवति। इयं त्रिष्टुब्रूपत्वाच्चतुश्चत्वारिंशदक्षरा।[१] तस्यां त्रिरावृत्तायां द्वात्रिंशदधिकशताक्षराणि संपद्यन्ते। तेषु जगत्यादीन्यधिकाक्षराणि गायत्र्यादीनि न्यूनाक्षराणि सर्वच्छन्दांसि संपादयितुं शक्यते। तस्मादेषा सर्वेषां छन्दसां प्रजातिरूत्पत्तिस्थानम्। यद्येषा त्रिरावृत्तिः सूत्रकारेण नोक्ता तर्हि सर्वच्छन्दोन्तर्भावनेयमृचः प्रशंसाऽस्तु।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तमाध्याये) षष्ठः खण्डः ।।६।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्ता ।।

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—अथ प्रातरनुवाकगतानामृचां काम्या विशेषा वक्तव्याः। तत्राऽऽयुरर्थं शतसंख्यां विधत्ते—

---

(१) सैषा 'आपो रेवतीः वयो धात्—इति ऋ० १०.३०.१२।

(कामनाविशेषेण प्रातरनुवाकस्यर्ग्विधानम्)

(तत्रायुष्कामस्य संख्यानिर्धारणम्)

शतमनूच्यमायुष्कामस्य, शतायुर्वै पुरुषः, शतवीर्यः शतेन्द्रिय आयुष्येवेनं तद् वीर्य इन्द्रिये दधाति ।।१।।

हिन्दी—(अब प्रातरनुवाकगत काम्य ऋचाविशेषों को कह रहे हैं। उनमें दीर्घायु की प्राप्ति के लिए शत संख्या का विधान कर रहे हैं—) **आयुष्कामस्य** दीर्घायु-प्राप्ति की कामना करने वाले (यजमान) के लिए **शतम् अन्यूचम्** सौ ऋचाओं का अनुवाचन करना चाहिए क्योंकि **पुरुषः** पुरुष **शतायुर्वै** सौ वर्षों की आयु वाला **शतेन्द्रियः** (पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों में प्रत्येक में दश-दश नाड़ी होने के कारण) सौ इन्द्रियों वाला और **शतवीर्यः** (प्रत्येक इन्द्रिय के अलग-अलग कार्य होने के कारण) सौ वीर्य वाला है। **तत्** इस (सौ ऋचाओं के अनुवाचन) से **एनम्** इस (यजमान) को **आयुषि वीर्ये इन्द्रिये** आयु, बल और इन्द्रिय में **दधाति** स्थापित करता है।

सा० भा०—अपमृत्युरहितमायुर्यः कामयते तस्यर्चा शतमनूच्यम्। ऋग्विशेषास्तु सूत्रान्तरे द्रष्टव्याः। शतसंख्याका वत्सरा आयुर्यस्य मनुष्यस्य सोऽयं शतायुः। धर्मसम्पादितस्यापमृत्योरभावे संवत्सरशतं वत्सरा जीवन्ति। दशसंख्याकानीन्द्रियाणि प्रत्येकं दशसु नाडीषु वर्तमानत्वात् तन्मिलित्वा शतेन्द्रियाणि भवन्ति। ततस्तद्व्यापाराणामपि शतत्वेन शतवीर्यत्वम्। तस्माच्छतानुवचनेन तत्संख्याक आयुषि वीर्य इन्द्रिये चैनं यजमानं स्थापयति ॥

अहीनरात्रादुत्तरक्रतुकामस्य संख्यान्तरं विधत्ते—

(क्रतुकामस्य संख्यानिर्धारणम्)

त्रीणि च शतानि षष्टिश्चानूच्यानि यज्ञकामस्य, त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहानि, तावान्संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिः प्रजापतिर्यज्ञः ।।२।।

हिन्दी—(यज्ञ की कामना वाले यजमान के लिए विधान कर रहे हैं—) **यज्ञकामस्य** यज्ञ की कामना वाले के लिए **त्रीणि च शतानि षष्टिः च** तीन सौ पाठ **अनूच्यानि** (ऋचाओं का) अनुवाचन करना चाहिए; क्योंकि **त्रीणि च वै शतानि षष्टिः च** तीन सौ साठ **संवत्सरस्य अहानि** संवत्सर के दिन होते हैं। **तावान् संवत्सरः** संवत्सर इतने ही (परिमाण वाला) होता है। **संवत्सरः प्रजापतिः** संवत्सर प्रजापति स्वरूप है और **प्रजापतिः यज्ञः** प्रजापति यज्ञस्वरूप है।

सा० भा०—षष्ट्युत्तरशतत्रयदिवसपरिमितो यः संवत्सरः कालात्मा स एव प्रजापतिः। संवत्सरादि कालविशेषणम्। प्रजापतिसृष्टत्वेन तदभेदोपचारः। तथा यज्ञस्यापि तेन

सृष्टत्वात् तद् रूपत्वम्। एवं सति षष्ट्युत्तरशतत्रयसंख्यायाः संवत्सरप्रजापतिद्वारा यज्ञ-सम्बन्धादुत्तरक्रतुप्राप्तिहेतुत्वं भवति।।

होतुर्वेदनं प्रशंसति—

उपैनं यज्ञो नमति यस्यैवं विद्वांस्त्रीणि च शतानि षष्टिं चान्वाह।।३।।

हिन्दी—(होता के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यस्य** जिस (यजमान) का **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **त्रीणि च शतानि षष्टिं च** तीन सौ साठ (ऋचाओं) का **अन्वाह** अनुवाचन करता है **एनम् उप** इस (यजमान) के प्रति **यज्ञः नमति** यज्ञ झुक जाता है।

अथ प्रजां पशूंश्च कामयमानस्य पूर्वसंख्याया द्विगुणां संख्यां विधत्ते—

(प्रजापशुकामस्य संख्यानिर्धारणम्)

सप्त च शतानि विंशतिश्चानूच्यानि प्रजापशुकामस्य, सप्त च वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहोरात्रास्तावान्संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिर्य प्रजायमानं विश्वं रूपमिदमनु प्रजायते, प्रजापतिमेव तत्प्रजायमानं प्रजया पशुभिरनु प्रजायते प्रजात्यै ।।४।।

हिन्दी—(अब प्रजा और पशुओं की कामना वाले यजमान के लिए उपर्युक्त संख्या के द्विगुणित संख्या का विधान कर रहे हैं–) **प्रजापशुकामस्य** प्रजा और पशुओं की कामना वाले (यजमान) के लिए **सप्त च शतानि विंशतिः च** सात सौ बीस **अनूच्यानि** (ऋचाओं का) अनुवाचन करना चाहिए; क्योंकि **सप्त च शतानि विंशतिः च** सात सौ बीस **संवत्सरस्य अहो रात्राः** संवत्सर के दिन और रात मिलाकर होते हैं। **तावान् संवत्सरः** संवत्सर इतने ही (परिमाण) वाला होता है। **संवत्सरः प्रजापतिः** संवत्सर प्रजपतिरूप है। **यः** जो (प्रजनन करने वाला पुरुष) **इदं प्रजायमानं विश्वं रूपम्** इस उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण रूप को **प्रजायते** उत्पन्न करता है **तत्** उस (प्रजनन करने वाले के रूप में) **प्रजायमानं प्रजापतिम्** उत्पन्न होते हुए प्रजापति को **प्रजया पशुभिः** प्रजा और पशु रूप से **प्रजायते** उत्पन्न करता है। **प्रजात्यै** (यह सात सै बीस संख्या प्रजा और पशुओं के) उत्पादन के लिए ही होती है।

सा० भा०—संवत्सरगतानामह्नां रात्रीणां च पृथग्गणनायां मिलित्वा विंशत्यधिक-सप्तशतसंख्या संवत्सरे संपद्यते। संवत्सरस्य च प्रजापतित्वमुक्तम्। एतावता विंशत्युत्तर-सप्तशतसंख्यायाः प्रजापतिसम्बन्धो दर्शितः यं प्रजायमानमित्यादिना काम्यमानानां प्रजानां पशूनां च प्रजापतिसम्बन्धः प्रदर्श्यते। लोके कस्मिंश्चिद् गृहे प्रजायमानं यं पुरुषमनु विश्वरूपमिदमोषधिवनस्पत्यादिस्थावरं भ्रातृभगिनिगोमहिष्यादिकं जङ्गमं च सर्वं प्रजायते

तत्तद्गृहे प्रजायमानं प्रजापतिमेवानु प्रजापशुरूपेण तज्जीवनार्थं सस्यादिनिष्पत्तिं गोमहिष्यादिसंपत्तिं च स धनिकः प्रभूतां करोति। तस्य पुत्रस्य भ्रातृभगिन्यादयोऽपि पुनर्जायन्ते। तत्र च स्थावरजङ्गमरूपाणां प्रजानां पालनहेतुत्वादयं जायमानःपुत्र एव च प्रजापतिः। अतः प्रजापतिद्वारा प्रजापशुसंबन्धोऽपि भवतीति। तस्मादियं संख्या यजमानस्य प्रजात्यै प्रजापशूत्पदनाय संपद्यते।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ।।५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **प्रजया पशुभिः** प्रजा और पशुओं द्वारा **प्रजायते** वृद्धि को प्राप्त करता है।

अथ दुर्ब्राह्मणत्वपरिहारकामस्य संख्यान्तररं विधत्ते—

(दुर्ब्राह्मणत्वपरिहारकामनया संख्यानिर्धारणम्)

अष्टौ शतान्यनूच्यान्यब्राह्मणोक्तस्य यो वा दुरुक्तोक्तः शमलगृहीतो यजेताष्टाक्षरा वै गायत्री गायत्र्या वै देवाः पाप्मानं शमलमपाघ्नत गायत्र्यैवास्य तत्पाप्मानं शमलमपहन्ति ।।६।।

हिन्दी—(दुर्ब्राह्मणत्व के परिहार की कामना वाले के लिए अन्य संख्या का विधान कर रहे हैं—) **अब्राह्मणोक्तस्य** (स्मृतियों में) प्रोक्त अब्राह्मणत्व के लिए **अष्टौ शतानि** आठ सौ (ऋचाओं) का **अनूच्यानि** अनुवाचन करना चाहिए। **यः वा दुरुक्तोक्तः** अथवा जो दुरुक्तोक्त (लोकापवाद से दूषित) अथवा **शमलगृहीतः** मलिन रूप से (समाज में) स्वीकृत है, वह **यजेत्** यदि यजन करे (तो आठ सौ ऋचाओं का अनुवाचन करे)। **अष्टाक्षरा वै गायत्री** गायत्री छन्द आठ अक्षरों वाली होती है। **गायत्र्या वै** गायत्री के द्वारा ही **देवाः** देवताओं ने **पाप्मानं शमलम् अपाघ्नत** पाप और कलुषितता को विनष्ट किया। अतः **तत्** उस (अनुवाचन) से **गायत्र्या एव** गायत्री द्वारा ही **अस्य** इस (यजमान) के **पाप्मानं शमलं** पाप और मलिनता को **अपहन्ति** दूर करते हैं।

सा०भा०—अब्राह्मणत्वेन स्मृतिषु योऽभिहितः सोऽयमब्राह्मणोक्तो राजसेवाधिकारी। स्मृतिवाक्यं चात्र पूर्वमेवोदाहृतम्। तादृशस्याष्टौ शतान्यनुब्रूयात्। अथवा यो वा दुरुक्तोक्तो दुरुक्तेनापवादेन जनैर्व्यवहृतः स शमलगृहीतो मलिनेन लोकविरुद्धेन स्वीकृतस्तादृशो यदा यजेत तदाऽप्यष्टौ शतान्यनुब्रूयात्। गायत्र्या अष्टाक्षरत्वात् तया च मलिनस्य पापस्य देवैर्विनाशितत्वात्। अष्टसंख्यामनुतिष्ठन्गायत्र्यैव मलिनं पापं विनाशयति।।

वेदनं प्रशंसति—

अप पाप्मानं हते य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी— (इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **पाप्मानम् अप हते** (अपने) पाप को विनष्ट कर देता है।

स० भा०— अपहन्तीत्यर्थः॥

संख्यान्तरं विधत्ते—

(स्वर्गकामनया संख्यानिर्धारणम्)

सहस्रमनूच्यं स्वर्गकामस्य सहस्राश्वीने वा इतः स्वर्गो लोकः स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै संपत्त्यै संगत्यै ॥८॥

हिन्दी—(स्वर्ग की कामना वाले यजमान के लिए अनुवचनीय ऋक् संख्या का विधान कर रहे हैं—) **स्वर्गकामस्य** स्वर्ग की कामना करने वाले यजमान के लिए **सहस्रम् अनूच्यम्** हजार (ऋचाओं) का अनुवाचन करना चाहिए; क्योंकि **इतः सहस्राश्वीने वै स्वर्गो लोकः** इस (भूलोक) से स्वर्ग लोक सहस्राश्वीन (एक हजार दिन में अश्व के जाने की दूरी के बराबर ऊपर स्थित) है। इस प्रकार **स्वर्गस्य लोकस्य** स्वर्गलोक की **समष्ट्यै सम्पत्यै सङ्गत्यै** प्राप्ति के लिए, (अपेक्षित भोग्य वस्तु की) सम्पत्ति के लिए और (स्वर्गनिवासी इन्द्रादि देवों से) सङ्गति के लिए (यह अनुवाचन होता है)।

सा० भा०—प्रबलोऽश्व एकेनाह्ना यावन्ति योजनानि गच्छति तावद्योजनपरिमितो देशो आश्वीनः। स च सहस्रसंख्यया गुणितः सहस्राश्वीनः। 'अश्वस्यैकाहगमः'[१] इति पाणिनीयसूत्रादाश्वीनशब्दनिष्पत्तिः[२]। इतो भूलोकादारभ्य सहस्राश्वीन ऊर्ध्वदेशे स्वर्गो लोको वर्तते। अतः सहस्रसंख्या स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै प्राप्त्यै भवति। प्राप्तस्य संपत्त्यै स्वापेक्षितसर्वभोग्यवस्तुसंपादनाय भवति। संपन्नस्य च संगत्यै[३] महतामिन्द्रादिदेवानां प्रीतिपूर्वकसंबन्धाय भवित॥

सर्वकामसिद्ध्यर्थमियत्तापरिच्छेदराहित्यसंख्या विधत्ते—

(सर्वकामसिद्ध्यर्थमपरिमितसंख्यानिर्धारणम्)

अपरिमितमनूच्यमपरिमितो वै प्रजापतिः प्रजापतेर्वा एतदुक्थं यत्प्रातरनुवाकस्तस्मिन् सर्वे कामा अवरुध्यन्ते स यदपरिमितमन्वाह

---

(१) पा०सू० ५.२.१९।

(२) 'एकाहेन गम्यत इत्येकाहगमः अश्वीनोऽध्वा'—इति सि०कौ०। त्रिष्वाश्वीनं यदश्वेन दिनेनैकेन गम्यते—इति अमरकोश २.८.४७।

(३) 'सम्पत्तिः गमनं, सङ्गतिः संयोगः सामान्यविशेषभावेन सामानाधिकरण्यम्'—इति गोविन्दस्वामी। 'सम्पत्तिः तत्र समृद्धिः सङ्गतिः तेन नित्यसंयोगः कदाचिदप्यप्रच्युतिः' इति भट्टभास्करः।

सर्वेषां कामानामवरुद्ध्यै ।।९।।

हिन्दी—(सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए अपरिमित संख्या में ऋचाओं के अनुवाचन का विधान कर रहे हैं—) अथवा **अपरिमितम् अनूच्यम्** अपरिमित (ऋचाओं का) अनुवाचन करना चाहिए; क्योंकि **अपरिमितः वै प्रजापतिः** प्रजापति अपरिमित है। **यत् प्रातरनुवाकः** जो प्रातरनुवाक है, **एतत् प्रजापतेः उक्थं वै** यह प्रजापति का ही उक्थ (प्रिय शस्त्र) है। **तस्मिन् सर्वे कामाः अवरुन्धन्ते** अतः उसमें सभी कामनाएँ समाहित होती हैं। **सः यद् अपरिमितम् अन्वाह** वह (होता) जो अपरिमित (ऋचाओं) का अनुवाचन करता है, वह **सर्वेषां कामानाम् अरुन्ध्यै** सभी कामनाओं की सिद्धि के लिए (होता है)।

सा० भा०—शतं सहस्रमित्यादिसंख्यापरिमाणं परित्यज्य मध्यरात्रादूर्ध्वमुपक्रम्य सूर्योदयात् प्राचीनकाले यावतीरनुवक्तुं शक्तिरस्ति तावतीरनुब्रूयात्। जगत्कारणभूतः प्रजापतिश्चापरिमितः। न ह्येतावदस्य स्वरूपमिति प्रजापतिः परिमातुं शक्यते। यः प्रातरनुवाकोऽस्ति तदेतत्तादृशस्य प्रजापतेरुक्थं प्रियं शस्त्रम्। अतःतस्मिन् प्रातरनुवाके सर्वे कामा अन्तर्भवन्ति। एवं सति स होता यद्यपरिमितमनुब्रूयात् तदानीं तदनुवचनं सर्वकामप्राप्त्यै भवति ॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वान् कामानवरुन्धे य एवं वेद ।।१०।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे है—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वान् कामान् अवरुन्धे** सभी कामनाओं को प्राप्त करता है।

बहुफलहेतुत्वादपरिमितपक्षमादरेण निगमयति—

तस्मादपरिमितमेवानूच्यम्[१] ।।११।।

हिन्दी—(बहुत फलों का हेतु होने के कारण अपरिमित संख्या में ऋचा के अनुवाचन के पक्ष का सादर निगमन कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **अपरिमितमेव अनूवाच्यम्** अपरिमित (ऋचाओं) का अनुवाचन करना चाहिए।

प्रातरनुवाकगतास्वृक्षु च्छन्दोविशेषान् विधत्ते—

(प्रातरनुवाकगतास्वृक्षु छन्दोविशेषविधानम्)

सप्ताऽऽग्नेयानि च्छन्दांस्यन्वाह सप्त वै देवलोकाः ।।१२।।

हिन्दी—(प्रातरनुवाक के प्रथम भाग में ऋचाओं में छन्द विशेष का विधान कर रहे

---

(१) तदुक्तमाश्वलायनेन—'शतप्रभृत्यपरिमितः'—इति ४.१५.३।

हैं—) **आग्नेयानि सप्त छन्दांसि** (प्रातरनुवाक के प्रथम भाग में) अग्नि से सम्बन्धित सात छन्दों वाली (ऋचाओं) का **अन्वाह** (होता) अनुवाचन करता है; क्योंकि **सप्त वै देवलोकाः** देवताओं के सात ही लोक है।

सा० भा०—प्रातरनुवाके त्रयो भागाः। तत्र प्रथमो भाग आग्नेयः। तस्मिंश्च गायत्र्यनुष्टुपत्रिष्टुब् बृहत्युष्णिग्जगती पङ्क्तिरिति सप्तभिश्छन्दोभिर्युक्ता ऋचोऽनुब्रूयात्। देवानां संबन्धिनो बहुलोकयुक्ता लोकविशेषाः सप्त। तस्माच्छन्दसां सप्तसंख्या प्रशस्ता।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वेषु देवलोकेषु राध्नोति य एवं वेद ।।१३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **सर्वेषु देवलोकेषु** सभी देवलोकों में **राध्नोति** समृद्ध होता है।

सा० भा०—भूलोकादयः सत्यलोकान्ताः सप्त वै देवलोका द्रष्टव्याः।।

प्रातरनुवाकस्य द्वितीयभागे छन्दांसि विधत्ते—

सप्तोषस्यानि च्छन्दांस्यन्वाह, सप्त वै ग्राम्याः पशवः ।।१४।।

हिन्दी—(प्रातरनुवाक के द्वितीत भाग में छन्द का विधान कर रहे हैं—) **उषस्यानि सप्त छन्दांसि** (प्रातरनुवाक के द्वितीय भाग के देवता) उषा देवता वाली सात छन्दों वाली (ऋचाओं) का **अन्वाह** अनुवाचन करता है; क्योंकि **सप्त वै ग्राम्याः पशवः** ग्राम्य पशु सात (संख्या वाले) होते हैं।

सा० भा०—यथा प्रथमभागस्याग्निर्देवता तथा द्वितीयभागस्योषा देवता। तस्मादुषः प्रतिपादिकास्वृक्षु पूर्ववद् गायत्र्यादीनि सप्त च्छन्दांसि द्रष्टव्यानि। ग्रामे भवा ग्राम्याः पशवः, ते च सप्त। तथा च बौधायनः—'सप्त ग्राम्याः पशवोऽजाश्वो गौर्महिषी वराहो हस्त्यश्वतरी च' इति।।

आपस्तम्बमतानुसारिणस्त्वेवं वर्णयन्ति—

"अजाविकं गवाश्वं च गर्दभोष्ट्रं नरस्तथा ।
सप्त वै ग्राम्यपशवो गीयन्ते कविसत्तमैः ।।"[१] इति।

तस्मादत्र सप्तसंख्या युक्ता।।

वेदनं प्रशंसति—

अव ग्राम्यान् पशून् रुन्धे य एवं वेद ।।१५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता

(१) द्र० मार्क० ४५.२९।

है वह **ग्राम्यान् पशून् अवरुन्धे** ग्राम्य पशुओं को प्राप्त करता है।

तृतीयभागे च्छन्दांसि विधत्ते—

सप्ताऽऽश्विनानि च्छन्दांस्यन्वाह, सप्तधा वै वाग्, अवदत् तावद् वै वागवदत् सर्वस्यै वाचः सर्वस्य ब्रह्मणः परिगृहीत्यै ।।१६।।

हिन्दी—(प्रातरनुवाक के तृतीय भाग के छन्दों का विधान कर रहे हैं—) **आश्विनानि सप्त छन्दांसि** (प्रतारनुवाक के तृतीय भाग के देवता) अश्विन्देवों से सम्बन्धित सात छन्दों वाली (ऋचा) का **अन्वाह** अनुवाचन करता है। **सप्तधा वै वाग् अवदत्** (लोक में षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद् नामक) सात प्रकार की वाणी बोली जाती है। **तावद् वै वाग् अवदत्** उतनी ही (वैदिक) वाणी भी बोली जाती है। इस प्रकार **सर्वस्य वाचः** सभी (लौकिक) वाणी और **सर्वस्य ब्रह्मणः** सभी (वैदिक) वाणी के **परिगृहीत्यै** परिग्रह के लिए (यह होता है)।

सा० भा०—तृतीयभागस्याश्विनौ देवता तत्संबन्धिनीः सप्त च्छन्दोयुक्ता ऋचोऽनुब्रूयात्। लोके गानरूपा या वागस्ति सा सप्तधाऽवदत् षड्जऋषभादिस्वरोपेता[1] प्रवृत्ता।[2] तावदेव वैदिकवागप्यवदत् साम्नि क्रुष्टप्रथमद्वितीयादीनां सप्तस्वराणामधीयमानत्वात्। अतोऽत्र सप्तसंख्या लौकिक्याः सर्वस्या वाचो वेदस्य च सर्वस्य परिग्रहाय भवति। त्रिष्वप्येष्वाग्नेयौषस्याश्विनभागेषु च्छन्दांस्यस्माभिः पूर्वमेवोदाहृत्य प्रदर्शितानि ।।[3]

भागत्रये देवतात्रयं विधत्ते—

तिस्रो देवता अन्वाह, त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोका एषामेव लोकानामभिजित्यै ।।१७।।

हिन्दी—(तीनों भागों के देवतात्रय का विधान कर रहे हैं—) **तिस्रः देवता अन्वाह** (प्रातरनुवाक में होता) तीन देवताओं का अनुवाचन करता है; क्योंकि **त्रयः वै इमे त्रिवृतः लोकाः** (भूः, अन्तरिक्ष और द्यौ) ये तीन प्रकार के तीन ही लोक हैं। **एषामेव लोकानाम् अभिजित्यै** इन्ही तीनों लोकों के विजय (प्राप्ति के लिए) (यह प्रातरनुवाक होता है)।

(१) षड्जश्च ऋषभश्चैव गान्धारो मध्यमस्तथा।
पञ्चमो धैवतश्चैव निषादः सप्तमः स्वरः ।। ना०शि० १.२.५।

(२) प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थकः।
मन्द्रः क्रुष्टो ह्यतिस्वार एतान् कुर्वन्ति सामगाः ।। इति वा०शि० १.१.१२।

(३) 'सप्तविधविभक्तिसम्बन्धेन षड्जादिसप्तस्वरसम्बन्धेन वा'—इति भट्टभास्करः। 'मन्द्रादिषु त्रिषु स्थानेषु सप्त यमाः क्रुष्टप्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थमन्द्रातिस्वार्याः—इति तै० प्राति० २३.१३। 'सप्तस्वरा ये यमास्ते'—इति ऋक्प्राति० १३.४४।

सा॰भा॰—अग्निरुषाऽश्विनाविति देवतात्रयम्। यथा गुणत्रयमेलनरूपा रज्जुस्त्रिवृदेवमेते पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोका: परस्परमिलितास्त्रिवृत:। यद्वा, एकैकस्मिंल्लोके सत्त्वरजस्तमोगुणभेदेनास्योत्तममध्यमाधमरूपत्वात् प्रत्येकं त्रिवृत्तम्। अतो देवतात्रिसंख्या लोकत्रयजयाय भवति।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकाया: द्वितीयाध्याये (सप्तमाध्याये) सप्तम: खण्ड: ।।७।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ अष्टम: खण्ड:

सा॰भा॰—अथ तस्य प्रातरनुवाकस्यानुवचनप्रकारविशेषं निर्णेतु प्रश्नमवतारयति—

(प्रातरनुवाकस्यानुवचनप्रकारविशेष:)

तदाहु: कथमनूच्य: प्रातरनुवाक इति ।।१।।

हिन्दी—(उस प्रातरनुवाक के अनुवाचन के प्रकार विशेष का निर्णय करने के लिए प्रश्न की अवतारणा कर रहे हैं—) **तदाहु:** इस (प्रातरनुवाक के अनुवचन के प्रकार) के विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) पूछते हैं कि **प्रातरनुवाक: कथम् अनूच्य:** प्रातरनुवाक किस प्रकार पढ़ना चाहिए?

सा॰भा॰—किम्, एकैकस्मिन् भागे गायत्र्यादीनि च्छन्दांस्यनुक्रमेणैवानुवक्तव्यानि, आहोस्विद् अन्यथा' इत्येक: संशय:। अनुक्रमपक्षेऽपि किं पादे पादेऽवसानं कृत्वाऽनुवचनीयम्, आहोस्वित् तत्तदर्थेऽवसानं कृत्वा' इति द्वितीय: संशय:।।

तत्र प्रश्नोतरमाह—

यथाछन्दसमनूच्य: प्रातरनुवाक: प्रजापतेर्वा एतान्यङ्गानि यच्छन्दांस्येष उ एव प्रजापतिर्यो यजते तद् यजमानाय हितम् ।।२।।

हिन्दी—(उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर कह रहे हैं—) **यथा छन्दसम्** छन्द के अनुसार **प्रातरनुवाक: अनूच्य:** प्रातरनुवाक का अनुवाचन करना चाहिए। **यत् छन्दांसि** जो छन्द हैं **एतानि वै प्रजापते: अङ्गानि** ये प्रजापति के अङ्ग हैं। **य: यजते** जो यजन करता है **एष: उ वै प्रजापति:** यह प्रजापति ही है। **तत्** इस (अनुवाचन) से **यजमानाय हितम्** (यजमान के अङ्ग के) हित के लिए **यजते** यजन करता है।

सा॰भा॰—अनुक्रमेणावस्थितानि गायत्र्यादीनि च्छन्दांस्यनतिक्रम्येति यथाछन्दसं

छन्दः क्रमेणैवायमनुवचनीयः, छन्दसां प्रजापतिसृष्टत्वेन तदवयवत्वात्। यजमानस्य च प्रजापतिपदप्राप्तियोग्यत्वेन प्रजापतिरूपत्वात् तदङ्गरूपच्छन्दसां क्रमेणानुवचनं यजमानायावयवविपर्यासराहित्येन हितं भवति। तस्माच्छन्दः—क्रमेणैवानुवक्तव्यम्।।

द्वितीयविचारे पूर्वपक्षमाह—

पच्छोऽनूच्यः प्रातरनुवाकश्चतुष्पादा वै पशवः पशूनामवरुद्ध्यै ।।३।।

हिन्दी—(द्वितीय विचार में पूर्व पक्ष को कह रहे हैं—) **पशूनाम् अवरुद्ध्यै** पशुओं की प्राप्ति के लिए **पच्छो अनूच्यः** प्रत्येक पाद पर अवसान करते हुए अनुवाचन करना चाहिए; क्योंकि **चतुष्पादाः वै पशवः** पशु चार पाद वाले होते है।

सा० भा०—पच्छ एकैकस्मिन् पादेऽवसायेत्यर्थः।।

सिद्धान्तमाह—

अर्धर्चश एवानूच्यो यथैवैनमेतदन्वाह प्रतिष्ठाया एव द्विप्रतिष्ठो वै पुरुषश्चतुष्पादाः पशवो, यजमानमेव तद्द्विप्रतिष्ठं चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति, तस्मादर्धर्चश एवानूच्यः ।।४।।

हिन्दी—(अब सिद्धान्त पक्ष को कह रहे हैं—) **अर्धर्चशः एव अनूच्यः** आधी-आधी ऋचा पर अवसान करते हुए ही (प्रातरनुवाक का) अनुवाचन करना चाहिए। **यथा वै एनम्** जिस प्रकार इस (ऋचा) को (गुरुमुखोच्चारणपूर्वक पढ़ता है उसी प्रकार) **प्रतिष्ठायै एव** प्रतिष्ठा के लिए ही **एतत्** इस (ऋचा) का **अन्वाह** अनुवाचन करता है; क्योंकि **द्विप्रतिष्ठः वै पुरुषः** पुरुष दो प्रतिष्ठा (पादों) वाला और **चतुष्पादाः पशवः** पशु चार पैरों वाला होता है। **तत्** इस (अर्धर्च के पाठ) से **द्विप्रतिष्ठं यजमानम्** दो पाद वाले यजमान को **चतुष्पात्सु पशुषु** चार पाद वाले पशुओं में **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है। **तस्मात्** इसी कारण **अर्धर्चशः एव अनूच्यः** आधी ऋचा पर अवसान करके ही (प्रातनुवाक का) अनुवाचन करना चाहिए।

सा० भा०—अर्धर्चश एकैकस्मिन्नृचोऽर्धेऽवसायावसाय प्रातरनुवाकोऽनूच्यः। एवकारः पूर्वपक्षव्यावृत्त्यर्थः। यथैवेत्यादिनाऽर्धर्चश इत्येतदेव स्पष्टीक्रियते। एनमर्धं यथैव येनैव प्रकारेणैतदन्वध्ययनकालीनं गुरूच्चारणमनु यथाऽध्ययनकाले प्रत्यर्धमवसायाऽऽह पठति तथैव प्रातरनुवाकानुष्ठानकालेऽपि। न त्वत्र ऋगन्ते प्रणवप्रक्षेपादिवत् किंचिन्नूतनं कर्त्तव्यमस्ति। तदेतदर्धर्चशोऽनुवचनं प्रतिष्ठाया एव यजमानस्य प्रतिष्ठार्थमेव भवति। तत्कथमिति, तदेवोच्यते—यथा, एकस्याऋचो द्वे अर्धर्चे एवं पुरुषो द्विप्रतिष्ठः प्रतितिष्ठति स्थैर्येणावस्थितो भवति, आभ्यां पादाभ्यामिति प्रतिष्ठे द्वे पादौ प्रतिष्ठे यस्यासौ द्विप्रतिष्ठः। पशूनां चत्वारः पादाः। तथा सति पादचतुष्टयोपेतास्वृक्षु द्वाभ्यामर्धाभ्यामवसानयुक्ताभ्यामनुवचने कृते सति द्विप्रतिष्ठं द्विपादं यजमानं चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति। तस्मादर्धर्चश एवानुवचनं युक्तम्।।

तत्र प्रातरनुवाकक्रममाक्षिप्य समाधत्ते—

(प्रातरनुवाकस्य क्रमसमाधानम्)

तदाहुर्यद्व्यूह्ळः प्रातरनुवाकः कथमव्यूह्ळो भवतीति यदेवास्य बृहती मध्यान्नैतीति ब्रूयात्तेनेति ।।५।।

हिन्दी—(अब प्रातरनुवाक के क्रम पर आक्षेप करके उसका समाधान कर रहे हैं—) (आक्षेप) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) पूछते हैं कि **यत् प्रातरनुवाकः व्यूढः** जो प्रातरनुवाक व्यूढ (गायत्री, उष्णिक् इत्यादि छन्द चार-चार अक्षरो से बढ़ने वाला) है, वह **कथम् अव्यूढः भवति** किस प्रकार (क्रम का विपर्यय करके अव्यूढ होता है। (समाधान—) **'अस्य मध्यात्** इस (प्रातरनुवाक) के मध्य से **बृहती न एति** बृहती (छन्द) चला न जाय–**इति यद् ब्रूयात्** यह जो कहा गया है, **तेन इति** उससे (अव्यूढ होता है)।

सा० भा०—छन्दसां योऽयमनुक्रमः सोऽयम् अनुक्रमणिकाकारेण दर्शितः–'अथ च्छन्दांसि, गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यतिजगतीशक्वर्यतीशक्वर्यष्ट्यत्यष्टीधृत्यतिधृतयश्चतुर्विंशत्यक्षरादीनि चतुरुत्तराणि'[१] इति। चतुर्विंशत्यक्षरोपेतां गायत्रीमारभ्योत्तरोत्तरं छन्दश्चतुर्भिश्चतुर्भिरक्षरैरधिकमित्यर्थः। तमेतं छन्दसां क्रमं विपर्ययस्य प्रातरनुवाके क्रमान्तरमूहितं गायत्र्यनुष्टुपत्रिष्टुब्बृहत्युष्णिग्जगती पङ्क्तिरिति। सोऽयं क्रमोऽस्माभिराश्वलायनोक्तक्रमेण पूर्वमेवोदाहृताः। तस्मात् प्रातरनुवाकोक्तक्रमस्य विपर्ययेणोहनादयं व्यूढः संपन्नः। सोऽयमनुचितः। तस्मात् कथमव्यूह्ळो भवतीति प्रश्न आक्षेपे वा यदेवेत्यादिकमुत्तरं यस्मादेव कारणाच्छन्दःक्रमेऽनुष्ठानक्रमे वाऽस्य प्रातरनुवाकस्य मध्यात् बृहतीछन्दो नैति नापगच्छतीत्युत्तरमभिज्ञो ब्रूयात् तेन कारणेनायमव्यूह्ळः संपन्न इत्यवगन्तव्यम्।।

अथ प्रातरनुवाकं प्रशंसति—

(प्रातरनुवाकप्रशंसनम्)

आहुतिभागा वा अन्या देवता अन्याः स्तोमभागाश्छन्दोभागास्ता या अग्नावाहुतयो हूयन्ते ताभिराहुतिभागाः प्रीणात्यथ यत्स्तुवन्ति च शंसन्ति च तेन स्तोमभागाश्छन्दोभागाः ।।६।।

हिन्दी—(अब प्रातरनुवाक की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अन्याः देवताः आहुतिभागाः** कुछ देवता आहुति के भागी होते हैं, **अन्याः स्तोमभागाः** कुछ स्तोम (सामगान) के और **छन्दोभागाः** (कुछ गायत्री इत्यादि) छन्दों के भागी होते हैं। **ताः या आहुतयः अग्नौ हूयन्ते** वे जो आहुतियाँ अग्नि में होम की जाती हैं, **ताभिः** उन (आहुतियों) से

(१) ऋक्सर्वा० परि० ३.१-३।

आहुतिभागाः प्रीणाति आहुति के भागी देवता प्रसन्न होते हैं। **अथ** इसके बाद **यत् स्तुवन्ति च शंसन्ति च** जो (स्तोम वाले साम के द्वारा उद्गाता) स्तुति करते हैं और जो (होता ऋचाओं का) शंसन करते हैं **तेन** उस (स्तुति और शंसन) से क्रमशः **स्तोमभागाः छन्दोभागाः** स्तोम के भागी और छन्दों के भागी देवता (प्रसन्न होते हैं)।

सा० भा०—अन्याः काश्चिद्देवता अग्नौ हूयमानामाहुतिं भजन्त इत्यपराः काश्चिद्देवताः साम्न आवृत्तिप्रकारभेदेन निष्पन्नत्रिवृत् पञ्चदशादिस्तोमं[1] भजन्ते। अपराः काश्चिद्देवता ऋग्गतगायत्र्यादि च्छन्दो भजन्ते। एवं सति ता विधिवाक्येषु प्रसिद्धा आहुतयो याः सन्ति ताभिराहुतिभागानां देवतानां प्रीतिः। उद्गातारः स्तोमयुक्तैः सामभिः स्तुवन्तीति यत् तेन स्तोमभागानां प्रीतिः। होतारश्छन्दोयुक्ताभिर्ऋग्भिः शंसन्तीति यत्तेन च्छन्दोभागानां प्रीतिः।।

वेदनं प्रशंसति—

उभयो हास्यैता देवताः प्रीता अभीष्टा भवन्ति य एवं वेद ।।६।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है। **अस्य** इस (ज्ञाता) के **उभयो एताः देवताः** (आहुतिभागी और स्तोमभागी) दोनों प्रकार के ये देवता **प्रीताः अभीष्टाः भवन्ति** प्रसन्न और अभीष्ट देने वाले होते हैं।

सा० भा०—आहुतिभागा एको राशिः स्तोमभागाश्छन्दोभागाश्च द्वितीयो राशिः। एता उभयविधा अपि देवता वेदनेन प्रीताः सत्यो वेदितुरभीष्टप्रदा भवन्ति। शंसनेन च्छन्दो-भागानां प्रीत्यभिधानात् प्रातरनुवाकस्य प्रशंसा संपन्ना।।

विभिन्ने प्रीतिनिमित्ते दृष्टान्तमभिप्रेत्य सोमं पशुं प्रशंसति—

(सोमपासोमपदेवतानां परिगणनम्)

त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः सोमपास्त्रयस्त्रिंशदसोमपा, अष्टौ वसव[2] एकादश रुद्रा[3] द्वादशाऽऽदित्याः[4] प्रजापतिश्च वषट्कारश्च,[5] एते देवाः सोमपाः

---

(१) सामब्राह्मणस्य 'तिसृभ्यो हिङ्करोति'—इत्याद्यध्यायद्वयं (ता०ब्रा० २,३) द्रष्टव्यम्।

(२) 'अग्निश्च एतेऽष्टौ वसवः क्षिता इति'—तै०आ० १.९.१।

(३) अथ वायोरेकादश......प्रभ्राजमाना......वैद्युत इत्येकादश' इति तै०आ० १.९.४। 'प्रभ्राजमान इत्येकादश रुद्राः'—इति च तत्कल्पः।

(४) कतम आदित्या इति? द्वादश.....वै मासा तस्मादादित्या इति—इति बृह०उ० ३.९.५। अपरया च गम्यन्ते। तद्यथा—"त्वष्टा, सविता, भगः, सूर्यः, पूषा, विष्णुः, विश्वानरः वरुणः केशी (केशिनः), वृषाकपि, यमः, अजएकपात्"—इति निघ० ६.५। एते हि अरुणोदयाद्यस्तान्तस्याह्नो द्वादशभागानां कर्तारः कालमात्रकृतपार्थक्याश्रयाः सूर्या एव। तथाहि 'त्वष्टा दुहित्रे'—इत्यादिः 'वचनानीमानि'—इत्यन्तश्च (१२.११-३०) निरुक्त-ग्रन्थोऽत्रालोच्यः। धाता, मित्रः, अर्यमा, शक्रः, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णुः

एकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशोपयाजा एतेऽसोमपाः पशुभाजनाः सोमेन सोमपान् प्रीणाति पशुनाऽसोमपान् ।।७।।

हिन्दी—(अब सोमपशु की प्रशंसा कर रहे हैं—) **त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः सोमपाः** तैंतीस देवता सोमपान करने वाले हैं और **त्रयस्त्रिंशद् असोमपाः** तैंतीस देवता सोम का पान करने वाले नहीं हैं। **अष्टौ वसवः** आठ वसु देवता, **एकादश रुद्राः** ग्यारह रुद्र देवता **द्वादश आदित्याः** बारह आदित्य देव, **प्रजापतिः वषट्कारः च** प्रजापति और वषट्-कार–**एते देवाः सोमपाः** ये (तैंतीस) देवता सोम का पान करने वाले हैं। **एकादश प्रयाजाः** ग्यारह प्रयाज, **एकादश अनुयाजाः** ग्यारह अनुयाज और **एकादश उपयाजाः** ग्यारह उपयाज–**एते असोमपाः** ये (तैंतीस) सोम का पान करने वाले नहीं है प्रत्युत **पशुभाजनाः** पशु को ग्रहण करने वाले हैं। इस प्रकार **सोमेन सोमपान्** सोम के द्वारा सोम पीने वाले देवताओं और **पशुना असोमपान्** पशु के द्वारा असोमपायी देवताओं को **प्रीणाति** प्रसन्न करता है।

सा० भा०—वस्वादीनां वषट्कारान्तानां देवानां सोमयागेन प्रीतिः। होता यक्षदग्निं-मित्यादिमैत्रावरुणप्रैषमन्त्रेषु समिद्धो अद्येत्यादियाज्यासु चाभिहिताः समिदाद्या एकादश प्रयाजदेवताः।[१] देवं बर्हिः सुदेवमित्यादिमैत्रावरुणप्रैषमन्त्रेषु देवं बर्हिर्वसुवन इत्यादि या-ज्यासु चाभिहिता बर्हिराद्या एकादशानुयाजदेवताः।[२] समुद्रं गच्छ स्वाहेत्यादिमन्त्रोक्ताः समुद्रादय एकादशोपयाजदेवताः।[३] सर्वा अपि सोमपानवर्जिताः पशुमेव भजन्ते। तासां पशुना तृप्तिः।।

वेदनं प्रशंसति—

इति च द्वादश महाभारते १.२५.२३।

(५) अष्टौ......दित्या इमे एव द्यावापृथिव्यौ त्रयस्त्रिंश्यौ, त्रयस्त्रिंशद् वै देवाः। प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशः—इति शत०ब्रा० ४.५.७.२। तत्रैवान्यविधमपि अष्टौ......दित्यास्त एकत्रिंशत् इन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति'—इति ११.६.३.५। अदितिर्जनयामास त्रयस्त्रिंशत् शुभान् सुरान् आदित्यांश्च वसूंश्चैव रुद्रांश्चैवाश्विनावपि'—इति च (रामा० ३.२०.१५)।

(१) समिधः, तनूनपात् नराशंसो वा, इळः, बर्हिः, दुरः, उषासानक्ता, दैव्याहोताराः, तिस्रो देव्यः (इडा, सरस्वती, भारती), त्वष्टा, वनस्पतिः, स्वाहाकृतयः,—इत्येकादशप्रयाजदेवताः, तै०ब्रा० ३.६.२.३ द्रष्टव्याः।

(२) बर्हिः, द्वारः उषासानक्ता, जोष्ट्री, ऊर्जाहुती, दैव्याहोतारा, तिस्रो देव्याः, नराशंसः वन-स्पतिः, बर्हिः, स्विष्टकृत्;—इत्येकादशानुयाजदेवताः। तै०ब्रा० ३.६.१३-१४ द्रष्टव्याः।

(३) समुद्रः, अन्तरिक्षम्, सविता, अहोरात्रे, मित्रावरुणौ, सोमः यज्ञः, छन्दांसि, द्यावापृथिवी, दिव्यं नभः, वैश्वानरः, आपः—इत्येकादशोपयाजदेवताः तै०सं० १.५.११;६.४.१। द्रष्टव्याः। उपयजोमयाजशब्दावेकार्थौ।

उभयो हास्यैता देवताः प्रीता अभीष्टा भवन्ति य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता हैं **अस्य** इस (ज्ञाता) के **उभयोः एताः देवताः** ये (सोमपायी और असोमपायी) दोनों प्रकार के देवता **प्रीताः अभीष्टाः भवन्ति** प्रसन्न और अभीष्ट-प्रदायक होते हैं।

सा० भा०—अत्र सोमपानामसोमपानां च भिन्नप्रीतिनिमित्ततया छन्दोभागानां देवतानामितरदेवताविलक्षणं प्रीतिनिमित्तं प्रातरनुवाक इत्यभिप्रायः।।

तस्य प्रातरनुवाकस्य समाप्तिमृचं विधत्ते—

(प्रातरनुवाकस्य परिधानीयर्ग्विधानम्)

'अभूदुषा रुशत् पशुरिति'[१] उत्तमया परिदधाति ।।९।।

हिन्दी—(उस प्रातरनुवाक के समापन की ऋचा को कह रहे हैं—) **'अभूदुषा रुशत् पशुः' इति उत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से (प्रातरनुवाक का) समापन करता है।

अत्र कश्चिदाक्षेपमुत्थापयति—

तदाहुर्यत्रीन् क्रतूनन्वाहाऽऽग्नेयमुषस्यमाश्विनं कथमस्यैकयर्चा परि-दधतः सर्वे त्रयः क्रतवः परिहिता भवन्तीति ।।१०।।

हिन्दी—(इस विषय में कुछ आक्षेप की उद्भावना कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **आग्नेयमुषस्यम् आश्विनम्** जो अग्नि, उषा और अश्विन् से सम्बन्धित **त्रीन् क्रतून्** तीन (प्रातरनुवाक सम्बन्धी) देवों के यागों का **अन्वाह** अनुवाचन करता है तो **कथम् एकया ऋचा** किस प्रकार एक ही ऋचा से **परिदधतः** समापन करते हुए **सर्वे त्रयः क्रतवः** सभी तीनों याग **परिहिताः भवन्ति** समाप्त हो जाते हैं।

सा० भा०—क्रतुशब्दः सोमयागसंबन्धिनः प्रातरनुवाकभागानुपलक्षयति। ते च भागास्त्रय आग्नेय उषस्य आश्विनश्चेति। तत्र सर्वानसौ होता ब्रूते तदानीमेकयर्चा परिधानं कुर्वतोऽस्य होतुस्त्रयो भागाः सर्वेऽपि कथं समापिता भवन्तीत्याक्षेपमाहुः।।

तत्र समाधानं दर्शयति—

अभूदुषा रुशत् पशुरित्युषसो रूपमाऽग्निरधाय्यृत्विय इत्यग्नेरयोजि वां वृषणवसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवमित्यश्विनोरेवमु हास्यैकयर्चा परिदधतः सर्वे त्रयः क्रतवः परिहिता भवन्ति,

---

(१) ऋ० ५.७५.९।

भवन्ति ।।११।।

हिन्दी—(उपर्युक्त आक्षेप का समाधान दिखला रहे हैं—) 'अभूदुषा रुशत् पशुः' अर्थात् परस्पर ध्वनि करते हुए पशुओं से युक्त उषा प्रकट हुई है—**इति उषसः रूपम्** यह (पाद) उषा के अनुरूप है। 'आऽग्निरधाय्यृत्वियः' अर्थात् (अरणिमन्थन रूप) ऋतु के अनुकूल अग्नि रख दी गयी है'—**इति अग्नेः** यह अग्नि के अनुकूल है और 'अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम्' अर्थात् वर्धनशील धनसम्पन्न हे अश्विनो! मनुष्यों के लिए अयोग्य तुम्हारे रथ में घोड़े योजित कर दिये गये हैं—**इति अश्विनोः** यह (अर्धर्च) अश्विनों के अनुरूप है। **एवमु** इस प्रकार **एकया ऋचा** एकही ऋचा द्वारा **परिदधतः** समापन करते हुए **अस्य** इस यजमान के **सर्वे त्रयः क्रतवः** सभी तीनों देवताओं के याग **परिहिताः भवन्ति** समाप्त हो जाते हैं।

सा०भा०—येयमुषाः सूर्योदयात् पूर्वभाविनी सेयं रुशत् पशुरभूत। रुशन्तः परस्पर-ध्वनिं कुर्वन्तः पशवो यस्यामुषसि सेयं रुशत् पशुः। रात्रौ निद्रां कुर्वन्तः पशव उषःकाले प्राप्ते ध्वनिं कुर्वन्तीति प्रसिद्धमेतत्। उषोदेवताया अस्मिन् पादेऽभिहितत्वादयं प्रथमः पाद उषसो रूपमनुकूल इत्यर्थः। ऋत्वियोऽरणिमथनरूप ऋतुकाले भवस्तादृशोऽग्निरा समन्तादधाय्याधानेन संपादितः। अत्राग्नेरभिधानाद् द्वितीयपादोऽग्ने रूपम्। वृषण्वसू वर्ध-मानधनौ दस्रौ हेऽश्विनौ देवौ वां युवयोरमर्त्यो रथो मनुष्याणामयोग्यः समीचीनो रथोऽ-योज्यश्वाभ्यां योजितः। अतो माध्वी मधुरया वाचा मम हवं मदीयमाह्वानं श्रुतं युवां शृणुतम्। अस्मिन्नुत्तरार्धेऽश्विनोरभिधानादयमर्धोऽश्विनो रूपम्। तस्मादेकयर्चा देवतात्रयप्रतिपादिक-यैतमेव प्रातरनुवाकं परिदधतः समापयतोऽस्य होतुस्त्रयः क्रतवः प्रातरनुवाकभागाः सर्वे परिहिताः समापिताः भवन्ति। पदाभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये
द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तमाध्याये) अष्टमः खण्डः ।।८।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय के अष्टम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'—नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य द्वितीयपञ्चिकायाः द्वितीयोध्यायः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तम अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयपञ्चिकायाम्
तृतीयोऽध्यायः
[अथाष्टमोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— पर्यग्न्यादेर्विशेषांश्च स्तोकाः स्वाहाकृतीरपि ।
वपां चाधीयते प्रातरनुवाकविधिः परम् ॥१॥

अथापोनप्त्रीयादयो वक्तव्याः। तदर्थमादावाख्यायिकामाह—

(अपोनप्त्रीयानुवचनं विधातुमाख्यायिका)

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत, ते कवषमैलूषं सोमादनयन् दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्येऽदीक्षिष्टेति तं बहिर्धन्वोदवहन्नत्रैनं पिपासा हन्तु सरस्वत्या उदकं मा पादिति स बहिर्धन्वोदूह्ळः पिपासया वित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत् 'प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्विति तेनापां प्रियं धामोपागच्छत् तमापोऽनूदायंस्तं सरस्वती समन्तं पर्यधावत् ।।१।।

हिन्दी—(अब अपोनप्त्रीय इत्यादि के कथन के लिए पहले आख्यायिका को कह रहे हैं—) **ऋषयः वै** ऋषियों ने **सरस्वत्याम्** सरस्वती (नामक नदी) के किनारे **सत्रम् आसत** (एक बार द्वादशाह से आरम्भ करके तेरह रात्रियों तक चलने वाला) सत्र सम्पादित किया। **ते** उन (ऋषियों) ने **कवषम् ऐलूषम्** ईलूष के पुत्र कवष को **सोमाद् अनयन्** (यह कहते हुए) सोमयाग से बाहर कर दिया कि **दास्याः पुत्रः** दासी का पुत्र, **कितवः** जुआड़ी और **अब्राह्मणः** अब्राह्मण (यह कवष) **नः मध्ये** हम (शिष्ट लोगों) के मध्य में **कथं अदीक्षिष्ट** किस प्रकार दीक्षित होगा। अतः **तम्** उस (कवष) को **बहिः** (नदीतट) के बाहर **धन्वाद्वहन्** जलरहित-प्रदेश (रेगिस्तान) में बलात् निकाल दिया जिससे **एनम्** इस (कवष) को **पिपासा हन्तु** प्यास मार डाले और वह **सरस्वत्याः उदकम्** सरस्वती (नदी) के जल को **मा पात्** न पी सके। **बहिः धन्वोदूढः** (सरस्वती तट से) बाहर निर्जल-स्थान में निकाला गया और **पिपासया वित्तः** प्यास से व्याकुल **सः** उस (कवष) ने **'प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु' इति एतद् अपोनप्त्रीयम्** इस अपोनप्त्रीय (सूक्त) का **अपश्यत्** दर्शन किया। **तेन** उस (सूक्त के दर्शन) से **अपां प्रियं धाम** जलों के प्रिय-स्थान

को **उपागच्छत्** प्राप्त किया। **आपः तम् अनूदायन्** जल (देवता) अनुग्रह करके उस (कवष) को प्राप्त हुए और **सरस्वती तं समन्तम्** सरस्वती उसके चारो ओर **पर्यधावत्** प्रवाहित होने लगी।

सा० भा०—भृग्वङ्गिरःप्रभृतय ऋषयः कदाचित् सरस्वत्यामेतन्नामकनदीतीरे सत्रमासत। द्वादशामाहरभ्योपरितनं त्रयोदशरात्रादिकं बहुयजमानकं कर्म सत्रमित्युच्यते। तदुद्दिश्य तत्र स्थितवन्तः, सत्रमन्वतिष्ठन्नित्यर्थः। तदानीं तेषां मध्ये कश्चिदिलूषाख्यस्य पुरुषस्य पुत्रः कवषनामकोऽवस्थितोऽभूत्। ते च ऋषयस्तं कवषं सोमयागान्निःसारितवन्तः। तेषामभिप्राय उच्यते—दास्याः पुत्र इत्युक्तिरधिक्षेपार्था। कितवो द्यूतकारः, तस्माद् अब्राह्मणोऽयम्। ईदृशो नाऽस्माकं शिष्टानां मध्ये स्थित्वा कथं दीक्षां कृतवानिति तेषामभिप्रायः।[1] तं कवषं सरस्वतीतीराद् बहिर्दूरे धन्व जलरहितां भूमिं प्रत्युदवहन्नुद्धृतवन्तो बलाद्पसारितवन्तः। धन्वदेशे बलात् प्रेरयितॄणामयमभिप्रायः—अत्र जलवर्जितदेश एनं कवषं पिपासा मारयतु, सरस्वत्या नद्याः पवित्रमुदकमयं पापिष्ठो मा पिबत्विति। स च कवषोऽत्र सरस्वत्वया बहिर्दूरं धन्व निर्जलं देशं प्रत्युदूह्ळ उत्कर्षेणापसारितः पिपासया वित्तो लब्ध आक्रान्तस्तत्परिहारार्थमेतत् 'प्र देवत्रा' इत्यादिकमपोनप्तृदेवताकं सूक्तं[2] वेदमध्ये विचार्यापश्यत्। तेन सूक्तेन जपितेनापां जलाभिमानिनीनां देवतानां प्रियं स्थानमुपागच्छत्। तं चाऽऽगतमापो देवता अनूदायन्ननुग्रहेणोत्कर्षो यथा भवति तथा प्राप्तवत्यः। ततः सरस्वती नदी तं कवषं पर्यधावत् परितः प्रवाहवेगेन प्रवृत्ताऽऽसीत्॥

उक्तमर्थं लोकप्रसिद्ध्या द्रढयति—

तस्माद्धाप्येतर्हि परिसारकमित्याचक्षते यदेनं सरस्वती समन्तं परिससार॥२॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त को लोकप्रसिद्धि द्वारा दृढ़ कर रहे हैं—) **यद् एनं समन्तम्** जो इस (कवष) को चारो ओर से **सरस्वती परिससार** सरस्वती ने घेर लिया **तस्मात्** इसी कारण **एतर्हि** आज भी (वह तीर्थस्थल के रूप में) **परिसारकम् इति आचक्षते** परिसारक नाम से कहा जाता है।

सा० भा०—यद्यस्मिन् स्थाने सरस्वती नद्येनं कवषं समन्तं सर्वासु दिक्षु परिससार तत्स्थानमेतर्ह्यप्येतस्मिन्नपि काले तीर्थविशेषाभिज्ञाः पुराणकर्तारः परिसारकमित्येतन्नाम्ना व्यवहरन्ति॥

अथ सत्रानुष्ठायिनां तेषामृषीणां कृत्यं दर्शयति—

---

(१) अशिष्ट इति तस्य शिष्टाव्यवहार्यत्वम्, दास्याः पुत्र इति निन्दार्थमुक्तं न तु सत्यमित्याशयः।

(२) ऋ० १०.३०।

(सत्रानुष्ठायिनामृषीणां कृत्यम्)

ते वा ऋषयोऽब्रुवन् विदुर्वा इम देवा उपेमं ह्वयामहा इति तथेति तमुपाह्वयन्त तमुपहूयैतदपोनप्त्रीयमकुर्वत प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्विति तेनापां प्रियं धामोपागच्छन्नुपदेवानाम् ।। ३ ।।

हिन्दी—(अब सत्र का अनुष्ठान करने वाले ऋषियों के कृत्य को दिखला रहे हैं—) **ते वै ऋषयः अब्रुवन्** उन ऋषियों ने कहा–**इमम्** इस (कवष) को **देवाः विदुः** देवता लोग जानते है अतः **इमम् उप ह्वयामहै** इसको हम लोग बुला लें। **तथा इति** (उन लोगों ने इसे स्वीकार करते हुए कहा कि) ठीक है। (तब उन ऋषियों ने) **तम् उपाह्वयन्त** उस (कवष) को बुलाया और **तम् उपहूय** उसको बुलाकर 'प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेतु' **तेन** उस (प्रयोग) से **अपां प्रियं धाम उपागच्छन्** जलों के प्रिय स्थान को प्राप्त किया और **देवानाम् उप** देवताओं की समीपता को (प्राप्त किया)।

सा० भा०—ते भृग्वादयः परस्परमिदमब्रुवन्निमं कवषं देवाः सर्वेऽपि विदुर्वै जानन्त्येव, अतोऽस्य कितवत्वादिदोषो नास्ति, तस्मादिममस्मत् समीपं प्रत्याह्वयाम इति विचार्य तमुपहूय तेन दृष्टमेतदपोनप्तृदेवताकं प्र देवत्रेत्यादि सूक्तमकुर्वत प्रयुक्तवन्तः। तेन सूक्तेन जलदेवतानामन्यदेवतानां च प्रियं स्थानमुपागच्छन्॥

एतद् वेदनपूर्वकमनुष्ठानं च प्रशंसति—

उपापां प्रियं धाम गच्छत्युप देवानां जयति परमं लोकं य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेतदपोनप्त्रीयं कुरुते ।। ४ ।।

हिन्दी—(इस ज्ञान के साथ अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है और **यः च एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **अपोनप्त्रीयं कुरुते** अपोनप्त्रीय सूक्त का प्रयोग करता है, वह **अपां प्रियं धाम उप गच्छति** जलों के प्रिय स्थान को प्राप्त करता है, **देवानाम् उप** देवताओं के सामीप्य को (प्राप्त करता है) तथा **परमं लोकं जयति** परम लोक की जीत लेता है।

सा० भा०—यस्मादेवं प्रशस्तं तस्मादपोनप्त्रीयं कुर्यादिति विधिरुन्नेय॥

तस्मिन्नपोनप्त्रीयसूक्ते प्रातरनुवाकवत् प्रसक्तमर्धर्चेऽवसानं निवारयितुं नैरन्तर्यं विधत्ते—

(अपोनप्त्रीयसूक्तस्य नैरन्तर्येणानुवाचनम्)

तत्संततमनुब्रूयात् ।। ५ ।।

हिन्दी—(अपोनप्त्रीय सूक्त में प्रातरनुवाक के समान प्राप्त अर्धर्च पर अवसान करने का निवारण कर रहे हैं—) **तत्** उस (अपोनप्त्रीय सूक्त) का **सन्ततम् अनुब्रूयात्** (अर्धर्च पर अवसान न करके) निरन्तर अनुवाचन करना चाहिए।

होतुर्वेदनं प्रशंसति—

संततवर्षी ह प्रजाभ्यः पर्जन्यो भवति यत्रैवं विद्वानेतत्संततमन्वाह ।।६।।

हिन्दी—(होता के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जहाँ **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतत्** इस (सूक्त) का **सन्ततम् अन्वाह** निरन्तर अनुवाचन करता है, उसकी **प्रजाभ्यः** प्रजाओं के लिए **पर्जन्यः सन्ततवर्षी भवति** मेघ अपेक्षित वर्षा करने वाला होता है।

सा० भा०—पर्जन्यो मेघः, संततवर्षी नैरन्तर्येण वृष्टिमान्यावती वृष्टिरपेक्षिता सा संपूर्णा भवतीत्यर्थः।।

विपक्षे बाधकपूर्वकं स्वपक्षमुपसंहरति—

यदवग्राहमनुब्रूयाज्जीमूतवर्षी ह प्रजाभ्यः पर्जन्यः स्यात्, तस्मात् तत्संततमेवानुच्यम् ।।७।।

हिन्दी—**यद् अवग्राहम् अनुब्रूयात्** यदि (होता बार-बार अर्धर्च पर) अवसान करके अनुवाचन करता है तो उसके **प्रजाभ्यः** प्रजाओं के लिए **पर्जन्यः जीमूतवर्षी स्यात्** मेघ जीमूतवर्षा (पर्वत के समान रुक-रुक कर वर्षा) करने वाला होता है।

सा० भा०—अवग्राहं तस्मिंस्तस्मिन्नर्धर्चे पादे वाऽवगृह्यावगृह्य पुनः पुनरवसानं कृत्वा यद्यनुब्रूयात् तदा प्रजोपकारार्थं प्रवृत्तः पर्जन्यो जीमूतवर्षी स्यात्। जीमूः पर्वतः। 'जीमूतौ मेघपर्वतौ' इत्युक्तत्वात्।[१] अनुपयुक्ते पर्वत एव वर्षति न तूपयुक्तेषु सस्येष्वित्यर्थः। यस्मादेवं तस्मादवग्रहो न कार्यः। किं तु संततमेवानूच्यम्।।

तस्मिन् सूक्ते प्रथमाया ऋच आवृत्तिसहितं सांतत्यं विधीयते—

(प्रथमाया ऋचः सावृत्तिं सान्तत्यम्)

तस्य त्रिः प्रथमां संततमन्वाह तेनैव तत्सर्वं संततमनूक्तं भवति ।।८।।

हिन्दी—(उस अपोनप्त्रीय सूक्त की प्रथम ऋचा के आवृत्ति के साथ निरन्तरता का विधान कर रहे हैं—) **तस्य** उस (सूक्त) के प्रथम (ऋचा) को **त्रिः सन्ततम् अन्वाह** तीन बार निरन्तर अनुवाचन करता है। **तेन एव** उस (निरन्तर अनुवाचन) से **तत्सर्वम्** वह सम्पूर्ण (सूक्त) **सन्ततम् अनूक्तं भवति** निरन्तर अनुवाचन किया गया प्राप्त होता है।

सा० भा०—अस्य सूक्तस्य प्रथमायास्त्रिरावृत्तिः सांतत्येन सर्वस्यापि सूक्तस्य सांतत्यं सिध्यति। प्रथमायाः सांतत्यम् आश्वलायनो दर्शयति—अध्यर्धकारं प्रथमामृगावानमुत्तराः'[२] इति। त्रिरावृत्तायाः प्रथमाया अर्धत्रयेणावसानं कृत्वा पठेत् उत्तरासामृचामवसानं कृत्वा पाठः कर्तव्य इत्यर्थः।।

---

(१) अमरकोश ३.३.५८। (२) आश्व०श्रौ० ५.१.५।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टमाध्याये) प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टम अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—तत्सूक्तवचने प्रकारविशेषं विधत्ते—

(अपोनप्त्रीयसूक्तानुवचने प्रकारविशेषविधानम्)

ता एता नवानन्तरायमन्वाह ।।१।।

हिन्दी—(इस सूक्त के अनुवाचन में प्रकार-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **ताः एताः** उन (उस सूक्त) की इन (ऋचाओं) में **नव अनन्तरायम्** (प्रारम्भ वाली) नव ऋचाओं का विना अन्तराल के (निरन्तर) **अन्वाह** अनुवाचन करता है।

सा० भा०—प्र देवत्रेत्यारभ्य नवसंख्याका ऋचो याः सन्ति तासां द्वयोर्ऋचोर्मध्येऽन्तराया विच्छेदो न भवति तथाऽनुब्रूयात् ॥

अपरं विशेषं विधत्ते—

'हिनोता नो अध्वरं देवयज्येति' दशमीम् ।।२।।

हिन्दी—(अन्य विशेष को कह रहे हैं—) 'हिनोता नो अध्वरं देवयज्या' **इति दशमीं** (ग्यारहवीं ऋचा) का दशमी (ऋचा) के स्थान पर (पाठ करना चाहिए)।

विमर्श—(१) सूक्त की नवमी ऋचा तक निरन्तर अनुवाचन करने के बाद दशमी ऋचा 'आवर्वृततीरध' के स्थान पर एकादशी 'हिनोता नो' इत्यादि ऋचा का पाठ करना चाहिए।

सा० भा०—अध्ययनक्रमेणाऽऽवर्वृततीरिति दशमी[१]। ता परित्यज्य तदुत्तरभाविनी 'हिनोता नः'[२] इति दशमी कृत्वाऽनुब्रूयात्॥

परित्यक्तायास्तस्या अनुवचने कालविशेषं विधत्ते—

आवर्वृततीरध नु द्विधारा इत्यावृत्तास्वेकधनासु ।।३।।

हिन्दी—(सूक्त की परित्यक्त दशमी ऋचा के अनुवाचन में काल-विशेष का विधान

(१) ऋ० १०.३०.१०। (२) ऋ० १०.३०.११।

कर रहे हैं—) **आवृतासु एकधनासु** एकधना (नामक जल) को (नदी से) ले आते समय 'आवर्वृततीरध नु द्विधारा'—**इति** इस (दशमी ऋचा) का (एकादशी ऋचा 'हिनोता नो' के स्थान पर) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—अत्रायं प्रयोगक्रमः—सुत्यादिनात् पूर्वस्मिन् दिने अग्नीषोमीयं पशुमनुष्ठाय वसती वरीसंज्ञिताः सोमाभिषवकाले सवनीयाः[१] अपः स्वानीय वेद्यामवस्थाप्य मध्यरात्रादूर्ध्वं निद्रां परित्यज्याऽऽग्नीध्रधिष्ण्यादींस्तत्तन्मन्त्रैरभिमृश्य सोमादीनां पात्राण्यासाद्य प्रातरनुवाकार्थं होतारं संप्रेष्य प्रातरनुवाकान्ते 'शृणोत्वग्निः'[२] इति मन्त्रेण हुत्वा तत एकधनाः[३] अप आनेतुं गच्छन्नपोनप्त्रीयसूक्तार्थं होतारं संप्रष्यैकधना अप आनयेदिति। सोऽयं प्रयोगक्रम आध्वर्यवसूत्रेषु द्रष्टव्यः। तत्र होतारं प्रत्यपोनप्त्रीयविषये प्रैषम् **आपस्तम्बो** दर्शयति—'यत्राभिजानात्यभूदुषा रुशत्पशुरिति तत्प्रचरण्या जुहोति शृणोत्वग्निः समिधा हवं म इत्यपरं चतुर्गृहीतं गृहीत्वा संप्रेष्यत्यप इष्य होतर्मैत्रावरुणस्य चमसाध्वर्यवाद्रवैकधनिन आद्रवत नेष्टः पत्नीमुदानयोन्नेतर्होतृचमसेन वसतीवरीभिश्च चात्वालं प्रत्यास्स्व इति'[४] इति। अस्मात् प्रैषादूर्ध्वं होता सूक्तमनुब्रूयात्। तदाहाश्वलायनः—परिहितेऽप इष्य होतरित्युक्तोऽनभिहिंकृत्यापोनप्त्रीया अन्वाह'[५] इति। तत्र पूर्वोक्तदशमीसहिता ऋचोऽनूच्यैकधनिनः पुरुषाः प्रेषिताः सन्त एकधनाख्या अपो घटैर्गृहीत्वा यद् जलसमीपादावर्तन्ते तदानीं तास्वेकधनास्वप्स्वावृत्तासु सतीषु तदावृत्तिं प्रतीक्षमाणो होता पूर्वं परित्यक्ताम् 'आवर्वृततीः'[६] इत्येतामृचं तस्मिन् कालेऽनुब्रूयादित्यर्थः॥

ऋगन्तरकालं विधत्ते—

'प्रति यदापो अदृश्रमायतीरिति' प्रतिदृश्यमानासु ।।४।।

---

(१) "अग्नीषेमीयस्य वपामार्जनान्ते वसतीवरीग्रहणं" इति कात्या०श्रौ० ८.९.७। 'सोमार्था आपो वसतीवरीशब्देनोच्यन्ते'–इत्यादिश्च तद्वृत्तिः। 'यत्र होतुः गृह्णाति'–इति आप० श्रौ० १२.५.५। यावत्यध्वनि प्रातरनुवाकस्य शब्दः श्रूयते, तावत्येव वहन्तीनामपो गृह्णाति' इति च तद्वृत्तिः। 'वसतु नु न इदमिति तद्वसतीवरीणां वसतीवरीत्वम्'–इति तन्नामनिर्वचनम् तै०सं० ६.४.२.१। द्रष्टव्यम्। वसतीवरीग्रहणविध्यादिकं तु तत्रैव तत उत्तरं द्रष्टव्यम्। तत्तन्मन्त्रास्त्वाम्नातास्तत्र प्रथमे काण्डे ३.१२.१३।

(२) तै०सं० १.३.१३।

(३) 'एकधनशब्दार्थं स्वयमेव व्याचष्टे—(प्रत्यगेकधनानयुग्मान्) उदहरणांस्त्रिप्रभृत्या पञ्चदशभ्यः' इति सू०। उदकं ह्रियत एभिरित्युदहरणाः कलशाः। त्र्यादि पञ्चदशपर्यन्तम्। अयुग्मसंख्यान् विषमसंख्यान् (शत०ब्रा० ३.९.३.३४)। 'अग्निष्टोमे त्रयः पञ्च वा आप्तोर्यामे त्रयोदय वा पञ्चदश वेति'–इत्यादि कात्या०श्रौ० ९.२.२३ वृ०। एकधनस्थानं चोत्तरस्य हविर्धानस्याधस्तादक्षस्य पश्चात्–इति च तत्रैव० ९.४.१।

(४) आप०श्रौ० १२.५.१.२। (५) आश्व०श्रौ० ५.१.१। (६) ऋ० १०.३०.१०।

हिन्दी—(अन्य ऋचा के प्रयोग काल का विधान कर रहे हैं—) **प्रतिदृश्यमानासु** (एकधना नामक जल को लेकर) लौटते हुए पुरुषों के देखने पर 'प्रति यदापो अदृश्रमायती:' इति इस (तेरहवी ऋचा) का (होता अनुवाचन करता हैं)।

सा० भा०—ता एकधनाख्या आपो ग्रहणस्थानात् प्रतिनिवृत्य तैः पुरुषैरानीयमाना यदा होत्रा दृश्यन्ते तदानीं 'प्रति यदापः'[१] इत्येतामृचमनुब्रूयात्।।

पुरनप्यृगन्तरकालं विधत्ते—

'आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था' इत्युपायतीषु ।।५।।

हिन्दी—(पुन: अन्य ऋचा के अनुवाचन काल का विधान कर रहे हैं–) **उपायतीषु** (जल के चत्वाल के) समीप आने पर 'आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था:'—**इति** इस (ऋचा) का (अनुवाचन करता है)।

सा० भा०—होत्रा दृष्टास्ता एकधनाख्या आपो यदा चात्वालसमीपं प्रत्यागच्छन्ति तदानीमुपायतीषु समीपमागच्छन्तीषु तासु 'आ धेनवः'[२] इत्येतामृचं ब्रूयात्।।

पुनरप्यृगन्तरकालं विधत्ते—

'समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः' इति समायतीषु ।।६।।

हिन्दी—(पुन: अन्य ऋचा के अनुवाचन काल का विधान कर रहे हैं—) **समायतीषु** (वसतीवरी और एकधना नामक जल के) परस्पर मिलाये जाने के समय 'समन्या यन्त्युप यन्त्यन्या:' इति इस (ऋचा) का (होता अनुवाचन करता है।)

सा० भा०—पूर्वत्र 'उन्नेतर्होतुचमसेन वसतीवरीभिश्च चात्वालं प्रत्यास्स्वेति' इति **आपस्तम्ब**सूत्रोक्तः[३] प्रैष उदाहृतः। तत उन्नेता होतृसंबन्धिनं चमसं वसतीवर्याख्याः पूर्वदिनानीता अपश्चत्वालसमीपे समानयति। मैत्रावरुणस्य चमसाध्वर्यवाद्रवेति प्रेषितत्वान् मैत्रावरुणस्य परिचारकश्चमसाध्वर्युरपि तदीयं चमसं चात्वालसमीपे समानयति। तेन होतृचमसे मैत्रावरुणचमसगतास्वेकधनास्वध्वर्युणा समीपनीतासु संयोजयितुं समागातासु 'समन्या यन्ति' इत्यादिकामृचमनुब्रूयात्।[४] तमेतमनुवचनकालम् **आपस्तम्बो** विशदयति—'होतृचमसेन वसतीवरीभ्यो' निषिच्योपरि चात्वाले होतृचमसं मैत्रावरुणचमसं च संस्पर्श्य वसतीवरीर्व्यानयति 'समन्या यन्ति' इत्यभिज्ञाय होतृचमसान् मैत्रावरुणचमस आनयति मैत्रावरुणचमसाद्धोतृचमस एतद्वा विपरीतम्'[५] इति।।

एतस्या ऋचः प्रशंसार्थमाख्यायिकामाह—

---

(१) ऋ० १०.३०.१३ (२) ऋ० ५.४३.१।
(३) आप०श्रौ० १२.५.२ (४) ऋ० २.३५.३
(५) आप०श्रौ० १२.६.१,२

आपो वा अस्पर्धन्त वयं पूर्वं यज्ञं वक्ष्यामो वयमिति याश्चेमाः पूर्वेद्युर्वसतीवर्यो गृह्यन्ते याश्च प्रातरेकधनास्ता भृगुरपश्यदापो वै स्पर्धन्त इति ता एतयर्चा समज्ञपयत् 'समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः' इति ताः समजानत ।।७।।

हिन्दी—(इस ऋचा की प्रशंसा में आख्यायिका को कह रहे हैं—) **याः च इमा पूर्वेद्युः वसतीवर्यः गृह्यन्ते** जो ये पूर्ववर्ती दिन लाये गये वसतीवरी (नामक जल हैं) और **याः च प्रातः एकधनाः** जो (उसी दिन) प्रात:काल लाये गये एकधना (नामक जल) हैं उन **आपः वै अस्पर्धन्त** जलों ने परस्पर स्पर्धा किया कि **वयं पूर्वं यज्ञं वक्ष्यामः वयम्** हम पहले यज्ञ का वहन करेंगे, हम पहले यज्ञ का वहन करेंगे। **ताः भृगुः अपश्यत** उन (स्पर्धा करते हुए जलों) को भृगु ऋषि ने देखा कि **आपः वै स्पर्धन्त** जल परस्पर स्पर्धा कर रहे हैं। **ताः** उन (जलों) को 'समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः' **इति एतया ऋचा** इस ऋचा से **समज्ञपयत्** परस्पर एक मत वाला किया। **इति ताः समजानत** (इस ऋचा से) वे (जल) परस्पर एक मत हो गये।

सा० भा०—पूर्वेद्युः संपादिता वसतीवर्याख्या या आपो याश्च परेद्युः संपादिता एकधनाख्यास्ता उभयविधा अपि यज्ञनिर्वहणे पूर्वभावित्वार्थमन्योन्तयं स्पर्धां कृतवत्यः। तदानीं भृगुनामक ऋषिराप एव परस्परं स्पर्धन्त्य इत्यपश्यत्। अर्थवादत्वादचेतनानां स्पर्धायां न चोदनीयम्। यद्वा, तत्तदभिमानिनी देवताऽस्पर्धतेत्यवगन्तव्यम्। ततो भृगुः स्पर्धां दृष्ट्वा 'समन्या यन्ति' इत्येतयर्चा ता उभयीरपः समज्ञपयत् संज्ञानं परस्पमैकमत्यं प्रापयत्। ततो मन्त्रसामर्थ्यात् ना उभयविधा आपः समजानतैकमत्यं प्राप्ताः।।

वेदनं प्रशंसति—

संजानाना हास्याऽऽपो यज्ञं वहन्ति य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्य** इस (जानने वाले) के **संजानानाः आपः** परस्पर एक मत हुए जल **यज्ञं वहन्ति** यज्ञ का निर्वहन करते हैं।

सा० भा०—या वसतीवर्यो याश्चैकधनास्ता द्विविधा अपि संजानानाः परस्परमैकमत्यं प्राप्ता अस्य विदुषो यज्ञं निर्वहन्ति।।

ऋगन्तरकालं विधत्ते—

'आपो न देवीरुपयन्ति होत्रियमिति होतृचमसे समवनीयमानास्वन्वाह वसतीवरीष्वेकधनासु च ।।९।।

हिन्दी—(पुनः अन्य ऋचा के प्रयोग के काल का विधान कर रहे हैं—) वसती-

वरीषु एकधनासु च वसतीवरी और एकधना नामक दोनों जलों को **होतृचमसे समवनीयमानासु** होतृचमस में डाले जाते समय 'आपो न देवीरुपयन्ति होत्रियम्'—**इति अन्वाह** इस (ऋचा) का होता अनुवाचन करता है।

सा० भा०—एतासु द्विविधास्वप्सु होतृचमसे सिच्यमानासु तस्मिन् काले 'आपो न देवीः'[१] इत्येतामृचमनुब्रूयात्॥

अथ होतुः कंचिद यजुरात्मकं मन्त्रं विधत्ते—

(होतुः प्रश्नार्थं यजुर्मन्त्रः)

अवेरपोऽध्वर्या३उ इति होताऽध्वर्युं पृच्छति ।।१०।।

हिन्दी—(अब होता के लिए किसी यजुष् मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) 'अवेः अपो अध्वर्युः आ नु' अर्थात् हे अध्वर्यु। क्या तुम्हें जल प्राप्त हो गये हैं—**इति होता अध्वर्युं पृच्छति** इस प्रकार होता अध्वर्यु से पूछता है।

सा० भा०—हे अध्वर्यो द्विविधा अपः किमवेर्लब्धवानसि। अस्मिन् मन्त्रे प्लुतिः[२] प्रश्नार्था॥

तमेतं मन्त्रं व्याचष्टे—

आपो वै यज्ञोऽविदो यज्ञा३म्, इत्येव तदाह ।।११।।

हिन्दी—(इस उपर्युक्त मन्त्र का व्याख्यान कर रहे हैं—) **आपः वै यज्ञः** (सोमसवन का साधन होने के कारण) जल यज्ञरूप है। अतः **अविदः यज्ञम्** क्या यज्ञरूप जल मिल गया' **इति एव तदाह** यही (होता अध्वर्यु से) कहता है।

सा० भा०—एतद्विविधा अप्यापः सोमाभिषवसाधनत्वेन यज्ञनिर्वाहकत्वाद् यज्ञस्वरूपा एव। तथा सति यज्ञमब्रूपमविदः किं लब्धवानसीत्यनेन प्रकारेण तदाह तन्मन्त्रवाक्यं ब्रूते। यज्ञा३मिति प्लुतिः[३] पूर्ववत्॥

अध्वर्योः प्रत्युत्तरमन्त्रं विधत्ते—

(अध्वर्योः प्रत्युत्तरमन्त्रः)

उतेमनन्नमुरित्यध्वर्युः प्रत्याह ।।१२।।

हिन्दी—(अध्वर्यु द्वारा उत्तर में दिये गये मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **उत ईम अनन्नम् उ** यहाँ दोनों जल प्राप्त हो गये हैं—**इति अध्वर्युः प्रत्याह** इस प्रकार अध्वर्यु (होता से) प्रत्युत्तर कहता है।

---

(१) ऋ० १.७३.२। (२) पा०सू० ७.२.१०७ वा० १।
(३) पा०सू० ८.२.१०७ वा० १।

सा० भा०—उतशब्दोऽपिशब्दार्थ:। ईमिति[1] वाक्यपूरणार्थो निपात इमा इत्यस्मिन्नर्थे वर्तते। इमा द्विविधा अप्यापोऽनन्नमुरतिशयेनोपनता: प्राप्ता इति।।

एतमध्वर्योरुत्तरमन्त्रं व्याचष्टे—

उतेमा: पश्येत्येव तदाह ।।१३।।

हिन्दी—(अध्वर्यु द्वारा कथित प्रत्युत्तर मन्त्र का व्याख्यान कर रहे हैं—) **उत इमा: पश्य** (हे होता) इन (दोनो जलों) को देखो—**इति एव तदाह** इसी को यह (अध्वर्यु होता से) कहता है।

सा० भा०—इमा द्विविधा अप्यपो हे होत: पश्येत्यनेन प्रकारेण तन्मन्त्रवाक्यं ब्रूते। शाखान्तरेऽप्येतत् सर्वं श्रुतम्—अध्वर्योऽवेरपा इत्याहोतेमनन्नमुरुतेमा: पश्येति वावैत-दाहेति।।[2]

अथ किञ्चिन्निगदरूपेण मन्त्रेण होतु: प्रत्युत्थानं विधत्ते—

(निगदरूपेण मन्त्रेण होतुः प्रत्युत्थानविधानम्)

तास्वध्वर्यो इन्द्राय सोमं सोता मधुमन्तं वृष्टिवनि तीव्रान्तं बहुरमध्यं वसुमते रुद्रवत आदित्यवत ऋभुमते विभुमते वाजवते बृहस्पतिवते विश्वदेव्यावते। यस्येन्द्र: पीत्वा वृत्राणि जङ्घनत् प्र स जन्यानि तारिषो३मिति प्रत्युत्तिष्ठति ।।१४।।

हिन्दी—(अब किसी निगद रूप मन्त्र से होता के प्रत्युत्थान का विधान कर रहे हैं—) (मन्त्र–) **अध्वर्यो** हे अध्वर्यु! **तासु** उन (जलों) में **वसुमते** वसुवों से युक्त, **रुद्रवते** रुद्रों से युक्त **आदित्यवते** आदित्यों से युक्त, **ऋभुमते** ऋभुओं से युक्त, **विभुमते** समर्थ भृत्यों से युक्त, **वाजवते** अन्नों से युक्त, **बृहस्पतिवते** बृहस्पति से युक्त और **विश्वदेव्यावते** विश्वेदेवो से युक्त **इन्द्राय** इन्द्र के लिए, **मधुमन्तम्** माधुर्ययुक्त **वृष्टिवनि** वृष्टिप्रदाता **तीव्रान्तम्** अवश्यम्भावी फल देने वाले और **बहुरमध्वम्** बहुत से अनुष्ठानों के मध्य में रहने वाले **सोमं सोत:** सोम का सवन करने वाले होवो। **इन्द्र:** इन्द्र ने **यस्य** जिस (सोम) के (रस को) **पीत्वा** पान करके **वृत्राणि जङ्घनत्** (यजमान के) शत्रुओं को मार डाला है और **स:** उस (इन्द्र) ने **जन्यानि** सम्भावित पापों को **प्र तारिष** प्रकृष्टरूप से पार करता है। पुन: **ओम् इति प्रत्युतिष्ठति** ओम् यह (कह कर) होता उनके प्रति उठता है।

सा० भा०—तास्वित्यादिरोमित्यन्तो निगद:। तेन मन्त्रेण होता द्विविधानामप्यपां

---

(१) अथ ये प्रवृत्तेऽर्थेऽमिताक्षरेषु ग्रन्थेषु वाक्यपूरणा अगच्छन्ति, पदपूरणास्ते मिताक्षरेऽ-वनर्थका: कमीमिद्विति (कम्, ईम्, इत, उ)—इति निरु० ३.३.५।

(२) तै०सं० ६.४.३.४।

प्रत्युत्थानं कुर्यात्। हे अध्वर्यो द्विविधास्वप्सु सोमं सोता सोमस्याभिषवकर्ता भव। कीदृशं सोमं, मधुमन्तं माधुर्यरसोपेतं वृष्टिवनि वृष्टेः संभजनकर्तारं वृष्टिप्रदमित्यर्थः। तीव्रान्तं तीव्रम-वश्यंभावि फलमन्ते यस्य सोमस्य सोऽयं तीव्रान्तः। अविघ्नेन सोमयागे समाप्ते सति सर्वथा फलत्येवेत्यर्थः। बहुरमध्यं बहुलमङ्गादिकमनुष्ठानं मध्ये प्रारम्भसमाप्त्योरन्तराले यस्यासौ बहुरमध्यः। ऋत्विग्वरणमारभ्योदसवानीयेष्टेः पूर्वं दीक्षणीयाद्यङ्गकर्मभिरुपांश्वन्तर्यामग्रहादि-भिश्च प्रधानैरनुष्ठानबाहुल्यं प्रसिद्धम्। कीदृशायेन्द्राय? वसुरुद्रादित्यैरन्यैरप्यृभुभिर्देवैर्विभिः प्रधानैरनुष्ठानबाहुल्यं बृहस्पतिना सुरगुरुणा सर्वदेवहितैर्भोग्यैश्च युक्तत्वेन वस्वादिमते। अय-मिन्द्रो यस्य सोमस्य वल्लीरूपस्य रसं पीत्वा वृत्राणि यजमानस्य शत्रून् पापानि च जङ्घनद् विनाशितवांस्तादृशं सोममिति पूर्वत्रान्वयः; अथवा यस्य यजमानस्य संबन्धिनं सोमं पीत्वेति व्याख्येयम्। स यजमानो जन्यानि जने संभावितानि पापानि प्रतारिषत् प्रकर्षेण तीर्णवान् भवति। ओमित्यङ्गीकारार्थः। अयं युक्तार्थ एवमेवेत्यङ्गीकारार्थः॥

एतन्मन्त्रसाध्यं प्रत्युत्थानमुपपादयति—

प्रत्युत्थेया वा आपः प्रति वै श्रेयांसमायन् तमुत्तिष्ठन्ति, तस्मात् प्रत्युत्थेयाः ।।१५।।

हिन्दी—(इस मन्त्र से साध्य प्रत्युत्थान को उपपादित कर रहे हैं—) **प्रत्युत्थेयाः वै आपः** जल ही प्रत्युत्थान के योग्य हैं। **श्रेयांसम् आयन्** (जिस प्रकार लोक में किसी) अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति (आचार्य इत्यादि) के आने पर **तं प्रति उत्तिष्ठन्ति** उसके प्रति (सम्मान में) सभी लोग खड़े हो जाते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **प्रत्युत्थेयाः** (जल) प्रत्युत्थान के योग्य है।

सा०भा०—याश्च द्विविधा आपस्ताः प्रत्युत्येषा एव। दर्शनानन्तरमेव प्रत्युत्थानं कर्तव्यम्। लोकेऽपि श्रेयांसमतिप्रशस्तमाचार्यपित्रादिकमायान्तं स्वसंमुखत्वेन समागच्छन्तं प्रति शिष्यपुत्रादय उत्तिष्ठन्त्येव।[१] तस्मादतिप्रशस्ता आपः प्रत्युत्थानयोग्याः॥

न केवलं प्रत्युत्थानं किं त्वनुवर्तनमपि कर्तव्यमिति विधत्ते—

(होतुरपानुवर्तनविधानम्)

अनुपर्यावृत्याः ।।१६।।

हिन्दी—(केवल प्रत्युत्थान ही नहीं किन्तु अनुवर्तन करने का भी विधान कर रहे हैं—) **अनुपर्यावृत्याः** (ये जल प्रत्युत्थान ही नहीं प्रत्युत) परितः सञ्चरण (प्रदक्षिणा) के योग्य भी हैं।

सा०भा०—अनु पृष्ठतः पर्यावृत्याः परितः संचरणयोग्या द्विविधा आपः॥

---

(१) मनु० २.११९,१२० श्लो०।

तदेतदुपपादयति—

अनु वै श्रेयांसं पर्यावर्तन्ते तस्मादनुपर्यावृत्या अनुब्रुवतैवानुप्रपत्तव्यम्।।१७।।

हिन्दी—(उक्त कथन को उपपादित कर रहे हैं—) **श्रेयांसम् अनु पर्यावर्तन्ते** (आचार्य इत्यादि) श्रेष्ठ का अनुसरण करके (शिष्य) सञ्चरण करता है, **तस्मात्** इसी कारण **अनुब्रुवता** (पूर्वोक्त अपोनप्त्रीय का) अनुवाचन करते हुए (शिष्यस्थानीय होता) द्वारा **अनुपर्यावृत्य** (जल का) अनुगमन करते हुए **अनुप्रपत्तव्यम्** पीछे-पीछे अनुगमन किया जाना चाहिए।

सा० भा०—श्रेयांसमाचार्यादिकमनुगम्य शिष्यादय: परित: संचरन्ति। तस्मादत्रापि शिष्यस्थानीयेन होत्रा पूर्वोक्तमपोनप्त्रीयं निगदमनुब्रुवतैव तासामपां पृष्ठतोऽनुगन्तव्यम्।।

ननु यागकर्तृत्वाद् यजमानस्यैवानुव्रजनं युक्तं न तु होतुरित्याशङ्क्याऽऽह—

ईश्वरो ह यद्यप्यन्यो यजेताथ होतारं यशोऽर्तोस्तस्मादनुब्रुवतैवानुप्रपत्तव्यम् ।।१८।।

हिन्दी—**यद्यपि अन्य: यजेत्** यद्यपि दूसरा (व्यक्ति) यजन करता है **अथ** तब भी **होतारं यशो अर्तो: ईश्वर:** होता ही यश और कीर्ति प्राप्त करने में समर्थ होता है। **तस्मात्** इसी कारण **अनुब्रुवता** अनुवाचन करते हुए (शिष्य-स्थानीय होता) के द्वारा ही **अनुप्रपत्तव्यम्** (जलों का) अनुगमन किया जाना चाहिए।

सा० भा०—यद्यपि होता यागकर्ता न भवत्यथाप्यनुव्रजन्तं होतारं यश: कीर्तिरर्तोरीश्वरो ह प्राप्तुं समर्थैव। तस्मात् कीर्तिहेतुत्वादनुब्रुवतैवं होत्रा तासामपामनुगमनं कर्तव्यम्।।

ननु प्र देवत्रेत्यादीनामृचां तास्वध्वर्यवित्यादिनिगदस्य च पूर्वमेवानूक्तत्वाद् इत: परमनुगमनकाले किमनुवक्तव्यमित्याशङ्क्यानुवक्तव्यामवशिष्टामृचं विधत्ते—

'अम्बयो यन्त्यध्वभि:'[1] इति एतामनुब्रुवन्नु प्रपद्येत ।।१९।।

हिन्दी—(अन्य अवशिष्ट ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'अम्बयो यन्त्यध्वभि:' **इति एताम् अनुब्रवन्** इस ऋचा का अनुवाचन करते हुए (होता) **अनुप्रपद्येत्** (जल का) अनुगमन करें।

अस्या ऋचो द्वितीयतृतीयपादावनुवदति—

'जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पय:' इति ।।२०।।

हिन्दी—(उपर्युक्त ऋचा के द्वितीय और तृतीय पादों को कह रहे हैं—) **अध्वरीयतां जामय:** यज्ञ की इच्छा करने वाले (यजमान) की बहनें **मधुना पय: पृञ्चती:** मधुर

---

(१) ऋ० १.२३.१६।

(सोमरस) से जल को संयोजित करती हुई होती है और **अम्बयः** माता के समान (वसतीवरी और एकधना नामक जल) **अध्वभिः** अनेक मार्गों से **यन्ति** जाते हैं।

सा० भा०—तस्यायमर्थः—अम्बेत्यव्ययं मातृवाचकं तद्रूपत्वं यातीत्यम्बयाः। छान्दसो ह्रस्वः। मातृसमाना एता द्विविधा आपोऽध्वभिर्नानाविधैर्मार्गैर्यन्ति गच्छन्ति। कीदृश्यः? अध्वरीयतामध्वरं यज्ञमात्मन इच्छतां यजमानानां जामयः सनाभयो भ्रातृस्थानीया इत्यर्थः। तथा स्वकीयं पय उदकं मधुना मधुरेण सोमरसेन पृञ्चतीः संयोजयन्त्यः॥

अस्यामृचि मधुशब्दतात्पर्यं दर्शयति—

योऽमधव्यो यशोऽर्तोर्बुभूषेत् ॥ २१॥

हिन्दी—(इस ऋचा में प्रयुक्त 'मधु' शब्द के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **यः अमधव्यः** जो मधुर (सोमरस) को नहीं चाहता है और **यशः अर्तोः बुभूषेत्** यश पाने में समर्थ होना चाहता है (तो वह पूर्वोक्त ऋचा का अनुवाचन करते हुए अनुगमन करें)।

सा० भा०—यः पुमान् पूर्वममधव्यो मधुररसं सोमं नार्हति स यदि यशोऽर्तोः सोमयागनिमित्तां कीर्तिं प्राप्तुं समर्थो भवितुमिच्छेत् स पुमान् पूर्वोक्तामनुब्रुवन्ननुप्रपद्येतेत्यन्वयः॥

ऋगन्तरं फलविशेषाय विधत्ते—

(फलविशेषाय ऋगन्तरकथनम्)

(तत्र तेजस्कामाय ऋगन्तरकथनम्)

'अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह' इति तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामः ॥ २२॥

हिन्दी—(फल-विशेष के लिए अन्य ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **तेजस्कामः ब्रह्मवर्चसकामः** तेज की कामना करने वाला और ब्रह्मवर्चस की कामना करने वाला (यजमान) 'अमूर्या उपसूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह' अर्थात् यह सम्पूर्ण सूर्य के पास है अथवा सूर्य इस जल के पास है'—**इति** इस (ऋचा) का (अनुवाचन करते हुए अनुगमन करें)।

सा० भा०—शरीरकान्तिं श्रुताध्ययनसंपत्तिं च कामयमानः पुमान् 'अमूर्याः'[१] इत्येतामृचमनुब्रूयात्।

फलान्तरार्थमृगन्तरं विधत्ते—

(पशुकामाय ऋगन्तरकथनम्)

'अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः' इति पशुकामः ॥ २३॥

---

(१) ऋ० १.२३.१७।

हिन्दी—(फल-विशेष के लिए अन्य ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **पशुकामः** पशु की कामना करने वाला (यजमान) 'अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः' अर्थात् हमारी गायें जिस जल का पान करती हैं, उस जल का हम आह्वान करते हैं—**इति** इस ऋचा का (अनुवाचन करते हुए अनुगमन करें)।

सा० भा०—पशुप्राप्त्यर्थम् 'अपो देवीः'[१] इत्येतामृचमनुब्रूयात्।।

अम्बयो यन्त्यमूर्या अपो देवीरित्येतासां तिसृणां विधिमुपसंहरति—

(विधेरुपसंहारः)

ता एताः सर्वा एवानुब्रुवन्ननुप्रपद्येतैतेषां कामानामवरुद्ध्यै ।। २४ ।।

हिन्दी—(उपर्युक्त तीनों ऋचाओं का उपसंहार कर रहे हैं—) **एतेषां सर्वेषां कामानाम्** उपर्युक्त इन सभी (तीनों) कामनाओं की **अवरुद्ध्यै** प्राप्ति के लिए **ताः एताः सर्वाः एव अनुब्रुवन्** उन (उपर्युक्त) इन सभी (तीनों ऋचाओं) का अनुवाचन करते हुए **अनुप्रपद्येत्** अनुगमन करना चाहिए।

सा० भा०—अथवा नित्यानुष्ठानार्थोऽयं पुनर्विधिः। एतेषामित्यादिस्तत्प्रशंसार्थः।।

वेदनं प्रशंसति—

एतान् कामानवरुन्धे य एवं वेद ।। २५ ।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **एतान् कामान् अवरुन्धे** इस सभी कामनाओं को प्राप्त करता है।

ऋगन्तरस्य कालं विधत्ते—

'एमा अग्मन् रेवतीर्जीवधन्या' इति साद्यमानास्वन्वाह वसतीवरीष्वेकधनासु च ।। २६ ।।

हिन्दी—(अन्य ऋचा के अनुवाचन काल का विधान कर रहे हैं—) **वसतीवरीषु एकधनाषु साद्यमानासु** वसतीवरी और एकधना (नामक जलों) को (वेदि पर) रखे जाते समय 'एमा अग्मन् रेवतीर्जीवधन्या' अर्थात् जीवों के लिए हितकारी और धन के आधारभूत ये (जल) आ रहे हैं'—**इति अन्वाह** इस (ऋचा) का (होता) अनुवाचन करता है।

सा० भा०—उक्ता द्विविधा आपो यदा वेद्यां साद्यन्ते तदानीम् 'एमा अग्मन्'[२] इत्येतामनुब्रूयात् ।।

ऋगन्तरेण समाप्तिं विधत्ते—

---

(१) ऋ० १.२३ १८। (२) ऋ० १०.३०.१४।

(अपोनप्त्रीय समापनविधानम्)

'आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदम्' इति सन्नासु स एतया परिदधाति ।। २७।।

हिन्दी—(अन्य ऋचा के द्वारा कर्म की समाप्ति को कह रहे हैं—) **सन्नासु** (जलों के वेदि पर) रख दिये जाने पर 'आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदम्' अर्थात् तत्परता के साथ जल कुश की ओर जा रहे हैं"—**इति एतया** इस (ऋचा) से **सः** वह (होता) **परिदधाति** कर्म का समापन करता है।

सा० भा०—द्विविधास्वप्सु वेद्यां स्थापितास्वाऽग्मन्नाप[1] इत्येतामृचमनुब्रूयात्। सोऽ-नुवक्ता होतैतयैवर्चाऽनुवचनं समापयेत्।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टमाध्याये) द्वितीयः खण्डः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टम अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—पूर्वस्मिन् खण्डे द्विविधास्वप्सु वेद्यां सादितास्वपोनप्त्रीयानुवचनस्य समापनमुक्तम्। तत्र सादनप्रकार आपस्तम्बेन दर्शितः—'अपरया द्वारा हविर्धानमपः प्रपाद-यति पूर्वया गतश्रियः पूर्वया यजमानः प्रपद्यते दक्षिणस्य हविर्धानस्य प्रधुरे प्रचरणीयं सादयति यं कामयेत पण्डकः स्यादिति तं प्रचरण्योपस्पृशेदेतस्यैव हविर्धानस्याधस्तात् पुरोक्षं मैत्रावरुणचमसमुत्तरस्यां वर्तन्यां पुरश्चक्रँहोतृचमसमुत्तरस्य हविर्धानस्याधस्तात् पुरोक्षं वसती-वरीः पश्चादक्षमेकधना एतद्वा विपरीतम् अदो यजमानोऽनुप्रपद्यते'[2] इति। एवं सादिता-स्वप्स्वपोनप्त्रीया ऋचः समाप्य होताऽवतिष्ठते। ततोऽध्वर्युः दधिग्रहेण[3] उपांशुग्रहेण, अदाभ्यग्रहेण उपांशुग्रहेणान्तर्यामग्रहेण क्रमात् प्रचरति[4] तावदयं होता वाचं नियम्यैवास्ते।।

तदिदं विधत्ते—

(उपांश्वन्तर्यामयोर्विधानम्)

(तत्र वाग्विसर्जनम्)

शिरो वा एतद् यज्ञस्य यत्प्रातरनुवाकः, प्राणापाना उपांश्वन्तर्यामौ;

---

(१) ऋ० १०.३०.१५। (२) आप०श्रौ० १२.६.९।

(३) दधिग्रहो नित्यः काम्यश्च। काम्यावितरौ (आज्यग्रहसोमग्रहौ) आप० १२.७.८।

(४) ग्रहकाण्डं तद्ब्राह्मणं (तै०सं० १.४.१-४२;६.४,५) चैतद द्वयमेव द्रष्टव्यम्।

वज्र एव वाङ् नाहुतयोरुपांश्वन्तर्यामयोर्होता वाचं विसृजेत ।।१।।

हिन्दी—(अब उपांशु और अन्तर्याम ग्रह का विधान कर रहे हैं—) **यत् प्रातरनुवाकः** जो प्रातरनुवाक है **एतद् यज्ञस्य शिरः वै** यह यज्ञ का शिर-स्थानीय है। **प्राणापानौ उपांश्वन्तर्यामौ** प्राण और अपान क्रमशः उपांशु और अन्तर्याम हैं। **वज्र एव वाक्** वाणी वज्ररूप है। अतः **आहुतयोः उपांश्वन्तर्यामयोः** उपांशु और अन्तर्याम आहुति के समय **होता वाचं विसृजेत** होता वाणी का विसर्जन (नियमन) करें।

सा० भा०—योऽयं प्रातरनुवाकः पूर्वमुक्तः सोऽयं यज्ञस्य शिरःस्थानीय उपांश्वन्तर्यामग्रहौ प्राणापानस्थानीयौ, "एष ते योनिः प्राणाय त्वा", "एष ते योनिरपानाय त्वेति" तदीयमन्त्रयोः श्रवणात्।[१] होतुर्या वाक् सा वज्रस्थानीया। अत एवान्यत्र श्रूयते—'यद्वै होताऽध्वर्युमभ्याह्वयते वज्रमेवमभिप्रवर्तयति'[२] इति। एवं सत्यध्वर्युणोपांश्वन्तर्यामग्रहयोर्हुतयोः सतोः पश्चाद्धोता वाचं विसृजेत्। तावत्पर्यन्तं वाचं नियच्छेत्।।

विपक्षबाधकपूर्वकं स्वपक्षमुपसंहरति—

यदहुतयोरुपांश्वन्तर्यामयोर्होता वाचं विसृजेत् वाचा वज्रेण यजमानस्य प्राणान् वीयाद् य एनं तत्र ब्रूयाद् वाचा वज्रेण यजमानस्य प्राणान् व्यगात् प्राण एनं हास्तीति शश्वत् तथा स्यात् तस्मान्नाहुतयोरुपांश्वन्तर्यामयोर्होता वाचं विसृजेत ।।२।।

हिन्दी—(इस विषय में विपक्ष की बाधा को कह कर अपने पक्ष कर उपसंहार कर रहे हैं—) **यद् अहुतयोः उपांश्वन्तर्यामयोः** यदि उपांशु और अन्तर्याम होम से पहले **होता वाचं विसृजेत्** होता वाणी का नियमन करे तो **वाचा वज्रेण** वाणी रूपी वज्र से **यजमानस्य प्राणान्** यजमान के प्राणों को **वीयात्** अवरुद्ध करता है। **तत्र** उस (होता के वाणी के नियमन करने) पर **यः** जो (कोई अन्य आकर) **एनं ब्रूयात्** (इस प्रकार) इस (होता) से कहे कि **वाचा वज्रेण** वाणी रूपी वज्र से **यजमानस्य प्राणान्** यजमान के प्राणों को **व्यगात्** इसने अवरुद्ध कर दिया है अतः **प्राणः एनं हास्यति** प्राण इस (यजमान) को छोड़ देगा—**इति** इस प्रकार (अन्य पुरुष द्वारा कहा गया होता) **शश्वत् तथा स्यात्** अवश्य ही वैसा हो जाता है। **तस्मात्** इसी कारण **उपांश्वन्तर्यामयोः आहुतयोः** उपांशु और अन्तर्याम होम के मध्य में **होता वाचं विसृजेत** होता वाणी को न बोले।

सा० भा०—उपांश्वन्तर्यामहोमात् पूर्वं वाचं विसृजन् होता वाग्वज्रेण यजमानस्य प्राणान् वीयाद् विगतान् कुर्यात्। कथं प्राणविगम इति, तदुच्यते—तत्र तस्मिन् होतुर्वाग्वि-

---

(१) तै०सं० १.४.२,३ (२) तै०सं० ३.२.९.७।

सर्गे सति यः कश्चिदागत्यायं होता वाग्वज्रेण यजमानस्य प्राणान् व्यगाद् विगतान् अकरोत् तस्मान् प्राण एनं यजमानं हास्यति परित्यजतीत्येनं होतारं प्रति ब्रूयात्। तदानीं तेन पुरुषेण होतरि शप्ते सति तदीयशापो न शश्वत् तथा स्यादवश्यं यजमानप्राणविगमो होतुस्तद्वध-प्रत्यवायश्च भवेत् । तस्मान्नाहुतयोरुपांश्वन्तर्यामयोर्होता वाचं विसृजेत॥

उपांश्वन्तर्यामहोमादूर्ध्वं वाग्विसर्गप्रकारं विधत्ते—

(वाग्विसर्गप्रकारविधानम्)

'प्राणं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्यायेत्युपांशुमनुमन्त्रयेत तमभि प्राणेत् प्राण प्राणं मे यच्छेत्यपानं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्या-येत्यन्तर्याममनुमन्त्रयेत तमभ्यपानेदपानापानं मे यच्छेति व्यानाय त्वेत्युपांशुसवनं ग्रावाणमभिमृश्य वाचं विसृजेत ।।३।।

हिन्दी—(उपांशु और अन्तर्याम होम के बाद वाणी के विसर्ग की विधि का विधान कर रहे हैं—) 'प्राणं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्याय' अर्थात् हे शुभ होम वाले (उपांशु ग्रह)! सूर्य देव की प्रसन्नता के लिए (उपांशु ग्रह रूपी) होम कर रहा हूँ अतः (यजमान के लिए) प्राण को प्रदान करों' **इति उपांशुम् अभिमन्त्रयेत्** इस (मन्त्र) से उपांशुग्रह को अभिमन्त्रित करना चाहिए। तत्पश्चात् **तम् अभि** उस (उपांशु ग्रह) को देखकर 'प्राण प्राणं मे यच्छ' अर्थात् हे प्राण देव! मेरे लिए प्राण वायु को प्रदान करो'—**इति प्राणेत्** इस (मन्त्र) से श्वास लेवे 'अपानं यच्छ स्वाहा त्वा सुहव सूर्याय' अर्थात् हे शुभ होम वाले (अन्तर्याम ग्रह)! सूर्य की प्रसन्नता के लिए (यह अन्तर्याम रूपी) होम कर रहा हूँ (अतः यजमान के लिए) अपान के प्रदान करो'—**इति अन्तर्यामम् अनुमन्त्रयेतत्** इस (मन्त्र) से अन्तर्याम को अभिमन्त्रित करें। तत्पश्चात् **तम् अभि** उसको देखकर **अपान अपानं मे यच्छ** हे अपान! मुझे अपान वायु को प्रदान करो' इति **अपानेत्** इस मन्त्र से निःश्वास लेवे। पुनः 'व्यानाय त्वा' अर्थात् (हे उपांशु सवन नामक पाषाण) व्यान वायु (की प्राप्ति) के लिए तुम्हारा (स्पर्श कर रहा हूँ)—**इति उपांशुसवनं ग्रावाणम् अभिमृश्य** इस (मन्त्र) से उपांशुसवन नामक पाषाण कर स्पर्श करके **वाचं विसृजेत्** वाणी का विसर्जन करना (वाणी बोलना) चाहिए।

सा०भा०—शोभनो हवो होमो यस्येत्युपांशुग्रहस्य सोऽयं सुहवः। हे सुहव सूर्याय त्वदभिमानिसूर्यदेवताप्रीत्यर्थं त्वोपांशुग्रहरूपं स्वाहा सुष्ठु हुतं करोमि। अतो यजमान-संबन्धिनं प्राणं यच्छ देहीत्यनेन मन्त्रेणोपांशुग्रहस्यानुमन्त्रणं कुर्यादिति। अन्वीक्ष्य मन्त्रण-मनुमन्त्रणम्। ततस्तमभि प्राणीत् तमुपांशुग्रहमभिलक्ष्योच्छ्वासं कुर्यात्। तत्र प्राणेत्यादिको मन्त्रः। हे प्राणरूपोपांशुग्रह मे मह्यं प्राणं यच्छ देहि। हे सुहवान्तर्यामग्रहेत्येतावान्विशेषः। अन्यत् पूर्ववत्। अपाने निश्वासं कुर्यात्। उपांशुग्रहार्थं सोमाभिषवहेतुर्यः पाषाणस्तं व्यानाय

त्वेति मन्त्रेणाभिमृशेत्। हे पाषणोपांशुसवनाख्य त्वां प्राणापानयोर्मध्यवर्तिव्यानवायुसिद्ध्यर्थमभिमृशामीति शेषः। अभिमर्शनादूर्ध्वं मौनं परित्यज्य वाग्व्यवहारं कुर्यात्।।

उपांशुसवनमभिमर्शनमुपपादयति—

आत्मा वा उपांशुसवन, आत्मन्येव तद्धोता प्राणान् प्रतिधाय वाचं विसृजते सर्वायुः सर्वायुत्वाय ।।४।।

हिन्दी—(उपांशुसवन नामक पत्थर के स्पर्श को उपपादित कर रहे हैं—) **आत्मा वै उपांशुसवनः** उपांशुसवन (नामक पाषाण) आत्मा रूप है, तत् इस (स्पर्श) से **होता आत्मनि एव प्राणान् प्रतिधाय** अपने में ही प्राणों को प्रतिष्ठित करके **सर्वायुत्वाय** सम्पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए **सर्वायुः वाचं विसृजते** सर्वायु रूप वाणी का विसर्जन करता है। (वाणी को बोलता है)।

सा०भा०—योऽत्रयमुपांशुसवनो ग्रावा सोऽयमात्मा वै शरीरमेतत्तदीयाभिमर्शनेनायं होता शरीर एव प्राणानवस्थाप्य स्वयं शतसंवत्सरपरिमितेन सर्वेणाऽऽयुषा युक्तो वाचं विसृजते। तच्च यजमानस्य संपूर्णायुःप्राप्तये भवति।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ।।५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टमाध्याये) तृतीयः खण्डः ।।३।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टम अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ चतुर्थः खण्डः

सा०भा०—अन्तर्यामग्रहहोमादूर्ध्वं महाभिषवं कृत्वैन्द्रवायवमारभ्य यवमत्यन्तर्ग्रहार्थं तत्तत्पात्रेषु सोमं गृहीत्वाऽऽसादितेषु वैप्रुषान् होमान् हुत्वा बहिष्पवमानार्थं प्रसर्पयेयुः। प्रसर्पणप्रकारम् **आपस्तम्ब** आह—'सप्तहोतारं मनसाऽनुद्रुत्याऽऽहवनीये सग्रहं हुत्वोदञ्चः प्रह्वा बहिष्पवमानार्थं पञ्चर्त्विजः समन्वारब्धाः सर्पन्त्यध्वर्युं प्रस्तोताऽन्वारभते प्रस्तोतारं प्रतिहर्ता प्रतिहर्तारमुद्गातोद्गातारं ब्रह्मा ब्रह्माणं यजमानः'[1] इति। आश्वलायनोऽप्याह—'अध्वर्युमुखाः

(१) आप०श्रौ० १२.१६.१७,१७.१।

समन्वारब्धाः सर्पन्त्यातीर्थदेशात्'[१] 'तत्स्तोत्रायोपविशन्त्युद्गातारमभिमुखाः, तान् होताऽनुमन्त्रयतेऽत्रैवाऽऽसीनो यो देवानामिह'[२] इति॥

ततो होतुः सर्पणं निवारयितुं पूर्वपक्षमुपन्यस्यति—

(होतुः सर्पणनिवारणम्)

तदाहुः सर्पे३त्, न सर्पे३त्, इति सर्पेदिति हैक आहुरुभयेषां वा एष देवमनुष्याणां भक्षो यद्बहिष्पवमानस्तस्मादेनमभिसंगच्छन्त इति वदन्तः ।।१।।

हिन्दी—(अब होता के प्रसर्पण के निवारण के लिए पूर्वपक्ष को उपन्यसित कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) पूछते हैं कि **सर्पेत्** (होता सभी के साथ) चले अथवा **न सर्पेत्** (सभी के साथ) न चले—**इति** इस विषय में **सर्पेत्** (सभी के साथ) चले, **इति ह एके आहुः** इस प्रकार कुछ लोग कहते हैं; क्योंकि **यद् बहिष्पवमानः** जो बहिष्पवमान है **एषः** यह **देवमनुष्याणाम् उभयेषाम्** देवों और मनुष्यों दोनों का ही **भक्षः** भक्ष्य है (अर्थात् देव और मनुष्य सभी इस स्तोत्र से सन्तृप्त होते हैं)। **तस्मात्** इसी कारण **एनम् अभिगच्छन्ते** इस (बहिष्पवमान) की ओर सभी जाते हैं—**इति वदन्तः** ऐसा कहते हुए (याज्ञिक कहते हैं कि सभी के साथ उसे प्रसर्पण करना चाहिए)।

सा० भा०—तत्तत्रैन्द्रवायवादिग्रहणादूर्ध्वकालेऽध्वर्युप्रमुखाणां सर्पणे केचिदाहुर्विचारयन्ति। किमयं होता तैः सह सर्पेन्न वेति? विचारार्थे प्लुतिः।[३] अयं होताऽपि सर्पेदिति केचित् पूर्वपक्षिण आहुः। तत्रोपपत्तिं च कथयन्ति। उद्गातृभिर्गेयम् 'उपास्मै गायता नरः'[४] इत्यादिकं स्तोत्रं बहिष्पवमानशब्देनोच्यते। यो बहिष्पवमान एष एव देवानां मनुष्याणां चोभयेषां भक्षः। तेन हि ते सर्वे तृप्यन्ति। अत एव पूर्वत्र स्तोमभागानां स्तोत्रेण प्रीतिः श्रुता। तस्मात्कारणादेनं बहिष्पवमानं देवमनुष्याः सर्वेऽभिसंगच्छन्त इत्येतामुपपत्तिं वदन्तः॥

पूर्वपक्षिणो यदाहुस्तन्निराकरोति—

तत्तन्नाऽऽदृत्यम् ।।२।।

हिन्दी—(पूर्वपक्षी के मत का निवारण कर रहे हैं—) **तद् न आदृत्यम्** वह (उपर्युक्त कथन) आदरणीय नहीं है।

सा० भा०—तस्मिन् सर्पणे तत्पूर्वपक्षिमतं नाऽऽदरणीयम्॥

विपक्षे बाधं दर्शयति—

---

(१) 'तेनान्तरेण प्रतिपद्यन्ते चात्वालं चोत्करं चैतद् वै देवानां तीर्थम्–षड्विंश ब्रा० ३.१
(२) आश्व०श्रौ० ८.१३.२३; ५.२.७.८। (३) पा०सू० ८.२.१०७ वा० १।
(४) स०उ०आ० १.१.१-९।

यत्सर्पेदृचमेव तत्साम्नोऽनुवर्त्मानं कुर्याद् य एनं तत्र ब्रूयादनुवर्त्मा न्वा अयं होता सामगस्याभूद् उद्गातरि यशोऽधादच्योष्टाऽऽयतनाच्च्योष्यत आयतनादिति शश्वत् तथा स्यात् ।।३।।

हिन्दी—(पूर्वपक्षी के कथन में बाधा को दिखला रहे हैं—) **यदि सर्पेत्** यदि (होता उनके साथ) प्रसर्पण करे, **ऋचमेव साम्ना अनुवर्त्मानं कुर्यात्** तो (अपनी) ऋचा को ही साम का अनुसरण करने वाला बनाता है। **तत्र यः एवं ब्रूयात्** वहाँ जों कोई (आकर होता से) कहता है कि **अयं होता** यह होता **सामगस्य अनुवर्त्मा अभूत्** साम का गायन करने वाले (उद्गाता) का अनुगमन करने वाला हो गया है, अतः **उद्गातरि यशः अधात्** उद्गाता में (अपना) यश प्रतिष्ठापित कर देता है; **आयतनात् अच्योष्ट** अपने स्थान (पद) से च्युत हो गया है तथा **आयतनाद् अच्योष्यत** अपने स्थान (पद) से भविष्य में भी च्युत रहेगा—**इति** इस प्रकार (उस व्यक्ति के कहने से) **शश्वत् तथा स्यात्** (होता) अवश्य ही वैसा हो जाता है।

सा० भा०—यद्ययं होता तैः सह सर्पेत्तदानीं स्वकीयामृचमेव साम्नोऽनुवर्त्मानं पृष्ठगामिनी कुर्यात्। तच्चायुक्तम्। ऋच आधारत्वात्। साम्न आधेयत्वात् पश्चाद्भावि। अत एव च्छन्दोगा आमनन्ति—'तदेतस्यामृच्यध्यूहळं साम तस्मादृच्यध्यूहळं साम गीयते'[१] इति। ततः पुरोगामिन्या ऋचः पश्चाद्गामित्वमयुक्तम्। तत्र होतुः सर्पणे यः कश्चिदागत्यैनं होतारं ब्रूयादयं होता सामगस्योद्गातुरनुवर्त्मा न्वै पृष्ठगाम्येवाभूत्। अतो होता स्वकीयां यशः कीर्तिमुद्गातर्यधात् स्थापितवान्। स्वयमायतनात् स्वकीयपदादच्योष्ट च्युतवान्। इतः परमपि च्योष्यते स्वकीयस्थानात् प्रच्युतो भविष्यतीत्येवं पुरुषान्तरेण शप्तस्य होतुरवश्यं तथा भवेत् ।।

सर्पणं निवार्यानुमन्त्रणं विधत्ते—

(बहिष्पवमानानुमन्त्रणविधानम्)

तस्मात् तत्रैवाऽऽसीनोऽनुमन्त्रयेत ।।४।।

हिन्दी—(होता के सभी के साथ सर्पण का निवारण करके अनुमन्त्रण का विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण (होता) **तत्रैव आसीनः** वहीं बैठा हुआ ही (दूसरों के प्रसर्पण का) **अनुमन्त्रयेत्** (आगे कहे जाने वाले मन्त्र से) अनुमन्त्रित करता है।

सा० भा०—यस्मात् प्रसर्पणे दोषाः सन्ति तस्माद् यत्र पूर्वमवस्थितस्तत्रैवाऽऽसीन[२] इतरेषां सर्पणमन्वीक्ष्यानुमन्त्रयेत।।

तस्मिन्ननुमन्त्रणे मन्त्रं दर्शयति—

---

(१) छा०उ० १.६.१। (२) 'तान् होताऽनुमन्त्रयतेऽत्रैवासीनः'–आश्व०श्रौ० ५.२.८।

(अनुमन्त्रणमन्त्रः)

यो देवानामिह सोमपीथो यज्ञे बर्हिषि वेद्या३म्। तस्यापि भक्षया-मसीति।।५।।

हिन्दी—(उस अनुमन्त्रण मन्त्र को दिखला रहे हैं—) **इह यज्ञे** इस (यज्ञ) में **बर्हिषि वेद्याम्** कुशों और वेदि पर स्थित **देवानां यः सोमपीथः** देवताओं का जो सोमभागरूप बहिष्पवमान (नामक खाद्य) है **तस्य अपि** उसका भी **भक्षयामसि** हम लोग भक्षण करें।

सा० भा०—इह देशे क्रियमाणो यः सोमयागस्तस्मिन् या वेदिर्यच्च तत्रत्यं बर्हिस्तत्र सर्वदेवानां संबन्धी सोमपीथः सोमयागरूपो बहिष्पवमानाख्यो यो भक्षोऽस्ति तस्याप्यंशं वयं भक्षयाम इत्येषाऽनुमन्त्रणमन्त्रः।।

तं प्रशंसति—

एवमु हास्याऽऽत्मा सोमपीथादनन्तरितो भवति ।।६।।

हिन्दी—(उस अनुमन्त्रण की प्रशंसा कर रहे हैं—) **एवम्** इस प्रकार **अस्य आत्मा** इस (होता) की आत्मा **सोमपीथाद् अनन्तरितः भवति** सोमभाग से (कमी भी) वंचित नही होती।

सा० भा०—एवमेवानुमन्त्रणे सत्यस्य होतुरात्मा जीवः सोमपानात् कदाचिदप्यन्तरितो न भवति।।

मन्त्रान्तरं च विधत्ते—

(बहिष्पवमानानुमन्त्रणे यजुर्मन्त्रः)

अथो ब्रूयान्मुखमसि मुखं भूयासमिति ।।७।।

हिन्दी—(अन्य मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **अथ** इस (पूर्वोक्त मन्त्र) के बाद **'मुखम् असि मुखं भूयासम्** (हे बहिष्पवमान)—तुम (इस यज्ञ में) प्रमुख हो अतः मैं भी प्रमुख होऊँ' **इति ब्रूयात्** होता इस (मन्त्र) को कहे ।

सा० भा०—पूर्वोक्तान् मन्त्रादनन्तरं मुखमित्यादिकमपि मन्त्रं ब्रूयात्। हे बहिष्पवमान यज्ञस्य त्वं मुखमसि यज्ञमध्ये मुखोऽसि।[१] अतः त्वत् प्रसादादहमपि मुखं मुख्यो भूयासम्।।

एतं मन्त्रं प्रशंसति—

मुखं वा एतद् यज्ञस्य यद् बहिष्पवमानः ।।८।।

हिन्दी—(इस मन्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् बहिष्पवमानः** जो बहिष्पवमान है, **एतद् यज्ञस्य मुखम्** यह यज्ञ का मुखरूप है।

(१) 'यत् यः सवनत्रययोगिपवमानत्रयादिभूतत्वात्'–इति षड्गुरुशिष्यः।

सा० भा०—स्तोत्रेषु सर्वेष्वाद्यत्वाद् बहिष्पवमानस्य मुखत्वम्॥

वेदनं प्रशंसति—

मुखं स्वेषु भवति, श्रेष्ठः स्वानां भवति य एवं वेद ॥९॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **स्वेषु मुखं भवति** अपने (ज्ञातिजनों) में प्रमुख हो जाता है और **स्वानां श्रेष्ठः भवति** अपने लोगों में श्रेष्ठ हो जाता है।

सा० भा०—मुखत्वं लोकव्यवहारप्रवर्तकत्वम्, श्रेष्ठत्वं विद्यावित्तादिसंपत्तिः॥

अथ सवनीयपुरोडाशेषु येयं मैत्रावरुणी पयस्याऽस्ति तत्सद्भाव आपस्तम्बेन दर्शितः– 'प्राग्वँशे प्रतिप्रस्थाता सवनीयान्निर्वपति सर्वे यवा भवन्ति लाजार्थान् परिहाप्येन्द्राय हरिवते धाना इन्द्राय पूषण्वते करम्भं सरस्वत्यै भारत्यै परिवापमिन्द्राय पुरोडाशं मित्रावरुणाभ्यां पयस्याम्'[१] इति॥

तामेतां पयस्यां प्रशंसितुमाख्यायिकामाह—

(मैत्रावरुणपयस्याप्रशंसार्थमाख्यायिका)

आसुरी वै दीर्घजिह्वी देवानां प्रातःसवनमवालेट्, तद्व्यमाद्यत् ते देवाः प्राजिज्ञासन्त ते मित्रावरुणावब्रुवन् युवमिदं निष्कुरुतमिति, तौ तथेत्यब्रूतां तौ वै वो वरं वृणावहा इति, वृणाथामिति, तावेतमेव वरमवृणातां, प्रातःसवने पयस्यां सैनयोरेषाऽच्युता वरवृता, ह्येनयोस्तद्यदस्यै विमत्तमिव तदस्यै समृद्धं विमत्तमिव हि तौ तया निरकुरुताम् ॥१०॥

हिन्दी—(अब पयस्या = मट्ठा की प्रशंसा करने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **दीर्घजिह्वी आसुरी वै** दीर्घजिह्वी नामक आसुरी (स्त्री) ने **देवानाम्** देवताओं के **प्रातःसवनम् अवालेट्** प्रातःसवन को चाट डाला और **तद् व्यमाद्यत्** उससे वह मतवाली हो गयी। **ते देवाः प्रजिज्ञासन्त** तब उन देवताओं ने (उसके परिहार के लिए) प्रकृष्ट रूप के विचार किया। **ते मित्रावरुणौ अब्रुवन्** उन देवताओं ने मित्र और वरुण से कहा कि **युवम् इदं निष्कुरुतम्** (हे मित्रावरुणो)! तुम दोनों इस (प्रातःसवन) का निराकरण करो। **तौ** उन दोनों (मित्र और वरुण) ने **तथा इति अब्रूताम्** ठीक है–यह कहा। **तौ वै वः वरं वृणावहै** उन दोनों ने (पुनः कहा कि) हम दोनों तुम लोगों से वर माँग रहे हैं। **वृणाथाम् इति** 'तुम दोनों वर माँगो' इस प्रकार (देवताओं ने कहा)। **तौ एतमेव वरम् अवृणाताम्** उन दोनों ने यही वर माँगा कि **प्रातःसवने पयस्याम्** प्रातःसवन में

(१) आप०श्रौ० १२.४.४-६।

पयस्या (मट्ठा) (ही माँग रहे हैं)। **वरवृता** वर में माँगे जाने के कारण **सा एषा** वह यह (दीर्घजिह्वी नामक राक्षसी) **एनयोः अच्युता** इनसे कभी च्युत नहीं होती। **अस्यै एनयोः यत्** इस (दीर्घजिह्व) के लिए इन (मित्र और वरुण) द्वारा जो (प्रातःसवन का अङ्ग) **विमत्तम् इव** मादकता से रहित सा (किया गया), **तद् अस्यै** वह (अङ्ग) इस (मट्ठे) के द्वारा **समृद्धम्** समृद्ध हो गया क्योंकि **तौ** उन दोनों (मित्र और वरुण) ने **तया** उस (मट्ठे) द्वारा **विमतम् इव** मादकतारहित (प्रातःसवन) को **निरकुरुताम्** निवारित कर दिया।

सा० भा०—दीर्घा जिह्वा यस्याः सा दीर्घजिह्वी। असुरजातावुत्पन्नत्वादासुरी। तथा च तलवकारा आमनन्ति—'दीर्घजीह्वी वा असुर्या सा'[१] इति। सा च देवानां संबन्धि प्रातः-सवनमवालेट् स्वकीयया जिह्वया तस्यावलेहं कृतवती। तत्र प्रातःसवनं विषजिह्वालेहनेन 'व्यमाद्यद्'[२] विविधं मत्तमभूत्। सर्वस्यापि सवनप्रयोगस्य विपर्यासो जातः। ते देवास्तत् परिहारोपायं प्राजिज्ञासन्त प्रकर्षेण विचारितवन्तः। विचार्य च तत्परिहारसमर्थौ मित्रावरुणा-वब्रुवन् हे मित्रावरुणौ युवं युवामुभाविदं प्रातःसवनं निष्कुरुतं निर्गतदोषं[३] कुरुतम्। तत्तावद-ङ्गीकृत्य देवेभ्यो वरं याचित्वा प्रातःसवनगतां पयस्यामेव स्वकीयवरत्वेन वृतवन्तौ। पयसि भवाऽऽमिक्षा पयस्या। सैषा वरवृतत्वाद् एनयोः कदाचिदप्यविच्युता। तत्र प्रातःसवने समृद्ध-मासीत्। यस्माद् विमत्तमिव स्थितं प्रातःसवनं तौ मित्रावरुणौ तया पयस्यया निरकुरुतां निवारितवन्तौ तस्मात् समृद्धिर्युक्ता॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये
द्वितीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टमाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

---

(१) दीर्घजिह्वी वा इदꣳरक्षो यज्ञहा यज्ञानवलिहत्यचरत्–इत्यादि ता०ब्रा० १३.६। श्वानं दीर्घजिह्व्यम्'–इति ऋ० ९.१०१.१। 'दीर्घजिह्वी च च्छन्दसि'–इति पा०सू० ४ १.५९। निपातनादीकारः। महाभारते त्वियमादिपर्वणि दानवीति, वनपर्वणि तु राक्ष-सीति। 'आसुरी' जातिलक्षणो ङीष्। 'दीर्घजिह्वी वा असुर्या सा' इति तलवकारब्राह्मणे दर्शनादसुरीति तद्धितान्तमेव द्रष्टव्यम्'–इति भट्टभास्करः। 'अत्र केचित्-आसुरी वै दीर्घजिह्वीति ह्रस्वादिमाहुः। कथम्? 'दीर्घजिह्वी ह वा असुर्या' इति तलवकारश्रुतेः संहितायाश्च सम्भवात्। अपरे पुनरेतन्नानुमन्यन्ते तद्धितेष्वचामादेः इति दीर्घस्मरणात्। ननु तलवकारश्रुतेर्ह्रस्वोऽपि स्याद् इत्युक्तम्। तत्तु नात्रोपयुज्यते। दृष्टानुविधिश्छन्दसीति स्मरणात् यावद्दर्शनभावी हि छान्दसप्रयोगो न सदृशमुपसंक्रामति इति न्यायाच्च। अत आसुरीति दीर्घाद्येव पदम्'–इति गोविन्दस्वामी।

(२) 'व्यमाद्यत् व्यमादयत् विरूपस्य मदस्य हेतुरभवत्। यद्वा, विमत्तमभूत् मदरहितम् अभूत'–इति भट्टभास्करः। 'मत्तं बभूव वि नाना। अमाद्यत्, 'शमामष्टानां दीर्घः श्यनि' पा०सू० ७.३.७४ इति षड्गुरुशिष्यः।

(३) 'निर्गतविषाददोषम्'–इति वा पाठः।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टम अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—अथ सवनीयपुरोडाशान्[1] विधातुमादौ कथामाह—

(सवनीयपुरोडाशविधानम्)

देवानां वै सवनानि नाध्रियन्त त एतान् पुरोळाशानपश्यंस्ताननु-सवनं निरवपन् सवनानां धृत्यै ततो वै तानि तेषामध्रियन्त ।।१।।

हिन्दी—(अब सवनीय पुरोडाश का विधान करने के लिए प्रारम्भ में कथा को कह रहे हैं—) **देवानां सवनानि** देवताओं के लिए (प्रातः, माध्यदिन और सायं सवन) **न आध्रियन्त** स्थिर नहीं रहे। **ते** उन (देवताओं) ने **पुरोडाशान्** (स्थिरता के हेतुभूत) पुरोडाशों को **अपश्यन्** देखा और **अनुसवनम्** प्रत्येक सवन के लिए **तान्** उन (पुरोडाश) का **सवनानां धृत्यै** सवनों की स्थिरता के लिए **निरवपन्** निर्वाप किया। **ततः वै** तभी से **तानि** वे (सवन) **तेषाम्** उन (देवताओं) को लिए **अध्रियन्त** स्थिर हो गये।

सा० भा०—यानि प्रातःसवनमाध्यदिनसवनतृतीयसवनानि सन्ति तानि त्रीणि देवा-नामर्थे नाध्रियन्त नैव धृतानि देहैरवरोद्धुमशक्यान्यासन्। ते देवास्तद्धारणहेतून् पञ्च पुरोडाशान् दृष्ट्वा तान् प्रतिसवनं निरवपंस्तैः पुरोडाशैस्तुष्टानि सवनानि देवानामर्थे धृतान्यासन्।।

आख्यायिकया प्रशस्य पुरोडाशान् विधत्ते—

तद् यदनुसवनं पुरोळाशा निरुप्यन्ते सवनानामेव धृत्यै तथा हि तानि तेषामध्रियन्त ।।२।।

हिन्दी—(आख्यायिका के द्वारा प्रशंसा करके पुरोडाशों का विधान कर रहे हैं—) **तत्** तो **यद् अनुसवनम्** जो प्रत्येक को सवन अनुलक्षित करके **सवनानां धृत्यै** सवनों की स्थिरता के लिए **पुरोडाशाः निरुप्यन्ते** पुरोडाशों का निर्वाण करते हैं, **तेषाम्** उन (देवताओं) के लिए **तानि** वे (सवन) **तथा एव अध्रियन्त** उसी प्रकार (स्थिर) हो जाते हैं।

सा० भा०—तत् तस्माद् दैवैर्निरुप्तत्वाद् यदि यजमानाः प्रतिसवनं पुरोळाशा निरु-प्येरंस्तदा स निर्वापः सवनानां धारणाय भवति। तथा तेनैव हि प्रकारेण तानि सवनानि निर्वाप एव धारणोपायः ।।

---

(१) सवनेषु भवः सवनीयः। वपया प्रातःसवने चरन्ति, पुरोडाशेन माध्यन्दिने, अङ्गैस्तृतीयसवने इत्येवं यष्टव्यः'–इति आश्व०श्रौ० ५.३.१ वृत्तिः।

इदानीं पुरोडाशशब्दं निर्वक्ति—

(पुरोडाशशब्दनिर्वचनम्)

पुरो वा एतान् देवा अक्रत यत्पुरोळाशास्तत्पुरोळाशानां पुरोळाशत्वम्।।३।।

हिन्दी—(अब पुरोडाश शब्द की निरुक्ति कह रहे हैं—) **देवाः** देवताओं ने **एतान्** उन (पुरोडाशों) को **पुरः अक्रत** (सोमाहुतियों के) पुरः (= सामने) किया **तत्** वही **पुरोडाशानां पुरोडशत्वम्** पुरोडाशों का पुरोडाश होना (पुरतः दीयमान होना) है।

सा० भा०—यत्पुरोळाशाः सन्त्येतान् देवाः पुरो वै सोमाहुतिभ्यः पुरस्तादेवाक्रत कृतवन्तः। तस्मात् पुरोडाशेति नाम संपन्नम्। 'दा दाने' इति धातुः[१]; पुरतो दीयमानं हविरित्यर्थः। यद्यप्यत्र धानादिषु हविष्षु चतुर्थ एव[२] पुरोडाशः, तथाऽपि च्छत्रिन्यायेन धानादीनां सर्वेषां पुरोडाशत्वोपचारः। यद्वा, पुरःशब्द एवं व्याख्येयः—सवनानां धारणार्थं देवा एतानि हवींषि दुर्गमाणि पुराण्यकुर्वतेति। यदि पुरस्ताद् यदि वा पुराणि सर्वथाऽपि पुरोडाशशब्दो निष्पद्यते॥[३]

अथ पुरोडाशस्वरूपविशेषं निर्धारयितुं पूर्वपक्षमाह—

(पुरोडाशस्वरूपविशेषनिर्धारणम्)

तदाहुरनुसवनं पुरोळाशान् निर्वपेदष्टाकपालं प्रातःसवन एकादश-कपालं माध्यंदिने सवने, द्वादशकपालं तृतीयसवने; तथाहि सवनानां रूपं तथा छन्दसामिति ।।४।।

हिन्दी—(अब पुरोडाश के स्वरूप-विशेष के निर्धारण के लिए पूर्वपक्ष को कह रहे हैं—) **तद् आहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **अष्टाकपालं प्रातःसवने** प्रातःसवन में आठ कपालों वाला, **एकादश कपालं माध्यन्दिने सवने** माध्यन्दिन सवन में ग्यारह कपालों वाला और **द्वादशकपालं तृतीयसवने** तृतीयसवन (सायंसवन) में बारह कपालों वाला—इस प्रकार **अनुसवनम्** प्रत्येक सवन के लिए **पुरोडाशान् निर्वपेत्** पुरोडाशों का निर्वाप करना चाहिए; क्योंकि **सवनानां रूपम्** जैसा सवनों का रूप होता है **तथा छन्दसाम्** वैसा ही छन्दों का रूप होता है।

विमर्श—(१) गायत्री, प्रातःसवन का, त्रिष्टुप् माध्यान्दिन सवन का और जगती

---

(१) 'पुरो दाश्यते पुरोडाः'—इति सि०कौ०वै० ३ अ०। पा०सू० ३.२,७१।

(२) 'एतानि हवींषि—आज्यं, धानाः, करम्भः, परिवापः, पुरोळाशः पयस्येति'—इति। श्रुतेर्यद्यपि पुरोडाशस्य पञ्चमत्वं गम्यते, परमुत्तरखण्डे 'धानाः करम्भः परिवापः पुरोळाशः पयस्येत्येष वै यज्ञो हविष्पङ्क्तिः'—इत्यादि ऐ० ८.७ श्रुतेश्चतुर्थत्वमेव।

(३) पुरः परस्तात् कर्मारम्भ एव करणाद् इत्यर्थः। बहुवचनं सर्वपुरोडाशपरिग्रहार्थम्। इतरथा हि सन्निहितपुरोडाशमात्रनिर्वचनं स्यात्। सवनबहुत्वाद् वा बहुवचनम्—इति भट्टभास्करः।

सायंसवन का निष्पादक होता है। गायत्री के प्रत्येक पाद में आठ, त्रिष्टुप् के प्रत्येक पाद में ग्यारह और जगती के प्रत्येक पाद में बारह अक्षर होते हैं अतः इन छन्दों के प्रत्येक पाद में अक्षरों की संख्या के अनुसार ही इनके द्वारा निष्पादित सवनों में क्रमशः आठ, ग्यारह और बारह कपालों वाले पुरोडाशों का निर्वाप करना चाहिए।

सा० भा०—तत् तेषु पुरोडाशेषु पूर्वपक्षिण आहुः—प्रतिसवनं निर्वपणीयेषु पुरोडाशेषु क्रमेण कपालसंख्याऽष्टत्वादिरूपा द्रष्टव्या। सवनानां रूपस्य तथाविधत्वात्। तच्च च्छन्दोद्वारेण द्रष्टव्यम्। गायत्री त्रिष्टुब्जगती चेति च्छन्दांसि सवननिष्पादकानि गायत्रं प्रातःसवनं त्रैष्टुभं माध्यदिनं सवनं जागतं तृतीयसवनमिति श्रुत्यन्तरात्।[१] तथा सति तत्तच्छन्दोगताक्षरसंख्यानुसारेण कपालसंख्या युक्तेति[२] पूर्वपक्षः।।

तं निराकृत्य सिद्धान्तं दर्शयति—

तत्तन्नाऽऽदृत्यमैन्द्रा वा एते सर्वे निरुप्यन्ते यदनुसवनं पुरोळाशास्तस्मात् तानेकादशकपालानेव निर्वपेत् ।।५।।

हिन्दी—(उपर्युक्त पूर्वपक्ष का निराकरण करके सिद्धान्त पक्ष को कह रहे हैं—) **तत्** तो **तद् न आदृत्यम्** वह (पूर्वपक्ष द्वारा कहा गया मत) आदरणीय नहीं है; क्योंकि **यद् अनुसवनं पुरोडाशाः** जो प्रत्येक सवन के पुरोडाश हैं, **एते सर्वे** ये सभी (पुरोडाश) **ऐन्द्रा वै निरुप्यन्ते** इन्द्र (देवता) के लिए ही निर्वपित किये जाते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **एकादशकपालान् एव तान्** ग्यारह कपालों वाले उन (पुरोडाशों) का ही **निर्वपेत्** निर्वाप करना चाहिए।

सा० भा०—पञ्चसु हविष्षु धानादिषु मध्ये चतुर्थस्य पुरोडाशस्यैन्द्रदेवताकत्वादैन्द्रश्चान्यत्रैकादशकपाल एव प्रायेण विधीयत इति तत्प्रयत्नावगमात्[३] अत्रापि त्रिष्वपि सवनेष्वैन्द्रान् पुरोडाशानेकादशकपालानेव निर्वपेत्। शाखान्तरेऽपि विलोमत्वदोषेण[४] पूर्वपक्षं निराकृत्य सिद्धान्तोऽभिहितः—एकादशकपालानेव प्रातःसवने कुर्यादेकादशकपालान् मा-

(१) आग्नावैष्णवमष्टाकपालं निर्वपेत् प्रातःसवनस्याकाले सरस्वत्याज्यभागा स्याद् बार्हस्पत्यश्चरुर्यदष्टाकपालो भवत्यष्टाक्षरा गायत्रं प्रातःसवनं प्रातःसवनमेव तेनाप्नोति द्वादशाक्षरा जगती जागतं तृतीयसवन तृतीयसनवमेव प्रातः सवनमेव तेनाप्नोति–इति तै०सं० २.२.९; भाष्यमेतस्य मन्त्रकाण्डे (तै०सं० १.८.२२) द्रष्टव्यम्। तु० तै०सं० ३.२.९ 'गायत्रं प्रातःसवनम्—आदि।

(२) अत एव श्रुतं तैत्तिरीये—तं वसवोऽष्टाकपालेन प्रातःसवने भिषज्यन्, रुद्रा एकादशकपालेन माध्यन्दिने सवने, विश्वेदेवा द्वादशकपालेन तृतीयसवने—इति तै०ब्रा० १.५.११.३।

(३) 'विधीयते होमादूर्ध्वं वाग्विसर्गतत्प्रयत्नावागमाद्' इति वा पाठः।

(४) तथाहि—'स यदष्टाकपालान् प्रातःसवने कुर्यात्, एकादशकपालान् माध्यन्दिने सवने, द्वादशकपाला स्तृतीयसवने, विलोम तद्यज्ञस्य क्रियते'—इति तै०ब्रा० १.५.११.४।

ध्यदिने सवने' इत्यादि।[1] आपस्तम्बस्त्वन्यशाखाभेदमनुसृत्य पक्षद्वयमप्युदाहरति—'अष्टौ पुरोडाशकपालान्येकादश मध्यंदिने द्वादश तृतीयसवने सर्वानैन्द्रानेकादशकपालाननुसवनमेके समामनन्ति'[2] इति।

अथ तत्पुरोडाशशेषभक्षणे कंचित्पूर्वपक्षमुपन्यस्यति—

(पुरोडाशशेषभक्षणविधानम्)

तदाहुर्यतो घृतेनानक्तं स्यात् ततः पुरोळाशस्त प्राश्नीयात् सोमपीथस्य गुप्त्यै, घृतेन हि वज्रेणेन्द्रो वृत्रमहन्निति ।।६।।

हिन्दी—(उन पुरोडाशों के अवशिष्ट भाग के भक्षण में पूर्वपक्ष को कह रहे हैं—) **तदाहुः** उस (अवशिष्ट पुरोडाश के भक्षण) के विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **पुरोडाशस्य** पुरोडाश का **यतः घृतेन अनक्तं स्यात्** जितना भाग घृत से सिक्त नहीं **सोमपीथस्य गुप्त्यै** सोमपान की रक्षा के लिए **ततः प्राश्नीयात्** उतना ही प्राशन करना चाहिए क्योंकि **घृतेन हि वज्रेण** घृत रूपी वज्र से ही **इन्द्रः वृत्रम् अहन्** इन्द्र ने वृत्र को मारा था।

सा० भा०—तत्सोमपानस्य रक्षणाय भवति। यस्मादिन्द्रो घृतमेव वज्रं कृत्वा तेन वृत्रं हतवान्, तस्मात् तस्य क्रूरत्वात् घृतरहितं सकलं भक्ष्यमिति पूर्वपक्षिण आहुः।

तं निराकृत्य सिद्धान्तं दर्शयति—

तत्तन्नादृत्यं, हविर्वा एतद्यदुत्पूतं सोमपीथो वा एष यदुत्पूतं तस्मात् तस्य यत एव कुतश्च प्राश्नीयात्, सर्वतो वा एताः स्वधा यजमानमुपक्षरन्ति यदेतानि हवींष्याज्यं धानाः करम्भः परिवापः पुरोळाशः पयस्येति ।।७।।

हिन्दी—(उस पूर्वपक्ष का निराकरण करके सिद्धान्त पक्ष को कह रहे हैं—) **तत्** तो **तद् न आदृत्यम्** वह (पूर्वपक्ष का कथन) आदरयोग्य नहीं है क्योंकि **यद् उत्पूतम्** जो (घृत) उत्पवन संस्कार (से) संस्कृत है, **एतद् हविः एव** यह हवि ही होता है और **यद् उत्पूतम्** जो (उत्पवन संस्कार से) संस्कृत है **एषः सोमपीथः एव** यह सोमपान के समान है। **तस्मात्** इस कारण से **तस्य** उस (पुरोडाश) का **यतः एव कुतः** जो कोई भी भाग (घृतसहित या घृतरहित अवशिष्ट) हो, **प्राश्नीयात्** उसका भक्षण कर लेना चाहिए। **आज्यं धानाः करम्भः परिवापः पुरोडाशः पयस्या** घृत, धान, करम्भ, परिवाप, पुरोडाश और पयस्या (मट्ठा) **यद् एतानि हवींषि** जो ये हवियाँ हैं **एताः स्वधाः** ये अन्न रूप होकर **सर्वतः वै** सभी ओर से **यजमानम् उपक्षरन्ति** यजमान के पास आ जाती हैं।

---

(१) तै०ब्रा० १.५.११.४। (२) आप०श्रौ० १२.४.१,२।

सा० भा०—घृतरहितभाग एव भक्षणीय इति मतं नाऽऽदरणीयम्। उत्पवन-संस्काररहितस्य घृतस्य वज्रत्वेऽपि यदुत्पूतं घृतं तद्धविरेव। किं च यदुत्पूतं तत्सोमपीथ-सदृशमेव। तस्मात् तस्य पुरोडाशस्य यतः कुतश्च घृतयुक्ताद् घृतरहिताद्वा यस्मात् कस्मादपि भागात् प्राश्नीयात्। आज्यं धानादीनि यानि हवींषि[1] सन्ति ता एताः सर्वतः स्वधाऽन्नं तद्रूपा एव भूत्वा यजमानमुपक्षरन्ति स्रवन्ति। तस्मात् सर्वतः प्राशनमुपपन्नम्॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वत एवैनं स्वधा उपक्षरन्ति य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—**यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, **एनं सर्वतः** एव उसके लिए सभी ओर से **स्वधा उपक्षरन्ति** अन्न आते हैं।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टमाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टम अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—विहितान् सवनीयपुरोडाशान् धानादिरूपान् प्रशंसति—

(धनादिरूपसवनीयपुरोडाशानां प्रशंसनम्)

(तत्र हविष्पङ्क्तिविधानम्)

यो वै यज्ञं हविष्पङ्क्तिं वेद हविष्पङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति धानाः करम्भः परिवापः पुरोळाशः पयस्तेत्येष वै यज्ञो हविष्पङ्क्ति-र्हविष्पङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति य एवं वेद ।।१।।

हिन्दी—(धानादिरूप सवनीय पुरोडाशों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः वै यज्ञं हविष्पङ्क्तिं वेद** जो पाँच हविषों वाले सोमयाग को जानता है, वह **हविष्पङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति** वह पाँच हविषों वाले सोमयाग से समृद्ध होता है। **धानाः करम्भः परिवापः पुरोडाशः पयस्या** धान, करम्भ, परिवाप, पुरोडाश और पयस्या—**इति एषः वै यज्ञः हविष्पङ्क्तिः** इन पाँच हविषों वाला यह यज्ञ (सोमयाग) है। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **हविष्पङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति** वह पाँच हविषों वाले सोमयाग द्वारा समृद्ध

(१) 'हरिवाँ इन्द्रो धाना' इत्यादि (ऐ०ब्रा० ८.६) सवनप्रैषाद्युक्तानि यत् यानि एतानि हवींषि—इत्यर्थः। 'अथैन्द्रैः पुरोडाशैरनुसवनं चरन्ति' इति आश्व०श्रौ०सू० ५.४.१।

होता है।

सा० भा०—हविषां धानादिद्रव्यरूपाणां पङ्क्तिः समूहो यस्मिन् सोमयागे सोऽयं हविष्पङ्क्तिः, तादृशं यज्ञं यो वेद स तथैव तादृशेन यज्ञेन समृद्धो भवति। भृष्टा यवतण्डुला धानाः। तदाह आपस्तम्बः—'कपालानामुपधानकाले प्रथमकपालमन्त्रेण धानार्थं लाजार्थं कपाले अधिश्रित्य तण्डुलानोप्य धानाः करोति व्रीहीनोप्य लाजान् करोति पुरोडाशमधिश्रित्याऽऽमिक्षावत् पयस्यां करोत्युद्वासनकाले धाना उद्वास्य विभागमन्त्रेण विभज्यार्धा आज्येन संयौत्यर्धाः पिष्टानान् मावृता सक्तून् करोति। मन्थं संयुतं करम्भ इत्याचक्षते, लाजान् परिवाप इति न वै लाजेभ्यः स्तुषान् संहरति'[२] इति। पुरोडाशः प्रसिद्धः। अन्ये धानाकरम्भपरिवापपयस्याशब्दा आपस्तम्बेन व्याख्याताः। एतैर्हविर्भिर्युक्तो यज्ञो हविष्पङ्क्तिः। हविष्पङ्क्तिनेत्यादिपुनर्वचनमुपसंहारार्थम्। यद्वा, पूर्वं वेदनपूर्वकानुष्ठानप्रशंसेह तु वेदनमात्रप्रशंसा द्रष्टव्या। हविषां पञ्चसंख्यानां समूहरूपा या पङ्क्तिः सा शाखान्तरेऽप्याम्नाता—'ब्रह्मवादिनो वदन्ति नर्चा न यजुषा पङ्क्तिराप्यतेऽथ किं यज्ञस्य पाङ्क्तत्वमिति। धानाः करम्भः परिवापः पुरोळाशः पयस्या तेन पङ्क्तिराप्यते तद् यज्ञस्य पाङ्क्तत्वम्'[१] इति। अत्रार्थवादेन धानादीनां पुराडाशद्रव्याणां विधिरुन्नेतव्यः॥

अनेनैव न्यायेनाक्षराणां पञ्चानां विध्युन्नयनं दर्शयति—

(अक्षरपङ्क्त्युन्नयनविधानम्)

यो वै यज्ञमक्षरपङ्क्तं वेदाक्षरपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति सुमत्पद्वग्द इत्येष वै यज्ञोऽक्षरपङ्क्तिरक्षरङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी—(इसी न्याय से पाँच अक्षरों वाली विधि के उन्नयन को दिखला रहे हैं-) **यो वै अक्षरपंक्तिं वेद** जो पाँच अक्षरों वाले यज्ञ को जानता है, वह **अक्षरपंक्तिना यज्ञेन** पाँच अक्षरों वाले यज्ञ द्वारा **राध्नोति** वृद्धि को प्राप्त करता है। **सुमत्पद्वग्दे** सु मत् पद, वग् और दे' **इत्येषः अक्षरपंक्तिः यज्ञः** यह पाँच अक्षरों वाला यज्ञ है। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **अक्षरपंक्तिना यज्ञेन** पाँच अक्षरों वाले यज्ञ द्वारा **राध्नोति** वृद्धि को प्राप्ता करता है।

सा० भा०—पञ्चसंख्याकानामक्षराणां समूहोऽक्षरपङ्क्तिः। 'सु' इत्येकमक्षरम्, मदिति द्वितीयमक्षरम्, पदिति तृतीयमक्षरम्, वगिति चतुर्थमक्षरम्, दे इति पञ्चममक्षरम्। तान्येतान्यक्षराणि होतृजपादौ प्रयोक्तव्यानि। तथा च संप्रदायविद[३] आहुः—

एतद्धोतृजपाख्यस्य चाऽऽदितोऽक्षरपञ्चकम् ।
एकैकमक्षरं चात्र परस्य ब्रह्मणे वपुः ॥

(१) तै०सं० ६.५.११.४,५। (२) आप०श्रौ० १२.४.९-१४।
(३) षड्गुरुशि॰॰स्य पद्यद्वयमिदम्।

सुपूजितं मत्रहृष्टं पत्सर्वव्यापि तच्च वक्।
सर्वस्य वक्तृ ब्रह्मैव दे फलानां प्रदातृ तत्[१]।। इति।

अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

तथा पञ्चविधनाराशंसविध्युन्नयनं दर्शयति—

(नाराशंसपंक्त्युन्नयनविधानम्)

यो वै यज्ञं नराशंसपङ्क्तिं वेद नराशंसपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति द्विनाराशंसं प्रातःसवनं द्विनाराशंसं माध्यन्दिनं सवनं सकृन्नाराशंसं तृतीयसवनमेष वै यज्ञो नराशंसपङ्क्तिर्नराशंसपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(अब पाँच नराशंस-विधि के उन्नयन को दिखला रहे हैं—) **यः वै नराशंसपङ्क्तिं यज्ञं वेद** जो पाँच नराशंसी से युक्त यज्ञ को जानता है, वह **नराशंसपङ्क्तिना यज्ञेन** पाँच नराशंस से युक्त यज्ञ द्वारा **राध्नोति** वृद्धि को प्राप्त करता है **द्विनाराशंसं प्रातःसवनम्** प्रातःसवन दो नाराशंसी वाला, **द्विनाराशंसं माध्यन्दिम्** दो नराशंसी वाला माध्यन्दिन सवन और **सकृद् नाराशंसं तृतीयसवनम्** एक नराशंसी वाला सायंसवन होता है। **एषः वै नाराशंसपङ्क्तिः यज्ञः** यही पाँच नाराशंसी युक्त यज्ञ है। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **नराशंसपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति** पाँच नराशंस वाले यज्ञ द्वारा वृद्धि को प्राप्त करता है।

सा० भा०—भक्षिताप्यायितानां सादितानां चमसानां नाराशंसशब्दः संज्ञा। अत उक्तमाचार्येण[२] 'आप्यायितांश्चमसान् सादयन्ति ते नाराशंसा भवन्ति'[३] इति। भक्षितेषु चमसेषु पुनः पूरणमाप्यायनम्। तथाविधश्चमसाः प्रातःसवने द्विः प्रयुज्यन्ते तथा माध्यंदिनसवनेऽपि, तृतीयसवने तु सकृदेव। एवं पञ्चसंख्योपोतत्वान्नराशंसानां पङ्क्तिर्यज्ञे विद्यते।।

तथैव सवनपङ्क्तिं दर्शयति—

(सवनपंक्तिविधानम्)

यो वै यज्ञं सवनपङ्क्तिं वेद सवनपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति पशुरुपवसथे त्रीणि सवनानि पशुरनूबन्ध्य इत्येष वै यज्ञः सवनपङ्क्तिः सवनपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति य एवं वेद ।।४।।

हिन्दी—(अब पाँच प्रकार के सवन को दिखला रहे हैं–) **यः सवनपङ्क्तिं यज्ञं वेद**

---

(१) ब्रह्मैतद् दे दानाय तु तिष्ठति—इति षड्गुरुशिष्यस्य पाठः।

(२) एतत्सूत्रकारेण आश्वलायनेनेति यावत्। तत्र 'आध्वर्य उपह्वयस्व'—इत्यादीनि सूत्राणि द्रष्टव्यानि ५.६.२—१०।

(३) आश्व०श्रौ० ५.६.३०।

जो पाँच सवन वाले यज्ञ को जानता है, वह **सवनपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति** पाँच सवन वाले यज्ञ द्वारा वृद्धि को प्राप्त करता है। **उपवसथे** उपवसथ (नामक पहले दिन अग्निषोमीय) **पशुः** पशु (एक सवन) **त्रीणि सवनानि** (प्रातः, मध्यन्दिन और सायं–ये) तीन सवन और **पशुरनूबन्ध्यः** (सवनों के बाद अनुष्ठेय) अनुबन्ध्य (नामक) पशु (पाचवाँ सवन) है। **एषः वै सवनपङ्क्तिः यज्ञः** यही पाँच सवनों से युक्त यज्ञ है। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सवनपङ्क्तिना यज्ञेन राध्नोति** पाँच सवन वाले यज्ञ से समृद्धि को प्राप्त करता है।

सा० भा०—परेद्युर्यक्ष्यमाणस्य यजमानस्य समीपे पूर्वेद्युर्देवतास्तदीयं यज्ञं प्रतीक्षमाणा वसन्ति तस्मादुप समीपे वसन्त्यस्मिन् दिवस इति पूर्वदिवसमुपवसथाख्ये पूर्वदिवसे यः पशुरग्नीषोमीयः सोऽप्यत्र सवनसमीपवर्तित्वात् सवनत्वेन गण्यते। प्रातःसवनादीनि तु त्रीणि प्रसिद्धान्येव सवनानि। सवनेभ्य ऊर्ध्वमनुष्ठेयोऽनूबन्ध्याख्यः पशुरपि पूर्ववत् सवनत्वेन गण्यते। अतः पञ्चानां सवनानां पङ्क्त्या समूहेन युक्तो यो यज्ञ एष एव सवनपङ्क्तिः। एवं हविष्पङ्क्तिप्रङ्गेनाक्षरपङ्क्तिर्नराशंसपङ्क्तिः सवनपङ्क्तिश्चेत्येतावदभिहितम्। एतदेवाभिप्रेत्य तत्र तत्र "पाङ्क्तो यज्ञः" श्रूयते॥[1]

अथ प्रकृतानां सवनीयपुरोडाशानां क्रमेण याज्या विधत्ते—

(सवनीयपुरोडाशानां क्रमेण याज्याविधानम्)

हरिवाँ इन्द्रो धाना अत्तु पूषण्वान् करम्भं सरस्वतीवान् भारतीवान् परिवाप इन्द्रस्यापूप इति हविष्पङ्क्त्या यजति ।।५।।

हिन्दी—(अब सवनीय पुरोडाशों की क्रमशः याज्या का विधान कर रहे हैं—) (पहली याज्या) 'हरिवाँ इन्द्रः धाना अत्तु' अर्थात् 'हरि' नामक दो घोड़ों वाले इन्द्र धान (रूपी हवि) का भक्षण करें। (दूसरी याज्या) **पूषण्वान् करम्भम्** पशुओं के स्वामी पूषादेव करम्भ (रूपी हवि) का भक्षण करें। (तीसरी याज्या) **सरस्वतीवान् भारतीवान्** (वाग्देवी) सरस्वती और भारती से युक्त देवता **परिवापः** परिवाप (रूप हवि का भक्षण करें)। (चौथी याज्या) **इन्द्रस्य अपूपः** इन्द्र को अपूप (पुरोडाश) प्रिय है। (पाँचवी याज्या) 'हवि पयस्या' (इस पाँचवीं याज्या को अन्य शाखाओं से जान लेना चाहिए)—**इति हविष्पङ्क्त्या यजति** इन पाँच हवियों (की याज्याओं) से यजन करता है।

सा० भा०—हरिनामानौ द्वावश्वावस्य स्त इति हरिवानिन्द्रः। सोऽयं धाना अत्तु भक्षयतु। सेयं प्रथमहविषो याज्या। पोषकत्वात् पशवः पूषञ्छब्देनोच्यन्ते। तत्स्वामी देवः पूषण्वान् स तु करम्भमत्त्वित्यनुवर्तते। सेयं द्वितीयहविषो याज्या। सरस्वती वाक्साऽस्यास्तीति देवविशेषः सरस्वतीवान्। स एव भारतीवाञ्शरीरभरणाद्भरणः प्राणः। तस्य संबन्धिनी

(१) शत०ब्रा० १.१.२.१६; तै०सं० ७.१.१०.४।

देहाऽवस्थितिर्भारती तद्युक्तो देवो भारतीवान्।[1] अयं विशेषणद्वयोपेतो देवः परिवापः परिवापाख्यं हविरस्तु। इयं तृतीयस्य याज्या। इन्द्रस्यापूपः पुरोडाशः प्रिय इति शेषः। तथा सतीन्द्रोऽपूपमत्त्वित्यर्थादवगम्यते। सेयं चतुर्थहविषे याज्या। पञ्चमहविःस्वरूपायाः पयस्यायाः शाखान्तरादत्रोपसंहर्त्तव्या। एवं 'हविष्पङ्क्त्या यजति' हविष्पङ्क्तिविषयां याज्यां पठेदित्यर्थः॥

प्रथमयाज्यां व्याचष्टे—

ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी ॥६॥

हिन्दी—(प्रथम याज्या की व्याख्या कर रहे हैं—) **ऋक्सामे वै इन्द्रस्य हरी** ऋक् और साम ही इन्द्र के हरि (नामक दो अश्व है)।

सा० भा०—ऋग्देवता सामदेवता चेत्युभयदेवतारूपाविन्द्रस्याश्वावतो हरिवानिति मन्त्रोक्तिरित्यर्थः॥

द्वितीययाज्यां व्याचष्टे—

पशवः पूषाऽन्नं करम्भः ॥७॥

हिन्दी—(द्वितीय याज्या की व्याख्या कर रहे हैं—) **पशवः पूषा अन्नं करम्भः** (पशुओं का भरण-पोषण करने के कारण) पूषा ही पशु है और **करम्भम् अन्नम्** (स्वादयुक्त होने के कारण) करम्भ अन्न है।

सा० भा०—पोषकत्वान् पशूनां पूषत्वं स्वादुपोषकत्वात् करम्भस्यान्नत्वमतः पशुस्वामिनः करम्भो योग्य इत्यर्थः॥

तृतीययाज्यां व्याख्यापूर्वं व्याचष्टे—

सरस्वतीवान् भारतीवानिति वागेव सरस्वती प्राणो भरतः ॥८॥

हिन्दी—(तृतीय याज्या का व्याख्यान कर रहे हैं—) 'सस्वतीवान् भारतीवान्' इति यहाँ **वागेव सरस्वती** वाणी ही सरस्वती है और **प्राणः भरतः** प्राण ही भरण करने वाला है।

सा० भा०—अत्र सरस्वतीवान् भारतीवानिति व्याख्येयमनूद्य वागित्यादिना तद्व्याख्यानं क्रियते। वागेव सरस्वतीत्येल्लोकप्रसिद्धं न त्वत्र किञ्चिद्वक्तव्यमस्तीत्येवशब्दस्यार्थः। शरीरभरणहेतुत्वात् प्राणो भरतशब्दवाच्यः। तदीयवृत्तिर्भारती तदुभयोपेतं मत्रत्स्ययस्यार्थ इति द्रष्टव्यम्॥

तृतीययाज्याया उत्तरार्धं चतुर्थयाज्यां चानूद्य व्याचष्टे—

परिवाप इन्द्रस्यापूप इत्यन्नमेव परिवाप इन्द्रियमपूपः ॥९॥

---

(१) 'शरीरस्य भर्ता प्राणो भरतः तस्य स्वभूता भारती प्राणवती वाक् तद्वान् इन्द्रो भारतीवान्'—इति भट्टभास्करः।

हिन्दी—(तृतीय याज्या के उत्तरार्ध और चतुर्थ याज्या को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'परिवाप इन्द्रस्य अपूपम्' इति यहाँ **अन्नमेव परिवापः** परिवाप (लावा) अन्न ही है और **इन्द्रियम् अपूपः** (इन्द्रियों की वृद्धि का हेतुभूत) अपूप इन्द्रिय है।

सा०भा०—परिवापशब्दवाच्यानां लाजानां मृत्युत्वेनात्तुं सुकरत्वादन्नत्वम्। इन्द्रियवृद्धिहेतुत्वाद् अपूपस्येन्द्रियत्वम्। अत्र हरिपूषादिविशेषरूपदेवताभेदाद्याज्याभेदेऽपि यजनीयस्य विशेषस्येन्द्रस्यैकत्वादेकयाज्यात्वमभिप्रेत्य हविष्पङ्क्त्या यजतीत्येकप्रधानविधिरिति द्रष्टव्यम् ॥[1]

होतुरुक्तयाज्यावेदनं प्रशंसति—

एतासामेव तद्देवतानां यजमानं सायुज्यं सरूपतां सलोकतां गमयति, गच्छति श्रेयसः सायुज्यं गच्छति श्रेष्ठतां य एवं वेद ॥१०॥

हिन्दी—(होता के इस पूर्वोक्त ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो (होता) इस प्रकार जानता है वह **तत्** इस (ज्ञान) से **यजमानम्** यजमान को **एताषामेव देवतानाम्** इन देवताओं के **सायुज्यं सरूपतां सलोकतां गमयति** सहवास, सारूप्य और समान निवास की प्राप्ति करा देता है। **श्रेयसः गच्छति** स्वयं (होता) श्रेय को प्राप्त करता है, **सायुज्यं गच्छति** (देवताओं की) समीपता को प्राप्त करता है और **श्रेष्ठतां गच्छति** श्रेष्ठता को प्राप्त करता है।

सा०भा०—य एवं वेदिता होता यजमानामिन्द्रादिदेवतानां सायुज्यं सहवासं सरूपतां समानशरीरत्वं सलोकतामेकलोकावस्थानां च प्रापयति। स्वयं च होता श्रेयसोऽतिप्रशस्तस्येन्द्रादेः सायुज्यं सहवासं प्राप्नोति भागाधिक्येन श्रेष्ठतां च प्राप्नोति॥

सवनीयपुरोळाशसंबन्धिनः स्विष्टकृतो याज्यां विधत्ते—

हविरग्ने वीहीत्यनुसवनं पुरोळाशःस्विष्टकृतो[2] यजति ॥११॥

हिन्दी—(सवनीय पुरोडाश से सम्बन्धित स्विष्टकृत् की याज्या को कह रहे हैं–) '**अग्ने** हे अग्ने **हविः वीहि** (हमारे द्वारा दी गयी) हवि का भक्षण करो'—**इति अनुसवनम्** इस प्रकार प्रत्येक अनुसवन में **पुरोडाशः स्विष्टकृतः** पुरोडाश का स्विष्टकृत् **यजति** याज्या करता है।

सा०भा०—हे अग्ने इदमस्माभिर्दत्तं हविर्वीहि भक्षय। एतामेव त्रिष्वपि सवनेषु

---

(१) अत एव श्रूयते—अथ कस्मादेतेषाँ हविषामिन्द्रमेव यजन्तीति। एता ह्येनं देवता इति ब्रूयात्'–इति० तै०ब्रा० १.५.११.३। 'यस्मादेताः सर्वा देवता एनमिन्द्रमुपजीवन्तीति शेषः, तस्माद् इन्द्रस्यैव धानादिहविःस्वमित्वं युक्तम्'—इति च तत्र सा०भा०।

(२) 'पुरोडाशस्विष्टकृतं यजेत्। सवनबहुत्वात् पुरोडाशस्विष्टकृत इति बहुवचनम्। द्वितीयार्थे वा षष्ठ्येकवचनम्'—इति भट्टभास्करः।

याज्यां पठेत्।।

एतामेव प्रशंसति—

अवत्सारो वा एतेनाग्नेः प्रियं धामोपागच्छत् स परमं लोकमजयत्।।१२।।

हिन्दी—(इस स्विष्टकृत् याज्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अवत्सारः वै** अवत्सार नामक किसी ऋषि की हवि **एतेन** इस (मन्त्र) से **अग्नेः प्रियं धाम उपागच्छत्** अग्नि के प्रिय धाम को प्राप्त किया और **सः परमं लोकम् अजयत्** उस (ऋषि) ने परम लोक को प्राप्त किया।

सा॰भा॰—अवत्सारनामकः कश्चिदृषिर्हविरित्येतेन मन्त्रेणाग्निदेवतायाः प्रियं स्थानं प्राप्य तत ऊर्ध्वं ततोऽत्युत्कृष्टं लोकं जितवान्। अत्र सर्वत्र यजुःस्वरूपैव याज्या।।

तदेतन्मन्त्रवेदनं तत्पूर्वकमनुष्ठानं च प्रशंसति—

उपाग्नेः प्रियं धाम गच्छति, जयति परमं लोकं, य एवं वेद, यश्चैव विद्वानेतया हविष्पङ्क्त्या यजते यजतीति च, यजतीति च।।१३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान और अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **यः च एवं विद्वान्** जो इस प्रकार का जानने वाला (होता) **एतया हविष्पङ्क्त्या** इस पाँच हविषों से युक्त **यजते** यजन करता है और **यजति च** यजन कराता है। वह **अग्नेः प्रियं धाम उपगच्छति** अग्नि के प्रिय धाम को प्राप्त करता है और **परमं लोकं जयति** उससे भी उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त करता है।

सा॰भा॰—यस्यात्रवेदिनः फलतया हविष्पङ्क्तिं स्वार्थमनुतिष्ठतो यजमानस्य परार्थं याज्या पठतो होतुश्च फलं भवति। उभयविवक्षयाऽऽत्मनेपदपरस्मैपदप्रयोगः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टमाध्याये) षष्ठः खण्डः ।।६।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टम अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवाचार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'-नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य द्वितीयपञ्चिकायाः तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टम अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयपञ्चिकायाम्
चतुर्थोऽध्यायः
[अथ नवमोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— अपोनप्त्रीयतच्छेष उपांश्वादिग्रहा अपि।
सवनीयाः पुरोडाशाः पवमानाय सर्पणम् ॥१॥

इदानीमैन्द्रवायवादीन् द्विदेवत्यान् ग्रहान् विधातुमाख्यायिकामाह—

(ऐन्द्रवायवादिद्विदेवत्यग्रहस्य विधातुमाख्याकिा)

देवा वै सोमस्य राज्ञोऽग्रपेये न समपादयन्नहं प्रथमः पिबेयमहं प्रथमः पिबेयमित्येवाकामयन्त, ते संपादयन्तोऽब्रुवन् हन्ताऽऽजिमयाम स यो न उज्जेष्यति स प्रथमः सोमस्य पास्यतीति, तथेति त आजिमयुस्तेषामाजिं यतामभिसृष्टानां वायुर्मुखं प्रथमः प्रत्यपद्यताथेन्द्रोऽथ मित्रावरुणावथाश्विनौ ॥१॥

हिन्दी—(अब इन्द्रवायू इत्यादि द्विदेव से सम्बन्धित ग्रहों के विधान के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **देवाः** देवताओं ने **सोमस्य राज्ञः अग्रपेये** सोम राजा के विषय में आगे पान करने के लिए **न समपादयन्** सम्मति को नहीं प्राप्त हुए (एक मत नहीं हुए किन्तु)। **अहं प्रथमः पिबेयम् अहं प्रथमः पिबेयम्** मैं पहले पान करूँ, मैं पहले पान करूँ—**इत्येव अकामयन्त** यही कामना किये। **ते संपादयन्तः अब्रुवन्** उन्होंने परस्पर सममति होकर कहा कि **हन्त आजिमयाम** अरे हम लोग दौड़ लगावें। **नः यः उज्जेष्यति** हम लोगों में जो जीतेगा **सः प्रथमः सोमस्य पास्यति** वह पहले सोम का पान करेगा। **तथा इति** ठीक है (ऐसा उन्होंने निश्चय किया)। **ते आजिमयुः** उन लोगों ने दौड़ लगाया। **आजि यताम् अभिसृष्टानां तेषाम्** दौड़ में प्रवृत्त उन (देवताओं) में **वायुः प्रथमः मुखं प्रतिपद्यत** वायु पहले (नियतस्थान पर) पहुँच गये। **अथ इन्द्रः** इसके बाद इन्द्र **अथ मित्रावरुणौ** इसके बाद मित्र और वरुण, **अथ अश्विनौ** तत्पश्चात् अश्विन्देव पहुँचे।

सा० भा०—पुरा कदाचिद्देवाः सोमस्याग्रपेये प्रथमपाने निमित्तभूते सति न समपाद-

यन् संपादनं संपत्तिं न प्राप्ताः।[१] किंत्वहमेव प्रथमः पिबेयमिति सर्वेऽप्यकामयन्त सर्वे समयबन्धपुरःसरमाजिं धावनावधिं कञ्चिद्वृक्षं पाषाणमन्यद्वा किञ्चिदयामप्राप्नवाम।[२] स यो यः कश्चिदपि नोऽस्माकं मध्य उज्जेष्यति तस्मिन् धावन उत्कर्षेण जयं प्राप्स्यति स एक एव प्रथमो भूत्वा सोमस्य सोमं पास्यति। ते देवास्तथेत्यङ्गीकृत्याऽऽजिं धावनमर्यादामयुः प्राप्तवन्तः। आजिं यतां प्राप्नुवतामभिसृष्टानामभितः प्रवृत्तानां तेषां मध्ये वायुः प्रथमो भूत्वा मुखमवधेः संमुखं तं प्रत्यपद्यत। वायोः पृष्ठत इन्द्रः, तस्य पृष्ठतो मित्रावरुणौ, तयोः पृष्ठतोऽश्विनावेवं क्रमेण सर्वे धावनं प्रारब्धवन्तः॥

तस्मिन् धावने वायोरिन्द्रस्य च परस्परं संवादं दर्शयति—

(धावने वायोरिन्द्रस्य संवादः)

सोऽवेदिन्द्रो वायुमुद्वै जयतीति तमनु परापतत् सह नावथोज्जयावेति स नेत्यब्रवीदहमेवोज्जेष्यामीति तृतीयं मेऽथोज्जयावेति नेति हैवाब्रवीदहमेवोज्जेष्यामीति तुरीयं मेऽथोज्जयावेति, तथेति तं तुरीयेऽत्यार्जत, तत्तुरीयभागिन्द्रोऽभवत् त्रिभाग्वायुः ॥२॥

हिन्दी—(उस दौड़ प्रतियोगिता में वायु और इन्द्र के हुए परस्पर संवाद को दिखला रहे हैं—) **सः इन्द्रः अवेत्** उस इन्द्र ने सोचा कि **वायुम् उद्वै जयति** वायु को जीत लूँ। **तम् अनु परापत्** (अतः दौड़ते हुए इन्द्र) उस (वायु) के समीप गिर गये। **अथ** तब (इन्द्र ने कहा कि) **सह नौ उज्जयौ** हम दोनों (वायु और इन्द्र) ने साथ-साथ जीता है (अतः हम दोनों साथ-साथ आधा-आधा सोम पान करें)। तब **सः अब्रवीत्** उस (वायु) ने कहा कि **नेति** नहीं, **अहमेव उज्जेष्यामि** केवल मैंने ही जीता है। (पुनः इन्द्र ने कहा कि) **तृतीयं मे** मेरे लिए तृतीय भाग ही प्राप्त हो; क्योंकि **अथ उज्जयौ** हम दोनों ने साथ-साथ जीता है। **नेति ह एव अब्रवीत्** (तब वायु ने) कहा कि नहीं, **अहमेव उज्जेष्यामि** मैंने ही जीता है। (पुनः इन्द्र ने कहा) **मे तुरीयम्** मुझे चौथाई भाग ही प्राप्त हो क्योंकि **अथा उज्जयाव** हम दोनों ने साथ-साथ जीता है। (तब वायु ने कहा कि) **तथा** ठीक है। **तं तुरीये अत्यार्जत** उस (इन्द्र) को चौथाई भाग प्राप्त होवे। **तत्** इस कारण **तुरीयभाग् इन्द्रः** चौथाई भाग वाला इन्द्र और **त्रिभाग् वायुः** तीन भाग वाला वायु **अभवत्** हुआ ॥

---

(१) न समपादयन् न समपद्यन्त तद्विषये सम्प्रतिपत्तिमन्तो नाभवन्। सम्प्रतिपत्तिरेव सम्पत्ति स्वार्थिको णिच्। यद्वा, सामर्थ्यादात्मानमिति गम्यते। आत्मानं सम्प्रतिपन्नं नाकुर्वत'—इति भट्टभास्करः। 'सम्पदेरनुज्ञान—इत्यर्थाल्लङ्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) (i) 'सम्प्रतिपत्तिकामा अब्रुवन् हेतौ शतृप्रत्ययः'—इति भट्टभास्करः। (ii) 'हन्तेत्यभिमुखीकरणे'—इति षड्गुरुशिष्यः। 'हन्तेत्यात्मगतम्'—इति गोविन्दस्वामी।

सा० भा०—अयं वायुरुत्कर्षेण जयत्येवेति स इन्द्रोऽवेत्स्वमनसि ज्ञातवाञ्ज्ञात्वा च तं वायुमनु पृष्ठतः परापतत् सहसैवाधावत्। आगत्य चेदमुक्तवान् हे वायो नावावयोरुभयोः सह सोमपानमस्तु तवार्धं ममार्धम्। अथ तस्मात्कारणादावामुभौ सहैवोत्कर्षेण जयं प्राप्नवावेति। स वायुर्नेति निराकृत्याहमेक एवोज्जेष्यामीत्यब्रवीत्। ततः स इन्द्र एवमुवाच ममार्धं मा भूत्, किं तु तृतीयं त्रिषु भागेषु भागोऽस्तु तव द्वौ भागौ। अथैवं सति सहैवाऽऽवामुज्जयावेति। पुनरपि नेत्येव निराकृत्य स वायुरहमेवोज्जेष्यामीत्यब्रवीत्। ततः स इन्द्रः पुनरप्युवाच तृतीयो मा भूत्, किं तु मे तुरीयमस्तु चतुर्थभागोऽस्तु, तव त्रयो भागा। अथैवं सत्यावामुभावुज्जयावेति। ततो वायुरङ्गीकृत्य तमिन्द्रं तुरीये चतुर्थभागेऽत्यार्जतातिशयेन स्थापितवान्[१] तस्मात् कारणादिन्द्रश्चतुर्थांशभागभूत्। वायुरंशत्रयभागवान्॥

अथ विजयक्रमेण सोमपानक्रमं दर्शयति—

(सोमपानक्रमविधानम्)

तौ सहैवेन्द्रवायू उदजयतां सह मित्रावरुणौ सहाश्विनौ, त एषामेते यथोज्जितं भक्षा इन्द्रवाय्वोः प्रथमोऽथ मित्रावरुणयोरथाश्विनोः ।।३।।

हिन्दी—(अब विजय के क्रम से सोमपान के क्रम को दिखला रहे हैं—) **तौ इन्द्रवायू सह एव उदजयताम्** उस इन्द्र और वायु ने साथ-साथ जीता, **सह मित्रवरुणौ** मित्र और वरुण ने साथ-साथ तथा **सह अश्विनौ** दोनों अश्विन् देवों ने साथ-साथ जीता। **एषाम्** इन (देवताओं) में **ते एते** वे ये (देवता) **यथा उज्जितम्** जिस क्रम से जीते **भक्षाः** (उसी क्रम से) सोमपान के प्राप्त करते हैं। **इन्द्रवाय्वोः प्रथमम्** इन्द्र और वायु को पहले **अथ मित्रावरुणयोः** इसके बाद मित्र और वरुण को **अथ** तत्पश्चात् **अश्विनोः** अश्विन्द्वय को (सोम दिया जाता है)।

सा० भा०—इन्द्रवायू उभौ सहैवोदजयतां धावतामवधिदेशं प्राप्नुताम्। तयोः पृष्ठतो मित्रावरुणौ परस्परं सह प्राप्नुतः। तयोः पृष्ठतोऽश्विनौ सह प्राप्नुतः। एषां देवानां यथोज्जितं तत्तज्जयमनतिक्रम्य त एते भक्षाः सोमपानरूपा अभवन्निन्द्रवाय्वोः प्रथमं सोमपानं ततो मित्रावरुणयोः सोमपानं ततोऽश्विनोः सोमपानमित्येवं द्विदेवत्यग्रहाणां क्रमो व्यवस्थितः॥

इदानीमैन्द्रवायवग्रहं विधत्ते—

(ऐन्द्रवायवग्रहविधानम्)

स एष इन्द्रतुरीयो ग्रहो गृह्यते यदैन्द्रवायवः ।।४।।

हिन्दी—(अब इन्द्रावायु के ग्रह का विधान कर रहे हैं—) **यद् ऐन्द्रवायवः ग्रह** जो

---

(१) 'अतिसृष्टवान्। यद्वा, स्वात्मानमतिक्रम्य स्वामित्वेनेन्द्रमार्जितवान् स्वीकृतवान्'—इति भट्टभास्करः। 'अति सुष्ठु। आर्जताभ्युपगतवान्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

इन्द्र और वायु (देवता) से सम्बन्धित ग्रह (सोमपूर्ण घड़ा) है **सः एषः इन्द्रतुरीयः** वह यह (घड़ा) इन्द्र के चौथाई भाग वाला है। अर्थात् उस घड़े में चौथाई भाग इन्द्र का और शेष भाग वायु का होता है)।

सा० भा०—योऽयमिन्द्रवायुदेवताको ग्रहः स एष इन्द्रतुरीय इन्द्रस्य तुरीयभागो यस्मिन् ग्रहे सोऽयमिन्द्रतुरीयः[१], तादृशं ग्रहं गृह्णीयात्॥

उक्त भागविशेषं मन्त्रसंवादेन द्रढयति—

तदेतदृषिः पश्यन्नभ्यनूवाच 'नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः' इति ॥५॥

हिन्दी—(उक्त इन्द्र के भाग-विशेष को मन्त्र द्वारा दृढ़ कर रहे हैं—) **तद् एतत्** उस इस (इन्द्र के चौथाई भाग) को **पश्यन् ऋषिः** (अपनी दिव्य दृष्टि से) दर्शन करते हुए ऋषि ने '**नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः** वायु और उसका सारथि इन्द्र' अर्थात् **अभ्यनूवाच** सब कुछ कह दिया, इस मन्त्र के द्वारा।

सा० भा०—तदेतच्चतुर्थभागत्वं दिव्यदृष्ट्या पश्यन् कश्चिन्मन्त्रात्मक[२] ऋषिस्तेन मन्त्रेणाभ्यनूवाच साकल्येन तदुक्तवान्। नियुत्वानित्यादिको मन्त्रः। नियुत्वच्छब्दो वायुसंबन्धिनां मन्त्राणां वाचकः। 'अध वायुं नियुतः सश्चतस्वाः' इत्यादिमन्त्रेष्वभिधामात्[४]। नियुतो यस्य वायोः सन्ति सोऽयं 'नियुत्वान्'[५] इन्द्रः सारथिर्यस्य वायोः सोऽयमिन्द्रसारथिः। अथ सारथित्वाभिधानाद् इन्द्रस्य चतुर्थभागप्राप्तिर्दर्शिता॥

उक्तमर्थं लोकव्यवहारेण द्रढयति—

तस्माद्धाप्येतर्हि भरताः सत्वनां वित्तिं प्रयन्ति तुरीये हैव संग्रहीतारो वदन्तेऽमुनैवानूकाशेन यदद इन्द्रः सारथिरिव भूत्वोदजयत् ॥६॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ को लोकव्यवहार द्वारा दृढ कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **एतर्हि** आज भी **भरताः सत्वनां वित्तिं प्रयन्ति** भरत (भा = सङ्ग्राम का विस्तार करने वाले योद्धा) लोग जब सारथियों को धन देते हैं तो **यददः इन्द्रः** इस इन्द्र ने **सारथिः इव भूत्वा अजयत्** (वायु के) सारिथ के समान होकर विजय प्राप्त किया था' **अमुना एव अनूकाशेन** इसी दृष्टान्त के द्वारा **वदन्ते** सारथि से कहते हैं कि **तुरीये एव संग्रहीतारः** (तुम सारथि) चौथाई भाग के ही भागीदार हो।

---

(१) 'तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वागुद्यते, तस्मात् सकृदिन्द्राय मध्यतो गृह्यते द्विर्वायवे'—इति तै०सं० ६.४.७। 'चतुर्थभागे ग्रहे त्वाद्यौ भागौ द्वौ वायुरग्रहीत्। तृतीयमिन्द्रश्चतुर्थं वायुस्तु पुनरग्रहीत्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) इह कर्तृकरणयोरेकत्वमुपगतं सायणस्येत्यालोच्यम्।

(३) ऋ० ४.४६.२। (४) ऋ० ७.९०.३।

(५) 'नियुतो वायोः'—इति निघ० १.१५.१०।

सा० भा०—यस्मात् सारथिरूपस्येन्द्रस्य चतुर्थभागः पूर्वं प्रत्तः, तस्माद्ध तत एव कारणादेतर्ह्यपीदानीमपि भरता[1] भरः सङ्ग्रामस्तं तन्वन्ति विस्तारयन्तीति भरता योद्धारः सत्वनां सारथीनां वित्तिं वेतनां जीवितरूपां प्रयन्ति प्रकर्षेण संपादयन्ति। ते च संग्रहीतारः सारथयस्तुरीये हैव युद्धलब्धस्य द्रव्यस्य चतुर्थभाग एव वदन्तेऽस्माकमेतावदुचितमिति कथयन्ति। तदौचित्ये युक्तिमाह—अमुनैव पूर्वोक्तेनैवानूकाशेन दृष्टान्तेन। स एव दृष्टान्तो यदद इत्यादिना स्पष्टीक्रियते। यस्मात्कारणाद् इन्द्रो वायोः सारथिरिव भूत्वाऽदश्चतुर्थांशरूपं सोमात्मकं धनम् उदजयत्, तस्माल्लोकेऽपि तथैव प्रवृत्तमित्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (नवमाध्याये) प्रथमः खण्डः ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—अथैन्द्रवायमैत्रावरुणाश्विनाख्यान् द्विदेवत्यग्रहान् प्राणरूपत्वेन प्रशंसति—

(द्विदेवत्यग्रहाणां प्राणरूपत्वेन प्रशंसनम्)

ते वा एते प्राणा एव यद्द्विदेवत्याः[2] ।।१।।

हिन्दी—(अब ग्रहों की प्राण के रूप में प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् द्विदेवत्याः** जो दो-दो देवताओं वाले (ग्रह = सोम से भरे घड़े) हैं **ते एते वै** वे ये (ग्रह) **प्राणाः एव** प्राणरूप ही हैं।

तेषां त्रयाणां प्राणरूपत्वं विभज्य दर्शयति—

वाक् च प्राणश्चैन्द्रवायवश्चक्षुश्च मनश्च मैत्रावरुणः श्रोत्रं चाऽऽत्मा

---

(१) 'भरता युद्धार्थिनः सत्वनां सारथीनां वित्तिं वेतनां भृतिं प्रयन्ति प्रयच्छन्ति तुरीये च भागे संग्रहीतारः संग्रहीतॄन् वदन्ते भरताः। संग्रहीतार इति द्वितीयार्थे प्रथमा। यद्वा, भरता इति ऋत्विङ्नाम। भरता भृता भृत्याः, सत्वनां सत्वतां, सत्वन्तो दाक्षिणात्याः 'ये के च सत्वताम्' (ऐ०ब्रा० ३.८.३) इति लिङ्गात्। वित्ति भृति प्रयन्ति। ते च भृति प्रयन्तः संग्रहीतारो भृत्याः तुरीये चतुर्थे भागे प्रतीयमाने संवदन्ते। तथा चाहुः—कर्मकरा हि कर्म कुर्वाणाः पादिकमर्थं लभन्ते। इति, इति गोविन्दस्वामी। किंतु कीथमहोदयेन संज्ञाशब्दरूपेण व्याख्यातम्; (द्र० शत० १३.५.४.२१)।

(२) द्र० 'प्राणा वा एते यद् द्विदेवत्याः'—इति तै०सं० ६.४.९।

चाऽऽश्विनः ।।२।।

हिन्दी—(उन तीनों ग्रहों की प्राणरूपता को विभाजित करके दिखला रहे हैं—) **वाक् च प्राणः च** वाणी और प्राण **ऐन्द्रवायवः** इन्द्र और वायु (के ग्रह रूप) हैं, **चक्षुः च मनः च** चक्षु और मन **मैत्रावरुणः** मित्र और वरुण के (ग्रहरूप) हैं तथा **श्रोत्रं च आत्मा च** श्रोत्र और आत्मा **आश्विनः** अश्विन्देवों के (ग्रह रूप) हैं।

सा०भा०—उच्छ्वासादिवृत्तिभेदवर्ती वायुः प्राणः। वागादीनीन्द्रियाणि। तेषां प्राणरूपत्वाभावेऽपि प्राणाधीनवृत्तिलाभत्वेन पूर्वत्र प्राणा इति निर्देशः कृतः।[१] इममर्थं वाजसनेयिन आमनन्ति—'त एतस्यैव सर्वे रूपमभवंस्तस्मादेत एतेनाऽऽख्यायन्ते प्राणाः'[२] इति ।।

तत्र वायुरूपे त्वमुख्यः प्राणो वाक्चेत्येतद् उभयमैन्द्रवायवग्रहस्वरूपं, चक्षुर्मनश्चातीन्द्रियद्वयं मैत्रावरुणग्रहस्वरूपं, श्रोत्रं जीवात्मा चेत्युभयमाश्विनग्रहस्वरूपं[३] वक्ष्यमाणयाज्यानुवाक्योपयोगित्वेन प्राणरूपतया प्रशस्यैन्द्रवायवग्रहस्य याज्यानुवाक्ये विधातुं पूर्वपक्षमाह—

(ऐन्द्रवायवग्रहस्य याज्यानुवाक्ययोर्विधानम्)

तस्य हैतस्यैन्द्रवायवस्याप्येकेऽनुष्टुभौ पुरोनुवाक्ये कुर्वन्ति गायत्र्यौ याज्ये ।।३।।

हिन्दी—(इन्द्र और वायु के ग्रह की याज्या और अनुवाक्या का विधान करने के लिए पूर्वपक्ष को कह रहे हैं—) **तस्य ह एतस्य ऐन्द्रवायवस्य** उस इस इन्द्र और वायु से सम्बन्धित (ग्रह) के **अनुष्टुभौ पुरोनुवाक्ये** अनुष्टुप् छन्द वाली दो (ऋचाएँ) पुरोनुवाक्या तथा **गायत्र्यौ याज्ये** गायत्री छन्द वाली दो ऋचाएँ याज्या **कुर्वन्ति** करते हैं।

सा०भा०—योऽयमैन्द्रवायवग्रहः पूर्वमुक्तस्तस्यैके ह याज्ञिका अनुष्टुप्छन्दस्के ऋचौ पुरोनुवाक्ये कृत्वा गायत्रीछन्दस्के ऋचौ याज्ये इति कुर्वन्ति। अपिशब्दोऽनर्थकः। यदाऽपि कुर्वन्तीत्येवं पूर्वपक्षानुवादार्थो वा।।

---

(१) 'प्राणशब्दः प्राणाप्राणेषु लक्षणया छत्रिणो गच्छन्तीतिवत्'—इति गोविन्दस्वामी। 'प्राणाप्रवृत्तिभेदात्मकचक्षुरादिरूपत्वात्, चक्षुरादिस्थितिहेतुत्वाद् वा'—इति भट्टभास्करः।

(२) शत०ब्रा० १४.४.३.३२। 'पञ्चधा विहितो वा अयशीर्षन् प्राणो मनो वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम्'—इत्यादि च शत०ब्रा० ९.२.२.५;१.५.२.५;३.१.३१९-२१; ५.२.४. १०.११.७.१३.१.७.२।

(३) तु० तै०सं० ६.४.९। 'वचनाप्राणनहेतू इन्द्रवायू चिद्रूपत्वात् प्रेरयितृत्वाच्च। दर्शनमननहेतू मित्रावरुणौ प्रकाशकत्वाज्जीवयितृत्वाच्च श्रवणशरीरहेतू अश्विनौ आरोग्यहेतुत्वात्—इति भट्टभास्करः।

तेषां पूर्वपक्षिणामभिप्रायं दर्शयति—

वाक् च वा एष प्राणश्च ग्रहो यदैन्द्रवायवस्तदपि च्छन्दोभ्यां यथायथं कल्प्स्येते[१] इति ।।४।।

हिन्दी—(पूर्वपक्षियों के अभिप्राय को दिखला रहे हैं—) **यद् ऐन्द्रवायवः ग्रहः** जो इन्द्र और वायु से सम्बन्धित ग्रह है, **एषः वै वाक् च प्राणः च** यह ही वाणी और प्राण है (अर्थात् इन्द्र व्याकरण के कर्त्ता रूप और प्राण वाणी रूप है)। **तद् अपि** (इस प्रकार) वे दोनों भी **यथायथं छन्दोभ्यां कल्प्येते** क्रमानुसार दोनों छन्दों से कल्पित किये गये हैं।

सा० भा०—योऽयमैन्द्रवायवग्रहः स एष प्राणात्मकः तत्रेन्द्रो वाचो व्याकरण-रूपायाः कर्ता 'तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोदिति' श्रुत्यन्तराद्[२] अत इन्द्रद्वारा वाग्रूप-त्वम्। 'यः प्राणः स वायुः' श्रुत्यन्तरात्[३] प्राणरूपत्वम्। तावुभावपि यथोक्ताभ्यामनुष्टुब्गा-यत्रीछन्दोभ्यां यथायथं स्वस्वसंबन्धमनतिक्रम्य कल्प्स्येते कल्पितौ भविष्यतः।[४] 'वाग्वा अनुष्टुप्' इति श्रुत्यन्तराद्[५] अनुष्टुप्छन्दसो वाग्रूपत्वम्। 'प्राणो वा गायत्रीति' श्रुत्यन्तराद् गायत्र्याः प्राणरूपत्वम्। अत्र मन्त्रविशेषाः शाखान्तरे द्रष्टव्याः।[६] सोऽयं पूर्वपक्षिणामभिप्रायः।।

पूर्वपक्षनिराकरणपूर्वकसिद्धान्तं दर्शयति—

तत्तन्नाऽऽदृत्यं व्यृद्धं वा एतद् यज्ञे क्रियते यत्र पूरोनुवाक्या ज्यायसी याज्यायै, यत्र वै याज्या ज्यायसी तत्समृद्धमथो यत्र समे यस्यो तत्कामाय तथा कुर्यात् प्राणस्य च वाचश्चात्रैव तदुपाप्तम् ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वपक्ष का निवारण करके सिद्धान्त को दिखला रहे हैं—) **तत्** तो **तद् अनादृत्यम्** वह (पूर्वपक्षियों का पक्ष) सम्माननीय नहीं है; क्योंकि **यत्र याज्यायै पुरोनुवाक्या ज्यायसी** जिस (कर्म) में याज्या से पुरोनुवाक्या (अक्षरों की संख्या में) अधिक **यज्ञे क्रियते** यज्ञ में की जाती है **एतद् वै व्यृद्धम्** यह (कर्म) समृद्धि से रहित होता है और **यत्र याज्या ज्यायसी** जिस (कर्म) में (पुरोनुवाक्या से) याज्या अधिक होती है **तत् समृद्धम्** वह (कर्म) समृद्ध होता है। **अथ यत्र समे** और जिस (कर्म) में (याज्या

---

(१) 'क्लृप्स्येते' इति वा पाठः।

(२) तै०सं० ६.४.७४। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् —इति सहितापाठः। १.४.४ भाष्ये हास्य व्याख्यानं द्रष्टव्यम्।

(३) 'तदपि तावपि वाक्प्राणौ तदीयाभ्यां छन्दोभ्यां परिगृहीताभ्यां यथायथं यथास्वं कल्प्स्येते क्लृप्तौ भविष्यतः'—इति भट्टभास्करः।

(४) यो वै प्राणः स वातः....अयं वै.....प्राणो योऽयं पवते'–इति शत० ब्रा० ५.२.४.९।

(५) ऐं०ब्रा० ३.२.४।

(६) आ वायो भूष शुचिपाः'—इत्यादयः तै०सं० १.४.४।

और अनुवाक्या) दोनों (अक्षरों की संख्या में) समान होते हैं (वह भी समृद्धियुक्त होता है)। **प्राणस्य च वाचः च** प्राण और वाणी से सम्बधित **यस्य** जिस (वस्तु) की **कामाय** कामना के लिए **तथा कुर्यात्** उस प्रकार करे तो **तत् अत्रैव उपात्तम्** वह इस (याज्या अनुवाक्या की समानता) से ही प्राप्त हो जाती है।

सा० भा०—तत्पूर्वपक्षमतं नाऽऽदरणीयम्। यत्र हेतुरुच्यते—यस्मिन् कर्मणि याज्यायाः सकाशात् पुरोनुवाक्याऽक्षरैरभ्यधिका तत्कर्म व्यृद्धं समृद्धिरहितम्। पूर्वपक्षिणश्चात्र न्यूनां याज्यां पुरोनुवाक्यामधिकां कुर्वन्ति। तस्मादेतन्मतमयुक्तम्। यत्र वै यस्मिंस्तु कर्मणि पुरोनुवाक्यायाः सकाशादभ्यधिका याज्या भवति तत्कर्म समृद्धम्। अपि च यत्र कर्मणि याज्यानुवाक्ये समे भवतः, तदपि कर्म समृद्धम्। साम्यपक्षेऽन्योऽपि गुणोऽस्ति। तत्कथमिति, तदुच्यते—प्राणस्य च वाचश्च प्राणवाचोर्मध्ये यस्य यस्य वस्तुनः कामायापेक्षितफलसिद्धये तत्तथा कुर्यात् तेन पूर्वोक्तप्रकारेणानुष्टुब्गायत्रीजन्यमनुष्ठानं पूर्वपक्षी कुर्वीत तत्सर्वं विफलम्। तत्रैव याज्यानुवाक्ययोः साम्यानुष्ठान एवोपाप्तं शीघ्रं प्राप्तं भवति। तस्मात् साम्यपक्ष एवाऽऽदरणीय इत्यर्थः॥

साम्यपक्षे पूर्वपक्ष्यभिप्रेतं प्रयोजनं कथं सिध्येदित्यादशङ्क्याऽऽह—

वायव्या पूर्वा पुरोनुवाक्यैन्द्रवायव्युत्तरैवं, याज्ययोः, सा या वायव्या तया प्राणं कल्पयति, वायुर्हि प्राणोऽथ यैन्द्रवायवी तस्यै यदैन्द्रं पदं तेन वाचं कल्पयति, वाग्घ्यैन्द्र्युपो तं काममाप्नोति यः प्राणे च वाचि च न यज्ञे विषमं करोति ॥६॥

हिन्दी—(याज्या और अनुवाक्या की समानता के पक्ष में पूर्वपक्ष के अभिप्रेत प्रयोजन की सिद्धि को दिखला रहे हैं—) (इन दोनों पुरोनुवाक्याओं में) **पूर्वा पुरोनुवाक्या** पहली पुरोनुवाक्या **वायव्या** वायु देवता वाली और **उत्तरा** परवर्ती **ऐन्द्रवायव्या** इन्द्र और वायु देवता वाली होनी चाहिए। **एवं याज्ययोः** इसी प्रकार दोनों याज्याओं में (पहली याज्या इन्द्रदेवताक और दूसरी इन्द्र-वायु देवताक) होनी चाहिए। **सा या वायव्या** वह जो वायु देवता वाली (याज्या और अनुवाक्या) है **तया** उसके द्वारा **प्राणं कल्पयति** प्राण को अपने व्यापार में समर्थ बनाता है क्योंकि **वायुः हि प्राणः** वायु ही प्राण है। **अथ** तथा **या ऐन्द्रवायवी** जो इन्द्र और वायु दोनों से सम्बन्धित (याज्या और अनुवाक्या है **तस्यै यद् ऐन्द्रं पदम्** उसमें जो इन्द्र सम्बन्धी पद है, **तेन** उस (पद) से **वाचं कल्पयति** वाणी को अपने व्यापार में समर्थ बनाता है; क्योंकि **वाग् वै ऐन्द्री** वाणी ही (इन्द्र के व्याकरण का कर्त्ता होने के कारण) इन्द्र से सम्बन्धित है। **प्राणे च वाचि च यः** प्राण में और वाणी में जो (कामना होती है) **तं कामम्** उस कामना को **आप्नोति** प्राप्त करता है। अतः **यज्ञे** यज्ञ में **न विषमं करोति** (याज्या और अनुवाक्या को) विषम (अक्षरों वाला) नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—द्वयोः पुरोनुवाक्ययोर्मध्ये या पूर्वा पुरोनुवाक्या सा 'वायव्या' वायुदैवताका 'वायवा याहि दर्शत'[१] इत्यस्यामृचि वायोः श्रवणात्। या तूत्तरा पुरोनुवाक्या सेयमैन्द्रवायवी 'इन्द्रवायू इमे सुता'[२] इत्यस्यामृचीन्द्रवाय्वोः श्रवणात्। एवं याज्ययोरपि द्रष्टव्यम्। उभयोर्याज्ययोर्मध्ये या पूर्वा सा वायव्या। 'अग्रं पिबा मधूनाम्'[३] इत्यस्यामृचि सुतं वायो दिविष्टिष्विति वायोः श्रवणात्। योत्तरा याज्या सेन्द्रवायवी। 'शतेना नो अभिष्टिभिः'[४] इत्यस्यामृचि नियुत्वाँ इन्द्रसारथिरितीन्द्रः श्रूयते वायो सुतस्येति वायुरपि श्रूयते। तस्माद् इयमैन्द्रवायवी। एवं संति या वायव्या पुरोनुवाक्या याज्या च तया प्राणः कल्पितः स्वव्यापारसमर्थो भवति 'यः प्राणः स वायुः' इति श्रुत्यन्तरेण वायुप्राणयोरेकत्वस्य पूर्वपक्षिणाऽप्यङ्गीकर्तव्यत्वात्। अथ यैन्द्रवायवी पुरोनुवाक्या या याज्या वा तस्यै तस्यामुभयविधायां यदैन्द्रमिन्द्रसंबन्धिपदं विद्यते तेन पदेन वाचं कल्पयति समर्थां करोति। हि यस्मात् कारणाद् वागैन्द्रीन्द्रस्य[५] व्याकरणकर्तृत्वात्। तस्माद् वाचा सामर्थ्यं भवति। एवमनुतिष्ठन् पुरुषो वाक्प्राणयोर्यः कामोऽस्ति तं प्राप्नोति यज्ञे च च्छन्दःसाम्यं विषममनुष्ठानं न करोति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (नवमाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—अथ द्विदेवत्यानामैन्द्रवायवमैत्रावरुणाश्विनग्रहाणां त्रयाणां ग्रहणहोमयोः पात्रवैषम्यं विधत्ते—

(द्विदेवत्यग्रहाणां ग्रहणहोमयोः पात्रवैषम्यविधानम्)

प्राणा वै द्विदेवत्या एकपात्रा गृह्यन्ते, तस्मात् प्राणा एकनामानो द्विपात्रा हूयन्ते तस्मात् प्राणा द्वन्द्वम् ।।१।।

हिन्दी— (अब तीनों ग्रहों के ग्रहण और होम सम्बन्धी पात्रों में विषमता का विधान कर रहे हैं–) **प्राणाः वै द्विदेवत्याः** प्राण दो देवता (इन्द्र और वायु) ग्रह से सम्बन्धि है

---

(१) ऋ० १.२.१। (२) ऋ० १.२.४। (३) ऋ० ४.४६.१। (४) ऋ० ४.४६.२।

(५) पुरासीद् ऐन्द्रं व्याकरणमीति प्रवादाश्रितमेदुक्तम्। वस्तुतः 'इन्द्रश्चन्द्रः'—इति वोपदेवीय—कविकल्पद्रुममुखबन्धादौ लिखित्वादिन्द्राचार्यस्य कस्यचिच्छाब्दिकत्वमात्रं प्रतीयते, न तु व्याकरणप्रणेतृत्वम्, तथात्वेऽपि नैवैतरेयब्राह्मणपूर्वजत्वं तस्य सम्भाव्यते।

(अत: उस इन्द्र और वायु देवता के लिए ग्रह) **एकपात्रा गृह्यन्ते** एक पात्र में ग्रहण किये जाते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **एकनामानः** (वाक्, चक्षु और श्रोत्र अलग-अलग होने पर भी) एक (प्राण) नाम वाले हैं। **द्विपात्रा हूयन्ते** (अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता) दो पात्रों से आहुति देते हैं। **तस्मात् प्राणाः द्वन्द्वम्** अत: (चक्षु, श्रोत्र इत्यादि प्राण) दो-दो के द्वन्द्व में अवस्थित हैं।

सा० भा०—द्वे देवते युग्मरूपे येषां ग्रहाणां ते द्विदेवत्या:। इन्द्रश्च वायुश्चेत्येकं युग्मं, मित्रश्च वरुणश्चेति द्वितीयं युग्मं, यावश्विनौ तौ तृतीयं युग्मम्। त एते द्विदेवत्यग्रहा प्राणा वै, इन्द्रियरूपा एव, 'वाग्वा ऐन्द्रवायवश्चक्षुर्मैत्रावरुण: श्रोत्रमाश्विन:' इति श्रुत्यन्तरात्। ते च ग्रहा एकपात्रा ग्रहीतव्या इन्द्रवाय्वोरेकस्मिन् पात्रे ग्रहणं मित्रावरुणयोरेकस्मिन्नश्विनोरेकस्मिन्निति। यस्मात् प्राणरूपाणां ग्रहाणामेकपात्रत्वं तस्माद् वाक्चक्षु:श्रोत्ररूपा: प्राणा एकनामान: प्राणा इत्येवमेतेषां नाम। ते च ग्रहा होमकाले द्विपात्रा होतव्यास्तत्तद्ग्रहणपात्रेणाध्वर्युर्जुहोति प्रतिप्रस्थाता पात्रान्तरेण जुहोतीति। यस्माद्धोमकाले पात्रद्वयं तस्माच्चक्षुरादय: प्राणा: स्वस्व-गोलकेषु द्वन्द्वं द्वौ द्वौ भूत्वा वर्तन्ते। अयमर्थ:। श्रुत्यन्तरेण प्रश्नोत्तराभ्यामाम्नात:—'ब्रह्म-वादिनो वदन्ति, कस्मात् सत्यादेकपात्रा द्विदेवत्या गृह्यन्ते द्विपात्रा हूयन्त इति, यदेकपात्रा गृह्यन्ते तस्मादेकोऽन्तरत: प्राणो द्विपात्रा हूयन्ते तस्मा द्वौद्वौ बहिष्ठात् प्राणा:'[१] इति। होमकाले द्विपात्रत्वम् **आपस्तम्बेन** स्पष्टीकृतम्—'हविर्धानं गच्छन् संप्रेष्यति वायव इन्द्रवायूभ्यामनुब्रूहीत्युपायाम गृहीतोऽसि वाऽक्षसदसीत्यादित्यपात्रेण प्रतिप्रस्थाता द्रोण-कलशादैन्द्रवायवस्य प्रतिनिग्राह्यं गृहीत्वा न सादयत्यैन्द्रवायवमादायाध्वर्युर्द्रोणकलशाच्च परिप्लवया राजानमुभौ निष्क्रम्य दक्षिणतोऽवस्थाय दक्षिणं परिधिसंधिमन्वहृत्याध्वरो यज्ञोऽ-यमस्तु देवा इति परिप्लवयाऽऽघारमाघारयत्याश्राव्य प्रत्याश्राविते संप्रेष्यति वायव इन्द्रवायूभ्यां प्रेष्य वषट्कृते जुहोत्येवमुत्तराभ्यां ग्रहाभ्यां प्रचरते'[२] इति॥

अथ होतुर्ग्रहशेषभक्षप्रतिग्रहमन्त्रं विधत्ते—

(होतुः ग्रहशेषभक्षप्रतिग्रहविधानम्)

येनैवाध्वर्युर्यजुषा प्रयच्छति तेन होता प्रतिगृह्णाति ॥२॥

हिन्दी—(अब होता के अवशिष्ट ग्रहभक्ष के प्रति ग्रह मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **येन यजुषा** जिस यजुष् का उच्चारण करते हुए **अध्वर्युः प्रयच्छति** अध्वर्यु (होता को) प्रदान करता है, **तेन** उसी (यजुष्) से **होता प्रतिगृह्णाति** होता ग्रहण करता है।

सा० भा०—अध्वर्यो: प्रदानमन्त्र आपस्तम्बेन दर्शित:—'ग्रहमध्वर्युरादाय क्षिप्रꣳ होतारमनुद्रुत्य मयि वसु: पुरो वसुरिति ग्रहꣳ होत्रे प्रयच्छत्येतेनैव होता प्रतिगृह्य दक्षिण

(१) तै०सं० ६.४.९.३।
(२) आप०श्रौ० १२.२०.१८-२४। 'जुहोति। पुनर्वषट्कृते जुहुत:'—इत्येव पाठो मौलिक:।

ऊरावासाद्य हस्ताभ्यां निगृह्याऽऽस्ते'[१] इति॥

अथ होतुः समन्त्रकं भक्षणं विधत्ते—

(होतुः समन्त्रकभक्षणविधानम्)

(तत्र मैत्रावरुणग्रहशेषस्य समन्त्रकभक्षणम्)

एष वसुः पुरूवसुरिह वसुः पुरूवसुर्मयि वसुः पुरूवसुर्वाक्पा वाचं मे पाहीत्यैन्द्रवायवं भक्षयतीति ।।३।।

हिन्दी—(अब होता द्वारा मन्त्रपूर्वक ग्रहशेष के भक्षण का विधान कर रहे हैं—) **एषः** यह (ऐन्द्रवायु ग्रह) **वसुः पुरूवसुः** निवास और प्रभूत निवास का हेतु है, **इह वसुः पुरूवसुः** (वह) इस (मनुष्य लोक) में निवास करता है और प्रभूत निवास करता है, **मयि वसुः पुरूवसुः** तथा मुझ (होता) में निवास करता है और प्रभूत निवास करता है। **वाक्पा** हे वाणी की रक्षा करने वाले (ग्रह)! **वाचं मे पाहि** मेरी वाणी की रक्षा करो'–इति **ऐन्द्रवायवं भक्षयति** इस (मन्त्र) से ऐन्द्रवायु (ग्रह) का (होता) भक्षण करता है।

सा० भा०—एष ऐन्द्रवायवग्रहो वसुर्निवासहेतुः पुरूवसुः प्रभूतनिवासहेतुः। कस्मिँल्लोके निवासहेतुरित्याकाङ्क्षानिवृत्यर्थमिह वसुरित्यादिकमुच्यते। अस्मिन्नेव मनुष्यलोके निवासं करोति। तत्रापि प्रभूतनिवासं करोति। कस्मिन् पुरुषे ग्रहस्य निवास इत्याकाङ्क्षानिवृत्त्यर्थं मयि वसुरित्यादिकमुच्यते। मयि होतरि निवसति। तदाऽपि प्रभूतनिवासं करोति। स तादृशो ग्रहो वाक्पा वाचं पालयति। हे ग्रह में वाचं पालयत्यनेन मन्त्रेणैन्द्रवायवशेषं भक्षयेत्॥

तस्य मन्त्रस्यावशिष्टभागं पठति—

उपहूता वाक्सह प्राणेनोप मां वाक्सह प्राणेन ह्वयतामुपहूता ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजा उप मामृषयो दैव्यासो ह्वयन्तां तनूपावानस्तन्वस्तपोजा इति ।।४।।

हिन्दी—(उस उपर्युक्त मन्त्र के अवशिष्ट भाग को कह रहे हैं—) **वाक् प्राणेन सह उपहूता** वाणी प्राण के साथ (मेरे द्वारा) बुलायी गयी है अतः **प्राणेन सह वाक् माम् उपह्वयतम्** प्राण के साथ वाणी मुझको आहूत करें और **दैव्यासः** दिव्य, **तनूपावानः** हमारे शरीर की रक्षा करने वाले **तपोजाः तन्वः ऋषयः** (पूर्वसम्पादित) तप से उत्पन्न शरीर वाले ऋषिगण **उपहूताः** मेरे द्वारा बुलाये गये हैं अतः **दैव्यासः** दिव्य **तनूनपावान्** शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजाः तन्वः ऋषयः** तप से उत्पन्न शरीर वाले ऋष्टिगण **माम् उपह्वयताम्** मुझे बुलावें।

---

(१) आप०श्रौ० १२.२१.५.६।

सा० भा०—प्राणेन सह वाग्देवता मयोपहूताऽनुज्ञाता; तस्मात् प्राणसहिता सा वाग्देवता मामुपह्वयतामनुजानातु तथर्षय उपहूता मयाऽनुज्ञाताः। कीदृशा ऋषयो, दैव्यासो देवेषु भवास्तनूपावानांऽस्मच्छरीपालकास्तन्वः शरीरस्यास्मदीयस्य संबन्धिन इति शेषः। तपोजाः पूर्वजन्मानुष्ठितात् तपसो जाताः। यस्माद् ईदृश ऋषयो मयाऽनुज्ञाताः, तस्मात् तेऽपि यथोक्तविशेषणा मामुपह्वयन्तामनुजानन्तु इत्येष मन्त्रशेषः॥

अस्य शेषस्य तात्पर्यं दर्शयति—

प्राणा वा ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजास्तानेव तदुपह्वयते।।५।।

हिन्दी—(इस मन्त्र के शेषभाग का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **प्राणाः वै** प्राण ही **दैव्यासः** देवता-स्वरूप वाले, **तनूपावानः** हमारी शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजाः तन्वः** (पूर्व सम्पादित) तप से उत्पन्न शरीर वाले **ऋषयः** ऋषिगण हैं। **तत्** उस (मन्त्र के अवशिष्ट भाग) से **तान् एव** उन्हीं (ऋषियों) को ही **उपह्वयते** बुलाता है।

सा० भा०—यथोक्तविशेषणविशिष्टा ऋषयः प्राणस्वरूपा एव। तस्मात् तेन मन्त्रशेषपाठेन तानेव प्राणान् अनुजानाति॥

मैत्रावरुणग्रहस्य समन्त्रकं शेषभक्षणं मन्त्रशेषव्याख्यानं च दर्शयति—

(मैत्रावरुणग्रहशेषस्य समन्त्रकभक्षणम्)

एष वसुर्विदद्वसुरिह वसुर्विदद्वसुर्मयि वसुर्विदद्वसुश्चक्षुष्पाश्चक्षुर्मे पाहीति मैत्रावरुणं भक्षयत्युपहूतं चक्षुः सह मनसा ह्वयतामुपहूता ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजा उप मामृषयो दैव्यासो ह्वयन्तां तनूपावानस्तन्वस्तपोजा इति, प्राणा वा ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजास्तानेव तदुपह्वयते ।।६।।

हिन्दी—(मैत्रावरुण ग्रह के समन्त्रक शेषभाग के भक्षण और मन्त्र के शेषभाग के व्याख्यान को दिखला रहे हैं—) **एतद् वसुर्विदद्वसुः** यह (मैत्रावरुण ग्रह) निवास का हेतु और ज्ञानयुक्त निवास का हेतु है। **इह वसुः** इस (मनुष्य लोक) में निवास करता है और **विदद्वसुः** ज्ञान के साथ निवास करता है। **मयि वसुः विदद्वसुः** मेरे में निवास और ज्ञानपूर्वक निवास करता है। **चक्षुष्पा चक्षुः मे पाहि** हे चक्षु की रक्षा करने वाले! मेरे चक्षु की रक्षा करो'–**इति मैत्रावरुणं भक्षयति** इस (मन्त्र) से मैत्रावरुण (ग्रह के अवशिष्ट भाग) का (होता) भक्षण करता है। (मन्त्र के अवशिष्ट भाग के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **मनसा सह चक्षुः उपहूतम्** मन के द्वारा चक्षु को बुलाया गया है। अतः **मनसा सह चक्षुः माम् उपह्वयताम्** मन के साथ चक्षु मुझे बुलावे। **दैव्यासः** देवस्वरूप वाले, **तनूनपावानः** हमारी शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजा तन्वः** (पूर्व सम्पादित) तप से उत्पन्न शरीर

वाले **ऋषयः** ऋषिगण **उपहूताः** (मेरे द्वारा) बुलाये गये हैं, अतः **दैव्यासः** देवस्वरूप, **तनूनपावानः** हमारे शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजाः तन्वः** (पूर्वानुष्ठित) तप से उत्पन्न शरीर वाले **ऋषयः** ऋषिगण **माम् उपह्वयताम्** मुझको बुलावे। (अब मन्त्र के शेष भाग के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **प्राणाः वै** प्राण ही **दैव्यासः** दिव्य-स्वरूप वाले, **तनूनपावानः** हमारी शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजाः तन्वः** (पूर्वानुष्ठित) तप से उत्पन्न शरीर वाले **ऋषयः** ऋषिगण हैं, **तत्** इससे **तान् एव** उन (प्राणों) को ही **उपह्वयते** पुकारता है।

सा० भा०—एष मैत्रावरुणग्रहो विदद्वसुर्ज्ञानपूर्वकनिवासहेतुः। अन्यत् सर्वं पूर्ववत्॥

आश्विनग्रहशेषस्य समन्त्रकं भक्षणं मन्त्रशेषव्याख्यानं च दर्शयति—

(आश्विनग्रहशेषस्य समन्त्रकभक्षणम्)

एष वसुः संयद्वसुरिह वसुः संयद्वसुर्मयि वसुःसंयद्वसुः श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पाहीत्याश्विनं भक्षयत्युपहूतं श्रोत्रं सहाऽऽत्मनोप मां श्रोत्रं सहाऽऽत्मना ह्वयतामुपहूता ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजा उप मामृषयो दैव्यासो ह्वयन्तां तनूपावानस्तन्वस्तपोजा इति प्राणा वा ऋषयो दैव्यासस्तनूपावानस्तन्वस्तपोजास्तानेव तदुपह्वयते ।।७।।

हिन्दी—(अश्विन्द्वय के ग्रह के समन्त्रक अवशेष-भक्षण और मन्त्र के अवशिष्टभाग के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **एषः वसुः** यह (अश्विन्ग्रह) धन है और **संयद्वसुः** नियत (एकत्रित किया गया) धन है। **इह वसुः संयद्वसुः** वह धन और एकत्रित किया गया धन **इह** इस (लोक) में ही **मयि वसुः संयद्वसु** मुझ (होता) में धन और नियत धन है। **श्रोत्रपाः श्रोत्रं मे पाहि** हे श्रोत्रों के रक्षक! मेरे श्रोत्र की रक्षा करो—**इति आश्विनं भक्षयति** इस (मन्त्र) से आश्विन ग्रह (के अवशिष्ट भाग) का (होता) भक्षण करता है। (मन्त्र के अवशिष्ट भाग को कह रहे हैं—) **आत्मना सह श्रोत्रम् उपहूतम्** आत्मा के साथ श्रोत्र को मेरे द्वारा बुलाया गया है। **आत्मना सह श्रोत्रं माम् उपह्वयताम्** आत्मा के साथ श्रोत्र मुझ (होता) को बुलावे। **दैव्यासः** देवतास्वरूप **तनूपावानः** मेरे शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजाः तन्वः** (पूर्वकृत) तप से उत्पन्न शरीर वाले **ऋषयः** ऋषिगण **उपहूताः** (मेरे द्वारा) बुलाये गये हैं; **दैव्यासः** दिव्यरूप वाले **तनूपावानः** मेरे शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजाः तन्वः** (पूर्वकृत) तप से उत्पन्न शरीर वाले **ऋषयः** ऋषिगण **माम् उपह्वयन्ताम्** मुझको बुलावे। (अब मन्त्र के अवशिष्ट भाग के तात्पर्य दिखला रहे हैं-) **प्राणाः वै** प्राण ही **दैव्यासः** दिव्य रूप वाले **तनूपावानः** मेरे शरीर की रक्षा करने वाले और **तपोजाः तन्वः** (पूर्व में की गयी) तपस्या से उत्पन्न शरीर वाले **ऋषयः** ऋषिगण हैं। **तान् एव उपह्वयते** (होता) उन्हीं को ही उपहूत करता है।

सा०भा०—एष आश्विनग्रहः संयद्वसुर्नियतनिवासः। अथवा वसुशब्दः सर्वत्र धनपरत्वेन व्याख्येयः। मन्त्रशेषस्य पृथक्पाठो व्याख्येयत्वप्रदर्शनार्थः॥

भक्षणे कंचिद् विशेषं विधत्ते—

(ग्रहशेषभक्षणे विशेषविधानम्)

पुरस्तात् प्रत्यञ्चमैन्द्रवायवं भक्षयति तस्मात् पुरस्तात् प्राणापानौ, पुरस्तात् प्रत्यञ्चं मैत्रावरुणं भक्षयति, तस्मात् पुरस्ताच्चक्षुषी, सर्वतः परिहारमाश्विनं भक्षयति, तस्मान्मनुष्याश्च पशवश्च सर्वतो वाचं वदन्तीं शृण्वन्ति ॥८॥

हिन्दी—(भक्षण में कुछ विशेष विधान कर रहे हैं—) **पुरस्तात्** (पूर्वमुख करके होता अपने) सामने स्थित **ऐन्द्रवायवम्** ऐन्द्रवायु (ग्रह) को **प्रत्यञ्चम्** (अपने मुख के) समीप में करके **भक्षयति** भक्षण करता है; क्योंकि **प्राणापानौ** प्राण और अपान **पुरस्तात्** उस (पुरुष) के सामने होते है। **पुरस्तात्** (पूर्व मुख करके होता अपने) सामने स्थित **मैत्रावरुणम्** मैत्रावरुण ग्रह को **प्रत्यञ्चम्** मुख के समीप करके **भक्षयति** भक्षण करता है। **तस्मात्** इसी कारण **चक्षुषी** दोनों नेत्र **पुरस्तात्** उस (पुरुष) के सामने होते हैं। **सर्वतः परिहारम्** सभी ओर शिर घुमा कर **आश्विनं भक्षयति** आश्विन् ग्रह का भक्षण करता है। **तस्मात्** इसी कारण **मनुष्याः च पशवः च** मनुष्य और पशु **सर्वतः वदन्तीं वाचम्** सभी ओर बोली जाती हुई वाणी (ध्वनि) को **शृण्वन्ति** सुन लेते हैं।

सा०भा०—प्राङ्मुखो होता स्वस्य पुरस्तात् सन्तमैन्द्रवायवं प्रत्यञ्चं स्ववक्त्रसमीपवर्तिनं कृत्वा भक्षयेत्। अत एव पुरुषस्य प्राणापानवायू पुरोभागे संपन्नौ। मैत्रावरुणेऽपि समानन्यायः। आश्विनं तु सर्वतः परिहारं सर्वासु दिक्षु परितो हरणं कृत्वा शिरः प्रदक्षिणीकृत्येत्यर्थः। यस्ताच्छ्रोत्ररूपस्याऽऽश्विनस्य परितो हरणं तस्माच्छ्रोत्रेण सर्वतः शृण्वन्ति पुरतः पृष्ठतः पार्श्वयोर्वाचं वदन्तीं स्वार्थमभिदधानां वाचं शृण्वन्ति। यथा होतुरीदृशं भक्षणं तथाध्वर्योरपि शाखान्तरे श्रुतम्—'वाग्वा ऐन्द्रवायवश्चक्षुर्मैत्रावरुणः श्रोत्रमाश्विनः पुरस्ताद् ऐन्द्रवायवं भक्षयति तस्मात् पुरस्ताद् वाचा वदति पुरस्तान्मैत्रावरुणं तस्मात् पुरस्ताच्चक्षुषा पश्यति सर्वतः परिहारमाश्विनं तस्मात् सर्वतः श्रोत्रेण शृणोति'[1] इति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (नवमाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

(१) तै०सं० ६.४.४।

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अथ द्विदेवत्यग्रहेषु होत्रा प्रयोक्तव्यानां मन्त्राणां मध्येऽनुच्छ्वासं विधत्ते—

(द्विदेवत्यग्रहेषु होत्रा प्रयोक्तव्यमन्त्राणामनुच्छ्वासविधानम्)

प्राणा वै द्विदेवत्या, अनवानं द्विदेवत्यान्यजेत् प्राणानां संतत्यै प्राणाना-मव्यवच्छेदाय ।।१।।

हिन्दी—(दो देवता वाले ग्रहों में होता द्वारा प्रयोजनीय मन्त्रों के मध्य में उच्छ्वास का विधान कर रहे हैं—) **प्राणः वै द्विदेवत्याः** दो देवों सम्बन्धित ग्रह प्राणरूप है अतः **प्राणानाम् संतत्यै** प्राणों की निरन्तरता के लिए और **प्राणानाम् अव्यवच्छेदाय** प्राणों की अविच्छिन्नता के लिए **द्विदेवत्यान्** दो देवताओं का **अनवानं यजेत्** (उच्छ्वास न करके) निरन्तर यजन (याज्या का पाठ) करना चाहिए।

सा० भा०—द्विदेवत्यग्रहेषु याज्यां पठन् होता अनवान[1] यजेन्मन्त्रमध्य उच्छ्वा-समकृत्वा यजेत्। द्विदेवत्यानां प्राणरूपत्वादयं नैरन्तर्यपाठः प्राणानां संततावस्थापनाय भवति। ततस्तेषां व्यवच्छेदो न भवति। संततिरव्यवच्छेदश्चेत्येक एवार्थोऽन्वयव्यतिरेका-भ्यामुच्यते। इतरेषु ग्रहेषु याज्यान्ते वषट्कारेण सकृद्धुत्वा 'सोमस्याग्ने वीहि' इत्यनुवषट्-कारेण पुनर्यजन्ति ॥

अतः प्रसक्तमनुवषट्कारमन्त्रं निषेधति—

(प्रसक्तानुवषट्कारमन्त्रनिषेधः)

प्राणा वै द्विदेवत्याः, न द्विदेवत्यानामनुवषट्कुर्यात् ।।२।।

हिन्दी—(अब प्रसक्त अनुवषट्कार मन्त्र का निषेध कर रहे हैं—) **प्राणाः वै द्विदेवत्याः** प्राण दो देवताओं के ग्रह से सम्बन्धित है अतः **द्विदेवत्यानाम्** दो देवताओं से सम्बन्धित **अनुवषट् न कुर्यात्** अनुवषट्कार नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—विपक्षे बाधपुरः स्वपक्षं निगमयति—

यद्द्विदेवत्यानामनुवषट्कुर्यादसंस्थितान् प्राणान् संस्थापयेत्, संस्था वा एषा यदनुवषट्कारो य एनं तत्र ब्रूयाद् असंस्थितान् प्राणान् समतिष्ठपत् प्राण एनं हास्यतीति शश्वत् तथा स्यात् तस्मान्न द्विदेव-त्यानामनुवषट्कुर्यात् ।।३।।

हिन्दी—(विपक्ष में बाधा को दिखला कर अपने पक्ष का निगमन कर रहे हैं—) यद्

---

(१) (i) 'याज्याया अनवानवचनं पुरोनुवाक्याप्रैषाणामप्युपलक्षणार्थम्'–इति भट्टभास्करः।
(ii) अनवानं नाम आदित अन्तादनुच्छ्वासः।

द्विदेवत्यानाम् अनुवषट् कुर्यात् यदि दो देवों से सम्बन्धित अनुवषट्कार को करता है तो **असंस्थितान् प्राणान् संस्थापयेत्** असमाप्त (अनुपरत) प्राणों को समाप्त (उपरत) करता है क्योंकि **यद् अनुवषट्कारः** जो अनुवषट्कार है **एषा संस्था वै** यह (इस ग्रह की) समाप्ति है। **यः एनं तत्र ब्रूयात्** वहाँ जो कोई व्यक्ति इस (होता) से कहता है कि **असंस्थितान् प्राणान्** असमाप्त (अनुपरत) प्राणों को **समतिष्टपत्** उपरत कर दिया है **अतः एनं प्राणः हास्यति** इस (होता) को प्राण त्याग देंगे तो **शश्वत् तथा स्यात्** अवश्य ही उस प्रकार हो जाता है। **तस्मात्** इस कारण **द्विदेवत्यानाम्** दो देवताओं से सम्बन्धित ग्रह का **अनुवषट् न कुर्यात्** अनुवषट्कार नहीं करना चाहिए।

सा॰भा॰—यदि होता द्विदेवत्येष्वनुवषट्कारमन्त्रं पठेत् तदानीम् असंस्थितान-समाप्ताननुपरतान् प्राणान् संस्थापयेद् उपरतान् कुर्यात्। योऽयमनुवषट्कार एषैव संस्था ग्रहस्य समाप्तिः अतः ग्रहरूपाणां प्राणानामप्युपरतिः स्यात्। तत्रानुवषट्कारकाले यः कोऽप्येनं होतारं ब्रूयाच्छपेत्। कथमिति, तदुच्यते—अनुपरतान् प्राणानुपरतानकरोत् तस्मादेनं होतारं प्राणः परित्यतीति। ततोऽपराधिनो होतुरवश्यं तथा भवेत्। तस्मादेतेष्वनुवषट्कार-मन्त्रं न पठेत्॥

अथैन्द्रवायवे कचिद्विशेषं वक्तुं प्रश्नमुत्थापयति—

(ऐन्द्रवायवग्रहे मैत्रावरुणस्य प्रैषमन्त्रौ)

तदाहुर्द्विरागूर्य मैत्रावरुणो द्विः प्रेष्यति सकृदागूर्य होता द्विर्वषट्-करोति; का होतुरागूरिति ।।४।।

हिन्दी—(इन्द्र और वायु के लिए कुछ विशेष को कहने के लिए प्रश्न उठा रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) पूछते हैं कि **यः मैत्रावरुणः** जो मैत्रावरुण (नामक ऋत्विक्) है **द्विः आगूः** दो बार आगू (प्रतिज्ञा) करते हुए **द्विः प्रेष्यति** दो बार (याज्या मन्त्र के अनुवाचन) के लिए प्रेरित करता है तो **सकृद् आगूः होता** एक बार प्रतिज्ञा करने वाला होता **द्विः वषट्करोति** दो बार वषट्कार करता है वहाँ **होतुः का आगूः** होता की प्रतिज्ञा कौन-सी होगी।

सा॰भा॰—आगूःशब्देन प्रतिज्ञाऽभिधीयते। मैत्रावरुणो द्विरागूर्य द्विः प्रतिज्ञाय द्विः प्रेष्यति। द्वावस्य प्रैषमन्त्रौ 'होता यक्षद्वायुमग्रे गाम्' इत्येको 'होता यक्षदिन्द्रवायू अर्हन्तेति' द्वितीयः। तयोरुभयोरप्यादावयं[२] होता यक्षदिति द्विः प्रतिजानाति। द्वयोर्मन्त्रयोरन्ते 'होतर्यज होतर्यज' इति द्विः प्रेष्यति। होता तु 'अग्रं पिबा मधूनाम्'[३] इत्यादिके द्वे याज्ये पठितुमादौ 'ये यजामहे'[४] इति सकृदेव प्रतिजानीते। द्वयोर्याज्ययोरन्ते वौषड्वौषडिति द्विर्वषट करोति।

---

(१) आश्व॰श्रौ॰ ५.५.३। (२) अर्थात् मैत्रावरुणः
(३) ऋ॰ ४.४६.१,२। (४) वा॰ सं॰ १९.२४।

तच्च न्यायेन द्वितीयमन्त्रादावपि 'ये यजामहे' इत्यागू:करणमपेक्षितम्। तच्च न क्रियते तस्माद्धोतुर्द्वितीययाज्यादावागूः का नाम स्यादिति प्रश्नः।।

द्वितीययाज्यादौ मा भूदेवाऽऽगूरित्येतदुत्तरं विपक्षबाधपूर्वकं दर्शयति—

प्राणा वै द्विदेवत्या आगूर्वज्रस्तद्यदत्र होताऽन्तरेणाऽऽगुरेताऽऽगुरा वज्रेण यजमानस्य प्राणान् वीयाद् य एनं तत्र ब्रूयादागुरा वज्रेण यजमानस्य प्राणान् व्यगात् प्राण एनं हास्यतीति शश्वत् तथा स्यात् तस्मात् तत्र होताऽन्तरेण नाऽऽगुरेत ।।५।।

हिन्दी—(विपक्ष में बाधा को दिखलाते हुए उसका उत्तर कह रहे हैं—) **द्विदेवत्याः वै प्राणाः** दो देवताओं के ग्रह प्राणरूप हैं और **आगूः वज्रः** ('ये यजामहे') यह प्रतिज्ञा वज्ररूप है। **तत्** अतः **यद् अत्र होता** जो यहाँ होता **अन्तरेण आगुः** (दो याज्याओं के) मध्य में आगू (प्रतिज्ञा) (कह दे) तो **एता आगुः वज्रेण** वह प्रतिज्ञारूप वज्र से **यजमानस्य प्राणान् वीयात्** यजमान के प्राण को काट देता है। **तत्र यः एनं ब्रूयात्** यदि वहाँ जो कोई व्यक्ति आगू कथन के समय) कहे कि **आगुः वज्रेण** आगुरूप वज्र से **यजमानस्य प्राणान् व्यागात्** यजमान के प्राणों को (होता ने) काट दिया, अतः **प्राणः एनं हास्यति** प्राण इस (होता) को त्याग देगे तो **शश्वत् तथा स्यात्** अवश्य ही उस प्रकार हो जाता है। **तस्मात्** इसी कारण **तत्र होता** वहाँ होता **अन्तरेण न आगुः** एत (दोनों याज्याओं के) मध्य में आगू नहीं करता है।

सा० भा०—द्विदेवत्यग्रहाः प्राणरूपा येयमागूर्ये यजामह इति प्रतिज्ञा सा वज्ररूपा।[1] तथा सत्यत्र कर्मण्यन्तरेण याज्ययोर्मध्ये यदि होताऽऽगुरेत प्रतिजानीयात् तदानीमागूः स्वरूपेण वज्रेण यजमानस्य प्राणान् वियाद् विगतान् कुर्यात्। तत्र तस्यामागुरि क्रियमाणायां यः कोऽप्येनं होतारं शपेत्। कथमिति, तदुच्यते—आगुरा वज्रेण होता यजमानस्य प्राणान् व्यगाद् विगतान् अकरोत्। तस्मात् प्राण एनं यजमानं होतारं वा परित्यजतीति। तेन कृतः शापोऽवश्यं तथैव स्यात्। तस्मात् तत्र तयोर्याज्ययोरन्तरेण मध्ये होता नाऽऽगुरेत।।

तत्रैव युक्त्यन्तरमाह—

(मैत्रावरुणस्य यज्ञीयमनोरूपत्वम्)

अथो मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणो, वाग्यज्ञस्य होता, मनसा वा इषिता वाग्वदति, यां ह्यन्यमना वाचं वदत्यसुर्या वै सा वागदेवजुष्टा तद्यदेवात्र मैत्रावरुणो द्विरागुरते सैव होतूरागूः ।।६।।

हिन्दी—(उस विषय में अन्य युक्ति को कह रहे हैं—) **अथ** इसके अतिरिक्त

(१) वाक्त्वाद् वज्रस्थानीया आगूः। 'वाग्वै वज्रः' इति श्रुतेः–इति भट्टभास्करः।

मैत्रावरुणः मैत्रावरुण (नामक ऋत्विक्) **यज्ञस्य मनः एव** यज्ञ का मन रूप है और **वाक् यज्ञस्य होता** होता यज्ञ का वाणी रूप है। **मनसा वै इषिता वाक् वदति** (लोक में) मन द्वारा प्रेरित वाणी ही बोली जाती है। **अन्यमनां यां वाचं वदति** बिना मन के जो वाणी बोलता है **असुर्या वै** वह (वाणी) आसुरी होती है और **सा वाग् अदेवजुष्टा** वह वाणी देवताओं को अप्रिय होती है। **तत्** तो **यद् एव अत्र मैत्रावरुण द्विरागुः** जो यहाँ मैत्रावरुण दो बार आगु अते करता है **सा एव होतुः आगूः** वह होता का ही आगू होता है।

सा० भा०—अपि च मैत्रावरुणो यज्ञस्य मनस्थानीयो होता तु वाक्स्थानीयः। लोके हि मनसा प्रेरिता वाग्वक्तव्यं ब्रूते। यस्त्वन्यमनस्को यां वाचं वदति तत्र सा वागसुरेभ्यस्ताम-सेभ्यो हिता तेषामसंबद्धप्रलापप्रियत्वात्। न त्वसौ वाक्सात्विकानां देवानां प्रिया। तस्मात् मनःपूर्विकैव वाग्वक्तव्या। तथा सत्यत्र मनोरूपो मैत्रावरुणो द्विरागुरत इति यदस्ति मनः-पूर्विकैव वाग्वक्तव्या। तथा सत्यत्र मनोरूपो मैत्रावरुणो द्विरागुरत इति यदस्ति सैव तत्प्रेषितस्य वाग्रूपस्य होतुरागूर्द्वितीया भविष्यतीति। तस्माद् याज्योर्मध्ये होता नाऽऽगुरेत।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (नवमाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—ऋतुग्रहयागान् विधत्ते—

(ऋतुग्रहयागविधानम्)

प्राणा वा ऋतुयाजास्तद्यदृतुयाजैश्चरन्ति प्राणानेव तद्यजमाने दधति ॥१॥

हिन्दी—(अब ऋतुग्रह यागों का विधान कर रहे हैं—) **प्राणाः वै ऋतुयाजाः** ऋतुयाज प्राणस्वरूप है। **तत्** तो **यद् ऋतुयाजैः चरन्ति** जो ऋतुयागों से यजन करते हैं **तत्** उससे **यजमाने** यजमान में **प्राणान् एव दधति** प्राणों को ही प्रतिष्ठापित करते हैं।

सा० भा०—मधुमाधवादय ऋतुदेवा यत्रेज्यन्ते त एत ऋतुयाजाः।[1] ते च प्राणस्व-

(१) 'ऋतुयाजैश्चरन्ति'—इत्यादीनि आश्व०श्रौ० ५.८.१-७। शत०ब्रा० ४.३.१.३-२०। कात्या०श्रौ० ९.१३.१-१९। तै० सं० १.४.१४;६.५.३। आप० १२.२६.८-२७। निरु० ८.१.२।

रूपाः। प्राणशब्देन प्राणापानव्यानास्त्रयोऽपि विवक्षिताः। तैर्ऋतुयाजैरनुतिष्ठेयुः, तेन प्राणानेव यजमाने स्थापयन्ति।।

ऋतुग्रहाश्च द्वादशसंख्याकाः तत्राऽऽद्येषु षट्सु कंचिद् विशेषं विधत्ते—

(ऋतुयागानां प्रथमादिषट्सु विशेषविधानम्)

षळृतुनेति यजन्ति, प्राणमेव तद् यजमाने दधति ।। २।।

हिन्दी—(बारह ऋतुयागों के प्रारम्भ वाले छः यागों में विशेष का विधान कर रहे हैं—) **षट्** छः (होता इत्यादि ऋत्विक्) 'ऋतुना' **इति यजन्ति** इस मन्त्र से यजन करते हैं **तत्** उससे **यजमाने** यजमान में **प्राणमेव दधति** प्राण को ही प्रतिष्ठातित करते हैं।

सा० भा०—अध्वर्युणा प्रेषितो मैत्रावरुणः प्रैषसूक्तगतैर्मन्त्रैः क्रमेण होत्रादीन् प्रेष्यति तेन प्रेषिता होत्रादय ऋतुना सोममित्येवं यजेयुः। एतेषां षण्णामृतुयाजानां प्राणस्वरूपत्वाद्धोत्रादयः षडपि यजमाने प्राणं स्थापयन्ति।।

सप्तममारभ्य दशमान्ते विशेषं विधत्ते—

(सप्तमादारभ्य दशमान्ते विशेषविधानम्)

चत्वार ऋतुभिरिति यजन्त्यपानमेव तद् यजमाने दधति ।। ३।।

हिन्दी—(सप्तम से लेकर दशम तक चार ऋतुयाजों के विषय में विशेष का विधान कर रहे हैं—) **चत्वारः** चार (होता इत्यादि ऋत्विक्) 'ऋतुभिः' **इति यजन्ति** इस (मन्त्र) से यजन करते हैं **तत्** उससे **यजमाने अपानमेव दधति** यजमान में अपान को ही धारण कराते हैं।

सा० भा०— अध्वर्युणा प्रेषितो मैत्रावरुणः प्रैषसूक्तगतैः सप्तमादिभिश्चतुर्भिर्मन्त्रैर्होत्रादीन् क्रमेण चतुरः प्रेष्यति। त ऋतुभिः सोममिति बहुवचनान्तप्रयोगेण चत्वारोऽपि यजेयुः। तेषां चतुर्णामृजुयाजानामपानवायुस्वरूपत्वात् तद् यागेनापानमेव यजमाने स्थापयन्ति।।

एकादशद्वादशयोर्विशेषां विधत्ते—

(एकादशद्वादशयोर्विशेषविधानम्)

द्विर्ऋतुनेत्युपरिष्टाद् व्यानमेव तद् यजमाने दधति ।।४।।

हिन्दी—(एकादश और द्वादश इन दो ऋतुयागों के विषय में विशेष का विधान कर रहे हैं—) **द्विः** दो (अध्वर्यु) 'ऋतुना' **इति** इस मन्त्र से (यजन करते हैं)। **तत्** इससे **यजमाने** यजमान में **उपरिष्टाद् व्यानमेव दधति** बाद में व्यान को ही धारण कराते हैं।

सा० भा०—अध्वर्युप्रेषितो मैत्रावरुणः प्रैषसूक्तगताभ्यामेकादशद्वादशाभ्यां मन्त्राभ्यां प्रेष्यति। तेन प्रेषितौ द्वावध्वर्युयजमानावृतुना सोममित्येवमेकवचनान्तप्रयोगेण यजेतामन्त्ययोर्द्वयोर्यागयोर्व्यानस्वरूपत्वात् तद् यागेन व्यानमेव यजमाने सर्वेऽप्यृत्विजः स्थापयन्ति।

अनेनैव क्रमेण मैत्रावरुणं प्रत्यध्वर्योः प्रैष आपस्तम्बेन दर्शितः—'ऋतुना प्रेष्यति त्रिष्वाद्येष्वध्वर्युः संप्रेष्यत्येवं प्रतिप्रस्थाता पात्रयोर्मुखे पर्यावृत्यर्तुभिः प्रेष्यति द्वयोरध्वयुरेवं प्रतिप्रस्थाता पुनः पर्यावृत्यर्तुना प्रेष्येति सकृदध्वर्युरेवं प्रतिप्रस्थाता'[१] इतिः तदेकवचनान्तबहुवचनान्तैकवचननान्तैर्ऋतुशब्दैरुदाहृतः प्रैषः तैत्तिरीयब्राह्मणे[२] संगृह्याऽऽम्नातः—'ऋतुना प्रेष्येति षट्कृत्व आह षड्वा ऋतव ऋतूनेव प्रीणाति ऋतुभिरिति चतुश्चतुष्पद एव पशून् प्रीणाति द्विः पुनर्ऋतुनाऽऽह द्विपद एव प्रीणाति'[३] इति।।

तानेतान् ऋतुयाजान् प्रशंसति—

(ऋतुयागप्रशंसनम्)

स वा अयं प्राणस्त्रेधा विहितः प्राणोऽपानो व्यान इति तद् यदृतून् ऋतुभिर्ऋतुनेति यजन्ति प्राणानां संतत्यै प्राणानामव्यवच्छेदाय ।।५।।

हिन्दी—(उन ऋतुयाजों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सः वै अयं प्राणः** वह यह प्राण **त्रेधा वीहितः** तीन प्रकार वाला कहा गया है—**प्राणः अपानः व्यानः** प्राण, अपान और व्यान **तद् यत्** तो जो **ऋतून्** ऋतुओं का 'ऋतुभिः और ऋतुना' **इति यजन्ति** इन मन्त्रों से यजन करते हैं वह **प्राणानां सन्तत्यै** प्राणों की निरन्तरता और **प्राणानाम् अव्यवच्छेदाय** प्राणों की अविच्छिन्नता के लिए (करते हैं)।

सा० भा०—शरीरमध्ये स्थितस्य प्राणवायोः प्राणापानव्यानाख्याभिर्वृत्तिभिस्त्रिविधत्वादृतुशब्दप्रयोगेण त्रिविधेन यजमानस्य प्राणाः संतता भवन्ति, न तु व्यवच्छिद्यन्ते।।

तेष्वृतुयाजेष्वनुवषट्कारं निषेधति—

(ऋतुयागेष्वनुवषट्कारनिषेधः)

प्राणा वा ऋतुयाजा, नर्तुयाजानामनु वषट्कुर्यादसंस्थिता वा ऋतव एकैक एव ।।६।।

हिन्दी—(इन ऋतुयाजों में वषट्कार का निषेध कर रहे हैं—) **प्राणाः वै ऋतुयाजाः** ऋतुयाज प्राणस्वरूप हैं। **ऋतुयाजान् अनु** ऋतुयाजों के बाद **वषट् न कुर्यात्** वषट्कार नहीं करना चाहिए; क्योंकि **असंस्थिताः वै ऋतवः** ऋतुएँ असमाप्त (अनुपरत) होने वाली हैं। **ऋतवः एकैक एव** ऋतुएँ तो एक के बाद एक आती ही रहती हैं।

सा० भा०—लोके वसन्ताद्यृतवोऽसंस्थिता असमाप्ता अनुपरता एकस्यैकस्यानन्तरमेव

---

(१) अपा०श्रौ० १२.२६.१७-१९।

(२) मन्त्रभागीये इति ज्ञेयम्; तैत्तिरीयशाखाया ब्राह्मणग्रन्थेऽपि मन्त्रा आम्नाताः तथा मन्त्रभागेऽपि ब्राह्मणवचनानीति।

(३) तै०सं० ६.५.३.२।

द्वितीय इत्येवमेकैकक्रमेण वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराख्याः प्रत्येकं मासद्वयेन द्वादश-मासात्मका घटीयन्त्रवत्[१] पुनः पुनरावर्तन्ते। अतो न कदाचिदप्यृतूनामुपरतिरस्ति।।

विपक्षबाधपूर्वकं स्वक्षमुपसंहरति—

यदृतुयाजानामनु वषट्कुर्यादसंस्थितानृतून् संस्थापयेत् संस्था वा एषा यदनुवषट्कारो य एनं यत्र ब्रूयादसंस्थितानृतून् समतिष्ठिपद् दुःषमं भविष्यतीति शश्वत् तथा स्यात् तस्मान्नर्तुयाजानामनु वषट्-कुर्यात् ।।७।।

हिन्दी—(विपक्ष के विषय में बाधा दिखलाते हुए अपने पक्ष का उपसंहार कर रहे हैं—) **यद् ऋतुयाजान् अनु** यदि ऋतुयाजों के बाद **वषट् कुर्यात्** वषट्कार करे तो **असंस्थितान् ऋतून् संस्थापयेत्** अनुपरत (कभी समाप्त न होने वाली) ऋतुओं को समाप्त कर देता है क्योंकि **यद् अनुवषट्कारः** जो (अनुवषट्कार के समय) इस (होता) से कहे कि **असंस्थितान् ऋतून् समतिष्ठिपत्** समाप्त न होने वाली ऋतुओं को समाप्त कर दिया है अतः वह **दुःषमं भविष्यति** (रोग दरिद्रता इत्यादि अस्वस्थ करने वाली) विषमता को प्राप्त करेगा तो **शश्वत् तथा स्यात्** अवश्य ही उस प्रकार हो जाता है। **तस्मात्** इसी कारण **ऋतुयाजान् अनु** ऋतुयाजों के पश्चात् **वषट् न कुर्यात्** वषट्कार नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—दुःषम रोगदारिद्र्यादिरूपं विषम[२] किञ्चिदस्वास्थ्यम्। अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (नवमाध्याये) पञ्चमः खण्डः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—सवनीयपशुपुरोडाशप्रचारादूर्ध्वं तदङ्गमिडोपह्वानमवस्थाप्य द्विदेवत्य-ग्रहप्रचारः कृतः। तत ऊर्ध्वं तद्ग्रहशेषभक्षणमपि प्राप्तम्।।

---

(१) उद्घाटनं घटीयन्त्रं सलिलोद्वाहनं प्रहेः—इति अमरकोश २.१०.२७।

(२) 'दुष्क्रमम्' इति भट्टभास्करपाठः। तथा च तद्व्याख्या—'समायाः संवत्सरस्य दुष्टत्वम्, प्रजानां विनाशहेतुत्वं दुष्क्रमं तदेव कृतं भवति'—इति।

तत्रेळोपह्वानग्रहशेषभक्षणयोः किं पूर्वं किमपरमिति क्रमस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् तं क्रमं विधत्ते—

(इडोपह्वानग्रहशेषभक्षणयोः क्रमविधानम्)

प्राणा वै द्विदेवत्याः, पशव इळा, द्विदेवत्यान् भक्षयित्वेळामुपह्वयते, पशवो वा इळा पशूनेव तदुपह्वयते, पशून् यजमाने दधाति।।१।।

हिन्दी—(अब इडोपह्वान और ग्रहशेष के भक्षण के क्रम का विधान कर रहे हैं–) **प्राणाः वै द्विदेवत्याः** दो देवताओं से सम्बन्धित (ग्रह) प्राणरूप है और **पशवः इडा** (पुरोडाशरूप) अन्न पशुरूप है। **द्विदेवत्यान् भक्षयित्वा** दो देवताओं से सम्बन्धित (ग्रहों) का भक्षण करके होता **इडाम् उपह्वयते** इडा का आह्वान करता है और **पशवः वै इडा** इडा ही पशुरूप है, **तत्** इस प्रकार वह **पशून् एव उपह्वयते** पशुओं को ही बुलाता है और **यजमाने पशून् दधाति** यजमान में पशुओं को धारण कराता है।

सा० भा०—द्विदेवत्यानां वागादिप्राणरूपत्वं पूर्वमेवोक्तमिडादेवता च 'गौर्वा अस्यै शरीरम्' इति श्रुतेः[1] पशुरूपा।[2] तत्रैवं स्थिते प्रथमतो द्विदेवत्यग्रहशेषान् भक्षयित्वा पश्चादिळोपह्वानं कुर्यात्। तथा सतीडायाः पशुरूपत्वेन पशुनेवोपहूतवान् भवति। तांश्च पशून् स्वकीयैः प्राणैः सुस्थिते यजमाने स्थापयति। अयमेवार्थो व्यतिरेकमुखेन श्रुत्यन्तरे प्रतिष्ठापितः—'प्राणा वा एते यद्द्विदेवत्याः पशव इळा यदिडां पूर्वां द्विदेवत्येभ्य उपह्वयेत पशुभिः प्राणानन्तर्दधीत प्रमायुकः स्याद् द्विदेवत्यान् भक्षयित्वेडामुप ह्वयते प्राणानेवाऽऽत्मन् धित्वा पशूनुप ह्वयते'[3] इति। इत्थं द्विदेवत्यभक्षणस्य पूर्वभावित्वमिळोपह्वानस्य पश्चाद्भावित्वं च व्यवस्थापितम्। तदेतदिडापात्रे भागमवदाय क्रियमाणमुपह्वानम्।।

या तु होतुर्हस्ते संपादिताऽवान्तरेडा तत्प्राशनस्य होतृचमसभक्षणस्य च पौर्वापर्यं विचार्य निश्चिनोति—

तदाहुरवान्तरेळां पूर्वां प्राश्नीया३त्, होतृचमसं भक्षये३त्, इति। अवान्तरेळामेव पूर्वां प्राश्नीयाद्, अथ होतृचमसं भक्षयेत् ।।२।।

हिन्दी—**तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) पूछते हैं कि (प्रश्न) **पूर्वाम् अवान्तरेडां प्राश्नीयात्** पहले (होता के) भाग में प्राप्त (पुरोडाशरूप) अन्न का प्राशन करना चाहिए अथवा **होतृचमसं भक्षयेत्** होतृचमस का भक्षण करे। (उत्तर—) **अवान्तरेडामेव पूर्वां प्राश्नीयात्** होता के भाग में प्राप्त अन्न का ही पहले भक्षण करना चाहिए **अथ होतृचमसं भक्षयेत्** तत्पश्चात् हो तृचमस का भक्षण करना चाहिए।

---

(१) तै०सं० १.७.२.१।
(२) 'इळा इत्यन्ननाम तद्धेतुतया पशव इळा' इति गोविन्दस्वामी।
(३) तै०सं० ६.४.९.३।

सा० भा०—विचारार्थं प्लुतिद्वयम्।[1] अवान्तरेळाप्राशनं पूर्वभावि चमसभक्षणं पश्चद्भावीति निर्णयः ॥

तदेतदुपपादयति—

यद्वाव द्विदेवत्यान् पूर्वान् भक्षति, तेनास्य सोमपीथः पूर्वो भक्षितो भवति, तस्मादवान्तरेळामेव पूर्वां प्राश्नीयात्, अथ होतृचमसं भक्षयेत्, तदुभयतोऽन्नाद्यं परिगृह्णाति सोमपीथाभ्यामन्नाद्यस्य परिगृहीत्यै ।।३।।

हिन्दी—(इडा का प्राशन करके होतृचमच के भक्षण को उपपादित कर रहे हैं-) **यद् वाव द्विदेवत्यान् पूर्वान् भक्षयति** जो वह दो देवताओं से सम्बन्धित ग्रहों में से प्रथम का भक्षण करता है **तेन** उस (सोमपान रूप इडा के प्राशन) से **अस्य** इसका **सोमपीथः भक्षितः पूर्वः भवति** सोमपान का भक्षण पहले हो जाता है। **तस्मात्** इसी कारण **अवान्तरेडाम् एव पूर्वां प्राश्नीयात्** अपने हिस्से में प्राप्त (पुरोडाशरूप) अन्न का पहले भक्षण करे। **अथ होतृचमसं भक्षयेत्** तत्पश्चात् होतृचमस का भक्षण करे। **तद् उभयतः** इस प्रकार (होता) दोनों ओर से **सोमपीथाभ्याम्** सोमपान के साथ **अन्नाद्यस्य परिगृहीत्ये** अन्न के परिग्रह के लिए **अन्नाद्यं परिगृह्णाति** अन्न का ग्रहण करता है।

सा० भा०—द्विदेवत्यानां भक्षणं पूर्वभावीति यदस्ति तेन सोमपानरूपस्य भक्षस्येडाप्राशनात् पूर्वत्वं सिध्यति। तत इळां प्राश्य होतृचभसभक्षणे सत्युपरिष्टादपि सोमभक्षणासिद्धेरिडाया उभयतः पार्श्वद्वयेऽपि सोमपानाभ्यामयं होताऽन्नाद्यं परिगृह्णाति। तच्च यजमानस्यान्नाद्यपरिग्रहाय भवति॥

द्विदेवत्यग्रहशेषस्य विन्दोर्होतृचमसे प्रक्षेपं विधत्ते—

(द्विदेवत्यग्रहशेषस्य विन्दोर्होतृचमसे प्रक्षेपविधानम्)

प्राणा वै द्विदेवत्यां, आत्मा होतृचमसो, द्विदेवत्यानां संस्रवान् होतृचमसे समवनयत्यात्मन्येव तद्धोता प्राणान् समवनयते सर्वायुः सर्वायुत्वाय ।।४।।

हिन्दी—(द्विदेवता से सम्बन्धित ग्रह के शेष भाग के विन्दुओं को होतृचमस में डालने का विधान कर रहे हैं—) **प्राणाः वै द्विदेवत्याः** दो देवताओं से सम्बन्धित ग्रह प्राणस्वरूप है और **आत्मा होतृचमसः** होतृचमस आत्मा (शरीर) रूप है। **द्विदेवत्यानां संस्रवान्** दो देवताओं से सम्बन्धित ग्रहों के बूँदों को **होतृचमसे** होतृचमस में **समवनयति** जो डालता है **तत्** उस (होतृचमस में बूँदों को डालने) से **सर्वायुत्वाय** सम्पूर्ण

---

(१) 'विचार्यमाणानाम्'—इति पा०सू० ८.२.९७।

आयु की प्राप्ति के लिए **होता आत्मनि एव प्राणान् समवनयते** होता शरीर में ही प्राणों को डालता है। (इससे वह होता भी) **सर्वायुः** पूर्णायु को प्राप्त करता है।

सा० भा०—संस्रवा बिन्दवः, तत्प्रक्षेपेण द्विदेवत्यरूपान् प्राणानात्मन्येव शरीरे होतृचमसरूपे होता प्रक्षिपति। प्राणानामवस्थापनात् स्वयं सर्वायुरपमृत्युरहितो भवति। तद् यजमानस्य सर्वायुत्वाय संपद्यते॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ॥५॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (नवमाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—अथ तूष्णीशंसविधानार्थमितिहासमाह—

(तूष्णीशंसविधानम्)

(तत्राख्यायिका)

देवा वै यदेव यज्ञेऽकुर्वंस्तदसुरा अकुर्वंस्ते समावद्वीर्या एवाऽऽसन्न व्यावर्तन्त, ततो वै देवा एतं तूष्णीशंसमपश्यंस्तमेषामसुरा नान्ववायंस्तूष्णींसारो वा एष यत्तूष्णीशंसः ॥१॥

हिन्दी—(अब मौन होकर स्तुति करने के विधान के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **देवाः** देवताओं ने **यज्ञ** यज्ञ में **यदेव अकुर्वः** जो कुछ (कर्म) किया **तद् असुराः अकुर्वः** वही असुरों ने भी (देखकर) किया। तब **ते** वे (देवता और असुर) **समावद्वीर्या एव आसन्** समान सामर्थ्य वाले हो गये। **न व्यावर्तन्त** (अतः उनमें) भेद नहीं हो पाया। **ततः वै देवाः** तब देवताओं ने **एवं तूष्णींशंसम्** इस मौन स्तुति का **अपश्यन्** दर्शन किया। **तेषाम्** उनमें से **तम्** उस (मौनस्तुति) को **असुराः** असुर लोग **न अन्वायन्** अनुगत नहीं कर सके; क्योंकि **यत् तूष्णीशंसः** जो यह मौन स्तुति है **एषः तूष्णींसारः वै** वह मौनभाव ही है।

सा०भा०—देवाः पुरा स्वकीये यज्ञे यदेवाङ्गमन्वतिष्ठन्नसुरा अप्यवेक्ष्य तदेवान्वतिष्ठन्। तदा ते देवाश्चासुराश्च परस्परं समावद्वीर्यास्तुल्यसामर्थ्या एवाभवन्नेकस्य वर्गस्य सामर्थ्याधिक्यमितरस्य तु न्यूनमित्येवं व्यावृत्तिं न प्राप्ताः। ततो देवाः समार्थ्याधिक्यलक्षणव्यावृत्तिहेतुं वेदेष्वन्विच्छन्त एतं वक्ष्यमाणं तूष्णीशंसं तदुपायत्वेन दृष्टवन्तः। सर्वेष्वपि शस्त्रेष्वप्यृचः पठ्यन्ते। अस्मिंस्तु शस्त्रे न पठ्यन्त इति तूष्णीशंसत्वम्। ऋक्पाठराहित्येन गूढमेषां देवानां तं तूष्णीशंसमसुरा नान्ववायन्नानुगतवन्तः। एतदनुष्ठानमविज्ञाय न कृतवन्त इत्यर्थः। योऽयं तूष्णीशंस एष तूष्णीसारो वा ऋक्पाठराहित्यलक्षणात् तूष्णीभाव एवास्मिञ्शस्त्रे शस्तः। असुराणां तु निष्फलं तूष्णीमवस्थानमिति निश्चयः॥

अस्य तूष्णीशंसस्यासुरविनाशहेतुत्वं दर्शयति—

(तूष्णीशंसस्य विनाशहेतुत्वकथनम्)

देवा वै यं यमेव वज्रमसुरेभ्य उदयच्छंस्तं तमेषामसुराः प्रत्यबुध्यन्त, ततो वै देवा एतं तूष्णींशंसं वज्रमपश्यंस्तमेभ्य उदयच्छंस्तमेषामसुरा न प्रत्यबुध्यन्त, तमेभ्यः प्राहरंस्तेनैनानप्रतिबुद्धेनाघ्नंस्ततो वै देवा अभवन् पराऽसुराः ॥२॥

हिन्दी—(इस मौन स्तुति की असुरों के विनाश की हेतुता को दिखला रहे हैं-) **देवाः** देवताओं ने **यं यं वज्रम्** जिस (मन्त्ररूप अथवा अभिचाररूप) वज्र को **असुरेभ्यः** असुरों (के विनाश) के लिए **उदयच्छन्** प्रयोग किया, **एषाम्** इन (देवताओं) के **तं तम्** उस-उस (वज्र) को **असुराः** असुरों ने **प्रत्यबुध्यन्त** जान लिया। **ततः वै देवाः** तब देवताओं ने **एवं तूष्णीशंसम्** इस मौन स्तुति का **अपश्यन्** दर्शन किया और **तम्** उस (मौनस्तुतिरूप वज्र) को **एभ्यः** इन (राक्षसों के विनाश) के लिए **उदयच्छन्** प्रयोग किया। **एषाम्** इन देवताओं के **तम्** उस (मौनस्तुतिरूप वज्र) को **असुराः** असुरलोग **न प्रत्यबुध्यन्त** नहीं जान पाये। (तब उन देवताओं ने) **तम्** उस (मौनस्तुति रूप वज्र) का **एभ्यः** इन (राक्षसों) के विनाश के लिए **प्राहरन्** प्रहार किया। **तेन अप्रतिबुध्नेन** अज्ञात उस (मौनस्तुति रूप वज्र) से **एनान् अघ्नन्** इन (राक्षसों) को मार डाला। **ततः वै देवाः अभवन्** तब से देवता विजयी हुए और **असुराः परा** असुर लोग पराभूत हो गये।

सा०भा०—देवा असुरविनाशार्थमायुधरूपं मन्त्ररूपमाभिचाररूपं वा यं यं वज्रं प्रत्युक्तवन्त एषां देवानां तं तं वज्रमसुराः प्रत्यबुध्यन्त तदा तदा प्रतीकारं कुर्वन्ति। ततो देवा एतं तूष्णीशंसं वज्रत्वेन दृष्ट्वा तदसुरविनाशार्थं प्रयुक्तवन्तः। असुरास्तु देवानां तं तूष्णीशंसमज्ञात्वा प्रतीकारं न कृतवन्तः। ततो निर्विघ्नेन देवास्तं तूष्णीशंसं वज्रमसुराणामुपरि प्राहरंस्तद्विनाशार्थं प्रयुक्तवन्तः। असुरैरविज्ञातेन तेनैवासुरान् हतवन्तः। ततो वै देवा विजयिनोऽभवन् मुख्येष्वसुरेषु हतेष्ववशिष्टा असुराः पराभूताः॥

एतद् वेदनं प्रशंसति—

(तूष्णीशंसवेदनस्य प्रशंसा)

भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ।।

हिन्दी—यः एवं वेद जो इस प्रकार जानता है वह **भवति** विजय को प्राप्त करता है और **अस्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यः परा** इसके द्वेष करने वाले दुष्ट शत्रु पराभूत हो जाते हैं।

अथोपाख्यानमुखेनैव तूष्णीशंसस्य स्वरूपं दर्शयति—

(उपाख्यानद्वारा तूष्णीशंस्य स्वरूपप्रदर्शनम्)

ते वै देवा विजितिनो मन्यमाना यज्ञमतन्वत, तमेषामसुरा अभ्यायन् यज्ञ-वेशसमेषां करिष्याम इति, तान् समन्तमेवोदारान् परियत्तानुदपश्यं-स्तेऽब्रुवन्, संस्थापयामेमं यज्ञं यज्ञं नोऽसुरा मा बधिषुरिति तथेति, तं तूष्णीशंसे संस्थापयन्, भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरित्याज्यप्रउगे संस्थापयन्निन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्र इति निष्केवल्यमरुत्वतीये संस्थापयन्, सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्य इति वैश्वदेवाग्निमारुते संस्थापयंस्तमेवं तूष्णींशंसे संस्थापयंस्तमेवं तूष्णीशंसे संस्थाप्य तेनारिष्टेनोदृचमाश्नुवत ।। ३ ।।

हिन्दी—(अब आख्यायिका द्वारा मौनस्तुति के स्वरूप को दिखला रहे हैं—) **ते वै देवाः** उन देवताओं ने **विजितिनः मन्यमानाः** अपने को विजयी मानते हुए **यज्ञम् अतन्वत** यज्ञ का विस्तार किया। **एषाम्** इन (देवताओं) के **तम्** उस (यज्ञ) को (अभिलक्षित करके) **असुराः अभ्यायन्** असुर लोग (वहाँ) आये कि **एषाम्** इन (देवताओं) के **यज्ञवेशसम् करिष्यामः** यज्ञ का विघात हम लोग करेंगे। (उन देवताओं ने) **समन्तमेव** सभी ओर से **उदारान् परियात्तान् तान्** उद्धत और अत्यधिक सन्निकट (आये हुए) उन (राक्षसों) को **उदपश्यन्** देखा। **ते अब्रुवन्** उन (देवताओं) ने परस्पर कहा कि **इमं यज्ञं संस्थापयाम** इस यज्ञ का हम लोग समापन करें जिससे **नः यज्ञम्** हमारे यज्ञ को **असुराः मा बधिषुः** असुर लोग बाधित न कर सके। **तथा इति** (तब देवतओं ने परस्पर) वैसा ही (करने का निश्चय किया)। (उन्होंने) **तम्** (यज्ञ) का **तूष्णींशंसे संस्थापयन्** मौनस्तुति से समापन किया। (उन्होंने प्रात:सवनकालीन) **आज्यप्रउगे** आज्य और प्रउग (शस्त्र) को 'भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः' **इति संस्थापयन्** इस मन्त्र से समापन किया। (माध्यन्दिनसवनकालीन) **निष्केवल्यमरुत्वतीये** निष्केवल्य और मरुत्वतीय (शस्त्र) का 'इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्रः' **इति संस्थापयन्** इस मन्त्र से समापन किया तथा

(सायंसवनकालीन) **वैश्वदेवाग्निमारुते** वैश्वदेव और आग्निमारुत (शस्त्र) का 'सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्यः' **इति संस्थापयन्** इस (मन्त्र) से समापन किया। देवताओं ने **तम्** उस (यज्ञ) का **एवं तूष्णींशंसे संस्थापयन्** इस प्रकार मौनस्तुति से समापन किया। **तम्** उस (यज्ञ) का **एवं तूष्णींशंसे संस्थाप्य** इस प्रकार मौनस्तुति से समापन करके **अरिष्टेन तेन** हिंसारहित उस (यज्ञ) से **उदृचम् अश्नुवत** उत्तम ऋचा वाली समाप्ति को प्राप्त किया।

सा० भा०—मुख्यानामसुराणां हतत्वात् ते देवा विजितिनो विजयवन्तो वयमिति मन्यमाना यज्ञं विस्तारितवन्तः। एषां देवानां यज्ञमभिलक्ष्यासुरास्तत्र गताः। केनाभिप्रायेणेति, तदुच्यते—एषां देवानां यज्ञवेशसं यज्ञविघातं करिष्याम इति तदभिप्रायः। ततो देवाः समन्तमेव पुरतः पृष्ठतः पार्श्वयोश्च समागतानुदारानुद्धतान् परियत्तानत्यन्तसंनिधानुदपश्यन्नुदङ्मुखाः सन्तो दृष्टवन्तः। दृष्ट्वा च परस्परमिदमब्रुवन्निमं यज्ञं संस्थापयामः शीघ्रं समापयामः। तथा सति नोऽस्मदीयं यज्ञमसुरा मा वधिषुर्मा विनाशयन्तु विलम्बे सति विनाशयिष्यन्ति तन्मा भूदिति। तद्वचनं परस्परमङ्गीकृत्य स्वकीयं तं यज्ञं तूष्णीशंसे संस्थापयञ्शीघ्रं समापितवन्तः[१]। यद्वा, तूष्णीशंसस्य वज्ररूपेण रक्षकत्वाद् रक्षार्थं तस्मिन् स्थापितवन्तः। कोऽयं तूष्णीशंस, इति स उच्यते—भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरित्येष नवाक्षरात्मको मन्त्र एकस्तूष्णीशंसभागः। आज्यं प्रउगं चेत्युभे प्रातःसवनकालीने शस्त्रे। तदुभमप्युक्ते तूष्णींशंसभागे स्थापितवन्तः। इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्र इत्येष दशाक्षरात्मको मन्त्रो द्वितीयस्तूष्णीशंसभागः। निष्केवल्यं मरुत्वतीयं चेत्युभे माध्यंदिनसवनकालीने शस्त्रे। तदुभयमिन्द्रो ज्योतिरित्यस्मिंस्तूष्णीशंसभागे स्थापितवन्तः। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्य इत्येष नवाक्षरात्मको मन्त्रस्तृतीयस्तूष्णीशंसभागः। वैश्वदेवमाग्निमारुतं चेत्युभे तृतीयसवनकालीने शस्त्रे तदुभयं 'सूर्यो ज्योतिः'[२] इत्यादिके तूष्णीशंसभागे स्थापितवन्तः। तं सवनत्रयगतैः षड्भिः शस्त्रैरुपेतं यज्ञमेवमुक्तेन प्रकारेण तूष्णीशंसे स्थापितवन्त इत्येवमुक्तार्थस्योपसंहारः पुनस्तमेवमित्यादिः। उक्तार्थानुवादषड्विधशस्त्रसंस्थापनादूर्ध्वमरिष्टेन हिंसारहितेन तेन यज्ञेनोदृचमुत्तमामृचं यज्ञसमाप्तिमाश्नुवत प्राप्तवन्तः॥

इत्थमाख्यायिकामुखेन तूष्णीशंसस्वरूपमभिधाय तदनुष्ठानं विधत्ते—

(तूष्णींशंसानुष्ठानविधानम्)

स तदा वाव यज्ञः संतिष्ठते यदा होता तूष्णीशंसं शंसति ।।४।।

हिन्दी—(मौनस्तुति के अनुष्ठान का विधान कर रहे हैं—) **यदा होता तूष्णीशंसं**

---

(१) 'संस्थापयन्। अडभावश्छान्दसः। यद्वा, पञ्चमोऽयं लकारः। संस्थापयेयुः'—इति भट्टभास्करः।

(१) 'भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्नो३म्, इन्द्रो ज्योतिभुवो ज्योतिरिन्द्रो३म्, सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्यो३मिति त्रिपदस्तूष्णीशंसः'—इति आश्व०श्रौ० ५.९.११।

शंसति जब होता मौनस्तुति का शंसन करता है **तदा सः यज्ञः संतिष्ठते** तब वह यज्ञ समाप्त हो पाता है।

सा०भा०—यस्मिन् काले होता तमिमं मन्त्रं शंसेत् तदैव स यज्ञो निर्विघ्नः समाप्यते। तस्माद्धोत्रा तच्छस्त्रं शंसनीयम्। तत्प्रकार आश्वलायनेन दर्शितः—"सुमत्पद्वग्दे पिता मातरिश्वाऽच्छिद्रा पदाऽधाद्[१] अच्छिद्रोक्था कवयः शंसन् सोमो विश्वविन्नीथा निनेषद् बृहस्पतिरुक्थामदानि शंसिषद् वागायुर्विश्वायुर्विश्वमायुः क इदं शंसिष्यति स इदं शंसिष्यति' इति जपित्वाऽनभिहिंकृत्य 'शोंसावोम्' इत्युच्चैराहूय तूष्णीशंसं शंसेद् उपांशु सप्रणवमसंतन्वन्नेष आहावः प्रातःसवने शस्त्रादिषु"[२] इति। अस्यायमर्थः—ऋतुपात्रभक्षणानन्तरं होतुर्मुखत आसीनोऽध्वर्युः पराङ्मुखः सन्नावर्तते तदानीं होता 'सुमद्' इत्यादि 'स इदं शंसिष्यति' इत्यन्तं मन्त्रं जपित्वाऽभिहिंकारमकृत्वा शोंसावोमित्यनेन मन्त्रेणाध्वर्युमुच्चैराहूय भूरग्निरित्यादिकं प्रणवसहितमुपांशु पठेत् प्रणवेन सहासंततमविच्छेदनं कुर्यात्। एष शोंसावोमितिमन्त्रोऽध्वर्योराह्वानरूपत्वाद् 'आहाव' इत्युच्यते। स च प्रातःसवने शस्त्रादिषु प्रवर्तत इति॥

उक्तं तूष्णीशंसनं प्रशंसति—

(तूष्णीशंसप्रशंसनम्)

स य एनं शस्ते तूष्णीशंस उप वा वदेदनु वा व्याहरेत् तं ब्रूयादेष एवैतामार्तिमारिष्यति प्रातर्वाव वयमद्येमं शस्ते तूष्णीशंसे संस्थपायामस्तं यथा गृहानितं कर्मणाऽनुसमियादेवमेवैनमिदमनुसमिम इति स वाव तामार्तिमृच्छति य एवं विद्वान् संशस्ते तूष्णीशंस उप वां वदत्यनु वा व्याहरति, तस्मादेवं विद्वान् संशस्ते तूष्णीशंसे नोपवदेन्नानुव्याहरेत् ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त मौनस्तुति की प्रशंसा कर रहे हैं—) **एनं तूष्णीशंसे शस्ते** (होता द्वारा) इस मौनस्तुति का शंसन करने पर **सः यः उपवदेत** वह जो उसकी निन्दा करे अथवा **अनु वा वदेत्** शाप देवे तो (वह होता) **तं ब्रूयात्** उस (निन्दा करने वाले) से कहे—**एषः एव** यह (निन्दा करने वाला या शाप देने वाला) ही **एताम् आर्तिम्** इस (निन्दारूप अथवा शापरूप) विनाश को **आरिष्यति** प्राप्त करेगा; क्योंकि **अद्य प्रातः वाव** आज प्रातः ही **वयम्** हम लोगों ने **तूष्णींशंसे शस्ते** मौन स्तुति को कह कर **इमं संस्थापयामः** इस (यज्ञ) को समाप्त कर दिया है। (जिस प्रकार लोक में) **गृहान् इतं तम्** गृह पर आये हुए उस (अतिथि) को **कर्मणा अनुसमियात्** (सत्कार इत्यादि) कर्म से सम्यक् प्रकार

(१) इतः परं दशमाध्याये षष्ठखण्डे एतन्मन्त्रव्याख्यानभूतब्राह्मणे तु 'पदाऽधा' इति पाठः।
(२) आश्व०श्रौ० ५.९.१,२।

से सत्कृत करता है **एवमेव एनम् अनुसमिमः** उसी प्रकार इस (मौनस्तुति रूप अनुष्ठान को करके) हम लोग इस (यज्ञ) को सत्कृत कर रहे हैं। अतः **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **तूष्णींशंसे संशस्ते** (होता द्वारा) मौनस्तुति करते समय **उपवदति** कोई निन्दा करता है अथवा **अनु वा व्याहरति** शाप देता है तो **सः ह वाव** वही **ताम् आर्तिम् ऋच्छति** उस विनाश को प्राप्त करता है। **तस्मात्** इसी कारण **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला **तूष्णींशंसे संशस्ते** (होता के) मौनस्तुति करते समय **न उपवदेत्** निन्दा न करे और **न अनुव्याहरेत्** न तो शाप देवे।

सा० भा०—होत्रा तूष्णीशसे शंस्ते सत्येनं होतारं स उपवदेद् वाऽनुव्याहरेद् वा यः कोऽप्यन्यः पुरुषो निन्देच्छपेद् वा। उपवादो निन्दाऽनुव्याहारः शापः। तदानीमयं होता निन्दितारं शप्तारं वा ब्रूयात्। कथं ब्रूयादिति, तदुच्यते—यो निन्दता शप्ता वाऽस्त्येष एव निन्दारूपां शापरूपां वाऽऽर्ति विनाशमारिष्यति प्राप्स्यति न त्वहं प्राप्स्यामि। तत्र हेतुरुच्यते—प्रातर्वाव प्रातःसवन एव वयं होतारोऽद्यास्मिन् दिवसेऽस्माभिः शस्ते तूष्णीशंसे तमिमं यज्ञं संस्थापयामः समापयामो यथा लोके गृहानितं स्वकीयान् गृहान् प्राप्तमतिथिं कर्मणऽऽतिथ्यसत्काररूपेणानुसमियादानुकूल्येन सम्यक्प्राप्नुयादुपचरेदित्यर्थः। एवमेवमपीदं तूष्णीशंसानुष्ठानं कृत्वैनं यज्ञमनुसमिम आनुकूल्येन सम्यक्प्राप्नुम उपचराम इत्यर्थः। एष एवेत्यादिकोऽनुसमिम इत्यन्तो निन्दाशापपरिहारार्थो मन्त्रः। तं होता ब्रूयात्। तस्मिन्नुक्ते तामार्तिं प्राप्नोति। तस्मात् कारणादेवमुक्तार्थं विद्वान् पुरुषस्तूष्णीशंसपाठादूर्ध्वं होतारं न निन्देन्नापि शपेत्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (नवमाध्याये) सप्तमः खण्डः ॥७॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथाष्टमः खण्डः

सा० भा०—अथ प्रकारान्तरेण तूष्णीशंसं प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण तूष्णीशंसप्रशंसनम्)

चक्षूंषि वा एतानि सवनानां यत्तूष्णीशंसो भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति प्रातःसवनस्य चक्षुषी, इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्र इति माध्यंदिनस्य सवनस्य चक्षुषी, सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्य इति तृतीयसवनस्य चक्षुषी ।।१।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से मौनस्तुति की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् तूष्णींशंसः** जो मौनस्तुति है **एतानि सवनानां चक्षूंषि** वे (तीनों) सवनों के नेत्र हैं। 'भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः' **इति प्रातःसवनस्य चक्षुषी** यह प्रातः सवन की दो आँखे हैं, 'इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्रः' **इति माध्यन्दिनस्य सवनस्य चक्षुषी** यह माध्यन्दिन सवन की दो आँखे हैं और 'सूर्यो ज्योतिर्ज्योति स्वः सूर्यः' **इति तृतीयसवनस्य चक्षुषी** यह तृतीय सवन की दो आँखे हैं।

सा० भा०—यत्तूष्णीशंसोऽस्त्येतान्येव तद्गतानि पदानि त्रयाणां सवनानां चक्षुःस्थानीयानि। कथमेतदिति, तदेव स्पष्टीक्रियते—'भूरग्ज्योतिरिति' प्रथमस्य तूष्णीशंसपादस्य पूर्वो भागः। स च प्रातःसवनस्य दक्षिणचक्षुःस्थानीयः। ज्योतिरग्निरित्ययमुत्तरो भागो वामचक्षुःस्थानीयो भूलोकवर्ती योऽग्निः स एव गोलकद्वये प्रकाशक इत्यर्थः। इन्द्रो ज्योतिरित्ययं द्वितीस्य पूर्वो भागो माध्यदिनस्य सवनस्य दक्षिणं चक्षुः। भुवो ज्योतिरित्ययमुत्तरो भागो वामचक्षुरन्तरिक्षलोकवर्ती परमैश्वर्ययुक्तो वायुर्गोलकद्वये भासक इत्यर्थः। सूर्यो ज्योतिरित्येष तृतीयस्य पूर्वभागस्तृतीयसवनस्य दक्षिणं चक्षुः। ज्योतिः स्वः सूर्य इत्ययमुत्तरो भागो वामचक्षुः स्वर्लोकवर्ती सूर्यो गोलकद्वये भासक[1] इत्यर्थः॥

वेदनं प्रशंसति—

चक्षुष्यमद्भिः सवनै राध्नोति, चक्षुष्मद्भिः सवनैः स्वर्गं लोकमेति, य एवं वेद ॥२॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **चक्षुमद्भिः सवनैः** नेत्रों से सम्पन्न सवनों द्वारा **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है और **चक्षुमद्भिः सवनैः** नेत्रों से सम्पन्न सवनों द्वारा **स्वर्गं लोकम् एति** स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है।

सा० भा०—राधिरिह लोके समृद्धिः॥[2]

तूष्णीशंसस्य चक्षुःस्वरूपत्वमुपपादयति—

(तूष्णीशंसस्य चक्षुःस्वरूपोपपादनम्)

चक्षुर्वा एतद् यज्ञस्य यत्तूष्णीशंस, एका सती व्याहृतिर्द्वेधोच्यते, तस्मादेकं सच्चक्षुर्द्वेधा ॥३॥

---

(१) 'यद्यु वै षट्पदः, पूर्वैर्ज्योतिः शब्दैरग्रेऽवस्येत्'—इति आश्व०श्रौ० ५.९.११। 'त्रिपदः षट्पदो वायं शंस्तव्यः। त्रिपदपक्षे यथापठितमेव षट्पदपक्षे त्रीणि त्रीणि वाक्यानि द्विधा कृत्वा शंसेत्। तत्र द्विधाकरणेऽवसानस्थानं पूर्वैर्ज्योतिःशब्दैरग्रेऽवस्येत्'—इति तद् वृत्तिः।

(२) 'राद्धः समृद्धो भवति'—इति च शत०ब्रा० १४.७.१.३२।

हिन्दी—(मौन स्तुति की चक्षुरूपता को उपपादित कर रहे हैं—) **यत् तूष्णींशंसः** जो मौनस्तुति है, **एतद् यज्ञस्य चक्षुः** यह यज्ञ का नेत्र है; क्योंकि **व्याहृतिः एका सती** व्याहृति (भूः यह) एक होती हुई **द्विधा उच्यते** (आरोह और अवरोह के क्रम से) दो प्रकार से उच्चरित होती है। **तस्मात्** इसी कारण **चक्षुः** नेत्र **एकं सत्** एक होते हुए भी **द्वेधा** दो प्रकार के होते हैं।

सा० भा०—यद्यपि भूरित्येषैव व्याहृतिस्तथाऽपि तद्योगादग्निर्ज्योतिरित्यपि पदद्वयं व्याहृतित्वेनोच्यते। सेयं व्याहृतिरेकैव सत्यारोहावरोहाभ्यां द्वेधोच्यते।[१] यस्मादेवं तस्माच्चक्षुरिन्द्रियमप्येकमेव सद्गोलकद्वये द्वेधा वर्तते। तस्माच्चक्षुष्ट्वं युक्तम्॥

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण तूष्णीशंसप्रशंसनम्)

मूलं वा एतद् यज्ञस्य यत्तूष्णीशंसो यं कामयेतानायतनवान् स्यादिति नास्य यज्ञे तूष्णीशंसं शंसेदुन्मूलमेव तद्यज्ञं पराभवन् तमनु पराभवति ॥४॥

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से मौनस्तुति की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् तूष्णींशंसः** जो मौन स्तुति है, वह **एतद् यज्ञस्य मूलम्** यह यज्ञ का मूल है। **यं कामयेत** (यदि कोई होता) जिस (इर्ष्या करने वाले) के लिए कामना करे कि यह **अनायतनवान् स्यात्** घर से रहित हो जाये तो **अस्य यज्ञे** इस (यजमान के) यज्ञ में **तूष्णींशंसं न शंसेत्** मौनस्तुति का शंसन नहीं करे; क्योंकि **तत्** इस (मौन स्तुति का शंसन न करने) से **यज्ञम् उन्मूलमेव** (वृक्ष के समान) जड़-रहित (उसका) यज्ञ **पराभवन्** पराभूत हो जाता है। **तम् अनु** उस (यज्ञ के पराभव) के बाद **पराभवति** (यजमान भी) विनष्ट हो जाता है।

सा० भा०—यं यजमानमुद्दिश्य होता द्वेषादेवं कामयेतानायतनवान् स्वर्गसाधनरूपेणाऽऽयतनेनाऽऽश्रयेण रहितोऽयं यजमानः स्यादिति तदानीमस्य द्विषस्य यजमानस्य यज्ञे तूष्णीशंसं होता न शंसेत्। तथा सति वृक्षमूलवद् यज्ञमूलविनावस्थितस्य तूष्णीशंसस्य पाठाभावाद् अयं यज्ञो मूलरहितः पराभवति विनश्यति। तमनु यजमानोऽपि विनश्यति। तदेवं द्वेष्यस्य विनाशहेतुत्वेन प्रशंसा कृता॥

पुरनप्यृत्विजो होतुरनुकूलत्वेन प्रशंसति—

---

(१) 'व्याहृतीर्मनसानुद्रवेत् भूर्भुवः स्वरिति'—इति षड्वि० ब्रा०। 'सोऽताम्यत्। स भूरिति व्याहरत्। स भुव इति व्याहरत्। स सुवरिति व्याहरत्। एता वै व्याहृतयः इमे लोकाः।' इति तै०ब्रा० २.२.४.३। आरोहावरोहौ चात्र क्रमव्युत्क्रमाभ्यां पाठौ; 'अग्निः ज्योतिः', 'ज्योतिः अग्निः'—इत्येवमिति।

तदु वा आहुः शंसेदेवापि वैतदृत्विजेऽहितं यद्धोता तूष्णीशंसं न शंसत्यृत्विजि हि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितो यज्ञे यजमानः तस्माच्छंस्तव्यः, शंस्तव्यः ।।५।।

हिन्दी— (पुनः ऋत्विकों की होता से अनुकूलता के रूप में प्रशंसा कर रहे हैं—) **तदु आहुः** उस (मौनस्तुति के विषय में ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **यद् होता तूष्णीशंसं न शंसति** यदि होता मौनस्तुति का शंसन नहीं करता है तो **एतद् ऋत्विजे अहितम्** यह ऋत्विज के लिए (दक्षिणा की प्राप्ति न होने के कारण) अहितकर होता है अतः **शंसेद् एव** (मौनस्तुति का) शंसन अवश्य करना चाहिए। **ऋत्विजि हि सर्वः यज्ञः प्रतिष्ठितः** ऋत्विक् में ही सम्पूर्ण यज्ञ प्रतिष्ठित होता है और **यज्ञे यजमानः** यज्ञ में यजमान (प्रतिष्ठित होता है)। **तस्मात्** इसी कारण **शंस्तव्यः** (मौनस्तुति का) शंसन करना चाहिए।

सा०भा०— तदु वै तत्रैव तूष्णीशंसविषये ब्रह्मवादिन आहुः। किमिति, तदुच्यते— यद्यपि यजमाने प्रीतिरहितो होता तथाऽपि शंसदेव। अपि वेति पूर्वोक्तापेक्षया पक्षान्तरोपन्यासार्थः। होता न शंसतीति यदस्ति तदेनदृत्विजे होत्रेऽप्यहितं भ्रष्टे यज्ञे दक्षिणाया अलाभात्। यस्मादृत्विजि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितः, तस्माद् यज्ञयजमानयोः प्रतिष्ठाद्वारा होतुर्हितत्वेनायं तूष्णीशंसः शंस्तव्यः। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्ये द्वितीयपञ्चिकायां प्रथमाध्याये अष्टमः खण्डः ।।८।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय के अष्टम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवाचार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के नवम अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयपञ्चिकायाम्
पञ्चमोऽध्यायः
[अथ दशमोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— ऋतुयाजा द्विदेवत्यास्तद्विशेषफला स्तुतिः ।
तूष्णींशंसप्रशंसा च नवमाध्यायचोदना ॥१॥

अथाऽऽहावादयो वक्तव्यास्त्रिहावं निविदं सूक्तं च विधत्ते—

(तूष्णीशंसस्य आहावनिवित्सूक्तानां कथनम्)

ब्रह्म वा आहावः, क्षत्रं निविद्विट्सूक्तमाह्वयतेऽथ निविदं दधाति, ब्रह्मण्येव तत्क्षत्रमनुनियुनक्ति, निविदं शस्त्वा सूक्तं शंसति, क्षत्रं वै निविद्विट्सूक्तं क्षत्र एव तद्विशमनुनियुक्ति ।।१।।

हिन्दी—(अब आहाव इत्यादि के कथन के लिए त्रिहाव निवित् वाले सूक्त का विधान कर रहे हैं—) (आज्य के तीन भाग में) **ब्रह्म वै आहावः** आहाव ब्राह्मणरूप, **क्षत्रं निवित्** निवित् क्षत्रिय रूप और **विट् सूक्तम्** सूक्त विट् (वैश्य) रूप है। अतः **आह्वयते** (ब्राह्मण रूप में पहले अध्वर्यु का) आह्वान करते हैं। **अथ** तत्पश्चात् **'निविदं दधाति'** (इस मन्त्र से होता) **ब्रह्मणि एव क्षत्रम् अनु नियुनक्ति** ब्राह्मण (जाति) में क्षत्रिय (जाति) को सन्निविष्ट करता है। **क्षत्रं वै निवित्** निवित् क्षत्रियरूप और **विट् सूक्तम्** सूक्त वैश्यरूप है **तत्** इस (निवित् के बाद सूक्त के शंसन) से **क्षत्रे एव विशम् अनुनियुनक्ति** क्षत्रिय में वैश्य को सन्निविष्ट करता है।

विमर्श—(१) शंसन के समय 'शोंसावोम्' इस मन्त्र से होता अध्वर्यु को बुलाता है जो आहाव कहलाता है।

(२) 'अग्निर्देवेद्ध' इत्यादि बारह कहे जाने वाले पदों से युक्त समूहरूप निवित् कहलाते हैं। ये छोटे मन्त्र यज्ञ में देवताओं को आदरपूर्व बुलाने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।

(३) 'प्र वो देवायाग्नये' (ऋ० ३.३.१-७) यह सात ऋचाओं वाले सूक्त को यहाँ सूक्त शब्द से अभिहित किया गया है।

सा० भा०—शोंसावोमित्यनेन मन्त्रेण शंसनकाले होताऽध्वर्युमाह्वयति सोऽयमाहावः।[१] अग्निर्देवेद्ध इत्यादिभिर्द्वादशभिर्वक्ष्यमाणैः पदैः[२] युक्ता तत्समूहरूपा निवित्। 'प्र वो देवायाग्नये' इत्यादिकं सप्तर्चं सूक्तम्।[३] तदेतत्त्रयं क्रमेण ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यरूपम्। तत्र ब्राह्मणरूपत्वेन प्रथममाह्वयते मन्त्रेणाध्वर्योराह्वानं कुर्यात्।[४] अथानन्तरं क्षत्रियरूपत्वेन 'निविदं दधाति' अग्निर्देवेद्ध इत्यादिपदसमूहं[५] वदेत् तथा सति ब्रह्मण्येव ब्राह्मणजातावेव क्षत्त्रं क्षत्रियजातिमनुनियुनक्ति। प्रथमतो ब्राह्मणजातिः पश्चात् क्षत्रियजातिरित्येवं नियोगः कृतो भवेत्। तां निविदं शस्त्वा पश्चात् 'प्र वो देवायेति' सूक्तं शंसेत्। तथा सति क्षत्रियजातिरूपायां निविदि वैश्यजातिरूपं सूक्तमनुनियुनक्तयानुकूल्येन पश्चादवस्थापयति। यः पूर्वमुक्तस्तूष्णीशंसो ये च निवित्सूक्ते तदेतत्त्रयमाज्यमाज्यनामकशस्त्रस्य रूपम्। तदुक्तं संप्रदायविद्भिः[६]—"तूष्णींशंसनिवित्सूक्तैराज्यशस्त्रं त्रिपर्वकम्"[७] इति॥

अथ कंचिदभिचारप्रयोगं विधत्ते—

(कश्चिदभिचारप्रयोगः)

यं कामयेत क्षत्त्रेणैनं व्यर्धयानीति, मध्य एतस्यै निविदः सूक्तं शंसेत्, क्षत्त्रं वै निविद्विट्सूक्तं क्षत्त्रेणैवैनं तद्व्यर्धयति ॥ २॥

हिन्दी—(अब किसी अभिचार प्रयोग का विधान कर रहे हैं—) (यदि होता) **यम्** जिस (यजमान) के प्रति **कामयेत्** कामना करे कि **एनम्** इस (यजमान) को **क्षत्रिण** क्षत्रिय (जाति) से **व्यर्धयानि** च्युत कर दे (विरोधी कर दे) तो **एतस्यै** इस (यजमान) के लिए **निविदः मध्ये** (बारह पदों वाले) निवित् के मध्य में **सूक्तं शंसेत्** सूक्त का शंसन कर दे। **क्षत्रं वै निवित्** निवित् क्षत्रिय है और **विद् सूक्तम्** सूक्त वैश्य है अतः **तत्** उस (निवित् के मध्य में सूक्त के शंसन) से **एनम्** इस (यजमान) को **क्षत्रेण एव** क्षत्रिय जाति से ही **व्यर्धयति** वियोजित कर देता है।

---

(१) सांख्या०ब्रा० १४.३। आश्व०श्रौ० ५.९.१।

(२) तद्यथा निविदध्याये—'अग्निर्देवेद्धः। अग्निर्मन्विद्धः। अग्निः सुषमित्। होता देववृतः। होता मनुवृतः। प्रणीर्यज्ञानाम्। रथीरध्वराणाम्। अतूर्तो होता। तूर्णिर्हव्यवाट्। आ देवो देवान् वक्षत्। यक्षदग्निर्देवो देवान्। सो अध्वरा करति जातवेदाः'—इति १.१.-१२। उत्तरस्मिन् खण्डे चेमानि पदानि विधास्यन्ते।

(३) ऋ० ३.१३.१-७।

(४) 'प्रथममाह्वयते शस्त्रादौ। अथ निविदं दधाति। यद्यपि तूष्णीशंसोऽप्याहावादनन्तरं शस्यते तथाप्याहावनिवित्सूक्तानामेवात्र पौर्वापर्यमुच्यते वर्णत्रयसंस्तुतत्वात्'—इति गोविन्दस्वामी।

(५) अर्थात् निविद् १.१-१।

(६) षड्गुरुशिष्यस्य पद्यखण्डोऽयम्। 'तूष्णीशंसः पूर्वमुक्तो निवित्सूक्ते प्रवीत्यथ'—इति उत्तरार्धः।

(७) 'प्र वो देवायेत्याज्यमुपसन्तनुयात्'—इति आश्व०श्रौ० ५.९.१५।

सा॰भा॰—येयं द्वादशपदात्मिका निविदस्ति तस्या मध्ये सूक्तशंसने सति क्षत्रियजातिरूपाया निविदः खण्डितत्वादेनं यजमानं क्षत्रियजात्या व्यृद्धं वियुक्तं विरोधिनं करोति। अतो यजमानमुद्दिश्य होत्रा यत्कामितं तत्सिध्यतीत्युक्तं भवति॥

अभिचारान्तरं विधत्ते—

(अभिचारान्तरप्रयोगः)

यं कामयेत विशैनं व्यर्धयानीति, मध्य एतस्य सूक्तस्य निविदं शंसेत्, क्षत्रं वै निविद्विट्सूक्तं विशैवैनं तद्व्यर्धयति ।।३।।

हिन्दी—(अन्य अभिचार प्रयोग का विधान कर रहे हैं—) **यं कामयेत** जिस (यजमान) के लिए (होता) कामना करे हि **एनम्** इस (यजमान) को **विशा** वैश्य जाति से **व्यर्धयानि** च्युत कर दें तो **एतस्य सूक्तस्य मध्ये** इस सूक्त के मध्य में **निविदं शंसेत्** निवित्पदों का शंसन् कर दे। **क्षत्रं वै निवित्** निवित् क्षत्रिय जाति वाला है और **विट् सूक्तम्** सूक्त वैश्य जाति वाला है। **तत्** इस (सूक्त के मध्य में निवित् के शंसन) से **एनम्** इस (यजमान) को **विशा एव** वैश्यजाति से ही **व्यर्धयति** वियोजित कर देता है।

सा॰भा॰—प्र वो देवायेत्यस्य सूक्तस्य वैश्यस्थानीयस्य मध्ये निविदः शंसने सति वैश्यजातेः खण्डितत्वात् तद्विरोधो यजमानस्य भवति॥

प्रतिकूलं प्रयोगद्वयं विधायानुकूलं प्रयोगं विधत्ते—

(अथानुकूलप्रयोगः)

यमु कामयेत सर्वमेवास्य यथापूर्वमृजुक्लृप्तं स्यादित्याह्वयेताथ निविदं दध्यादथ सूक्तं शंसेत्, सो सर्वस्य क्लृप्तिः ।।४।।

हिन्दी—(उपर्युक्त दोनों प्रतिकूल अभिचारों का अभिधान करके अब अनुकूल अभिचार का विधान कर रहे हैं—) **यमु कामयेत** (होता) जिस (यजमान) के विषय में कामना करे कि **अस्य** इस (यजमान) का **सर्वमेव** सभी (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यरूप) **यथापूर्वम्** जैसा पहले (कहा गया है) वैसा **ऋजुक्लृप्तं स्यात्** सीधा क्रम सम्यक् रूप से सम्पादित होवे तो **आह्वयेत** पहले आहाव करे। **अथ निविदं दध्यात्** तत्पश्चात् निवित् करे **अथ सूक्तं शंसेत्** इसके बाद सूक्त का शंसन करे। **सः सर्वस्य क्लृप्तिः** वह (अनुष्ठान) ही सभी (जाति त्रय) का सीधा क्रम है।

सा॰भा॰—यमु यं तु यजमानं प्रति। पूर्वोक्तस्य द्वेष्यस्य यजमानस्य व्यावृत्त्यर्थ उशब्दः। अस्य यजमानस्य सर्वमेव ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यजातिरूपं यथापूर्वमुत्तमजातेः पूर्वमनतिक्रम्य ऋजुक्लृप्तं[1] सम्यक्संपादितं स्यादिति कामनायां 'शोंसावोम्' इत्याहावः प्रथमः,

---

(१) 'ऋजु साधु क्लृप्तं सङ्गतम्'—इति षड्गुरु॰; 'ऋजु क्लृप्तम् अञ्जसा क्लृप्तं यथोप-

ततोऽग्निर्देवेद्ध इति निवित्, ततः 'प्र वो देवाय' इति सूक्तं शंसेत्। सो सैवोक्तानुष्ठितिरेव सर्वस्य जातित्रयस्य क्लृप्तिः समीचीनकल्पना भवति॥

अथ निविदः प्रशंसितुमाह—

(निवित्प्रशंसनम्)

प्रजापतिर्वा इदमेक एवाग्र आस, सोऽकामयंत प्रजायेय भूयान् स्यामिति, स तपोऽतप्यत, स वाचमयच्छत्, स संवत्सरस्य परस्ताद् व्याहरद् द्वादशकृत्वो द्वादश पदा वा एषा निविदेतां वाव तां निविदं व्याहरत् तां सर्वाणि भूतान्यन्वसृज्यन्त ।।५।।

हिन्दी—(अब निवित् की प्रशंसा करने के लिए कह रहे हैं—) **इदम् अग्रे** (इस (सृष्ट्युत्पत्ति) के पहले **प्रजापतिः एव** प्रजापति ही **एकः** अकेले **आस** थे। **सः अकामयत्** उस (प्रजापति) ने कामना किया कि **प्रजायेय** मैं प्रजा रूप में उत्पन्न करूँ और **भूयान् स्याम** बहुत हो जाऊँ। **सः तपः अतप्यत्** (प्रजापति) ने तपस्या किया और **सः वाचम् अयच्छत्** और उन्होंने वाणी को संयमित किया। **सः संवत्सरस्य परस्ताद्** उन्होंने एक संवत्सर के पश्चात् **द्वादशकृत्वः द्वादशपदाः** बारह बार बारह पदों को **व्यहरत** उच्चारित किया। **एषाः वै निवित्** यही (बारह पद बारह) निवित् हैं। **एतां वाव तां निविदं व्याहरत्** इन्हीं उन निविदों का उच्चारण किया। **ताम् अनु** उस (निवित् उच्चारण) के पश्चात् **सर्वाणि भूतानि असृज्यन्त** सभी भूत उत्पन्न हुए।

सा० भा०—इदमिदानीं दृश्यमानं जगदग्रे स्वोत्पत्तेः पुरा प्रजापतिरीश्वर एक एवाऽऽस वै। स चाकामयताहमेव प्रजायेय प्राजरूपेणोत्पद्येय। तथा सति पूर्वस्माद् अद्वितीयरूपाद् भूयानतिप्रभूतः स्यामिति कामयित्वा स प्रजापतिः सृष्टिसाधनं तपः[१] कृतवान्। तस्मिंस्तपसि वाचमयच्छन् मौनव्रतं कृतवान्। तथा कृत्वा संवत्सरादूर्ध्वं द्वादशकृत्वो वाचमुच्चारितवान्। सेयमुच्चारिता वागेषा द्वादशपदोपेता निवित् संपन्ना। तामेतामेव निविदं प्रजापतिर्व्याहृतवान्। तां निविदमनु तत्सामर्थ्यात् सर्वाणि भूतान्यन्वसृज्यन्त॥

उक्तार्थं द्रढयितुं कंचिन्मन्त्रमुदाहरति—

तदेतदृषिः पश्यन्नभ्यनूवाच 'स पूर्वया निविदा कव्यताऽऽयोरिमाः प्रजा अजनयत् मनूनाम्' इति ।।६।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ की दृढ़ता के लिए मन्त्र को उदाहरित कर रहे हैं—) **तद्**

चारक्लृप्तम्'—इति गोविन्दस्वामीः ऋज्वा अयत्नेनैव विध्यनतिक्रमेण वा' इति भट्टभास्करः।

(१) 'नियमेषु तपश्शब्दः'—इति आप०धर्म० १.२.१।

एतत् पश्यन् ऋषिः उस इस (प्रजापति की सृष्टि का) दर्शन करते हुए (कुत्स नामक) ऋषि ने **अभ्यनूवाच** कहा है कि **सः** उस (प्रजापति) ने **पूर्वया निविदा** पहले उत्पन्न हुए (द्वादश पद वाले) निवित् से **कव्यता** कवित्व (शब्द रचना) को **आयोः** प्राप्त किया। (तत्पश्चात्) **मनूनाम्** (वैवस्वत) इत्यादि मनुओं की **इमाः प्रजाः** इन (ब्रह्मण इत्यादि) प्रजा को **अजनयन्** उत्पन्न किया।

सा०भा०—तदेतत् प्रजापतेः सर्जनं दिव्यदृष्ट्या पश्यन् कुत्सनामको महर्षि-र्मन्त्रेणाभ्यनूवाच। 'स पूर्वया' इत्यादिर्मन्त्रः।[1] स प्रजापतिः पूर्वया प्रथमं प्रादुर्भूतया निविदा द्वादशपदरूपया कव्यता कवित्वं शब्दस्रष्टृत्वमायोरागतवान् प्राप्तवानित्यर्थः। तत ऊर्ध्वं मनूनां वैवस्वतादीनां संबन्धिनीरिमा ब्राह्मणक्षत्रियादिरूपाः प्रजा अजनयद् इत्ययं मन्त्रः पूर्वोक्तमेवार्थं ब्रूते ।।

निविदं प्रशस्य तदनुष्ठानं प्रशंसति—

तद् यदेतां पुरस्तात् सूक्तस्य निविदं दधाति, प्रजात्यै ।।७।।

हिन्दी—(निवित् की प्रशंसा करके उसके अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तद् यत्** तो जो **सूक्तस्य पुरस्तात्** सूक्त से पहले **एतां निविदं दधाति** इस निवित् का शंसन करता है, तो वह **प्रजात्यै** प्रजा की उत्पत्ति के लिए होता है।

सा०भा०—यस्मात् प्रजापतिनैवं कृतं तस्माद् यदि होता सूक्तस्य पुरस्तादेतां निविदं दध्यात् तदा सा निविद् यजमानस्य प्रजात्यै प्रजोत्पादनाय संपद्यते।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः च** प्रजा और पशुओं से **प्रजायते** वृद्धि को प्राप्त करता है।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) प्रथमः खण्डः ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

(१) ऋ० १.१६.२।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—द्वादशपदोपेताया[१] निविदः प्रथमं पदं विधत्ते—

(निविदः पदविधानम्)

(प्रथमपदविधानम्)

अग्निर्देवेद्ध इति शंसत्यसौ वा अग्निर्देवेद्ध एतं हि देवा इन्धत एतमेव तदेतस्मिंल्लोक आयातयति ।।१।।

हिन्दी—(द्वादश पदों वाले निवित् के प्रथम पद का विधान कर रहे हैं–) 'अग्निर्देवेद्ध' अर्थात् अग्नि देवताओं द्वारा प्रज्वलित की गयी'—इति शंसति इस (निवित् के प्रथम पद) का शंसन करता है। **असौ वै अग्निः देवेद्ध** वही (यह सूर्यमण्डल में विद्यमान प्रकाश) ही देवताओं द्वारा प्रज्वलित अग्नि है। **एतं हि देवाः इन्धन** इसी को देवताओं ने प्रज्वलित किया है। तत् इस (शंसन) से **एतम् एव** इस (आदित्य-प्रकाश रूप अग्नि) को **अस्मिन् लोके** इस द्युलोक में **आयातयति** विस्तारित करता है।

सा० भा०—देवैरिद्धः प्रज्वलितोऽग्निरित्येष निविदि प्रथमभागस्यार्थः। तं भागं होता शंसेद्, असौ वा आदित्यमण्डलेऽवस्थित एव प्रकाशो देवैरिद्धोऽग्निः।[२] यस्मादेतं द्युलोकवर्तिनं प्रकाशं देवा इन्धत इद्धं दीपितं समृद्धं कुर्वन्ति तत् तेन प्रथमभागपाठेनैतमेवाऽऽदित्यरूपं प्रकाशमेतस्मिन् द्युलोक आयातयति[३] प्रसारयति।।

द्वितीयं पदं विधत्ते—

(द्वितीयपदविधानम्)

अग्निर्मन्विद्ध इति शंसत्ययं वा अग्निर्मन्विद्ध इमं हि मनुष्या

---

(१) अत्र चत्वारः पर्यायाः एकैकस्मिन् पर्याये तिस्रस्तिस्रो देवताः। क्षित्यन्तरिक्षद्युस्थानामग्निर्वायुः सूर्य इति। इह तु सूर्योऽग्निर्वायुरिति क्रमः'—इति गोविन्दस्वामी। 'अत्र चत्वारः पर्यायाः। तत्रैकैकस्मिन् पर्याये तिस्रस्तिस्रो निविदस्तिस्रश्च देवता द्युपृथिव्यन्तरिक्षस्थाः सूर्याग्निवायवः प्रतिपर्यायमावर्तन्ते। तत्रादःशब्दो द्युलोकवर्तिसूर्यविषयो द्रष्टव्यः। एतच्छब्दोऽपि तत्पर्यायः। इदंशब्दस्तु भूलोकवर्तिवह्निविषयो भूलोकविषयश्च। वाय्वन्तरिक्षे तु स्वशब्देनैवोच्येते सर्वत्र ब्राह्मणेन इति द्रष्टव्यम्'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'अग्निः आगन्ता सर्वकार्यार्थम्। अगेर्निर्नलोपश्च' (उ०सू० ४.५१)—इति षड्गुरु०। 'अग्निशब्दो योगादादित्ये वर्तते। अग्निः सर्वदा गच्छत्यादित्यः अतोऽग्निरादित्य उच्यते'—इति गोविन्दस्वामी।

(३) 'आयातयति = आनयति'—इति गोवि०, प्रजारक्षणार्थं सर्वतो यजमानं करोति'—इति भट्टभास्कर।

इन्धतेऽग्निमेव तदस्मिंल्लोक आयातयति ।।२।।

हिन्दी—(द्वितीय पद का विधान कर रहे हैं—) 'अग्निर्मन्विद्ध' अर्थात् (अङ्गाररूप) अग्नि मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित की गयी' **इति शंसति** इस (निवित् के द्वितीय पद) का (होता) शंसन करता है। **अयं वै अग्निः मन्विद्ध** यह (पृथिवी लोक की) अग्नि **मन्विद्ध** मनुष्यों द्वारा जलायी गयी है; क्योंकि **इमं हि मनुष्याः इन्धते** इस (अग्नि) को ही मनुष्य लोग प्रज्वलित करते हैं। **तत्** इस (शंसन) से **अग्निमेव** अग्नि को ही **अस्मिन् लोके** इस लोक में **आयातयति** विस्तारित करता है।

सा० भा०—अङ्गाररूपोऽग्निर्भूलोकवर्ती मनुष्यैः प्रज्वाल्यते। अन्यत् पूर्ववत्।।

तृतीयं पदं विधत्ते—

अग्निः सुषमिदिति शंसति वायुर्वा अग्निः सुषमिद् वायुर्हि स्वयमात्मानं समिन्धे स्वयमिदं सर्वं यदिदं किञ्च वायुमेव तदन्तरिक्षलोक आयातयति ।।३।।

हिन्दी—(निवित् के तृतीय पद का विधान कर रहे हैं—) 'अग्निः सुषदमित्' अर्थात् अग्नि समिध्यमान हैं'—**इति शंसति** इस (तृतीय पद) का (होता) शंसन करता है। **सुषदम् अग्निः वायुः** सुष्ठुरूप से प्रज्वलित अग्नि वायुरूप है; क्योंकि **वायुः हि** वायु ही **स्वयम् आत्मानम्** स्वयं अपने को और **यदिदं किञ्च** यह जो कुछ है **इदं सर्वम्** इन सभी को **स्वयं** स्वयं **समिन्धे** सम्यक् रूप से प्रकाशित करता है। **तत्** इस (तृतीय पद के शंसन) से (होता) **वायुमेव** वायु को ही **अन्तरिक्षलोके** अन्तरिक्षलोक में **आयातयति** विस्तारित करता है।

सा० भा०—शोभना समित्प्रकाशनं संचरणरूपं यस्य वायोः सोऽयं सुषमित्। तस्याग्नित्वं गतिहेतुत्वाद् यौगिकम्। 'अगि गतौ' इत्यस्माद्धातोरुत्पन्नोऽयं शब्दः।[१] प्रथमपर्यायेऽप्यादित्यपरत्वमेवं योजनीयम्। वायुर्हि स्वात्मानं सर्वं जगच्च समिन्धे सम्यक् प्रकाशयति व्यापारक्षमं करोतीत्यर्थः।।

चतुर्थपदं विधत्ते—

(चतुर्थपदविधानम्)

होता देववृत इति शंसत्यसौ वै होता देववृत एष हि सर्वतो देवैर्वृत एतमेव तदेतस्मिंल्लोक आयातयति ।।४।।

हिन्दी—(निवित् के चतुर्थ पद का विधान कर रहे हैं—) 'होता देववृतः अर्थात् होता देवताओं द्वारा वरण किया गया'—**इति शंसति** इस (चतुर्थ पद) का (होता) शंसन

(१) भ्वादि० प०, धा०पा० १४७। उणा०सू० ४.५१।

करता है। **असौ वै होता देववृतः** यह (आदित्य) ही सायं और प्रातः होम का हेतु होने से) देवों द्वारा वरण किया गया होता है; क्योंकि **एषः हि सर्वतो देवैर्वृतः** यही चारो ओर से (द्युलोक में स्थित होने के कारण) देवताओं द्वारा वरण किया गया है। **तत्** इस (चतुर्थ पद के शंसन) से **एतमेव** इस (सूर्य) को ही **एतस्मिन् लोके** इस (द्युलोक) में **आयातयति** विस्तृत करता है।

सा० भा०—असावादित्यः स्वोदयास्तमयाभ्यां सायंप्रातर्होमनिमित्तत्वेन होता स वै द्युलोके वर्तमानत्वाद् देवैर्वृतः॥[१]

पञ्चमं पदं विधत्ते—

(पञ्चमपदविधानम्)

होता मनुवृत इति शंसत्ययं वा अग्निर्होता मनुवृतोऽयं हि सर्वतो मनुष्यैर्वृतोऽग्निमेव तदस्मिंल्लोक आयातयति ॥५॥

हिन्दी—(निवित् के पञ्चम पद का विधान कर रहे हैं—) 'होता मनुवृतः अर्थात् मनुष्यों द्वारा वरण किया गया होता'—**इति शंसति** इस (पञ्चम पद) का (होता) शंसन करता है। **अयं वै अग्निः होता मनुवृतः** यह (पृथिवी लोक वाला) अग्नि ही मनुष्यों द्वारा वरण किया गया होता है; क्योंकि **अयं मनुष्यैः सर्वतः वृतः** यह मनुष्यों द्वारा सभी ओर से वरण किया जाता है। **तत्** इस (पञ्चम पद के शंसन से) **अग्निमेव** अग्नि को ही **अस्मिन् लोके** इस (पृथिवी) लोक में **आयातयति** विस्तृत करता है।

सा० भा०—भूलोकेऽवस्थितोऽग्निर्होमाधिकरणत्वाद्धोता यजमानार्त्विग्भिश्चेष्टितत्वान् मनुवृतः॥

षष्ठं पदं विधत्ते—

प्रणीर्यज्ञानामिति शंसति, वायुर्वै प्रणीर्यज्ञानां यदा हि प्राणित्यथ यज्ञोऽथाग्निहोत्रं वायुमेव तदन्तरिक्षलोक आयातयति ॥६॥

हिन्दी— (निवित् के षष्ठ पद का विधान कर रहे हैं–) '**प्रणीर्यज्ञानाम्**' अर्थात् यज्ञ को ले जाने वाला' **इति शंसति** इस (षष्ठ पद) का (होता) शंसन करता है। **वायुः वै यज्ञानां प्रणीः** वायु ही यज्ञों को ले जाने वाला है; क्योंकि **यदा हि प्राणिति** जब मनुष्य प्रकृष्ट रूप से प्राणवायु द्वारा चेष्टा करता है **अथ** तब **यज्ञः अग्निहोत्रम्** यज्ञ और अग्निहोत्र होता है। **तत्** इस (षष्ठ पद के शंसन) से **वायुमेव** वायु को ही **अन्तरिक्षलोके** अन्तरिक्ष लोक में **आयातयति** विस्तरित करता है।

---

(१) 'असौ खलु सूर्यो होता रसानामादाता देवैः रश्मिभिर्वृतः'—इति भट्टभास्करः। 'होता हवनयोगाद् देवैः सर्वदा वृत आदित्यः'—इति गोविन्दस्वामी।

सा० भा०—यज्ञान् प्रकर्षेण नयति वायुः, तस्मादेष यज्ञानां प्रणीर्यस्मिन् काले पुरुषः प्राणिति प्राणवायुना चेष्टते तदा यज्ञो भवति।[१] तस्यैव व्याख्यानमुदाहरणरूपमथाग्निहोत्रमिति प्राणवायुचेष्टयाऽग्निहोत्रकरणादिव्यापारा निष्पद्यन्ते।।

सप्तमं पदं विधत्ते—

(सप्तमपदविधानम्)

रथीरध्वराणामिति शंसत्यसौ वै रथीरध्वराणामेष हि यथैतच्चरति रथीरिवैतमेव तदेतस्मिंल्लोक आयातयति ।।७।।

हिन्दी—(निवित् के सप्तम पद का विधान कर रहे हैं—) 'रथीरध्वराणाम्' आहुतियों का रथी'—**इति शंसति** इस (सप्तम पद) का (होता) शंसन करता है। **असौ वै अध्वराणां रथी** वह (आदित्य) ही आहुतियों के प्रकाशन के लिए रथवान् होकर विचरण करता है; क्योंकि **एषः एव रथीः इव** यह आदित्य ही रथी के समान **चरति** विचरण करता है। **तत्** इस (सप्तम पद के शंसन) से **एतमेव** इस (सूर्य) को ही **एतस्मिन् लोके** इस द्युलोक में **आयातयति** विस्तृत करता है।

सा० भा०—असावादित्योऽध्वराणां प्रकाशनाय रथीर्भवति रथवान् भूत्वा संचरन्ति। अयमेवार्थ एष हीत्यादिनोच्यते। यथा लोके रथीरिव कश्चन रथवानेवैतद् गन्तव्यस्थानं प्रति चरति तथैष आदित्योऽपि रथयुक्त एव चरति। शाखान्तरे तु तदीयरथप्रदर्शनपूर्वकमेव मन्त्रो व्याख्यातः—'रथीरध्वराणामित्याह, एष हि देवरथः'[२] इति।।

अष्टमं पदं विधत्ते—

(अष्टमपदविधानम्)

अतूर्तो होतेति शंसत्ययं वा अग्निरतूर्तो होतेमं ह न कश्चन तिर्यञ्चं तरत्यग्निमेव तदस्मिंल्लोक आयातयति ।।८।।

हिन्दी—(निवित् के अष्टम पद का विधान कर रहे हैं—) **अतूर्तो होता** अर्थात् 'अपराजित होता'—**इति शंसति** इस (अष्टम पद) का (होता) शंसन करता है। **अयम् अग्निः वै अतूर्तः होता** यह (पृथिवीस्थानीय) अग्नि ही अपराजित होता है; क्योंकि **कश्चन इमं तिर्यञ्चं न तरति** कोई भी मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाले इस (अग्नि) को पार नहीं कर सकता है। **तत्** इस (अष्टम पद के शंसन) से **अग्निमेव** अग्नि को ही

---

(१) यदा खलु वायुः प्राणिति प्राणयति जनान्। अन्तर्णीतण्यर्थोऽनितिर्द्रष्टव्यः। यद्वा, यदा प्राणिति बलवान् भवति तदा खल्वयं प्रणीर्भवति। अधुना प्रकृत्यर्थ एवानितिर्द्रष्टव्यः।'—इति भट्टभास्करः।

(२) तै०सं० २.५.९.२।

अस्मिन् लोके इस (पृथिवी) लोक में **आयातयति** विस्तारित करता है।

सा० भा०—भूलोकवर्ती वह्निरतूर्तः केनाप्यतीर्णः।[१] मार्गमध्ये तिर्यञ्चं मार्गस्यावरोधकत्वेनावस्थितं प्रौढं दावाग्निं कश्चिदपि तरितुं न समर्थः ॥

नवमं पदं विधत्ते—

(नवमपदविधानम्)

तूर्णिर्हव्यवाळिति शंसति, वायुर्वै तूर्णिर्हव्यवाड्, वायुर्हीदं सर्वं सद्यस्तरति यदिदं किञ्च; वायुर्देवेभ्यो हव्यं वहति, वायुमेव तदन्तरिक्षलोक आयातयति ।।९।।

हिन्दी—(निवित् के नवम पद का विधान कर रहे हैं—) **तूर्णिर्हव्यवाट्** अर्थात् पार करने वाले और हव्यों का वहन करने वाले'—**इति शंसति** इस (नवम पद) का (होता) शंसन करता है। **वायुः वै तूर्णिः हव्यवाट्** वायु ही पार करने वाला और हव्यों का वहन करने वाला है; क्योंकि **वायुः वै तरति** वायु ही पार करने वाला है। **यद् इदं किञ्च** जो कुछ भी यहाँ है, **इदं सर्वम्** इस सभी को **शीघ्रः तरति** शीघ्र पार कर लेता है और **वायुः देवेभ्यः हव्यं वहति** वायु देवताओं के लिए हविष् को वहन करता है। **तत्** इस (नवम पद के शंसन) से **वायुमेव** वायु को ही **अन्तरिक्षलोके** अन्तरिक्ष लोक में **आयातयति** विस्तारित करता है।

सा० भा०—तरतीति तूर्णिः। वायोः सर्वतरणसामर्थ्यं प्रसिद्धम्। हव्यं वहतीति हव्यवाड्वविर्वहनस्य क्रियारूपस्य वायुनिष्पाद्यत्वाद् असौ हव्यं वहति॥

दशमं पदं विधत्ते—

(दशमपदविधानम्)

आ देवो देवान् वक्षदिति शंसत्यसौ वै देवो देवानावहत्येतमेव तदेतस्मिंल्लोके आयातयति ।।१०।।

हिन्दी—(निवित् के दशम पद का विधान कर रहे हैं—) 'आ देवो देवान् वक्षत्' अर्थात् देव देवों को यहाँ ले आवे'—**इति शंसति** इस (दशम पद) का (होता) शंसन करता है। **असौ वै देवः** वह (आदित्य) देव ही **देवान् आवहति** देवताओं को ले आते हैं। **तत्** उस (दशम पद के शंसन) से **एतमेव** इस (आदित्य) को हो **एतस्मिन् लोके** इस लोक में **आयातयति** विस्तारित करता है।

---

(१) 'अतूर्तः अतिक्रमितुमशक्यः'–इति भट्टभास्करः;'अहिंसितः' इति षड्गुरु०। 'तरणायोगादतूर्तत्वम्' इति गोवि०।

सा० भा०—असावादित्यो देवः स्वोदेयास्तमयाभ्यां होमकालसूचनेन देवानावक्षदावहति॥

एकादशं पदं विधत्ते—

(एकादशपदविधानम्)

यक्षदग्निर्देवो देवानिति शंसत्ययं वा अग्निर्देवो देवान् यजत्यग्निमेव तदस्मिंल्लोक आयातयति ॥११॥

हिन्दी—(निवित् के एकादश पद का विधान कर रहे हैं—) **'यक्षदग्निर्देवो देवान्'** अर्थात् अग्नि देव देवताओं का यजन करे' **इति शंसति** इस (ग्याहवें पद) का (होता) शंसन करता है। **अयमग्निर्देवो वै** यह अग्निदेव ही **देवान् यजति** देवताओं का यजन करता है। **तत्** इस (एकादश पद के शंसन) से **अग्निमेव** अग्नि को ही **अस्मिन् लोके आयातयति** विस्तारित करता है।

सा० भा०—अयं भूमौ दृश्यमानोऽग्निर्देवो देवान् यजतीति प्रसिद्धम्॥

द्वादशं पदं विधत्ते—

(द्वादशपदविधानम्)

सो अध्वरा करति जातवेदा इति शंसति, वायुर्वै जातवेदा, वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किंच, वायुमेव तदन्तरिक्षलोक आयातयति ॥१२॥

हिन्दी—(निवित् के द्वादश पद का विधान कर रहे हैं—) 'सो अध्वरा करति जातवेदाः' अर्थात् यह जातवेद अध्वर का सम्पादन न करे— **इति शंसति** इस (द्वादश पर) का (होता) शंसन करता है। **वायुः वै जातवेदाः** वायु ही (श्वास उच्छवास द्वारा प्राणियों को जानने के कारण) जातवेद है; क्योंकि **वायुः हि** वायु ही **यदिदं किञ्च** यह जो कुछ भी है **इदं सर्वम्** इस सभी को **करोति** सम्पादित करता है। **तत्** उस (द्वादश पद के शंसन) से **वायुमेव** वायु को ही **अन्तरिक्षलोके** अन्तरिक्षलोक में **आयातयति** विस्तारित करता है।

सा० भा०—उच्छ्वासनिःश्वासप्रदानेन जातं प्राणिनं वेदयति जीवनयुक्तत्वेन ज्ञापयतीति वायुर्जातवेदाः।[१] स चाध्वरा सर्वयज्ञान् करोति निष्पादयति व्यापाररूपस्यानुष्ठानस्य वाय्वधीनत्वात्। एषु द्वादशसु पदेषु सूर्याग्निवायवश्चतुरावृत्ताः ॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

---

(१) 'जातवेदाः जातधनः धनानामुत्पत्तिहेतुः'–इति भट्टभास्करः।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—निविदो यानि द्वादश पदानि भागरूपाणि तान्युक्तानि। अथ तदनन्तर-भाविसूक्तं विधत्ते—

(निवित्पदादूर्ध्वं शंसनीयसूक्तप्रयोगविधानम्)

प्र वो देवायाग्नय इत्यनुष्टुभः ।।१।।

हिन्दी—(निवित्पदों के बाद शंसनीय सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'प्र वो देवायाग्नये' **इति आनुष्टुभः** इस अनुष्टुप् छन्द वाली (सात ऋचाओं वाले सूक्त का होता शंसन करता है)।

सा० भा०—'प्र वो' इत्यादि सूक्तस्य[1] प्रतीकं तस्मिन् सूक्ते याः सप्तसंख्याका अनुष्टुप्छन्दस्का ऋचः सन्ति ताः शंसेदिति शेषः॥

प्रथमायामृचि यौ प्रथमद्वितीयपादौ तयोर्विहरणं विधत्ते—

प्रथमे पदे विहरति तस्मात् स्त्र्युरू विहरति ।।२।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के प्रथम और द्वितीय पाद के मध्य में विहरण का विधान कर रहे हैं—) **प्रथमे पदे विहरति** प्रथम दो पादों के मध्य में विहरण करता है अर्थात् प्रथम और द्वितीय पाद के मध्य में विच्छेद करके पढ़ता है। **तस्मात्** इसी कारण **स्त्री उरू विहरति** (लोक में भी) स्त्री (सम्भोग काल में) (अपनी) दोनों जङ्घाओं को अलग कर लेती है।

सा० भा०—विहरणम् = पृथक्करणम्। द्वयोः पादयोर्मध्ये विहारं विच्छेदं कृत्वा पठेत्। यस्माद् अत्र पादयोः परस्परवियोगः, तस्माल्लोकेऽपि स्त्री संभोगकाले स्वकीये ऊरू विहरति वियोजयति॥

तस्यामृचि तुतीयचतुर्थपादयोरविच्छेदं विधत्ते—

समस्यत्युत्तरे पदे, तस्मात् पुमानूरू समस्यति तन्मिथुनं मिथुनमेव तदुक्थमुखे करोति, प्रजात्यै ।।३।।

हिन्दी—(उस प्रथमा ऋचा में तृतीय और चतुर्थ पादों में अविच्छेद करने का विधान

(१) ऋ० ३.१३।

कर रहे हैं—) **उत्तरे पदे समस्यति** उत्तरार्ध के दो पादों को मिलाकर पढ़ता है। **तस्मात्** इसी कारण **पुमान् उरू समस्यति** (लोक में) पुरुष (सम्भोग काल में) अपनी जँधाओं को मिलाये रहता है। **तत् मिथुनम्** वह मिथुन है, **तत्** इस (शंसन) से **उक्थमुखे** आज्यशस्त्र के प्रारम्भ में **प्रजात्यै** प्रजोत्पादन के लिए **मिथुनमेव करोति** मिथुन ही करता है।

सा० भा०—यस्मात् तृतीयचतुर्थपादयोरुत्तरार्धगतयोः संयोजनं तस्माल्लोकेऽप्युपरिवर्ती पुमान् भोगकाले स्वकीये ऊरू समस्यति संयोजयति तदुभयं मिलित्वा मिथुनं भवति। तस्मादुक्थमुखे शस्त्रस्योपक्रमे मिथुनमेव करोति। तच्च यजमानस्य प्रजननाय संपद्यते ॥

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥४॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः प्रजायते** प्रजा और पशुओं से प्रवृद्ध होता है।

पुनरप्युक्तमेवानूद्य प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

प्र वो देवायाग्नय इत्येवानुष्टुभः प्रथमे पदे विहरति वज्रमेव तत्परोवरीयांसं करोति, समस्यत्येवोत्तरे पदे, आरम्भणतो वै वज्रस्याणिमाऽथो दण्डस्याथो परशोर्वज्रमेव तत्प्रहरति द्विषते भ्रातृव्याय वधं योऽस्य स्तृत्यस्तस्मै स्तर्तवै ॥५॥

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) 'प्र वो देवायग्नये'—**इत्येव आनुष्टुभः** ये अनुष्टप् छन्द वाली ऋचाएँ हैं। **प्रथमे पदे विहरति** प्रथम दो पादों के मध्य में विच्छेद करता है। **तत्** इस (प्रथम दो पादों में विच्छेद करने) से **परः** उत्तर भाग को **वरीयांसम्** अत्यधिक स्थूल **वज्रमेव करोति** वज्र ही बना देना देता है। **उत्तरे पदे समस्यति एव** उत्तरवर्ती पादों को मिला ही देता है; क्योंकि **वज्रस्य आरम्भणः अणिम् एव** वज्र का प्रारम्भ वाला भाग सूक्ष्म होता है। **अथो दण्डस्य अथो परशोः** ऐसा ही दण्ड (गदा) का और कुठार का भी भाग होता है। **तत्** इस प्रकार (प्रथम दो पादों को विच्छेद तथा उत्तरवर्ती दो पादों को मिलाने से) **द्विषते भ्रातृव्याय वधम्** द्वेष करने वाले शत्रु के वध के लिए **वज्रमेव** (सूक्तरूप) वज्र का ही **प्रहरति** प्रहार करता है। **यः** जो (शत्रु) **अस्य** इस (यजमान) का **स्तृत्यः** हिंस्य होता है, **तस्मै स्तर्तवै** उसके वध के लिए ही (ऐसा करता है)।

सा० भा०—इत्येवानुष्टुभ इति योऽयमेवकारः स पूर्वस्यैवानुवादो न तु नूतनविधिरितिज्ञापनार्थः। परोवरीयासं परस्युत्तरभागेऽतिशयेन स्थूलमीदृशं वज्रं सूक्तपठनेन

संपादयति। प्रथमाया ऋच उत्तरार्धे पदे तत्पादयोः समसनं तदपि वज्रसादृश्यार्थं वज्रस्य ह्यारम्भणतोऽणिमा मूले सौक्ष्म्यमित्यर्थः। वज्रशब्देन खड्गादिरूपमायुधमभिधीयते। तस्य हि मूले मुष्टिबन्धनस्थाने सूक्ष्मता भवत्युपरि तु विस्तारः। दण्डशब्देन गदा विवक्षिता। साऽपि हस्तग्रहणस्थाने मूले सूक्ष्मा प्रहारस्थानेऽग्रे स्थूला। परशुरपि तथाविधः।[१] यथाऽयं त्रिविधो वज्र एवमिदमपि सूक्तं प्रथमार्धर्चपादविहरणेन सूक्ष्ममुत्तरार्धर्चपादसमासेन स्थूलम्। अत ईदृशं सूक्तरूपं वज्रमेव द्वेषं कुर्वतो भ्रातृव्यस्य वधमुद्दिश्य प्रहरति—यः शत्रुरस्य स्तृत्यो हन्तव्यः, तस्मै स्तर्तवै तस्य हिंसायै भवति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अथाऽऽग्नीध्रीयवासादिसिद्ध्यर्थमाख्यायिकामाह—

(आग्नीध्रीयवासादिसिद्ध्यर्थमाख्यायिका)

देवासुरा वा एषु लोकेषु समयतन्त, ते वै देवाः सद एवाऽऽयतनमकुर्वत, तान् सदसोऽजयंस्त आग्नीध्रं संप्रापद्यन्त, ते ततो न पराजयन्त, तस्मादाग्नीध्र उपवसन्ति, न सदस्याग्नीध्रे ह्यधारयन्त यदाग्नीध्रेऽधारयन्त तदाग्नीध्रस्याऽऽग्नीध्रत्वम् ॥१॥

हिन्दी—(अब अग्नीध्रीय वासादि की सिद्धि के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **देवासुराः** देवताओं और असुरों ने **एषु लोकेषु** इन लोकों के विषय में **समयतन्त** परस्पर युद्ध किया। **ते एव देवाः** उन देवताओं ने **सदे एव आयतनम् अकुर्वत** (सौमिक वेदि पर प्राग्वंश के पूर्व की ओर) सदस् नामक स्थान को अपना आवास बनाया। **तान् सदसः अजयन्** उन (देवताओं) को (राक्षसों ने) सदस् नामक स्थान से जीत लिया। **ते आग्नीध्रं सम्प्रापद्यन्त** तब उन (देवताओं) ने (निवास के लिए) आग्नीध्र (नामक स्थान)

---

(१) 'वज्रस्य खस्वारम्भणे आरम्भे हस्तग्रहणप्रदेशेऽणिमा अणुत्वं भवति। अथो अनन्तरं दण्डभागस्यान्योऽणिमा पूर्वस्मादूनो भवति। अथो तदनन्तरं च परशोः आस्यप्रदेशस्यान्योऽणिमा ततोऽप्यूनो भवति। यदा चाणिमा उपर्युपरि क्षीयते तदा चोपर्युपरि वरिमा भवति वज्रस्य'—भट्टभास्करः।

को प्राप्त किया। **ततः** वहाँ से **ते न पराजयन्त** वे (देवता) पराजित नहीं हुए। **तस्मात्** इस कारण **आग्नीध्रे उपवसन्ति** वे (देवता) आग्नीध्र के समीप (स्थान) में ही (यजमान उपवसथ के दिन) बैठते हैं, **न सदसि** सदस् के समीप नहीं; क्योंकि **आग्नीध्रे हि अधारयन्त** आग्नीध्र में ही उन (देवताओं) ने आश्रय को प्राप्त किया। **तद् आग्नीध्रस्य आग्नीध्रत्वम्** वही आग्नीध्र का आग्नीध्रत्व (आग्नीध्र होना) है।

सा० भा०—पुरा कदाचिद् देवाश्चासुराश्च लोकविषये समयतन्त सङ्ग्रामं कृतवन्तः। वयमेवैषु लोकेषु निवसामो न तु यूयमित्येवं परस्परस्पर्धा। तदानीं देवाः सौमिकवेद्यां प्राग्वंशस्य पूर्वस्यां दिशि येयं सदोभिधाना शाला तामेव स्वस्य निवासस्थानं कृतवन्तः। तत्रावस्थितांस्तान् देवानसुराः सदसो जयञ्जित्वा सदसो निःसारितवन्त इत्यर्थः। ततो देवा निर्गताः सन्त अग्नीध्राभिधां शालां प्राप्तवन्तः। ते देवाः प्राप्य तत आग्नीध्रीयं न पराजयन्त तत्रासुराणामेव पराजयो न तु देवानाम्। यस्मादेवं तस्मादाग्नीध्रशालायामुपवसथे दिन यजमाना उपवसन्ति। अग्निसमीपे निवसेयुर्न तु सदसि निवासः कर्तव्यः। आग्नीध्रे हि देवाः पलायनं परित्यज्य स्वात्मानं धारितवन्तः, तस्मात् तत्र निवासो युक्त। यस्माद् आग्नीध्रे धारितवन्तः, तस्मादाग्नीध्रनाम संपन्नम्।[१] अग्निसमीपे स्वात्मधारणस्य प्रवृत्तिनिमित्तत्वात्।।

अथ सदस्यवस्थितेषु धिष्ण्येष्वाग्नीध्रादग्निविहरणं विधत्ते—

तेषां वै देवानामसुराः सदस्यानग्नीन्निर्वापयांचक्रुस्ते देवा आग्नीध्रादेव सदस्यानग्नीन् विहरन्त तैरसुररक्षांस्यपाघ्नत तथैवैतद् यजमाना आग्नीध्रादेव सदस्यानग्नीन् विहरन्त्यसुररक्षांस्येव तदपघ्नते ।। २।।

हिन्दी—(अब सदस् में अवस्थित धिष्ण्य में आग्नीध्र से अग्नि-विहरण का विधान कर रहे हैं—) **असुराः** असुरों ने **तेषां देवानाम्** उन देवताओं के **सदस्यान् अग्नीन्** सदस् में विद्यमान अग्नि को **निर्वापयांचक्रुः** (जल सेचन द्वारा) बुझा दिया। **ते देवाः** उन देवताओं ने **अग्नीध्राद् एव** आग्नीध्र से ही **सदस्यान् अग्नीन्** सदस् की अग्नि को **विहरन्त** स्थापित कर दिया। **तैः असुररक्षांसि अपाघ्नत** उन अग्नियों द्वारा (देवताओं ने) असुरों और राक्षसों को मार डाला। **तथा एव** उसी प्रकार ही **यजमानाः** यजन करने वाले लोग **आग्नीध्राद् एव** आग्नीध्र से ही **सदस्यान् अग्नीन्** सदस् की अग्नियों को **विहरन्ति** स्थापित करते हैं और **तत्** उससे **असुररक्षांसि अपघ्नते** असुरों और राक्षसों को विनष्ट कर देता है।

---

(१) 'प्रयाजादिप्रदानेनाग्नेरिन्धका देवा ध्रियन्तेऽस्मिन्नित्याग्नीध्रम्। घञर्थे कविधानमित्याधिकरणे कः। इन्धेः क्विप् अग्नीध्रमेवाग्नीध्रः स्वार्थिकोऽण्। वर्णव्यत्ययेन वाकारस्य दीर्घत्वम्। तदिदानीमाग्नीध्रस्याग्नीध्रत्वम्। अग्नीध्रः शरणे रण् भत्वं चेत्येतदनाश्रित्यैवमुक्तम्'—इति भट्टभास्करः।

सा० भा०—पुरा देवानां संबन्धिनो येऽग्नय: सदस्यवस्थितेषु धिष्ण्येष्वासंस्तान् सर्वान् देवपलायनेन सद:प्रविष्टा असुरा निर्वापयांचक्रुर्जलप्रक्षेपेणाग्नीन् शान्तानकुर्वन्। तदानीं ते देवा आग्नीध्रे स्थित्वा तत्रत्यान् सदस्यानग्नीन् विहरन्त सदस्यवस्थितेषु धिष्ण्येषु पृथक्पृथगग्नीन् विहृतवन्त: स्थापितवन्त:। तै: प्रबलैरग्निभिरसुरान् रक्षांसि च सदसि हतवन्त:। यथा देवैर्विहरणं कृतं तथैवैतस्मिन्नपि काले यजमाना आग्नीध्रादेव वह्ने: सदस्यानग्नीन् विहरेयु:। तेन विहरणेनासुरान् रक्षांसि च तदपघ्नते तत् तदानीं नाशयन्ति। सोऽयमर्थ: सर्वोऽपि शाखान्तरे संगृह्याऽऽम्नात:—'देवा वै यज्ञं पराजयन्त तमाग्नीध्रात् पुनरयाजयन्नेतद्वै यज्ञस्यापराजितं यदाग्नीध्रं यदाग्नीध्राद् धिष्णियान् विहरन्ति यदेव यज्ञस्यापराजितं तत एवैनं पुनस्तनुते'[1] इति॥

इत्थं शंसनस्थानगतेषु धिष्ण्येष्वग्निविहरणं विधाय तत्र शंसनीयानां शस्त्राणां यदेतद् आज्यनामकत्वं तदेतच्छब्दनिर्वचनेन विस्पष्टयति—

(आज्यनामनिर्वचनम्)

ते वै प्रातराज्यैरेवाऽऽजयन्त आयन् यदाज्यैरेवाऽऽजयन्त आयंस्त-दाज्यानामाज्यत्वम् ॥३॥

हिन्दी—(अग्नि-विहरण में शंसनीय आज्य नामक शस्त्र के आज्य नाम को निर्वचन द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं—) प्रात: प्रात:सवन में **आज्यै: एव** आज्य (नामक शस्त्र) से **आजयन्त:** विजय प्राप्त करते हुए **ते वै** वे (देवता) **आयन्** आये। **यद् आज्यै: एव** जो आज्य (शस्त्र) से **आजयन्त: आयन्** विजय प्राप्त करते हुए आये **तद् आज्यानाम् आज्यत्वम्** आज्यों का आज्यत्व है।

सा० भा०—त एव देवा: प्रात:सवने यान् याज्यनामकानि शस्त्राणि तैरेवाऽऽसमन्ता-ज्जयं प्राप्नुवन्त आगच्छन्। यस्मादेवं तस्माद् आसमन्ताज्जयन्त्येभिरिति व्युत्पत्त्या शस्त्राणामाज्यनाम संपन्नम्। अनेनैव न्यायेन सामवेदे 'पञ्चदशान्याज्यानिति'[2] वाक्येन विहि-तानां पञ्चदशस्तोमयुक्तानां स्तोत्राणामाज्यनामत्वं द्रष्टव्यम्॥[3]

अथाच्छावाकस्य शस्त्रं विधत्ते—

---

(१) तै०सं० ६.३.१.१।

(२) ता०ब्रा० २०.३.१। बहिष्पवमानसूक्तादनन्तरम् 'अग्न आयाहि' (उत्तर ऋक् १-४) इत्यारभ्य गीयमानानि सूक्तान्याज्यस्तोत्राणि। तत्र प्रात:सवने चत्वारि। माध्यन्दिनसवने पञ्च। तृतीयसवने षट् इति पञ्चदश।

(३) प्रजापतिर्देवेभ्य आत्मानं यज्ञं कृत्वा प्रायच्छत् तेऽन्योऽन्यस्मा अग्राय तातिष्ठन्त तान-ब्रवीदाजिमस्मिन्नितेति त आजिमायन्यदाजिमायंस्तदाज्यानामाज्यत्वम्'—इत्याद्याखण्ड-समापि द्रष्टव्यम् (ता०ब्रा० ७.२)।

(अच्छावाकस्य शस्त्रविधानम्)

तासां वै होत्राणामायतीनामाजयन्तीनामच्छावाकीयाऽहीयत, तस्यामिन्द्राग्नी अध्यास्तामिन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ बलिष्ठौ सहिष्ठौ सत्तमौ पारयिष्णुतमौ तस्मादैन्द्राग्नमच्छावाकः प्रातःसवने शंसतीन्द्राग्नी हि तस्यामध्यास्ताम् ।।४।।

हिन्दी—(अब अच्छावाक के शस्त्र का विधान कर रहे हैं—) **आजयन्तीनाम् आयतीनां तासां होत्रकाणाम्** चारों ओर से विजय प्राप्त करते हुए (निवास के लिए सदस् नामक स्थान में प्रवेश करने के लिए) आये हुए उन होत्रकों का **अच्छावाकीया अहीयत** अच्छावाकीय शरीर हीन हो गया (सदस नामक स्थान में प्रवेश नहीं सका)। **तस्याम् इन्द्राग्नी अध्यास्ताम्** उस (हीन शरीर) पर इन्द्राग्नी ने निवास किया; क्योंकि **इद्राग्नी वै** इन्द्र और अग्नि ही **देवानाम्** देवताओं में **ओजिष्ठौ** अत्यधिक ओजस्वी **बलिष्ठौ** अत्यधिक बल-सम्पन्न, **सहिष्ठौ** (शत्रुओं को) अत्यधिक अभिभूत करने वाले, **सत्तमौ** (भक्तों के) अत्यधिक समीप रहने वाले और **पारयिष्णुतमौ** (पापों से) अत्यधिक पार लगाने वाले हैं। **तस्मात्** इसी कारण **अच्छावाकः** अच्छावक (नामक ऋत्विक्) **प्रातः-सवने** प्रातःसवन में **ऐन्द्राग्नं शंसति** इन्द्र और अग्नि का शंसन करता है; क्योंकि **इन्द्रग्नी हि** इन्द्र और अग्नि ही **तस्याम् अध्यास्ताम्** उस (अच्छावाक के शरीर) में निवास करते हैं।

सा० भा०—प्रशास्ता ब्राह्मणाच्छंस्यच्छावाक इत्येते शस्त्रिणो होत्रका यद्यपि पुरुषास्तथाऽपि तदीयतनुविवक्षया तासामित्यादिस्त्रीलिङ्गनिर्देशः। यास्तनवः पूर्वमसुरानपाघ्नत तासामेव होत्राणां होत्रकतनूनामायतीनां सदः प्रवेष्टुमागच्छन्तीनामाजयन्तीनां सर्वतो जयं प्राप्नुवतीनां मध्येऽच्छावाकीयाऽच्छावाकसंबन्धिनी तनुरहीयत हीनाऽभूत् सदसमागन्तुं नाशक्नोद् इत्यर्थः। तदनुग्रहार्थं तस्यां तन्वामिन्द्राग्नी अध्यास्तामधिष्ठाय निवासं कृतवन्तौ। युज्यते हीन्द्राग्न्योरनुग्रहीतृत्वं यस्माद्देवानां मध्य इन्द्राग्नी ओजिष्ठावोजसा बलहेतुनाऽष्टमधातुनाऽत्यन्तमुपेतावत एव बलिष्ठावतिशयेन शरीरशक्तियुक्तौ तत एव सहिष्ठावतिशयेन शत्रूनभिभवितारौ स्वभक्तविषये तु सत्तमावतिशयेन सन्तौ सन्मार्गवर्तिनावनुग्रहीतारावित्यर्थः। अत एव पारयिष्णुतमौ स्वभक्तैरनुष्ठीयमानं कर्मातिशयेन पारं नेतुं सदोद्युक्तौ। तस्मादयमच्छावाक इन्द्राग्नीदेवताकं शस्त्रं प्रातःसवने शंसेत्। 'इन्द्राग्नी आ गतम्'[1] इत्यादिकं तच्छस्त्रम्।[2] यस्मादिन्द्राग्नी तस्यामच्छावाकतन्वामध्यास्ता[3] तस्मादैन्द्राग्न-

---

(१) ऋ० ३.१२।

(२) 'इन्द्राग्नी आगतं सुतम्'–इति आश्व०श्रौ० ५.१०.२८

(३) अध्यास्तम् = अध्यासाताम्। आसेर्व्यत्ययेन परस्मैपदम्; अधिशीङ् स्थासामिति कर्म-

शस्त्रं तस्य युक्तम्॥

इदानीमच्छावाकस्य सदःप्रवेशे विशेषं विधत्ते—

(अच्छावाकस्य सदःप्रवेशे विशेषः)

तस्माद् पुरस्ताद् अन्ये होत्रकाः सदः प्रसर्पन्ति पश्चाऽच्छावाकः पश्चेव हि हीनोऽनुसंजिगमिषति ।।५।।

हिन्दी—(अब अच्छावाक के सदसस्थान में प्रवेश के विषय में कुछ विशेष का विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **अन्ये होत्रकाः** (अच्छावाक से) अन्य होत्रक **पुरस्तात् सदः प्रसर्पन्ति** पहले सदस् में प्रवेश करते हैं **पश्चा अच्छावाकः** तत्पश्चात् अच्छावाक प्रवेश करता है। क्योंकि (लोक में) **हीनः हि** हीन (अशक्त व्यक्ति) **पश्चा एव अनुसंजिगमिषति** पीछे ही (अनुगमन करने के लिए) छोड़ दिया जाता है।

सा० भा०—यस्मादच्छावाकव्यतिरिक्ताः प्रशास्तादयो होत्रकाः सहसा गन्तुं शक्नुवन्ति न त्वच्छावाकः, तस्मात् प्रशास्तादयः पुरस्तात् सदः प्रसर्पेयुः। अच्छावाकस्तु पश्चात् प्रसर्पेत्। लोकेऽपि हि हीनोऽशक्तः पश्चेव हि पश्चादेव हि जिगमिषतीति प्रसिद्धम्। अत्र पुरस्तात् पश्चाछब्दौ देशतः कालतश्चेति वेदितव्यौ॥

अच्छावाकीयशस्त्रं प्रशंसति—

(अच्छावाकीयशस्त्रप्रशंसनम्)

तस्माद् यो ब्राह्मणो बह्वृचो वीर्यवान् स्यात् सोऽस्याच्छावाकीयां कुर्यात् तेनैव साऽहीना भवति ।।६।।

हिन्दी—(अब अच्छावाकीय शस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **यः ब्राह्मणः** जो ब्राह्मण **बह्वृचः वीर्यवान् स्यात्** ऋग्वेद का पारंगत और वीर्यवान् (ऋचाओं का शंसन करने में अत्यधिक समर्थ) हो, **सः अच्छावाकीयां कुर्यात्** वह अच्छावाक शस्त्र का शंसन करे; क्योंकि **तेन एव** उस (अच्छावाक शस्त्र के पाठ) से **सा** वह (उसका शरीर) **अहीना भवति** हीन नहीं होता है।

सा० भा०—यस्मादिन्द्राग्नी तस्यां तन्वामधिष्ठाय निवसतस्तस्माल्लोके यः कोऽपि ब्राह्मणो बह्वृच ऋग्वेदाध्यायी वीर्यवान् वेदपाठसामर्थ्यातिशयोपेतः स्यात् सोऽस्य यजमानस्याच्छावाकीयां कुर्यादच्छावाकसम्बन्धमैन्द्राग्नशस्त्रं पठेत्। तेनैव पाठेन स तदीयतनुरहीना व्यवहर्तुं समर्था भवति॥

संज्ञाभावश्च। यद्वा, अस्तेर्लङ्। स्वामित्वेन भवनमधिभवनम्। इन्द्राग्नी खलु तस्यामधि स्वामित्वेनास्तामभवताम्। अधिरीश्वर इति कर्मप्रवचनीयत्वाद् यस्मादधिकमिति सप्तमी'— इति भट्टभास्करः।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—अथाऽऽज्यशस्त्रस्य बहिष्पवमानस्तोत्रोत्तरत्वं प्रउगशस्त्रस्याऽऽज्यस्तोत्रोत्तरत्वं विधत्ते—

(यज्ञस्य देवरथत्वेन कथनम्)

देवरथो वा एष यद्यज्ञस्तस्यैतावन्तरौ रश्मी यदाज्यप्रउगे तद्यदाज्येन पवमानमनुशंसति प्रउगेणाऽऽज्यं देवरथस्यैव तदन्तरौ रश्मी विहरत्यलोभाय।।१।।

हिन्दी—(अब आज्यशस्त्र का बहिष्पवमान स्तोत्र के पश्चात् और प्रउगशस्त्र का आज्य स्तोत्र के पश्चात् शंसन का विधान कर रहे हैं—) **यद् यज्ञः** जो यज्ञ है **एषः देवरथः वै** वह देवताओं का रथ है और **यद् आज्यप्रउगे** जो आज्य और प्रउग (नामक शस्त्र) हैं **एतौ** ये दोनों **अस्य अन्तरौ रश्मी** इस (यज्ञ) की भीतर (की अश्व को) बाँधने की रस्सियाँ (लगाम) है । **तत्** तो **यद् आज्येन पवमानमनु शंसति** जो आज्यशस्त्र से पवमान (सम्बन्धी स्तोत्र) के बाद शंसन करता है और **प्रउगेण आज्यम्** आज्य (शस्त्र) के बाद प्रउग (नामक शस्त्र) से शंसन करता है। **तत्** उस (शंसन) से **देवरथस्य** देवताओं के रथ (रूपी यज्ञ) के **अन्तरौ रश्मी** दोनों भीतर की रश्मियों को **अलोभाय** व्यामोह-रहितता के लिए **विहरति** सभाल लेता है।

सा० भा०—यो यज्ञोऽस्त्येष देवानां रथ एव तस्य रथरूपस्य रथस्याऽऽज्यं प्रउगं च यच्छस्त्रद्वयं तदन्तरौ रश्मी अश्वबन्धनरज्जू रथस्योपर्यवस्थितेन सारथिना ध्रियमाणत्वात् तयोरभ्यन्तरत्वम्। यस्मादेवं तस्मात् यद्याज्यशस्त्रेण बहिष्पवमानमनु पश्चाच्छंसेत् प्रउगशस्त्रेण चाऽऽज्यस्तोत्रमनुशंसेत् तदानीं देवरथस्यैव संबन्धिनावभ्यन्तरौ रश्मी प्रग्रहौ विहरति विशेषेण संपादयति। तच्चालोभाय व्यामोहराहित्याय संपद्यते। रश्मिराहित्ये दुष्टाभ्यामश्वाभ्यां यत्र क्वापि दुर्गमे देशे रथनयने सति रथभङ्गरूपो व्यामोहः स्यात् तन्मा भूदिति शस्त्रद्वयं क्रमेण प्रयोक्तव्यम्।

लौकिकफलप्रदर्शनेऽत्रैव रश्मिस्थानीयं शस्त्रद्वयं प्रशंसति—

(रथस्थानीयशस्त्रद्वयप्रशंसनम्)

तामनु कृतिं मनुष्यरथस्यैवान्तरौ रश्मी विहरन्त्यलोभाय ।।२।।

हिन्दी—(लौकिक फल-प्रदर्शन द्वारा यहाँ रश्मिस्थानीय दोनों शस्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ताम् अनुकृतिम्** उस (देवरथरूपी यज्ञ के शस्त्रद्वय रूप लगाम) के अनुकरण से **मनुष्यरथस्य** मनुष्य के रथ की **अन्तरौ रश्मी** भीतरी लगाम को **अलोभाय** व्यामोह-रहितता के लिए **विहरन्ति** (सारथी लोग) सभालते हैं।

सा० भा०—तां कृतिं देवरथे शस्त्रद्वयरूपरश्मिकरणमनु पश्चान्मनुष्यरथस्यैवान्तरौ सारथिना ग्रहणयोग्यौ रश्मी प्रग्रहौ विहरन्ति संपादयन्ति। तच्च मनुष्यरथस्यालोभाय संपद्यते। अभग्नो मनुष्यरथो यजमानस्य संभवतीत्यर्थः।।

वेदनं प्रशंसति—

नास्य देवरथो लुभ्यति न मनुष्यरथो य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्य** इस (जानने वाले) का **देवरथः न लुभ्यति** देवरथ (रूपी यज्ञ) भ्रमित नहीं होता है और न **मनुष्यरथः** न तो मनुष्यरथ भ्रमित होता है।

इदानीं स्तोत्रशस्त्रयोर्वैयधिकरण्यरूपं चोद्यमुद्भावयति—

(स्तोत्रशस्त्रयोस्तुल्यताया विधानम्)

तदाहुर्यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रं पावमानीषु सामगाः स्तुवत आग्नेयं होताऽऽज्यं शंसति कथमस्य पावमान्योऽनुशस्ता भवन्तीति ।।४।।

हिन्दी—(अब स्तोत्र और शस्त्र में वैयधिकरणत्वरूप प्रश्न को उद्‌भावित कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कतिपय ब्रह्मवित्) पूछते हैं कि **यथा वाव** जिस प्रकार (सामगान करने वालों का) **स्तोत्रम्** स्तोत्र होता है **एवम्** इसी प्रकार (ऋग्वेदियों का) **शस्त्रम्** शस्त्र होना चाहिए। **पावमानीषु** पवमान देवता वाली (ऋचाओं) में **सामगाः** साम का गायन करने वाले (बहिष्पवमान नामक स्तोत्र से) **स्तुवते** स्तुति करते हैं किन्तु **होता** होता (नामक ऋत्विक्) **आग्नेयम् आज्यं शंसति** अग्नि देवता वाली ऋचा का आज्य (शस्त्र) शंसन करता है, तो **कथम्** किस प्रकार **पावमान्यः** पवमान देवता वाली (ऋचाएँ) **अस्य** इस (होता) के **अनुशस्ताः भवन्ति** अनुकूल होती हैं।

सा० भा०—तत्तस्मिन्नाज्यशस्त्रे ब्रह्मवादिन आहुश्चोदयन्ति। यथैवं स्तोत्रं समागैरुक्तं तथैव बह्वृचैः शस्त्रं वक्तव्यं 'स्तुतमनुशंसतीति' विधानात्।[१] अत्र तु सामगा 'उपास्मै गायता

(१) ऐ०ब्रा० २४.४। ऋग्भिः शंसन्ति, यजुर्भिर्यजन्ति, सामभिः स्तुवन्ति'—इति निरु० १३.७। 'स्तुवतेऽथ शंसति'—इति शत०ब्रा० ८.१.३.३। 'स्तोत्रमग्रे शस्त्रात्'—इति च आश्व०श्रौ० ५.१०.१।

नरः पवमानाय' इत्यादिषु पावमानीषु पवमानदेवताकास्वृक्षु[१] बहिष्पवमानाख्येन स्तोत्रेण स्तुवते। बह्वृचस्तु होता 'प्र वो देवायाग्नये'[२] इत्यादिकमाज्यशस्त्रं शंसति। तथा सति कथमस्य होतुः पावमान्य ऋचोऽनुशस्ता भवेयुः। न हि पवमानः शस्त्रस्य देवता किं त्वग्निरिति चोद्यम्॥

तस्य परिहारमाह—

यो वा अग्निः स पवमानः ॥५॥

हिन्दी—(उस प्रश्न का परिहार कह रहे हैं—) **यः वै अग्निः** जो अग्नि है, **सः पवमानः** वही पवमान है।

सा० भा०—अग्निपवमानदेवतायोः परस्परप्रीत्याऽभेदादाग्नेयमपि सूक्तं पावमानमिति वक्तुं शक्यते। तेन पावमान्योऽनुशस्ताः संपद्यन्ते॥

अग्निपवमानयोरेकत्वे कंचिन्मन्त्रमुदाहरति—

तदप्येतदृषिणोक्तम् 'अग्निर्ऋषिः पवमानः'[३] इति ॥६॥

हिन्दी—(अग्नि और पवमान की एकता के विषय में ऋचा को उदाहरित कर रहे हैं—) **तदपि** उसी (कथन) को **एतद् ऋषिणा उक्तम्** यह ऋषि द्वारा कहा गया है–'अग्निः ऋषिः पवमानः' अर्थात् जो अग्नि है, वही पवमान वायु है।

सा० भा०—ऋषिरतीन्द्रियद्रष्टा। योऽयमग्निः स एव पवमानो वायुः। प्रीत्यतिशयेनैकत्वप्रतिभासात्। यद्वा, शोधकत्वादग्निरेव पवमान इति मन्त्रार्थः।

परिहारमुपपाद्य निगमयति—

एवमु हास्याऽऽग्नेयीभिरेव प्रतिपद्यमानस्य पावमान्योऽनुशस्ता भवन्ति ॥७॥

हिन्दी—(परिहार को उपपादित करके उसका निगमन कर रहे हैं—) **एवमु ह** इस प्रकार ही **आग्नेयीभिः** अग्नि देवता वाली ऋचाओं से **प्रतिपद्यमानस्य** आरम्भ होने वाला **अस्य** इस (होता) का (आज्यशस्त्र) **पावमान्यः** (बहिष्पवमानगत) पवमान देवता वाली (ऋचाओं) के **अनुशस्ताः भवन्ति** अनुकूल होते हैं।

सा० भा०—अग्निदेवताकाभिः सूक्तगताभिर्ऋग्भिः शस्त्रं प्रारभमाणस्य होतुर्बहिष्पवमानस्तोत्रगताः पवमानदेवताका ऋचोऽनुशस्तौ भवन्ति॥

देवताप्रयुक्तं वैयधिकरण्यं परिहृत्य च्छन्दःप्रयुक्तं वैयधिकरण्यरूपं वोद्यं पूर्ववद्

---

(१) उ०आ० १.१.१-३ १-९ (ऋ० ९.११.१)।
(२) ऋ० ३.१३.१-७। (३) ऋ० ९.६६.२०।

उद्भावयति—

तदाहुर्यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रं गायत्रीषु सामगाः स्तुवत आनुष्टुभं होताऽऽज्यं शंसति, कथमस्य गायत्र्योऽनुशस्ता भवन्तीति ।।८।।

हिन्दी—**तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **यथा वा स्तोत्रम्** (साम गान का) जैसा स्तोत्र होता है **एवं शस्त्रम्** उसी प्रकार (होता का) शस्त्र भी होना चाहिए किन्तु **सामगाः गायत्रीषु स्तुवते** सामगायक लोग गायत्री छन्द वाली (ऋचाओं) में स्तुति करते हैं और **होता आनुष्टुभं आज्यं शंसति** होता अनुष्टुप् छन्द वाले आज्य शस्त्र का शंसन करता है तो **कथम्** किस प्रकार **गायत्र्यः** (साम गायकों की) गायत्री छन्द वाली ऋचाएँ **अस्य** इस (होता) के (आज्यशस्त्र में प्रयुक्त अनुष्टुप् छन्दस्क ऋचाओं) के अनुकूल हो जाती हैं।

सा० भा०—बहिष्पवमानस्तोत्रगता 'उपास्मै गायता'[1] इत्याद्या ऋचो गायत्रीछन्दस्काः[2] 'प्र वो देवाय' इत्यादिकमाज्यशस्त्रम्[3] अनुष्टुप्छन्दस्कमिति वैयाधिकरण्यं चोद्यम्।।

तस्य परिहारमाह—

संपदेति ब्रूयात् ।।९।।

हिन्दी—(अब परिहार को कह रहे हैं—) सम्पदा (अनुष्टुप् में गायत्री का) सम्पादन होने से अनुकूल होती है—**इति ब्रूयात्** इस प्रकार कहना चाहिए।

सा० भा०—अनुष्टुप्सु गायत्रीत्वे संपादिते सति तया संपदा वैयधिकरण्यपरिहारादनुकूलशंसनं भवतीति परिहारं ब्रूयात्।।

संपादनप्रकारं दर्शयति—

सप्तैता अनुष्टुभस्तास्त्रिः प्रथमया त्रिरुत्तमयैकादश भवन्ति विराड्याज्या द्वादशी, न वा एकेनाक्षरेण च्छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्यां, ताः षोळश गायत्र्यो भवन्ति ।।१०।।

हिन्दी—(सम्पादन प्रकार को दिखला रहे हैं—) **एताः अनुष्टुभः सप्त** ये (होता द्वारा आज्यशस्त्र में प्रयुक्त) अनुष्टुप् छन्द वाली ऋचाएँ सात हैं। इनमें **प्रथमया त्रिः** प्रथम (ऋचा) की तीन बार और **उत्तमया त्रिः** अन्तिम (ऋचा) की तीन बार (आवृति करने से उनकी संख्या) **एकादश भवन्ति** ग्यारह हो जाती हैं। (इनके साथ ही) **विराड्याज्या द्वादशी** बारहवीं विराट् छन्दस्क (ऋचा) याज्या होती है। **ताः** उन बारह ऋचाओं में **षोडश गायत्र्यः भवन्ति** सोलह गायत्री छन्दस्क (ऋचाएँ) बनती है; क्योंकि **एकेन अक्षरेण छन्दांसि वियन्ति** एक (अक्षर के अन्तर) से छन्द नहीं बदलते और **न द्वाभ्याम्** न दो

(१) ऋ० ९.११.१। (२) उ०आ० १.१.१-३.१-९। (३) ऋ० ३.१३.१-७।

(अक्षरों के ही अन्तर से छन्द बदलते हैं)।

विमर्श—(१) प्रातः सवन में अनुष्टुप् छन्द वाली सात ऋचाओं का शंसन करता है उनमें से प्रथम और अन्तिम ऋचा की तीन-तीन बार आवृति होने के कारण उनकी संख्या ग्यारह हो जाती है। एक अनुष्टुप् छन्द बतीस अक्षरों वाला होता है। इस प्रकार ग्यारह ऋचाओं में कुल ३५८ अक्षर होते है। इसके साथ ही एक विराट् छन्द वाली याज्या का शंसन होता है जिनमें ३० अक्षर होते है। इस प्रकार होता द्वारा प्रयुक्त ऋचाओं में कुल ३८२ अक्षर होते हैं। गायत्री छन्दस्क ऋचाएँ २४ अक्षरों वाली होती हैं। इस होता द्वारा प्रयुक्त ऋचाओं के ३८२ अक्षरों में १६ गायत्री छन्दस्क ऋचाएँ होती हैं।

शङ्का—१६ गायत्री छन्द में अक्षरों की संख्या ३८४ होती है जबकि होता द्वारा शंसित ऋचाओं में अक्षरों की संख्या ३८२ ही है। फिर होता द्वारा शंसित ऋचाओं के अक्षरों की संख्या से १६ गायत्री छन्द किस प्रकार सम्पन्न होगे।

समाधान—होता द्वारा शंसित ऋचाओं के अक्षरों की संख्या ३८२ है और १६ गायत्री छन्दों में ३८४ अक्षर होंगे। इस प्रकार गायत्री छन्द बनाने में दो अक्षरों की कमी रह जाती है। किन्तु एक अथवा दो अक्षर की कमी अथवा अधिकता से छन्द नहीं बदलता है। अतः यहाँ दो अक्षरों की कमी होने पर भी गायत्री छन्द सम्पन्न हो जाता है।

सा० भा०—आद्यन्तयोर्ऋचोस्त्रिरावृत्तौ सत्यां स्वभावतः सप्तानामनुष्टुभामेकादशत्वं संपद्यते। 'अग्न इन्द्रश्चेति'[१] याज्या विराट्छन्दस्का। सा द्वादश्यनुष्टुबिति गणनीया। यद्यपि तस्या विराजस्त्रयस्त्रिंशदक्षरत्वादेकमक्षरमनुष्टुपत्वादतिरिच्यते तथाऽप्यल्पेन वैकल्येन च्छन्दस्त्वं नापैतीतिन्यायः पूर्वमप्युदाहृतः। एवं सति द्वादशस्वनुष्टुप्सु द्वादश पादानपनीयावशिष्टैःपादैस्त्रिपदा गायत्र्यो द्वादश संपादनीयाः। अपनीतैश्च पादैश्चतस्रो गायत्र्यः, इत्यनेन प्रकारेण षोडशसंख्याका गायत्र्य एव संपद्यन्ते॥

परिहारं निगमयति—

एवमु हास्यानुष्टुब्भिरेव प्रतिपद्यमानस्य गायत्र्योऽनुशस्ता भवन्ति ॥११॥

हिन्दी—(उपर्युक्त परिहार का निगमन कर रहे हैं—) **एवमु** इस प्रकार **अनुष्टुब्भिः प्रतिपद्यमानस्य** अनुष्टुप् छन्द से प्रारम्भ होने वाले **अस्य** इस (होता) के (आज्यशस्त्र) **गायत्र्यः** (बहिष्पवमान स्तोत्रगत) गायत्री छन्द के **अनुशस्ताः भवन्ति** अनुकूल होते हैं।

इदानीमैन्द्राग्नग्रहस्य याज्यां विधत्ते—

(ऐन्द्राग्नीग्रहस्य याज्याविधानम्)

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोण इत्याग्नेन्द्र्या यजति ॥१२॥

---

(१) ऋ० ३.२५.४। आश्व०श्रौ० ५.९.२६।

हिन्दी—(अब ऐन्द्राग्नी ग्रह की याज्या का विधान कर रहे हैं—) 'अग्न इन्द्रश्च दाशुषे दुरोणे' अर्थात् हे अग्नि इन्द्र के साथ अभिसवन करने वाले के घर में (आओ)—**इति आग्नेन्द्र्या यजति** इस अग्नि और इन्द्र सम्बन्धी (ऋचा) से यजन (याज्या) करता है।

सा० भा०—नन्वैद्राग्नग्रहे पूर्वभावित्वमिन्द्रस्य प्रतीयतेऽग्नेस्तु पश्चाद्भावित्वम्। याज्यायां तु तद्विपर्ययः कस्मात् क्रियत इत्याशङ्क्याऽऽह—

न वा एताविन्द्राग्नी सन्तौ व्यजयेतामाग्नेन्द्रौ वा एतौ सन्तौ व्यजयेतां तद्यदाग्नेन्द्र्या यजति विजित्या एव,।।१३।।

हिन्दी—(याज्या में इन्द्र और अग्नि के स्थान पर अग्नि और इन्द्र के प्रयोग के कारण को कह रहे हैं—) (देवताओं और असुरों के युद्ध में देवताओं के लिए) **एतौ** इस (इन्द्र और अग्नि) ने **इन्द्राग्नौ सन्तौ** इन्द्र और अग्नि होकर (अर्थात् इन्द्र आगे और अग्नि पीछे होकर) **न व्यजयेताम्** विजय नहीं प्राप्त कर सके। **एतौ** ये दोनों **आग्नेन्द्रौ सन्तौ** अग्नि और इन्द्र (अर्थात् अग्नि आगे और इन्द्र पीछे) होकर **व्यजयेताम्** विजय को प्राप्त किया। **तत्** तो **यद् आग्नेन्द्र्या यजति** जो अग्नि और इन्द्र (अर्थात् अग्नि को आगे और इन्द्र को पीछे) करके याज्या करता है, वह **विजित्यै एव** वह विजय के लिए होता है।

सा० भा०—असुरैः सह देवानां विजययुद्धे सति विजयार्थमिन्द्रस्य पुरोगमनमग्नेः पश्चाद्गमनमित्येवं न संपन्नम्। किं त्वग्निः पुरोगत इन्द्रस्तु पश्चाद्गतः। अतो विजयकालीन-क्रमेणैवाग्निपूर्वकत्वप्रतिपादिकया यजने सति यजमानस्य विजयाय संपद्यत एव।।

याज्यागतान्यक्षराणि प्रशंसति—

सा विराट् त्रयस्त्रिंशदक्षरा भवति, त्रयस्त्रिंद् वै देवाः, अष्टौ वसवः, एकादश रुद्रा, द्वादशाऽऽदित्याः, प्रजापतिश्च, वषट्कारश्च, तत्प्रथम उक्थमुखे देवता अक्षरभाजः करोत्यक्षरमक्षरममेव तद्देवता अनुप्र-पिबन्ति देवपात्रेणैव तद्देवतास्तृप्यन्ति ।।१४।।

हिन्दी—(याज्यागत अक्षरों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सा विराट् त्रयत्रिंशद् अक्षरा भवति** वह (याज्या वाली ऋचा 'अग्न इन्द्रश्च' इत्यादि) विराट् छन्दस्क तैंतीस अक्षरों वाली हैं और **अष्टौ वसवः** आठ वसुगण, **एकादश रुद्राः** ग्यारह रुद्रगण, **द्वादश आदित्याः** बारह आदित्यगण **प्रजापतिः वषट्कारः** प्रजापति तथा वषट्कार–ये **त्रयस्त्रिंद् देवाः** देवता भी तैंतीस है। **तत्** इस (याज्या के शंसन) से **प्रथमे उक्थमुखे** मुख्य आज्यशस्त्र के प्रारम्भ में (होता) **देवताः अक्षरभाजः करोति** (तैंतीस) देवताओं को (याज्या के तैंतीस) अक्षरों से सम्मिलित कर देता है। **तद्देवताः** वे (तैंतीस) देवता **अक्षरम् अक्षरमेव अनु** (याज्या के) प्रत्येक अक्षर का अनुसरण करते हुए **प्रपिबन्ति** (सोम का)

पान करते हैं। इस प्रकार **देवपात्रेण एव** (अक्षररूपी) देवपात्र द्वारा ही **तद्देवताः** वे देवता **तृप्यन्ति** तृप्त होते हैं।

सा० भा०—अक्षराणां देवतानां न संख्यासाम्यम्। उक्थमुखे शस्त्राणां मध्ये मुख्ये प्रथम आज्यशस्त्रे देवताः। प्रत्येकमक्षरभाजः करोति तास्तदक्षरमेवानुसृत्य ता देवताः सोमं प्रकर्षेण पिबन्ति। तथा सति स्वयोग्येनाक्षररूपेण देवपात्रेणैव देवतास्तृप्ता भवन्तीति॥

शस्त्रयाज्ययोर्देवताप्रयुक्तं वैयाधिकरण्यचोद्यमुद्भावयति।

तदाहुर्यथा वाव शस्त्रमेवं याज्याऽऽग्नेयं होताऽऽज्यं शंसत्यथ कस्मादाग्नेन्द्र्या यजतीति ॥१५॥

हिन्दी—**तदाहुः** इस विषय में (कतिपय ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **यथा वाव शस्त्रम्** जैसा शस्त्र होता है **एवं याज्या** वैसी ही याज्या होनी चाहिए, किन्तु **होता आग्नेयं आज्यं शंसति** होता अग्नि देवता (वाली ऋचाओं) वाले आज्य (शस्त्र) का शंसन करता है **अथ** तो **कस्मात्** किस कारण **आग्नेन्द्र्या यजति** अग्नि और इन्द्र सम्बन्धी (ऋचा वाली) याज्या करता है।

सा० भा०—शस्त्रस्याग्निरेक एव देवता याज्यायास्त्वग्निरिन्द्रश्चेति द्वयोर्मिलितयोर्देवतात्वमिति वैयधिकरण्यम्॥

अस्य चोद्यस्य परिहारमाह—

या वा आग्नेन्द्र्यैन्द्राग्नी वै सा सेन्द्राग्नमेतदुक्थं ग्रहेण च तूष्णीशंसेन च ॥१६॥

हिन्दी—(अब उसका परिहार कह रहे हैं—) **या वा आग्नेन्द्र्या** जो अग्नि और इन्द्र से सम्बन्धित (याज्या) है **सा ऐन्द्राग्नी** वह इन्द्र और अग्नि देवता वाली भी है; क्योंकि **सा एतद् उक्थम्** वह यह स्तुति (शस्त्र) तो **ग्रहेण तूष्णीशंसेन** ग्रह और तूष्णीशंस (मौनस्तुति) द्वारा **सेन्द्राग्नम्** इन्द्र और अग्नि के लिए साथ (सम्पादित होती है)।

सा० भा०—येयमाग्नेन्द्री याज्या सेयमैन्द्राग्न्यपि भवति। द्वयोः पौर्वापर्यमविसंवादेऽपि तस्या ऋचो द्विदेवत्यत्वसद्भावाद् देवतयोः क्रमविपर्यासमात्रेऽङ्गीकृते सति याज्याया ऐन्द्राग्नत्वमुपचरितं यथा संपद्यते तथैवैतदुक्थमाज्यशस्त्रमपि ग्रहद्वारा तूष्णीशंसद्वारा चेन्द्राग्निदेवतासहितं संपद्यते। तथा सत्यैन्द्राग्नत्वस्योपचरितस्य याज्याशस्त्रयोः सद्भावान्नास्ति वैयधिकरण्यम्॥

आज्यशस्त्रस्य ग्रहद्वारकं तूष्णीशंसद्वारकं चैन्द्राग्त्वं दर्शयति—

'इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता'[१]

---

(१) ऋ० ३.१२.१।

इत्यैन्द्राग्नमध्वर्युर्ग्रहं गृह्णाति, 'भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योति-र्भुवो ज्योतिरिन्द्रः सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः सूर्यः' इति होता तूष्णीशंसं शंसति तद्यथैव शस्त्रमेवं याज्या ।।१७।।

हिन्दी—(इस आज्यशस्त्र का ग्रह द्वारा और तूष्णीशंस द्वारा ऐन्द्राग्नता को दिखला रहे हैं—) **'इन्द्राग्नी** हे इन्द्र और अग्नि! **नभः** आकाश (के समान महान्) **वरेण्यम्** वरण करने योग्य और **गीर्भिः सुतम्** स्तुतियों द्वारा सवन किये गये (सोम) के प्रति आगतम् आओ तथा **धियेषिता** (आकर) बुद्धि द्वारा प्रेरित तुम दोनों **अस्य पातम्** इस (सोम) का (सारतत्व) पान करो—**इति ऐन्द्राग्नम्** इस इन्द्र और अग्नि देवता वाले (मन्त्र) से **अध्वर्युः ग्रहं गृह्णाति** अध्वर्यु ग्रह को लेता है तथा 'भूरग्नि सूर्यः' **इति होता तूष्णीशंसं शंसति** इस तूष्णीशंस (मन्त्र) का होता शंसन करता है। **तत्** इससे **यथा एव शस्त्रम्** जैसा शस्त्र है **एवं याज्या** वैसी ही याज्या भी है।

सा० भा०—हे इन्द्राग्नी, सुतमभिषुतं सोमं प्रत्यागतमागच्छतम्। कीदृशं सुतं, गीर्भिः स्तुतिभिर्युक्तमिति शेषः। नभ आकाशस्वरूपमाकाशवन्महदित्यर्थः। वरेण्यं वरणीयम्। आगत्य च युवां धियेषिता स्वबुद्ध्या प्रेषितौ सन्तावस्य सोमस्य सारं पातं पिबतम्। इत्यनेनैन्द्राग्नदेवताकमन्त्रेणाध्वर्युरैन्द्राग्नं ग्रहं गृह्णाति। तूष्णीशंसे भूरग्निरित्यग्निराम्नात इन्द्रो ज्योतिरितीन्द्रोऽप्याम्नातः तत अभयसद्भावात् तूष्णीशंसोऽप्यैन्द्राग्नः। ईदृशस्य ग्रहस्य तूष्णी-शंसस्य संबन्धादाज्यशस्त्रमप्यैन्द्राग्नं भवति। तस्माच्छस्त्रयाज्ययोरैन्द्राग्नत्वसंपादनान्नास्ति वैयधिकरण्यम्।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) पञ्चमः खण्डः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—पूर्वत्र पराङ्ध्वर्यावित्याद्याश्वलायनसूत्रोदाहरणेन होतुर्यो जपो दर्शितः[१], तमिमं जपं विधत्ते—

(होतृजपविधानम्)

होतृजपं जपति रेतस्तत्सिञ्चति ।।१।।

(१) 'सुमदित्यादिमन्त्रस्य' नाम 'होतृजपस्त्विति'—इति षड्गुरु०।

हिन्दी—(अब होता द्वारा किये जाने वाले जप का विधान कर रहे हैं—) **होतृजपं जपति** (होता) होतृजप (नामक जप को) जपता है। **तत्** इस (जप) से **रेतः सिञ्चति** (वह प्रजोत्पादन के लिए प्रथमतः) वीर्य का सेचन करता है।

सा० भा०—होतुः कर्तव्यो यो जपस्तमनुतिष्ठेत्। तेन प्रजोत्पादनार्थमादौ रेतः सिक्तं भवति ॥

तत्रोच्चारणप्रकारविशेषं विधत्ते—

(होतृजपोच्चारणप्रकारविधानम्)

उपांशु जपत्युपांश्विव वै रेतसः सिक्तिः ॥२॥

हिन्दी—(उस होतृजप के उच्चारण में विशेष को कह रहे हैं—) **उपांशुः जपति** (होता होतृजप नामक जप को) उपांशु (मौन होकर) जपता है (क्योंकि लोक में) **उपांशु इव रेतसः सिक्तिः** मौन होकर ही वीर्य का सेचन होता है।

सा० भा०—ओष्ठस्पन्दनमेव परैर्दृश्यते न तु शब्दः श्रूयते तादृशमुपांशुत्वम्। लौकिके रेतःसेचनेऽपि ध्वनेरश्रवणाद्युक्तं तथाविधत्वम्॥

तस्य जपस्य शोंसावोमित्येतस्मादाहावात् पूर्वभावित्वं विधत्ते—

(जपस्याहावात्पूर्वभावित्वम्)

पुराऽऽहावाज्जपति यद्वै किञ्चोर्ध्वमाहावाच्छस्त्रस्यैव तत् ॥३॥

हिन्दी—(उस जप का 'शोंसावोम्' इस आहाव से पूर्व होने का विधान कर रहे हैं—) **आवाहात् पुरा जपति** (होतृजप को) आहाव से पहले जपता है। **यद्वै किञ्च** जो कुछ **आहावाद् ऊर्ध्वम्** आहाव के बाद (पाठ करता है) **तत् शस्त्रस्य एव** वह शस्त्र से ही सम्बन्धित होता है।

सा० भा०—अध्वर्युराह्वयते येन 'शोंसावोम्' इति मन्त्रेण तस्मात् पूर्वभावी होतृजपः। तथा च आश्वलायनेनोदाहृतम्—'जपित्वाऽनभिहिंकृत्य शोंसावोमित्युच्चैराहूय'[१] इति। आहावाद् ऊर्ध्वं यत्किञ्चित् पठ्यते तत्सर्वं शस्त्रस्यैव संबन्धि भवेत्। आहावमन्त्रेण शस्त्रानुज्ञानस्य पृष्टत्वात्। अतो होतृजपस्य शस्त्रान्तर्भावं निवारयितुं पूर्वकालीनत्वम्॥

अथाऽऽहावे प्रकारविशेषं विधत्ते—

(आहावे प्रकारविशेषविधानम्)

पराङ्चं चतुष्पद्यासीनमभ्याह्वयते, तस्मात् पराञ्चो भूत्वा चतुष्पादो रेतः सिञ्चन्ति ॥४॥

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.९.१।

हिन्दी—(अब आहाव के विषय में प्रकार-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **पराङ्ङ चतुष्पद्यासीनम्** पराङ्मुख हुए और चार पैरों वाले पशु (के समान दोनों हाथों को पृथिवी पर रख कर) बैठे हुए (अध्वर्यु) से **अभ्याह्वयते** (होता आहाव) कहता है। **तस्मात्** इसी कारण लोक में **पराञ्चः भूत्वा चतुष्पादः** पराङ्मुख होकर चौपाए **ऐतः सिञ्चति** वीर्य का सेचन करते हैं।

सा० भा०—अस्मिन् कालेऽध्वर्युः पराङ् भवति होतुर्विमुखो भवति। तथा चतुष्पदी गौरिव हस्तौ भूमाववस्थाप्याऽऽसीनो भवति। तादृशमध्वर्यु संबोध्याभिमुखो यथा भवति तथा होता शोंसावोमिति मन्त्रेणाऽऽह्वयते। यस्मादाह्वानकाल ईदृशोऽध्वर्युस्तस्माल्लोकेऽपि चतुष्पादो गवादयः पराञ्चः संभोगावस्थायां परस्पराभिमुखरहिता भूत्वा रेतः सिञ्चन्ति॥

आहावादूर्ध्वमध्वर्योश्चतुष्पात्त्वं परित्यज्य सम्यगुत्थानं विधत्ते—

(आहावादूर्ध्वमध्वर्योः सम्यगुत्थानविधानम्)

सम्यङ्द्विपाद् भवति, तस्मात् सम्यञ्चो भूत्वा द्विपादो रेतः सिञ्चन्ति ।।५।।

हिन्दी—(आहाव के बाद अध्वर्यु के चतुष्पादता को छोड़ कर सम्यक् प्रकार से उठने का विधान कर रहे हैं—) **सम्यग् द्विपाद् भवति** (आहाव के पश्चात् अध्वर्यु) दो पैरों पर सम्यक् खड़ा होता है, **तस्मात्** इसी कारण (लोक में) **सम्यञ्चः भूत्वा** सम्मुख होकर **द्विपादः** दो पैर वाला (मनुष्य) **रेतः सिञ्चति** वीर्य सेचन करता है।

सा० भा०—ऊर्ध्वत्वेनोत्थानं सम्यक्त्वम्। तथाविधा भूत्वा रेतः सिञ्चन्ति। जपितव्यो यो मन्त्रस्याऽऽदौ 'सुमत्पद्वग्दे' इति पञ्चाक्षराणि पठितव्यानि। तानि च पूर्वमेवाक्षरपङ्क्तिप्रशंसायां विहितानि॥

तेभ्य ऊर्ध्वं यो जपितव्यो मन्त्रस्तस्य प्रथमभागमनूद्य व्याचष्टे—

(होतृजपमन्त्रविधानम्)

पिता मातरिश्वेत्याह, प्राणो वै पिता, प्राणो मातरिश्वा, प्राणो रेतो रेतस्तत्सिञ्चति ।।६।।

हिन्दी—(उनके बाद जपनीय मन्त्र के प्रथम भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **पिता मातरिश्वा** अर्थात् मातरिश्वा (वायु) पिता हैं'—**इति आह** (होता) इस (मन्त्र) का पाठ करता है। **प्राणः वै पिता** प्राण ही पिता है **प्राणः मातरिश्वा** प्राण ही मातरिश्वा है और **प्राणः रेतः** प्राण ही (प्रजनन का हेतुभूत होने से) वीर्य है। **तत्** इस (पाठ) से **रेतः सिञ्चति** (होता यजमान के पुनर्जन्म के लिए) मानो वीर्य सिञ्चन करता है।

सा० भा०—तस्मिन् मन्त्रे यजमानस्य नूतनं जन्म संपाद्यते। अतोऽत्र मातरिश्वा वायुः पितृत्वेन वर्ण्यते। तमिमं पितेत्यादिकं मन्त्रं होता ब्रूयात्। प्राण एव लोके पिता, मृतात्

पितृदेहाज्जन्मासंभवात्। वायुश्च प्राणः प्राणस्य वायुकार्यत्वात्। रेतश्च प्राणः, प्राणयुक्तस्यैव रेतसो जननहेतुत्वात्। अत एव आरण्यके समाम्नास्यते[1]—'यद्वा ऋते प्राणाद् रेतः सिच्येत पूयेन्न संभवेत्'[2] इति। तत्तेन प्रथमभागपाठेन यजमानपुनर्जन्मार्थं रेतः सिक्तं भवति॥

द्वितीयभागमनूद्य व्याचष्टे—

अच्छिद्रा पदाऽधा इति रेतो वा अच्छिद्रमतो ह्यच्छिद्रः संभवति ॥७॥

हिन्दी—(मन्त्र के द्वितीय भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'अच्छिद्रा पदाऽधा'** अर्थात् (उस वायुरूप पिता ने) छिद्ररहित (रेत) को (गर्भाशय में) प्रतिष्ठित किया—इति यह (मन्त्र का द्वितीय भाग है)। यहाँ **रेतः वै अच्छिद्रम्** वीर्य ही छिद्ररहित है **अतः हि** इसलिए **अच्छिद्रः सम्भवति** (पुरुष) छिद्ररहित उत्पन्न होता है।

सा० भा०—स वायुरूपः पिता छिद्ररहितं पदं प्रापणीयं रेतोऽधा गर्भाशये स्थापितवान्। अत्रोक्ताच्छिद्रं वस्तु रेत एव। अतो हि रेतसः पुमानच्छिद्र उत्पद्यते॥

तृतीयभागमनूद्य व्याचष्टे—

अच्छिद्रोक्था कवयः शंसन्निति ये वा अनूचानास्ते कवयस्त इदमच्छिद्रं रेतः प्रजनयन्नित्येव तदाह ॥८॥

हिन्दी—(मन्त्र के तृतीय भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'अच्छिद्रोक्था कवयः शंसन्** अर्थात् वेदज्ञाता छिद्ररहित शस्त्र का शंसन करते हैं'—इति यह (मन्त्र का तृतीय भाग है। यहाँ **ये वै अनूचानाः** जो षडङ्गों के सहित वेद के विद्वान् हैं **ते कवयः** वे क्रान्तद्रष्टा हैं। **ते इदम् अच्छिद्रं रेतः प्रजनयन्** वे इस छिद्ररहित वीर्य को उत्पन्न करते हैं—**इति एव तदाह** इसी (तथ्य) को ही यहाँ कहा गया है।

सा० भा०—कवयः पुरुषा अच्छिद्रोक्था शंसंश्छिद्ररहितमुक्थं शस्त्रं शंसन्ति। अत्र कविशब्देनानूचानाः षडङ्गसहितवेदाध्यायिन उच्यन्ते। ते चेदमच्छिद्रं रेतः प्रजनयन्नुत्पादयन्तीत्यनेनैव प्रकारेण तदच्छिद्रोक्थेति वाक्यमाह ब्रूते॥

चतुर्थभागमनूद्य व्याचष्टे—

सोमो विश्वविन्नीथा निनेषद् बृहस्पतिरुक्थामदानि शंसिषदिति, ब्रह्म वै बृहस्पतिः, क्षत्रं सोम, स्तुतशस्त्राणि नीथानि चोक्थामदानि च दैवेन चैवैतद्ब्रह्मणा प्रसूतो दैवेन च क्षत्त्रेणोक्थानि शंसति ॥९॥

हिन्दी—(मन्त्र के चतुर्थ भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'विश्ववित् सोमः** सभी को जानने वाले सोम ने **नीथा निनेषत्** नेतव्य (सम्पादनीय स्तोत्र

---

(१) एष मन्त्रोऽन्यशाखीय इति आश्व०श्रौ० ५.९.१। (२) ऐ०आ० ३.२.२.५।

और शस्त्रों) की कामना किया और **बृहस्पतिः** बृहस्पति ने **उक्थमदानि** सन्तुष्ट करने वाले शस्त्रों को **शंसिषत्** शंसन करने की कामना किया—इति यह (मन्त्र का चतुर्थ भाग है)। यहाँ **ब्रह्म वै बृहस्पतिः** बृहस्पति ब्राह्मण है; **क्षत्रं सोमः** सोम क्षत्रिय है। **स्तुतशस्त्राणि नीथानि च उक्थामदानि च** नीथ और उक्थ क्रमशः स्तोत्र और शस्त्र हैं। **एतत्** इस (भाग के पाठ) से **दैवेन ब्रह्मणा क्षत्रेण** देवता-सम्बन्धी ब्राह्मण से और क्षत्रिय से **प्रसूतः** प्रेरित किया गया (होता) **उक्थानि शंसति** शस्त्रों का शंसन करता है।

सा० भा०—विश्ववित् सर्वज्ञः सोमो नीथानि नेतव्यान्यनुष्ठेयानि स्तोत्रशस्त्राणि निनेषन्नेतुमिच्छां कृतवान् प्रयुक्तवानित्यर्थः। तथा बृहस्पतिरुक्थामदानि शस्त्ररूपाणि संतोष-कारणानि शंसिषच्छंसितुमिच्छति शस्तवानित्यर्थः। अस्मिन् भागे बृहस्पतिसोमशब्दाभ्यां ब्राह्मणक्षत्रियजातिद्वयं दैवं विवक्षितम्। नीथशब्देनोक्थामदशब्देन च स्तोत्रशस्त्राणि विव-क्षितानि। अत एवैतद्भागपाठे सति देवसंबन्धिना ब्राह्मणेन क्षत्रियेण च प्रेरितः शस्त्राणि शंसति॥

सोमहबृहस्पत्योः सर्वकर्मप्रेरकत्वप्रसिद्धिं दर्शयति—

एतौ ह वा अस्य सर्वस्य प्रसवस्येशाते यदिदं किञ्च ।।१०।।

हिन्दी—(सोम और बृहस्पति की सभी कर्मों की प्रेरकता की प्रसिद्धि को दिखला रहे हैं—) **एतौ** ये दोनों (सोम और बृहस्पति) **यदिदं किञ्च** (इस यज्ञ में सम्पाद्यमान) जो कुछ भी है **अस्य सर्वस्य प्रसवस्य** इन सभी प्रेरित करने वालों के **ईशाते** स्वामी हैं।

सा० भा०—यज्ञेऽनुष्ठेयं यत्किञ्चिदस्त्यस्य सर्वस्य प्रसवो यत्प्रेरणं तस्य सोमबृहस्पती एव स्वामिनौ॥

व्यतिरेकमुखेनैतदेव द्रढयति—

तद्यदेताभ्यामप्रसूतः करोत्यकृतं तदकृतमकरिति वै निन्दन्ति ।।११।।

हिन्दी—(व्यतिरेक द्वारा इस उपर्युक्त कथन को दृढ़ कर रहे हैं—) **तद् यत् एताभ्याम् अप्रसूतः करोति** तो जो इन दोनों (सोम और बृहस्पति) की प्रेरणा के बिना (होता) करता है **तद् अकृतम् अकः** वह न करने के समान है—**इति वै निन्दन्ति** इस प्रकार (इसकी) निन्दा करते हैं।

सा० भा०—तत्तथा द्वयोः प्रेरणस्वामित्वे सति यदङ्गमेताभ्यामप्रेरितः करोति तदङ्गम-कृतमेव भवति। लोकेऽपि स्वाम्यनुज्ञामन्तरेण यत्क्रियते तत्तत्राकृतमकरकर्तव्यं कृतवानिति जना निन्दन्ति ॥

वेदनं प्रशंसति—

कृतमस्य कृतं भवति नास्याकृतं कृतं भवति य एवं वेद ।।१२।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्य कृतं कृतं भवति** इस (जानने वाले) का किया गया (कार्य) किये गये के समान होता है। **अस्य कृतम् अकृतं न भवति** इसका किया गया (कार्य) न किये गये के समान नहीं होता।

सा॰भा॰—अस्य वेदितुः कृतं कर्तव्यमेव कृतं भवति, न त्वकृतमकर्तव्यं कृतं भवति॥

पञ्चमभागमनूद्य व्याचष्टे—

वागायुर्विश्वायुर्विश्वमायुरित्याह प्राणो वा आयुः प्राणो रेतो वाग्योनिर्योनिं तदुपसंधाय रेतः सिञ्चति ॥१३॥

हिन्दी—(मन्त्र के पञ्चम भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'वागायुर्विश्वायुर्विश्वमायुः अर्थात् वागिन्द्रिय और आयु, सम्पूर्ण आयु और समस्त (सौ वर्ष की) आयु को (यजन करने वाला प्राप्त करता है)—**इत्याह** यह शंसन करता है। **प्राणः वै आयुः** (यहाँ) प्राण आयु है और **प्राणः रेतः** प्राण वीर्य है। **वाग् योनिः** वाक् योनि है। तत् इस (शंसन) से **योनिम् उपसन्धाय** गर्भस्थान को अभिलक्षित करके **रेतः सिञ्चति** वीर्य का सेचन करता है।

सा॰भा॰—येयं वागिन्द्रियरूपा यदप्यायुर्जीवनं तदुभयमस्त्विति शेषः। न चात्राऽऽयुरल्पं विवक्षितं किंतु विश्वायुर्विश्वं समस्तं शतसंवत्सरपरिमितमायुर्विवक्षितम्। तस्माद्विश्वमायुर्यजमानः प्राप्नोत्वित्यध्याहारः। तमिमं भागं पठेत्। अत्र आयुःशब्देन प्राण एव विवक्ष्यते। 'यावद्ध्यस्मिञ्शरीरे प्राणो वसति तावदायुः' इति श्रुतेः[१]। रेतसः प्राणत्वं पूर्वमेवोदाहृतम्। वाक्शब्देन योनिरुपलक्ष्यते।[२] तथा सति तद्भागपाठेन योनिमुपसंधाय[३] गर्भस्थानमभिलक्ष्य रेतः सिञ्चति॥

षष्ठं भागमनूद्य व्याचष्टे—

क इदं शंसिष्यति स इदं शंसिष्यतीत्याह प्रजापतिर्वै कः[४] प्रजापतिः प्रजनयिष्यतीत्येव तदाह ॥१४॥

हिन्दी—(षष्ठभाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'क इदं शंसिष्यति

---

(१) कौषी॰उ॰ ३.२।
(२) 'प्राणो रेतः प्राणनहेतुत्वात्। योनिरिव वाक् सर्वार्थानां विकल्पमूलत्वात्'—इति भट्टभास्करः।
(३) 'उपसन्धानमुपसंश्लेषः' इति भट्टभास्करः। 'शस्त्रस्य योनिभूतां वाचमुपसन्धाय मन्त्रेण रेतोभूतं यजमानं सिञ्चति'—इति गोविन्दस्वामी॥
(४) 'को ह वै नाम प्रजापतिः'—इति तै॰ब्रा॰ १.२१०।

स इदं शंसिष्यति' अर्थात् प्रजापति इसके शंसन करने के लिए कामना करता है अतः वह ही इसके शंसन की कामना करता है—**इत्याह** इस (षष्ठभाग का) शंसन करता है। **प्रजापतिः वै कः** (यहाँ) कः प्रजापति का वाचक है। **प्रजापतिः प्रजनयिष्यति** प्रजापति (यजमान को) उत्पन्न करेगा'—**इति एव तदाह** यही यहाँ कहा गया है।

सा० भा०—कः प्रजापतिरिदं शस्त्रं शंसिष्यति शंसितुमिच्छति। अतः स एवेदं शंसिष्यति, तमिममन्तिमभागं ब्रूयात्। अत्र कशब्देन प्रजापतिरुक्तत्वात् स एव यजमानमुत्पादयिष्यतीत्यनेनैव प्रकारेण तन्मन्त्रवाक्यं ब्रूते॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—आहावात् पूर्वकालीनं जपमुक्त्वोत्तरकालीनं तूष्णींशंसं विधत्ते—

(आहावादुत्तरकालीनं तूष्णींशंसविधानम्)

आहूय तूष्णींशंसं शंसति, रेतस्तत्सिक्तं विकरोति सिक्तिर्वा अग्रेऽथ विकृतिः ॥१॥

हिन्दी—(आहाव के पूर्व में किये जाने वाले जप को कहकर उसके उत्तरकालीन तूष्णींशंस का विधान कर रहे हैं–) **आहूय** 'शोंसावोम्' मन्त्र से अध्वर्यु को आहूत करके **तूष्णीशंसं शंसति** तूष्णीशंस का शंसन करता है। **तत्** इस (शंसन) से **सिक्तं रेतः** सिञ्चित वीर्य को **विकरोति** (पिण्ड रूप आकार में) विकार उत्पन्न करता है। (लोक में) **अग्रे सिक्तिः वै** पहले (वीर्य का) सेचन होता है **अथ विकृतिः** इसके बाद विकार (उत्पन्न होता है)।

सा० भा०—शोंसावोमिति मन्त्रेणाध्वर्युमुपहूय पश्चात्तूष्णीशंसं पठेत्। तथा सति होतृजपेन सिक्त रेतोऽऽनेन विकरोति पिण्डाद्याकारविकारं रेतसि जनयति। सेकः पूर्वभावी विकारः पश्चाद्भावीति युक्तोऽयं क्रमः॥

शंसनकाले ध्वनिराहित्यं विधत्ते—

(तूष्णीशंसशंसनविधानम्)

उपांशु तूष्णीशंसं शंसत्युपांश्विव वै रेतसः सिक्तिः ॥२॥

हिन्दी—(शंसन के समय ध्वनि होने का निषेध कर रहे हैं—) **उपांशु तूष्णीशंसं शंसति** तूष्णीशंस का उपांशु (मौन) ही शंसन करता है; क्योंकि (लोक में) **रेतसः सिक्तिः** वीर्य का सेचन **उपांशु इव** अश्रवणीय के समान होता है।

सा० भा०—परैर्ध्वनेरश्रवणादपठितसदृशं भवतीत्यस्य तूष्णीशंस इति नामधेयम्। तस्मात् तदनुसारेणोपांशूच्चारयेत्। रेतःसेकोऽप्युपांशुसदृशः, रहसि क्रियमाणत्वात्।।

उपांशुत्वेन होतृजपसाम्यप्रसक्तौ वैषम्यं विधत्ते—

तिर इव तूष्णींशंसं शंसति, तिर इव वै रेतांसि विक्रियन्ते ।।३।।

हिन्दी—(उपांशु रूप में होतृ जप से समानता की प्राप्ति होने के कारण दोनों में भेद दिखला रहे हैं—) **तिरः इव तूष्णीशंसं शंसति** छिपे हुए के समान तूष्णीशंस का शंसन करता हैं; क्योंकि **तिरः इव रेतांसि विक्रियन्ते** छिपे हुए के समान (गुप्त रूप से) ही वीर्य में विकार करते है।

सा० भा०—यथा कुड्यगृहादिव्यवहितमन्यैरधीयमानं वाक्यमीषत् प्रतीयते, न तु स्पष्टम्, तद्वत् तूष्णींशंसोऽप्यस्पष्टो यथा भवति तथा शंसेत्। तदिदं तिर इवेत्युच्यते। होतृजपादीषदुच्चैरित्यर्थः।।

तूष्णींशंसस्येयत्तां विधत्ते—

(तूष्णीशंस्येयत्ताविधानम्)

षट्पदं तूष्णीशंसं शंसति, षड्विधो वै पुरुषः षळङ्ग आत्मानमेव तत्षड्विधं षळङ्गं विकरोति ।।४।।

हिन्दी—(तूष्णीशंस की इयत्ता का विधान कर रहे हैं—) **षट्पदं तूष्णीशंसं शंसति** छः पदों के अवसान पर तूष्णीशंस का शंसन करता है क्योंकि **षड्विधः पुरुषः** पुरुष छः प्रकार (के अङ्गों) वाला होता है। **षडङ्गः आत्मानम्** इस प्रकार अपने को छः अङ्गो वाला करता है। **तत्** उस (शंसन) से **षड्विधं षडङ्गं विकरोति** (यजमान के शरीर को) छः प्रकार वाले छः अङ्गों से युक्त करके प्रवृद्ध करता है।

सा० भा०—षट्पदं षड्भागम्। भूरग्निर्ज्योतिरित्येको भागो ज्योतिरग्निरिति द्वितीयो भागः। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम्। तथाविधशंसने पुरुषसाम्यं भवति। पुरुषस्य षड्विधत्वमेव षळङ्ग इत्यनेन स्पष्टीक्रियते। पुरुषावयवषट्कं शाखान्तरे दर्शितम् —'षोढा विहितो वै पुरुष आत्मा च शिरश्चत्वार्यङ्गानि'[१] इति। द्वौ हस्तौ द्वौ पादावित्यङ्गचतुष्टयम्। आत्मशब्दो मध्य-देहवाची। भागत्रयोपेते तूष्णीशंसे तत्तद्भागमध्येष्ववसाने षड्भागत्वं भवति। आश्वलायन आह—'भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्नौ इन्द्रो ज्योतिर्भुवो ज्योतिरिन्द्रों सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः स्वः

(१) तै०सं० ५.२.९.१।

सूर्योमिति त्रिपदस्तूष्णीशंसो यद्यु वै षट्पदः पूर्वैर्ज्योतिःशब्दैरग्नेऽवस्येत्'[१] इति। अतः षट्पदेन तूष्णीशंसेन यजमानस्य शरीरमेव षडङ्गोपेतं कृत्वा विकरोति।।

एतदनन्तरं निविदो विधत्ते—

(तदनन्तरं पुरोरुक्शंसनविधानम्)

तूष्णीशंसं शस्त्वा पुरोरुचं शंसति, रेतस्तद्विकृतं प्रजनयति विकृतिर्वा अग्रेऽथ जातिः ।।५।।

हिन्दी—(इसके बाद निवित् का विधान कर रहे हैं—) **तूष्णीशंसं शस्त्वा** तूष्णीशंस का शंसन करके (होता) **पुरोरुचं शंसति** पुरोरुक् 'प्रवो देवाय' इस सूक्त के सम्मुख दीप्तियुक्त निवित् का शंसन करता है। **तत्** इस (शंसन) से **रेतः द्विकृतं प्रजनयति** (षडङ्ग विकार वाले) वीर्य को दूसरी बार (शरीर के रूप में) उत्पन्न करता है। **विकृतिः वै अग्रे** (वीर्य का) विकार तो पहले ही होता है **अथ जातिः** इसके बाद उत्पत्ति होती है।

सा० भा०—'प्र वो देवाय' इत्यादिसूक्तात् पुरतो दीप्यते रोचत इति पुरोरुक्शब्देन निविदुच्यते। तां तूष्णीशंसादूर्ध्वं पठेत्। तेनोर्ध्वपाठेन षडङ्गतया विकृतं रेतः शरीररूपेणोत्पादितं भवति। विकारः पूर्वभावी, जन्म पश्चाद्भावि। तस्मात् तदानन्तर्यं निविदो युक्तम्।।

होतृजपगतं यदुपांशुत्वं तूष्णींशंसगतं च यदीषदुच्चध्वनित्वं तस्मादुभयस्माद् वैलक्षण्यं निविदो विधत्ते—

(पुरोरुच उच्चैः शंसनम्)

उच्चैः पुरोरुचं शंसत्युच्चैरेवैनं तत्प्रजनयति ।।६।।

हिन्दी—(निवित् के उच्चारण में होतृजप और तूष्णींशंस की अपेक्षा कुछ विलक्षणता का विधान कर रहे हैं—) **उच्चैः पुरोरुचं शंसति** ऊँची ध्वनि से पुरोरुक् (निवित्) का शंसन करता है। **तत्** इस (ऊँची ध्वनि से शंसन करने) से **उच्चैः एव एनं प्रजनयति** इस (यजमान) को उच्च स्वर से उत्पन्न करता है।

सा० भा०—उत्पादनकाले प्रसववेदनया तन्मातोच्चैर्ध्वनिं करोति। तदिदमुच्चैः प्रजनयतीत्युच्यते।।

निविदां न्यूनाधिकभागशङ्काव्युदासाय संख्यां विधत्ते—

(निविदं संख्याविधानम्)

द्वादशपदां पुरोरुचं शंसति, द्वादश वै मासाः संवत्सरः, संवत्सरः

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.९.११।

प्रजापतिः, सोऽस्य सर्वस्य प्रजनयिता, स योऽस्य सर्वस्य प्रजनयिता, स एवैनं तत्प्रजया पशुभिः प्रजनयति प्रजात्यै ।।७।।

हिन्दी—(निविदों की कम और अधिक पदों की संख्या के परिहार के लिए उसकी संख्या का विधान कर रहे हैं—) **द्वादश पदां पुरोरुचं शंसति** बारह पदों वाले पुरोरुक् निवित् का शंसन करता है; क्योंकि **द्वादश मासा वै संवत्सरः** संवत्सर बारह महीनों वाला ही होता है और **संवत्सरः प्रजापतिः** संवत्सर प्रजापतिरूप है। **सः अस्य सर्वस्य प्रजनयिता** वह (संवत्सर रूप प्रजापति) इस सम्पूर्ण (जगत्) को उत्पन्न करने वाला है। **सः यः अस्य सर्वस्य प्रजनयिता** वह जो इस सम्पूर्ण (जगत्) को उत्पन्न करने वाला है, **तत्** इस (शंसन) से **सः एव** वही (प्रजापति) **प्रजात्यै** प्रजनन के लिए **एनम्** इस (यजमान) को **प्रजया पशुभिः प्रजनयति** प्रजा और पशुओं के साथ उत्पन्न करता है।

सा॰भा॰—निविदो द्वादश भागाः पूर्वमेव तद्व्याख्याने विवेचिताः। अतो माससंख्यासाम्यात् माससंवत्सरद्वारा सर्वस्य जगत उत्पादकत्वेन प्रसिद्धः प्रजापतिरेवेयं पुरोरुग्भवति। तादृश्याः पाठे सति प्रसिद्धः सर्वस्योत्पादको यः प्रजापतिरस्ति स एवैनं यजमानं प्रजापशुसहितं प्रजनयति। तस्मादेतच्छंसनं प्रजात्यै संपद्यते।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः प्रजायते** प्रजा और पशुओं के साथ प्रवृद्ध होता है।

देवताद्वारा पुरोरुचं प्रशंसति—

जातवेदस्यां पुरोरुचं शंसति जातवेदोन्यङ्गाम् ।।९।।

हिन्दी— (देवता द्वारा पुरोरुक् निवित् की प्रशंसा कर रहे हैं—) **जातवेदस्यां पुरोरुचं शंसति** जातवेद देवता वाले पुरोरुक् (निवित्) का शंसन करता है, (क्योंकि) **जातवेदोन्यङ्गाम्** अन्तिम भाग में जातवेद रूप चिह्न है।

सा॰भा॰—जातवेदा देवता यस्याः पुरोरुचः सा जातवेदस्या। जातवेदःशब्दरूपं न्यङ्गं नितरामङ्गं चिह्नं यस्याः पुरोरुचः सा जातवेदोन्यङ्गा। तस्याः पुरोरुचोऽन्तिमे भागे 'सो अध्वरा करति जातवेदाः' इति जातवेदःशब्दः पठ्यते।।

उक्तमर्थमाक्षिपति—

तदाहुर्यत् तृतीयसवनमेव जातवेदस आयतनम् अथ कस्मात् प्रातः-सवने जातवेदस्यां पुरोरुचं शंसतीति ।।१०।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ पर आक्षेप को दिखला रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ वेदवेत्ता) आक्षेप कहते है कि **तृतीयसवनमेव जातवेदसः आयतनम्** तृतीयसवन ही जातवेदस का स्थान है। **अथ कस्मात्** तो किस कारण **प्रातःसवने जातवेदस्यां पुरोरुचं शंसति** प्रातःसवन में जातवेदस् देवता वाले पुरोरुक् (निवित्) का शंसन करता है?

सा० भा०—तृतीयसवनस्य जातवेदसं प्रत्यायतनत्वमाग्निमारुतशस्त्रे देवत्वादवगन्तव्यम्। तथा च संप्रदायविद[1] आहुः—"जातवेदास्तु देवोऽयं वर्तत आग्निमारुते" इति। यस्मादेवं तस्मात् प्रातःसवने जातवेदस्यायाः शंसने कारणं नास्तीत्याक्षेपं तद्वादिन आहुः॥

तस्य परिहारं दर्शयति—

प्राणो वै जातवेदाः, स हि जातानां वेद, यावतां वै स जातानां वेद ते भवन्ति येषामु न वेद किमु ते स्युर्यो वा आज्य आत्मसंस्कृति वेद तत्सुविदितम् ॥११॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त आक्षेप का परिहार दिखला रहे हैं—) **प्राणो वै जातवेदाः** जातवेद प्राणरूप है; क्योंकि **सः हि जातानां वेद** वह (प्राण) उत्पन्न हुए (सभी शरीरों) का जानता है। **सः** वह (प्राण) **यावतां जातानां वेद** जितने उत्पन्न शरीरों को जानता है, **ते भवन्ति** वे ही सत्ता में होते हैं। **येषामु न वेद** जिनको (वह) नहीं जानता **किमु ते स्युः** वे कैसे विद्यमान हो सकते है (अर्थात् विद्यमान नहीं हो सकते)। **यः आज्ये आत्मसंस्कृतिं वेद** जो (यजमान) आज्यशस्त्र में आत्मसंस्कृति को जानता है **तत्सुविदितम्** वही (यजमान) सुष्ठु ज्ञान वाला है।

सा० भा०—अत्र जातवेदःशब्देन प्राण एवाभिधीयते न त्वग्निः। अत एवान्तिमभागव्याख्याने 'वायुर्वै जातवेदा' इत्याम्नातम्। यस्मात् स प्राणो जातानामुत्पन्नानां शरीराणां स्वरूपं वेद जानाति लभत इत्यर्थः। तस्मात् प्राणस्य जातवेदा इति नामधेयम्। एवं सति प्राणो यावतामुत्पन्नानां शरीराणां स्वरूपं वेद लभते ते देहा भवन्ति सत्तां भजन्ते। येषां तु देहानां स्वरूपं प्राणो न वेद न लभते ते देहाः किमु स्युः किमु विद्यमानतां भजेयुर्न भजेयुरित्यर्थः। एवं सति जातवेदोनामकस्य प्राणस्य प्रतिपादिकायाः पुरोरुचोऽन्तःपाठे यजमानो लब्धप्राणः सन् विद्यमानो भवति। अन्यथाऽयमसत् कल्पः स्यात्। एवमुक्तप्रकारेण यो यजमान आज्यशस्त्रे पुनर्जन्मस्वरूपां संस्कृतिं वेद तत् तस्य यजमानस्य सुविदितं सम्यग्ज्ञानमुत्पन्नम्। अनेन होतृजपमित्यारभ्य प्रोक्ते प्रघट्टकेऽवस्थितस्यार्थवादस्य सर्वस्याप्युपसंहारो जातः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) सप्तमः खण्डः ॥७॥

(१) षड्गुरुशिष्यस्य श्लोकोऽयम्।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के सप्तम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथाष्टमः खण्डः

सा० भा०—अथ सूक्तगतां प्रथमामृचं विधत्ते—

(आज्यशस्त्रविधानम्)

(तत्र सूक्तगतानामृचां प्रतीकनिर्देशपूर्वकाध्यात्मिकव्याख्यानम्)

प्र वो देवायाग्नय इति शंसति, प्राणो वै प्र, प्राणं हीमानि सर्वाणि भूतान्यनु प्रयन्ति, प्राणमेव तत्संभावयति प्राणं संस्कुरुते ।।१।।

हिन्दी—(अब सूक्तगत प्रथम ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'प्र वो देवायाग्नये अर्थात् (हे होता)! अग्नि देव के लिए (स्तुति करो)' **इति शंसति** इस (ऋचा) का शंसन करता है। **प्राणो वै प्र** (इस ऋचा में) प्र (शब्द) प्राणरूप है; क्योंकि **इमानि सर्वाणि भूतानि हि** ये सभी प्राणी जगत् **प्राणमनु प्रयन्ति** प्राण का अनुगमन करते हैं। **तत्** इस (शंसन) से **प्राणमेव सम्भावयति** (यजमान में) प्राण की सृष्टि करता है और **प्राणं संस्कुरुते** प्राण को संस्कारित करता है।

सा० भा०—अस्याः प्रथमाया ऋच आदौ प्रेतिशब्दः श्रूयते स प्राणस्वरूपः। नाम्न आद्यक्षरसाम्यात्। हि यस्मात्कारणात् सर्वाणीमानि भूतानि जीवजातानि प्राणमनु प्रयन्ति। प्राणः प्रथमतो गच्छति, तमनु पश्चाद् देहाः प्रयन्ति, प्राणप्रेरणादूर्ध्वं देहानां चलनात्। तत्तथा सति प्रशब्दप्रयुक्ताया ऋचः शंसनेन प्राणं संभावयति सभावितं पूजितं करोति। अनया पूजया प्राणः संस्कृतः सन् स्वव्यापारसमर्थो भवति। तस्मात् 'प्र वो देवाय'[1] इत्येषा शंसनीया॥

द्वितीयामृचं विधत्ते—

'दीदिवांसमपूर्व्यम्' इति शंसति मनो वै दीदाय, मनसो हि न किञ्चन पूर्वमस्ति, मन एव तत्संभावयति मनः संस्कुरुते ।।२।।

हिन्दी—(अध्ययन क्रम से पञ्चमी ऋचा का द्वितीय ऋचा के रूप में शंसन का विधान कर रहे हैं—) 'दीदिवांसमपूर्व्यम्' अर्थात् जिससे पूर्व कोई दीप्तिमान नहीं हुआ उसको'–**इति शंसति** (होता) इस ऋचा का शंसन करता है। **मनो वै दीदाय** मन ही दीप्तिसम्पन्न है; क्योंकि **मनसा पूर्वं हि** मन से पहले **पूर्वं किञ्चन न अस्ति** कोई भी (सङ्कल्प) नहीं होता। **तत्** इस (ऋचा के शंसन) से **मनः एव सम्भावति** मन को ही उत्पन्न

(१) ऋ० ३.१३.१।

करता है और मनः संस्कुरुते मन को संस्कारित करता है।

सा०भा०—यद्यप्यध्ययनक्रमेणेयमृक्पञ्चमो[१] तथाऽपि द्वितीयात्वेन प्रयोक्तव्या। ब्राह्मणक्रमस्यानुष्ठानार्थत्वात्। दीदिवांसं दीप्तियुक्तमपूर्व्यमस्मादन्येन पूर्वेण रहितमित्येताभ्यां मन्त्रपदाभ्यां मनोऽभिधीयते। तच्च मनः सर्वार्थप्रकाशकत्वाद् दीदाय दीप्तियुक्तं भवति। तथा मनसोऽपि न किञ्चिदपीन्द्रियं व्यापारवन्नास्ति, मनसा सङ्कल्पितेष्वर्थेषु पश्चाद् वागादीन्द्रियाणां व्याप्रियमाणत्वात्। अत एवारण्यकाण्डे वक्ष्यति—'मनसा वाऽग्रे संकल्पयत्यथ वाचा व्याहरति'[२] इति। अतो दीदिवांसमपूर्व्यमिति पदद्वयार्थस्य मनसि विद्यमानत्वात् तच्छंसनेन मनसः संभावनासंस्कारौ संपद्येते। अत्रारध्ययनक्रमादन्यमनुष्ठानक्रममभिप्रेत्य आश्वलायन आह—'अनुब्राह्मणं वाऽऽनुपूर्व्यम्'[३] इति॥

अध्ययनक्रमेण[४] चतुर्थीमनुष्ठानाय तृतीयात्वेन विधत्ते—

'स नः शर्मणि वीतये' इति शंसति, वाग् वै शर्म, तस्माद् वाचाऽनुवदन्तमाह शर्मवदास्मा आयांसीति, वाचमेव तत्संभावयति वाचं संस्कुरुते ॥ ३ ॥

हिन्दी—(अध्ययन के क्रम में चतुर्थी ऋचा का शंसन तृतीय ऋचा के स्थान पर करने का विधान कर रहे हैं—) 'सः नः शर्मणि वीतये' अर्थात् 'वह अग्नि (हमारी) कामना के लिए सुख प्रदान करे'—**इति शंसति** इस (चतुर्थी ऋचा) का शंसन करता है। **वाग् वै शर्म** वाणी ही शर्म है। **तस्मात्** इसी कारण **वाचा अनुवदन्तम् आह** वाणी से (दूसरे के कथन को) दुहराते हुए कहता है कि **शर्मवद् अस्मै आयांसि** इसके लिए सुख-सम्पन्न (जीवन) मैंने दिया है। **तत्** इस ऋचा (के शंसन) से **वाचमेव सम्भावयति** वाणी को ही उत्पन्न करता है और **वाचं संस्कुरुते** वाणी को संस्कारित करता है।

सा०भा०—सोऽग्निर्नोऽस्माकं वीतये कामाय शर्माणि सुखानि यच्छत्विति मन्त्रपादस्यार्थः। अत्र शर्मशब्देन वागेव विवक्षिता। यस्मादेवं तस्माल्लोके स्वगुरूक्तमर्थं स्ववाचा सम्यगनुवदन्तं पुरुषमितरः प्रामाणिक एवमाह। अस्मै गुरूक्तार्थस्य सम्यगनुवादिने शिष्याय शर्मवत् सुखयुक्तं जीवनं संपन्नं यस्मात् तस्माद्धेशिष्याऽऽयांसि समन्ततो नियतोऽस्मि। आङ्पूर्वस्य 'यम उपरमे' इत्यस्य धातोश्छान्दसं रूपम्। आस्मा इत्यकारश्च च्छान्दसः। इत्येवं वाङ्नियमितस्य सुखस्य लौकिकेनोच्यमानत्वान् मन्त्रोक्तशर्मशब्देन वाग्विवक्षोपपन्ना॥ तस्मन्त्रपाठेन वाचः संभावनासंस्कारौ भवतः॥

अध्ययनक्रमेण[५] षष्ठीमृचमनुष्ठानाय चतुर्थीत्वेन विधत्ते—

---

(१) ऋ० ३.१३.५। (२) द्र० तै०सं० २.२.११.५;५.१.३.३; ६.१.७.३
(३) आश्व०श्रौ० ५.९.१३। (४) ऋ० ३.१३.४।
(५) ऋ० ३.१३.६।

'उत नो ब्रह्मन्नविष' इति शंसति, श्रोत्रं वै ब्रह्म, श्रोत्रेण हि ब्रह्म शृणोति, श्रोत्रे ब्रह्म प्रतिष्ठितं, श्रोत्रमेव तत्संभावयति, श्रोत्रं संस्कुरुते ।।४।।

हिन्दी—(अध्ययन के क्रम से षष्ठी ऋचा का चतुर्थी ऋचा के रूप में शंसन करता है—) 'उत नो ब्रह्मन्नविष' अर्थात् 'हे ब्राह्मणरूप (अग्नि)! भी हमारी रक्षा करो'—**इति शंसति** इस (षष्ठी ऋचा का चतुर्थी ऋचा के रूप में) शंसन करता है। **श्रोत्रं वै ब्रह्म** श्रोत्र ही ब्रह्म है; क्योंकि **श्रोत्रेण हि ब्रह्म शृणोति** श्रोत्र से ही ब्रह्म (वेद) को सुनता है अतः **श्रोत्रे एवं ब्रह्म प्रतिष्ठितम्** श्रोत्र में ही वेद प्रतिष्ठित रहता है। **तत्** इस (ऋचा के शंसन) से **श्रोत्रमेव सम्भावयति** श्रोत्र को ही उत्पन्न करता है और **श्रोत्रं संस्कुरुते** श्रोत्र को संस्कृत करता है।

सा० भा०—उतापि च हे ब्रह्मन् देवेषु ब्राह्मणरूपाग्ने नोऽस्मानविषो रक्षसि। अस्मिन् मन्त्रे ब्रह्मशब्देन श्रोत्रमुपलक्ष्य श्रोत्रेण हि ब्रह्म वेदं पुरुषः शृणोति। श्रोत्रेऽवगतं ब्रह्म वेद-वाक्यं प्रतिष्ठितं कदाचिदप्यविस्मृतं भवति। तस्मात् तन्मन्त्रपाठेन श्रोत्रस्य संभावना-संस्कारौ भवतः।।

अध्ययनक्रमेण[१] तृतीयामृचमनुष्ठानाय पञ्चमीत्वेन विधत्ते—

'स यन्ता विप्र एषाम्' इति शंसत्यपानो वै यन्ताऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो न पराङ्भवत्यपानमेव तत्संभावयत्यपानं संस्कुरुते ।।५।।

हिन्दी—(अध्ययन के क्रम से तृतीय ऋचा का पञ्चमे ऋचा के रूप में शंसन करने का विधान कर रहे हैं—) **स यन्ता विप्र एषाम्** अर्थात् वह (देवों में) ब्राह्मण (अग्नि) (मनुष्यों में ब्राह्मणों का) नियमन करने वाला है—**इति शंसति** इस (तृतीया ऋचा) का (पञ्चमी ऋचा के रूप में) शंसन करता है। **अपानः वै यन्ता** अपान ही नियमन करने वाला है क्योंकि **अपानेन हि** अपान द्वारा ही **अयं प्राणः** (नियमित) यह प्राण **न पराङ् भवति** पुनः नही लौटता है। **तत्** इस (ऋचा के शंसन) से **अपानमेव सम्भावयति** अपान को ही उत्पन्न करता है और **अपानं संस्कुरुते** अपान को संस्कारित करता है।

सा० भा०—सोऽग्निर्विप्रो देवेषु ब्राह्मणः सन्नेषां मनुष्यविप्राणां यन्ता नियमनकर्ता। अस्मिन् मन्त्रे यन्तुशब्देनापानवायुरुपलक्ष्यते। निःश्वासरूपेणापानेन यतो नियमितः प्राणवायुः पराङ्भवति परं बाह्यं दूरदेशमञ्चति गच्छतीति पराङ्। यद्ययं बहिर्मुख उच्छ्वासरूपः प्राणवायुरपानवायुना न नियम्येत तदा बहिरेव गच्छेन्न पुनर्निवर्तेत। ततः पुरुषो म्रियेतातोऽपानस्य नियन्तृत्वं युक्तम्। एतन्मन्त्रपाठेनापानवायोः संभावनासंस्कारौ भवतः।।

---

(१) ऋ० १.१३.३।

अध्ययनक्रमेण[1] द्वितीयामृचं षष्ठीत्वेनानुष्ठानाय विधत्ते—

'ऋतावा यस्य रोदसी' इति शंसति, चक्षुर्वा ऋतं, तस्माद् यतरो विवदमानयोराहाहमनुष्ठ्या चक्षुषाऽदर्शमिति तस्य श्रद्दधति, चक्षुरेव तत्संभावयति चक्षुः संस्कुरुते ।।६।।

हिन्दी—(अध्ययन क्रम से द्वितीय ऋचा का षष्ठी ऋचा के रूप में शंसन का विधान कर रहे हैं—) **'ऋतावा यस्य रोदसी** अर्थात् जिस (अग्नि) के वश में द्यावापृथिवी है— **इति शंसति** इस (द्वितीया ऋचा का षष्ठी के रूप में) शंसन करता है। **चक्षुः वै ऋतम्** चक्षु ही ऋत है। **तस्मात्** इसी कारण **विवदमानयोः** विवाद करते हुए दो व्यक्तियों में **यतरः आह** एक व्यक्ति कहता है कि **'अहम् अनुष्ट्या चक्षुषा अदर्शम्** मैने प्रयत्न द्वारा (अपनी) आँख से देखा है' **इति तस्य श्रद्धधति** तो (लोग) उसके (कथन में) श्रद्धा (विश्वास) रखते हैं। **तत्** (इस द्वितीय ऋचा के षष्ठी के रूप में शंसन करने) से **चक्षुरेव सम्भावति** चक्षु को ही उत्पन्न करता है और **चक्षुः संस्कुरुते** चक्षु को ही संस्कारित करता है।

सा०भा०—रोदसी द्यावापृथिव्यौ यस्याग्नेर्ऋतावा सत्यवत्यौ। अस्मिन् मन्त्रगतऋत-शब्देन चक्षुरुपलक्ष्यते। यस्मादेवं तस्माल्लोके विवदमानयोः पुरुषयोर्मध्ये यतरः पुमानेवमाह। कथमिति, तदुच्यते—अहमनुष्ठ्याऽनुष्ठित्या प्रयत्नेन चक्षुषाऽदर्शं दृष्टवानस्मीति। तस्य श्रद्दधति तदीयवचनं सर्वे विश्वसन्ति। दूरस्थे चूतवृक्षे फलमस्ति न वेति निश्चेतुं राजा द्वौ पुरुषौ प्रेषयति। तयोरलसः कश्चिदापाततो दृष्ट्वा नास्तीति ब्रूते। अपरस्तु तत्र प्रयत्नेन दृष्ट्वा यत्र क्वापि पर्णेनाऽऽच्छन्नं फलं सम्यग् दृष्टवानस्मीति ब्रूते। तस्य वचने सर्वेषां विश्वासो जायते। तस्मात् सम्यग्दर्शिनश्चक्षुष ऋतत्वं युक्तम्। एतन्मन्त्रपाठेन चक्षुषः संभावना-संस्कारौ भवतः ॥

अध्ययनक्रमेणानुष्ठानक्रमेण च[2] सप्तम्या शस्त्रसमाप्तिं विधत्ते—

'नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु' इत्युत्तमया परिदधा-त्यात्मा वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान् पुष्टिमानात्मानमेव तत्समस्तं संभावयत्यात्मानं समस्तं संसकुरुते ।।७।।

हिन्दी—(अध्ययन क्रम और अनुष्ठान क्रम से सप्तमी ऋचा से शस्त्र की समाप्ति का विधान कर रहे हैं—) 'नू नो रास्व सहस्रवत् लोकवत् पुष्टिमद् वसु' अर्थात् (हे अग्ने)! सहस्र संख्या वाले सन्तान से सम्पन्न और समृद्धि युक्त धन को शीघ्र प्रदान करो'—**इति उत्तमया परिदधाति** इस (सूक्त की) अन्तिम (ऋचा) से (आज्यशस्त्र) को समाप्त करता

---

(१) ऋ० ३.१३.२। (२) ऋ० ३.१३.७।

है। **आत्मा वै समस्तः सहस्रवान् तोकवान् पुष्टिमान्** समस्त आत्मा ही सहस्र संख्या से युक्त, सन्तान-सम्पन्न और समृद्धि-सम्पन्न धन से युक्त है। **तत्** इस (ऋचा द्वारा आज्य-शस्त्र के समापन) से **आत्मानमेव समस्तं सम्भवति** सम्पूर्ण आत्मा को उत्पन्न करता है और **आत्मानं समस्तं संस्कुरुते** और समस्त आत्मा को संस्कारित करता है।

सा०भा०—यद् वसु धनं सहस्रवत् सहस्रसंख्योपेतं तोकवदपत्योपेतं पुष्टिमत् समृद्धियुक्तमस्ति तादृशं धनं नोऽस्मभ्यं नु क्षिप्रमेव रास्व हेऽग्ने देहि। अनयाऽन्तिमयाऽऽज्य-शस्त्रं समापयेत्। अत्र समस्तः पूर्वोक्तः प्राणमनोवागादिभिः सर्वैरिन्द्रियैः संपूर्ण आत्मा वै पुरुष एव सहस्रसंख्योपेतधनयुक्तो बहुभिरपत्यैरुपेतः समृद्धियुक्तश्च विवक्षितः। अतस्त-त्पाठेन तादृशस्य पुरुषस्यैव संभावनासंस्कारौ भवतः॥

शस्त्रस्यान्ते याज्यां विधत्ते—

याज्यया यजति, प्रत्तिर्वै याज्या, पुण्यैव लक्ष्मीः पुण्यामेव तल्लक्ष्मीं संभावयति पुण्यां लक्ष्मीं संस्कुरुते ॥८॥

हिन्दी—(आज्यशस्त्र के अन्त में याज्या का विधान कर रहे हैं—) **याज्यया यजति** (पूर्वोक्त) याज्या से यजन करता है। **प्रत्तिः वै याज्या** प्रदानरूप ही याज्या है और **पुण्यः इव लक्ष्मीः** पुण्य लक्ष्मी है। **तत्** इस (याज्या के शंसन) से **पुण्यां लक्ष्मीमेव सम्भावयति** पुण्य लक्ष्मी को ही उत्पादित करता है और **पुण्यां लक्ष्मीं संस्कुरुते** पुण्य लक्ष्मी को संस्कारित करता है।

सा०भा०—'अग्न इन्द्रश्चेति' येयं याज्या पूर्वमुक्ता तया यजति यागार्थं याज्यां पठेत्। याज्या च प्रत्तिर्वै प्रदानरूपैव। तथा च हविष आदानप्रदाने क्रमेण पुरोनुवाक्यायाज्याधीने श्रुत्यन्तरे श्रूयेते—'पुरोनुवाक्ययाऽऽदत्ते प्रयच्छति याज्यया'[१] इति। अतः प्रदानरूपत्वादियं पुण्यैव लक्ष्मीः।[२] शस्त्रीयत्वात् पुण्यत्वम्। फलस्य लब्धिहेतुत्वाल्लक्षणस्य दर्शनहेतुत्वाद्वा लक्ष्मीत्वम्। अतो याज्यापाठेन पुण्याया एव लक्ष्म्याः संभावनासंस्कारौ भवतः॥

उक्तक्रमेणानुष्ठातृवेदित्रोः फलं दर्शयति—

स एवं विद्वांश्छन्दोमयो देवतामयो ब्रह्ममयोऽमृतमयः संभूय देवता अप्येति य एवं वेद ॥९॥

---

(१) (i) तै०सं० २.६.२। 'ह्वयति वा सा याज्या स्यात्' इति च शत०ब्रा० १.७.२. १७-१९। 'पुरोनुवाक्या देवतास्मरणार्था, याज्या च हविः प्रदानार्था—इति कात्या०श्रौ० १.८.९। (ii) दातुरुपक्रमः प्रत्तिः ऊधो जृम्भणमिति यो गोषु प्रसिद्धः। यथा ब्राह्मणा-न्तरे—'प्रत्ता वै गौर्दुहे प्रत्तेहे प्रत्तेडा यजमानाय दुहे' (तै०सं० १.७.१) इति यज्ञात्मिकाया धेनोः सर्वाभिमतफलप्रदानादिकर्मस्थानीया याज्या'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'यज्ञानुष्ठानलब्धा श्रीः पुण्यमेव हि साधयेत्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

हिन्दी—(पूर्वोक्त क्रम से अनुष्ठान के ज्ञान के फल को दिखला रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **सः एवं विद्वान्** वह इस प्रकार जानने वाला **छन्दोमयः देवतामयः ब्रह्ममयः अमृतमयः सम्भूय** छन्दरूप, (अग्नि इत्यादि) देवता-स्वरूप, (ऋक् इत्यादि) वेदस्वरूप और अमर रूप होकर **देवता अप्येति** देवत्व को प्राप्त करता है।

सा०भा०—एवं विद्वानित्यत्रानुतिष्ठन्नित्यध्याहार्यम्। वेदनपूर्वकोऽनुष्ठाता गायत्र्यादिच्छन्दःस्वरूपो वह्न्यादिदेवतास्वरूप ऋगादिवेदस्वरूपो मरणरहितो मोक्षस्वरूपः सन् संभूय सर्वं जगदेकीकृत्य सर्वा देवताः प्राप्नोति।[1] तदेतदनुष्ठातुः फलम्। य एवं वेदेत्यत्रापि विदुषः फलत्वेन च्छन्दोमयत्वादिकमावर्तनीयम्। अथवा य एवं वेदेत्युक्तस्यैव स एवं विद्वानित्यनूद्यमानत्वान्नेदं वाक्यमावर्तनीयम्॥

वेदनमात्रस्य कथमीदृशं फलमित्याशङ्क्य सुवेदनत्वाद्युक्तं फलमित्येतद् दर्शयति—

यो वै तद् वेद यथा छन्दोमयो देवतामयो ब्रह्ममयोऽमृतमयः संभूय देवता अप्येति तत्सुविदितम् ॥१०॥

हिन्दी—**यः वै तद् वेद** जो इसको जानता है कि **यथा** जिस प्रकार **छन्दोमयः देवतामयः ब्रह्ममयः अमृतमयः सम्भूय** छन्दरूप देवतारूप, वेदरूप और अमररूप होकर **देवता अप्येति** देवत्व को प्राप्त करता है, **तत्सुविदितम्** वही यथार्थ ज्ञान है।

सा०भा०—येन प्रकारेण च्छन्दःप्राप्त्यादिपूर्वकं सर्वदेवताप्राप्तिर्भवति तत् तादृशं प्रकारं यो वेद तद्वेदनं सुविदितं[2] शोभनज्ञानं तस्माद्युक्तं फलमित्यर्थः॥

उक्तवक्ष्यमाणयोः शङ्कापरिहाराय विभागं दर्शयति—

इत्यध्यात्ममथाधिदैवतम् ॥११॥

हिन्दी— **इति अध्यात्मम्** यह (यहाँ तक) आज्यशस्त्र का आध्यात्मिक व्याख्यान है **अथाधि दैवतम्** अब अधिदैवत व्याख्यान किया जाएगा।

सा०भा०—आत्मानं शरीरमधिकृत्य वर्तत इत्यध्यात्मम्। अस्मिन् खण्डे शरीररूपत्वेन प्रशंसनमाज्यशस्त्रस्योक्तम्। उत्तरखण्डे त्वधिदैवतं देवताविषयमाज्यशस्त्रप्रशंसनमुच्यते॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये द्वितीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (दशमाध्याये) अष्टमः खण्डः ॥८॥

---

(१) 'अनुप्रवेशोऽप्ययः'—इति भट्टभास्करः। 'अप्ययोऽनुभवः'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) तदिदं वेदितुरुक्तं फलं सुविदितं सुप्रसिद्धं ब्रह्मवादिनाम्। यद्वा, अयजमानस्यापि वेदितुः फलसंपत्तौ कारणमनेनोच्यते'—इति भट्टभास्करः।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के अष्टम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ नवमः खण्डः

सा०भा०—पूर्वोक्तक्रमेणैव देवताविषयशस्त्रप्रशंसनं विवक्षित्वा प्रथमं भूरग्निरित्यस्य प्रशंसां दर्शयति—

(आज्यशस्त्रसूक्तस्य ऋचामधिदैवतव्याख्यानम्)

षट्पदं तूष्णीशंसं शंसति, षड्वा ऋतव[1], ऋतूनेव तत्कल्पयत्यृतूनप्येति ।।१।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त क्रम से ही देवता-विषयक शस्त्र की प्रशंसा करने के लिए पहले 'भूरग्निः' इसकी प्रशंसा को दिखला रहे हैं-) **षट्पदं तूष्णीशंसं शंसति** छः पद पर अवसान करके तूष्णीशंस का शंसन करता है। **षड् वै ऋतवः** (संवत्सर में) ऋतुएँ छः होती हैं। **तत्** इस (शंसन) से **ऋतून् एव कल्पयति** ऋतुओं को ही समर्थ बनाता है और **ऋतून् अप्येति** ऋतुओं को प्राप्त करता है।

सा०भा०—भूरग्निरित्यादीनां भागानां षट्संख्यासाम्यादृतुत्वे सति तत्पाठेन ऋतून् स्वभोगप्रदानंसमर्थान् करोति। तत ऋतून् देवान् प्राप्नोति॥

निविदः प्रशंसां दर्शयति—

(निवित्प्रशंसनम्)

द्वादशपदां पुरोरुचं शंसति, द्वादश वै मासा मासानेव तत्कल्पयति मासानप्येति ।।२।।

हिन्दी—(निवित् की प्रशंसा को दिखला रहे हैं—) **द्वादशपदां पुरोरुचं शंसति** बारह पदों वाले पुरोरुक् निवित् का शंसन करता है। **द्वादश वै मासाः** (संवत्सर में) बारह महीने होते हैं। **तत्** इस (शंसन) से **मासान् एव कल्पयति** मासों को ही समर्थ बनाता है और **मासान् अप्येति** मासों को प्राप्त करता है।

सा०भा०—निविदां पाठेन मधुमाधवादीन् मासान्[1] स्वात्मभोगाय संपादयति प्राप्नोति च॥

सूक्तप्रथमामृचं प्रशंसति—

(१) मधुश्च माधवश्च शुक्रश्च शुचिश्च नभश्च नभस्यश्चेषश्चोर्जश्च सदृश्च सहस्यश्च तपश्च तपस्यश्च–इति तै०सं० १.४.१४

(सूक्तस्यंकर्म्रशंसनम्)

'प्र वो देवायाग्नये'[१] इति शंसत्यन्तरिक्षं वै प्रान्तरिक्षं हीमानि सर्वाणि भूतान्यनुप्रयन्त्यरिक्षमेव तत्कल्पयत्यन्तरिक्षमप्येति ।।३।।

हिन्दी—(सूक्त की प्रथमा ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) 'प्र वो देवायाग्नये' अर्थात् अग्नि देव के लिए स्तुति करो' **इति शंसति** इस (ऋचा) का शंसन करता है। **अन्तरिक्षं वै प्र** 'प्र' अन्तरिक्षरूप है; क्योंकि **अन्तरिक्षं हि** अन्तरिक्ष का ही **इमानि सर्वाणि भूतानि अनुप्रवन्ति** ये सभी प्राणिसमूह अनुसरण करते हैं। **तत्** इस (शंसन) से **अन्तरिक्षमेव कल्पयति** अन्तरिक्ष को समृद्ध बनाता है और **अन्तरिक्षम् अप्येति** अन्तरिक्ष को प्राप्त करता है।

सा० भा०—सर्वे प्राणिनोऽन्तरिक्षमनुसृत्य तिष्ठन्ति तस्मिन्नवकाशे प्रकृष्टगमनादन्तरिक्षस्य प्रशब्दवाच्यत्वम्।।[२]

अनुष्ठानक्रमेण द्वितीयामृचं प्रशंसति—

'दीदिवांसमपूर्व्यमिति'[३] शंसत्यसौ वै दीदाय योऽसौ तपत्येतस्माद्धि न किञ्चन पूर्वमस्त्येतमेव तत्कल्पयत्येतमप्येति ।।४।।

हिन्दी—(अनुष्ठान क्रम से द्वितीय ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) 'दीदिवांसमपूर्व्यं' अर्थात् जिससे कोई नहीं दीप्तिसम्पन्न हुआ—**इति शंसति** इस ऋचा का शंसन करता है। **यः असौ तपति** जो यह सूर्य तपता है **असौ दीदाय** यह दीप्तियुक्त है। क्योंकि **एतस्मात्** इस (सूर्य) से **न किञ्चन पूर्वम् अस्ति** कुछ भी पहले नहीं था। **तत्** इस (शंसन) से **तमेव कल्पयति** उस (सूर्य) को ही समर्थ करता है और **एतम् अप्येति** इस (सूर्य) को प्राप्त करता है।

सा० भा०—योऽसावादित्यस्तपति जगति संतापं करोत्यसौ वै दीदाय दीप्यते। तस्योदयात्पूर्वमन्धकारे किमपि प्राणिज्ञातं स्वव्यापारकर्तुं नास्ति तस्मादादित्यस्य दीदिवांसमपूर्व्यमितिपदद्वयाभिधेयत्वम्।।

तृतीयामृचं दर्शयति—

'स नः शर्माणि वीतये'[४] इति शंसत्यग्निर्वै शर्माण्यन्नाद्यानि यच्छत्यग्निमेव तत्कल्पयत्यग्तिमप्येति ।।५।।

हिन्दी—(तृतीया ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) 'स नः शर्माणि वीतये' अर्थात्

---

(१) ऋ० ३.१३.१।
(२) अन्तरिक्षे पक्षिणां प्रयाणं, प्रयाणस्यायं प्रतीकः प्रेति–इति गोविन्दस्वामी।
(३) ऋ० ३.१३.५। (४) ऋ० ३.१३.४

यह (अग्नि) हमारी कामना के लिए सुख प्रदान करे'—**इति शंसति** इस (ऋचा) का शंसन करता है। **अग्निः वै शर्माणि** अग्नि ही शर्म है; क्योंकि **अन्नाद्यानि यच्छति** वह खाने योग्य अन्न को प्रदान करता है। **तत्** इस (शंसन) से **अग्निमेव कल्पयति** अग्नि को ही समर्थ बनाता है और **अग्निम् अप्येति** अग्नि को प्राप्त करता है।

सा० भा०—सुखकराण्यत्तुं योग्यान्यन्नानि पाकेन प्रयच्छतीत्यग्नेः शर्मशब्दवाच्यत्वम्॥

चतुर्थीमृचं दर्शयति—

'उत नो ब्रह्मन्नविष'[1] इति शंसति, चन्द्रमा वै ब्रह्म चन्द्रमसमेव तत्कल्पयति चन्द्रमसमप्येति ।।६।।

हिन्दी—(चतुर्थी ऋचा का शंसन कह रहे हैं—) 'उत नो ब्रह्मन्नविष' अर्थात् हे ब्राह्मण रूप (अग्नि) और भी, हमारी रक्षा करो **इति शंसति** इस (ऋचा) का शंसन करता है। **चन्द्रमा वै ब्रह्म** चन्द्रमा ही ब्रह्म है। **तत्** इस (ऋचा के शंसन) से **चन्द्रमसमेव कल्पयति** चन्द्रमा को ही समर्थ करता है और **चन्द्रमसम् अप्येति** चन्द्रमा को प्राप्त करता है।

सा० भा०—नक्षत्रादिप्रकाशेषु बृहत्त्वाच्चन्द्रमसो ब्रह्मत्वम्॥[2]

पञ्चमीमृचं दर्शयति—

'स यन्ता विप्र एषाम्'[3] इति शंसति, वायुर्वै यन्ता, वायुना हीदं यतमन्तरिक्षं न समृच्छति, वायुमेव तत्कल्पयति वायुमप्येति ।।७।।

हिन्दी—(पञ्चमी ऋचा को दिखला रहे हैं—) 'स यन्ता विप्र एषाम्' अर्थात् देवों में ब्रह्मण (अग्नि) इन (मनुष्य ब्राह्मणों) का नियामक है'—**इति शंसति** इस (ऋचा का) शंसन करता है। **वायुः वै यन्ता** वायु ही नियमन करने वाला है क्योंकि **वयुना हि** वायु द्वारा ही **यतम् इदम् अन्तरिक्षम्** नियमित यह अन्तरिक्ष को **न समृच्छति** सम्यक् प्रकार से प्राप्त नहीं करता है। **तत्** इस (ऋचा के शंसन) से **वायुमेव कल्पयति** वायु को ही समृद्ध बनाता है और **वायुम् अप्येति** वायु को प्राप्त करता है।

सा० भा०—इदं दृश्यमानं सूर्यचन्द्रनक्षत्रादिमण्डलं सर्वं वायुना यतं नियमितं सदन्तरिक्षं न समृच्छति सम्यङ् न प्राप्नोति।[4] वायुनियमाभावे सम्यक् प्राप्नुयाद् अन्तरिक्षस्य

(१) ऋ० ३.१३.६

(२) चन्द्रमा वै ब्रह्म ब्रह्मप्राप्ति हेतुतया 'आदित्याच्चन्द्रमसम्' इति श्रुतेः'–इति गोविन्दस्वामी। 'आह्लादहेततुत्वाद् अमृतात्मकत्वाच्च' इति भट्टभास्करः।

(३) ऋ० ३.१३.३

(४) ऋच्छिः प्रलयार्थः–इति षड्गुरुशिष्य । 'समृच्छति गच्छति'–इति गोविन्दस्वामी । 'लीयते विशीर्यते'–इति भट्टभास्कर ।

निरवधिकत्वेन तस्मिन् यत्र क्वापि गच्छेदित्यर्थः। तस्माद् वायुरेव नियन्ता।।

षष्ठीमृचं दर्शयति—

'ऋतावा यस्य रोदसी'[1] इति शंसति, द्यावापृथिवी वै रोदसी, द्यावापृथिवी एव तत्कल्पयति द्यावापृथिवी अप्येति ।।८।।

हिन्दी—(षष्ठी ऋचा को दिखला रहे हैं—) 'ऋतावा यस्य रोदसी' अर्थात् जिस (अग्नि) के वश में द्यावापृथिवी है। **इति शंसति** इस (ऋचा) का शंसन करता है। **द्यावापृथिवी वै रोदसी** द्यु और पृथिवी ही रोदसी है। **तत्** इस (ऋचा के शंसन) से **द्यावापृथिवी एव कल्पयति** द्यावापृथिवी को ही समर्थ बनाता है और **द्यावापृथिवी अप्येति** द्यावापृथिवी का प्राप्त करता है।

सा० भा०—रोदःशब्दवाच्यत्वं द्यावापृथिव्योर्लोकेऽपि प्रसिद्धम्।।

सप्तमीमृचं दर्शयति—

'नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत् पुष्टिमद् वसु' इत्युत्तमया[2] परिदधाति संवत्सरो वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान् पुष्टिमान् संवत्सरमेव तत्समस्तं कल्पयति, संवत्सरं समस्तमप्येति ।।९।।

हिन्दी—(सप्तमी ऋचा को दिखला रहे हैं—) 'नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत् पुष्टिमद् वसु' अर्थात् सहस्र संख्या से सन्तान युक्त, समृद्धिसम्पन्न, धन को शीघ्र प्रदान करो' **इति उत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से (आज्यशस्त्र का) समापन करता है। **समस्तः संवत्सरः एव** समस्त संवत्सर ही **सहस्रवान् तोकवान् पुष्टिमान्** सहस संख्या वाला, सन्तानसम्पन्न और समृद्धियुक्त है। **तत्** इस (ऋचा द्वारा समापन करने) से **समस्तं संवत्सरमेव** सम्पूर्ण संवत्सर को ही **कल्पयति** समर्थ बनाता है और **समस्तं संवत्सरम् अप्येति** सम्पूर्ण संवत्सर को प्राप्त करता है।

सा० भा०—चैत्रादिफाल्गुनान्तः समस्तः संवत्सरः सहस्रादिविशेषणयुक्तः। संवत्सरेण हि धनिकानां वृद्धिः सहस्रसंख्याका संपद्यते। तोकान्यपत्यानि गर्भधारणमारभ्य संवत्सरमध्य एवोत्पद्यन्ते। रोगैः कृशानां शरीराणामारोग्ये सति संवत्सरमध्ये पुष्टिर्भवति।।

शस्त्रयाज्यां दर्शयति—

याज्यया यजति, वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति, विद्युतमेव तत्कल्पयति विद्युतमप्येति ।।१०।।

हिन्दी—(आज्यशस्त्र की याज्या को दिखला रहे हैं—) **याज्यया यजति** (आज्य-शस्त्र की) याज्या से यजन करता है। **वृष्टिः याज्या** वृष्टि ही याज्या है और **विद्युद्**...

---

(१) ऋ० ३.१३.२।　　　(२) ऋ० ३.१३.७।

एव विद्युत् ही (याज्या है) क्योंकि **विद्युद् हि** विद्युत् ही **इदं वृष्टिम् अन्नाद्यं संप्रयच्छति** इस वर्षा और खाद्य अन्न को प्रदान करती है। **तत्** इस (याज्या के शंसन) से **विद्युतमेव** विद्युत् को ही **कल्पयति** समर्थ बनाता है और **विद्युतम् अप्येति** विद्युत् को प्राप्त करता है।

सा० भा०—याज्यया प्रक्षिप्तं हविर्वृष्टिपर्यवसितं भवति।।

तथा च समर्यते[1]—

"अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।" इति।।

वृष्टिश्च विद्युत्पुरःसरत्वाद् विद्युदेव। यस्मान्मेघेषूत्पन्ना विद्युद्वृष्टिं संपाद्य तद्द्वारेणान्नं प्रयच्छति तस्माद् वृष्टिर्विद्युदेव।।

वेदनं प्रशंसति—

स एवं विद्वानेतन्मयो देवतामयो भवति, भवति ।।११।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सः एवं विद्वान्** वह इस प्रकार जानने वाला व्यक्ति **एतन्मयः देवतामयः भवति** वह (वसन्त से लेकर विद्युत् पर्यन्त) इतनी (वस्तु) से सम्पन्न होकर देवत्वयुक्त हो जाता है।

सा० भा०—एतन्मयो वसन्तग्रीष्मादिविद्युदन्तवस्तुमयो भूत्वा तदभिमानिदेवतानां भोगं प्राप्नोति। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्ये द्वितीयपञ्चिकायां प्रथमाध्याये नवमः खण्डः ।।९।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय के नवम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य द्वितीयपञ्चिकायाः पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के दशम अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) मनुस्मृति–३.७६

यज्ञेन दश । देवा वै यज्ञमष्टौ । ऋषयो वै षट् । देवा वै सोमस्याष्टौ । ब्रह्म वै नव ।।२।।

द्वितीय पञ्चिका में 'यज्ञेन' से प्रारम्भ प्रथम अध्याय में दश, 'देवा वै यज्ञम्' से प्रारम्भ द्वितीय अध्याय में आठ, 'षययो वै' से प्रारम्भ तृतीय अध्याय में छः, 'देवा वै सोमस्य' से प्रारम्भ चतुर्थ अध्याय में आठ तथा 'ब्रह्म वै' से प्रारम्भ पञ्चम अध्याय में नौ खण्ड हैं ॥

यज्ञेव वै, देवा वै, शिरो वा एतत्, दैवा वैयदैवैकादश ।।२।।

(इस प्रकार द्वितीय पञ्चिका में) 'यज्ञेन वै' से प्रारम्भ खण्डों का प्रथम दशक, 'देवा वै' से प्रारम्भ द्वितीय दशक, 'शिरो वा एतत्' से प्रारम्भ तृतीय दशक तथा 'देवा वै यदेव' से प्रारम्भ करके चतुर्थ एकादश है। इस प्रकार द्वितीय पञ्चिका में कुल इकतालीस खण्ड हैं ॥

।। इत्यैतरेयब्राह्मणे द्वितीयपञ्चिकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वितीय पञ्चिका में पञ्चम अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

।। इत्यैतरेयब्राह्मणे द्वितीया पञ्चिका ।।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण की द्वितीय पञ्चिका की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयपञ्चिकायाम्
प्रथमोऽध्यायः
[अथ एकादशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— आहावं निविदः सूक्तमच्छावाकस्य चोदनम् ।
यजमानपुनर्जन्म ब्रुवते साधिदैवतम् ।।१।।

इत्थमाज्यशस्त्रं निरूप्य प्रउगशस्त्रं निरूपयितुं प्रस्तौति—

(प्रउगशस्त्रनिरूपणम्)

ग्रहोक्थं वा एतद् यत्प्रउगं, नव प्रातर्ग्रहा गृह्यन्ते नवभिर्बहिष्पवमाने स्तुवते, स्तुते स्तोमे दशमं गृह्णाति, हिङ्कार इतरासां दशमः, सो सा सम्मा ।।१।।

हिन्दी—(अब प्रउगशस्त्र के निरूपण के लिए प्रस्तावित कर रहे हैं—) **यत् प्रउगम्** जो प्रउग (शस्त्र) है **एतत्** यह **ग्रहोक्थम्** (इन्द्रवायु इत्यादि) ग्रहों की प्रशंसा है। **प्रातः** प्रातःसवन में **नव ग्रहाः गृहन्ते** (ऐन्द्रवायु इत्यादि) नव ग्रह गृहीत होते हैं। **बहिष्पवमाने** बहिष्पवमान (नामक स्तोत्र) में **नवभिः** नव (ऋचाओं) द्वारा **स्तुवते** (उद्गाता) स्तुति करता है। **स्तुते सोमे** सोम की स्तुति कर दिये जाने पर **दशमं गृह्णाति** दशम् (ग्रह) को ग्रहण करता है। **इतरासाम्** अन्य ऋचाओं के साथ बोला जाने वाला **हिंकारः** हिं शब्द **दशमः** दशम (ग्रह) है। **सो सा सम्मा** इस प्रकार वह (ग्रह) और वह (स्तुति) (संख्या में) समान हो जाता है।

सा० भा०—प्रउगाख्यं यच्छस्त्रमस्ति तद् ग्रहोक्थं वै। ऐन्द्रवायवादिग्रहाणामुक्थं ग्रहोक्थं तदीयदेवताप्रशंसारूपमित्यर्थः। 'नव' इत्यादिना ग्रहसंबन्ध एव स्पष्टीक्रियते। प्रातःसवन ऐन्द्रवायवमैत्रावरुणादयो[१] धाराग्रहा नवसंख्याका[२] गृह्यन्ते। ग्रहीता चाध्वर्युः।[३] तथा बहिष्पवमानाख्ये स्तोत्र उद्गातारो नवभिर्नवसंख्याभिर्ऋग्भिः स्तुवते। उपास्मै गायतेत्येक-

(१) अन्तर्यामादय इति वक्तव्यम्; नान्यथा हि नवसङ्ख्या पूर्येत। अत एव कातीयभाष्ये तस्याः सन्ततं स्रवन्त्याः धारायाः येषामन्तर्यामादीनां ध्रुवपर्यन्तानां ग्रहणम् (९.६.१)—इत्याद्युक्तम् ततः 'अन्तर्यामादिध्रुवपर्यन्तान् धाराग्रहान्'—इत्यादि च (२५)। आपस्तम्बोऽप्याह—धराया अन्तर्यामं गृह्णाति, सर्वांश्चातो ग्रहानाध्रुवात् इति (आप०श्रौ०१२.१३.५)।

स्तृचः[१] दविद्युतत्येति द्वितीयः पवस्वेति तृतीयः[२]। एतेषु त्रिषु तृचेषु नवसंख्याका ऋचो विद्यन्ते। ता आवृत्तिरहिता गीयन्ते। एवं स्तोमे बहिष्पवमानस्तोत्र उद्गातृभिः स्तुते सति अध्वर्युर्दशमं ग्रहमाश्विनाख्यं गृह्णाति। यद्यप्याध्वर्यवयोर्मन्त्रब्राह्मणकाण्डयो[३]राश्विनग्रहो धाराग्रहेषु तृतीयत्वेनाऽऽम्नातः; तथाऽप्यसौ दशमत्वेन ग्रहीतव्यः। आश्विनो दशमो गृह्यते तं तृतीयं जुह्वत इति श्रुत्यन्तरवचनात्।[४] तथा च ग्रहेषु दशमः संपन्नः।[५] तथैवेतरासां बहि-

---

यत्तूक्तम्—जैमिनीयन्यायमालायाम् 'ऐन्द्रवायवादिग्रहेषु'—इति (५.४.१)। तत् खलु 'वाग् वा ऐन्द्रवायवश्चक्षुर्मैत्रावरुणः श्रोत्रमाश्विनः'—इति (तै०सं० ६.४.९) द्विदेवत्य ग्रह-विध्यर्थानुवादवाक्यानुगतम्; तथा आश्विनग्रहस्य तृतीयत्वमपि द्विदेवत्यग्रहेष्वेव बोध्यम्।

(२) गृह्यते सोमरस एभिरिति ग्रहाः, वैकङ्कतादीनि पात्राणि; इह तु तानि सोमरसपूर्णान्येव विवक्षितानि। 'ग्रहवृदनिश्चिगमश्च' इति (पा०सू० ३.३.४८) करणे अप् प्रत्ययः। ते च ग्रहा अग्निष्टोमे त्रयस्त्रिंशत् सङ्ख्याकाः। तान् परिगणयामः—उपांशुरेकः; अन्तर्यामः, ऐन्द्रवायवः, मैत्रावरुणः, आश्विनः, शुक्रः, मन्थी, आग्रयणः, उक्थ्यः, ध्रुवश्चेति नव धाराग्रहाः। तत्र चैन्द्रवायवादयस्त्रयो द्विदेवत्याः; अथ ऋतुग्रहाः द्वादश; ऐन्द्राग्नः, वैश्वदेवश्चेति चतुर्विंशतिः प्रातःसवनग्रहाः, त्रयो मरुत्वतीयाः, माहेन्द्रश्चेति चत्वारो माध्यन्दिनसवनग्रहाः, आदित्यः, सावित्रः, वैश्वदेवः, पात्नीवतः हारियोजनश्चेति पञ्चैव तृतीयसवनग्रहाः अत्यग्निष्टोमे तु चत्वारोऽधिकाः—अंशुः, अदाभ्यः, दधिग्रहः, षोडशी चेति सङ्कलनया सप्तत्रिंशत्। एषु अन्तर्यामादयो नवैव धाराग्रहाः। उन्नेता आधवनीयकलशादुदञ्चने सोममादाय यजमानहस्तस्थिते होतृचमसे निग्राभ्यास्वासिञ्चति। ततः यजमानः तानिग्राभ्याः पवित्रे द्रोणकलशस्योपरि उद्गातृभिर्विस्तार्य धृते आसिञ्चति सन्ततम्। ततः सन्ततं स्रवन्त्या धारायाः सकाशात् अन्तर्यामादीन् ध्रुवग्रहान्तान् नव ग्रहान् गृह्णाति—इत्यत एवैते धाराग्रहाः उच्यन्ते। कात्या०श्रौ० ९.५.१७; ६.१। आप०श्रौ० १२.१२.१२-१३ द्रष्टव्यानि। ये तु न धाराग्रहाः ते 'द्रोणकलशात् परिप्लवया गृह्यन्ते, वचनादन्यतः'—इति आप० श्रौ० १२.१८.११।

(३) 'ग्रहमध्वर्युरादय क्षिप्रं होतारमभिद्रुत्य मयिवसुरिति ग्रहं होत्रे प्रयच्छति'—इति आप० श्रौ० १२.२१.५।

(१) 'ऋचि त्रेरुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि'—इति पा०सू० ६.१.३४ वा० १।

(२) उ० आर्चिक १. १. १-३।

(३) तै०सं० १.४.३-३६; ६.४। वा०सं० ७, ८ अध्याय। शत०ब्रा० ४.१.१.१-१८।

(४) एष एव पाठो मीमांसाभाष्येऽपि दृश्यते (जै०सू० ५.४.१) स्याद्वैतत्तद्भाष्यकारस्यैव भाषणम्? श्रुतिपाठस्त्वेवम्—'बहिष्पवमाने स्तुत आश्विनो गृह्यते'—इति तै०सं० ६. ४,९। व्याख्यातं चैतद् वचनं मन्त्रकाण्डे (तै०सं० १.४.६;७)। तत्रैव जैमिनीयन्याय-मालीयाधिकरणमप्युद्धृतं सायणेन (५.४.१ अधि०)।

(५) उपांशुप्रभृतिषु प्रातःसवनग्रहेष्विति ज्ञेयम्, न तु धाराग्रहेषु, उपांशोर्धाराग्रहत्वाभावाद् दशमत्वानुपपत्तेरिति।

ष्पवमानास्तोत्रगतानामृचां 'हिङ्कारः' दशमत्वेन गणनीयः।[१] तथा सति ग्रहाणां स्तोत्रियाणां च संख्यासाम्यं भवति। तदिदं सो सा सम्मेति वाक्येनोच्यते। उकारो निपातः समुच्चयार्थः सन् स्त्रीलिङ्गाभ्यां तच्छब्दाभ्यां संबन्ध्यते। तथा सति सात्र ग्रहसंख्या सा च स्तोत्रियसंख्येत्युक्तं भवति। सम्मेत्यत्र द्वितीयो मकारश्छान्दसः। तस्मिन्नपगते सति समा तुल्येत्युक्तं भवति। एवं यथा सान्तबहिष्पवमानस्तोत्रस्य ग्रहसंबन्धः, तथा प्रउगशस्त्रस्यापि ग्रहसंबन्धो द्रष्टव्य इत्यभिप्रायः ॥

अथ प्रउगशस्त्रे विद्यमानानां तृचानां मध्ये प्रथमं तृचं विधत्ते—

वायव्यं शंसति, तेन वायव्य उक्थवान् ॥ २ ॥

हिन्दी—(अब प्रउगशस्त्र में विद्यमान तृचों में प्रथम तृच का विधान कर रहे हैं—) **वायव्यं शंसति** वायु देवता सम्बन्धी तृच का (होता) शंसन करता है। **तेन** उस (शंसन) से **वायव्यः** वायु-सम्बन्धी (ग्रह) **उक्थवान्** ('वायवा याहि') स्तुति से सम्पन्न हो जाता है।

सा० भा०—वायुर्देवता यस्य तृचस्य सोऽयं वायव्यो 'वायवा याहि दर्शत'[२] इत्यादिकस्तं शंसेत्। तेन शंसनेन वायव्यो ग्रह उक्थवाञ्शस्त्रवान् भवति। यद्यपि वायव्यः पृथग्ग्रहो नास्ति तथाप्यैन्द्रवायवस्य ग्रहस्य पूर्वो भागो वायव्य इत्युच्यते । स च प्रथमम् 'आ वायो भूष'[३] इत्यनेन केवलवायुदेवताकेन मन्त्रेण गृह्यते। तेन वायव्यो भवति। पश्चाद् 'इन्द्रवायू इमे सुताः'[४] इत्यनेनेन्द्रसहितवायुदेवताकेन मन्त्रेण गृह्यते। तेनैन्द्रवायवोऽपि भवति। अत एव वायवे द्विर्ग्रहणं तैत्तिरीया अधीयन्ते—'सकृदिन्द्राय मध्यतो गृह्यते द्विर्वायवे'[५] इति। तत्र प्रथमभागरूपो वायव्यो ग्रहः केवलेन वायव्यतृचेन शस्त्रवान् संपद्यते॥

द्वितीयं तृचं विधत्ते—

---

(१) 'हिं३ इति हिंङ् कृत्य'—इति (१.२.३) आश्वलायनोक्तस्तु हिङ्कारो बह्वृचानाम्, छन्दोगानां तु 'हुं'३ इति हिङ्कारः'—इति (७.११.७) लाट्यायनोक्तो ग्राह्यः। साम्नां साप्तभक्तिकत्वे पाञ्चभक्तिकत्वे च स एवाद्या भक्तिः (छा०उप० २.२.; ८.१)। इहोपदिष्टो हिङ्कारस्तु उक्ताभ्यां भिन्नो मन्त्रात्मक एव। स चाम्नातश्छान्दोग्ये। तथाहि—ते ह यथैवेदं बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सꣳरब्धाः सर्पन्तीत्येव मासससृपुस्तेह समुपविश्य हिञ्चक्रुः—ओं३ मदा३मों३ पिबामों३ देवो वरुणः प्रजापतिः सनिता३ऽन्नमिहा२हरदन्नपतेऽन्नमिहराऽऽहरो३म् इति''—१.१२.४,५।

(२) ऋ० २.१.१-३।   (३) ऋ० ७.९२.१।

(४) ऋ० १.२.४।

(५) तै०सं० ६.४.७.४। 'आ वायो'—'इन्द्रवायू'—इतीमौ मन्त्रौ एकस्मिन्ननुवाके यथाक्रमेण आम्नातौ तै०सं० १.४.४।

(द्वितीयतृचविधानम्)

ऐन्द्रवायवं शंसति, तेनैन्द्रवायव उक्थवान् ।।३।।

हिन्दी—(द्वितीय तृच का विधान कर रहे हैं—) **ऐन्द्रवायवं शंसति** इन्द्र और वायु देवता वाली 'इन्द्रवायु इमे सुता' का (होता) शंसन करता है। **तेन** उस (शंसन) से **ऐन्द्रवायवः उक्थवान्** इन्द्र और वायु देवता सम्बन्धी (ग्रह) स्तुति से युक्त हो जाता है।

सा० भा०—इन्द्रश्च वायुश्च मिलित्वा[१] देवता यस्य तृचस्य सोऽयमैन्द्रवायवः 'इन्द्र-वायू इमे सुताः'[२] इत्यादिकस्तं शंसेत्। तच्छंसनेनैन्द्रवायवग्रहस्योत्तरभागः शस्त्रवान् भवति।।

तृतीयं तृचं विधत्ते—

(तृतीयतृचविधानम्)

मैत्रावरुणं शंसति, तेन मैत्रावरुण उक्थवान् ।।४।।

हिन्दी—(तृतीय तृच का विधान कर रहे हैं—) **मैत्रावरुणं शंसति** मित्र और वरुण सम्बन्धी तृच ('मित्रं हूवे पूतदक्षं') का होता शंसन करता है। **तेन मैत्रावरुणः उक्थवान्** उस (शंसन) से मित्र और वरुण वाला (ग्रह) स्तुति से युक्त हो जाता है।

सा० भा०—मित्रो वरुणश्च मिलित्वा[३] देवता यस्य तृचस्य सोऽयं मैत्रावरुणो 'मित्रं हुवे पूतदक्षम्'[४] इत्यादिकः। शंसतीत्यादिकं पूर्ववद् योज्यम्।।

चतुर्थं तृचं विधत्ते—

(चतुर्थतृचविधानम्)

आश्विनं शंसति, तेनाऽऽश्विन उक्थवान् ।।५।।

हिन्दी—(चतुर्थ तृच का विधान कर रहे हैं—) **आश्विनं शंसति** अश्विन देवता वाले तृच ('अश्विना यज्वरीरिष') का (होता) शंसन करता है। **तेन आश्विनः उक्थवान्** उस (शंसन) से अश्विन् वाला (ग्रह) स्तुति-सम्पन्न हो जाता है।

सा० भा०—अश्विनौ मिलित्वा[५] देवता यस्य तृचस्य सोऽयमाश्विनो 'अश्विना यज्व-रीरिषः'[६] इत्यादिकः ।।

पञ्चमं तृचं विधत्ते—

(पञ्चमतृचविधानम्)

ऐन्द्रं शंसति, तेन शुक्रामन्थिना उक्थवन्तौ ।।६।।

---

(१) 'मिलिता' इति वा पाठः।   (२) ऋ० १.२.४-६।
(३) 'मिलिता' इति वा पाठः।   (४) ऋ० १.२.७-९।
(५) 'मिलिता' इति वा पाठः।   (६) ऋ० १.३.१-३।

हिन्दी—(पञ्चम तृच का विधान कर रहे हैं—) **ऐन्द्रं शंसति** इन्द्र देवता वाले तृच ('इन्द्राऽऽयाहि') का शंसन करता है। **तोन शुक्रमन्थिसौ उक्थवान्तौ** उस (शंसन) से शुक्रग्रह और मन्थिग्रह स्तुति से युक्त हो जाते हैं।

सा० भा०—इन्द्रो देवता यस्य तृचस्य सोऽयमैन्द्र 'इन्द्राऽऽ याहि चित्रभानो'[१] इत्यादिनैन्द्रस्तृचः। तेन शुक्रग्रहमन्थिग्रहयोरुभयोः शस्त्रवत्त्वम्॥

षष्ठं तृचं विधत्ते—

(षष्ठतृचविधानम्)

वैश्वदेवं शंसति, तेनाऽऽग्रयण उक्थवान् ॥७॥

हिन्दी—(षष्ठ तृच का विधान कर रहे हैं—) **वैश्वदेवं शंसति** विश्वे देवों से सम्बन्धित तृच ('ओमासश्चर्षणी धृतः') का शंसन करता है। **तेन आग्रयणः उक्थवान्** उस (शंसन) से आग्रयण (ग्रह) स्तुत किया जाता है।

सा० भा०—'ओमासश्चर्षणीधृतः'[२] इत्येष वैश्वदेवस्तृचः। तेनाऽऽग्रयणग्रहस्य शस्त्रवत्त्वं तथाऽपि विश्वदेवदेवताकत्वाद् वैश्वदेवम्। एवं सर्वत्र ग्रहशस्त्रयोरेकदेवताकत्वं द्रष्टव्यम्॥

सप्तमं तृचं विधत्ते—

(सप्तमतृचविधानम्)

सारस्वतं शंसति ॥८॥

हिन्दी—(सप्तम तृच का विधान कर रहे हैं—) **सारस्वतं शंसति** सरस्वती सम्बन्धी तृच ('पावका नः सरस्वती') का शंसन करता है।

सा० भा०—'पावका नः सरस्वती'[३] इत्यादिकः सारस्वतस्तृचः॥

ननु पूर्ववदत्रापि ग्रहस्य शस्त्रवत्त्वं कुतो नोपन्यस्यत इत्याशङ्क्याऽऽह—

न सारस्वतो ग्रहोऽस्ति ॥९॥

हिन्दी—**सारस्वतं ग्रहः न अस्ति** सरस्वती का (कोई) ग्रह नहीं होता है।

सा० भा०—आर्ध्वर्यवमन्त्रकाण्डे सारस्वतमन्त्रस्यापठितत्वाद्, ब्राह्मणे विध्यभाभावाच्च ग्रहाभावः ॥

तर्हि ग्रहोक्थेऽस्मिन्नस्य सारस्वतस्य तृचस्य किमर्थं शंसनमाम्नातमित्याशङ्क्याऽऽह—

वाक् तु सरस्वती ये तु के च वाचा ग्रहा गृह्यन्ते, तेऽस्य सर्वे शस्तोक्थाः ॥१०॥

---

(१) ऋ० १.३.४-६। (२) ऋ० १.३.७-९। (३) ऋ० १.३.१०-१२।

हिन्दी—(सरस्वती सम्बन्धी तृच के शंसन का प्रयोजन बतला रहे हैं—) **वाक् वै सरस्वती** वाणी ही सरस्वती है। **ये के च वाचा ग्रहाः गृह्यन्ते** तो वाणी से जो ग्रह ग्रहण किये जाते हैं, **ते सर्वे** वे सभी (ग्रह) **अस्य** इस (तृच के शंसन) से **शंस्तोक्थाः** स्तुति कर दिये जाते हैं।

सा०भा०—सरस्वती हि वाग्देवता। ग्रहाणां च वाचा गृह्यमाणत्वात् सारस्वतत्वम्। तेन सर्वेऽपि ग्रहाः शस्तोक्थाः पठितशस्त्रा भवन्ति॥

वेदनं प्रशंसति—

उक्थिनो भवन्ति य एवं वेद ॥११॥

हिन्दी—(इस सात तृचों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है (उसके सभी ग्रह) **उक्थिनः भवन्ति** स्तुति कर दिये गये होते हैं।

सा०भा०—तस्य वेदितुः सर्वे ग्रहाः शस्त्रवन्तो भवन्ति ग्रहदेवतास्तुष्यन्तीत्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा०भा०—विहितं प्रउगशस्त्रं प्रशंसति—

(विहितप्रउगशस्त्रप्रशंसनम्)

अन्नाद्यं वा एतेनावरुन्धे यत्प्रउगमन्याऽन्या देवता प्रउगे शस्यतेऽन्यदन्यदुक्थं प्रउगे क्रियते ॥१॥

हिन्दी—(विहित प्रउग शस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् प्रउगम्** जो प्रउग नामक शस्त्र है, **एतेन** इस (प्रउग शस्त्र) से **अन्नाद्यं वै अवरुन्धते** भोज्य अन्न को प्राप्त करता है क्योंकि **प्रउगे** प्रउग (शस्त्र) में **अन्याऽन्या देवताः** विविध देवता **शस्यस्ते** स्तुत किये जाते है और **प्रउगे** प्रउग (शस्त्र) में **अन्यदन्यत्** विविध **उक्थम्** स्तुतियाँ **क्रियते** की जाती हैं।

सा०भा०—यदेतत् प्रउगाख्यं शस्त्रमस्ति, तदेतदत्तुं योग्यस्यान्नस्य साधनम्। अतस्तेनान्नं प्राप्नोति। यस्मादस्मिञ्शस्त्रे पृथगेव देवता शस्यते। प्रथमतृचे केवलो वायु-

द्वितीयस्मिन्निन्द्रवायू तृतीयस्मिन् मित्रावरुणावित्यादिर्देवताभेदः। यथैव देवता भिद्यते तथैतस्मिञ्शस्त्रेऽन्यदन्यदुक्थं वायवा याहीन्द्रवायू इत्यादिकं परस्परविलक्षणं शस्त्राङ्गं क्रियते। तस्मादोदनशाकसूपादिविलक्षणभक्ष्यभोज्यलेह्यपेयचोष्यसाम्याद् अन्नाद्यहेतुत्वं युक्तम्।।

वेदनं प्रशंसति—

अन्यदन्यदस्यान्नाद्यं गृहेषु[1] ध्रियते य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, **अस्य गृहेषु** इस (जानने वाले) के गृहों में **अन्यदन्यद् अन्नाद्यम्** विविध भोज्य अन्न **ध्रियते** स्थित रहते हैं।

सा०भा०—अन्यदन्यत् परस्परविलक्षणं मधुराम्लादिरूपम्।।

प्रकारान्तरेण प्रउगं प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण प्रउगप्रशंसनम्)

एतद्ध वै यजमानस्याध्यात्मतममिवोक्थं यत्प्रउगं, तस्मादेनेनैतदुपेक्ष्यतममिवेत्याहुरेतेन ह्येनं होता संस्करोतीति ।।३।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से प्रउग शस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् प्रउगम्** जो प्रउगशस्त्र है **एतद् ह वै** यह निश्चित रूप से **यजमानस्य** यजमान की **अध्यात्मतमम् उक्थम् इव** अध्यात्मतम (अपने शरीर के अत्यन्त समीपवर्ती) उक्थ (स्तुति) के समान है। **तस्मात्** इसी कारण **एनेन** इस (यजन करने वाले) के द्वारा **उपेक्ष्यतमम् इव** अत्यधिक ईक्षणीय (आदरणीय) है—**इत्याहुः** ऐसा कहा गया है; क्योंकि **एतेन हि** इसके द्वारा ही **एनं होता संस्करोति** इस (यजमान) को होता संस्कारित करता है।

सा०भा०—प्रउगाख्यं यच्छस्त्रमस्ति एतदेव यजमानस्याध्यात्मतममिव। आत्मानं शरीरमधिकृत्य वर्तत इत्यध्यात्मं शरीरसंबन्धीत्यर्थः। पूर्वत्राऽऽज्यशस्त्रस्य यजमानशरीरनिष्पत्तिहेतुत्वाभिधानात्, तदप्यध्यात्मम्। इदं तूत्पन्नस्य शरीरस्य संस्कारत्वादतिशयेनैवाध्यात्मम्। यस्मादेवं तस्मादेनेन यजमानेनैतत् प्रउगशस्त्रमुपेक्ष्यतममिवातिशयेनोप समीप ईक्षणीयमादरणीयमित्यर्थः। इत्येवमभिज्ञा आहुः। तेषामयमभिप्रायः। एतेन प्रउगशस्त्रेणैनं यजमानमाज्यशस्त्राद् उत्पन्नं होता संस्करोति तस्मादादरणं युक्तम्।।

अथ प्रथमं तृचं विहितमनूद्य स्तौति—

(प्रथमात्सप्तमपर्यन्ततृचानां विधानतात्पर्यप्रदर्शनम्)

वायव्यं शंसति; तस्मादाहुर्वायुः प्राणः, प्राणो रेतो, रेतः पुरुषस्य

---

(१) 'ग्रहेषु' इति वा पाठः।

प्रथमं सम्भवतः संभवतीति, यद्वायव्यं शंसति, प्राणमेवास्य तत्संस्करोति ।।४।।

हिन्दी—(अब प्रथम तृच की विधि को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **वायव्यं शंसति** (प्रथम तृच से) वायु का शंसन करता है। **तस्मात्** इसी कारण **आहुः** कहा जाता है कि **वायुः प्राणः** वायु प्राण है। **प्राणः रेतः** प्राण वीर्य है और **रेतः पुरुषस्य प्रथमं सम्भवतः सम्भवति** वीर्य उत्पन्न होते हुए पुरुष के शरीर का कारण होने से (पितृदेह में) प्रथम उत्पन्न होता है तो **यद् वायव्यं शंसति** जो वायु-सम्बन्धी (तृच) का (होता) शंसन करता है। **तत्** उस (शंसन) से **अस्य** इस (यजन करने वाले) के **प्राणमेव संस्करोति** प्राण को ही संस्कृत करता है।

सा०भा०—पूर्वोक्तो विधिः 'वायव्यं शंसति' इति वाक्येनानूद्यते। यस्माद् वायव्यं शंसनीयं तस्मादभिज्ञा एवमाहुः—प्राणस्य वायुकार्यत्वेन वायुरेव प्राणः। रेतसः प्राण-धारकशरीरनिष्पादकत्वाद् रेतः प्राणः प्राणस्वरूपम्। तत्सदृशं रेतः संभवत उत्पाद्यमानस्य पुरुषस्य देहस्य कारणत्वेन पितृदेहे प्रथमं संभवति। एवमभिज्ञैरुक्तत्वाद् वायव्यतृचः समीचीनः। तच्छंसनेन होता यजमानस्य प्राणमेव संस्करोति॥

द्वितीयं विधिमनूद्य स्तौति—

ऐन्द्रवायवं शंसति; यत्र वाव प्राणस्तदपानो, यदैन्द्रवायवं शंसति प्राणापानावेवास्य तत्संस्करोति ।।५।।

हिन्दी—(अब द्वितीय तृच की विधि को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **ऐन्द्रवायवं शंसति** इन्द्र और वायु देवता वाले तृच का शंसन करता है। **यत्र वाव प्राणः** जहाँ (उच्छ्वास) प्राण है **तद् अपानः** वहाँ (निःश्वास रूप) अपान है। **यद् ऐन्द्रवायवं शंसति** जो इन्द्र और वायु देवता वाले तृच का शंसन करता है **तत्** इस (शंसन) से **अस्य** इस (यजन करने वाले) के **प्राणपानौ** प्राण और अपान (वायु) को **संस्करोति** संस्कारित करता है।

सा०भा०—उच्छ्वासरूपः प्राणो यत्रास्ति तत्र निश्वासरूपोऽपानोऽप्यस्ति। इन्द्र-वायू च प्राणापानस्वरूपौ। तस्मात् तेन सूक्तेन प्राणापानयोः संस्कारः॥

तृतीयं विधिमनूद्य स्तौति—

मैत्रावरुणं शंसति; तस्मादाहुश्चक्षुः पुरुषस्य प्रथमं संभवतः संभव-तीति यन्मैत्रावरुणं शंसति चक्षुरेवास्य तत्संस्करोति ।।६।।

हिन्दी—(तृतीय तृच की विधि को कहकर प्रशंसा कर रहे हैं—) **मैत्रावरुणं शंसति** मित्र और वरुण देवता वाले तृच का शंसन करता है। **तस्माद् आहुः** इसी कारण

कहा जाता है कि **पुरुषस्य चक्षुः प्रथमं सम्भवतः** पुरुष का चक्षु पहले उत्पन्न होता है, **सम्भवति** (तत्पश्चात्) मनुष्य जन्म लेता है। अतः **यद् मैत्रावरुणं शंसति** जो मित्र और वरुण देवता वाले तृच का शंसन करता है **तत्** उस (शंसन) से **अस्य चक्षुः एव** इस (यजन करने वाले) के चक्षु को ही **संस्करोति** संस्कारित करता है।

सा० भा०—श्रुत्यन्तरे 'चक्षुर्मैत्रावरुणः'[१] इति मित्रावरुणसंबद्धस्य ग्रहस्य चक्षुष्ट्वाभिधानात् तृचोऽपि चक्षुःस्वरूप एव। तच्चक्षुरन्यस्माच्छ्रोत्रादीन्द्रियात् प्रथममुत्पद्यते। अस्यार्थस्याऽऽगमागम्यत्वादाहुरभिज्ञा इत्युक्तम्। एवंविधचक्षुःस्वरूपेण मैत्रावरुणतृचेन यजमानचक्षुषः संस्कारः॥

चतुर्थविधिमनूद्य स्तौति—

आश्विनं शंसति; तस्मात् कुमारं जातं संवदन्त उप वै शुश्रुषते नि वै ध्यायतीति, यदाश्विनं शंसति श्रोत्रमेवास्य तत्संस्करोति ॥७॥

हिन्दी—(चतुर्थ तृच की प्रशंसा कर रहे हैं—) **आश्विनं शंसति** अश्विन्देव वाले (तृच) का शंसन करता है। **तस्मात्** क्योंकि **कुमारं जातं संवदन्ते** शिशु के पैदा होने पर (उसके माता-पिता) कहते हैं कि **उप वै शुश्रूषते** यह सुनना चाहता है और **नि वै ध्यायति** निरन्तर देखते हुए ध्यान लगा रहा है। अतः **यद् आश्विनं शंसति** जो अश्विन्देव वाले (तृच) का शंसन करता है **तत्** उस (शंसन) से **अस्य श्रोत्रमेव संस्करोति** इस (यजमान) के श्रोत्र को ही संस्कारित करता है।

सा० भा०—उत्पन्नं बालं मुग्धमेवेक्षमाणा मातापित्रादयः परस्परमेवमाहुः—नानाविधैरुपलालनैराहूतो बालकोऽस्मन् मुखमवलोकयति। यस्माद् अयमस्मदीयां वाचं श्रोतुमिच्छति। नैरन्तर्येणावलोकनेन मामेव ध्यायतीति। तदेतत् मित्रावरुणानुग्रहकृतम्। तस्मात् तच्छंसनेन श्रोत्रस्य संस्कारः॥

पञ्चमं विधिमनूद्य स्तौति—

ऐन्द्रं शंसति; तस्मात् कुमारं जातं संवदन्ते प्रतिधारयति वै ग्रीवा अथो शिर इति; यदैन्द्रं शंसति वीर्यमेवास्य तत्संस्करोति ॥८॥

हिन्दी—(पञ्चम तृच की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ऐन्द्रं शंसति** इन्द्र देवता से सम्बन्धित (तृच) का शंसन करता है। **तस्मात्** क्योंकि **कुमारं जातं संवदन्ते** शिशु के पैदा होने पर (उसके माता पिता) परस्पर कहते हैं कि **प्रतिधारयति वै ग्रीवा** यह गर्दन उठा रहा है **अथ शिरः** इसके बाद शिर को उठा रहा है। तो **यद् ऐन्द्रं शंसति** (होता) जो इन्द्र देवता से सम्बन्धित (तृच) का शंसन करता है **तत्** उस (शंसन) से **अस्य वीर्यमेव**

---

(१) तै०सं० ६.४.९.४।

संस्करोति इस (यजन करने वाले) के वीर्य (शक्ति) को ही संस्कारित करता है।

सा० भा०—दोलायां शयानं बालमवेक्ष्य परस्परमेवमाहुः—अयमिदानीं ग्रीवाः प्रतिधारयति उत्थातुमादौ गलमुन्नयति ततः शिर उन्नमतीति। एतस्य व्यापारस्य वीर्यनिमित्तत्वाद् इन्द्रस्य च वीर्यप्रदत्वात् तदीयतृचेन शक्तेः संस्कारः॥

षष्ठं विधिमनूद्य स्तौति—

वैश्वदेवं शंसति, तस्मात् कुमारो जातः पश्चेव प्रचरति वैश्वदेवानि ह्यङ्गानि यद्वैश्वदेवं शंसत्यङ्गान्येवास्य तत्संस्करोति ।।९।।

हिन्दी—(षष्ठ तृच की प्रशंसा कर रहे हैं—) **वैश्वदेवं शंसति** विश्वदेवों से सम्बन्धित (तृच) का (होता) शंसन करता है। **तस्मात्** इसी कारण **कुमारः जातः पश्चेव प्रचरति** पैदा हुआ शिशु पैर को हिलाता है; क्योंकि **अङ्गानि हि वैश्वदेवानि** (हाथ, पैर इत्यादि) अङ्ग विश्वे देवों से सम्बन्धित होते हैं। **यद् वैश्वदेवं शंसति** तो (होता) जो वैश्वदेवविषयक (तृच) का शंसन करता है **तत्** उस (शंसन) से **अस्य अङ्गानि एव संस्करोति** इस (यजन करने वाले) के अङ्गों को ही संस्कारित करता है।

सा० भा०—उत्पन्नो बालः पश्चेव दर्शनश्रवणग्रीवोन्नमनादिक्रियाभ्यः पश्चादेव समर्थः सन् हस्ताभ्यां पादाभ्यां चेतस्ततः प्रचरति। हस्तादीन्यङ्गानि च बहुदेवताकानि। तस्माद् वैश्वदेवतृचेनाङ्गसंस्कारः ॥

सप्तमं विधिमनूद्य स्तौति—

सारस्वतं शंसति, तस्मात् कुमारं जातं जघन्या वागाविशति, वाग्घि सरस्वती, यत्सारस्वतं शंसति वाचमेवास्य तत्संस्करोति ।।१०।।

हिन्दी—(सप्तम तृच की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सारस्वतं शंसति** सरस्वती देवता से सम्बन्धित (तृच) का (होता) शंसन करता है। **तस्मात्** इसी कारण **कुमारं जातं** शिशु के पैदा होने पर **जघन्या वाग् आविशति** जघन्या (पादादि हिलाने-डुलाने के बाद उत्पन्न) वाणी प्रवेश करती है; क्योंकि **वाग् वै सरस्वती** वाणी ही सरस्वती है अतः **यत् सारस्वतं शंसति** (होता) जो सरस्वती सम्बन्धी (तृच) का शंसन करता है **तत्** उस (शंसन) से **अस्य** इस (यजन करने वाले) की **वाग् एव संस्करोति** वाणी को ही संस्कारित करता है।

सा० भा०—हस्तपादप्रचारावस्थाया ऊर्ध्वं वक्तुमारभते। अतो जघन्या[1] वागित्युच्यते। वाचः सरस्वतीरूपत्वात् तदीयतृचेन तस्याः संस्कारः ॥

---

(१) इवार्थे जयनाच्छाखादित्वाद्ये (पा०सू० ५.३.१०३) वै जघन्यगीः वाग्वै जघनवत् पश्चाद्भूता जातस्य जायते'–इति षड्गुरुशिष्य ।

वेदितारमनुष्ठातारं च प्रशंसति—

एष वै जातो जायते सर्वाभ्य एताभ्यो देवताभ्यः, सर्वेभ्य उक्थेभ्यः, सर्वेभ्यश्छन्दोभ्यः, सर्वेभ्यः प्रउगेभ्यः, सर्वेभ्यः सवनेभ्यो य एवं वेद, यस्य चैवं विदुष एतच्छंसन्ति ।।११।।

हिन्दी—(इस तथ्य के जानने वाले और अनुष्ठान करने वाले की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है अथवा **यस्य** जिस (यजन करने वाले) का **एवं विदुषः** इस प्रकार जानने वाला होता **एतत् शंसति** इस (प्रउगशस्त्र) का शंसन करता है **एषः** यह यजन करने वाला **जातः** एक बार पैदा होकर **एताभ्यः सर्वाभ्यः देवताभ्यः** इन देवताओं से, **सर्वेभ्यः उक्थेभ्यः** सभी स्तुतियों से, **सर्वेभ्यः छन्दोभ्यः** सभी छन्दों से, **सर्वेभ्यः प्रउगेभ्यः** सभी प्रउगशस्त्रों से और **सर्वेभ्यः सवनेभ्यः** सभी सवनों से **जायते** पुनः उत्पन्न होता है।

सा० भा०—यो होता यथोक्तप्रकारेण वेदैष एव पूर्वं स्वमातृपितृभ्यां जातोऽपि पुनर्देवतादिभ्यो जातो भवति। यथोक्तार्थं विदुषो यस्य यजमानस्य होतार एतत् प्रउगं शंसन्ति सोऽपि यजमानो देवतादिभ्यः पुनर्जायते। देवता वाय्वादयः। उक्थान् आज्य-प्रउगादीनि। छन्दांसि गायत्र्यादीनि। प्रउगाणि तदवयवातृचाः। सवनानि त्रीणि प्रसिद्धानि। एतेभ्यः सर्वेभ्यः पुनरुत्पत्तिः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—प्रकारान्तरेण प्रउगशस्त्रं प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण प्रउगशस्त्रप्रशंसनम्)

प्राणानां वा एतदुक्थं यत्प्रउगं, सप्त देवताः शंसति, सप्त वै शीर्षन् प्राणाः, शीर्षन्नेव तत्प्राणान् दधाति ।।१।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से प्रउगशस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत् प्रउगम्** जो प्रउग (शस्त्र) है **एतत् प्राणानाम् उक्थम्** यह प्राणों की स्तुति है। **सप्त देवताः शंसति** (इस प्रउगशस्त्र में) सात देवताओं का शंसन करता है; क्योंकि **सप्त शीर्षन् प्राणाः** शिर में

(दो नाक, दो कान, दो आँख और एक मुख के छिन्द्रों में एक-एक इस प्रकार) सात प्राण हैं। तत् इस (प्रउगशस्त्र के शंसन् से) **शीर्षन् एव प्राणान् दधाति** शिर में ही प्राणों को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—शिरोगतसप्तच्छिद्रवर्तिप्राणानां पूर्वोक्तसप्ततृचगतवाय्वादिदेवतानां च संख्यासाम्याच्छस्त्रस्य प्राणरूपत्वं तेन यजमानस्य शिरसि प्राणधारणं भवति।।

अथ प्रश्नोत्तराभ्यां प्रउगशस्त्रस्य सामर्थ्यं दर्शयति—

किं स यजमानस्य पापभद्रमाद्रियेतेति ह स्माऽऽह योऽस्य होता स्याद् इत्यत्रेवैनं यथा कामयेत तथा कुर्यात् ।।२।।

हिन्दी—(प्रश्नोत्तर द्वारा प्रउगशस्त्र के सामर्थ्य को दिखला रहे हैं—) (प्रश्न) **किं सः** क्या वह (होता) **यजमानस्य** (यजन करने वाले) के **पापभद्रम्** पाप और पुण्य फल का **आद्रियेत** आदर (सम्पादन) कर सकता है? (उत्तर) **ह स्म आह** हाँ (कर सकता है) ऐसा कहा गया है। **यः अस्य होता स्यात्** जो इस (यजन करने वाले) का होता है, वह **अत्र एव** यहाँ (याग में) ही **एनम्** इस (यजन करने वाले) की **यथा कामयेत** जैसी इच्छा करे **तथा कुर्यात्** वैसा कर सकता है।

सा० भा०—अस्य यजमानस्य यो होता स्यात् स तस्य पापभद्रं किमाद्रियेत? पापमनिष्टफलं भद्रमिष्टफलम्। तादृशं किं फलं संपादयितुं समर्थः? इति प्रश्नः। अत्रैव जन्मनि 'एनं' यजमानं प्रति यथा होता कामयेत्, तथा कर्तुं शक्नोतीत्युत्तरम्।।

तत्र प्रथम तृचप्रयुक्तमनिष्टं दर्शयति—

(प्रउगशस्त्रस्य तृचानामनिष्टकथनम्)

यं कामयेत प्राणेनैनं व्यर्धयानीति, वायव्यमस्य लुब्धं शंसेद्, ऋचं वा पदं वाऽतीयात्, तेनैव तल्लुब्धं प्राणेनैवैनं तद् व्यर्धयति ।।३।।

हिन्दी—(उन सात तृचों में प्रथम तृच में प्रयुक्त अनिष्ट को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत** जिस (यजन करने वाले यजमान के लिए होता) यदि चाहे कि **एवं प्राणेन व्यर्धयानि** इस (यजमान) को प्राण से वियोजित कर दूँ तो **अस्य वायव्यं** इस (यजमान) के वायु-सम्बन्धी तृच का **लुब्धं शंसेत्** व्यामूढ़ (गड़बड़) करके शंसन करे। **ऋचां वा पदं वा** उसके लिए एक ऋचा अथवा (ऋचा के) एक पद का **अतीयात्** अतिक्रमण (व्यवधान) कर दे। **तेनैव** उसी (अतिक्रमण) से ही **तत्** वह तृच **लुब्धम्** व्यामोहित हो जाता है। **तत्** उस (शंसन) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **प्राणेन व्यर्धयति** प्राण से वियोजित कर देता है।

सा० भा०—यं यजमानमुद्दिश्य होता कामयेत। कथमिति; तदुच्यते—एनं यजमानं

प्राणेन व्यर्धयानि व्यृद्धं वियुक्तं करवाणीति। एवं कामयमानो होताऽस्य यजमानस्य संबन्धिनं वायव्यं तृचं लुब्धं व्यामूढं भवति। तथा सति प्राणरूपत्वेन पूर्वनिरूपितस्य वायोः क्रोधाद् 'एनं' यजमानं प्राणेन वियोजयति।।

द्वितीयतृचनिमित्तमनिष्टं दर्शयति—

यं कामयेत प्राणापानाभ्यामेनं व्यर्धयानीत्यैन्द्रवायवमस्य लुब्धं शंसेद्, ऋचं वा पदं वाऽतीयात्, तेनैव तल्लुब्धं, प्राणापानाभ्यामेवैनं तद् व्यर्धयति ।।४।।

हिन्दी—(द्वितीय तृच के अनिष्ट को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत** (होता) जिस (यजमान) के प्रति चाहे कि **एनम्** जिस (यजमान) को **प्राणापानाभ्याम्** प्राण और अपान से **व्यर्धयानि** वियोजित करूँ तो **अस्य** इस (यजमान) के **ऐन्द्रवायवम्** इन्द्र और वायु देवता वाले (तृच) को **लुब्धं शंसेत्** व्यामोहित करके शंसन करे। **ऋचं पदं वा अतीयात्** (इस तृच के) ऋचा अथवा पद का अतिक्रमण (इधर-उधर के शंसन) करे। **तनैव तत् लुब्धम्** उसी (अतिक्रमण से अतिक्रमित) वह (तृच) व्यामोहित हो जाता है। **तत्** इस (शंसन से) **एनम्** इस (यजमान) को **प्राणापानाभ्याम्** प्राण और अपान से वियोजित कर देता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

तृतीयतृचनिमित्तमनिष्टं दर्शयति—

यं कामयेत चक्षुषैनं व्यर्धयानीति, मैत्रावरुणमस्य लुब्धं शंसेद्, ऋचं वा पदं वाऽतीयात्, तेनैव तल्लुब्धं, चक्षुषैवैनं तद् व्यर्धयति ।।५।।

हिन्दी—(तृतीय तृच के अनिष्ट को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत्** होता जिस (यजमान) को चाहे कि **एनं चक्षुषा व्यर्धयानि** इस (यजमान) को आखों से हीन कर दूँ तो **अस्य** (इस यजमान) के **मैत्रावरुणं लुब्धं शंसेत्** मित्र और वरुण देवता सम्बन्धी (तृच) को व्यामोहित करके शंसन करे। **ऋचं पदं वा अतीयात्** (उस तृच के) ऋचा अथवा पद का अतिक्रमण करे। **तेनैव तत् लुब्धम्** उसी (अतिक्रमण) से वह तृच व्यामोहित हो जाता है। **तत्** उस (व्यामोहित शंसन) से **एनम्** इस (यजमान) को **चक्षुषा व्यर्धयति** नेत्र से विहीन कर देता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

चतुर्थतृचप्रयुक्तमनिष्टं दर्शयति—

यं कामयेत श्रोत्रेणैनं व्यर्धयानीत्याश्विनमस्य लुब्धं शंसेद्, ऋचं वा

पदं वाऽतीयात्, तेनैव तल्लुब्धं, श्रोत्रेणैवैनं तद् व्यर्धयति ।।६।।

हिन्दी—(चतुर्थ तृच में प्रयुक्त अनिष्ट को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत** (होता) जिस यजमान के प्रति कामना करे एनम् इस (यजमान) को **श्रोत्रेण व्यर्धयानि** कान से विहीन कर दूँ तो **अस्य** इस (यजमान) के **आश्विनं लुब्धं शंसेत्** अश्विन देव से सम्बन्धित (तृच) का व्यामोहित (उलट फेर कर) शंसन करे। **ऋचं पदं वा अतीयात्** इस (तृच) के ऋचा का अथवा पद का व्यतिक्रमण करे। **तेनं एव लुब्धम्** उसी (अतिक्रमण) से वह (तृच) व्यामोहित हो जाता है। **तत्** उस (शंसन) से **एनम्** इस (यजमान) को **श्रोत्रेण व्यर्धयति** कान से विहीन कर देता है।

सा०भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

पञ्चमतृचप्रयुक्तमनिष्टं दर्शयति—

यं कामयेत वीर्येणैनं व्यर्धयानीत्यैन्द्रमस्य लुब्धं शंसेद्, ऋचं वा पदं वाऽतीयात्, तेनैव तल्लुब्धं, वीर्येणैवैनं तद् व्यर्धयति ।।७।।

हिन्दी—(पञ्चम तृच में प्रयुक्त अनिष्ट को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत** होता जिस (यजमान) को चाहे कि **एनं वीर्येण व्यर्धयानि** इसको शक्ति से रहित कर दूँ तो **अस्य** इस (यजमान) के **ऐन्द्रं लुब्धं शंसेत्** इन्द्र-सम्बन्धी (तृच) को व्यामोहित करके शंसन करे। **ऋचं वा पदं वा अतीयात्** (उस तृच के) ऋचा अथवा पद का व्यतिक्रमण कर दे। **तेनैव लुब्धम्** उसी (व्यतिक्रमण) से (तृच) व्यतिक्रमित हो जाता है। **तत्** उस (शंसन) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **वीर्येण व्यर्धयति** वीर्य से च्युत कर देता है।

सा०भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

षष्ठतृचप्रयुक्तमनिष्टं दर्शयति—

यं कामयेताङ्गैरेनं व्यर्धयानीति, वैश्वदेवमस्य लुब्धं शंसेद्, ऋचं वा पदं वाऽतीयात्, तेनैव तल्लुब्धमङ्गैरेवैनं तद् व्यर्धयति ।।८।।

हिन्दी—(षष्ठ ऋचा में प्रयुक्त अनिष्ट को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत** होता जिस (यजमान) को चाहे कि **एनम् अङ्गैः व्यर्धयानि** इस (यजमान) को (शरीर) के अङ्गों से च्युत कर दूँ तो **अस्य** इस (यजन करने वाले) के **वैश्वदेवं लुब्धं शंसेत्** विश्वदेवों से सम्बन्धित (तृच) को व्यामोहित करके शंसन करे **ऋचं वा पदं वा अतीयात्** (उस तृच की) ऋचा अथवा पद का व्यतिक्रमण कर दे। **तेनैव तत् लुब्धम्** उसी (शंसन) से वह (तृच) व्यतिक्रमित हो जाता है। **तत्** उस शंसन से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **अङ्गैः व्यर्धयति** अङ्गों से विहीन कर देता है।

सा०भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

सप्तमतृचप्रयुक्तमनिष्टं दर्शयति—

यं कामयेत वाचैनं व्यर्धयानीति, सारस्वतमस्य लुब्धं शंसेद्, ऋचं वा पदं वाऽतीयात्, तेनैव तल्लुब्धं, वाचैवैनं तद् व्यर्धयति ।।९।।

हिन्दी—(सप्तम ऋचा के अनिष्ट को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत** होता (जिस यजमान) को चाहे कि **एनम्** इस (यजमान) को **वाचा व्यर्धयानि** वाणी से च्युत कर दूँ तो **अस्य** इस (यजमान) के **सारस्वतं लुब्धं शंसेत** सरस्वती से सम्बन्धित (तृच) को व्यामोहित करके शंसन करे। **ऋचं पदं वा अतीयात्** (इस तृच की) ऋचा अथवा पद का व्यतिक्रमण कर दे। **तेनैव लुब्धम्** उसी शंसन से वह (तृच) व्यामोहित हो जाता है। **तत्** इस (शंसन) से **एनं** इस (यजन करने वाले) को **वाचा व्यर्धयति** वाणी से विहीन कर देता है।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येम्।।

अथास्य शस्त्रस्येष्टफलसामर्थ्यं दर्शयति—

यमु कामयेत सर्वैरेनमङ्गैः सर्वेणाऽऽत्मना समर्धयानीत्येतदेवास्य यथापूर्वमृजुक्लृप्तं शंसेत्, सर्वैरेवैनं तदङ्गैः सर्वेणाऽऽत्मना समर्धयति ।।१०।।

हिन्दी—(अब प्रउगशस्त्र के अभीष्ट फल देने की सामर्थ्य को दिखला रहे हैं—) **यमु कामयेत्** होता जिस (यजमान) को चाहे कि **एनम्** इस (यजमान) को **सर्वैं अङ्गैः** सभी अङ्गों से और **सर्वेण आत्मना** समूर्ण शरीर से **समर्धयानि** समृद्ध कर दूँ तो **अस्य** इस (यजमान) के **एतदेव** उस (प्रउगशस्त्र) को ही **यथापूर्वम्** पहले (गुरुमुख से) पढ़े गये के अनुसार **ऋजुक्लृप्तं शंसेत्** किसी प्रकार की हीनता से रहित शंसन करे। **तत्** उस (शंसन) से **एनम्** इस (यजमान) को **सर्वैरेव अङ्गैः** सभी अङ्गों से और **सर्वेण आत्मना** सम्पूर्ण शरीर से **समर्धयति** समृद्ध कर देता है।

सा० भा०—पूर्वोक्तानि प्राणदीनि सर्वाण्यङ्गानि। संपूर्णो देहः सर्व आत्मा। तत्स-मृद्धिकामो होताऽस्य यजमानस्य संबन्धि तदेव प्रउगशस्त्रं यथापूर्वं गुरोः समीपे पुरा येन क्रमेणपठितं तथैव ऋजुक्लृप्तं[1] कस्यचिदवयस्यान्यथात्वाभावाद् ऋजुत्वं तथा क्लृप्तं संपादितं कृत्वा शंसेत्। ततः काम्यमानसमृद्धिः सिध्यति।।

वेदनं प्रशंसति—

---

(१) 'यथापूर्वं यथाक्रमम् ऋजु अङ्गासानतिक्रमेण क्लृप्तं यथा कल्पनं यथोत्पत्ति। यद्वा क्लृप्तम् अविकल्पनम्' इति भट्टभास्करः। 'ऋजु सुष्ठु'। क्लृप्तं व्यवस्थितम्ः यथा-पूर्वमवोचाम' इति षड्गुरुशिष्यः।

सर्वैरङ्गैः सर्वेणाऽऽत्मना समृध्यते य एवं वेद ।।११।।

हिन्दी—(प्रउगशस्त्र के इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वैः अङ्गैः** सभी अङ्गों से और **सर्वेण आत्मना** और सम्पूर्ण शरीर से **समृध्यते** समृद्ध होता है।

सा० भा०—स्पष्टोऽर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) तृतीयः खण्डः ।।३।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अथ स्तोत्रशस्त्रयोर्देवतावैलक्षण्यरूपमाक्षेपमुत्थापयति—

(स्तोत्रशस्त्रयोर्देवतावैलक्षण्यविचारः)

तदाहुर्यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रमाग्नेयीषु सामगा स्तुवते वायव्यया होता प्रतिपद्यते, कथमस्याऽऽग्नेय्योऽनुशस्ता भवन्तीति ।।१।।

हिन्दी—(स्तोत्र और शस्त्र के देवता की विलक्षणता के विषय में आक्षेप को उठा रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय के (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **यथा वा स्तोत्रम्** जैसा स्तोत्र होता है **एवं शस्त्रम्** वैसा ही शस्त्र भी होना चाहिए। **सामगाः आग्नेयीषु स्तुवते** साम का गायन करने वाले अग्नि देवता वाली (ऋचाओं) स्तुति करते हैं और **होता वायव्याः प्रतिपद्यते** (होता) वायु देवता वाली (ऋचाओं) का प्रतिपादन करते हैं, पुनः **कथम्** तो किस प्रकार से **अस्य आग्नेयः** इस अग्नि से सम्बन्धित ऋचाओं के **अनुशस्ताः भवन्ति** (होता द्वारा सम्पादित वायु देवताक ऋचाएँ) अनुकूल होती हैं?

सा० भा०—सामगानां यान्याज्यस्तोत्राणि तत्र ऋच आग्नेय्य आम्नाताः। 'अग्न आ याहि'[1] इत्यादिषु सामगैराज्यस्तोत्रपाठात्।[2] होता तु 'वायवा याहि'[3] इत्यनया वायव्या प्रउगशस्त्रं प्रारभते। अतोऽनेन विलक्षणदेवताकेन शस्त्रेणाऽऽग्नेय्य ऋचः कथमनुशस्ता भवन्ति? अनुकूलशंसनाभावे स्तुतमनुशंसतीति[4] शाखान्तरं विरुध्येतेत्याक्षेपः।।

तस्योत्तरं दर्शयति—

अग्नेर्वा एताः सर्वास्तन्वो यदेता देवताः ।।२।।

---

(१) ऋ० ६.१६.१०। उ०आ० १.१.४-७। (२) ता०ब्रा० २.४-६;७.२;११.२.३। (३) ऋ० ५.५१.५। (४) ता०ब्रा० ९.८.१०।

हिन्दी—(पूर्वोक्त आक्षेप का समाधान दिखला रहे हैं—) **यद् एताः देवताः** जो ये देवता हैं **एताः सर्वे** ये सभी **अग्नेः तन्वः** अग्नि के ही शरीरभूत **भवन्ति** होते हैं।

सा० भा०—सप्तसु तृचेषु य एता वाय्वादयो देवता: प्रतीयन्ते ता: सर्वा अग्नेरेव शरीरभूता:। अतोऽग्निविषयमेव कृत्स्नं शस्त्रं संपद्यत इति स्तोत्रगता आग्नेय्य ऋचोऽनुशस्ता भवन्ति।।

अग्ने: प्रथमतृचप्रतिपादिताया वायुदेवताया: स्वरूपं दर्शयति—

स यदग्निः प्रवानिव दहति; तदस्य वायव्यं रूपं, तदस्य तेनानुशंसति ।।३।।

हिन्दी—(प्रथम तृच में प्रतिपादित वायुदेवता की अग्नि से सरूपता को दिखला रहे हैं—) **सः अग्निः** वह अग्नि **यत् प्रवानिव दहति** जो प्रकृष्ट रूप से जलती है **तद् अस्य वायव्यं रूपम्** वह इस अग्नि का वायु से सम्बन्धित रूप है। **तत् तेन** इस (प्रउगशस्त्र) से होता **अस्य** इस (अग्नि) का **तेन** उस (वायु रूप) से **अनुशंसति** अनुशंसन करता है।

सा० भा०—प्रवानिव प्रकर्षवानेव सन्नधिकज्वालया दहत्यग्निरिति यदस्ति तत्प्रकर्षात्मकं वायुसंबन्धिरूपम्। वायुना ज्वालाऽऽधिक्योदया। अतोऽस्य प्रउगशस्त्रस्य संबन्धिना वायुरूपेणायं होता तदग्निरूपमनुशंसति।।

द्वितीयतृचप्रतिपादिताया इन्द्रवायुदेवताया: सारूप्यं दर्शयति—

(द्वितीयतृचे इन्द्रवायुदेवतायाः सारूप्यप्रदर्शनम्)

अथा यद्द्वैधमिव कृत्वा दहति, द्वौ वा इन्द्रवायू, तदस्यैन्द्रवायवं रूपं, तदस्य येनानुशंसति ।।४।।

हिन्दी—(द्वितीय तृच में प्रतिपादित इन्द्र और वायु देवता की अग्नि से सरूपता को दिखला रहे हैं—) **यद् द्वैधम् इव कृत्वा ज्वलति** अग्नि जो दो प्रकार से (ज्वालाओं को) करके जलता है तो **द्वौ एव इन्द्रवायू** इन्द्र और वायु दो देवता हैं। **तद् अस्य इन्द्रवायवं रूपम्** इस प्रकार इस (अग्नि) का इन्द्र और वायु रूप है। **तद्** तो **येन** जिस तृच से अग्नि के (दो रूपों का) **अनुशंसति** अनुशंसन करता है।

सा० भा०—ज्वालाद्वयमिव[१] कृत्वा यदा दहति तदा द्वित्वसाम्यात् तज्ज्वालाद्वयमिन्द्रवायुसंबन्धि रूपं भवति। अन्यत् पूर्ववत्।।

तृतीयतृचे सारूप्यं दर्शयति—

(तृतीयतृचे मैत्रावरुणसारूप्यम्)

अथ यदुच्च ह्रष्यति नि च ह्रष्यति तदस्य मैत्रावरुणं रूपं, तदस्य

---

(१) 'द्वैध कृत्वाऽग्नया रूपेण द्वेधा भूत्वा दहति—इति गोविन्दस्वामी।

तेनानुशंसति ।।५।।

हिन्दी—(तृतीय तृच में मित्र और वरुण की सरूपता को दिखला रहे हैं—) **यद् उच्च हृष्यति** जो (यह अग्नि की ज्वाला) ऊपर की ओर हर्ष के साथ उठती है और **नि च हृष्यति** नीचे की ओर जाती है। **तद् अस्य मैत्रावरुणं रूपम्** तो वह इस (अग्नि) का मित्र और वरुण का रूप है। **तद् तेन अस्य अनुशंसति** इस (तृच) से इस (अग्नि के) रूप की अनुशंसा करता है।

सा० भा०—ज्वलतोऽग्नेरौन्नत्यमुद्धर्षः। ज्वालाशान्त्या नीचत्व[१] निहर्षः।[२] तदुभयं मित्रावरुणसंबन्धि रूपम्। मित्रं दृष्टवतौ हर्षेणोन्नतत्वात् तन्मित्ररूपम्। वरुणसंबन्धिनीनामपां नीचगामित्वाद् इतरद् वरुणस्य रूपम्। तदीयतृचेनाग्निरनुशस्तो भवति।।

तत्रैव युक्त्यन्तरमाह—

स यदग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपं, तं यद्घोरसंस्पर्शं सन्तं मित्रकृत्येवोपासते, तदस्य मैत्रं रूपं, तदस्य तेनानुशंसति ।।६।।

हिन्दी—(तृतीय तृच में अन्य युक्ति को कह रहे हैं—) **सः यद् अग्निः घोरसंस्पर्शः** जो यह अग्नि का उष्ण स्पर्श है **तद् अस्य वारुणं रूपम्** वह इस (अग्नि) का वरुण सम्बन्धी रूप है और **तं यद् घोरसंस्पर्श सन्तम्** जो उस (अग्नि) का उष्ण स्पर्श होता हुआ **मित्रकृत्या इव उपासते** मित्र के समान (तापने के लिए) बैठते हैं **तद् अस्य मैत्रं रूपम्** वह इस (अग्नि) का मित्र से सम्बन्धित रूप है। **तद् अस्य तेन अनुशंसति** तो इस (अग्नि) का उस (मैत्रावरुण रूप) से अनुशंसन करता है।

सा० भा०—सोऽग्निर्घोरसंस्पर्श उष्णसंस्पर्श इति यदस्ति तदस्याग्नेर्वरुणसंबन्धि रूपं वरुणस्योग्रत्वात्। घोरसंस्पर्शं सन्तं स्प्रष्टुमशक्यमपि तमग्निं शीतार्ताः प्राणिनो मित्रकृत्या मित्रस्य कृतिः कार्यं समीपेऽवस्थानं तेनैवैनमुपासते शीतपरिहाराय हस्तावुदरं पृष्ठं च वह्निसमीपे प्रतापयन्तो वह्निं सेवन्ते। तदेतत् सेवनमस्याग्नेर्मित्रसंबन्धि रूपम्। ततोऽस्याग्नेः संबन्धिना तेन मैत्रावरुणरूपेणायं होता वह्निमनुशंसति।।

चतुर्थतृचे सारूप्यं दर्शयति—

(चतुर्थतृचे अश्विन्द्वयसारूप्यम्)

अथ यदेनं द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यामरणीभ्यां मन्थन्ति, द्वौ वा अश्विनौ, तदस्याऽऽश्विनं रूपं, तदस्य तेनानुशंसति ।।७।।

---

(१) 'ज्वालया अत्यन्तनीचत्वम्' इति वा पाठः।

(२) 'यस्मादयमग्निर्दाहारम्भे दाह्यसंयोगाद् उदधृष्यति ऊर्ध्वज्वालो भवति। अथ भस्मीकृतदाह्यो निहृष्यति निभृतज्वालो भवति'—इति भट्टभास्करः।

हिन्दी—(चतुर्थ तृच में अश्विन्द्वय की सरूपता को दिखला रहे हैं—) **यद् एनम्** जो इस (अग्नि) को **द्वाभ्यां बाहुभ्याम्** दो भुजाओं से और **द्वाभ्याम् अरणीभ्याम्** दो अरणियों से **मन्थन्ति** मन्थन करते हैं। **द्वौ वै अश्विनौ** अश्विन् भी दो ही है। **तत्** तो **तेन** उस (तृच) से **अस्य** इस (अग्नि के) (अश्विन् रूप) का **अनुशंसति** अनुशंसन करता है।

सा० भा०—आश्विनोर्द्वित्वाद्धस्तद्वयेनारणिद्वयेन च मन्थमस्याग्नेराश्विनं रूपम्।।

पञ्चमतृचे सारूप्यं दर्शयति—

(**पञ्चमतृचे इन्द्रसारूप्यम्**)

अथ यदुच्चैर्घोष स्तनयन् बबबा कुर्वन्निव दहति, यस्माद् भूतानि विजन्ते, तदस्यैन्द्रं रूपं, तदस्य तेनानुशंसति ।।८।।

हिन्दी—(पञ्चम तृच में इन्द्र की सरूपता को दिखला रहे हैं—) **यद् उच्चैः घोषः स्तयन्** जो (अग्नि) ऊँची ध्वनि करता हुआ और **बबबा कुर्वन् इव** बबबा ध्वनि करते हुए **दहति** जलता है, **यस्मात्** जिस कारण से **भूतानि विजन्ते** प्राणी (उससे) भयभीत होते हैं, **तत् अस्य ऐन्द्रं रूपम्** वह इस (अग्नि) का इन्द्र-सम्बन्धी रूप है अतः **तेन** उस (तृच) से **अस्य** इस (अग्नि के इन्द्र रूप) का **अनुशंसति** अनुशंसन करता है।

सा० भा०—स्तनयन् ध्वनिं कुर्वन्। स एव ध्वनिस्त्रिभिर्बकारैरनुक्रियते। यत ईदृशाद् ध्वनिसहिताद् अग्ने रूपाद् भूतानि प्राणिनो विजन्ते बिभ्यति। तद्भयकारणध्वनिसहितामिन्द्रस्य सङ्ग्रामार्थमास्फोटनं कुर्वतः शत्रुभयकारिणो रूपम्।।

षष्ठतृचे सारूप्यं दर्शयति—

(**षष्ठतृचे वैश्वदेवसारूप्यम्**)

अथ यदेनमेकं सन्तं बहुधा विहरन्ति, तदस्य वैश्वदेवं रूपं, तदस्य तेनानुशंसति ।।९।।

हिन्दी—(षष्ठ तृच में विश्वेदेवा की सरूपता को दिखला रहे हैं—) **यद् एकं सन्तम्** जो एक होते हुए भी **अनेकं बहुधा विहरन्ति** अनेक प्रकार से प्रज्वलित करते हैं **तद् अस्य वैश्वदेवं रूपम्** वह इस (अग्नि) का विश्वेदेव रूप है। **तेन** उस (तृच) से **तस्य** उस (अग्नि के वैश्वदेव रूप) का **अनुशंसति** अनुशंसन करता है।

सा० भा०—अग्नेराहवनीयादिस्थानेष्वाग्नीध्रादिधिष्ण्येषु त बहुधा विहरणं[१] यदस्ति तद्विश्वेषां देवानां रूपं तेषामपि बहुत्वात्।।

सप्तमतृचे सारूप्यं दर्शयति—

---

(१) 'एकमौपासनं गार्ह्यं बहून् श्रौता हि कुर्वते।।' इति षड्गुरु०। 'एकं सन्तं बहुधा नानादेशेषु पाकाद्यर्थं विहरन्ति'—इति गोविन्दस्वामी।

(सप्तमतृचे सारस्वतसारूप्यम्)

अथ यत् स्फूर्जयन् वाचमिव वदन् दहति, तदस्य सारस्वतं रूपं, तदस्य तेनानुशंसति ।।१०।।

हिन्दी—(सप्तम तृच में सरस्वती की सरूपता को दिखला रहे हैं—) **यत् स्फूर्जयन् वाचम् इव वदन्** जो स्फूर्जित होती हुई (मनुष्य के समान) विलक्षण ध्वनि करती हुई **दहति** जलती है **तद् अस्य** वह (अग्नि) का **सारस्वतं रूपम्** सरस्वती से सम्बन्धित रूप है। **तद् अस्य** वह इस (सरस्वती से सम्बन्धित अग्नि के रूप) का **तेन** उस (तृच) से **अनुशंसति** अनुशंसन करता है।

सा० भा०—यथा जनो वाचं वदति, तथैवाग्निः स्फूर्जयति, ईषद्विच्छिद्य विलक्षणोच्चारणमिव शब्दं करोति।[1] तदेतद् वागुच्चारणसदृशं ध्वनिकरणं सरस्वतीसंबद्धं रूपम्।।

इत्थमग्नेर्वाय्वादिदेवतानां च सारूप्यद्वाराऽनुशंसनमुपपाद्योपसंहरति—

एवमु हास्य वायव्ययैव प्रतिपद्यमानस्य तृचेन तृचेनैवैताभिर्देवताभिः स्तोत्रियोऽनुशस्तो भवति ।।११।।

हिन्दी—(अब उपसंहार कर रहे हैं—) **एवमु** इस प्रकार **वायव्यया एव प्रतिपद्यमानस्य अस्य** वायु देवता वाली (ऋचाओं) से प्रारम्भ करने वाले इस होता का **तृचेन तृचेन** प्रत्येक तृच से प्रतिपादित **एताभिः देवताभिः** इन देवताओं द्वारा **स्तोत्रियः** स्तोत्र सम्बन्धी (अग्नि देवता वाले तृच) के **अनुशस्तः भवति** अनुकूल होता है।

सा० भा०—'एवमु ह' अनेनैवोक्तप्रकारेण 'वायवा याहि' इत्येतया वायुदेवताकयैवर्चा शस्त्रं प्रारभमाणस्य होतुस्तेन तेनोक्ततृचेनैव प्रतिपादिताभिर्वाय्वादिदेवताभिरग्निसदृशीभिः स्तोत्रियः स्तोत्रसंबन्धी तृचो 'अग्न आयाहि'[2] इत्यादिक आग्नेयोऽप्यनुशस्तो भवति। तस्यानुष्ठानं यथा भवति तथा प्रउगशस्त्रमनुष्ठितं भवतीत्यर्थः।।

अथ शस्त्रयाज्यां विधत्ते—

(शस्त्रस्य याज्याविधानम्)

'विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना। पिबा मित्रस्य धामभिः'[3] इति वैश्वदेवमुक्थं शस्त्वा वैश्वदेव्या यजति, यथाभागं तद्देवताः प्रीणाति ।।१२।।

हिन्दी—(अब प्रउगशस्त्र की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **वैश्वदेवम् उक्थं शस्त्वा** विश्वे देवों से सम्बन्धित स्तुति का शंसन करके **वैश्वदेव्या यजति** (होता) इस

(१) 'स्फूर्जयन् दाह्यं वस्तु निष्पिषन्'—इति भट्टभास्करः।
(२) उ०आ० १.१.१-७। (३) ऋ० १.१४.१०।

विश्वेदेवों से सम्बन्धित (ऋचा) से यजन (याज्या) करता है और **यथाभागम्** अपने भाग के अनुसार **देवताः प्रीणाति** सभी देवताओं को प्रसन्न करता है। मन्त्रार्थ—**'अग्ने'** हे अग्नि! **विश्वेभिः** सभी (देवताओं) के साथ **इन्द्रेण वायुना** विशेषरूप से इन्द्र और वायु के साथ तथा **मित्रस्य धामभिः** मित्र के स्थानों के साथ **सोम्यं मधु** मधुर सोम का **पिब** पान करो' इति।

सा० भा०—हे अग्ने विश्वेभिः सर्वैर्देवैः सह विशेषत इन्द्रेण वायुना च सह तथा मित्रस्य धामभिः स्थानैर्युक्तः सन् सोम्यं मधु सोमसंबन्धिन' मधुरं रसं पिब। 'विश्वेभिः' इत्यादिका सेयमृग्वैश्वदेवी तया यजति तां याज्यां पठेत्।[१] कदा पठेदिति, तदुच्यते—वैश्वदेवं बहुदेवताकमुक्थं शस्त्रं प्रउगनामकं शस्त्वा पश्चात् पठेत्। तथा सति स्वस्वभागमनतिक्रम्य सर्वा देवतास्तर्पयति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—अथ शस्त्रयाज्यान्ते पठनीयं वषट्कारं विधत्ते—

(शस्त्रयाज्यान्ते पठनीयवषट्कारविधानम्)

देवपात्रं वा एतद् यद् वषट्कारो वषट्करोति, देवपात्रेणैव तद्देवतास्तर्पयति ।।१।।

हिन्दी—(अब प्रउगशस्त्र की याज्या के अन्त में शंसनीय वषट्कार का विधान कर रहे हैं—) **यद् वषट्कारः** जो वषट्कार (वौषट्) है, **एतद् वै देवपात्रम्** यह देवपात्र है। अतः **वषट्करोति** वषट्कार करता है। **तत्** इस (वषट्कार) से **देवपात्रेण वै** देवपात्र के द्वारा ही **देवताः तर्पयति** देवताओं को तृप्त करता है।

सा० भा०—वौषडिति मन्त्रो वषट्कारः। स च देवपात्रं देवानां पानसाधनम्। तस्माद् वषट्कुर्याद् वौषडित्येव पठेत्। तथा सति देवानामुचितेनैव पानसाधनेन सर्वा देवतास्तर्पयतीति॥

तत ऊर्ध्वं पठनीयमनुषट्कारमन्त्रं विधत्ते—

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.१०.१०। 'याज्यान्तानि शस्त्राणि'—इति च तत्रैव तदुत्तरम (५.१०.२१)।

(वषट्कारान्ते पठनीयानुवषट्कारविधानम्)

अनुवषट्करोति, तद् यथाऽदोऽश्वान् वा गा वा पुनरभ्याकारं तर्पयन्त्येवमेवैतद्देवताः पुनरभ्याकारं तर्पयन्ति यदनुवषट्करोति ।। २।।

हिन्दी—(वषट्कार के बाद पठनीय अनुवषट्कार मन्त्र का विधान कर रहे हैं—) **अनुवषट्करोति** (वषट्कार के बाद) अनुवषट् करता है। **यथा** जिस प्रकार (लोक में लोग) **अश्वान् वा गाः वा** (अपने-अपने) अश्वों अथवा गायों को **पुनः अभ्याकारं तर्पयन्ति** बार-बार (घास, जल इत्यादि द्वारा) अभिमुख करके तृप्त करते हैं, **एवमेव** उसी प्रकार **यद् अनुवषट्करोति** जो अनुवषट् करता है **एतद् देवताः** इस (अनुवषट् से) देवताओं को **पुनः अभ्याकारम्** बार-बार अभिमुख करके **तर्पयन्ति** तृप्त करता है।

सा० भा०—'सोमस्याग्ने वीहि' इत्ययं मन्त्रोऽत्रानुवषट्कारः तं पठेत्।[१] तत्र लोकेऽदः[२] किञ्चिदिदं निदर्शनमस्ति। कथमिति, तदुच्यते—यथा मनुष्याः स्वकीयानश्वान् वा स्वकीया गा वा पुनरभ्याकारं पौनःपुन्येन तृणोदकादिभिरभिमुखीकृत्याभिमुखीकृत्य तर्पयन्ति, कण्डूयनेन प्रियशब्देन वा लालयित्वा यथेष्टघासं प्रयच्छन्ति, एवमेवैतेनानुवषट्कारेण पुनःपुनर्देवता अभिमुखीकृत्य यजमानो हविषा तर्पयति।।

अनुवषट्कारप्रशंसार्थं चोद्यमुद्भावयति—

(अनुवषट्कारप्रशंसनम्)

इमानेवाग्नीनुपासत इत्याहुर्धिष्ण्यान्, अथ कस्मात् पूर्वस्मिन्नेव जुह्वति, पूर्वस्मिन् वषट्कुर्वन्तीति ।। ३।।[३]

हिन्दी—(अब अनुवषट्कार की प्रशंसा के लिए प्रश्न को उठा रहे हैं—) **इमान् धिष्ण्यान्** इन (सोममध्यवर्ती) धिष्ण्यों के समीप **अग्नीन् उपासत** (आग्नीध्र इत्यादि) अग्नियों की केवल सेवा करते हैं—**इत्याहुः** ऐसा कहा गया है। **अथ कस्मात्** तो किस कारण से **पूर्वस्मिन् एव** पहले वाली ही (उत्तरवेदि पर स्थित अग्नि) में **जुह्वति** (ऋत्विक्) होम करते हैं और **अनुवषट्कुर्वन्ति** अनुवषट्कार करते हैं।

सा० भा०—सोममध्यवर्तिषु धिष्ण्येष्वाग्नीध्राद्यग्नयो ये विहितास्तानग्नीनृत्विजः समीपे स्थित्वोपासत एव सेवन्त एव केवलं न तु तेषु जुह्वति नापि वषट्कुर्वन्ति। पूर्वस्मिन्नेवोत्तरवेदिस्थितेऽग्नावृत्विजो जुह्वति नापि वषट्कुर्वन्ति। पूर्वस्मिन्नेवोत्तरवेदिस्थितेऽ-

(१) आश्व०श्रौ० ५.१३.६।
(२) 'अदः' 'इति वक्ष्यमाणपरामर्शः'—इति षड्गुरुशिष्यः। 'अद इति सर्वनाम्ना लोकप्रसिद्धिं दर्शयति'—इति भट्टभास्करः।
(३) 'चोद्यस्वरूपप्रदर्शनार्थो द्वितीय इतिकरणः। चोद्यत्वहेतुप्रदर्शनार्थः प्रथमः इतिकरणः'—इति भट्टभास्करः।

ग्नावृत्विजो जुह्वति च तत्रैव वषट्कुर्वन्ति च। अथैवं सति धिष्ण्यगतानामग्नीनां प्रीतिर्नास्ति। कस्मादेवं वैषम्यं क्रियत? इति चोद्यवादिन आहुः॥

तत्रोत्तरं दर्शयति—

यदेव सोमस्याग्ने वीहीत्यनुवषट्करोति तेन धिष्ण्यान् प्रीणाति।।४।।

हिन्दी—(अब उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर दिखला रहे हैं—) **यदेव** जो कि **'अग्ने** हे अग्ने **सोमस्य वीहि** सोमरस का पान करो' **इति अनुवषट् करोति** यह अनुवषट् करता है **तेन** उससे **धिष्ण्यान् प्रीणाति** धिष्ण्य (अग्नियों) को प्रसन्न करता है।

सा० भा०—हे अग्न इति जात्याकारेणाग्निं संबोध्य सोमस्य सोमरसं वीहि पिबेत्येवं मन्त्रेण होताऽनुवषट्करोतीति यदस्ति तेन धिष्ण्यानग्नीन् होता तर्पयति। तस्मान्न वैषम्यम् ॥

प्रकारान्तरेण प्रशंसितुं पुनश्चोद्यद्वयम् उद्भावयति—

(प्रकारान्तरेणानुवषट्कारप्रशंसनम्)

असंस्थितान् सोमान् भक्षयन्तीत्याहुर्येषां नानुवषट्करोति, को नु सोमस्य स्विष्टकृद्भाग इति ।।५।।

हिन्दी—(अब प्रकारान्तर से अनुवषट् की प्रशंसा करने के लिए प्रश्न को उद्भावित कर रहे हैं—) **येषां अनुवषट् न करोति** जिन दो देवों के (ग्रह) के लिए होता अनुवषट् नहीं करता है उन **असंस्थितान् सोमान्** असंस्थित सोमों का **भक्षयति** (ऋत्विक् लोग) भक्षण करते हैं—**इत्याहुः** यह कहा गया है और (दर्शपूर्णमास आदि में स्विष्टकृत भाग से पूर्व हवि के संस्कार के लिए) **को नु सोमस्य स्विष्टभाक्** सोम (के संस्कार) के लिए कौन सा स्विष्टभाक् होता है?

सा० भा०—'येषां' द्विदेवत्यग्रहाणामर्थे होता नानुवषट्करोति, ते द्विदेवत्याः सोमा 'असंस्थितः' असमाप्ताः; देवतार्थहोमस्यासमाप्तौ कथमृत्विजस्तान् द्विदेवत्यान् भक्षयन्ति? इत्येके चोद्यमाहुः[१]। दर्शपूर्णमासादिषु स्विष्टकृद्भागेन ततः पूर्वेषां हविषां संस्कारो भवति। ततः सोमस्यापि संस्काराय को नाम स्विष्टकृद्भागः? इति द्वितीयं चोद्यम्॥

तत्रोत्तरमाह—

यद्वाव 'सोमस्याग्ने वीहि' इत्यनुवषट्करोति, तेनैव संस्थितान् सोमान् भक्षयन्ति, स उ एव सोमस्य स्विष्टकृद्भागो वषट्करोति ।।६।।

---

(१) 'ऋतुयाजान् द्विदेवत्यान्' (आश्व०श्रौ० ५.५.२१) इत्यादियज्ञगाथादर्शनाद् येषामृतुयाजद्विदेवत्यपात्नीवतादित्यग्रहसावित्रग्रहाणां नानुषट्करोति होत्रादिः; तान् असंस्थितान् असमाप्तान् किमिति भक्षयन्तीत्येकं चोद्यम्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

हिन्दी—(उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर कह रहे हैं—) यद् वाव जो कि 'सोमस्याग्ने वीहि' अर्थात् हे अग्नि सोम का पान करो'—इति अनुवषट्करोति यह अनुवषट् करता है, तेनैव उसी (अनुवषट्कार) से संस्थितान् सोमान् भक्षयन्ति संस्थित सोमों का पान करते हैं और सः उ एव वही सोमस्य स्विष्टकृद्भागः स्विष्टकृद्भाक् है अतः वषट्करोति वषट्कार करता है।

सा० भा०—मन्त्रे सोमस्येति जातिमात्रमुद्दिश्यानुवषट्करोतीति यदेवास्ति तेनैवानुषट्काररहिता द्विदेवत्यादयः सर्वे सोमाः संस्थिताः समाप्ताः। तस्मात् संस्थितानेव द्विदेवत्यानृत्विजो भक्षयन्ति। 'स उ' एव यथोक्तोऽनुवषट्कार एव सोमस्य स्विष्टकृद्भागः। अतो वषट् करोति। उक्तस्य सर्वस्य प्रयोजनस्य सिद्ध्यर्थमनुवषट्कुर्यादित्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—अथ वषट्कारमाश्रित्यैवाभिचारप्रयोग उच्यते—

(वषट्कारमाश्रित्याभिचारप्रयोगः)

वज्रो वा एष यद्वषट्कारो यं द्विष्यात् तं ध्यायेद् वषट्करिष्यंस्तस्मिन्नेव तं वज्रमास्थापयति ॥१॥

हिन्दी—(वषट्कार द्वारा अभिचार-प्रयोग को कह रहे हैं—) यद् वषट्कारः जो वषट्कार है एषः व्रजः वै यह वज्रस्वरूप है। अतः वषट्करिष्यन् वषट्कार करता हुआ तं ध्यायेत् उस (व्यक्ति) का ध्यान करे, यं द्विष्येत् जिससे द्वेष करता है। तस्मिन्नेव उस ध्यान से ही तम् उस द्वेष करने वाले को वज्रम् आस्थापयति वज्र का प्रहार हो जाता है।

सा० भा०—वषट्कारस्य वज्ररूपत्वात् तत्कालध्याने च द्वेष्ये वज्रप्रहारो भवति॥

अथ वौषडित्यस्य वषट्कारस्योत्तरभागं प्रशंसति—

(वौषडित्यस्य प्रशंसनम्)

षळिति वषट्करोति, षड्वा ऋतव ऋतूनेव तत्कल्पयत्यृतून्

प्रतिष्ठापयत्यृतून् वै प्रतितिष्ठत इदं सर्वमनु प्रतितिष्ठति यदिदं किञ्च ।।२।।

हिन्दी—(अब वषट्कार के उत्तरभाग 'वौषट्' की प्रशंसा कर रहे हैं—) **षडिति** षट् इस शब्द से **वषट् करोति** वषट्कार करता है। **षड् वा ऋतवः** ऋतुएँ छः होती हैं। **तत्** इस (वषट्कार) से **ऋतून् एव कल्पयति** ऋतुओं को ही समर्थ बनाता है और **ऋतून् प्रतिष्ठापयति** ऋतुओं को स्थिर करता है। **ऋतून् एव प्रतितिष्ठते** ऋतुओं को ही प्रतिष्ठित करता है और **यदिदं किञ्च** यह जो कुछ भी है **इदं सर्वम्** उन सभी को **अनुप्रतितिष्ठति** बाद में प्रतिष्ठित कर देता है।

सा० भा०—षडित्यनेन मन्त्रभागेन वसन्तादिषड्तुसंख्याया बुद्धिस्थत्वाद् 'ऋतून् कल्पयति'[१] स्वस्वप्रयोजनसमर्थान् करोति। तावतर्तवो व्याकुलतामन्तरेण प्रतितिष्ठति तत् प्रतिष्ठाम् 'अनु' स्थावरजङ्गमरूपं जगत् सर्वं स्वस्वभागे प्रतिष्ठितं भवति।।

तत्प्रतिष्ठार्थं प्रामाणिकपुरुषवचनोदाहरणेन द्रढयति—

प्रतितिष्ठति य एवं वेद, तदु ह स्माऽऽह हिरण्यदन् बैदः, एतानि वा एतेन षट् प्रतिष्ठापयति, द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता अन्तरिक्षं पृथिव्याम्, पृथिव्यप्स्वापः सत्ये, सत्यं ब्रह्मणि, ब्रह्म तपसीत्येता एव तत्प्रतिष्ठाः[२] प्रतितिष्ठन्तोरिदं सर्वमनु प्रतितिष्ठति यदिदं किञ्च, प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(उसकी प्रतिष्ठा को प्रामणिक पुरुष के वचन के उदाहरण द्वारा दृढ़ कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **प्रतितिष्ठति** स्थिर हो जाता है- **हिरण्यदन् बैदः तदु ह आह** इस प्रकार बिद के पुत्र (सुवर्ण के समान दाँतों वाले) हिरण्यदन्त (नामक) ऋषि ने कहा है। **एतानि वा षड् एतेन प्रतिष्ठापयति** इन (द्युलोक ले लेकर ब्रह्म तक के) छः स्थानों को (होता) इस (वषट्कार) से स्थिर करता है। **द्यौ अन्तरिक्षं प्रतिष्ठिता** द्युलोक अन्तरिक्ष लोक में प्रतिष्ठित है, **अन्तरिक्षं पृथिव्याम्** अन्तरिक्ष पृथिवी में, **पृथिवी अप्सु** पृथिवी जलों में, **आपः सत्ये** जल सत्य में, **सत्य ब्रह्मणि** सत्य वेद में और **ब्रह्म तपसि** वेद तप में (प्रतिष्ठित है)। **एताः एव** ये ही **तत्प्रतिष्ठाः** उस (वषट्कार) की प्रतिष्ठा है। **प्रतितिष्ठन्तः** प्रतिष्ठित ये सभी (पृथिवी) इत्यादि **प्रतितिष्ठति** एकत्र ही प्रतिष्ठित हैं। तत्पश्चात् **यदिदं किञ्च** जो यह सब कुछ (जगत्)

(१) 'सम्पतिः क्लृप्तिः'—इति षड्गुरु०। कल्पनमविपर्यस्तधर्मत्वम्' इति भट्टभास्करः।

(२) 'अत्र यद्यप्यन्तरिक्षादीनामेव प्रतिष्ठात्वं ब्राह्मणेनोच्यते, तथापि द्युलोकस्यापि देवानां प्रतिष्ठात्वात् प्रतिष्ठेति द्युप्रभृतयः षडुच्यन्ते। तपसस्तु सप्तमस्य सत्यस्य सर्वप्रतिष्ठात्वे तस्य होत्रा क्वचिदप्रतिष्ठापनीयत्वात् तद् व्यतिरेकेण षड् गृह्यन्ते'—इति भट्टभास्करः।

है **सर्वम्** वह सम्पूर्ण **प्रतितिष्ठति** प्रतिष्ठित होता है। **यः एवं वेद** जो यह जानता है। वह **प्रतितिष्ठति** प्रतिष्ठित होता है।

सा० भा०—हिरण्यमया दन्ता यस्यासौ हिरण्यदन्। बिदस्य पुत्रो बैदः तादृशो मुनिः 'तदु ह' तदेव वचनमाह स्म। किं वचनमिति? तदुच्यते–एतान्येव द्युलोकादीनि ब्रह्मान्तानि षट्स्थानानि यानि सन्ति, तान्येवैतेन वषट्कारेण होता प्रतिष्ठापयति। तत्र द्युलोकस्याधस्तादन्तरिक्षं, तस्मादन्तरिक्षे द्युलोक आश्रितः। तच्चान्तरिक्षं पृथिव्यामाश्रितम्। पृथिवी चाधोवर्तिनीष्वप्स्वाश्रिता। आपश्च सत्ये समाश्रिताः, जनेषु सत्यवादिषु सत्सु यथाकालं वृष्टिसंभवात्। सत्यं 'ब्रह्मणि' वेदे प्रतिष्ठितम्। ईदृशमाचरणं सत्यमिति वेदेनैवावगमात्। वेदस्तपसि[1] वषट्कारमन्त्रानुष्ठानरूपे प्रतिष्ठितः। वेदस्यानुष्ठानप्रतिपादनार्थत्वात्। 'इति' अनेन प्रकारेणैता द्युलोकादय एव यथावत्तेन वषट्कारेण यदा परस्परप्रतिष्ठिता भवन्ति तदानीं प्रतिष्ठारूपास्ताः पृथिव्याद्या एकैकत्र प्रतिष्ठिताः सन्ति। ता अनु पश्चाद्यदिदं किञ्च जगदस्ति, तत्सर्वं प्रतितिष्ठति। य एवं वेदिता स च प्रतितिष्ठति॥

अथ वषट्कारमन्त्रस्य पूर्वोत्तरभागावुभौ प्रशंसति—

(वषट्कारमन्त्रस्य पूर्वोत्तरभागयोः प्रशंसनम्)

वौषळिति[2] वषट्करोत्यसौ वाव वावृतवः षळेतमेव तदृतुष्वादधात्यृतुषु प्रतिष्ठापयति, यादृगिव वै देवेभ्यः करोति तादृगिवास्मै देवाः कुर्वन्ति ॥४॥

हिन्दी—(अब वषट्कार मन्त्र के पूर्व और उत्तर भाग की प्रशंसा कर रहे हैं—) **वौषट् इति वषट् करोति** वौषट् इस शब्द से वषट्कार करता है। **असौ वा वौ** (वौषट् में) 'वौ' यह उस आदित्य का बोधक है और **ऋतवः षट्** 'षट्' (छः) ऋतुओं का बोधक है। **तत्** इस (वौषट् के पाठ से) **एतम्** इस (वौ से अभिधेय आदित्य) को **ऋतुषु आदधाति** ऋतुओं में स्थापित करता है। और **ऋतुषु प्रतिष्ठपयति** ऋतुओं में स्थिर कर देता है। इस प्रकार **यादृक् इव देवेभ्यः करोति** (होता) जिस प्रकार (प्रतिष्ठा को) देवताओं के लिए करता है **तादृक् इव देवाः अस्मै कुर्वन्ति** वैसा ही देवता इस (होता के यजमान) के लिए (प्रतिष्ठारूप प्रयोजन) को करते हैं।

सा० भा०—मन्त्रे पूर्वभागो वौशब्दो निपातत्वाद् 'वि गतिप्रजन' इत्यादिधातुजत्वाद्[3]

---

(१) 'तपः परमं ज्योतिः ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसः' इति यथा प्रतिष्ठितम् —इति इति षड्गुरु०। 'परस्मिंस्तेजसि ईश्वरशरीरे' इति भट्टभास्करः।

(२) 'वौ३षडिति वषट्कारः'—इति आश्व०श्रौ० १.५.१५। 'ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड'—इति (पा०सू० ८.२.९१) प्लुतिः।

(३) 'वी गतिव्याप्तिप्रजनकान्त्यनखादनेषु'—इति धा०पा० अदा०प० ३८।

वा गमनस्वभावमादित्यमभिधत्ते[१]। तदेतदभिप्रेत्यासौ वाव 'वौ'—इत्युक्तम्।[२] वसन्ताद्याः 'ऋतवः' संख्यावशात् षट् इत्यभिधीयन्ते। तन्मन्त्रपाठेनैतमेव वौशब्दाभिधेयमादित्यं षट्शब्दाभिधेयेष्वृतुष्वादधाति। न केवलमाधानमात्रं किंतु तेष्वृतुषु प्रतिष्ठापयति स्थैर्येणावस्थापयति।[३] एवं सत्यसौ होता देवेभ्यो यादृशमेव प्रयोजनं करोति, तादृशमेव प्रतिष्ठारूपं प्रयोजनम् 'अस्मै' होत्रे, तद् द्वारेण यजमानाय देवाः कुर्वन्ति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—अथ फलविशेषार्थं वषट्कारस्यावान्तरभेदानाह—

(फलविशेषाय वषट्कारस्यावान्तरभेदनिरूपणम्)

त्रयो वै वषट्कारा वज्रो धामच्छद् रिक्तः ।।१।।

हिन्दी—(अब फल-विशेष के लिए वषट्कार के अवान्तर भेदों को कह रहे हैं–)

---

(१) 'अत्र 'वौ' इति शब्देन सूर्योऽसौ कथ्यते कथम्।
'वेञो डिडश्च सोरर्थे सदा खे गतिमान् रविः॥ (उणा०सू० ४.७)
निघण्टौ पठ्यते चैवं 'विः पक्षिपरमात्मनोः।
(बैज०को० शेषकाण्ड पुल्लिङ्गाध्याये श्लो० ६०)—इति षड्गुरुशिष्यः

(२) 'वौ इति पदेन सप्तम्यन्तेनोच्यते। वेतेरौणादिकं डिप्रत्यये विरिति आकाशगामी आदित्य उच्यते। तत्र षड्तव उत्पद्यन्तामनेन यागेन इति समुदायार्थः। अस्यार्थस्य द्योतकः पदसमुदायात्मा निपातोऽयं द्रष्टव्यः। आदित्ये हि षड्तव उत्पद्यन्ते आदित्यगत्यधीनात्मलाभत्वाद् ऋतूनाम्। यद्वा, वौ आदित्ये जगतां धारयितरि षड्तवः सहायत्वेन वर्तन्ताम्'—इति भट्टभास्करः।

(३) 'एतमेव तदित्यादि। ननु विप्रतिषिद्धमिदं ब्राह्मणम्। आदित्य ऋतूनां स्थापनं मन्त्रेण प्रतिपाद्यते। आदित्यमेव ऋतुष्वादधाति इति ब्राह्मणेन कथमुच्यते? अयमभिप्रायः—नानेन वषट्शब्दस्यार्थोऽभिधीयते। अपि तु ईदृशस्य यागस्य फलमनेन ख्याप्यते इति व्याचष्टे। यस्मादादित्यस्योपकाराय तस्मिन् ऋतवः प्रतिष्ठाप्यन्ते तस्मात् प्रत्युपकारार्थमृतुष्वादित्यं प्रतिष्ठापयति। न केवलमृतूनामादित्ये स्थापनमेवानेन क्रियते, अपित्वादित्यस्याप्यृतुष्वास्थापमनेन वौषट्शब्देन प्रतिपाद्यते प्रत्युपकारपर्यन्तत्वान्महत्सूपकारस्य। एतदेव स्पष्टयति यादृगिव वा इत्यादि'—इति भट्टभास्करः।

वज्रः धामच्छद् रिक्तः वज्र, धामच्छद और रिक्त—**त्रयः वषट्काराः** ये तीन प्रकार के वषट्कार होते हैं।

सा० भा०—वज्र इति प्रथमस्य वषट्कारभेदस्य नामधेयम्। धामच्छदिति द्वितीयस्य। 'रिक्त' इति तृतीयस्य।।

तेषां मध्ये वज्रस्य स्वरूपं दर्शयति—

(वज्रनामकवषट्कारस्वरूपः)

स यमेवोच्चैर्बलि वषट्करोति स वज्रः ।।२।।

हिन्दी—(उन वषट्कारों में 'वज्र' नामक वषट्कार के स्वरूप को दिखला रहे हैं—) **सः** वह होता **यम्** जिस (वषट्कार मन्त्र) को **उच्चैः बलिः** ऊँची ध्वनि में और बल लगाकर करता है **सः वज्रः** वह (वषट्कार) वज्र है।

सा० भा०—स होता यमेव मन्त्रमुच्चैर्यथा भवति तथा, बलि[1] च यथा भवति तथा, वषट्क्ररोति, स मन्त्ररूपो वषट्कारो वज्र इत्युच्यते। अत्रोच्चैःशब्देन ध्वनेराधिक्यमुच्यते, बलिशब्देनाक्षरपारुष्यं तदुभययुक्तो वज्रः।।

तस्य प्रयोगं विधत्ते—

(वज्रनामकवषट्कारप्रयोगः)

तं तं प्रहरति, द्विषते भ्रातृव्याय वधं योऽस्य स्तृत्यस्तस्मै स्तर्तवै;
तस्मात् स भ्रातृव्यवता वषट्कृत्यः ।।३।।

हिन्दी—(वज्र नामक वषट्कार के प्रयोग को दिखला रहे हैं—) **यो अस्य स्तृत्यः** जो इस (यजमान) का वध्य होता है **तस्मै स्तर्तवे** उसके वध के लिए और **द्विषते भ्रातृव्याय** (यजमान से) द्वेष करने वाले शत्रु के लिए (होता) **तं तं वधं प्रहरति** उस उस वध (वज्ररूप वषट्कार) का प्रहार करता है। **तस्मात्** इसी कारण **सः** वह (वज्र) **भ्रातृव्यवता वषट्कृत्यः** शत्रु वाले यजमान के लिए (यह) वषट्कार है।

सा० भा०—यो द्वेष्यो यजमानस्य स्तृत्यो हन्तव्यो भवति, तस्मै स्तर्तवै तं हन्तुं द्विषते द्वेषं कुर्वते भ्रातृव्याय शत्रवे तं तं वधं प्रहरति। वधशब्दो हननसाधनं वज्रं ब्रूते। यदा यदाऽपेक्षितस्तदा तदेति विवक्षया तं तमिति वीप्सा। यस्मात् प्रहरणहेतुवज्रः, तस्मात् स वज्रो भ्रातृव्यवता यजमानेन वषट्कृत्यो वषट्काररूपेण प्रयोक्तव्यः। होतृप्रयोग एव यजमान-प्रयोगः, दक्षिणया होतुः क्रीतत्वात्।।

धामच्छदः स्वरूपं दर्शयति—

---

(१) 'बलि बलवत्, अतिस्फुटम्'–इति षड्गुरुशिष्यः।

(धामच्छदस्वरूपम्)

अथ यः समः संततोऽनिर्हाणर्चः स धामच्छत् ।।४।।

हिन्दी—(धामच्छद नामक वषट्कार का स्वरूप दिखला रहे हैं—) **यः समः** जो (वषट्कार पूर्वोक्त बलि इत्यादि दोष से रहित और अध्ययन करते समय के उच्चारण के) समान ध्वनि वाला **संततम्** (याज्या से) विच्छेद-रहित तथा **अनिर्हाणर्चः** सम्पूर्ण याज्या वाली ऋचा से सम्पन्न होता है, **सः धामच्छत्** वह धामच्छत् (नामक) वषट्कार है।

सा० भा०—यो वषट्कारः 'समः' पूर्वोक्तबलित्वादिदोषरहितो यथाऽधीतस्तथैवोच्चारितः संततो याज्यया सह विच्छेदरहितः, निःशेषेण हानं परित्यागो यस्या ऋचः, सा निर्हाणा। तथाविधा काचिदृग्याज्यारूपा यस्य वषट्कारस्य सोऽयं निर्हाणर्चः[१]। याज्यापाठहीन इत्यर्थः। तद्वैलक्षण्यात् अनिर्हाणर्चः संपूर्णयाज्यापाठोपेत इत्यर्थः। कीदृशो वषट्कारो धामच्छदिति? उच्यते—धाम यज्ञस्थानं तत्र यथा रक्षांसि न प्रविशन्ति, तथा छादयति, स धामच्छत्।

तस्य प्रयोगं विधत्ते—

(धामच्छदप्रयोगः)

तं तं प्रजाश्च पशवश्चानूपतिष्ठन्ते, तस्मात् स प्रजाकामेन पशुकामेन वषट्कृत्यः ।।५।।

हिन्दी—(धामच्छत् नामक वषट्कार के प्रयोग का विधान कह रहे हैं—) **तं तम्** उस (वषट्कार) से **प्रजाश्च पशवः च** प्रजा और पशु से **अनूपतिष्ठते** सम्पन्न हो जाता है। **तस्मात्** इसी कारण **प्रजाकामेन पशुकामेन** प्रजा की कामना से और पशुओं की कामना से **वषट्कृत्यः** (यह) वषट्कार करना चाहिए।

सा० भा०—प्रजाभिः पशुभिश्चान्वयार्थं तं तमिति वीप्सा; तं वषट्कारं धामच्छदं प्रजाश्च पशवश्च सेवन्ते। तस्मात् तादृक्कामेण धामच्छद् वषट्कारः प्रयोक्तव्यः।।

रिक्तस्य स्वरूपं दर्शयति—

(रिक्तस्वरूपः)

अथ येनैव षळवराध्नोति, स रिक्तः ।।६।।

हिन्दी—(अब रिक्त नामक वषट्कार के स्वरूप को दिखला रहे हैं—) **येन** जिसमे

---

(१) 'समः याज्यया तुल्यध्वनिः। संततः मध्य उच्छ्वासरहितः। व्याचष्टे–अनिर्हाणर्चः। निर्हाणं विश्लेषः। 'ऋक्पूः' इत्यकारः समासान्तः। ऋचा विश्लेषरहितः'–इति षड्गुरुशिष्यः। 'नितरां हानं निर्हाणम्। यस्य वषट्कारस्य ऋग् हीना न भवति, सोऽनिर्हाणर्चः'—इति गोविन्दस्वामी।

(उच्चारण) से षट् वषट्कार **अवराध्नोति** समृद्धि के अभाव (नीची ध्वनि के उच्चारण) को प्राप्त करता है। **सः रिक्तः** वह (वषट्कार) रिक्त कहलाता है।

सा० भा०—षट्शब्दो वषट्कारमभिधत्ते, भीमसेनो भीम इतिवदेकदेशेन व्यवहारात्। येनैवाच्चारणेन षळवराध्नोति वषट्कारोऽवराधं समृद्ध्यभावां प्राप्नोति। नीचोच्चारणेन हि वषट्कारस्य समृद्ध्यभावः। स तथोच्चारितो वषट्कारो रिक्त इत्युच्यते।[१] उच्चध्वनियोग्यस्य तदभावे रिक्तप्रायत्वात्॥

तमेतं रिक्तं निन्दति—

(रिक्तवषट्कारनिन्दा)

रिणक्त्यात्मानं, रिणक्ति यजमानं, पापीयान् वषट्कर्ता भवति, पापीयान् यस्मै वषट्करोति, तस्मात् तस्याऽऽशां नेयात् ।।७।।

हिन्दी—(इस रिक्त वषट्कार की निन्दा कर रहे हैं—) **आत्मानं रिणक्ति** (रिक्त नामक वषट्कार करने वाला होता) अपने को रिक्त (दरिद्र) करता है, **यजमानं रिणक्ति** यजन करने वाले को समृद्धि-हीन करता है। **पापीयान् वषट्कर्त्ता भवति** वषट् करने वाला पाप का भागी हो जाता है और **यस्मै वषट्करोति** जिस यजमान के लिए वषट्कार करता है, वह भी **पापीयान्** पाप का भागी होता है। **तस्मात्** इसी कारण **तस्य आशां न इयात्** उस (रिक्त वषट्कार को करने) की इच्छा भी नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—रिक्ताख्यो वषट्कारः प्रयुज्यमानः सन् होतुरात्मानं 'रिणक्ति' रिक्तीकरोति, समृद्धि हीनं दरिद्रं करोतित्यर्थः। तथा यजमानमपि रिणक्ति। अतस्तेन वषट्कर्ता होता 'पापीयान् भवति' अत्यन्तनकसाधनपापेन युक्तो भवति। यस्मै यजमानाय वषट्करोति सोऽपि पापीयान् भवति। तस्मात् तस्य रिक्तस्य वषट्कारस्याऽऽशां नेयान्न प्राप्नुयाद्, इच्छामपि न कुर्यात्, किमु तत् प्रयोगमित्यर्थः॥

प्रश्नोत्तराभ्यां वषट्कारस्येष्टानिष्टफलप्राप्तिसामर्थ्यं दर्शयति—

(वषट्कारस्येष्टानिष्टप्राप्तिसाधनत्वम्)

किं स यजमानस्य पापभद्रमाद्रियेतेति ह स्माऽऽह योऽस्य होता स्यादित्यत्रैवैनं यथा कामयेत तथा कुर्यात् ।।८।।

हिन्दी—(प्रश्नोत्तर द्वारा वषट्कार के अभीष्ट और अनिष्ट फलपाप्ति के सामर्थ्य को

---

(१) 'येन वषट्कारेण षडपि शब्दधर्मान् शिक्षाशास्त्रप्रसिद्धान् वर्णस्वरमात्राबलसामसन्तानाख्यान् अवराध्नोति व्यर्धयति अवहीनान् करोति स वषट्कारो रिक्तो नाम'—इति भट्टभास्करः। 'षडिति वषट्कारमन्त्रः तस्य अवराधः ऋक्स्वरान्नीचैरुच्चारणम्'—इति गोविन्दस्वामी।

दिखला रहे हैं—) (प्रश्न) **सः** वह (होता) **यजमानस्य पापभद्रम्** यजमान के अनिष्ट या अभीष्ट को **किं आद्रियेत्** क्या कर सकता है। (उत्तर) **ह स्म आह** इस विषय में कहा गया है कि **यः अस्य होता स्यात्** जो इस (यजमान) का होता होता है, वह **अत्र** इसी (जन्म) में **एनम्** इस (यजमान) को **यथा कामयेत्** जैसा चाहे **तथा कुर्यात्** वैसा कर सकता है।

सा० भा०—तदेतद् वाक्यं 'प्राणानां वा एतदुक्थम्, इत्यस्मिन् खण्डे प्रउगविषयं यथा व्याख्यातम्, तथैवात्र वषट्कारविषयं व्याख्यतव्यमिति॥

अनिष्टफलसाधनत्वं दर्शयति—

(अनिष्टफलसाधनत्वम्)

यं कामयेत यथैवानीजानोऽभूत्, तथैवेजानः स्यादिति,–यथैवास्य ऋचं ब्रूयात् तथैवास्य वषट्कुर्यात्, सदृशमेवैनं तत्करोति ।।९।।

हिन्दी—(अनिष्ट फल की साधनता को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत** (होता) जिस यजमान को चाहे कि **यथा एव अनीजानः अभूत्** जिस प्रकार यह यजमान अकृतयज्ञ वाले पुरुष के समान हो जाय और **तथा एव ईजानः स्यात्** उसी प्रकार यज्ञफल से रहित हो जाय तो **तथैव अस्य वषट्कुर्यात्** उसी स्वर से इस (यजन करने वाले) का वषट्कार भी करें। **तत्** इस प्रकार **एनम्** इस (यजमान) को **सदृशं करोति** (यज्ञ करके भी यज्ञ से रहित के) समान कर देता है।

सा० भा०—'अनीजानः' अकृतयज्ञः पुरुषो यथैव फलरहितोऽभूत्, तथैवायम् 'ईजानः' कृतयज्ञोऽपि फलरहितः स्यादिति यं यजमानं होता कामयेत, अस्य यजमानस्य येन स्वरेण याज्यां ब्रूयात्, तेनैव स्वरेण वषट्कारमपि ब्रूयात्। तथा सत्येनं कृतयज्ञं यज्ञरहितेन सदृशं फलरहितं करोति॥

अनिष्टफलान्तरसाधनत्वं दर्शयति—

यं कामयेत पापीयान् स्यादित्युच्चैस्तरामस्य ऋचमुक्त्वा शनैस्तरां वषट्कुर्यात् पापीयांसमेवैनं तत्करोति ।।१०।।

हिन्दी—(अन्य अनिष्ट फल की साधनता को कह रहे हैं—) **यं कामयेत** (होता) जिस (यजन करने वाले) को चाहे कि **पापीयान् स्यात्** (यह यजमान) पाप (दरिद्रता अथवा नरक) का भागी हो तो **उच्चैस्तराम् अस्य ऋचम् उक्त्वा** अत्यधिक ऊँची ध्वनि से इस (यजमान की याज्या वाली) ऋचा का उच्चारण करके **शनैस्तरां वषट्कुर्यात्** अत्यन्त नीची (ध्वनि) से वषट्कार करे। **तत्** इस (उच्चारण) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **पापीयांसं करोति** पाप का भागी कर देता है।

सा॰ भा॰—पापीयान् दरिद्रो नरकयोग्यो वा यजमानः स्यादिति कामयमानो होतर्चमतिशयेनोच्चैरुच्चार्य वषट्कारमतिशयेन नीचैर्ब्रूयात्। तथा सत्येनं यजमानं पापीयांसमेव करोति॥

अथेष्टफलसाधनत्वं दर्शयति—

(अभीष्टफलसाधनत्वम्)

यं कामयेत श्रेयान् स्यादिति शनैस्तरामस्य ऋचमुक्त्वोच्चैस्तरां वषट्कुर्याच्छ्रिय एवैनं तच्छ्रियामादधाति ॥११॥

हिन्दी—(अब अभीष्ट फल की साधनता को दिखला रहे हैं—) **यं कामयेत्** (होता) जिस (यजन करने वाले) को चाहे कि **श्रेयान् स्यात्** श्रेष्ठ (दरिद्रता और पाप से रहित) होवे तो **अस्य** इस (यजन करने वाले) का **शनैस्तराम् ऋचम् उक्त्वा** अत्यन्त नीची ध्वनि से ऋचा (याज्या) को उच्चारित करके **श्रिये** समृद्धि के लिए **उच्चैस्तरां वषट्कुर्यात्** अत्यधिक ऊँची ध्वनि से वषट्कार करे। **तत्** इस प्रकार (करने) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **श्रियाम् एव आदधाति** श्री (इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण) में ही प्रतिष्ठापित करता है।

सा॰ भा॰—श्रेयान् दारिद्र्यरहितः पारहितश्च यजमानः स्यादिति कामयमानो होतर्च याज्यां शनैरुच्चार्य वषट्कारमतिशयेनोच्चैरुच्चारयेत्।[1] तच्च श्रिये संपदर्थमेव भवति। 'तत्' तेन प्रयोगेणैनं यजमानं श्रियामैहिकामुष्मिकसंपदि स्थापयति॥

याज्यावषट्कारयोर्नैरन्तर्यं विधत्ते—

संततमृचा वषट्कृत्यं संतत्यै ॥१२॥

हिन्दी—(याज्या और वषट्कार में निरन्तप्ता होने का विधान कह रहे हैं–) **सन्तत्यै** (यजन करने वाले की समृद्धि की) निरन्तरता के लिए **ऋचा वषटकृत्यम्** ऋचा (याज्या) और वषट्कार को **संततम्** निरन्तर (बिना रुके) सम्पादित करना चाहिए।

सा॰ भा॰—ऋचा याज्यया सह संततं निरन्तरं यथा भवति तथा 'वषट्कृत्यं' वषट्कार उच्चारणीयः। तच्च यजमानस्य श्रेयः संतत्यै संपद्यते॥

वेदनं प्रशंसति—

संधीयते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥१३॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः** प्रजा और पशुओं **सन्धीयते** संयुक्त होता है।

सा॰ भा॰—संधीयते संयुज्यते॥

---

(१) 'उच्चैस्तरां वा वषट्कारः' इति पा॰सू॰ १.२.३५।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) सप्तमः खण्डः ।।७।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ अष्टमः खण्डः

सा॰भा॰—अथ होतुर्वषट्कारकाले देवताध्यानं विधत्ते—

(वषटकारकाले होतुः देवताध्यानविधानम्)

यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्तात्, तां ध्यायेद् वषट्करिष्यन्[१] साक्षादेव तद्देवतां प्रीणाति, प्रत्यक्षाद् देवतां यजति ।।१।।

हिन्दी—(वषट्कार के समय होता द्वारा किये गये देवता के ध्यान का विधान कर रहे हैं—) **यस्यै देवतायै** जिस देवता के लिए **हविः गृहीतं स्यात्** हवि ग्रहण की गयी हो, (होता) **ताम्** उस (देवता) का **वषट्करिष्यन्** वषट्कार करते हुए **ध्यायेत्** ध्यान करें। **तत्** इस (ध्यान) से **साक्षादेव देवतां प्रीणाति** प्रत्यक्ष रूप से उस देवता को प्रसन्न करता है और **प्रत्यक्षाद् देवतां यजति** प्रत्यक्ष रूप से उस देवता का यजन करता है।

सा॰भा॰—अध्वर्युः यां देवतामुद्दिश्य हविर्गृह्णाति, तां देवतामयं होता वषट्करिष्यन् वषट्कारायोद्युक्तः सन् ध्यायेन्मनसा देवतायाः शस्त्रीयां देवतामूर्तिमादौ कृत्वा सम्यगनुसंधाय पश्चाद् वषट्कुर्यादित्यर्थः। एवं सति 'साक्षादेव' प्रत्यक्षेणैव देवतां तर्पयति। न केवलं तृप्त्यर्थमेव देवतायाः साक्षात्कारः, किंतु प्रत्यक्षात् प्रत्यक्षेणैव देवतां यजति, यागकाले प्रत्यक्षेण पश्यतीत्यर्थः।

ननु देवता चक्षुषा न दृश्यते, कथमस्याः प्रत्यक्षत्वमिति चेत्, नायं दोषः। मानसप्रत्यक्षस्य विवक्षितत्वात्। यथा पुरोवर्तिनी देवता चक्षुषा दृश्यते, तथैव चिन्त्यमानाऽपि मनसा दृश्यत एव[२]।।

होतुर्वषट्कारादूर्ध्वमनुमन्त्रणं विधत्ते—

(वषट्कारादूर्ध्वं होतुरनुमन्त्रणविधानम्)

वज्रो वै वषट्कारः, स एष प्रहृतोऽशान्तो दीदाय, तस्य हैतस्य न सर्व इव शान्तिं वेद, न प्रतिष्ठां, तस्माद्धाप्येतर्हि भूयानिव मृत्युः,

---

(१) इदमेव श्रुतिवचनं यथावदुद्धृतं निरुक्ते; ८.३.७ द्रष्टव्यम्।

(२) दुर्गाचार्यकृता निरुक्तवृत्तिश्चेहावेक्षणीया।

तस्य हैषैव शान्तिरेषा प्रतिष्ठा, वागित्येव, तस्माद् वषट्कृत्य वषट्कृत्य वागित्यनुमन्त्रयेत, स एनं शान्तो न हिनस्ति ।।२।।

हिन्दी—(वषट्कार के बाद होता के अभिमन्त्रण को कह रहे हैं—) **वज्रः वै वषट्कारः** वषट्कार वज्र स्वरूप है। **सः एषः** वह यह (वषट्काररूप वज्र) **प्रहृतः** (शत्रु के ओर) छोड़ा गया **अशान्तः** अशान्त होकर **दीदाय** प्रदीप्त हो जाता है। **तस्य एतस्य** उस इस (वषट्काररूप वज्र) की **शान्तिम्** उपशम को **सर्वे इव न वेद** सभी लोग नहीं जानते हैं और **न प्रतिष्ठाम्** न तो (उसकी उपद्रव-शान्ति के बाद उग्रत्व के परिहार से अवस्थान रूप) प्रतिष्ठा को भी (नहीं जानते हैं)। **तस्मात्** इसी कारण **एतर्हि** इस (लोक) में **भूयान् इव मृत्युः** बहुत लोग मृत्यु को (प्राप्त करते हैं)। **तस्य** उस (वषट्कार) की **एषा वाग् इति शान्तिः एव** यह वाक् ('वगोजः' इत्यादि) मन्त्र शन्ति और **एषा प्रतिष्ठा** यह प्रतिष्ठा है। **तस्मात्** इसी कारण **वषट्कृत्य वषट्कृत्य** प्रत्येक बार वषट्-कार करके **वाग् इति अनुमन्त्रयेत** 'वाग्' इस मन्त्र से अनुमन्त्रित करना चाहिए। इस प्रकार **शान्तः सः** शान्त हुआ वह (वषट्कार) **एनं न हिनस्ति** इस (यजन करने वाले) को नहीं मारता।

सा० भा०—वषट्कारस्य वज्रत्वमसकृदुक्तम्। 'स एषः' वषट्कारात्मको वज्रः परस्योपरि प्रहृतः सन्नशान्त उग्रो दीदाय दीप्यते। तस्य वज्रस्य शान्तिमुपशमप्रकारं सर्व इव सर्वोऽपि पुरुषो न वेद। उपद्रवाशान्तेरूर्ध्वं वषट्कारस्योग्रत्वपरिहारेण क्वचिदस्थानं प्रतिष्ठा तामपि सर्वो न वेद। तस्माच्छान्तिप्रतिष्ठाविषयज्ञानाभावादेतर्ह्यपीदानीमपि लोके मृत्यु-र्भूयानिव बहुभूत एव प्रवर्तते। तस्य तादृशवषट्कारवज्रस्यैषैव वक्ष्यमाणा शान्तिः शमनो-पायः। तथैषा वक्ष्यमाणैव प्रतिष्ठा परोपद्रवरहिताऽवस्थितिः। 'वागोजः' इत्यादिको यो मन्त्रः स एव शमनोपायः, न त्वन्यः कश्चिदस्ति। तस्माद् 'वषट्कृत्य वषट्कृत्य' यदा यदा वषट्करोति तदा तदा वागिति मन्त्रेणानुमन्त्रयेत। स वज्रस्तावता शान्त एनं न हिनस्ति। अयमेकः पक्षः।।

पक्षान्तरमभिप्रेत्यान्येन मन्त्रेणानुमन्त्रणं विधत्ते—

वषट्कार मा मां प्रमृक्षो, माऽहं त्वां प्रमृक्षं, बृहता मन उपह्वये, व्यानेन शरीरं, प्रतिष्ठाऽसि, प्रतिष्ठां गच्छ, प्रतिष्ठां मा गमयेति, वषट्कारमनुमन्त्रयेत ।।३।।

हिन्दी—(पक्षान्तर में अन्य मन्त्र से अनुमन्त्रण का विधान कर रहे हैं—) **'वषट्कार** हे वषट्कार! **मां मा प्रमृक्षः** मुझ (यजन करने वाले) को विनष्ट मत करो। **अहं त्वां मा प्रमृक्षम्** मैं भी तुम (वषट्कार) को विनष्ट नहीं करूँगा। **मनः** हे मननीयः! **बृहता** प्रौढ़ (यज्ञ) द्वारा **उपह्वये** (तुम्हारे) शरीर को (मैं जानता हूँ)। **व्यानेन शरीरम्** व्यान वायु के

द्वारा (तुम्हारे) शरीर को मैं जानता हूँ। **प्रतिष्ठा असि** सभी (प्राणों के तुम) प्रतिष्ठा (आश्रय) हो। **प्रतिष्ठां गच्छ** अतः (उन प्राणियों की स्थिरता के साथ) तुम स्थिर होवो। **प्रतिष्ठां मा गमय** (तत्पश्चात्) मुझको अवस्थान को प्राप्त कराओ'—**इति** इस मन्त्र से **वषट्कारम् अनुमन्त्रयेत** वषट्कार को अनुमन्त्रित करना चाहिए।

सा० भा०—हे वषट्कार वज्ररूप, मां यजमानं 'मा प्रमृक्षः' विनष्टं मा कार्षीः। अहमपि त्वां मा प्रमृक्षं विनष्टं माकार्षम्। 'बृहता' प्रौढेन यज्ञेन मनस्त्वदीयमुपह्वयेऽनुजानामि। यथा व्यानेन व्यानादिवायुना सह त्वदीयं शरीरमनुजानामि यतस्त्वं सर्वस्य प्राणिसंघस्य प्रतिष्ठाऽऽश्रयोऽसि, तदर्थं त्वमपि प्रतिष्ठां स्थैर्येणावस्थितिं गच्छ। ततो मामपि प्रतिष्ठां स्थैर्येणावस्थितिं प्रापयेत्यनेनानुमन्त्रेणानुमन्त्रयेत।।

तमिमं द्वितीयं पक्षं निन्दित्वा मन्त्रान्तरं दर्शयति—

तदु ह स्माऽऽह दीर्घमेतत् सदप्रभ्वोजः सह ओजः ।।४।।

हिन्दी—(इस द्वितीय पक्ष की निन्दा करके वषट्कारानुमन्त्रण के अन्य मन्त्र को दिखला रहे हैं—) **तदु आह** इस (पूर्वोक्त मन्त्र) के विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) कहते हैं कि **एतद् दीर्घं सत्** यह (अनुमन्त्रण मन्त्र) दीर्घ होते हुए भी **अप्रभुः** यह (वषट्कार की शान्ति के लिए) असमर्थ है अतः 'ओजः सह ओजः' (मन्त्र से अनुमन्त्रण करना चाहिए)।

सा० भा०—तदु ह तत्रैवानुमन्त्रणे ब्रह्मवादी कश्चिदाह स्म। किमाहेति, तदुच्यते—एतत् पूर्वोक्तं मन्त्रवाक्यं दीर्घं सदपि वज्रं शमयितुमप्रभु न क्षमम्। कोऽसौ क्षमो मन्त्र इति स उच्यते—'ओजः सह ओजः' इति पदत्रयात्मको मन्त्रः।[१] मन्त्रार्थं तु श्रुतिरेव व्याख्यास्यति।।

तेन मन्त्रेणानुमन्त्रणं विधत्ते—

इत्येव वषट्कारमनुन्त्रयेत ।।५।।

हिन्दी—(उस 'ओजः सह ओजः' मन्त्र से अनुमन्त्रण का विधान कर रहे हैं—) **इति एव** इस 'ओजः सह ओजः' मन्त्र से **वषट्कारम् अनुमन्त्रयेत** वषट्कार का अनुमन्त्रण करना चाहिए।

सा० भा०—एवकारः पूर्वमन्त्रव्यावृत्त्यर्थः ।।

मन्त्रपदयोरर्थं दर्शयति—

ओजश्च ह वै सहश्च वषट्कारस्य प्रियतमे तन्वौ ।।६।।

हिन्दी—('ओजः सह ओजः' मन्त्र के दोनों पदों का अर्थ दिखला रहे हैं—) **ओजः**

---

(१) एष एव प्रियशरीरद्वयाभ्यामुपेतो व्यवह्रियते; तद्वक्ष्यत्यनुपदम् इहैव। तथा च कल्पः—'वागोजः सह ओजो मयि प्राणापानाविति वषट्कार मुक्त्वोक्त्वाऽनुमन्त्रयते'—इति आश्व० १.५.१७।

च सह च वै ओज और सह (ये दोनों) **वषट्कारस्य प्रियतमे तन्वौ** वषट्कार के लिए अत्यधिक प्रिय शरीर है।

सा० भा०—स्पष्टोऽर्थ ॥

अनेन मन्त्रेणोग्रत्वशान्तिं दर्शयति—

प्रियेणैवैनं तद्धाम्ना समर्धयति ।।७।।

हिन्दी—(इस मन्त्र से वषट्कार की उग्रता की शान्ति को दिखला रहे हैं—) **तत्** इस प्रकार **प्रियेण धाम्ना एव** प्रिय धाम से ही **एनम्** इस धाम को **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—प्रियतमयोः शरीरयोर्नामग्रहणे सति वषट्कारस्योग्रत्वरूपः कोपो गच्छति। तत एनं वषट्कारः प्रियेण धाम्ना सर्वभूतामनुपद्रवकारिणा प्रियेण स्वरूपेण समृद्धं करोति। अत्र मन्त्रगतो द्वितीय ओजःशब्द आदरार्थ इत्यभिप्रायः॥

वेदनं प्रशंसति—

प्रियेण धाम्ना समृध्यते य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रियेण धाम्ना समृध्यते** प्रियधाम के साथ समृद्धि को प्राप्त करता है।

अथ प्रियशरीरद्वयवाचकाभ्यां पदाभ्यां सहितमादौ विहितं मन्त्रमेव सिद्धान्तयति—

वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारस्त एते वषट्कृते वषट्कृते व्युत्क्रामन्ति,ताननुमन्त्रयेत वागोजः सह ओजो मयि प्राणापाना-वित्यात्मन्येव तद्धोता वाचं च प्राणापानौ च प्रतिष्ठापयति, सर्वायुः, सर्वायुत्वाय ।।९।।

हिन्दी—**वाक् च प्राणापानौ च** वाक् तथा प्राण और अपान **वषट्कारः** वषट्कार हैं। **ते एते** वे ये (वाक्, प्राण और अपान) **वषट्कृते वषट्कृते** प्रत्येक वषट्कार के पश्चात् **व्युत्कामन्ति** होता (के शरीर) से बाहर निकल जाते हैं। **तान्** उन (वाक्, प्राण और अपान) को **अनुमन्त्रयेत** (इस मन्त्र से) अनुमन्त्रित करना चाहिए—'हे वषट्कार **मयि** मेरे में **वाक्** वाणी, **ओजः** बल **प्राणपानौ** प्राण और अपान (प्रतिष्ठत होंवे)। **तत्** इस (वषट्कार के अमिन्त्रण से) **आत्मनि एव** अपने में **होता** होता (नामक ऋत्विक्) **वाचं च प्राणपानौ च** वाणी, प्राण और अपान को **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है और **सर्वायुः** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है तथा **सर्वायुत्वाय** यजन करने वाले को सम्पूर्ण आयु को प्राप्त कराने वाला होता है।

सा० भा०—येयं वागस्ति, यौ च प्राणापानौ स्तः, तेऽत्र त्रयो वषट्कारस्वरूपम्।

यदा यदा होता वषट्करोति तदा तदा वषट्काररूपा होतुर्वाक्प्राणापाना: शरीराद् उत्क्रामन्ति, अतस्तन्मा भूदिति तांस्त्रीन् वागोज इत्यादिना प्राणापानावित्यन्तेन मन्त्रेणानुमन्त्रयेत। मन्त्रस्यायमर्थ:–'ओज:' 'सह' इत्याभ्यां प्रियशरीराभ्यामुपेत हे वषट्कार त्वत्प्रसादान् मय्योजो बलमस्तु। तथा वाक्प्राणापाना: सुखेन तिष्ठन्त्विति। अनेन मन्त्रेण होता स्वात्मन्येव वाचं च प्राणापानौ च स्थापयति। तावता स्वयं सर्वायु: शतसंवत्सरपरिमितेनाऽऽयुषा युक्तो भवति। एतच्च यजमानस्य सर्वायुत्वाय संपद्यते। पूर्वत्र 'वषट्कृत्य वागित्यनुमन्त्रयेत्' इति वषट्कारानुमन्त्रणयोरेककर्तृकत्वमुक्तम्। अत्राप्यात्मन्येव तद्धोतेति ब्राह्मणे होतृकर्तृकत्वं प्रतीयते। ततोऽनुमन्त्रणस्य यजमानकर्तृकत्वमन्यैरुक्तं बाधित्वा होतृकर्तृकत्वमेव द्रष्टव्यम्।।[१]

वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ।।१०।।

हिन्दी—(इस ज्ञान के फल को दिखला रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकाया: प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) अष्टम: खण्ड: ।।८।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के अष्टम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ नवमः खण्डः

सा॰भा॰—अथ प्रैषादीनां प्रशंसां विवक्षुरादौ प्रैषान् प्रशंसति—

(प्रैषादीनां प्रशंसनम्)

(तत्र निर्वचनद्वारा प्रैषप्रशंसनम्)

यज्ञो वै देवेभ्य उदक्रामत्, तं प्रैषैः प्रैषमैच्छन्, यत् प्रैषैः प्रैषमैच्छंस्तत्प्रैषाणां प्रैषत्वम् ।।१।।

हिन्दी—(प्रैष इत्यादि की प्रशंसा करने की इच्छा से पहले निर्वचन द्वारा प्रैषों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **देवेभ्यः वै यज्ञः उदक्रामत्** देवताओं से यज्ञ दूर चला गया। **प्रैषैः** ('होता यक्षदग्निं' इत्यादि) प्रैष (मन्त्रों) से **तम्** उस (यज्ञ) को **प्रैषम् ऐच्छन्** आहूत करना (बुलाना) चाहा। **यत् प्रैषैः प्रैषम् ऐच्छन्** जो प्रैषों से (यज्ञ) को बुलाना चाहा **तत् प्रैषाणां**

---

(१) 'इति होतु:'—इति आश्व॰श्रौ॰ १.११.१६।

प्रैषत्वम् वही प्रैषों का प्रैषत्व (प्रैष होना) है।

सा० भा०—ज्योतिष्टोमाख्यो यज्ञो यदा केनचिन्निमित्तेन देवेभ्य उदक्रामत्, तदा 'तम्' उत्क्रान्तं यज्ञं 'प्रैषैः' 'होता यक्षदग्निं समिधा' इत्येवमाद्यैः[१] प्रैषमन्त्रैस्तस्य यज्ञस्य प्रैषमाह्वानमैच्छन्। यस्मादेवं तस्मात् प्रैषन्त्याह्वानं कुर्वन्त्येभिरिति व्युत्पत्त्या मन्त्राणां प्रैषनाम संपन्नम्।।[२]

अथ पुरोरुचः प्रशंसति—

(निर्वचनद्वारा पुरोरुक्प्रशंसनम्)

तं पुरोरुग्भिः प्रारोचयन्, यत् पुरोरुग्भिः प्रारोचयंस्तत्पुरोरुचां पुरोरुक्त्वम् ।।२।।

हिन्दी—(अब निर्वचन द्वारा पुरोरुक् की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तं पुरोरुग्भिः प्रारोचयन्** उस (यज्ञ) को (वायुरग्ने इत्यादि सात ऋचाओं वाले) पुरोरुक् (मन्त्रों) से (उस यज्ञ की) रुचि को उत्पन्न किया। **यत् पुरोरुग्भिः प्रारोचयन्** जो पुरोरुक् (मन्त्रों) से रुचि को उत्पन्न किया **तत् पुरोरुचां पुरोरुक्त्वम्** वह पुरोरुक् (मन्त्रों) का पुरोरुक् होना है।

सा० भा०—'वायुरग्रेगाः'—इत्याद्याः सप्त पुरोरुचः।[३] प्रउगतृचानां सप्तानां प्ररोचनहेतुत्वात्। तथाविधाभिः पुरोरुग्भिस्तं पूर्वमाहूतं यज्ञं देवाः प्रारोचयंस्तस्य यज्ञस्य रुचिमुत्पादितवन्तः। अतः पुरारोचनाहेतुत्वात् पुरोरुगिति नाम संपन्नम्।।[४]

वेदेः प्रशंसामाह—

(निर्वचनद्वारा वेदिप्रशंसनम्)

तं वेद्यामन्वविन्दन्, यद् वेद्यामन्वविन्दंस्तद् वेदेर्वेदित्वम् ।।३।।

हिन्दी—(वेदि की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तं वेद्याम् अन्वविन्दन्** (देवताओं ने) उस (यज्ञ) को वेदि पर जाना (प्राप्त किया)। **यद् वेद्याम् अन्वविन्दन्** जो वेदि पर जाना **तद् वेदेः वेदित्वम्** वह वेदि का वेदित्व है।

सा० भा०—तं प्ररोचितं यज्ञं सौमिक्यां वेद्यामन्वविन्दंन्ननुकूलत्वेनोपलब्धवन्तः। अतो

---

(१) तै०ब्रा० ३.६.२.१-१२।

(२) 'एकादश प्रयाजाः। तेषां प्रैषाः अध्वर्युप्रेषितो मैत्रावरुणः प्रेष्यति; प्रैषैर्होतारम्। होता यजत्याप्रीभिः प्रैषसलिङ्गाभिः'—इति आश्व०श्रौ० ३.२.१-५।

(३) वा०सं० १७.३१-३७।

(४) 'वायुरग्रेगा यज्ञप्रीरिति सप्तानां पुरोरुचां तस्यास्तस्या उपरिष्टात् तृचं तृचं शंसेत्। वायवा याहि दर्शतेति सप्त तृचाः'—इति आश्व०श्रौ० ५.१०.४,५। द्रष्टव्य—तृचास्ते पूर्वं ११.१। 'अन्विष्यमाणे यज्ञे वै दीपा आसन् पुरोरुचः' इत्यर्थः इति षड्गुरुशिष्यः।

वेदनस्य लाभस्य स्थानत्वाद् वेदिरिति नाम संपन्नम्॥[१]

ग्रहप्रशंसामाह—

(निर्वचनद्वारा ग्रहप्रशंसनम्)

तं वित्तं ग्रहैर्व्यगृह्णत, यद् वित्तं ग्रहैर्व्यगृह्णत तद् ग्रहाणां ग्रहत्वम् ।।४।।

हिन्दी—(अब निर्वचन द्वारा ग्रह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **वित्तं तम्** प्राप्त उस (यज्ञ) को **ग्रहैः व्यगृह्णत** (उपांशु इत्यादि) ग्रहों द्वारा विशेष प्रकार से ग्रहण किया। **यद् वित्तं ग्रहैः व्यगृह्णत** जो प्राप्त (यज्ञ) को ग्रहों द्वारा विशेष रूप से ग्रहण किया **तद् ग्रहाणां ग्रहत्वम्** वह ग्रहों का ग्रहत्व है।

सा० भा०—वित्तं लब्धं तं यज्ञं ग्रहैरुपांश्वन्तर्यामादिभिः 'व्यगृह्णत' विशेषेण स्वीकृतवन्तः। तस्माद् ग्रहणस्य स्वीकारस्य हेतुत्वाद् ग्रहनाम संपन्नम्॥

निविदां प्रशंसामाह—

(निर्वचनद्वारा निविदां प्रशंसनम्)

तं वित्त्वा निविद्भिर्न्यवेदयन्, यद् वित्त्वा निविद्भिर्न्यवेदयंस्तन्निविदां निवित्त्वम् ।।५।।

हिन्दी—(निर्वचन द्वारा निवितों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तं वित्वा** उस (यज्ञ) को पाकर **निविद्भिः न्यवेदयन्** निविदों द्वारा निवेदन किया। **यद् वित्वा निविद्भिः न्यवेदयन्** जो (यज्ञ) को प्राप्त करके निविदों द्वारा निवेदन किया **तद् निविदां निवित्वम्** वह निविदों (निवेदन करने के कारण) निवित्त्व (निवित् नाम होना) है।

सा० भा०—तं यज्ञं वित्त्वा लब्ध्वा ते देवाः परेभ्यो देवेभ्यो निविद्भिः पूर्वोक्तद्वादशपदादिरूपाभिः 'न्यवेदयन्' कथितवन्तः। तस्मान्निवेदनस्य परबोधनार्थकथनस्य हेतुत्वान्निविन्नाम संपन्नम्॥[२]

अथ प्रैषकर्तुः प्रह्वत्वगुणविधानार्थं प्रस्तौति—

(प्रैषकर्तुः प्रह्वत्वगुणविधानम्)

महद्वाव नष्टैष्यभ्यल्पं वेच्छति, यतरो वाव तयोर्ज्याय इवाभीच्छति, स एव तयोः साधीय इच्छति ।।६।।

---

(१) 'विदॢ लाभे'—इत्यस्य तुदादेः 'हृपिषिरुहिवृतिविदिच्छिदिकीर्त्तिभ्यश्च'—इति (उणा० ४.११८) रूपमित्यर्थः। द्रष्टव्य—'अपरेणाहवनीयं वेदिं खनति'—इत्यारभ्य—'वेदिकरणं यथोक्तम्'—इति यावत्, कात्या०श्रौ० २.६.१-३०।

(२) 'पच्छो निविदाः शस्यन्ते'—इति चैहैवैकादशखण्डे वक्ष्यति। 'पदैराप्नोति निविदः'—इति हि वा०सं० १९.२५।

हिन्दी—(अब प्रैष करने वाले के प्रह्वत्वगुण के विधान के लिए प्रस्तावना को कह रहे हैं-) **नष्टैषी** नष्ट वस्तु को खोजने वाला व्यक्ति **महद् वाव अभ्यल्पं वा इच्छति** (नष्ट वस्तु से) अधिक अथवा कम प्राप्त करना चाहता है। **तयोः यतरः वाव ज्यायः इव अभीच्छति** उन दोनों में जो अधिक की इच्छा करता है वही **तयोः** उन (दोनों) में **साधीयः इच्छति** अत्यधिक साधु (वस्तु) की इच्छा करता है।

सा० भा०—नष्टं वस्तुं प्रयत्नेन तत्र तत्रान्विच्छतीति नष्टैषी।[१] तादृशः पुरुषो द्विविधः। तत्र कश्चिन्महद्वाव नष्टाद् वस्तुनोऽधिकमेवाभीच्छति। नष्टादल्पं वाऽन्यः कश्चिद् इच्छति। तयोर्मध्ये यतरो वाव' य एवं पुरुषो 'ज्याय इव' महदेवेच्छति, 'स एव' पुरुषस्तयोर्मध्ये साधीयोऽत्यन्तं साधु वस्त्विच्छति। अल्पं कामयमानस्तु न तथेत्यर्थः॥

अस्त्वेवं लौकिकन्यायः, किं प्रकृते? इत्याशङ्क्याऽऽह—

य उ एव प्रैषान् वर्षीयसो वर्षीयसो वेद, स उ एव तान् साधीयो वेद, नष्टैष्यं ह्येतद् यत्प्रैषाः ॥७॥

हिन्दी—**यः उ एव** जो (प्रैष करने वाला पुरोनुवाक्या के सन्निहित होने के कारण) **वर्षीयसः वर्षीयसः** सभी (प्रैष मन्त्रों) में प्रवृद्ध (प्रैष मन्त्रों) को **वेद** जानता है।, **सः उ एव** वह ही **तान्** उन (प्रैष मन्त्रों) को **साधीयः वेद** सम्यक् प्रकार से जानता है; क्योंकि **यत् प्रैषाः** जो प्रैष (मन्त्र) हैं **एतद् नष्टैष्यं हि** ये नष्ट (यज्ञ) के खोजने के हेतु हैं।

सा० भा०—'य उ एव' यस्तु प्रैषवक्ता प्रैषमन्त्रान् वर्षीयसो वर्षीयसोऽतिप्रवृद्धान् वेद। सर्वेषु प्रैषमन्त्रेषु प्रवृद्धत्यार्थं वीप्सा प्रयुक्ता। प्रैषमन्त्राः कस्मात् प्रवृद्धः? इति चेत्, पुरोनुवाक्यानां संनिहितत्वात् ताभ्योऽधिकाः 'दीर्घाः' इत्यवगन्तव्यम्। 'स उ एव' दीर्घत्वाभिज्ञ एव तान् प्रैषमन्त्रान् साधीयो वेदातिशयेन सम्यक् वेद। ननु लौकिकन्यायोदाहरणे नष्टवस्तुनोऽन्वेषणमुदाहृतम्। इह तु प्रैषमन्त्राणामभिवृद्धिरुक्तेत्यतो लौकिकेनासंगतमिति चेत्, संगतमेवैतत्—'हि' यस्माद् ये प्रैषाः, ते 'नष्टैष्यं'[२] 'नष्टस्य' यज्ञस्यान्वेषणहेतवः॥

पुरोनुवाक्याभ्यो दीर्घत्वेन प्रैषान् प्रशस्य तदुच्चारणकाले प्रह्वत्वं विधत्ते—

तस्मात् प्रह्वस्तिष्ठन् प्रेष्यति ॥८॥

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **प्रह्वः तिष्ठन्** (विनय के कारण) नतमस्तक होकर **प्रेष्यति** प्रैष मन्त्रों का पाठ करता है।

स० भा०—यस्मादतिशयेन वृद्धाः प्रैषास्तस्मात् तत्पाठकाले मैत्रावरुणः प्रह्वः विनयेनैव

---

(१) नष्टैषी नष्टान्वेषणकारी। अल्पं फलादि महद् रत्नादिकं वा अभीच्छति प्रार्थयते'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) 'नष्टैष्यं नष्टयान्वेषणसाधनम्। करणे कृत्यः'–इति भट्टभास्करः। 'एतदेते। यत् ये। जसोऽम्। नष्टैष्याः। इषेः कर्मणि ण्यत्'–इति षड्गुरुशिष्यः।

किञ्चिदवनतशिरास्तिष्ठन्ननुपविष्टो मन्त्रान् पठेत्। यथा लोके पितृगुर्वादीन् दृष्ट्वा प्रह्वस्तिष्ठति तद्वत्,—यथा वा नष्टवस्त्वन्विच्छन् प्रह्वत्वादिना गुप्तश्चरति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) नवमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के नवम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ दशमः खण्डः

सा०भा०—अथ निविदां सवनभेदेन स्थानभेदं विवक्षुः प्रातःसवने स्थानविशेषं विधत्ते—

(निविदां सवनभेदेन स्थानभेदविधानम्)

(तत्र प्रातःसवने स्थानविधानम्)

गर्भा व एत उक्थानां यन्निविदस्तद् यत् पुरस्तादुक्थानां प्रातःसवने धीयन्ते, तस्तान् पराञ्चो गर्भा धीयन्ते, पराञ्चः संभवन्ति ॥१॥

हिन्दी—(निविदों के सवन-भेद से स्थान-भेद को कहने के लिए प्रातःसवन में स्थान विशेष का विधान कर रहे हैं—) **यद् निविदः** जो निवित् हैं **एते उक्थानां गर्भाः** ये शस्त्रों के गर्भरूप हैं। **यत् प्रातःसवने** जो प्रातःसवन में **उक्थानां पुरस्ताद् धीयन्ते** शस्त्रों से पहले (निवित् रखे जाते हैं) **तस्मात्** इसी कारण **पराञ्चः गर्भाः धीयन्ते** (लोक में स्त्री के शरीर में पहले स्थापित) गर्भ नीचें शिर किये रहते हैं **पराञ्चः सम्भवन्ति** नीचे शिर करके पैदा होते हैं।

सा०भा०—'अग्निर्देवेद्धः' इत्यादयो निविदः सन्ति।[१] एते निविद्विशेषा उक्थानां शस्त्राणां गर्भा वै गर्भस्थानीया एव। तथा सति प्रातःसवनप्रयोगे शस्त्राणां पुरस्तान्निविदो 'धीयन्ते' स्थाप्यन्ते, स्थापयेयुरित्यर्थः। यस्माद् गर्भस्थानीयानां पुरस्थापनं तस्माल्लोकेऽपि गर्भाः पराञ्चः स्त्रीशरीरे परमुत्कृष्टं पुरोभागमञ्चन्तो गच्छन्तो धीयन्ते, धार्यन्ते प्रसवकालेऽपि पराञ्चः पुरोभागं गच्छन्त उत्पद्यन्त॥

माध्यंदिनसवने स्थानविशेषं विधत्ते—

(मध्यन्दिनसवने स्थानविधानम्)

यन्मध्यतो मध्यंदिने धीयन्ते तस्मान् मध्ये गर्भा धृताः ॥२॥

---

(१) 'दक्षिणतो होतृषदनात् प्रह्वोऽवस्थाय' आश्व०श्रौ० ३.१.२०।

हिन्दी—(अब माध्यन्दिनसवन में स्थान-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **यद् मध्यन्दिने** जो माध्यन्दिनसवन में **मध्यतः धीयन्ते** शस्त्रों के मध्य में (निवित्) रखे जाते हैं **तस्तात्** इसी कारण (लोक में) **मध्ये गर्भाः धृताः** (उदर के) मध्य में गर्भ धारित किया जाता है।

सा० भा०—यस्माच्छस्त्राणां मध्ये निविदः प्रयुक्ताः, तस्माद् गर्भा उदरमध्ये धीयन्ते।।

तृतीयसवनस्थानविशेषं विधत्ते—

(तृतीयसवने स्थानविधानम्)

यदन्ततस्तृतीयसवने धीयन्ते, तस्माद् अमुतोऽर्वाञ्चो गर्भाः प्रजायन्ते, प्रजात्यै ।।३।।

हिन्दी—(अब तृतीयसवन में स्थान-विशेष को दिखला रहे हैं—) **तृतीयसवने** तृतीय-सवन में (निवित्) **यद् अन्ततः धीयन्ते** जो शस्त्र के अन्त में रखे जाते हैं **तस्मात्** इसी कारण (लोक में) **अमुतः** इस (माता के उदर) से **गर्भाः** गर्भ **अर्वाञ्चः प्रजायन्ते** नीचे की ओर होकर उत्पन्न होते हैं।

सा० भा०—'अन्ततः शस्त्रस्यान्तिमे देशे एकामृचं शिष्ट्वा निविदः पठितव्या। यस्मादेता अन्तिमदेशभागिन्यः तस्माल्लोकेऽपि गर्भा 'अमुतः' निवासस्थानान्मातुरुदरमध्यात् 'अर्वाञ्चः' अधोभागगताः प्रजायन्ते। तच्च यजमानस्य प्रजननार्थं भवति।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ।।४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **प्रजया पशुभिः प्रजायते** प्रजा और पशुओं से समृद्ध होता है।

सवनत्रये विहितं निविदां स्थानत्रयं प्रशंसति—

पेशा वा एत उक्थानां यन्निविदः, तद् यत्पुरस्तादुक्थानां प्रातःसवने धीयन्ते, यथैव प्रवयणतः पेशः कुर्यात् तादृक् तद्, यन्मध्यतो मध्यंदिने धीयन्ते यथैव मध्यतः पेशः कुर्यात् तादृक् तद्, यदन्ततस्तृतीयसवने धीयन्ते, यथैवाव प्रज्जनतः पेशः कुर्यात् तादृक् तत् ।।५।।

हिन्दी—(तीनों सवनों में निविदों के प्रयोग के तीन स्थानों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् निविदः** जो निवित् है **एते उक्थानां पेशाः** एव ये शस्त्रों के आभूषण है। **तद् यत् प्रातःसवने** तो जो प्रातःसवन में **उक्थानां पुरस्तात्** शस्त्रों से पहले (निवित्) **धीयन्ते** रखे जाते हैं **यथा एवं प्रवयणतः कुर्यात्** जिस प्रकार (वस्त्र के) प्रारम्भ में अलङ्करण किया जाता है **तादृक् तत्** वैसे ही वह (शस्त्रों के प्रारम्भ में रखे जाते हैं) **यद्**

मध्यन्दिने मध्यतः धीयन्ते जो मध्यन्दिनसवन में (शस्त्रों के) मध्य में रखे जाते हैं तो **यथैव मध्यतः पेशः कुर्यात्** जिस प्रकार (लोक में) मध्य में अलंकृत किया जाता है **तादृक् तत्** उसी प्रकार (निवित् शस्त्रों के मध्य में रखे जाते हैं)। **यत् तृतीयसवने** जो तृतीय सवन में **अन्ततः धीयन्ते** अन्त रखे जाते हैं तो **यथैव प्रज्जनतः पेशः कुर्यात्** जिस प्रकार (लोक में) जुलाहा कपड़े के अन्तिम भाग में अलङ्करण करता है **तादृक् तत्** उसी प्रकार (वे सायंसवन में शस्त्र के अन्त में रखे जाते हैं)।

सा० भा०—'पेशाः' अलङ्काराः।[१] वेञ् तन्तुसंताने' इति धातोर्वयशब्दोत्पत्तिः। कुविन्दानां[२] यत्रारम्भे वस्त्रवयनं तत्प्रवयणम्। लोके यथैव वाससां[३] प्रवयणतो वयनप्रारम्भे पेशोऽलङ्कारं कुर्यात्; वर्णान्तरोपेतैस्तन्तुभिरलङ्कारः; तथैव प्रातःसवने शस्त्राणां पुरतो निवित्पठनं भवति। तच्च[४] वस्त्रस्थानीयानामुक्थानां प्रथमभागेऽलङ्काराय संपद्यते।[५] शस्त्रमध्ये तत्पठनम्, वस्त्रमध्ये वर्णान्तरेणालङ्कारसमम्। एवं 'प्रज्जनः' वस्त्रस्यान्तभागः[६], तत्र यथा वर्णान्तरेणालङ्कारस्तादृगुक्थानामन्ते निवित्पठनम्॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वतो यज्ञस्य पेशसा शोभते यं एवं वेद ।।६।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वतः** सभी ओर से **यज्ञस्य पेशसा** यज्ञ के अलङ्करण से **शोभते** शोभायमान होता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायां प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) दशमः खण्डः॥१०॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (एकादशाध्याये) दशमः खण्डः ॥१०॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के दशम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) पिश अवयवे असुन्नन्ताज्जसः शौ शेश्छन्दसि बहुलमिति लोपः। यद्वा, घञि रूपं द्रष्टव्यम्'–इति भट्टभास्करः।
(२) भ्वा० १००६। 'वय शब्दनिष्पत्तिः। कुविन्दस्य' इति वा पाठः।
(३) 'वाससः' इति वा पाठः। (४) 'तेन' इति वा पाठः।
(५) 'अलङ्काराः सम्पद्यन्ते' इति वा पाठः।
(६) 'अवसितं प्रजननमवप्रजननम् अवसानम्। द्वितीयो जकार उपजनः। यद्वा, प्रतिमुखं जननं प्रजननम्। सर्वात्मना समाप्तिः। प्रतेरन्त्यलोपश्छान्दसः'–इति भट्टभास्करः।

अथ एकादशः खण्डः

सा० भा०—अथ निविद्विषयं बहुवक्तव्यं विवक्षुरादौ सूर्यसादृश्येन निविदः प्रशंसति—

(सूर्यसादृश्येन निवित्प्रशंसनम्)

सौर्या वा एता देवता यन्निविदस्तद्यत्पुरस्तादुक्थानां प्रातःसदने धीयन्ते, मध्यतो मध्यंदिनेऽन्ततस्तृतीयसवन आदित्यस्यैव तद्व्रतमनु पर्यावर्तन्ते ।।१।।

हिन्दी— (अब निविद् विषयक अनेक तथ्यों को कहने के लिए पहले सूर्य की समान ता से निवित की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् निविदः** जो निवित् हैं **एताः सौर्याः देवताः वै** ये सूर्य देवता वाले होते हैं। **तत् यद् प्रातःसवने** तो जो प्रातःसवन में **उक्थानां पुरस्ताद्** शस्त्रों के पहले **मध्यन्दिने मध्यतः** मध्यन्दिनसवन में (शस्त्रों के) मध्य में और **तृतीयसवने अन्ततः** तृतीयसवन में (शस्त्रों के) अन्त में **धीयन्ते** रखे जाते हैं, **तत्** वह (रखने के स्थान) **आदित्यस्यैव व्रतम्** सूर्य के ही मार्ग का **अनु पर्यावर्तन्ते** अनुसरण करते हैं।

सा० भा०—या निविदः सन्ति, ता एताः सूर्यसंबन्धिन्य एव देवताः। यथा सूर्यः पुरस्तादुदेत्यथामध्ये स्थित्वा पश्चादन्तेऽस्तमेति, एवं निविदोऽपि पुरस्तान्मध्येऽन्ते च स्थाप्यन्ते। तस्मादादित्यस्यैव व्रतमाचरणमनु निविदः पर्यावर्तन्ते।।[१]

तासां निविदां द्वादशपदरूपाणामेकैकस्मिन् पादेऽवसानं विधत्ते—

पच्छो वै देवा यज्ञं समभरंस्तस्मात् पच्छो निविदः शस्यन्ते ।।२।।

हिन्दी—(उन बारह पादों वाले निविदों के एक-एक पाद पर अवसान करने का विधान कर रहे हैं—) **देवाः** देवताओं ने **पच्छः** प्रत्येक पाद पर विराम करते हुए **समभरन्** सम्पदित किया। **तस्मात्** इसी कारण **पच्छः** प्रत्येक पाद पर विराम करते हुए **निविदः शस्यन्ते** निविदों का शंसन करना चाहिए।

सा० भा०—देवाः पुरा यज्ञं पच्छः पादशः समभरन्नेकैकभागक्रमेण संपादितवन्त इत्यर्थः। तस्मादेता निविदोऽपि पादशः शंसनीयाः।।[२]

---

(१) 'निविदोऽपि 'पच्छः' एकैकस्मिन् पादेऽवसाय शंसनीयाः' इति वा पाठः।

(२) सूर्यस्य व्रतं सौरम्, तत्र साध्व्यः सौर्याः सूर्येण तुल्यव्रताः। निविदो नाम सौर्याः सूर्येण तुल्यकर्माणो भवन्ति। तदेवाह—आदित्यस्यैव तद् व्रतं कर्मानु पर्यावर्तन्ते पर्यायेणानुवर्तन्तेऽनुगच्छन्ति। तत्प्रकारश्च तद्यत् तदापि ङीपि सूर्यतिष्यागस्त्येति य लोपे सौर्या निविदः स्युः न सौर्याः। तस्मात् सौरे कर्मणि साध्व्य इति तत्र साधुरिति यद् भवति इति वेदितव्यम्'–इति भट्टभास्करः।

निविदां शंसकाय होत्रेऽश्वदानं विधत्ते—

(निवित्शंसकायाश्वदानविधानम्)

यद् वै तद् देवा यज्ञं समभरंस्तस्माद् अश्वः समभवत्, तस्मादाहुरश्वं निविदां शस्त्रे दद्याद् इति तदु खलु वरमेव ददति ।।३।।

हिन्दी—(निविदों का शंसन करने वाले होता के लिए अश्व देने का विधान कर रहे हैं—) **देवाः** देवताओं **यत् तत् यज्ञं सम्भरन्** जहाँ यज्ञ का सम्पादन किया **तस्माद् अश्वः समभवत्** उस स्थान से अश्व उत्पन्न हुआ। **तस्माद् आहुः** इसी कारण (अभिजन) कहते है कि (निविदों के शंसन करने वाले के लिए) **अश्वं दद्यात्** अश्व को देना चाहिए क्योंकि **तदु खलु** निश्चित रूप से (उस अश्व-दान द्वारा) **वरमेव ददाति** (यजन करने वाला) श्रेष्ठ वस्तु को ही प्रदान करता है।

सा० भा०—'यद्वै' यस्मिन्नेव देशे तत् तदा देवा यज्ञं संपादितवन्तः, तस्माद् देशाद् अश्व उत्पन्नः। अत एवाभिज्ञा आहुः। किमाहुरिति, तदुच्यते–निविदां शंसकायाश्वं दद्यादिति। तदु खलु तेनैवाश्वदानेन 'वरमेव' श्रेष्ठमेव वस्तु 'ददति' प्रयच्छन्ति।।

द्वादशसु निवित्पदेषु कस्यापि पदस्यातिक्रमं निषेधति—

(निविदः पदस्यातिक्रमणनिषेधः)

न निविदः पदमतीयात् ।।४।।

हिन्दी—(निविद् पदों में किसी भी पद के अतिक्रमण का निषेध कर रहे हैं—) **निविदः पदम्** निवित् के पद का **न अतीयात्** अतिक्रमण (किसी पद को छोड़कर शंसन) नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—एकमपि पदं न परित्यजेदित्यर्थः।।

विपक्षबाधपूर्वं पूर्वपक्षं निगमयति—

यन्निविदः पदमतीयाद्, यज्ञस्य तच्छिद्रं कुर्याद्; यज्ञस्य वै छिद्रं स्रवद् यजमानोऽनु पापीयान् भवति, तस्मान्न निविदः पदमतीयात् ।।५।।

हिन्दी—**यद् निविदः पदम् अतीयात्** जो निवित् के पद को छोड़ देता है, वह **तत्** उस (पद को छोड़ने) से **यज्ञस्य छिद्रं कुर्यात्** यज्ञ में छिद्र कर देता है। **यज्ञस्य वै छिद्रं स्रवद् यजमानः** यज्ञ के छिद्र से निन्दित हुआ यजमान **अनु पापीयान् भवति** बाद में पाप का भागी हो जाता है। **तस्मात्** इस कारण **निविदः पदं न अतीयात्** निवितों के पद को नहीं छोड़ना चाहिए।

सा० भा०—पदस्य परित्यागे यज्ञस्य छिद्रं भवति। तच्च स्रवति। ततो यजमानो

निन्द्यो[1] भवति। तस्मान्निवित्पदं न परित्यजेत्॥

पदानां विपर्यासं[2] निषेधति—

(निवित्पदानां विपर्यासनिषेधः)

न निविदः पदे विपरिहरेद्, यन्निविदः पदे विपरिहरेन् मोहयेद् यज्ञं, मुग्धो यजमानः स्यात्, तस्मान्न निविदः पदे विपरिहरेत् ।।६।।

हिन्दी—(निविदों के पदों के विपर्यास का निषेध कर रहे हैं—) **निविदः पदे** निविदों के पद में **न विपरिहरेत्** विपर्यास (पदों को हेर फेर करके शंसन) नहीं करना चाहिए। **यद् निविदः पदे विपरिहरेत्** जो निवित् के पद में विपर्यास करता है, वह **यज्ञं मोहयेत्** यज्ञ को भ्रमित कर देता है इससे **यजमानः मुग्धः स्यात्** यजन करने वाला भी भ्रमित हो जाता है। **तस्माद् निविदः पदे न विपरिहरेत्** इस कारण निविदों के पद में विपर्यास नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—विपरिहारो विपर्यासः। निविदः संबन्धि यत्पदद्वयं तन्न विपरिहरेद् विपरीततया न पठेत्। तथा सत्ययं होता 'यज्ञं मोहयेत्' यज्ञे भ्रान्तिं जनयेत्। ततो यजमानोऽपि मुग्धो भ्रान्तः स्यात्, तस्माद्विपर्यासो न कर्तव्यः॥

निवित्पदसंश्लेषणं[3] निषेधति—

(निवित्पदसंश्लेषणनिषेधः)

न निविदः पदे समस्येद्, यन्निविदः पदे समस्येद् यज्ञस्य तदायुः संहरेत्, प्रमायुको यजमानः स्यात्, तस्मान्न निविदः पदे समस्येत् ।।७।।

हिन्दी—(निवित पदों को संश्लिष्ट करके शंसन करने का निषेध कर रहे हैं—) **निविदः पदे** निविदों के पद में **न समस्येत्** संश्लेष (मिलाकर शंसन) नहीं करना चाहिए। **यद् निविदः पदे समस्येद्** यदि निविदों के पद में संश्लेष करता है **तद् आयुः संहरेत्** तो वह (यज्ञ की) आयु को विनष्ट करता है और **यजमानः प्रमायुकः स्यात्** यजन करने वाला मृत्यु को प्राप्त करता है। **तस्माद् निविदः पदे न समस्येत्** इसलिए निविदों के पद में संश्लेष नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—पदयोः संश्लेषणे यज्ञस्याऽऽयुः संहृतं भवेत्, यज्ञो विनश्येदित्यर्थः। ततो यजमानो म्रियेत्। तस्मात् पदद्वयं न संश्लेषयेत्॥

अनेन निषेधेन सर्वेषां पदानां परस्परविश्लेषणप्राप्तौ मध्यमयोर्द्वयोः पदयो संश्लेषणं विधत्ते—

---

(१) 'दरिद्रो' इति वा पाठः। (२) 'व्युत्क्रमन्यासम्' इति वा पाठः।
(३) 'पदयोः परस्परं श्लेषम्' इति वा पाठः।

(मध्यमयोः पदयोः संश्लेषविधानम्)

प्रेदं ब्रह्म प्रेदं क्षत्रमित्येते एव समस्येद्, ब्रह्मक्षत्रयोः संश्रित्यैः, तस्माद् ब्रह्म च क्षत्रं च संश्रिते ।।८।।

हिन्दी—(निवित् के मध्यम दो पदों के संश्लेषण का विधान कर रहे हैं—) **ब्रह्मक्षत्रयोः संश्रित्यै** ब्राह्मण और क्षत्रिय के परस्पर आश्रयण के लिए **प्रेद्दं ब्रह्म प्रेदं क्षत्रम्** 'प्रेदं ब्रह्म' और 'प्रेदं क्षत्रम्' **इत्येते एव समस्येत्** इन दोनों पदों को संश्लेष करना चाहिए। **तस्मात्** इस कारण **ब्रह्म च क्षत्रं च** ब्राह्मण और क्षत्रिय **संश्रिते** दोनों परस्पर आश्रित होते हैं।

सा०भा०—निवित्पदानां मध्ये 'प्रेदं ब्रह्म' इत्येकं पदम्, 'प्रेदं क्षत्रम्' इत्यपरं पदम्। ते उभे एव संश्लेषयेत्। एवकार इतरसंश्लेषव्यावृत्त्यर्थः। तदेतन्मेलनं ब्राह्मणक्षत्रियजात्योः परस्पराश्रयणाय भवति। तस्मादेव लोके जातिद्वयं परस्परमाश्रित्य तिष्ठति। ब्राह्मणो धर्मं प्रवर्तयति। क्षत्रियस्तस्य रक्षां करोति।।

निवित्पदानां प्रक्षेपस्याऽऽश्रयभूते सूक्ते कंचिन्नियमं विधत्ते—

(प्रक्षेपस्याश्रयभूते सूक्ते कश्चिन्नियमः)

न तृचं न चतुर्ऋचमतिमन्येत निविद्धानमेकैकं वै निविदः पदमृचं सूक्तं प्रति, तस्मान्न तृचं न चतुर्ऋचमतिमन्येत, निविद्धानं निविदा ह्येव स्तोत्रमतिशस्तं भवति ।।९।।

हिन्दी—(निवित्पदों के प्रक्षेप के आश्रयभूत सूक्त में नियमविशेष का विधान कर रहे हैं—) **न तृचं न चतुर्ऋचं अतिमन्येत** (निवित्पदों के प्रक्षेप के लिए) तीन-तीन ऋचाओं वाले और चार-चार ऋचाओं वाले सूक्त का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। **एकैकं निविद्धानम्** निवित् के एक-एक पद **ऋचं सूक्तं प्रति** ऋचा और सूक्त के प्रतिरूप हैं। **तस्मात्** इसी कारण **न तृचं न चतुर्ऋचम्** न तो तीन ऋचा और न तो चार ऋचा वाले (सूक्त) का **अतिमन्येत** अतिक्रमण करना चाहिए; क्योंकि **निविदा** निवित् के द्वारा (अधिक ऋचा वाले सूक्त से) **स्तोत्रम् अतिशस्तं भवति** स्तोत्र अधिक शंसित हो जाता है।

सा०भा०—तिस्र ऋचो यस्मिन् सूक्ते तत् 'तृचम्'। चतस्र ऋचो यस्मिन् सूक्तं तच्चतुर्ऋचम्। तादृशमुभयविधं सूक्तमतिक्रम्य निविद्धानं निवित्पदानां धानं प्रक्षेपं 'न मन्येत' न चिन्तययेत्। एतदुक्तं भवति—त्रिचतुरमात्रर्चात् सूक्तादर्वाचीने सूक्ते निविदो न दध्यात्, किंतु भूयस्येव दध्यादिति। 'निविदः' संवन्धि यदेकैकमेव पदं तदेव प्रत्यृचं प्रतिसूक्तं च समर्थं भवति। यस्मादीदृशं सामर्थ्यं तस्मादित्युक्तार्थोपसंहारः। अधिके सूक्ते निवित्पदेषु प्रक्षिप्तेषु निविदैव स्तोत्रातिशंसनं कृतं भवति। न तु सूक्तम् ऋचं वापेक्षेत तदित्यर्थः।।

तृतीयसवने विशेषं विधत्ते—

(प्रक्षेपस्य तृतीयसवने विशेषः)

एकां परिशिष्य तृतीयसवने निविदं दध्यात् ।।१०।।

हिन्दी—(तृतीयसवन में विशेष विधान कर रहे हैं—) **तृतीयसवने** तृतीय सवन में **एकां परिशिष्य** एक (अन्तिम ऋचा) को छोड़कर **निविदं दध्यात्** निवित् का प्रक्षेप करना चाहिए।

सा० भा०—सूक्ते येयमृगन्त्या, तामवस्थाप्य ततः पूर्वमेव तृतीयसवने निविदः प्रक्षिपेत्।।

विपक्षबाधपुरःसरं स्वपक्षमुपसंहरति—

यद् द्वे परिशिष्य दध्यात् प्रजननं तदुपहन्याद्, गर्भैस्तत्प्रजा व्यर्धयेत् तस्मादेकामेव परिशिष्य तृतीयसवने निविदं दध्यात् ।।११।।

हिन्दी—(विपक्ष में बाधा को दिखला कर अपने पक्ष का उपसंहार कर रहे हैं—) **यद् द्वे परिशिष्य दध्यात्** जो दो (ऋचाओं) की छोड़कर (उससे पहले) निवित् को रखता है। **तत् प्रजननम् उपहन्यात्** तो वह प्रजोत्पादन-शक्ति को विनष्ट कर देता है और **तत्** वह **गर्भैः प्रजा व्यर्धयेत** (पुत्रादि) सन्तान को गर्भों से पृथक् कर देता है। **तस्मात्** इस कारण **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **एकामेव परिशिष्य** एक (ऋचा) को छोड़कर ही **निविदं दध्यात्** निविदों को रखना चाहिए।

सा० भा०—यदि 'द्वे' ऋचौ परिशिष्य ततः पुरा निविदं दध्यात् तदानीं प्रजोत्पादनं[१] विनाशयेत्। पुत्रादयः प्रजा गर्भैर्व्यर्धयेद् वियुक्ताः कुर्यात्। प्रजननमुपहन्यादित्यनेन यजमानस्य प्रजोत्पादनराहित्यमुक्तम्। प्रजा व्यर्धयेदित्यनेन पूर्वमुत्पन्नानां पुत्रादीनामपत्यराहित्यम्। तस्मादित्युपसंहारः।।

अथ निविद्धानीयेन सूक्तेन निविदतिक्रमं निषेधति—

(निविद्धानीयसूक्तेन निविदतिक्रमनिषेधः)

न सूक्तेन निविदमतिपद्येत ।।१२।।

हिन्दी—(अब निविद्धानीय सूक्त से निवित् के अतिक्रम का निषेध कर रहे हैं–) **सूक्तेन निविदं न अतिपद्येत** (निवित्पक्षेपार्थ) सूक्त से निवित्प्रक्षेप को छोड़कर (केवल उस सूक्त का) शंसन नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—यत्सूक्तं निविद्धानार्हं निविदमतिक्रमति, तेन सूक्तेन 'न पद्येत' निवि-

(१) 'प्रजोत्पादनसाधनं' इति वा पाठः।

त्प्रक्षेपं परित्यज्य केवलं तत्सूक्तं न पठेदित्यर्थः।।

प्रमादान्निवित्प्रक्षेपविस्मृतौ सत्यां पुनस्तत्सूक्ते निविदं प्रक्षिप्य पाठो भ्रान्त्या प्रसक्तस्तं निषेधति—

(निवित्प्रक्षेपविस्मृतौ पुनःप्रक्षेपनिषेधः)

येन सूक्तेन निविदमतिपद्येत, न तत्पुनरुपनिवर्तेत, वास्तुहमेव तत्।।१३।।

हिन्दी—(प्रमाद के कारण निवित्प्रक्षेप भूल जाने पर पुनः उस सूक्त में निवित्प्रक्षेप के शंसन का निषेध कर रहे हैं—) **येन सूक्तेन निविदम् अतिपद्येत** जिस सूक्त से (किसी कारण वश) निवित् का जोड़ना छूट जाय तो **तत् पुनः न उपनिवर्तेत** उस (छूटे हुए निवित् वाले सूक्त का पुनः (निवित् लगाकर) पाठ नहीं करना चाहिए; क्योंकि **वास्तुहमेव तत्** वह वास्तु (निवित के स्थान) का घातक होता है।

सा० भा०—निविदमतिक्रम्य परित्यज्य निवित्प्रक्षेपयोग्येन 'येन सूक्तेन' पद्येतानुष्ठानं प्राप्नुयात् 'तत्' विस्मृतनिवित्कं सूक्तं 'पुनर्नोपनिवर्तेत' भूयो निविदं प्रक्षिप्य न पठेत्। तत्र हेतुरुच्यते—'तत्' विस्मृतनिवित्कं सूक्तं वास्तुहमेव। वास्तुशब्देन निविदः स्थानमुच्यते। तस्य स्थानस्य घातकं 'तत्सूक्तम्' ततः पुनः पाठस्य न योग्यत्वम्।।

का तर्हि तदानीं निविदो गतिरित्याशङ्क्याऽऽह—

(तादृशान्यत्सूक्ते प्रक्षेपविधानम्)

अन्यत् तद्दैवतं तच्छन्दसं सूक्तमाहृत्य तस्मिन् निविदं दध्यात् ।।१४।।

हिन्दी—(उस समय उस निवित् की गति को कह रहे हैं—) **तद् दैवतम्** उसी देवता वाले और **तत् छन्दसम्** उसी छन्द वाले **अन्यं सूक्तम् आहृत्य** अन्य सूक्त को लेकर **तस्मिन्** उस (अन्य सूक्त) में **निविदं दध्यात्** निवित् को प्रक्षिप्त करना चाहिए।

सा० भा०—पूर्वस्य निविद्धानीयस्य सूक्तस्य देवता यादृशी, छन्दश्च यादृशं, तथाविधाभ्यां देवताछन्दोभ्यां युक्तमन्यत् किञ्चित् सूक्तमाहृत्य तस्मिन् सूक्ते निविदं प्रक्षिपेत्।।

तत्र कंचिद् विशेषं विधत्ते—

(तत्र कश्चिद्विशेषः)

'मा प्र गाम पथो वयम्' इति पुरस्तात् सूक्तस्य शंसति ।।१५।।

हिन्दी—(उस विषय में विशेष विधान कर रहे हैं—) **सूक्तस्य पुरस्तात्** उस प्रक्षिप्त निवित् वाले) सूक्त के पहले 'मा प्र गाम पथो वयम्' अर्थात् हम (शंसनमार्ग से भ्रष्ट होता) मार्गभ्रंश रूप दोष को प्राप्त न करें'—**इति शंसति** इस (सूक्त) का शंसन करता है।

सा० भा०—यस्मिन्नाहृते नूतने सूक्ते। निवित् प्रक्षिप्यते, तस्य सूक्तस्य 'पुरस्तात्

तत्पाठात् पूर्वं 'मा प्र गाम'[१] इति सूक्तं शंसेत्। वयं होतारः पथः शंसनमार्गात् प्रभ्रष्टाः सन्तो मा प्र गाम प्रभ्रंश मा प्राप्नवामेति तस्य पादस्यार्थः। मार्गभ्रंशदोषोऽस्माकं मा भूदित्यभिप्रायः॥

द्वितीयपादस्य तात्पर्यं दर्शयति—

पथो वा एष प्रैति, यो यज्ञे मुह्यति 'मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः' इति यज्ञादेव तन्न प्रच्यवते ॥१६॥

हिन्दी—('मा प्र गाम' ऋचा के द्वितीय पाद का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **यः यज्ञे मुह्यति** जो यज्ञ में भूल जाता है **एषः पथः वै प्रैति** यह निश्चित रूप से मार्ग से च्युत हो जाता है। **मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः** अर्थात् हे इन्द्र! (सोम) यज्ञ से हम च्युत न होवें'—**इति तत्** इस (शंसन) से वह होता **यज्ञाद् न प्रच्यवते** यज्ञ से च्युत नहीं होता है।

सा०भा०—मा यज्ञादित्यादिर्द्वितीयः पादः, तस्यायमर्थः—हे इन्द्र सोमिनः सोमयुक्ताद् यज्ञात् मा प्र गामेत्यनुवर्तते, प्रभ्रशं मा प्राप्नवामेति। यः पुमान् यज्ञे मुह्यति भ्रान्तिं प्राप्नोति एष पुमानवश्यं पथः प्रैत्येव मार्गाद् प्रभ्रश्यत्येव। अतो 'मा प्र गाम पथः' इत्येतावता न पर्याप्तं किंतु मार्गभ्रंशपरिहारदार्ढ्यार्थं मा यज्ञादित्यपि पठनीयम्। तत्पादपाठेनायं यज्ञान्न प्रच्यवते। अथवा 'पथो वा एषः' इत्यर्थवादः पूर्वपादशेषत्वेन व्याख्येयः॥

तृतीययपादमनूद्य व्याचष्टे—

'माऽन्तः स्थुर्नो अरातयः' इत्यरातीयत एव तदपहन्ति ॥१७॥

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय पाद के कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'माऽन्तः स्थुर्नो अरातयः' अर्थात् (हम लोगो के) मध्य में शत्रु लोग खड़े न होवे' **तद्** इस (तृतीय पाद के शंसन) से **अरातीयतः एव अपहन्ति** शत्रुओं को ही विनष्ट कर देता है।

सा०भा०—नोऽस्माकमन्तर्मध्येऽरातयः शत्रो 'मा स्थुः' मा तिष्ठन्तु। तत्पादपाठेनारातीयत शत्रुत्वमिच्छत एव पुरुषानपहन्ति॥

तस्मिन् सूक्ते[२] द्वितीयामृचमनुवदति—

'यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः। तमाहुतं नशीमहि' इति ॥१८॥

हिन्दी—(उस सूक्त की द्वितीय ऋचा को कह रहे हैं—) **यः यज्ञस्य प्रसाधनः** जो (पितृपरम्परा से) यज्ञका प्रकृष्ट रूप से साधक दीर्घतन्तु के समान **देवेषु आवतः** देवताओं में विस्तृत है **आहुतं तम्** आहुत उस (पुत्र) का (न) **नशीमहि** हम विनाश न करें—**इति** यह (द्वितीय ऋचा है)।

---

(१) ऋ० १०.५७.१।   (२) ऋ० १०.४७.२।

सा० भा०—यः पुत्रो 'यज्ञस्य प्रसाधनः' कुलपारम्पर्येण यज्ञस्य प्रकर्षेण साधकः। अत एव तन्तुर्देवेष्वाततो दीर्घतन्तुरिव देवेषु विस्तारितः। तं तथाविधं पुत्रमाहुतमाह्वानेन संपादितदेवतं नशीमहि। अत्र निषेधार्थः कश्चिन्नकारोऽध्याहर्तव्यः, नैव नाशयाम इत्यर्थः। अस्माभिः प्रमादे कृतेऽप्यस्मत्पुत्रस्य देवेषु प्रचारात् स प्रमादः समाधीयत इत्यर्थः॥

अत्र तन्तुशब्दस्य तात्पर्यं दर्शयति—

प्रजा वै तन्तुः, प्रजामेवास्मा एतत्संतनोति ॥ १९ ॥

हिन्दी—(इस द्वितीयपाद में प्रयुक्त 'तन्तु' शब्द का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **प्रजा वै तन्तुः** (कुलाचार का विच्छेद न करने के कारण पुत्ररूप) प्रजा ही तन्तु है। **एतत्** इस (द्वितीयपाद के शंसन) से **अस्मै** इस (यजमान) के लिए **प्रजामेव सन्तनोति** प्रजा को ही विस्तृत (अविच्छिन्न) करता है।

सा० भा०—कुलाचाराद्यविच्छेदहेतुत्वात् पुत्ररूपा प्रजा तन्तुशब्देनोच्यते।[1] तथा सत्येतत्पाठेन 'प्रजामेव' पुत्रादिरूपामेव 'अस्मै' यजमानाय संतनोत्यविच्छिन्नां करोति॥

तृतीयस्या[2] ऋचः पूर्वार्धमनुवदति—

'मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन' इति ॥ २० ॥

हिन्दी—(अब तृतीय ऋचा के पूर्वार्ध को कह रहे हैं—) 'मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन' अर्थात् नाराशंस सम्बन्धी सोम के द्वारा हम (अपने) मन को आहूत कर रहे हैं— इति यह तृतीय ऋचा का पूर्वार्ध है।

सा० भा०—आप्यायिताश्चमसा नाराशंसाः, तत्सम्बन्धिना सोमेन तु क्षिप्रमेव 'मनः' अस्मदीयमाहुवामह आह्वयामि॥

अस्यार्धस्य तात्पर्यं दर्शयति—

मनसा वै यज्ञस्तायते मनसा क्रियते ॥ २१ ॥

हिन्दी—(तृतीय ऋचा के पूर्वार्ध का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **मनसा वै यज्ञः तायते** मन से ही यज्ञ विस्तारित किया जाता है और **मनसा क्रियते** मन द्वारा ही सम्पादित किया जाता है।

सा० भा०—सर्वो यज्ञो मनसैव तायते विस्तार्यते; मनःपूर्वकत्वादितरेन्द्रियप्रवृत्तेः। तस्मिंश्च प्रसारिते यज्ञे यो यः कर्तव्यविशेषोऽस्ति स सर्वोऽपि मनसा क्रियते। तस्मान् मनस आह्वानं यागे ज्ञाने वा युक्तम्॥

अस्य सूक्तस्य प्रथमतः पाठे प्रयोजनं दर्शयति—

---

(१) 'विविक्षिता' इति वा पाठः। (२) ऋ० १०.५७.३।

सैव तत्र प्रायश्चित्तिः, प्रायश्चित्तिः ।।२२।।

हिन्दी—(इस सूक्त के प्रथमतः पाठ करने का प्रयोजन दिखला रहे हैं—) **सा एव तत्र प्रायश्चित्तिः** उस (निवित् के अतिक्रमण के निवारण के) विषय में वह ('मा प्र गाम' इस सूक्त का शंसन) प्रायश्चित्त है।

सा० भा०—मा प्र गामेत्यादिसूक्तस्योक्तिरेव निविदतिक्रमरूपप्रत्यवास्य प्रायश्चित्तिः। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्ये तृतीयपञ्चिकायां प्रथमाध्याये एकादशः खण्डः ।।११।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय के एकादश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवाचार्यादेशतो सायणाचार्येणविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'-नामभाष्ये -ऐतरेयब्राह्मणस्य तृतीयपञ्चिकाया: प्रथमोऽध्यायः (एकादशोऽध्यायः) समाप्त ।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकादश अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयपञ्चिकायाम्
द्वितीयोऽध्यायः
[अथ द्वादशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—एकादशेऽथ प्रउगप्रशंसा ततो वषट्कारमनुस्तुतिं च ।
तत्कर्तुरात्मन्यनुमन्त्रणं च ततो निवित्प्रैषविशेषमाहुः ॥१॥

अथाऽऽहावप्रतिगरादयो वक्तव्याः, तत्र प्रातःसवने होतुराहाववचनमध्वर्योः प्रतिगरं च विधत्ते—

(मरुत्वतीयशस्त्रविधानम्)

(तत्र प्रातःसवने आहावप्रतिगरयोविधानम्)

देवविशः कल्पयितव्या इत्याहुश्छन्दश्छन्दसि प्रतिष्ठाप्यमिति शोंसावोमित्याह्वयते प्रातःसवने त्र्यक्षरेण, शंसाऽऽमोदैवोमित्यध्वर्युः प्रतिगृणाति पञ्चाक्षरेण, तदष्टाक्षरं संपद्यते, अष्टाक्षरा वै गायत्री, गायत्रीमेव तत् पुरस्तात् प्रातःसवनेऽचीक्लृपताम् ।। १ ।।

हिन्दी—(अब आहाव, प्रतिगर इत्यादि के कथन के लिए पहले प्रातःसवन में होता के आहाव वचन और अध्वर्यु प्रतिगर का विधान कर रहे हैं—) **देवविशः कल्पयितव्याः** देवताओं की (सेनारूपी) प्रजा को सम्पादित करना चाहिए'—**इत्याहुः** ऐसा याज्ञिक कहते हैं। **छन्दः छन्दसि प्रतिष्ठाप्यम्** एक छन्द को दूसरे छन्द में प्रतिष्ठापित करना चाहिए। **प्रातःसवने** प्रातःसवन में 'शोंसवोम्' अर्थात् हे अध्वर्यु हम दोनों स्तुति करें'—**इति त्र्यक्षरेण** इस तीन अक्षर से होता (आहाव करता है)। तब **अध्वर्युः** अध्वर्यु (नामक ऋत्विक्) **शंसाऽऽमोदं वोम्** अर्थात् (हे होता)! तुम शंसन करो। यह हम लोगों के हर्ष का विषय है'—**इति पञ्चाक्षरेण** इन पाँच अक्षरों से (अध्वर्यु) **प्रतिगृणाति** प्रतिगर (प्रत्युत्तर) करता है। **तद् अष्टाक्षरं सम्पद्यते** वे दोनों (मिलकर) आठ अक्षर वाले हो जाते हैं। **अष्टाक्षरा वै गायत्री** गायत्री (एक पाद में) आठ अक्षरों वाली होती है। **तत्** इससे **गायत्रीमेव** गायत्री को ही **प्रातःसवने** प्रातःसवन में **पुरस्ताद् अचीक्लृपताम्** प्रारम्भ में (दोनों ने) कल्पित करें।

सा० भा०—देवविशो[1] देवानां संबन्धिन्य: प्रजा: सैन्यरूपा: कल्पयितव्या: संपादनीया इति ब्रह्मवादिन आहु:। तत्कथं संपादनमिति, तदुच्यते–एकं छन्दोऽन्यस्मिंश्छन्दसि[2] प्रतिष्ठापनीयम्। तथा सति देवविश: संपद्यन्त इति ब्रह्मावादिनामाभिप्राय:। तस्मात् तत्संपादनार्थं होता प्रात:सवने शोंसावोमिति मन्त्रेणाध्वर्युमोपह्वयते। तस्यायमर्थ:—हे अध्वर्यो शोंसाव: शंसनं कुर्वत:। ओमित्ययनुज्ञार्थम्। त्वयाऽनुज्ञा देयेत्युक्तं भवति। सोऽयं त्र्यक्षरो मन्त्र:। ततोऽध्वर्यु: शंसाऽऽमोदैवोमिति पञ्चाक्षरेण[3] प्रतिगृणाति प्रत्युत्तरं ब्रूयात्। तस्यायमर्थ:—हे होत:, त्वं शंस तत्राऽऽमोदैव हर्ष एवास्माकमतोऽनुज्ञा दत्तेति। तदेतन्मन्त्रद्वयं मिलित्वाऽष्टाक्षरं संपद्यते, गायत्री चाष्टाक्षरा तेन प्रात:सवने पुरस्तादादौ द्वावपि मिलित्वा गायत्रीमेवाचीक्लृपतां[4] कल्पितवन्तौ॥

शस्त्राद् उत्तरकालीनौ द्वाभ्यां पठनीयौ मन्त्रौ विधत्ते—

(शस्त्रादुत्तरकालीनौ द्वाभ्यां पठनीयौ मन्त्रौ)

उक्थं वाचीत्याह शस्त्वा चतुरक्षरम्[5], ओमुक्थशा इत्यध्वर्युश्चतुरक्षरं, तदष्टाक्षरं संपद्यते, अष्टाक्षरा वै गायत्री, गायत्रीमेव तदुभयतः प्रातःसवनेऽचीक्लृपताम् ।।२।।

हिन्दी—(शस्त्र के बाद होता और अध्वर्यु दोनों द्वारा दो पठनीय मन्त्रों का विधान कर रहे हैं—) **शस्त्वा** होता शस्त्र का शंसन करके **उक्थं वाचि** अर्थात् हमारी वाणी में शस्त्र सम्पन्न हुआ'—**इति चतुरक्षरम् आह** इस चार अक्षर वाले (मन्त्र) का वाचन करता है। तब **अध्वर्युः** अध्वर्यु **'ओमुक्थशा'** अर्थात् तुम शस्त्र का शंसन करो'—**इति चतुरक्षरम्** इस चार अक्षर (वाले मन्त्र) को कहे। **तद् अष्टाक्षरं सम्पद्यते** वे (दोनों मन्त्र मिलकर) आठ अक्षरों वाले होते हैं। **तद्** इससे **प्रातःसवने** प्रातःसवन में **गायत्रीम् एव** गायत्री को ही **उभयतः अचीक्लृपत्** दोनों ओर से (होता अध्वर्यु दोनों ने) कल्पित करें।

---

(१) 'विश: सेना: प्रजा वा'—इति भट्टभास्कर:। 'देवविश: देवसेना:'—इति षड्गुरुशिष्य:।

(२) गायत्र्यादिकं सवनच्छन्द: उक्तादिजगत्यन्ते तस्मिन् छन्दसि प्रतिष्ठाप्यम् अक्षरसंपत्त्या संपाद्यम्। तदिदं देवविशां कल्पनम्'—इति भट्टभास्कर:।

(३) अध्वर्यो शोंसावोमिति होतुरभिज्ञाय प्रदक्षिणमावर्तमान: शोंसामोद इवेति प्रत्याह्वयते शंसामोद इवेति वा'—इति आप०श्रौ० १२.२७.१२।

(४) 'कृपो रो ल: (पा०सू० ८.२.१८), णौ चङ्युपधाया ह्रस्व:' (पा०सू० ७.४.१) उरृत् (पा०सू० ७.४.७); तसस्ताम्। होत्रध्वर्यु अकल्पयताम्'–इति षड्गुरशिष्य:।

(५) 'उक्थं वाचीत्येषां शस्त्वा जप: प्रात:सवने, उक्थं वाचीन्द्रायेति माध्यंदिने, उक्थं वाचीन्द्रा देवेभ्य इत्युक्थेषु सषोडशिकेषु'—इति आश्व०श्रौ० ५.१०.२२-२४।

सा० भा०—होता शस्त्रं पठित्वोक्थं वाचीति चतुरक्षरं मन्त्रं ब्रूयात्। मदीयायां वाच्युक्थं शस्त्रं संपन्नमिति तस्यार्थः। ततोऽध्वर्युरोमुक्थशा इति चतुरक्षरं मन्त्रं ब्रूयात्। ओमित्यङ्गीकार उक्थशास्त्वं शस्त्रशंसी भवसीत्यर्थः। तदेतन् मन्त्रद्वयं मिलित्वाऽष्टाक्षरं संपद्यते। उभयतः शंसनात् पुरस्तात् पश्चाच्च। शेषं पूर्ववत्॥[1]

माध्यंदिनसवने तद्वन्मन्त्रचतुष्टयं विधत्ते—

(माध्यन्दिनसवने पठनीयमन्त्रचतुष्टयम्)

अध्वर्यो शोंसावोमित्याह्वयते मध्यंदिने षळक्षरेण[2]; शंसाऽऽमोदैवोमित्यध्वर्युः प्रतिगृणाति पञ्चाक्षरेण, तदेकादशाक्षरं संपद्यते, एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप् त्रिष्टुभमेव तत्पुरस्तान्मध्यंदिनेऽचीक्लृपताम्, उक्थं वाचीन्द्रायेत्याह[3] शस्त्वा सप्ताक्षरमोमुक्थशा इत्यध्वर्युश्चतुरक्षरं, तदेकादशाक्षरं संपद्यते, एकादशाक्षरा वै त्रिष्टप् तदुभयतो मध्यंदिनेऽचीक्लृपताम् ।।३।।

हिन्दी—(मध्यन्दिनसवन में शस्त्र के शंसन करने के बाद होता और अध्वर्यु द्वारा चार पठनीय मन्त्रों का विधान कर रहे हैं—) '**अध्वर्यो शोंसावोम्** अर्थात् हे अध्वर्यु हम दोनो शंसन करे'—**इति षडक्षरेण** इन छः अक्षरों से **मध्यन्दिनसवने** मध्यन्दिनसवन में **आह्वयते** (होता) आह्वान करता है। तब **अध्वर्युः** अध्वर्यु 'शंसाऽऽमोदैवोम्' अर्थात् हे होता! तुम शंसन करो–यह हम लोगों के हर्ष का विषय है, **इति पञ्चाक्षरेण प्रतिगृणति** इन पाँच अक्षरों से अध्वर्यु प्रतिगर करता है। **तदेकादशाक्षरं सम्पद्यते** वे (दोनों मिलकर) ग्यारह अक्षर हो जाते हैं। **एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् (छन्द का एक पाद) ग्यारह अक्षरों वाला होता है। इस प्रकार **मध्यन्दिने** माध्यन्दिनसवन में **पुरस्तात्** प्रथमतः **त्रिष्टुभमेव अचीक्लृपताम्** त्रिष्टुप् को ही (होता और अध्वर्यु) दोनों नें कल्पित किया। **शस्त्वा** (होता शस्त्र का) शंसन करके '**उक्थं वाचीन्द्राय**' अर्थात् (हमारी) वाणी में इन्द्र के लिए उक्थ सम्पन्न हुआ—**इति सप्ताक्षरमाह** इन सात अक्षरों को कहता है। तब **अध्वर्युः** अध्वर्यु '**ओमुक्थशा**' अर्थात् तुम शस्त्र का शंसन करो' **इति चतुरक्षरम्** इस चार अक्षर वाले (मन्त्र) को कहे। **तदेकादशाक्षरं सम्पद्यते** (इस प्रकार दोनों मिलकर ग्यारह अक्षरों वाले हो जाते हैं। **एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् (का एक पाद) ग्यारह अक्षरों वाला होता है। **तत्** इससे **मध्यन्दिने** मध्यन्दिनसवन में **उभयतः** दोनों ओर से (होता

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.९.१; ५; १०.२२.९.८।

(२) 'अध्वर्यो शोंसावोमिति माध्यन्दिने शस्त्रादिष्वाहावः'—इति आश्व०श्रौ० ५.१४.३।

(३) 'चि इन्द्रायेति व्यूळ्हेन'–इति षड्गुरुशिष्यः। 'वाचि इन्द्रायेत्यत्र सवर्णदीर्घमकृत्वोक्षरसंख्या गणयितव्या'—इति भट्टभास्करः।

और अध्वर्यु दोनों) **त्रिष्टुभमेव अचीक्लृपताम्** त्रिष्टुप् को ही सम्पादित करते हैं।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्॥[१]

तृतीयसवने मन्त्रचतुष्टयं विधत्ते—

(तृतीयसवने पठनीयमन्त्रचतुष्टयम्)

अध्वर्यो शोशोंसावोमित्याह्वयते तृतीयसवने सप्ताक्षरेण, शंसाऽऽमोदैवोमित्यध्वर्युः प्रतिगृणाति पञ्चाक्षरेण, तद्द्वादशाक्षरं संपद्यते, द्वादशाक्षरा वै जगती, जगतीमेव तत्पुरस्तात् तृतीयसवनेऽचीक्लृपताम्, उक्थं वाचीन्द्राय देवेभ्य[२] इत्याह शस्त्वैकादशाक्षरमोमित्यध्वर्युरेकाक्षरं, तद् द्वादशाक्षरं संपद्यते, द्वादशाक्षरा वै जगती, जगतीमेव तदुभयतस्तृतीयसवनेऽचीक्लृपताम् ॥४॥

हिन्दी—(अब तृतीयसवन में शस्त्र के शंसन के बाद होता और अध्वर्यु द्वारा चार पठनीय मन्त्रों को कह रहे हैं—) **तृतीयसवने** तृतीयसवन में 'अध्वर्यो शोशोंसावोम्'—**इति सप्ताक्षरेण** इस सात अक्षर वाले (मन्त्र) से **आह्वयते** होता आहाव करता है। तब **अध्वर्युः** अध्वर्यु 'शंसाऽऽमोदैवोम्'—**इति पञ्चाक्षरेण** इन पाँच अक्षरों (वाले मन्त्र) से **प्रतिगृणाति** प्रतिगर करता है। **तद् द्वादशाक्षरं सम्पद्यते** वे (दोनों मिलकर) बारह अक्षर हो जाते हैं)। **द्वादशाक्षरा वै जगती** जगती (छन्द का एक पाद) बारह अक्षरों वाला होता है। **तत्** इससे **तृतीयसवने** तृतीय सवन में **पुरस्तात्** प्रथमतः **जगतीमेव अचीक्लृपताम्** (होता और अध्वर्यु दोनों) जगती को ही सम्पादित करते हैं। (शस्त्र को कहकर होता) **'उक्थं वाचीन्द्राय देवेभ्यः'** अर्थात् हमारी वाणी में इन्द्र और अन्य देवताओं के लिए उक्थ सम्पन्न है'—**इति एकादशाक्षरम् आह** इस ग्यारह अक्षरों (वाले मन्त्र) को कहता है। तब **अध्वर्युः** अध्वर्यु **'ओम्' इति एकाक्षरम्** इस एकाक्षर (मन्त्र) को कहे। **तद् द्वादशाक्षरं सम्पद्यते** (इस प्रकार) वे दोनों मिलकर बारह अक्षर हो जाते हैं। **द्वादशाक्षरा वै जगती** जगती (छन्द) ग्यारह अक्षरों वाली होती है। **तत्** इससे **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **उभयतः** दोनों ओर से **जगतीमेव अचीक्लृपताम्** जगती को ही (होता और अध्वर्यु दोनों मिलकर) सम्पादित करते हैं।

सा० भा०—शोशोमिति द्विर्भावश्छान्दसः। माध्यंदिनसवने केवलमिन्द्रार्थमेव वाच्युक्थं सम्पन्नमित्युक्तम्। अत्र त्विन्द्रार्थमितरदेवार्थं चेति विशेषः। अन्यत् सर्वं पूर्ववद् व्याख्येयम्[३] ॥

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.१४.३; ९.५;१०.२४;९.८।

(२) 'अत्रापि पूर्ववद् वाचि इन्द्रायेत्यनयोः सवर्णदीर्घमकृत्वा देवेभ्य इत्यत्र च इत्यादिपूरणं कृत्वैकादशाक्षरत्वं सम्पाद्यम्'—इति भट्टभास्करः।

(३) आश्व०श्रौ० ५.१८.४; ९.५; १८.१३; ९.८।

उक्तार्थं मन्त्रसंवादेन द्रढयति—

तदेतद् ऋषिः पश्यन्नभ्यनूवाच ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ को मन्त्र से पाठ द्वारा दृढ़ कर रहे हैं–) **तद् एतत्** इस (तथ्य) को **पश्यन्** (अपनी दिव्यदृष्टि से) देखते हुए **ऋषिः अभ्यनूवाच** ऋषि ने कहा है।

सा० भा०—तदेतद् ब्राह्मणोक्तं सर्वमृषिर्मन्त्रद्रष्टा दिव्यज्ञानेन पश्यन् मन्त्रवाक्येनाभितोऽनुवचनं कृतवान् ।।

तमेतं मन्त्रं दर्शयति—

'यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः'[१] इति।।६।।

हिन्दी—(ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्र को दिखला रहे हैं—) (इस प्रकार शंसन से पूर्व दो मन्त्र वाले) **यद् गायत्रे गायत्रम् अध्याहितम्** गायत्री छन्द में (उत्तरकालीन) गायत्री छन्द को जो रखते हैं तथा (पूर्व दो मन्त्र वाले) **त्रैष्टुभात् त्रैष्टुभं वै निरतक्षत** त्रिष्टुप् (छन्द) से (उत्तरकालीन) त्रिष्टुप् छन्द को निष्पन्न करते हैं **यद्वा** अथवा जो **जगत् जगत्याम् अत्याहितम्** जगती छन्द को जगती छन्द में रखते हैं, **पदम्** (वे तीन प्रकार के) पद हैं। **ये इत् तद् विदुः** जो इसे जानते हैं **ते** वे **अमृतत्वम् आनशुः** अमरता (देवत्व) को प्राप्त करते हैं।

सा० भा०—शंसनात् पूर्वकालीने मन्त्रद्वयात्मके गायत्रे छन्दसि तदुत्तरकालीनं मन्त्रद्वयात्मकं गायत्रं छन्दोऽध्याहितं संपादितमिति यदस्ति। अथ च पूर्वकालीनान्मन्त्रद्वयात्मकात् त्रैष्टुभाद् उत्तरकालीनमन्त्रद्वयात्मकं त्रैष्टुभं निरतक्षत निष्पन्नमिति यदस्ति। अथ जगज्जागतं छन्दः पूर्वकालीनं जगत्युत्तरकालीने जागते छन्दस्याहितं संपादितमित्येतत् त्रिविधं पदं यदस्ति तत्पदं य इत्, य एवानुष्ठातारो विदुर्जानन्ति तेऽनुष्ठातारोऽमृतत्वमानशुर्देवत्वं प्राप्तवन्तः[२]।।

अस्य मन्त्रस्य तात्पर्यं दर्शयति—

एतद्वै तच्छन्दश्छन्दसि प्रतिष्ठापयति ।।७।।

हिन्दी—**एतद्वै तत् छन्दः** इन उन छन्दों को **छन्दसि प्रतिष्ठापयति** छन्द में प्रतिष्ठित करता है ।

सा० भा०—एतदृषिप्रोक्तं मन्त्रवाक्यमुत्तरकालीने छन्दसि तत्पूर्वकालीन छन्दः प्रतिष्ठापयतीति तत्राऽऽश्रितमित्येवं प्रतिपादयति।।

---

(१) ऋ० १.१६४.२३।
(२) ऋक्संहिताभाष्ये चैतन्मन्त्रस्य व्याख्यानानि द्रष्टव्यानि।

उक्तार्थवेदनं प्रशंसति—

कल्पति देवविशो य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **देवविशः कल्पयति** देवताओं की (सेनारूप) प्रजा को कल्पित करता है।

सा०भा०—वेदिता देवविशो देवसंबन्धिनी: प्रजा: सैन्यरूपा: संपादयति।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायां द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) प्रथम: खण्ड: ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा०भा०—अथानुष्टुभो मुख्यत्वेन प्रशंसां कर्तुमाख्यायिकामाह—

(छन्दस्वनुष्टुभो मुख्यत्वप्रतिपादनार्थमाख्यायिका)

प्रजापतिर्वै यज्ञं छन्दांसि देवेभ्यो भागधेयानि व्यभजत्, स गायत्रीमेवाग्नयै वसुभ्यः प्रातःसवनेऽभजत्, त्रिष्टुभमिन्द्राय रुद्रेभ्यो मध्यंदिने, जगतीं विश्वेभ्यो देवेभ्य आदित्येभ्यस्तृतीयसवने ।।१।।

हिन्दी—(अब अनुष्टुप् की प्रशंसा करने के लिए आख्ययिका को कह रहे हैं–) **प्रजापतिः वै** प्रजापति ने (सृष्टि की रचना करके) **यज्ञं छन्दांसि** (तीनों सवन वाले सोम) याग और छन्दों को **देवेभ्यः** देवताओं के लिए **भागधेयानि** अलग-अलग भाग लगाकर **व्यभजत्** विभक्त कर दिया। **सः** उस (प्रजापति) ने **प्रातःसवने** प्रातः सवन में **अग्नये वसुभ्यः** अग्नि के लिए और वसुगण के लिए **गायत्रीम्** गायत्री (छन्द) को, **मध्यन्दिने** मध्यन्दिनसवन में **इन्द्राय रुद्रेभ्यः** इन्द्र और रुद्रगण के लिए **त्रिष्टुभम्** त्रिष्टुप् छन्द को तथा **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **विश्वेभ्यः देवेभ्यः आदित्येभ्यः** विश्वे देवों के लिए और आदित्यगण के लिए **जगतीम्** जगती छन्द को **व्यभजत्** विभाजित किया।

सा०भा०—पुरा प्रजापति: सर्वं जगत्सृष्ट्वा सवनत्रयात्मकं यज्ञं गायत्र्यादीनि च्छन्दांसि च देवतार्थं भागधेयानि भागविशेषरूपाणि कृत्वा व्यभजद् विभक्तवान्। केन प्रकारेणेति, स उच्यते—यज्ञे यत्प्रात:सवनमस्ति, तस्मिन् गायत्रीमेवाग्न्यर्थमष्टवसुदेवार्थं च विभक्तवान्। माध्यंदिनसवने त्रिष्टुभमिन्द्रार्थमेकादशरुद्रार्थं च विभक्तवान्। तृतीयसवने जगती विश्वेभ्यो देवेभ्य आदित्येभ्यश्च विभक्तवान्।

एवं सत्यनुष्टुबेका परिशिष्टा तस्या वृत्तान्तमाह—

(अनुष्टुब्वृत्तान्तकथनम्)

अथास्य यत् स्वं छन्द आसीद् अनुष्टुप् तामुदन्तमभ्युदौहदच्छा-वाकीयामभि, सैनमब्रवीदनुष्टुप् त्वं न्वेव देवानां पापिष्ठोऽसि, यस्य तेऽहं स्वं छन्दोऽस्मि यां मोदन्तमभ्युदौहीरच्छावाकीयामभीति, तद-जानात्, स स्वं सोममाहरत्, स स्वे सोमेऽग्रं मुखमभि पर्याहरदनुष्टुभं, तस्मादनुष्टुबग्र्या[1] मुख्या युज्यते सर्वेषां सवानानाम् ।। २।।

हिन्दी—(ऐसा होने पर परिशिष्ट अनुष्टुप् छन्द के वृतान्त को कह रहे हैं—) **अथ** इसके बाद **अस्य** इस (प्रजापति) को **यत् स्वं छन्दः अनुष्टुब् आसीत्** जो अपना अनुष्टुप् छन्द था **ताम्** उसको **अच्छावाकीयाम्** अच्छावाकीय के प्रति **उदन्तम् अभ्युदौहत्** (यज्ञ के किसी) प्रान्त में हटा दिया (अर्थात् अनुष्टुप् को अच्छावाकीय ऋचा बना दिया)। तब **सा अनुष्टुब् एनम् अब्रवीत्** उस अनुष्टुप् ने इस (प्रजापति) से कहा कि **त्वं नु देवानाम्** तुम देवताओं में **पापिष्ठः असि** पापिष्ठ हो। **यस्य ते अहं स्वं छन्दः अस्मि** जो तुम्हारा मैं अपना छन्द हूँ, **यां मा** जिस मुझको तुमने **अच्छावाकीयाम् अभि** अच्छावाकीय को अभिलक्षित करके **उदन्तम् अभ्युदौहीः** हटा दिया है। **तद् अजानात्** वे (प्रजापति) अपनी भूल को समझ गये। **सः स्वं सोमम् आहरत्** उस (प्रजापति) ने अपने सोमयाग का आहरण कर लिया और **सः स्व सोमें अग्रम्** उन्होंने अपने सोम के आगे **मुखमभि** प्रारम्भ में **अनुष्टुभं पर्याहरत** अनुष्टुप् छन्द को रख दिया। **तस्मात्** इसी कारण **सर्वेषां सवनानाम्** सभी सवनों में **मुख्या अनुष्टुबग्र्या युज्यते** प्रारम्भ में श्रेष्ठ अनुष्टुप् छन्द ही प्रयुक्त होता है।

सा० भा०—अथाग्न्यादीनां वस्वादीनां च च्छन्दोविभागानन्तरम् 'अस्य' प्रजापतेः स्वभूतमनुष्टुबाख्यं यच्छन्द आसीत् तामनुष्टुभम् उदन्तमभि यज्ञस्य कचित्प्रान्तदेशमभि-लक्ष्योदौहदपसारितवान्।[2] कुत्र देश इति? तदुच्यते— अच्छावाकीयामभीति। अच्छावाक वदस्वेत्येवमध्वर्युणोक्तोऽच्छावाको यां ब्रूते सेयमृगच्छावाकीया[3] तामभिलक्ष्योदूढवान-नुष्टुभमच्छावाकीयां कृतवानित्यर्थः। तेन कुपिता साऽनुष्टुबेवैनं प्रजापतिमब्रवीन्नु हे प्रजापते देवानां मध्ये त्वमेव पापिष्ठोऽसि[4]। यस्य पापिष्ठस्य प्रजापतेस्तवाहं छन्दोऽस्मि। अग्नि-

---

(१) 'अग्रिया' इति वा पाठः। 'अग्राद्यत्' (पा०सू०४.४.११६), 'अग्रया' इति सायण-सम्मतः पाठः।

(२) 'उदौहदस्थापयत्'—इति षड्गुरुशिष्यः। 'उदनैषीत्'—इति भट्टभास्करः।

(३) 'अच्छा वो अग्निमवसे' ऋ० ५.२५.१। 'अच्छावाक वदस्वेत्युक्तोऽच्छावो अग्निमवसे इति तृचमन्वाह'–इति आश्व०श्रौ० ५.७.२।

(४) 'नु इति खेदे। पापिष्ठोऽशुभकारी त्वम्'–इति षड्गुरुशिष्यः।

वस्वादयः पूर्वं छन्दोरहितास्तादृशेभ्योऽपि च्छन्दांसि दत्तवानसि। अहं तु पूर्वमेव त्वदीया तादृशीं मां त्वत्तोऽपसार्याच्छावाकीयामभिलक्ष्योदूढवानसि। अतो मदुपेक्षया भवतः पापिष्ठत्वमित्यनुष्टभोऽभिप्रायः। तत्सर्वमनुष्टुभा प्रोक्तमुपालम्भरूपं प्रजापतिर्ज्ञातवान्। ज्ञात्वा च तदुपालम्भपरिहारार्थं स्वकीयं सोमयागमाहरत्। स तु तस्मिन् सोमयागेऽग्रं श्रेष्ठं प्रारम्भ-रूपं यन्मुखमस्ति तदभिलक्ष्यानुष्टुभं पर्याहरत् तत्र नीतवानित्यर्थः। तस्मादु तस्मादेव कारणा-दियमनुष्टुबग्र्या श्रेष्ठा सती सर्वेषां सवनानां मुख्या मुखे भवा प्रारम्भकालीना प्रयुज्यते।।

एतद्वेदनं प्रशसंति—

अग्र्यो[1] मुख्यो भवति श्रेष्ठतामश्नुते य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **अग्र्यः मुख्यः भवति** वह ज्ञातिजनों में श्रेष्ठ और मुख्य होता है तथा **श्रेष्ठताम् अश्नुते** श्रेष्ठता के प्राप्त करता है।

सा० भा०—वेदिता स्वकीयज्ञातीनां मध्येऽग्रे भवोऽग्र्यो ज्येष्ठो मुख्यो व्यवहार-निर्वाहकः। स श्रेष्ठतां विद्यावृत्तादिगुणैः श्रैष्ठत्वं प्राप्नोति।।

प्रजापतिन्यायेन यजमानस्यापि सवनीययागादावनुष्टुप्प्रयोगं दर्शयति—

स्वे वै स तत्सोमेऽकल्पयत्, तस्माद् यत्र क्व च यजमानवशो भवति; कल्पत एव यज्ञोऽपि ।।४।।

हिन्दी—(सवनीय याग के आदि में अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग को दिखला रहे हैं–) **सः** उस (प्रजापति) ने **स्वे सोमे वै** अपने ही सोमयाग में **तत्** उस (अनुष्टुप् छन्द) को (प्रमुखता से) **अकल्पयत्** सम्पादित (प्रयुक्त) किया था **तस्मात्** इसी कारण **यत्र क्व च** जहाँ कहीं भी (यज्ञ) **यजमानवशः भवति** यजमानविधेय (सावधान) होता है वहाँ **यज्ञोऽपि कल्पते एव** यज्ञ भी (वैकल्यरहित) सम्पादित होता है।

सा० भा०—यस्मात् स प्रजापतिः स्वकर्तृक एव सोमयागे तत् सवनेष्वनुष्टुभो मुख्यतामकल्पयत् तस्मादिदानीमपि यत्र क्वापि यागे यज्ञो यजमानवशो[2] भवति स यज्ञोऽपि कल्पत एव। अवैकल्येनानुष्ठास्यामीत्यभिप्रेत्यानुष्टुभः सवनानामादौ प्रयोगे सति यज्ञस्य यजमानवशत्वं तत्र यज्ञो वैकल्यरहितो भवतीत्यर्थः।।

---

(१) 'अग्रियो' इति वा पाठः। किन्तु 'अग्र्यः' इति सायणसम्मतः पाठः।

(२) 'य. क्वापि देशे काले वा यजमानवशो यजमानविधेयो यज्ञो भवति स एव यज्ञः कल्पते एतस्य यजमानस्य। यद्वा, यत्र यज्ञे कस्मिंश्चिदपि यज्ञावयवे प्रवृत्तौ निवृत्तौ वा यजमानवशं यजमानस्य वशं स्वातन्त्र्यं भवति तादृशस्य यजमानस्य सम्बन्धी यज्ञः कल्पत एव'–इति भट्टभास्करः।

उक्तवाक्यार्थमेव वाक्यान्तरेण स्पष्टीकरोति—

तस्यै जनतायै कल्पते यत्रैवं विद्वान् यजमानो वशी यजते ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ को अन्य वाक्य द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (याग) में **एवं विद्वान् यजमानः** इस प्रकार जानने वाला यजमान **वशी यजते** (उस अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग में) सावधान होकर यजन करता है तो वह **तस्यै जनतायै कल्पते** उस जनसमूह के लिए (यज्ञप्रयोग में) समर्थ होता है।

सा० भा०—यत्र यस्यां जनसभायामेवमनुष्टुभो महिमानं विद्वान् यजमानो वशी स्ववशो भूत्वा तस्मिन्ननुष्टुभः प्रयोगे सावधानो भूत्वा यजते तस्यै जनतायै तस्यां जनसभायां कल्पते यज्ञः प्रयोजनसमर्थो भवति।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—पुनरपि प्रकारान्तरेणानुष्टुभो महिमानं दर्शयितुमाख्यायिकामाह—

(प्रकारान्तरेणानुष्टुभो महिमानं दर्शयितुमाख्यायिका)

(प्रातःसवनेऽनुष्टुप् प्रशंसनम्)

अग्निर्वै देवानां होताऽऽसीत्, तं मृत्युर्बहिष्पवमानेऽसीदत्, सोऽनुष्टुभाऽऽज्यं प्रत्यपद्यत, मृत्युमेव तत्पर्यक्रामत्, तमाज्येऽसीदत्, स प्रउगेण प्रत्यपद्यत, मृत्युमेव तत्पर्यक्रामत् ।।१।।

हिन्दी—(पुनः अनुष्टुप् की महत्ता को दिखलाने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **अग्निः वै देवानां होता आसीत्** देवताओं के (याग में) अग्नि होता नामक (ऋत्विक्) था। **तम्** उस (अग्नि) को **बहिष्पवमाने** बहिष्पवमान नामक स्तोत्र में **मृत्युः असीदत्** (मारने के लिए) मृत्यु ने प्राप्त किया। **सः** उस (अग्नि) ने **अनुष्टुभा** (प्र वो देवायाग्नये इस) अनुष्टुप् छन्द वाली ऋचा द्वारा **आज्यं प्रपद्यत** आज्यशस्त्र को प्रारम्भ किया और **तत्** उस प्रयोग से **मृत्युमेव पर्यक्रामत्** मृत्यु को ही पराक्रमित कर दिया। तब **तम्** उस (अग्नि) को (मृत्यु ने) **आज्ये असीदत्** आज्यशस्त्र में प्राप्त किया। (तब उस अग्नि ने) **प्रउगेण प्रत्यपद्यत** 'वायवा याहि' इत्यादि प्रउगशस्त्र को प्रारम्भ किया। **तत्** उस

(प्रउगशस्त्र के प्रयोग) से **मृत्युमेव पर्यक्रामत** मृत्युको ही पराक्रमित कर दिया।

सा० भा०—पुरा कदाचिद्देवानां यागेऽग्निरेव होता अभूत् तमग्नि होतारं मृत्युरसीदद्धन्तुं प्राप्तवान्। कस्मिन् काल इति? तदुच्यते—बहिष्पवमानाख्ये स्तोत्रे प्रातःसवनसंबन्धिनि 'उपास्मै गायता नर' इत्याद्यृगाश्रयणेन सामगैः स्तूयमाने[१] सति सोऽयमग्नेर्मृत्युप्राप्तिकालस्तदानीमग्निर्मृत्युं परिहर्तुमनुष्टुप्छन्दस्कया 'प्र वो देवायाग्नये' इत्येतयर्चाऽऽज्यशस्त्रं प्रारब्धवान्। 'तत्' तेनानुष्टुप्प्रयोगेण सोऽग्निस्तदानीमेव मृत्युं 'पर्यक्रामद्' अतिक्रान्तवान्। ततः 'अग्न आ याहि' इत्यादृगाश्रयणेनाज्यस्तोत्रे[२] सामगैः स्तूयमाने[३] सति तमग्निं मुत्युरसीदत् प्राप्तवान्। तदा सोऽग्निर्मृत्युं परिहर्तुं वायवायाहीत्यादिकेन सप्ततृचात्मकेन प्रउगशस्त्रेण[४] अनुष्ठानं प्रत्ययद्यत प्रारब्धवान्। तत् तेन प्रउगप्रयोगेण तदानीमेव मृत्युमतिक्रान्तवान्।

इत्थं प्रातःसवनेऽनुष्टुभं मृत्युपरिहारहेतुत्वेन प्रशस्य माध्यंदिनसवनेऽपि तथा प्रशंसति—

(मध्यन्दिनसवने अनुष्टुप्प्रशंसनम्)

तं माध्यंदिने पवमानेऽसीदत्, सोऽनुष्टुभा मरुत्वतीयं प्रत्यपद्यत, मृत्युमेव तत्पर्यक्रामत्, तं माध्यंदिने बृहतीषु नाशक्नोत् सत्तुं, प्राणा वै बृहत्यः, प्राणानेव तन्नाशक्नोद् व्यवैतुं, तस्मान्मध्यंदिने होता बृहतीषु स्तोत्रियेणैव प्रतिपद्यते, प्राणा वै बृहत्यः, प्राणानेव तदभिप्रतिपद्यते ।। २।।

हिन्दी—(मध्यन्दिनसवन में भी अनुष्टुप् छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **मध्यन्दिने** मध्यन्दिनसवन में **तम्** उस (अग्नि) को (मृत्यु ने) **पवमाने असीदत्** पवमान स्तोत्र में प्राप्त किया। तब **सः** उस (अग्नि) ने **अनुष्टुभा** ('आ त्वा रथम्' इत्यादि) अनुष्टुप् छन्द से **मरुत्वतीयं प्रत्यपद्यत** मरुत्वतीय शस्त्र को प्रारम्भ किया। **तत्** उस (मरुत्वतीय शस्त्र के प्रयोग) से **मृत्युमेव पर्यक्रामत्** मृत्यु को वहाँ से हटा दिया। **तम्** उस (अग्नि) को **माध्यन्दिने** माध्यन्दिन सवन में **बृहतीषु** (गाये जाने वाली) बृहती छन्दस्क (ऋचाओं) में **सत्तुं न अशक्नोत्** (मृत्यु को) पाने में समर्थ नहीं हुआ; क्योंकि **प्राणाः वै बृहत्यः** बृहती (छन्द वाली ऋचाएँ) प्राण स्वरूप हैं। **तत्** इससे **प्राणमेव अभि** प्राणों को ही अभिलक्षित करके **प्रतिपद्यते** शस्त्र का प्रारम्भ करता है।

---

(१) ता०ब्रा० ७.१। उ०आ० १.१.१-३ (ऋ० ९.११.१)

(२) ऊ० आ० १.१.४-७।

(३) 'ततोऽग्निना होत्राऽऽज्यशस्त्रे शस्यमाने' इति वा पाठः।

(४) ऋ० १.२.१-९; १.३.१-१२।

सा० भा०—प्रातःसवनान्निराकृतो मृत्युः सामगैः 'उच्चा ते जातमन्धसः'[१] इत्यादिके माध्यंदिनपवमानस्तोत्रे[२] गीयमाने सति तस्मिन् काले तमग्निं होतारमसीदत् प्राप्तवान्। तदानीं सोऽग्निर्होता मृत्युपरिहारायानुष्टुप्छन्दस्कया 'आ त्वा रथम्'[३] इत्येतचर्या मरुत्वतीयशस्त्रं[४] प्रारब्धवान्। तत् तेनानुष्टुप्प्रयोगेण तदानीमेव मृत्युमतिक्रान्तवान्। माध्यंदिनपवमानान्निराकृतो मृत्युर्माध्यंदिनसवनसंबन्धिमरुत्वतीयशस्त्रे शस्यमाने सति शंसितारमग्निं होतारं प्राप्स्यामीति विचार्य तत्र बृहतीछन्दस्कास्वृक्षु गीयमानासु तमग्नि सत्तुं[५] प्राप्तुं नाशक्नोत्। तत्र हेतुरुच्यते—बृहतीछन्दस्का ऋचः प्राणस्वरूप एव। तत् तेन कारणेन प्राणानेव 'व्यवैतुं' वियोजयितुं मृत्युर्नाशक्नोत्। प्राणाभिमानिनीभिर्बृहतीभिः प्राणानां रक्षितत्वात्। बृहत्यश्च मरुत्वतीयशस्त्रानन्तरभाविनि निष्केवल्यशस्त्रे बहवो विद्यन्ते। ताश्च सर्वस्मिन्नेव माध्यंदिने सवने मृत्युप्रवेशं निवारयन्ति। यस्मादेवं बृहत्यो मृत्युप्रवेशं निवारयितुं समर्थाः, तस्मान्माध्यंदिनप्रयोगे होता बृहतीछन्दस्कास्वृक्षु स्तोत्रियेणैव तृचेन शस्त्रं प्रारभते। यस्मिन् तृचे सामगैः स्तोत्रं गीतं सोऽयं तृचः स्तोत्रियः, तेन तृचेन प्रारम्भे सति तत्रत्यानां बृहतीनां प्राणरूपत्वात् प्राणानेवाभिलक्ष्य शस्त्रप्रारम्भं कृतवान्भवति ॥

अथ तृतीयसवने मृत्युपरिहारेणानुष्टुभं प्रशंसति—

(तृतीयसवनेऽनुष्टुप्प्रशंसनम्)

तं तृतीयपवमानेऽसीदत्, सोऽनुष्टुभा वैश्वदेवं प्रत्यपद्यत, मृत्युमेव तत्पर्यक्रामत ।।३।।

हिन्दी—(अब तृतीयसवन में मृत्यु के परिहार द्वारा अनुष्टुप् छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तृतीयपवमाने** तृतीय सवन के (स्वादिष्टया इत्यादि आर्भव) पवमान स्तोत्र में (सामगान गेयमान होने पर) **तम्** उस (अग्नि) को **असीदत्** (मृत्यु ने) प्राप्त किया। **सः** उस (अग्नि) ने **अनुष्टुभा** अनुष्टुप् छन्द वाले (तत्सवितुर्वृणीमहे) से **वैश्वदेवम्** वैश्वदेव (नामक शस्त्र) को **प्रत्यपद्यत** प्रारम्भ किया। **तत्** उस (वैश्वदेवशस्त्र) से **मृत्युमेव पर्यक्रमत** मृत्यु को ही पराक्रमित कर दिया।

सा० भा०—त्रिषु पवमानेषु बहिष्पवमानः प्रथमः। माध्यंदिनपवमानो द्वितीयः।

---

(१) उ०आ० १.१.८-१०।

(२) 'एतावता वाव माध्यन्दिनं सवनं पुपुवे, त्रिभिश्च छन्दोभिः पञ्चभिः सामभिः; यन्माध्यन्दिनेन पवमानेन स्तुवान्ति, माध्यन्दिनमेव तं सवनं पावयन्ति'—इत्यादि ता०ब्रा० ७.३.१-३।

(३) ऋ० ८.६८.१।

(४) तच्च शस्त्रम् इतः परस्तात् चतुर्थादिषु षट्सु खण्डेषु आम्नास्यते।

(५) (i) 'सत्तुं सदेस्तुमुन् अभिभवितुम्';
(ii) 'भवार्थात् तुमुन् अभिभवितुम्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

आर्भवपवमानस्तृतीयः। माध्यंदिनसवने प्रवेष्टुमशक्तो मृत्युः 'स्वादिष्ठया'[१] इत्येतस्मिन्नार्भवाख्ये तृतीयपवमानस्तोत्रे[२] तृतीयसवनगते सामगैर्गीयमाने सति तमग्निं होतारं मृत्युरसीदत्। सोऽयग्निस्तं वारयितुमनुष्टुप्छन्दस्कया 'तत्सवितुर्वृणीमहे'[३] इत्येयर्चा वैश्वदेवाख्यं शस्त्रं[४] प्रारभत। तेनानुष्टुप्प्रयोगेण तदानीमेव मृत्युमतिक्रान्तवानित्यनुष्टुप्सवनत्रये शस्ता॥

अथ यज्ञायज्ञीयाख्यं साम वैश्वानरीयसूक्तं च प्रशंसति—

(यज्ञायज्ञायाख्यसाम्नः वैश्वनरीयसूक्तस्य च प्रशंसनम्)

तं यज्ञायज्ञीयेऽसीदत्, स वैश्वानरीयेणाऽऽग्निमारुतं प्रत्यपद्यत, मृत्युमेव तत्पर्यक्रामद्, वज्रो वै वैश्वानरीयं, प्रतिष्ठा यज्ञायज्ञीयं, वज्रेणैव तत्प्रतिष्ठाया मृत्युं नुदते, स सर्वान् पाशान् सर्वान् स्थाणून् मृत्योरतिमुच्य स्वस्त्येवोदमुच्यत, स्वस्त्येव होतान्मुच्यते सर्वायुः सर्वायुत्वाय ॥४॥

हिन्दी—(अब यज्ञायज्ञीय नामक साम और वैश्वानरदेवताक सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) तब मृत्यु ने **तम्** उस (अग्नि को) **यज्ञायज्ञीये असीदत्** यज्ञायज्ञीय ('यज्ञायज्ञा वो अग्नये' इत्यादि) स्तोत्र में **असीदत्** प्राप्त किया। **सः** (अग्नि) ने **वैश्वानरीयेण** वैश्वानर देवता वाले' ('वैश्वानराय पृथुपाजसे इत्यादि सूक्त') से **अग्निमारुतम्** अग्निमारुतशस्त्र को **प्रत्यपद्यत** प्रारम्भ किया। **तत्** उस (वैश्वानरदेवताक अग्निमारुतशस्त्र) से **मृत्युमेव पर्यक्रामत्** मृत्यु को ही पराक्रमित कर दिया; क्योंकि **व्रजो वै वैश्वानरीयम्** वैश्वानरीय (सूक्त) वज्ररूप है और **यज्ञायज्ञीयं प्रतिष्ठा** यज्ञायज्ञीय (सूक्त) प्रतिष्ठारूप (समाप्ति का हेतु) है। **तत्** इससे **वज्रेण** (सूक्तरूप) वज्र के द्वारा **प्रतिष्ठायाः** (यज्ञ की) समाप्ति पर **मृत्युं नुदते** मृत्यु को निराकृत कर देता है। **सः** उस (अग्नि) ने **सर्वान् पाशान् सर्वान् स्थाणून्** (मृत्यु-सम्बन्धी) सभी पाशों और सभी (गदा इत्यादि) आयुधों को **मृत्योः अतिमुच्य** मृत्यु से अलग करके **स्वस्त्या एव उदमुच्यत** स्वयं भी कल्याण द्वारा (मृत्यु से) उन्मुक्त हो गया, अतः **होता स्वस्त्या एव उन्मुच्यते** होता भी कल्याण द्वारा ही (मृत्यु से) उन्मुक्त हो जाता है। (इस प्रकार यह कर्म) **सर्वायुः** सम्पूर्ण आयुरूप है और **सर्वायुत्वाय** सम्पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए होता है।

---

(१) उ०आ० १.१.१५।

(२) (i) स्वादिष्ठयेत्यारभ्य तृतीयसवने गेयं स्तोत्रमार्भवपवमानः।
(ii) 'साध्या वै नाम देवा आसन् स्वादिष्ठया मदिष्ठयेति प्रस्तौति तृतीयसवनस्य सेन्द्रत्वाय'—इत्यादि ता०ब्रा० ८.४.१-५।

(३) ऋ० ५.८२.१।

(४) एतदुत्तराध्यायीसप्तमाष्टमखण्डयोराम्नास्यते।

सा०भा०—'यज्ञायज्ञा वो अग्नये'[१] इत्यस्यामृच्युत्पन्नं साम यज्ञायज्ञीयम्।[२] तत्साम-साध्ये तन्नामके स्तोत्रे[३] सामगैर्गीयमाने[४] सति तृतीयपवनमानान्निराकृतो मृत्युस्तमग्निं होतारं प्राप्तवान्। ततोऽग्निर्होता मृत्युपरिहाराय 'वैश्वानराय पृथुपाजसे' इत्यादिना वैश्वानरीयेण सूक्तेन आग्निनारुताख्यं[५] शस्त्रं प्रारब्धवान्।[६] तेन सूक्तप्रयोगेण तदानीमेव मृत्युमति-क्रान्तवान्। तत्र वैश्वानरीयं सूक्तं वज्रस्वरूपम्। यज्ञायज्ञीयस्तोत्रं तु प्रतिष्ठा समाप्तेर्हेतुः। तस्मात् सूक्तरूपेण वज्रेणैव प्रतिष्ठाया यज्ञसमाप्तेर्मृत्युमग्निर्निराकुरुते। स तादृशोऽग्निः सर्वान् पाशान् मृत्युसंबन्धिबन्धनरज्जुरूपांस्तथा मृत्योः संबन्धिनः सर्वान् स्थाणून् काष्ठोपलक्षितगदाद्यायुधानि मृत्योः सकाशादतिमुच्य निवार्य स्वस्त्येव क्षेमेणैव स्वयं मृत्युसकाशादुन्मुक्तोऽभूत्। अग्निवन् मानुषोऽपि होता तेनैव प्रकारेणानुतिष्ठम् सर्वेणाऽऽ-युषा युक्तः क्षेमेणैव मृत्योरुन्मुच्यते। अत्र सर्वत्र यो योऽपूर्वोऽर्थस्तस्य सर्वस्यार्थवादादेव विधिरुन्नेयः। सोऽयं हौत्रप्रयोगो यजमानस्य सर्वायुत्वाय संपद्यते॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ।।५।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये
तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के तृतीय खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा०भा०—अथ मरुत्वतीयशस्त्रमारभ्यते। तत्रायं सङ्ग्रहश्लोकः—

"प्रतिपदनुचरावनुप्रगाथो हरिनिहवोऽथ बृहस्पतेर्ध्रुवश्च ।
ध्रुवविधिविहितास्तथाऽथ धाय्या विततमत्र मरुत्वतीयसूक्ते ॥"

---

(१) उ०आ० १.१२।　　(२) ऊ०गा० १.१.१४।
(३) 'देवा वै ते देवा यज्ञायज्ञीयमपश्यंस्तेषां 'यज्ञायज्ञा वो अग्नये' इति'—इत्यादि ता०ब्रा० ८.६.१-५। (४) साम्नानेनाग्निष्टोमस्य समाप्यमानत्वादग्निष्टोमसामेत्युच्यते।
(५) एतदुत्तराध्यायीयेषु नवमादिषु त्रिषु खण्डेषु द्रष्टव्यम्।
(६) 'मरुत्वतीयशस्त्रप्रारम्भं कृतवान्' इति वा पाठः।

तत्र 'आ त्वा रथम्'[1] इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुष्टुप् तां प्रशंसितुमाह—

(मरुत्वतीयशस्त्रविधातुं अनुष्टुप्प्रशंसनम्)

इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा नास्तृषीति मन्यमानः पराः परावतोऽगच्छत् स परमामेव परावतमगच्छद्, अनुष्टुब् वै परमा परावद्, वाग्वा अनुष्टुप्, स वाचं प्रविश्याशयत्, तं सर्वाणि भूतानि विभज्यान्वैच्छंस्तं पूर्वेद्युः पितरोऽविन्दन्नुत्तरमहर्देवास्तस्मात् पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियते, उत्तरमहर्देवान् यजन्ते ।।१।।

हिन्दी—(अब मरुत्वतीय शस्त्र का विधान करने के लिए पहले इसके प्रतिपद् अनुष्टुप् छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) **इन्द्रः वै वृत्रं हत्वा** इन्द्र-वृत्र को मार कर **न अस्तृषि** 'मैंने (वृत्र को) पूर्णरूप से नहीं मारा'—**इति मन्यमानः** इस प्रकार समझते हुए **परा परावतः अगच्छत्** (उससे भयभीत होकर) अत्यधिक दूर चले गये। **सः** वे इन्द्र उससे भी संन्तुष्ट न होकर **परमाम् एव परावतम् अगच्छतम्** उससे भी अत्यन्त दूर स्थान को चले गये। **अनुष्टब् वै परमा परावद्** अनुष्टुप् ही वह दूर स्थान था। **वाग् वै अनुष्टुप्** अनुष्टुप् ही वाणी रूप है। इस प्रकार **सः** वे (इन्द्र) **वाचं प्रविश्य** वाणी में प्रवेश करके **आशयत्** वहाँ सो गये। **सर्वाणि भूतानि** सभी प्राणी **विभज्य** परस्पर अलग-अलग होकर **तम्** उस (इन्द्र) को **अन्वैच्छन्** खोजने लगे। **तम्** उस (इन्द्र) को **पितरः** पितरों ने **पूर्वेद्युः** (यज्ञ से) एक दिन पहले **अन्वविन्दन्** खोज कर जान लिया और **उत्तरम् अहः देवाः** (उसके) दूसरे दिन देवताओं ने (खोज कर जाना)। **तस्मात्** इसी कारण **पूर्वेद्युः** (यज्ञ के) दिन पहले अमावास्या को **पितृभ्यः क्रियते** पितरों के लिए कृत्य किया जाता है और **उत्तरम् अहः** (उसके) दूसरे दिन (प्रतिपदा को) **देवान् यजन्ते** देवताओं का यजन करते हैं।

सा०भा०—इन्द्रः पुरा वृत्रनामकं दैत्यं हत्वा नास्तृषि अहं न हिंसितवानस्मीति मन्यमानस्तदीयजीवनमाशङ्क्य तस्माद् भीतः पराः परावतोऽभ्यधिका दूरभूमीरगच्छत्। सोऽयं तावताऽप्यसंतुष्टः परमामेवाभ्यधिकामेव परावतं दूरभूमिं पुनरप्यगच्छत्। अधिकाभ्यो दूरभूमिभ्योऽप्यत्यन्तमधिका दूरभूमिः केति? चेत्, सेयमुच्यते—अनुष्टुब्वै परमा परावदभ्यधिका दूरभूमिः। तस्यामनुष्टुभि प्रविष्टस्य चक्षुषा द्रष्टुमशक्यत्वात्। अनुष्टुप् च वाक्स्वरूपा।[2] ततः स इन्द्रो वाचं प्रविश्य तत्र शयनं कृतवान्। तमिन्द्रं सर्वाणि भूतानि सर्वेषु देशेषु विभज्यान्वैच्छन्। तमन्वेष्टुमेक एकस्मिन् देशे गतोऽन्यो देशान्तरमित्येतादृशो विभाग इत्यर्थः। तमन्विष्यमाणमिन्द्रं पितरो यागदिनात् पूर्वेद्युरविन्दन्नलभन्त। देवास्तूत्तरमहरुत्तर-

---

(१) ऋ० ८.६८.१-३।

(२) 'अनुष्टुप् इति वाङ्नामसु पाठात्'–द्र० निघ० १.११।

स्मिन्नहन्यविन्दन्। यस्मादेवं तस्माल्लोकेऽपि पूर्वेद्युरमावास्यायां पितृभ्यः क्रियते। उत्तरमहरुत्तरस्मिन्नहनि प्रतिपद्दिने दर्शपूर्णमासयागदिने देवान् यजन्ते।[१] इन्द्रस्य रक्षकत्वात् प्रशस्ताऽनुष्टुबिति तात्पर्यार्थः।।

अथ मरुत्वतीयशस्त्रस्य प्रतिपत्तृचं दर्शयति—

(मरुत्वतीयशस्त्रस्य प्रतिपत्तृचविधानम्)

तऽब्रुवन्नभिषुण्वामैव तथा वाव न आशिष्ठमागमिष्यतीति तथेति तेऽभ्यषुण्वंस्त 'आ त्वा रथं यथोतये' इत्येवैनमावर्तयन्, 'इदं वसो सुतमन्धः' इत्येवैभ्यः सुतकीर्त्यामाविरभवद् 'इन्द्र नेदीय एदिहि' इत्येवैनं मध्यं प्रापादयन्त ।।२।।

हिन्दी—(मरुत्वतीयशस्त्र के प्रतिपद् तृच को दिखला रहे हैं—) **ते अब्रुवन्** (इन्द्र को प्राप्त करके) उन (देवताओं) ने परस्पर कहा कि '**अभिषुणवाम** हम लोग सोम का सवन करे। **तथा वाव** उसी प्रकार से **आशिष्ठम् आगमिष्यति** (वे इन्द्र) अत्यन्त शीघ्र आ जाएँगे। **तथा इति** इस प्रकार (उन्होंने एक मत होकर निश्चय किया) और **ते अभ्यषुण्वन्** उन्होंने सोम का सवन किया। **ते** उन (देवताओं) ने 'आ त्वा रथं यथोतये' इस (अनुष्टुप् छन्द वाली ऋचा) से **एनम्** इस (इन्द्र) को **आवर्तयन्** (अभिषवस्थान पर) वापस लौटा लिया। 'इदं वसो सुतमन्धः' **इति सुतकीर्त्याम्** (इस अभिषव अर्थ वाले) 'सुत' शब्द वाली (ऋचा) से **एभ्यः** एव इन (देवताओं) के लिए **आविरभवत्** (इन्द्र) प्रकट हो गये। 'इन्द्र नेदीय एदिहि' **इति एव** इसी (ऋचा) से **एनम्** इस (इन्द्र) को **मध्यं प्रापादयन्त** (देवताओं ने यज्ञस्थल के) मध्य में प्राप्त कर लिया।

सा०भा०—इन्द्रं लब्ध्वाऽवस्थितास्ते देवाः परस्परमिदमब्रुवन्नभिषुणवामैवं वयं सर्वथा सोमस्याभिषवं करवाम। तथा वाव तेनैव प्रकारेणाऽऽशिष्ठमाशुतममतिशीघ्रं यथा भवति तथा नोऽस्मानिन्द्र आगमिष्यतीति तद्वचनमङ्गीकृत्य ते सर्वेऽभ्यषुण्वन्नभिषवं कृतवन्तः। तादृशास्ते देवा 'आ त्वा रथं यथोतये'[२] इत्यनेनैव मन्त्रेण तमिन्द्रमनुष्टुभः सकाशाद् अभिषवदेशं प्रत्यावर्तयन्। अत्र किञ्चिदावृत्तिवाचकमावर्तयामसीति पदद्वयं श्रूयते तत्सामर्थ्यादिन्द्रस्याऽऽवृत्तिरभूत्। 'इदं वसो सुतमन्धः'[३] इत्यस्मिन् मन्त्रपादे सुतकीर्त्यामभिषववाचिना सुतशब्देनैभ्यो देवेभ्य इन्द्र आविरभवत् प्रकटोऽभूत्। 'इन्द्र नेदीय एदिहि'[४] इति मन्त्रगतेन समीपागमनवाचिना 'नेदीय एदिहि' इति पदद्वयेनैनमिन्द्रं यागदेशमध्यं प्रापितवन्तः। अनेनार्थवादेन तत्तन्मन्त्रविधिरुन्नेयः एतदेवाभिप्रेत्य आश्वलायन आह—'मरुत्वतीय-

---

(१) 'इन्द्रो वृत्रं हत्वा तस्मात् पितृभ्यः पूर्वेद्यु क्रियते सोमावस्यां प्रत्यागच्छत् तं देवा अभिसमगच्छन्तामा वै नः'—इति तै०सं० २.५.३।

(२) १. ऋ० ८.६८.१। (३) ऋ० ८.२.१। (४) ऋ० ८.५३.५।

शस्त्रं शंसेदध्वर्यो शोंसावोमिति माध्यंदिने शस्त्रादिष्वाहाव 'आ त्वा रथं यथोतय' 'इदं वसो सुतमन्धः' इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचराविन्द्र नेदीय एदिहीतीन्द्रनिहवः प्रगाथः'[1] इति। येन तृचेन शस्त्रं प्रारभते; सोऽयं तृचः प्रतिपदुच्यते। तदनन्तरभावी तृचोऽनुचरः। अत्र 'आ त्वा रथम्' 'इदं वसा', इत्येतावृचौ प्रतिपदुच्यते। तदनन्तरभावी तृचोऽनुचरः। अत्र 'इन्द्र नेदीयः' इति प्रगाथः, ऋग्द्वयात्मको द्रष्टव्य इत्यर्थः॥

वेदनं प्रशंसति—

आगतेन्द्रेण यज्ञेन यजते, सेन्द्रेण यज्ञेन राध्नोति य एवं वेद ॥३॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार (इस तथ्य को) जानता है, वह **आगतेन इन्द्रेण यजते** (यज्ञ में) आये हुए इन्द्र के साथ यजन करता है और **सेन्द्रेण यज्ञेन राध्नोति** इन्द्र के सहित किये गये यज्ञ से समृद्ध होता है।

सा०भा०—आगत इन्द्रो यस्मिन् यज्ञे, सोऽयमागतेन्द्रः, वेदिता तादृशेन यज्ञेन यजते, तथेन्द्रसहितेन यज्ञेन समृद्धो भवति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा०भा०—पूर्वोक्तमिन्द्र नेदीय इत्यादिकं प्रगाथं शंसितुमाख्यायिकामाह—

(इन्द्रनेदीय इत्यादिकं प्रगाथं प्रशंसितुमाख्यायिका)

इन्द्रं वै वृत्रं जघ्निवांसं नास्तृतेति मन्यमानाः सर्वा देवता अजहुस्तं मरुत एव स्वापयो नाजहुः, प्राणा वै मरुतः स्वापयः, प्राणा हैवैनं नाजहुस्तस्मादेषोऽच्युतः स्वापिमान् प्रगाथः शस्यत आस्वापे स्वापिभिरिति ॥१॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त 'इन्द्र नेदीय' इत्यादि प्रगाथ की प्रशंसा करने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **वृत्रं जघ्निवांसम् इन्द्रम्** वृत्र को मारने वाले इन्द्र को **सर्वाः देवताः** अन्य सभी देवताओं में **'न आस्तृत** वृत्र को नहीं मार सके'—**इति मन्यमानः** ऐसा

(१) आश्व०श्रौ० ५.१४.२-५।

समझते हुए **अजहुः** त्याग दिया। **तं** उस (इन्द्र) को **मरुतः एव** मरुद्गण देव ही **स्वापयः न अजहुः** सुषुप्ति-काल में भी नहीं छोड़ा। **प्राणाः वै मरुतः स्वापयः** सुषुप्ति-काल में विद्यमान प्राण ही मरुद्गण हैं। **प्राणाः एव एनं न अजहुः** केवल प्राणों ने ही इस (इन्द्र) को नहीं छोड़ा। **तस्मात्** इसी कारण 'आस्वापे स्वापिमि'—इस पाद से युक्त तथा **स्वापिमान्** स्वापि शब्द से युक्त **एषः प्रगाथः** यह प्रगाथं **अच्युतः शस्ते** (मरुत्वतीय शस्त्र में) अपरित्यक्त होकर शंसित किया जाता है।

सा० भा०—इन्द्रो यदा वृत्रं हतवान्,[१] तदा तमिन्द्र सर्वा देवता अजहुः परित्यक्तवत्यः। कीदृश्यो देवताः? नास्तृतेति न हिंसितवानिन्द्र इति मन्यमानाः। वृत्रस्यातिप्रौढशरीरत्वात् प्रहारमात्रेणासौ न मृत इति देवानां भ्रान्तिः। इतरदेवताभिः परित्यक्त तमिन्द्रं मरुत एव नाजहुर्न परित्यक्तवन्तः तद्विशेषणं स्वापय[२] इति। सुषुप्तिकालेऽपि वर्तमाना इत्यर्थः। स्वापिशब्दार्थः श्रुत्यैव प्रदर्श्यते। प्राणा वै देहमध्ये वर्तमानाः प्राणा एव स्वापयो मरुतः स्वापकालानुवर्तिनो वायवः। प्राणानां तत्कालानुवृत्तिमार्थर्वणिकाः प्रश्नोत्तराभ्यामामनन्ति—'भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति? कान्यस्मिञ्जाग्रति?'[३] इति प्रश्नः। 'प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति'[४] इत्युत्तरम्। एवंविधा यस्मात् प्राणरूपा मरुत एवैनमिन्द्रं तदानीं न परित्यक्तवन्तः। तस्मात्कारणादेष 'इन्द्र नेदीयः'[५] इत्यादिकः स्वापिमान् प्रगाथोऽच्युतो मरुत्वतीयशस्त्रे सर्वथाऽप्यपरित्यक्तः शस्यते। स्वापिशब्दो यस्मिन् प्रगाथेऽस्ति सोऽयं स्वापिमान्। आस्वापे स्वापिभिरित्ययं पादः, तस्मिन् प्रगाथ आम्नायते, तस्मादयं स्वापिमान्।।

इत्थमिन्द्रनिहवाख्यं प्रगाथं प्रशस्य पुनरपि प्रकारान्तरेण तमेव प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण प्रगाथप्रशंसनम्)

अपि ह यद्यैन्द्रमेवात ऊर्ध्वं छन्दः शस्यते तद्ध सर्वं मरुत्वतीयं भवत्येष चेदच्युतः स्वापिमान् प्रगाथः शस्यत आस्वापे स्वापिभिरिति ।।२।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से प्रगाथ की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अपि ह यत्** फिर भी जब **अतः ऊर्ध्वम्** इस (प्रगाथ) के (शंसन) बाद **ऐन्द्रं छन्दः शस्यते** (इस मरुत्वतीयशस्त्र में) इन्द्रसम्बन्धी मन्त्र का शंसन करता है **तद् ह सर्वं मरुत्वतीयं भवति** तब वह सभी मरुत्वतीय शस्त्र होता है। 'आस्वापे स्वापिभिः' इस पाद से युक्त **स्वापिमान् प्रगाथ** स्वापि

(१) 'तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति'—इति निरु० २.५.२।

(२) 'आपिराप्तो बन्धुः'—इति षड्गुरुशिष्यः। 'स्वापयः स्वापिनामानो मरुतः'—इति भट्टभास्करः। 'हे स्वापे सुतरामाप्तेन्द्र स्वापिभिः शोभना आपयः आप्ता बन्धवः यासु ताभिरूतिभिरेहि'—इति ऋक्संहिताभाष्ये सायणः।

(३) प्र०उप० ४.१। (४) प्र०उप० ४.३। (५) ऋ० ८.५३.५।

शब्द से सम्पन्न प्रगाथ **चेद् अच्युतः** यदि च्युत न किया (छोड़ा न) जाय तो **एषः शस्यते** यह (मरुत्वतीयशस्त्र) शंसित होता है।

सा० भा०—अपि हापि चात एतत्प्रगाथशंसनादूर्ध्वमस्मिन् मरुत्वतीयशस्त्रे यद्यैन्द्रमेव च्छन्द इन्द्रसंबन्ध्येव च्छन्दःशब्दोपलक्षिते मन्त्रः शस्यते। तद्ध सर्वं तदपि मन्त्रजातं मरुत्वतीयशस्त्रं भवति। एष चेदित्यादिना तत्र युक्तिरुच्यते। आस्वापे स्वापिभिरिति पादोपेतत्वेन स्वापिमानेष प्रगाथोऽच्युतश्चेदपरित्यक्तश्चेत् तदा मरुत्वतीयं भवति स्वापिशब्दवाच्यानां मरुतां प्रतिपादकत्वादित्यर्थः। सोऽयं प्रगाथः शाखान्तरे द्रष्टव्यः।।[1]

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—अथास्मिन् मरुत्वतीयशस्त्रे 'प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः'[2] इत्यादिकं प्रगाथं विधत्ते—

(मरुत्वतीयशस्त्रस्य ब्राह्मणस्पत्यप्रगाथविधानम्)

ब्रह्मणस्पत्यं प्रगाथं शंसति ।।१।।

हिन्दी—(अब मरुत्वतीय शस्त्र में 'प्र नूनं ब्रह्मणस्पति' इत्यादि प्रगाथ का विधान कर रहे हैं—) ब्राह्मणस्पत्यं **प्रगाथं शंसति** ब्रह्मणस्पति देवता वाले प्रगाथ (दो ऋचाओं के समूह) का शंसन करता है।

सा० भा०—द्वयोर्ऋचोः समूहः प्रगाथः। तथा च आश्वलायन आह—'तृचाः प्रतिपदनुचरा द्वृचाः प्रगाथाः'[3] इति। ऋग्द्वयमेवानुष्ठानकाले तृचरूपेण प्रग्रथ्यते। तस्मादयं प्रगाथ इत्युच्यते।।

विहितं ब्राह्मणस्पत्यं प्रशंसति—

---

(१) यद्यप्ययमपि प्रगाथः क्वचित् -क्वचित् शाकलशाखीयासंहितापुस्तकेऽपि बालखिल्यान्तर्गतत्वेन दृश्यते, तथा मुद्रितश्च मोक्षमूलरभट्टेन; परन्तु नैष शाकलशाखीयोऽपि त्वयं बाष्कलशाखीयः। अतएव शाकलसंहिताव्याख्याने 'वेदार्थप्रकाशे' न व्याख्यातं तद्बालखिल्यं काण्डमेतेन सायणाचार्येण; तथैवेहाप्युक्त 'शाखान्तरे द्रष्टव्यः'—इति।

(२) ऋ० १.४०.५। (३) आश्व०श्रौ० ५.१४.७।

(ब्राह्मणस्पत्यप्रशंसनम्)

बृहस्पतिपुरोहिता वै देवा अजयन् स्वर्गं लोकं व्यस्मिंल्लोकेऽजयन्त तथैवैतद् यजमानो बृहस्पतिपुरोहित एव जयति स्वर्गं लोकं व्यस्मिंल्लोके जयते ।।२।।

हिन्दी—(विहित ब्राह्मणस्पति-सम्बन्धी प्रगाथ की प्रशंसा कर रहे हैं—) **बृहस्पतिपुरोहिताः वै देवाः** ब्रह्मणस्पति हैं पुरोहित जिनके ऐसे देवताओं ने **स्वर्गं लोकम् अजयन्** स्वर्ग लोक को जीत लिया। **अस्मिन् लोके** इस (मृत्युलोक में भी **व्यजयन्त** विजय प्राप्त कर लिया **तथैव** उसी प्रकार **एतद् यजमानः** यह यजन करने वाला **बृहस्पतिपुरोहितः एव** पुरोहित के समान पुरोहित से ही **स्वर्गं लोकं जयति** स्वर्ग लोक को प्राप्त कर लेता है। और **अस्मिन् लोके** इस (पृथिवी) लोक में **वि जयते** विजय को प्राप्त करता है।

सा० भा०—योऽयं प्रगाथे ब्रह्मणस्पतिराम्नातः सोऽयं बृहस्पतिस्तस्य ब्राह्मणजातिस्वामित्वात्। स च बृहस्पतिः पुरोहितो येषां देवानां ते बृहस्पतिपुरोहिताः।[१] तथा च श्रुत्यन्तरे समाम्नातम्—'बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीत्'[२] इति पौरोहित्यसिद्ध्यर्थमेव चतुर्विंशतिरात्रमपश्यत्'[३] इति। तादृशा बृहस्पतियुरोहिता देवा अनेन प्रगाथेन स्वर्गं लोकं जित्वा भूलोकेऽपि विजयं प्राप्ताः। तथैव तत्पाठेनेदानींतनोऽपि यजमानो 'बृहस्पतिपुरोहित एव' बृहस्पत्यनुग्रहयुक्त एव सँल्लोकद्वयं जयति।।

अत्र किञ्चिच्चोद्यमुद्भावयति—

(तत्र प्रथमं चोद्यम्)

तौ वा एतौ प्रगाथावस्तुतौ सन्तौ पुनरादायं शस्येते, तदाहुर्यत्र किञ्चानास्तुतं सत्पुनरादायं शस्यतेऽथ कस्मादेतौ प्रगाथावस्तुतौ सन्तौ पुनरादायं शस्येते इति ।।३।।

हिन्दी—(इस विषय में किसी प्रश्न को उद्भावित कर रहे हैं—) **तौ एतौ प्रगाथौ** वे ये दोनों प्रगाथ **अस्तुतौ सन्तो** (सामगायकों द्वारा मध्यन्दिन सवन में) स्तुत न होते हुए भी **पुनरादायं शस्येते** पुनः पुनः पादों को लेकर शंसित किये जाते हैं। **तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) पूछते हैं कि **किञ्चन् अस्तुतं सत्** कहीं पर न स्तुत होने पर भी **पुनरादायं शस्यते** (उसे विना जाने) पुनः-पुनः (पादों को) लेकर शंसित करते है। **अथ कस्मात्** तो किस कारण से **एतौ प्रगाथौ अस्तुतौ सन्तौ** ये दोनों प्रगाथ (सामगायकों द्वारा) स्तुत न

(१) 'त्रयस्त्रिंशद्धि देवा बृहस्पतिपुरोहिताः'—इति शत०ब्रा० १२.८.३.२९।
(२) तै०सं० ६.४.१०। (३) तै०सं० ७.४.१.१।

होने पर भी **पुनरादायं शस्येते** पुनः-पुनः (पादों को) लेकर शंसित किये जाते हैं।

सा० भा०—समाम्नाते द्वे एव ऋचौ प्रग्रथनेन तृचरूपतया संपाद्येते। प्रग्रथन-प्रकार उच्यते—'प्र नूनम्' इत्येषा बृहतीछन्दस्का। द्वादशाक्षरेण तृतीयपादेनाष्टाक्षरैश्चान्यैर्युक्ततया षट्त्रिंशदक्षरसंपत्तेः। सेयमृक् सकृत् पठनीया। पुनरपि तत्रत्यमष्टाक्षरं चतुर्थ-पादं द्विराम्नाय षोडशाक्षरोऽर्धर्चः। संपादनीयः। इतरस्यामृचि प्रथमपादो द्वादशाक्षरः। द्वितीयपादोऽष्टाक्षरः। एतत् सर्वं मिलित्वा द्वितीया बृहती संपद्यते। तत्रत्यमन्तिममष्टाक्षर-पादं द्विरभ्यस्य समाम्नात उत्तरार्धे द्वादशाक्षरं प्रथमपादमष्टाक्षरमुत्तरपादं च पठित्वा तृतीया बृहती संपादनीया। अयमेव प्रग्रथनप्रकार 'इन्द्र नेदीय एदिहि' इत्यत्रापि प्रगाथे योजनीयः। तावेतौ प्रगाथौ 'पुनरादायं' पुनः पुनः पठितमेव पादमादायाऽऽदाय शस्येते। सामगैस्तु माध्यंदिनपवमाने प्रगाथावेतावस्तुतौ। तैरस्तुतयोर्होत्रा शंसनमयुक्तम्। त ह्यत्र क्वचिदपि सामगैरस्तुतं मन्त्रजातं पुनः पुनरादायं शस्यमानं दृष्टम्। एवं सति कस्मात्कारणादस्तुतयोरत्र शंसनमिति चोद्यवादिन आहुः ॥

एच्चोद्यमनास्थाय परिहारमनुक्त्वैव चोद्यान्तरमुद्भावयति—

(द्वितीयं चोद्यम्)

पवमानोक्थं वा एतद् यन्मरुत्वतीयं षट्सु वा अत्र गायत्रीषु स्तुवते, षट्सु बृहतीषु, तिसृषु त्रिष्टुप्सु, स वा एष त्रिच्छन्दाः, पञ्चदशो माध्यंदिनः पवमानः, तदाहुः कथं त एष त्रिच्छन्दाः पञ्चदशो माध्यंदिनः पवमानोऽनुशस्तो भवतीति ।।४।।

हिन्दी—(उपर्युक्त प्रश्न का परिहार न करके अन्य प्रश्न की उद्भावना कर रहे हैं—) **यद् मरुत्वतीयम्** जो मरुत्वतीय शस्त्र है **एतत् पवमानोक्थम्** यह (माध्यन्दिन) पवमान संम्बन्धी शस्त्र है। **अत्र** इस (माध्यन्दिन पवमान स्तोत्र) में **षट्सु गायत्रीषु** ('उच्चा ते जातम्' इत्यादि) छः गायत्री छन्दों में, **षट्सु बृहतीषु** ('पुनानः सोम' इत्यादि) छः बृहती छन्दों में और **तिसृषु त्रिष्टुप्सु** ('प्र तु द्राव' इत्यादि) तीन त्रिष्टुप् छन्दों में **स्तुवते** स्तुति की जाती है। इस प्रकार **सः एषः माध्यन्दिनः पवमानः** वह यह माध्यन्दिन पवमान (स्तोत्र) **त्रिच्छन्दाः पञ्चदशः** तीन प्रकार के छन्दों वाला और पन्द्रह (ऋचाओं) वाला है। **तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) पूछते हैं कि **ते** (हे होता)! तुम्हारा **त्रिच्छन्दाः पञ्चदशः** तीन प्रकार के छन्दों और पन्द्रह (ऋचाओं) वाला **एषः माध्यन्दिनः पवमानः** यह माध्यान्दिन पवमान स्तोत्र **कथं अनुशस्त्रः भवति** किस प्रकार (मरुत्वतीय शस्त्र के) अनुकूल होता है।

सा० भा०—मरुत्वतीयशस्त्रं यदस्ति, तदेतत् 'पवमानोक्थं' माध्यंदिनपव-मानसंबन्धिशस्तम्। अत्र माध्यंदिनपवमानस्तोत्र 'उच्चा ते जातम्' इत्यादिषु 'षट्सु गा-

यत्रीषु' प्रथमं स्तुवते।[१] ततः 'पुनानः सोम' इत्यादिषु 'षट्सु बृहतीषु' स्तुवते।[२] यद्यपि द्व्यचात्मकः प्रगाथः, तथाऽपि पूर्वोक्तन्यायेन प्रग्रथ्य तिस्रो बृहत्यः संपादनीयाः। तासु च रौरवसाम प्रागुद्गातव्यं, तत उपरि यौधाजयसाम गातव्यम्। एवं सति तिस्रो बृहत्यः सामद्वयार्थं द्विरावर्त्यमानाः षट् संपद्यते। तथा 'प्र तु द्रव'[३] इत्यादिषु तिसृषु त्रिष्टुप्सु स्तुवते।[४] एवं सति स एष माध्यंदिनपवमानः 'त्रिच्छन्दाः' भवति।[५] गायत्रीबृहतीत्रिष्टुब्रूपाणां त्रयाणां छन्दसां सद्भावात्। तथा स पवमानः पञ्चदशस्तोमोपेतः। तस्य च स्तोमस्य प्रकारश्छन्दोगब्राह्मणे एवमाम्नायते—'पञ्चभ्यो हिङ्करोति, स तिसृभिः स एकया स एकया, पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स एकया, पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स एकया स तिसृभिः'[६] इति। अस्यायमर्थः—तृचात्मकमेकं सूक्तं त्रिरावर्तनीयम्। तत्र प्रथमावृत्तौ प्रथमाया ऋचस्त्रिरभ्यासो विधेयः। द्वितीयावृत्तौ मध्यमायाः। तृतीयावृत्तौ चरमायाः। एवं प्रतिसाम सावृत्ताभिः पञ्चदशभिर्ऋग्भिरुपेतत्वात् पञ्चदश स्तोमा इति। एवं सत्यत्र चोद्यवादिन आहुः—हे होतः, ते 'एषः' यथोक्तलक्षणः 'पवमानः' कथं मरुत्वतीयशस्त्रेणानुशस्तो भवति? अनुशंसनं चान्याय्यम्। 'यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रम्' इति न्यायात्। अतोऽत्र स्तोत्रशस्त्रयोर्वैलक्षण्यमयुक्तमिति चोद्यान्तरम्॥

---

(१) छन्दोगाम्नाये 'उच्चा ते'—इति, 'स न इन्द्राय' इति, 'एना विश्वानि'—इति, ऋक्त्रयाणां समूहमेकं तृचं सूक्तमाम्नातमस्ति (उ०आ० १.१.८.१-३)। तत्र 'गायत्रेण स्तुत्वा'—इत्यादि ब्राह्मणशंसनात् (ता०ब्रा० ७.३.११) अग्निष्टोमीयमाध्यन्दिनपवमाननिष्पत्तये 'गायत्र' नाम साम गातव्यं भवति। तत्स्वरूपं तु गुरुमुखाद् उद्गातृप्रयोगादिदर्शनाच्चावगन्तव्यम्; सामसंग्रहे प्रकाशितं च। ततस्तमेव तृचात्मकं सूक्तमाश्रित्य 'निधनवता स्तुवन्ति'—इत्यादि ब्राह्मणशंसनात् (ता०ब्रा० ७.३.१३) तदर्थमेव 'आमहीयवं' नाम साम च गातव्यं भवति। तदेव ऊहगानग्रन्थस्यादिमं साम। तदित्थं गायत्रामहीयवसामद्वयार्थं द्विरावर्त्यमानास्तास्तिस्र एव ऋचः षट् सम्पद्यनते।

(२) अस्मि छन्दोगाम्नाये 'पुनानः सोम'—इति, 'दुहान ऊधर्दिव्यम्—इति, ऋग् द्वयात्मकमेकं सूक्तम् (उ०आ० १.१.९१,२)। तत्र 'ऐडेन बृहतीमारभन्ते'—इत्यादिब्राह्मणशासनात् (ता०ब्रा० ७.३१४) अग्निष्टोमीयमाध्यन्दिनपवमाननिष्पत्तये 'रौरवं नाम साम गातव्यं भवति। श्रूयते च तदूहगाने (१.१.२)। ततस्तमेव द्वृचं सूक्तमाश्रित्य 'तत्रापि त्रिणिधनम्'—इत्यादिब्राह्मणशासनात् (ता०ब्रा० ७.३.१७) तदर्थं मेव 'यौधाजयं' नाम साम च गातव्यं भवति। तदपि श्रूयते तत्रैव तत उत्तरम् (ऊ०गा० १.१.३)।

(३) उ०आ० १.१.१०.१-३।

(४) 'औशनं'—नामेति शेष। तच्च श्रूयते यौधाजयानन्तरमेव (ऊ०गा० १.१.४)। 'अनिधनवन्तो भवति'—इत्यादि च तद्विधायकं ब्राह्मणम् (७.३.२३)।

(५) 'माध्यन्दिनं सवनं पुपुवे त्रिभिश्च छन्दोभिः पञ्चभिश्च सामभिः'—इति ता०ब्रा० ७.३.२।

(६) ता०ब्रा० ३.४.१।

गायात्रीत्रिष्टुब्बृहतीभिश्छन्दोभिः गायत्रामहीयवरौरवयौधाजयौशनैश्च सामभिरित्यर्थः।

तत्र द्वितीयस्य चोद्यस्य तावदुत्तरं दर्शयति—

(द्वितीयचोद्यस्य परिहारः)

ये एव गायत्र्या उत्तरे प्रतिपदो यो गायत्रोऽनुचरस्ताभिरेवास्य गायत्र्योऽनुशस्ता भवन्त्येताभ्यामेवास्य प्रगाथाभ्यां बृहत्योऽनुशस्ता भवन्ति ।।५।।

हिन्दी—(उन उपर्युक्त दोनों में से द्वितीय प्रश्न का उत्तर दिखला रहे हैं—) **प्रतिपदः** ('आ त्वा रथम्' इत्यादि मरुत्वतीय शस्त्र के) प्रतिपद् (तृच) की **ये उत्तरे** जो उत्तरवर्ती दो (ऋचाएँ) **गायत्र्या** गायत्री (छन्द वाली) है और **यः गायत्रः अनुचरः** जो ('इदं वसो सुतमन्धः' इत्यादि) गायत्री छन्द वाला (तृच) अनुचर है **ताभिः** उन (गायत्री छन्दस्क पाँच ऋचाओं) के द्वारा **अस्य** इस (पवमान स्तोत्र) का **गायत्र्यः अनुशस्ताः भवन्ति** गायत्री (छन्द) वाली ऋचाएँ अनुशस्त हो जाती हैं। **एवं** इस प्रकार **अस्य प्रगाथाभ्याम्** ('इन्द्र नेदीय' और 'प्र नूनं ब्रह्मणस्पति') इन दोनों प्रगाथों द्वारा इस (पवमानस्तोत्र) की **बृहत्यः अनुशस्ताः भवन्ति** बृहती (छन्द) वाली (ऋचाएँ) अनुशस्त हो जाती हैं।

सा० भा०—'आ त्वा रथम्' इत्यस्मिन् मरुत्वतीयशस्त्रस्य प्रतिपद्रूपे तृचे प्रथमा ऋगनुष्टुब्, एवोत्तरो प्रतिपदः प्रतिपद् रूपे द्वे ऋचौ गायत्र्यौ विद्येते। यश्चान्यः 'इदं वसो सुतमन्धः' इत्यनुचराख्यस्तृचो गायत्रः, 'ताभिरेव' पञ्चभिर्गायत्रीभिरस्य होतुः पवमानस्तोत्र-गता गायत्र्योऽनुशस्ता भवन्ति। 'इन्द्र नेदीयः' इति योऽयमिन्द्रनिहवः प्रगाथः, यश्च 'प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिः' इति ब्राह्मणस्पत्यः प्रगाथः, एताभ्यामुत्तराभ्यां पवमानस्तोत्रगताः बृहत्योऽ-नुशस्ता भवन्ति; प्रग्रथनेन बृहतीसंपादनस्योभयत्र समानत्वात्। यत्तु त्रिष्टुभामनुशंसनं तदु-परिष्टाद् अभिधास्यते।।

अथ प्रसङ्गात् प्रथमचोद्यस्यापि परिहारं दर्शयन् पुनः पुनरादानस्यानुशंसनं दर्शयति—

(प्रथमचोद्यस्य परिहारः)

तासु वा एतासु बृहतीषु सामगा रौरवयौधाजयाभ्यां पुनरादायं स्तुवते; तस्मादेतौ प्रगाथावस्तुतौ सन्तौ पुनरादायं शस्येते, तच्छस्त्रेण स्तोत्रमन्वैति ।।६।।

हिन्दी—(प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए पुनरादान के अनुशंसन को दिखला रहे हैं—) **तासु एवासु बृहतीषु वै** उन्हीं (पुनानः सोम इत्यादि प्रगाथ) बृहती छन्दों में **सामगाः** सामगायक **रौरवयौधाजयाभ्याम्** रौरव और यौधाजय (नामक साम) के द्वारा **पुनरादायं स्तुवते** (पादों की) पुनः पुनः आवृत्ति करते हुए स्तुति करते हैं। **तस्मात्** इसी

कारण **एतौ प्रगाथौ अस्तुतौ सन्तौ** ये दोनों प्रगाथ स्तुत न किये गये होने पर भी **पुनरादायं शस्येते** (पादों की) पुनः पुनः आवृति के साथ शंसित होते हैं। **तत्** इस (पुनः पुनः आवृति करके शंसन करने) के कारण **शस्त्रेण** शस्त्र से **स्तोत्रम् अन्वैति** स्तोत्र अनुकूलता को प्राप्त करता है।

सा० भा०—'पुनानः सोम' इत्यस्मिन् प्रगाथे या बृहत्यः प्रग्रथनेन संपादिताः, 'तासु' एवैतासु बृहतीषु रौरवाख्येन यौधाजयाख्येन च साम्ना पुनः पुनः पठितमेव पादमादायादाय स्तुवते। तस्मादेताविन्द्रनिहवब्राह्मणस्पत्यप्रगाथौ सामगैरस्तुतावपि सन्तौ होत्रा पुनः पुनः पठितमेव पादमादायादाय शस्येते। तथा च सत्ययं होता स्वकीयेन शस्त्रेण स्तोत्रमनुगच्छति।[१]

इदानीं त्रिष्टुभामनुशंसनं दर्शयति—

(त्रिष्टुभामनुशंसनम्)

ये एव त्रिष्टुभौ धाय्ये, यत् त्रैष्टुभं निविद्धानं, ताभिरेवास्य त्रिष्टुभोऽनुशंस्ता भवन्ति ।।७।।

हिन्दी—(अब त्रिष्टुप् छन्द में अनुशंसन को दिखला रहे हैं—) **ये एव त्रिष्टुभौ धाय्ये** जो त्रिष्टुप् छन्द वाली (अग्निर्नेता इत्यादि और 'त्वं सोम क्रतुभिः') ये दो धाय्या हैं और **यत् त्रैष्टुभं निविद्धानम्** जो त्रिष्टुप् छन्द वाला ('जनिष्ठा उग्रः' इत्यादि) निविद्धान है, **ताभिः एव** उन (धाय्या और निविद्धान ऋचाओं) से ही **अस्य** इस (होता) के **त्रिष्टुभः** (स्तोत्रगत) त्रिष्टुप् **अनुशस्ताः** अनुकूल **भवन्ति** होते हैं।

सा० भा०—यथा सामिधेनीषु प्रक्षिप्यमाणानामृचां धय्येति संज्ञा, एवमत्रापि। तथा सति 'अग्निर्नेता भग इव क्षितीनाम्'[२] इत्येका धाय्या 'त्वं सोम क्रतुभिः'[३] इत्यपरा। 'ये एव' त्रिष्टुप्छन्दस्के धाय्ये विद्येते, यच्च त्रिष्टुप्छन्दस्कं 'जनिष्ठा उग्रः'—इत्यादिकं निविद्धानं सूक्तम्।[४] निविदां पदानि धीयन्ते प्रक्षिप्यन्ते यस्मिन् सूक्ते तन्निविद्धानम्। 'ताभिरेव' सूक्तगताभिर्धाय्यासहिताभिस्त्रिष्टुब्भिरस्य होतुः स्तोत्रगताः 'त्रिष्टुभः अनुशस्ता भवन्ति'।।

उक्तार्थवेदनं प्रशंसति—

(उक्तार्थवेदनप्रशंसनम्)

एवमु हास्यैष त्रिच्छन्दाः पञ्चदशो माध्यंदिनः पवमानोऽनुशस्तो भवति च एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ के ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार

---

(१) 'अनु आ एति स्तोत्रगतबृहतीषु पुनरादाय गीति शस्त्रगतबृहतीषु पुनरादाय शंसनं भिन्नदेशगतमप्यनुकरोत्येवेत्यर्थः'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) ऋ० ३.२०.४। (३) ऋ० १.९१.२। (४) ऋ० १०.७३।

(इस तथ्य को) जानता है **अस्य** इस (ज्ञाता) का **एषः त्रिच्छन्दाः पञ्चदशः माध्यन्दिनः पवमानः** यह तीन प्रकार के छन्दों वाला और पन्द्रह (ऋचाओं) वाला माध्यन्दिन पवमान स्तोत्र **अनुशस्तः भवति** अनुकूल होता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा०भा०—मरुत्वतीयशस्त्रे प्रक्षेपणीया ऋचो विधत्ते—

(मरुत्वतीयशस्त्रे प्रक्षेपणीयर्चोविधानम्)

धाय्याः शंसति ॥१॥

हिन्दी—(अब मरुत्वतीयशस्त्र में प्रक्षेपणीय ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) **धाय्याः शंसति** ('अग्निर्नेता', 'त्वं सोम क्रतुभिः' और 'पिन्वन्त्यपः' इस तीन) धाय्या का शंसन करता है।

सा०भा०—'अग्निर्नेता'[१] इत्येका। 'त्वं सोम क्रतुभिः'[२] इति द्वितीया। 'पिन्वन्त्यपः'[३] इति तृतीया। ताः शंसेत्॥

तासां प्रशंसामाह—

(धाय्यानां प्रशंसनम्)

धाय्याभिर्वै प्रजापतिरिमाँल्लोकानधयद् यं यं काममकामयत॥२॥

हिन्दी—(उन तीनों धाय्या की प्रशंसा को कह रहे हैं—) **प्रजापतिः** प्रजापति ने **यं यं कामम् अकामयत** जिस-जिस कामना को किया **इमान् लोकान्** इन लोकों (की कामना) को **धाय्याभिः अधयत्** तीनों धाय्या द्वारा प्राप्त कर लिया।

सा०भा०—पुरा प्रजापतिर्यं यं लोकं कामितवांस्तानिमाँल्लोकानुक्ताभिर्धाय्याभिरेवाधयद् अपिबत्।[४] लोकशब्देन जलम् (पादवेदनायां सति धमतो यजमानस्य (?) तत्प्राप्तवान्)॥

---

(१) ऋ० ३.२०.४। (२) ऋ० १.९१.२। (३) ऋ० १.६४.४।

(४) 'यद्यपि धयतिः पाने पठ्यते, तथापीह पानजन्या व्याप्तिः पानेन लक्ष्यते। इमान् लोकानाभिर्व्याप्तवान्'—इति भट्टभास्करः।

वेदनं प्रशंसति—

तथैवैतद् यजमानो धाय्याभिरेवेमाँल्लोकान् धयति, यं यं कामं कामयते, य एवं वेद, यदेव धाय्याः ।।३।।

हिन्दी—**तथैव** उसी प्रकार (बृहस्पति के समान) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **यदेव धाय्या** जितनी धाय्या हैं, **एतद् यजमानः** यह यजन करने वाला **यं यं कामं कायमते** जिस-जिस कामना को करता है, **धाय्याभिः** तीनों धाय्या से **इमान् लोकान्** इन लोकों (की कामनाओं) को **धयति** प्राप्त कर लेता है।

सा० भा०—या एवोक्ता धाय्याः सन्ति, ताभिर्वेदिता यजमानः कामतं लोकं धयति। अत्र धयत्याभिरिति[1] धाय्याशब्दनिर्वचनमर्थाद्दर्शितम्।।

प्रकारान्तरेण प्रशंसामाह—

(निर्वचनद्वारा धाय्याशब्दनिर्वचनम्)

यत्र यत्र वै देवा यज्ञस्य च्छिद्रं निरजानंस्तद्धाय्याभिरपिदधुस्तद्धाय्यानां धाय्यात्वम् ।।४।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से धाय्या का निर्वचन कर रहे हैं—) **यत्र यत्र वै** जहाँ-जहाँ ही **देवाः** देवताओं ने **यज्ञस्य छिद्रम्** यज्ञ में छिद्र (अङ्गवैकल्य) को **निरजानन्** समझा **तद् धाय्याभिः** उसको धाय्या (मन्त्रों) से **अपिधुः** आच्छादित (पूर्ण) कर दिया। **तद् धाय्यानां धाय्यात्वम्** वही धाय्या (मन्त्रों) को (धारण करने के कारण) धाय्या कहा जाता है।

सा० भा०—देवा यदा यज्ञस्य च्छिद्रमङ्गवैगुण्यं ज्ञातवन्तः तदा[2] धाय्याभिः 'अपिदधुः' आच्छादितवन्तः। तस्माद् दधात्याभिरिति व्युत्पत्त्या धाय्यात्वं संपन्नम्।।

वेदनं प्रशंसति—

अच्छिद्रेण हास्य यज्ञेनेष्टं भवति, य एवं वेद, यद्वेव धाय्याः ३।।५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान के फल को बतला रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है तो **यद्वेव धाय्याः** जितनी धाय्या है, उतने **अच्छिद्रेण यज्ञेन** अच्छिद्र (वैकल्य-विहीन) यज्ञ से **अस्य इष्टं भवति** इस (यजमान) का (यज्ञ) पूर्ण होता है।

---

(१) 'धयत्याभिरिति करणेऽचो यदिति यतं बाधित्वा छान्दसो ण्यत्। पाय्यसान्नाय्येति निपातनादेव वावगम्यते। अतोऽन्यत्रापि दृश्यते धाय्याः शंसतीति। आतो युक् चिण्-कृतोरिति युक्। एवमग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिरित्यादय ऋचो धाय्या उच्यन्ते न तु सामिधेन्यः'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'यज्ञसम्बन्धिनि यस्मिन् -यस्मिनङ्गे 'छिद्रं' वैकल्यं देवा निर्ज्ञातवन्तः' तत् 'छिद्रं'—इति वा पाठः।

सा० भा०—'यद्वेव' इत्यत्र योऽयमुकारः, सोऽयं पूर्वेण फलेन समुच्चयार्थः। न केवलं पूर्वं फलं किंत्विदमपीत्यर्थः। अत्र पूर्ववत् प्लुतिः प्रशंसाद्योतनार्था॥

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण धाय्यानां प्रशंसनम्)

स्यूम हैतद् यज्ञस्य यद्धाय्यास्तद् यथा सूच्या वासः संदधदियादेवमेवैताभिर्यज्ञस्य च्छिद्रं संदधदेति, य एवं वेद, यद्वेव धाय्या३ः ॥६॥

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से धाय्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् धाय्या** जो धाय्या है, **एतद् यज्ञस्य स्यूम** यह यज्ञ की सिलाई है। **तद् यथा** जो जिस प्रकार **सूच्या वासः सन्दधति** (लोक में) सूई से वस्त्र को जोड़ते हुए सिलता है, **एवम्** इसी प्रकार **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **यद्वेव धाय्या** जितनी धाय्या है **एताभिः** इन (धाय्या मन्त्रों) से **यज्ञस्य छिन्द्रं सन्दधत** यज्ञ के छिद्र (वैकल्य) को जोड़ता है।

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

(पुनः प्रकारान्तरेण धाय्याप्रशंसनम्)

तान्यु वा एतान्युपसदामेवोक्थानि यद्धाय्या, अग्निर्नेतेत्याग्नेयी प्रथमोपसत्, तस्या एतदुक्थं, 'त्वं सोम क्रतुभिः' इति सौम्या द्वितीयोपसत्, तस्या एतदुक्थं, 'पिन्वन्त्यपः' इति वैष्णवी तृतीयोपसत्, तस्या एतदुक्थम् ॥७॥

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से धाय्या मन्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् धाय्या** जो धाय्या मन्त्र है **तानि एतानि वे** ये (धाय्यामन्त्र) **उपसदाम् एव उक्थानि** उपसदों के ही उक्थ है। **'अग्निर्नेताः इति आग्नेयी** यह अग्नि देवता वाला मन्त्र **प्रथमोपसद्** प्रथम उपसद् है **तस्याः एतद् उक्थः** उसका यह शस्त्र है। **'त्वं सोम क्रतुभिः' इति सौम्या द्वितीया उपसद्** यह सोम देवता वाला द्वितीय उपसद् है, **तस्याः एतद् उक्थः** उसका यह शस्त्र है। **'पिन्वन्त्यपः' इति वैष्णवी तृतीया उपसद्** विष्णु देवता-सम्बन्धी यह तृतीय उपसद् है **तस्याः एतद् उक्थम्** उसका यह शस्त्र है।

सा० भा०—उपदामर्थवादेऽग्निरनीकं सोमः शल्यो विष्णुस्तेजनमिति प्रस्तुत्याग्न्यादिदेवताकास्तिस्र उपसदः समाम्नाताः। अत्रापि 'अग्निर्नेता' इत्यादयस्तत्तद्देवताका एव धाय्याः श्रुताः। एकैका धाय्या एकैकस्या उपसदः शस्त्रम् ॥

उक्तार्थवेदनं तत्पूर्वकं शंसनं च प्रशंसति—

यावन्तं ह वै सौम्येनाध्वरेणेष्ट्वा लोकं जयति तमत एकैकयोपसदा

जयति, य एवं वेद, यश्चैवं विद्वान् धाय्याः शंसति ।।८।।

हिन्दी—(उक्तार्थ ज्ञान का और उसके साथ शंसन की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है और **यः च एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **धाय्याः शंसति** धाय्या (ऋचाओं) का शंसन करता है, वह **यावन्तम् एव सौम्येन अध्वरेण** उतने ही सोमयाग से **इष्ट्वा** यजन करके **लोकं जयति** लोक को जीत लेता है, **तम्** उसको **एकैकया एव उपसदा** एक-एक (याज्यारूप) उपसद से **जयति** जीत लेता है।

स० भा०—वेदिता शंसिता चैकैकधाय्यारूपयोपसदा कृत्स्नं सोमयागफलं प्राप्नोति। उपसत्संबन्धिशस्त्रत्वेनाभिहितत्वादुपसत्त्वोपचारः।।

अत्र कंचित्पूर्वपक्षमुपन्यस्यति—

(तत्र पूर्वपक्षः)

तद्धैक आहुः–'तान् वो महः' इति शंसेद्, एतां वाव वयं भरतेषु शस्यमानामभिव्यजानीम इति वदन्तः ।।९।।

हिन्दी—(इस विषय में पूर्वपक्ष को उपन्यस्त कर रहे हैं—) **तद् ह एके आहुः** उस (तृतीय धाय्या के) विषय में कुछ (ब्रह्मविद्) कहते हैं कि **'तान् वो महः इति शंसेत्** इस (ऋचा) का शंसन करना चाहिए। **भरतेषु** (पूर्ववर्ती) ऋत्विजों में **एतां शस्तमानाम्** शंसित की जाती हुई इस (ऋचा) का **वयम्** हम लोगों ने **अभिव्यजानीमः** सुना है—**इति वदन्तः** ऐसा कहते हुए वे अपने पक्ष को रखते हैं।

सा० भा०—तद्ध तत्रैव तृतीयधाय्याविषये केचिदेवमाहुः—'तान् वो महो मरुतः'[१] इत्येतां वैष्णवीं तृतीयां धाय्यां शंसेत्। न तु 'पिन्वन्त्यपः' इत्येताम्। तत्रोपपत्तिं चैवमाहुः—बिभर्ति फलमिति भरो यज्ञः, तं भरं तन्वन्तीति 'भरताः' ऋत्विजः तेषु पूर्वकालीनेषु 'तान् वो महः' इत्येतामेवर्चं शस्यमाना वयमभिजानीम इति स्वानुभवमितरेषामग्रे वदन्तस्तं पूर्वपक्षमाहुः।।

तं निराचष्टे—

(पूर्वपक्षनिराकरणम्)

तत्तननाऽऽदृत्यम् ।।१०।।

हिन्दी—(उपर्युक्त पूर्वपक्ष का निराकरण कर रहे हैं—) **तत् तत् न आदृत्यम्** वह (कथन) और वह (मत) आदरणीय नहीं है।

सा० भा०—तद्विषयं तन्मतं नाऽऽदरणीयम्।।

---

(१) ऋ० २.३४.११।

विपक्षे बाधकं दर्शयति—

यदेतां शंसेदीश्वरः पर्जन्योऽवर्ष्टोः ।।११।।

हिन्दी— (विपक्ष में बाधा को दिखला रहे हैं **यद् एतां शंसेत्** यदि (होता) इस (ऋचा) का शंसन करता है तो **पर्यन्यः अवर्ष्टोः ईश्वरः** मेघ अवर्षण (वर्षा न करने) में समर्थ हो जाता है।

सा०भा०—यदि होता 'तान् वो महा' इत्येतामृचं शंसेत् तदानीं पर्जन्यो मेघः स्वस्वकालेष्वर्ष्टोरीश्वरो वृष्टिराहित्यं कर्तुं समर्थो भवति।[१] वृष्टिर्न भवेत्। वृष्ट्यनुरूपाणां पदानां तस्यामृच्यभावादित्यर्थः।।

सिद्धान्तं दर्शयति—

'पिन्वन्त्यपः' इत्येव शंसेत् ।।१२।।

हिन्दी—(अब सिद्धान्त पक्ष को दिखला रहे हैं—) अतः 'पिन्वन्त्यपः' **इत्येव शंसेत्** इस (धाय्या) का ही शंसन करना चाहिए।

सा०भा०—इयमेव धाय्या न तु 'तान् वो महः' इत्यादिकाऽपि।

अत्र विहितायामृचि वृष्ट्यनुकूलपदसद्भावं दर्शयति—

वृष्टिवनि पदं, मरुत इति मारुतमत्यं न मिहे वि नयन्तीति विनीतवद्, यद्विनीतवत् तद्विक्रान्तवद्, यद्विक्रान्तवत् तद्वैष्णवं, वाजिनमितीन्द्रो वै वाजी, तस्यां वा एतस्यां चत्वारि पदानि वृष्टिवनि मारुतं वैष्णवमैन्द्रम् ।।१३।।

हिन्दी—('पिन्वत्यपः' इस ऋचा में वृष्टि की अनुकूलता वाले पदों को दिखला रहे हैं—) **वृष्टिवनि पदम्** (सेचनार्थक पिवि धातु से निष्पन्न होने से 'पिबन्त्वपः') पद वृष्टि का सम्भजनकारी है। **मरुतः इति मारुतम्** मरुत (यह पद) (वृष्टि के अनुकूल होने के कारण) मरुत का वाचक है। 'अत्यं न मिहे वि नयन्ति' **इति विनीतवत्** इस (तृतीय पाद में वृष्टिपात उपलक्षक) विनीतवत् शब्द है। **यद् विनीतवत्** जो विनीतवान् (पद) हैं **तद् विक्रान्तवत्** वह विक्रान्तवान् (का लक्षक) है और **यद् विक्रान्तवत्** जो विक्रान्तवान् (शब्द) है **तद् वैष्णवम्** विष्णु से सम्बन्धित है। **वजिनम् इति** (ऋचा में) वाजिनम् (शब्द प्रयुक्त है)। **इन्द्रः वै वाजी** इन्द्र ही वाजी (शब्द से कहा गया है)। **तस्यां वै एतस्याम्** उस इस (पिबन्त्यप ऋचा) में **चत्वारि पदानि** चाद पर **वृष्टिवनि मारुतं वैष्णवम् ऐन्द्रम्** क्रमशः वृष्टिसम्भजन, मरुत, विष्णु और इन्द्र से सम्बन्धित (वृष्टि के अनुकूल) है।

---

(१) 'वृषेस्तोसुनि रूपम्' इति (पा०सू० ३.४.९)।

सा॰भा॰—अत्र 'पिन्वन्त्यपः' इति पदं श्रूयते, तत्सेचनार्थम्। 'पिवि सेचने'— इत्यस्माद्धातोरुत्पन्नत्वात्। अत इदं पदं वृष्टिवनि वृष्टिसंभजनकारीत्यर्थः। 'पिन्वन्त्यपो मरुतः' इत्यत्र मरुत इति पदम्, मारुतं मरुतां वाचकं पदम्, तदपि वृष्ट्यनुकूलम्, पुरोवातस्य वृष्ट्यङ्गत्वात्। 'अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनम्' इति तृतीयपादे विनीतवत्पदमस्ति 'विनयन्ति' इत्यस्य नयतिधातुजन्यत्वात्। तेन च विनयेन वृष्टिपातनं लक्ष्यते। किं च यद् विनीतवत् पदं तद्विक्रान्तवदित्यमुमर्थमाचष्टे; धातूनामनेकार्थत्वात्। तथा सति यद्विक्रान्त-वत्पदम्, तद्वैष्णवं विष्णुसंबन्धि। 'इदं विष्णुर्विचक्रमे'[१] इति श्रुत्यन्तरात्। तथा सति वैष्णव्यास्तृतीयस्या उपसदः संबद्धमपि भवतीत्यर्थः। तस्मिन्नेव तृतीयपादे वाजिनमिति पदं विद्यते, तत्रेन्द्रो वाजिशब्दार्थः वृष्टिद्वाराऽन्नप्रदत्वेन वाजोऽन्नमस्यास्तीति निर्वृक्तुं शक्य-त्वात्। उक्तेन प्रकारेण तस्यामेवैतस्यां 'पिन्वन्त्यपः' इत्यृचि चत्वारि पदानि वृष्टेरनुकू-लानि,-वृष्टिवनि, मारुतं, वैष्णवम्, ऐन्द्रं चेति। तस्मादत्र पूर्वोक्तदोषो नास्तीत्यर्थः॥

पुनरप्येतामृचं प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

सा वा एषा तृतीयसवनभाजना सती मध्यंदिने शस्यते, यस्माद्धेयं भरतानां पशवः सायंगोष्ठाः सन्तो मध्यंदिने संगविनीमायन्ति, सो जगती, जागता हि पशवः, आत्मा यजमानस्य मध्यंदिनस्तद् यजमाने पशून् दधाति ॥१४॥

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से इस ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सा वै एषा तृतीयसवनभाजना सती** वह (पिन्वन्त्यपः ऋचा) तृतीयसवन के योग्य होते हुए भी **मध्यन्दिने** माध्यान्दिनसवन में (होता द्वारा) शंसित की जाती है। **यस्माद्** इसी कारण ही **भरतानां पशवः सायंगोष्ठाः सन्तः** ऋत्विक् के पशु सायंकाल गोशाले में रहते हुए **मध्यन्दिने संगविनीम् आयन्ति** मध्याह्न काल में धूप के बचने के स्थान (घर) में आ जाते हैं। **सः जगती** यह जगती छन्द वाला (मन्त्र) है; क्योंकि **जागताः वै पशवः** पशु जगती छन्द से सम्बन्धित होते हैं। **मध्यन्दिनः यजमानस्य आत्मा** मध्याह्नकाल, यजन करने वाले की आत्मा (शरीर) है। **तत्** इस (शंसन) से **यजमाने** यजन करने वाले में **पशून् दधाति** पशुओं को प्रतिष्ठापित करता है।

सा॰भा॰—येयं 'पिन्वन्त्यपः' इत्यृगस्ति सैषैव 'तृतीयसवनभाजना' जगती-छन्दस्कत्वाज्जागतस्य तृतीयसवनस्य योग्या। तादृशी सती होत्रा मध्यंदिने शस्यते। तस्मा-देव कारणादिदं लोके दृश्यते। सायंकाले गोष्ठे व्रजे ये पशवस्तिष्ठन्ति ते 'सायंगोष्ठाः'। भरतानामृत्विजां पशवस्तादृशाः सन्तो मध्यंदिने 'संगविनी' संगवकालयोग्यां शालामा-यन्ति प्राप्नुवन्ति। अयमर्थः—ये पशवः क्षीरं दुहन्ति, ते सायं गृहे समागच्छन्ति। ये तु न

(१) ऋ॰ १.२२.१७।

दुहन्ति, ते सायं व्रज एव निवसन्ति। उभयविधा अपि ते मध्याह्नकाले घर्मकालीनसंताप-निवारणाय निर्मितां संगवकालयोग्यां शालामागच्छन्ति। तदेतन्मध्याह्नपाठनिमित्तमिति। किञ्च 'सो' पूर्वोक्ताऽप्यृग्जगतीछन्दस्का। पशवश्च जगतीछन्दसा सह प्रजायन्ते, मध्यदिन उत्पन्न-त्वात्।[१] जागतो मध्यंदिनकालश्च यजमानस्याऽऽत्मा। तथा सति तस्मिन् काले जगतीपाठेन यजमाने पशून् संपादयति ॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकाया: द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) सप्तम: खण्ड: ॥७॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ अष्टमः खण्डः

सा० भा०—अथ प्रगाथान्तरं विधत्ते—

(प्रगाथान्तरविधानम्)

मरुत्वतीयं प्रगाथं शंसति, पशवो वै मरुतः, पशवः प्रगाथः, पशूनामवरुद्ध्यै ।।१।।

हिन्दी—(अब अन्य प्रगाथ का विधान कर रहे हैं—) **पशूनाम् अवरुद्ध्यै** पशुओं की प्राप्ति के लिए **मरुत्वतीयं प्रगाथं शंसति** (होता) मरुत् देवता वाले प्रगाथ का शंसन करता है। क्योंकि **पशवः वै मरुतः** मरुत् पशुरूप हैं और **पशवः प्रगाथः** प्रगाथ भी पशुरूप है अत: **पशूनामवरुद्ध्यै** पशुओं की प्राप्ति के लिए यह प्रगाथ होता है।

सा० भा०—यस्मिन् प्रगाथे मरुत: श्रूयन्ते, सोऽयं मरुत्वतीय: प्रगाथ:। 'प्र वा इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चते' इत्यस्मिन् प्रगाथे[२] मरुत: श्रूयन्ते तमिमं शंसेत्।[३] पशूनां प्रावरणराहित्येऽप्यरण्ये संचारकाले वायवोऽनुगृह्य न तान् बाधन्ते। तत्संबन्धान् मरुतां पशुत्वं प्रगाथस्य च पशुप्राप्तिहेतुत्वात् पशुत्वम्[४]; अत: स प्रगाथ: पशुप्राप्त्यै भवति॥

अथ निविद्धानीयं सूक्तं विधत्ते—

(निविद्धानीयसूक्तविधानम्)

'जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति' सूक्तं शंसति, तद्वा एतद् यजमान-

---

(१) ता०ब्रा० ६.१.१०। (२) ऋ० ९.८९.३।

(३) 'प्र व इन्द्राय बृहत इति मरुत्वतीय: प्रगाथ:'—आश्व०श्रौ० ५.४.१८।

(४) तु० महाभारतम् १२.२०७.२५-२६।

जननमेव सूक्तं, यजमानं ह वा एतेन यज्ञाद् देवयोन्यै प्रजनयति ।।२।।

हिन्दी—(अब निविद्धानीय सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय' इति सूक्तं शंसति इस सूक्त का (होता) शंसन करता है। तद् वा एतत् सूक्तम् वह यह (जनिष्ठा उग्रः) सूक्त **यजमानजननमेव** यजमान को जन्म देने वाला है। **एतेन** इस (सूक्त के शंसन) से **यजमानं ह** यजन करने वाले को (होता) **यज्ञात्** यज्ञ से **देवयोन्यै प्रजनयति** देवलोक के स्थान के लिए उत्पन्न करता है।

सा० भा०—होता 'जनिष्ठा' इत्यादिसूक्तं[1] शंसेत् तदेतत्सूक्तं यजमानजननमेव। कथमिति, तदुच्यते—एतेन सूक्तेन होता यज्ञादनुष्ठीयमानाद् देवयोन्यै' देवलोकस्थानार्थं यजमानं प्रजनयति। तस्माद् यजमानजननत्वम्।।

तेन रूपेण प्रशस्य पुनः प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

तत्संजयं भवति; सं च जयति, वि च जयते ।।३।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से इस सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तत्** इस (सूक्त के शंसन) से (यजमान) **सञ्जयं भवति** सम्यक् प्रकार से जय को प्राप्त करने वाला होता है। **सं च जयति** सम्यक् प्रकार से जय को प्राप्त करता है और **वि च जयते** विशिष्ट रूप से जय को प्राप्त करता है।

सा० भा०—यस्माद् एतेन सूक्तेन संयुज्यापि शत्रून् यजमानो जयति वियुज्यापि जयते; तस्मान् सूक्तं 'संजयं' समीचीनों जयो येन सूक्तेनेति समासः।।[2]

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

एतद् गौरिवीतं, गौरिवीतिर्ह वै शाक्त्यो नेदिष्ठं स्वर्गस्य लोकस्यागच्छत्, स एतत् सूक्तमपश्यत्; तेन स्वर्गं लोकमजयत्, तथैवैतद् यजमान एतेन सूक्तेन स्वर्गं लोकं जयति ।।४।।

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) **एतद्वै गौरिवीतम्** यह ('प्र व इन्द्राय' सूक्त) गौरिवीत (ऋषि) द्वारा दृष्ट है। **शाक्त्यः गौरिवीतिः** शक्ति के पुत्र गौरवीति **स्वर्गस्य लोकस्य नेदिष्टम् अगच्छत्** स्वर्ग लोक के समीप गये। **सः** उस (ऋषि) ने **एतत् सूक्तम्** इस 'प्र व इन्द्राय' सूक्त का **अपश्यत्** दर्शन किया **तेन** उस (सूक्त) से **स्वर्गं लोकम् अजयन्** स्वर्ग लोक को प्राप्त किया। **तथैव** उसी प्रकार **एतद् यजमानः** यह यजन करने वाला **एतेन सूक्तेन** इस सूक्त के द्वारा **स्वर्गं लोकं जयति** स्वर्ग लोक

(१) ऋ० १०.७३.१।

(२) 'विजयो युद्ध उत्कर्षः संजयस्तु वशीकृताः'—इति षड्गुरुशिष्य। 'संजयति च सम्यक् शत्रूम् अभिभवति च विजयते च व्यावृत्य च सर्वस्माद् जेता भवति'—इति भट्टभास्करः।

को जीत (प्राप्त) लेता है।

सा० भा०—शक्तिनामकस्य महर्षे: कुले जात: शाक्त्य:, गौरिवीतिर्नाम महर्षि:। स तु स्वर्गत्य समीपं गत्वा प्रवेष्टुमशक्त: सन् तत्साधनत्वेनैतत् सूक्तं दृष्ट्वा तेन स्वर्गं प्राविशत्। तस्मादेतत् सूक्तं[1] महर्षिनाम्ना गौरिवीतमित्युच्यते। यथा महर्षिस्तथा यजमानोऽप्येतेन सूक्तेन स्वर्गं प्राप्नोति ॥

तस्मिन् सूक्त निवित्प्रक्षेपस्य स्थानं विधत्ते—

(सूक्ते निवित्प्रक्षेपस्य स्थानविधानम्)

तस्यार्धाः शस्त्वाऽर्धाः परिशिष्य मध्ये निविदं दधाति ।।५।।

हिन्दी—(इस सूक्त में निवित्-प्रक्षेप के स्थान का विधान कर रहे हैं—) **तस्य** उस (सूक्त) के **अर्धाः शस्त्वा** आधे मन्त्रों का शंसन करके और **अर्धाः परिशिष्य** आधे मन्त्रों को छोड़कर **मध्ये** मध्य में **निविदं दधाति** ('इन्द्रो मरुत्वान्') निवित् को रखता है।

सा० भा०—'तस्य' सूक्तस्य संबन्धिनीष्वृक्षु भागद्वयं कृत्वा, द्वयोर्भागयोर्मध्ये 'इन्द्रो मरुत्वान्' इत्येतां निविदं[2] शंसेत्। नन्वस्मिन्नेकादशर्चे सूक्ते समभागो न संभवतीति चेत्, तर्हि प्रथमभागे कांचिदाधिकां शस्त्वा तत ऊर्ध्वं प्रक्षिपेत्। 'एक:भूयसी शस्त्वा' इत्युक्तत्वात्[3]॥

निविदं प्रशंसति—

(निवित्प्रशंसनम्)

स्वर्गस्य हैष लोकस्य रोहो यन्निवित् ।।६।।

हिन्दी—(निवित् की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् निवित्** जो निवित् है **एषः ह** यह **स्वर्गस्य लोकस्य रोहः** यह स्वर्ग लोक का आरोहण (सीढ़ी) है।

सा० भा०—रोह आरोहणहेतुरित्यर्थ:॥

तत्र स्वरविशेषं विधत्ते—

(तत्र स्वरविशेषविधानम्)

स्वर्गस्य हैतल्लोकस्याऽऽक्रमणं यन्निवित्, तामाक्रममाण इव शंसेद्, उपैव यजमानं निगृह्णीत योऽस्य प्रियः स्यादिति नु स्वर्गकामस्य ।।७।।

हिन्दी—(निवित् में स्वर-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **यद् निवित्** जो निवित्

---

(१) ऋ० १०.७३.१-११।   (२) निवि० २.१।

(३) 'जनिष्ठा उग्र' इति। एकभूयसी: शस्त्वा मरुत्वतीयां निविदं दध्यात् सर्वत्र'—इति आश्व०श्रौ० ५.१४.१९;२०। एकां भुयसीषु शस्त्वा'—इति वा पाठ:।

है **एतत् स्वर्गस्य लोकस्य आक्रमणम्** यह स्वर्ग लोक का सोपान-स्थानीय है। अतः **ताम्** उस (निवित्) का **आक्रममाणः इव** सीढ़ी पर चलते हुए क्रमशः आरोहण के समान (स्वर करके) **शंसेत्** शंसन करना चाहिए। **यः यस्य प्रियः स्यात्** जो इस (यजमान) का प्रिय होता है वह **यजमानम् उप एव निगृह्णीत** यजमान को समीप से ही ग्रहण करे। **स्वर्गकामस्य तु** स्वर्ग की कामना करने वाले के लिए (यही प्रयोग जानना चाहिए)।

सा० भा०—येयं निविदस्ति, तदेतत् स्वर्गस्याऽऽक्रमणं सोपानस्थानीयम्, तस्माद् यथा लोके सोपानारोहणे श्रमेण पुनः पुनः श्वासं करोति, तदनुकारिणं स्वरं कृत्वा तथैव पठेत्।[1] एवं पाठे सति 'अस्य' यजमानस्य यः पुमान् प्रियः स्यात् स पुमानेतं यजमानम् 'उपैव' समीप एव 'निगृह्णीत' स्वीकुर्यात्। 'इति नु' एष एव प्रयोगः, स्वर्गकमस्यावगतव्यः। वक्ष्यमाणप्रयोगेण सांकर्यपरिहाराय स्वर्गकामस्येत्युक्तिः।।

अभिचारप्रयोगं विधत्ते—

(निविदः अभिचारप्रयोगः)

(तत्र क्षत्रियेण विशहननार्थं प्रयोगः)

अथाभिचरतः–यः कामयेत क्षत्रेण विशं हन्यामिति, त्रिस्तर्हि निविदा सूक्तं विशंसेत्, क्षत्रं वै निविद्, विट् सूक्तं, क्षत्रेणैव तद् विशं हन्ति ।।८।।

हिन्दी—(अब अभिचार प्रयोग का विधान कर रहे हैं—) **अथ अभिचरतः** अब अभिचार की कामना करने वाला **यः कामयेत** जो कामना करे कि **क्षत्रेण विशं हन्याम्** क्षत्रिय से वैश्य का हनन करूँ **तर्हि त्रिः निविदा सूक्तं विशंसेत्** (होता को सूक्त के) तीन बार (आदि, मध्य और अन्त में) निवित् (पदों) से विच्छेद करके सूक्त का शंसन करना चाहिए; क्योंकि **क्षत्रं वै निवित्** निवित् क्षत्रिय है और **विटं सूक्तम्** सूक्त वैश्य है। **तत्** इस (प्रयोग) से **क्षत्रेणैव** क्षत्रिय से ही **विशं हन्ति** वैश्य को विनष्ट कर देता है।

सा० भा०—क्षत्रियजात्या वैश्यजातेर्वधं कामयमानो यजमानो निविदा सूक्तं त्रिर्विशंसेत्। एतदुक्तं भवति—सूक्तस्याऽऽदौ मध्ये चान्ते च निविदं दध्यात्। तदिदं सूक्तविच्छेदपूर्वकं शंसनमिति[2]। निविदः क्षत्रियजातित्वं सूक्तस्य वैश्यजातित्वं पूर्वमेवाऽऽम्नातम्। अत उक्तशंसनेन क्षत्रियजात्या वैश्यजातिं हन्ति। सोऽयमेकोऽभिचारप्रकारः।।

अथैतद् विपर्ययेणाभिचारं विधत्ते—

---

(१) 'आक्रममाण इव उपर्युपरि स्ववीर्येणाभिभवन्निव शंसेत्। यथा सोपानामाक्रममाणः प्रतिसोपानक्रमं प्रयत्नातिरेकं करोत्येवमुपर्युपरि निवित्पदान्युच्चैस्तरां शंसेत्'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'तदुक्तं सूक्तविच्छेदकं शंसनमिति'–इति वा पाठः।

(विशा क्षत्रियहननार्थं प्रयोगः)

यः कामयेत विशा क्षत्त्रं हन्यामिति, त्रिस्तर्हि सूक्तेन निविदं विशंसेत्, क्षत्त्रं वै निविद् विट् सूक्तं, विशैव तत्क्षत्त्रं हन्ति ।।९।।

हिन्दी—(अब इसके विपर्यय से अभिचार का विधान कर रहे हैं—) **यः कामयेत्** जो कामना करे कि **विशा क्षत्रं हन्याम्** वैश्य के द्वारा क्षत्रिय को मारूँ **तर्हि** तब **निविदं त्रिः** निवित् के (आदि, मध्य और अन्त में) तीन बार **सूक्तेन विशंसेत्** सूक्त के साथ विच्छेद के रूप से शंसन करना चाहिए। **क्षत्रं वै निवित्** निवित् क्षत्रिय है और **विट् सूक्तम्** सूक्त वैश्य है **तत्** इस प्रकार (शंसन) से **विशा एव क्षत्रं हन्ति** वैश्य के द्वारा क्षत्रिय के विनष्ट कर देता है।

सा० भा०—निवित्पदानाम्[1] आदौ मध्ये चान्ते च सूक्तं पठेत् तदेतन्निविद्विच्छेदरूपं शंसनम्।।

प्रकारान्तरेणाभिचारं विधत्ते—

(आहावेणाभिचारप्रयोगः)

य उ कामयेतोभयत एनं विशः पर्यवच्छिनदानीत्युभयतस्तर्हि निविदं व्याह्वयीतोभयत एवैनं तद् विशः पर्यवच्छिनत्ति ।।१०।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से अभिचार का विधान कर रहे हैं—) **यः उ कामयेव** जो (होता) कामना करे कि **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **उभयतः** दोनों (मातृपक्ष और पितृपक्ष) ओर की **विशः** (पुत्रादि रूप) प्रजा से **पर्यवच्छिनदानि** परिच्छिन्न (अलग) कर दूँ **तर्हि निविदम् उभयतः** तब निवित् के दोनों ओर **व्यहवयीत** आहाव ('शोंसावोम् मन्त्र) का शंसन करना चाहिए। **तत्** इस (प्रयोग) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **विशः पर्यवच्छिनत्ति** प्रजा से अलग करता है।

सा० भा०—'य उ' यस्तु होतैनं यजमानमुभयतः पूर्वोत्तरभागयोः संबन्धिनीर्विशः प्रजाः 'पर्यवच्छिनदानि' परितो विच्छिन्नाः करवाणीति कामयेत—स्वस्मात् पूर्वभाविन्यः, पितृपितृव्यमातुलादयो याः प्रजाः, स्वस्योत्तरभाविन्यः पुत्रजामात्रादयो याः प्रजाः, तासां सर्वासामवच्छेदं करवाणीत्यर्थः। यद्वा, 'उभयतः' मातृपक्षे पितृपक्षे च विद्यमानानां प्रजानाम-वच्छेदं विरोधं करवाणीत्येवं यो होता यजमानं द्वेष्टि, स होता 'निविदमुभयतः' निविद आदावन्ते च 'व्याह्वयीत' विविधमाहावं कुर्यात्,—आदावपि 'शोंसावोम्' इत्येतमाहाव-मन्त्रं पठेत्। अन्तेऽपि तथा पठेदित्यर्थः। तथा सत्येनं यजमानं पूर्वापरभागयोर्मातृपक्षपितृ पक्षयोश्च प्रजाभिः सहावच्छिनत्ति ॥

---

(१) निवि० २.१-२०।

उक्तविधीनामसांकर्याय व्यवस्थया निगमयति—

इति न्वभिचरतः, इतरथा त्वेव स्वर्गकामस्य ।।११।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त विधियों की असाङ्कर्य के लिए व्यवस्था द्वारा निगमन कर रहे हैं—) **इति नु अभिचरतः** ये विधान अभिचार करने वाले के लिए है। **इतरथा तु** अन्य प्रकार वाला (पूर्वोक्त सूक्त के मध्य में निवित् का प्रयोग) तो **स्वर्गकामस्य** स्वर्ग की कामना करने वाले (यजमान) के लिए है।

सा० भा०—'इति नु' 'यः कामयेत क्षत्रेण' इत्यादुक्त एव प्रकारोऽभिचरतो द्रष्टव्यः। 'इतरथा त' एव प्रकारान्तरं तु, पूर्वोक्तं सूक्तमध्ये निवित्प्रक्षेपरूपं, सोपानारोहणसदृशस्वरोपेतं 'स्वर्गकामस्य' द्रष्टव्यम्।।

अन्तिमया सूक्तगतयर्चा[१] समाप्तिं विधत्ते—

(कर्मसमापनविधानम्)

'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्' इत्युत्तमया परिदधाति ।।१२।।

हिन्दी—(अब उपर्युक्त सूक्त की अन्तिम ऋचा से कर्म के समापन का विधान कर रहे हैं—) 'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्' अर्थात् सुन्दर पंखो वाले पक्षिरूप इन्द्र के पास (ऋषि गये)' **इत्युत्तमया** (सूक्त की) इस अन्तिम (ऋचा) से **परिदधाति** कर्म की समाप्ति करता है।

सा० भा०—वेतेर्धातोर्गत्यर्थस्य 'वयः' इति रूपम्, गमनकुशला इत्यर्थः। अत एव सुपर्णाः पक्षिसदृशाः केचिदिन्द्रं स्वर्गवासिनम्—'उपसेदुः' प्राप्तवन्तः। इति तस्य पादस्यार्थः।।

द्वितीयपादं सुबोधत्वाभिप्रायेण पठति—

'प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः' ।।१३।।

हिन्दी—('वयः सुपर्णा' इस ऋचा के द्वितीय पाद की सुबोधता के अभिप्राय से कह रहे हैं—) 'प्रियमेधा ऋषयो नाधयानाः' अर्थात् मेधा (ग्रन्थ के अवधारण की शक्ति) के प्रेमी ऋषि याचना करते हुए (इन्द्र के समीप) गये—इति यह (ऋचा का द्वितीय पाद है)।

सा० भा०—ग्रन्थतदर्थावधारणशक्तिर्मेधा, सा प्रिया येषामृषीणां ते 'प्रियमेधाः' ऋषयोऽतीन्द्रियार्थद्रष्टारो 'नाधमानाः' किञ्चित्स्वकार्यं याचमानाः, इन्द्रमुपसेदुरिति पूर्वेणान्वयः।।

तृतीयपादस्य पूर्वभागमनूद्य व्याचष्टे—

'अप ध्वान्तमूर्णुहि' इति, येन तमसा प्रावृतो मन्येत, तन्मनसा गच्छेदप हैवास्मात् तल्लुप्यते ।।१४।।

---

(१) ऋ० १०.७३.११।

हिन्दी—(तृतीय पाद के पूर्व भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'अप ध्वान्तमूर्णुहि' अर्थात् (हे इन्द्र) अन्धकार को दूर करो'। **येन तमसा आवृतः मन्येत्** (होता) जिस अन्धकार से अपने को घिरा हुआ समझे, **तद् मनसा गच्छेत्** उसका मन से ध्यान करे। **तस्मात् तत् लुप्यते** इस प्रकार उस (व्यक्ति) से वह (अन्धकार) विनष्ट हो जाता है।

सा॰ भा॰—हे इन्द्र, 'ध्वान्तं' तमोऽपोर्णुहि अपसारय। एतस्मिन् भागे पठिते सति तमो लुप्यते होता येन तमसा प्रावृतश्छादितोऽहमिति मन्येत, 'तत्' तमो 'मनसा गच्छेत्' ध्यायेत्। तमो हि बहुविधम्—दृष्टिनिरोधकमेकं, मोहरूपं द्वितीयं, पापरूपं तृतीयम्। तेषां मध्ये येन स्वस्य बाधः, 'तत्' तम्, एतद्भागपाठकाले विनष्टमिति ध्यायेत्। तथा सति तत्तमोऽस्मात् पुरुषाद्विनश्यत्येव॥

तस्य पादस्योत्तरभागे किञ्चिदनुष्ठानं विधत्ते—

'पूर्धि चक्षुः' इति चक्षुषी मरीमृज्येत् ॥१५॥

हिन्दी—(तृतीय पाद के उत्तरभाग में किसी अनुष्ठान का विधान कर रहे हैं—) **'पूर्धि चक्षुः'** हे इन्द्र दृष्टि को पूर्ण करो' **इति चक्षुषी मरीमृज्येत्** इस (भाग का शंसन करते) समय नेत्रों को पुनः पुनः मलना चाहिए।

सा॰ भा॰—हे इन्द्र, 'चक्षुः पूर्धि' दृष्टि पूरय। एतं भागं पठन् स्वेन हस्तेन चक्षुषी 'मरीमृज्येत' पुनः पुनः शोधयेत्॥

वेदनं प्रशंसति—

आजरसं ह चक्षुष्मान् भवति, य एवं वेद ॥१६॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **आजरसं ह चक्षुमान् भवति** वृद्धावस्था तक दृष्टि से युक्त रहता है।

सा॰ भा॰—आजरसं जरासमाप्तिपर्यन्तम्॥

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्' इति, पाशा वै निधाः मुमुग्ध्यस्मान् पाशादिव बद्धान् इत्येव तदाह ॥१७॥

हिन्दी—(ऋचा के चतुर्थ पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्' अर्थात् (हे इन्द्र) (अन्धकार रूप) पाश से बँधे हुए हम लोगों को मुक्त करो' **इति** यह (ऋचा का चतुर्थ पाद है)। **पाशा वै निधाः** निधा शब्द बन्धन के हेतुभूत पाश का वाचक है। यहाँ **अस्मान् बद्धान्** बन्धन में पड़े हुए हम लोगों को **पाशाद् मुमुग्धि** पाश से मुक्त करो **इत्येव तदाह** यही इस (चतुर्थ पाद) में कहा गया है।

सा० भा०—हे इन्द्र, 'निधयेव' पाशेनेव तमसा 'बद्धान्' अस्मान् मुमुग्धि' मोचय। अस्मिन् पादे निधाशब्देन पाशा बन्धनहेतवो रज्जवो विवक्षिताः। अतो निधयेव बद्धानित्युक्त पाशादिव बद्धानित्युक्तं भवति॥[१]

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) अष्टमः खण्डः ॥८॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के अष्टम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ नवमः खण्डः

सा० भा०—अथ मरुत्वतीयं शस्त्रं तदन्तपठनीयां याज्यां च प्रशंसितुमुपाख्यानमाह—

(मरुत्वतीयशस्त्रस्य तद्याज्यायाः च प्रशंसितुमुपाख्यानम्)

इन्द्रो वै वृत्रं हनिष्यन् सर्वा देवता अब्रवीद्, अनु मोपतिष्ठध्वमुप मा ह्वयध्वमिति, तथेति, तं हनिष्यन् त आद्रवन्, सोऽवेन् मां वै हनिष्यन् त आद्रवन्ति, हन्तेमान् भीषया इति तानभिप्राश्वसीत्, तस्य श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अद्रवन्, मरुतो हैनं नाजहुः, प्रहर भगवो जहि वीरयस्वेत्येवैनमेतां वाचं वदन्त उपातिष्ठन्त ॥१॥

हिन्दी—(अब मरुत्वतीय शस्त्र और उसके अन्त में शंसनीय याज्या की प्रशंसा के लिए उपाख्यान को कह रहे हैं—) **इन्द्रः वै वृत्रं हनिष्यन्** इन्द्र ने वृत्र को मारते हुए **सर्वाः देवताः अब्रवीत्** सभी देवताओं से कहा कि **मा अनु उपतिष्ठध्वम्** तुम लोग मेरे अनुकूल अवस्थित रहो और **मा ह्वयध्वम्** मुझको बुलाओ। **तथा** (तब उन देवताओं ने कहा कि) ठीक है। **ते** वे (देवता) **तं हनिष्यन्** उसको मारने के लिए **आद्रवन्** दौड़ पड़े। **सः** वह (वृत्र) **अवेत्** जान गया कि **ते** वे (देवता) **मां हनिष्यन्** मुझको मारने के लिए **आद्रवन्ति** दौड़ रहे हैं। (तब वृत्र ने) **इमान् भीषायै** इन (देवताओं) को भयभीत करने के लिए **तान् अभिप्राश्वीत्** उन (देवताओं) को अभिलक्षित करके प्रश्वास (फुत्कार) किया। **तस्य** उसके **श्वासथात्** प्रश्वास से **ईषमाणाः विश्वेदेवाः** भयभीत हुए सम्पूर्ण देवता **अद्रवन्** पलायित हो गये किन्तु **मरुतः ह** मरुतों ने निश्चित रूप से **एनम्** इस (इन्द्र) को **न अजहुः** नहीं छोड़ा। **'भगवः** हे भगवन्! **प्रहर** प्रहार करो, **जहि** मारो और

(१) 'निधा पाश्या भवति'—इत्यादि निरु० ४.१.२।

वीरयस्व अपनी वीरता को प्रदर्शित करो'—**इति एतां वाचं वदन्तः** इस प्रकार की वाणी बोलते हुए **एनम् उपातिष्ठन्त** इस इन्द्र के समीप खड़े रहे।

सा० भा०—पुरा कदाचिद् इन्द्रो वृत्रं हन्तुमुद्यतः सर्वा अपि देवताः प्रत्येवमब्रवीत्। अनु मोपतिष्ठध्वमानुकूल्येन मां सेवध्वम्। उप मा ह्वयध्वं वृत्रवधाय प्रवृत्तं मामुपह्वयध्वमनुजानीध्वमीति। ततोऽङ्गीकृत्य सर्वे देवास्तं वृत्रं हन्तुमुद्यता आगच्छन्। तदा स वृत्रो मां हन्तुमुद्यता आद्रवन्तीत्यवेत् स्वमनसा ज्ञातवान्। तत इदं विचारयामास। हन्त सम्यग् जातं देवनिवारणोपायस्य प्रतिभातत्वात्। इमान् देवान् भीषयै, अहं भीतान् करवाणीति विचार्य तान् देवानभिलक्ष्य प्राश्वसीत् प्रश्वासमकरोत्। तस्य वृत्रस्य श्वसथात् प्रश्वासादीषमाणा विधूताः सर्वे देवाः पलायनमकुर्वन्। वृत्रो हि स्वजन्मानन्तरं सर्वासु दिक्षु शरपातमात्रदेशं प्राप्य वृद्धिं गतवान्। तथा चान्यत्र श्रूयते—'स इषुमात्रमिषुमात्रं विष्वङ्ङवर्धत, स इमाँल्लोकानवृणोद्यत् इमाँल्लोकानवृणोत् तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम्'[१] इति। तादृशस्य प्रौढशरीरस्य प्रश्वासः प्रलयकालीनवायुसमानः, अतस्तदीयश्वासेन देवाः परमाणव इव दूरेऽपसारिताः। तदानीं मरुत एवैनमिन्द्रं नाजहुर्न परित्यक्तवन्तः। हे इन्द्र भगवन्, वृत्रं वज्रेण प्रहर तेन प्रहारेण जहि मारय, ततो वीरयस्व स्वकीयं वीरत्वं प्रकटय। इत्यनेनैव प्रकारेणैनमिन्द्रं प्रत्येतां वाचं वदन्तो मरुतस्तमिन्द्रमसेवन्त ॥

उक्तमर्थं मन्त्रसंवादेन द्रढयति—

तदेतदृषिः पश्यन्नभ्यनूवाच—

'वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतनां जयासीति' ॥२॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ को मन्त्र द्वारा दृढ़ कर रहे हैं—) **तद् एतत्** उस सभी को देखतो हुए ऋषि ने **अनूवाच** कहा है—(हे इन्द्र) **श्वसथाद् वृत्रस्य इषमाणाः** वृत्र के प्रश्वास (फुत्कार) से भयभीत हुए **सखायः** तुम्हारे मित्र **विश्वेदेवाः** सम्पूर्ण देवताओं ने **त्वा आजहुः** तुमको छोड़ दिया। अतः **इन्द्रः** (हे इन्द्र)! **मरुद्भिः** मरुतों के साथ **ते सख्यम् अस्तु** तुम्हारी मित्रता होवे। **अथ** इसके बाद **इमा विश्वा पृतना** इन सम्पूर्ण सेनाओं को **जयासि** तुम जीत लोगे।

सा० भा०—कश्चिदृषिर्दिव्यज्ञानेन तदेतद् देवपलायनं पश्यन् 'वृत्रस्य'[२] इत्यादिमंत्रेण प्रकटीचकार। हे इन्द्र, तव सखायो विश्वे देवा ये सन्ति ते सर्वे वृत्रस्य श्वसथात् पलायमानास्त्वां परित्यक्तवन्तः, तस्मादिदानीं ते तव मरुद्भिः सह सख्यमस्तु। अथानन्तरमिमाः सर्वा वृत्रसंबन्धिनीः सेना जेष्यसीति ॥

---

(१) तै०सं० २.४.१२.२।　　(२) ऋ० ८.९६.७।

अथ मरुतामिन्द्रकृतमुपकार दर्शयति—

(मरुतामिन्द्रकृतोपकारप्रदर्शनम्)

सोऽवेदिमे वै किल मे सचिवा, इमे माऽकामयन्त, हन्तेमानस्मिन्नुक्थ आभजा इति, तानेतस्मिन्नुक्थ आभजदथ हैते तर्ह्युभे एव निष्केवल्ये उक्थे आसतुः ।।३।।

हिन्दी—(मरुतों के प्रति इन्द्र द्वारा किये गये उपकार को दिखला रहे हैं—) **सः अवेत्** उस (इन्द्र) ने विचार किया कि **इमे वै किल** ये (मरुद्गण) ही निश्चित रूप से **मे सचिवाः** मेरे सखा हैं; क्योंकि **इमे एव मा अकामयत** इन्होंने ही मेरी कामना किया है। अतः **इमान्** इन (मरुतों) को **अस्मिन् उक्थे** इस (माध्यन्दिगतशस्त्र) में **आभजै** मैं भागीदार बना लूँ। (तब उस इन्द्र ने) **तान्** उन (मरुतों) को **एतस्मिन् उक्थे** निष्केवल्य-शस्त्र में **आसतुः** भागीदार बना लिया। **अथ** इसके बाद **एते उभे** ये दोनों ही **निष्केवल्ये शस्त्रे** निष्केवल्यशस्त्र में **आसतुः** भागीदार हुए।

सा०भा०—स इन्द्रः स्वमनस्यवेद् विचारितवान्। कथमिति, तदुच्यते—'इमे वै किल' पुरतः स्थिता मरुत एव मे मम सचिवाः सखायः। यस्मादिमे मरुतो माऽकायमन्त मामपेक्षितवन्तो न तु मां परित्यज्य गताः, तस्मादस्मत् सखित्वं हन्त सम्यगेभिः कृतमित्यहं दृष्टवानस्मि; तत इमान् मरुतोऽस्मिन्नुक्थे माध्यंदिनगतशस्त्र 'आभजै' भागिनः करवाणीति मनस्येवं विचार्य तथैवाकरोत्। अथानन्तरं तर्हि तदा प्रभृति, 'एते ह' मरुत एव शस्त्रभागिनोऽभूवन्निति शेषः। ततः पूर्वं तु माध्यदिनसवने निष्केवल्यनामके शस्त्रे केवलेन्द्रदेवताके उभे आसतुः। न तु तत्र मरुतां प्रवेश आसीत्। तस्माद् इदानीं प्रवेश इन्द्रकृत उपकारः ॥

इन्द्रेण दत्तान् मरुतां भागान् प्रदर्शयति—

(इन्द्रेण मरुतां प्रदत्तभागप्रदर्शनम्)

मरुत्वतीयं ग्रहं गृह्णाति, मरुत्वतीयं प्रगाथं शंसति, मरुत्वतीयं सूक्तं शंसति, मरुत्वतीयां निविदं दधाति, मरुतां सा भक्तिः ।।४।।

हिन्दी—(इन्द्र द्वारा दिये गये मरुतों के भाग को कह रहे हैं—) **मरुत्वतीयं ग्रहं गृह्णति** (अध्वर्यु) मरुत्वतीय ग्रह को लेता है, **मरुत्वतीयं प्रगाथं शंसति** (होता) मरुत्वतीय प्रगाथ का शंसन करता है, **मरुत्वतीयं सूक्तं शंसति** मरुत्वतीय सूक्त का शंसन करता है और **मरुत्वतीयां निविदं दधाति** मरुत्वतीय निवित् को (सूक्त) में रखता है—**सा मरुतां भक्तिः** वह (इन्द्र द्वारा दिया गया) मरुतों का भाग है।

सा०भा०—मरुतोऽस्य सन्तीति तैः सहितो मरुत्वांस्तदीयं ग्रहमध्वर्युगृह्णाति। होता

'प्र व इन्द्राय बृहते'[1] इत्येतं मरुत्वतीयं प्रगाथं शंसति 'जनिष्ठा उग्रः'[2] इत्यादिकं मरुत्वतीयं शंसति 'इन्द्रो मरुत्वान्' इत्यादिकां मरुत्वतीयां निविदं सूक्ते प्रक्षिपति। ग्रहग्रहणादिसूक्तशंसनान्ते मरुत्संबद्धा सा मरुतां भक्तिर्भागः[3]।।

अथ शस्त्रयाज्यां विधत्ते—

(मरुत्वतीयशस्त्रस्य याज्याविधानम्)

मरुत्वतीयमुक्थं शस्त्वा मरुत्वतीयया यजति, यथाभागं तद्देवताः प्रीणाति ।।५।।

हिन्दी—(अब शस्त्र की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **मरुत्वतीयम् उक्थं शस्त्वा** (होता) मरुत्वतीयशस्त्र का शंसन करके **मरुत्वतीयया यजति** मरुद्देवता वाली (याज्या) से शंसन करता है। **तत्** इससे **देवताः** देवताओं को **यथाभागम्** अपने भाग के अनुसार **प्रीणाति** प्रसन्न करता है।

सा० भा०—उक्थं शस्त्रं तच्छंसनादूर्ध्वं मरुत्वद्देवताकां शस्त्रयाज्यां पठेत्। तेन स्वस्वभागमनतिक्रम्य देवतास्तर्पयति।।

तां मरुत्वतीयां याज्यां दर्शयति—

'ये त्वाऽहिहत्ये मघवन्नवर्धन् ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः[4] इति' ।।६।।

हिन्दी—(मरुत् देवता वाली याज्या को दिखला रहे हैं—) **मघवन्** हे इन्द्र! **अहिहत्ये** वृत्र वध के समय **ये** जिन (मरुतों) ने **त्वा अवर्धन्** तुम्हारा (अनुसरण करके) वर्धन किया, **ये शाम्बरे** जिन (मरुतों) ने शम्बर के वध के समय, **ये गविष्टौ** जिन्होंने (बल द्वारा अपहृत की गयी गायों) के खोजने में (तुम्हारा सहयोग किया) और **ये विप्राः** जो (ऋत्विक् रूप) ब्राह्मण (आज भी) **त्वा नूनम् अनुमदन्ति** तुमको निश्चित रूप से (स्तोत्रों द्वारा) प्रसन्न करते हैं, **इन्द्रः** हे इन्द्र! **मरुद्भिः सगणः** मरुतों के साथ गण-सम्पन्न होकर **सोपं पिब** तुम सोम का पान करो।

सा० भा०—हे इन्द्र, अहिहत्ये वृत्रवधे ये मरुतस्त्वामवर्धन् वर्धितवन्तः। अहिशब्दो वृत्रवाची। 'अहिमाचक्षते वृत्रम्' इति वररुचिवचनात्।[5] शम्बरः कश्चिदसुरः, तत्संबन्धी वधः शाम्बरः। तस्मिन् ये मरुतस्त्वामवर्धन् वर्धितवन्तः इत्यन्वयः। गवामिष्टिरन्वेषणं गविष्टिः। वलो नाम कश्चिदसुरो गुहायामासीत्। 'इन्द्रश्च तस्य बिलमपोर्णोत्' इति श्रुत्य-

---

(१) ऋ० ८.८९.३। (२) ऋ० १०.७३.१।
(३) 'भक्तिः प्रसादलाभः'—इति षड्गुरुशिष्यः। 'भजनप्रकारः' इति भट्टभास्करः।
(४) ऋ० ३.४७.४। (५) निघ० १.१०.२१। निरु० २.१६,१७,१०,४३।

न्तरात्।[१] तेन वलेन गावोऽपहृताः। तासां गवामन्वेषणमिन्द्रसहिता मरुतः कृतवन्तः। 'देवा वै वले गाः पर्यपश्यन्' इति श्रुत्यन्तरात्। तासां गवामन्वेषणे ये मरुतस्त्वाम् अवर्धयन्।[२] तथा ये मरुतो नूनमद्यापि विप्रा ऋत्विग्रूपा भूत्वा त्वामनुमदन्ति स्तोत्रैरनुदिनं हर्षयन्ति; हे इन्द्र तैर्मरुद्भिः सहितस्त्वं सगणो भूत्वा सोमं पिबेति याज्यामन्त्रार्थः॥

एतां याज्यां प्रशंसति—

(याज्यायाः प्रशंसनम्)

यत्र यत्रैवैभिर्व्यजयत यत्र वीर्यमकरोत् तदेवैतत् समनुवेद्येन्द्रेणैनान् ससोमपीथान् करोति ॥७॥

हिन्दी—(इस याज्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र यत्र** जिस जिस (वृत्र हननादि) में **एभिः** इन (मरुतों) के साथ **व्यजयत** (इन्द्र ने) विजय प्राप्त किया, **यत्र वीर्यम् अकरोत्** जिस जिस (युद्धादि) में शौर्य दिखलाया, **तद् एव एतत्** वह यह सभी को **समनुवेद्य** (इन्द्र के लिए) सम्यक् रूप से विज्ञापित करके **इन्द्रेण** इन्द्र के साथ **एनाम् सोमपीथान्** इन (मरुतों) को सोमपान करने वाला **करोति** करता (बनाता) है।

सा० भा०—'यत्र यत्रैव' यस्मिन् यस्मिन् वृत्रवधादिके स इन्द्र एभिर्मरुद्भिर्विजयं प्राप्तः। प्राप्य च 'यत्र यत्र' यस्मिन् यस्मिन्नपि युद्धादौ वीर्यं शौर्यमकरोत् तदेवैतदखिलमिन्द्राय 'समनुवेद्य' सम्यगनुक्रमेण विज्ञाप्येन्द्रेण सहैनाम् मरुतः सोमपानसहितान् करोति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) नवमः खण्डः ॥९॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के नवम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ दशमः खण्डः

सा० भा०—अथ निष्केवल्याख्यं शस्त्रं निधातव्यं तस्य चायं संग्रहश्लोकः—

"स्तोत्रे यो योऽनुरूपश्च धाय्या प्रागाथिकं तथा।
निविद्धानीयसूक्तं च निष्केवल्ये प्रकीर्तितम्" इति ॥

(१) तै०सं० २.१.५.१।
(२) 'ये च गविष्टौ बृहस्पतेर्गोषु बलेनापहृतासु देवशुन्या सरमयेन्द्रप्रेषितया बलपुरे दृष्टासु त्वया तदन्वेषणे क्रियमाणे त्वामवर्धयन्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

तदर्थमादावुपाख्यानमाह—

(निष्केवल्यशस्त्रविधानम्)

(तत्र निष्केवल्यशस्त्रविधातुमुपाख्यानम्)

इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा सर्वा विजितीर्विजित्याब्रवीत् प्रजापतिमहमेतदसानि यत्त्वमहं महानसानीति स प्रजापातिरब्रवीद्-अथ कोऽहमिति यदेवैतद-वोच इत्यब्रवीत्, ततो वै को नाम प्रजापतिरभवत्, को वै नाम प्रजापतिर्यन्महानिन्द्रोऽभवत् तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम् ।।१।।

हिन्दी—(अब निष्केवल्यशस्त्र का विधान करने के लिए पहले उपाख्यान को कह रहे हैं—) **इन्द्रः वै** इन्द्र ने **वृत्रं हत्वा** वृत्र को मार कर और **सर्वाः विजितीः विजित्य** सभी जीतने योग्य (भूमि) को विजित करके **प्रजापतिम् उवाच** प्रजापति से कहा—(हे प्रजापति)! **यत् त्वम्** जो तुम हो **अहम् एतद् असानि** मैं वह (महान्) हो जाऊँ, **अहं महान् असानि** मैं महान् हो जाऊँ। तब **सः प्रजापतिः अब्रवीत्** उस प्रजापति ने (इन्द्र) से कहा—**अथ कः अहम्** तो मैं कौन हूँ? (तब इन्द्र ने) **'यद् एव एतद् अवोचत्** जो यह तुमने (कः) कहा है, वही हो जाओ' **इति अब्रवीत्** इस प्रकार कहा। **ततः** तब से **प्रजापतिः** प्रजापति **कः नाम अभवत्** 'क' नाम वाले हो गये। **यत् कः वै नाम प्रजापतिः** जो 'क' नाम वाले प्रजापति हैं, वे **महान् इन्द्रः अभवत्** इन्द्र महान् हो गये। **तद् महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम्** वही महेन्द्र का महेन्द्रत्व (महेन्द्र नाम वाला होना) है।

सा० भा०—इन्द्रः पुरा वृत्रं हत्वा सर्वा विजितीर्जेतव्या[१] भूमीर्विजित्य प्रजापतिमिद-मब्रवीत्। हे प्रजापते, त्वमिदानीं यदसि, एतदहमिति परमसानि भवानि। किं तदिति वीक्षायां विशेषाकारेणोच्यते—अहं महानसानि सर्वेभ्यो भूतेभ्योऽधिकः पूज्यो भवानीति। ततः स प्रजापतिरिदमब्रवीत्। मदीये महत्त्वे त्वया स्वीकृते सत्यनन्तरमहं को नाम भविष्यामीति। तत इन्द्र इदमब्रवीत्। हे प्रजापते, स्वात्मनमुद्दिश्य निवेदनेन क इति यदेवैतदवोचस्तदेव त्वं भवेति। तत् आरभ्य क इत्येतन्नामवान् प्रजापतिरभूत्। एतत्कशब्दवाच्यत्वं सर्वत्र प्रसिद्धम्। अत एव श्रुत्यन्तरेषु प्रतिग्रहमन्त्रब्राह्मण एवमाम्नायते—'क इदं कस्मा अदादित्याह, प्रजापतिर्वै कः प्रजापतय एव तद् ददातीति'[२]। कशब्दस्य सुखवाचित्वात् तेन प्रजापते-र्व्यवहारे सति सुखी प्रजापतिरित्युक्तं भवति। प्रजापतिगतं महत्त्वं स्वीकृत्येन्द्रो यस्मान्महान-भवत् तस्मान् महेन्द्रनाम संपन्नम्। श्रुत्यन्तरेऽप्येतदाम्नातम्—'इन्द्रो वृत्रमहन् तं देवा अब्रुवन् महान् वा अयमभूद् यो वृत्रमवधीदिति तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम्'[३] इति।।

अथेन्द्रस्य महत्त्वप्रसक्तं सत्कारविशेषं दर्शयति—

---

(१) 'विजीतीः विजयप्रकारान्'—इति भट्टभास्करः। (२) तै०ब्रा० २.२.५.५।
(३) तै०सं० ६.५.५.३। 'को ह वै नाम प्रजापतिः'—इति तै०ब्रा० २.८.१०।

(इन्द्रस्य सत्कारविशेषप्रदर्शनम्)

स महान् भूत्वा देवता अब्रवीदुद्धारं म उद्धरतेति, यथाऽप्येतर्हीच्छति, यो वै भवति यः श्रेष्ठतामश्नुते, स महान् भवति, तं देवा अब्रुवन्, स्वयमेव ब्रूष्व यत् ते भविष्यतीति, स एतं माहेन्द्रं ग्रहमब्रूत माध्यंदिनं सवनानां, निष्केवल्यमुक्थानां त्रिष्टुभं छन्दसां, पृष्ठं साम्नां, तमस्मा उद्धारमुदहरन् ।।२।।

हिन्दी—(अब इन्द्र के सत्कार-विशेष को कह रहे हैं—) **सः महान् भूत्वा** वह (इन्द्र) महान् होकर **देवताः अब्रवीत्** देवताओं से कहा–**मे उद्धारम् उद्धरत** मेरे सत्कारभाग को अलग करो। **यथा** जिस प्रकार (लोक में) **यः वै भवति** जो ऐश्वर्य को प्राप्त करता है और **यः श्रेष्ठताम् अश्नुते** जो श्रेष्ठता को प्राप्त करता है, **सः महान् भवति** वह महान् होता है। **एतर्हि अपि इच्छति** वह अब भी जैसी इच्छा करता है वैसे ही (मेरा सत्कार अलग करो)। **तं देवाः अब्रुवन्** उस (इन्द्र) से देवताओं ने कहा कि **यत् ते भविष्यति** जो तुम्हें (प्रिय) होगा, **स्वयमेव ब्रूष्व** उसे तुम स्वयं ही बतलाओ। तब **सः** उस (इन्द्र) ने **एतं माहेन्द्रं ग्रहम् अब्रूत** (ग्रहों में) इस महेन्द्र सम्बन्धी ग्रह को (अपना प्रिय) बतलाया तथा **सवनानां माध्यन्दिनम्** सवनों में माध्यन्दिनसवन को; **उक्थानां निष्केवल्यम्** शस्त्रों में निष्केवल्यशस्त्र को, **छन्दसां त्रिष्टुभम्** छन्दों में त्रिष्टुप् छन्द को और **साम्नां पृष्ठम्** सामों में पृष्ठ नामक साम को (अपना प्रिय बतलाया)। (तब देवताओं ने) **अस्मै** इस (इन्द्र) के लिए **तम् उद्धारम्** उस (माहेन्द्र ग्रह इत्यादि) सत्कार को **उदहरन्** अलग कर दिया।

सा० भा०—'सः' इन्द्रः, उक्तप्रकारेण महत्त्वं प्राप्य देवताः प्रत्येतदब्रवीत् —हे देवा उद्धारमुत्कर्षं निमित्तीकृत्य यः पुंसा पूजाविशेषो ह्रियते संपाद्यते सोऽयं सत्कार उद्धारः[१], तं सत्कारभागं 'मे' मदर्थमुद्धरत पृथक्कुरुतेति। यथेत्यादिना लौकिकदृष्टान्त उच्यते—'यो वै भवति' यः पुमान् भवत्यैश्वर्यं प्राप्नोति। यश्च 'श्रैष्ठतां' विद्याचारादि-प्रयुक्तवैशिष्ट्यमश्नुते। स प्राप्तैश्वर्यो विशिष्टश्च सर्वेषां मध्ये महान् भवति। स तादृशः पुरुष एतर्ह्यपीदानीमपि यथा विशिष्टपूजारूपं भागमिच्छति तथाऽयमिन्द्रोऽपीत्यध्याहारः। तमुद्धारेच्छावन्तमिन्द्रं देवा ग्रहाणां मध्ये 'एतं' माहेन्द्रं ग्रहमब्रूत, तथा सवनानां मध्ये माध्यदिनं सवनम्, शस्त्राणां मध्ये निष्केवल्यं शस्त्रं, छन्दसां मध्ये त्रिष्टुभं, साम्नां मध्ये 'पृष्ठ', पृष्ठस्तोत्रनिष्पादकं बृहद्रथंतरवैरूपादिकम्।[२] ततो देवा अस्मा इन्द्राय तमुद्धारं माहेन्द्रग्रहादिकं यज्ञादुदहरन्। तदेतच्छाखान्तरेऽप्याम्नातम्—'स एतं माहेन्द्रामुद्धारमुदहरत

---

(१) 'सर्वेभ्यो भागेभ्यो य उद्ध्रियते ज्येष्ठाय दातुं सोऽधिकोंऽश उद्धारो नाम'–इति भट्टभास्करः।

(२) बृहद्, रथन्तरम्, वैरूपम, वैराजम्, शाक्वरम्, रैवतञ्चेति षट्। पृष्ठानीन्द्रस्य निष्केवल्यानि'— इति च ता०ब्रा० ७.८.५।

वृत्रं हत्वाऽन्यासु देवतास्वधीति यन्माहेन्द्रो गृह्यत उद्धरमेव तं यजमान उद्धरतेऽन्यासु प्रजास्वधि'[१] इति ॥

वेदनं प्रशंसति—

उदस्मा उद्धारं हरन्ति य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्मै** इस (ज्ञाता) के लिए वे **उद्धारम् उद्हरन्ति** अभीष्ट सत्कार को निश्चित प्रदान कर देते हैं।

सा० भा०—उद्धारभागं दत्तवतां देवानां तस्मिन्नुद्धारे स्वापेक्षितभागप्रार्थनां दर्शयति—

(उद्धारे देवानां स्वापेक्षितमात्रप्रार्थना)

तं देवा अब्रुवन्, सर्वं वा अवोचथा, अपि नोऽत्रास्त्विति, स नेत्य-ब्रवीत्, कथं वोऽपि स्यादिति, तमब्रुवन्नप्येव नोऽस्तु मघवन्निति, तानीक्षतैव ।।४।।

हिन्दी—(उद्धार भाग देते हुए देवताओं के द्वारा उस उद्धार में अपने अपेक्षितभाग के लिए की गयी प्रार्थना को दिखला रहे हैं—) **तं देवाः अब्रुवन्** उस (इन्द्र) से देवताओं ने कहा कि (हे इन्द्र)! **सर्वं वै अवोचथ** तुमने (अपने विषय में) सब कुछ कह दिया। **अपि अत्र नः अस्तु** किन्तु इसमें हम लोगों के लिए भाग होना चाहिए। **सः न इति अब्रवीत्** उस (इन्द्र) ने (अस्वीकार करते हुए) कहा कि नहीं। **कथं वः अपि स्यात्** कैसे तुम लोगों के लिए होना चाहिए। तब **तम् अब्रुवन्** उस (इन्द्र) से (देवताओं) ने कहा कि **मघवन्** हे इन्द्र! **नः अप्यस्तु** हम लोगों के लिए भी होना चाहिए। **तान् ईक्षत एव** (तब इन्द्र ने) उन (देवताओं) को (अनुग्रह की दृष्टि से) ही देखा।

सा० भा०—उद्धारयुक्त तमिन्द्रमितरे देवा इदमब्रुवन्। हे मघवन्निन्द्र सर्वमेव यज्ञं स्वसंबन्धित्वेनोक्तवानसि, अस्माकमप्यत्र सारो भागोऽस्त्विति। ततः स इन्द्र एवमब्रवीत्। अयं सारः सर्वोऽपि ममैवापेक्षितो युष्माकमप्यत्र भागः कथं स्यान्नास्त्येव युष्माकं भाग इति। निराकृतवन्तं तमिन्द्रं देवाः प्रार्थयमाना इदमब्रुवन्। हे मघवन्नोऽस्माकमप्यस्त्वेव सर्वथा भागोऽपेक्षित एवेति। ततः स इन्द्रस्तान् देवानीक्षतैवानुग्रहदृष्ट्याऽवलोकितवानेव॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) दशमः खण्डः ॥१०॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के दशम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) तै०सं० ६.५.५.३.४।

अथ एकादशः खण्डः

सा० भा०— अथ निष्केवल्यशस्त्रे याज्यां विधातुं पूर्वोपाख्यानशेषं प्रस्तौति—

(निष्केवल्यशस्त्रे याज्याविधातुमुपाख्यानावशेषप्रदर्शनम्)

ते देवा अब्रुवन्नियं वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नामास्यामेवेच्छामहा इति, तथेति, तस्यामैच्छन्त, सैनानब्रवीत्, प्रातर्वः प्रति वक्तास्मीति, तस्मात् स्त्रियः पत्याविच्छन्ते, तस्मादु स्त्र्यनुरात्रं पत्याविच्छते, तां प्रातरुपायन्, सैतदेव प्रत्यपद्यत ।। १ ।।

हिन्दी—(अब निष्केवल्यशस्त्र में याज्या का विधान करने के लिए पूर्वोक्त आख्यान के अवशिष्ट भाग के दिखला रहे हैं—) **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने कहा कि **प्रासहा नामा** प्रासहा नाम वाली **इन्द्रस्य प्रिया वावाता जाया** इन्द्र की प्रिय मध्यम जाति वाली पत्नी है। **अस्याम् एव इच्छामहे** हम लोग इसी से अपनी इच्छा को कहें। **तथा** ठीक है (इस प्रकार परस्पर स्वीकार करते देवताओं ने) **तस्याम् ऐच्छन्त** उस (प्रासहा) से अपनी इच्छा को कहा। **सा एनान् अब्रवीत्** उस (प्रासहा) ने इन (देवताओं) से कहा कि **प्रातः वः प्रति वक्ता अस्मि** मैं प्रातःकाल तुम लोगों के लिए प्रत्युत्तर दूँगी। **तस्मात् स्त्रियः पत्यौ इच्छन्ते** इसी कारण (लोक में) स्त्रियाँ (रात्रि में) पति से (सब कुछ) जानना चाहती हैं। **तस्मादु स्त्री अनुरात्रं पत्यौ इच्छते** इसी कारण रात्रि में स्त्री पति से (एकान्त में सब कुछ) जानना चाहती है। **तां प्रातः उपायन्** उस (प्रासहा नामक इन्द्रपत्नी) के पास प्रातःकाल (देवता लोग) आये। **साः एतद् एव प्रतिपद्यत** उस (प्रासहा) ने (देवताओं से) यह (मन्त्र) प्रत्युत्तर में कहा।

सा० भा०—ते देवा इन्द्रस्याभिप्रायमजानन्तः परस्परमिदमब्रुवन्—'इयं वै' पुरतो दृश्यमानैवेन्द्रस्य 'प्रिया जाया' सा 'वावाता' मध्यमजातीया। राज्ञां हि त्रिविधाः स्त्रियः—तत्रोत्तमजातेर्महिषीति नाम। मध्यमजातेर्वावातेति। अधमजातेः परिवृक्तिरिति[१] । अत एवाश्वमेधेऽश्वं प्रति राजस्त्रीणां कर्तव्यविशेष एतैर्नामभिराम्नातः—'भूरिति महिषी भुव इति वावाता सुवरिति परिवृक्तिः'[२] इति । तस्याश्च वावातायाः प्रासहेति नाम, राजप्रियत्वात्। प्रसह्य बलात्कारेण सर्वं कार्यं कर्तुं शक्तेत्यर्थः। तस्मादेतस्यामेव निमित्तभूतायां सत्यां

(१) 'चतस्रो जाया उपक्लृप्ता भवन्ति—महिषी, वावाता, परिवृक्ता, पालागली, सर्वा निष्किण्योऽलङ्कृता मिथुनस्यैव सर्वत्वाय। ताभिः सहाग्न्यागारं प्रपद्यते, पूर्वया द्वारा यजमानो दक्षिणया पत्न्यः'—इति शत०ब्रा० १३.४.१.८। 'वावाता भोग्यां न तु व्यूढा'–इति भट्टभास्करः।

(२) तै०ब्रा० ३.९.४.५।

राजाभिप्रायं ज्ञातुमिच्छामहा इति विचार्य, तमभिप्रायं सर्वेऽङ्गीकृत्य, 'तस्यां' वावातायां स्वाभीष्टमैच्छन्त। 'सा' अपि वावाता 'एतान्' देवान् इदमब्रवीत्। रात्रौ राजाभिप्रायं विचरयितुं शक्यत्वात् परेद्युः प्रातःकाले वो युष्माकं प्रत्युत्तरं वक्तास्मि वक्ष्यामीति। यस्मादेवं तस्माँल्लोकेऽपि प्रियाः स्त्रियः सर्वमवगन्तव्यं वृत्तान्तं पत्याववेगन्तुमिच्छन्ते।[१] यस्माद् विविक्तावसरे सर्वमवगन्तुं सुशकं 'तस्मादु' तस्मादेव कारणात् प्रिया स्त्री, 'अनुरात्रं' रात्रिसमये विविक्तवेलायां पत्यौ सर्वमवगन्तुमिच्छते। देवास्तु प्रातःकाले वावातामुपागच्छन्। 'सा' वावाता 'एतदेव' वक्ष्यमाणमन्त्ररूपं वाक्यं प्रत्युत्तरत्वेन प्राप्तवती॥

तस्मिन् मन्त्रे[२] पादत्रयं पठति—

(याज्यायाः मन्त्रस्तद् व्याख्यानञ्च)

'यद् वावान पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्' इति ॥२॥

हिन्दी—(प्रासहा द्वारा कथित मन्त्र के तीन पादों को कह रहे हैं—) **पुराषाढा वृत्रहा इन्द्रः** पुरातन पुरुषों में सहिष्णु और वृत्र को मारने वाले इन्द्र ने **यद् पुरुतमं वावान** जिस अत्यधिक (उद्धाररूप वस्तु) को सम्यक् प्रकार से प्राप्त किया और **नामानि आप्राः** (माहेन्द्र ग्रह इत्यादि अपने) नामों को सभी ओर से पूरित किया। **प्रासहस्पतिः तुविष्मान् अचेति** प्रभूत बलों के स्वामी और प्रभूत धन वाले (इन्द्र) ने (देवताओं की इच्छा को समझ लिया)।

सा० भा०—पुरातनानां पुरुषाणां मध्ये सहिष्णुः पुरुष इन्द्रः[३] स व पुरुतममतिशयेन प्रभूतं यदुद्धारितरूपं वस्तु 'वावान', आदौ दीर्घश्छान्दसः, 'वावान' सम्यग्भेजे लब्धवानित्यर्थः। स च वृत्रहेन्द्रः तस्मिन्नुद्धारे 'नामानि, आ प्रा' माहेन्द्रग्रहो माध्यंदिनमित्यादीनि स्वाभीष्टनानानि 'आ' समन्तात् पूरितवान्। प्रकृष्टं सहो बलं येषां ते प्रासहाः, तेषां पतिः-प्रासहस्पतिरिन्द्रः, 'अचेति' अजानाद् देवानामभीष्टं ज्ञातवान् कटाक्षेणानुगृहीतवानित्यर्थः। स चेन्द्रः 'तुविष्मान्' बहुधनवान्॥

अस्मिस्तृतीयपादे पादयोरप्रसिद्धत्वादर्थं व्याचष्टे—

इन्द्रो वै प्रासहस्पतिस्तुविष्मान् ॥३॥

---

(१) यस्मादेवं प्रासहा स्वयमेवेन्द्राभिप्रायं निश्चेतुं शक्ता हि रात्रौ पत्युर्मुखादेव श्रुत्वा प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मि—इत्यब्रवीत्, न तु स्वयमेव तदभिप्रायमाविष्कृतवती तस्मादिदानीमपि सर्वाः स्त्रियः पत्याववेच्छन्ते पतिमुखादेव तदभिप्रायं ज्ञातुमिच्छन्ति ज्ञातमप्यर्थं तमेव पृच्छन्ति'—इति भट्टभास्करः।

(२) ऋ० १०.७४.६।

(३) 'स विष्णुः 'पुराषाद्' इन्द्रः'—इति वा पाठः।

हिन्दी— **इन्द्रः वै** इन्द्र ही **प्रासहस्पतिः तुविष्मान्** प्रभूत बलों के स्वामी और प्रभूत धन से सम्पन्न हैं।

चतुर्थ पादमनूद्य व्याचष्टे—

'यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तद्' इति यदेवैतदवोचामाकरत्तदित्येवैनां-स्तदब्रवीत्।।४।।

हिन्दी—(ऋचा के चतुर्थ पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं-) 'यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तद्' अर्थात् (ववाता का कथन है कि) हे देवो! हम जो करवाना चाहते हैं (इन्द्र ने) उस सभी को पूर्ण कर दिया है' **इति यद् एव एतद् अवोचाम्** इस प्रकार जो कुछ लोगों ने कहा **तद् आकरत्** वह उन्होंने किया है—**इत्येव** यही **एनान्** इन (देवताओं) से **अब्रवीत्** उस प्रकार (उस वावाता ने) कहा है।

सा०भा०—पादत्रयोक्तं वावातायाः वचनं श्रुत्वा चतुर्थपादेनं देवाः परस्परं ब्रुवते। 'यदि, ईं' यदिदमस्माकमप्यत्र भागोऽस्त्वित्येतादृशं कार्यं 'कर्तवे' कर्तुमुश्मसि वयं सर्वे कामयामहे 'तत् सर्वं करत्' इन्द्रः संपूर्णमकरोत्। अथवा चतुर्थपादोऽपि वावाताया एव वचनम्। हे देवाः, वयं सर्वे यदिदं कार्यं कर्तुं कामयामहे तद् युष्मद् भागप्रदानरूपं कार्यमिन्द्रोऽकरोदिति। इदमेव द्वितीयं व्याख्यानं यदेवैतदित्यादिब्राह्मणेन स्पष्टीकृतम्। हे देवाः मया सह युष्माभिरालोचितं कार्यमिन्द्रः कृतवानित्यनेनैव प्रकारेण तस्मिन् मन्त्रे सा वावाताऽब्रवीत्।।

उपाख्यानशेषं दर्शयति—

ते देवा अब्रुवन्नप्यस्या इहास्तु या नोऽस्मिन्न वै कमविददिति, तथेति, तस्या अप्यत्राकुर्वन्।।५।।

हिन्दी—(उपाख्यान के अवशिष्ट भाग को कह रहे हैं—) **ते देवाः अब्रुवन्** तब उन देवतओं ने परस्पर कहा कि **अस्याः अपि इह अस्तु** इस (वावाता) का भी इसमें (भाग) होना चाहिए; क्योंकि **या** जो (वावाता) **अस्मिन्** इस (निष्केवल्यशस्त्र) में **नः** हमारा (उपकार करने वाली है उसने) **कं न अविदत्** कुछ भी नहीं पाया। **तथा इति** ठीक है, (इस प्रकार स्वीकार करते हुए देवताओं ने) **तस्याः अपि** उस (वावाता) का भी **अत्र अकुर्वन्** इस (निष्केवल्यशस्त्र) में भाग कर दिया।

सा०भा०—ते देवा वावाताया उत्तरं श्रुत्वा परस्परमिदमब्रुवन्। वावाता नोऽस्माकमुपकारिणी, 'अस्मिन्' निष्केवल्ये शस्त्रे 'कम्' अपि संबन्धं 'न वा अविदत्' नैव लब्धवती। अस्या अपि वावाताया इह निष्केवल्ये शस्त्रे संबन्धोऽस्तु। 'इति' एतदङ्गीकृत्य तस्या अप्यत्र संबन्धमकुर्वन् ।।

इदानीं धाय्यां विधत्ते—

तस्मादेषाऽत्रापि शस्येत 'यद्वावान पुरुतमं पुराषाळिति ।।६।।

हिन्दी—(अब धाय्या का विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **अत्र अपि** इस (निष्केल्यशस्त्र) में भी **'यद्वावान् पुरुतमं पुराषाट्'** **इति एषा** यह (ऋचा) **शस्यते** (धाय्या के रूप से) शंसित की जाती है।

सा० भा०—यस्माद् वावातायाः संबन्धः कृतः, तस्मात्कारणाद् यद्वावानेत्येषापि ऋक् 'अत्र' निष्केवल्यशस्त्रे धाय्यात्वेन शंसनीया।।[१]

अस्या ऋचो वक्त्री येन्द्रस्य जायोक्ता तत्प्रशंसाबुद्धिस्थं कंचित्प्रयोगं विधत्ते—

सेना वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नाम; को नाम प्रजापतिः श्वशुरस्तद्याऽस्य कामे सेना जयेत्, तस्या अर्धात् तिष्ठंस्तृणमुभयतः परिच्छिद्येतरां सेनामभ्यस्येत्–'प्रासहे कस्त्वा पश्यतीति', तद्यथैवादः स्नुषा श्वशुराल्लज्जमाना निलीयमानेत्येवमेव सा सेना भज्यमाना निलीयमानैति, यत्रैवं विद्वांस्तृणमुभयतः परिच्छिद्येतरां सेनामभ्यस्यति 'प्रासहे कस्त्वा पश्यतीति' ।।७।।

हिन्दी—प्रासहा नाम वाली **इन्द्रस्य प्रिया जाया** इन्द्र की प्रिय पत्नी **वावाता सेना वै** मध्यम कुलोत्पन्न सेना ही है। **कः नाम प्रजापतिः श्वसुरः** 'क' नाम वाले प्रजापति (इस सेना के) श्वसुर हैं। **तत्** तो **'अस्य सेना जयेत'** इसकी सेना विजयी हो कामे (ऐसी) कामना होने पर **तस्याः अर्धात्** उस सेना की आधी दूरी पर **तिष्ठन्** खड़े होकर और एक तिनके को लक्ष्य करके (बाण के समान यह कहते हुए) फेंक दे कि **'प्रासहे कः त्वा पश्यति** हे प्रासहे। (तुम्हारे श्वसुर) प्रजापति तुमको देख रहे हैं। **तद्यथैव** तो जिस प्रकार (लोक में) **अदः स्नुषा** एक वधू **श्वसुरात् लज्जमाना** श्वसुर से लज्जा करती हुई, तथा **निलीयमाना** अपने को छिपाती हुई **एति** चली जाती है **एवमेव सा सेना** इसी प्रकार वह (शत्रु की) सेना **भज्यमाना निलीयमाना एति** भागती हुई और (यत्र तत्र) छिपती हुई चली जाती है। **यत्र** जिस (युद्ध) में **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला **तृणम् उभयतः परिच्छिद्य** तिनके को दोनों किनारों से काटकर **इतरां सेनाम् अभ्यस्यति** अन्य (शत्रु) की सेना को अभिलक्षित करके (यह कहते हुए) फेक देता है कि **'प्रासहे कः त्वा पश्यति** हे प्रासहे! प्रजापति तुमको देख रहे हैं।

सा० भा०—पूर्वत्रास्येन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नामेति यैवमुक्ता, सेयं लोकव्यावहारे 'सेना वै' युद्धार्थोद्यतसेनारूपेण वर्तते इन्द्रजायायाः सेनाभिमानित्वात्। तच्च

---

(१) 'यद्वावानेति धाय्या'—इति आश्व०श्रौ० ५.१५.२१।

शाखान्तरे समाम्नातम्—'इन्द्राणी वै सेनाया देवता'[1] इति। 'को नाम' क इत्यनेन नाम्ना युक्तः प्रजापतिः, तस्या इन्द्रजायायाः श्वशुरः प्रजापतेरिन्द्रोत्पादकत्वात्। तथा चान्यत्र श्रूयते—'प्रजापतिरिन्द्रमसृजतानुजावरं देवानाम्'[2] इति। तत्तथा सति, अस्य लौकिकस्य पुरुषस्य युद्धार्थिनो या स्वकीया सेना जयत्विति कामो भवति। एतस्मिन् कामे सति स पुमांस्तस्याः स्वकीयायाः सेनाया अर्धात् तिष्ठन्नर्धभागेऽतीते भूमाववस्थितः किंचित् तृणमध्य आदाय मूलतोऽग्रत उभयतः परिच्छिद्येतरां परकीयां सेनामभिलक्ष्यास्येत्, बाणवत् क्षिपत्। तत्रायं मन्त्रः—'प्रासहे कस्त्वा पश्यति' इति। हे प्रासहाख्ये, इन्द्रजाये, 'कः' प्रजापतिः त्वदीयः श्वशुरः, 'त्वां' चक्षुषा पश्यति। अनेन मन्त्रेण तृणे क्षिप्ते सति परसेनाया भङ्गे दृष्टान्त उच्यते। 'तत्' तस्मिन् विवक्षितार्थे 'यथैवादः'[3] निदर्शनं भवति, तथा कथयामः—अनूचानानामीशानां वा गृहेषु युवतिः स्नुषा स्वकीयं श्वशुरं दृष्ट्वा तस्माल्लज्जमाना लज्जां प्राप्नुवती 'निलीयमाना' वस्त्रावगुण्ठनहस्ताद्यङ्गसंकोचेन तिरोहितवसना 'एति' गृहाभ्यन्तरमागच्छति। एवमेव 'सा' परकीया सेनाऽभिमन्त्रिततृणरूपास्त्रप्रक्षेपेण 'भज्यमाना'[4] सती तत्र तत्रारण्यपर्वतादिषु 'निलीयमाना' तिरोहिता सती स्वकीयं देशमेति। कुत्रायमितरसेनाभङ्गः? इत्याशङ्क्य 'यत्रैवम्'—इत्यादिना पूर्वोक्त एवार्थः स्पष्टीकृतः॥

प्रासङ्गिकं परिसमाप्य प्रकृतमनुसरति—

तान् इन्द्र उवाचापि वोऽत्रास्त्विति; ते देवा अब्रुवन्–विराड् याज्यास्तु निष्केवल्यस्य या त्रयस्त्रिंषदक्षरा ।।८।।

हिन्दी—(अब प्रासङ्गिकता को छोड़कर प्रकृत कथन का अनुसरण कर रहे हैं—) **तान् इन्द्रः उवाच** उन (देवताओं) से इन्द्र ने कहा कि (हे देवताओ!) **अत्र** इस (निष्केवल्यशस्त्र) में **वः अपि अस्तु** तुम लोगों के लिए भी भाग मिले। तब **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवतओं ने कहा कि **निष्केवल्यस्य** निष्केवल्यशस्त्र की **या त्रयस्त्रिंशदक्षरा विराट्** जो ('पिबा सोमम्') तैंतीस अक्षरों वाला विराट् छन्द है, वह **याज्या अस्तु** याज्या होवे।

सा० भा०—वावाताया वचनेनेन्द्रसमीपं प्रति देवेष्वागतेषु 'तान्' देवान् इन्द्र एव-

---

(१) तै०सं० २.२.८.१। द्र० 'इन्द्राणी देवी सुभाग सुपत्नी, उदंशेन पतिविद्ये जिगाय त्रिंशदस्या जघनं योजनानि, उपस्थ इन्द्रं स्थविरं बिभर्ति। सेना ह नाम पृथिवी धनञ्जया, विश्वव्यचा अदितिः सूर्यत्वक्। इन्द्राणी देवी प्रासहा ददाना, सा नो देवी सुहवा शर्म यच्छतु॥—इति द्वे ऋचौ, तै०ब्रा० २.४.२.७।

(२) तै०ब्रा० २.२.१०। तै०सं० ६.६.११.२; ७.२.१०.२;२.३.४.२।

(३) अदः अधुना'—इति भट्टभास्करः।

(४) 'भज्यमाना नश्यत्परिकरा' इति भट्टभास्करः 'ताड्यमाना'—इति षड्गुरुशिष्यः।

मुवाच युष्माकमप्यत्र निष्केवल्येऽपेक्षितो भागोऽस्त्विति। ततो देवाः 'त्रयस्त्रिंशदक्षरा' विराट्छन्दस्कां 'पिबा सोमम्'[१] इत्येतां याज्यां प्रार्थितवन्तः॥

तां याज्यां प्रशंसति—

(याज्याप्रशंसनम्)

त्रयस्त्रिंशद् वै देवा अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशाऽऽदित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च; देवता अक्षरभाजः करोत्यक्षरमक्षरमेव तद्देवता अनुप्रपिबन्ति, देवपात्रेणैव तद्देवतास्तृप्यन्ति ।।९।।

हिन्दी—(उस याज्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अष्टौ वसवः** आठ वसुगण, **एकादश रुद्राः** ग्यारह रुद्रगण, **द्वादश आदित्याः** बारह आदित्यगण, **प्रजापतिः च वषट्कारः च** प्रजापति और वषट्कार—ये **त्रयस्त्रिंशत् देवाः** ये तैंतीस देवता हैं। **देवताः अक्षरभाजः करोति** इन देवताओं को अक्षरों में (विराट्छन्द के अक्षरों और देवताओं की संख्या में समानता के कारण) सम्मिलित देता है। **तद् अक्षरम् अक्षरम् अनु** उन अक्षर-अक्षर को अनुसरण करते हुए **देवताः प्रपिबन्ति** देवता प्रकृष्ट रूप से (सोम का) पान करते हैं। **तत्** इस (प्रयोग) से **देवतापात्रेण** (अक्षररूपी) देवपात्र से **देवताः तृप्यन्ति** देवता लोग तृप्त होते हैं।

सा० भा०—एतद् वाक्यं पूर्वत्रैव व्याख्यातम्। यद्यप्यस्या याज्यायास्त्रयस्त्रिंशदक्षराणि साक्षान्न दृश्यन्ते, तथाऽपि संयोगाक्षरादिविभागेन संख्या पूरणीया। ततो देवसाम्यात् प्रत्यक्षरमेकैकदेवतातृप्तिः सिध्यति॥

अथाभिचारप्रयोगं विधत्ते—

(याज्यायाः अभिचारप्रयोगः)

यं कामयेतानायतनवान् स्यादित्यविराजाऽस्य यजेद् गायत्र्या वा त्रिष्टुभा वाऽन्येन वा छन्दसा वषट्कुर्याद्नायतनवन्तमेवैनं तत्करोति ।।१०।।

हिन्दी—(अब याज्या के अभिचार-प्रयोग को कह रहे हैं—) **यम् कामयेत** जिस (यजन करने वाले) को (होता) कामना करे कि **अनायतनवान् स्यात्** यह (गृहादि) आश्रय से विहीन होवे तो वह **अस्य** इस (यजमान) का **अविराजा यजेत्** विराट् छन्द वाली (ऋचा) से याज्या न करे तथा **गायत्र्या वा त्रिष्टुभा वा अन्येन वा छन्दसा** गायत्री, त्रिष्टुप् अथवा अन्य छन्द वाली (ऋचा) से **वषट्कुर्यात्** वषट्कार करे। **तत्** इस (प्रयोग) से **एनम्** इस (यजमान) को **अनायतनवन्तम् करोति** आश्रय से विहीन कर देता है।

(१) ऋ० ७.२२.१।

सा० भा०—आयतनमाश्रयो गृहादिरस्यास्तीति 'आयतनवान्' तद्विपरीतो यजमानोऽस्त्विति कामयमानो होता विराड्व्यतिरिक्तगायत्र्यादिच्छन्दोयुक्तां याज्यां पठित्वा तदन्ते वषट्कुर्यात्।[१] तथा सत्यायतनहीनो यजमानो भवति॥

उक्तार्थव्यतिरेकं विधत्ते—

(अभिचारप्रयोगव्यतिरेकविधानम्)

यं कामयेताऽऽयतनवान् स्यादिति विराजाऽस्य यजेत्, पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वेत्येतयाऽऽयतनवन्तमेवैनं तत्करोति[२] ।।११।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अभिचार के व्यतिरेक का विधान कर रहे हैं—) **यं कामयेत** जिस (यजमान) को (होता) कामना करे कि **आयतनवान् स्यात्** यह आश्रय से सम्पन्न होवे तो **अस्य** इस (यजमान) की **विराजा** विराट् छन्द वाली (ऋचा) **'पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा** अर्थात् हे इन्द्र! सोम का पान करो यह तुमको आनन्दित करे—**'इति एतया'** इस से **यजेत्** याज्या करे। **तत्** इस (प्रयोग) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **आयतनवन्तं करोति** आश्रय-स्थान से सम्पन्न करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) एकादशः खण्डः ॥११॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के एकादश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वादशः खण्डः

सा० भा०—'स्तुतमनुशंसति'[३] इतिविधिबलेन निष्केवल्यशस्त्रस्य स्तोत्रपूर्वकत्वाद् बुद्धिस्थस्य साम्न आश्रयत्वेन तृचं विधातृमाख्यायिकामाह—

(निष्केवल्यशस्त्रात्पुरस्तात्स्तोत्रियसाम्नस्तृचविधानम्)

(तत्र सामस्वरूपप्रशंसनम्)

ऋक्च वा इदमग्र साम चाऽऽस्तां, सैव नाम ऋगासीदमो नाम साम, सा वा ऋक्सामोपावदन्–मिथुनं संभवाव प्रजात्या इति;

---

(१) 'वषटकुर्याद् यजेदित्यर्थः'। यागस्यासमीचीनतां ख्यापयितुं यजेदिति नोक्तम्। विराड्व्यतिरिक्तेन केनचिच्छन्दसा वषट्कारमात्रमिव कुर्यादित्यर्थः'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वेति याज्या'—इति आश्व०श्रौ० ५.१५.२३।

(३) ता०ब्रा० ९.८.१०।

नेत्यब्रवीत् साम ज्यायान् वा अतो मम महिमेति; ते द्वे भूत्वोपावदतां; ते न प्रतिचन समवदत; तास्तिस्रो भूत्वोपावदंस्तत् तिसृभिः समभवद्, यत्तिसृभिः समभवत्, तस्मात् तिसृभिः स्तुवन्ति, तिसृभिरुद्गायन्ति, तिसृभिर्हि साम संमितं, तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति, नैकस्यै बहवः सह पतयो यद्व तत्सा सामश्च समभवतां, तत्सामाभवत्, तत्साम्नः साम्नत्वम् ।।१।।

हिन्दी—**अग्रे** (ऋक् और साम के मेल के) पहले **ऋक् च साम च** (छन्दोबद्ध) ऋक् और (गेयात्मक) साम—ये दोनों **आस्ताम्** अलग-अलग थे। **सा एव नाम ऋग्** ऋक् 'सा' नाम वाला तथा **अमः साम** साम 'अम' नाम वाला था। **सा वै ऋक्** उस ऋक् ने **साम उपावदन्** साम के समीप आकर कहा कि **प्रजात्यै** सन्तानोत्पत्ति के लिए **मिथुनं संभवावः** हम दोनों परस्पर मिथुन (स्त्रीपुरुष) हो जावे। **साम नेति अब्रवीत्** साम ने कहा-नहीं; क्योंकि **मम महिमा** मेरा महत्व **अतः ज्यायान्** एव तुमसे अधिक है। **ते द्वे भूत्वा** (साम के बराबर होने के लिए) वे (ऋचाएँ) दो होकर **उपावदताम्** उसी प्रकार (मिथुन बनाने के लिए साम से) बोलीं। **ते प्रतिचन** उन दो (ऋचाओं) के प्रति **न समवदत** (मिथुन बनाने के लिए साम) तैयार नहीं हुआ। तब **ताः तिस्रः भूत्वा** वे ऋचाएँ तीन होकर **उपावदन्** (मिथुन बनाने के लिए) बोलीं। **तत् तिसृभिः सह समभवत्** तब (वह साम) तीन (ऋचाओं) के साथ संयोग किया। **यत् तिसृभिः समभवत्** जो तीन (ऋचाओं) के साथ (साम ने) संयोग किया, **तस्मात्** इसी कारण **तिसृभिः स्तुवन्ति** तीन (ऋचाओं) के द्वारा (सामगायक) स्तुति करते हैं, अर्थात् **तिसृभिः उद्गायन्ति** तीन ऋचाओं से उद्गातृ गान करते हैं; क्योंकि **तिसृभिः हि साम सम्मितः** तीन ऋचाओं के साथ साम संवृत हुआ। **तस्मात्** इसी कारण (लोक में भी) **एकस्य बहुशः जाया भवन्ति** एक (सामस्थानीय पुरुष) की अनेक (ऋक्स्थानीय) पत्नियाँ होती हैं। **एकस्यै** एक पत्नी के लिए **बहवः पतयः** बहुतेरे पति **न सह** सहमत नहीं होते। **यद्वै तत्** इस प्रकार जो **सा च अमः च** सा (नाम वाला ऋक्) और अम (नाम वाला साम) **सम-भवताम्** संयुक्त हुए **तत् साम अभवत्** वह साम हुआ। **तत् साम्नः सामत्वम्** वही साम का सामत्व (साम नाम वाला) होना है।

सा० भा०—यत् 'इदम्' इदानीमृगाश्रितं सामोभयमेलनरूपमधीयते, तदिदमग्रे मेलनात् पुरा ऋगक्षरपदरूपा पृथग्भूता, साम च गीतिरूपं पृथग्भूतम्,—इत्येवं द्वे अपि पृथगेवाऽऽस्तां तयोः परस्परमेलनयोग्यतां प्रदर्शयितुमस्मिन्नेव सामनाम्न्यन्तर्भावः प्रदर्श्यते। सामेति नाम्नि यदेतत् सेति पूर्वमक्षरं, तदेवैकं नाम, तन्नामवाच्या, ऋगासीत्। अम इत्येकं नाम तद्वाच्यं सामाऽऽसीत्। अतो मेलनयोग्यतायां सत्यां सैव ऋक्, साम प्रत्युपावदत्

समीपमागत्योक्तवती। आवामुभे मिथुनं यथा भवति तथा संभवाव। तच्च संभवनं प्रजोत्पत्त्यर्थमिति। तदुक्तं साम निराकरोत् स्वाभिप्रायं चावदत्—अतोऽस्माद्दृङ्महिम्नो 'ज्यायान्' अभ्यधिको 'मम' साम्नो महिमा; तस्माद् विवादश्च विवाहश्च तुल्ययोरिति न्यायविरोध इति। ततः साम्ना स्वस्य तुल्यत्वसिद्धये ते ऋचौ द्वे संभूयोपेत्य पूर्ववदुक्तवत्यौ। चनेत्यक्षरद्वयात्मको निपातोऽपिशब्दार्थः[१]। ते द्वे ऋचौ प्रत्यपि साम 'न समवदत' संवादमङ्गीकारं नाकरोत्। पुनस्ता ऋचस्तिस्रो भूत्वोपेत्य पूर्ववदुक्तवत्यः। तदानीं ताभिस्तिसृभिः 'समभवत्' संभवनं संयोगमकरोत्। यस्मात् संयोगः संभूतः, तस्मात् समयुक्ताभिस्तिसृभिर्ऋग्भिः सामगाः 'स्तुवन्ति' यज्ञे स्तोत्रं कुर्वन्ति। तस्यैव व्याख्यानं—'तिसृभिरुद्गायन्ति' इति। औद्गात्रं कर्म कुर्वन्तीत्यर्थः। अत एव शाखान्तरे श्रूयते—'एकं साम तृचे क्रियते स्तोत्रियम्' इति। यद्यपि च्छन्दःसामनामके ग्रन्थ एकस्यामृचि सामोत्पन्नं तथाऽप्युत्तराख्ये ग्रन्थ आम्नातेषु तृचेषु प्रयोगकाले साम गातव्यम्। तत्र प्रथमायामृचि योनिरूपायां यत्सामोत्पन्नं छन्दःसामग्रन्थे सामाम्नातम्,[२] तदवलोक्य तत्सादृश्येन द्वितीयतृतीययोर्ऋचोर्गानं समूहनीयम्।[३] एतदपि शाखान्तरे विहितम्—'यद्योन्यां तदुत्तरयोर्गायति' इति। तस्मादौद्गात्रं कर्म तिसृभिर्ऋग्भिर्निष्पद्यते। यस्मादाख्यानोक्तप्रकारेण तिसृभिर्ऋग्भिः 'साम संमितं'[४] साम्न एकस्य महिमा तुल्यः संवृतः, तस्माल्लोकेऽप्येकस्य पुरुषस्य समास्थानीयस्य बह्व्यो जाया ऋक्स्थानीया भवन्ति, न तु विपर्ययेणैकस्याः स्त्रिया 'बहवः' पतयः परस्परैकमत्येन 'सह'[५] वर्तमान दृश्यन्ते। यस्मादृगाक्षरपदादिरूपा सेत्यनेन शब्देनाभिधेया साम चामशब्देनाभिधेयं सत्पश्चादुभयं संयुक्तं सत्सामाभवत् तस्मादेकोभयात्मकवस्तुनः सामनाम संपन्नम्[६]॥

उक्तार्थवेदनं प्रशंसति—

---

(१) पा०सू० ८.१.५७। अमरकोश ३.४.३।

(२) गेयारण्यगानग्रन्थयोरेकं नाम छन्दस्सामेति वेदसामेति च राणायनशाखाध्येतृणाम्।

(३) तथाविधगानानि ऊहोह्ययोर्द्रष्टव्यानि, तादृशगानसमूहात्मकावेव हि तौ गानग्रन्थौ। तयोः पौरुषेयत्वं च, अत एव मीमांसायां सिद्धान्तितम् (जै०न्या०वि० ९.२.१.१-२)।

(४) 'संमानं संश्लेषः'—इति षड्गुरुशिष्यः। 'संमितं निर्वर्तितम्'इति भट्टभास्करः।

(५) सह पतय इत्यत्र सहग्रहणं किमर्थमुच्यते। पर्यायेण बहवः पतयो यथा स्युरिति। तथाहि—'दत्तामपि हरेत् कन्यां श्रेयांश्चेद् वर आव्रजेत्' (याज्ञ० ३.६५)—इति श्रेयसोऽन्यस्य वरस्य लाभे वाग्दत्ताया अक्षतयोन्याश्च पूर्वपतित्यागेनान्यं पतिमिच्छन्ति। तथा प्राजापत्यं वचनम्—'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवेऽथ पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते'—इति। तस्मात् सह बहवः पतयो न स्युरिति प्रतिपादनार्थं सह ग्रहणम्। एवं स्थिते 'तस्मान्नैका द्वौ पती विन्दते'—इति या श्रुतिः, 'न द्वितीयो हि साध्वीनां क्वचिद् भर्तोपदिश्यते' (अनु० ५.१६२)—इति या च स्मृतिः, तत् सर्वं सहाभिप्रायं वेदितव्यम्'—इति भट्टभास्करः।

(६) 'साम सम्मितमृचा। अस्यतेर्वा। ऋचा समं मेन इति नैदानाः'—इति निरु० ७.१२।

सामन् भवति य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ के ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सामन् भवति** साम (सभी के द्वारा अभ्यर्हित) के समान हो जाता है।

सा० भा०—ऋक्सामयोरेकत्ववेदिता यः, स सर्वैरभ्यर्हितैः सदृशा१ भवति।।

लौकिकवृतान्तोदहरणेनापि सामस्वरूपं प्रशंसति—

यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते, स सामन् भवत्यसामन् य इति हि निन्दन्ति ।।३।।

हिन्दी—(लौकिकवृत्तान्त के उदाहरण द्वारा साम के स्वरूप की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः वै भवति** जो ऐश्वर्य से सम्पन्न होता है, और **यः श्रेष्ठताम् अश्नुते** जो श्रेष्ठता को प्राप्त करता है, **सः सामन् भवति** वह साम (सभी द्वारा अभ्यर्हित अथवा समदृष्टि वाला) होता है तथा **यः असामन्** जो असामन् (असमान दृष्टि वाला) होता है, **इति हि निन्दन्ति** उसकी सभी लोग निन्दा करते हैं।

सा० भा०—यः पुमान् भूतिमैश्वर्यं प्राप्नोति, यश्च विद्यावृत्ताभ्यां श्रेष्ठत्वं प्राप्नोति, स सर्वोऽपि सामन् भवति सर्वेषु स्वकीयत्वबुद्ध्या समदृष्टिर्भवति।[२] अन्यथा सर्वे जनास्तम् 'असामन् यः' पक्षपातीति निन्दन्ति।[३] अतः सामान्यरूपस्य[४] लोके प्रशस्तत्वाद् अत्राप्यक्षर-पाठस्य गानस्य चैकत्वेन सामत्वं प्रशस्तमित्यर्थः।।

नन्वस्त्वेवं सामत्वं निष्केवल्यशस्त्रे किमायातमित्याशङ्क्य सामसादृश्येन शस्त्रप्रशंसां दर्शयति—

(सामसादृश्येन निष्केवल्यशस्त्रप्रशंसा)

ते वै पञ्चान्यद् भूत्वा पञ्चान्यद् भूत्वा कल्पेताम्–आहावश्च हिंकारश्च प्रस्तावश्च प्रथमा च ऋगुदगीथश्च मध्यमा च प्रतिहारश्चोत्तमा च निधनं च वषट्कारश्च ।।४।।

हिन्दी—(अब साम की सदृशता से निष्केवल्यशस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ते वै** वे दोनों (आहाव इत्यादि शस्त्र के अवयव) रूप में **पञ्च अन्यद् भूत्वा पञ्च अन्यद्**

(१) 'स सामन् साम्नि साधुर्निपुणतरो भवति'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'सामन् सामन्यः पूज्यः'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(३) 'यो ह्युक्तगुणरहितो निन्द्यः पुरुषः तं खलु विद्वांसोऽसामन्योऽयमिति निन्दन्ति गर्हन्ते। साम्नि साधुः सामन्यः तत्र साधुरिति यत्। अत एव ज्ञायते सामन् भवति इत्यत्रापि सामविषयं साधुत्वमेवाभिप्रेतमिति'—इति भट्टभास्करः।

(४) 'साभान्यरूपस्य' इति वा पाठः।

भूत्वा एक पाँच संख्या वाला होकर और दूसरा पाँच संख्या वाला होकर **कल्पेताम्** अपने व्यापार में समर्थ होते हैं—(१) **आहावः च हिङ्कारः च** (शोंसामोम् यह) आहाव और (उद्गाता द्वारा पढ़ा जाने वाला) हिङ्कार (२) **प्रस्तावः च प्रथमा च ऋक्** प्रस्तोता द्वारा गेय सामावयव प्रस्ताव और प्रथमा ऋचा (३) **उद्गीथः च मध्यमा च** उद्गाता द्वारा गेय उद्गीथ और द्वितीय ऋचा (४) **प्रतिहारः च उत्तमा च** (प्रतिहर्ता द्वारा गेय) प्रतिहार और अन्तिम ऋचा (५) **निधनं च वषट्कारः च** (सभी के द्वारा अन्त में गाये जाने वाला) (सभी सामगायकों द्वारा गये) निधन और (याज्या के अन्त में शंसन किया जाने वाला) वषट्कार।

सा० भा०—'ते वै' त एव वक्ष्यमाणाः आहावादयः शस्त्रावयवाः पञ्चसंख्याका 'अन्यत्' पृथगेव शस्त्ररूपं भूत्वा वर्तन्ते। ते च शस्त्रसामनी स्वावयवोपेते उभे 'कल्पेतां' स्वव्यापारसमर्थे भवतः। 'आहावः' शोंसावोमिति मन्त्रः। स्तोत्रिये तृचे 'प्रथममध्यमोत्तमाः' तिस्र ऋचः। याज्यान्ते पठितव्यो 'वषट्कारः'—तदेतत्पञ्चकं शस्त्रस्वरूपम्। उद्गात्रा पठितव्यः साम्न आदौ हिमित्येवंशब्दो 'हिङ्कारः'। प्रस्तोत्रा गातव्यः सामावयवः 'प्रस्तावः' उद्गात्रा गातव्य 'उद्गीथः'। प्रतिहर्त्रा गातव्यः 'प्रतिहारः'। अन्ते सर्वैर्गातव्यो भागो 'निधनम्'—तदेतत्पञ्चकं स्तोत्रस्वरूपम्।[1] अतः सामसादृश्येन निष्केवल्यशस्त्रं प्रशस्तम्॥

प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण प्रशंसनम्)

ते यत्पञ्चान्यद् भूत्वा पञ्चान्यद् भूत्वा कल्पेतां, तस्मादाहुः पाङ्क्तो यज्ञः, पाङ्क्ताः पशव इति ॥५॥

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) **ते** वे दोनों **यत् पञ्च अन्यद् भूत्वा पञ्च अन्यद् भूत्वा** जो पाँच एक और पाँच दूसरा होकर **कल्पेताम्** अपने-अपने व्यापार में समर्थ होते हैं **तस्मात्** इसी कारण **पाङ्क्तः यज्ञः** यज्ञ पाँच संख्या वाला है और **पाङ्क्ताः पशवः** पशु पाँच संख्या वाले हैं–**इति आहुः** ऐसा कहा जाता है।

सा० भा०—यस्मात् सामशस्त्रयोरुक्तप्रकारेण प्रत्येकं पञ्चावयवत्वं संपन्नम्, 'तस्मात्' पञ्चानां पङ्क्त्या योगादयं यज्ञः पाङ्क्तः इत्येवं ब्रह्मवादिन आहुः। तथा गवादिपशवोऽपि चतुर्भिः पादैर्मुखेन च योगात् पाङ्क्ताः। अतो यज्ञपाङ्क्तत्वप्रसिद्धिसंवादनात् पशुसाम्याच्च शस्त्रं प्रशस्तम्॥

---

(१) 'प्रस्तावोद्गीथप्रतिहारोपद्रवनिधनानि भक्तयः। तत्पाञ्चविध्यम्'—इतिः 'ओङ्कारहिङ्काराभ्यां साप्तविध्यम्'—इति, 'अवसानं पूर्वं प्रस्तावः' इत्यारभ्य 'निधनं पर्वं सामान्त्यम्' इत्यन्तश्च पञ्चविधसूत्रग्रन्थो द्रष्टव्यः, समालोच्याः च छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मणस्य २.१-२१ खण्डाः।

पुनः प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

यदु विराजं दशिनीमभि समपद्येतां तस्मादाहुर्विराजि यज्ञो दशिन्यां प्रतिष्ठित इति ।।६।।

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) **यदु** जो **विराजं दशिनीम् अभि** विराट् छन्द के (दश अक्षरों से सम्पन्न) दशक को अभिलक्षित करके (दो पञ्चकों वाले शस्त्र और स्तोत्र) **समपद्येताम्** समान संख्या वाले हो जाते हैं **तस्मात्** इसी कारण **दशिन्यां विराजि** दश अक्षरों वाले विराट् छन्द में **यज्ञः प्रतिष्ठितः** यज्ञ प्रतिष्ठित है—**इति आहुः** ऐसा ब्रह्मवेता कहते हैं।

सा० भा०—'दशाक्षरा विराट्'[1] इति श्रुत्यन्तराद् दशानामक्षराणां समूहो 'दशिनी'[2]। या विराडस्ति, तामभिलक्ष्य पञ्चकद्वयात्मके शस्त्रसामनी 'समपद्येतां' समभवतः विराट्-सदृशे जाते इत्यर्थः। 'यदु' यस्मादेव कारणात् संख्यया विराट्सादृश्यं तस्मादभिज्ञा एव-माहुः,—दशसंख्योपेतायां शस्त्रसामरूपायां विराजि यज्ञो 'प्रतिष्ठितः' व्यवस्थित इति।।

पुनरपि गृहस्थपुरुषसादृश्येन शस्त्रं प्रशंसति—

(गृहस्थपुरुषसादृश्येन प्रशंसनम्)

आत्मा वै स्तोत्रियः, प्रजाऽनुरूपः, पत्नी धाय्या, पशवः प्रगाथो, गृहाः सूक्तम् ।।७।।

हिन्दी—(पुनः गृहस्थ व्यक्ति की समानता से शस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **आत्मा वै स्तोत्रियः** (सामगायकों द्वारा) स्तुति किया जाने वाला (तृच) गृहस्थ व्यक्ति की आत्मा (शरीर) रूप; **प्रजाः अनुरूपः** द्वितीय तृच प्रजा (पुत्रादि) रूप, **पत्नी धाय्या** (शस्त्र में प्रक्षेप की जाने वाली) धाय्या पत्नीरूप, **पशवः प्रगाथः** प्रगाथ पशुरूप तथा **गृहाः सूक्तम्** सूक्त गृहरूप है।

सा० भा०—येन तृचेन सामगाः स्तुवन्ति, सः 'स्तोत्रियाः' तृचो निष्केवल्यशस्त्रस्य प्रारम्भे शंसनीयः। स च 'आत्मा वै' गृहस्थशरीरस्थानीय एव। स्तोत्रियं तृचमनु द्वितीयो यस्तृचः शस्यते, सोऽयम् 'अनुरूपः'। स च 'प्रजा' पुत्रपौत्रादिस्थानीयः। येयं 'धाय्या' शस्त्रे प्रक्षेपणीया, सा पत्नीस्थानीया। यः 'प्रगाथः', स पशुस्थानीयः। यन्निविद्धानीयं 'सूक्तं' तद्गृहस्थानीयम् ।।

एतद् वेदनं प्रशंसति—

---

(१) तै०सं० ५.२.३। ता०ब्रा० ६.८.४; ८.५.१३; शत०ब्रा० १.१.१.१२ इत्यादि।

(२) दशपरिमाणवतीम्। दश 'परिमाणम् अस्या इति शन् शतोडिनिः इति डिनिः'—इति भट्टभास्करः।

स वा अस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्च प्रजया च पशुभिश्च गृहेषु वसति, य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, **सः वै** वह निश्चित रूप से **अस्मिन् अमुष्मिन् च लोके** इस लोक और परलोक में **प्रजया पशुभिः च** प्रजा और पशुओं के साथ **गृहेषु वसति** गृहों में निवास करता है।

सा० भा०—पशुभिश्च सहिता इति शेषः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (द्वादशाध्याये) द्वादशः खण्डः ।।१२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के द्वादश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ त्रयोदशः खण्डः

सा० भा०—अथ निष्केवल्यशस्त्रभागाः स्वरविशेषाश्च वक्तव्याः—

तत्र प्रथमभागं विधत्ते—

(स्तोत्रियसामविधानम्)

स्तोत्रियं शंसति, आत्मा वै स्तोत्रियः ।।१।।

हिन्दी—(निष्केवल्यशस्त्र के भागों और स्वर-विशेग का विधान करने के लिए पहले शस्त्र के प्रथम भाग का विधान कर रहे हैं—) **स्तोत्रियं शंसति** स्तोत्रिय तृच का शंसन करता है; क्योंकि **आत्मा वै स्तोत्रियः** स्तोत्रिय (तृच) (गृहस्थ की) आत्मा (शरीर) स्थानीय है।

सा० भा०—'अभि त्वा शुर नोनुमः' इत्यस्मिन् प्रगाथे तृचं संपाद्य सामगाः स्तुवन्ति,[१] सोऽयं स्तोत्रियस्तृचः, तमादौ[२] शंसेत्। तस्य गृहस्थदेहस्वरूपत्वं पूर्वमेवोक्तम्।।

तस्मिन् स्तोत्रिये स्वरविशेषं विधत्ते—

तं मध्यमया वाचा शंसति, आत्मानमेव तत्संस्कुरुते ।।२।।

हिन्दी—(उस स्तोत्रिय तृच स्वरविशेष का विधान कर रहे हैं—) **तं मध्यमया वाचा शंसति** उस (स्तोत्रिय तृच) का मध्यम स्वर (वाणी) से शंसन करता है। **तत्** इस (शंसन) से **आत्मानमेव संस्कुरुते** अपनी आत्मा (शरीर) को ही संस्कारित करता है।

(१) द्र० सायणकृता सामवेदभाष्योपक्रमणिका पृ० ८८।

(२) यस्मिस्तृचे छन्दोगाः स्तुवते स तृचः सत्रादि स्तोत्रियः। स्तोत्रियतृचसमानच्छन्दः-प्रमाणलिङ्गदेवतार्षस्तृचोऽनुरूपः।

सा० भा०—अत्युच्चत्वमतिनीचत्वं च यस्यां वाचि नास्ति, सा 'मध्यमा'[१] तया। यावता 'वाचा' ध्वनिना देवयजनदेशस्थाः शृण्वन्ति, न तद्बहिर्देशस्थाः, तावन्तं ध्वनिं कुर्यात्। तेन 'आत्मानमेव' देहमेव संस्कुरुते॥

तृचान्तरं विधत्ते—

(अनुरूपसामविधानम्)

अनुरूपं शंसति, प्रजा वा अनुरूपः ॥३॥

हिन्दी—(अन्य तृच का विधान कर रहे हैं—) **अनुरूपं शंसति** (स्तोत्रिय तृच के समान) अनुरूप का शंसन करता है। **प्रजा वै अनुरूपः** क्योंकि (गृहस्थ शरीर की) प्रजा अनुरूप है।

सा० भा०—स्तोत्रियेण तृचेन सदृशतृचोऽनुरूपः। स चात्र 'अभि त्वा पूर्वपीतये इन्द्रस्तोमेभिरायवः' इत्येष प्रगाथः[२]। उभयोः[३] प्रगाथयोः समानच्छन्दस्त्वात् समान-देवताकत्वाच्चानुरूपत्वम्।[४] तमिमं तृचं शंसेत्। तस्य च पुत्रादिप्रजास्थानीयस्यानुरूपत्व-मपेक्षितं पितृपुत्रयोः कुलशीलादिना समानरूपत्वात्॥

तस्य ध्वनिविशेषं विधत्ते—

स उच्चैस्तरामिवानुरूपः शंस्तव्यः, प्रजामेव तच्छ्रेयसीमात्मनः कुरुते ॥४॥

हिन्दी—(अनुरूप के शंसन में स्वरविशेष का विधान कर रहे हैं—) **सः अनुरूपः** वह अनुरूप **उच्चैस्तराम् इव** अत्यधिक ऊँची ध्वनि के समान **शंसव्यः** शंसनीय होता है। **तत्** इस शंसन से **प्रजाम् एव आत्मनः श्रेयसीम् कुरुते** अपनी सन्तान को अपने से अधिक ऊँचा बनाता है।

सा० भा०—स्तोत्रियध्वनेरप्यधिकं ध्वनिः कुर्यात्। तथा सति स्वस्मादाधिक्यं पुत्रादौ संपादितं भवति॥

ततो यद् वावानेत्येतस्याः[५] धाय्यायाः शंसनं विधत्ते—

(धाय्यायाः शंसनविधानम्)

धाय्यां शंसति, पत्नी वै धाय्या ॥५॥

---

(१) 'यां दीक्षितविमितदेशस्था एव शृण्वन्ति सा मध्यमा वाक्'-इति भट्टभास्करः।
(२) उ०आ० ७.३.१.१-२।
(३) 'अभि त्वा शूर'-इति स्तोत्रीयस्य, 'अभि त्वा पूर्वपीतये'—इत्यनुरूपस्य चेत्यर्थः। द्र० आश्व०श्रौ०सू० ५.१५.१-३।
(४) द्र० ता०ब्रा० ११.६.४-६। प्रथमस्य स्तोत्रीयस्यैव सञ्ज्ञान्तरं प्रतिपदिति—ता०ब्रा० ६.९.१;१२.१.१ द्र० सा०भा०।
(५) ऋ० १०९.७४.६। द्र० आश्व०श्रौ० ५.१५.२१।

हिन्दी—(तदनन्तर धाय्या के शंसन का विधान कर रहे हैं—) **धाय्यां शंसति** धाय्या का शंसन करता है। **पत्नी वै धाय्या** धाय्या ही (गृहस्थ की) पत्नी-स्थानीय है।

सा० भा०—पत्नीत्वं पूर्वमेवोक्तम्॥

स्वरविशेषं विधत्ते—

सा नीचैस्तरामिव धाय्या शंस्तव्या ।।६।।

हिन्दी—(धाय्या के शंसन में स्वर-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **सा धाय्या** वह धाय्या **नीचैस्तराम् इव** अत्यन्त निम्न ध्वनि से **शंसतव्या** शंसनीय होती है।

सा० भा०—अत्यन्तनीचो ध्वनिः कर्तव्यः[१]॥

होतुरेतद्वेदनं प्रशंसति—

अप्रतिवादिनी हास्य गृहेषु पत्नी भवति, यत्रैवं विद्वान् नीचैस्तरां धाय्यां शंसति ।।७।।

हिन्दी—(होता के इस ज्ञान की प्रशंसा का रहे हैं—) **यत्र** जहाँ **एतद् विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **शंसति** शंसन करता है, **अस्य गृहेषु** इस (यजन करने वाले) के घर में **पत्नी अप्रतिवादिनी भवति** पत्नी (पति के) प्रतिकूल वचन कहने वाली नहीं होती है।

सा० भा०—पत्युः प्रतिकूलं वदतीपि 'प्रतिवादिनी' तद्विपर्ययेणानुकूलवादिनी भवति॥

'पिबा सुतस्य रसिनः'[२] इत्येतं प्रगाथं विधत्ते—

(प्रगाथस्वरविधानम्)

प्रगाथं शंसति ।।८।।

हिन्दी—(अब 'पिबा सोममिन्द्र' इस प्रगाथ का विधान कर रहे हैं—) **प्रगाथं शंसति** (होता) प्रगाथ का शंसन करता है।

तत्र स्वरविशेषं विधत्ते—

स स्वरवत्या वाचा शंस्तव्यः, पशवो वै स्वरः, पशवः प्रगाथः, पशूनामवरुद्ध्यै ।।९।।

हिन्दी—(प्रगाथ के शंसन में स्वरविशेष का विधान कर रहे हैं—) **सः** वह (प्रगाथ) **स्वरवत्या वाचा** स्वरयुक्त वाणी द्वारा **शंसतव्यः** शंसनीय होता है; क्योंकि **पशवः वै स्वरः** पशु ही स्वर-स्वरूप हैं और **पशवः प्रगाथः** पशु प्रगाथ रूप है। अतः **पशूनाम्**

---

(१) यां दीक्षितविमितस्थानस्था अपि न शृण्वन्ति सा नीचतरा वाक्'-इति भट्टभास्करः।
(२) उ०आ० ६.२.१६.१-२।

अवरुद्ध्यै पशुओं की प्राप्ति के लिए (स्वरयुक्त शंसन करना चाहिए)।

सा०भा०—'स्वरवत्या'[1] स्वरयुक्तया वाचेत्यर्थः। प्रगाथस्य पशुत्वं पूर्वमुक्तम्। स्वरस्य पशुत्वं संख्यासाम्यात्, चत्वारः स्वराः, पशवोऽपि चतुष्पदाः॥

निविद्धानीयां[2] पञ्चदशर्चं सूक्तं विधत्ते—

(निविद्धानीयपञ्चदशर्चसूक्तविधानम्)

'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्' इति सूक्त[3] शंसति ॥१०॥

हिन्दी—(अब पन्द्रह ऋचाओं वाले निविद्धानीय सूक्त का विधान कर रहे हैं–) **'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्'** अर्थात् इन्द्र के पराक्रमयुक्त कर्मों को कहूँगा'—**इति सूक्तं शंसति** इस (निविद्धानीय) सूक्त का शंसन करता है।

तदेतत्प्रशंसति—

तद्वा एतत् प्रियमिन्द्रस्य सूक्तं निष्केवल्यं हैरण्यस्तूपम्, एतेन वै सूक्तेन हिरण्यस्तूप आङ्गिरस इन्द्रस्य प्रियं धामोपागच्छत्, स परमं लोकमजयत् ॥११॥

हिन्दी—(इस सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तद्वा एतत्** यह **इन्द्रस्य प्रियं निष्केवल्यं सूक्तम्** इन्द्र का प्रिय निष्केवल्य वाला सूक्त **हैरण्यस्तूपम्** हिरण्यस्तूप ऋषि द्वारा दृष्ट है। **एतेन वै सूक्तेन** इसी सूक्त द्वारा **आङ्गिरसः हिरण्यस्तूपः** अङ्गिरा के पुत्र हिरण्यस्तूप ने **इन्द्रस्य प्रियं धाम** इन्द्र के प्रिय धाम को **उपागच्छत्** प्राप्त किया था और **सः** उस (हिरण्यस्तूप ने) **परमं लोकम्** परमलोक को **अजयत्** जीत लिया था।

सा०भा०—यदेतद् 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्' इति निष्केवल्यशस्त्रं सूक्तं, तदेतदिन्द्रस्य प्रियम्; हिरण्यस्तूपनाम्ना महर्षिणा दृष्टत्वाद् 'हैरण्यस्तूपं' तदेव 'एतेन' इत्यादिना स्पष्टीक्रियते। अङ्गिरसः पुत्रो हिरण्यस्तूपाख्यो मुनिरेतेनैव सूक्तेनेन्द्रं स्तुत्वा तदीयं स्थानं प्राप्य ततोऽप्युतमं लोकमजयत्॥

वेदनं प्रशंसति—

उपेन्द्रस्य प्रियं धाम गच्छति, जयति परमं लोकं य एवं वेद॥१२॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **उपेन्द्रस्य प्रियं धाम** इन्द्र के प्रिय धान को **गच्छति** जाता (प्राप्त करता) है और **परमं लोकं जयति** उससे भी परमलोक के **जयति** प्राप्त करता है।

---

(१) त्रैस्वर्यवती वाक् सरस्वती'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'इन्द्रस्य नु वीर्याणीत्येतस्मिन्नेन्द्री निविदं दध्यात्'–इति आश्व०श्रौ० ५.१५.२२।

(३) ऋ० १.३३.१-१५।

सूक्ते ध्वनिविशेषं विधत्ते—

(सूक्ते स्वरविशेषविधानम्)

गृहा वै प्रतिष्ठा सूक्तं, तत्प्रतिष्ठिततमया वाचा शंस्तव्यं; तस्माद् यद्यपि दूर इव पशूँल्लभते, गृहानेवैनानाजिगमिषति; गृहा हि पशूनां प्रतिष्ठा, प्रतिष्ठा ।।१३।।

हिन्दी—(इस सूक्त के शंसन में स्वर विशेष का विधान कर रहे हैं—) **गृहा वै प्रतिष्ठा** यह सूक्त गृह और प्रतिष्ठा रूप है। **तत् प्रतिष्ठिततमया वाचा** अतः प्रतिष्ठिततम (द्रुतविलम्बित इत्यादि दोष से रहित) वाणी से **शंस्तव्यम्** शंसनीय होता है। **तस्मात्** इसी कारण **यद्यपि दूरे इव पशून् लभते** यद्यपि चरने के लिए गये हुए पशुओं को (दिन में) दूर ही प्राप्त करता है। **तथापि एनान्** इन (पशुओं) को (सायंकाल) **गृहान् आजिगमिषति** घर में ही ले आना चाहता है; क्योंकि **गृहा हि पशूनां प्रतिष्ठा** घर ही पशुओं के रहने का स्थान है।

सा०भा०—'इन्द्रस्य नु वीर्याणि' इत्यस्मिन् सूक्ते शस्त्रस्य समापनेनावस्थानात् तस्य प्रतिष्ठा रूपत्वम्। गृहा अपि स्थितिहेतुत्वात् प्रतिष्ठारूपाः। तथा सत्येतत्सूक्तं प्रतिष्ठिततमया' द्रुतविलम्बितत्वादिदोषरहितया श्राव्येण ध्वनिनोपेत्या वाचा शंसेत्। तस्माद् गृहस्थानीयस्य सूक्तस्य ध्वनिः प्रतिष्ठिततमः, तस्माल्लोकेऽपि यद्यपि तृणभक्षणार्थमरण्ये गतान् दूरदेश एवावस्थितान् पशून् दिवसे पुरुषो 'लभते' पश्यति तथाऽप्येनान् पशून् सायंकाले गृहानेव 'आजिगमिषति' आनेतुमिच्छति। यस्मात् पशूनां गृहाः 'प्रतिष्ठा' सुखेनावस्थातुं स्थानाम्। द्विरभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्ये तृतीयपञ्चिकायां द्वितीयाध्याये त्रयोदशः खण्डः ।।१३।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय के त्रयोदश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवाचार्यदेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य तृतीयपञ्चिकायाः द्वितयोऽध्यायः (द्वादशोऽध्यायः) समाप्त ।।१२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के द्वादश अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयपञ्चिकायाम्
तृतीयोऽध्यायः
[अथ त्रयोदशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—वक्त्वाहावप्रभेदं प्रतिगरणमथानुष्टुभः शस्यमानाः ।
मृत्योः संनद्धयातिक्रमणमथ मरुत्वद्विधानप्रशंसा ॥
तच्छेषा ये विशेषाः प्रतिपदनुचरप्रक्रमाः सप्तभागाः ।
निष्केवल्यं च शस्त्रं तदवयवकृताः स्तोत्रियाद्याश्च पञ्च ॥१॥

अथ तृतीयसवनं वक्तुमादावाख्यायिकामाह—

(तृतीयसवनविधानम्)

(तत्राख्यायिका)

सोमो वै राजाऽमुष्मिँल्लोके आसीत्, तं देवाश्च ऋषयश्चाभ्यध्यायन् कथमयमस्मात् सोमो राजाऽऽगच्छेदिति, तेऽब्रुवंश्छन्दांसि यूयं न इमं सोमं राजानमाहरतेति, तथेति, ते सुपर्णा भूत्वोदपतंस्ते यत्सुपर्णा भूत्वोदपतंस्तदेतत् सौपर्णमित्याख्यानविद आचक्षते ।।१।।

हिन्दी—(अब तृतीयसवन को कहने के लिए प्रारम्भ में आख्यायिका को कह रहे हैं—) **सोमः वै राजा** सोम राजा **अमुस्मिन् लोके** उस लोक (द्युलोक में) **आसीत्** थे। **देवाः ऋषयः च** देवताओं और ऋषियों ने **तम् अभ्यध्यायन्** उस (सोम) के विषय में विचार किया कि **अयं सोमः** ये राजा सोम **अस्मात्** उस (द्युलोक) से **कथम् आगच्छेत्** किस प्रकार हमारे समीप आएँगे। **ते** उन (देवताओं) ने **छन्दांसि अब्रुवन्** छन्दों से कहा कि **यूयम्** तुम लोग **इमं सोमं राजानं** इस सोम राजा को **नः** हमारे लिए **आहरत** ले आओं। **तथा इति** (तब छन्दों ने कहा) ठीक है। **ते** वे (छन्द) **सुपर्णा भूत्वा** सुन्दर पक्षों वाले (पक्षी) होकर **उदपतन्** (सोम को लाने के लिए द्युलोक की ओर) उड़ गये। (जो छन्द) **सुपर्णा भूत्वा** सुन्दर पंखों वाले (पक्षी) होकर **उदपतन्** उड़े थे, **तद् एतत्** उस इस (आख्यान) को **आख्यानविद्** आख्यान के विद्वान् लोग (पौराणिक) **सौपर्णम् इति आचक्षते** सौपर्णाख्यान (नाम से) कहते हैं।

सा० भा०—पुरा सोमवल्ली द्युलोक एवासीत्, न त्वेतस्मिँल्लोके। तदानीं सोममभिलक्ष्य

केन प्रकारेण सोमो न आगच्छेदिति देवा ऋषयश्च विचारितवन्तः। विचार्य गायत्र्यादीनि च्छन्दांसि प्रत्येवमब्रुवन्। हे छन्दांसि! अस्मदर्थं सोममाहरतेति। तानि च तदङ्गीकृत्य 'ते' लोकप्रसिद्धाः पक्षिणो भूत्वा द्युलोकं प्रत्युदपतन्। यस्मादेवं तस्मादेतत् सोमाहरणप्रतिपादकं ग्रन्थजातं 'सौपर्णम्' आख्यानमिति 'आख्यानविदः' पौराणिका कथयन्ति।।

अथोत्पतत्सु च्छन्दःसु मध्ये जगतीवृत्तान्तमाह—

(उत्पतत्सु छन्दःसु मध्ये जगतीवृत्तान्तः)

छन्दांसि वै तत्सोमं राजानमच्छाचरंस्तानि ह तर्हि चतुरक्षराणि, चतुरक्षराण्येव च्छन्दांस्यासन्, सा जगती चतुरक्षरा प्रथमोदपतत्, सा पतित्वाऽर्धमध्वनो गत्वाऽश्राम्यत् सा परास्य त्रीण्यक्षराण्येकाक्षरा भूत्वा दीक्षां च तपश्च हरन्ती पुनरभ्यवापतत् तस्मात् तस्य वित्ता दीक्षा वित्तं तपो यस्य पशवः सन्ति, जागता हि पशवो जगती हि तानाहरत् ।। २।।

हिन्दी—(अब उड़तें हुए छन्दों में जगती छन्द के वृत्तान्त को कह रहे हैं—) **तत् सोमं राजानम्** उस सोम राजा को **अच्छ** प्राप्त करने के लिए **छन्दांसि** छन्द **अचरन्** चले। **तर्हि** तब **तानि** वे (छन्द) **चतुरक्षराणि चतुरक्षराणि** चार-चार अक्षर वाले ही **आसन्** थे। **सा चतुरक्षरा जगती** वह चार अक्षरों वाली जगती **प्रथमा उदपतत्** सर्वप्रथम (सोमस्थान के लिए) उड़ी। **सा** वह (चतुरक्षरा जगती) **पतित्वा** उड़कर **अर्धम् अध्वनः गत्वा** आधामार्ग जाकर **अश्राम्यत्** श्रान्त हो गयी तथा **सा** वह (जगती) **त्रीणि अक्षराणि परास्य** तीन अक्षरों का परित्याग करके **एकाक्षरा भूत्वा** एक अक्षर वाली होकर, **दीक्षां च तपः च** (सोमसम्बन्धी) दीक्षा और तप को **हरन्ती** लेती हुई **पुनः अभ्यावपतत्** पुनः इस (लोक को) लौट आयी। **तस्मात्** इसी कारण **यस्य पशवः सन्ति** जिसके पशु होते है **तस्य** उसको **दीक्षा वित्ता** दीक्षा प्राप्त करता है और **तपः वित्तम्** तप प्राप्त करता है; क्योंकि **जागता वै पशवः** पशु जगती छन्द वाले होते हैं और **जगती हि तान् अहरत्** जगती ने ही उन (दीक्षा और तप) को आहरित किया था।

सा० भा०—गायत्र्यादिच्छन्दांस्युत्पतने प्रवृत्तानि, तदानीं सोमम् 'अच्छ' प्राप्तुं द्युलोकं प्रत्यचरंस्तानि च च्छन्दांसि तस्मिन् काले चतुरक्षरोपेतानि, अतः पुरा सर्वदा चतुरक्षराण्येवासन्, न तु कस्यापि च्छन्दसोऽधिकाक्षरताऽऽसीत्। ततः सा जगती चतुरक्षरा सती छन्दोऽन्तरेभ्यः सर्वेभ्यः प्रथमं प्रवृत्ता सोमस्थानं प्रत्युदपतत्। सा च मार्गस्यार्धं गत्वा श्रान्ता सती श्रमवशात् त्रीण्यक्षराणि परित्यज्य स्वयमेकाक्षरा भूत्वा सोममाहर्तुमशक्नुवती सोमयागसंबन्धिनीं 'दीक्षां' दीक्षणीयेष्ट्यादिरूपाम्, क्षीरपानादिरूपं 'तपश्च' 'हरन्ती'

तस्माल्लोकादानयन्ती पुनरेतं लोकमभिलक्ष्यावापतत्, अधोमुखी समागता। यस्मादेवं तस्माल्लोके यस्य पुरुषस्य पशवः सन्ति, तेन दीक्षा वित्ता लब्धा भवति, तपश्च लब्धं भवति। न च दीक्षातपसोर्जगत्या समानीतयोः सतोः पशूनां तदुभयकारणत्वं कथमिति शङ्कनीयम्। पशूनां जागतत्वेन जगतीद्वारा दीक्षासंबन्धसंभवात्। जागतत्वं कथमिति? चेत्, जगत्या पशूनामानीतत्वादिति द्रष्टव्यम्। अत एव शाखान्तरे जगती प्रकृत्यैवमाम्नातम्— 'सा पशुभिश्च दीक्षया चाऽऽगच्छत् तस्माज्जगती छन्दसां पशव्यतमा', तस्मादुत्तमा, 'तस्मात् पशुमन्तं दीक्षोपनमति'[१] इति॥

सा त्रिष्टुब् द्युलोके भूयो[२] भूयः पतित्वाऽपि मार्गस्यार्धादेवाश्राम्यदित्यन्वयः। यस्मादेव दक्षिणाः सर्वा आनीतवती, तस्मात् त्रिष्टुभः स्थाने माध्यंदिनसवने यजमानैर्दत्ताः सर्वा दक्षिणा ऋत्विग्भिर्नीयन्ते॥

त्रिष्टुभो वृत्तान्तमाह—

(त्रिष्टुभो वृत्तान्तः)

अथ त्रिष्टुब् उदपतत् सा पतित्वा भूयोऽर्धादध्वनो गत्वाऽश्राम्यत् सा परास्यैकमक्षरं त्र्यक्षरा भूत्वा दक्षिणा हरन्तो पुनरभ्यवापतत् तस्मान्मध्यंदिने दक्षिणा नीयन्ते त्रिष्टुभो लोके त्रिष्टुब्भि ता आहरत्।।३।।

हिन्दी—(अब त्रिष्टुप् के वृतान्त को कह रहे हैं—) **अथ त्रिष्टुप् उदपतत्** इसके बाद त्रिष्टुप् उड़ी। **सा पतित्वा** वह (त्रिष्टुप्) उड़कर **भूयः अर्धात् अध्वनः गत्वा** पुनः आधे मार्ग तक जाकर **अश्राम्यत्** श्रान्त हो गयी। **सा एकमक्षरं परास्य** वह एक अक्षर छोड़कर **त्र्यक्षरा भूत्वा** तीन अक्षरों वाली होकर **दक्षिणा हरन्ती** (सोमसम्बन्धी) दक्षिणा को लेते हुए **पुनः अभ्यवापतत्** पुनः इस लोक में लौट आयी। **तस्मात्** इसी कारण **त्रिष्टुभौ** त्रिष्टुप् के स्थान पर **मध्यन्दिने** माध्यन्दिनसवन में **दक्षिणा नीयते** (ऋत्विकों द्वारा) दक्षिणा ले ली जाती है; क्योंकि **लोके त्रिष्टुब् हि ता आहरत्** इस लोक में त्रिष्टुप् ने ही उस (दक्षिणा) को आहरित किया था।

सा० भा०—सा त्रिष्टुप् द्युलोके भूयो[३] भूयः पतित्वाऽपि मार्गस्यार्धादेवाश्राम्यदित्यन्वयः यस्मादेव दक्षिणाः सर्वा आनीतवती, तस्मात् त्रिष्टुभः स्थाने माध्यंदिनसवने

(१) तै०सं० ६.१.६.२।
(२) 'अध्वनोऽर्धाद् भूयो बहुतरमभ्यधिकमगत्वा गन्तुमशक्ता जगतीवाध्वमध्येऽश्राम्यत्'—इति भट्टभास्करः।
(३) 'अध्वनोऽर्धाद् भूयो बहुतरमभ्यधिकमगत्वा गन्तुमशक्ता जगतीवाध्वमध्येऽश्राम्यत्'—इति भट्टभास्करः।

यजमानैर्दत्ताः सर्वा दक्षिणा ऋत्विग्भिर्नीयन्ते ॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—अथ गायत्रीवृत्तान्तमाह—

(आख्यायिकायां गायत्रीवृत्तान्तः)

ते देवा अब्रुवन् गायत्रीं,–त्वं न इमं सोमं राजानमाहरेति; सा तथेत्यब्रवीत्, तां वै मां सर्वेण स्वस्त्ययनेनानुमन्त्रयध्वमिति; तथेति, सोदपतत्, तां देवाः सर्वेण स्तस्त्ययनेनान्वमन्त्रयन्त,–प्रेति चेति चेति; एतद्वै सर्वं स्वस्त्ययनं यत् प्रेति चेति चेति; तद् योऽस्य प्रियः स्यात्, तमेतेनानुमन्त्रयेत–'प्रेति चेति चेति'; स्वस्त्येव गच्छति स्वस्ति पुनरागच्छति ।।१।।

हिन्दी—(अब गायत्री के वृत्तान्त को कह रहे हैं—) **ते देवाः** उन देवताओं ने **गायत्रीम् अब्रुवन्** गायत्री से कहा कि **त्वम्** तुम **नः** हम लोगों के लिए **इमं सोमं राजानम्** इस सोम राजा को **आहर** ले आओ। **सा तथा इति अब्रवीत्** उस (गायत्री) ने कहा कि ठीक है। **तां माम्** उस प्रकार जाती हुई मुझको **सर्वेण स्वस्त्ययनेन** सम्पूर्ण स्वस्त्ययन से **अनुमन्त्रयध्वम्** तुम लोग अनुमन्त्रित करो। **तथा** (तब देवताओं ने कहा कि) ठीक है। **सा उद्पतत्** वह गायत्री (सोम के स्थान पर जाने के लिए) उड़ी। **ताम्** उस (उड़ती हुई गायत्री) को **देवाः** देवताओं ने **सर्वेण स्वस्त्यनेन** सम्पूर्ण स्वस्त्ययन से **अन्वमन्त्रयत** अनुमन्त्रित किया। **'प्रेति चेति चेति'** जो 'प्र–यह और आ–यह दो (मन्त्र)' है, **एतद्वै सर्वं स्वस्त्ययनम्** यही सम्पूर्ण स्वस्त्ययन है। **तत्** इसी लिए **सः** जो (प्रस्थान करने वाला) **अस्य** इसका **प्रियः स्यात्** प्रिय होता है **तम्** उस (प्रस्थान करने वाले का प्रेति चेति' **इति एतेन** इस मन्त्र से **अनुमन्त्रयेत** अनुमन्त्रित करना चाहिए। (इस स्वस्त्यन से प्रस्थान करने वाला) **स्वस्ति एव गच्छति** क्षेमपूर्वक जाता है और **स्वस्ति पुनरागच्छति** सकुशल वापस लौट आता है।

विमर्श—(१) 'प्रेति चेति च' मन्त्र का विच्छेद है, प्र इति च आ इति च अर्थात्

प्र–यह और आ–यह।

सा० भा०—जगतीत्रिष्टुभोः सोमानयनसामर्थ्याभावं दृष्ट्वा ते देवा गायत्रीं प्रार्थितवन्तः। हे गायत्रि, त्वं 'नः' अस्मदर्थमिमं सोममाहरेति। 'सा' च गायत्री तथेत्यङ्गीकृत्य देवान् प्रत्येवमब्रवीत्, हे देवा, यदाऽहं सोममानेतुं गच्छामि, तदानीं तामेवं गच्छन्तीं मां यूयं सर्वेऽपि यथाशक्ति सर्वेण[१] 'स्वस्त्ययनेन' 'अनुमन्त्रयध्वं' क्षेमप्रापणं स्वस्त्ययनं तदर्थमाशीर्वादरूपेण मन्त्रेण ममानुमन्त्रणं कुरुतेति। एवमुक्त्वा तथेति देवैरङ्गीकृते सति 'सा' गायत्री द्युलोकं प्रत्युत्पतनमकरोत्। तदानीं देवाः स्वागतप्रकारेण सर्वेणापि क्षेमप्रापणमन्त्रेण गायत्रीमनुमन्त्रितवन्तः। कोऽसौ मन्त्रः? इति—'प्र' शब्दं एको मन्त्रः, 'आ'–शब्दो द्वितीयो मन्त्रः, तदुभयप्रदर्शनार्थमितिशब्दद्वयम्। उभयसमुच्चयार्थं चकारद्वयम्। क्षेमेण सोमं प्राप्नुहि, पुनरपि क्षेमेणाऽऽगच्छेति, अयमाशीर्वादमन्त्रद्वयस्यार्थः। एतदेव[२] मन्त्रद्वयं सर्वं स्वस्त्ययनं 'प्र'–इत्येकम्, 'आ'–इति द्वितीयं पदमस्ति इतोऽधिकं नान्यत् स्वस्त्यनमस्ति। यस्माद् इदमेव सर्वक्षेमप्रापकं तस्माद् इदानीमपि 'यः' पुमान् ग्रामान्तरं जिगमिषुरस्य गृहस्वामिनः प्रियः स्यात्, तं जिगमिषुं प्रेत्येतीति मन्त्रद्वयेनानुमन्त्रयेत, तेनाऽऽशीर्वादप्रसादेनायं क्षेमेणैव गच्छति पुनरागच्छति च॥

इत्थं प्रासङ्गिकं लौकिकविधिमुक्त्वा प्राकृतमेव गायत्रीवृत्तान्तमनुसरति—

सा पतित्वा सोमपालान् भीषयित्वा पद्भ्यां च मुखेन च सोमं राजानं समगृभ्णाद्, यानि चेतरे छन्दसी अक्षराण्यजहितां तानि चोपसमगृभ्णात्॥२॥

हिन्दी—(इस प्रकार लौकिक प्रासङ्गिक विधि को कह कर प्राकृत गायत्रीवृतान्त को कह रहे हैं—) **सा** वह (गायत्री) **पतित्वा** उड़कर **सोमपालान् भीषयित्वा** सोमरक्षक (गन्धर्वों) को भयभीत करके **पद्भ्यां च मुखेन च** पैरों और मुख से **सोमं राजानं समगृभ्णात्** सोम राजा को अच्छी प्रकार से पकड़ लिया तथा **इतरे छन्दसी** जो अन्य दो छन्दों (जगती और त्रिष्टुप्) ने **यानि अक्षराणि अजहिताम्** जिन अक्षरों को छोड़ दिया था, **तानि च उपसमगृभ्णात्** उनको भी अच्छी प्रकार से पकड़ लिया।

---

(१) 'सर्वेण सर्वप्रकारोपद्रवशमनेन स्वस्त्ययनेन कल्याणप्रापणेन मन्त्रेण' इति भट्टभास्करः।

(२) (i) 'प्रेति च साध्यमर्थं प्रत्यविघ्नेन गच्छति च। ततः कृतकार्यः सन्नेति च स्वदेशं प्रति निर्बाधमागच्छति कार्यार्थं गन्ता जनः'—इति भट्टभास्करः। (ii) 'प्र एति आ एति पररूपं छान्दसम्'—इति षड्गुरुशिष्यः। (iii) अत्र 'एत्येधत्यूठ्सु' इत्येतद् बाधित्वा व्यत्ययेन एङि पररूपम् इत्येतत् प्रवर्तते। एति इ यस्य चैकादशस्य पूर्वं प्रत्यन्तवद्भावेन आङ्ग्रहणेन ग्रहणात्। तस्मिन् परतश्च शब्दाकारस्य ओमाङोश्चेति पररूपत्वम्—इति भट्टभास्करः।

सा०भा०—'सा' गायत्री 'पतित्वा' उत्पतनेन सोमं प्राप्य गन्धर्वान् स्वानभ्राजादीन् सोमरक्षकान् आस्फोटनायुधप्रदर्शनादिनां भीषयित्वा—भीत्या तेष्वपसृतेषु स्वयं पक्षिरूपा सति स्वकीयाभ्यां पद्भ्यां मुखेन च सोमं सम्यग् गृहीतवती। स्वानभ्राजादीनां सोमपालकत्वमाध्वर्यवे सोमप्रकरणे मन्त्र-तद्ब्राह्मणाभ्यामवगम्यते। 'स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान् रक्षध्वम्'—इति मन्त्रः।[२] 'स्वानभ्राजेत्याहते वाऽमुष्मिँल्लोके सोममरक्षन्'[३]–इति ब्राह्मणम्। न केवलं गायत्री सोममेव गृहीतवती, किंत्वितरे जगतीत्रिष्टुबाख्ये छन्दसी 'यानि' चत्वार्यक्षराण्यजहिता परित्यक्तवत्यौ, तानि चोपेत्य सम्यग् गृहीतवती॥

अथ तस्या गायत्र्या गन्धर्वेण सह युद्धे यो वृत्तान्तस्तं दर्शयति—

(गायत्र्या गन्धर्वेण सह युद्धवृत्तान्तः)

तस्या अनु विसृज्य कृशानुः सोमपालः सव्यस्य पदो नखमच्छिनत्, तच्छल्यकोऽभवत्, तस्मात् सनखमिव, यद्वशमस्रवत्, सा वशाऽभवत्, तस्मात् सा हविरिव; अथ यः शल्यो यदनीकमासीत् स सर्पो निर्दंश्यभवत्, सहसः स्वजो, यानि पर्णानि ते मन्थावलाः, यानि स्नावानि ते गण्डूपदा, यत् तेजनं सोऽन्धाहिः, सो सा तथेषुरभवत् ॥ ३ ॥

हिन्दी—(अब उस गायत्री के सोमरक्षक गन्धर्व के साथ युद्ध के वृत्तान्त को दिखला रहे हैं—) तब **सोमपालः कृशानुः** (सोम के रक्षकों में सप्तम) सोम रक्षक कृशानु (नामक गन्धर्व) ने **तस्याः अनु** उस (गायत्री) के पीछे **विसृज्य** (बाण को) छोड़ कर **सव्यस्य पदः** (उसके) बाये पाद के **नखम्** नख को **अच्छिदत्** काट दिया। **तत्** वह (नाखून) **शल्यकः अभवत्** साही (नामक पशु) हो गया। **तस्मात्** इसी कारण **सः नखम् इव** यह (साही) नख के समान (अगले भाग वाला) होता है। **यद् वशम् अस्रवत्** जो वंश (मेद) स्रवित हुआ **सा वशा अभवत्** वह मेध्य पशु भेड़ बकरी इत्यादि हुआ। **तस्मात्** इसी कारण **सा** वह मेध्य पशु **हविः इव** हविष् के समान होता है। **अथ यः शल्यः यद् अनीकम् आसीत्** जो बाण और जो नोक था **सः निर्दंशी सर्पः अभवत्** वह दंशरहित सर्प हुआ तथा **सहसः** (कुण्ठित अग्रभाग के लोहे के) वेग से **स्वजः** दोनों ओर मुख वाला (द्विमुख) सर्प हुआ। **यानि पर्णानि** जो पंख (कङ्कपत्र) थे **ते मन्थावलाः** वे मन्थावला (वृक्ष की शाखाओं पर अधोमुख लटकने वाले जीव विशेष) हुए। **यानि स्नावानि** जो (पत्रबन्धन के लिए) स्नायु थे **ते गण्डूपदाः** वे केचुएँ हुए। **यत् तेजनम्** जो

(१) तै०सं० १.२.७। शत०ब्रा० १.७.१; ३.३.४.१०।
(२) तै०सं० ६.१.१०.५।

(बाण की) तेज धार थी, **सः अन्धाहिः** वह अन्धा सर्प हुआ। **सः** वह बाण और **सा** वह (गायत्री) **तथा अभवत्** इस प्रकार रूप वाली हो गयी।

सा० भा०— स्वानभ्राजादिषु सोमरक्षकेषु यः सप्तमो गन्धर्वः कृशानुनामकः, सोऽयं 'तस्या' गायत्र्या 'अनु' पृष्ठतो बाणं 'विसृज्य' तदीयस्य वामपादस्यैकं नखं छिन्नवान्। तच्च नखं शल्यको मर्कटशरीरपरिमितः शलल्याख्यो मृग आसीत्। यस्य मृगस्य पुच्छसमीपे बहवो रोमविशेषाः प्रादेशपरिमितास्तीक्ष्णाग्रा लोहमया उत्पद्यन्ते, स शल्यकः। यस्मादयं नखादुत्पन्नः, तस्मात् स नखमिव तीक्ष्णाग्ररोमोपेतः। तत्र च्छिन्ननखपादप्रवेशे यद् वशं मेदोऽस्रवत् सा 'वशा' मेध्या काचिदजाऽव्यादिपशुष्वासीत्। तस्माद् गायत्र्या उत्पन्नत्वात् 'सा' वा 'हविरिव' देवतायोग्यं हविरेवाऽऽसीत्। तच्च हविष्ट्वं शाखान्तरे श्रूयते—'एतामेव वशामादित्येभ्यः कामायाऽऽलभेत'[१] इति। अथ नखच्छेदनाय गन्धर्वेण विसृष्टो बाणः, सोऽपि नखसंघट्टनेन कुण्ठिताग्रो बहुधा भग्नो भूमौ पतितः। तस्य बाणस्य यः 'शल्यः' कृष्णायसनिर्मितो बाणग्रे स्थापितः, तस्य च शल्यस्य यद् 'अनीकं' मुखं संघट्टनेन कुण्ठितमासीत् सोऽयं शल्यः, तदनीकात्मको बाणभागो 'निर्दंशी' दंशनसमर्थः नास्ति। तस्मात् कुण्ठिताग्रस्य लोहस्य योऽयं सहो वेगः, तस्मात् सहसो बाणवेगात् स्वजः' उभयतःशिराः सर्पोऽभवत्। तस्य बाणस्य मूले यानि 'पर्णानि' कङ्कपत्राणि ते 'मन्थावलाः'[२] अभवन्। ये जीवविशेषा वृक्षशाखास्वधोमुखा अवलम्बन्ते ते मन्थावलाः। तस्मिन् बाणे यानि 'स्नावानि' पत्रबन्धनार्थाः स्नायुविशेषास्ते 'गण्डूपदाः' अभवत्। अवस्करादिस्थानेषु ये सर्पवज्जायन्ते, ते गण्डूपदाः। तस्मिन् बाणे यत् 'तेजनं' लोहपत्रव्यतिरिक्तं काष्ठं[३], सोऽन्धाहिरभवत्, दृष्टिरहितः सर्पोऽभूत्। 'तथा' तेनोक्तप्रकारेण 'इषुः' गन्धर्वेण मुक्तो बाणः 'सो सा' अभवत्। उशब्दः समुच्चयार्थः। सा च सा चेत्युक्तं भवति। तथोक्ते सति तत्तज्जातिर्निर्दंशिसर्पादिरूपेत्युक्तार्थोपसंहारः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) तै०सं० २.१.१.३,४।

(२) (i) 'महावाग्गुदा अभवन्'–इति षड्गुरुशिष्यः। (ii) 'मन्थावला नाम महावाग्गुदा जन्तुविशेषाः। सर्पविशेषा एवेत्येके'—इति भट्टभास्करः।

(३) (i) 'तेजनम्' इति यष्टिनाम—इति षड्गुरुशिष्यः। (ii) तेजनं ज्यानिधानस्थानम्। मुखनैशित्यमित्येके—इति भट्टभास्करः।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—अथ तृतीयसवनार्थं सवनस्योत्पत्तिं दर्शयति—

(तृतीयसवनार्थं सवनस्योत्पत्तिकथनम्)

सा यद्दक्षिणेन पदा समगृभ्णात्, तत्प्रातःसवनमभवत्, तद्गायत्री स्वमायतनमकुरुत, तस्मात् तत्समृद्धतमं मन्यन्ते सर्वेषां सवनानाम्, अग्रियो मुख्यो भवति, श्रेष्ठतामश्नुते, य एवं वेद, अथ यत्सव्येन पदा समगृभ्णात्, तन्माध्यंदिनं सवनमभवत्, तद्विस्रंसत तद्विस्रंसत नान्वाप्नोत् पूर्वं सवनं, ते देवाः प्राजिज्ञासन्त, तस्मिंस्त्रिष्टुभं छन्दसामदधुरिन्द्रं देवतानां, तेन तत्समावद्वीर्यमभवत् पूर्वेण सवनेनोभाभ्यां सवनाभ्यां समावद्वीर्याभ्यां समावज्जामीभ्यां राध्नोति य एवं वेद, अथ यन्मुखेन समगृभ्णात् तत् तृतीयसवनमभवत् ।।१।।

हिन्दी—(अब तृतीयसवन की उत्पत्ति को दिखला रहे हैं—) सा उस (गायत्री) ने **यद् दक्षिणेन पदाः समगृभ्णात्** जो दाहिने पैर से (सोम को) अच्छी प्रकार से पकड़ा था, **तत् प्रातःसवनम् अभवत्** वह प्रातःसवन हो गया। **तत्** उस (प्रातःसवन) को गायत्री गायत्री ने **स्वम् आयतनम् अकुरुत** अपना स्थान बना लिया। **तस्मात्** इसी कारण **तत्** वह (प्रातःसवन) **सर्वेषां सवनानाम्** सभी सवनों में **समृद्धतमं मन्यन्ते** सर्वाधिक समृद्ध माना जाता है। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **अग्रियः मुख्यः भवति** (सभी सवनों में) अग्रगण्य और प्रमुख होता है तथा **श्रेष्ठताम् अश्नुते** श्रेष्ठता को प्राप्त करता है। **अथ** तत्पश्चात् **यत् सव्येन पदा** जो बायें पैर से **समगृभ्णात्** (सोम को) अच्छी प्रकार से पकड़ा **तत् माध्यन्दिनं सवनम् अभवत्** वह माध्यन्दिन-सवन हो गया। **तद् विसंस्रत** वह फिसल गया। **तद् विसंस्रत** वह फिसल गया, अतः **पूर्वं सवनं न अन्वाप्नोत्** पूर्ववर्ती प्रातःसवन को नहीं प्राप्त कर सका। तब **ते देवाः** देवताओं ने **प्रजिज्ञासन्त** विचार किया और **तस्मिन्** उस (मध्यन्दिनसवन) में **छन्दसां त्रिष्टुभम्** छन्दों में त्रिष्टुप् छन्द की तथा **देवतानाम् इन्द्रम्** देवताओं में इन्द्र को **अदधुः** रख दिया। **तेन** उससे **तत्** वह (माध्यन्दिनसवन) **पूर्वेण सवनेन समवद्वीर्यम् अभवत्** पूर्ववर्ती सवन (प्रातःसवन) के समान सामर्थ्य वाला हो गया। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **उभाभ्यां सवनाभ्याम्** (प्रातःसवन और माध्यन्दिनसवन) दोनों सवनों के **समावद्वीर्याभ्याम्** समान सामर्थ्यों और **समावज्जाभ्याम्** समान जामियों (सम्बन्धियों) के साथ **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है। **अथ** इसके बाद **यत्** (सोम का) जो (भाग) **मुखेन समगृभ्णात्** मुख द्वारा अच्छी प्रकार से पकड़ा **तत् तृतीयसवनम्**

अभवत् वह तृतीयसवन हो गया।

सा० भा०—'सा' गायत्री सोममानयन्ती दक्षिणेन 'पदा' पादेन 'यत्' यावत् सोमस्य स्वरूपं गृहीतवती, 'तत्' तावत् प्रातःसवनमभवत्। तच्च प्रातःसवनं 'सा' गायत्री स्वकीयं स्थानकरोत्। तस्मात् तत्सर्वेषां सवनानां मध्ये अतिशयेन समृद्धमिति याज्ञिका मन्यन्ते। तत्र प्रयोगबाहुल्यसद्भावात्। य 'एवम्' उक्तार्थं वेद, स स्वकीयानां मध्ये 'मुख्यः' श्रेष्ठः सन् विद्यावृत्तादिरूपां श्रेष्ठतां[1] प्राप्नोति। अथा सा गायत्री वामपादेन 'यत्' सोमस्य स्वरूपं गृहीतवती, तन्माध्यंदिनं सवनं विस्रस्तमभूत्। वामपादात् 'तत्' तत्र 'विस्रस्तं' गलितं तन्माध्यंदिनं सवनं पूर्वोक्तप्रातःसवनानुगमनाय शक्तं नाभूत्। त देवा विचार्य 'तस्मिन्' माध्यंदिने सवने स्वामित्वेन च्छन्दसां मध्ये त्रिष्टुभं देवतानां मध्ये इन्द्रं च स्थापितवन्तः। तेन 'तत्' माध्यंदिनं सवनं प्रातःसवनेन सह 'समावद्वीर्यं' तुल्यसामर्थ्यमभूत्। उक्तार्थवेदिता तुल्यसामर्थ्याभ्याम्, अत एव तुल्यजामीभ्यामुभाभ्यां सवनानभ्यां समृद्धो भवति। जामीशब्दो जातिवाची[2] तुल्यजातिभ्यामित्यर्थः। अथ गायत्री मुखेन यत्सोमस्वरूपं गृहीतवती तत्तृतीयसवनमभूत्।।

तस्मिन् सवन ऋजीषस्वरूपे निःसारे सोम आशिरादिकं विधत्ते—

तस्य पतन्ती रसमधयत्, तद् धीतरसं नान्वाप्नोत् पूर्वे सवने, ते देवाः प्राजिज्ञासन्त, तत्पशुष्वपश्यंस्तद् यदाशिरमवनयन्त्याज्येन पशुना चरन्ति तेन तत्समावद्वीर्यमभवत् पूर्वाभ्यां सवनाभ्याम् ।।२।।

हिन्दी—पतन्ती (मुख से तृतीय सवनरूप सोम को लेकर द्युलोक के नीचे) उतरती हुई (उस गायत्री) ने **तस्य** उस (सोम) के **रसम् अधयत्** सारतत्व को पी डाला। **तत् धीतरसम्** वह (गायत्री द्वारा) पान कर लिए सारतत्व वाला (माध्यन्दिन सवन निस्सार होने के कारण) **पूर्वे सवने** पूर्ववर्ती दोनों (प्रातः और माध्यन्दिन) सवनों का **न अन्वाप्नोत** अनुसरण नहीं कर सका। **ते देवाः प्रजिज्ञासन्त** उन देवताओं ने (उसके साधन के) विषय में विचार किया। **तत्** उस (साधन को) **पशुषु अपश्यन्** (दुग्ध धृतादि रूप से) पशुओं में देखा। अतः **यद् आशिरम् अवनयन्ति** जो (निस्सार सोम में) आशिर (दूध) को डालते हैं तथा **आज्येन पशुना** घी और पशु से **चरन्ति** अनुष्ठान करते हैं **तेन** उससे **तत्** वह (तृतीयसवन) **पूर्वाभ्यां सवनाभ्यां समावद्वीर्यम्** पूर्ववर्ती दोनों (प्रातः और माध्यन्दिन) सवनों के समान सामर्थ्य वाला हो जाता है।

सा० भा०—सा गायत्री मुखेन तृतीयसवनरूपं सोमं गृहीत्वा द्युलोकादधः पतन्ती

(१) 'अग्र्यः अग्रगण्यः, मुख्यः प्रधानभूतः, श्रेष्ठः प्रशस्यतमः'—इति भट्टभास्करः।

(२) अतिरेकवालिशसमान जातीयानां वाचको 'जामिशब्दः—इत्यादि देवराजयज्वकृता नि-घण्टुवृत्तिः (४.१.४६)। निरु० ३.१.५,६।

तस्य सोमस्य 'रसमधयत्' सारं पीतवती। तत्तृतीयसवनं 'धीतरसं' पीतसारं भूत्वा पूर्वोक्तप्रात:सवनमाध्यंदिनसवने द्वे अनुगन्तुं नाशक्नोत्। ते देवास्तत्प्रतीकारं विचार्य तत्साधनं 'पशुष्वपश्यन्'। पशुषु क्षीरं यदस्ति, यच्चाऽऽज्यमस्ति, यदपि हृदयाद्यङ्गमस्ति, तत्सर्वं सारं तस्माद् यत्पीतरसे सोमसंबन्धिनि ऋजीषे 'आशिरं' क्षीरम् 'अवनयन्ति' सिञ्चन्ति याज्ञिकाः, तथाऽऽज्यपशूभ्यां 'चरन्ति' अनुतिष्ठन्ति, तदानीं 'तेन' अनुष्ठानेन 'तत्' तृतीयसवनं पूर्वसवनाभ्यां तुल्यसामर्थ्यमभूत्। अयमर्थः सर्वोऽपि शाखान्तरे संगृह्याऽऽम्नातः—'ब्रह्मवादिनो वदन्ति—तस्मात् सत्याद्गायत्री कनिष्ठा छन्दसां सती यज्ञमुखं परीयायेति; यदेवादः सोममाहरत् तस्माद् यज्ञमुखं पर्यैत् तस्मात् तेजस्विनी तमापद्भयां द्वे सवने समगृभ्णान् मुखेनैकं यन्मुखेन समगृभ्णात् तदधयत् तस्माद् द्वे सवने शुक्रवती प्रात:सवनं च माध्यंदिनं च तस्मान् तृतीयसवनं ऋजीषमभिषुण्वन्ति,—धीतमिव हि मन्यन्त आधिरमवनयति सशुक्रत्वाय'[१] इति॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वैः सवनैः समावद्वीर्यैः समावज्जामिभी राध्नोति य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **समवद्वीर्यैः** समान सामर्थ्य वाले और **समावज्जामिभिः** समान सम्बन्धियों वाले **सर्वैः सवनैः** सभी सवनों से **राध्नाति** समृद्धि को प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—ननु पूर्वत्र सर्वाणि च्छन्दांसि चतुरक्षराणीत्युक्तम्, तेष्वपि त्रिष्टुभ एकमक्षरं गतं जगत्याश्च त्रीण्यक्षराणि गतानि। तथा सति सर्वश्रुत्यन्तरविरोधः। तेषु च श्रुत्यन्तरेष्वष्टाक्षरा गायत्री। एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्। द्वादशाक्षरा जगतीति सर्वत्र श्रूयते;[२] अनुष्ठानं च तथैव क्रियते; तत्कथं विरोधपरिहारः? इत्याख्यायिकया परिहारं दर्शयितुमारभते—

(१) तै०सं० ६.१.६.३,४।

(२) शत०ब्रा० १.७.३.२३-२५। ता०ब्रा० ८.४।

(छन्दसामक्षरसंख्यानिरूपणार्थमाख्यायिका)

(तत्र गायत्र्या अष्टाक्षरत्वम्)

ते वा इमे इतरे छन्दसी गायत्रीमभ्यवदेतां,–वित्तं नावक्षराण्यनुपर्यागुरिति, नेत्यब्रवीद् गायत्री यथावित्तमेव न इति, ते देवेषु प्रश्नमैतां; ते देवा अब्रुवन् यथावित्तमेव व इति, तस्माद्धाप्येतर्हि वित्त्यां व्याहुर्यथावित्तमेव न इति, ततो वा अष्टाक्षरा गायत्र्यभवत्, त्र्यक्षरा त्रिष्टुबेकाक्षरा जगती ।।१।।

हिन्दी—(छन्दों के अक्षरों की संख्या के विषय में पूर्वोक्त आख्यायिका द्वारा प्राप्त विरोध का परिहार कर रहे हैं—) **ते वै इमे इतरे छन्दसी** वे जो दोनों (गायत्री से) अन्य छन्दों (त्रिष्टुप् और जगती) ने **'गायत्रीम् अभ्यवदेताम्** गायत्री से कहा कि **नौ अक्षराणि वित्तम्** (हे गायत्री)! तुमने हम दोनों के (चार) अक्षरों को प्राप्त किया है अतः **अनुपर्यागुः** (उन्हें) हम लोगों के लिए लौटा दो। तब **गायत्री नेति अब्रवीत्** गायत्री ने कहा कि नहीं। **यथावित्तम्** जिस प्रकार (ये हमें) प्राप्त हुए है (ये) हमारे हैं। **ते** उन दोनों (त्रिष्टुप् और जगती) ने **देवेषु प्रश्नम् एताम्** देवताओं से (इस) प्रश्न को रखा। **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने कहा कि **यथावित्तम् एव वः** प्राप्ति के अनुसार ही यह तुम्हारा है। (अर्थात् जिसको जो प्राप्त हुआ है, वह उसका है)। **तस्मात्** इसी कारण ही **एतर्हि** इस समय (लोक में) **वित्त्याम्** प्राप्त हो जाने पर **व्याहुः** दिप्रतिपन्न के प्रति (न्यायज्ञाता) कहते हैं कि **यथावित्तमेव नः** प्राप्ति के अनुसार ही हमारा है। **ततः वै** तब से **गायत्री अष्टाक्षरा अभवत्** गायत्री आठ अक्षरों वाली हो गयी।

विमर्ण—(१) आख्यायिका में कहा गया है कि पहले सभी छन्द चार-चार अक्षरों वाले थे। जगती सोमस्थान पर जाते समय आधे मार्ग में पहुँच कर श्रान्त हो जाने के कारण चार अक्षरों में से तीन अक्षरों को छोड़कर केवल एक ही अक्षर के साथ वापस लौटी। इसी प्रकार त्रिष्टुप् भी अपने चार अक्षरों में से एक अक्षर को छोड़कर केवल तीन अक्षरों के साथ वापस लौटी। इस प्रकार जगती छन्द केवल एक अक्षर वाली और त्रिष्टुप् छन्द केवल तीन अक्षरों वाली ही रह गयी।

(२) उपर्युक्त आख्यायिका और श्रुतियों में विरोध दृष्टि गोचर होता है; क्योंकि श्रुतियों में गायत्री छन्द आठ अक्षरों वाला त्रिष्टुप् छन्द ग्यारह अक्षरों वाला और जगती छन्द बारह अक्षरों वाला प्राप्त होता है और अनुष्ठान में भी इसी के अनुसार प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार आख्यायिका और श्रुतियों के कथन में विरोध है। इसी विरोध का परिहार यहाँ किया गया है।

(३) इस मन्त्र में गायत्री के आठ अक्षरों वाला होने की उपपत्ति दी गयी है। आगे

के मन्त्रों में त्रिष्टुप् के ग्यारह अक्षरों वाला और जगती के बारह अक्षरों वाला होने के विषय में उपपत्ति दी जाएगी।

सा० भा०—ये त्रिष्टुब्जगत्यौ पुरा स्वकीयान्यक्षराणि परित्यक्तवत्यौ, ते एव 'इमे' 'इतरे' गायत्रीव्यतिरिक्ते छन्दसी गायत्रीमभिलक्ष्य समागत्यैवमुक्तवत्यौ,—हे गायत्रि, यत्त्वया 'वित्तं' लब्धमधिकमक्षरचतुष्टयं, तदेतत् 'नौ' त्रिष्टुब्जगत्योरावयोः। तस्मात् तानि चत्वार्यक्षराणि 'अनुपर्यागुः' आवां त्रिष्टुब्जगत्यावनुलक्ष्य पर्यावृत्य आगच्छन्त्विति। गायत्री तयोर्वचनं नेति निराकृत्य तत्रैतामुपपत्तिमब्रवीत्,—'नः' अस्माकं 'यथावित्तमेव' लब्धमनतिक्रम्यैव स्वामित्वं युक्तम्। यद् वस्तु येन लब्धं तत्तस्यैवेति लौकिन्यायः, तं न्यायं निर्णेतुं 'ते' त्रिष्टुब्जगत्यौ देवेषु प्रश्नम् 'ऐतां' प्राप्नुताम्। हे देवाः। कथं न्यायः? इति तयोः प्रश्नः। ते च देवा उत्तरमेवमब्रुवन्,—'वः' युष्माकं तिसृणां यथावित्तमेवाक्षरस्वीकारो युक्त इति। यस्माद्देवैरेवमुक्तं 'तस्माद्ध' तत एव कारणादिदानीमपि 'वित्त्यां' कस्यांचित्पुरुषस्य द्रव्यलब्धौ सत्यां 'व्याहु' विप्रतिपन्नं प्रति न्यायाभिज्ञा एवमाहुः,—'नः' अस्माकं सर्वेषामपि लब्धमनतिक्रम्यैव वस्तुस्वीकारो युक्त इति। युद्धादौ जये सति परसेनायां प्रविश्य येन यल्लभ्यते, तेनैव तद्गृह्यत इति वक्तृणामभिप्रायः। देवैर्न्याये निर्णीते सति तदूर्ध्वं गायत्री स्वकीयैः स्वभावसिद्धैश्चतुरक्षरैर्युद्धे लब्धैश्चतुरक्षरैरपि स्वयमष्टाक्षराऽभूत्। त्रिष्टुभः पूर्ववर्तमानेषु चतुर्ष्वेकाक्षरस्य गतत्वात्, त्र्यक्षरैव सा, तथा जगत्याश्चतुरक्षरेष्वक्षरत्रयस्य गतत्वादेकाक्षरैव साऽभवत्॥

इदानीं त्रिष्टुभोऽक्षरत्रयादधिकानामक्षराणां प्रप्तिप्रकारं दर्शयति—

(त्रिष्टुभो एकादशाक्षरत्वम्)

साऽष्टाक्षरा गायत्री प्रातःसवनमुदयच्छत्, नाशक्नोत् त्रिष्टुप्त्र्यक्षरा माध्यंदिनं सवनमुद्यन्तुं, तां गायत्र्यब्रवीदायान्यपि मेऽत्रास्त्विति, सा तथेत्यब्रवीत् त्रिष्टुप् तां वै मैतैरष्टाभिरक्षरैरुपसंधेहीति, तथेति, तामुपसमदधाद्, एतद्वै तद्गायत्र्यै मध्यंदिने यन्मरुत्वतीयस्योत्तरे प्रतिपदो यश्चानुचरः, सैकादशाक्षरा भूत्वा माध्यंदिनं सवनमुदयच्छत् ॥ २॥

हिन्दी—(त्रिष्टुप् के अवशिष्ट तीन अक्षरों के अतिरिक्त अन्य आठ अक्षरों की प्राप्ति का प्रकार दिखला रहे हैं—) **सा अष्टाक्षरा गायत्री** वह आठ अक्षरों वाली गायत्री ने **प्रातःसवनम् उदयच्छत्** प्रातःसवन का निर्वहन किया किन्तु **त्र्यक्षरा त्रिष्टुप्** तीन अक्षरों वाले त्रिष्टुप् **माध्यन्दिनं सवनम् उद्यन्तुं** माध्यन्दिनसवन का निर्वाह करने के लिए **नाशक्नोत्** समर्थ नहीं हुआ। तब **ताम्** उस (त्रिष्टुप्) से **गायत्री अब्रवीत्** गायत्री ने कहा कि **अत्र मे अपि अस्तु** यदि इस (माध्यन्दिन सवन) में मेरा भी भाग लगे तो **आयानि** मैं (तुम्हारी सहायता के लिए) आ सकती हूँ। तब **सा त्रिष्टुप् तथा इति अब्रवीत्** उस

त्रिष्टुप् ने कहा कि ठीक है। **एतैः अष्टाभिः अक्षरैः** (अपने) इन आठ अक्षरों के साथ **मा ताम्** मेरे उन (तीन अक्षरों) को **उपसन्धेहि** मिला लो। **तथा इति** (तब गायत्री ने कहा कि) ठीक है। **ताम् उपसमदधात्** (गायत्री) उन (तीन अक्षरों वाले त्रिष्टुप्) से संयुक्त हो गयी। **एतद् वै** यही **माध्यन्दिने** माध्यन्दिनसवन में **यद् मरुत्वतीयस्य उत्तरे** जो मरुत्वतायशस्त्र (के तृच) के प्रारम्भ रूप अन्तिम दो प्रतिपद ऋचाएँ हैं और **यः च अनुचरः** जो अनुचर रूप (तृच) है **तद् गायत्र्यै** वे गायत्री छन्द वाली हैं। इस प्रकार **सः** वह (त्रिष्टुप्) **एकादशाक्षरा भूत्वा** ग्यारह अक्षरों वाला होकर **माध्यन्दिनं सवनम्** माध्यन्दिन सवन का **उदयच्छत्** निर्वहन किया।

सा० भा०—येयमष्टाक्षरा गायत्री सेयं प्रातःसवनम् उदयच्छत् उद्यमनं निर्वाहं तस्य प्रातःसवनस्याकरोत्। या तु त्रिष्टुप्त्र्यक्षराऽक्षरत्रयमात्रेण युक्ता सती माध्यंदिनसवनम् 'उद्यन्तुं' निर्वोढुं नाशक्नोत्। तामशक्तां त्रिष्टुभं दृष्ट्वा गायत्र्येवमब्रवीत्। 'आयानि' त्वत्सहायार्थमहमागच्छानि 'मे' ममाप्यत्रास्मिन् माध्यंदिने सवने भागोऽस्त्विति। तद्वचनमङ्गीकृत्य सा त्रिष्टुबेवमब्रवीद् गायत्रीं तां वै मा तादृशीं त्र्यक्षरामेव मां स्वकीयैरेतैरष्टाभिरक्षरैरुपसंधेहि सामीप्येन संधानं कुरु प्रविशेत्यर्थः। तद्वचनमङ्गीकृत्य सा गायत्री तां त्रिष्टुभम् 'उपदधात्' स्वकीयैरष्टाभिरक्षरैः प्राविशत्। कोऽसौ गायत्र्या लब्धो भाग इति, स उच्यते—'मरुत्वतीयस्य' शस्त्रस्योत्तरे[१] प्रतिपदौ 'आ त्वा रथम्' इत्यस्मिन् प्रारम्भरूपे तृचे प्रथमाया उत्तरे ये द्वे ऋचौ प्रतिपदौ प्रारम्भरूपे विद्येते, यश्च 'इदं वसो सुतम्' इत्यनुचररूपः तृचः तदेवैतदृक्पञ्चकं माध्यंदिनसवने गायत्र्यै त्रिष्टुभा दत्तं ताश्च पञ्चर्चो गायत्रीछन्दस्काः।[२] ततो गायत्रीप्रवेशात् 'सा' त्रिष्टुबेकादशाक्षरा भूत्वा माध्यंदिनसवनप्रयोगम् 'उदयच्छत्' निरवहत्।।

अथ जगत्याः स्वकीयादेकस्मादक्षरादधिकानामक्षराणां प्राप्तिप्रकारं दर्शयति—

नाशक्नोज्जगत्येकाक्षरा तृतीयसवनमुद्यन्तुं, तां गायत्र्यब्रवीदायान्यपि मेऽत्रास्त्विति, सा तथेत्यब्रवीज्जगती, तां वै मैतैरेकादशभिरक्षरैरुपसंधेहीति, तथेति, तामुपसमदधात्, एतद्वै तद् गायत्र्यै तृतीयसवने यद्वैश्वदेवस्योत्तरे प्रतिपदो यश्चानुचरः, सा द्वादशाक्षरा भूत्वा तृतीयसवनमुदयच्छत् ।।३।।

हिन्दी—(अब जगती के अवशिष्ट एक अक्षर के अतिरिक्त ग्यारह अक्षरों की प्राप्ति का प्रकार दिखला रहे हैं—) **एकाक्षरा जगती** एक अक्षर वाली जगती **तृतीयसवनम् उद्यन्तुम्** तृतीयसवन का निर्वहन करने में **न अशक्नोत्** समर्थ नहीं हुई। **ताम्** उस (जगती) से **गायत्री अब्रवीत्** गायत्री ने कहा कि **मे अपि अत्र अस्तु** यदि मेरा भी इस (तृतीय-

(१) मरुत्वतीयशस्त्रविधिः द्वादशाध्याये ४-९ खण्डे आम्नातः।
(२) ऋ० ८.६७.२,३ इति द्वे; ८.२.१-३ इति तिस्रश्च = इति पञ्च।

सवन) में (भाग) मिले तो **आयानि** तो मैं (तुम्हारी सहायता के लिए) आऊँ। **सा जगती तथा इति अब्रवीत्** उस जगती ने कहा कि ठीक है। **एतैः एकादशभिः अक्षरैः** इन ग्यारह अक्षरों के साथ **मा ताम्** मेरे उस (एक अक्षर) से **उपसन्धेहि** मिल जाओ। **तथेति** (तब गायत्री ने कहा कि) वैसा ही हो। **ताम् उपसमदधात्** (तब वह) उससे संयुक्त हो गयी। **एतद्वै** यही **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **यद् वैश्वदेवस्य उतरे प्रतिपद्** जो वैश्वदेव शस्त्र के तृच के प्रारम्भ रूप अन्तिम दो प्रतिपद ऋचाएँ है और **यः च अनुचरः** जो अनुचर रूप (तृच) है **तद् गायत्र्यै** वै गायत्री छन्द वाली हैं। **सा द्वादशाक्षरा भूत्या** इस प्रकार वह (जगती) बारह अक्षरों वाली होकर **तृतीयसवनम् उदयच्छत्** तृतीयसवन का निर्वाह किया।

सा० भा०—वैश्वदेवशस्त्रस्य प्रतिपदनुचरावुपरिष्टादुदाहरिष्येते॥

उक्तमर्थं निगमयति—

ततो वा अष्टाक्षरा गायत्र्यभवदेकादशाक्षरा त्रिष्टुब्द्वादशाक्षरा जगती॥४॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ को निगमित कर रहे हैं—) **ततः वै** तब से **अष्टाक्षरा गायत्री** गायत्री आठ अक्षरों वाली, **एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् ग्यारह अक्षरों वाली और **द्वादशाक्षरा जगती** जगती बारह अक्षरों वाली **अभवत्** हुई।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वैश्छन्दोभिः समावद्वीर्यैः समावज्जामिभी राध्नोति य एवं वेद॥५॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **समावद्वीर्यैः** समान सामर्थ्य, **समावज्जामिभिः** समान बन्धुओं और **सर्वैः छन्दोभिः** सभी छन्दों द्वारा समृद्धि को प्राप्त करता है।

गायत्रीं विशेषविशेषेण प्रशंसति—

एकं वै सत् तत् त्रेधाऽभवत्, तस्मादाहुर्दातव्यमेवं विदुष इत्येकं हि सत् तत् त्रेधाऽभवत्॥६॥

हिन्दी—(गायत्री की विशेष रूप से प्रशंसा कर रहे हैं—) **एकं सत्** एक होती हुई भी **तत्** वह (गायत्री) **त्रेधा भवति** तीन प्रकार की होती है। **तस्माद् आहुः** इसीलिए (धर्मज्ञ लोग) कहते हैं कि **एवं विदुषः** इस प्रकार (गायत्री को) जानने वाले विद्वान् को **दातव्यम्** (सुवर्ण इत्यादि) प्रदान करना चाहिए; क्योंकि **इत्येकं सत्** यह (गायत्री) एक होते हुए भी **त्रेधा अभवत्** तीन प्रकार की हो गयी।

सा० भा०—तद् गायत्र्याः स्वरूपं पूर्वं चतुरक्षररूपेणैकमेव, तत्पश्चादधिकाक्षर-चतुष्टयत्वसंपादनेन स्वकीयानामष्टाक्षराणां त्रिष्टुब्जगत्योः प्रवेशेन च त्रेधाऽभवत्। यस्मात्

ईदृशी गायत्र्या महिमा, तस्मात् 'एवंविदुषे' गायत्रीमहिमानं ज्ञातवते पुरुषाय लोके सुवर्णादिकं दातव्यम्, 'इति' एवं धर्मरहस्यविदः प्राहुः। यस्माद् गायत्रीस्वरूपमेकमेव सत्त्रेधाऽभूत् तस्मात् तद् विदे दानमुचितमेवेत्युपसंहारार्थं पुनर्वचनम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—एवं तावत् तृतीयसवनमवतारयितुं सोमाहरणकथा वर्णिता। अथ तृतीयसवनमुच्येत,—तत्र वैश्वदेवाग्निमारुतयोः क्लृप्तिः संगृह्यते—

"स्याद्वैश्वदेवे सवितुः पुनस्तु द्यावापृथिव्यार्भववैश्वदेविका।
वैश्वानरीयं मरुतां च शंसनं स्युर्जातवेदस्यामिहाऽऽग्निमारुते" ॥

तृतीयसवनस्याऽऽदावादित्यग्रहं विधत्ते—

(तृतीयसवनस्यादा आदित्यग्रहविधानम्)

ते देवा अब्रुवन्नादित्यान्,–युष्माभिरिदं सवनमुद्यच्छामेति, तथेति, तस्माद् आदित्यारम्भणं तृतीयसवनमादित्यग्रहः पुरस्तात् तस्य ॥१॥

हिन्दी—(तृतीयसवन के प्रारम्भ में आदित्य ग्रह का विधान कर रहे हैं—) **ते देवाः** उन देवताओं ने **आदित्यान् अब्रुवन्** आदित्यों से कहा कि **युष्माभिः** तुम लोगों के साथ **इदं सवनम्** इस तृतीयसवन का **उद्यच्छाम** हम लोग निर्वहन करें। **तथा इति** (उन आदित्यों ने कहा कि) वैसा ही किया जाय। **तस्मात्** इसी कारण **तृतीयसवनम्** तृतीयसवन **आदित्यारम्भणम्** आदित्यों से प्रारम्भ होने वाला होता है। **तस्य पुरस्तात्** इस (तृतीयसवन) के प्रराम्भ में ही **आदित्यग्रहः** आदित्यग्रह होता है।

सा० भा०—तृतीयसवनं निर्वहन्त्या जगत्या अक्षरसंपूर्तिमवगतवन्तः।[१] 'ते देवा' 'आदित्यान्' द्वादशसंख्याकान् प्रत्येवमब्रुवन्—हे आदित्या, युष्माभिः सहिता वयमिदं तृतीयसवनम् 'उद्यच्छाम' निर्वाहं करवामहा इति। आदित्याश्च तथेत्यङ्गीकृतवन्तः। यस्मादारम्भे देवैरादित्यसाहित्यं प्रार्थितं, 'तस्माद् आदित्यारम्भणं तृतीयसवनम्' आदित्यग्रह 'आरम्भणे' सर्वेषां ग्रहाणामादौ यस्य सवनस्य, तदिदमादित्यारम्भणं, स एवार्थ आदि-

(१) 'अक्षररूपां मूर्तिमवगतवन्तः'—इति ऐशियाटिक सो० मुद्रितपाठः।

त्यग्रह इत्यादिना स्पष्टीक्रियते। 'तस्य' तृतीयसवनस्य 'पुरस्तात्' आदावादित्यदेवताको ग्रहः कर्तव्यः ॥

तस्य ग्रहस्य याज्यां विधत्ते—

(आदित्यग्रहस्य याज्याविधानम्)

यजत्यादित्यासो अदितिर्मादयन्तामिति मद्वत्या, रूपसमृद्धया, मद्वद्वै तृतीयसवनस्य रूपम् ।। २ ।।

हिन्दी—(उस आदित्य ग्रह की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **'आदित्यासः अदितिर्मादयन्ताम्'** अर्थात् अदिति के पुत्र (आदित्यगण) और अदिति संन्तुष्ट होवे'—**इति मद्वत्या यजति** इस मद् शब्द से युक्त (याज्या से) यजन करता है, **रूपसमृद्धा** अतः यह रूप से समृद्ध है; क्योंकि **मद्वद् वै तृतीयसवनस्य रूपम्** मत् (हर्ष) शब्द से युक्त ही तृतीयसवन का रूप है।

सा० भा०—'आदित्यासः' अदितेः पुत्रा आदित्याः, ते च तन्माताऽदितिश्च 'मादयन्तां' ग्रहेणानेन तुष्यन्तु। 'इति' एषा[१] याज्या मद्वती। 'मदी हर्षे'—इत्यस्माद्धातोरुत्पन्नेन मच्छब्देन युक्ता।[२] तस्यामादित्यानामदितेश्च हर्षवर्णनाद् विक्षितदेवताविषयत्वेन रूपसमृद्धा। तृतीयसवनस्य स्वरूपमपि 'मद्वद्वै' हर्षोपेतमेव, तत्समाप्तौ देवतानां यजमानानामृत्विजां हर्षोत्पत्तेः॥[३]

इतरग्रहवत्प्रसक्तावनुवषट्कारभक्षौ प्रतिषेधति—

(आदित्यग्रहे अनुवषट्कारभक्षयोर्निषेधः)

नानुवषट्करोति[४] न भक्षयति संस्था वा एषा यदनुवषट्कारः, संस्थाभक्षः, प्राणा आदित्या, नेत् प्राणान् संस्थापयानीति ।। ३ ।।

हिन्दी—(इस ग्रह में वषट्कार और ग्रहभक्षण का निषेध कर रहे हैं—) **न अनुवषट्करोति** (याज्या के बाद) न तो अनुवषट्कार करता है और **न भक्षयति** न तो (ग्रहशेष का) भक्षण करता है; क्योंकि **यद् अनुवषट्कारः** जो अनुवषट्कार है **एषा संस्था** यह (कर्म का) समापन है तथा **संस्थाभक्षः** सोम का भक्षण करना भी (कर्म का समापन ही) है। **प्राणाः आदित्याः** प्राण आदित्य प्राण रूप है अतः (अनुवषट्कार और सोमभक्षण करके इस यजमान के) **प्राणान् न संस्थापयानि** प्राणों का समापन न करें।

---

(१) ऋ० ७.५१.२। (२) आश्व०श्रौ० ५.१७.३।

(३) 'ऋत्विग्यजमाना देवताश्चास्मिन् माद्यन्ति इति कृत्वा मद्वत् तृतीयसवनस्य रूपम्'—इति भट्टभास्करः।

(४) 'सर्वत्रानुवषट्कारो द्विदेवत्यर्तुग्रहादित्यसावित्रपात्नीवतवर्जम्'—इति—आप०श्रौ० १२.२४.२।

सा० भा०—अनुवषट्कारभक्षयोर्ग्रहसमाप्तिरूपत्वादात्यानां च प्राणरूपत्वादादित्यग्रहं समापयन्नहं प्राणानेव समापितवान् भविष्यामीति भीत्या तत्समाप्तिरूपावनुवषट्कारभक्षौ न कुर्यात्। 'नेत्' इति परिभवद्योतनार्थो निपातः।।

अथ सावित्रग्रहं वैश्वदेवशस्त्रस्य प्रतिपदं च विधत्ते—

(सावित्रग्रहस्य वैश्वदेवशस्त्रप्रतिपदः च विधानम्)

त आदित्या अब्रुवन् सवितारं त्वयेदं सह सवनमुद्यच्छामेति, तथेति, तस्मात् सावित्री प्रतिपद्भवति वैश्वदेवस्य, सावित्रग्रहः पुरस्तात् तस्य, यजति 'दमूना देवः सविता वरेण्य' इति मद्वत्या रूपसमृद्धया, मद्वद्वै तृतीयसवनस्य रूपं, नानुवषट्करोति, न भक्षयति, संस्था वा एषा यदनुवषट्कारः, संस्था भक्षः, प्राणः सविता, नेत् प्राणं संस्थापयानीति ।।४।।

हिन्दी—(आदित्यग्रह और वैश्वदेवशस्त्र के प्रतिपद् का विधान कर रहे हैं—) **ते आदित्याः** उन आदित्यों ने **सवितारम् अब्रुवन्** सविता से कहा कि **त्वया सह** तुम्हारे साथ **इदं सवनम् उद्यच्छाम** इस (तृतीय) सवन का हम लोग निर्वहन करें। **तथा इति** (सविता ने कहा कि) वैसा ही करें। **तस्मात्** इसी कारण **सावित्री वैश्वदेवस्य** ('तत्सवितुर्वृणीमहे' यह) सविता देवता वाली (ऋचा) वैश्वदेवशस्त्र का **प्रतिपद् भवति** प्रतिपद् (प्रारम्भ वाली ऋचा) होती है और **तस्य पुरस्तात्** उस (वैश्वदेवशस्त्र) के पहले **सावित्रग्रहः** सावित्रग्रह होता है। 'वसूनां देव सविता वरेण्यः' अर्थात् गृह के देवता सविता वरण करने योग्य हैं—**इति मद्वत्या रूपसमृद्धया** इस मद शब्द से युक्त और रूप से समृद्ध (ऋचा) से **यजति** याज्या करता है। **मद्वद् वै** (हर्ष वाचक) मद शब्द से युक्त ही **तृतीयसवनस्य रूपम्** तृतीयसवन का रूप है। **न अनुवषट् करोति** वह न तो अनुवषट्कार करता है और **न भक्षयति** न तो (ग्रहशेष का) भक्षण करता है; क्योंकि **यद् अनुवषट्कारः** जो अनुवषट्कार है **एषा संस्था वै** यह यज्ञ का समापन ही है और **संस्था भक्षः** (हविशेष का) भक्षण भी कर्म का समापन है। **प्राणः सविता** प्राण सवितारूप है। अतः **न इत् प्राणं संस्थापयानि** प्राण का समापन न करें।

सा० भा०—वैश्वदेवशस्त्रस्य 'तत्सवितुर्वृणीमहे'[1] इत्येषा सवितृदेवताका 'प्रतिपत्' प्रारम्भरूपा कर्तव्या।[2] 'दमूना देवः' इत्यादिका ग्रहस्य याज्या। सा व संहितायामनाम्नातत्वात् सूत्रकारेण पठिता।[3] तस्यां च, 'अमदन्नेन मिष्टयः' इति मदिधातुः प्रयुक्तः; तस्मादियं मद्वती। अन्यत् सर्वमादित्यग्रहवद् व्याख्येयम्।।

---

(१) ऋ० ५.८२.१। (२) आश्व०श्रौ० ५.१८.५। (३) आश्व०श्रौ० ५.१८.२।

अथ निवित्पदद्वारा सावित्रग्रहं प्रशंसति—

(निवित्पदद्वारा सावित्रग्रहप्रशंसनम्)

उभे वा एष एते सवने विपिबति यत्सविता,–प्रातःसवनं च तृतीयसवनं च, तद् यत् पिबवत् सावित्र्यै निविदः एदं पुरस्तात् भवति, मद्वदुपरिष्टात् उभयोरेवैनं तत्सवनयोराभजति, प्रातःसवने च तृतीयसवने च ।।५।।

हिन्दी—(अब निवित्पद द्वारा सावित्रग्रह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्सविता** जो सविता है **एषः** यह **यत् प्रातःसवनं च तृतीयसवनं च** प्रातःसवन और तृतीयसवन है, **एते उभे सवने** इन दोनों सवनों का **विपिबति** विशेषरूप से पान करता है। **तत्** तो **यत् पिबवत् सवित्र्यै निविदः पदम्** जो 'पिब्' शब्द से युक्त सविता देवता वाला निवित् पद **पुरस्तात्** पहले और **मद्वद् उपरिष्टात्** मद शब्द से युक्त बाद में **भवति** होता है। **तत्** उससें **एनम्** इस (सविता) को **प्रातःसवने च तृतीयसवने च** प्रातःसवन और तृतीय सवन–**उभयोः एव सवनयोः** दोनों सवनों में ही **आभजति** भागी बनाता है।

सा० भा०—ग्रहस्य देवता यः सविताऽस्ति, एष देवः प्रातःसवनं च तृतीयसवनं चेत्येते उभे अपि सवने 'विपिबति' विलक्षणत्वेन पिबति। तत्कथमिति? तदेवोच्यते—वैश्वदेवशस्त्रे 'सावित्र्यै' सवितृदेवताकाया निविदः पदं 'पिबवत्' पिबेतिधातुयुक्तं 'पुरस्तात्' आदौ भवति 'मद्वत्पदं'[१] इत्येतां[२] निविद आदौ प्रयुज्यमानं पदं 'पिबवत्पदम्'। तथाऽन्ते प्रयुज्यमानं 'सविता देव इह श्रवदिह सोमस्य मत्सत्'–इति[३] 'मद्वत्पदम्' अप्युदाहरणीयम्। तयोरूभयोः पदयोः सवनद्वयरूपयोर्विलक्षणत्वात् सवितुः पानमिति विलक्षणमिति च द्रष्टव्यम्। एवंविधसवितृदेवताकत्वात् प्रशस्तोऽयं ग्रह इत्यभिप्रायः। अथवा निवित्पदविधानार्थमिदं वाक्यं द्रष्टव्यम्।।

अथ तस्मिन् वैश्वदेवशस्त्रे 'एकाया च दशभिश्च स्वभूते' इत्येतां[४] वायुदेवताकामृचं विधत्ते—

(वैश्वदेवशस्त्रे वायुदेवताकर्चविधानम्)

बह्व्यः प्रातर्वायव्याः शस्यन्त, एका तृतीयसवने, तस्मादूर्ध्वाः पुरुषस्य भूयांसः प्राणा यच्चावाञ्चः ।।६।।

हिन्दी—(उस वैश्वदेवशस्त्र में वायुदेवता वाले ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **प्रातः** प्रातःसवन में **बह्व्यः वायव्याः** बहुत से वायु देवता वाले मन्त्र **शस्यन्ते** शंसित

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.१८.२। (२) निवि० ४.१। (३) निवि० ४.१५।
(४) सा च संहितायामनाम्नातेति सूत्रकारेण पठिता। द्र० आश्व०श्रौ० ५.१८.५।

किये जाते हैं किन्तु **तृतीयसवने एका** तृतीयसवन में केवल एक (ऋचा)। **तस्मात्** इसी कारण **पुरुषस्य ऊर्ध्वं** पुरुष के ऊपरी भाग (शिर) में **यत् च अवाञ्चः** जो निचले भाग की अपेक्षा **भूयांसः प्राणाः** (मुख, दो नाक, दो कान और दो नेत्र इस प्रकार सात संख्या में) अधिक प्राण होते हैं।

सा० भा०—'वायुरग्रेगाः' इत्याद्याः[१] वायव्या ऋचो 'बह्व्यः' प्रातःसवने शस्यन्ते। तृतीयसवने तु एकैव पूर्वोदाहृता। तस्मात् प्रातःसवने वायुदेवताकायां भूयस्त्वात् पुरुषस्यापि प्रातःसवनीयस्थानीये मुखे वर्तमानत्वाद् 'ऊर्ध्वाः' चक्षुर्घ्राणादयः 'प्राणाः' भूयांसः। 'यच्च' ये केचिद् 'अवाञ्चः' नाभेरर्वाचीने देशे वर्तमाना पायुगुह्यादयोऽवाञ्चः प्राणाः, अल्पीयांस इति शेषः॥

तस्मिन्नेव वैश्वदेवशस्त्रे द्यावापृथिवीदेवताकं सूक्तं विधत्ते—

(वैश्वदेवशस्त्रे द्यावापृथिवीदेवताकसूक्तम्)

द्यावापृथिवीयं शंसति, द्यावापृथिवी वै प्रतिष्ठे, इयमेवेह प्रतिष्ठाऽसावमुत्र, तद्यद् द्यावामृथिवीयं शंसति, प्रतिष्ठयोरेवैनं तत्प्रतिष्ठापयति ।।७।।

हिन्दी—(उस वैश्वदेवशस्त्र में द्यावापृथिवी देवता से सम्बन्धित सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **द्यावापृथिवीयं शंसति** द्यावापृथिवी देवता वाले (सूक्त) का शंसन करता है। **द्यावापृथिवी वै प्रतिष्ठे** द्युलोक और पृथिवीलोक दो ही आधार है। **इयमेव इह** यह (पृथिवी) ही इस (मनुष्यजन्म) में और **असौ अमुत्र** वह (द्युलोक) उस (जन्मान्तर) में (आधार है)। **तत्** तो **यद् द्यावापृथिवीयं शंसति** द्यु और पृथिवी देवता वाले (सूक्त) का शंसन करता है **तत्** उस (शंसन) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **प्रतिष्ठयोः एव** दोनों आधारों में ही **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—'इह' मनुष्यजन्मनि 'इयमेव' भूमिः 'प्रतिष्ठा' आश्रयः। 'अमुत्र' जन्मान्तरे 'असावेव' द्युलोकः प्रतिष्ठा' आश्रयः। एवं द्यावापृथिव्यावेव प्रतिष्ठे यस्मात्, तस्मात् तदीयसूक्तशंसनेन 'एनं' जयमानं प्रतिष्ठारूपयोर्द्यावापृथिव्योरेवावस्थापयति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये
तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के पञ्चम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.५.३। (वाज०सं० २७.३१)।

अथ षष्ठः खण्डः

'प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवीं ऋतावृधा'—इत्येतद् द्यावापृथिवीयं सूक्तं[1] विधाय, 'तक्षन् रथं सुवृतम्' इत्येतत्[2] आर्भवं सूक्तं विधत्ते—

(वैश्वदेवशस्त्र आर्भवसूक्तविधानम्)

आर्भवं शंसति ।।१।।

हिन्दी— ('प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी' इस द्यावापृथिवी देवताक सूक्त का विधान करके अब 'तक्षन् रथं सुवृतम्' इस ऋभुदेवताक सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **आर्भवं शंसति** ऋभु देवता वाले (सूक्त) का शंसन करता है।

सा० भा०—ऋभुनामका देवा यस्मिन् सूक्ते सन्ति, तदिदम् 'आर्भवः' तस्य सूक्तस्य प्रथमायामृचि तृतीयपादे 'तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद्वय' इति तद्दैवताकत्वं प्रतीयते।।

अथ धाय्ये विधातुमाख्यायिकामाह—

(तत्र धाय्याः विधातुमाख्यानम्)

ऋभवो वै देवेषु तपसा सोमपीथमभ्यजयंस्तेभ्यः प्रातःसवने वाचि कल्पयिषंस्तानग्निर्वसुभिः प्रातःसवनादनुदत, तेभ्यो माध्यंदिने सवने वाचि कल्पयिषंस्तानिन्द्रो रुद्रर्माध्यंदिनात् सवनादनुदत, तेभ्यस्तृतीय-सवने वाचि कल्पयिषंस्तान् विश्वे देवा अनोनुद्यन्त, नेह पास्यन्ति नेहेति स प्रजापतिरब्रवीत् सवितारं,—तव वा इमेऽन्तेवासास्त्व-मेवैभिः संपिबस्वेति, स तथेत्यब्रवीत् सविता;—तान् वै त्वमुभयतः परिपिबेति, तान् प्रजापतिरुभयतः पर्यपिबत् ।।२।।

हिन्दी—(अब धाय्या का विधान करने के लिए आख्यायिका का विधान कर रहे हैं—) **देवेषु** देवताओं के मध्य **ऋभवः** ऋभु देवों ने **तपसा** (अपनी) तपस्या से **सोमपीथम् अजयन्** सोमपान को जीत लिया। **तेभ्यः** उन (ऋभुओं) के लिए **प्रातःसवने** प्रातःसवन में (देवताओं) ने **वाचि कल्पयिषन्** (सोमपान के लिए) स्थान देने की इच्छा किया। **तान्** उन (ऋभुओं) को **वसुभिः अग्निः** वसुओं के साथ अग्नि ने **प्रातःसवनाद् अनुदत** प्रातःसवन से निराकृत कर दिया। (तब देवताओं ने) **तेभ्यः** उन (ऋभुओं) के लिए **माध्यन्दिने सवने** माध्यन्दिसवन में **वाचि कल्पयिषन्** वाणी स्थान देने की इच्छा किया। **तान्** उन (ऋभुओं) को **रुद्रैः इन्द्रः** रुद्रों के साथ इन्द्र ने **माध्यन्दिनात् सवनात्** माध्यन्दिनसवन से **अनुदत** निराकृत कर दिया। (तब देवताओं ने) **तेभ्यः** उन (ऋभुओं) के लिए **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **वाचि कल्पयिषन्** स्थान देने की इच्छा किया। **तान्**

---

(१) ऋ० १.१५९.१। (२) ऋ० १.१११.१।

उन (ऋभुओं) को **विश्वेदेवाः** विश्वेदेवों ने **अनोनुद्यन्त** अत्यधिक निराकृत कर दिया कि '**नेह नेह पास्यन्ति** ये इस (तृतीयसवन) में कदापि नहीं पान कर सकते। तब **सः प्रजापतिः** उस प्रजापति ने **सवितारम् अब्रवीत्** सविता से कहा कि **इमे** ये (ऋभुगण) **तव अन्तेवासाः एव** तुम्हारे समीप रहने वाले (शिष्य) हैं इस लिए **एभिः सह** इन (ऋभुओं) के साथ **संपिबस्व** अच्छी प्रकार से पान करो। **सः सविता तथा इत्यब्रवीत्** उस सविता ने कहा कि ठीक है किन्तु **त्वम् वै** तुम भी **तान् उभयतः परिपिब** उनके दोनों ओर खड़े होकर पान करो। तब **प्रजापतिः** प्रजापति ने **तान् उभयतः पर्यपिबत्** उनके दोनों ओर होकर पान किया।

सा० भा०—देवेषु सर्वेषु मध्य ऋभुनामकाः केचन देवत्वं प्राप्ता मनुष्यविशेषाः[१] प्रजापतिमुद्दिश्य तपः कृत्वा तेन तपसा 'सोमपीथमभ्यजयत्' सोमपानमभिलक्ष्य जितवन्तः, प्रजापतेः सकाशात् तल्लब्धवन्त इत्यर्थः। स प्रजापतिरन्या देवताश्च 'तेभ्यः' ऋभुभ्यः प्रातःसवने वाचि 'कल्पयिषन्' सोमपानं कल्पयितुमैच्छन् तदानीं प्रातःसवनाभिमानी 'अग्निः' देवः स्वभृत्यैः 'वसुभिः' सह तस्मान् प्रातःसवनात् तानृभून् 'अनुदत' निराकरोत्। तथेन्द्रो रुद्रैः सह माध्यंदिनात् सवनान्निराकरोत्। विश्वे देवास्तृतीयसवनाद् 'अनोनुद्यन्त' भृशं निराकुर्वन्। निराकरणप्रकारः स च 'नेहेति'–वाक्येन पुनः पुनरनूद्यते। 'इह' तृतीयसवन ऋभवो न पास्यन्ति। विश्वेषां देवानां प्रत्येकं निराकरणवाक्येन संबन्धान्नेहेति नियुक्तम्। ततः स प्रजापतिर्निराकृतान् ऋभून् दृष्ट्वा सवितारमब्रवीत्,—हे सवित, तव 'इमे' ऋभवः 'अन्तेवासाः समपीवासिसिनः शिष्याः, अतस्त्वमेवैभिः सह सम्यक् पिबस्व। तथेत्यङ्गीकृत्य सविता प्रजापतिमिदमब्रवीत्,—हे प्रजापते, त्वं 'तान् वै' तानेवं ऋभून् 'उभयतः' 'पिब' तेषामृभूणामुभयोः पार्श्वयोः स्थित्वा त्वमपि सोमपानं कुरु। एवमुक्तः प्रजापतिस्तथैवाकरोत्॥

अथ धाय्ये विधत्ते—

(धाय्याविधानम्)

ते एते धाय्ये अनिरुक्ते प्राजापत्ये शस्येते अभित आर्भवं,–'सुरूपकृत्नुमूतयेऽयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा' इति–प्रजापतिरेवैनांस्तदुभयतः परिपिबति, तस्मादु श्रेष्ठी पात्रे रोचयत्येव यं कामयते तम् ॥ ३ ॥

हिन्दी—(अब दो धाय्याओं का विधान कर रहे हैं—) **आर्भवम् अभितः** ऋभुदेवता वाले (सूक्त) के दोनों ओर (आगे और पीछे क्रमशः) 'सुरूपकृत्नुमूतये' और 'अयं

(१) 'ऋभुर्विभ्वा वाज इति सुधन्वन आङ्गिरसस्य त्रयः पुत्रा बभूवुः। तेषां प्रथमोत्तमाभ्यां बहुवन्निगमा भवन्ति, न मध्यमेन। तदेतदृभोश्च बहुवचनेन चमसस्य च संस्तवेन बहूनि दशतयीषु सूक्तानि भवन्ति। आदित्यरश्मयोऽप्यृभव उच्यन्ते'—इति निरु० ११.२.४।

वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा'—**इति ते एते** ये दो **अनिरुक्ते प्राजापत्ये** अनिरुक्त प्रजापति देवता वाली (जिनमें प्रजापति का नाम उक्त नहीं है ऐसी) **धाय्ये** दो धाय्या **शस्येते** शंसित की जाती हैं। **तत्** इन (दोनों ओर धाय्या के शंसन) से **एनाम् उभयतः** इस ऋभुओं के दोनों ओर होकर **प्रजापतिः परिपिबति** प्रजापति पीते हैं। **तस्मादु** इसी कारण **श्रेष्ठी यं कामयते** (लोक में) श्रेष्ठी (अन्नसम्पन्न व्यक्ति) जिसकी कामना करता है **तम्** उसको **पात्रे रोचयति** एक पात्र (प्रतिग्रह के योग्य स्थान) में हठात् प्रकट ही करता है।

सा० भा०—'सुरूपकृत्नुम्' इत्येका धाय्या[1] 'अयं वेन:'[2] इति द्वितीया; ते एते धाय्ये आर्भवसूक्ते 'अभितः शस्येते'। 'सुरूपकृत्नुम्' इत्येषा सूक्तान् पूर्वं शंसनीया। 'अयं वेन:' इत्येषा सूक्तात् पश्चाच्छंसनीया। कीदृश्यौ धाय्ये? 'अनिरुक्ते' निःशेषेणोक्तो देवो निरुक्तः, तादृशो ययोर्धाय्ययोर्नास्ति, ते अनिरुक्ते[3]। न खल्वनयोर्ऋचोरीदृशो देव इति सहसा निर्णेतुं शक्यते। प्रजापतेरपि जगत्सृष्टेः पूर्वं मूर्तस्य निर्वक्तुमशक्यत्वात् सोऽप्यनिरुक्तः, अतो योग्यत्वात् ते उभे प्रजापतिदेवताके। एतयोर्धाय्ययो शंसने प्रजापतिरेवैनानृभूनुभयतः परिपिबति। यस्मात् प्रजापतिरग्निर्वस्वादिदेवतानामृभुषु रुच्यभावे सति पितृद्वारा बलात् रुचिमुत्पादितवांस्तस्मादु तस्मादेव कारणाल्लोकेऽपि श्रेष्ठी[4] कश्चिद्धनपतिर्यं स्वकीयं भृत्यमितरैरङ्गीकृतमपि सर्वेभ्यो रोचयितुं कामयते तं भृत्यामाचारहीनं पात्रे प्रतिग्रहयोग्यस्थाने बलात् सर्वेभ्यो रोचयत्येव॥

अथापरमृग्द्वयं विधत्ते—

(अपरर्ग्द्वयंविधानम्)

तेभ्यो वै देवा अपैवाबीभत्सन्त मनुष्यगन्धात्, त एते धाय्ये अन्तरदधत, 'येभ्यो मातैवा पित्रे' इति ।।४।।

हिन्दी—(इसके बाद अन्य दो ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) **देवाः** (इन्द्रादि) देवताओं ने **तेभ्यः** उन (ऋभुओं) के लिए **मनुष्यगन्धात्** मनुष्य की गन्ध होने के कारण **अपैव अबीभत्सन्त** स्वयं अपगत होकर घृणा करने लगे। **ते** उन (देवताओं) ने 'येभ्यो माता' और 'एवा पित्रे'—**इति एते धाय्ये** इन दो धाय्या को **अन्तः अदधत्** (ऋभुओं और इन्द्रादि अन्य देवताओं के मध्य में रख दिया।

सा० भा०—अग्निवस्वाद् 'देवाः' 'तेभ्यः' ऋभुभ्यः 'अपैव' स्वयमपगता एव

---

(१) ऋ० १.४.१। (२) ऋ० १०.१२३.१। (३) तु० ऐ०ब्रा० २९.४।

(४) 'तस्मात् तथाहि श्रेष्ठी तु प्रशस्यगुणसंयुतः ।
स्वसमीपस्थापनेन प्रकाशयति सत्सु तम् ।।
यं श्रद्दधाति पुनरु पात्रे पानादिकर्मणि ।
विदुषा पूजितं तं तु लोकोऽथ बहुमन्यते ।।'—इति षड्गुरुशिष्यः।

सन्तः 'अबीभत्सन्त' एवं मनसि बीभत्सां कृतवन्तः। कस्मात्कारणादिति? तदुच्यते—'मनुष्यगन्धात्' इति। एते मनुष्या अस्मत्पङ्क्तियोग्या न भवन्तीति शङ्क्येत्यर्थः। बीभत्सां प्राप्य 'ते एते' वक्ष्यमाणे द्वे धाय्ये 'अन्तरदधत' ऋभूणामग्न्यादीनां च मध्येऽन्तर्धानं व्यवधानमकुर्वत। के ते धाय्ये? इत्युच्येते—'येभ्यो माता मधुमत्'[1] इत्येका। 'एवा पित्रे विश्वदेवाय'[2] इत्यपरा अयं वेनः' इत्येतस्मात् पूर्वमेतदुभयं शंसेदित्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—अथ विश्वदेवदेवताकम् 'आ नो भद्राः' इत्येतत् सूक्तं[3] विधत्ते—

(वैश्वदेवशस्त्रविधानम्)

(तत्र वैश्वदेवसूक्तविधानम्)

वैश्वदेवं शंसति ।।

हिन्दी—**वैश्वदेवं शंसति** विश्वेदेवों से सम्बन्धित (सूक्त) का शंसन करता है।

सा० भा०—लौकिकदृष्टान्तेन प्रशंसन्नाहावं[4] विधत्ते—

(पर्याहावप्रशंसनम्)

यथा वै प्रजा एवं वैश्वदेवं, तद् यथाऽन्तरं जनता एवं सूक्तानि, यथाऽरण्यान्येवं धाय्याः, तदुभयतो धाय्यां पर्याह्वयते, तस्मात् तान्यरण्यानि सन्त्यनरण्यानि मृगश्च वयोभिश्चेति ह स्माऽऽह ।।१।।

हिन्दी—(इसके बाद 'आनो भद्रा' इस विश्वे देवों से सम्बन्धित सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **यथा वै प्रजा** जिस प्रकार (लोक में) प्रजा (प्रजा का निवासस्थान राष्ट्र) है, **एवं वैश्वदेवम्** उसी प्रकार वैश्वदेवशस्त्र है। **तद्** तो **यथा अन्तरं जनता** जिस प्रकार (राष्ट्र में) जनता होती है **एवं सूक्तानि** उसी प्रकार (वैश्वदेवशस्त्र में) सूक्त होते हैं। **यथा अरण्यानि** जिस प्रकार (राष्ट्र में) अरण्य होते हैं **एवं धाय्या** उसी प्रकार (वैश्वदेवशस्त्र में) धाय्या होती

---

(१) ऋ० १०.६३.३। (२) ऋ० ४.५०.६; द्र० आश्व०श्रौ० ५.१८.५।
(३) ऋ० १.८९.१।
(४) द्र० आश्व०श्रौ० ५.९.३। 'आहाव आह्वानात्'–इति निरु० ५.४.८।

है। **तद् धाय्याम्** उस (अरण्य स्थानीय) धाय्या को **उभयतः पर्याह्वयते** दोनों ओर से (शोंसावोम् मन्त्र से) पर्याहाव किया जाता है। **तस्मात्** इसी कारण (लोक में भी) **तानि अरण्यानि** वे (निर्जन) अरण्य **मृगैः वयोभिः च** मृगों और पक्षियों से युक्त होने कारण **अनरण्यानि सन्ति** अनरण्य (मृगादि से रहित नहीं) होते हैं—**इति ह स्म आह** ऐसा (किसी अभिज्ञ ने) कहा है।

सा० भा०—लोके यथा प्रजा, एवमत्र 'वैश्वदेवं' शस्त्रं; प्रजाशब्देन तन्निवासस्थानं राज्यमुपलक्ष्यते, राज्यसदृशं शस्त्रमित्यर्थः। 'तत्' तत्र प्रजाशब्देन राज्ये विवक्षिते, राज्ये 'अन्तरम्' अभ्यन्तरे 'जनताः' जनसमूहा यथा तिष्ठन्ति, एवं तस्मिन् शस्त्रे सूक्तानि तिष्ठन्ति। यथा अरण्यानि राज्ये क्वचित्क्वचिद् भवन्ति, एवमस्मिन् शस्त्रे धाय्याः क्वचित् प्रक्षिप्यन्ते। तथा सत्यरण्यस्थानीयां धाय्यामुभयतः पर्याह्वयते। 'शोंसावोम्' इत्येष मन्त्रः 'पर्याहावः'। अस्य धाय्यायाः पार्श्वयोर्यस्मात् पाठः, तस्माल्लोकेऽपि बहुवृक्षसंकीर्णानि स्थानानि स्वभावतोऽरण्यानि मनुष्यशून्यानि सन्त्यपि मृगैश्च पक्षिभिश्च संकीर्णत्वाद् 'अनरण्यानि' अशून्यानि एवेति कश्चिदभिज्ञ आह स्म।

एवमेकेन दृष्टान्तेन पर्याहावं प्रशस्य पुनरप्यन्येन दृष्टान्तेन प्रशंसति—

यथा वै पुरुष एवं वैश्वदेवम्, तस्य यथाऽवान्तरमङ्गान्येवं सूक्तानि, यथा पर्वाण्येवं धाय्याः तदुभयतो धाय्यां पर्याह्वयते, तस्मात् पुरुषस्य पर्वाणि शिथिराणि सन्ति दृहळानि, ब्रह्मणा हि तानि धृतानि।।२।।

हिन्दी—(अन्य उदाहरण द्वारा पर्याहाव की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यथा वै पुरुषः** (लोक में) जैसे पुरुष होता है **एवं वैश्वदैवम्** उसी प्रकार वैश्वदेवशस्त्र है। **यदा तस्य अवान्तरम् अङ्गानि** जिस प्रकार उस (पुरुष) के अवान्तर अङ्ग होते हैं **एवं सूक्तानि** उसी प्रकार (वैश्वदेवशस्त्र में) सूक्त होते हैं। **यथा पर्वाणि** जिस प्रकार (पुरुष में अङ्गों की) सन्धियाँ हैं, **एवं धाय्याः** उसी प्रकार धाय्या हैं। **तत्** इससे **धाय्याम् उभयतः** धाय्या के दोनों ओर **पर्याह्वयते** पर्याहाव किया जाता है। **तस्मात्** इसी कारण **पुरुषस्य शिथिराणि पर्वाणि** पुरुष की शिथिल पर्व (सन्धियाँ) **दृणानि सन्ति** दृढ होती हैं; क्योंकि **ब्रह्मणा हि** (आहावरूप) ब्रह्म के द्वारा **तानि धृतानि** (धाय्या रूप) वे (सन्धियाँ) धारण (दृढ़) की गयी हैं।

स० भा०—लोके यथा पुरुषो हस्तपादादिमान्, मनुष्यदेहः, तद् इदं वैश्वदेवशस्त्रम्। 'तस्य' शरीरस्य 'अवान्तरम्' अभ्यन्तरप्रदेशम् 'अङ्गानि' अवयवा यथा वर्तन्ते, एवं शस्त्रस्याभ्यन्तरे सूक्तानि निविष्टानि। यथा तेषामवयवानां संधयः, एवमेता धाय्याः शस्त्रे प्रयत्नेन धारितानि दृढानि संपद्यन्ते। 'ब्रह्म वा आहावः' इति श्रुतत्वाद् आहावरूपेण ब्रह्मणैव धाय्यारूपाणि पर्वाणि धृतानि भवन्ति।।

अथ धाय्यानां शस्त्रयाज्यानां च प्रकृतौ विकृतौ चान्यत्वं निराकृत्यैकरूपत्वं विधत्ते—

मूलं वा एतद् यज्ञस्य यद्धाय्याश्च याज्याश्च, तद् यदन्या अन्या धाय्याश्च याज्याश्च कुर्युरुन्मूलमेव तद् यज्ञं कुर्युस्तस्मात् ताः सामान्य एव स्युः ।।३।।

हिन्दी—(धय्या और शस्त्रयाज्यों के प्रकृत और विकृत में अन्यत्व का निराकारण करके एकरूपता कर विधान कर रहे हैं—) **यद् धाय्या च याज्या च** जो धाय्या और याज्या है **एतत्** यह **यज्ञस्य मूलम्** यज्ञ का मूल है। **तत्** तो **यद् अन्या धाय्या च अन्या याज्या च कुर्युः** जो अन्य धाय्या और अन्य याज्या को करता है **तत्** उससे **यज्ञम् उन्मूलम् एव कुर्युः** यज्ञ रूप (वृक्ष) को मूलरहित करता है। **तस्मात्** इसी कारण **ते** वे दोनों **सामान्ये एव स्युः** समान प्रकार वाले ही करने चाहिए।

सा० भा०—धाय्यानां शस्त्रयाज्यानां वृक्षमूलवद् यज्ञमूलता। तत्प्रकृतिगताः परित्यज्य विकृतावन्यस्वीकारे यज्ञरूपो वृक्ष उन्मूलितः स्यात्। तस्मात् प्रकृतौ याः सन्ति, ता एव विकृतावित्युभयत्र 'समान्य एव' एकविधा एव कर्तव्याः।।

वैश्वदेवशस्त्रमवयवशः प्रशस्य समुदायाकारेण प्रशंसति—

पाञ्चजन्यं वा एतदुक्थं यद् वैश्वदेवम्; सर्वेषां वा एतत् पञ्चजनानामुक्थं,–देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितॄणां च; एतेषां वा एतत् पञ्चजनानामुक्थं; सर्व एनं पञ्चजना विदुः ।।४।।

हिन्दी—(वैश्वदेवशस्त्र की अवयव रूप से प्रशंसा करके समुदाय रूप से प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् वैश्वदेवम्** जो वैश्वदेवशस्त्र है, **एतत् पाञ्चजन्यं वै उक्थम्** यह पाँच प्रकार के लोगों से सम्बन्धित शस्त्र है। **एतत् सर्वेषां पञ्चजनानाम् उक्थम्** यह सभी पाँच प्रकार के लोगों का शस्त्र है। **देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितॄणं च** देवों, मनुष्यों, गन्धर्व-अप्सराओं, सर्पों और पितरों—**एतेषां पञ्चजनानाम्** इन पञ्चजनों का **एतद् उक्थम्** यह शस्त्र है, अतः **सर्वे पञ्चजनाः** सभी पञ्चजन **एनम्** इस (शस्त्र के शंसन करने वाले होता) को **विदुः** जानते हैं।

सा० भा०—यद् वैश्वदेवनामकम् 'उक्थं' शस्त्रमस्ति, तदेतत् 'पाञ्चजन्यं वै' पञ्चविधानां जनानां संबन्ध्येव। स एवार्थः सर्वेषामित्यादिना स्पष्टीक्रियते,—ये पञ्चविधा जनाः सन्ति, तेषां सर्वेषामेव संबन्ध्येतच्छस्त्रम्। पञ्चविधत्वमेव मनुष्याणामित्यादिनोच्यते,—अग्नीन्द्रादिदेवगण एको वर्गः ब्रह्मक्षत्रियादिमनुष्यगणो द्वितीयो वर्गः, गन्धर्वाणामप्सरसां वर्गस्तृतीयः, सर्पाणां वर्गश्चतुर्थः, पितॄणां वर्गः पञ्चमः।[१] एतेषां पञ्चविधानां जनानां

(१) 'गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके, चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चमः इत्यौपमन्यवः'—इति निरु० ३.२.२।

तुष्टिहेतुत्वात् तदीयमेतच्छस्त्रम्। 'एनं' वैश्वदेवशस्त्रस्य शंसितारं होतारं सर्वे पञ्चजनाः 'विदुः' जानन्ति, तेष्वस्य कीर्तिः प्रसरतीत्यर्थः।।

वेदनं प्रशंसति—

एनं पञ्चिन्यै जनतायै हविनो गच्छन्ति, य एवं वेद ।।५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **एनम्** इस (ज्ञाता) के समीप **हविनः** हविष प्रदान करने वाले लोग **पञ्चिन्यै जनतायै** इन पञ्चजनों की प्रसन्नता के लिए **गच्छन्ति** जाते हैं।

सा० भा०—जनानां देवमनुष्याणां समूहो 'जनता'। सा च पञ्चसंख्योपेतत्वात् 'पञ्चिनी' तस्यै, तत्प्रीत्यर्थं 'हविनः' होतुं कुशलाः पुरुषाः 'एनं' वेदितारमागच्छन्ति।।

अथ शंसनपूर्वकाले दिग्ध्यानं विधत्ते—

(वैश्वदेवशस्त्रस्य शंसनकाले दिग्ध्यानविधानम्)

सर्वदेवत्यो वा एष होता यो वैश्वदेवं शंसति, सर्वा दिशो ध्यायेच्छंसिष्यन्, सर्वास्वेव तद् दिक्षु रसं दधाति ।।६।।

हिन्दी— (अब वैश्वदेवशस्त्र के शंसन के समय होता द्वारा किये जाने वाले दिग्ध्यान का विधान कर रहे हैं—) **यः वैश्वदेवं शंसति** जो वैश्वदेवशस्त्र का शंसन करता है, **एषः होता** वह होता **सर्वदेवत्यः वै** सभी देवताओं से ही सम्बन्धित होता है। अतः **शंसिष्यन् सर्वा दिशः ध्यायेत्** (वैश्वदेवशस्त्र का) शंसन करने हुए सभी दिशाओं का ध्यान करे। **तत्** इस (सभी दिशाओं के ध्यान) से **सर्वासु दिक्षु** सभी दिशाओं में **रसं दधाति** रस को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—'यः' होता 'वैश्वदेवं' शस्त्रं शंसति, 'एषः' 'सर्वदेवत्यो वै' सर्वा देवता अस्येति, तत्परितोषहेतुरित्यर्थः। अतः सोऽयं शंसितुमुद्युक्तः सर्वा दिशो मनसा ध्यायेत्, तेन शंसनेन सर्वास्वेव तद्दिक्षु रसं दधाति।।

क्वचिद् ध्यानं विधत्ते—

(होतुः ध्यानकाले विशेषः)

यस्यामस्य दिशि द्वेष्यः स्यान्न तां ध्यायेत्, अनुहायैवास्य तद्वीर्यमादत्ते।।७।।

हिन्दी—(होता के दिग्ध्यान करने के विषय मे विशेष बतला रहे हैं—) **यस्यां दिशि** जिस दिशा में **अस्य** इस (होता) का **द्वेष्यः स्यात्** शत्रु हो **तां न ध्यायेत्** उस दिशा का ध्यान नहीं करना चाहिए। **तत्** इससे **अनुहाय** (इस शत्रु के) पीछे जाकर **अस्य वीर्यम्** इस (शत्रु) के बल को **आदत्ते** ले लेता है।

सा० भा०—'अस्य' हेतुः 'द्वेष्यः' शत्रुर्यस्यां दिशि वसति, तामेकां दिशं न ध्यायेत्। तथा सति, 'अनुहायैव' द्वेष्यस्य पृष्ठतो गत्वैव तदीयं वीर्यं सर्वं स्वीकरोति॥

शस्त्रस्य परिधानीयामृचं विधत्ते—

(वैश्वदेवशस्त्रस्य परिधानीयर्ग्विधानम्)

'अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्'[१] इत्युत्तमया परिदधाति। इयं वा अदिति-रियं द्यौरियमन्तरिक्षम् ॥८॥

हिन्दी—(वैश्वदेवशस्त्र की परिधानीय ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'अदिति-र्द्यौरदितिरन्तरिक्षम्' अर्थात् अदिति ही द्यौ है और अदिति ही अन्तरिक्ष है' **इति उत्तमया परिदधाति** (सूक्त की) इस अन्तिम (ऋचा) से (कर्म की) समाप्ति करता है। **इयं वै अदितिः** यह (पृथिवी) ही अदिति है **इयं द्यौ** यह (अदिति) द्यौ है और **इयम् अन्तरिक्षम्** वह (अदिति) अन्तरिक्ष भी है।

सा० भा०—अखण्डितत्वाद् अदीनत्वाद् वा[२] भूमिरेवादितिरित्युच्यते। सेयं भूमिरेव द्युलोकरूपाऽन्तरिक्षरूपा च; अस्यां भूमौ कर्म कृत्वा तत्तल्लोकप्राप्तेः संपादयितुं शक्यत्वात्॥

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'अदितिर्माता स पिता स पुत्रः' इति। इयं वै मातेयं पितेयं पुत्रः ॥९॥

हिन्दी—(ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **अदितिर्माता** अदिति माता है **सः पिता** वह (अदिति) ही पिता है और **सः पुत्रः** वह (अदिति) ही पुत्र भी है। **इयं वै माता** यह (पृथिवी) ही माता है **इयं पिता** यही (पृथिवी) पिता है और **इयं पुत्रः** यह (पृथिवी ही) पुत्र है।

सा० भा०—येयमदितिर्भूमिः, सैव माता; सोऽदितिरूप एव पिता, सोऽदितिरूप एव पुत्रः। 'इयं वा' इत्यादिनोक्तार्थप्रसिद्धिरुच्यते—सत्यां भूमौ मातापितृपुत्रादिभिरव-स्थातुं शक्यत्वात् तेषामदितिरूपत्वं प्रसिद्धमित्यर्थः॥

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना' इत्यस्यां वै विश्वे देवा अस्यां पञ्चजनाः ॥१०॥

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजनाः' **अर्थात्** अदिति ही सम्पूर्ण देवता और पञ्चजन है। **अस्यां वै**

---

(१) ऋ० १.८९.१०।
(२) द्र० अदितिरदीना—इति निरु० ४.४.१; ११.३.२।

विश्वेदेवाः इस (पृथिवी) पर ही सम्पूर्ण देवता और **अस्याम् पञ्चजनाः** इस (पृथिवी) पर ही पञ्चजन निवास करते हैं)।

सा० भा०—विश्वेषां देवानां भूमौ मनुष्यैः पूज्यमानत्वात् पञ्चजनानां देवमनुष्यादीनां भूमाववस्थानाद् अदितेस्तद्रूपत्वम्।।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्' इति। इयं वै जातमियं जनित्वम् ।।११।।

हिन्दी—(ऋचा के चतुर्थ पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्' अर्थात् अदिति ही उत्पन्न हुई प्रजा है और अदिति ही पैदा होने वाली प्रजा भी है'। **इयं वै जातम्** यह (पृथिवी) ही उत्पन्न प्रजा है और **इयं जनित्वम्** यह (पृथिवी) ही उत्पन्न होने वाली प्रजा भी है।

सा० भा०—'जातं' पूर्वमुत्पन्नं प्राणिरूपं, 'जनित्वम्' इतः परमुत्पत्स्यमानं प्राणिरूपम्, तयोरुभयोर्भूमौ संभवाद् अदितेस्तद्रूपत्वम्।।

परिधानीयाया अस्या ऋचः शंसने प्रकारविशेषं विधत्ते—

(परिधानीयर्क्शंसने विशेषः)

द्विः पच्छः परिदधाति, चतुष्पादा वै पशवः पशूनामवरुद्ध्यै, सकृदर्धर्चशः, प्रतिष्ठाया एव, द्विप्रतिष्ठो वै पुरुषश्चतुष्पादाः पशवो, यजमानमेव तद् द्विप्रतिष्ठं चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति ।।१२।।

हिन्दी—(इस परिधानीय ऋचा के शंसन के विषय में विशेष विधान कर रहे हैं—) **चतुष्पादाः वै पशवः** पशु चार पादों वाले होते हैं अतः **पशूनाम् अवरुद्ध्यै** पशुओं की प्राप्ति के लिए **द्वि पच्छः परिदधाति** इस ऋचा के प्रत्येक पाद पर अवसान करके दो बार शंसन करता है। **सकृद् अर्धर्चशः** (तृतीय आवृति में) एक बार अर्धर्च पर विराम करके (शंसन करना चाहिए)। **प्रतिष्ठायै एव** (यह यजन करने वाले की) प्रतिष्ठा के लिए होता है। **द्विप्रतिष्ठः वै पुरुषः** क्योंकि पुरुष दो पादों वाले होते हैं और **चतुष्पादाः पशवः** पशु चार पादों वाले होते हैं। **तत्** इससे **यजमानमेव द्विप्रतिष्ठम्** दो पाद वाले यजमान को **चतुष्पात्सु पशुषु** चार पादों वाले पशुओं में **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—'त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमामन्वाह'—इति विधेः[१] सार्वत्रिकत्वादस्याः परिधानीयायास्त्रिरावृत्तिः प्राप्ता। तत्र द्वयोरावृत्त्योः 'पच्छः' शंसेत्। एकैकस्मिन् पादेऽवसायावसाय शंसनं कुर्यात्। तत्र पादानां चतुष्टयेन पशुसाम्यात् पशुप्राप्तिर्भवति। तृतीयस्यामावृत्ता-

(१) तै०सं० २.५, ७.१।

वर्धर्चशः[१] शंसेत्। अर्धर्चेऽवसाय पठेदित्यर्थः। तच्च प्रतिष्ठायै स्थैर्येणावस्थानार्थमेव भवति। किंच पुरुषोऽयं 'द्विप्रतिष्ठ' पादद्वयोपेतः, पशवश्चतुष्पादाः, तथा सत्युभयविधशंसनेन द्विपादं यजमानमेव चतुष्पात्सु पशुषु प्रतिष्ठापयति॥

परिधानकाले भूमिस्पर्शं विधत्ते—

(परिधानकाले भूमिस्पर्शविधानम्)

सदैव पञ्चजनीयया परिदध्यात्, तदुपस्पृशन् भूमिं परिदध्यात्, तद् यस्यामेव यज्ञं संभरति, तस्यामेवैनं तदन्ततः प्रतिष्ठापयति ॥१३॥

हिन्दी—(कर्म के समापन के समय भूमिस्पर्श का विधान कर रहे हैं—) **सदैव पञ्चजनीयया परिदध्यात्** सभी (यज्ञानुष्ठानों) में पाञ्चजन्य (मन्त्र) से ही समापन करता चाहिए। तदु उस (पाञ्चजन्य मन्त्र) से **भूमिम् उपस्पृशन्** भूमि का स्पर्श करते हुए **परिदध्यात्** समापन करना चाहिए। **तत्** (इस भूमिस्पर्श) से **यस्यामेव** जिस (भूमि) पर ही **यज्ञं सम्भरति** यज्ञ का सम्पादन करता है। **तस्यामेव** उस (भूमि) पर ही **अन्ततः** अन्त में **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—'सदैव' सर्वेष्वपि यज्ञप्रयोगेषु 'पञ्चजनीयया' 'विश्वे देवा अदितिः पञ्च-जनाः'—इत्युक्तत्वात् इयमृक् 'पञ्चजनीया', तया 'परिधानं' समापनं यदा कुर्यात् तदानीं भूमिमुपस्पृशन् परिदध्यात्। तथा सति 'यस्यामेव' भूमौ 'यज्ञं संभरति', अनुष्ठातुं यज्ञसाधनानि संपादयति, 'तस्यामेव' भूमौ 'एवं' यज्ञमनेनोपस्पर्शनेनान्ततः प्रतिष्ठापयति॥

शस्त्रयाज्यां विधत्ते—

(वैश्वदेवशस्त्रस्य याज्याविधानम्)

'विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे' इति वैश्वदेवमुक्थं शस्त्वा वैश्वदेव्या यजति, यथाभागं तद्देवताः प्रीणाति ॥१४॥

हिन्दी—(वैश्वदेवशस्त्र की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **वैश्वदेवम् उक्थं शस्त्वा** वैश्वदेवशस्त्र का शंसन करके 'विश्व देवाः शृणुत हवं मे' अर्थात् हे विश्वे देवो! मेरे आह्वान को सुनो'—**इति वैश्वदेव्या यजति** इस विश्वेदेवों से सम्बन्धित (ऋचा) से याज्या करता है। **तत्** इस याज्या) से **यथा भागं देवताः प्रीणाति** भाग के अनुसार देवताओं को सन्तुष्ट करता है।

सा० भा०—वैश्वदेवशस्त्रशंसनादूर्ध्व 'विश्वे देवाः शृणुत्' इत्येतां वैश्वदेवीं[२] याज्यां पठेत्। तस्यां 'ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ठाः' इत्यादिना भिन्नवर्गाणां देवगणानामभिधानात्

(१) 'द्विः पच्छोऽर्धर्चशः सकृद् भूमिमुपस्पृशन्'—इति आश्व०श्रौ० ५.१८.१२।
(२) ऋ० ६.५२.१३।

तासां देवतानां स्वस्वभागमतिक्रम्य प्रीतिं करोति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) सप्तमः खण्डः ॥७॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ अष्टमः खण्डः

सा० भा०—अथ घृतयागसौम्ययागयोर्याज्यां विधत्ते—

(घृतयागसौम्ययागयोर्याज्याविधानम्)

आग्नेयी प्रथमा घृतयाज्या, सौमी सौम्ययाज्या, वैष्णवी घृतयाज्या, त्वं सोम पितृभिः संविदान इति सौम्यस्य पितृमत्या यजति ॥१॥

हिन्दी—(अब घृतयाग और सोमयाग की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **प्रथमा घृतयाज्या अग्नेयी** प्रथम घृतयाग की याज्या अग्नि देवता वाली ('घृता हवनो घृतपृष्ठो') और **सौम्ययाज्या सौमी** सोमयाग की याज्या सोम देवता वाली ('त्वं सोम') होती है। **घृतयाज्या वैष्णवी** (द्वितीया) घृतयाग की याज्या विष्णुदेवता वाली ('उरु विष्णो विक्रमस्व') और **सौम्यस्य** सोमयाग की ('पितृभिः संविदान')—**इति पितृमत्या** इस 'पितृ' शब्द से युक्त **यजति** (याज्या) करता है।

सा० भा०—सौम्यचरोरुभयतो घृतसाध्यौ द्वौ यागावनुष्ठेयौ। तत्राग्निदेवताका विष्णुदेवताका चेति द्वे याज्ये। 'घृताहवनो घृतपृष्ठो अग्निः' इत्याग्नेयी प्रथमा याज्या[१] 'उरु विष्णो विक्रमस्व' इति वैष्णवी द्वितीया घृतयाज्या[२]। अस्ति कश्चित्सोमदेवताकश्चरुः, तस्य 'त्वं सोमः'[३] इति सौमी[४] याज्या; तत्र 'पितृभिः संविदानः' इति श्रुतत्वाद् इयं पितृमती; तां याज्यां सौम्यचरौ पठेत्। तस्य चरोः पुरस्तादाग्नेय्यायाज्यया घृतयागः। उपरिष्टाद् वैष्णव्या याज्यया घृतयागः[५]। तद् याज्याद्वयम् आश्वलायनेन पठितम्[६]॥

सौमीं याज्यां प्रशंसति—

---

(१) आश्व०श्रौ० ५.१९.३। (२) आश्व०श्रौ० ५.१९.३।

(३) ऋ० ८.४८.१३।

(४) 'वैश्वदेवशस्त्रमुक्तं चरुः सौम्योऽथ कथ्यते'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(५) 'तं घृतयाज्याभ्यामुपांशूभयतः परियजन्ति'—इति आश्व०श्रौ० ५.१९.२।

(६) आश्व०श्रौ० ५.१९.३।

(सौमीयाज्याप्रशंसनम्)

घ्नन्ति वा एतत् सोमं यदभिषुण्वन्ति, तस्यैतामनुस्तरणीं कुर्वन्ति,–यत्सौम्यः; पितृभ्यो वा अनुस्तरणीं, तस्मात् सौम्यस्य पितृमत्या यजति ।।२।।

हिन्दी—(सौमी याज्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अभिषुण्वन्ति** जो (इस सोम का) अभिषव करते हैं, **एतत् सोमं हनन्ति** वे इस सोम को विनष्ट करते हैं। **तस्य** उस (सोम) के लिए **यत्सौम्यः** जो सोमचरु है, **एताम् अनुस्तरणीं कुर्वन्ति** इस (सोमचरु) को अनुस्तरणी करते हैं जैसे कि लोक में **पितृभ्यः अनुस्तरणीम्** मृत पिता इत्यादि के लिए अनुस्तरणी (शव को जलाते समय वृद्ध गाय का हनन करके उसके अङ्गों को मृतक अङ्गों पर) रखते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **सौम्यस्य** सोम याग में **पितृमत्या** पितृशब्द से युक्त (मन्त्र) से **यजति** याज्या करता है।

सा० भा०—ऋत्विजः सोममभिषुण्वन्तीति यदस्ति, सोऽयं सोमस्य वध एव। तत्र यः सौम्यश्चरुरस्ति, एतां सौम्यचरुरूपां तस्य मृतस्य सोमस्यानुस्तरणीं कुर्वन्ति। मृतस्य दीक्षितस्य दहनकाले कांचिद् वृद्धां गां हत्वा दीक्षितावयवेषु गोरवयवानस्थाप्य दहेत्। सेयं गौर्मृतं दीक्षितमनु मृतत्वाद्धिंसितत्वाच्चानुस्तरणीत्युच्यते।[१] यस्मात् सा पितृभ्यो योग्या तस्मात् पितृमत्या याज्यया सोमयागस्य हविर्यजेत् ।।

घृतयागसहितं सौम्यं चरुं संगृह्य प्रशंसति—

(घृतयागसहितं सौम्यचरुप्रशंसनम्)

अवधिषुर्वा एतत् सोमं यदभ्यसुषवुः, तदेनं पुनः संभावयन्ति।।३।।

हिन्दी—(घृतयाग के साथ सौम्यचरु को संगृहीत करके प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अभ्यसुषवुः** जो सोम का सवन करते हैं तो **एतत् सोमम् अवधिषुः एव** यह सोम को मार डालते हैं **तत्** इससे **एनम्** इस (सोम) को **पुनः सम्भावयन्ति** पुनः उत्पन्न करते हैं।

(१) (क) 'अनुस्तरणीङ्गामजां वैककर्णां कृष्णामेके सव्ये बाहौ बध्वानुसङ्कालयन्ति। अनुस्तरण्या वपामुत्खिद्य शिरो मुखं प्रच्छादयेदग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व (ऋ० १०.१६.७) इति'—इति आश्व० गृह्य० ४.२,३। (ख) 'अनुस्तरणी चेत् पश्चात् कर्णमाहत्य हस्तयोर्वृक्कौ। अङ्गेष्वङ्गानीति जातूकर्ण्यः। न वास्थिसन्देहात्। वपया मुखमवच्छाद्याग्निभिरादीपयन्ति'—इति कात्या०श्रौ० २५.७.३४-३७। (ग) कर्णप्रदेशस्य पश्चाद्भागे 'आहननं' प्रहारं कृत्वा मारयित्वा तस्याः कुक्षिगोलकौ मृतस्य हस्तयोर्निधेयौ'—इत्यादि च तद् व्याख्यानं कर्काचार्यकृतम्। (घ) द्र० पार०गृह्य० ३.११। (ङ) 'तस्मात् पुरुषाय पुरुषायानुस्तरणी क्रियते'—इति षड्०ब्रा० १.७। तु० तत्र सा०भा०—'तस्मात्' अत एव लोके 'पुरुषाय-पुरुषाय' सर्वस्यै मृताय 'अनुस्तरणी क्रियते' वैतरणीनद्युत्तारिका गौः दीयते—इति।

सा० भा०—अभ्यमुषवुरभितः सोमं सुतवन्त इति यदस्ति, एतेन सोममवधिषुर्वै, ऋत्विजो हतवन्त एव तस्माद् 'एनं' व्यथितं सोमं घृतचरुभ्यां व्यथापरिहाराय संभावयन्ति।।

संगृह्य प्रशस्य देवताद्वारा पुनर्विस्तरेण प्रशंसां दर्शयति—

पुनराप्याययन्त्युपसदां रूपेण उपसदां किल वै तद्रूपं यदेता देवता अग्निः सोमो विष्णुरिति ।।४।।

हिन्दी—(पुनः देवता द्वारा प्रशंसा कर रहे हैं—) **उपसदां रूपेण पुनः आप्याययन्ति** (उस मृत सोम को) उपसद के रूप में पुनः बढ़ाते हैं; क्योंकि **उपसदां वै ताद्रूपम्** उपसद् का वही (सोम का) रूप है। **यद् अग्निः सोमः विष्णुः** जो अग्नि, सोम, विष्णु तीन **एताः देवताः** ये देवता (उपसद् उन्हीं के रूप) हैं।

सा० भा०—योऽयं हतः सोमः, तं सोममुपसदां रूपेण संपादितेन पुनराप्याययन्ति। अग्निः सोमो विष्णुरिति या एतास्तिस्रो देवताः, तदेतदुपसदामेव स्वरूपं तत्राप्येतस्य देवतात्रयस्य विद्यमानत्वात्।।

अथ होतुराज्यावेक्षणं विधत्ते—

(होतुराज्यावेक्षणविधानम्)

प्रतिगृह्य सौम्यं होता पूर्वश्छन्दोगेभ्योऽवेक्षेत ।।५।।

हिन्दी—(अब होता के आज्य को देखने का विधान कर रहे हैं—) **सौम्यं प्रतिगृह्य** (अध्वर्यु द्वारा दिये गये हुतशेष) सोमचरु को लेकर **होता** होता **छन्दोगेभ्यः पूर्वः अवेक्षेत** उद्गाताओं से पहले देख लेवे।

सा० भा०—हुतशेषं सौम्यं चरुमध्वर्युणा दत्तं होता प्रतिगृह्य चरुमध्ये सिक्ते बहुले घृते 'छन्दोगेभ्यः' उद्गातृभ्यः स्वयं पूर्वभावी सन् स्वकीयां देहच्छायामवेक्षेत।।

अत्र पूर्वपक्षमुत्थाप्य दूषयति—

तं हैके पूर्वं छन्दोगेभ्यो हरन्ति, तत् तथा न कुर्यात्, वषट्कर्ता प्रथमः सर्वभक्षान् भक्षयतीति ह स्माऽऽह तेनैव रूपेण। तस्माद् वषट्कर्तैव पूर्वोऽवेक्षेताथैनं छन्दोगेभ्यो हरन्ति ।।६।।

हिन्दी—(उस विषय में पूर्वपक्ष को कह कर उसे दूषित कर रहे हैं—) **एके** कुछ (होता) **तम्** उस (सोमचरु) को **पूर्वम्** पहले **छन्दोगेभ्यः हरन्ति** उद्गाताओं के लिए देते हैं, किन्तु **तत् तथा न कुर्यात्** वैसा नहीं करना चाहिए। **तेनैव रूपेण** उसी प्रकार **वषट्कर्त्ता प्रथमः सर्वभक्षान् भक्षयति** वषट्कार करने वाला (होता) सर्व प्रथम भक्ष्यों (हुतशेषों) का भक्षण करता है—**इति ह स्म आह** इस प्रकार (ऋषि ने) कहा है। **तस्मात्** उसी प्रकार **वषट्कर्ता एव** वषट्कार करने वाला (होता) ही **पूर्वः अवेक्षेत** पहले देखे

अथ इसके बाद **छन्दोगेभ्यः हरन्ति** उद्गाताओं को देते हैं।

सा० भा०—केचन याज्ञिका होतुराज्यावेक्षणात् पूर्वमेव तं घृतयुक्तं सौम्यं चरुं छन्दोगेभ्यः समर्पयन्ति। तत्समर्पणं तथा न कुर्यात्। हविःशेषभक्षणेषु वषट्कर्ता होता प्रथमः पूर्वभावी सन् हविःशेषान् भक्षयति।[1] इत्येवमभिज्ञो महर्षिराह स्म। तस्मात्कारणात् तेनैव रूपेण भक्षणक्रमेणैवावेक्षणेऽपि होतैव प्रथमो भूत्वाऽवेक्षेत। अनन्तरमेवैनं सौम्यं चरुं छन्दोगेभ्यः समर्पयेयुः[2]॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) अष्टमः खण्डः ॥८॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के अष्टम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ नवमः खण्डः

सा० भा०—अथाग्निमारुतशस्त्रं वक्तव्यं तदर्थमादावुपाख्यानमाह—

(अग्निमारुतशस्त्रविधानम्)

(तत्राख्यायिका)

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायत्, दिवमित्यन्य आहुः, उषसमित्यन्ये, तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्, तं देवा अपश्यन्। अकृतं वै प्रजापतिः करोतीति ते तमैच्छन्, य एनमारिष्यत्येतमन्योस्मिन्नाविन्दन्, तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा समभरन् ताः संभृता एष देवोऽभवत् तदस्यैतद् भूतवन्नाम ॥१॥

हिन्दी—(अब अग्निमारुतशस्त्र के विधान करने के लिए उपाख्यान को कह रहे हैं—) **प्रजापति वै** प्रजापति ने **स्वां दुहितरं** अपनी पुत्री को देखकर (पत्नी के रूप में) **अभ्यध्यायत्** ध्यान किया। इस (पुत्री) को **अन्ये** कुछ (ऋषि) **दिवम् इत्याहुः** द्युलोक का देवता कहते हैं और **अन्ये** कुछ **उषसम् इति** उषा (कहते हैं)। **रोहितं भूतां ताम्** रोहित (हिरणी अथवा ऋतुमती) हुई उस (पुत्री) के समीप **ऋष्यः भूत्वा** हिरण होकर (प्रजापति) **अभ्यैत्** अभिगत हुए (मिथुन धर्म को प्राप्त किये)। **देवाः** देवताओं ने **तम् अपश्यन्** उस (पुत्रीगामी प्रजापति) को देख लिया। '**प्रजापतिः अकृतं करोति** प्रजापति निषिद्ध कर्म को

(१) 'होताग्रे भक्षयेदिति गौतमः'—इति आश्व०श्रौ० ५.६.२२।

(२) तु० आप०श्रौ० १३.१३.२२; १४.१-२।

करता है'—**इति** ऐसा (विचार करके) **ते** उन (देवताओं) ने **तम्** उस (व्यक्ति) की **ऐच्छन्** कामना किया, **यः** जो **एनम्** इस (प्रजापति) को **आरिष्यति** मारने में समर्थ हो। किन्तु **एतम्** इस (मारने वाले पुरुष) को (देवतागण) **अन्योन्यस्मिन्** अपने लोगों में से किसी को **न अविन्दन्** नहीं प्राप्त कर सके। तब **तेषाम्** उन (देवताओं) में **या घोरतमा तन्वः आसन्** जो उग्रतम शरीरांश था, **ताः एकधा सम्भरन्** उसको (उन लोगों ने) एक जगह एकत्रित किया। **सभृताः ताः** एकत्रित हुए वे (शरीरांश) **एषः देवः अभवत्** यह (रुद्र) देवता हुए। **तत्** इसी कारण **अस्य** इस (उत्पन्न रुद्र देवता) का **भूतवद् नाम** भूत शब्द से सम्पन्न (भूतपति) नाम हुआ।

सा० भा०—पुरा कदाचित् प्रजापतिः स्वकीयां दुहितरमभिलक्ष्य भार्यात्वेन ध्यानमकरोत्।[१] तस्यां दुहितरि[२] महर्षीणां मतभेदं आसीत्। अन्ये केचन महर्षयो दिवं द्युलोकदेवतां ध्यातवान् इत्याहुः। अपरे तु महर्षय 'उषसम्' उषःकालदेवतां ध्यातवान् इत्याहुः। ऋश्यो मृगविशेषः। तथाचाभिधारकार[३] आह—'गोकर्णपृषतैणर्श्यरोहिताश्चमरो मृगाः' इति। स प्रजापतिः तथाविध ऋश्योऽभूत्। सा च दुहिता 'रोहितं' लोहितं 'भूता' प्राप्ता, ऋतुमती जातेत्यर्थः। तादृशीं तां दुहितरम् 'अभ्यैत्' अभिगतवान् मिथुनधर्मं प्राप्तवान् इत्यर्थः। 'तं' दुहितृगामिनं प्रजापतिं देवाः परस्परमिदमब्रुवन्–अयं प्रजापतिः 'अकृतं वै' अकर्तव्यमेव निषिद्धाचरणं करोतीति विचार्य यः पुरुषः 'एनं' प्रजापतिम् 'अरिष्यति'[४] आर्तिं प्रापयितुं क्षमः, तादृशं पुरुषमैच्छन्नन्वेषणं कृतवन्तः, कृत्वा चान्योन्यस्मिन् तेषां मध्ये 'तं' प्रजापतिघातकं 'नाविन्दन्' न अलभन्त—त्वं हन्तुं शक्नोषि, त्वं हन्तुमिति परस्परं पृष्टैकैकस्य शक्तिराहित्यं निश्चितवन्तः। सर्वेषु देवेषु या एव कश्चिद् घोरतमास्तन्वोऽत्युग्राणि शरीराण्यासन्, ताः सर्वाः 'एकधा समभरन्' मेलयित्वैकं शरीरं कृतवन्तः, 'ताः' घोरतमास्तन्वः 'संभृताः' एकत्वेन संपादिताः सत्यः 'एष देवोऽभवत्' एष इति हस्तेन प्रदर्श्य रुद्रोऽभिधीयते। तत् तस्मादेव कारणाद् अस्य रुद्रस्यैतल्लोकप्रसिद्धं 'भूतवद्' भूतशब्दोपेतं नाम संपन्नम्। भूतपतिरिति भूतवन्नाम। तच्च तस्य भवत्यर्थानुगमाद्युक्तम्।।

एतन्नामवेदनं प्रशंसति—

भवति वै स योऽस्यैतदेवं नाम वेद ।। २।।

---

(१) मन्त्रश्चास्ति 'पिता यत् स्वां' 'कामं कृण्वान' इत्यापि (ऋ० १०.६१.७-६)।

(२) 'दुहितृशब्दस्य सम्बन्धि शब्दत्वादेव स्वत्वसिद्धौ स्वग्रहणमौपचारिकव्युदासेन साक्षाद् दुहितृत्वप्रतिपत्त्यर्थम्। प्रजापतेः साक्षादेव सर्वपितृत्वात्। तच्च दोषातिशयख्यापनार्थम्'—इति भट्टभास्करः।

(३) अमरकोश २.५.१०।

(४) 'आरिष्यत्' इति भट्टभास्करीयपाठः। तथा च तद् व्याख्या—'आरिष्यत् आर्तिं प्रापयिष्यत् प्रापयेत्। अर्तेराङ्पूर्वादन्तर्णीतण्यर्थाल्लृङ्। यद्वा, रिष्यतेस्तादृशाल्लेटि रूपम्।'

हिन्दी—(इन नाम के जानने की प्रशंसा कर रहे हैं—) **एवं** इस प्रकार **यः** जो (व्यक्ति) **अस्य** इस (रुद्र) के **एतद् नाम वेद** इस नाम को जानता है **सः वै भवति** वह (भूतिमान्) हो जाता है।

सा० भा०—वेदिता 'भवति वै' भूतिमानेव संपद्यते।

अथ तेन रुद्रेण सह देवानां संवादं दर्शयति—

(रुद्रेण सह देवानां संवादकथनम्)

तं देवा अब्रुवन्। अयं वै प्रजापतिरकृतमकरिमं विध्येति, स तथेत्यब्रवीत् स वै वो वरं वृणा इति; वृणीष्वेति; स एतमेव वरमवृणीत,—पशूनामाधिपत्यं, तदस्यैतत् पशुमन्नाम ।।३।।

हिन्दी—(उस रुद्र के साथ देवताओं के संवाद को कह रहे हैं—) **देवाः तं अब्रुवन्** देवताओं ने उस रुद्र से कहा कि **अयं वै प्रजापतिः** इस प्रजापति ने **अकृतम् अकः** अकर्म किया है अत: **इमं विध्य** इसको मार डालो। तब **सः** उस (रुद्र) ने **अब्रवीत्** कहा कि **तथा** वैसा ही करेंगे (जैसा तुम लोगों ने कहा है), किन्तु **वः वरं वृणे** हम तुम लोगों से वर माँगते हैं। **वृणीष्व इति** (तब देवताओं ने कहा कि) वर माँगो । **सः** उस (रुद्र) ने (देवताओं से) **एतमेव वरम् अवृणीत** इसी वर का वरण किया कि **पशूनाम् आधिपत्यम्** पशुओं के स्वामित्व को (मैं प्राप्त करूँ)। **तत्** इसी कारण **अस्य** इस (रुद्र) का **पशुमत् नाम** पशु शब्द से सम्पन्न (पशुपति) नाम हुआ।

सा० भा०—'तं' रुद्रं देवा एवमब्रुवन्—हे रुद्र! अयं प्रजापतिः 'अकृतम् अकः' निषिद्धाचरणं कृतवांस्तस्मादिमं 'विध्य' बाणेन प्रहरेति। स रुद्रस्तदङ्गीकृत्योत्कोचत्वेन पशूनामाधिपत्यं कृतवान्। तस्मात् कारणादस्य रुद्रस्यैतल्लोकप्रसिद्धं पशुपतिरित्येतादृशं पशुशब्दोपेतं नाम संपन्नम्।।

तद्वेदनं प्रशंसति—

पशुमान्भवति योऽस्यैतदेवं नाम वेद ।।४।।

हिन्दी—**यः** जो **अस्य** इस (रुद्र) के **एवं नाम वेद** इस प्रकार वाले (पशुपति) नाम को जानता है, वह **पशुमान् भवति** वह पशुओं से सम्पन्न हो जाता है ।

अथ रुद्रप्रजापत्योर्वृतान्तं दर्शयति—

(रुद्रप्रजापत्योः वृत्तान्तकथनम्)

तमभ्यायत्याविध्यत् स विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत्, तमेतं मृग इत्याचक्षते, य उ एव मृगव्याधः स उ एव सः, या रोहित् सा रोहिणी, यो एवेषुस्त्रिकाण्डा सो एवेषुस्त्रिकाण्डा ।।५।।

हिन्दी—(अब रुद्र और प्रजापति के वृतान्त को कह रहे हैं—) **सः** उस (रुद्र) ने **तम्** उस (प्रजापति) को **अभ्यायत्य अविध्यत्** (बाणयुक्त धनुष को) खींच कर मारा। **विद्धः** मारा गया (वह प्रजापति) **ऊर्ध्व उदप्रपतत्** ऊपर की ओर उछल गया। **तम् एतम्** उस (ऊपर की ओर उछले हुए) इस (प्रजापति) को **मृगः इत्याचक्षते** अभिजन मृग (मृगशिरा नक्षत्र) कहते हैं। **यः उ एव मृगव्याधः** जिसने (इस) मृग को मारा था। **सः उ एव सः** वह (मारने वाला रुद्र) वह (मृग को मारने वाला मृगव्याध कहलाया)। **या रोहित्** जो (प्रजापति की पुत्री) लाल वर्ण वाली (हरिणी थी) **सा रोहिणी** वह रोहिणी (नक्षत्र) कहलायी। **यः त्रिकाण्डा इषुः** जो तीन धारों वाला बाण था, **सः एव त्रि-काण्डा इषुः** वह तीन धारों वाला बाण हुआ।

सा० भा०—स रुद्रोऽभ्यायत् य बाणयुक्तं धनुरभित आकृष्य तं प्रजापतिमविध्यत्। ऋश्यमृगरूपः स प्रजापतिर्विद्धः सन्नूर्ध्वमुख उदप्रपतत् प्रकर्षेणोत्पतनमकरोत्। तमेत-मुत्पतितमृश्यमृगरूपं प्रजापतिमाकाशे दृष्ट्वा सर्व एव ते जना मृग इत्याचक्षते, रोहिण्या-र्द्रयोर्नक्षत्रयोर्मध्येऽवस्थितं मृगशीर्षनक्षत्रं कथयन्ति, नक्षत्ररूपेण निष्पन्न इत्यर्थः। 'य उ एव' यस्तु रुद्रो 'मृगव्याधो' मृगघाती स रुद्र आकाशे दृश्यमानः स उ एव लोकप्रसिद्धो मृगव्याध आसीत्। या दुहिता रोहिता रोहिद् रक्तवर्णा मृगी सेयमाकाशे रोहिणीनक्षत्र-मभूत्। यो एव या तु रुद्रेण प्रेरितेषुस्त्रिकाण्डाऽनीकं शल्यस्तेजनमित्यवयवत्रयोपेता सो एव सैव लोकप्रसिद्धा काण्डत्रयोपेतेषुर्बाणोऽभवत्॥

अथ मनुष्योत्पत्तिं दर्शयति—

(मनुष्योत्पत्तिकथनम्)

तद्वा इदं प्रजापते रेतः सिक्तमधावत्, तत्सरोऽभवत्, ते देवा अब्रुवन्, मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति, यदब्रुवन्, मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति, तन्मादुषमभवत्, तन्मादुषस्य मादुषत्वं, मादुषं ह वै नामैतद् यन्मानुषं तन्मादुषं सन्मानुषमित्याचक्षते परोक्षेण; परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥५॥

हिन्दी—(अब मनुष्य की उत्पत्ति को दिखला रहे हैं—) **प्रजापतेः इदं सिक्तम् रेतः** जो (मृगरुप) प्रजापति का यह (मृगीरूप अपनी पुत्री में) सिञ्चित किया गया वीर्य था, **तद् अधावत्** वह (अधिक होने के कारण भूमि पर गिर कर) प्रवाहित होने लगा और **तत् सरः अभवन्** वह (एकत्रित होकर) सरोवर हो गया। तब **ते देवाः** उन देवताओं ने **अब्रुवन्** परस्पर कहा कि **प्रजापतेः इदं रेतः** प्रजापति का यह वीर्य **मा दुषत्** दूषित न होवे। **यद् अब्रुवन्** जो (देवताओं) में यह कहा कि **प्रजापतेः इदं रेतः मा दुषत्** प्रजापति का यह वीर्य दूषित न होवे, **तद् मादुषम् अभवत्** वह मादुष (दोषरहित) नाम वाला हुआ।

तद् मादुषस्य मादुषत्वम् वही मनुष्य की मादुषता (दोष से रहितता है)। **यद् मानुषम्** जो मनुष्य नाम है, **एषः मादुषं ह वै** वह मादुष ही है। **परोक्षेण** परीक्षरूप से **तद् मादुषं सन्** वह (वीर्य) मादुष होकर **मानुषम् इत्याचक्षते** मानुष कहलाता है, क्योंकि **परोक्षप्रियाः एव हि देवाः** देवता परोक्षप्रिय होते हैं।

सा० भा०—मृगरूपेण प्रजापतिना यद् रेतो मृग्यां सिक्तं तदेतदतिबहुत्वाद् भूमौ पतितं सत्प्रवाहरूपेणाधावत्। तच्च क्वचिन्निम्न देशेऽवस्थाय प्रौढं सरोऽभूत्। ते देवा एवमब्रुवन्—प्रजापतेरिदं रेतो 'मा दुषद्' दुष्टमस्पृश्यं मा भूदिति[१]। यस्मान्मा दुषदित्यवदंस्त-स्माद् दोषरहितस्य रेतसो 'मादुषमिति' नाम संपन्नम्। जनास्तु दकारस्थाने नकारं प्रक्षिप्य 'मानुषमिति' ब्राह्मणक्षत्त्रियादिशरीरमाचक्षते। तद् वस्तुतो दैवाचारेण दोषरहितत्वान्मा-दुषमेव। तथा सति मादुषनामयोग्यमपि तच्छरीरं परोक्षेण नाम्ना व्यवहर्तव्यमित्यभिप्रैत्य वर्णव्यत्ययेन मानुषमित्याचक्षते। यस्माल्लोके देववत्पूज्या उत्तमाः पुरुषाः 'परोक्षप्रिया इव हि' प्रत्यक्षे मातापितृनिर्मिते देवदत्तादिनाम्नि न प्रीतिं कुर्वन्ति, किन्तु उपाध्यायाचार्यस्वामी-त्यादिके मातापित्रादीनामक्लृप्तत्वेन परोक्षे नाम्नि प्रीतिं कुर्वन्ति। तस्मात् परोक्षत्वाय नकार-प्रक्षेपो युज्यते॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) नवमः खण्डः ॥९॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के नवम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ दशमः खण्डः

सा० भा०—अथाऽऽदित्यादिदेवतोत्पत्तिं दर्शयति—

(अथादित्यादिदेवतोत्पत्तिकथनम्)

तदग्निना पर्यादधुः, तन्मरुतोऽधून्वन्, तदग्निर्न प्राच्यावयत्, तदग्निना वैश्वानरेण पर्यादधुः, तन्मरुतोऽधून्वन्, तदग्निर्वैश्वानरः प्राच्यावयत्, तस्य यद् रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत्, यद् द्वितीय-मासीत् तद् भृगुरभवत्, तं वरुणो न्यगृह्णीत, तस्मात् स भृगुर्वारुणिः, अथ यत् तृतीयमदीदेदिव त आदित्या अभवन्, येऽङ्गारा आसंस्तेऽ-ङ्गिरसोऽभवन्, यदङ्गाराः पुनरवशान्ता उददीप्यन्त तद् बृहस्पतिर-

(१) 'मा दुष्टपरिणामं लोकगर्हितमभूत्'—इति भट्टभास्करः।

भवत् ।।१।।

हिन्दी—(अब आदित्य इत्यादि देवताओं की उत्पत्ति को दिखला रहे हैं—) **तत्** (देवतओं ने) उस (दोष-रहित वीर्य) को **अग्निना पर्यादधुः** अग्नि द्वारा चारों ओर से परिवेष्टित कर दिया। **तद् मरुतः अधून्वन्** उसको मरुतों ने (शुष्क करने के लिए) वायु से संयुक्त किया। **तद् वैश्वानरः अग्निः प्राच्यावयत्** किन्तु वैश्वानर अग्नि ने उसे प्रकृष्ट रूप से प्रच्युत किया। **तस्य रेतस्यः** उस (पिण्डीभूत वीर्य) का **यद् प्रथमम् उद्दीप्यत** जो प्रथम (पिण्डरूप) उद्दीप्त हुआ **तद् असौ आदित्यः अभवत्** वह यह (अन्तरिक्ष में दृश्यमान) आदित्य हुआ और **यद् द्वितीयम् आसीत्** जो द्वितीय था, **तद् भृगुः अभवत्** वह भृगु हुआ। **तम्** उस (भृगु) को **वरुणः न्यगृह्णीत्** वरुण ने (पुत्र के रूप में) स्वीकार कर लिया, **तस्मात्** उसी कारण **सः भृगुः** वे भृगु **वारुणिः** वरुण के पुत्र हुए। **अथ** इसके बाद **यत् तृतीयम् अदीदेत्** जो तृतीय भाग अत्यन्त दीप्त था **ते अदित्याः** वे अदिति के पुत्र (देव-विशेष) **अभवन्** हुए। **ये अङ्गाराः आसन्** जो (दग्ध पिण्ड के) अङ्गारे थे **ते अङ्गिरसः अभवत्** वे अङ्गिरस हुए। **यद् अङ्गारा पुनः अवशान्ताः** जो अङ्गारे पुनः शान्तिरहित होकर **उददीप्यन्त** उदीप्त हुए **तद् बृहस्पतिः अभवत्** वे बृहस्पति हुए।

सा०भा०—प्रजापतेः संबन्धि यद् रेतो देवैर्दोषरहितं कृतं तद् रेतो देवा अग्निना पर्यादधुः परितो वेष्टितवन्तः। सरोरूपेणावस्थितस्य रेतसो दाहेन द्रवीभावं निवारयितुं परितोऽग्निं प्रज्वलितवन्त इत्यर्थः। यदाऽग्निः प्रज्वलितस्तदा मरुतो वायवस्तद्रेतोऽधून्वञ्शोषणाय वायुसंयुक्तमकुर्वन्। सोऽग्निस्तत् रेतो न प्राच्यावयत्। द्रवीभावात् प्रच्युतं नाकरोत्। द्रवबाहुल्यात् पिण्डाकारं कर्तुं नाशक्नोदित्यर्थः। वैश्वानरो नाम कश्चिदग्निविशेषः प्राणिनामुदरे प्रविश्यान्नपानादिकं पाचयति। तथा च भगवतोक्तम्[१]—

"अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ।।" इति।

तेन वैश्वानरनामकेनाग्निविशेषेण तद् रेतः पूर्ववत् पर्यादधुः। देवैरग्नौ परिक्षिप्ते सति मरुतस्तद् रेतः पूर्ववद् अधून्वन्। सोऽयं वैश्वानरोऽग्निस्तद् रेतो द्रवीभावात् प्रच्युतमकरोत्। तस्य पिण्डीभूतस्य रेतसो यत्प्रथमं पिण्डरूपमुददीप्यतोद्दीप्तमभूत् तद्रूपमसौ दिवि दृश्यमान आदित्योऽभवत्। द्वितीयं यत्पिण्डरूपमासीत्, तदृषिर्भृगुरभवत्, तं भृगुं वरुणो न्यगृह्णीत निगृह्य स्वपुत्रत्वेन स्वीकृतवान्। तस्मात् स भृगुर्वारुणिरित्युच्यते। वरुणस्यापत्यं वारुणिः। एतदेवाभिप्रेत्य तैत्तिरीया आमनन्ति—'भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार'[२] इति। अथानन्तरं तृतीयं पिण्डरूपम् 'अदीदेदिव' अतिशयेन दीप्तमेवासीत्। 'त आदित्या' अदितेः पुत्रा देवविशेषा 'अभवन्'। पूर्वमादित्यशब्देन मण्डलवर्ती सूर्य उक्तः। अत्रादितेः पुत्रा इतरे देवा

---

(१) गीता १५.१४। (२) तै०आ० ९.१, तै०उप० २.१।

उच्यन्ते। 'ये' रेतःपिण्डा दग्धाः सन्तोऽङ्गारा अभवन्, ते सर्वेऽप्यङ्गिरोनामका ऋषयोऽभवन्। पुनरपि तत्र यदङ्गारा ये केचिदङ्गारा 'अवशान्ताः' शान्तिरहितः सन्त 'उददीप्यन्त' उत्कर्षेण दीप्ताः, तत्सर्वं 'बृहस्पतिरभवत्'॥

अथ पशुसृष्टिदर्शयति—

(पशुसृष्टिकथनम्)

यानि परिक्षाणान्यासंस्ते कृष्णाः पशवोऽभवन् या लोहिनी मृत्तिका ते रोहिताः, अथ यद् भस्मासीत् तत्परुष्यं व्यसर्पद् गौरो गवय ऋश्य उष्ट्रो गर्दभ ये चैतेऽरुणाः पशवस्ते च ॥२॥

हिन्दी—(अब पशुसृष्टि को दिखला रहे हैं—) **यानि परिक्षणानि आसन्** (शान्त अङ्गारों में) जो बुझे हुए (कृष्ण वर्ण वाले) कोयले थे, **ते कृष्णाः पशवः अभवन्** वे कृष्ण वर्ण वाले पशु हुए। **या लोहिनी मृतिका** जो लाल वर्ण वाली मिट्टी थी **ते रोहिताः** वे लाल वर्ण वाले (पशु हुए)। **अथ** इसके बाद **यद् भस्म आसीत्** जो भस्म थी, **तत् परुष्यं** वह कठोर होकर **व्यसर्पत्** इधर-उधर प्रसर्पण करने लगी। वह (कठोर शरीर वाले) **गौरः गवयः ऋश्यः उष्ट्रः गर्दभः** भैंसा, नील गाय, बारहसिंहा, ऊँट और गर्दभ हुए और **ये च अरुणाः पशवः** जो लाल वर्ण वाले पशु थे **ते च** वे भी (प्रसर्पण करने लगे)।

सा० भा०—अङ्गारेषु शान्तेषु यानि कृष्णवर्णान्यासन् काष्ठानि ते कृष्णवर्णाः[१] पशवोऽभवन्। अग्निदाहेन भूमौ या लोहिनी रक्तवर्णा मृत्तिका तिष्ठति ते रोहिता रक्तवर्णाः[२] पशवोऽभवन्। अत्राग्निस्थाने यद् भस्मासीत्, तत्परुष्यं परुषशरीरजातं भूत्वा व्यसर्पत्, विविधमरण्यादावगच्छत्। किं तत्परुष्यमिति? तदेवोच्यते—गौरो गवय ऋश्य इत्येतेऽरण्यमृगाः। उष्ट्रगर्दभौ प्रसिद्धौ। एवमादिकं परुषशरीरम्। येऽप्येतेऽरुणाः[३] पशवस्ते च व्यसर्पन्॥

एवमुपाख्यानेनाऽऽग्निमारुतशस्त्रस्योपोद्घातमभिधाय तस्मिञ्शस्त्रे शंसनीयामेकामृचं विधत्ते—

(आग्निमारुतशस्त्रे शंसनीयर्चो विधानम्)

तान् वा एष देवोऽभ्यवदत्, मम वा इदं मम वै वास्तुहमिति तमेतयर्चा निरवादयन्त यैषा रौद्री शस्यते ॥३॥

हिन्दी—(अब अग्निमारुत शस्त्र की भूमिका को कहकर उस शस्त्र में शंसनीय एक ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **एषः देवः** इस (रुद्र) देवता ने **तान् अभ्यवदत** उन

(१) तप्तं शान्तं कृष्णरूपं परिक्षाणं तु कथ्यते।
कृष्णवर्णास्तु पशवो वराह महिषादयः। इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) 'रक्तवर्णास्तु पशवः सिंहशार्दूलकादयः'–इति षड्गुरुशिष्यः।

(३) 'गौरादिरूपं तद्भूद् रक्ताश्चैव वृकादयः'–इति षड्गुरुशिष्यः।

(पशुओं) को अभिलक्षित करते कहा कि **मम वै इदम्** यह मेरा है, **इदं वास्तुहं मम** यह यज्ञभूमि में छिपा हुआ (सब कुछ) मेरा है। **या एषा रौद्री शस्यते** जो यह रुद्र देवता वाली (ऋचा) का शंसन किया जाता है, **एतया ऋचा** उस ऋचा से **तम्** उस (भाग) को **निवारयन्त** निवारित कर दिया।

सा०भा०—तान् वै तानेव पशून् सर्वानभिलक्ष्यैष रुद्रं इदं सर्वं ममैवेत्यब्रवीत्। तत्रोपपत्तिं चोक्तवान्। 'वास्तुहं' वास्तौ यज्ञभूमौ हीनं यद्द्रव्यमस्ति तत्सर्वं ममेति[१] श्रुत्यन्तरेऽपि प्रसिद्धम्। तथा च तैत्तिरीया रुद्रवाक्यमामनन्ति—'यद्यज्ञवास्तौ हीयते मम वै तत्'[२] इति। तं रुद्रं सर्वान् पशूनभिगच्छन्तमेतया वक्ष्यमाणयर्चा निवारयन्त निरपेक्षमकुर्वत। तया तुष्टो रुद्रः पश्वपेक्षां परित्यजति स्म। का सर्गिति सोच्यते। यैषा रौद्री रुद्रदेवताका शस्यते साऽवगन्तव्या॥

तस्या ऋचः[३] पादत्रयं पठति—

'आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
त्वं नो वीरो अर्वति क्षमेथाः'॥४॥

हिन्दी—(उस रुद्र देवता वाली ऋचा के तीन पादों को कह रहे हैं—) **मरुतां पित** हे मरुतों के पिता (रुद्र)! **ते सुम्नम्** तुम्हारे (द्वारा प्रदत्त) सुख **आ एतु** (हमारे पास) आवे। **नः सूर्यस्य संदृशः** (हम लोगों को) सूर्य के दर्शन से **मा युयोथाः** रहित मत करो। **वीरः त्वम्** हे वीर! तुम **नः अर्वति** हमारे (पश्वादि) वस्तुओं पर **क्षमेथाः** सहिष्णु होवो।

सा०भा०—मरुतां देवानां पितः[४] हे रुद्र ते तव सुम्नं मुखमैत्वागच्छतु। नोऽस्मान् सूर्यस्य संदृशः सूर्यावलोकनान्मा 'युयोथाः' मा वियोजय दृष्टियुक्तान् कुर्वित्यर्थः। किंच हे रुद्र वीरस्त्वं नोऽस्माकमर्वति पश्वादिवस्तुनि 'क्षमेथाः' सहिष्णुर्भव। अस्मदीयान् पश्वादिवस्तूनि मा विवंसयेत्यर्थः॥

तृतीयपादस्य 'त्वं नो वीरः' इत्यत्रत्यः पाठः। 'अभि नो वीरः' इति शाखान्तरपाठः[५]।

---

(१) तथा च मनुः—'यो यज्जयति तस्य तत्' (७.५६)।
(२) तै०सं० ३.१.९:५। (३) ऋ० २.३३.१।
(४) 'अत्रेतिहासं कथयन्ति विप्रा यथा रुद्रो मरुतां वै पितासीत्'—इत्यादि ऋक्सर्वानुक्रमणीवृत्तौ वेदार्थदीपिकायाम्; तथा ऐतरेयब्राह्मणस्य सुखप्रदायामपि द्रष्टव्यम्। मरुतां रुद्रपुत्रत्वं यद्यपि रामायणादौ न दृश्यतेऽथापि तेषां रुद्रानुगृहीतत्वं ब्रह्मपुराणे गौतमीमाहात्म्ये (अ० ५४) उपलभ्यते।
(५) मुद्रितसंहितापाठस्तु इत्येव दृश्यते—
आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः॥ ऋ० २.३३.१॥
आश्व०श्रौ० ३.८.१; ऋग्वि० १.३०।

तयोमध्ये स्वपाठं विधाय शाखान्तरपाठं निषेधति—

(ऋचायां शाखान्तरस्य पाठनिषेध:)

इति ब्रूयान्नाभि न इति; अनभिमानुको हैष देव: प्रजा भवति ।।५।।

हिन्दी—(मन्त्र में प्रयुक्त 'त्वं नो वीरो' के स्थान पर शाखान्तर में प्रयुक्त 'अग्नि नो वीरो' के शंसन का निषेध कर रहे हैं—) (प्रस्तुत मन्त्र के तृतीय पाद में 'त्वं नो वीरो') **इति ब्रूयात्** इसे ही (शंसन के समय) कहना चाहिए, **'अभि न' इति न** यह (शाखान्तर में प्रयुक्त) नहीं कहना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से **एष: देव:** यह देवता (रुद्र) **प्रजा अनभिमानुक: भवति** प्रजा का अभिभूत करने वाला नहीं होता।

सा० भा०—इत्यनेन पूर्वोक्तेन प्रकारेण 'त्वं नो वीर:' इति पाठमेव शंसनकाले ब्रूयान्नाभि न इति पाठं। ब्रूयात्। त्वं नो वीर इति पाठे सत्येष 'देव: प्रजा अनभिमानुको भवति'। अभिमानुकोऽभि[१] न इति पाठान्तरेऽभिशब्दस्य विद्यमानत्वात्। पुत्रादिका: प्रजा अभिलक्ष्य ता: श्रयिष्यामीति रुद्रो मनुते। त्वं न इति पाठे तु न तथेत्यर्थ:।।

चतुर्थपादेऽपि स्वाभिमतपाठविधिपूर्वकं पाठान्तरं विधत्ते—

'प्र जायेमहि रुद्रियं प्रजाभि:' इति ब्रूयान्न रुद्रेति एतस्यैव नाम्न: परिहृत्यै ।।६।।

हिन्दी—(मन्त्र के चतुर्थ पाद में अपने अभिमत के अनुसार पाठ की विधि के कहने के साथ पाठान्तर का भी विधान कर रहे हैं—) 'प्र जायेमहि रुद्रिय प्रजाभि:' अर्थात् हे रुद्र सम्बन्धी भृत्य! **प्रजाभि: प्रजायेमहि** ('तुम्हारे अनुग्रह से') हम लोग (पुत्रादि) प्रजाओं के साथ (अनेक होकर) उत्पन्न होवे—**इति ब्रूयात्** इस प्रकार (शंसन में) कहना चाहिए **एतस्य नाम्न: परिहृत्यै** इस (रुद्र) के नाम के परिहार के लिए **रुद्र इति न** (रुद्रिय के स्थान पर) रुद्र नहीं कहना चाहिए।

सा० भा०—हे रुद्रिय रुद्रसम्बन्धिभृत्य त्वदनुज्ञया वयं प्रजाभि: प्रजायेमहि पुत्रपौत्रादिरूपेणोत्पद्येमहि। अस्मिन् पादे रुद्रियेत्येतमेव पाठं ब्रूयान्न तु रुद्रेति पाठम्। एतस्यैव रुद्रनाम्न उग्रस्य परिहाराय रुद्रियेतिपाठादर:[३]।।

---

(१) 'यदा ह्यभिशब्द: प्रयुज्यते तदाभिशब्दस्याभिमुख्यवृत्तित्वादाभिमुख्यस्य च मनन-रूपत्वादभि क्षमेत इति पदद्वयस्याभिमन्यमान: क्षमेत इत्यर्थ: स्यात्। ततो देवोऽस्य प्रजा अभिमन्येत ममैता: सन्त्विति। ततश्चायज्ञिया: स्यु: अस्य प्रजा अभिवृद्धिशीलाश्च। अभि-शब्दाभावे तु शंसने नाभिमानुको भवति अभिमननशीलवान् न भवति प्रजासु'—इति भट्टभास्कर:।

(२) अत्र 'क्षमेत'—इत्येव मुद्रितसंहितापाठ:, ऐतरेयकविहितस्तु 'क्षमेथा:'—इत्यपि ज्ञेयम्।

(३) 'ननु रुद्रिय इत्यप्युच्यमाने समान एवायं दोष इति चेत्, अयमभिप्राय:—आ रुद्रार्थस्य

आ ते पितरित्यास्यस्या ऋचः स्थाने काञ्चिदन्यामृचं विधत्ते—

(प्रस्तुतर्चः स्थानेऽन्यर्चो विधानम्)

तदु खलु 'शं नः करतीत्येव शंसेच्छमिति प्रतिपद्यते, सर्वस्मा एव शान्त्यै, 'नृभ्यो नारिभ्यो गवे' इति, पुमांसो वै नरः, स्त्रियो नार्यः, सर्वस्मा एव शान्त्यै ।।७।।

हिन्दी—('आते पतिः' इस ऋचा के स्थान पर किसी अन्य ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **तदु खलु** अथवा (उस ऋचा के स्थान पर) 'शं नः करति' **इत्येष शंसेत्** इस (ऋचा) का शंसनं करे। **शम् इति प्रतिपद्यते** (यह ऋचा कल्याण वाचक शं शब्द होने के कारण) कल्याण ही करती है। **नृभ्यः** पुरुषों के लिए **नादिभ्यः** स्त्रियों के लिए और **गवे** गायों के लिए **इति** यहाँ **पुमांसः वै नरः सर्वस्मै शान्त्यै एव** पुरुष ही नर है इन सभी की शान्ति के लिए है और **स्त्रियः नार्यः** स्त्रियाँ नारी हैं इन **सर्वस्मै शान्त्यै** सभी की शान्ति के लिए (यह ऋचा है)।

सा०भा०—'तदु खलु' तत्रैव पूर्वामृचं परित्यज्य तस्या एव स्थाने 'शं नः करत्यर्वते'[१] इत्येतामृचं शंसेत्। तथा सति को लाभ इति, तदुच्यते—तस्या ऋच आदौ यच्छमित्यनेन पदेन प्रतिपद्यते प्रारम्भः क्रियते; तस्य पदस्य शान्तिवाचकत्वात् सर्वस्मै सर्वस्यापि स्वकीयस्य वस्तुनः शान्तिर्भवति। सर्वस्मा इत्यस्य व्याख्यानं नृभ्य इत्यादि। तस्यापि व्याख्यानं पुमांस इत्यादि। सर्वस्मा एव शान्त्या इत्युपसंहारः।।

प्रकारान्तरेण तामृचं प्रशंसति—

सोऽनिरुक्ता रौद्री शान्ता, सर्वायुः सर्वायुत्वाय ।।८।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से इस ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सः** वह ऋचा **रौद्री** रुद्र देवता से सम्बन्धित किन्तु **अनिरुक्ता** देवता का अभिधान न करने वाली और **शान्ता** शान्तिप्रद है। यह **सर्वायुः** सम्पूर्ण आयुस्वरूप है अतः **सर्वायुत्वाय** सम्पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए शंसनीय है।

सा०भा०—'सो' साऽप्यृगनिरुक्ता[२] रुद्रवाचकपदाभावादस्पष्टदेवताका। अत एव

तद्धितार्थं प्रत्युपसर्जनत्वान्न प्राधान्यम्, तद्धितार्थस्य प्राधान्येन प्रतिपाद्यत्वात्। तत्र रुद्र-भावार्हे त्वमस्मिन्नर्थे छान्दसो घप्रत्ययः। यद्वा, ये देवेन सृष्टाः शतं रुद्रास्तेषा पितृत्वेन भवः, तेषु वा साधुः, तेभ्यो वा हितो रुद्रियः भवाद्यर्थे छान्दसो धः। एतस्यां व्युत्पत्तौ विनेतुर्देवस्य वाचकं यद् रुद्रपदं तदेतस्मिन् पदे वर्जनतयापि न प्रयुज्यते इति तत्परिहार-सिद्धिः'—इति भट्टभास्करः।

(१) ऋ० १.४३.६।

(२) (i) द्र० 'कद्रुद्राय नव रौद्राम्' इति ऋक्सर्वानुक्रमणी (१४३)।

रौद्री रुद्रदेवताका सत्यपि घोरार्थवाचकरुद्रपदाभावाद् इयं शान्ता, तां शंसेद्धोता सर्वायुर्भवति। तच्च यजमानस्य सर्वायुत्वाय सम्पद्यते॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ॥९॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

सो गायत्री, ब्रह्म वै गायत्री ब्रह्मणैवैनं तं नमस्यति ॥१०॥

हिन्दी—(पुन: प्रकारान्तर से इस ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सः गायत्री** वह (ऋचा) गायत्री छन्द वाली है। **ब्रह्म वै गायत्री** गायत्री ब्रह्म (ब्राह्मण अथवा मन्त्र) है अत: **ब्रह्मणा एव** ब्रह्म के द्वारा ही **एनं तम्** उस इस (यज्ञ) को **नमस्यति** नमस्कार करता है।

सा०भा०—'सो' सा च ऋग्गायत्रीछन्दस्का। गायत्री च 'ब्रह्म वै' ब्राह्मणजातिरेव। उभयो: प्रजापतिमुखजत्वात्। अतो 'ब्रह्मणैव' ब्राह्मणेनैवैनं रुद्रं नमस्करोति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकाया: तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) दशम: खण्ड: ॥१०॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के दशम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ एकादशः खण्डः

सा०भा०—अथ 'वैश्वानराय पृथुपाजसे विप:' इत्यनेन सूक्तेन[1] आग्निमारुतशस्त्रस्य प्रारम्भं विधत्ते—

(आग्निमारुतशस्त्रस्य प्रारम्भविधानम्)

वैश्वानरीयेणाऽऽग्निमारुतं प्रतिपद्यते; वैश्वानरो वा एतद् रेतः सिक्तं

(ii) 'कथमवगम्यते इयं रौद्रीति। अत एव वचनात् इति चेत्, कस्मात् पुन: कारणादेवमृषिराह। अयमभिप्राय:—शङ्करोतीत्याभ्यां पदाभ्यां शङ्करोऽस्या देवतेति गम्यत एव। तमैवाभिप्रायेण खल्वस्या ऋचो वैशिष्ट्यं प्रतिपादयितुं शमिति प्रतिपद्यत इति ब्रवीति। न हि शंशब्दगात्रत्वमस्या वैशिष्ट्यहेतु: शङ्करणशालिदेवोपक्रमशीलमेव। तादृशश्च देवो रुद्र एवेति रौद्रीयं भवत्यनिरुक्ता'—इति भट्टभास्कर:।

(१) ऋ० ३.३.१-११।

प्राच्यावयत्, तस्माद् वैश्वानरीयेणाऽऽग्निमारुतं प्रतिपद्यते ।।१।।

हिन्दी—(अब 'वैश्वानराय पृथुपाजसे' सूक्त से अग्निमारुतशस्त्र के प्रारम्भ करने का विधान कर रहे हैं—) **वैश्वानरीयेण** (वैश्वानरस्य पृथुपाजसे-इस) वैश्वानर देवता वाले सूक्त से **अग्निमारुतं प्रतिपद्यते** अग्निमारुतशस्त्र का प्रारम्भ करता है। क्योंकि **वैश्वानरः एव** वैश्वानर ने ही **एतत् सिक्तं रेतः** इस सिञ्चित वीर्य को **प्राच्यावयत्** (पिण्डीभूत) किया था। **तस्मात्** इसी कारण **वैश्वानरीयेण** वैश्वानर से सम्बन्धित (सूक्त) से **अग्निमारुतं प्रतिपद्यते** अग्निमारुतशस्त्र को प्रारम्भ करता है।

सा॰भा॰—रेतसः प्रच्यावनं काठिन्यापादनम्।।

तस्मिन् वैश्वानरीयसूक्ते कंचिद्विशेषं विधत्ते—

(वैश्वानरीयसूक्ते विशेषविधानम्)

अनवानं प्रथम ऋक् शंस्तव्या। अग्नीन् वा एषोऽर्चींष्यशान्तान् प्रसीदन्नेति य आग्निमारुतं शंसति। प्राणेनैव तदग्नींस्तरति ।।२।।

हिन्दी—(उस वैश्वानरीयसूक्त में कुछ विशेष विधान कर रहे हैं—) **अनवानं प्रथम शंस्तव्या** निरन्तर (विराम किये बिना) प्रथमा ऋचा का शंसन करना चाहिए। **यः अग्निमारुतं शंसति** जो आग्निमारुतशस्त्र का शंसन करता है, **एषः अशान्तान् अग्नीन् अर्चींषि** वह अशान्त अग्नि को ज्वालाओं को **प्रसीदन् एति** प्रसन्न करता है। **तत्** इस (निरन्तर शंसन करने) से **प्राणेन एव** प्राण (वायु) के द्वारा ही **अग्नीन् तरति** अग्नियों को शान्त करता है।

सा॰भा॰—अवानशब्देनोच्छ्वासनिश्वासावुच्येत। तौ यथा न भवतस्तथा प्रथमा, ऋक्शंस्तव्या।[1] तथा सति सर्वानग्नीन् वै ज्वालारूपानग्नीनेवैष होताऽशान्तान् कृत्वा प्रसीदन् प्रसादं कुर्वन्नेति गच्छति।[2] यः पुमानाग्निमारुतशस्त्रं शंसति, तस्य प्रसादहेतुत्वं कथम्? इति तदुच्यते–उच्छ्वासनिश्वासनिरोधाद् अनवानं शंसन् प्राणवायुनैव तानग्नीस्तरत्युल्लङ्घयति, अग्निकृतमुपद्रवं शमयतीत्यर्थः।।

शंसनकाले प्रामादिकस्य वर्णादिलोपरूपस्यापराधस्य प्रतीकारं दर्शयति—

(शंसनकाले प्रामादिकापराधस्य प्रतीकारविधानम्)

अधीयन्नुपहन्यादन्यं विवक्तारमिच्छेत्, तमेव तत् सेतुं कृत्वा तरति।।३।।

हिन्दी—(शंसन करते समय प्रमाद के कारण हुए उच्चारण-दोष के प्रतीकार को

(१) आश्व॰श्रौ॰ ५.२०.१-५।

(२) 'अर्चींषि ज्योतिर्भूतान् अशान्तान् प्रज्वलितान् प्रसीदन् प्रशमयन् एति निर्वहति'—इति षड्गुरुशिष्यः।

दिखला रहे हैं—) **अधीयन्** शंसन करता हुआ (होता) **उपहन्यात्** यदि उपघात (वर्ण-लोपादि अपराध) करे (तब वह) **अन्यं विवक्तारम् इच्छेत्** किसी अन्य विवेचन करके बोलने में समर्थ (व्यक्ति) को (इङ्गित करने के लिए) समीप में अवस्थित करे। **तत्** इस (इङ्गित करने वाले पुरुष को अवस्थापित करने) से **तमेव सेतुं कृत्वा** मानो उस (पुरुष) को ही (अपराध से पार करने का) सेतु के रूप में अवस्थापित करके **तरति** (आग्नि-मारुतशस्त्र) रूपी नदीं को पार कर लेता है।

सा० भा०—अधीयन्नधीयानः शंसनं कुर्वन् होता यद्युपहन्यादुपघातं वर्णलोपं कुर्यात्, तदानीमन्यं कञ्चित्पुरुषं विवक्तारं[1] विविच्य वक्तुं समर्थमिच्छेत् समीपेऽवस्थापयेत्। तदानीं तमेव पुरुषमपराधतरणोपायं सेतुं कृत्वा तमपराधमुल्लङ्घयति। अयं पक्षोऽनुकल्पः ॥

मुख्यपक्षं दर्शयति—

तस्मादाग्निमारुते न व्युच्यम्, एष्टव्यो विवक्ता ।।४।।

हिन्दी—(अब मुख्य पक्ष को दिखला रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **आग्नि-मारुते** आग्निमारुतशस्त्र में **न व्युच्यम्** (बाद में) सुधार नहीं करना चाहिए प्रत्युत **विवक्ता एष्टव्यः** दोष सुधार करके शंसन करने वाले (होता) को प्रयत्नपूर्वक (दोष-रहित) शंसन करना चाहिए।

सा० भा०—यस्मात् प्रमादं कृत्वा विवक्तृपुरुषसंपादनं न मुख्यं तस्मादाग्निमारुते शस्त्रे न व्यच्यं[2] न पश्चाद् विवक्तव्यं किन्तु प्रथमेव विवक्ता विवच्य वक्तुं समर्थो होता, एष्टव्यः प्रयत्नेन सम्पादनीयः॥

अथ 'प्रत्वक्षसः प्रतवसः' इत्येतन्मरुद्देवताकं सूक्तं[3] विधत्ते—

(**मरुद्देवताकान्यसूक्तशंसनम्**)

मारुतं शंसति, मरुतो ह वा एतद् रेतः सिक्तं धून्वन्तः प्राच्यावयन, तस्मान्मारुतं शंसति ।।५।।

हिन्दी—(अब 'प्रत्वक्षसः प्रतवसः' इस मरुत् देवता वाले सूक्त के शंसन का विधान कर रहे हैं—) **मारुतं शंसति** मरुत् देवता वाले ('प्रत्वक्षसः प्रतवसः' इस सूक्त का)

---

(१) (i) 'वि सुष्ठु वक्तारं स्वाध्यायदक्षमिच्छेत्। भ्रेषशान्तये'—इति षड्गुरुशिष्यः।
(ii) विवक्तारं महते ख्यापयितारं विरुद्धमादिनमिच्छेत्। न तु स्वयं विब्रूयात् उपहति न ख्यापयेत्—इति भट्टभास्करः।

(२) 'वि सुष्ठु वचनन कार्यम्। वचेर्भावे क्यप्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(३) ऋ० १.८७.१-६।

शंसन करता है। **मरुतः ह वै** मरुत् ही **एतत् सिक्तं रेतः** इस सिञ्चित वीर्य को **धून्वन्तः प्राच्यावयन्** स्पन्दित करते हुए प्रच्युत (कठोर) किया था। **तस्मात्** इसी कारण **मारुतं शंसति** मरुत् देवता वाले (सूक्त) का शंसन करता है।

सा० भा०—मरुतां धूननेन प्रजापतिरेतःशोषणं पूर्वमेवोक्तम्॥

अथ प्रगाथद्वयं विधत्ते—

(आग्निमरुत्वतीयशस्त्रे प्रगाथद्वयविधानम्)

'यज्ञा यज्ञा वो अग्नये' 'देवो वो द्रविणोदः' इति मध्ये योनिं चानुरूपं च शंसति। तद्यन्मध्ये योनिं चानुरूपं च शंसति; तस्मान्मध्ये योनिधृता ।।६।।

हिन्दी—(अब दो प्रगाथों का विधान कर रहे हैं—) 'यज्ञा यज्ञा वो अग्नये' और 'देवो वो द्रविणोदः' **इति मध्ये** इन (प्रगाथों) के मध्य में **योनिं च अनुरूपं च** योनि (मध्य में पढ़े जाने वाले मन्त्र) और अनुरूप का **शंसति** शंसन करता है। **तद्** तो **यत् मध्ये** (प्रगाथों के) मध्य में जो **योनिं च अनुरूपं च** योनि का और अनुरूप का **शंसति** शंसन करता है **तस्मात्** इसी कारण (लोक में) **मध्ये योनिधृताः** (शरीर के) मध्य में ही योनि होती है।

सा० भा०—'यज्ञायज्ञा वः' इत्येकः प्रगाथः[१]। 'देवो वः' इति द्वितीयः[२]। तत्र प्रथमे प्रगाथे तृचः संपद्यते। सोऽयं स्तोत्रियः, तस्मिन् तृचे सामगैः स्तूयमानत्वात्। अत एवासौ द्वयोर्मध्ये प्रथमभावित्वाद् 'योनिः' इत्युच्यते। द्वितीयप्रगाथे समुत्पन्नस्तृचोऽनुरूपः।[३] यादृशः स्तोत्रियः, तादृशत्वमनुरूपत्वम्। तदेतदुभयं शस्त्रमध्ये शंसनीयम्, न तु शस्त्रान्तरेष्विव स्तोत्रियानुरूपयोरादौ शंसनीयम्। तथा सति यस्मादत्र सूक्तमध्ये योनेरनुरूपस्य च शंसनं, तस्माल्लोकेऽपि नारीणां शरीरमध्ये योनिर्धृता[४]॥

(शस्त्रयोर्मध्ये तयोः स्थानविशेषविधानम्)

यदु द्वे सूक्ते शस्त्वा शंसति, प्रतिष्ठयोरेव तदुपरिष्टात् प्रजननं दधाति, प्रजात्यै ।।७।।

---

(१) उ०आ० १.१.१०.१,२ (ऋ० ६.४८.१)।

(२) उ०आ० १.१.२०.१,२ (ऋ० ७.१६.११)।

(३) 'यज्ञायज्ञा इति प्रगाथौ स्तोत्रियानुरूपौ'–इतिकल्पशाखानुरोधादेवेहैवं व्याख्यानमिति ध्येयम्। शस्त्रमध्ये तयोः स्थानविशेषं दर्शयति— द्र० आश्व०श्रौ० ५.२०.६।

(४) 'यज्ञा योनिर्द्व्यृचतृचो देवादिरनुरूपकः।
अयं द्व्यृचतृचो मध्येशस्त्रास्यास्येति गृह्यताम्॥'—इति षड्गुरुशिष्यः।

हिन्दी—(आग्निमारुतशस्त्र के मध्य में योनि और अनुरूप के स्थान-विशेष को दिखला रहे हैं—) **यदु द्वे सूक्ते शस्त्वा** जो (वैश्वानर और मरुत् देवता वाले) दो सूक्तों का शंसन करके **शंसति** (बाद में इन स्तोत्रिय योनि और अनुरूप का) शंसन करता है, **तत्** इस (बाद में शंसन) से **प्रतिष्ठयोः एव** दो पादों के मध्य में **प्रजननं दधाति** प्रजनन (वाली इन्द्रिय) को प्रतिष्ठापित करता है। **प्रजात्यै** यह सन्तानोत्पत्ति के लिए होता है।

सा०भा०—'यदु' यस्मादेव कारणाद् वैश्वानरीयं मारुतं चेति 'द्वे सूक्ते' शस्त्वा पश्चादेतौ स्तोत्रियानुरूपौ शंसति, तस्मात् कारणाद् द्वित्वसंख्योपेतयोः 'प्रतिष्ठयोः स्थिति-हेत्वोः पादयोरेव 'उपरिष्टाद्' ऊर्ध्वदेशे 'प्रजननं' प्रजोत्पादकमिन्द्रियं दधाति। तच्च 'प्रजात्यै' प्रजोत्पादनाय संपद्यते॥

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥८॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **प्रजया पशुभिः प्रजायते** सन्तान और पशुओं से समृद्धि को प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये)
एकादशः खण्डः ॥११॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के एकादश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वादशः खण्डः

सा०भा०—अथ 'प्र तव्यसीम्' इत्येतज्जातवेदोदेवताकं सूक्तं[1] विधत्ते[2]—

(जातवेदोदेवताकसूक्तविधानम्)

जातवेदस्यं शंसति ॥१॥

हिन्दी—(अब जातवेददेवताक सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **जातवेदस्यं शंसति** जातवेद देवता से सम्बन्धित सूक्त का शंसन करता है।

तदेतत्प्रशंसति—

(१) ऋ० १.१४३.१-८। (२) आश्व०श्रौ० ५.२०.६।

(जातवेदोदेवताकसूक्तप्रशंसनम्)

प्रजापतिः प्रजा असृजत, ताः सृष्टाः पराच्य एवायन्, न व्यावर्तन्त, ता अग्निना पर्यगच्छत्, ता अग्निमुपावर्तन्त, तमेवाद्याप्युपावृताः, सोऽब्रवीज्जाता वै प्रजा अनेनाविदमिति, यदब्रवीज्जाता वै प्रजा अनेनाविदमिति, तज्जातवेदस्यमभवत् तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम् ।।२।।

हिन्दी—(इस सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) **प्रजापतिः प्रजाः असृजत्** प्रजापति ने प्रजा (सृष्टि) का सर्जन (रचना) किया। **सृष्टाः ताः पराच्यः एव आयन्** सृजित वे पराङ्मुख होकर चले गये और **न व्यावर्तन्त** वापस नहीं आये। **ताः अग्निना पर्यगच्छत्** (प्रजापति ने) उन प्रजाओं को अग्नि के द्वारा घेर दिया। तब **ताः अग्निम् उपावर्तन्त** वे (प्रजाएँ) अग्नि के समीप गयीं। अतः **अद्यापि** आज भी **तमेव उपावृताः** उस (अग्नि) के ही समीप (शीतादि से व्याकुल होकर) जाती हैं। **सः अब्रवीत्** तब उस (सन्तुष्ट प्रजापति) ने कहा कि **जाताः वै प्रजाः** उत्पन्न हुई इन प्रजाओं को **अनेन अविदम्** इस (अग्नि) द्वारा ही (मैंने) जाना है। तो **यद् अब्रवीत्** जो (प्रजापति) ने कहा कि **जाताः वै प्रजाः** उत्पन्न हुई प्रजाओं को **अनेनैव अविदम्** इस (अग्नि) के द्वारा ही (मैंने) जाना है **तत् जातवेदस्यम् अभवत्** वह जातवेद से सम्बन्धित हुआ। **तत् जातवेदसः जातवेदस्त्वम्** वही जातवेदस् का **जातवेदस्त्व** जातवेद नाम वाला होना है।

सा० भा०—पुरा प्रजापतिना सृष्टाः प्रजाः प्रजापतिः पृष्ठतः कृत्वा पराङ्मुखत्वेनैवागच्छन् न पुनरावृत्ताः। तदानीं प्रजापतिस्ताः प्रजा अग्निना 'पर्यगच्छत' परितोऽग्निप्राकारं कृतवान्। अतः 'ता' प्रजा दूरं गन्तुमशक्ता अग्निमुपेत्य पुनरावर्तन्त। यस्मादेवं तस्मादद्यापि शीतार्ताः प्रजाः 'तमेव' अग्निम् 'उपावृत्ताः' परितो गच्छन्त्योऽप्यग्निं दृष्ट्वा समीपे कृत्वा सेवितुमावर्तन्ते। ततः 'सः' सृष्टः प्रजापतिरेनमब्रवीत्—'जाताः' उत्पन्ना याः प्रजास्ताः सर्वा अहम् 'अनेन' अग्निना 'अविदं' लब्धवानस्मि, ज्ञातवानस्मीति वा। यस्माज्जाता अविदमनेनेत्युक्तवान्, तस्मादग्निसंबन्धं जातदेवस्य सूक्तमभवत्। जातवेदसोऽग्नेरपि जातान् वेत्त्यनेनेति व्युत्पत्त्या तन्नाम संपन्नम्।।[१]

'आपो हि ष्ठा मयोभुवः' इत्यादिकं तृचं[२] विधत्ते—

(जातवेदस्यामूर्ध्वमापोहिष्ठीयतृचशंसनविधानम्)

ता अग्निना परिगता निरुद्धाः शोचत्यो दीध्यत्योऽतिष्ठन् ता अद्भिरभ्यषिञ्चत् तस्मादुपरिष्टाज्जातवेदस्यस्यापोहिष्ठीयं शंसति ।।३।।

---

(१) निरु० ७.५.१। तु० बृहद्दे० २.३०। (२) ऋ० १०.९.१-३।

हिन्दी—('आपो हिष्ठा' इत्यादि तृच का विधान कर रहे हैं—) **ताः अग्निना परिगताः** वे अग्नि से घिरी हुई, **निरुद्धाः** जाने में असमर्थ, **शोचत्यः** शोक से व्याप्त और **दीध्यतः** देदीप्यमान (प्रजाएँ) **अतिष्ठन्** वहीं रुक गयी। **ताः अद्भिः असिञ्चत्** उन (प्रजाओं) को (प्रजापति ने ताप की शान्ति के लिए) जल से सिञ्चित किया। **तस्मात्** इसी कारण **जातवेदस्यस्य उपरिष्टात्** जातवेद सम्बन्धी (ऋचा) के बाद **आपोहिष्ठीयं शंसति** 'आपो हिष्ठा' इस ऋच का शंसन करता है।

सा० भा०—अग्निना 'परिगताः' परितो वेष्टिताः, 'निरुद्धाः' गन्तुमशक्ताः, 'शोचत्यः' शोकं प्राप्नुवत्यः, 'दीध्यत्यः' दीप्यमानाः, ताः प्रजास्तत्रैवातिष्ठन्। प्रजापतिः 'ताः' प्रजाः संतापपरिहाराय अद्भिरभ्यषिञ्चत्। यस्मादेवं तस्माज्जातवेदस्याख्यसूक्तस्योपरिष्टात् 'आपो हि ष्ठा' इत्यादिकं तृचं शंसेत्॥

तत्र कंचिद् विशेषं विधत्ते—

(**तद्विषये विशेषविधानम्**)

तस्मात् तच्छमयतेव शंस्तव्यम्, ता अद्भिरभिषिच्य निजा स्यैवामन्यत ॥४॥

हिन्दी—(उस विषय में कुछ विशेष विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **तत् शमयता एव शंस्तव्यम्** उस (तृच) का शान्त करते हुए (धीरे-धीरे) शंसन करना चाहिए। (उस प्रजापति ने) **ताः अद्भिः अभिषिच्य** उन (प्रजाओं) को जल से सिञ्चित करके **निजा एव** अपना ही **अमन्यत** मान लिया।

सा० भा०—यस्माद् आपोहिष्ठीयं तापशमनकारणं, 'तस्मात् तच्छमयतेव' होत्रा शंसनीयम्—यथा वह्नि शमयन् पुरुषः शनैः शनैः क्रमेण जलं सिञ्चति, एवमनेनापि शनैः शंसनं कर्तव्यम्। ततः स प्रजापतिः ताः प्रजा अद्भिरभिषिच्य 'निजा एव'[१] स्वकीया एव 'स्या' ताः प्रजा इत्यमन्यत। स्याशब्दस्तच्छब्दपर्यायः, एकवचनान्ताऽपि बहुवचनान्तत्वेन परिणमयितव्यः। तथा सति ताः प्रजा इत्युक्तं भवति। तस्माच्छनैः शंसनेन स्वकीयत्वं संपद्यत इत्यर्थः। यद्वा, 'ताः' अद्भिः' इत्याद्यर्थवाद उत्तरशेषत्वेन योजनीयः॥[२]

---

(१) 'निजास्य नितरां शासयित्वा हिंसित्वैव शैत्यातिशयेन पीडयित्वैवामन्यत पीडिता मयैताः प्रतीकारः सर्वथा कर्तव्य इत्यमन्यत। आत्मीयाः प्रजाः पीडयित्वा यथा मन्तव्यं तथा मन्यत। स च प्रकारः प्रतीकारविधानकामनैवेति भावः। जासु ताडने, चौरादिकण्यन्ताल्ल्यप्। यद्वा, ताः शीतार्ताः प्रजा अनुजिघृक्षया तां तां प्रजां प्रत्येकममन्यत। स्या सैषा प्रजा निजा मदीयैव इयं च मदीयैव इति। तस्मादार्तैः प्रतीकारः कर्तव्यः इत्यमन्यत'—इति भट्टभास्करः।

(२) 'आपो हि ष्ठेति तिस्रो वियतमप उपस्पृशन्नन्वारब्धेष्वापावृतशिरस्कः, इदमादि प्रति प्रतीकमाह्वानम्'—इति आश्व०श्रौ० ५.२०.६।

'उत नोऽहिर्बुध्न्यः' इत्यस्या ऋचः[1] शंसनं तद्देवतास्तुतिद्वारेणोन्नयति—

(अहिर्बुध्न्यदेवताकर्चः शंसनविधानम्)

तासु वा अहिना बुध्न्येन परोक्षात् तेजोऽदधात्, एष ह वा अहिर्बुध्न्यो यदग्निर्गार्हपत्यः। अग्निनैवासु तद् गार्हपत्येन परोक्षात् तेजो दधाति; तस्मादाहुर्जुह्वदेवाजुह्वतो वसीयानिति ।।५।।

हिन्दी—(उत नोऽहिर्बुध्न इस ऋचा के शंसन को उसके देवता की स्तुति द्वारा दिखला रहे हैं—) (प्रजापति ने) **तासु वै** उन (अभिषेचन के पश्चात् अपनी स्वीकार की गयी प्रजाओं) में ही **अहिर्बुध्न्येन** अहि और बुध्न (नामक अग्नि-विशेष) के द्वारा **परोक्षात्** परोक्षरूप से **तेजः अदधात्** तेज को धारण कराया। **यद् गार्हपत्यः अग्निः** जो गार्हपत्य अग्नि है **एषः अहिर्बुध्न्यः** यह अहिर्बुध्न्य अग्नि ही है। **गार्हपत्येन अग्निना एव** गार्हपत्याग्नि द्वारा ही **आसु** इन (प्रजाओं) में **परोक्षात्** परोक्ष रूप से **तेजः दधाति** तेज को धारण कराता है। **तस्माद् आहुः** इसी कारण कहते हैं कि **जुह्वद् एव** आहुति देता हुआ (व्यक्ति) **अजुह्वतः** आहुति न देने वाले (व्यक्ति) से **वसीयान्** श्रेष्ठ होता है।

सा० भा०—'तासु' अभिषेकादूर्ध्वं स्वकीयत्वेन स्वीकृतासु प्रजासु, प्रजापतिः 'अहिना' 'बुध्न्येन' अहिशब्दबुध्न्यशब्दद्वयनामकाग्निविशेषेण 'परोक्षात्' परोक्षरूपेण 'तेजोऽदधात्' प्रजानां संतापभीरुत्वात्। ता यथा नाग्निविशेष पश्यन्ति, तथा तास्वग्निविशेषसम्बन्धि तेजः स्थापितवान्। यो गार्हपत्योऽग्निरस्ति, एष एव अहिशब्देन बुध्न्यशब्देनाभिहितः। अतस्तदीयायाः शंसने सति गार्हपत्येनैवाग्निना प्रजासु परोक्षत्वेन तेजः स्थापयति। यस्मादाग्नेयं तेजोऽपेक्षितं, तस्माद् 'अजुह्वतः' होमरहितात् पुरुषात् 'जुह्वदेव' होमं कुर्वन्नेव 'पुरुषो वसीयान्' अत्यन्तं श्रेष्ठ इत्येवं जना आहुः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) द्वादशः खण्डः ।।१२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के द्वादश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ त्रयोदशः खण्डः

सा० भा०—अथ 'देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः' इत्यृग्द्वयं देवपत्नीदेवताकं विधत्ते—

---

(१) ऋ० ६.५०.१४।

(देवपत्नीदेवताकऋग्द्वयविधानम्)

देवानां पत्नीः शंसति, अनूचीरग्निं गृहपतिं, तस्मादनूची पत्नी गार्हपत्यमास्ते ।।१।।

हिन्दी—(अब 'देवानां पत्नीरुशन्ती अवन्तु नः' इन देवपत्नीदेवताक दो ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) **गृहपतिं अग्निम् अनूचीः** (उन 'नोऽहिर्बुध्न' इत्यादि) गृहपति अग्नि का प्रतिपादन करने वाली ऋचाओं के बाद **देवानां पत्नीः** देवताओं की पत्नियों का सम्पादन करने वाली ('देवानां पत्नीरुशती अवन्तु नः' इन दों ऋचाओं का) **शंसति** शंसन करता है। **तस्मात्** इसी कारण (यज्ञशाला में) **पत्नी गार्हपत्यम् अनूची आस्ते** पत्नी गार्हपत्य-अग्नि के पीछे रहती है।

सा०भा०—'देवानां पत्नीः' इत्यनेन देवतावाचकेन शब्देन तत्प्रतिपादकमृग्द्वयं[१] विवक्षितम्[२]। ततश्च देवानां पत्नीः 'गृहपतिमग्निमनूचीः' शंसेत्। गृहपतिग्निरित्येताभ्यां शब्दाभ्यां तत्प्रतिपादिका 'उत नोऽहिर्बुध्न्यः' इति, ऋग्विवक्षिता। तदपेक्षया देवपत्नीनामकस्य मन्त्रजातस्य पश्चाद्भावित्वमन्वक्त्वम्। अतः पूर्वोक्ताया ऋचः पश्चाच्छंसेदित्यर्थः। यस्मादत्रैवं 'तस्माद्' यज्ञशालायां पत्नी गार्हपत्यम् 'अनूची आस्ते' पश्चादवतिष्ठत इत्यर्थः।।

अत्र कंचित् पूर्वपक्षमुत्थापयति—

(देवपत्नीराकादेवताकयोः ऋचोः शंसने पूर्वापरविचारः)

तदाहू राकां पूर्वां शंसेज्जाम्यै वै पूर्वपेयमिति ।।२।।

हिन्दी— (इस विषय में पूर्वपक्ष को उपस्थापित कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) कहते हैं कि **राकां पूर्वां शंसेत्** (देवपत्नियों से) पहले (पौर्णमासी के अभिमानित देवता) राका का प्रतिपादन करने वाली (ऋचा) का शंसन करना चाहिए; क्योंकि **जाम्यै वै पूर्वपेयम्** भगिनी के लिए प्रथमतः पेय को प्रदान किया जाता है।

सा०भा०—संपूर्णचन्द्रमण्डलयुक्ता पौर्णमासी राका। तदभिमानिदेवतायाः प्रतिपादिका ऋगपि 'राका' इत्युच्यते। तां राका 'पूर्वां' देवपत्नीभ्यः पूर्वभाविनीं शंसेत्।[३] सेयं राका, देवानां 'जामि' नाम भगिनी; तस्मात् तस्या एव 'पूर्वपेयं' प्रथमतः सोमपानं युक्तमिति पूर्वपक्षः ।।

तं निराकृत्य देवपत्नीनामेव पूर्वत्वं दर्शयति—

(तत्र देवपत्नीनां पूर्वभावित्वम्)

तत्तन्नादृत्यम्, देवानामेव पत्नीः पूर्वाः शंसेत्। एष ह वा एतत्

---

(१) 'देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु न इति द्वे'—इति आश्व०श्रौ० ५ २०.६।
(२) ऋ० ५.४६.७,८।　　(३) राकायाः शंसनविध्यादिकमनुपदं वक्ष्यति।

पत्नीषु रेतो दधाति, यदग्निर्गार्हपत्यः अग्निनैवासु तद्गार्हपत्येन पत्नीषु प्रत्यक्षाद् रेतो दधाति, प्रजात्यै ।। ३ ।।

हिन्दी—(उस राका की ऋचा के पहले शंसन करने का निराकरण कर रहे हैं-) **तत् तद् न आदृत्यम्** तो वह (राका के मन्त्र के पहले शंसन करने का मत) आदरणीय नहीं है। **देवानां पत्नीः एव** देवपत्नियों का ही **पूर्वाः शंसेत्** पहले शंसन करना चाहिए। **यद् गार्हपत्यः अग्निः** जो गार्हपत्य अग्नि है **एषः ह वै** यह (गार्हपत्याग्नि ही **एतत्** **पत्नीषु** इन (देव) पत्नियों में **रेतः दधाति** वीर्य-सेचन करता है। **तत्** इस देव-पत्नियों की ऋचा का पहले शंसन करने) से **अग्निना एव** अग्नि के द्वारा ही **आसु पत्नीषु** इन देवपत्नियों में **प्रत्यक्षात्** प्रत्यक्षरूप से **रेतः दधाति** वीर्य को प्रतिष्ठापित करता है। **प्रजात्यै** (यह यजन करने वाले के) सन्तानोंत्पत्ति के लिए होता है।

सा० भा०—राकायाः पूर्वत्वमनादरणीयम्, देवपत्नीनामेव पूर्वत्वं युक्तम्; गार्हपत्योऽग्निः पत्नीष्वेव रेतः स्थापयति, न तु भगिन्याम्। तस्मान् पत्नीनां पूर्वशंसनेन प्रत्यक्षमेव पत्नीषु गार्हपत्यमुखेन रेतः स्थापयति। तच्च:'प्रजात्यै' संपद्यते।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ।।४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः** सन्तान और पशुओं के साथ समृद्ध हो जाता है।

सा० भा०—लौकिकोदाहरणेन पत्नीनां पूर्वभावित्वं भगिन्याः पश्चाद्भावित्वं चोपपादयति—

तस्मात् समानोदर्या स्वसाऽन्योदर्यायै जायाया अनुजीविनी जीवति।।५।।

हिन्दी— (अब लौकिक उदाहारण द्वारा पत्नी के पूर्व में होने और भगिनी के बाद में होने का उपपादित कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण (लोक में) **समानोदर्या स्वसा** सहोदरा भगिनी **अन्योदर्यायै जायायै** अन्य (माता के) उदर से उत्पन्न पत्नी की **अनुजीविनी जीवति** 'अनुजीविनी (आश्रय में) होकर रहने वाली होती है।

सा० भा०—पुरुषाणामेकोदरजाऽपि भगिनी परस्मै दीयते। भिन्नोदरजाऽपि जाया स्वार्थं स्वीक्रियते। तथा सति परस्मै दत्ता भगिनी यदा कदाचिद् भ्रातृगृहमागत्य जायामनुसृत्य तद्दत्तान्नपानाभ्यां जीवन्ती सती 'जीवति' कंचित्कालमवतिष्ठति।।

'राकमहम्'–इति ऋग्द्वयं विधत्ते—

(राकायाः ऋग्द्वयविधानम्)

राकां शंसति, राका ह वा एतां पुरुषस्य सेवनीं सीव्यति, यैषा

शिश्नेऽधि[1] ।।६।।

हिन्दी—(अब 'राकाहम्' इन दो ऋचाओं के शंसन का विधान कर रहे हैं—) **राकां शंसति** राका-विषयक (ऋचा) का शंसन करता है। **राका वै** राका ही **पुरुषस्य** पुरुष की **या एता शिश्ने अधिसेवनी** जो शिश्न के ऊपर विद्यमान गुदा पर्यन्त सेवनी (नामक उपस्थ शिरा) है उसको **सीव्यति** सिल देती है।

सा० भा०—देवतावाचिराकाशब्देन तदभिधायिनी ऋगभिधीयते[2] तां शंसेत्। पुरुषस्य 'शिश्नेऽधि' शिश्नस्योपरि स्थिता, गुदवलयपर्यन्तं[3] व्याप्ता यैषा 'सेवनी', एतच्छब्दाभिधेया उपस्थशिराऽस्ति, 'एतां' शिरां राकाख्या देवता 'सीव्यति' दृढबद्धां करोति। तस्मात् तदीयामृचं शंसेत्।।[4]

वेदनं प्रशंसति—

पुमांसोऽस्य पुत्रा जायन्ते य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्य** इस (ज्ञाता) के **पुमांसः पुत्राः जायन्ते** पुरुष पुत्र ही उत्पन्न होते हैं।

'पावीरवी कन्या'–इत्येतामृचं[5] विधत्ते—

(पावीरवीनामर्चः शंसनविधानम्)

पावीरवीं शंसति, वाग्वै सरस्वती पावीरवी। वाच्येव तद् वाचं दधाति ।।८।।

हिन्दी—(अब 'पावीरवी कन्या' इस ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **पावीरवीं शंसति** पावीरवी से सम्बन्धित ऋचा का शंसन करता है। **वाग्वै सरस्वती पावीरवी** वाणी की अधिष्ठातृ देवता सरस्वती ही (पवित्र = शोधन करने के कारण) पावीरवी है। **तत्** इस (शंसन) से **वाचि एव** वाणी (की देवता सरस्वती) में **वाचं दधाति** (मंत्र रूप) वाणी को धारण कराता है।

सा० भा०—येयं वागभिमानिनी 'सरस्वती' देवता, सैव 'पावस्य' शोधनस्य हेतुत्वात् 'पावीरवी'। तत्पाठेन 'वाच्येव' देवतायां मन्त्ररूपायां 'वाचं' स्थापयति।।

---

(१) 'शिश्न्येऽधि'—इति वा पाठः। किन्तु 'शिश्नेऽधि' इति सायणसम्मतः।
(२) ऋ० २.३२.४।
(३) 'गुदबिलपर्यन्तम्' इति वा पाठः।
(४) आश्वलायनेन तु ऋग्द्वयं विहितम् 'राका महमिति द्वे'—इति (५.२०.६); इहापि उपक्रमभाष्ये उक्तं 'राकामहमिति ऋग्द्वयं विधत्ते'–इति तदेतद् विचार्यं विद्वद्भिः।
(५) ऋ० ६.४९.७।

अत्र विचारमवतारयति—

(यामीपित्र्योः शंसने पूर्वापरविचारः)

तदाहुर्यामीं पूर्वां शंसे३त्, पित्र्या३मिति ।।९।।

हिन्दी—(इस विषय में विचार की अवतारण कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में कुछ याज्ञिक पूछते हैं—) **यामीं पूर्वां शंसेत्** यम देवता से सम्बन्धित ('इमं यम प्रस्तरम्' इस ऋचा) का पहले शंसन करना चाहिए अथवा **पित्राम्** पितरों से सम्बन्धित ('उदीरतामवर' इस ऋचा) का (शंसन करना चाहिए)।

सा० भा०—'इमं यम प्रस्तरम्'[१] इत्येषा यमदेवताकत्वाद् 'यामी', 'उदीरतामवरः' इत्येषा पितृदेवताकत्वात् 'पित्र्या'। उभयोः पौर्वापर्यकारणस्यानिश्चयाद् विचारः, तदर्था प्लुतिः।।

तत्र निर्णयं दर्शयति—

यामीमेव पूर्वां शंसेत् 'इमं यम प्रस्तरमा हि सीद' इति राज्ञो वै पूर्वपेयं तस्माद् यामीमेव पूर्वां शंसेत् ।।१०।।

हिन्दी—(इस विषय में उत्तर का निर्णय कर रहे हैं—) 'इमं यम प्रस्तरमा हि सीद' अर्थात् हे यम! इस प्रस्तर पर बैठो'—**इति यामीं पूर्वां शंसेत्** इस यम सम्बन्धी (ऋचा) का पहले शंसन करना चाहिए; क्योंकि **राज्ञः एव पूर्वपेयम्** राजा को ही पहले सोमपान उपयुक्त है। **तस्मात्** इसी कारण **यामीम् एव पूर्वं शंसेत्** यम सम्बन्धी (ऋचा) का ही पहले शंसन करना चाहिए।

सा० भा०—यमो हि राजा। 'यमः पितृणां राजा'–इति श्रुत्यन्तरात्।[२] राज्ञश्च प्रथमपानं युक्तम्।।

पूर्वोक्तयाम्याः अन्यां यामीं विधत्ते—

'मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिरिति' काव्यानामनूचीं शंसति। अवरेणैव वै देवान् काव्याः परेणैव पितॄन्, तस्मात् काव्यानामनूचीं शंसति ।।११।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त यम-विषयक ऋचा से अन्य यम-सम्बन्धी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिः' अर्थात् मातली कव्यों (देवताओं के अधम जाति-विशेष वाला स्तोता) के साथ और यम अङ्गिराओं के साथ—**इति काव्यानाम् अनूचीं**

(१) ऋ० १०.१४.४।
(२) तै०सं० २.६.६। द्र० 'यावन्तो वै मृत्युबन्धवस्तेषां यम आधिपत्यं परीयाय'—इति तै०सं० ५.१.८.२।

शंसति इस कव्य से सम्बन्धित (ऋचा) का (पूर्वोक्त ऋचा 'इमं यम प्रस्तरमासीद' के) बाद में शंसन करता है। **काव्याः** काव्य **देवान् अवरेण** देवताओं से अवर और **पितृन् परेण** एवं पितरों से ऊँचे होते है। **तस्मात्** इसी कारण **काव्यानां अनूचीं शंसति** (यम के देवता होने से) काव्यों की (ऋचा) का (यम से) बाद में शंसन करता है।

सा०भा०—'कव्यैः' इति श्रुतत्वाद् इयं काव्यानामृक्, सा[१] च पूर्वोक्तामृचमनु पश्चाद् गच्छतीति 'अनूची', तां तथैव शंसेत्। 'काव्याः' देवानां स्तोतारः केचिदधमजाति-विशेषाः, पितृभ्योऽप्युत्तमजातीयाः। तदेव 'देवानवरेण' पितृन् 'परेण'–इत्युच्यते। अत एव पूर्वमुक्ताया याम्याः, वक्ष्यमाणायाः पित्र्याश्च मध्ये तच्छंसनं युक्तम्॥

अथ तिस्रः पितृदेवताका ऋचो विधत्ते—

(पितृदेवताकर्क्त्रयविधानम्)

'उदीरतामवर उत्परासः'[२] इति पित्र्याः शंसति ।।१२।।

हिन्दी—(अब पितरों से सम्बन्धित तीन ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'उदीरतामवर उत्परासः' **इति पित्र्याः शंसति** (इन तीन) पितृ-देवताओं वाली (ऋचाओं) का शंसन करता है।

पादद्वयं व्याचष्टे—

ये चैवावमा, ये च परमा, ये च मध्यमास्तान् सर्वाननन्तरायं प्रीणाति ।।१४।।

हिन्दी—(दोनों पादों का व्याख्यान कर रहे हैं—) **ये च एव अवमाः** जो अधम (पितृगण) हैं **ये च परमा** जो उत्तम (पितृगण) हैं और **ये च मध्यमाः** जो मध्यम पितृगण हैं, **तान् सर्वान्** उन सभी को **अनन्तरायं प्रीणाति** अनन्तर प्रसन्न करता है।

सा०भा०—'अवरे' निकृष्टाः पितरः 'उदीरताम्' उत्कर्षेण गच्छन्तु। 'परासः' उत्कृष्टाः पितर उदीरताम्। तथा 'मध्यमाः' निकृष्टोत्कृष्टमध्यवर्तिनः पितर उदीरताम्। ते त्रिविधाः पितरः 'सोम्यासः' सोमयोग्याः 'इतें' एतस्य पादद्वस्य पाठेन त्रिविधानपि पितृन् 'अनन्तरायं' कस्याप्यन्तरायो यथा न भवति तथा तर्पयति॥

विहितासु तिसृष्वृक्षु प्रथमाया उदाहृतत्वादनन्तरभाविनी द्वितीयामृचं दर्शयति—

'आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि'[३] इति द्वितीयां शंसति ।।१५।।

हिन्दी—(पितृ-सम्बन्धी प्रथमऋचा को कह कर द्वितीय ऋचा को कह रहे हैं—) 'आहं पितृन्त्सुविदत्राँ अवित्सि' अर्थात् अच्छी प्रकार से परिचित पितरों को हमने प्राप्त किया है'—**इति द्वितीयां शंसति** इस द्वितीय ऋचा का शंसन करता है।

(१) ऋ० १०.१४.३।　　(२) ऋ० १०.१५.१।　　(३) ऋ० १०.१५.३।

तस्या ऋचस्तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य' इत्येतद्ध वा एषां प्रियं धामः, यद्बर्हिषद इति, प्रियेणैवेनांस्तद्धाम्ना समर्धयति ।।१६।।

हिन्दी—('आहं पितृन्' ऋचा के तृतीयपाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य' अर्थात् जो कुशों पर बैठे हुए पितर हव्य के साथ सोम का पान करते हैं— **इति यद् बर्हिषदः** जो बर्हिषद कहा गया है, **एतद् ह वै एषां प्रियं धाम** यह (कुश) ही इन (पितरों) का प्रिय स्थान है। **तत्** इस (शंसन) से **एनान्** इन (पितरों) को **प्रियेण धाम्ना** इसके प्रिय स्थान से **समर्धयति** समृद्ध करता है।

सा० भा०—बर्हिषि दर्भे सीदन्त्युपविशन्तीति 'बर्हिषदः' पितरः। अत्र 'बर्हिषदः' इति यदुच्यते 'एतद्ध वै' एतदेव बर्हिः 'एषां पितॄणां प्रियं स्थानम्, तस्माद् एतत्पाठेन 'एनाम्' पितॄन् प्रियेणैव 'धाम्ना' स्थानेन समृद्धान् करोति।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रियेण धाम्ना समृध्यते य एवं वेद ।।१७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह प्रियेण धाम्ना **समृध्यते** अपने प्रियस्थान से समृद्ध होता है।

तृतीयामृचं दर्शयति—

'इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य' इति नमस्कारवतीमन्ततः शंसति; तस्मादन्ततः पितृभ्यो नमस्क्रियते ।।१८।।

हिन्दी—(पितर से सम्बन्धित तृतीय ऋचा को दिखला रहे हैं—) **इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य'** अर्थात् आज यह पितरों के लिए नमस्कार है'—**इति अन्ततः नमस्कारवतीं शंसति** अन्त में नमस्कार' शब्द से युक्त (ऋचा) का शंसन करता है। **तस्मात्** इस (शंसन) से **अन्ततः पितृभ्यः नमस्क्रियते** अन्त में पितरों के लिए नमस्कार किया जाता है।

सा० भा०—अस्यामृचि 'नमो अस्तु' इति श्रूयमाणत्वात् इयं 'नमस्कारवती'[1] तामेतां तिसृणां पित्र्याणामन्ते शंसेत्। यस्मादेवं तस्माच्छ्राद्धस्यान्ते 'नमो वः पितरः' इत्यादिना[2] पितृभ्यो नमस्कारः क्रियते।।

एतासु पित्र्यासु कंचिद् विशेषं विचार्य निर्णयं दर्शयति—

(तत्र विशेषविचारः)

तदाहुर्व्याहावं पित्र्याः शंसे३त्। अव्याहावाँ३ इति। व्याहावमेव शंसेत्,

---

(१) ऋ० १०.१५.२। (२) वाज० सं० २०.३२।

असंस्थितं वै पितृयज्ञस्य साधु। असंस्थितं वा एष पितृयज्ञं संस्थापयति यो व्याहावं शंसति, तस्माद् व्याहावमेव शंस्तव्यम्।।११।।

हिन्दी—(इन पितरों से सम्बन्धित ऋचाओं के विषय में कुछ विचार करके उसके निर्णय को दिखला रहे हैं—) (प्रश्न) **तदाहुः** इस (पितृ से सम्बन्धित ऋचाओं) के विषय में (कुछ याज्ञिक) पूछते हैं कि **पित्र्याः व्याहाव शंसेत्** पितरों से सम्बन्धित इन ऋचाओं का ('शोंसावोम्' इस आहाव से पृथक् करके शंसन करना चाहिए अथवा **अव्याहावान्** आहावरहित (शंसन करना चाहिए)। (उत्तर—) **व्याहावम् एव शंसेत्** विशेषरूप से पृथक्-पृथक् आहाव के सहित शंसन करना चाहिए। **पितृयज्ञस्य असंस्थितम्** पितृयज्ञ के असमाप्त (कर्म) को **साधु** समाप्त करता है। **यः व्याहावं शंसति** जो अगल-अगल आहाव को करके शंसन करता है, **एषः** यह **असंस्थितं पितृयज्ञाम्** समाप्त न हुए पितृयज्ञ को **संस्थापयति** समाप्त करता है। **तस्मात्** इसी कारण **व्याहावमेव शंस्तव्यम्** अलग-अलग आहाव करके ही शंसन करना चाहिए।

सा० भा०—'शोंसावोम्'-इति मन्त्र आहावः। अनेन मन्त्रेण प्रत्यृचं 'व्याहावं' विशेषेणाहूयाहूय किं तिस्रः पित्र्याः शंसेत्? आहोस्विद् 'अव्याहावं' पृथक्पृथगाहावमन्त्रं विना शंसेदिति विचारं ब्रह्मवादिन आहुः। अत्र 'पित्र्याः शंसति'-इत्येकनैव विधिना विहितत्वात् पृथक्पृथगाहावे नास्तीति पक्षः प्रतिभाति। पुनरपि 'द्वितीयां शंसति नमस्कारवतीं शंसति' इति पृथग्विधिदर्शनात् प्रत्येकमाहावः कर्तव्य इत्यपि प्रतिभाति। विचारार्थं प्लुतिद्वयम्। तत्र पृथक्पृथगाहाव एव सिद्धान्तः। तत्रेयमुपपत्तिः—पितृयज्ञस्य संबन्धि यदङ्गम् 'असंस्थितम्' एव वर्तते, असमाप्तं तिष्ठति; तदङ्गं 'साधु' समाप्तं कर्तव्यम्। 'यो' होता पृथगाहावं कृत्वा शंसति, 'एषः' होता पूर्वम् 'असंस्थितम्' असमाप्तं पितृयज्ञं संस्थापयति। तस्मात् पृथक्पृथगाहावमन्त्रं पठित्वैव शंस्तव्यम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के त्रयोदश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्दशः खण्डः

सा० भा०—अथ चतस्र ऋचो विधत्ते—

(अनुपायनीयचतसृणामृचां शंसनविधानम्)

।'स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायम्' इतीन्द्रस्यैन्द्रीरनुपानीयाः शंसति,

एताभिर्वा इन्द्रस्तृतीयसवनमन्वपिबत्, तदनुपानीयानामनुपानीयात्वम् ।।१।।

हिन्दी—(अब चार ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायम्' अर्थात् यह (सवन किया गया सोम) स्वादिष्ट, मधुर और तीव्र रस से सम्पन्न है'—**इति ऐन्द्रीम्** इस इन्द्र से सम्बन्धित और **इन्द्रस्य अनुपानीया** इन्द्र के अनुपान (भोजन के बाद सोमपान) वाली (चार ऋचाओं का) **शंसति** शंसन करता है। **एताभिः एव** इन्हीं (ऋचाओं) द्वारा **इन्द्रः** इन्द्र ने **तृतीयसवनम् अनु** तृतीयसवन के बाद **अपिबत्** (सोम का) पान किया था। **तद् अनुपानीयानाम् अनुपानीयत्वम्** यही अनुपानीय (ऋचाओं) का अनुपानीय नाम वाला होना है।

सा० भा०—'स्वादुष्किलायम्'–इत्यादिका ऋचः[1] 'ऐन्द्र्य' इन्द्रदेवताकत्वात् 'पपिवांसमिन्द्रम्' इतीन्द्रः तृतीयपादे श्रूयते। ताश्चेन्द्रस्यानुपानीयाः भोजनादूर्ध्वं यत्पानं, तत्पश्चाद्भावित्वाद् अनुपानं, तत्स्थानीया एता ऋचः। ताः शंसेत्। कथमिवासामनुपानीयत्वम्? इति तदुच्यते—अयम् इन्द्रस्तृतीयसवनम् 'अनु' पश्चाद् 'एताभिः' ऋग्भिः शस्यमानः सन् सोमम् अपिबत् तस्मादनुपानीयेति नाम संपन्नम्।।

एतच्छंसनकालेऽध्वर्योः प्रतिगरमन्त्रे विशेषं विधत्ते—

(अनुपानीयर्क्शंसनकाले प्रतिगरमन्त्रे विशेषः)

माद्यन्तीव वै तर्हि देवता यदेता होता शंसति, तस्मादेतासु मद्वत् प्रतिगीर्यम् ।।२।।

हिन्दी—(अनुपायनीय ऋचाओं के शंसन के समय अध्वर्यु के प्रतिगरमन्त्र में कुछ विशेष विधान कर रहे हैं—) **यद् होता एताः शंसति** जब होता इन (ऋचाओं) का शंसन करता है **तर्हि देवताः माद्यन्तीव** तब देवता सर्वथा मस्त होते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **एतासु** इन (ऋचाओं) में **मद्वत् प्रतिगीर्यम्** मद् (धातु से निष्पन्न शब्द) से युक्त प्रतिगरमन्त्र कहना चाहिए।

सा० भा०— तस्मिन्ननुपानीयानामृचां शंसनकाले होतुः शंसनं श्रुत्वा देवताः सर्वाः 'माद्यन्तीव वै' सर्वथा हृष्यन्त्येव। 'तस्मात्' कारणाद् 'एतासु' ऋक्षु शस्यमानास्वध्वर्युणा 'मद्वत्प्रतिगीर्यं' मदिधातुयुक्तं प्रतिगरणं पठनीयम्। 'मदामो दैव' इत्ययं मदिधातुयुक्तः प्रतिगरणमन्त्रः[2]।।

ऋगन्तरं विधत्ते—

---

(१) ऋ० ६.४७.१-४।

(२) स्वादुष्किलायमिति चतस्रो मध्ये चाह्वानं मदा मोदव मोदा मोदैवोमित्यासां प्रतिगरौ'—इति आश्व०श्रौ० ५.२०.६।

(वैष्णुवारुण्यृग्विधानम्)

'ययोरोजसा स्कभिता रजांसीति' वैष्णुवारुणीमृचं शंसति, विष्णुर्वै यज्ञस्य दुरिष्टं पाति वरुणः स्विष्टम्। तयोरुभयोरेव शान्त्यै ।।३।।

हिन्दी—(अब ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'ययोरोजसा स्कभिता रजांसि' अर्थात् जिन दोनों के बल से (तीनों) लोक अवस्थित हैं'—**इति वैष्णुवारुणीम् ऋचं शंसति** विष्णु और वरुण युगल देवता वाली ऋचा का शंसन करता है; क्योंकि **विष्णुः वै यज्ञस्य दुरिष्टम्** विष्णु ही यज्ञ के दुरिष्ट (अङ्गवैकल्य) और **वरुणः स्विष्टम्** वरुण स्विष्ट (फल प्रतिबन्ध) का **पाति** निवारण करता है। **तयोः उभयोः एवं शान्त्यै** उन दोनों की शान्ति के लिए (यह ऋचा है)।

सा० भा०—विष्णुर्वरुणश्च मिलित्वा देवता यस्या ऋचः, सा 'वैष्णुवारुणी'; तां शंसेदित्यर्थः। तस्याश्चतुर्थपादे 'विष्णुरगन्वरुणा'–इति श्रवणाद् वैष्णुवारुणीत्वम्। सा च आश्वलायनेन पठिता।[१] 'दुरिष्टम्' अङ्गविकलं यदनुष्ठितं, तद्विष्णुः 'पाति' वैकल्यं निवारयतीत्यर्थः। 'स्विष्टं' साकल्येन यदङ्गमनुष्ठितं, तद्वरुणः 'पाति' तस्य फलप्रतिबन्धं निवारयतीत्यर्थः। तस्मादियमृक् 'तयोरुभयोः' विष्णुवरुणयोरेव 'शान्त्यै' प्रीत्यै संपद्यते॥

ऋगन्तरं विधत्ते—

(वैष्णवी–ऋग्विधानम्)

'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचम्' इति वैष्णवीं शंसति, यथा वै मत्यमेवं यज्ञस्य विष्णुः। तद्यथा दुष्कृष्टं दुर्मतीकृतं सुकृष्टं सुमतीकृतं कुर्वन्नियादेवमेवैतद् यज्ञस्य दुष्टुतं दुःशस्तं सुष्टुतं सुशस्तं कुर्वन्नेति, यदेतां होता शंसति ।।४।।

हिन्दी—(अन्य वैष्णवी ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचम्' अर्थात् अब विष्णु के पराक्रम को कहूँगा'—**इति वैष्णवीं शंसति** इस विष्णु से सम्बन्धित (ऋचा) का शंसन करता है। **यथा वै मत्यम्** जिस प्रकार बुद्धि से सम्यक् रूप से कार्य होता है **एवं यज्ञस्य विष्णुः** उस प्रकार विष्णु यज्ञ का बुद्धि-स्थानीय है। **तद् यथा** जैसे कि (लोक में) **दुष्कृष्टं सुकृष्टम्** कृषकों द्वारा तृणादि के स्थान पर जुताई करके सुन्दर बना देता है और **दुर्मतिकृतं सुमतीकृतं कुर्वन्** दुर्बुद्धि मन्त्री के द्वारा किये गये दुर्मतियुक्त कार्य को बुद्धिमान् मन्त्री सुन्दर बनाते हुए **इयात्** चलता है, **एवमेव एतत्** इस प्रकार यह **होता** होता नामक ऋत्विक् **यदेतां शंसति** जो इस (वैष्णवी ऋचा) का शंसन करता है, यह **यज्ञस्य** यज्ञ के **दुष्टुतं सुष्टुतं** दुस्स्तुति को सुस्तुति करता हुआ तथा

---

(१) ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा।
या पत्येते अप्रतीता सहोभिर्विष्णुरगन् वरुणा पूर्वहूतौ ॥ –इति आश्व०श्रौ० ५.२०.६।

दुःशंस्तं सुशस्तं कुर्वन् दुःशंसन को सुशंसन करता हुआ **एति** चलता है।

सा० भा०—'विष्णोः' इति श्रुयमाणत्वाद् इयं 'वैष्णवी'[1]। मतौ बुद्धौ सम्यक्त्वेन प्रतिभातं कार्यं 'मत्यम्'। अयं दृष्टान्तः। विष्णुर्दार्ष्टान्तिकः। यथा मत्यं कार्यं लोके फलपर्यवसायि भवति, तथा विष्णुरपि फलपर्यवसायीत्यर्थः। उक्तयोर्दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकोः तात्पर्यं तद्यथेत्यादिना प्रपञ्च्यते। यथा लोके 'दुष्कृष्टं' कर्षकैः सस्यस्थाने दोषयुक्तं यथा भवति तथा कर्षणं कृतम्। यत्किञ्चिद् राजकार्यममात्यैः 'दुर्मतीकृतं' दुष्टं मतमन्यथा चिन्तितं, पूर्वं तत्कार्यमदुर्मतं सत्पश्चाद् बुद्धिप्रमादाद् दुर्मतं संपादितं तत्र कश्चिद् बुद्धिमान् कर्षकः कृष्टस्थाने दुष्टस्य तृणादेरपनयनेन 'सुकृष्टं कुर्वन्नियात्' कर्षकस्य पृष्ठतो गच्छेत्। राजकार्यमपि दुर्बुद्धिनाऽमात्येन 'दुर्मतीकृतं' कश्चित्सुबुद्धिरमात्यः सुमतीं कुर्वन् गच्छेत्। यथैतदुभयं लोके एवमेवास्मिन् कर्मणि यज्ञसंबन्धि यत्स्तोत्रमकुशलैरुद्गातृभिर्दोषसहितं कृतं, यद्यपि होतृभिः शस्त्रं दोषसहितं पठित, तदुभयमपि विष्णुःक्रमेण सुष्टुतं सुशस्तं कुर्वन् 'एति' गच्छति, तत्रत्यदोषं परिहरतीत्यर्थः। 'यद्' यदा वैष्णवीमेता होता शंसति, तदा तदुभयसमाधानमिति द्रष्टव्यम्॥

ऋगन्तरं विधत्ते—

(प्राजापत्यर्ग्विधानम्)

'तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि' इति प्राजापत्यां शंसति, प्रजा वै तन्तुः। प्रजामेवास्मा एतत् संतनोति ।।५।।

हिन्दी—(अन्य ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि' अर्थात् (हे प्रजापति!) हमारी सन्तान का विस्तार करते हुए रञ्जनात्मक (जगत्) को भासित करने वाले सूर्य का अनुगमन करो'—**इति प्राजापत्यां शंसति** इस प्राजापति देवता वाली (ऋचा) का शंसन करता है। **प्रजा वै तन्तुः** प्रजा ही तन्तु है। **एतत्** इस (शंसन) से **अस्मै** इस (यजन करने वाले) के लिए **प्रजामेव सन्तनोति** प्रजा का ही विस्तार करता है।

सा० भा०—अस्यामृचि काचिदपि देवता साक्षाद् वाचकशब्देन नोक्ता तस्माद् इयम्[2] अनिरुक्ता। तादृश्याश्च प्रजापतिर्देवता, तद्देवताकत्वं पूर्वमेव निरूपितम्, तामेतां 'प्राजापत्यां' शंसेत्। हे प्रजापते, 'तन्तुं तन्वन् पुत्रपौत्रादिसंततिं विस्तारयन् 'रजसः' रञ्जनात्मकस्य जगतो 'भानुं' भासकमादित्यम् 'अन्विहि' अनुगच्छ। आदित्यो हि पुनः पुनः संचरन्नहोरात्रनिष्पत्तिं करोति, तत्कालानुसारेणैव त्वमपि संतानवृद्धिं कुर्वित्यर्थः। अस्मिन् पादे 'तन्तु' शब्देन पुत्रपौत्रादिप्रजा विवक्षिता; तन्तुवद् विस्तार्यमाणत्वात् तस्मादेतत् पाठेन 'अस्मै' यजमानाय प्रजामेव 'संतनोति', अविच्छिन्नां करोति॥

(१) ऋ० १.१५४.१। (२) ऋ० १०.५३.६।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्' इति। देवयाना वै ज्योतिष्मन्तः पन्थानः। तानेवास्मा एतद् वितनोति ।।६।।

हिन्दी—(इस ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) **ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्** अर्थात् (हे प्रजापति)! यज्ञादि के अनुष्ठान की बुद्धि से सम्पादित) प्रकाशमान मार्गों के विघ्न को हटाते हुए रक्षा करो'—**इति** यह (ऋचा का द्वितीय पाद है)। **देवयानाः वै** देवताओं के जाने का मार्ग ही **ज्योतिष्मन्तः पन्थानः** ज्योतिष्मान् मार्ग हैं। **एतत्** इस (पाद के शंसन) से **अस्मै** इस (यजन करने वाले) के लिए **तान्** उन (ज्योतिष्मान् मार्गों) को **वितनोति** विशेष रूप से विस्तारित करता है।

सा० भा०—हे प्रजापते 'धिया कृतान्' यागाद्यनुष्ठानबुद्ध्या संपादितान् 'ज्योतिष्मतः' प्रकाशयुक्तान् 'पथः' स्वर्गमार्गान् 'रक्ष' विघ्नपरिहारेण पालय। अत्र 'ज्योतिष्मत्पथि'–शब्दाभ्यां देवगमनमार्गा विवक्षिताः देवा येषु मार्गेषु यान्ति गच्छन्ति, ते 'देवयानाः'। सर्वेषां देवानां तेजस्वित्वात् तन्मार्गेषु न कदाऽप्यन्धकारोऽस्ति। तस्मादेतत् पादपाठेन 'अस्मै' यजमानाय 'तान्' एव मार्गान् होता विस्तारयति।।

उत्तरार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्' इति। एवैनं तन्मनोः प्रजया संतनोति, प्रजात्यै ।।७।।

हिन्दी—(ऋचा के उत्तरार्ध को कहकर उसका व्याख्यन कर रहे हैं—) (हे प्रजापति) **जोगुवाम्** अनुष्ठान शील (हमारे पुत्रादियों) के **अपः** (सम्पाद्यमान इस) कर्म को **अनुल्बणं वयत** निर्दोष करते हुए निर्वाह करो, **मनुः भव** (मनुष्यों को उत्पन्न करने के लिए) मनु होवो और **दैव्यं जनं जनय** देवता-सम्बन्धी कार्य करने वाले (पुत्रादि रूप) मनुष्य को उत्पन्न करो'—**इति** यह (ऋचा का उत्तरार्ध है)। **तत्** इस (उत्तरार्ध के शंसन) से **एनम्** इस (यजमान) को **मनोः प्रजया** मनु की (मनुष्य रूप) प्रजा से **सन्तनोति** युक्त करता है। **प्रजात्यै** (यह शंसन) सन्तानोत्पति के लिए होता है।

सा० भा०—पुनः पुनः कर्मसु गच्छन्ति प्रवर्तन्त इत्यनुष्ठानशीला 'जोगु' शब्देनोच्यन्ते। तादृशानां 'जोगुवाम्' अस्मत्संततावुत्पन्नानां पुत्रादीनाम् 'अपः' अनुष्ठीयमानमेतत्कर्मानुल्बणमनतिरिक्तं 'वयत' हे प्रजापते, 'वय' निर्वह। बहुवचनं पूजार्थम्। 'मनुर्भव' त्वमपि मनुष्योत्पादनार्थमनुरूपो भव। ततो 'दैव्यं' देवताराधनयोग्यं 'जनं' पुत्रादिरूपं मनुष्यं 'जनय' उत्पादय। 'तत्' तेनार्धपाठेन 'एनं' यजमानं 'मनोः' संबन्धिन्या 'प्रजया' मनुष्यरूपया 'संतनोति' संयोजयति। तच्च 'प्रजात्यै' यजमानस्य प्रजोत्पादनाय संपद्यते।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एव वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः** (पुत्रादि) सन्तान और पशुओं से **प्रजायते** समृद्ध होता है।

ऋगन्तरेण शस्त्रसमाप्तिं विधत्ते—

(शस्त्रसमापनर्ग्विधानम्)

'एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी' इत्युत्तमया परिदधाति। इयं वा इन्द्रो मघवा विरप्शी ।।९।।

हिन्दी—(अन्य ऋचा द्वारा शस्त्र की समाप्ति का विधान कर रहे हैं—) 'एवा न इन्द्रो मधवा विरप्शी' अर्थात् धनसम्पन्न और सर्वदा उद्युक्त रहने वाले इन्द्र हमारे लिए (अभीष्ट प्रदान करे)—**इति उत्तमया परिधाति** इस अन्तिम (ऋचा) से शस्त्र का समापन करता है। **इयं वै इन्द्रः** यह इन्द्र ही **मघवा विरप्शी** धन-सम्पन्न और सर्वदा उद्युक्त रहने वाला है।

सा०भा०—योऽयमिन्द्रोऽस्ति, सोऽयं 'न एवा' अस्मदर्थमेव, करत करोत्विति द्वितीयपादे वक्ष्यमाणेन संबन्धः। कीदृश इन्द्रः? 'मघवा' धनवान्। तथा 'विरप्शी' 'रभ राभस्ये' इत्यस्माद्धातोरुत्पन्नोऽयं शब्दः विशेषेण राभस्यवान् सर्वदोद्युत्त इत्यर्थः। अनयर्चा[१] 'उत्तमया-शस्त्रापेक्षयाऽन्तिमया परिधानं कुर्यात्। उदाहृते प्रथमपाद इन्द्रादिशब्दैः सर्वैरपि 'इयं वै' भूमिरेवोपलक्ष्यते। अनया भूमिस्पर्शस्य विधास्यमानत्वात्।।

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा' इति। इयं वै सत्या चर्षणीधृदनर्वा।।१०।।

हिन्दी—(इस ऋचा के द्वितीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'चर्षणीधृत्' हे मनुष्यों के पालक (इन्द्र)! **अनर्वा** अश्व से रहित होकर **सत्या करत्** सत्कर्मों को सम्पादित करो'—**इति** यह (ऋचा का द्वितीय पाद है)। **इयं वै** यह (पृथिवी) ही **सत्या चर्षणीधृद् अनर्वा** सत्या, मनुष्यों की पालक तथा अश्वरहित (यज्ञ-भूमि) है।

सा०भा०—'चर्षणी' शब्दो मनुष्यवाची, तान् धारयति पोषयतीति 'चर्षणीधृत्' इन्द्रः। सोऽयम् 'अनर्वा' हयं परित्यज्य यागभूमावुपविष्टत्वाद् अश्वरहितः। तादृशां सन् 'सत्या' फलप्रदानस्यावश्यकत्वेन सत्यानि कर्माणि 'करत्' करोतु विघ्नपरिहारेण संपादयतु। अस्मिन्नपि पादे सत्यादिपदैः पूर्ववदियं भूमिरेवोपलक्षणीया।।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे' इति इयं वै राजा जनुषाम् ।।११।।

---

(१) ऋ० ४.१७.२०।

हिन्दी—(तृतीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे' अर्थात् (हे इन्द्र)! उत्पन्न हम (ऋत्विकों) के राजा होकर हमारे लिए अभीष्ट प्रदान करो'—इति (यह ऋचा का तृतीय पाद है)। **इयं वै** यह (पृथिवी) ही **जनुषां राजा** जन्म लेने वालों की स्वामिनी है।

सा० भा०—'जनुषां' जातानाम् 'अस्मे' अस्माकमृत्विजां हे इन्द्र, त्वं राजा भूत्वा 'धेहि' वक्ष्यमाणमभीष्टं संपादय। अस्मिन्नपि पादे 'राजा जनुषाम्' इति पदद्वयेन पूर्ववद् इयं भूमिरेवोपलक्षणीया॥

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे' इति। इयं वै माहिनं यज्ञश्रवः। यजमानो जरिता यजमानायैवैतामाशिषमाशास्ते ॥१२॥

हिन्दी—(चतुर्थ पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'अधिश्रवो माहिनं यज्जरित्रे' अर्थात् स्तुति करने वाले (यजमान) के लिए जो महान् कीर्ति है उसे अत्यधिक प्रदान करो'—इति यह (ऋचा का चतुर्थ पाद है)। **इयं वै माहिनं यज्ञश्रवः** यह पृथिवी ही महान् यज्ञ और यज्ञ का यश है। **यजमानः जरिता** यजमान स्तुति करने वाला है। **एताम्** इस (ऋचा) से (होता) **यजमानाय** यजमान के लिए **आशिषम् आशास्ते** आशीर्वचन को कहता है।

सा० भा०—'जरित्रं' स्तोत्रे यजमानाय 'यत्' प्रसिद्धं 'माहिनं' महत्त्वं 'श्रवः' कीर्तिं च 'अधि' धेहीति पूर्वेणान्वयः, हे इन्द्र, ममाधिक्येन संपादयेत्यर्थः। अस्मिन्नपि पादे 'माहिनम्' इत्यनेनेयं भूमिरेवोपलक्षणीया। यच्छब्दो न पुसंकलिङ्गो य इति पुंलिङ्गत्वेन विपरिणमयितव्यः। तेन यो 'यज्ञः' इति प्रसिद्धं यज्ञमाचष्टे। सोऽपीयं भूमिरेव। कीर्तिवाचिना 'श्रवः' शब्देनापि भूमिरेवोपलक्षणीया। यजमानो 'जरितृ' शब्देनाभिधेयः। एतत्पादचतुष्टय-पाठेन होता यजमानार्थमेव आशासनीयं सर्वं प्रार्थयते॥

परिधानकाले होतुर्भूमिस्पर्शनं विधत्ते—

(परिधानकाले होतुर्भूमिस्पर्शनविधानम्)

तदुपस्पृशन् भूमिं परिदध्यात् तद् यस्यामेव यज्ञं संभरति, तस्यामेवैनं तदन्ततः प्रतिष्ठपयति ॥१३॥

हिन्दी—(शस्त्र के समापन के समय होता द्वारा भूमि-स्पर्श का विधान कर रहे हैं—) **तदु** उस समय **भूमिम् उपस्पृशन्** भूमि का स्पर्श करते हुए **परिदध्यात्** (होता शस्त्र का) समापन करे। **तत्** उस (भूमि के स्पर्श) से **यस्यामेव** जिस (भूमि) पर ही **यज्ञं सम्भरति** यज्ञ का समापन करता है, **अन्ततः** अन्त में **तस्यामेव** उसी (भूमि) पर **एनं प्रतिष्ठापयति** इस (यजन करने वाले) को प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—'तत्' तदा शस्त्रमसमाप्तिकाले भूमिं स्पृशन्नेव 'परिदध्यात्' समापयेत्। 'तत्' तेन स्पर्शेन यस्यामेव भूमौ यज्ञमनुष्ठातुं साधनं 'सम्भरति' संपादयति, तस्यामेव भूमौ 'एनं यज्ञं 'तदन्ततः' तत्समाप्तिपर्यन्तं प्रतिष्ठापयति॥

अत्र शस्त्रयाज्यां विधत्ते—

'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः' इत्याग्निमारुतमुक्थं शस्त्वा आग्निमारुत्या यजति, यथाभागं तद्देवताः प्रीणाति, प्रीणाति ॥१४॥

हिन्दी—(अब शस्त्र की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **आग्निमारुतं उक्थं शस्त्वा** आग्निमारुतशस्त्र का शंसन करके (होता) 'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः' अर्थात् हे अग्ने! शोभयमान और पूज्यनीय मरुतों के साथ (सोमपान) करो'—**इति आग्निमारुत्या यजति** इस अग्नि और मारुत (युगल देवता) से सम्बन्धित (ऋचा) से याज्या करता है। **तत्** इस (याज्या) से **यथाभागम्** भाग के अनुसार **देवताः प्रीणाति** देवताओं को तृप्त करता है।

सा० भा०—अग्निर्मरुतश्च यस्य 'उक्थस्य' शस्त्रस्य देवता तत् 'आग्निमारुतमुक्थं' पूर्वोक्तप्रकारेण शस्त्वा तत् ऊर्ध्वम् 'अग्ने मरुद्भिः' इत्येतया 'आग्निमारुत्या' यजेत्। आग्निमारुती याज्यां[1] पठेदित्यर्थः। तथा सति तस्मिञ्शस्त्रे प्रतिपादिता यावत्यो देवताः सन्ति ताः सर्वास्तत्तद्भागमनतिक्रम्य तर्पयति। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (त्रयोदशाध्याये) चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय के चतुर्दश खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवाचार्यदेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयोऽध्यायः (त्रयोदशोऽध्यायः) समाप्त ॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के त्रयोदश अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) ऋ० ५.६०.८।

अथ तृतीयपञ्चिकायाम्
चतुर्थोऽध्यायः
[अथ चतुर्दशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— त्रयोदशे सोमकथा प्रकीर्तिता
राजक्रयार्था सवनान्विताऽपि च।
स्याद् वैश्वदेवं च मरुत्वतीयं
तद्तद्विशेषा उदिताः क्रमेण ॥१॥

अथ पूर्वाध्यायोक्तोऽग्निष्टोमः, सर्वयज्ञक्रतूनां प्रकृतित्वेन श्रूयते, तदर्थमुपाख्यानमाह—

(अग्निष्टोमस्य सर्वक्रतुप्रकृतित्वद्योतकमुपाख्यानम्)

देवा वा असुरैर्युद्धमुपप्रायन् विजयाय, तानग्निर्नान्वकामयतैतुम्, तं देवा अब्रुवन्, अपि त्वमेह्यस्माकं वै त्वमेकोऽसीति; स नास्तुतोऽन्वेष्यामीत्यब्रवीत्–स्तुत नु मेति, तथेति; तं ते समुत्क्रम्योपनिवृत्त्यास्तुवन्, तान् स्तुतोऽनु प्रैत् ॥१॥

हिन्दी—(अब अग्निष्टोम को सभी यज्ञक्रतुओं की प्रकृति होने के लिए उपाख्यान का कह रहे हैं—) **देवाः वै** देवताओं ने **विजयाय** विजय के लिए **असुरैः** असुरों से **युद्धम् उपप्रायन्** युद्ध का उपक्रम किया। **अग्निः** अग्नि ने **तान्** उन (देवताओं) को **अन्वेतुम्** अनुगमन करने के लिए **न अकामयत** इच्छा नहीं किया। तब **देवाः तम् अब्रवीत्** देवताओं ने उस (अग्नि) से कहा कि **अपि एहि** (हे अग्नि)! तुम भी आओ क्योंकि **अस्माकं हि त्वम् एकः आसम्** हम लोगों के मध्य में तुम भी एक हो। **सः अब्रवीत्** उस (अग्नि) ने कहा कि **अस्तुतः न अन्वेष्यामि** बिना स्तुति किया गया मैं अनुगमन नहीं करूँगा। अतः **स्तुत नु मा** तुम लोग शीघ्र मेरी स्तुति करो। **तथा इति** (तब देवताओं ने स्वीकार करते हुए कहा कि) वैसा ही हो। **ते** उन (देवताओं) ने **तम् समुत्क्रम्य** उस (अग्नि) के समीप जाकर और **उपनिवृत्य** (उसकी ओर) मुख करके **अस्तुवन्** स्तुति किया। **स्तुतः** (तब) स्तुति किया गया (वह अग्नि) **तान्** उन (देवताओं) का **अनुप्रैत्** (युद्ध करने के लिए) अनुगमन किया।

सा० भा०—यदा देवा विजयार्थमसुरैः सह युद्धम् 'उप प्रायन्' उपक्रान्तवन्तः

तदानीमग्निः तान् देवान् 'अनु' पश्चाद् 'एतुम्' आगन्तुं नाकामयत। अग्निमिच्छारहितं देवा एवमब्रुवन् —हे अग्ने त्वमपि 'एहि' आगच्छास्माकमेव मध्ये 'त्वमेकोऽसि', न त्वत्तोऽन्य इति। ततः सोऽग्निरेवमब्रवीद् युष्माभिरस्तुतः सन्नहं 'नान्वेष्यामि' युष्माकं पृष्ठतो न गमिष्यामि; तस्मान्नु क्षिप्रमेव 'मा' माम् 'स्तुत' स्तोत्रं कुरुतेति। देवास्तथेत्यङ्गीकृत्य 'समुत्क्रम्य' उत्थाय 'उपनिवृत्त्य' अग्नेरभिमुखत्वेन निवृत्तिं कृत्वा 'तम्' अग्निमस्तुवन्। सोऽप्यग्निः स्तुतः सन् तान् देवान् अनुसृत्य 'प्रैत्' युद्धार्थं प्रकर्षेणागच्छत्॥

अग्नेर्युद्धप्रकारं दर्शयति—

(अग्नेर्युद्धप्रकारकथनम्)

स त्रिश्रेणिर्भूत्वा त्र्यनीकोऽसुरान् युद्धमुपप्रायद् विजयाय, त्रिश्रेणिरिति च्छन्दांस्येव श्रेणीरकुरुत। त्र्यनीक इति सवनान्येवानीकानि। तानसंभाव्यं पराभावयत्, ततो वै देवा अभवन् पराऽसुराः ।।२।।

हिन्दी—(अब अग्नि के युद्ध-प्रकार को दिखला रहे हैं—) **सः** वह (अग्नि) **त्रिश्रेणि भूत्वा** (छन्दों की) तीन पंक्तियों से युक्त होकर और **त्र्यनीकः** तीन प्रकार से (सवनरूपी) सेनाधिपतियों वाला होकर **असुरान् विजयाय** असुरों को पराजित करने के लिए **युद्धम् उपप्रायत्** युद्ध में गया। वस्तुतः **त्रिश्रेणिः इति** (मन्त्र में जो) त्रिश्रेणी कहा गया है उससे **छन्दांसि एव** तीन छन्दों (गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती) को ही **श्रेणीः अकुरुत** श्रेणियों में बनाया और **त्र्यनीकः इति** जो त्र्यनीक कहा गया उससे **सवनानि एव अनीकानि** (तीनों प्रातः, माध्यन्दिन और तृतीय) सवन ही तीन अनीक (सेनापति) हैं। तब **तान् असंभ्माव्य** उन (असुरों) को अवशिष्ट न छोड़ कर (अर्थात् सभी असुरों को) **पराभावयत्** पराजित कर दिया। **ततो वै देवाः** तभी से देवता **अभवन्** विजय को प्राप्त किये और **असुराः परा** असुर लोग (पराभूत हो गये)।

सा० भा०—'सः' अग्निर्विजयाय 'त्रिश्रेणि' सोमपानपङ्क्तित्रययुक्तः, 'त्र्यनीकः' त्रिभिरनीकैः सेनापतिरूपैः सेनामुख्यैर्युक्तः 'असुरान्' प्रति 'युद्धमुपप्रायत्' तत्समीपं प्रकर्षेण गतवान्। त्रिश्रेणिरिति यदुक्तं तत्र गायत्रीत्रिष्टुब्जगतीरूपाणि च्छान्दांस्येव तिस्रः श्रेणीरकुरुत। त्र्यनीक इति यदुक्तं, तत्र प्रातःसवन-माध्यंदिन-तृतीयसवनान्येव त्रीण्यनीकानि सेनामुखान्यकुरुत। ततस्तान् असुरान् पुनः शत्रुशेषो यथा न संभाव्यते[१] तथा 'पराभावयत्' पराभूतानकरोत्। ततो युद्धादेवा विजयिनोऽभवन्, असुराः पराभूताः॥

वेदनं प्रशंसति—

भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद।।३।।

(१) असंभाव्य पुनरुज्जीवनसम्भावनापि यथा न भवति तथा। यद्वा, अन्यत्राननुभूतपराक्रमम् —इति भट्टभास्करः।

हिन्दी—(उस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **आत्मना भवति** वह स्वयं समृद्धि को प्राप्त करता है और **अस्य** इस (यजमान) के **द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यः** द्वेष करने वाले पापी शत्रु **परा** पराभूत हो जाते हैं।

सा० भा०—एवमग्निश्छन्दस्त्रयसवनत्रययुक्तोऽग्निष्टोमरूपोऽभवदित्येकेन प्रकारेणाग्निष्टोमं स्तुत्वा पुनरपि प्रकारान्तरेण स्तौति—

(अग्निष्टोमप्रशंसनम्)

सा वा एषा गायत्र्येव यदग्निष्टोम, चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री चतुर्विंशतिरग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि ।।४।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से अग्निष्टोम की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अग्निष्टोमः** जो अग्निष्टोम है, **सः एषा गायत्री एव** वह यह गायत्री ही है; क्योंकि **चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री** गायत्री ही चौबीस अक्षरों वाली होती है और **अग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि** अग्निष्टोम के स्तुतशस्त्र भी **चतुर्विंशतिः** चौबीस होते हैं।

विमर्श—(१) अग्निष्टोम में उद्गाता के बारह स्तोत्र और होता के बारह शस्त्र मिलकर चौबीस हो जाते हैं और गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं। इस प्रकार संख्या की दृष्टि से समानता होने के कारण अग्निष्टोम को गायत्री कहा गया है।

(२) बहिष्पवमान, माध्यन्दिनपवमान, आर्भवपवमान–ये तीन पवमानस्तोत्र, चार आज्यस्तोत्र, चार पृष्ठस्तोत्र और एक यज्ञायज्ञीयस्तोत्र इस प्रकार बारह स्तोत्र हैं । प्रातःसवन में आज्या, प्रउग, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंशी, और अच्छावाक्–ये पाँच शस्त्र होते हैं; मध्यन्दिनसवन में मरुत्वतीय, निष्केवल्य, मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंशी और अच्छावाक ये पाँच शस्त्र होते हैं तथा तृतीयसवन में वैश्वदेव और आग्निमारुत ये दो शस्त्र होते हैं। इस प्रकार तीनों सवनों में मिलाकर बारह शस्त्र होते हैं।

सा० भा०—योऽयं पूर्वोक्तोऽग्निष्टोमोऽस्ति, 'सा वा एषा गायत्र्येव'। अग्निष्टोम-गायत्र्योः संख्यासाम्यात्—गायत्रीगतेष्वक्षरेषु या संख्या, सैवाग्निष्टोमगतेषु स्तोत्रशस्त्रेषु। तथा हि—बहिष्पवमानः, माध्यंदिनपवमानः, आर्भवः पवमान इति त्रीणि पवमानस्तोत्राणि, चत्वार्याज्यस्तोत्राणि, चत्वारि पृष्ठस्तोत्राणि; एकं यज्ञायज्ञीयं स्तोत्रम् ; एवमेतानि द्वादश संपन्नानि। शस्त्राण्यपि तावन्त्येव, आज्यप्रउगे, निष्केवल्ये, मरुत्वतीये, वैश्वदेवाग्निमारुते इति होतुः शस्त्राणि षट्; तथा होत्रकाणामपि[1] षट्। एवं स्तोत्रशस्त्रसंख्ययाऽग्निष्टोमस्य गायत्रीरूपत्वम्।।

प्रकारान्तरेण गायत्रीसाम्यं संपाद्य प्रशंसति—

(१) अहोतारो मैत्रावरुणादयः तथाहि—'तदिमं मानुषं होतारं प्रवृणीतेऽहोता हैष पुराथैतर्हि होता'—इति शत०ब्रा० १.५.१.१३।

तद्वै यदिदमाहुः–सुधायां ह वै वाजो सुहितो दधातीति। गायत्री वै तत्, न ह वै गायत्री क्षमा रमते। ऊर्ध्वा ह वा एषा यजमानमादाय स्वरेतीति, अग्निष्टोमो वै तत् न ह वा अग्निष्टोमः क्षमा रमते। ऊर्ध्वा ह वा एष यजमानमादाय स्वरेति ।।५।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से गायत्री से समानता को दिखलाकर प्रशंसा कर रहे हैं—) **तद् वै यद् इदम् आहुः** तो जो यह कहा गया है कि **वाजी** (सोमरूप) अन्न से युक्त **सुहितः** सुष्ठु रूप से सम्पादित (अग्निष्टोम) **सुधायां ह** द्युलोक में ही **दधाति** (यजन करने वाले को) प्रतिष्ठापित करता है' **तत् गायत्री वै** वह (प्रतिष्ठापित करने वाला) गायत्री ही है; क्योंकि **गायत्री क्षमा न वै रमते** गायत्री पृथिवी पर रमण नहीं करती। **एषा यजमानम् आदाय** यह (गायत्री) यजमान को लेकर **स्वः एति** स्वर्ग लोक को चली जाती है। **अग्निष्टोमः वै तत्** वह अग्निष्टोम ही है क्योंकि **अग्निष्टोमः क्षमा न वै रमते** अग्निष्टोम पृथिवी पर (रमण नहीं करता)। **एषः** यह (अग्निष्टोम) **यजमानम् आदाय** यजमान को लेकर **स्वः एति** स्वर्ग लोक को जाता है।

सा० भा०—'तद्वै' तत्रैव यज्ञसमायां वेदवादिनो 'यदिदं' वचनमाहुः। किं वचनमिति? तदुच्यते—सुष्ठु धीयन्ते सुकृतिनोऽस्यां दिवि, सा द्यौः 'सुधा' तस्यामेव 'वाजो' वाजोऽन्नं सोमरूपं यस्मिन्नस्तीत्यग्निष्टोम उच्यते। स च 'सुहितः' साद्गुण्येनानुष्ठितः 'दधाति' सुधाशब्दवाच्यायां दिवि यजमानं स्थापयति 'इति' यद्वेदवादिनां वचनं, तद् 'गायत्री वै' गायत्रीसाम्यमभिप्रेत्यैवोक्तमित्यर्थः। 'न ह वै'—इत्यादिना तदेव स्पष्टीक्रियते। क्षमेति सप्तम्यर्थो विवक्षितः। क्षमायां भूमौ गायत्र्याख्या देवता 'न ह वै रमते' नैव क्रीडति किंत्वेषा गायत्री 'ऊर्ध्वा ह वै' ऊर्ध्वगामिन्येव भूत्वाऽनुष्ठितवन्तं यजमानमादाय 'स्वरेति' स्वर्गं प्राप्नोति। 'इति' एवं प्रकारेण येयं गायत्री वर्णिता, 'तद्' गायत्रीरूपोऽग्निष्टोम एव, तयोः समत्वात्। अग्निष्टोमोऽपि क्षमायां न रमते, किं त्वनुष्ठित ऊर्ध्वगामी सन्नेष यजमानमादाय स्वर्गमाप्नोति।।

इत्थं गायत्रीसाम्येन स्तुत्वा संवत्सरसाम्येत स्तौति—

स वा एष संवत्सर एव यदग्निष्टोमः, चतुर्विंशत्यर्धमासो वै संवत्सरः। चतुर्विंशतिरग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि ।।६।।

हिन्दी—(अब संवत्सर की समानता से अग्निष्टोम की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अग्निष्टोमः** जो अग्निष्टोम है **सः एषः संवत्सरः एव** वह (अग्निष्टोम) यह संवत्सर रूप ही है; क्योंकि **चतुर्विंशत्यर्धमासो वै संवत्सरः** संवत्सर चौबीस अर्ध मासों वाला होता है और **अग्निष्टोमस्य चतुर्विंशति स्तुतशस्त्राणि** अग्निष्टोम के चौबीस स्तुतिशस्त्र होते हैं।

सा० भा०—योऽयमग्निष्टोमः, स एष संवत्सर एव। अर्धमाससंख्यायाः स्तोत्र-शस्त्रसंख्यायाश्च समानत्वात्।

समुद्रसाम्येन प्रशंसति—

तं यथा समुद्रं स्रोत्या एवं सर्वे यज्ञक्रतवोऽपि यन्ति ।।७।।

हिन्दी—(अब समुद्र की समानता से प्रशंसा कर रहे हैं—) **यथा** जिस प्रकार **तं समुद्रम्** उस समुद्र में **स्रोत्याः** अनेक बहती हुई नदियाँ (मिलती है) **एवम्** इसी प्रकार (प्रकृतिरूप इस अग्निष्टोम में) **सर्वे यज्ञक्रतवः अपि यन्ति** सभी (उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, इत्यादि विकृत) क्रतु सम्मिलित होते हैं।

सा० भा०—'स्रोत्याः' प्रवाहरूपा नद्यो लोके यथा समुद्रं प्राप्नुवन्ति, तथैवोक्थ्य-षोडश्यतिरात्राहीनसत्ररूपाः सर्वे क्रतवो विकृतिरूपाः प्रकृतिरूपं तमग्निष्टोमम् 'अपि यन्ति' प्राप्नुवन्ति। अग्निष्टोमात् प्राचीना इष्टिपशुबन्धादयोऽपि तमग्निष्टोमं प्राप्नुवन्ति। तथा सति सर्वशब्दो मुख्यार्थः संपद्यते, न तु संकोचः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (चतुर्दशाध्याये) प्रथमः खण्डः ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्दश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—अग्निष्टोमादपि प्राचीनानां यज्ञानामग्निष्टोमप्राप्तिं दर्शयति—

(अग्निष्टोमात्प्राचीनानां यज्ञानामग्निष्टोमप्राप्तिः)

दीक्षणीयेष्टिस्तायते। तामेवानु याः काश्चेष्टयस्ताः सर्वा अग्निष्टोम-मपि यन्ति ।।१।।

हिन्दी—(अब प्राचीनयज्ञों के अग्निष्टोम प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **दीक्षणीयेष्टिः तायते** (अग्निष्टोम के प्रारम्भ में) दीक्षणीया इष्टि सम्पादित की जाती है, **ताम् एव अनु** उस (दीक्षणीया) के समान **याः काः च इष्टयः** (उसकी समानता वाली) जो कुछ भी इष्टियाँ हैं, **ताः सर्वाः** वे सभी (इष्टियाँ) **अग्निष्टोमम् अपि** अग्निष्टोम को ही **यन्ति** प्राप्त होती हैं।

सा० भा०—अग्निष्टोमस्य प्रारम्भे येयं दीक्षणीयेष्टिः 'तायते' विस्तार्यते, 'तामनु' तत्सादृश्येन वेदोक्ताः सर्वा अपीष्टयः 'अग्निष्टोमं' प्राप्नुवन्ति। अत्र विकृतिरूपा एवेष्टयो

विवक्षिताः, प्रकृतिरूपयोर्दर्शपूर्णमासयोर्वक्ष्यमाणत्वात्॥

दीक्षणीयेष्टिगतचोकदप्राप्तेडोपाह्वानसादृश्येन पाकयज्ञानामग्निष्टोमप्राप्तिं दर्शयति—

(पाकयज्ञानामग्निष्टोमप्राप्तिः)

इळामुपह्वयते। इळाविधा वै पाकयज्ञाः। इळामेवानु ये के पाकयज्ञाः, ते सर्वेऽग्निष्टोममपि यन्ति ॥२॥

हिन्दी—(अब इडा के उपाह्वान की समानता से पाकयज्ञों के अग्निष्टोम-प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **इडाम् उपह्वयते** इडा का उपाह्वान किया जाता है। **इडाविधाः वै पाकयज्ञाः** पाकयज्ञ इडा के समान ही होते हैं। अतः **इडामेव अनु** इडा के ही समान **ये के च पाकयज्ञाः** जो कोई भी पाकयज्ञ हैं **ते सर्वे** वे सभी **अग्निष्टोमम् अपि यन्ति** अग्निष्टोम को ही प्राप्त करते हैं।

सा० भा०—पाकयज्ञाश्च सप्तसंख्याकाः,—हुतः, प्रहुतः, आहुतः, शूलगवः, बलिहरणम्, प्रत्यवरोहरणम्, अष्टकाहोम इति। सोऽयं सूत्रान्तरकारस्य पक्षः। आश्वलायनस्तु हुतादींस्त्रीनेव पाकयज्ञानाह[1]। ते च पाकयज्ञा 'इळाविधाः' इळासदृशाः। 'इळा खलु वैषा पाकयज्ञः' इति श्रुत्यन्तरात्।[2] ततो दीक्षणीयेष्टौ इडोपाह्वानेन तत्सदृशाः पाकयज्ञाः सर्वेऽप्यग्निष्टोमं प्राप्नुवन्ति॥

अग्निहोत्रस्य तत्प्राप्तिं दर्शयति—

सायंप्रातरग्निहोत्रं जुह्वति, सायंप्रातर्व्रतं प्र यच्छन्ति, स्वाहाकारेणाग्निहोत्रं जुह्वति, स्वाहाकारेण व्रतं प्र यच्छन्ति, स्वाहाकारमेवान्वग्निहोत्रमग्निष्टोममप्येति ॥३॥

हिन्दी— (अग्निहोत्र के अग्निष्टोम-प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) जैसे **सायं प्रातः अग्निहोत्रं जुह्वति** सायंकाल और प्रातःकाल होम करता है वैसे ही **सायं प्रातः व्रतं प्र यच्छति** सायं और प्रातः (यजन करने वाले दीक्षित व्यक्ति को दुग्धपानरूप) व्रत को देता है। जैसे **स्वाहाकारेण जुह्वति** जैसे स्वाहाकार के साथ होम करता है वैसे ही **स्वाहाकारेण व्रतं प्रयच्छति** स्वाहाकार के साथ व्रत को प्रदान करता है। **स्वाहाकारम् अनु** (व्रतगत) स्वाहाकार का अनुसरण करके **अग्निहोत्रम्** आग्नहोत्र **अग्निष्टोमम् अप्येति** अग्निष्टोम की प्राप्त करता है।

सा० भा०—यथा प्रतिदिनं कालद्वयेऽग्निहोत्रहोमः, तथा दीक्षितस्य कालद्वये क्षीर-

---

(१) त्रयः पाकयज्ञाः,—हुता अग्नौ हूयमाना अनग्नौ प्रहुता ब्राह्मणभोजन ब्रह्मणिहुताः'—इति आश्व०गृ० १.१.२.३। तु० मनु २.६।

(२) तै०सं० १.७.३ १।

पानरूपं[1] व्रतप्रदानम्। अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा'[2]—इति यथा स्वाहाकारेणाग्निहोत्र-होमः, तथा 'ते नः पान्तु, ते नोऽवन्तु, तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा'[3] इति स्वाहाकारेण दीक्षितो व्रतप्रदानमाचरति। अतो व्रतगतस्वाहाकारमेवानुसृत्याग्निहोत्रस्याग्निष्टोमप्राप्तिः॥

अग्निष्टोमगतप्रायणीयेष्टिसादृश्येन दर्शपूर्णमासयोरग्निष्टोमप्राप्तिं दर्शयति—

(दर्शपूर्णमासयोरग्निष्टोमप्राप्तिः)

पञ्चदश प्रायणीये सामिधेनीरन्वाह, पञ्चदश दर्शपूर्णमासयोः। प्रायणीयमेवानु दर्शपूर्णमासावग्निष्टोममपीतः ॥४॥

हिन्दी—(अग्निष्टोमगत प्रायणीयोष्टि की समानता से दर्शपूर्णमास के अग्निष्टोम की प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **प्रायणीये** प्रायणीयेष्टि में **पञ्चदश सामिधेनीः अन्वाह** पन्द्रह सामिधेनियों का शंसन करता है और **पञ्चदश पूर्णमासयोः** पूर्णमास याग में भी पन्द्रह (सामिधेयनियाँ) होती हैं। इस प्रकार **प्रायणीयम् अनु** प्रायणीय इष्टि के समान **दर्शपूर्णमासौ अपि** दर्शपूर्ण मास भी **अग्निष्टोमम् इतः** अग्निष्टोम को प्राप्त करता है।

सा० भा०—प्रायणीयकर्मणि धाय्यारहितत्वात् सामिधेन्यश्चोदकप्राप्ताः पञ्चदशैव, तथा प्रकृतिभूतयोर्दर्शपूर्णमासयोरपि॥

अग्निष्टोमगतसोमद्वारा लौकिकानामपि सर्वेषामौषधीनामग्निष्टोमप्राप्तिं दर्शयति—

(सर्वेषामौषधीनामग्निष्टोमप्राप्तिः)

सोमं राजानं क्रीणन्ति। औषधो वै सोमो राजा, औषधिभिस्तं भिषज्यन्ति यं भिषज्यन्ति, सोममेव राजानं क्रीयमाणमनु यानि कानि च भेषजानि, तानि सर्वाण्यग्निष्टोममपि यन्ति ॥५॥

हिन्दी—(अग्निष्टोमगत सोम द्वारा सभी लौकिक ओषधियों के अग्निष्टोम-प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **सोमं राजानं क्रीणन्ति** वे राजा सोम का क्रय करते हैं। **औषधः वै सोमः राजा** राजा सोम औषधि रूप हैं। **यं भिषज्यन्ति** जिसकी वे चिकित्सा करते हैं, **तम् ओषधिभिः भिषज्यन्ति** उसकी ओषधियों द्वारा ही चिकित्सा करते हैं। **यानि कानि च भेषजानि** जो कुछ औषधियाँ हैं **सोमं राजानं क्रीयमाणम्** सोम राजा के खरीदने से **तानि सर्वाणि** वे सभी **अग्निष्टोमम् अपि यन्ति** अग्निष्टोम को ही प्राप्त करती हैं।

सा० भा०—लोके 'यं' व्याधिग्रस्तं चिकित्सकाः 'भिषज्यन्ति' चिकित्सन्ते, 'तं' पुरुषम् 'औषधिभिः' अमृतवल्ल्यादिभिश्चिकित्सन्ते। सोमस्याप्यौषधत्वात् तमनु सर्वाप्यौषधान्यग्निष्टोमं प्राप्नुवन्ति॥

(१) 'पयो ब्राह्मणस्य व्रतं, यवागू राजन्यस्यामिक्षा वैश्यस्याथो सौम्येऽप्यध्वर एतद् व्रतं ब्रूयात्'—इति तै०आ० २.८.१।

(२) तै०ब्रा० २.१.१०। (३) तै०सं० १.२.३।

अग्निष्टोमगतातिथ्यकर्मद्वारा चातुर्मास्ययागानां तत्प्राप्तिं दर्शयति—

(चातुर्मास्ययागानामग्निष्टोमप्राप्तिः)

अग्निमातिथ्ये मन्थन्ति। अग्निं चातुर्मास्येषु। आतिथ्यमेवानु चातुर्मास्यान्यग्निष्टोमममपि यन्ति ।।६।।

हिन्दी—(अग्निष्टोमगत आतिथ्यकर्म द्वारा चातुर्मास्य यागों के अग्निष्टोम-प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **आतिथ्ये** आतिथ्य इष्टि में **अग्निम् मन्थन्ति** अग्नि का मन्थन करते हैं और **चातुर्मास्येषु अग्निम्** चातुर्मास्यों में अग्निमन्थन (करते हैं) **आतिथ्यम् अनु** आतिथ्य इष्टि के समान **चातुर्मास्यानि अपि** चातुर्मास्य इष्टियाँ भी **अग्निष्टोमं यन्ति** अग्निष्टोम को प्राप्त करती हैं।

सा० भा०—आतिथ्यायाम् अग्निमन्थनं विहितम्, चातुर्मास्यपर्वस्वपि मन्थनं विहितम्; उभयत्र मन्थनधर्मसाम्यादातिथ्यसदृशानि चातुर्मास्यान्यप्यग्निष्टोमं 'यन्ति' प्राप्नुवन्ति॥

प्रवर्ग्यसाम्येन दाक्षायणयज्ञस्याग्निष्टोमप्राप्तिं दर्शयति—

(दाक्षायणयज्ञस्याग्निष्टोमप्राप्तिः)

पयसा प्रवर्ग्ये चरन्ति। पयसा दाक्षायणयज्ञे। प्रवर्ग्यमेवानु दाक्षायणयज्ञोऽग्निष्टोममप्येति ।।७।।

हिन्दी—(प्रवर्ग्य की समानता के कारण दाक्षायण इष्टि के अग्निष्टोम की प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **पयसा प्रवर्ग्ये चरन्ति** दूध से प्रवर्ग्य में होम करते हैं और **पयसा दाक्षायणयज्ञे** दूध से ही (दर्शपूर्णमास के गुणविकृति रूप) दाक्षायण (नामक) यज्ञ में भी (होम करते हैं)। **प्रवर्ग्यमेव अनु** प्रवर्ग्य के समान ही **दाक्षायणयज्ञः** दाक्षायण (नामक) यज्ञ **अग्निष्टोमम् अपि एति** अग्निष्टोम को भी प्राप्त करता है।

सा० भा०—दर्शपूर्णमासयोरेव गुणविकृतिरूपः कश्चिद् दाक्षायणाख्यो यज्ञः। तथा च शाखान्तरे दर्शपूर्णमाससंनिधौ श्रूयते—'दाक्षायणयज्ञेन स्वर्गकामो यजेत'[1] इति। तस्य

---

(१) दाक्षायणेन दृष्टो यज्ञो दाक्षायणयज्ञः। स च शतपथब्राह्मणे "आजिं वा एते धावन्ति, ये दर्शपूर्णमासाभ्यां यजन्ते"—इत्याद्यभिधाय (११.१.२.१०) तत्सन्निधावेव 'यद्यु दाक्षायणयज्ञी स्यादथो अपि पञ्चदशैव वर्षाणि यजेत"—इत्याद्याम्नातमिति दर्शपूर्णमासतो नान्यत्कर्मेति सिद्धान्तितं कातीयसूत्रे "गुणविधानं वा सन्निधिसम्पद् वचनाभ्याम्'—इति (श्रौ० ४.४.२)। "त्रिंशतं वर्षाणि दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेतः पञ्चदश दाक्षायणयज्ञी"—इत्यादि च पार्थक्यं द्रष्टव्यम् (कात्या० श्रौ० ४.२.४७, ४८)। दाक्षायणयज्ञेन सुवर्गकामः—इत्यारभ्य "सन्तिष्ठते दाक्षायणयज्ञः'—इत्यन्त आपस्तम्बीयग्रन्थश्चैवमर्थकः (श्रौ० ३.१७.४-११) इत उत्तरमेव तत्रोक्तम् "एतेनेळादधः सार्वसेनियज्ञो वसिष्ठयज्ञः शौनकयज्ञश्च व्याख्याताः"—इति (१२ सू०)।

च प्रवर्ग्यस्य च क्षीरद्रव्यसाम्येन प्रवर्ग्यसदृशो दाक्षायणयज्ञोऽप्यग्निष्टोममेति॥

पशुबन्धानामग्निष्टोमप्राप्ति दर्शयति—

(पशुबन्धानामग्निष्टोमप्राप्तिः)

पशुरुपवसथे भवति। तमेवानु ये के च पशुबन्धास्ते सर्वेऽग्निष्टोम-मपि यन्ति ॥८॥

हिन्दी—(अब पशुबन्धों के अग्निष्टोम-प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **उपवसथे** (सुत्या दिन के पहले दिन) उपवसथ (नामक दिन) में **पशुः भवति** (अग्नि और सोम देवता से सम्बन्धित) पशु होता है। **तमेव अनु** उसी के अनुसार **ये के च पशुबन्धाः** जो कोई भी पशुबन्ध होते हैं, **ते सर्वे अपि** वे सभी भी **अग्निष्टोमं यन्ति** अग्निष्टोम को प्राप्त करते हैं

सा० भा०—सुत्यादिवसात् पूर्वो दिवस उपवसथाख्यः। तस्मिन्नग्नीषोमीयः पशुरनुष्ठीयते। तद् विकृतिरूपा वेदोक्ताः सर्वे पशुबन्धाः। पशुद्रव्यसाम्याद् अग्नीषोमीयसदृशाः सर्वे पशुबन्धा अप्यग्निष्टोमं यन्ति॥

इळादधनामकस्य यज्ञान्तरस्याग्निष्टोमप्राप्तिं दर्शयति—

(इळादधस्याग्निष्टोमप्राप्तिः)

इळादधो नाम यज्ञक्रतुः। तं दध्ना चरन्ति; दध्ना दधिघर्मे। दधिघर्म-मेवान्विळादधोऽग्निष्टोममप्येति ॥९॥

हिन्दी—(अब इडादध नामक अन्य यज्ञ के अग्निष्टोम-प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **इडादधः नाम यज्ञक्रतुः** इडादध नामक यज्ञेष्टि होती है। **तं दध्ना चरन्ति** उसका दधि से सम्पादन करते हैं और **दध्ना दधिघर्मे** (अग्निष्टोन के) दधि घर्म (नामक कर्म) में दधि से अनुष्ठान करते हैं। **दधिघर्ममेव अनु** दधिधर्म समान ही **इडादधः** इडादध **अग्निष्टोमम् अपि एति** अग्निष्टोम ही को प्राप्त करता है।

सा० भा०—दर्शपूर्णमासविकृतिरूप एव कश्चिद् इळादधनामको यज्ञोऽस्ति।[१] अत एव आपस्तम्बो दर्शपूर्णमाससंनिधवेवमाह—"एतेनेळादधः सार्वसेनियज्ञो वसिष्ठयज्ञः शौनकयज्ञश्च व्याख्यातः" इति[२]। दधिघर्मनामकस्त्वग्निष्टोमगतः कश्चिद्[३] दधियागः, तेन माध्यन्दिने चरन्ति, इळादधोऽपि दधिद्रव्यकः। अतः तयोरुभयोर्दधिद्रव्येण साम्यम्, दधिघर्मसदृश इळादधोऽपि अग्निष्टोममेति॥

---

(१) 'प्राजापत्य इळादधः'—इति आश्व०श्रौ० २.१४.११।
(२) आप०श्रौ० ३.१७.१२।
(३) 'किश्चद् दधियागः इत्यादि पाठः आनन्दाश्रममुद्रितपुस्तके त्रुटितः।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (चतुर्दशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्दश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा॰भा॰—क्रत्वन्तराणामग्निष्टोमप्राप्तिं दर्शयति—

(अग्निष्टोमोत्तराणां क्रत्वन्तराणामग्निष्टोमप्राप्तिः)

इति नु पुरस्ताद्। अथोपरिष्टात्। पञ्चदशोक्थ्यस्य स्तोत्राणि, पञ्चदश शस्त्राणि। स मासो, मासधा संवत्सरो विहितः, संवत्सरोऽग्नि-र्वैश्वानरः, अग्निरग्निष्टोमः, संवत्सरमेवानूक्थ्योऽग्निष्टोममप्येति। उक्थ्यमपि यन्तमनु वाजपेयोऽप्येति। अत्युक्थ्यो हि स भवति ॥१॥

हिन्दी—(अग्निष्टोम के परवर्ती अन्य क्रतुओं की अग्निष्टोम प्राप्ति को दिखला रहे हैं—) **इति नु पुरस्तात्** इस प्रकार (पूर्व खण्ड में अग्निष्टोम के) पहले के कर्मों को कह दिया गया है। **अथ उपरिष्टात्** अब (अग्निष्टोम के) बाद वाले (उक्थ इत्यादि) कर्मों को कह रहे हैं **उक्थ्यस्य पञ्चदशः स्तोत्राणि** उक्थ्य के पन्द्रह स्तोत्र और **पञ्चदश शस्त्राणि** पन्द्रह शस्त्र होते हैं। **सः** वह (स्तोत्र और शस्त्र मिलकर संख्या की समानता से ३० दिन वाले) मास होते हैं तथा **मासधाः** मासों से **संवत्सरः विहितः** संवत्सर सम्पादित होता है। **संवत्सरः वैश्वानरः अग्निः** संवत्सर वैश्वानर अग्नि रूप है तथा **अग्निः अग्निष्टोमः** अग्नि अग्निष्टोमरूप है। इस प्रकार **संवत्सरमेव अनु** संवत्सर द्वारा ही **उक्थयः** उक्थ्य **अग्निष्टोमम् अप्येति** अग्निष्टोम को प्राप्त करता है। **यन्तम् अपि उक्थम् अनु** (उस अग्निष्टोम को) प्राप्त उक्थ्य के द्वारा **वाजपेयः अपि** वाजपेय भी **अप्येति** (अग्निष्टोम को) प्राप्त करता है; क्योंयि **सः** वह (वाजपेय) **उक्थ्यः अति भवति** उक्थ्य का अतिक्रमण करके होता है।

सा॰भा॰—'इति नु' पूर्वखण्डोक्तप्रकारेणैव 'पुरस्तात्' अग्निष्टोमात् प्राचीनस्य कर्मजातस्याग्निष्टोमप्रवेशः, उक्त इति शेषः। 'अथ' अनन्तरमुपरिष्टाद् अग्निष्टोमादितरेषां क्रतूनां[1] तत्प्रवेश उच्यते। तत्र योऽयम् 'उक्थ्यः' क्रतुः तस्य पञ्चदशसंख्याकानि स्तोत्राणि; अग्निष्टोमविकृतित्वात् तदीयानि द्वादश स्तोत्राण्यतिदिश्यन्ते। तत ऊर्ध्वं त्रीण्युक्थसंज्ञकानि

(१) ज्योतिष्टोमसंस्थाविशेषाणामिति यावत्। तदाहापस्तम्बः—'उक्थ्यः षोडश्यतिरात्रोऽप्तोर्यामश्चाग्निष्टोमस्य गुणविकाराः'—इति (आप॰श्रौ॰ १४.१.१)।

स्तोत्राणि। एवं पञ्चदश संपद्यन्ते। शस्त्रेष्वप्ययं न्यायो योज्य:। तानि स्तोत्राणि शस्त्राणि च मिलित्वा मासगतां रात्रिसंख्यां प्राप्नुवन्ति। अत: सोऽयं स्तोत्रशस्त्रसमूहो मास: संपद्यते। 'मासधा'[१] मासप्रकारेण मासावृत्त्या संवत्सरो 'विहित:' संपादितो भवति। स च संवत्सरो वैश्वानराग्निरूप:[२]। गर्भप्रविष्टस्य पुरुषस्य संवत्सरमात्रेण वैश्वानराख्यस्योदर्याग्नेः पाटव-संभवात्। अग्निश्चाग्निष्टोमस्वरूप:; पूर्वोक्तया रीत्या श्रेणित्रयरूपेणानीकत्रयरूपेण चाग्नेरेवाग्निष्टोमरूपेणाविर्भूतत्वात्। एवं सति स उक्थ्याख्य: क्रतु: स्तोत्रशस्त्रादिपरम्परया संवत्सरमेवानुप्रविश्य तद्द्वाराऽग्निष्टोमं प्रविशति। तं विशन्तमुक्थ्यमनु वाजपेयाख्योऽपि क्रतुरग्निष्टोममपि 'एति' प्राप्नोति। 'स:' हि वाजपेयोऽत्युक्थ्यो भवति। उक्थ्याख्यं क्रतु-मतिक्रम्य वर्तमानत्वात्। उक्थ्ये यानि पञ्चदश स्तोत्राणि, तत ऊर्ध्वं वाजपेये स्तोत्रद्वयं, सोऽयमुक्थ्यातिक्रम:। तस्मादुक्थ्यंद्वारा वाजपेयस्य तत्प्राप्ति:॥

अथातिरात्राप्तोर्यामयो: क्रत्वोरग्निष्टोमप्रवेशं दर्शयति—

(अतिरात्राप्तोयामयोरग्निष्टोमप्रवेश:)

द्वादश रात्रे: पर्याया:, सर्वे पञ्चदशा:, ते द्वौ द्वौ संपद्य त्रिंशद्। एकविंशं षोळशिसाम त्रिवृत् संधि:। सा त्रिंशत्। स मास: त्रिंश-न्मासस्य रात्रयो मासधा संवत्सरो विहित:, संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानर:, अग्निरग्निष्टोम:, संवत्सरमेवान्वतिरात्रोऽग्निष्टोममप्येति। अतिरात्रमपि यन्तमन्वप्तोर्यामोऽप्येति। अत्यतिरात्रो हि स भवति ॥ २॥

हिन्दी—(अतिरात्र और आप्तोयाम क्रतु के अग्निष्टोम में प्रवेश को दिखला रहे हैं—) **रात्रे: द्वादश पर्याया:** (अतिरात्र याग में) रात्रि के बारह पर्याय होते हैं। **सर्वे पञ्चदश** सभी मिलकर पन्द्रह स्तोम हैं। **ते द्वौ द्वौ त्रिंशत् सम्पद्य** वे पन्द्रह स्तोम दो-दो होकर तीस हो जाते है। **षोडशिसाम: एकविंशम्** (षोडशीस्तोत्र में) षोडशीसाम इक्कीस होते हैं और **त्रिवृत सन्धि:** सन्धिसाम त्रिवृत् (= नौ) होते हैं। **सा त्रिंशत्** वह (सभी २१ + ९ मिलकर) तीस हो जाते हैं। **स: मास:** वह मास स्वरूप है। **मासस्य त्रिंशत् रात्रय:** मास में तीस रात्रियाँ होती हैं। **मासधा संवत्सर: विहित:** मास से संवत्सर सम्पादित होता है। **संवत्सर: वैश्वानर: अग्नि:** संवत्सर वैश्वानर अग्नि रूप है। **अग्नि: अग्निष्टोम:** अग्नि ही अग्निष्टोमरूप है। **संवत्सरमेव अनु** संवत्सर से ही **अतिरात्र:** अतिरात्र क्रतु **अग्निष्टोमम् अप्येति** अनिष्टोम में प्रवेश करता है। **यन्तम् अतिरात्रम् अपि अनु** (अग्निष्टोम में) प्रविष्ट हुए अतिरात्र से **अप्तोयाम:** आप्तोयाम **अन्वेति** (अग्निष्टोम

(१) 'वीप्सायां छान्दसो धाप्रत्यय:, मासो मास:, अनेके मासा: सम्भूय संवत्सरो विहित:'— इति भट्टभास्कर:।

(२) तु० तै०सं० २.२.५।

में) प्रवेश करता है; क्योंकि **सः** वह (आप्तोयाम) **अत्यतिरात्रः** अत्यतिरात्र का अतिक्रमण करके **भवति** होता है।

सा० भा०—अतिरात्रयागे द्वादशसंख्याका रात्रेः पर्यायाः। ते च आपस्तम्बेनैव स्पष्टीकृताः—'अतिरात्रश्चेत्'[१] षोडशिचमसानुन्नयंस्त्रयोदशभ्यश्चमसगणेभ्यो राजानमभिरेचयति। षोडशिना प्रचर्य रात्रिपर्यायैः प्रचरति। होतृचसममुख्यः प्रथमो गणो मैत्रावरुणचमसमुख्यो द्वितीयो ब्राह्मणाच्छंसिचमसमुख्यस्तृतीयोऽच्छावाकचमसमुख्य श्चतुर्थः। प्रथमाभ्यां गणाभ्यामध्वर्युश्चरति, उत्तराभ्यां प्रतिप्रस्थाता, एष प्रथमः पर्यायः। एवं विहितो द्वितीयस्तृतीयश्च' इति[२]। अस्यायमर्थः—अतिरात्राख्यं क्रतुं यदाऽनुतिष्ठति, तदानीं चोदकप्राप्तं सर्वमनुष्ठाय अनन्तरं सायंकाले षोडशिग्रहसंबन्धिनश्चमसान् पूरयित्वा तत ऊर्ध्वं त्रयोदशचमसगणपर्याप्तं सोममवस्थाप्य षोडशिग्रहप्रचारं कृत्वा तत ऊर्ध्वं रात्रिपर्यायैः प्रचरेत्। तेषु पर्यायेषु च होतृचमसमादिं कृत्वा यश्चमसगणः प्रवर्तते, सोऽयं प्रथमः। मैत्रावरुणचमसस्यादित्वे द्वितीयश्चमसगणो भवति। ब्राह्मणाच्छंसिचमसस्यादित्वे तृतीयश्चमसगणो भवति। अच्छावाकचमसस्यादित्वे चतुर्थश्चमसगणो भवति। तेषु चतुर्षु गणेषु प्रथमद्वितीयाभ्यां गणभ्यामध्वर्युरनुतिष्ठेत्। तृतीयचतुर्थ्यां तु प्रतिप्रस्थाताऽनुतिष्ठेत्। एवं गणचतुष्टयानुष्ठानमेकः पर्यायो भवति। पुनरपि द्वितीयतृतीयपर्यायौ तथैवानुष्ठेयो। तेषु पर्यायेषु द्वादश गणाः संपद्यन्ते। एतत् सर्वमभिप्रेत्य 'द्वादश रात्रेः पर्यायाः' इत्युक्तम्।

ते सर्वेऽपि 'पञ्चदशाः'[३] तदीयस्तोत्रेषु तृचगतानामृचामावृत्तिविशेषेण पञ्चदशस्तोमस्य सामगैः संपादितत्वात् ते पञ्चदशस्तोमयुक्ताः द्वादशपर्यायाः सन्ति। तेषु 'द्वौ द्वौ' पर्यायो 'संपद्य' मिलित्वा पञ्चदशसंख्याया द्विरावृत्त्या त्रिंशत्संख्यायां ते सर्वे पर्यवस्यन्ति। किञ्च षोडशिस्तोत्रे यत्सामास्ति तदेकविंशं भवति। तदीयतृचगतानामृचामावृत्त्या सामगैरेकविंशतिस्तोमसंपादनात्।[४] योऽयमतिरात्रस्तस्यान्ते 'संधि' एतन्नामकं स्तोत्रम्, तत्र त्रिवृत्स्तोमः सामगैः पठ्यते।[५] तस्य च स्तोमस्य त्रिषु तृचेष्वावृत्तिरहितेषु निष्पन्नत्वादृचां नवत्वं संपद्यते। एकविंशतिसंख्या नवसंख्या च मिलित्वा त्रिशत्संख्या भवति। अनया त्रिंशत्संख्यया वा पूर्वोक्तत्रिंशत्संख्यया वा मासरात्रिसाम्यात् मासः संपद्यते। मासश्चेत्यादि पूर्ववद् योजनीयम्। एवं सति वत्सरद्वाराऽतिरात्रोऽग्निष्टोमं प्रविशति। प्रविशन्तमतिरात्रमनु तद्द्वारेणाप्तोर्यामोऽपि प्रविशति। स ह्यतिरात्रमतिलङ्घ्य स्तोत्राधिक्येन वर्तमानत्वात् 'अत्यतिरात्रः'। एकोनत्रिंशत् स्तोत्राण्यतिरात्रे, आप्तोर्यामे तु त्रयस्त्रिंशदित्याधिक्यम्,

---

(१) 'षोडशिनममी मुनयस्तत्र'—इति आनन्दाश्रम मुद्रितपाठः।

(२) आप०श्रौ० १४.३.८—१०; १४-१६।

(३) 'स्तोमे डविधिः पञ्चादशाद्यर्थः'—इति पा०सू० ५.१.५८ वा ८। पञ्चदशावृत्तिकः।

(४) ता०ब्रा० २.१४-१७।

(५) ता०ब्रा० ९.१.२०; ३.४। 'त्रिवृत् सन्धिः' २०.१.१।

अतोऽतिरात्रद्वाराऽप्तोर्यामस्याग्निष्टोमे प्रवेशः॥

उक्तं सर्वयज्ञक्रतुत्वान्तर्भावमुपसंहरति—

(सर्वयज्ञक्रतुत्वान्तर्भावोपसंहारः)

एतद् वै ये च पुरस्ताद्, ये चोपरिष्टाद् यज्ञक्रतवस्ते सर्वेऽग्निष्टोम-मपि यन्ति ।।३।।

हिन्दी—(अब उपसंहार कर रहे हैं—) **एतद् ये च पुरस्तात्** ये जो (अग्निष्टोम से) पहले और **ये उपरिष्टात्** जो बाद वाले **यज्ञक्रतवः** यज्ञक्रतु हैं **ते सर्वे** वे सभी **अग्नि-ष्टोमम् अपि** अग्निष्टोम को ही **एति** प्राप्त करते हैं।

सा॰ भा॰—'एतद्वै' एतेनैवोक्तप्रकारेणाग्निष्टोमस्य पूर्वभाविन इष्ट्यग्निहोत्रादयो ये यज्ञक्रतवः, ये चोत्तरभाविन उक्थ्यवाजपेयादयो यज्ञक्रतवः, ते सर्वेऽग्निष्टोमं प्राप्नुवन्ति॥

अथ प्रकारान्तरेणाग्निष्टोमं प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेणाग्निष्टोमप्रशंसनम्)

तस्य संस्तुतस्य नवतिशतं स्तोत्रियाः। सा या नवतिस्ते दश त्रिवृतः। अथ या नवतिस्ते दश। अथ या दश, तासामेका स्तोत्रियोदेति, त्रिवृत् परिशिष्यते। सोऽसावेकविंशोऽध्याहितस्तपति। विषुवान् वा एष स्तोमानाम्। दश वा एतस्मादर्वाञ्चस्त्रिवृतः। दश पराञ्चः। मध्य एष एकविंश उभयतोऽध्याहितस्तपति। तद्याऽसौ स्तोत्रियोदेति सैतस्मिन्नध्यूहळा, स यजमानः। तद् दैवं क्षत्रं सहो बलम् ।।४।।

हिन्दी—(अब प्रकारान्तर से अग्निष्टोम की प्रशंसा कर रहे हैं—) **संस्तुतस्य** (सामगायकों द्वारा तीनों सवन) स्तुत किये गये **तस्य** उस (अग्निष्टोम) की **नवतिशतं स्तोत्रियाः** एक सौ नब्बे स्तोत्रिय ऋचाएँ हैं। **सा या नवतिः** जो ये नब्बे ऋचाएँ है **ते दश त्रिवृत्** वे त्रिवृत् (नौ) के दश गुने के बराबर है **अथ याः नवतिः** और जो (दूसरा) नब्बे है **ते दश** वे भी (नौ का) दश गुना है। **अथ या दश** तथा जो अवशिष्ट दशक है **तासाम् एका स्तोत्रिया उदेति** उनमें से एक जो अन्त वाला (स्तोत्रिय) है (उसे छोड़कर) **त्रिवृत् परिशिष्यते** नौ स्तोत्रिय अवशिष्ट बचते हैं। **सः एकविंशः अध्याहितः** वह इक्कीस का (नौ) संघात होकर **असौ तपति** यह (सूर्य) तपता है। **एषः स्तोमानां विषुवान्** (उस सत्र में विषुवत नामक मध्यम दिन त्रिवृत स्तोमों के मध्य में जो त्रिवृत् स्तोम है) वह विषुवान् (मध्य में स्थित) है; क्योंकि **एतस्मात्** इस (त्रिवृत्) से **दश अर्वाञ्चम्** दश पहले तथा **दश पराञ्चः** दश बाद में **त्रिवृतः** त्रिवित् (स्तोम) होता है। **मध्ये एषः** मध्य में यह **एकविंशः** इक्कीसवाँ **उभयतः अध्याहितः** दोनों ओर से (दश के) संघात से **तपति** तपता है। **तद् या असौ स्तोत्रियः उदेति** तो जो यह एक अधिक स्तोत्रिय

(ऋचा) हैं **सा एतस्मिन् अध्यूढा** वह इस (इक्कीस के समूह) में अधिकरूप से अवस्थापित है। **सः यजमानः** वह यजमान है तथा **तद् दैवं क्षत्रं सहः बलम्** वही दिव्य, शक्ति और पराभूत करने वाली सेना है।

सा० भा०—'तस्य' अग्निष्टोमस्योद्गातृभिः संस्तुतस्य 'स्तोत्रियाः' स्तोत्रसंबन्धिन्य ऋचो नवत्यधिकं शतं संपद्यते। कथमिति? चेत् तदुच्यते—प्रातःसवने बहिष्पवमानाख्यं यत्स्तोत्रं, तस्य त्रिवृत्स्तोमः क्रियते। त्रिवृतश्चावृत्तिरहितत्वाद् विद्यमानेषु त्रिषु तृचेषु विद्यमाना नवर्चः स्तोत्रिया भवन्ति। तत ऊर्ध्वं चत्वार्याज्यस्तोत्राणि। तेष्वेकैकस्मिन्नपि विद्यमानानां तिसृणामृचामावृत्तिविशेषेण पञ्चदशः स्तोमः संपादनीयः। तथा सत्येवैकस्मिन् स्तोत्रे पञ्चदशर्चं इत्येवं चतुर्षु स्तोत्रेषु मिलित्वा षष्टिः संपद्यते। तदेवं प्रातःसवने एकोनसप्ततिः। माध्यंदिने सवने माध्यंदिनपवमानाख्यमेकं स्तोत्रम्, तस्यापि पञ्चदशस्तोमयुक्तत्वात् स्तोत्रियाः पञ्चदश संपद्यन्ते। चत्वारि पृष्ठस्तोत्राणि। तेषु सप्तदशस्तोमे कृते सत्यष्टषष्टिसंख्याकाः स्तोत्रिया भवन्ति। उभयं मिलित्वा माध्यंदिनसवने त्र्यशीतिः संपद्यते। तृतीयसवने आर्भवपवमानस्तोत्रस्य सप्तदस्तोमोपेतत्वात् तस्मिन् सप्तदश ऋचः। यज्ञायज्ञीयस्तोत्रस्यैकविंशस्तोमोपेतत्वात् तत्रैकविंशतिर्मिलित्वा तृतीयसवनेऽष्टात्रिंशत्। एवं सवनत्रये मिलित्वा नवत्यधिकशतसंख्याकाः[१] स्तोत्रिया भवन्ति॥

तत्र या नवतिः, ते दशसंख्याकास्त्रिवृत्स्तोमाः संपद्यन्ते। एकैकस्मिन् दशकेऽन्तिमामेकां परित्यज्य अवशिष्टानामृचां नवसंख्योपेतत्वात् त्रिवृत्स्तोमत्वम्। ततो नवसु दशकेषु नव त्रिवृत्स्तोमाः। यास्तु तेषु दशकेषु परित्यक्ता नवर्चः, स एकस्त्रिवृत्स्तोमः। एवं दशसंख्याकास्त्रिवृत्स्तोमाः। 'अथ' अनन्तरं यच्छतमस्ति, तस्मिन्नपि या नवतिः, ते पूर्वोक्तन्यायेन दश त्रिवृत्स्तोमा गणनीयाः। अथ नवतेरूर्ध्वभाविन्यो 'याः' ऋचो दश, 'तासां' दशानामृचां मध्य एका स्तोत्रिया 'उदेति' अतिरिच्यते। अवशिष्टासु स्तोत्रियासु त्रिवृत्स्तामः परिशिष्यते। एवं सत्येकविंशतिसंख्याकास्त्रिवृत्स्तोमाः, तेभ्योऽतिरिक्ता काचिदृगिति, एतावत्संपन्नम्। तत्रैकविंशतित्रिवृत्स्तोमसंघो योऽस्ति, स सर्वोऽपि 'असौ' मण्डले दृश्यमानः, एकविंशतिसंख्यापूरकः 'अध्याहितः' मण्डले स्थापित आदित्यः 'तपति' प्रकाशते। आदित्यस्यैकविंशतिसंख्यापूरकत्वम् अन्यत्र श्रुतम्—"द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः"[२] इति॥

---

(१) 'संख्याया अल्पीयस्याः'—इति (पा०सू० २.२.३५ वा०) नवतेः पूर्वनिपातः।

(२) (i) तु० तै०सं० ५.१.१०.४। (ii) कथं संख्यैवमिति चेच्छ्लोकौ शृणु पुरातनौ—

त्रिवृद् बहिष्पवमाने नवस्युश्चतुर्षु चाज्येषु हि षष्टिरेवम्।
माध्यंदिने पवमाने दशाथ पञ्चाधिकाः स्तोत्रियाः स्युस्तथैव॥
चतुर्षु पृष्ठेषु तथाष्टषष्टिः सप्तार्भवे पवमाने दशाथ।
अग्निष्टोमं त्वेकविंशं वदन्तीत्येवं संख्या नवतिर्वै शतं च॥ —इति षड्गुरुशिष्यः।

यत्तु सत्रं गवामयनाख्यम्, तत्र यान्येकविंशत्यहानि, तत्सादृश्यादपि यथोक्तस्त्रिवृत्स्तोमसंबन्धः प्रशस्तः। कथं सादृश्यमिति? तदुच्यते—तस्मिन् सत्रे यन्मध्यममहः तद् विषुवन्नामकं दिवाकीर्त्यं भवति। तस्य पुरस्ताद्दशाहानि, उपरिष्टाद्दशाहानि। एवमत्रापि पूर्वोक्तरीत्या संपादितानामेकविंशतिसंख्याकानां त्रिवृत्स्तोमाद् मध्ये यस्त्रिवृत्स्तोमः, स एव विषुवान् भविष्यति। एतस्माद् विषुवद् रूपात् स्तोमाद् 'अर्वाञ्चः' पूर्वभाविनो दश त्रिवृत्स्तोमाः, 'पराञ्चः' उत्तरभाविनोऽपि दश त्रिवृत्स्तोमाः, उभयोर्दशकयोर्मध्ये एष एकविंशतिसंख्यापूरकस्त्रिवृत्स्तोम 'उभयतोऽध्याहितः' पार्श्वद्वये दशकव्याप्तः सन् 'तपति' आदित्यवत् प्रकाशते। तत्तत्रैकविंशतित्रिवृत्स्तोमेभ्य ऊर्ध्वं 'याऽसौ' ऋगेका स्तोत्रिया 'उदेति' अतिरिक्ता भवति, सेयम् 'एतस्मिन्नेकविंशतिसंघे 'अध्यूह्ळा' अधिकत्वेनावस्थापिता। 'स यजमानः' अतिरिक्त स्तोत्रियारूपो यजमानत्वेनावगन्तव्यः। किञ्च 'तत्' स्तोत्रियारूपं 'दैवं क्षत्रं ' देवसंबन्धिनी क्षत्रियजातिरिन्द्रवरुणादिरूपा तत्क्षत्रं 'सहः' पराभिभवक्षमं 'बलं' सैन्यम्। एवमग्निष्टोमः स्तोत्रियद्वारा प्रशस्तः॥

उक्तार्थवेदनं प्रशंसति—

अश्नुते ह वै दैवं क्षत्त्रं सहो बलम्, एतस्य ह सायुज्यं सरूपतां सलोकतामश्नुते य एवं वेद ।।५।।

हिन्दी— (इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **दैवं क्षत्रं सहः बलम्** दिव्यशक्ति और पराभूत करने वाली सेना को **अश्नुते** प्राप्त करता है तथा **एतस्य** इस (दिव्यशक्ति और पराभूत करने वाली सेना) के **सायुज्यं सरूपतां सलोकताम्** समीपता, सरूपता और सलोकता को **अश्नुते** प्राप्त करता है।

सा० भा०—उक्तार्थवेदिता पराभवसहिष्णुसैन्योपेतामिन्द्रादिदैवक्षत्रियजातिम् 'अश्नुते' प्राप्नोति। तत्र तेन क्षत्त्रेणेन्द्रादिना 'सायुज्यं' सहवासं 'सरूपतां' समानरूपत्वं 'सलोकताम्' एकलोकावस्थितिं च प्राप्नोति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (चतुर्दशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्दश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अथ त्रिवृदादिस्तोमचतुष्टयद्वारेणाग्निष्टोमं स्तोतुमाख्यायिकामाह—

(अग्निष्टोमस्य प्रशंसितुमाख्यायिका)

(तत्र त्रिवृदादिस्तोमचतुष्टयद्वारा प्रशंसनम्)

देवा वा असुरैर्विजिग्याना ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकमायन्, सोऽग्निर्दिविस्पृगूर्ध्व उदश्रयत, स स्वर्गस्य लोकस्य द्वारमवृणोदग्निर्वै स्वर्गस्य लोकस्याधिपतिस्तं वसवः प्रथमा आगच्छंस्त एनमब्रुवन्नति नोऽर्जस्याकाशं नः कुर्विति, स नास्तुतोऽतिस्रक्ष्य इत्यब्रवीत्, स्तुत नु मेति, तथेति, तं ते त्रिवृता स्तोमेनास्तुवंस्तान् स्तुतोऽत्यार्जत, ते यथालोकमगच्छन् ।।१।।

हिन्दी—(अब त्रिवृत इत्यादि चार स्तोमों द्वारा अग्निष्टोम की स्तुति करने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **देवाः** (अग्नि इत्यादि) देवताओं ने **असुरैः विजिग्याना** असुरों से विजय प्राप्त करके **ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकम् आयन्** ऊपर स्वर्गलोक को प्राप्त किया। तब **सः अग्निः** उस (अग्नि) ने **दिविस्पृग् ऊर्ध्वः उदश्रयत्** अपने (द्युलोक के स्थान से ही) द्युलोक का स्पर्श करते हुए ऊपर की ओर उठा तथा **सः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारम् अवृणोत्** उसने स्वर्गलोक के द्वार को बन्द कर दिया। **अग्निः वै स्वर्गस्य लोकस्य अधिपतिः** अग्नि ही स्वर्गलोक का अधिपति है। **तं वसवः प्रथमाः आगच्छन्** इस (अग्नि) के समीप सर्वप्रथम वसुगण आये और **ते एनम् अब्रुवन्** उन (वसुगण) ने इस (अग्नि) से कहा कि (हे अग्नि) **नः अत्यर्जसि** हम लोगों को (अपनी ज्वाला का अतिक्रमण करके स्वर्ग को प्राप्त कराने में) तुम समर्थ हो, अतः **नः आकाशं कुरु** हम लोगों के लिए (अपनी ज्वाला का शमन करके) अवकाश प्रदान करो। **सः अब्रवीत्** उस (अग्नि) ने कहा कि **अस्तुतः न अतिस्रक्ष्ये** (तुम लोगों द्वारा) बिना स्तुति किये मैं (स्वर्ग के द्वार को) नहीं खोलूँगा। अतः **स्तुत नु मा** शीघ्र ही तुम मेरी स्तुति करो। **तथा** (तब उन लोगों ने स्वीकार करते हुए कहा कि) वैसा ही हो। **ते** वे (वसुगण) **तम्** उस (अग्नि) की **त्रिवृता स्तोमेन** त्रिवृत् स्तोम से **अस्तुवन्** स्तुति किये। **स्तुतः** स्तुति किये गये (उस अग्नि) ने **तान् अत्यर्जत्** उन (वसुओं) को (स्वर्ग के बन्द द्वरा को) अतिक्रमण कराया जिससे **ते यथालोकम् अगच्छन्** वे (वसु) अपने अभीष्ट लोक (स्वर्ग-लोक) को प्राप्त किये।

सा० भा०—ये देवा अग्निसहिताः पूर्वमसुरैः सह युद्धं कृत्वा 'विजिग्यानाः' विजयं प्राप्ताः, ते देवा ऊर्ध्वगामिनः सन्तः स्वर्गं लोकम् आयन् प्राप्नुवन्। तदानीं 'सोऽग्निः' स्वस्थान एव स्थित्वा 'दिविस्पृक्' द्युलोकं स्पृशन् 'ऊर्ध्वः' उन्नतः सन् 'उदश्रयत' उपरितनं देशमाश्रितवान्, द्युलोकपर्यन्तं स्वकीयां ज्वालां वर्धितवानित्यर्थः। ततः 'सः' अग्निः स्वर्गलोकद्वारम् 'अवृणोत्' तयाच्छादितमकरोत्। न चेतरेषु देवेषु स्थितेषु कथमग्नेरीदृक्सा-

मर्थ्यमिति वाच्यम्। यस्माद् 'अग्निरेव स्वर्गस्य लोकस्याधिपतिः'। अग्नी ह्यग्निष्टोमादिकर्माण्यनुष्ठाय स्वर्गं प्राप्नुवन्ति। 'तं' स्वर्गद्वारनिरोधनमग्निमष्टौ वसवः 'प्रथमाः' पुरोगामिनो भूत्वागच्छन् 'प्राप्तवन्तः'। प्राप्य च 'एनम्' अग्निं 'ते' वसव एवमब्रुवन् —हे अग्ने त्वं 'नः' अस्मान् 'अत्यर्जसि'[१] त्वदीयां ज्वालामतिलङ्घ्य 'अर्जयितुं' स्वर्गं प्रापयितुमर्हसि, 'नः' अस्माकं तत्प्राप्त्यर्थम् 'आकाशं' त्वदीयज्वालाशमनेनावकाशं कुर्विति। ततः 'सः' अग्निरेवमब्रवीत् —युष्माभिरस्तुतोऽहं 'नातिस्रक्ष्ये' द्वारवरोधं न परित्यक्ष्यामि। तस्मादवरोधपरिहाराय 'नु' क्षिप्रमेव 'मा' मामग्निं 'स्तुत' स्तोत्रं कुरुतेति। 'ते' वसवस्तथेत्यङ्गीकृत्य त्रिवृन्नामकेन स्तोमेनाग्निम् अस्तुवन्॥

तस्य च त्रिवृत् स्तोमस्तोत्रस्य विधायकं छन्दोगब्राह्मणमेवमाम्नायते—'तिसृभ्यो हिंकरोति स प्रथमया, तिसृभ्यो हिंकरोति स मध्यमया, तिसृभ्यो हिंकरोति स उत्तमयोद्यती त्रिवृतो विष्टुतिः'[१] इति। अस्यायमर्थ—'उपास्मै गायता नरः' इति यः प्रथमस्तृचः 'दविद्युतत्या रुचेति' यो द्वितीयस्तृचः, 'पवमानस्य ते कवे' इति यस्तृतीयस्तृचः, एतेषु त्रिषु तृचात्मकेषु सूक्तेषु[२] विद्यमानानां नवानामृचां त्रिभिः पर्यायैर्गानं कर्तव्यम्। तत्र प्रथमे पर्याये त्रिषु सूक्तेष्वाद्यास्तिस्र ऋचो गातव्याः। द्वितीये पर्याये मध्यमा ऋचो गातव्याः। तृतीयपर्याये उत्तमा ऋचो गातव्याः। 'तिसृभ्यः' द्वितीये पर्याये मध्यमा ऋचो 'हिंकरोति'—इत्यनेन गानमुपलक्ष्यते। सेयं यथोक्तप्रकारोपेता गीतिस्त्रिवृत्स्तोमस्याद्या 'विष्टुतिः' स्तुतिप्रकारविशेषः। तस्या विष्टुतेः 'उद्यती' इत्येवं नामधेयमिति। ईदृशेन स्तोमेन स्तुतोऽग्निः तान् वसून् 'अत्यार्जत' निरुद्धं द्वारमतिलङ्घ्य स्वर्गमध्ये प्रापितवान्। 'ते' च वसवो देवा 'यथालोकं' स्वस्य स्वस्योचितं लोकं स्थानविशेषमनतिक्रम्य तत्रागच्छन्॥

अथ पञ्चदशस्तोमेन स्तुतिं दर्शयति—

(पञ्चदशस्तोमद्वारा स्तुतिः)

तं रुद्रा आगच्छंस्त एवमब्रुवन्नति नोऽर्जस्याकाशं नः कुर्विति; स नास्तुतोऽतिस्रक्ष्य इत्यब्रवीत्, स्तुत न मेति, तथेति, तं ते पञ्चदशेन स्तोमेनास्तुवंस्तान् स्तुतोऽत्यार्जत, ते यथालोकमगच्छन् ॥ २ ॥

हिन्दी—(अब पञ्चदश नामक स्तोम से स्तुति को दिखला रहे हैं—) तब **रुद्राः तम् आगच्छन्** रुद्रगण उस (अग्नि) के पास आये और **ते एनम् अब्रुवन्** उन्होनें उस (अग्नि) से कहा कि (हे अग्नि)! **नः अत्यर्जसि** तुम हम लोगों को (अपनी ज्वालाओं का अतिक्रमण करके स्वर्गलोक को प्राप्त कराने में) समर्थ हो अतः **नः आकाशं कुरु** हम लोगों के लिए (अपनी ज्वालाओं का अतिक्रमण करके) अवकाश को प्रदान करो। **सः अब्रवीत्** उस (अग्नि) ने कहा कि **अस्तुतः न अतिस्रक्ष्ये** (तुम लोगों द्वारा) बिना स्तुति

(१) ता०ब्रा० २.१.१। (२) उ०आ० १.१.१-३।

किये मैं (स्वर्ग के बन्द द्वार को अतिक्रमित) करुँगा। अतः **स्तुत नु मा** तुम शीघ्र ही मेरी स्तुति करो। **तथा इति** तब (रुद्रों ने उसे स्वीकार करते हुए कहा कि) ठीक है। **ते** उन रुद्रों ने **पञ्चदशेन स्तोमेन** पञ्चदश (नामक) स्तोम से **तम् अस्तुवन्** उस (अग्नि) की स्तुति किया। **स्तुतः** स्तुति किये गये (अग्नि) ने **तान् अत्यर्पत** उन (रुद्रों) को (निरुद्ध द्वार का उलङ्घन करके) अतिक्रमण कराया जिससे **ते यथालोकम् अगच्छन्** वे (रुद्रगण) अपने अभीष्ट लोक (स्वर्गलोक) के प्राप्त किये।

सा० भा०—पञ्चदशनामकस्य स्तोमस्य स्वरूपं छन्दोगैरेवमाम्नायते—'पञ्चभ्यो हिंकरोति स तिसृभिः स एकया स एकया, पञ्चभ्यो हिंकरोति स एकया स तिसृभिः स एकया, पञ्चभ्यो हिंकरोति स एकया स एकया स तिसृभिः'[1] इति। अस्यायमर्थः—तृचात्मकमेकं सूक्तं त्रिरावर्तनीयम्। तत्र प्रथमावृत्तौ प्रथमाया ऋचस्त्रिरभ्यासः, द्वितीयावृत्तौ मध्यमायाः, तृतीयावृत्तावुत्तमायाः। सोऽयं पञ्चदशस्तोम इति। अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्॥

अथ सप्तदशस्तोमेन स्तुतिं दर्शयति—

(सप्तदशस्तोमेन स्तुतिः)

तमादित्या आगच्छंस्त एनमब्रुवन्नति नोऽर्जस्याकाशं नः कुर्विति; स नास्तुतोऽतिस्रक्ष्य इत्यब्रवीत्, स्तुत नु मेति, तथेति; तं ते सप्तदशेन स्तोमेनास्तुवंस्तान् स्तुतोऽत्यार्जत; ते यथालोकमगच्छन् ॥ ३॥

हिन्दी—(अब सप्तदश नामक स्तोम से स्तुति को दिखला रहे हैं—) **आदित्याः तम् आगच्छन्** पुनः आदित्यगण उस (अग्नि) के समीप आये। **ते एनम् अब्रुवन्** उन्होंने उस (अग्नि) से कहा कि **नः अत्यर्जति** तुम हम लोगों को (अपनी ज्वालाओं का अतिक्रमण करके स्वर्गलोक को प्राप्त कराने में) समर्थ हो। अतः **नः आकाशं कुरु** हमारे लिए अवकाश प्रदान करो। **सः अब्रवीत्** उस (अग्नि) ने कहा कि **अस्तुतः न अतिस्रक्ष्ये** (तुम लोगों द्वारा) स्तुति किये बिना मैं (स्वर्ग के बन्द द्वार को) नहीं अतिक्रमण करूँगा। अतः **स्तुत नु मां** शीघ्र मेरी स्तुति करो। **तथेति** तब आदित्यों ने स्वीकार करते हुए कहा कि) ठीक है। **ते** उन (आदित्यों) ने **तम्** उस (अग्नि) की **सप्तदशेन स्तोमेन** सप्तदश (नामक) स्तोम से **अस्तुवन्** स्तुति किया। **स्तुतः** (आदित्यों द्वारा) स्तुति किये गये (अग्नि) ने **तान् अत्यार्जत्** उन (आदित्यों) को (निरुद्ध स्वर्गद्वार का) अतिक्रमण कराया जिससे **ते** वे (आदित्यगण) **यथालोकम् अगच्छन्** (अपने) अभीष्ट लोक (स्वर्गलोक) को गये।

सा० भा०—सप्तदशस्तोमस्य स्वरूपं छन्दोगैरेवमाम्नायते—'पञ्चभ्यो हिंकरोति स तिसृभिः स एकया स एकया, पञ्चभ्यो हिंकरोति स एकया स तिसृभिः स एकया, सप्तभ्यो हिंकरोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिः'[2] इति। अत्र प्रथमावृत्तौ प्रथमायास्त्रिरभ्यासः,

(१) ता०ब्रा० २.४.१। (२) ता०ब्रा० २.७.१।

द्वितीयावृत्तौ मध्यमायाः, तृतीयावृत्तौ मध्यमोत्तमयोः। सोऽयं सप्तदशस्तोम इति। अन्यत् पूर्ववत् व्याख्येयम्॥

एकविंशस्तोमेन स्तुतिं दर्शयति—

(एकविंशस्तोमेन स्तुतिः)

तं विश्वे देवा आगच्छंस्त एनमब्रुवन्नति नोऽर्जस्याकाशं नः कुर्विति; स नास्तुतोऽतिस्रक्ष्य इत्यब्रवीत्, स्तुत नु मेति; तथेति; तं त एकविंशेन स्तोमेनास्तुवंस्तान् स्तुतोऽत्यर्जत, ते यथालोकमगच्छन् ।।४।।

हिन्दी—(अब एकविंश नामक स्तोम से स्तुति को दिखला रहे हैं—) **विश्वेदेवाः तम् आगच्छन्** पुनः विश्वे देवा उस (अग्नि) के समीप गये। **ते एनम् अब्रुवन्** उन्होंने उस (अग्नि) से कहा कि **नः अत्यर्जसि** हम लोगों को तुम (अपनी ज्वालाओं का अतिक्रमण करके स्वर्गलोक को प्राप्त कराने में) समर्थ हो अतः **नः आकाशं कुरु** हम लोगों के लिए अवकाश बनाओ। **सः अब्रवीत्** उस (अग्नि) ने कहा कि **अस्तुतः न अतिस्रक्ष्ये** (तुम लोगों द्वारा) स्तुति किये बिना मैं (स्वर्ग के निरुद्ध द्वार का) अतिक्रमण नहीं करुँगा। अतः **स्तुत नु मा** (तुम लोग) मेरी शीघ्र स्तुति करो। **तथा इति** तब (विश्वे देवों ने स्वीकार करते हुए कहा कि) अच्छा। **ते** उन (विश्वे देवों) ने **तम्** उस (अग्नि) की **एकविंशेन स्तोमेन** एकविंश (नामक) स्तोम से **अस्तुवन्** स्तुति किया। **स्तुतः** स्तुति किये गये (अग्नि) ने **तान्** उन (विश्वे देवो) को **अत्यर्जत्** (निरुद्ध स्वर्गद्वार का) अतिक्रमण कराया जिससे **ते यथालोकम् अगच्छन्** वे (विश्वे देवा) अपने अभीष्ट लोक (स्वर्गलोक) को गये।

सा० भा०—एकविंशस्तोमस्य स्वरूपं छन्दोगैरेवमाम्नायते—'सप्तभ्यो हिंकरोति स तिसृभिः स तिसृभिः स एकया, सप्तभ्यो हिंकरोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिः, सप्तभ्यो हिंकरोति स तिसृभिः स एकया स तिसृभिः'[१] इति। प्रथमपर्याये तृचस्योत्तमाया ऋचः सकृत्पाठः। द्वितीयपर्याये प्रथमायाः सकृत्पाठः, तृतीयपर्याये मध्यमायाः सकृत्पाठः। अथ शिष्टानां तु त्रिरावृत्तिः। सोऽयमेकविंशस्तोम इति। अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्॥

स्तोमचतुष्टयमुपसंहरति—

(स्तोमचतुष्टयस्योपसंहारः)

एकैकेन वै तं देवाः स्तोमेनास्तुवंस्तान् स्तुतोऽत्यार्जत; ते यथालोकमगच्छन् ।।५।।

---

(१) ता०ब्रा० २.१४.१॥

हिन्दी—(अब चारों स्तोमों का उपसंहार कर रहे हैं—) इस प्रकार **देवाः** देवताओं ने **तम्** उस (अग्नि) की **एकैकेन स्तोमेन** एक-एक स्तोम से **अस्तुवन्** स्तुति किया। **स्तुतः** (देवताओं द्वारा) स्तुति किये गये (उस अग्नि) ने **तान्** उन (देवताओं) को **अत्यार्जत** (अपनी ज्वालाओं का) अतिक्रमण कराया जिससे **ते** उन (देवताओं) ने **यथालोकम् अगच्छन्** (अपने) अभीष्ट लोक (स्वर्गलोग) को प्राप्त किया।

सा० भा०—अग्निष्टोमप्रयोगे चतुर्णाम् उक्तानां स्तोमानां विकल्पशङ्काव्यावृत्त्यर्थं समुच्चयं विधत्ते—

अथ हैनमेष एतैः सर्वैः स्तोमैः स्तौति यो यजते ।।६।।

हिन्दी—(अग्निष्टोम प्रयोग में उपर्युक्त चारों स्तोमों के विकल्प की शङ्का की व्यावृति के लिए उनके समुच्चय का विधान कर रहे हैं—) **यः यजते** जो यजन करता है, **एषः** यह **एतैः सर्वैः स्तोमैः एव** इस सभी (उपर्युक्त) स्तोमों से ही **एनम्** इस (अग्नि) की **स्तौति** स्तुति करता है।

सा० भा०—अर्थवादवैलक्षण्येन विधित्वं द्योतयितुम् 'अथ'शब्दः,—योऽग्निष्टोमेन यजते, स एतैश्चतुर्भिरपि स्तोमैः स्तुवीत।।

अनुष्ठातुः स्वर्गप्राप्तिफलस्य सिद्धत्वात् तेन सह समुच्चित्य वेदितुरपि तत्फलं दर्शयति—

यश्चैनमेवं वेदाती तु तमर्जति ।।७।।

हिन्दी—(अनुष्ठान कर्त्ता के स्वर्ग फल की सिद्धि होने के कारण उसी के साथ समुच्चय करके उसके ज्ञाता के भी उसी फल को दिखला रहे हैं—) **यः च एवं वेद** जो (यजन करने वाला) उस (स्तोमों) को इस प्रकार जानता है **तम्** उस (ज्ञाता) को **अर्जति** (स्वर्गद्वार के निरोधन का) अतिक्रमण करके (स्वर्ग लोक को प्राप्त हो जाता है)।

सा० भा०—यजमानो येन प्रकारेण यजते, अनेनैव प्रकारेण 'एनम्' अग्निष्टोमं 'यश्च' वेदाती तमपि वेदितारं द्वारनिरोधनमतिलङ्घ्य 'अर्जति'[१] प्रापयत्येव। 'अती तु'—इति दीर्घश्छान्दसः।।

वेदनामात्रेणानुष्ठानसमानफलं दृढयितुं पुनरप्याह—

अति ह वा एनमर्जते स्वर्गं लोकमभि य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(ज्ञानमात्र से अनुष्ठान के समान फल को दृढ़ करने के लिए ही पुनः कह

---

(१) (i) 'अतिलङ्घ्याज्जातै एव' इति आनन्दाश्रममुद्रितपाठः। (ii) 'अर्जेलेंटे। 'आत ऐ' (पा०सू० ३.४.९५), 'वैतोऽन्यत्र' (पा०सू० ३.४.९६) अर्जेत 'दुःखमतिक्रम्य सुखं प्रवेशयेत्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **एनम्** इस (स्वर्गलोक के निरुद्ध द्वारा) का **अति अर्जते** अतिक्रमण कर जाता है और **स्वर्गं लोकम् अभि** स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

सा० भा०—वेदनमात्रेण सिद्धेऽपि फले 'कर्मभूयस्त्वात् फलभूयस्त्वम्' इति न्यायेनानुष्ठनवैयर्थ्यं नास्ति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (चतुर्दशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्दश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—अथाग्निष्टोमादिशब्द निर्वचनतः प्रशंसति—

(अग्निष्टोमादिशब्दस्य निर्वचनेन प्रशंसनम्)

(तत्राग्निष्टोमनिर्वचनम्)

स वा एषोऽग्निरेव यदग्निष्टोमः, तं यदस्तुवंस्तस्मादग्निस्तोमः, तमग्निस्तोमं सन्तमग्निष्टोम इत्याचक्षते परोक्षेण, परोक्षप्रिया इव हि देवाः ॥१॥

हिन्दी—(अब अग्निष्टोम इत्यादि शब्दों की निर्वचन द्वारा प्रशंसा कर रहे हैं। उनमें अग्निष्टोम का निर्वचन—) **यद् अग्निष्टोमः** जो अग्निष्टोम है, **सः एषः अग्निः एव** वह यह अग्नि ही है। **तम्** उस (क्रतुरूप अग्नि) की **यद् अस्तुवन्** जो (देवताओं ने स्तोमों से) स्तुति किया **तस्मात्** इसी कारण **अग्निस्तोमः** वह अग्निस्तोम (नाम वाला) हुआ। **अग्निस्तोमं सन्तं तम्** अग्नि-स्तोम नाम वाला होते हुए उसको **परोक्षेण अग्निष्टोमः इत्याक्षते** परोक्षरूप से अग्नि-ष्टोम नाम से कहते हैं; क्योंकि **परोक्षप्रियाः हि देवाः** देवता परोक्षप्रिय होते हैं।

सा० भा०—योऽयमग्निष्टोमोऽस्ति, स एष साक्षात् 'अग्निरेव' स्वशरीरमेव; त्रिभिश्छन्दोभिस्त्रिभिः सवनैश्च विभज्य क्रतोर्निष्पादितत्वात्। 'तं' क्रतुरूपमग्निं 'यद्' यस्मात् कारणाद् देवा अस्तुवन्, तस्मादग्निविषयस्तुतियुक्तत्वादयं क्रतुः 'अग्निस्तोमः' इत्येन्नामकः। तन्नामयुक्तं क्रतुं परोक्षनाम्ना व्याहर्तुं सकारतकारयोः षकारटकारावादिश्य 'अग्निष्टोमः' इति वैदिका आचक्षते। वर्णान्तरेण व्यावहितत्वात् शीघ्रप्रतीतिरहितं नाम परोक्षमि-

त्युच्यते। यस्माल्लोके 'देवाः' आचार्यादयः परोक्षनामप्रिया एव, तस्मान् क्रतोरपि तद्युक्तम् ॥

नामान्तरस्य निर्वचनं दर्शयति—

(चतुष्टोमनामनिर्वचनम्)

तं यच्चतुष्टया देवाश्चतुर्भिः स्तोमैरस्तुवंस्तस्माच्चतुस्तोमस्तं चतुस्तोमं सन्तं चतुष्टोम इत्याचक्षते परोक्षेण, परोक्षप्रिया इव हि देवाः ।।२।।

हिन्दी—(अग्निष्टोम के अन्य नाम का निर्वचन दिखला रहे हैं—) **तम्** उस (क्रतुरूप अग्नि) की **यद् चतुष्टया देवाः** जो चार प्रकार वाले (वसु इत्यादि) देवताओं ने **चतुर्भिः स्तोमैः** चार प्रकार (त्रिवृत् इत्यादि) वाले स्तोमों से **अस्तुवन्** स्तुति किया **तस्मात्** इसी कारण **चतुस्तोम** वह चतुस्तोम नाम वाला हुआ। **चतुस्तोमं सन्तं तम्** चतुस्तोम नाम वाला होते हुए उसको **परोक्षेण चतुष्टोमः इत्याचक्षते** परोक्षरूप से चतुष्टोम (नाम से) कहते हैं; क्योंकि **परोक्षप्रियाः वै देवाः** देवतापरोक्ष प्रिय होते हैं।

सा० भा०—'चतुष्टयाः' चतुर्विधाः,—वसवो रुद्रा आदित्या विश्वे देवाश्चेति। स्तोमाश्च त्रिवृतपञ्चदशः सप्तदश एकविंश इत्येवं चत्वारः। चतुष्टोमनामनिर्वचनं पूर्ववद् योजनीयम्॥

ज्योतिष्टोमनामनिर्वचनं दर्शयति—

(ज्योतिष्टोमनामनिर्वचनम्)

अथ यदेनमूर्ध्वं सन्तं ज्योतिर्भूतमस्तुवंस्तस्माज्ज्योतिस्तोमस्तं ज्योतिस्तोमं सन्तं ज्योतिष्टोम इत्याचक्षते परोक्षेण, परोक्षप्रिया इव हि देवाः ।।३।।

हिन्दी—(ज्योतिष्टोम नाम का निर्वचन कर रहे हैं—) **अथ** इसके बाद **ऊर्ध्वं सन्तमेनम्** जो (भूमि से लेकर द्युलोक तक) ऊपर विद्यमान इस **ज्योतिर्भूतान्** ज्योतिर्भूत (अग्नि) की **अस्तुवन्** (देवताओं ने) स्तुति किया **तस्मात्** इसी कारण **ज्योतिस्मोमम्** उसका ज्योतिस्तोम (नाम पड़ा)। **ज्योतिस्तोमं सन्तं तम्** ज्योतिस्तोम नाम वाले (उसको) **परोक्षेण** परोक्ष रूप से **ज्योतिष्टोमम् इत्याक्षते** ज्योतिष्टोम कहा जाता है **परोक्षप्रिया इव हि देवाः** क्योंकि देवता परोक्ष प्रिय होते हैं।

सा० भा०—'अथ' नामद्वयकथनानन्तरं, तृतीयं नाम कथ्यत इति शेषः। अयम् अग्निर्भूमिमारभ्य द्युलोकपर्यन्तमूर्ध्वावस्थितः, तथा प्राकाशमानत्वाज्ज्योतिर्भूतः। तं तादृशं देवा अस्तुवन्, 'तस्माज्ज्योतिस्तोमः'। ज्योतिषः 'स्तोमः' स्तुतिः यस्मिन् क्रतौ, स क्रतुर्ज्योतिस्तोमः। अन्यत् पूर्ववत्॥

नामनिर्वचनेन प्रशस्य पुनरप्याद्यन्तराहित्येन प्रशंसति—

(आद्यन्तराहित्येनाग्निष्टोमप्रशंसनम्)

स वा एषोऽपूर्वोऽनपरो यज्ञक्रतुर्यथा रथचक्रमनन्तमेवं यदग्निष्टोम-

स्तस्य यथैव प्रायणं तथोदयनम् ।।४।।

हिन्दी—(नाम के निर्वचन द्वारा प्रशंसा करके पुनः आद्यन्त-विहीनता के कारण प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् अग्निष्टोमः** जो अग्निष्टोम है **सः वै एषः** वह यह (अग्निष्टोम) **यथा रथचक्रम् अनन्तमेव** जिस प्रकार रथ का चक्का (सर्वदा घूमते रहने के कारण अनन्त (आदि और अन्त से रहित) है **एवं** उसी प्रकार **अपूर्वः अनपरः** पूर्व और पर (अर्थात् आदि और अन्त) से रहित **यज्ञक्रतुः यथा एव प्रायणम्** जिस प्रकार उसका प्रारम्भ होता है **तथा एव उदयनम्** वैसे ही समापन भी होता है।

सा० भा०—'स एषः' अग्निष्टोमः पूर्वापररहितः, पूर्वः' आदिः, 'अपरः' अन्तः, आद्यन्तरहितो यज्ञक्रतुः। यथा लोके 'रथचक्रमनन्तं' पुनः पुनः परिवर्तमानस्य रथचक्रस्य अयमादिरयमन्त इति विभागः कर्तुं न शक्यते, तस्मादिदमन्तरहितम्। आदिरहित-स्याप्येतदुपलक्षणम्। एवं क्रतुरपि। ननु प्रायणीयेष्टिरादिः, उदयनीयेष्टिरन्त इति चेत्? मैवम् योऽग्निष्टोमोऽस्ति, तस्य यादृशं प्रायणीयं कर्म, तादृशमेवोदयनीयं कर्म; तयोः यागधर्मसाम्यात्। अतो विवेक्तुमशक्यत्वाद् आद्यन्तरहितः क्रतुः॥

उक्तमर्थं मन्त्रोदाहरणेन द्रढयति—

तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते–'यदस्य पूर्वमपरं तदस्य, यद्वास्यापरं तद्वास्य पूर्वम्। अहेरिव सर्पणं शाकलस्य च विजानन्ति यतरत् परस्तादिति ।।५।।

हिन्दी—(उक्त अर्थ को मन्त्र के उदाहरण से दृढ़ कर रहे हैं—) **तत्** उस (अग्निष्टोम के आदि और अन्त से रहितता के) विषय में **एषा यज्ञगाथा** यह यज्ञ-विषयक गाथा **गीयते** कही गयी है—**यद् अस्य पूर्वम्** जो इस (अग्निष्टोम) का आदि वाला (उपक्रम) है **तद् अस्य अपरम्** वही इसका समापन (का उपक्रम) है। **यद्वा अस्य अपरम्** अथवा जो इसके समापन वाला (उपक्रम) है **तद्वा अस्य पूर्वम्** वही इसका प्रारम्भ वाला (उपक्रम) है। **शाकलस्य अहेः सर्पणम् इव** शाकल (नामक) सर्प (विशेष) के सर्पण के समान **न विजानन्ति** लोग नहीं जान पाते हैं कि **यतरत् परस्तात्** इसका मुख कौन है और पुच्छ कौन है।

सा० भा०—सर्वैरपि सुभाषितत्वे गीयत इति 'गाथा' यज्ञविषया गाथा। 'तत्' तस्मिन्नग्निष्टोमस्याद्यन्तयोः प्रायणीयोदनीययोरेकविधत्वे काचिदेषा 'यज्ञगाथा' 'अभिगीयते' सर्वतः पठ्यते। यदस्येत्यादिगाथा। 'अस्य' अग्निष्टोमस्य यत् 'पूर्वम्' उपक्रमरूपं कर्मास्ति, तदेवास्य 'अपरं' समाप्तिरूपं कर्म। 'यदु' यदेवास्य 'अपरं' समाप्तिरूपम्, 'तदु' तदेवास्य 'पूर्वम्' उपक्रमरूपम्। आदित्यः प्रायणीयश्चरुरादित्य उदयनीयश्चरुरिति द्रव्यदेवतयोरुभ-यत्रैकविधत्वात् तयोरेकत्वोपचारः। आद्यन्तयोरपरिज्ञाने पूर्वब्राह्मणे रथचक्रदृष्टान्तो दर्शितः।

मन्त्रे त्वन्यो दृष्टान्त उच्यते।[१] 'शाकल' शब्दः सर्पविशेषवाची। शाकलनाम्नः 'अहेः' सर्पविशेषस्य यथा 'सर्पणं' गमनम्, तथैवायमग्निष्टोमः। स च सर्पणकाले मुखेन पुच्छस्य दंशनं कृत्वा वलयाकारो भवति, तत्र किं मुखं किं वा पुच्छमिति न ज्ञायते; एवमत्राप्यदितिदेवातकस्य चरोः साम्ये सति प्रायणीयोदयनीययोः 'यतरम्' 'परस्तात्' पश्चाद्भावि, यतरच्च पूर्वभावि किमपि न विजानन्ति॥

अस्य गाथायास्तात्पर्यं संक्षिप्य दर्शयति—

यथा ह्येवास्य प्रायणमेवमुदयनमसदिति,॥६॥

हिन्दी—(गाथा के तात्पर्य को संक्षिप्त करके दिखला रहे हैं—) **यथा हि एव अस्य प्रायणम्** जिस प्रकार इस (अग्निष्टोम) का प्रारम्भ होता है **एवम् उदयनम् असत्** उसी प्रकार समापन भी होता है।

सा० भा०—'अस्य' अग्निष्टोमस्य प्रायणं प्रारम्भो यादृशः, एवम् 'उदयनं' समाप्तिः 'असत्' अस्ति, भवतीत्यर्थः॥

अत्र कंचिदाक्षेपमुद्भावयति—

तदाहुर्यत्त्रिवृत्प्रायणमेकविंशमुदयनं, केन ते समे इति ॥७॥

हिन्दी—(इस विषय में किसी आक्षेप की उद्भावना कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ ब्रह्मवादी) पूछते हैं कि **त्रिवृत् प्रायणम्** (प्रातःसवन में) त्रिवृत् स्तोम से यह प्रारम्भ होता है और **एकविंशम् उदयनम्** सायंसवन में एकविंश समापन वाला स्तोम है फिर **केन** किस प्रकार **ते समे** वे दोनों (प्रारम्भ और समापन) एक समान वाले होते हैं।

सा० भा०—पूर्वोदाहतस्त्रिवृत्स्तोमः प्रातःसवनादौ प्रयोज्यत्वात् 'प्रायणम्' उपक्रमरूपम्। एकविंशस्तोमस्तु तृतीयसवनान्ते प्रयोज्यत्वाद् 'उदयनं' समाप्तिरूपम्। 'केन' कारणेन 'ते' प्रायणोदयने 'समे' भवेतामित्याक्षेपः॥

तत्र परिहारं दर्शयति—

यो वा एकविंशस्त्रिवृद् वै सोऽथो यदुभौ तृचौ तृचिनाविति ब्रूयात् तेनेति॥८॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त आक्षेप का समाधान दिखला रहे हैं—) **यः वै एकविंशः** जो एकविंश (नामक स्तोम) है, **सः वै त्रिवृत्** वही त्रिवृत् है **अथ** और **यद् उभौ तृचौ** (दोनों स्तोमों में रहने वाले) जो दोनों तृच हैं **तृचिनौ** वे तृचत्व धर्म-सम्पन्न है **तेन** इसी कारण (ये समान हैं)—**इति ब्रूयात्** इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।

सा० भा०—योऽयमेकविंशस्तोमोऽस्ति, स एव त्रिवृदवगन्तव्यः, स्तोमत्वाकारेण तयोरेकविधत्वात्। 'अथो' अपि च 'यत्' यस्मात्कारणात् स्तोमद्वयाश्रयभूतौ 'उभौ' तृचौ

'तृचिनौ' तृचित्व धर्मयुक्तौ। तत्र त्रिवृत्स्तोमाश्रयस्य 'उपास्मै गायता नरः' इति सूक्तस्य तृचत्वधर्मः प्रसिद्ध एव। एकविंशस्तोमाश्रयस्य 'यज्ञा यज्ञा वो अग्नये' इति सूक्तस्य प्रगाथत्वाद् यद्यपि तस्मिन् द्वे एव ऋचावाम्नायेते, तथाऽपि स्तोत्रकाले प्रग्रथनेन पादानावर्त्य तृचत्वं संपाद्यते। 'तेन' तृचत्वधर्मोपेतत्वकारणेन द्वयोः स्तोमयोरेकविधत्वमित्युक्तरं ब्रूयात्।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (चतुर्दशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्दश अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—पुनरादित्यसाम्येन प्रशंसति—

(आदित्यसाम्येनाग्निष्टोमप्रशंसनम्)

यो वा एष तपत्येषोऽग्निष्टोम एष साह्नस्तं सहैवाह्ना संस्थापयेयुः, साह्नो वै नाम ।।१।।

हिन्दी—(पुनः आदित्य की समानता से अग्निष्टोम की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः वै एषः तपति** जो यह (सूर्य) निश्चित रूप से तपता है **एषः अग्निष्टोमः एव** यह अग्निष्टोम ही है क्योंकि **एषः साह्नः** यह (सूर्य के समान) एक दिन में होने वाला है। **तं अह्ना सहैव संस्थापयेयुः** उस (अग्निष्टोम) को एक दिन में ही समाप्त करना चाहिए। अतः **साह्नः वै नाम** (इस क्रतु का नाम) साह्न (एकाहिक) है।

सा० भा०—य एव प्रसिद्ध 'एषः' अस्मत्प्रत्यक्ष आदित्यः तपति, 'एषोऽग्निष्टोमः', तयोरादित्वाग्निष्टोमयोः सदृशत्वात्। कथं साम्यमिति? तदुच्यते—'एषः' अग्निष्टोम आदित्यवत् 'साह्नः' यथा आदित्योऽह्ना सह वर्तते, तथाऽयमपि। 'तम्' अग्निष्टोम एकेनाह्ना सहैव 'संस्थापयेयुः' समापयेयुः। तस्मादादित्यस्येव 'साह्नः' इति क्रतोर्नाम संपन्नम्।।

इदानीमग्निष्टोमानुष्ठाने त्वरां निषेधति—

(अग्निष्टोमानुष्ठाने त्वरानिषेधः)

तेनासंत्वरमाणाश्चरेयुर्यथैव प्रातःसवन एवं माध्यंदिन एवं तृतीयसवन एवमु ह यजमानोऽप्रमायुको भवति ।।२।।

हिन्दी—(अब अग्निष्टोम के अनुष्ठान में शीघ्रता का निषेध कर रहे हैं—) **तेन** उस

(अनुष्ठान के लिए एक दिन पर्याप्त होने) के कारण **असंत्वरमाणाः सञ्चरेयुः** शीघ्रता न करते हुए (उत्तरोत्तर अनुष्ठान को) करना चाहिए। **यथा एव प्रातःसवने** जिस प्रकार प्रातःसवन में (अनुष्ठन करे) **एवं माध्यन्दिने** उसी प्रकार माध्यान्दिन सवन में और **एवं तृतीयसवने** उसी प्रकार तृतीयसवन में (करना चाहिए); क्योंकि **एवं हि** इस प्रकार (शीघ्रता न करते हुए अनुष्ठान करने से) **यजमानः अप्रमायुकः भवति** यजन करने वाला अपमृत्यु से रहित हो जाता है।

सा० भा०—यस्मादेकमहः साकल्येनानुष्ठानाय पर्याप्तं, 'तेन' कारणेन सर्वेऽप्यृत्विजः 'असंत्वरमाणाः' त्वरामकुर्वन्त उत्तरोत्तरानुष्ठानं सम्यक्पर्यालोचयन्तः 'चरेयुः' अनुतिष्ठेयुः। यथैव प्रातःसवने मध्यरात्रादूर्ध्वमारभ्य मध्याह्नात् पूर्वकालस्यानुष्ठानाय पर्याप्तत्वान्नास्ति त्वरा, एवमुत्तरयोरपि सवनयोः। 'एवमु ह' अनेनैव प्रकारेण शनैरनुष्ठाने सति बुद्धिसमाधानेनाङ्गलोपाभावाद् यजमानः 'अप्रमायुकः' अपमृत्युरहितो भवति॥

विपक्षे बाधकं दर्शयति—

यद्ध वा इदं पूर्वयोः सवनयोरसंत्वरमाणाश्चरन्ति, तस्माद्धेदं प्राच्यो ग्रामता बहुलाविष्टा अथ यद्धेदं तृतीयसवने संत्वरमाणाश्चरन्ति, तस्माद्धेदं प्रत्यञ्चि दीर्घारण्यानि भवन्ति तथा ह यजमानः प्रमायुको भवति ।।३।।

हिन्दी—(विपक्ष के विषय में बाधा को दिखला रहे हैं—) **यद् ह वै** यदि **पूर्वयोः सवनयोः** पूर्ववर्ती (प्रातः और माध्यन्दिन इन) दोनों सवनों में **इदम्** इस (कर्म) को **असंत्वरमाणः सञ्चरन्ति** शीघ्रता न करते हुए सम्पादित करते हैं **तस्मात्** तो **इदम्** यह (कर्म) **प्राच्यः ग्रामता बहुला विष्टा** पूर्व दिशा की ओर के ग्रामसमूह के बहुत लोगों से युक्त होता है **अथ ह** और **यत् इदम्** यदि इस कर्म को **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **संत्वरयाणाः सञ्चरन्ति** शीघ्रता करते हुए सम्पादित करते हैं **तस्मात्** तो **इदम्** यह (कर्म) **प्रत्यञ्चि दीर्घारण्यानि भवन्ति** पश्चिम दिशा वाले (ग्रामसमूह) महान् जङ्गल (जनों से रहित) हो जाते हैं। **तथा ह** इस प्रकार **यजमानः प्रमायुकः भवति** यजन करने वाला अपमृत्यु का भागी हो जाता है।

सा० भा०—'यद्ध वै' यदि प्रथमद्वितीययोः सवनयोः कालसंकोचाभावात् असंत्वरमाणाः 'इदं' कर्म 'चरन्ति' अनुतिष्ठेयुः तदानीं 'तस्माद्ध' तस्मादेवाङ्गलोपाभावात् कारणादिदं दृश्यते। किमिदमिति? तदुच्यते—'प्राच्यो ग्रामताः' पूर्वदिग्वर्तिनो ग्रामसमूहाः 'बहुलाविष्टाः' बहुभिर्जनैः संपूर्णा भवन्ति। 'अथ' तद्विपर्ययेण 'यद्ध' यदि तृतीयसवने कालसंकोचमाशङ्क्य 'संत्वरमाणाः' अतित्वरया युक्ताः 'इदं' कर्म 'चरन्ति' अनुतिष्ठन्ति 'तस्माद्ध' तदानीमङ्गवैकल्यसंभवादेवेदं लोके दृश्यते,—'प्रत्यञ्चि' पश्चिमदिग्वर्तीनि 'दीर्घा-

रण्यानि' जनशून्यानि भवन्ति। 'तथा ह' तादृशेन संभाविताङ्गवैकल्ययुक्तेनानुष्ठानेन यजमानः 'प्रमायुको भवति' अपमृत्युना म्रियत इत्यर्थः।।

विपक्षे बाधकमुक्त्वा स्वपक्षं निगमयति—

तेनासंत्वरमाणाश्चरेयुर्यथैव प्रातःसवन एवं माध्यंदिन एवं तृतीयसवन एवमु ह यजमानोऽप्रमायुको भवति ।।४।।

हिन्दी—(अब अपने पक्ष को कह रहे हैं—) **तेन** इसी कारण **असंत्वरमाणाः सञ्चरेयुः** शीघ्रता न करते हुए (सम्पादन) करना चाहिए। **यथा प्रातःसवने** जैसे प्रातःसवन में करें **एवं माध्यन्दिने** इसी प्रकार माध्यन्दिनसवन में और **एवं तृतीयसवने** उसी प्रकार तृतीयसवन में करना चाहिए। **एवमु यजमानः** इस प्रकार यजन करने वाला **अप्रमायुकः भवति** अपमृत्यु का भागी नहीं होता।

अथ त्रिषु सवनेषु शस्त्रस्योत्तरोत्तरं ध्वन्याधिक्यं विधत्ते—

(त्रिषु सवनेषु शस्त्रस्योत्तरोत्तरध्वन्याधिक्यविधानम्)

स एतमेव शस्त्रेणानु पर्यावर्त्तेत; यदा वा एष प्रातरुदेत्यथ मन्द्रं तपति, तस्मान्मन्द्रया वाचा प्रातःसवने शंसेद्, अथ यथाऽभ्येत्यथ बलीयस्तपति, तस्माद् बलीयस्या वाचा मध्यंदिने शंसेद्, अथ यदाभितरामेत्यथ बलिष्ठतमं तपति तस्माद् बलिष्ठतमया वाचा तृतीयसवने शंसेद्, एवं शंसेद् यदि वाच ईशीत; वाग्घि शस्त्रं; यया तु वाचोत्तरोत्तरिण्योत्सहेत समापनाय, तया प्रतिपद्येतैतत्सुशस्ततममिव भवति ।।५।।

हिन्दी—(अब तीनों सवनों में शस्त्र के शंसन में क्रमश ध्वनि की अधिकता को दिखला रहे हैं—) **सः** वह होता **एतमेव अनु** इस (सूर्य) का अनुसरण करते हुए **शस्त्रेण पर्यावर्तेत** (क्रमशः आदित्य के उत्तरोत्तर तपने के अनुसार) ध्वनि की अधिकता को बढ़ाते हुए शस्त्र से शंसन करे। **यदा वै एषः प्रातः उदेति** जब यह सूर्य प्रातःकाल उगता है **अथ मन्द्रं तपति** तब मन्द्ररूप से तपता है। **तस्मात्** इसी कारण **प्रातःसवने** प्रातःसवन में **मन्द्रया वाचा शंसेत्** मन्द ध्वनि से शंसन करे। **अथ यथा अभ्येति** इसके बाद जैसे ही मध्याह्नकाल की ओर जाता है **अथ बलीयः तपति** तब तीव्र रूप से तपता है **तस्मात्** इसी कारण **मध्यन्दिने** माध्यन्दिनसवन में **बलीयसा वाचा शंसेत्** ऊँची ध्वनि ने शंसन करे। **अथ** इसके बाद **यदा अभितरामेति** पश्चिमाभिमुख मनुष्यों के सम्मुख आता है **अथ बलिष्ठतमं तपति** तब अत्यधिक उग्र रूप से तपता है **तस्मात्** इसी कारण **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **बलिष्ठतमया वाचा शंसेत्** अत्याधिक ऊँची ध्वनि में शंसन करे। **यदि**

वाचः ईशीतः यदि (होता का) वाणी पर अधिकार हो तो **एवं शंसेत्** (जिस ध्वनि से तृतीयसवन का प्रारम्भ करता है) उसी प्रकार (वाली ध्वनि) से (सभी सवनों में) शंसन करे क्योंकि **वाग् हि शस्त्रम्** वाणी ही शस्त्र है अतः **उत्तरोत्तरिष्या** उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए **यया तु वाचा** जिस वाणी से **समापनाय उत्सहेत्** समापन के लिए समर्थ होवे, **तया एव प्रतिपद्येत्** उसी (ध्वनि) से ही प्रारम्भ करना चाहिए। **एतत् सुसस्ततमम् इव भवति** यह (शस्त्र का शंसन) अत्यधिक प्रशंसनीय होता है।

सा० भा०—'सः' होता 'एतमेव' आदित्यमनुसृत्य 'शस्त्रेण पर्यावर्त्तेत' यथा यथादित्य उत्तरोत्तराधिक्येन तपति, तथा तथैवोत्तरोत्तरध्वन्याधिक्येन होता शंसेत्। 'यदा वै' इत्यादिना तदेव स्पष्टीक्रियते। यस्मिन्नेव काल 'एषः' आदित्यः 'प्रातरुदेति' प्रातः-कालमभिव्यञ्जयितुमुदितो भवति, 'अथ' तदानीं 'मन्द्रम्' अल्पं यथा भवति तथा तपति; तस्मादादित्यमनुवर्तमानो होता प्रातःसवने 'मन्द्रमया' स्वल्पध्वन्युपेतया वाचा शंसेत्। 'अथ' प्रातःकालादूर्ध्वं सूर्यो 'यदाऽभ्येति' मध्याह्नकालं निष्पादयितुमाभिमुख्येनोर्ध्वं गच्छति, 'अथ' तदानीं सूर्यो 'बलीयः' प्रबलं यथा भवति तथा तपति, तस्माद्धोताऽपि 'बलीयस्या' प्रबलध्वनियुक्तया वाचा माध्यंदिने सवने शंसेत्। 'अथ' मध्याह्नादूर्ध्वं यदा सूर्यः 'अभितरामेति' पश्चिमाभिमुखानां पुरुषाणामत्यन्तमाभिमुख्येन गच्छति, 'अथ' इदानीमादित्यो 'बलिष्ठतमं तपति' मध्याह्नतापाद् अपि अत्यन्तप्रवलस्तापो भवति; भूमौ दिक्षु चोष्णत्वबाहुल्यात्। तस्मात् तदानीं होता माध्यंदिनसबनध्वनेरप्यधिकध्वनियुक्तया वाचा तृतीयसवने शंसेत्। यद्ययं होता वाचः 'ईशीत' ईश्वरो भवेत् तस्य वाक् यदि श्लेष्मादिदोषेण ध्वनेर्मान्द्यं न प्राप्नुयात्, तदानीं येन ध्वनिना तृतीयसवने प्रारम्भः कृतः, 'एवं' तेनैव ध्वनिना शंसेत्। किमर्थ ध्वन्याधिक्यमिति? तदुच्येत—यस्माद् 'वागेव शस्त्रं' वाङ्निष्पाद्यत्वात् तस्माद् 'यया तु' यादृशध्वनियुक्तयैव वाचा 'उत्तरोत्तरिण्या' उत्तरोत्तराभिवृद्धिभाजा 'समापनायोत्सहेत' शस्त्रं समापयितुमुत्साहवान् भवेत्। 'तया' तथाविधध्वन्युपेतया वाचा शस्त्रं 'प्रतिपद्यते' प्रारभेत,—न तु श्रान्त्या नीचध्वनिर्भवेत्। तदेतदुक्तलक्षणोपेतं शस्त्रं 'सुशस्ततममिव भवति' श्रुतिवैकल्यराहित्यन्तं शस्तमेव भवति।।

ननु तृतीयसवने त्वरामन्तरेण शनैः शंसेदिति पूर्वत्रोक्तं, तथा सति कालस्याल्पत्वने समापनात् प्रागेव सूर्योऽस्तमियात्? इत्याशङ्क्य वस्तुतोऽस्तमयाभावान्नास्ति दोष इत्यभिप्रेत्याह—

स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेति ।।६।।

हिन्दी—सः वा एषः वह यह (सूर्य) **न कदाचन अस्तम् एति** न तो कभी अस्त होता है और न **उदेति** न उगता ही है (अतः तृतीयसवन में सूर्य के अस्त होने की शंका से शीघ्रता नहीं करना चाहिए।

सा० भा०—'अस्तमयः' सूर्यस्वरूपनाशः, 'उदयः' सूर्योत्पत्तिः; न हि सूर्यस्य कदाचिदपि स्वरूपनाशोत्पत्ती विद्येते॥

कथं तर्हि जनानां सूर्यास्तमयव्यवहारः? इत्याशङ्क्याह—

तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते,-रात्रीमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तात् ॥७॥

हिन्दी—**तम्** उस (सूर्य) को **यद् अस्तम् एति** जो अस्त हो रहा है—**इति मन्यन्ते** ऐसा लोग मानते हैं **तद् अह्ने एव अन्तम् इत्वा** तो दिन में ही (अपने को) समाप्त करके **अथ आत्मानं विपर्यस्यते** तब अपने को विपर्यस्त करते हैं। इस प्रकार **अवस्थाद् रात्रीम् एव कुरुते** अतीत देश में रात्रि करते हैं और **परस्तात् अहः** आने वाले देश में दिन करते हैं।

सा० भा०—'यद्' यदा प्राणिनः सूर्योदयादूर्ध्वं यामचतुष्टयानन्तरं सूर्योऽस्तमेतीति 'तं' सूर्यमस्तमितं मन्यन्ते, 'तत्' तदानीं सूर्यस्तत्प्राणियुक्ते देशे प्रकाशरूपस्याह्न एव 'अन्तमित्वा'[१] समाप्तिं प्राप्य 'अथ' अनन्तरं स्वात्मानं विपर्यस्यते' विपर्यस्तं करोति। कथं विपर्यास इति? तदुच्यते—'अवस्ताद्' अतीते देशे रात्रिमेव कुरुते, 'परस्तात्' आगामिनि देशेऽहः कुरुते। अयमर्थः—मेरोः प्रदक्षिणं कुर्वन्नादित्यो यद्देशवासिनां प्राणिनां दृष्टिपथमागच्छति, तद्देशवाासिभिरयमुदेतीति व्यवह्रियते। यद्देशवासिनां प्राणिनां दृष्टिपथमागच्छति, तद्देशवासिभिरयमुदेतीति व्यवह्रियते। यद्देशवासिनां दृष्टिपथमतिक्रम्य सूर्ये गते सति सूर्योऽस्तमेतीति तद्देशवासिभिर्व्यवह्रियते। अतः तस्मिन् देशे रात्रिर्भवति। आदित्येन गन्तव्ये देशान्तरे तद्देशवासिभिः प्राणिभिः सूर्यस्य दृष्टत्वाद् अहर्भवति। एवं च सति सूर्यस्य विनाशरूपोऽस्तमयः कदाचिदपि नास्तीति सिद्धम्।

अनेनैव न्यायेन सूर्यस्य स्वरूपोत्पत्तिलक्षणोदयाभावं दर्शयति—

अथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते, रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवावस्तात् कुरुते रात्रिं परस्तात् ॥८॥

हिन्दी—(इस न्याय के अनुसार सूर्य के स्वरूप की उत्पत्ति रूप उदित होने के अभाव को दिखला रहे हैं—) **अथ एनं प्रातः उदेति** तो जो इस सूर्य को प्रातःकाल उगता है—**इति मन्यन्ते** ऐसा मानते हैं **तद् रात्रेः एव अन्तम् इत्वा** वह रात्रि को ही समाप्त करके **अथ आत्मानं विपर्यस्यते** तब अपने को विपर्यस्त करता है। **अवस्तात् अहः एव कुरुते** इस प्रकार वह (सूर्य) व्यतीत प्रदेश में दिन ही करते हैं और **परस्तात् रात्रिम्** अपने

---

(१) 'अह्नो दिनार्हत्रिंशन्नाडिकाख्यस्य कालस्यान्ते समाप्तौ। कित्वादगुणः। इत्वा गत्वा'–इति षड्गुरुशिष्यः।

आने वाले प्रदेश में रात्रि कुरुते करते हैं।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्॥

परमार्थतोऽस्तमयस्याभावं निगमयति—

स वा एष न कदाचन निम्रोचति ।।९।।

हिन्दी—(परमार्थ रूप से अस्तमय स्वभाव का निगमन कर रहे हैं—) **सः वै एषः** वह यह (सूर्य) **कदाचन** कभी भी **न निम्रोचति** अस्त नहीं होता है।

सा० भा०—निम्रोचनमस्तमयः। एतस्योपलक्षणत्वान्न कदाचिदुदेतीत्यपि द्रष्टव्यम्॥

वेदनं प्रशंसति—

न ह वै कदाचन निम्रोचत्येतस्य ह सयुज्यं सरूपतां सलोकतामश्नुते य एवं वेद, य एवं वेद ।।१०।।

हिन्दी— (इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) वह (सूर्य) **कदाचन** कभी भी **न निम्रोचति** अस्त नहीं होता, **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **एतस्य** इस सूर्य के **सायुज्यं सरूपतां सलोकताम्** सहवास, समानरूप और समान लोक को **अश्नुते** प्राप्त करता है।

सा० भा०—वेदितुरस्तमयाभावो नामापमृत्युराहित्यम्, इह जन्मनि तादृशो भूत्वा पश्चादेतस्यादित्यस्य सहवास-समानरूपत्व-समानलोकत्वानि प्राप्नोति। न च सहवासेनैव समानलोकत्वं सिध्यतीति वाच्यम्। कदाचिदपि स्वेच्छया पृथगवस्थानेऽपि तल्लोकभ्रंशो नास्तीति विवक्षया समानलोकत्वमुच्यते। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः चतुर्थाध्याये (चतुर्दशाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्दश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवाचार्यदेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य तृतीयपञ्चिकायाः चतुर्थोऽध्यायः (चतुर्दशोऽध्यायः) समाप्त ॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्दश अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयपञ्चिकायाम्

पञ्चमोऽध्यायः

[अथ पञ्चदशोऽध्यायः]

प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—अग्निष्टोमः सर्वयज्ञक्रतूनां योनित्वेनास्तूयत प्राक्परश्च ।
देवैः स्तोमैः संस्तुतो यश्चतुर्भिर्वाचां मन्दैर्मध्यमैरुत्तमैश्च ॥१॥

अथेष्टिसंस्थादिकं वक्तव्यम्; तत्र दीक्षणीयेष्टेः संस्थामाख्यायिकया दर्शयति—

(इष्टिसंस्थादिकथनम्)

(तत्र दीक्षणीयेष्टेः संस्थाया आख्यायिका)

यज्ञो वै देवेभ्योऽन्नाद्यमुदक्रामत्, ते देवा अब्रुवन्–यज्ञो वै नोऽन्नाद्यमुदक्रमीदन्विमं यज्ञमन्नमन्विच्छामेति; तेऽब्रुवन्–कथमन्विच्छामेति; ब्राह्मणेन च च्छन्दोभिश्चेत्यब्रुवंस्ते ब्राह्मणं छन्दोभिरदीक्षयंस्तस्यान्तं यज्ञमतन्वतापि पत्नीः समयाजयंस्तस्माद्ध्याप्येतर्हि दीक्षणीयायामिष्टावान्तमेव यज्ञं तन्वतेऽपि पत्नीः संयाजयन्ति, तमनुन्यायमन्ववायन् ॥१॥

हिन्दी—(अब इष्टिसंस्था इत्यादि को कहने के लिए दीक्षणीया इष्टि की संस्था के विषय में आख्यायिका को दिखला रहे हैं—) **अन्नाद्यं यज्ञः देवेभ्यः उदक्रामत्** अन्नाद्यरूप यज्ञ देवताओं से (किसी कारण) अपरक्त होकर निकल गया। **ते देवाः अब्रुवन्** उन देवताओं ने परस्पर कहा कि **अन्नाद्यं यज्ञः नः उदक्रमीत्** अन्नाद्यरूप में यज्ञ हम लोगों से निकलकर चला गया है, **इमम् अन्नं यज्ञम् अन्विच्छाम** हम लोग इस अन्नरूप यज्ञ का अन्वेषण करें किन्तु **ते अब्रुवन्** उन देवताओं ने कहा कि **कथम् अन्विच्छाम** हम लोग किस प्रकार खोजेगे? पुनः **अब्रुवन्** उन्होंने (निर्णय करके) कहा कि **ब्राह्मणेन छन्दोभिः च** (ऋत्विक् और यजमान रूप) ब्राह्मण और छन्दों द्वारा (उनको खोजें)। तब **ते** उन (देवताओं) ने **ब्राह्मणं छन्दोभिः दीक्षयन्** ब्राह्मण को छन्दों (दीक्षणीयेष्टि) द्वारा दीक्षित (संस्कृत) किया। यजमानरूप **तस्य यज्ञम्** उस (यजमान ब्राह्मण) के (दीक्षणीयेष्टिरूप) यज्ञ को **अन्तम् अतन्वत** समाप्तिपर्यन्त (उन देवताओं ने) सम्पादित किया **अथ पत्नीः समयाजयन्** और पत्नीयसंयाजा को भी सम्पादित किया। **तस्माद् ह** इस (देवताओं

द्वारा किये जाने) के कारण **एतर्हि दीक्षणीयायाम् इष्टौ अपि** इस दीक्षणीयेष्टि में भी **यज्ञम्** यज्ञ को **अन्तमेव तन्वते** समाप्ति-पर्यन्त ही सम्पादित किया जाता है, **अपि पत्नीः संयाजयन्ति** पत्नी संयाजकों को करते हैं। **तम् अनु न्यायम्** उस (देवताओं) के नियम का अनुसरण करते हुए **अन्ववायन्** (मनुष्यों ने भी) बाद में (उसका) सम्पादन किया है।

सा० भा०—पुरा कदाचिद् 'यज्ञः' ज्योतिष्टोमाख्यः केनापि निमित्तेनापरक्तः सन् 'देवेभ्यः' सकाशाद् 'उदक्रामन्' निष्क्रान्तवान्। तस्मिन्नुत्क्रान्ते तत्फलरूपम् 'अन्नाद्यम्' अप्युदक्रामत्। ततो देवाः परस्परमिदमब्रुवन्—यदेतदुभयमस्मदीयमुदक्रामीत् तदेतदुभयं सर्वत्र 'अन्विच्छाम' अन्वेषणं करवाम। तत्र कथमन्वेषणमित्युपायं विचार्य, ब्राह्मण-मृत्विग्यजमानरूपं, गायत्र्यादिच्छन्दांसि च तदन्वेषणोपायत्वेन निश्चित्य, तैश्छन्दोभिः 'ब्राह्मणां' यजमानम् 'अदीक्षयन्' दीक्षणीयेष्ट्या संस्कृतवन्तः। 'तस्य' ब्राह्मणस्य 'यज्ञं' दीक्षणीयेष्टिरूपम् 'अन्तं' समाप्तिपर्यन्तम् 'अतन्वत' विस्तारितवन्तः। तं यज्ञमनुष्ठाय 'पत्नीः' तन्नामिका देवता अपि[1] 'समयाजयन्' पत्नीसंयाजानुष्ठानमपि कृतवन्त इत्यर्थः। यस्मादेवं देवैः कृतम्, तस्मादेव कारणादिदानीमपि दीक्षणीयायामिष्टौ चोदकप्राप्तं यज्ञं समाप्तिपर्यन्तमनुतिष्ठन्ति। पत्नीसंयाजानप्यनु तिष्ठन्ति। उत्तरकालीनाङ्गव्यावृत्तये पत्नीसंयाजग्रहणम्। पत्नीसंयाजैरेव समाप्तिरित्यभिप्रेत्य 'अन्तम्' इत्युक्तम्। 'तं' देवैः कृतम् 'अनुन्यायम्' अनुक्रमगतमनुष्ठानम्, 'अनु' पश्चान्मनुष्या अपि 'अन्ववायन्' अवगतवन्तः, अनुष्ठितवन्त इत्यर्थः। 'तमनुन्यायम्'–इति वाक्यमुत्तरशेषत्वेन वा योज्यम्॥

दीक्षणीयेष्टेः पत्नीसंयाजेषु समाप्तिं दर्शयित्वा प्रायणीयेष्टेः शंयुवाके समाप्तिं दर्शयति—

(प्रायणीयेष्टेः शंयुवाकेन समाप्तिकथनम्)

ते प्रायणीयमतन्वत, तं प्रायणीयेन नेदीयोऽन्वागच्छंस्ते कर्मभिः समत्वरन्त, तच्छंय्वन्तमकुर्वंस्तस्माद्ध्याप्येतर्हि प्रायणीयं शंय्वन्तमेव भवति, तमनुन्यायमन्ववायन् ॥ २॥

हिन्दी—(दीक्षणीयेष्टि की पत्नी संयाजों में समाप्ति दिखला कर प्रायणीयेष्टि का शंयुवाक् में समाप्ति दिखला रहे हैं—) **ते प्रायणीयम् अतन्वत** उन (देवताओं) ने प्रायणीय इष्टि का विस्तार किया तथा **प्रायणीयेन** प्रायणीयेष्टि द्वारा **तं नेदीयः अन्वागच्छन्** उस (अग्निष्टोमरूप यज्ञ) की समीपता को प्राप्त किया (अर्थात् व्यवधानरहित प्रायणीयेष्टि का सम्पादन किया)। **ते** उन (देवताओं) ने **कर्मभिः** (प्रायणीयेष्टि के अङ्गभूत) कर्मों के द्वारा **समत्वरन्त** शीघ्रता किया तथा **तत् शंयु अन्तम् अकुर्वन्** उसको शंयुवाक् पर्यन्त समापन किया। **तस्मात्** इसी (देवताओं द्वारा किये जाने) के कारण **एतर्हि** इस समय भी **प्रायणीयं शंय्वन्तमेव भवति** प्रायणीयेष्टि शंयुपर्यन्त किया जाता है। **तम् अनुन्यायम्**

---

(१) निरु० १२.४.१०,११। निघ० ५.६.३१।

उस (देवताओं के) नियम के अनुसार **अन्ववायन्** (मनुष्यों ने भी) उसका सम्पादन किया।

सा० भा०—'ते' देवाः प्रायणीयाख्यं कर्मानुष्ठितवन्तः। 'प्रायणीयेन' कर्मणा 'तं' पूर्वोक्तं दीक्षणीयेष्टिरूपं ज्योतिष्टोमरूपं वा यज्ञं 'नेदीयः' अत्यन्तसमीपे यथा भवति तथैव 'अन्वगच्छन्' अनुष्ठितवन्तः। दीक्षणीयेष्टेरूर्ध्वं चिरं व्यवधानमकृत्वा प्रायणीयमनुष्ठितवन्त इत्यर्थः। 'ते' देवाः 'कर्मभिः' प्रायणीयेष्टेरूपैः 'समत्वरन्त' सम्यक् त्वरां कृतवन्तः। दीक्षणीयेष्टिवत् पत्नीसंयाजपर्यन्तं नान्वतिष्ठन्, किंतु त्वरां कृत्वा पत्नीसंयाजेभ्यः पूर्वमेव शंयुवाकपर्यन्तं कृत्वोपरताः। तस्माद्धेत्यादि पूर्ववत्॥

अथातिथ्येष्टेरन्तं दर्शयति—

(अतिथ्येष्टेः समापनकथनम्)

त आतिथ्यमतन्वत; तमातिथ्येन नेदीयोऽन्वागच्छंस्ते कर्मभिः समत्वरन्त; तदिळान्तमकुर्वंस्तस्माद्धाप्येतर्ह्यातिथ्यमिळान्तमेव भवति, तमनुन्यायमन्वन्यायन् ॥३॥

हिन्दी—(अब आतिथ्येष्टि के समापन को दिखला रहे हैं—) **ते आतिथ्यम् अतन्वत** उन (देवताओं) ने आतिथ्येष्टि का विस्तार किया। **आतिथ्येन तं नेदीयः अन्वागच्छन्** (उन देवताओं ने) आतिथ्येष्टि द्वारा उस (अग्निष्टोमरूप यज्ञ) की समीपता को प्राप्त किया। **ते कर्मभिः समत्वरन्त** उन (देवताओं) ने (आतिथ्येष्टि के अङ्गभूत) कर्मों द्वारा शीघ्रता किया और **तद् इडान्तम् अकुर्वन्** उस (आतिथ्येष्टि) को इडापर्यन्त समापन किया। **तस्मात्** इसी कारण **एतर्हि** इस समय भी **आतिथ्यम् इडान्तमेव भवति** आतिथ्येष्टि इडापर्यन्त होती है। **तम् अनुन्यायम्** उस (देवताओं) के नियम के अनुसार **अन्ववायन्** (मनुष्यों ने भी) उसे सम्पादित किया।

सा० भा०—अनुयाजेभ्यः पूर्वं यदिडोपाह्वानं, तदन्तमेवातिथ्येष्टिरूपं कर्म कृत्वोपरताः। अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्॥

अथोपसत्स्वनुष्ठेयं दर्शयति—

(उपसत्स्वनुष्ठेयकर्मकथनम्)

त उपसदोऽतन्वत; तमुपसद्भिर्नेदीयोऽन्वागच्छंस्ते कर्मभिः समत्वरन्त, ते तिस्रः सामिधेनीरनूच्य तिस्रो देवता अयजंस्तस्माद्धाप्येतर्ह्युपसत्सु तिस्र एव सामिधेनीरनूच्य तिस्रो देवता यजन्ति, तमनुन्यायमन्ववायन् ॥४॥

हिन्दी—(अब उपसद् में अनुष्ठेय कर्म को दिखला रहे हैं—) **ते उपसदः अतन्वत** उन (देवताओं) ने उपसद् का सम्पादन किया। **उपसद्भिः तं नेदीयः अन्वागच्छन्** उपसदों

के द्वारा उस (अग्निष्टोम रूप यज्ञ) की समीपता को प्राप्त किया। **ते कर्मभिः समत्वरन्त** उन (देवताओ) ने (उपसद् के अङ्गभूत) कर्मों के द्वारा शीघ्रता से सम्पादन किया। **ते तिस्रः सामिधेनीः अनूच्य** उन (देवताओं) ने तीन सामिधेनियों का अनुवाचन करके **तिस्र देवताः अयजन्** तीन देवताओं (अग्नि, सोम और विष्णु) का यजन किया। **तस्मात्** इस (देवताओं द्वारा किये जाने) के कारण **एतर्हि** आज भी **उपसत्सु** उपसदों में **तिस्रः एव सामिधेनीः अनूच्य** तीन सामिधेनियों का अनुवाचन करके ही **तिस्रः देवताः यजन्ति** तीन दवेताओं का यजन करते हैं। **तम् अनुन्यायम्** उसी नियम के अनुसार **अन्वयायन्** (मनुष्यों में भी) बाद में उस (उपसद्) को किया।

सा० भा०—तिस्रः सामिधेन्य आश्वलायनेन दर्शिताः—'उपसद्याय मीह्ळुष इति तिस्र एकैकां त्रिरनवानं ताः सामिधेन्यः'[१] इति। अग्निः सोमो विष्णुश्चेत्येतास्तिस्रो देवताः। स्पष्टमन्यत्॥

अथाग्नीषेमीयपशावनुष्ठेयं दर्शयति—

(आग्नीषोमीयपशावनुष्ठेयकर्मकथनम्)

त उपवसथमतन्वत; तमुपवसथ्येऽहन्याप्नुवंस्तमाप्त्वान्तं यज्ञमतन्वतापि पत्नीः समयाजयंस्तस्माद्धाप्येतर्ह्युपवसथ आन्तमेव यज्ञं तन्वतेऽपि पत्नीः संयाजयन्ति ।।५।।

हिन्दी—(अब अग्निषोमीय पशु में सम्पादित कर्म को दिखला रहे हैं—) **ते उपवसथम् अतन्वत** उन (देवताओं) ने उपवसथ (अग्नीषोमीयपशु) का विस्तार किया। **उपवसथ्ये अहनि** उपवसथ्य के दिन (सोमयाग के पूर्ववर्ती दिन) **तम् आप्नुवन्** उस (यज्ञ) को प्राप्त कर लिया। **तम् आप्त्वा** उस (यज्ञ) को प्राप्त करके **अन्तयज्ञम् अतन्वत** समाप्तिपर्यन्त यज्ञ का अनुष्ठान किया और **पत्नीः समयाजयन्** पत्नीसंयाज को किया। **तस्मात् ह** उस (देवताओं द्वारा किये जाने) के कारण ही **एतर्हि** अब भी **उपवसथे** (सोमयाग के एक दिन पहले) उपवसथ वाले दिन **आन्तमेव यज्ञं तन्वते** समाप्तिपर्यन्त (उपवसथ नामक) यज्ञ का सम्पादन किया जाता है, और **पत्नीः संयाजयन्ति** पत्नीसंयाज को करते हैं।

सा० भा०—उपवसथशब्देन सोमयागसमीपवासितत्वात् पूर्वस्मिन्नहन्यनुष्ठेयोऽग्नीषोमीयपशुर्विवक्षितः। 'तं' पशुं देवा 'उपवसथ्येऽहनि' सोमयागदिनात् पूर्वेद्युः 'प्राप्नुवन्' प्राप्तवन्तः। प्राप्य च 'तं यज्ञं' समाप्तिपर्यन्तमनुष्ठितवन्तः। पत्नीसंयाजानप्यन्वतिष्ठन्। दीक्षणीयेष्टिवत् पत्नीसंयाजान्तत्वमेव द्रष्टव्यम्। स्पष्टमन्यत्॥

उक्तास्विष्टिषु होतुरनुवचनस्य मन्द्रस्वरं विधत्ते—

(१) आश्व०श्रौ० ४.८.५, (६, ११)।

(पूर्वोक्तास्विष्टिषु होतुरनुवचनस्य मन्द्रस्वरत्वविधानम्)

तस्मादेतेषु पूर्वेषु कर्मसु शनैस्तरां शनैस्तरामिवानुब्रूयात् ।।६।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त इष्टियों में होता के अनुवाचन में मन्द्रस्वरता का विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** उस (अग्नीषोमीय से पहले होने वाले दीक्षणीयादि सत्रों) के कारण **एतेषु पूर्वेषु कर्मसु** इन पूर्ववर्ती कर्मों में **शनैस्तरां शनैस्तराम् इव** अत्यन्त नीची ध्वनि के समान **अनुब्रूयात्** (होता को) अनुवाचन करना चाहिए।

सा० भा०—यस्मादग्नीषोमीयात् पूर्वभावित्वेन उपक्रमरूपा दीक्षणीयादयः, 'तस्मात्' 'एतेषु पूर्वेषु' दीक्षणीयाद्युपसदन्तेषु कर्मसु 'शनैस्तरामिव' अत्यन्तनीचस्वरेणैव होताऽनुब्रूयात्।। अग्नीषोमीयपशौ होतुरनुवचनध्वनेरिच्छानुसारित्वं विधत्ते—

(अग्नीषोमीयपशौ स्वेच्छयानुवाचनम्)

अनूत्सारमिव हि ते तमायंस्तस्मादुपवसथे यावत्या वाचा कामयीत, तावत्याऽनुब्रूयादाप्तो हि सा तर्हि भवतीति ।।७।।

हिन्दी—(अग्नीषोमीयपशु के विषय में होता के अनुवाचन की इच्छानुसार ध्वनि का विधान कर रहे हैं—) **ते** उन (देवताओं) ने **तम्** उस (सोमयाग) को **अनूत्सारमिव** उत्तरोत्तर अनुसरण करके **आयन्** प्राप्त किया **तस्मात्** इसी कारण **उपवसथे** उपवसथ में **यावत्या वाचा कामयीत्** जिस वाणी (ध्वनि) से इच्छा करें **तावत्या अनुब्रूयात्** होता उतनी ही (ऊँची ध्वनि) से अनुवाचन करे। क्योंकि **तर्हि** उस (अग्नीषोमीय पशु) के समय **सः** वह (सोमयाग) **आप्तः भवति** प्राप्त होता है।

सा० भा०—'अनूत्सारम्' उत्तरोत्तरभावी सार उत्सारः, तमनुसृत्यानुसृत्येति तस्यार्थः। दीक्षणीयेष्टेः सारभूता प्रायणीयेष्टिः। तदपेक्षया सोमयागस्य समीपवर्तित्वात्। एवमातिथ्यादिषु द्रष्टव्यम्। ईदृशमुत्तरोत्तरसारमनुसृत्य 'ते' देवाः 'तं' सोमयागम् 'आयन्' प्राप्तवन्तः। तस्मादत्यन्तसारे 'उपवसथे' अग्नीषोमीये पशौ होता 'यावत्या' वाचा 'कामयीत' यावन्तमुच्चध्वनिमिच्छेत्, तावता ध्वनिनाऽनुवचनं कुर्यात्। 'तर्हि' तस्मिन्नग्नीषोमीयपशुकाले 'सः' सोमयागः प्राप्तो भवतीति होतुरभिप्रायः। लोकेऽप्यभीष्टे वस्तुनि बन्धौ वा चिरकालेन प्राप्ते जाते हर्षद्योतनायोच्चध्वनिना गानं कुर्वन्ति तद्वदत्रापि द्रष्टव्यम्।।

देवानां यज्ञप्राप्त्युपायमभिधाय अन्नाद्यप्राप्त्युपायं दर्शयति—

(देवानामन्नाद्यप्राप्त्युपायकथनम्)

तमाप्त्वाऽब्रुवंस्तिष्ठस्व नोऽन्नाद्यायेति; स नेत्यब्रवीत्, कथं वस्तिष्ठेयेति; तानीक्षतैव; तमब्रुवन्–ब्राह्मणेन च नश्छन्दोभिश्च सयुग् भूत्वाऽन्नाद्याय तिष्ठस्वेति; तथेति; तस्माद्धाप्येतर्हि यज्ञः सयुग्

भूत्वा देवेभ्यो हव्यं वहति, ब्राह्मणेन च च्छन्दोभिश्च।।८।।

हिन्दी—(देवताओं के यज्ञ-प्राप्ति के उपाय को कहकर अब अन्नाद्य की प्राप्ति का उपाय दिखला रहे हैं—) **तम् आप्त्वा** उस (ज्योतिष्टोम यज्ञ) को प्राप्त करके **अब्रुवन्** (देवताओं ने) कहा कि **नः अन्नाद्याय तिष्ठस्व** हमारे लिए अन्न की प्राप्ति के लिए रुको। **सः अब्रवीत् न इति** उस (यज्ञ) ने कहा कि नहीं। **कथं वः तिष्ठेय** कैसे मैं तुम लोगों के लिए रुकूँ। **तान् ईक्षत एव** (वह यज्ञ) उन पर अनुग्रह दिखलाने के लिए) उन (देवताओं) ने **तम् अब्रुवन्** (यज्ञ के अभिप्राय को जानकर) उस (यज्ञ) से कहा कि (हे यज्ञ)! **नः अन्नाद्याय भूत्वा** हमारे अन्न की प्राप्ति के लिए **ब्राह्मणेन छन्दोभिः सयुग्** (ऋत्विक् और यजमान रूप) ब्राह्मण और छन्दों के साथ स्थित होकर **तिष्ठस्व** रुके रहो। **तथेति** (तब यज्ञ ने स्वीकार करते हुए कहा कि) ठीक है। **तस्माद् ह** इसी कारण **एतर्हि** इस समय भी **यज्ञः ब्राह्मणेन छन्दोभिः सयुग् भूत्वा** यज्ञ (ब्राह्मण और छन्दों के) साथ स्थित होकर **देवेभ्यः हव्यं वहति** देवताओं के लिए हवि का वहन करता है।

सा०भा०—'ते' देवाः 'तं' ज्योतिष्टोमयज्ञं प्राप्येदमब्रुवन्—हे यज्ञ, 'नः' अस्माकम् अन्नाद्यसिद्ध्यर्थं 'तिष्ठस्व' स्थितिं कुर्विति। 'सः' यज्ञस्तद्वाक्यं निराकरोत्, अन्नाद्यनिष्पादकं[1] साधनमन्तरेण 'वः' युष्मदर्थं कथं स्थितः स्यामिति स्वाभिप्रायमब्रवीत्। तेष्वनुग्रहद्योतनाय 'तान्' देवान् 'ईक्षतैव' पश्यन्नेवास्ते, न तूपेक्षां कृतवान्। ततो देवा यज्ञस्याभिप्रायं ज्ञात्वा 'ते' देवास्तं यज्ञमिदमब्रुवन्, हे यज्ञ 'नः' अस्मदर्थं त्वत्साधनेन ऋत्विग्यजमानरूपेण ब्राह्मणेन तत्तन्मन्त्रगतैश्छन्दोभिश्च 'सयुग् भूत्वा' सहावस्थितो भूत्वा पश्चादन्नाद्याय 'तिष्ठस्व' अङ्गीकुर्विति। तथा यज्ञोऽप्यङ्गीचकार। यस्मादेवं तस्माद् इदानीमपि यज्ञो ब्राह्मणमन्त्रसहितो भूत्वा देवेभ्योऽन्नाद्यरूपं हविर्वहति॥

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (पञ्चदशाध्याये) प्रथमः खण्डः ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चदश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा०भा०—दीक्षणीयादिष्वग्नीषोमीयान्तेषु होतुर्ध्वनिविशेषं विधायान्ते ब्राह्मणेनर्त्विजा यज्ञनिष्पत्तिरित्युक्तम्; तत्र वर्ज्यब्राह्मणविशेषं दर्शयितुं प्रस्तौति—

(१) 'मम निष्पादकं' इति ऐ०सो० मुद्रितपाठः।

(यज्ञे वर्ज्यब्राह्मणविधानम्)

त्रीणि ह वै यज्ञे क्रियन्ते,–जग्धं गीर्णं वान्तम् ।।१।।

हिन्दी—(यज्ञ में वर्जनीय ब्राह्मण के विषय में विधान कर रहे हैं—) **जग्धं गीर्णं वान्तम्** जग्ध (भोजन पात्र में अवशिष्ट भोजन को खा लेने वाला), गीर्ण (निगल जाना) और वान्त (वमन किये हुए भोजन को खा लेना)–**त्रीणि** ये तीन (कार्य) **यज्ञे क्रियन्ते** यज्ञ में दुर्बुद्धि वाले लोगों द्वारा किया जाता है (अर्थात् यज्ञ में ये तीन कार्यवर्जनीय हैं)।

सा० भा०—'जग्धं'[१] भक्षितावशिष्टं भोजनपात्रे स्थितम्; 'गीर्णम्' उदरे प्रविष्टम्;। 'वान्तं' सकृदुदरे प्रविश्य पुनर्निर्गतम्; तान्येतानि 'त्रीणि' दुर्बुद्धिभिर्यज्ञे क्रियन्ते; जग्धादिस्थानीयादि त्रीणि वर्ज्यानीत्यर्थः।।

तत्र जग्धस्थानीयं दर्शयित्वा निषेधति—

(जग्धस्थानीयब्राह्मणनिर्देशनम्)

तद्धैतदेव जग्धं–यदाशंसमानमार्त्विज्यं कारयत उत वा मे दद्याद् उत वा मा वृणीतेति; तद्ध तत्पराङेव यथा जग्धं, न हैव तद् यजमानं भुनक्ति ।।२।।

हिन्दी—(उनमें से जग्धस्थानीय को दिखला कर उसका निषेध कर रहे हैं—) **उत वा मे दद्यात्** (यह यजमान) मुझको कुछ (धन) देगा अथवा **उत वा मा वृणीत** वह मुझ (प्रयोगाभिज्ञ) को वरण करेगा—**इति यदा आर्त्विज्यम् आशंसमाना कारयत्** इस प्रकार जब ऋत्विजत्व की कामना करते हुए (अपने को स्वयं ही) समर्पित करे तो **तद् एतद् एव जग्धम्** वह यह जग्ध है। **तद् ह तत्** उस (याग) में वह (लम्पट का ऋत्विक् होना) **पराङ् एव** उसी प्रकार निकृष्ट होता है **यथ जग्धम्** जिस प्रकार (लोक में) जूठा भोजन करने वाला। **तत्** उस प्रकार (वाला आर्तिजत्व) **यजमानं नैव ह भुनक्ति** यजन करने वाले का निश्चित रूप से पालन नहीं करता (क्योंकि यज्ञवैकल्य-दोष वाला हो जाता है)।

सा० भा०—कश्चिद्ब्राह्मण आर्त्विज्यम् 'आशंसते' कामयते। केनाभिप्रायेणेति? तदुच्यते—आर्त्विज्यार्थं यज्ञशालां मयि गते सति यजमानो 'मे' मह्यम् 'उत वा दद्यात्' किंचिद्धनं वा प्रयच्छेत् 'उत वा मा वृणीत' अथवा प्रयोगाभिज्ञं मां दृष्ट्वा त्वमार्त्विज्यं कुर्विति वृणीते 'इति' एवं धनार्जनलम्पटः सन्ननुष्ठानतात्पर्यरहितो निरन्तरमार्त्विज्यं कामयते। तादृशं कामयामानं पुरुषं यजमान आर्त्विज्यं कारयत इति यदस्ति, तदेव 'जग्धम्',–यथा लोके 'जग्धं' पात्रस्थितं भक्षितावशिष्टमुच्छिष्टत्वादितरैरस्पृश्यम्, तथा। 'तद्ध' तस्मिन्नेव

---

(१) जग्धमास्ये तु विक्षिप्तं गीर्णं स्याज्जठरे गतम्।
उदरस्थं छर्दितेन निष्क्रान्तं वान्तमुच्यते ।।—इति षड्गुरुशिष्यः।

यागे 'तत्' लम्पटस्यार्त्विज्यं 'पराङेव' निकृष्टमेव, 'तत्' तादृशमार्त्विज्यं यजमानं 'न भुनक्ति' न पालयति, यज्ञो विकलो भवतीत्यर्थः॥

गीर्णमुदाहृत्य निषेधति—

(गीर्णस्थानीयब्राह्मणनिर्देशनम्)

अथ हैतदेव गीर्णं,–यद् बिभ्यदार्त्विज्यं कारयत उत वा मा न बाधेतोत वा मे न यज्ञवेशसं कुर्यादिति; तद्ध तत्पराङेव यथा गीर्णं, न हैव तद् यजमानं भुनक्ति ।।३।।

हिन्दी—(अब गीर्ण को कहकर उसका निषेध कर रहे हैं—) **उत वा मा न बाधेत** यह मुझे मार न डाले **उत वा मे यज्ञवेशसं न कुर्यात्** अथवा मेरे यज्ञ में बाधा न डाले— **इति** इस प्रकार **विभ्यत् आर्त्विजं कारयते** डरता हुआ (यजन करने वाला ज्ञान से रहित व्यक्ति को) ऋत्विक् नियुक्त करता है, **एतदेव गीर्णम्** यही गीर्ण है। **तद् ह** उस (याग) में **तत् पराङ् एव** उस (ऋत्विक् का होना) उसी प्रकार निकृष्ट है **यथा गीर्णम्** जिस प्रकार (लोक में) गीर्ण (निगल कर खाना) है। **तद् यजमानं ह नैव भुनक्ति** वह (ऋत्विक्) यजमान का पालन नहीं करता है।

सा० भा०—यजमानो यस्मिन् ग्रामे यजते, तत्र कश्चिद् ब्राह्मणे 'ग्रामणीः' प्रभुर्भूत्वा प्रयोगकौशलरहितोऽवतिष्ठते। तमार्त्विज्ये वर्जयितुमयं यजमानो बिभेति। केनाभिप्रायेणेति? तदुच्यते—अयमत्र प्रभुर्मयि द्वेषं कृत्वा कालान्तरे मां बाधेत। अथवेदानीमेव 'यज्ञवेशसं' यज्ञविघातं कुर्यात्। तदुभयं मा भूदित्यनेनाभिप्रायेण तस्माद्भीतिं प्राप्नुवन्नार्त्विज्यं तेन प्रभुणा कारयत इति यदस्ति, तदेतद् 'गीर्णम्'—यथा लोके 'गीर्णम्' उदरस्थं पुनर्भोगयोग्यं न भवति, तथा। 'तद्ध' तस्मिन् यागे तद् गीर्णं भीतिमात्रप्रयुक्तमार्त्विज्यं 'पराङेव' निकृष्टमेव। 'तत्' तादृशं प्रयोगकौशलरहितेन प्रभुणा कृतमार्त्विज्यं यजमानं न पालयति॥

वान्तं दर्शयित्वा निषेधति—

(वान्तस्थानीयब्राह्मणनिर्देशनम्)

अथ हैतदेव वान्तं,–यदभिशस्यमानमार्त्विज्यं कारयते; यथा ह वा इदं वान्तान् मनुष्या बीभत्सन्त, एवं तस्माद् देवास्तद्ध तत्पराङेव यथा वान्तं, न हैव तद् यजमानं भुनक्ति ।।४।।

हिन्दी—(अब वान्त को दिखला कर उसका निषेध कर रहे हैं—) **यद् अभिशस्यमानम् आर्त्विजं कारयते** जो (प्रयोग में कुशल किन्तु किसी पापाचरण से निन्दित) अभिशस्त हुए को ऋत्विक् नियुक्त करता है तो **एतदेव वान्तम्** यह वान्त है। **यथा ह वै** जिस प्रकार **वान्ताद् मनुष्याः बीभत्सन्ते** वमन से मनुष्य लोग घृणा करते हैं **एवं तस्माद् देवाः** उसी

प्रकार उस (ऋत्विक्) से देवता लोग घृणा करते हैं। **तद् ह** उस (याग) में **तत् पराङ् एव** उस (ऋत्विक् का होना) उसी प्रकार निकृष्ट है **यथा वान्तम्** जिस प्रकार वान्त (वमन किये गये को पुनः खाना है)। **तद् यजमानं न ह एव भुनक्ति** वह (ऋत्विक्) यजन करने वाले का पालन नहीं करता है।

सा० भा०—कश्चित्पुरुषः प्रयोगकुशलोऽपि केनचित्पातित्यापवादेन सर्वैर्निन्द्यते, तादृशम् 'अभिशस्यमानं' यजमानः स्वकीयबन्धुत्वादिदाक्षिण्याभिमानेनापवादपरिहारार्थमार्त्विज्यं कारयत इति यदस्ति, तदेतद् 'वान्तम्'। तत्रेदं निदर्शनमुच्यते—यथा लोके मनुष्यः 'वान्ताद्'[१] 'बीभत्सन्ते' वान्तं दृष्ट्वा कश्मलमेतदिति निष्ठीवनं कुर्युः, एवं देवाः 'तस्माद्' अभिशस्यमानकृतार्त्विज्यात् सर्वे बीभत्सन्ते। ततो यथा लोके 'वान्तम्' अतिनिकृष्टं तथा तस्मिन् यज्ञे तदार्त्विज्यं निकृष्टम्। तच्च यजमानं सर्वथा न पालयति॥

वर्ज्यत्वेनोक्तं त्रिविधमुपसंहरति—

स एतेषां त्रयाणामाशां नेयात् ॥५॥

हिन्दी—(अब उपसंहार कर रहे हैं—) **सः** उस (यजन करने वाले) को **एतेषां त्रयाणाम्** इन तीनों (जग्ध, गीर्ण और वान्त के ऋत्विक् कर्म) की **आशां न इयात्** आशा नहीं करनी चाहिए।

सा० भा०—'सः' यजमान 'एतेषां' पूर्वोक्तानां धनलम्पटभयहेत्वभिशस्तानां त्रयाणामार्त्विज्यार्थं मनस्यपेक्षामपि न कुर्यात्॥

अथ प्रमादकृतस्य प्रायश्चित्तं दर्शयति—

(वर्ज्यब्राह्मणविषये कृतप्रमादस्य प्रायश्चितम्)

तं यद् एतेषां त्रयाणामेकंचिदकाममभ्याभवेत् तस्यास्ति वामदेव्यस्य स्तोत्रे प्रायश्चित्तिः ॥६॥

हिन्दी—(इन तीनों प्रकार के ऋत्विजों के विषय में प्रमाद हो जाने पर उसके प्रायश्चित्त को दिखला रहे हैं—) **यद् एतेषां त्रयाणाम्** यदि इन तीनों से **तम् एकंचित्** उस एक का भी **अकामम् अभ्याभवेत्** भूल से (ऋत्विक् के रूप में) वरण हो जाय तो **तस्य** उस विषय में **वामदेव्यस्य स्तोत्रे** वामदेव द्वारा दृष्ट स्तोत्र (साम 'कया नश्चित्र आभुवत्' इस तृच) में **प्रायश्चित्तिः अस्ति** प्रायाश्चित है।

सा० भा०—यदि कदाचित् 'एतेषां' धनलम्पटादीनां त्रयाणां मध्ये वर्तमानं तं पुरुषम् 'एकंचित्' एकमपि 'अकामम्' अबुद्धिपूर्वम् अभ्याभवेत् अभिलक्ष्यार्त्विज्यं भवेत्, तदानीं 'तस्य' वैकल्यस्य प्रायश्चित्तिरस्ति। कुत्रास्तीति, तदुच्यते—'वामदेव्यस्य स्तोत्रे'

---

(१) 'जुगुप्साविराम' पा०सू० १.४.२४ वा, इत्यपादानत्वम्।

वामदेवमहर्षिणा दृष्टं साम वामदेव्यं[१] कया नश्चित्र आभुवत्[२] इत्येतस्यामृच्युत्पन्नम्[३]। तच्च साम तृचे गायन्त उद्गातारः पृष्ठस्तोत्रमनुतिष्ठन्ति[४]। तत्र कश्चित्प्रयोगविशेषः प्रायश्चित्तिः॥

उक्तं साम प्रशंसति—

इदं वा इदं वामदेव्यं, यजमानलोकोऽमृतलोकः स्वर्गो लोकः ॥७॥

हिन्दी—(अब वामदेव साम 'कया नश्चित्र' की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यजमानलोकः अमृतलोकः स्वर्गलोकः** यजमान लोक (पृथिवीलोक), अमर लोक (मुक्तिलोक) और स्वर्ग लोक (देवलोक) **इदम्** यह लोक त्रय **इदं वामदेव्यम्** यह वामदेव्य (स्तोत्र) है।

सा० भा०—'यजमानस्य लोकः' पृथिवी। 'अमृतलोकः' मुक्तिपदम्। 'स्वर्गो' देवलोकः। 'इदं वै' उक्तलोकत्रयमिदं सर्वमपीदं 'वामदेव्यम्'। 'कया नश्चित्रः' इत्यास्यामृच्युत्पन्नमिदं समागानां प्रसिद्धं वामदेव्याख्यं साम॥[५]

तस्मिन् साम्नि कर्तव्यं प्रायश्चित्तप्रकारं दर्शयति—

तत् त्रिभिरक्षरैर्न्यूनं, तस्य स्तोत्र उपसृप्य त्रेधात्मानं विगृह्णीयात् पुरुष इति ॥८॥

हिन्दी—(उस स्तोत्र में किये जाने वाले प्रायश्चित के प्रकार को दिखला रहे हैं–) **तत्** वह (वामदेवस्तोत्र) **त्रिभिः अक्षरैः न्यूनम्** तीन अक्षरों से न्यून है। **तस्य स्तोत्रे** उस स्तोत्र के (गान के) समय **उपसृत्य** वहाँ जाकर **आत्मानं पुरुषः** आत्मवाचक 'पुरुष' **त्रेधा विगृह्णीयात्** तीन भगों में–(पु, रु, और ष, इस प्रकार) विभाजित कर लेना चाहिए (और तीनों अक्षरों को तृच के न्यून अक्षर वाले पादों में क्रमशः प्रक्षेप करके पाठ करना चाहिए)।

सा० भा०—'तद्' वामदेव्यं साम 'त्रिभिरक्षरैर्न्यूनम्'—'कया नश्चित्र' इत्यादिकस्तृचो गायत्रीछन्दस्कः; तस्य च च्छन्दसस्त्रिषु पादेषु प्रत्येकमष्टावक्षराण्यपेक्षितानि। 'अभी षु णः'[६], इत्येतस्यां तृतीयस्यामृचि यस्मात् प्रतिपादं सप्तैवाक्षराणि, अतस्त्रिभिरक्षरैर्न्यूनत्वम्।[७] 'तस्य' वामदेव्यस्य साम्नः संबन्धिनि 'स्तोत्रे' 'उपभृप्य' समीपं[८] प्रक्रम्य 'आत्मानं'

---

(१) 'वामदेवाड्ड्यड्यौ' इति पा० ४.२.९। (२) ऋ० ४.३१.१।

(३) छ०आ० २.२.३.५; गे०गा० ५.१.२५।

(४) उ०आ० १.१.१२.१-३; ऊ०गा० १.१.५। 'यो वै सत्रस्य सद्वेद सद्भवति वामदेव्यं वै साम्नां सद्'—इत्यादीनि च तद्ब्राह्मणवचनानि (ता०ब्रा० ४.८.१०)।

(५) गे०गा० ५.१.२५। (६) ऋ० ४.३१.१-३।

(७) तथा च ऋक्सर्वानुक्रमणी परि० ४.४, द्र० ४.३१।

(८) 'गानम्' इति ऐ० सो० मुद्रितपाठः।

स्ववाचकं 'पुरुषः' इति शब्दं 'त्रेधा विगृह्णीयात्' प्रत्यक्षरं विभज्यैकैकस्मिन् पादे प्रक्षिपेत्। तद्यथा—'अभी षु णः सखीनः पु, अविता जरितॄणां रु; शतं भवास्यूतिभिः षः' इति प्रक्षिप्य गायेत्॥[1]

उक्तप्रकारेणाऽऽर्त्विज्ये वैकल्यपरिहारं दर्शयति—

स एतेषु लोकेष्वात्मानं दधात्यस्मिन् यजमानलोकेऽस्मिन्नमृतलोकेऽस्मिन् स्वर्गे लोके सर्वा दुरिष्टिमत्येति ।।९।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त प्रकार से ऋत्विग्वरण में हुए दोष के परिहार को दिखला रहे हैं—) **अस्मिन् यजमानलोके** इस यजमान के लोक में, **अस्मिन् अमृतलोके** इस अमर लोक में और **अस्मिन् स्वर्गे लोके** इस स्वर्ग लोक में इस प्रकार **एतेषु लोकेषु** इन तीनों लोकों में **सः** वह (प्रायश्चित करने वाला) **आत्मानं दधाति** अपने को प्रतिष्ठित करता है तथा **सर्वा दुरिष्टिम् अत्येति** सम्पूर्ण दोष से सम्पन्न (यज्ञ) का अतिक्रमण कर जाता है।

सा० भा०—'सः' कृतप्रायश्चित्तो यजमानः 'एतेषु' लोकेषु स्वात्मानं स्थापयति। त एव त्रयो लोका अस्मिन्नित्यादिना स्पष्टीक्रियन्ते। 'सः' यजमानः सर्वा दुरिष्टिं[2] दोषोपेतं यज्ञम् 'अत्येति' अतिक्रामति।

एवं नैमित्तिकमक्षरत्रयप्रक्षेपं विधाय नित्यप्रयोगेऽपि तं विधत्ते—

अपि यदि समृद्धा इव ऋत्विजः स्युरिति ह स्माहाथ हैतज्जपेदेवेति ।।१०।।

हिन्दी—(इस प्रकार प्रायश्चित के प्रयोजनवशात् तीन अक्षरों के प्रक्षेप का विधान करके अब नित्यप्रयोग में भी उसका विधान कर रहे हैं—) **अपि यदि समृद्धा इव ऋत्विजः स्युः** और यदि ऋत्विक् समृद्ध (अर्थात् पूर्वोक्त जग्ध इत्यादि दोषों से रहित) भी हो **अथ एतद् जपेद् एव** तो भी इसका (प्रक्षेप करके) जप करना चाहिए—**इति ह स्म आह** ऐसा ऋषि ने कहा है।

सा० भा०—होत्रादयः 'ऋत्विजः' यद्यपि 'समृद्धा इव' धनलाभपट्वादिपूर्वोक्तवैकल्यरहिता एव स्युः, तथापि 'एतत्' पुरुष इत्यक्षरत्रयं स्तोत्रे जपेदेवेत्यैतरेयो मुनिराह स्म॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (पञ्चदशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चदश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) उ०आ० १.१.१२.३। (२) 'दुरिष्टिं दुष्टर्त्विग्गाननिमित्तं दोषम्'—इति षड्गुरुशिष्यः।

अथ तृतीयः खण्डः

सा॰भा॰—पूर्वत्र यज्ञो ब्राह्मणेन च्छन्दोभिश्च सयुग् भूत्वा हव्यं बहतीत्युक्तम्; तत्र ब्राह्मणयुक्तो वक्तव्यविशेषोऽभिहितः; अथ च्छन्दःप्रयुक्तं विशेषमाह—

(देविकानां पञ्चहविषां निर्वपनविधानम्)

छन्दांसि वै देवेभ्यो हव्यमूढ्वा श्रान्तानि जघनार्धे यज्ञस्य तिष्ठन्ति, यथाऽश्वो वाऽश्वतरो वोहिवांस्तिष्ठेदेवं तेभ्य एतं मैत्रावरुणं पशुपुरोळाशमनु देविका हवींषि निर्वपेत् ।।१।।

हिन्दी—(ब्राह्मणयुक्त वक्तव्यविशेष को कह कर अब छन्दप्रयुक्त विशेष को कह रहे हैं—) **देवेभ्यः हव्यं ऊढ्वा** देवताओं के लिए हविष् का वहन करके **छन्दांसि श्रान्तानि** श्रान्त हो गये। छन्द **यज्ञस्य जघनार्धे** यज्ञ के पिछले आधे भाग में **तिष्ठन्ति** उसी प्रकार स्थिर हो गये **यथा** जिस प्रकार **ऊहिवान्** भार वहन करने हुए **अश्वः वा अश्वतरः वा** अश्व अथवा अश्वतर (खच्चर) **तिष्ठेत्** (श्रान्त होकर) रुक जाता है। **एवं** इसी प्रकार **तेभ्यः** उन (श्रान्त छन्दों) के लिए **एतं मैत्रावरुणम्** इस मित्र और वरुण (संयुक्त) देवता से सम्बन्धित **पशुपुरोडाशम् अनु** पशु से सम्बन्धित पुरोडाश के बाद **देविका हवींषि निर्वपेत्** (श्रम-परिहार के लिए यज्ञ के अन्त में) देविका नामक हविषों का निर्वपन करना चाहिए।

सा॰भा॰—गायात्र्यादीनि 'च्छन्दांसि' 'देवेभ्यो हव्यमूढ्वा' देवार्थं हव्यवहनं कृत्वा श्रमं प्राप्य यज्ञस्य 'जघनार्धे' पश्चिमभागे क्वचित्तूष्णीं तिष्ठन्ति। यथा लोके कश्चिदश्वो वा, गर्दभाश्वसांकर्येण जातो 'अश्वतरो' वा 'ऊहिवान्' भारवहनं कृतवान् सन् दूरदेशे वहनेन श्रान्तस्तिष्ठेत्, एवमेतानि च्छन्दांस्यपि; 'तेभ्यः' श्रान्तेभ्यः श्रमपरिहारार्थं हवींषि निर्वपेत्।[1] 'देविकाः' इति तेषां हविर्विशेषाणां नाम। कस्मिन् काले निर्वाप इति, तदुच्यते—यज्ञस्यावसाने योऽयं 'पशुः' अनूबन्ध्याख्यः पशुबन्धः तस्य पशोः सम्बन्धी मित्रावरुणदेवताको यः पुरोडाशः, तम् 'अनु' तस्मिन्ननुष्ठिते पश्चान्निर्वपेत्।।

तत्र प्रथमं हविर्विधत्ते—

(तत्र प्रथमहविर्विधानम्)

धात्रे पुरोळाशं द्वादशकपालं, यो धाता स वषट्कारः ।।२।।

हिन्दी—(उनमें प्रथम हवि का विधान कर रहे हैं—) **धात्रे द्वादशकपालं पुरोडाशम्**

(१) 'पशुपुरोडाशममन्वनूबन्ध्यस्य देविका हवींषि निर्वपति यजप्रैषाणि'—इति कात्या॰श्रौ॰ १८.६.२०।

धाता के लिए द्वादशकपाल वाले पुरोडाश का (निर्वाप करना चाहिए) क्योंकि **यः धाता** जो धाता (नामक देवता) है **सः वषट्कारः** वह वषट्कार रूप है।

सा० भा०—धातृनाम्ने देवाय द्वादशसु कपालेषु संस्कृतं 'पुरोळाशं' निर्वपेत्। योऽयं धातृनामको देवः, स वषट्कारस्वरूपः; तेन पुरोळाशेन वषट्कारदेवतायाः श्रमोऽपगच्छति॥

द्वितीयं हविर्विधत्ते—

(द्वितीयहविर्विधानम्)

अनुमत्यै चरुं याऽनुमतिः सा गायत्री ।।३।।

हिन्दी—(द्वितीय हवि का विधान कर रहे हैं—) **अनुमत्यै चरुम्** अनुमति (चतुर्दशी से मिश्रित पूर्णिमा) के लिए चरु (प्रदान करना चाहिए), क्योंकि **या अनुमतिः** जो अनुमति (नामक देवता) है **सा गायत्री** वह गायत्रीरूप है।

सा० भा०—'कलाहीने साऽनुमतिः पूर्णे राका निशाकरे'[१] इत्यभिधानाच्चतुर्दशीमिश्रा पूर्णिमा 'अनुमति'-शब्दवाच्या।[२] तदभिमानिन्या देवताया अपि तदेव नाम। तस्याश्चानुमतेर्गायत्रीरूपत्वात् तदीयः श्रमोऽपगच्छति॥

तृतीयं हविर्विधत्ते—

(तृतीयहविर्विधानम्)

राकायै चरुम्, या राका सा त्रिष्टुप् ।।४।।

हिन्दी—(तृतीय हवि का विधान कर रहे हैं—) **राकायै चरुम्** राका के लिए चरु (प्रदान करना चाहिए) क्योंकि **या राका** जो राका (नामक देवता है) **सा त्रिष्टुप्** वह त्रिष्टुप् रूप है।

विमर्श—(१) निरुक्त के अनुसार अनुमती और राका–ये दो देवपत्नियाँ है किन्तु याज्ञिकों ने इन्हें पूर्णमासी का पूर्व और उत्तर भाग माना है। पूर्णमासी का पूर्वभाग अनुमती और उत्तर भाग राका है। (द्र०–नि० ११.३.१०)।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्॥

चतुर्थपञ्चमे हविषी विधत्ते—

(चतुर्थपञ्चमयोः हविर्विधानम्)

सिनीवाल्यै चरुं, या सिनीवाली सा जगती; कुह्वै चरुं, या कुहूः

---

(१) अमरकोश १.४.८।

(२) अनुमती राकेति देवपत्न्याविति नैरुक्ताः, पौर्णमास्याविति याज्ञिकाः। या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा राकेति विज्ञायते—इत्यादि निरु० ११.३.१०।

साऽनुष्टुप् ।।५।।

हिन्दी—(चतुर्थ और पञ्चम हवि का विधान कर रहे हैं—) **सिनीवाल्यै चरुम्** सिनीवाली के लिए चरु (प्रदान करना चाहिए) क्योंकि **या सिनीवाली** जो सिनीवाली है **सा जगती** वह जगतीरूप है। **कुह्वै चरुम्** कुहू के लिए चरु (देना चाहिए) क्योंकि **या कुहूः** जो कुहू है **सा अनुष्टुप्** वह अनुष्टुप् रूप है।

विमर्श—(१) निरुक्तकार ने सिनीवाली और कुहू को भी देवपत्नियाँ माना है किन्तु याज्ञिकों ने अमावास्या के पूर्वभाग को सिनीवाली और उत्तरभाग को कुहू कहा है। (द्र०-नि० ११.३.१०)।

सा० भा०—'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः'[1] इति अमावास्या-द्वैविध्यमभिहितम्।[2] तदभिमानिदेवतायास्तदेव नामेति पूर्ववद् योजनीयम्।।

इतरेषां छन्दसां कथं श्रमपरिहार इत्याशङ्क्य सर्वेषामन्येषामुक्तच्छन्दोऽनुवर्तित्वात्। तावतैव श्रान्तिपरिहार इत्यभिप्रेत्याह—

एतानि वाव सर्वाणि च्छन्दांसि, गायत्रं[3] त्रैष्टुभं जागतमानुष्टुभमन्व-न्यान्येतानि हि यज्ञे प्रतमामिव क्रियन्ते ।।६।।

हिन्दी—(अन्य सभी छन्दों का गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् छन्दों के अनुवर्ती होने के कारण इन्हीं के द्वारा श्रान्ति-परिहार हो जाने को कह रहे हैं—) **एतानि वै सर्वाणि छन्दांसि** इतने ही सभी छन्द हैं; क्योंकि **अन्यानि** अन्य छन्द **गायत्रं त्रैष्टुभं जागतम् आनुष्टुभम् अनु** गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् का अनुगमन करते हैं। **अतः तानि** वे ही (गायत्री इत्यादि) **यज्ञे** यज्ञ में **प्रतमाम् इव क्रियन्ते** प्रचुरता के साथ प्रयोग किये जाते हैं।

सा० भा०—'एतानि' एव गायत्र्यादीनि चत्वारि सर्वच्छन्दोरूपाणि, 'अन्यानि' उष्णि-गादीनि गायत्र्यादिकमनुसृत्यैव वर्त्तन्ते। यस्मादेतानि चत्वारि यज्ञप्रयोगे 'प्रतमामिव' प्राचुर्याति-शयेनैव 'क्रियन्ते' प्रयुज्यन्ते, तस्माद् एतदनुसारित्वम् इतरेषां युक्तम्।।

उक्तार्थवेदनपूर्वकमनुष्ठानं प्रशंसति—

एतैर्ह वा अस्य च्छन्दोभिर्यजतः सर्वैश्छन्दोभिरिष्टं भवति य एवं वेद।।७।।

---

(१) अमरकोश १.४.९।

(२) 'सिनीवाली कुहूरिति देवपत्न्याविति नैरुक्ताः, अमावास्ये इति याज्ञिकाः। या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली, योत्तरा सा कुहूरिति विज्ञायाते'—इत्यादि निरु० ११.३.१०। द्र० ऐ०ब्रा० ७.२.१०।

(३) सुधाया ह वै वाजी सुहितो दधातीत्यग्निर्वाव वाजी।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थ के ज्ञान के साथ अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **एतैः ह छन्दोभिः यजतः** इन्हीं छन्दों से यजन करते हुए **अस्य** इस (यजन करने वाले) का **सर्वैः छन्दोभिः इष्टं भवति** सभी छन्दों द्वारा अनुष्ठान सम्पन्न हो जाता है।

सा० भा०—'एतैः' गायत्र्यादिभिः 'सर्वैः' उष्णिगादिभिः॥

विद्वत्प्रसिद्ध्या छन्दांसि प्रशंसति—

(विद्वत्प्रसिद्ध्या छन्दसां प्रशंसनम्)

तद्धै यदिदमाहुः,–सुधायां ह वै वाजी सुहितो दधातीति[1] च्छन्दांसि वै तत्सुधायां ह ्या एनं छन्दांसि दधति ॥८॥

हिन्दी—(विद्वानों में प्रसिद्धि के कारण से छन्दों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तद्धै यद् इदम् आहुः** तो जो वे यह कहते हैं कि **सुहितः** सम्यक् प्रकार से अनुष्ठित और **वाजी** अन्न से युक्त (ज्योतिष्टोम) **सुधायां ह वै दधाति** (यजन करने वाले को) अमृतरूप (स्वर्ग) में प्रतिष्ठापित करता है, **इति तत् छन्दांसि** यह छन्द (के ही विषय में कहा गया) है। क्योंकि **छन्दांसि ह वै** छन्द ही **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **सुधायां दधति** स्वर्ग में प्रतिष्ठापित करते हैं।

सा० भा०—वाजोऽन्नं हविर्लक्षणम्, तद्युक्तो ज्योतिष्टोमो 'वाजी', स च 'सुहितः' सम्यगनुष्ठितः 'सुधायाम्' अमृते स्वर्गे दधाति यजमानं स्थापयतीति शेषः। अनेन प्रकारेण 'तद्धै' तस्मिन्नेव यज्ञप्रतिपादके शास्त्रे 'यदिदं' वचनमभिज्ञा आहुः तत्तु 'च्छन्दांसि वै' तद्वचनं यथोक्तगायत्र्यादिच्छन्दांस्येवाभिलक्ष्योक्तम्। यस्माच्छन्दांसि 'एनं' यजमानं 'सुधायां' स्वर्गे स्थापयन्ति[2] तस्माच्छन्दोभिप्रायेणैतद्वचनं युक्तम्॥

वेदनं प्रशंसति—

अननुध्यायिनं लोकं जयति य एवं वेद ॥९॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **अननुध्यायिनं लोकं जयति** मन से भी न ध्यान करने योग्य (जानने योग्य) लोक को जीत लेता है।

सा० भा०—मनसाऽनुध्यातुमनर्हमित्यपूर्वं सुखोपेतं लोकं प्राप्नोति॥

अत्र कंचित्पूर्वपक्षमुद्भवयति—

---

(१) छन्दसः प्रत्ययविधाने नपुंसके स्वार्थे उपसंख्यानम्'—इत्यण् (पा०सू० ४.२.५५ वा०) तमेव तत् प्रीणाति; स एनं प्रीतः प्रीणाति वसीयान् भवति'—इति तै०सं० ५.५.१०.७।

(२) 'सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्'—इति अथर्व० १७.१.७।

तद्धैक आहुर्धातारमेव सर्वासां पुरस्तात् पुरस्तादाज्येन परियजेत् तदासु सर्वासु मिथुनं दधातीति ।।१०।।

हिन्दी—(इस विषय में यहाँ पूर्वपक्ष की उद्भावना कर रहे हैं—) **तद् ह एके आहुः** इस (छन्दों के श्रमपरिहार के लिए दिये गये पाँच हवियों) के विषय में कुछ लोग कहते हैं कि **सर्वासां पुरस्तात् पुरस्तात्** (अनुमति इत्यादि) सभी (स्त्री देवताओं की आहुति से) पहले **धातारमेव** धाता को ही **आज्येन** घृत द्वारा **परियजेत्** एक-एक आहुति देना चाहिए। तत् इस (धाता की आहुति) से **आसु सर्वासु** इन अनुनति (इत्यादि) सभी में **मिथुनं दधाति** मिथुन को सम्पादित करता है।

सा० भा०—'तद्ध' तस्मिन्नेव च्छन्दसां श्रमपरिहारार्थे हविष्पञ्चके केचित्पूर्वपक्षिण एवमाहुः—'सर्वासाम्' अनुमत्यादीनां स्त्रीदेवतानां पुरस्तात् पुरुषदेवतारूपं धातारमेवाज्य-द्रव्येण परितो यजेत्। सर्वसंग्रहार्थं पुरस्तादिति वीप्सा।[१] 'तत्' तेन सर्वत्र धातृविषयप्रयोगेण 'आसु' 'सर्वासु' स्त्रीदेवतासु मिथुनं संपादयति।।

तमिमं पूर्वपक्षं दूषयति—

तदु वा आहुर्जामि वा एतद् यज्ञे क्रियते, यत्र समानीभ्यामृग्भ्यां समानेऽहन् यजतीति ।।११।।

हिंन्दी—(उस पूर्वपक्ष को दूषित कर रहे हैं—) **तदु वै आहुः** इस विषय में कुछ लोग कहते हैं कि **यज्ञे एतद् जामि वै क्रियते** यज्ञ में यह विलम्ब ही किया जाता है। **यत्र** जिस (यज्ञ) में **समाने अहन्** एक ही दिन में **समानीभ्याम् ऋग्भ्याम् यजति** एक समान ऋचाओं (याज्या और अनुवाक्या) से यजन करता है।

सा० भा०—'तदु वै' तत्रैव पूर्वोक्तविषये केचिदभिज्ञा एवमाहुः,—'यत्र' यस्मिन् प्रयोगे 'समानीभ्याम्' एकविधाभ्यामृग्भ्यां 'समानेऽहन्' एकस्मिन्नेवाहनि यजति, 'तदेतत्' अनुष्ठानं यज्ञे 'जामि वै' आलस्यमेव 'क्रियते' संपाद्यते। प्रयुक्तयोरेवर्चोः पुनः प्रयोगस्य चर्वितचर्वणसदृशत्वेनानुचितत्वात्। धातृदेवताके प्रथमे पुरोडाशे 'धाता ददातु दाशुषे' इति पुरोनुवाक्या।[२] 'धाता प्रजानाम्' इति याज्या[३]। तत्र यद् उपरितनानामपि चतुर्णां हविषां पुरस्तादाज्येन धातारं यजेत् तदानीमिदमृग्द्वयं पुनरपि चतुर्वारम् आवर्तनीयम्। तथा सति नीरसो यज्ञः फलं दातुं समर्थो भवेदित्यर्थः।।

कथं तर्हि मिथुनसिद्धिः स्यादित्याशङ्क्य लौकिकदृष्टान्तेन तत्सिद्धिमुपपादयति—

यदि ह वा अपि बहव्य इव जायाः पतिर्वाव तासां मिथुनं, तद्यदासां

---

(१) 'नित्यवीप्सयोः'—पा०सू० ८.१.४ इति, द्विर्वचनम्।

(२-३) इमे ऋचावन्यशाखीये इत्याश्वलायनेन पठिते—द्र० आश्व०श्रौ० ६.१४.१६।

धातारं पुरस्ताद् यजति, तंदासु सर्वासु मिथुनं दधाति ।।१२।।

हिन्दी—(लौकिक दृष्टान्त द्वारा मिथुन की सिद्धि को उपपादित कर रहे हैं—) **यदि ह वै अपि बहव्यः इव जायाः** यद्यपि (लोक में) जिस प्रकार अनेक पत्नियाँ होती हैं तथापि **पतिः वाव तासां मिथुनम्** पति (अकेला होते हुए) उन सभी (पत्नियों) का मिथुन (बनाता है) **तत्** तो **यद् धातारं पुरस्ताद् यजति** जो धाता का पहले यजन करता है **तत्** उससे **आसु सर्वासु** इन सभी (देवपत्नियों) में **मिथुनं दधाति** मिथुन ही बनाता है।

सा० भा०—'यदि ह वा' यद्यपि लोक 'जाया बह्व्य इव' बहुसंख्याका एव स्युः, तथाऽपि 'पतिर्वाव' पतिरेक एव सन् तासां मिथुनं संपादयति। तथा सति यदि 'आसाम्' अनुमत्यादीनां पुरस्ताद् 'धातारं' सकृदेव यजति, तदानीम् 'आसु सर्वासु' अनुमत्यादिषु स एक एव धाता मिथुनं संपादयति।[१]

वक्ष्यमाणैर्हविर्भिः सांकर्यशङ्कां वारयितुमुक्तार्थं विविच्य निगमयति—

इति नु देविकानाम् ।।१३।।

हिन्दी—**इति नु देविकानाम्** इस प्रकार देविका (नामक स्त्री देवताओं) की (हवि का विवेचन समाप्त हुआ)।

सा० भा०—अनेनोक्तप्रकारेण देविकाभिधानां देवतानां हवींष्युक्तानीति शेषः॥[२]

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (पञ्चदशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चदश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—हविरन्तराणि प्रतिजानीते—

(देवीनां पञ्चहविषां निर्वपनविधानम्)

अथ देवीनाम् ।।१।।

---

(१) (i) देविका निर्वपेत्'—इत्यादि च तै०सं० ३.४.९।

(ii) पुरुषो बहुभार्योऽपि करोत्यासु हि मैथुनम्।
तद्वद्धातानमृत्यादिचतुष्के मैथुनं चरेत्॥ इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) 'यद्यनूबन्ध्ये पशुरुरोडाशमनु देविका हवींषि निर्वपेयुः;—धाताऽनुमती राका सिनीवाली कुहूः'—इति आश्व०श्रौ० ६.१४.१५। 'अनुमतिराकासिनीवालीकुहूभ्यश्चरवो धात्रे द्वादशकपालः सर्वहुतः'—इति कात्या०श्रौ० १८.६.२१।

हिन्दी—(अब अन्य देवी नामक देवताओं के हविष् को कह रहे हैं—) **अथ देवीनाम्** अब (अन्य) देवी (नामक देवताओं) के (हविष् को कहा जा रहा है)।

सा० भा०—'अथ' अनन्तरं 'देवीनां' देवीनामिकानां देवतानाम्, हवींषि निर्वपेदिति शेषः।।

तत्र प्रथमं हविर्विधत्ते—

(तत्र प्रथमहविर्विधानम्)

सूर्याय पुरोळाशमेककपालम्–यः सूर्यः स धाता, स उ एव वषट्कारः[१]।।२।।

हिन्दी—(उनमें प्रथम हविष् का विधान कर रहे हैं—) **सूर्याय** सूर्य के लिए **एककपालं पुरोडाशम्** एक कपाल वाले पुरोडाश को (निर्वपित करना चाहिए) क्योंकि **यः सूर्यः** जो सूर्य है **सः धाता** वह धाता है और **सः उ एव वषट्कारः** वही वषट्कार है।

सा० भा०—'एककपालं' निर्वपेदिति शेषः। सूर्यस्य पूर्वोक्तं धातृस्वरूपत्वम्, तद्द्वारा वषट्काररूपत्वं चोपचर्यं तदीयश्रमापनयो द्रष्टव्यः।।

उक्तानि चत्वारि हवींषि विधत्ते—

(हविश्चतुष्टयविधानम्)

दिवे चरुं,–या द्यौः साऽनुमतिः, सो एव गायत्र्युषसे चरुं, योषाः सा राका, सो एव त्रिष्टुब्, गवे चरुं,–या गौः सा सिनीवाली, सो एव जगती; पृथिव्यै चरुं,–या पृथिवी सा कुहूः, सो एवानुष्टुप् ।।३।।

हिन्दी—(अब उक्त चार हविषों का विधान कर रहे हैं—) **दिवे चरुम्** द्यौ के लिए चरु (देना चाहिए) क्योंकि **या द्यौ** जो द्यौ है **सा अनुमतिः** वह अनुमति है और **सः एव गायत्री** वही गायत्री है। **उषसे चरुम्** उषा के लिए चरु (प्रदान करना चाहिए)। क्योंकि **या उषा** जो उषा है, **सा राका** वह राका है और **सः एव त्रिष्टुप्** वही त्रिष्टुप् है। **गवे चरुम्** गो के लिए चरु (देना चाहिए) क्योंकि **या गौः** जो गाय है, **सा सिनीवाली** वह सिनीवाली है और **सः एव जगती** वही जगती है। **पृथिवी चरुम्** पृथिवी के लिए चरु (प्रदान करना चाहिए) क्योंकि **या पृथिवी** जो पृथिवी है, **सा कुहूः** वह कुहू है और **सः एव अनुष्टुप्** वही अनुष्टुप् है।

सा० भा०—प्रथमहविर्वद् व्याख्येयम्।।

---

(१) तथा च शत०ब्रा०—'ता वा एता देव्यो दिशो ह्येताश्छन्दांसि देव्योऽथ कः प्रजापतिस्तद्यद् देव्यश्च कश्च तस्माद् देविकाः'—इति ९.५.१.३९।

एतेषां हविषां प्रशंसार्थं पूर्वोक्तम् एव अर्थवादं पुनरपि पठति—

एतानि वाव सर्वाणि च्छन्दांसि,–गायत्रं त्रैष्टुभं जागतमानुष्टुभमन्वन्यान्येतानि हि यज्ञे प्रतमामिव क्रियन्ते; एतैर्ह वा अस्य च्छन्दोभिर्यजतः सर्वैश्छन्दोभिरिष्टं भवति य एवं वेद; तद्वै यदिदमाहुः,–सुधायां ह वै वाजी सुहितो दधातीति, च्छन्दासि वै तत्सुधायां ह वा एनं छन्दांसि दधत्यननुध्यायिनं लोकं जयति य एवं वेद; तद्धैक आहुः,–सूर्यमेव सर्वासां पुरस्तान् पुरस्तादाज्येन परियजेत्, तदासु सर्वासु मिथुनं दधातीति, तदु वा आहुः–जामि वा एतद् यज्ञे क्रियते, यत्र समानीभ्यामृग्भ्यां समानेऽहन् यजतीति, यदि ह वा अपि बह्व्य इव जायाः पतिर्वाव तासां मिथुनं तद् यदासां सूर्य पुरस्ताद् यजति, तदासु सर्वासु मिथुनं दधाति ।।४।।

हिन्दी—(इन हविषों की प्रशंसा के लिए पूर्वोक्त अर्थवाद को पुनः कह रहे हैं–) **एतानि वाव सर्वाणि छन्दांसि** इतने ही सभी छन्द हैं; क्योंकि **अन्यानि एतानि हि** जो ये अन्य छन्द है वे **गायत्रं त्रैष्टुप् जागतम् आनुष्टुभम् अनु** गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् का ही अनुगमन करते हैं, वे (गायत्री इत्यादि) ही **यज्ञे** यज्ञ में **प्रतमाम् इव क्रियन्ते** प्रचुरता से प्रयोग किये जाते हैं। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है उस **एतैः ह छन्दोभिः यजतः अस्य** इन छन्दों से ही यजन करते हुए इस (यजन करने वाले) का (यज्ञ) **सर्वैः छन्दोभिः इष्टं भवति** सभी छन्दों द्वारा अनुष्ठित होता है। **तद्वै यद् इदम् आहुः** उस विषय में कुछ लोग यह कहते हैं कि **सुहितः** अच्छी प्रकार से सम्पादित **वाजी** अन्न से सम्पन्न (ज्योतिष्टोम) **सुधायां वै दधाति** अमरलोक (स्वर्ग) में ही प्रतिष्ठित करता है। **छन्दांसि वै तत्** वह छन्दों को (लक्षित करके कहा गया है)। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है। **एनम्** इस (जानने वाले) को **तत् छन्दांसि** वे छन्द **सुधायां दधति** स्वर्गलोक में स्थापित करते हैं और वह **अननुध्यायिनं लोकं जयति** मन से भी अचिन्त्य लोक को प्राप्त करता है। **तद् ह एके आहुः** इस विषय में कुछ लोग कहते हैं कि **सर्वासां पुरस्तात् पुरस्तात्** सभी (द्यौ इत्यादि) के पूर्व-पूर्व **सूर्यमेव आज्येन परियजेत्** (पुरुष देवता रूप) सूर्य को ही घृत से आहुति देना चाहिए। **तत्** उससे **आसु सर्वासु** इस सभी (स्त्री देवताओं) का **मिथुनं दधाति** मिथुन बनाता है। **तदु वै आहुः** उस विषय में अन्य लोग कहते हैं कि **यज्ञे एतद् जामि क्रियते** यज्ञ में यह आलस्य ही किया जाता है। **यत्र** जिस (यज्ञ) में **समाने अहन्** एक ही दिन में **समानीभ्याम् ऋग्भ्याम्** ऋचाओं के समान युगल (याज्या और अनुवाक्या) द्वारा **यजति** यजन करता है। **यदि ह वै अपि** यद्यपि (लोक में) **बह्वयः इव जायाः** बहुत सी पत्नियाँ होती है तथापि **पतिः तासां मिथुनम् दधाति**

पति उन (सभी) का मिथुन बनाता है। **तत्** तो **आसां पुरस्तात्** इन (द्यौ इत्यादि सभी) के पहले **सूर्यं यजति** सूर्य को आहुति देता है **तत्** उससे **आसु सर्वासु** इन (द्यौ इत्यादि) सभी का **मिथुनं दधाति** मिथुन बनाता है।

सा० भा०—धातारमित्येतस्य स्थाने सूर्यमित्येतावानेव विशेषः। अन्यत् सर्वं पूर्ववत्॥

देविकानाम्नां देवीनाम्नां च हविषां तुल्यं सामर्थ्यमभिप्रेत्य विकल्पं दर्शयति—

ता या इमास्ता अमूर्या अमूस्ता इमा अन्यतराभिर्वाव तं काममाप्नोति य एतासूभयीषु ।।५।।

हिन्दी—(देविका नाम वाली और देवी नाम वाली हविषों के समान सामर्थ्य को जानकर विकल्प को दिखला रहे हैं—) **ताः याः इमाः** वे (देवी नाम से कहे गये) जो ये हैं **ताः अमूः** वे (पूर्वोक्त) ये (धाता इत्यादि देविका) है और **याः अमू** वे जो (पूर्वोक्त देविका) है **ताः इमाः** वे ये (देवियाँ) है। **अन्यतराभिः वाव** (इस प्रकार दोनों में एकत्व होने के कारण) किसी एक से ही **तं कामम् आप्नोति** उस कामना को प्राप्त करता है, **यः एतासु उभयीषु** जो इन दोनों से (प्राप्त होता है)।

सा० भा०—'ताः' देवीनाम्ना प्रसिद्धाः 'इमाः' इदानीमुक्ताः 'सूर्याय पुरोडाशम्' इत्यादायो याः सन्ति, 'ताः अमूः' प्राक्तनग्रन्थेनोक्ताः 'धात्रे पुरोडाशम्' इत्यादयो देविकाः। एवं देवीरुद्दिश्य देविकातादात्म्यमुक्तम्। अथ देविका उद्दिश्य देवीतादात्म्यमुच्यते—या 'अमूः' पूर्वत्रोक्ता देविकाः सन्ति, ताः 'इमाः' इदानीमुक्ता देव्यः। एवमन्योन्यतादात्म्ये सति यः काम एतासूभयविधासु लभ्यते, 'तं' कामम् 'अन्यतराभिर्वाव' एकविधाभिरेव प्राप्नोति। तस्माद् विकल्पेन प्रयोग इत्यर्थः॥

अथ नैमित्तिकं समुच्चयं विधत्ते—

(प्रजाकामस्य समुच्चयविधानम्)

ता उभयीर्गतश्रियः प्रजातिकामस्य संनिर्वपेत् ।।६।।

हिन्दी—(अब नैमित्तिक समुच्चय का विधान कर रहे हैं—) **गतश्रियः प्रजातिकामस्य** गतश्री वाले (यजन कर्त्ता) की सन्तानोत्पत्ति की कामना होने पर **सा उभयी** उस दोनों (देविका और देवी हविषों) का **संनिर्वपेत्** निर्वाप करना चाहिए।

सा० भा०—अनूचानादीनां मध्ये कश्चिद् 'गतश्रीः'। तथा च श्रुत्यन्तरे श्रूयते—'त्रयो वै गतश्रियः, शुश्रुवान्, ग्रामणीः, राजन्यः'[१] इति। तादृशो गतश्रीर्यदि 'प्रजाति' प्रजोत्पादनसामर्थ्यं

---

(१) तै०सं० २.५.४.४। (i) 'शुश्रुवान्—वेदतदर्थयोः श्रुतवान् ग्रामणीः—वैश्य परिवृढः, राजन्यः—श्रोत्रियः'—इति, 'गता प्राप्ता श्रीर्येन स गातश्रीः'—इत्यादि चाह रुद्रदत्तः (आप०श्रौ० १.१४.९) द्र० वृत्तिः।

कामयते, तदानीं तस्य 'ताः' देविका देवीश्च 'उभयीः' 'संनिर्वपेत् समुच्चित्य निर्वपेत्॥

धनकामस्य समुच्चयं निषेधति—

(धनकामस्य समुच्चयनिषेधः)

न त्वेषिष्यमाणस्य ॥७॥

हिन्दी—(धन की कामना वाले के लिए दोनों के निर्वापों का निषेध कर रहे हैं–) **न तु एषिष्यमाणस्य** धन की कामना करने वाले (यजमान) के लिए (दोनों का निर्वाप नहीं करना चाहिए)।

सा० भा०—धनमपेक्षमाणस्य[1] तु नैव संनिवपेत्। उभयविधानां समुच्चित्य निर्वापो न कार्यः॥

विपक्षे बाधकं दर्शयति—

यदेना एषिष्यमाणस्य संनिर्वपेद् ईश्वरो हास्य वित्ते देवा अरन्तोर्यद्वा अयमात्मनेऽलममंस्तेति ॥८॥

हिन्दी—(विपक्ष में बाधा को दिखला रहे हैं—) **एषिष्यमाणस्य** धन की इच्छा करने वाले के लिए **यद् एना संनिर्वपेत्** यदि इन दोनों (देविका और देवी हविषों) का निर्वाप करे तो **अस्य वित्ते** इसके धन के प्रति **देवाः अरन्तोः ईश्वरः** देवता रमण करने में समर्थ नहीं होते, **यद्वै** क्योंकि **अयम्** यह (यजमान) **आत्मने** अपने लिए ही **अलम् अमंस्त** सम्पूर्ण धन की कामना करता है।

सा० भा०—वित्तमेषिष्यमाणस्य यदि 'एनाः' उभयीः समुच्चित्य निर्वपेत् तदानीम् 'अस्य' धनकामस्य वित्ते देवाः सर्वेऽस्ति 'अरन्तोः' ईश्वरः, 'अरन्तुम्'[2] अक्रीडितुं समर्था भवन्ति; एतदपेक्षितं वित्तं द्विषन्तीत्यर्थः। तत्र हेतुरुच्यते,—'यद्वै' यस्मादेव कारणादयं धनार्थी 'आत्मने' स्वार्थमेव 'अलममंस्त' संपूर्ण वित्तं मनसा ध्यातवान्, धनलोभेन यागादिषु प्रवृत्तत्वात्; एतदपेक्षिते धने देवानां द्वेषो युज्यते॥

धनकामस्य समुच्चयं निषिध्य प्रजाकामस्य पूर्वत्र विहितं समुच्चयमर्थवादेन प्रशंसति—

(ii) 'गता प्राप्ता श्रीर्येनासौ गतां श्रीर्यमिति वा'—इति च याज्ञिकदेवः (कात्या०श्रौ० ४.१३.५) द्र० वृत्तिः। द्र० शाङ्खा०श्रौ० २.६.५।

(iii) 'साङ्गोपाङ्गचतुर्वेदयुक्तो विप्रस्तु शुश्रुवान्। वृत्तवान् कोटिसारश्च ग्रामणीर्वैश्य-जातिकः॥ नृपोऽभिषिक्तो निर्लोभो राजन्य इति ते त्रयः'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(१) 'एषिष्यमाणः संतोषरहितो धनवानपि। इषेर्लृट्। शतुश्शानच् मुक्। स्य इट्। गुणः—इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) वित्ते धने। अरन्तोः रतिम् अकर्तुम्। 'ईश्वरे तोसुन्' (पा०सू० ३.४.१२)—इति षड्गुरुशिष्यः।

ता ह शुचिवृक्षो गौपालायनो वृद्धद्युम्नस्याभिप्रतारिणस्योभयीर्यज्ञे संनिरुवाप; तस्य ह रथगृत्सं गाहमानं दृष्ट्वोवाचेत्थमहमस्य राजन्यस्य देविकाश्च देवीश्चोभयीर्यज्ञे सममादयं; यदस्येत्थं रथगृत्सो गाहत इति चतुःषष्टि कवचिनः शश्वद्धास्य ते पुत्रनप्तार आसुः ।।१।।

हिन्दी—(धन की कामना वाले के लिए दोनों निर्वापों का निषेध करके सन्तोत्पादन के लिए दोनों के निर्वाप के समुच्चय की अर्थवाद द्वारा प्रशंसा कर रहे हैं—) **शुचिवृक्षः गौपालायनः** (समीचीन पुष्प और फलों से सम्पन्न आश्रम वाले) शुचिवृक्ष (गायों का पालन करने वाले) गोपालायन के पुत्र गौपालायन ने **वृद्धद्युम्नस्य आभिप्रतारिणस्य** वृद्धद्युम्न आभिप्रतारिण (नामक रजा) के **यज्ञे** यज्ञ में **ता उभयी सन्निरुवाप** उस दोनों (देविका और देवी हविषों के लिए पुरोडाश) का निर्वाप किया। **तस्य** उस (वृद्धद्युम्न नामक राजा) के (पुत्र) **रथगृत्सम्** रथगृत्स को **गाहमानं दृष्ट्वा** (जल में) तैरते हुए देखकर **उवाच** (ऋषि गौपालायन ने) कहा कि **इत्थम्** ऐसा इसलिए है कि **अहम्** मैंने **अस्य राजन्यस्य** जो इस (वृद्धद्युम्न नामक) राजा के यज्ञ में **देविकाः च देवीः च उभयी** देविका और देवी दोनों (हविषों) को **सममादयम्** सम्पादन करके प्रसन्न किया था **यद्** जिस के अनुग्रह से **इत्थम्** इस प्रकार **रथगृप्सः** यह रथगृप्स **गाहते** जल में तैर रहा है। **अस्य** इस (वृद्धद्युम्न) के **चतुःषष्टि पुत्रनप्तारः कवचिनः** चौंसठ कवचधारी पुत्र और पौत्र थें, **ते कवचिनः** वे कवच धारण किये हुए **शश्वद् आसुः** निरन्तर (युद्ध करने के लिए उद्यत) रहते थे।

सा०भा०—'शुचयः' शुद्धाः समीचीनपुष्पफला वृक्षाः यस्य महर्षेराश्रमे सन्ति, सोऽयं शुचिवृक्षनामकः। सम्यक्तृणोदकप्रदानेन गोशुश्रूषां करोतीति गोपालायननामा कश्चिदृषिः, तस्यापत्यं 'गौपालायनः' पूर्वोक्तनामकः शुचिवृक्षः। 'वृद्धं' प्रभूतं 'द्युम्नं' धनं यस्य राज्ञः सोऽयं 'वृद्धद्युम्नः' अभितः शत्रून् प्रकर्षेण 'तरति' निराकरोतीति 'अभिप्रतारी' कश्चिद्राजा, तस्य पुत्र 'आभिप्रतारिणः' पूर्वोक्तो वृद्धद्युम्नः। तस्य राज्ञो यज्ञे देविका देवीश्चोभयीः 'इत्थम्' अनेन शास्त्रोक्तप्रकारेण 'सममादयम्' समुच्चित्य मादितवानस्मि, समुच्चयानुष्ठानेन तत्तद्देवता हर्षितवानस्मि। तत्प्रसादादयं 'रथगृत्सः' राजपुत्रः क्रीडार्थं जले गाहते, इति। न केवलं शुचिवृक्षेण दृष्टो रथगृत्स एवैकः, किन्तु चतुःषटिसंख्याकाः 'शश्वत्कवचिनः' सर्वदा युद्धार्थमुद्यताः शूराः। 'अस्य' वृद्धद्युम्नस्य राज्ञः 'ते' तथावयस्का एव पुत्राः पौत्राश्च आसुः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (पञ्चदशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ।।४।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चदश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—ज्योतिष्टोमस्तावत् 'सप्तसंस्थः' समाप्तिभेदात् सप्तविधः, 'अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त संस्थाः'[१]–इति आश्वलायनेन अभिहित्वात्। तत्राग्निष्टोमसाम्ना यज्ञायज्ञीयाख्येन यत्र समाप्तिः, सोऽयं प्रथमरूपोऽग्निष्टोमः। स सर्वोऽपि पूर्वत्रोक्तः। अथोक्थ्यसंस्थारूपो ज्योतिष्टोमो वक्तव्यः; तदर्थमाख्यायिकामाह—

(उक्थसंस्थारूपस्याग्निष्टोमस्य विधातुमाख्यायिका)

अग्निष्टोमं वै देवा अश्रयन्तोक्थान्यसुरास्ते समावद्वीर्या एवासन् न व्यावर्तन्त, तान् भरद्वाज ऋषीणामपश्यदिमे वा असुरा उक्थेषु श्रितास्तानेषां न कश्चन पश्यतीति सोऽग्निमुदह्वयत् ।।१।।

हिन्दी—(उक्थ संस्थारूप अग्निष्टोम के कथन के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **अग्निष्टोमं देवाः** अग्निष्टोम का देवताओं ने और **उक्थानि असुराः** उक्थों (स्तोत्र और शस्त्रों) का असुरों ने **अश्रयन्त** आश्रय लिया। **ते समावद् वीर्याः एव आसन्** वे (देवता और असुर) समान बल वाले ही थे, अतः **न व्यावर्तन्त** वे अलग नहीं किये जा सके। **तान्** उन (दोनों) को **ऋषीणां भरद्वाजः अपश्यत्** ऋषियों में भारद्वाज (ऋषि) ने देखा कि **इमे वै असुराः** ये असुर लोग निश्चित रूप से **उक्थेषु श्रिताः** उक्थों में आश्रित हैं और **तान्** उन (असुरों) को **एषाम्** इन (देवो और ऋषियों) में से **कश्चन न पश्यति** कोई भी नहीं देख पा रहा है। **सः अग्निम् उदह्वयत्** तब उस (ऋषि भारद्वाज) ने (असुरों के निराकरण के लिए) अग्नि को उच्च ध्वनि से आहूत किया।

सा० भा०—यदा देवा अग्निष्टोममाश्रितवन्तः, तदानीमसुरा अप्युक्थनामकानि स्तोत्राणि शस्त्राणि चाश्रित्यावस्थिताः। ततश्च 'ते' देवाश्चासुराश्च यज्ञे तुल्यवीर्या एवासन्, न तु देवाः शौर्याधिक्येन व्यावृत्तिं प्राप्ताः। तदानीमृषीणां मध्ये सूक्ष्मदर्शी भरद्वाजः 'तान्' असुरान् रहस्युक्थपरानपश्यत्। दृष्ट्वा चैवमुवाच—'इमे' रहस्यवस्थिता 'असुरा उक्थेषु' स्तोत्रशस्त्रेष्वाश्रिताः; 'तान्' असुरान् 'एषां' देवानामृषीणां च मध्ये न कोऽपि पश्यतीति। तथोक्तं स भरद्वाजोऽसुरनिराकरणार्थं केनचिन्मन्त्रेणाग्निम् 'उदह्वयद्' उच्चध्वनिनाह्वानं कृतवान्।।

तमिमं मन्त्रं दर्शयति—

'एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः'–इति ।।२।।

हिन्दी—(उस आह्वान करने वाले मन्त्र को दिखला रहे हैं—) **अग्ने** हे अग्ने! **एहि**

---

(१) आश्व०श्रौ० ६.११.१।

यहाँ आओ। **ते सु ब्रवाणि** तुम्हारे शोमन कर्मों को मैं कह रहा हूँ **इतराः गिरः** (उन देवों से) अन्य वाणी (असुरों की वाणी) **इत्था** इस प्रकार है।

सा० भा०—हेऽग्न ! एह्यू' आगच्छैव 'ते' तव 'सु ब्रवाणि' शोभनं कार्यं कथयानि। 'इतराः' देववाक्यार्थव्यतिरिक्ताः 'गिरः' असुरावाचः 'इत्था' इत्थमनेन प्रकारेण, श्रुत्यन्तरादिति शेषः।।

अस्मिन् मन्त्रे[१] इतराशब्दार्थं दर्शयति—

असुर्या ह वा इतरा गिरः ।।३।।

हिन्दी—(मन्त्र में प्रयुक्त इतरा शब्द के अर्थ को दिखला रहे हैं—) **असुर्याः ह वै इतरा गिरः** इतरा वाणी असुरों की है।

सा० भा०—असुरेभ्यो हिता 'असुर्याः', ताश्च गिरः देववाक्यादितराः, देवविरोधिन्यः—इत्यर्थः।।

तथाऽग्निवाक्यं दर्शयति—

(अग्निवाक्यकथनम्)

सोऽग्निरुपोत्तिष्ठन्नब्रवीत् किंस्विदेव मह्यं कृशो दीर्घः पलितो वक्ष्यतीति ।।४।।

हिन्दी—(अब अग्नि के कथन को दिखला रहे हैं—) **सः अग्निः उपोतिष्ठन् अब्रवीत्** उस अग्नि ने उठते हुए कहा कि **मह्यम्** मेरे लिए **कृशः दीर्घः पलितः** कृशकाय, लम्बे और भूरे बालों वाले (ऋषि) **किंस्विद् वक्ष्यति** क्या कहना चाह रहे है?

सा० भा०—भरद्वाजोनाहूतो योऽयमग्निः 'सोऽग्निः' तत्समीपं प्रत्यागन्तुमुत्तिष्ठन्नेवमब्रवीतम्—मह्यम्' अग्नये स ऋषिः 'किंस्विदेव' किंनाम वक्ष्यतीति। 'कृशो दीर्घः पलितः इत्यृषिविशेषणानि।।

तानि च स्पष्टीकरोति—

(भरद्वाजर्षेः स्वरूपवर्णनम्)

भरद्वाजो ह वै कृशो दीर्घः पलित आस ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त कथन को स्पष्ट कर रहे हैं—) **भारद्वाजः वै** भारद्वाज ही **कृशः दीर्घः पलितः आस** कृशकाय, लम्बे और भूरे बालों वाले थे।

सा० भा०—स्पष्टोऽर्थः।।

किंस्वित् पलितो वक्ष्यतीत्यग्निना पृष्ठस्य भरद्वाजस्योत्तरं दर्शयति—

---

(१) ऋ० ६.१६.१।

(भरद्वाजस्योत्तरकथनम्)

सोऽब्रवीदिमे वा असुरा उक्थेषु श्रितास्तान् वो न कश्चन पश्यतीति ।।६।।

हिन्दी—(अग्नि द्वारा पूछे जाने पर भारद्वाज द्वारा दिये गये उत्तर को दिखला रहे हैं—) **सः अब्रवीत्** उस (भारद्वाज) ने (अग्नि से) कहा कि **इमे असुराः** ये असुर लोग **उक्थेषु श्रिताः** उक्थों में आश्रय लिये हुए हैं। **तान्** उन (असुरों) को **वः कश्चन** तुम (देवताओं) से कोई भी **न पश्यति** नहीं देख रहा है।

सा० भा०—'सः' भरद्वाजोऽग्निं प्रत्येवमब्रवीत्–'इमे वा' इत्यादि पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

अथोक्थस्तोत्रस्य साधनभूतं 'साकमश्व' नामकं साम यदस्ति, तदयं नाम निर्वक्ति—

(साकमश्वनामसाम्नो निर्वचनम्)

तानग्निरश्वो भूत्वाऽभ्यत्यद्रवत्, यदग्निरश्वो भूत्वाऽभ्यत्यद्रवत्, तत्साकमश्वं सामाभवत्, तत्साकमश्वस्य साकमश्वत्वम् ।।७।।

हिन्दी—(अब उक्थस्तोत्र के साधनभूत 'साकमश्व' नामक साम के नाम का निर्वचन कह रहे हैं—) तब **अग्निः अश्वः भूत्वा** अग्नि अश्व होकर **तान् अभि** उन (असुरों) को अभिलक्षित करके **अत्यद्रवत्** (उनके पीछे) तेजी से दौड़े। **यद् अग्निः अश्वः भूत्वा** जो अग्नि अश्व होकर **अभि अत्यद्रवत्** असुरों को लक्ष्य करके उनके पीछे तेजी से दौड़े, **तत् साकमश्वम्** वह साकमश्व (नामक) **साम अभवत्** साम हो गया है। **तत् साकमश्वस्य** वह साकमश्व (नामक साम) का **साकमश्वत्वम्** साकमश्वत्व (साकमश्व नाम वाला होना) है।

सा० भा०—सोऽग्निर्भरद्वाजस्योत्तरं श्रुत्वा तत ऊर्ध्वं स्वयमश्वाकारो भूत्वा 'तान्' असुरान् 'अभि' लक्ष्य अत्यद्रवद् अतिशयेनागच्छत्। असुराणामुपरि वेगवन्तमात्मरूपमश्वं प्रवर्त्यासुरान् मारितवान् इत्यर्थः। यस्मान् स्वयमश्वाकारो भूत्वा तैरसुरैः साकं युद्धं कृत्वा जितवान्, तस्मादेतद् वृत्तान्तसूचनाय प्रवृत्तायाम् 'एह्यू षु ब्रवाणि ते'–इत्यादिकायामृचि[१] उत्पन्नस्य साम्नः[२] साकमश्वमिति नाम संपन्नम्।[३]

तस्य साम्न उक्थस्तोत्रनिष्पादकत्वं विधत्ते—

(साकमश्वनामसाम्न उक्थस्तोत्रनिष्पादकत्वविधानम्)

तदाहुः साकमश्वेनोक्थानि प्रणयेदप्रणीतानि वाव तान्युक्थानि यान्यन्यत्र साकमश्वादिति ।।८।।

---

(१) छ०आ० १.१.१.७।　　　(२) गे०गा० १.१.१४।

(३) नामविधि: आर्षेय ब्रा० १.२१।

हिन्दी—(उस साकमश्व नामक साम की उक्थस्तोत्रता का विधान कर रहे हैं-) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ लोग) कहते हैं कि **साकमश्वेन उक्थानि प्रणयेत्** साकमश्व (नामके साम) से उक्थों का प्रारम्भ करना चाहिए। **यानि साकमश्वाद् अन्यत्र** जो साकमश्व (नामक साम) से अन्य से (प्रारम्भ किये गये) **उक्थानि** उक्थ हैं **तानि अप्रणीतानि वाव** वे प्रणयन (प्रारम्भ) नहीं किये गये ही होते हैं।

सा० भा०—'तत्' तत्र साकमश्वविषये प्रयोगाभिज्ञा एवम् आहुः—साकमश्वनामकेन साम्ना स्तोत्राण्युक्थनामकानि प्रणयेत्[१] साकमयश्वाद् अन्यत्र सामान्तरेण यान्युक्थानि स्तोत्राणि प्रणीयन्ते, तान्यप्रणीतान्येव भवन्ति। तस्मादिदमेव सामोक्थस्तोत्रनिष्पादकम्॥[२]

पक्षान्तरं विधत्ते—

(तत्र पक्षान्तरविधानम्)

प्र मंहिष्ठीयेन प्रणयेदित्याहुः, प्र मंहिष्ठीयेन वै देवा असुरानुक्थेभ्यः प्राणुदन्त ॥९॥

हिन्दी—(इस विषय में अन्य पक्ष को कह रहे हैं—) **प्र मंहिष्ठीयेन प्रणयेत्** प्र मंहिष्ठीय ('प्र मंहिष्ठाय गायत' इस ऋचा में साम) से आरम्भ करना चाहिए—**इत्याहुः** ऐसा कुछ लोग कहते हैं; क्योंकि **प्र मंहिष्ठीयेन देवाः** देवताओं ने 'प्र मंहिष्ठीय' के द्वारा **उक्थेभ्यः असुरान् प्राणुदन्त** उक्थों से असुरों को निराकृत कर दिया था।

सा० भा०—'प्र मंहिष्ठाय गायत' इत्यस्यामृचि[३] उत्पन्नं साम 'प्र मंहिष्ठीयम्'[४] तेन साम्नोक्थस्तोत्राणि[५] निष्पादयेत्। उक्थेष्वाश्रितानसुरान् देवा एतेन साम्ना उक्थेभ्यो निराकृतवन्तः॥

उभयोः साम्नोरैच्छिकं विकल्पं दर्शयति—

(उभयोः साम्नोरैच्छिकत्वविकल्पः)

तत्प्राहैव प्रमंहिष्ठीयेन नयेत् प्र साकमश्वेन ॥१०॥

हिन्दी—(दोनों सामों के विषय में ऐच्छिक विकल्प को दिखला रहे हैं—) **तत् प्राह** इस विषय में (ऐतरेय ऋषि) कहते हैं कि **प्र मंहिष्ठीयेन नयेत्** प्रमंहिष्ठीय से प्रारम्भ करे अथवा **साकमश्वेन** साकमश्व (नामक साम) से (ये दोनों पक्ष हैं)।

---

(१) उ०आ० १.१.२१.१-३। ऊ०गा० १.१.१५।

(२) 'तस्मात् साकमश्वेनोक्थानि प्रणयन्ति'—इत्यादि विधायकं ब्राह्मणम्, (ता०ब्रा० ८.८)।

(३) छ०आ० २.१.२.१। (४) गे०गा० ३.१.२६।

(५) उ०आ० २.२.१७.१,२। ऊ०गा० २.२.५। नामविधिः—आ०ब्रा० १.१३। विधायकं ब्राह्मणम्—ता०ब्रा० १२.६।

सा० भा०—'अह'-इत्ययं शब्दोऽन्यत्र निषेधार्थोऽप्यत्र विकल्पार्थः, निपातानामनेकार्थत्वात्। तान्युक्थस्तोत्राणि 'प्रमंहिष्ठीयेन' साम्ना प्रणयेत्, 'अहैव' अथवा 'सामकश्वेन' साम्ना प्रणयेत्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (पञ्चदशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चदश अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—उक्थस्तोत्रेषु सामविशेषं विधाय उक्थशस्त्रेषु सूक्तविशेषान् विधातुमादौ मैत्रावरुणशस्त्रे किंचित् सूक्तं विधत्ते—

(उक्थशस्त्रेषु सूक्तविशेषविधानम्)

(तत्र मैत्रावरुणशस्त्रे प्रयुक्तसूक्तविधानम्)

ते वा असुरा मैत्रावरुणस्योक्थमश्रयन्त, सोऽब्रवीदिन्द्रः कश्चाहं चेमानितोऽसुरान्नोत्स्यावहा इत्यहं चेत्यब्रवीद् वरुणस्तस्मादैन्द्रावरुणं मैत्रावरुणस्तृतीयसवने शंसतीन्द्रश्च हि तान् वरुणश्च ततो नुदेताम् ॥ १ ॥

हिन्दी—(उक्थस्तोत्रों में सामविशेष का विधान करके उक्थशस्त्रों में सूक्त-विशेषों का विधान करने के लिए पहले मैत्रावरुणशस्त्र में सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **ते** [illegible]**सुराः** उन असुरों ने **मैत्रावरुणस्य उक्थम् अश्रयन्त** मैत्रावरुण के उक्थ का आश्रय ले लिया। तब **सः इन्द्रः अब्रवीत्** उस इन्द्र ने कहा कि **कः च अहं च** कौन देवता और मैं मिलकर **इमान् असुरान्** इन असुरों को **इतः नोत्स्यावहै** इस (मैत्रावरुण उक्थ) से निकालने में समर्थ होंगे। तब **वरुणः अब्रवीत्** वरुण ने कहा कि **अहम् च** मैं (और तुम)। **तस्मात्** इसी कारण **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **मैत्रावरुणः** मैत्रावरुण (नामक होत्रक) **ऐन्द्रावरुणं शंसति** इन्द्र और वरुण देवता वाले ('इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नः' इस दश ऋचाओं वाले) सूक्त का शंसन करता है जिससे **इन्द्रः च वरुणः च** इन्द्र और वरुण (दोनों मिलकर) **तान्** उन (असुरों) को **ततः** उस (मैत्रावरुणशस्त्र) से **नुदेताम्** निकाल देवें।

सा० भा०—उक्थ्यस्य क्रतोरग्निष्टोमविकृतित्वात्[1] अतिदिष्टमग्निष्टोमप्रयोगमनुष्ठाय तत ऊर्ध्वमुक्थ्यपर्यायास्त्रयोऽनुष्ठेयाः। तथा च आपस्तम्ब आह—'उक्थ्यश्चेदग्निष्टोम

(१) तदुक्तम् आपस्तम्बेन—'उक्थ्यः षोडश्यतिरात्रोऽप्तोर्यामश्चाग्निष्टोमस्य गुणविकाराः, तेषाम् अग्निष्टोमवत् कल्पः'—इति १४.१.१, ३

चमसानुत्रयंस्त्रिभ्यश्चमसगणेभ्यो राजानमति रेचयति'[1] इति। तत्र प्रथमे चमसगणे मैत्रावरुणस्य यच्छस्त्रमस्ति, उक्थस्तोत्रेषु साम्ना निराकृतास्त एव असुराः 'इदं' मैत्रावरुणशस्त्रमश्रयन्त 'तत्' तदानीं तत्रावस्थितः स इन्द्र इतर देवान् प्रत्येवमब्रवीत् –असुराणामपनोदने मम सहायोऽपेक्षितः, ततो हे देवाः ! युष्माकं मध्ये कश्चाहं च 'इमान्' असुरान् 'इतः' मैत्रावरुणशस्त्रात् 'नोत्स्यावह' अपनोदं करिष्याव इति। देवेष्ववस्थितो वरुणः 'अहं च' इत्यब्रवीत्; हे इन्द्र, त्वं चाहं चेत्यर्थः। यस्मादेवं तस्मादुभयोर्मेलनेन तेषामसुराणामपनोदनार्थम् 'ऐन्द्रावरुणं' सूक्तं तृतीयसवने 'मैत्रावरुणः' एतन्नामक ऋत्विक् शंसेत्। 'इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नः' इत्येतद्दशर्चं सूक्तम्[2] ऐन्द्रावरुणम्; तेन तुष्ट इन्द्रश्च वरुणश्च 'तान्' असुरान् 'ततः' शस्त्रात् 'अपनुदेतां' निराकुर्याताम्।।

द्वितीये चमसगणे किञ्चित्सूक्तद्वयं विधत्ते—

(ब्राह्मणच्छंसिनः सूक्तद्वयविधानम्)

ते वै ततोऽपहता असुरा ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थमश्रयन्त; सोऽब्रवीद् इन्द्रः कश्चाहं चेमानितोऽसुरान् नोत्स्यावहा इत्यहं चेत्यब्रवीद् बृहस्पतिस्तस्मादैन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसी तृतीयसवने शंसतीन्द्रश्च हि तान् बृहस्पतिश्च ततो नुदेताम् ।।२।।

हिन्दी—(अब द्वितीय चमसगण में दो सूक्तों का विधान कर रहे हैं—) **ततः अपहताः ते असुराः** उस (मैत्रावरुण उक्थ) से निकाले गये उन असुरों ने **ब्राह्मणच्छंसिनः उक्थम् अश्रयन्त** ब्राह्मणच्छंसी उक्थ का आश्रय ग्रहण किया। तब **सः इन्द्रः अब्रवीत्** इस इन्द्र ने कहा कि **कः च अहं च** कौन देवता और मैं (मिलकर) **इमान् असुरान्** इन असुरों को **इतः नोत्स्यावहै** इस (ब्राह्मणाच्छंसी उक्थ) से निकाल सकेंगे। तब **बृहस्पतिः अब्रवीत्** बृहस्पति ने (इन्द्र से) कहा कि **अहम् च** मैं (और तुम)। **तस्मात्** इसी कारण **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **ब्राह्मणच्छंसी** ब्राह्मणच्छंसी (नामक होत्रक) **ऐन्द्राबार्हस्पत्यम् शंसति** इन्द्र और बृहस्पति देवता वाले (क्रमशः 'अच्छा म इन्द्रं मतयः') इस इन्द्र देवताक और 'उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः' इस बृहस्पति देवताक सूक्त) का शंसन करता है। इससे **इन्द्रः च बृहस्पतिः च** इन्द्र और बृहस्पति (मिल कर) **तान्** उन (असुरों) को **ततः** उस (ब्राह्मणच्छंसी उक्थ) से **नुदेताम्** निकाल देवे।

सा०भा०—'ततः' मैत्रावरुणशस्त्रान्निराकृता असुरा ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रमाश्रितवन्तः। 'उदप्रुतो न वयो रक्षमाणाः' इत्येतद् बृहस्पतिदेवताकं द्वादशर्चं सूक्तम्।[1] 'अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः' इत्येकादशर्चमैन्द्रं सूक्तम्। तदुभयं मिलितं सदैन्द्राबार्हस्पत्यं संपद्यते। तदेतद् ब्राह्मणाच्छंसी ब्रूयात्। अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

---

(१) आप०श्रौ० १४.१.६।   (२) ऋ० ७.८२।   (३) ऋ० १०.६८।

तृतीये चमसगणे सूक्तं विधत्ते—

(अच्छावाकस्य सूक्तविधानम्)

ते वै ततोऽपहता असुरा अच्छावाकस्योक्थमश्रयन्त; सोऽब्रवीद्-इन्द्रः कश्चाहं चेमानितोऽसुरान् नोत्स्यावहा इत्यहं चेत्यब्रवीद् विष्णु-स्तस्मादैन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्तृतीयसवने शंसतीन्द्रश्च हि तान् विष्णुश्च ततो नुदेताम् ।।३।।

हिन्दी—(तृतीयचमसगण विषयक सूक्त का विधान कर रहे हैं—) **ततः अपहताः ते असुराः** उस (ब्राह्मणच्छांसी उक्थ) से निकाले गये उन राक्षयों ने **अच्छावाकस्य उक्थम्** अच्छावाक (नामक ऋत्विक्) के शस्त्र का **आश्रयन्त** आश्रय ले लिया। तब **सः इन्द्रः अब्रवीत्** उस इन्द्र ने कहा किया कि **कः च अहं च** कौन देवता और मैं (मिलकर) **इमान् असुरान्** इन असुरों को **इतः नोत्स्यावहै** इस (अच्छावाक के उक्थ) से निकाल सकेंगे। तब **विष्णुः अब्रवीत्** विष्णु ने कहा कि **अहम् च** मैं (और तुम)। **तस्मात्** इसी कारण **तृतीयसवने** तृतीयसवन में **अच्छावाकः** अच्छावाक (नामक ऋत्विक) **ऐन्द्रावैष्णवं शंसति** इन्द्र और विष्णु युगल देवता वाले ('सं वां कर्मणा समिषा' इस आठ ऋचाओं वाले सूक्त का शंसन करता है। जिससे **इन्द्रः च विष्णुः च** इन्द्र और विष्णु मिलकर **तान्** उन (असुरों) को **ततः** उस (अच्छावाक शस्त्र से **नुदेताम्** निकाल देवे।

सा० भा०—'सं वां कर्मणा समिषा'–इत्यष्टर्चमैन्द्रावैष्णवं सूक्तम्।[१] अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

सूक्तानां द्विदेवताकत्वं प्रशंसति—

(सूक्तानां द्विदेवताकत्वप्रशंसनम्)

द्वन्द्वम् इन्द्रेण देवताः शस्यन्ते; द्वन्द्वं वै मिथुनं, तस्माद् द्वन्द्वान् मिथुनं प्रजायते, प्रजात्यै ।।४।।

हिन्दी—(सूक्तों के द्विदेवताक होने की प्रशंसा कर रहे हैं—) **इन्द्रेण** इन्द्र के साथ **देवताः द्वन्द्व शस्यन्ते** युगल रूप से देवता शंसन किये जाते हैं। **द्वन्द्वं वै मिथुनम्** द्वन्द्व ही मिथुन (स्त्री और पुरुष) है। **तस्मात्** इसी कारण (लोक में) **द्वन्द्वात् मिथुनं प्रजायते** द्वन्द्व से (सन्तान रूप) मिथुन (पुत्र और पुत्री) उत्पन्न होता है। अतः **प्रजात्यै** (देवताद्वन्द्व का शंसन यजन करने वाले के) सन्तानोत्पादन के लिए होता है।

सा० भा०— इन्द्रेण सह 'द्वन्द्वं' युग्मं वरुणबृहस्पतिविष्णुदेवताः क्रमेण शस्यन्ते। द्वन्द्वं च लोके स्त्रीपुरुषरूपं 'मिथुनं' तादृशान् मिथुनाद् अपत्यरूपं 'मिथुनं' प्रजायते। ततो

---

(१) ऋ० ६.६९।

द्वन्द्वशंसनं यजमानस्य प्रजात्यै भवति॥

वेदनं प्रशंसति—

प्रजायते प्रजया पशुभिर्य एवं वेद ॥५॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः प्रजायते** प्रजा और पशुओं से समृद्ध होता है।

सा० भा०—शस्त्रिणां त्रयाणां होत्रकाणां[1] सूक्तानि विधाय, पोतुर्नेष्टुश्च मन्त्रान्तराणि विधत्ते—

(पोतुः नेतुश्च मन्त्रान्तराणि)

अथ हैते पोत्रीयाश्च नेष्ट्रीयाश्च चत्वार ऋतुयाजाः षळृचः ॥६॥

हिन्दी—(अब पोता और नेष्टा के मन्त्रान्तरों को कह रहे हैं—) **अथ ह एते** अब इन **पोत्रीयाः च नेष्ट्रीयाः च** पोता और नेष्टा से सम्बन्धित **चत्वारः ऋतुयाजाः** चार ऋतुयाजों और **षड् ऋचः** (पोता की तीन तथा नेष्टा के तीन प्रस्थित याज्या इस प्रकार) छः ऋचाओं को (कहा जा रहा है)।

सा० भा०—प्रैषग्रन्थे पञ्चमे सूक्ते 'होता यक्षत्'—इत्यादिकौ द्वितीयाष्टमौ मन्त्रौ पोतुर्द्वावृतुयाजौ, तथा तत्रैव तृतीयनवमौ मन्त्रौ नेष्टुर्द्वावृतुयाजौ, एवं चत्वार ऋतुयाजाः, ते मिलित्वा पोतृसंबन्धान्नेष्टृसंबन्धाच्च 'पोत्रीयाः नेष्ट्रीयाश्च' भवन्ति। तथा प्रस्थितयाज्याः पोतुस्तिस्त्र ऋचः, नेष्टुश्च तिस्त्र ऋचः[2], इत्येवं 'षळृचः' भवन्ति[3]॥

तदेतन्मन्त्रदशकं प्रशंसति—

(मन्त्रदशकप्रशंसनम्)

सा विराड्दशिनी, तद्विराजि यज्ञं दशिन्यां प्रतिष्ठापयन्ति, प्रतिष्ठापयन्ति ॥७॥

---

(१) 'प्रशास्ता ब्राह्मणाच्छंस्यच्छावाक इति शस्त्रिणो होत्रकाः'—इति आश्व०श्रौ० ५.१०.१०।

(२) तथा चोक्तम्—'मरुतो यस्य हि क्षये (ऋ० १.८६.१) अग्ने पत्नीरिहावह (ऋ० १.२२.९) इति प्रातःसवनिक्यः प्रस्थितयाज्याः', 'अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुः (ऋ० १.१०४.९) तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् (ऋ० ३.३५.६) इति माध्यंदिन्यः, 'आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्पदं (ऋ० १.८५.६) अमेव नः सुहवा आहिगन्तन (ऋ० २.३६.३) इति तार्तीयसवनिक्यः'—आश्व०श्रौ० ५.५.१८-१९।

(३) उक्थ्यस्याग्निष्टोमविकृतित्वात् अग्निष्टोमे विहितानि प्रायः सर्वाण्येवाङ्गकार्याण्यत्रादिश्यन्ते, तदपवादभूता विशेषविधय एवेह पञ्चमषष्ठखण्डयोः समाम्नाताः, तथा आश्वलायनेनापि 'उक्थे तु होत्रकाणाम् इत्यन्त उक्थ्यः'–इति (आश्व०श्रौ० ६.१) उक्थाश्रिता विशेषविधय एवोक्ताः।

हिन्दी—(इन दशों मन्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सा विराड् दशिनी** वे दश (ऋचाएँ) विराट् (छन्द वाली हैं)। **तत्** उस (मन्त्रों की दश संख्या) से **दशिन्यां विराजि** दश संख्या से सम्पन्न विराट् में **यज्ञं प्रतिष्ठापयन्ति** यज्ञ को प्रतिष्ठापित करते हैं।

सा० भा०—'सा' पूर्वोक्ता मन्त्रसमष्टिः 'दशिनी' दशसंख्यायुक्ता सती विराट्छन्दः संपद्यते; दशाक्षरा विराड्'—इति श्रुत्यन्तरात्। 'तत्' तेन दशसंप्रयोगेण 'दशिन्यां' दश-संख्योपेतायां विराजि यज्ञमृत्विजः प्रतिष्ठापयन्ति।[१] अभ्यासोऽध्यायपरिसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये तृतीयपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (पञ्चदशाध्याये) षष्ठः खण्डः ।।६।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चदश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसांप्राज्यधुरंधरमाधवा-चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'—नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य तृतीयपञ्चिकायाः पञ्चमोऽध्यायः (पञ्चदशोऽध्यायः) समाप्त ।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के पञ्चदश अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

ग्रहोक्थमेकादश । देवविशस्त्रयोदश सोमो वै राजामुष्मिंश्चतुर्दश ।
देवा वा असुरैः षट् । यज्ञो वै देवेभ्यः षट् ।।

(इस पञ्चिका में) 'ग्रहोक्थम्' से प्रारम्भ ग्यारह खण्डों वाला प्रथम अध्याय, 'देवविशः' से प्रारम्भ तेरह खण्डों वाला द्वितीय अध्याय, 'सोमो वै राजामुष्मिन्' से प्रारम्भ चौदह खण्डों वाला तृतीय अध्याय, 'देवा वा असुरैः' से प्रारम्भ छः खण्डों वाला चतुर्थ अध्याय और 'यज्ञो वै देवेभ्यः' से प्रारम्भ छः खण्डों वाला पञ्चम अध्याय है।

ग्रहोक्थं, सौर्या वै, इन्द्रो वै, वैश्वदेवं शंसति, इति नु दश ।।

इस पञ्चिका में 'ग्रहोक्थम्' से प्रारम्भ खण्डों का प्रथम दशक, 'सौर्या वै' से प्रारम्भ द्वितीय दशक, 'इन्द्रो वै' से प्रारम्भ तृतीय दशक, 'वैश्वदेवं शंसति' से प्रारम्भ चतुर्थ दशक और 'इति नु' से प्रारम्भ पञ्चम दशक है। इस प्रकार तृतीय पञ्चिका में कुल पचास खण्ड हैं।

।। इति तृतीयपञ्चिका ।।

।। इस प्रकार तृतीयपञ्चिका की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) 'अग्निष्टोमं वै'—इत्याद्यारब्धम् उक्थ्यक्रतुप्रकरणमिहैव समाप्तम् (५६५—५७१ पृ०) 'उक्थ्येन पशुकामो यजेत्'—इति तु आप०श्रौ० १४.१.२।

अथ चतुर्थपञ्चिकायाम्

प्रथमोऽध्यायः

[अथ षोडशोऽध्यायः]

प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— संस्थेष्टीनां वाग्यमश्चर्त्विजां च
याागा देवीदेवीकानां विशेषाः।
संस्थोक्थ्यस्य स्तोत्रशस्त्रप्रक्लृप्तिः
शस्त्राण्याहुः शस्त्रिणां होत्रकाणाम् ॥१॥

ज्योतिष्टोमभेद उक्थ्यः समापितः; अथ षोडश्युच्यते; तद्विषयं शंसनं विधत्ते—

(षोडशिक्रतुविधानम्)

(तत्राख्यायिका)

देवा वै प्रथमेनाह्नेन्द्राय वज्रं समभरंस्तं द्वितीयेनाह्नाऽसिञ्चस्तं तृतीयेनाह्ना प्रायच्छंस्तं चतुर्थेऽहन् प्राहरत् तस्माच्चतुर्थेऽहन् षोळशिनं शंसति ॥१॥

हिन्दी—(अब षोडशीविषयक शंसन का विधान कर रहे हैं—) **देवाः वै** देवताओं ने **प्रथमेन अह्ना** (पृष्ठ षडह) के प्रथम दिन (के सोमप्रयोग) से **इन्द्राय वज्रं समभरन्** इन्द्र के लिए वज्र का सम्पादन किया। **द्वितीयेन अह्ना** द्वितीय दिन (के प्रयोग) से **तम् असिञ्चन्** उस (वज्र) को (तेज करने के लिए) सिञ्चित किया। **तृतीयेन अह्ना** तृतीय दिन (के प्रयोग) से **तं प्रायच्छन्** उस (वज्र) को (शत्रुओं पर करने के लिए) दिया। **चतुर्थे हन्** चतुर्थ दिन **तं प्राहरत्** (इन्द्र ने) उस (वज्र) को (शत्रुओं पर) किया। **तस्मात्** इसी कारण **चतुर्थे अहन्** चतुर्थ दिन **षोडशिनं शंसति** (होता 'असावि सोम इन्द्र ते' इत्यादि) षोडशी (नामक शस्त्र) का शंसन करता है।

सा० भा०—अग्निष्टोमोक्थ्यादिसंस्थाविशेषः स्वतन्त्रः क्रतुत्वाद्[१] यथा पृथगनुष्ठातुं योग्यस्तथा षोडशी न स्वतन्त्रः क्रतुः। तथा च शाखान्तरे पठन्ति—'न वै षोडशी नाम यज्ञोऽस्ति; यद्वाव षोडश स्तोत्रं षोडश शस्त्रं तेन षोडशी'[२] इति। तथा सत्ययं संस्थाविशेषः

(१) 'अग्निष्टोमोक्थ्यादिसंस्था संस्थाविशेषः; स्वतन्त्रः क्रतुत्वात्'—इति वा पाठः।
(२) तै०सं० ६.६.११.१।

पृष्ठ्यषडहचतुर्थेऽहनि प्रयुज्यते। अतस्तत्रैवैतच्छंसनविधानम्। देवाः पुरा पृष्ठ्यषडहे 'प्रथमेनाह्ना' प्रथमदिवसनिष्पाद्येन सोमप्रयोगेण इन्द्रार्थं वज्रं 'समभरन्' संपादितवन्तः। अत्र सर्वत्राहः शब्दोऽह्ना निष्पाद्यं सोमप्रयोगमभिधत्ते। तत्र संपादितं वज्रं द्वितीयेनाह्ना 'असिञ्चन्'। सेचनं नाम लोहमयानां शङ्कुकुठारादीनां तीक्ष्णत्वाय दार्ढ्याय चाग्नौ प्रताप्य यथोचितं नीरे स्थापनं, तदिदं सेचनं वज्रे कृतवन्तः। कृत्वा च तृतीयेनाह्ना 'तं' वज्रमिन्द्राय 'प्रायच्छन्' दत्तवन्तः। स चेन्द्रस्तं वज्रं चतुर्थेऽहनि शत्रोरुपरि प्राहरत्। तस्मात् पृष्ठ्यषडहस्य चतुर्थाहः प्रयोगे षोळशिनं शस्त्रं शंसेत्। 'असावि सोम इन्द्र ते' इत्यादिकं[1] षोळश्याख्यं शस्त्रम्। तथा च आश्वलायन आह 'अथ षोळश्यसावि सोम इन्द्र त इति स्तोत्रियानुरूपौ'[2] इति॥

षोळशिशंसनं प्रशंसति—

(षोडशिशंसनप्रशंसनम्)

वज्रो वा एष यत्षोळशी; तद् यच्चतुर्थेऽहन् षोळशिनं शंसति, वज्रमेव तत्प्रहरति, द्विषते भ्रातृव्याय वधं, योऽस्य स्तृत्यस्तस्मै स्तर्तवै ॥२॥

हिन्दी—(षोडशी शस्त्र के शंसन की प्रशंसा कर रहे हैं—) यत् षोडशी जो षोडशी है, एषः वज्रः वै यह वज्ररूप ही है। तद् तो यत् चतुर्थे अहन् षोडशिनं शंसति जो चतुर्थ दिन (होता) षोडशी (नामक शस्त्र) का शंसन करता है तत् उस (शंसन) से वज्रमेव प्रहरति वज्र का ही प्रहार करता है। यः अस्य स्तृत्यः जो इस (यजमान) का हिंसनीय है, तस्मै द्विषते भ्रातृव्याय उस द्वेष करने वाले शत्रु को स्तर्तवे मारने के लिए वधम् (यह षोडशी) वधरूप है।

सा० भा०—षोळशिनो वज्रस्वरूपत्वाद् 'यः' पुमान् 'अस्य' यजमानस्य 'स्तृत्यः' हिंसनीयः 'तस्मै स्वर्तवै' तस्य हिसार्थं वधहेतुं वज्रमेव भ्रातृव्याय प्रहरति॥

तस्य शस्त्रस्य कालं विधत्ते—

(षोडशिशस्त्रस्य कालविधानम्)

वज्रो वै षोळशी पशव उक्थानि; तं परस्तादुक्थानां पर्यस्य शंसति ॥३॥

हिन्दी—(उस शस्त्र के काल का विधान कर रहे हैं—) वज्रः वै षोडशी षोडशी वज्ररूप है और पशवः उक्थानि उक्थ पशुरूप है। उक्थानां परस्तात् पर्यस्त (उन तीन) उक्थों के ऊपर रख कर तं शंसति उस (षोडशी नामक शस्त्र) का शंसन करता है।

---

(१) ऋ० १.८४.१-२०। (२) आश्व०श्रौ० ६.२.१,२।

सा० भा०—यथा पूर्वत्राग्निष्टोमप्रयुक्तानां द्वादशशस्त्राणामुपरि त्रीण्युक्थ्यशस्त्राणि प्रयुक्तानि, तथात्रापि त्रयाणामुक्थशस्त्राणां 'परस्तात्' उपरि पर्यस्य षोळशिनमेव शंसेत्॥

उक्थानां पशुरूपत्वात् षोळशिनो वज्ररूप वाच्चायं क्रम उपपन्नः, तामेतामुपपत्तिं प्रकटयति—

तं यत्परस्ताद् उक्थानां पर्यस्य शंसति, वज्रेणैव तत्षोळशिना पशून् परिगच्छति, तस्मान् पशवो वज्रेणैव षोळशिना परिगता मनुष्या-नभ्युपावर्तन्ते तस्मादश्वो वा पुरुषो वा गौर्वा हस्ती वा परिगत एव स्वयमात्मनेऽत एव वाचाऽभिषिद्ध उपावर्त्तते, वज्रमेव षोळशिनं पश्यन् वज्रेणैव षोळशिना परिगतो वाग्घि वज्रो वाक्षोळशी ।।४।।

हिन्दी—(उक्थों के पशुरूप होने और षोडशी के वज्र रूप होने को कह कर यह क्रम उपपन्न हुआ है। उस क्रम की उपपत्ति को प्रस्तुत कर रहे हैं—) तम् उस (षोडशी नामक शस्त्र को **यद् उक्थानां परस्तात् पर्यस्य** उक्थों के ऊपर रख कर **शंसति** (होता) शंसन करता है। **तत्** इस (शंसन) से **षोडशिना वज्रेण वै** इस षोडशीरूप वज्र से ही **पशून् परिगच्छति** (उक्थरूप) पशुओं को सभी ओर से घेर लेता है। **तस्मात्** इसी कारण **षोडशिना वज्रेणैव परिगता पशवः** षोडशीरूप वज्र से ही नियमित हुए पशु **मनुष्यान् अभ्युपावर्तन्ते** मनुष्यों को अभिलक्षित करके लौट आते हैं। **तस्मात्** इसलिए **अश्वः वा पुरुषः वा गौः वा हस्ती वा** अश्व, पुरुष, गौ, हस्ती **स्वयमेव परिगतः** स्वयं ही नियमित होते हैं **अत एव** अतः (षोडशी रूप वज्र से नियमित होने के कारण) **वाचा अभिषिद्धः** (शीघ्र आओ इत्यादि) वाणी से सभी ओर से बँधे हुए होकर **आत्मने उपावर्तते** अपने (स्थान) पर लौट आते हैं। **षोडशिनं वज्रमेव पश्यन्** षोडशीरूप वज्र को ही देखते हुए **षोडशिना वज्रेणैव** षोडशीरूप वज्र द्वारा **परिगतः** नियमित होता है; क्योंकि **वाग् हि वज्रः** वाणी ही वज्र है और **वाक् षोडशी** वाणी षोडशी है।

सा० भा०—'तं' षोळशिनं 'यद्' यस्मात्कारणाद् उक्थशस्त्राणां परस्तात् पर्यस्य शंसति, 'तत्' तेन शंसनेन षोळशिरूपेण वज्रेणैवोक्तरूपान् पशून् 'परिगच्छति' परितो नियमेन याति। 'तस्मात्' लोकेऽप्यरण्ये संचारार्थं गताः पशवः षोळशिना वज्रेणैव नियमित-त्वात्, सायंकाले मनुष्यान् अभिलक्ष्य तत्तद् गृहेषु उपावर्तन्ते, अन्यथा तस्मादरण्याद-रण्यान्तरमेव गच्छेयुः। न केवलं तृणचरणार्थमरण्यगतानां सायंकाले पुनरागमनाय वज्र-रूपेण नियमितत्वम्, किं तर्हि ग्रामेष्वपि। तस्मात् षोळशिवर्जनियमितत्वाद् अश्वपुरुष-गोहस्त्यादीनामान्यतमः 'स्वयमेव' परप्रेरणामन्तरेणैव 'परिगतः' नियमितः, आत्मना स्वयं बन्धनाय तत्स्थाने समागच्छति। किं च 'अत एव' षोळशिवज्रनियमितत्वादेव 'वाचा' शीघ्रमागच्छेत्यादिवाक्येन 'अभिषिद्धः' अभितो बद्धः पुरुषः वर्तते। यथा रज्वादि बद्धो

बलीवर्द आनीयमान आगच्छति तद्वद् वाचा बद्धः पुरुषः। अत एवारण्यकाण्डे वक्ष्यति—'तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तदस्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्वं सितम्'[१] इति। वाङ्मात्रेणाऽऽगमने कारणमुच्यते—षोळशिनं वाग्वज्ररूपमेव पश्यन् षोळशिना वज्रेणैव नियमितो भवति, तद्द्वारा तस्य वज्रत्वम्। षोळशी च वाग्रूपैः सूक्तादिभिर्निषपन्नत्वात् स्वयमपि वाग्रूपो भवति। वाचश्च वज्रत्वं लोके प्रसिद्धं, राजादीनां भर्त्सनादौ वज्रप्रहारेणैव चित्ते व्यथोदयात्। तदेवं सर्वनियामकत्वात् षोळशिनः प्रशस्तत्वं सिद्धम्॥

यदुक्तं 'पुरस्तादुक्थानां पर्यस्य शंसति'—इति, तत्रोक्थशस्त्रेभ्य उत्तरकालावस्थानमेव 'पर्यस्य' इति शब्देन विवक्षितमिति व्याख्यातम्, अथवोत्तरकालस्य परस्तादिति शब्देनैव सिद्धत्वात् पर्यस्येतिशब्देन शस्त्रगतानामृचामध्ययनपाठाद् विपर्यासोऽभिधीयते। द्विविधं षोळशिशस्त्रम्–विहृतमविहृतं च। तत्राविहृतं नामाध्ययनक्रमेणैव शंसनम्, विहृतं तु ऋचां परस्परव्यतिषङ्गः। स त्वाश्वलायनेन दर्शितः—'ऊर्ध्वं स्तोत्रियानुरूपाभ्यां तदेव शस्यं विहरेत् पादान् व्यवधायार्धर्चशः शंसेत् पूर्वासां पूर्वाणि पदानि, गायत्र्यः पङ्क्तिभिः, पङ्क्तीनां तु द्वे द्वे पदे शिष्येते ताभ्यां प्रणुयात्'[२] इति तदेतदुदाहृत्य प्रदर्श्यते—'इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे' इत्येषा गायत्री।[३] 'सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशां अनु योजा न्विन्द्र ते हरी'[४] योऽयमध्ययन-पाठः सोऽविहृतः। विहृतपाठस्तूच्यते—'इमा धाना घृतस्नुवः सुसंदृशं त्वा वयम्। हरी इहोपवक्षतो मघवन् वन्दिषीमहीन्द्रं सुखतमे रथे प्र नूनं पूर्णन्धुरः। स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरीम्' इति। अनेन प्रकारेण विपर्यस्य शंसेत्॥

अथ प्रश्नोत्तराभ्यां षोळशिशब्दं निर्वक्ति—

(षोडशिशब्दनिर्वचनम्)

तदाहुः किं षोळशिनः षोळशित्वमिति? षोळशः स्तोत्राणां, षोळशः शस्त्राणां, षोळशभिरक्षरैरादत्ते, षोळशभिः प्रणौति, षोळशपदां निविदं दधाति, तत्षोळशिनः षोळशित्वम् ।।५।।

हिन्दी—(प्रश्नोत्तर द्वारा 'षोडशी' शब्द का निर्वचन कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ लोग) पूछते हैं कि **किं षोडशिनः षोडशित्वम्** षोडशी का षोडशी नाम होना कैसे है? (उत्तर—) **षोडशः स्तोत्राणाम्** स्तोत्रों की संख्या सोलह है और **षोडशः शस्त्राणम्** शस्त्रों की संख्या सोलह है। **षोडशभिः अक्षरैः आदत्ते** (इस शस्त्र में होता द्वारा शंसित अनुष्टुप् के पूर्वार्ध में) सोलह अक्षरों से अवसान करता है और **षोडशभिः प्रणौति** (उत्तरार्धगत) सोलह अक्षरों से प्रणव करता है। **षोडशपदां निविदं दधाति** सोलह

---

(१) ऐ०आ० २.१.६।	(२) आश्व०श्रौ० ६.३२-६।
(३) ऋ० १.१६.२।	(४) ऋ० १.८२.३।

पदों वाले निविद का प्रक्षेप करता है। **तत् षोडशिनः षोडशित्वम्** यही षोडशी का षोडशित्व (षोडशी नाम वाला होना) है।

सा० भा०—षोळशिशब्दो ग्रहविशेषं स्तोत्रविशेषं शस्त्रविशेषं चाभिधत्ते[१]। तेषामेकैकस्वरूपवताम्। षोळशिशब्दवाच्यत्वमयुक्तम्। तच्छब्दप्रवृत्तौ निमित्तान्तरं तु न पश्याम इति ब्रह्मवादिनामभिप्रायः। षोडशसंख्यायुक्तत्वात् षोळशित्वमित्युत्तरम्। तत्र कथमिति, तदुच्यते—अग्निष्टोमसंस्थो ज्योतिष्टोमः द्वादशस्तोत्रोपेतः। तथा च शाखान्तरे श्रूयते—'द्वादशाग्निष्टोमस्य स्तोत्राणि'[२] इति तद्गर्भित उक्थ्यसंस्थस्त्रिभिः स्तोत्रैरतिरिच्यते। तस्मात् पञ्चदश स्तोत्राणि भवन्ति। तद्गर्भितः षोळशिसंस्थ एकेन स्तोत्रेणातिरिच्यते; ततः स्तोत्राणां मध्य एतत्स्तोत्रप्रयोगः षोडशसंख्यापूरको भवति। तथा शस्त्राणां मध्येऽप्येतच्छस्त्रप्रयोगः षोडशसंख्यापूरकः। किं चास्मिञ्छस्त्रे होत्रा संपादिताया अनुष्टुभः पूर्वार्धगतानि षोडशाक्षराण्युच्चार्य अवस्यति, उत्तरार्धगतानि षोडशाक्षराण्युच्चार्य 'प्रणौति' प्रणवमुच्चारयति। किं च 'अस्य मदे जरितः' इत्यादिका षोडशपदोपेता निवित्[३] शस्त्रमध्ये प्रक्षिप्यते। अतो बहुधा षोडशसंख्यायोगाद् अयं प्रयोगः षोळशिनामोपेतः॥

प्रकारान्तरेण षोळशिनं प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण षोडशिप्रशंसनम्)

द्वे वा अक्षरे अतिरिच्येते षोळशिनोऽनुष्टुभमभिसंपन्नस्य वाचो वाव तौ स्तनौ, सत्यानृते वाव ते ॥ ६ ॥

हिन्दी—(प्रकारान्तर से षोडशी की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अनुष्टुभम् अभि सम्पन्नस्य** अनुष्टुप् छन्द पूरा होने पर भी **षोडशिनः** षोडशी के **द्वे अक्षरे** दो अक्षर **अतिरेच्येते** अतिरिक्त (अधिक) हो जाते हैं। **तौ वाचः स्तनौ** वे दोनों (अधिक अक्षर) वाणी (रूप स्त्री) के दो स्तन हैं। **ते सत्यानृते** वे (वाणी के दोनों स्तन) सत्य और अनृत रूप वाले हैं।

सा० भा०—योऽयं षोळशी, सोऽयं द्व्यक्षराधिकामनुष्टुभं यदा संप्राप्तो भवति, तदानीं द्वे एवाक्षरे अधिके भवतः। तथा हि सूत्रकारः—'विहृतस्य' इत्युपक्रम्य शाखान्तरीया 'इन्द्र जुषस्व' इत्यादिका ऋचः पठितवान्।[४] तस्याः पूर्वस्मिन्नर्धर्चे षोडशाक्षराणि, उत्तरार्धर्चेऽष्टादश; ततोऽक्षरद्वयाधिक्यम्। 'वाग्वा अनुष्टुप्'[५] इति श्रुत्यन्तरे सा वाचोऽनुष्टुब-

(१) 'एतत् त्रयं सह क्रियते ग्रहः स्तोत्रं शस्त्रम्'—इति शत०ब्रा० ८.१.३४।
(२) तै०ब्रा० १.२.२। तु० ता०ब्रा० ६.३.३।
(३) निवि० ११.१ १-१६।
(४) आश्व०श्रौ० ६.३.१।
(५) तै०सं० ६.६.११; तु० ऐ०ब्रा० ३०.१०।

वयवत्वात् तदात्मिकाया वाग्देवातायाः स्त्रीरूपाया अधिकाक्षररूपौ 'स्तनौ' संपद्येतते; यदेतत् लोके सत्यवदनं, यच्चानृतवदनं, तदुभयमपि वाचः स्तनरूपम्; अतोऽधिकाक्षरायाः सत्यानृतरूपत्वम्॥

उक्तार्थवेदनं प्रशंसति—

अवत्येनं सत्यं नैनमनृतं हिनस्ति य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी—**यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, **एनम्** इस (जानने वाले) की **सत्यम् अवति** सत्य रक्षा करता है और **एनम् अनृतं न हिनस्ति** इसको अनृत विनष्ट नहीं करता।

स० भा०—'एनं' वेदितारं सत्यवाक् पालयति, सुकृतोत्पादकत्वात्। अनृतवाक् न हिनस्ति, दुरितस्यानुदयात्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षोडशाध्याये) प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षोडश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—षोळशिशस्त्रं विधाय षोळशिस्तोत्रनिष्पादकं सामविशेषं विधत्ते—

(षोडशिस्तोत्रनिष्पादकसामविशेषविधानम्)

गौरिवीतं षोळशिसाम कुर्वीत तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामस्तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरिवीतं, तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं विद्वान् गौरिवीतं षोळशिसाम कुरुते ।।१।।

हिन्दी—(षोडशीशस्त्र का विधान करके अब षोडशी स्तोत्र के निष्पादक साम का विधान कर रहे हैं—) **तेजस्कामः ब्रह्मवर्चसकामः** तेज की कामना करने वाला और ब्रह्मवर्चस की कामना करने वाला **गौरिवीतं षोडशिसाम कुर्वीत** (गौरिवीत नामक ऋषि द्वारा दृष्ट) गौरिवीत नामक षोडशिसाम का प्रयोग करें। **तेजः वै ब्रह्मवचसं गौरिवीतम्** गौरिवीत साम तेज और ब्रह्ममवर्चस् रूप है। अतः **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **गौरिवीतं षोडशिसाम कुरुते** गौरिवीत नामक षोडशीसाम का प्रयोग करता है वह **तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी भवति** तेज और ब्रह्ममवर्चस् से सम्पन्न हो जाता है।

सा० भा०—केनचिन्महर्षिणा गौरिवीतनाम्ना दृष्टत्वात् सामापि गौरिवीतनामकम्। तत्तु 'अभि प्र गोपित गिरा' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं[1], तदत्र षोळशिस्तोत्रे साम कुर्वीत।[2] 'तेजः' शरीरकान्तिः। 'ब्रह्मवर्चसं' श्रुताध्ययनसंपत्तिः॥

सामान्तरं विधत्ते—

(सामान्तरविधानम्)

नानदं षोळशिसाम कर्तव्यमित्याहुरिन्द्रो वै वृत्राय वज्रमुदयच्छत्; तमस्मै प्राहरत्, तमभ्यहनत्, सोऽभिहतो व्यनदत्, यद् व्यनदत् तन्नानदं सामाभवत् तन्नानदस्य नानदत्वम्; अभ्रातृव्यां वा एतद् भ्रातृव्यहा साम सन्नानदम् ॥ २॥

हिन्दी—(सामान्तर का विधान कर रहे हैं—) **षोडशिसामे** षोडशि साम में **नानदं कर्त्तव्यम्** ('प्रत्यस्मै पिपीषते' इस ऋचा पर उत्पन्न) नानद (नामक साम-विशेष) का (प्रयोग) करना चाहिए—**इत्याहुः** ऐसा कुछ लोग कहते हैं; क्योंकि **इन्द्रः वै वृत्राय वज्रम् उदयच्छत्** इन्द्र ने वृत्र (को मारने) के लिए वज्र को उठाया और **तम्** उस (वज्र) को **अस्मै** इस (वृत्र को मारने) के लिए **प्राहरत्** प्रहार किया। **तम् अभ्यहनत्** उस (वृत्र) को घायल कर दिया। **अभिहितः सः व्यनदत्** घायल हुआ वह (वृत्र) बड़े जोर से चिल्लाया। **यद् व्यनदत्** जो (वृत्र ने) जोर से चिल्लाया **तत् नानदं साम अभवत्** वह नानद (नामक) साम हो गया। **तद् नानदस्य नानदत्वम्** वही नानद (नामक साम) का नानद नाम वाला होना है। **यद् नानदं साम** जो नानद नामक साम है **एतत्** वह **अभ्रातृव्यम्** शत्रुरहित है; क्योंकि **भ्रातृव्यहा** वह शत्रु को विनष्ट करने वाला है।

सा० भा०—नानदाख्यं किंचित्साम; तत्तु 'प्रत्यस्मै पिपीषते' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं[3]; तदेतत्साम षोळशिस्तोत्रे[4] कर्तव्यमित्यन्ते केचिदाहुः।[5] तस्य नानदत्वं कथमिति, तदुच्यते—वज्रप्रहारेणाभिहतो वृत्रो 'व्यनदद्' विशिष्टमुच्चैर्ध्वनिं नादं कृतवान्। स च ध्वनिर्नानदसामाकारेण संपन्नः। ततो नानदोत्पन्नत्वान्नानदमिति नाम। तत्साम भ्रातृव्यरहितम्—तत्परिशीलनवन्तः सर्वेपि मैत्रीमेव प्रतिपद्यन्ते, न तु कश्चिदपि द्वेषम्। के चैतत्साम 'भ्रातृव्यहा' पूर्वं विद्यमानस्य शत्रोर्घातकम्॥

वेदनं प्रशंसति—

---

(१) ऋ० ८.६९.४। छ०आ० २.२.३.४; गे०गा० ५.१.२०।
(२) उ०आ० ३.१.२२.१-३; ऊ०गा० ३ १.२; ता०ब्रा० १२.१३.९।
(३) छ०आ० ४.२.२.१। गे०गा० ९.२.१३।
(४) उ०आ० १.१.१८.१-३। ऊ०गा० २.२.१८।
(५) 'गोपालपुत्र उपोदितिर्नाम ऋषिरुवाच'—इति ता०ब्रा० १२.१३.११ सा०भा०।

अभ्रातृव्यो भ्रातृव्यहा भवति य एवं विद्वान्नानदं षोळशिसाम कुरुते ।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **नानदं षोडशिसाम कुरुते** नानद नामक षोडशिसाम का प्रयोग करता है, वह **अभ्रात्यव्यः भ्रातृव्यहा भवति** शत्रु से रहित और शत्रु का विनाश करने वाला होता है।

सा० भा०—गौरिवीतं नानदं वा सामेत्येवं पक्षद्वयं संपन्नम्।[1] तयोः पक्षयोः शस्त्रविशेषव्यवस्थां विधत्ते—

तद् यदि नानदं कुर्युरविहृतः षोळशी शंस्तव्योऽविहृतासु हि तासु स्तुवते; यदि गौरिवीतं विहृतः षोळशी शंस्तव्यो विहृतासु हि तासु स्तुवते ।।४।।

हिन्दी—(अब गौरिवीत और नानद नामक दोनों सामो के पक्ष में शस्त्र-विशेष की व्यवस्था का विधान कर रहे हैं—) **तत् यदि नानदं कुर्युः** उन दोनों में से यदि नानद (नामक साम) का प्रयोग करें तो **षोडशी अविहृतः शंसव्यः** षोडशी को अविहृत (परस्पर व्यतिषङ्ग से रहित) शंसन करना चाहिए; क्योंकि **अविहृतासु हि तासु स्तुवते** (सामगायकों द्वारा) वे अविहृत रूप में स्तुत किये जाते हैं। **यदि गौरिवीतम्** यदि गौरिवीत (नामक साम) का प्रयोग करे तो **षोडशी विहृतः शंसव्यः** षोडशी को विहृत (व्यतिषङ्गपूर्वक) शंसन करना चाहिए; क्योंकि **विहृतासु तासु स्तुवते** (सामगायकों द्वारा) वे विहृत रूप से स्तुत किये जाते हैं।

सा० भा०—अविहृतरूपः परस्परव्यतिषङ्गरहितो यथाधीतपाठः; सोऽयं नानदपक्षे कर्तव्यः। यतः सामगा अपि 'अविहृतासु' व्यतिषङ्गरहितास्वृक्षु नानदसाम्ना स्तुवते, तस्मादविहृतत्वमेवात्र योग्यम्। 'यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रम्'—इति न्यायात्। गौरिवीतीपक्षे शस्त्रमपि परस्परव्यतिषङ्गेण विहृतं पठनीयम्, सामगैः विहृतासु' व्यतिषक्तास्वृक्षु गौरिवीतसाम्ना स्तूयमानत्वात्।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षोडशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षोडश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) 'देशभेदेन चानयोर्व्यवस्थेत्यपि ज्ञापिता'—ता०ब्रा० १२.१३.११ सा०भा०।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—अथ विरहणप्रकारं विधत्ते—

(षोडशिशस्त्रे विहरणप्रकारविधानम्)

(तत्र गायत्रीपङ्क्त्योर्विहरणप्रकारः)

अथातश्छन्दांस्येव व्यतिषजति; 'आ त्वा वहन्तु हरय', 'उपो षु शृणुही गिर' इति गायत्रीश्च पङ्क्तीश्च व्यतिषजति, गायत्रो वै पुरुषः, पाङ्क्ताः पशवः, पुरुषमेव तत्पशुभिर्व्यतिषजति, पशुषु प्रतिष्ठापयति, यदु गायत्री च पङ्क्तिश्च ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो वाचो रूपादनुष्टुभो रूपाद् वज्ररूपान्नैति ।।१।।

हिन्दी—(अब विहरण प्रकार का विधान कर रहे हैं—) **अथातः** अथ यहाँ से **छन्दांसि व्यतिषजति** (परस्पर विलक्षण) छन्दों को व्यतिषक्त करता (मिलाता) है। 'आ त्वा वहन्तु हरयः' और 'उपो षु शृणुही गिर' **इति गायत्रीः च पंक्तिः च** (क्रमशः इन तीन-तीन) गायत्री छन्दस्क और पंक्ति छन्दस्क (ऋचाओं) को **व्यतिषजति** मिलाता है। **गायत्रः वै पुरुषः** पुरुष गायत्री छन्दस्क है और **पाङ्क्ताः पशवः** पशु पंक्ति संख्या वाले हैं। **तत्** इस (मिलाने) से **पुरुषमेव** (गायत्री छन्द रूप) पुरुष को **पशुभिः** (पंक्ति छन्द वाले) पशुओं से **व्यतिषजति** मिलाता है और **पशुषु प्रतिष्ठापयति** (पुरुष को) पशुओं में प्रतिष्ठित करता है। **यद् गायत्री च पंक्ति च** जो गायत्री और पंक्ति है, **ते द्वे अनुष्टुभौ** वे (मिलकर) दो अनुष्टुप् होते हैं। **तेन उ** उस (दोनों के मिश्रण) से **वाचः रूपात्** वाणीरूप से, **अनुष्टुभः रूपात्** अनुष्टुप् रूप से और **वज्ररूपात्** वज्ररूप से **न ऐति** अलग नहीं होता।

सा० भा०—'अथ' सामद्वयविधानानन्तरम् 'अतः' गौरिवीतपक्षे विहृतस्यापेक्षितत्वात् तदुच्यत इति शेषः। स्वस्वस्थानाद् विभज्यान्यत्र नयनं 'विहरणम्'। तच्च समानच्छन्दस्कयोरेव भवति, तद् व्यावृत्त्यर्थमुच्यते—'छन्दांस्येव व्यतिषजति'—इति। परस्परविलक्षणानि च्छन्दांस्येव व्यतिषक्तानि कुर्युरिति। तत्र कस्य च्छन्दसः केन छन्दसा सह व्यतिषङ्ग इति, तदेतदुदाहरणपूर्वकं प्रदर्श्यते—'आ त्वा वहन्तु'[1]—इत्यादिकास्तिस्र ऋचः गायत्रीछन्दस्काः, 'उपोषु'[2]—इत्येका 'सुसंदृशम्'[3]—इति द्वे; एतास्तिस्रः पङ्क्तिछन्दस्काः, ता उभयीः परस्परं व्यतिषजन् मिश्रयेत्। गायत्र्याः प्रथमपादमुक्त्वा तेन सह पङ्क्तेः प्रथम पादमुच्चारयेत्। सोऽयं प्रकारोऽस्माभिः पूर्वमेवोदाहृतः। लोके 'पुरुषो गायत्रः' उप नीतेन

(१) ऋ० १.१६.१-३। (२) ऋ० १.८२.१। (३) ऋ० १.८२.३,४।

गायत्र्या अनुष्ठेयत्वात् 'पशवश्च पाङ्क्ताः' चतुर्भिः पादैर्मुखेन च पञ्चसंख्योपेतत्वात्। तत्र गायत्रीपङ्क्त्योर्मेलनेन पुरुषस्य पशूनां च मेलनं भवति। अतः पुरुषं पशुषु प्रतिष्ठापयति। किं च यद्रूपेणैव कारणेन गायत्री च पङ्क्तिश्च मिलिते सत्येते द्वे अनुष्टुभौ सपंद्येते। गायत्र्यास्त्रिपादत्वात्, पङ्क्तेश्च पञ्चपादत्वात्, मिलित्वाऽष्टानां पादानां विद्यमानत्वात् 'तेनो' तेनैव मेलनेन कारणेनायं पुरुषो वाग्रूपादनुष्टुब् रूपाद् वज्ररूपाच्च 'नैति' कदाचिदपि वियुक्तो न भवति। शस्त्रस्याक्षरात्मकत्वेन वाग्रूपत्वम्, अष्टपादसंपत्तावनुष्टुब्द्वयरूपत्वम्, षोडशिनः पश्वादिनियामकत्वेन वज्ररूपत्वम्, अतो नास्ति त्रिविधवियोगम्।।

छन्दोन्तरयोर्विहरणं विधत्त—

(उष्णिग्बृहत्योर्विहरणप्रकारः)

'यदिन्द्र पृतनाज्ये' 'अयं ते अस्तु हर्यतः' इत्युष्णिहश्च बृहतीश्च व्यतिषजत्यौष्णिहो वै पुरुषो, बार्हताः पशवः, पुरुषमेव तत्पशुभि-र्व्यतिषजति, पशुषु प्रतिष्ठापयति; यदुष्णिक् च बृहती च ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो वाचो रूपादनुष्टुभो रूपाद् वज्ररूपान्नैति ।।२।।

हिन्दी—(अन्य छन्दों के विहरण का विधान कर रहे हैं—) 'यदिन्द्र पृतनाज्ये' और 'अयं ते अस्तु' **इति उष्णिहः च बृहतीः च** क्रमशः इस (तीन) उष्णिक् और (तीन) बृहती (छन्दस्क ऋचाओं) को **व्यतिषजति** मिलाता है। **उष्णिहः ह पुरुषः** पुरुष उष्णिक् है और **बृहतीः पशवः** और पशु बृहती (छन्दस्क) है। **तत्** इस (मिलाने) से **पुरुषमेव** पुरुष को ही **पशुभिः व्यतिषजति** पशुओं से मिलाता है। **पशुषु प्रतिष्ठापयति** (पुरुष को) पशुओं में प्रतिष्ठापित करता है। **यद् उष्णिक् च बृहती च** जो उष्णिक् और बृहती हैं **ते द्वे अनुष्टुभौ** वे (मिल कर) दो अनुष्टुप् होते हैं। **तेन** उस (दोनों के मिश्रण) से **वाचः रूपात्** वाणी रूप से, **अनुष्टुभः रूपात्** अनुष्टुप् रूप से और **वज्ररूपात्** वज्ररूप से **न एति** (यजमान) अलग नहीं होता।

सा०भा०—'यदिन्द्र'[1] इत्यादिकास्तिस्र उष्णिक्छन्दस्का ऋचः, 'अयं ते अस्तु'[2]—इत्यादिकास्तिस्रो बृहतीछन्दस्काः। उपनीतः पुरुषो व्याहृत्यक्षरचतुष्टयोपेतां चतुर्विंशत्यक्षरां गायत्रीं व्यतिषजति, उष्णिक् चाष्टाविंशत्यक्षरा ततः पुरुषस्यौष्णिहत्वम्, पशूनां बार्हतत्वं शाखान्तरे श्रुतम्—'छन्दांसि पशुष्वाजिमयुस्तान् बृहत्युदयजत्, तस्माद् बार्हताः पशव उच्यन्ते'[3] इति। बृहतीं च षट्त्रिंशदक्षरा, तस्या उष्णिग्योगे सति चतुःषष्ट्यक्षरसंपत्तेरनुष्टुब्द्वयम्।।

छन्दोन्तरयोर्विहरणं विधत्ते—

---

(१) ऋ० ८.१२.२५-२७। (२) ऋ० ३.४४.१-३।
(३) तै०सं० ५.३.२.३।

(द्विपदात्रिष्टुभोर्विहरणप्रकारः)

'आ धूर्ष्वस्मै' 'ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृति जुषाण' इति द्विपदां च त्रिष्टुभं च व्यतिषजति; द्विपाद वै पुरुषो वीर्यं त्रिष्टुप्' पुरुषमेव तद्वीर्येण व्यतिषजति, वीर्ये प्रतिष्ठापयति, तस्मात् पुरुषो वीर्ये प्रतिष्ठितः सर्वेषां पशूनां वीर्यवत्तमो यदु द्विपदा च विंशत्यक्षरा त्रिष्टुप् च, ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो वाचोरूपाद् अनुष्टुभोरूपाद् वज्ररूपान्नेति ।।३।।

हिन्दी—(अन्य छन्दों के विहरण का विधान कर रहे हैं—) **'आ धूर्ष्वस्मै'** और **'ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृति जुषाण' इति द्विपदां च त्रिष्टुभं च** क्रमशः इन दो पादों वाली और त्रिष्टुप् छन्दस्क (ऋचाओं) को **व्यतिषजति** मिलाता है। **द्विपाद् वै पुरुषः** पुरुष दो पादों वाला होता है, और **वीर्यं त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् वीर्य (बल) रूप है। **तद्** इस (मिलाने) से **पुरुषमेव** पुरुष को ही **वीर्येण व्यतिषजति** बल से मिलाता है और **वीर्ये प्रतिष्ठापयति** (पुरुष को) बल में प्रतिष्ठित करता है। **तस्मात्** इसी कारण **पुरुषः** पुरुष **सर्वेषां पशूनाम् वीर्यवत्तमः** सभी प्राणियों में सर्वशक्तिमान होता है। **यदु द्विपदा च विंशत्यक्षरा** जो (बीस अक्षरों वाली) द्विपदा और **त्रिष्टुप् च** (चौवालिस अक्षरों वाला) त्रिष्टुप् है **ते द्वे अनुष्टुभौ** वे दो अनुष्टुप् हैं। **तेन** उस (मिलाने) से (यजमान) **वाचः रूपात्** वाणी रूप से, **अनुष्टुभः रूपात्** अनुष्टुप् रूप से और **वज्ररूपात्** वज्र रूप से **न ऐति** अलग नहीं होता।

सा०भा०—'आ धूर्ष्वस्मै'[१] इत्येषा पादद्वयोपेता, 'ब्रह्मन् वीरं' इत्येषा त्रिष्टुप्छन्दस्का; पुरुषस्य द्विपात्त्वं प्रसिद्धम्, त्रिष्टुभो वीर्यहेतुत्वाद् वीर्यत्वं,[२] तस्मादुभयमेलनेन पुरुषं वीर्ये प्रतिष्ठापयति। तस्माल्लोकेऽपि सर्वेषां द्विपदां चतुष्पदानां पशूनां मध्ये पुरुषस्य शक्त्याधिक्यात् पुरुषो वीर्ये प्रतिष्ठितः। द्विपदा चेयं विंशत्यक्षरा; अष्टाक्षरे प्रथमे पादे संयुक्ताक्षरयोर्विभागेन पञ्चाक्षरत्वे सति दशसंख्यापूर्तेः। एवं पञ्चाक्षरैस्त्रिष्टुभश्चतुर्णां पदानां संधातम्। त्रिष्टुप्चतुःचत्वारिंशदक्षरा। मिलित्वा चतुःषष्टिसंपत्त्याऽनुष्टुब्द्वयं संभवति।।

छन्दोन्तरयोर्विहरणं विधत्ते—

(द्विपदाजगत्योर्विहरणप्रकारः)

'एष ब्रह्मा', 'प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी' इति द्विपदाश्च जगतीश्च व्यतिषजति; द्विपाद् वै पुरुषो जागताः पशवः, पुरुषमेव तत् पशुभिर्व्यतिषजति, पशुषु प्रतिष्ठापयति; तस्मात् पुरुषः पशुषु प्रतिष्ठितः, अत्ति चैनान् अधि च तिष्ठति, वशे चास्य; यदु द्विपदा च षोळशाक्षरा जगती च, ते द्वे अनुष्टुभौ, तेनो वाचो रूपादनुष्टुभो रूपाद् वज्र-

(१) ऋ० ७.३४.४। (२) ऋ० ७.२९.२।

रूपान्नैति ।।४।।

हिन्दी—(अन्य छन्दों के विहरण को कह रहे हैं—) 'एष ब्रह्मा' और 'प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी' **इति द्विपदाः च जगती च** क्रमशः इन (तीन) द्विपदा और (तीन) जगती (ऋचाओं) को **व्यतिषजति** मिलाता है। **द्विपाद् वै पुरुषः** पुरुष दो पादों वाला होता है और **जागताः पशवः** पशु जगती से सम्बन्धित होते हैं। **तत्** इस (मिलाने) से **पुरुषमेव** पुरुष को ही **पशुभिः व्यतिषजति** पशुओं से मिलाता है और **पशुषु प्रतिष्ठापयति** (पुरुष को) पशुओं में प्रतिष्ठापित करता है। **तस्मात्** इसी कारण **पुरुषः पशुषु प्रतिष्ठितः** पुरुष पशुओं में प्रतिष्ठित होकर **एनान् अत्ति** इन (पशुओं के दुग्धादि) का भक्षण करता है और **अधि च तिष्ठति** इनका नियमन करता है। **वशे च अस्य** इस मनुष्य के वश में (सभी पशु रहते हैं)। **यदु षोडशाक्षरा द्विपदा** जो सोलह अक्षरों वाली द्विपदा और **जगती च** (अड़तालिस अक्षरों वाली) जगती छन्द हैं **ते द्वे अनुष्टुभौ** वे दो अनुष्टुप् होते हैं। **तेन** उस (मिश्रण) से (यजमान) **वाचः रूपात्** वाणीरूप से, **अनुष्टुभः रूपात्** अनुष्टुप् रूप से और **वज्ररूपात्** वज्र रूप से **न एति** अलग नहीं होता।

सा० भा०—'एष ब्रह्मा'[1] इत्यादिकास्तिस्रो द्विपदा, 'प्र ते महे'[2] इत्यादिकास्तिस्रो जगत्यः। पशूनां जागतत्वं शाखान्तरे सोमाहरणकथायां श्रूयते—'सा पशुभिश्च दीक्षया चागच्छत् तस्माज्जगती छन्दसां पशव्यतमा'[3] इति। यस्मान्मेलनेन पुरुषं पशुषु प्रतिष्ठायति, तस्मादयं पुरुषः पशुषु प्रतिष्ठितः, तस्मिन् क्षीरादिकमत्ति च, 'ऐनान्' पशून् 'अधितिष्ठति' नियमयति च; तस्माद् 'अस्य' पुरुषस्य वशे सर्वे पशवो वर्तन्ते। 'यदु' यस्मादेव कारणादियं द्विपदा षोडशाक्षरा, जगति चाष्टाचत्वारिंशदक्षरा, तां मिलित्वा चतुःषष्टित्वचादनुष्टुब्द्वयत्वम्।।

छन्दोन्तरसंयुक्ताः काश्चिदृचो विधत्ते—

(अतिच्छन्दोनामनिर्वचनम्)

'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरम्', 'प्रो ष्वस्मै पुरोरथम्' इत्यतिच्छन्दसः शंसति, च्छन्दसां वै यो रसोऽत्यक्षरत्, सोऽतिच्छन्दसमभ्यत्यक्षरत्, तदतिच्छन्दसोऽतिच्छन्दस्त्वं, सर्वेभ्यो वा एष च्छन्दोभ्यः सन्निर्मितो यत्षोडशी, तद् यदातिच्छन्दसः शंसति सर्वेभ्य एवैनं तच्छन्दोभ्यः संनिर्मिमीते ।।५।।

हिन्दी—(अन्य छन्दों से संयुक्त कुछ ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरम्' और 'प्रोष्वस्मै पुरो रथम्' **इति अतिच्छन्दसः शंसति** इन दो अतिच्छन्दस्क

---

(१) साम० १.४३८, २.१११८। तै०ब्रा० ३.७.९.५। आश्व०श्रौ० ६.२.६।

(२) ऋ० १०.९६; १-३। (३) तै०सं० ६.१.६.२।

(तृचों) का शंसन करता है। **छन्दसाम्** (गायत्री इत्यादि) छन्दों का **यः रसः** जो रस **अत्यक्षरत्** अतिशय रूप से स्रवित हुआ, **सः अतिच्छन्दसम् अभि** वह अतिच्छन्द को अभिलक्षित करके **अत्यक्षरत्** अत्यधिक रूप से स्रवित हुआ। **तत्** वही **अतिच्छन्दसः अतिच्छन्दस्त्वम्** अतिच्छन्द का अतिच्छन्द नाम वाला होना है। **यत् षोडशी** जो षोडशी है, **एषः सर्वेभ्यः छन्दोभ्यः** यह सभी छन्दों से **सन्निर्मितः** सम्यक् प्रकार से निर्मित है। **तत्** जो **यद् अतिच्छन्दसः शंसति** जो अतिच्छन्द का शंसन करता है **तत्** इस (शंसन) से **एनम्** इस (षोडशी) को **सर्वेभ्यः छन्दोभ्यः एव** सभी छन्दों द्वारा ही **सन्निर्मिमीते** सम्यक् रूप से निर्मित (सम्पन्न) करता है।

सा०भा०—'त्रिकद्रुकेषु'[1] इति तृचे यास्तिस्र ऋचः, ता अतिच्छन्दोयुक्ताः, तथा 'प्रो ष्वस्मैः'[2] इति तृचोऽपि; ता उभयोः शंसेत्। 'छन्दसां' गायत्र्यादीनां यो 'रसः' सारः 'अत्यक्षरद्' अतिशयेनःस्रवत् तदानीं स रसोऽतिच्छन्दसमभिलक्ष्यातिशयेनास्रवत्। 'तत्' तस्माच्छन्दोरसस्यातिशयेन स्रवणादतिच्छन्दस्त्वं नाम संपन्नम्। षोडशी चोक्तप्रकारेण सर्वेभ्यः छन्दोभ्यः सम्यङ्निर्मितः, तस्मादतिच्छन्दसां शंसनेनायं होता 'एनं' यजमानं सर्वच्छन्दोभ्यो निर्मिमीते॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वेभ्यश्छन्दोभ्यः संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद ।।६।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वेभ्यः छन्दोभ्यः** सभी छन्दों द्वारा **सन्निर्मितेन षोडशिना** सम्यक् रूप से निर्मित षोडशी से **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षोडशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षोडश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा०भा०—अथ पूर्वोक्तानामतिच्छन्दसामनुष्टुप्संपादनाय मेलनं विधत्ते—

(महानाम्नीनामोपसर्गाणामुपसर्जनप्रकारः)

महानाम्नीनामुपसर्गानुपसृजति ।।१।।

---

(१) ऋ० २.२२.१-३।   (२) ऋ० १०.१३३.१-३।

हिन्दी—(अब पूर्वोक्त अतिच्छन्दों के अनुष्टुप्-सम्पादन के लिए उनके मिलाने का विधान कर रहे हैं—) **महामाम्नीनाम् उपसर्गान् उपसृजति** महानाम्नी-सम्बन्धी (पाँच) उपसर्गों का संयोजन करता है।

विमर्श—(१) ऐतरेयारण्यक के चतुर्थारण्यक के प्रथम खण्ड में नौ महानाम्नी ऋचाओं को कहा गया है। उनमें पाँच उपसर्ग प्रयुक्त है—प्रचेतन और प्रचेतय (द्वितीय महानाम्नी ऋचा में प्रयुक्त), आयाहि पिब मत्स्व (तृतीय ऋचा में प्रयुक्त), क्रतुच्छन्द ऋत बृहत् (षष्ठ ऋचा में प्रयुक्त) तथा सुम्न आ धेहि न वसौ (अष्टमी ऋचा में प्रयुक्त)। पाँचों उपसर्ग मिलकर बत्तीस अक्षरों वाले हो जाते हैं। इनसे एक अनुष्टुप् छन्द निष्पन्न हो जाता है। इन्हें कभी विच्छेद न करते हुए निरन्तर अविहृत पढ़ा जाता है और कभी विच्छेद करके अतिच्छन्दों में जोड़ा जाता है (द्र० ऐ०आ० ४.१.१-९)।

सा० भा०—'विदा मघवन्'—इत्यस्मिन्ननुवाके प्रोक्ता ऋचो 'महानाम्न्यः' तासां सम्बन्धिन उपसर्गाः पञ्चविधाः। ते च आश्वलायनेन दर्शिताः—'प्र चेतन, प्र चेतया, आयाहि पिब मत्स्व, क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत्, सुम्न आ धेहि नो वसवित्यनुष्टुप्' इति ! तत्र 'प्र चेतन-इत्येकः प्रथम उपसर्गः', 'प्र चेतय'-इति द्वितीयः, तावभावपि द्वितीयस्यां महानाम्न्या-माम्नातौ 'आयाहि पिब मत्स्व'—इति तृतीया उपसर्गः, तृतीयस्यां महानाम्न्यामाम्नातः। 'क्रतुश्छन्द ऋतं बृहद्'–इत्ययं चतुर्थ उपसर्गः, स च षष्ठ्यां महानाम्न्यामाम्नातः। 'सुम्न आ धेहि नो वसविति' पञ्चम उपसर्गः; स चाष्टम्यां महानाम्न्यामाम्नातः। एतेषु पञ्चसूपसर्गेषु मिलित्वा द्वात्रिंशदक्षरसद्भावाद् इयमेकाऽनुष्टुबिति सूत्रस्थार्थः। इयं चानुष्टुबविहृतषोळशिनि तथैव पठनीयशः, अन्यत्र तु विहृतषोळशिनि पञ्चाप्युपसर्गान् विभज्यातिच्छन्दःसु पञ्चसु योजनीयाः। अत एवोपसृज्यमानत्वाद् उपसर्गा इत्युच्यन्ते। तदेतत्संयोजनमत्र 'उपसृजति' इति शब्देन विधीयते। 'त्रिकद्रुकेषु'–इति येयं प्रथमाऽतिच्छन्दाः तस्याश्चतुःषष्ट्यक्षरत्वात् न पराण्यपेक्षते सेयमनुष्टुब्द्वयसंपत्तिः शक्येति। द्वितीयस्यामृचि तदनुष्टुब्द्वयं पूरयितुं 'प्र चेतन'–इत्यक्षरचतुष्टयं योजनीयम्, तृतीयस्यामृचि 'प्रचेतय'–इति योजनीयम्। 'प्रो ष्वस्मै'–इत्यादिषु तिसृषु अवशिष्टास्त्रय उपसर्गाः क्रमेण योजनीयाः। पादयोरवतान्त उपदध्यात्, प्र चेतनेति पूर्वस्यां, प्रचेतयेत्युत्तरस्याम्, उत्तरास्वितरान् पादान् षष्ठान् कृत्वाऽनुष्टुप्कारं शंसेत्'[१] इति॥

अथ महानाम्नीः प्रशंसति—

(महानाम्नीप्रशंसनम्)

अयं वै लोकः प्रथमा महानाम्न्यन्तरिक्षलोको द्वितीयाऽसौ लोक-स्तृतीया, सर्वेभ्यो वा एष लोकेभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी, तद् यन्महानाम्नीनामुपसर्गानुपसृजति, सर्वेभ्य एवैनं तल्लोकेभ्यः

---

(१) अश्व०श्रौ० ६.३.११,१२।

संनिर्मिमीते ।।२।।

हिन्दी—(अब महानाम्नी ऋचाओं की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अयं वै लोकः प्रथमा महानाम्नी** प्रथमा महानाम्नी यह (पृथिवी) लोक है, **अन्तरिक्षलोकः द्वितीया** द्वितीय (महानाम्नी) अन्तरिक्ष लोक है और **असौ लोकः तृतीया** तृतीया (महानाम्नी) वह द्युलोक हैं, **यत् षोडशी** जो षोडशी है, **एषः सर्वेभ्यः लोकेभ्यः सन्निर्मितः** वह सभी लोकों से सम्यक् प्रकार से निर्मित है। **तत्** जो **यद् महानाम्नीनाम् उपसर्गान् उपसृजति** जो माहनाम्नी (मन्त्रों) से सम्बन्धित उपसर्गों को संयोजित करता है **तत्** उस (संयोजन) से **एनम्** इस (षोडशी) को **सर्वेभ्यः लोकेभ्यः** सभी लोकों के लिए **सन्निर्मिमीते** सम्यक् प्रकार से निर्मित करता है।

सा० भा०—प्रथमत्वादिसाम्येन लोकत्रयरूपत्वं तृचां द्रष्टव्यं, षोडशिनो लोकत्रये निर्मितत्त्वात्। महानाम्नीनामुपसर्गैः संयोजने सति तन्निर्माणं सिध्यति।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वेभ्यो लोकेभ्यः संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद ।।३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वेभ्यः लोकेभ्यः** सभी लोकों के लिए **सन्निर्मितेन षोडशिना** सम्यक् प्रकार से निर्मित षोडशी द्वारा **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है।

अथ विहरणनैरपेक्ष्येणाध्यापकैः प्रज्ञाताः नवानुष्टुभो विधत्ते—

(विहरणनैरपेक्षेणाध्यापकैः प्रज्ञातानां नवानामानुष्टुभां विधानम्)

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषमर्चत प्रार्चत, यो व्यतींरफाणयदिति प्रज्ञाता अनुष्टुभः शंसति, तद् यथेह चेह चापथेन चरित्वा पन्थानं पर्यवेयात् तादृक् तद् यत्प्रज्ञाता अनुष्टुभः शंसति ।।४।।

हिन्दी—(अब विहरण की निपरपेक्षता के कारण अध्यापकों द्वारा प्रज्ञात नौ अनुष्टुप् छन्दस्क ऋचाओं का विधान कर रहे हैं—) 'प्र प्र वस्त्रिष्टुभमिषम्' 'अर्चत प्रार्चत' और 'यो व्यतींरफाणयत्' **इति प्रज्ञाताः आनुष्टुभः** इन (तीन) अनुष्टुप् छन्द वाले प्रज्ञात (तृचों) का **शंसति** शंसन करता है। **तद् यथा** वह (शंसन) उसी प्रकार वाला है, जैसे–**इह** इस (लोक) में **अपथेन चरित्वा** कोई (अनभिज्ञ) अन्य मार्गों पर चल कर **पन्थानं पर्यवेयात्** पुनः (मार्ग को जानकर उस) मार्ग पर लौट जाये।

सा० भा०—'प्रप्र वः' इत्येकस्तृचः प्रथमः 'अर्चत'[1]–इति द्वितीयः, 'यो व्यतीन्'[2]–इति तृतीयः। यथा लोके कश्चिन्मार्गानभिज्ञः तत्र केनचिदपथेन चरित्वा पश्चादुन्मुखेन विज्ञाय

(१) ऋ० ८.६९.८-१०। (२) ऋ० ८.६९.१३-१५।

समीचीनं पन्थानं परिगच्छेत्, एवमत्रापि पूर्वोक्तरीत्या कृत्रिमा अनुष्टुभः शस्त्वा पश्चादेतासां स्वतःसिद्धानामनुष्टुभां शंसनं द्रष्टव्यम्।।

पूर्वत्र सामविशेषमुपजीव्य विहृताविहृतयोः शस्त्रविशेषयोर्व्यवस्था दर्शिता। इदानीं पुरुषविशेषमुपजीव्य तां व्यवस्थां दर्शयति—

(सामविशेषमुपजीव्य विहृताविहृतयोर्व्यवस्था)

स यो व्याप्तो गतश्रीरिव मन्येताविहृतं षोळशिनं शंसयेन्नेच्छन्दसां कृच्छादवपद्या इत्यथ यः पाप्मानमपजिघांसुः स्याद् विहृतं षोळशिनं शंसयेद्, व्यतिषक्त इव वै पुरुषः पाप्मना व्यतिषक्तमेवास्मै तत्पाप्मानं शमलमपहन्ति ।।५।।

हिन्दी—(पहले सामविशेष को उपजीव्य बनाकर विहृत और अविहृत दोनों शस्त्र-विशेषों की व्यवस्था को दिखला कर अब पुरुषविशेष को उपजीव्य बनाकर उस व्यवस्था को दिखला रहे हैं—) **यः** जो (व्यक्ति) **व्याप्त गतश्रीः इव** (पुत्र-पौत्रादि से व्याप्त तथा प्राप्त श्री वाला (श्रीसम्पन्न) **मन्येत** अपने को समझे जो कि **सः** वह (व्यक्ति) **छन्दसां कृच्छ्रात् नेत् अपवद्यै** (पूर्वोक्त गायत्री इत्यादि) छन्दों के विहरण क्लेश से आपत्ति की प्राप्ति न होने के लिए **अविहृतं षोडशिनं** अविहृत षोडशी का **शंसयेत्** (होता द्वारा) शंसन करावे। **अथ यः** और जो **पाप्मानम् अपजिघांसुः स्यात्** पाप को विनष्ट करने की कामना करने वाला हो (तो वह) **विहृतं षोडशिनं शंसयेत्** (होता द्वारा) विहृत षोडशी का शंसन करावे। **पुरुषः पाप्मना व्यतिषक्त इव** (वस्तुतः) पुरुष पाप से मिश्रित हुआ ही होता है **तत्** इस (शंसन) से **अस्मै** इस (यजमान) के लिए **पाप्मानं शमलम्** पाप रूप दोष को **व्यतिषक्तमेव** विनष्ट ही कर देता है।

सा०भा०—'सः' लोकप्रसिद्धः, यः पुरुषः पुत्रपौत्रादिभिः व्याप्तो 'गतश्रीरिव' प्राप्त-श्रीवत् समृद्धधन एवाहमिति मन्येत, स पुमान् 'अविहृतं' विहरणरहितं षोळशिनं 'शंसयेत्' अविहृते शस्त्रे होतारं प्रेरयेत्। तस्य कोऽभिप्राय? इति स उच्यते—'छन्दसां कृच्छ्रात्' पूर्वोक्तानां गायत्र्यादीनां विहरणक्लेशात् 'अवपद्यै', अवपत्तिमापदं प्राप्नुयां तन्मा भूदिति विहरणप्रयुक्तिभीतिद्योतनार्थो 'नेत्'—इति शब्दः। 'अथ यः' पुमान् पुत्रधनराहित्यरूप 'पा-प्मानम्' 'अपजिघांसुः' अपहन्तुमिच्छन् स्यात् स पुमान् विहृते शस्त्रे होतारं प्रेरयेत्। अयं पुरुषो दारिद्र्यादिरूपेण 'पाप्मना' 'व्यतिषक्त इव वै' मिश्रित एव। तस्माद् विहृतप्रयोगेण पापरूपं 'शमलं' मालिन्यहेतुं 'व्यतिषक्तं' दारिद्र्यादिसम्बद्धमपहन्ति।।

वेदनं प्रशंसति—

अप पाप्मानं हते य एवं वेद ।।६।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता

है वह **पाप्मानम् अपहते** पाप से मुक्त हो जाता है।

सा०भा०—अथ शस्त्रसमापनीयां कांचिद् ऋचं विधत्ते—

(षोडशीशस्त्रस्य परिधानीयायाः विधानम्)

'उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपम्' इत्युत्तमया परिदधाति, स्वर्गो वै लोको ब्रध्नस्य विष्टपं, स्वर्गमेव तल्लोकं यजमानं गमयति ।।७।।

हिन्दी—(अब शस्त्र के समापन वाली ऋचा का विधान कर रहे हैं—) 'उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपम्' **इत्युत्तमया परिदधाति** इस अन्तिम ऋचा से शस्त्र का समापन करता है। **स्वर्गः वै लोकः ब्रध्नस्य विष्टमम्** स्वर्गलोक ही आदित्य का स्थान है। **तत्** इसके (शंसन) से **स्वर्गमेव लोकम्** स्वर्गलोक को ही **यजमानं गमयति** यजमान को प्राप्त कराता है।

सा०भा०—अस्यामृचि 'ब्रध्नस्य विष्टपम्'[1]–इति श्रूयते,—आदित्यो 'ब्रध्न' शब्द-वाच्यः, 'असौ वा आदित्यो ब्रध्नः' इति श्रुत्यन्तरात्। तस्य 'विष्टपं' स्थानं स्वर्गलोकः, अतः तत्पाठेन यजमानं स्वर्गं प्रापयति।।

शस्त्रयाज्यां विधत्ते—

(याज्याविधानम्)

'अपाः पूर्वेषां हरिव सुतानाम्'[2]–इति यजति ।।८।।

हिन्दी—(शस्त्र की याज्या का विधान कर रहे हैं—) 'आपः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्' अर्थात् हे इन्द्र! (षोडशी से) पहले ही सवन किये गये (सोम) को पीते हो'—**इति यजति** इस (ऋचा) से (शस्त्र की) याज्या करता है।

सा०भा०—'हरिवः' हे, इन्द्र षोळशिनः पूर्वेषां 'सुतानां' सोमानां, रसमिति शेषः। 'अपाः' पीतवानसीति प्रथमपादस्यार्थः।।

तमिमं पादं प्रशंसति—

सर्वेभ्यो वा एष सवनेभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी, तद् यद् 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्'–इति यजति, पीतवद्धै प्रातःसवनं, प्रातःसवनादेवैनं तत्संनिर्मिमीते ।।९।।

हिन्दी—('अपाः पूर्वेषां' इस ऋचा के पूर्वोक्त प्रथम पाद की प्रशंसा कर रहे हैं-) **यत् षोडशी** जो षोडशी हे, **एषः** यह **सर्वेभ्यः सवनेभ्यः वै** सभी सवनों से **संन्निर्मितः**

---

(१) ऋ० ८.६९.७।

(२) ऋ० १०.९६.१३।

सम्यक् रूप से निर्मित है। **तद् यत्** तो जो 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्' **इति यजति** इस (ऋचा) से याज्या करता है, तो **पीतवद् वै प्रातःसवनम्** प्रातःसवन (इन्द्र द्वारा) पान किया गया ही हो जाता है। **तत्** इस (याज्या) से **प्रातःसवनादेव** प्रातःसवन से ही **एनम्** इस (षोडशी) को **सन्निर्मिमीते** सम्यक् रूप से निर्मित करता है।

सा० भा०—यः षोळशी विद्यते, एष सर्वेभ्यः सवनेभ्यः सम्यङ्निर्मित इत्येवं संपादनीयम्। तथा सति तद् यद् 'अपाः पूर्वेषाम्'–इति पादं पठेत्, तदानीं तत्र प्रातःसवनं 'पीतवत्' इन्द्रेण पीतमेवेत्ययमर्थः प्रतीयते। तस्मात् 'एनं' षोडशिनं प्रातःसवनादेव निर्मितवान् भवति।।

तस्या ऋचो द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'अथो इदं सवनं केवलं त' इति, माध्यंदिनं वै सवनं केवलं, माध्यंदिनादेवैनं तत्सवनात् संनिर्मिमीते ।।१०।।

हिन्दी—(उस ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) 'अथो इदं सवनं' **केवलं ते** अर्थात् (हे इन्द्र) यह (माध्यन्दिन) सवन केवल तुम्हारा ही है'—इति यह (ऋचा का द्वितीय पाद है)। **माध्यन्दिनं वै सवनं केवलम्** माध्यन्दिन सवन केवल तुम्हारा है' (–यह अर्थ है)। **तत्** इस (शंसन) से **माध्यन्दिनाद् एव सवनात्** माध्यन्दिन सवन से ही **एनम्** इस (षोडशी) को **सन्निर्मिमीते** सम्यक् प्रकार से निर्मित करता है।

सा० भा०—'अथो' अपि च हे इन्द्र, 'इदं' माध्यदिनं सवनं 'ते केवलं' तवैव सर्वम्। अस्मिन् पादे केवलं सवनमपीन्द्रस्येत्येतदुपपन्नम्, इन्द्रेण पुरो द्वारं वृण्वता माहेन्द्रं ग्रहं माध्यदिनं सवनानां निष्केवल्यादीनां स्वार्थमेव कृतत्वात्। अत एतत्पादपाठेन माध्यंदिनसवनात् षोडशी निर्मिता भवति।।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्रेति' मद्वद्वै तृतीयसवनम्, तृतीयसवनादेवैनं तत्संनिर्मिमीते ।।११।।

हिन्दी—(ऋचा के तृतीयपाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र' अर्थात् हे इन्द्र! मधुरतायुक्त सोम का (पान करके) प्रसन्न होवो' इति यह (ऋचा का तृतीय पाद है)। **मद्वद् वै तृतीयसवनम्** तृतीयसवन ही मद् शब्द से सम्पन्न है। **तत्** इस (पाद के शंसन) से **तृतीयसवनाद् एव एनम् सन्निर्मिमीते** तृतीयसवन से ही इस (षोडशी) को सम्यक् प्रकार से निर्मित करता है।

सा० भा०—हे इन्द्र, 'मधुमन्तं' माधुर्यरसोपेतं सोमं पीत्वा 'ममद्धि' मदं हर्षं प्राप्नुहि।

अस्मिन् पादे मदिधात्वर्थः श्रूयते। तृतीयसवनमपि 'मद्वद्वै' मदिधातूपेतम्' निवित्पदेषु[१] मदिधातोर्विद्यमानत्वात्। तस्मादेतत्पादपाठेन षोडशी तृतीयसवनान्निर्मितो भवति।।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

'सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व' इति वृषण्वद्वै षोळशिनो रूपम्, सर्वेभ्यो वा एष सवनेभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी; तद् यद् 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्' इति यजति, सर्वेभ्य एवैनं तत्सवनेभ्यः संनिर्मिमीते ।।१२।।

हिन्दी—(अब चतुर्थपाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'सत्रा वृषञ्जठर आ जुषस्व' अर्थात् हे वर्षणशील (इन्द्र) सोमपानरूप सत्र में अपने उदर में (सोम रस की) वृष्टि करो'—**इति** यह (ऋचा का चतुर्थ पाद है)। **वृषण्वद् वै षोडशिनः रूपम्** 'वृषन्' शब्द से सम्पन्न षोडशी का रूप है। तो **यत् षोडशी** जो षोडशी है, **एषः** यह **सर्वेभ्यः वै सवनेभ्यः** सभी सवनों से ही **सन्निर्मितः** सम्यक् प्रकार से निर्मित है। **तत्** तो 'अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानाम्' **इति यद् यजति** इस (ऋचा) से जो याज्या करता है **तत्** उस (याज्या) से **सर्वेभ्यः सवनेभ्यः** सभी सवनों से **एनम्** इस (षोडशी) को **सन्निर्मिमीते** सम्यक् प्रकार से निर्मित करता है।

सा०भा०—हे 'वृषन्' वर्षणसमर्थ ! 'सत्रा' सोमयागरूपे सत्रे 'जठरे' स्वकीय उदरे 'आ वृषस्व' समन्तात् सोमरसवृष्टिं कुरु। अत्र चतुर्थपादे 'वृषन्'-शब्दो विद्यते, षोडशिस्वरूपमपि 'वृषण्वद् वर्षणोपेतम् तृप्तिहेतुत्वात्। यः षोडशी विद्यते, सोऽयमुक्तेन प्रकारेण सर्वेभ्यः सवनेभ्यो हि निर्मितः, तस्माद् 'अपाः' पूर्वेषाम्'—इति याज्यापाठेन सर्वसवनेभ्य एवैनं निर्मितवान् भवति।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वेभ्यः सवनेभ्य संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद ।।१३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वेभ्यः सवनेभ्यः** सभी सवनों से **सन्निर्मितेन षोडशिना** सम्यक् प्रकार से निर्मित षोडशी के द्वारा **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है।

अस्या याज्यायाः पादेषु पूर्ववदुपसर्गान् विधत्ते—

(याज्यायाः पादेषूपसर्गविधानम्)

महानाम्नीनां पञ्चाक्षरानुपसर्गानुपसृजत्येकादशाक्षरेषु पादेषु; सर्वेभ्यो वा एष च्छन्दोभ्यः संनिर्मितो यत्षोळशी; तद् यन्महानाम्नीनां पञ्चा-

(१) 'अस्य मदे'-इत्यादिषु (निवि० ११.१-१६)।

क्षरानुपसर्गानुपसृजत्येकादशाक्षरेषु पादेषु, सर्वेभ्य एवैनं तच्छन्दोभ्यः संनिर्मिमीते ।।१४।।

हिन्दी—(इस याज्या के पादों में पूर्ववर्ती के समान उपसर्गों का विधान कर रहे हैं—) **महानाम्नीनाम्** महानाम्नी से सम्बन्धित (पुरीष पदों के) **पञ्चक्षरान् उपसर्गान्** पाँच अक्षरों वाले ('एवा ह्यवैवा') उपसर्गों को **एकादशाक्षरेषु पादेषु** 'याज्या के' ग्यारह अक्षर वाले पादों में **उपसृजति** जोड़ता है। इस प्रकार **यत् षोडशी** जो षोडशी है, **एषः** यह **सर्वेभ्यः एव छन्दोभ्यः** सभी ही छन्दों से **सन्निर्मितः** सम्यक् प्रकार से निर्मित हो जाती है। **तद् यत्** तो जो **महानाम्नीनाम्** महानाम्नी के (पुरीषपदों के) **पञ्चक्षरान् उपसर्गान्** पाँच अक्षरों वाले ('एवा ह्यवैवा') उपसर्गों को **एकादशाक्षरेषु पादेषु** ग्यारह अक्षरों वाले पादों में **उपसृजति** मिलाता है, **तत्** इससे **सर्वेभ्यः एव छन्दोभ्यः** सभी छन्दों से ही **एनम्** इस (षोडशी) को **सन्निर्मिमीते** सम्यक् रूप से निर्मित करता है।

सा० भा०—महानाम्नीनामृचां संवन्धिनस्तदीयानुवाके समाम्नाताः 'एवा ह्यवैवा इत्यादयः पञ्चाक्षरा उपसर्गाः,[१] तानेकादशाक्षरेषु चतुर्ष्वपि पादेषु संयोजयेत्; तथा सति चतुःषष्ट्यक्षरत्वाद् अनुष्टुब्द्वयं संपद्यते। एवं सति यः षोळषी सर्वेभ्यश्छन्दोभ्यो निर्मातव्यः, सोऽयमेतत् संयोजनेन तथैव निर्मितो भवति।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वेभ्यश्छन्दोभ्यः संनिर्मितेन षोळशिना राध्नोति य एवं वेद[२] ।।१५।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वेभ्यः छन्दोभ्यः** सभी छन्दों से **सन्निर्मितेन षोडशिना** सम्यक् प्रकार से निर्मित षोडशी के द्वारा **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षोडशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ।।४।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षोडश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) आर० ४.१.१०.-१५।

(२) षोडशिसंस्थस्य ज्योतिष्टोमस्य विशेषविधय एवेषु प्रथमादिचतुःखण्डेषु विहिताः, एभ्योऽग्निष्टोमवत्। आश्वलायनेनापि 'अथ षोळशी'—इत्यारभ्य 'भजजपः'—इत्यन्तेन ग्रन्थेन (६.२.३) तथैवोक्तः। 'षोडशिना वीर्यकामः' इति च आपस्तम्बीय विधिसूत्रम् (१४.१.२)।

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—षोडशी समाप्तः, अथातिरात्रो वक्तव्यः; तत्रेन्द्रस्य च्छन्दसां च प्राधान्यं कथयितुमितिहासमाह—

(अतिरात्रविधानम्)

(तत्र छन्दसामिन्द्रस्य प्राधान्यं कथितुमितिहासः)

अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुरास्ते समावद्वीर्या एवासन्न व्यावर्तन्त, सोऽब्रवीद् इन्द्रः–कश्चाहं चेमानितो असुरान् रात्रीमन्ववेष्याव इति; स देवेषु न प्रत्यविन्ददबिभयू रात्रेस्तमसो मृत्योस्तस्माद्धाप्येतर्हि नक्तं यावन्मात्रमिवैवापक्रम्य बिभेति; तम इव हि रात्रिर्मृत्युरिव ।।१।।

हिन्दी—(अब अतिरात्र का कथन करने के लिए उसमें इन्द्र के छन्द की प्रधानता के निमित्त इतिहास को कह रहे हैं—) **देवाः अहः वै** देवताओं ने दिन का और **रात्रीः असुराः** असुरों ने रात्रि का **आश्रयन्त** आश्रय लिया। **ते समावद्वीर्याः आसन्** वे (देवता और असुर) समान बल वाले थे, अतः **न व्यावर्तन्त** अलग-अलग नहीं किये जा सके। तब **सः इन्द्रः अब्रवीत्** उस इन्द्र ने कहा कि **कः च अहं च** कौन और मैं (मिलकर) **इमान् असुरान्** इन असुरों को **इतः रात्रीम्** इस रात्रि से **अन्ववेष्यावः** अलग कर सकेंगे। **सः** उस (इन्द्र) ने **देवेषु न प्रत्यविन्दत्** देवताओं में किसी को नहीं प्राप्त किया; क्योंकि **रात्रेः मृत्योः तमसः अबिभयू** (वे देवता) रात्रि के भय के समान अन्धकार से भयभीत हो गये। **तस्मात्** इसी कारण **एतर्हि** आज भी **नक्तम् एतावद् मात्रम् अपक्रम्य** रात्रि में थोड़ा भी दूर जाकर **बिभेति** लोग भयभीत हो जाते हैं; क्योंकि **रात्रिः तमः इव** रात्रि अन्धकार के समान और **मृत्युः इव** मृत्यु के समान होती है।

सा० भा०—पुरा कदाचिदहोरात्रयोर्मध्ये देवा अहरेवाश्रितवन्तः, असुराश्च रात्रिमाश्रितवन्तः। 'ते' देवाश्च असुराश्च समानबला एवासन्; बलाधिक्येन वर्गान्तराद् व्यावृत्तमितरवर्गस्थानं प्राप्नुवन्। तदानीम् इन्द्रो देवान् प्रत्यब्रवीत् —मम सहायोऽपेक्षितः, हे देवाः! भवता मध्ये कश्चाहं च 'इमान्' असुरान् रात्रीमनुगतान् 'इतः' रात्र्या 'अवेष्यावः' अपसारयिष्यावः? इति। ततो विचार्य स इन्द्रो देवेषु मध्ये तादृशं शूरं कमपि प्रतीक्ष्य 'नाविन्दत्' न लब्धवान्। रात्रेः संबन्धि यत्तमो मृत्युसदृशं, तस्मात्तमसो मृत्योरिव सर्वे देवाः 'अबिभयुः' भीता अभवन्। यस्माद्देवानां भीतिः, तस्माद् इदानीमपि 'यावन्मात्रमिवैव' यत्किंचिदपि वा दूरं रात्रौ गृहादपक्रम्य सर्वः पुरुषो 'बिभेति' 'तम इव हि' तमरूपैव रात्रिः, तस्मान्मृत्युरिव भयहेतुः।।

अथ च्छन्दसामिन्द्रसहकारित्वं दर्शयति—

(छन्दसामिन्द्रसहकारित्वकथनम्)

तं वै छन्दांस्येवान्ववायंस्तं यच्छन्दांस्येवान्वायंस्तस्मादिन्द्रश्चैव च्छन्दांसि च रात्रीं वहन्ति; न निविच्छस्यते, नु पुरोरुङ्, न धाय्या, नान्या देवतेन्द्रश्च; ह्येव च्छन्दांसि च रात्रीं वहन्ति ।। २।।

हिन्दी—(अब छन्दों के इन्द्र के सहयोगी होने को दिखला रहे हैं—) **तम्** उस (असुरों के निराकरण में प्रवृत्त इन्द्र) का **छन्दांसि एव** छन्दों ने ही **अन्वपायम्** अनुसरण (सहयोग) किया। **यत् छन्दांसि अन्ववायन्** जो छन्दों ने अनुसरण किया **तस्मात्** इसी कारण **इन्द्रः च छन्दांसि च** इन्द्र और छन्द (मिलकर) **रात्रीं वहन्ति** (रात्रिप्रयोग) का निर्वहन करते हैं। (वहाँ रात्रि प्रयोग में) **न निविच्छस्यते** न विवित् का प्रयोग किया जाता है, **न पुरोरुक्** न पुररुक्, **न धाय्या** न तो धाय्या और **न अन्या देवता** न (इन्द्र से) अन्य देवता (शंसित किये जाते हैं) क्योंकि **इन्द्रः च ह छन्दांसि च** इन्द्र और छन्द ही **रात्रीं वहन्ति** रात्रि (प्रयोग) का वहन करते हैं।

सा०भा०—'तं वै' असुरनिराकरणाय प्रवृत्तं तमेवेन्द्रमेकं गायत्र्यादिच्छन्दांस्येव 'अन्ववायन्' अनुगम्य निराकर्तुं गताः। यस्मादेवं तस्मादिन्द्रच्छन्दांस्येवाङ्गतया अतिरात्र-प्रयोगे 'रात्री वहन्ति' रात्रिप्रयोगस्य निर्वाहकाणि भवन्ति। इन्द्रविषयच्छन्दांस्येव तत्र श-स्यन्ते, न तु निविद्वा पुरोरुग्वा, धाय्या वा, देवतान्तरं वा, किंचिच्छस्यते। तस्मादिन्द्रः छन्दांसि चेत्येतावन्त एव निर्वाहकाः।।

तेषामिन्द्रच्छन्दसाम् असुरान् निराकरणसाधनं दर्शयति—

(इन्द्रच्छन्दसामसुरान् निराकरणसाधनम्)

तान् वै पर्यायैरेव पर्यायमनुदन्त; यत्पर्यायैः पर्यायमनुदन्त, तत्पर्यायाणां पर्यायत्वम् ।। ३।।

हिन्दी—(उन इन्द्र सम्बन्धी छन्दों में असुरों के निराकरण के साधन को दिखला रहे हैं—) **तान्** उन (रात्रि को आश्रय बनाये हुए राक्षसों) को **पर्यायैः एव** पर्यायों (चमसों के क्रमानुष्ठानों) द्वारा **पर्यायम् अनुदन्त** (यज्ञ भूमि में) घूम-घूम कर निकाल दिया। **यत् पर्यायैः पर्यायम् अनुदन्त** जो पर्यायों द्वारा घूम-घूम कर निकाला **तत् पर्यायाणां पर्यायत्वम्** वही पर्यायों का पर्याय नाम वाला होना है।

सा०भा०—'तान्' वै रात्रिमाश्रितान् असुरान् पर्यायैः चमसगणानां क्रमानुष्ठानैरेव पर्यायैः, तत्र तत्र यतमाना यागभूमौ परीत्य 'अनुदन्त' निराकृतवन्तः। यत्र यत्रासुराः सुप्ता अवस्थिताः तत्र तत्र प्रयत्नेनावेक्ष्य निःसारितवन्तः। द्वादशानां चमसगणानामनुष्ठानाय त्रयः

पर्याया: एकैकस्मिन् पर्याये चत्वारो गणा अनुष्ठीयन्ते। यस्मात् परितो गत्वा गत्वा चमस-पर्यायैर्निराकृतवन्तः, तस्मात् परिगम्य निराकरणसाधत्वात् पर्यायत्वं संपन्नम्।।

क्रमेण निराकरणप्रकारं दर्शयति—

(निराकरणप्रकारकथनम्)

तान् वै प्रथमेनैव पर्यायेव पूर्वरात्रादनुदन्त, मध्यमेन मध्यरात्राद् उत्तमेनापररात्रात् ।।४।।

हिन्दी—(अब क्रम से निराकरण-प्रकार को दिखला रहे हैं—) **प्रथमेन एव पर्यायेण** प्रथम पर्याय द्वारा **तान्** उन (राक्षसों) को **पूर्वरात्राद्** रात्रि के पूर्वभाग से, **मध्यरात्रात्** मध्यम (पर्याय) द्वारा रात्रि के मध्यभाग से और **उत्तमेन परराात्रात्** अन्तिम (तृतीय पर्याय) द्वारा रात्रि के अन्तिम भाग से **अनुदन्त** निकाल दिया।

सा० भा०—दश दश घटिका एकैको भागः, इत्येवं रात्रेस्त्रयो भागाः, चत्वारश्च-मसगणा एकः पर्यायः, इत्येवं द्वादशानां चमसगणानां त्रयः पर्यायाः; तैः क्रमेण रात्रिभाग-त्रयाद् असुरान् अपानुदन्त।।

तस्मिन्निराकरणे छन्दसां सौकर्याधिक्येन प्रशंसां दर्शयति—

अपिशर्वर्या अनुस्मसीत्यब्रुवन्नपिशर्वराणि खलु वा एतानि छन्दांसीति ह स्माहैतानि हीन्द्रं रात्रेस्तमसो मृत्योर्बिभ्यतमत्यपरायंस्तदपिशर्वरा-णामपिशर्वरत्वम् ।।५।।

हिन्दी—(उस निराकरण में छन्दों के सौकर्यातिशयता से प्रशंसा कर रहे हैं—) **शर्वर्याः** (हे इन्द्र)! सम्पूर्ण रात्रि से (राक्षसों को निकालने के लिए) **अपि अनु स्मसि** हम लोग भी (तुम्हारा) अनुगमन करके स्थित हैं—**इति अब्रुवन्** इस प्रकार (छन्दों ने इन्द्र से) कहा। (ऐसा सुनकर ऐतरेय ऋषि ने) **एतानि छन्दांसि** इन छन्दों को **अपिशर्वराणि** अपिशर्वरी—**इति ह स्म आह** इस नाम से कहा है; क्योंकि **रात्रेः मृत्योः तमसः** रात्रि के मृत्युरूप अन्धकार से **बिभ्यतम् इन्द्रम्** भयभीत इन्द्र को **एतानि** इन (छन्दों) ने **अत्यपरायन्** अतिशयरूप से पार लगाया। **तद् अपिशर्वराणम् अपिशर्वरत्वम्** यही अपिशर्वरियों का अपिशर्वरी नाम वाला होना है।

सा० भा०—हे, इन्द्र वयमपि 'शर्वर्याः' कृत्स्नाया रात्रेः सकाशाद् असुरान् अपसार-यितुं त्वामनुगम्य 'स्मसि' तिष्ठामः, इत्येवं छन्दांस्यब्रुवन्। तदेतद् वाक्यमैतरेयः श्रुत्वा तदानीमेवैतानि च्छदांसि 'अपिशर्वराणि' एवेति नाम्ना व्यवहृतवान्।[१] एतच्च युक्तम्—

(१) 'अपिशर्वरे—शर्वरीमुखेऽग्निविहरणकाले'—इति ऋ० ३.९.७। अपिशर्वरे—शर्वरी रात्रिमपिगतः कालः अपिशर्वरः'–इति च (ऋ० ८.१.२९) सा०भा०।

यस्मात् मृत्योरिव रात्रेस्तमसो बिभ्यतमिन्द्रम् 'एतानि' च्छन्दांसि अत्यपारयन्, यस्माद्धेतो रात्रिमतीत्य नीतवन्ति, तस्मात् कारणाच्छर्वर्याः सर्वस्मादपि पारनयनं द्योतयितुम् 'अपि-शर्वराणि'–इति नाम च्छन्दसां युक्तम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः प्रथमाध्याये (षोडशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षोडश अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा॰भा॰—इन्द्रस्य च्छन्दसां च प्राधान्यमभिहितम्; अथ शस्त्रं विधातव्यम्। षोड-शिपर्यन्तं पूर्ववदनुष्ठाय षोडशिन ऊर्ध्वं रात्रिपर्यायाः शंसनीयाः। तत्र त्रयः पर्यायाः। तत्रैक-पर्यायश्चतुःशस्त्रोपेतः। होतुरेकं शस्त्रं, होत्रकाणां च त्रयाणामेकैकमिति चतुष्टयम्॥

अत्र प्रथमपर्याये होतुः शस्त्रं विधत्ते—

(रात्रिपर्यायेषु प्रथमपर्याये होतुः शस्त्रम्)

पान्त मा वो अन्धस इत्यन्धस्वत्याऽनुष्टुभा रात्री प्रतिपद्यते ॥१॥

हिन्दी—(प्रथम पर्याय में होता के शस्त्र का विधान कर रहे हैं—) 'पान्त मा वो अन्धसः' अर्थात् (हे इन्द्र)! सोम रस का पान करो'—इति अन्धस्वत्या अनुष्टुभा इस अन्धस् शब्द से युक्त अनुष्टुप् छन्द वाली (ऋचा) से रात्रीं प्रतिपद्यते रात्रि (के शस्त्र) का प्रारम्भ किया जाता है।

सा॰भा॰—'अन्धः' शब्दो यस्यामृच्यस्ति सेयमन्धस्वती। सा चात्राष्टुप्छन्दस्का, तया 'रात्री' रात्रिशस्त्रं 'प्रतिपद्यते' प्रारभेत॥

तस्यामृचि च्छन्दः प्रशंसति—

आनुष्टुभी वै रात्रिरेतद् रात्रिरूपम् ॥२॥

हिन्दी—(उस ऋचा में छन्द की प्रशंसा कर रहे हैं—) आनुष्टुभी वै रात्रिः रात्रि अनुष्टुप् छन्द से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार एतद् रात्रिरूपम् यह (अनुष्टुप् छन्द) रात्रि का रूप है।

सा॰भा॰—गायत्रीत्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुभां मध्ये गायत्र्यादीनां त्रयाणां सवनत्रयगतानाम् अहनि प्रयुक्तत्वाद् अनुष्टुभः प्रयोगाय रात्रिरेव कालः परिशिष्यते। तस्माद् रात्रेरनुष्टुप्संबद्ध-

त्वाद् इयमनुष्टुब्यात्रेः स्वरूपम्।।

अथ त्रिषु पर्यायेषु शस्त्रयाज्यां विधत्ते—

(त्रिषु पर्यायेषु होतुः शस्त्रस्य याज्याविधानम्)

अन्धस्वत्यः पीतवत्यो मद्वत्यस्त्रिष्टुभो याज्या भवन्त्यभिरूपा, यद् यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धम् ।।३।।

हिन्दी—(अब तीनों पर्यायों में शस्त्र की याज्या का विधान कर रहे हैं—) **अन्धवत्यः पीतवत्यः मदवत्यः** अन्ध, पीत और मद शब्द से युक्त **त्रिष्टुभः** त्रिष्टुप् छन्द वाली (ऋचाएँ) **याज्याः भवन्ति** (तीनों पर्यायों के शस्त्रों की) याज्याएँ होती हैं। **यद् यज्ञे अभिरूपम्** जो (अन्ध, पीत और मद शब्द से युक्त ऋचाएँ) यज्ञ में अनुकूल है, **तत् समृद्धम्** वह यज्ञ की समृद्धि है।

सा०भा०—'अन्धः' शब्दो यास्वृक्ष्वस्ति, ताः 'अन्धस्वत्यः'; तादृश्यश्चतस्र ऋचः प्रथमपर्याये होत्रादीनां चतुर्णां शस्त्रयाज्याः कर्तव्याः; ताश्च त्रिष्टुप्छन्दस्का एव। तत्र 'अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोमम्'[१] इत्येषा होतुः शस्त्रयाज्या। सा चान्धस्वती त्रिष्टुप्छन्दस्का च। तस्या द्वितीयपादे 'सिञ्चता मद्यमन्धः'–इति 'अन्धः' शब्दः श्रूयते। एवमितरेषां त्रयाणां शस्त्रयाज्या उदाहरणीयाः। पिबतिधातुर्यास्वृक्ष्वस्ति, ताः 'पीतवत्यः'; तादृश्यो मध्यमपर्याये याज्याः कर्त्तव्याः। 'अपाय्यस्यान्धसो मदाय'[२] –इति। होतुः शस्त्रयाज्या। तत्र 'अपायि'–इति 'पिबति'–धातुः श्रूयते। मदिधातुर्यास्वृक्ष्वस्ति, ताः 'मद्वत्यः'। तादृश्यस्तृतीयपर्याये याज्याः कर्तव्याः। 'तिष्ठा हरी'[३] इत्येषा होतुः शस्त्रयाज्या। तस्या अवसाने 'ररिमा ते मदाय' इति मदिधातुः श्रूयते। एवं सर्वमुदाहार्यम्। रात्रावन्नभोजनादन्धस्वतीनामानुरूप्यम्, क्षीरपानात् पीतवतीनाम्; तत ऊर्ध्वं हर्षाद् मद्वतीनाम्। एवमानुरूप्ये सति तत्तत्कर्म समृद्धं भवति।।

प्रथमपर्याये प्रयोगविशेषं विधत्ते—

(प्रथमपर्याये प्रयोगविशेषविधानम्)

प्रथमेन पर्यायेण स्तुवते, प्रथमान्येव पदानि पुनराददते, यदेवैषामश्वा गाव आसंस्तदेवैषां तेनाददते ।।४।।

हिन्दी—(प्रथम पर्याय में प्रयोग-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **प्रथमेन पर्यायेण स्तुवते** (सामगायक) प्रथम पर्याय से स्तुति करते हैं (तब स्तोत्रियों के) **प्रथमानि एव पदानि** प्रथम पादों को **पुनः आददते** पुनः आवृति करते हैं। **एषाम्** इन असुरों के **यद् अश्वा गावः आसन्** जो अश्व और गायें है, **एषाम्** इन (असुरों) के **तद्** उन (अश्वों और गायों) को **तेन** उस (पुनरावृति) से **आददते** प्राप्त कर लेते हैं।

---

(१) ऋ० २.१४.१। (२) ऋ० २.१९। (३) ऋ० ३.३५.१।

सा० भा०—यदा सामगाः प्रथमेन पर्यायेण स्तुवते, तदानीं स्तोत्रियाणां प्रथमपादान् द्विरभ्यस्यन्ति[१]। एवं शस्त्रेऽपि 'पुरुहूतं पुरुष्टुतम्'—इत्यादिकाः प्रथमपादा द्विरभ्यसनीयाः, 'यथा वाव स्तोत्रमेवं शस्त्रम्'—इत्युक्तत्वात्। एवं सति 'एषाम् असुराणाम् अश्वा गाव आसन्' इति यदस्ति, तत्सर्वमसुराणां धनम्, 'तेन' प्रथमपादाभ्यासेन स्वीकुर्वन्ति॥

द्वितीयपर्याये विशेषं विधत्ते—

(द्वितीयपर्याये विशेषविधानम्)

मध्यमेन पर्यायेण स्तुवते, मध्यान्येव पदानि पुनराददते; यदेवैषामनो रथा आसंस्तदेवैषां तेनाददते ॥५॥

हिन्दी—(द्वितीय पर्याय में प्रयोग-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **मध्यमेन पर्यायेण स्तुवते** मध्यम पर्याय से स्तुति करते हैं। इसमें **मध्यमानि एव पदानि** मध्यम पादों का **पुनराददते** पुनरावर्तन करते हैं। **एषाम्** इन (असुरों) के **यद् अनः रथाः** जो शकट और रथ हैं **एषां तत्** इन (असुरों) के उस (शकट और रथों) को **आददते** प्राप्त कर लेते हैं।

सा० भा०—'अयं त इन्द्र सोमः' इत्यस्यामृचि[२] निपूतो अधि बर्हिषि, निपूतो अधि बर्हिषिइत्येवं मध्यमः पादो द्विरभ्यसनीयः। 'एषाम्' असुराणाम् 'अनः' शकटं यदस्ति, ये च 'रथाः', तत्सर्वं 'तेन' अभ्यासेन स्वीकृतं भवति॥

तृतीयपर्याये विशेषं विधत्ते—

(तृतीयपर्याये विशेषविधानम्)

उत्तमेन पर्यायेण स्तुवते, उत्तमान्येव पदानि पुनराददते; यदेवैषां वासो हिरण्यं मणिरध्यात्ममासीत्, तदेवैषां तेनाददते ॥६॥

हिन्दी—(तृतीय पर्याय में प्रयोग-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **उत्तमेन पर्यायेण स्तुवते** तृतीय पर्याय से स्तुति करते हैं। **उत्तमानि एव पदानि** तृतीय पादों का ही **पुनराददते** पुनरावर्तन करते हैं। **एषाम्** इन (असुरों) का **अध्यात्मं यद्वासः हिरण्यं मणिः** जो अपने वस्त्र, सुवर्ण और मणि हैं **एषां तत्** इन असुरों के उस (वस्त्रादि) को **तेन** उस (पुनरावर्तन) से **आददते** प्राप्त कर लेते है।

सा० भा०—'इदं ह्यन्वोजसा सुतम्' इत्यस्यामृचि[३] 'पिबा त्वस्य गिर्वणः' 'पिबा

---

(१) सामब्राह्मणे देवा वा इति पान्त मा वो अन्धस इति च द्वाभ्यां खण्डाभ्यां रात्रिपर्याया विहिताः (ता०ब्रा० ९.१.२)। तत्रैव 'तान् समन्तं पर्यायं प्राणुदन्त, यत् पर्यायं प्राणुदन्त तत् पर्यायाणां पर्यायत्वम्–इति पर्यायनिरुक्तिरुक्ता।

(२) ऋ० ८.१७.११। (३) ऋ० ३.५१.१०।

त्वस्य गिर्वणः' इत्युत्तमस्य पादस्य द्विरभ्यासः। आत्मानं शरीरमधिकृत्य वर्तत इति 'अध्यात्मम्', असुराणां शरीरेऽवस्थितं वासः 'हिरण्यं' 'मणिः'-इत्येवमादिकम्, सर्वं गृहीतं भवति॥

वेदनं प्रशंसति—

आ द्विषतो वसु दत्ते निरेनमेभ्यः सर्वेभ्यो लोकेभ्यो नुदते, य एवं वेद ॥७॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **द्विषतः वसु आदत्ते** शत्रु के धन को ले लेता है और **एनम्** इस (शत्रु) को **एभ्यः सर्वेभ्यः लोकेभ्यः** इन सभी लोकों से **निर्नुदते** निकाल देता है।

सा० भा०—'द्विषतः' शत्रोः सकाशात् तदीयं धनमादत्ते, 'एनं' शत्रुं सर्वेभ्यो लोकेभ्यो 'निर्णुदते' निराकरोति॥

अत्र कंचित्प्रश्नमुत्थापयति—

(तत्र कश्चित्प्रश्नः)

पवमानवदहरित्याहुर्न रात्रिः पवमानवती; कथमुभे पवमानवती भवतः? केन ते समावद्भाजौ भवतः? इति ॥८॥

हिन्दी—(इस विषय में प्रश्न की उद्भावना कर रहे हैं—) **पवमानवद् अहः** दिन पवमानस्तोत्र से सम्पन्न होता है—**इत्याहुः** इस प्रकार कहा गया है, **न रात्रिः पवमानवती** रात्रि पवमान स्तोत्र वाली नहीं (कही गयी है)। **तत् कथम् उभे पवमानवती भवतः** तो किस प्रकार (दिन और रात्रि) दोनों पवमान से युक्त होते हैं और **केन ते समावद्भाजौ भवतः** किस प्रकार (वे दोनों) समान भाग से संयुक्त होते हैं।

सा० भा०—बहिष्पवमानः, माध्यंदिनः पवमानः आर्भवः पवमानश्चेत्येवमहनि पवमानस्तोत्रत्रयं विद्यते[1], न तु रात्रौ तदस्ति, अत उभयोः पवमानत्वं कथं सिध्यति? तदसिद्धौ च केनोपायेनाहश्च रात्रिश्चेत्येते 'समावद्भाजौ भवतः' समानभागयुक्ते भवतः? इति प्रश्नवादिन आहुः॥

तत्रोत्तरमाह—

(प्रश्नस्योत्तरम्)

यदेवेन्द्राय मद्वने सुतमिदं वसो सुतमन्ध इदं ह्यन्वोजसा सुतमिति

(१) ता०ब्रा०—बहिष्पवमानः (६.७-१०) ७.१,२; माध्यन्दिनपवमानः ३-५; आर्भवपवमानः ८.४,५।

स्तुवन्ति च शंसन्ति च, तेन रात्रिः पवमानवती, तेनोभे पवमानवती भवतः, तेन ते समावद्भाजौ भवतः ।।९।।

हिन्दी—(अब उत्तर को कह रहे हैं—) 'यदेवेन्द्राय मद्वने सुतम्' 'इदं वसो सुतमन्ध' और इदं ह्यन्वोजसा सुतम्'—**इति** इन तीन मन्त्रों से **स्तुवन्ति च** (उद्गाता) स्तुति करते हैं और **शंसन्ति च** (होता) शंसन करते हैं। **तेन** उससे (तीनों मन्त्रों में 'सुत' शब्द प्रयुक्त होने) के कारण **रात्रिः पवमानवती** रात्रि पवमान से युक्त है। **तेन** इसी प्रकार **उभे पवमानवती भवतः** दोनों (दिन और रात्रि) पवमान से युक्त होते हैं।

सा० भा०—यदेव 'इन्द्राय मद्वने सुतम्', 'इदं वसो सुतमन्धः', 'इदं ह्यन्वोजसा सुतम्'[१] इति, ताभिरेताभिस्तिसृभिः उद्गातारः स्तुवन्ति, होतारः शंसन्ति। अहनि यथा त्रिष्वपि पवमानस्तोत्रनामसु पवमानशब्दोऽनुवृत्तः, एवमत्रापि तिसृषु ऋक्षु सुतशब्दोऽनुवृत्तः; अतः पवमानसाम्याद् रात्रिः पवमानवती; 'तेन' प्रकारेण उभयोः पवमानवत्त्वे साम्ये सति तुल्यभागत्वं सिध्यति।।

पुनरपि प्रश्नान्तरमुत्थापयति—

(प्रश्नानन्तरम्)

पञ्चदशस्तोत्रमहरित्याहुर्न रात्रिः पञ्चदशस्तोत्रा; कथमुभे पञ्चदशास्तोत्रे भवतः, केन ते समावद्भाजौ भवतः? इति ।।१०।।

हिन्दी—(पुनः अन्य प्रश्न को उद्भावित कर रहे हैं—) **पञ्चदस्तोत्रम् अहः** दिन पञ्चदश (नामक) स्तोत्र वाला होता है—**इत्याहुः** ऐसा कहा गया है, **न रात्रिः पञ्चदश स्तोत्राः** रात्रि पञ्चदश (नामक) स्तोत्र वाली नहीं (कही गयी है)। **कथम् उभे पञ्चदशस्तोत्रे भवतः** तो दोनों (दिन और रात्रि) किस प्रकार पञ्चदश (नामक) स्तोत्र वाले होते हैं और **केन ते समवद्भाजौ भवतः** किस प्रकार दोनों समान भाग वाले होते हैं।

सा० भा०—अग्निष्टोमस्तोत्राणि द्वादश, उक्थ्यस्तोत्राणि त्रीणि; एतान्यहनि प्रयुज्यन्ते। तस्मादहः पञ्चदशस्तोत्रोपेतम्, रात्रौ तु न तानि विद्यन्ते, कथं पञ्चदशस्तोत्रसाम्येन तयोर्भागसाम्यं सिध्यति? इति प्रश्नः।।

तत्रोत्तरमाह—

(प्रश्नोत्तरम्)

द्वादश स्तोत्राण्यपिशर्वराणि तिसृभिर्देवताभिः संधिना राथन्तरेण स्तुवते; तेन रात्रिः पञ्चदशस्तोत्रा, तेनोभे पञ्चदशस्तोत्रे भवतः, तेन ते समावद्भाजौ भवतः ।।११।।

---

(१) ऋ० ८.९२.१९; ३.५१.१०।

हिन्दी—(अब उत्तर को कह रहे हैं—) **द्वादशस्तोत्राणि अपिशर्वराणि** अपिशर्वरी बारह स्तोत्रों वाली होती है तथा **तिसृभिः देवताभिः** तीन देवताओं से युक्त **राथन्तरेण सन्धिना** रथन्तर (नामक) साम में निष्पन्न सन्धि स्तोत्र से **स्तुवते** स्तुति की जाती है, **तेन** इसी कारण **रात्रि पञ्चदशस्तोत्राः** रात्रि पञ्चदश स्तोत्रों वाली होती है। **तेन उभे पञ्चदश-स्तोत्रे** इसी से दोनों (दिन और रात्रि) पञ्चदशस्तोमों वाले होते हैं और **तेन ते** उसी से वे **समावद्धाजौ भवतः** समान भाग वाले होते हैं।

सा० भा०—द्वादशसु चमसगणपर्यायेषु द्वादश स्तोत्राणि विद्यन्ते, तानि 'अपि-शर्वराणि' रात्रावनुष्ठेयानां छन्दसाम् 'अपिशर्वरसंज्ञा पूर्वमुक्ता। तैश्छन्दोभिर्निष्पाद्यत्वात् स्तोत्राण्यपि तन्नामकानि, रथंतरसाम्ना निष्पाद्यं यत्संधिस्तोत्रं[1], तत्र तिस्रो देवताः श्रूयन्ते।[2] ताभिः स्तोतव्याभिस्तिसृभिर्देवताभिः स्तोत्रमपि त्रेधा भिद्यते। 'तेन' कारणेन ताभिः पञ्चदशस्तोत्रा संपन्ना। तथा सत्युभयोरहोरात्रयोः स्तोत्रसंख्यासाम्यात् समानभागोपेतत्वं सिध्यति।।

शस्त्रबाहुल्यं प्रशंसति—

(शस्त्रबाहुल्यप्रशंसनम्)

परिमितं स्तुवन्त्यपरिमितमनुशंसति; परिमितं वै भूतमपरिमितं भव्यम-परिमितस्यावरुद्ध्या इति ।।१२।।

हिन्दी—(शस्त्र के बहुलता की प्रशंसा कर रहे हैं—) **परिमितं स्तुवन्ति** (उद्गाता) परिमित स्तुति करते हैं (किन्तु होता) **अपरिमितं शंसति** अपरिमित (मन्त्रों) का शंसन करता है; क्योंकि (लोक में) **भूतं परिमितम्** भूत (पूर्व सम्पादित धन) परिमित (सीमित) होता है और **भव्यम् अपरिमतम्** भविष्य असीमित है। **अतः अपरिमितस्य अवरुद्ध्यै** अपरिमित की प्राप्ति के लिए (अपरिमित का शंसन करता है)।

सा० भा०—उद्गातारः 'परिमितं' यथा भवति तथा स्तुवन्ति। त्रिवृत्, पञ्चदशः, सप्तदशः, एकविंश इत्येवं चतुर्भिरेव स्तोमैरत्र सर्वस्तोत्रनिष्पत्तेः।[3] होता त्वपरिमितं यथा भवति तथा अनुशंसति; शंसनीया ऋच एतावत्य एवेति सर्वत्रानुगतस्य संख्यानियमस्य कस्यचिदभावात्। पूर्वभाविनः स्तोत्रस्य परिमितत्वमुत्तरभाविनः शस्त्रस्यापरिमितत्वं च लौकिकन्यायानुसारि, लोके 'भूतं' पूर्वं संपादितं धनम् 'परिमितम्' इयदेवेति नियतिरस्ति; 'भव्यम्' इतः परं संपादनीयं धनम् 'अपरिमित' तृष्णायाः निरवधिकत्वेनैतावदेव संपादयि-ष्यामि, न त्वधिकमिति नियतेरभावात्। तस्मादुपरितनशंसनबाहुल्यमपरिमितधनप्राप्त्यै भवतीत्यभिप्रेत्य होतुरपरिमितमनुशंसनम्।।

---

(१) रथन्तरं प्रतिष्ठाकामाय सन्धि कुर्यात् —इति ता०ब्रा० ९.१.२८।
(२) 'त्रीण्युक्थानि त्रिदेवत्यः सन्धिः'—इति ता०ब्रा० ९.१.२६।
(३) ता०ब्रा० ६.२.२।

प्रकारान्तरेण शस्त्रबाहुल्यं प्रशंसति—

(प्रकारान्तरेण शस्त्रप्रशंसनम्)

अति शंसति स्तोत्रमति वै प्रजात्मानमति पशवस्तद् यत् स्तोत्रमति शंसति यदेवास्यात्यात्मानं तदेवास्यैतेनावरुन्धेऽवरुन्धे[१] ।।१३।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से शस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **स्तोत्रम् अतिशंसति** (उद्‌गाता के) स्तोत्र की अपेक्षा (होता) अधिक शंसन करता है; क्योंकि **प्रजा आत्मानम् अति** सन्तान अपने से अधिक होती है और **अति पशवः** पशु भी अधिक होते है। **यत्** जो **स्तोत्रम् अति शंसति** (होता उद्‌गाता के स्तोत्र की अपेक्षा) अधिक शंसन करता है **तत्** तो **यः** जो **अस्य** इस (यजमान) के **आत्मानम् अति** अपने से अधिक होते हैं **अस्य तद् एव** उस (यजमान) के उसी का ही **एतेन** इस (अधिक शंसन) से **अवरुन्धे** प्राप्त कराता है।

सा० भा०—स्तोत्रगतामृक्संख्यामतिलङ्घ्य होता शंसतीति यदस्ति तद्युक्तमेव; लोके ह्यात्मानमतिलङ्घ्य प्रजानां चावस्थितत्वात्। स्वयमेक एव, पुत्रादयस्तु बहवः, गवाश्वादि-पशवश्च बहवः तस्मादात्मस्थानीयं स्तोत्रम्, प्रजापशुस्थानीयशस्त्राधिक्येन 'यदेव' प्रजा-पश्वादि धनं, तस्य यजमानस्य स्वात्मानमतिक्रम्याधिकमभीष्टम्, तत्सर्वम् 'अस्य' यजमानस्य होता संपादयति। पदाभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायां प्रथमाध्याये (षोडशाध्याये) षष्ठः खण्डः।।६।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षोडश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन् ।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-चार्यादिशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य तृतीयपञ्चिकायाः तृतीयोऽध्यायः (षोडशोऽध्यायः) समाप्त ।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के षोडश अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) अतिरात्रे चत्वारः सवनीयाः, षोडश्यन्ते रात्रिपर्यायास्त्रयः, ततः सन्धिस्तोत्रम्, तत्राश्विनं शस्त्रम्, ततोऽनुयाजादि। तदिह खण्डे सन्धिस्तोत्रान्तं विहितम्, शिष्टं परस्ताद् वक्ष्यति।

अथ चतुर्थपञ्चिकायाम्
द्वितीयोऽध्यायः
[अथ सप्तदशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— पृष्ठे षोडश्याह्नि संस्थाचतुर्थे
सर्वच्छन्दोविक्रियाऽनुष्टुबाख्ये ॥
पर्यायाणां स्याच्चतुःशस्त्रकाणां
रात्रौ संधेः संख्यया पाञ्चदश्यम्॥१॥

अथातिरात्रक्रतावेव रात्रिपर्यायेभ्य ऊर्ध्वमाश्विनं शस्त्रमाख्यायिकामुखेन विधत्ते—

(आश्विन्शस्त्रविधातुमाख्यायिका)

प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीं; तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छंस्तस्या एतत्सहस्त्रं वहतुमन्वाकरोद्,— यदेतदाश्विनमित्याचक्षतेऽनाश्विनं हैव, तद्यदर्वाक्सहस्त्रम्; तस्मात् तत्सहस्त्रं वैव शंसेद् भूयो वा ।।१।।

हिन्दी—(अब अतिरात्रक्रतु में रात्रि पर्यायों के बाद आश्विन्शस्त्र को आख्यायिका द्वारा विधान कर रहे हैं—) **प्रजापतिः वै** प्रजापति **सोमाय** सोम के लिए **सावित्रीं सूर्यां दुहिरम्** अपनी पुत्री सावित्री सूर्या को **प्रायच्छत्** (विवाह हेतु) देने के लिए उद्यत हुए। **तस्यै वरा** उसके लिए वर होकर **सर्वे देवाः** सभी देवता **आगच्छन्** आये। (उस प्रजापति ने) **तस्यै वहतुम्** उस पुत्री की प्राप्ति के लिए **एतत् सहस्त्रम्** इस सहस्त्र ऋचा को **अन्वाकरोत्** तैयार किया, **तद् एतत्** वह यह (सहस्त्र ऋचा) को **आश्विनम् इति आचक्षते** अश्विन् शस्त्र के नाम से (याज्ञिक लोग) अभिहित करते हैं। **तद् यद् अर्वाक् सहस्त्रम्** तो जो सहस्त्र से कम है **अनाश्विनं ह एव** वह अश्विन् (शस्त्र) नहीं है। **तस्मात्** इसी कारण **तत् सहस्त्रं वैव** (होता) उन सहस्त्र (ऋचाओं) का शंसन करे, **भूयः वा** अथवा उससे अधिक (शंसन करे)।

सा० भा०—पुरा कदाचित् प्रजापतिः कांचिद् दुहितरं सोमाय राज्ञे 'प्रायच्छत्' विवाहार्थं दातुमुद्युक्तवान्। कीदृशी दुहितरम्? 'सूर्याम्' इत्येतन्नामधेययुक्तां 'सावित्रीं' सवित्रा लब्धाम्। यद्यप्येषा सवितुः पुत्री, तथाऽपि स्नेहातिशयेन प्रजापतेर्दुहितेत्युच्यते। 'तस्यै' दुहित्रे

तल्लाभार्थं सर्वे देवा वरा भूत्वा प्रजापतेः सकाशमागमन्। स च प्रजापतिः विवाहस्यालङ्कारार्थं माङ्गल्यार्थं च वरस्य पुरतो वहनीयो हरिद्रागुडादिमङ्गलद्रव्यसङ्घो 'वहतुः' यदेतदृक्सहस्रं याज्ञिका आश्विनसहस्रमित्याचक्षते, तत्सहस्रमेव वहतुरूपेण प्रत्यभिज्ञातवान्। स देवानां मध्ये यो वरः आश्विनशस्त्रमन्त्रानेक एव पठति, तस्मै दास्यामेति प्रतिज्ञातवानित्यर्थः। सहस्रादर्वाचीना ऋचो यस्मिञ्शस्त्रे, तद् 'अर्वाक्सहस्रम्' तादृशं यदस्ति, तद् 'अनाश्विनमेव'। यस्मादाश्विनं सहस्रं प्रजापतिरङ्गीकृतवान्; तस्माद्धोता सहस्रमेव शंसेत्। ततोऽप्यधिकं वा शंसेत्, न तु न्यूनम्॥[1]

शंसनस्येतिकर्तव्यतां विधत्ते—

(शंसनस्येतिकर्त्तव्यता)

प्राश्य घृतं शंसेत्, यथा ह वा इदमनो वा रथो वाऽक्तो वर्तत एवं हैवाक्तो वर्त्तते ।।२।।

हिन्दी—(शंसन की इतिकर्त्तव्यता का विधान कर रहे हैं—) **घृतं प्राश्य शंसेत्** (होता पहले) घृत का प्राशन करके शंसन करे; क्योंकि **यथा ह** जिस प्रकार (लोक में) **इदम् अनः वा रथः वा** यह स्वल्प शकट अथवा रथ **अक्तः वर्तते** तेल से आक्त होकर अच्छी गति करता है (जाता है), **एवं ह आक्तः वर्तते** उसी प्रकार घृताक्त (वाणी भी अच्छी चलती है)।

सा० भा०—प्रथमतो घृतं प्राश्य पश्चाच्छंसेत्। यथा लोके किंचिदिदं निदर्शनं तद्वत्। किं निदर्शनमिति? तदुच्यते—'अनः' स्वल्पशकट वा प्रौढ़ो 'रथः' वा यदा प्रवर्त्यते, तदानीमस्य चक्रस्य भ्रमणस्थाने मषोमिश्रेण तैलेनाञ्जने कृते पश्चात् स्वल्पं शकटं रथो वा सहसा प्रवर्तते। एवमसौ होता घृतेनाक्तः शस्त्रे प्रवर्तते॥

इतिकर्तव्यतान्तरं विधत्ते—

शकुनिरिवोत्पतिष्यन्नाह्वयीत ।।३।।

हिन्दी—(इतिकर्त्तव्यता के बाद विधान कर रहे हैं—) (होता) **शकुनिः इव उत्पतिष्यन् ह्वयति** उड़ते हुए पक्षी के समान बैठकर आहाव करे।

सा० भा०—यथा लोके 'शकुनिः' कश्चित्पक्षी पद्भ्यां भूमिं दृढमवष्टभ्य 'उत्पतिष्यन्' ऊर्ध्वमुखोत्पतनं कर्तुमिच्छन् पक्ष्यन्तरमभिलक्ष्य ध्वनिं करोति, एवमसौ होता तदाकारं घटनं कुर्वन्नाहावं पठेत्। तदेतद् आश्वलायनाचार्यैं स्पष्टीकृतम् 'प्राश्य प्रतिप्रसृप्य पश्चात् स्वस्य धिष्ण्यस्योपविशेत् समस्तजङ्घोरुरत्निभ्यां जानुभ्यां चोपस्थं कृत्वा यथा शकुनि-

---

(१) प्रातरनुवाकन्यायेन तस्यैव समाम्नायस्य सहस्रावममोदेतोः शंसेत्'—इति० आश्व० श्रौ० ६.५.८।

रुत्पतिष्यन्नुपस्थकृतस्त्वेवाश्विनं शंसेत्'[१] इति॥

आश्विनशस्त्रस्य प्रतिपदमाख्यायिकामुखेन विधत्ते—

(आख्यायिकाद्वाराश्विनशस्त्रस्य प्रतिपद्विधानम्)

तस्मिन् देवा न समजानत,–ममेदमस्तु ममेदमस्त्विति; ते संजानाना अब्रुवन्नाजिमस्यायामहै, स यो न उज्जेष्यति, तस्येदं भविष्यतीति; तेऽग्नेरेवाधि गृहपतेरादित्यं काष्ठामकुर्वत, तस्मादाग्नेयी प्रतिपद्भवत्याश्विनस्य 'अग्निर्होता गृहपतिः स राजा'[२] इति ॥४॥

हिन्दी—(आश्विन् शस्त्र के प्रतिपद को आख्यायिका द्वारा विधान कर रहे हैं—) **तस्मिन्** उस (शस्त्र) के विषय में '**ममेदमस्तु ममेदमस्तु** यह मेरा होवे, यह मेरा होवे— **इति** इस प्रकार **देवाः न समजानत** देवता एकमत नही हुए। **ते संजानाना अब्रुवन्** तब उन्होने समझौता करते हुए कहा कि **अस्य आजिम् आयामहे** हम लोग इसके लिए शर्त लगा कर दौड़ें। **सः यः नः उज्जेष्यति** हम लोगों में यह जो जीतेगा, **अस्य** उस (जीतने वाले) का **इदम्** यह (आश्विन् शस्त्र) होगा। **ते** उन (देवताओं) ने **गृहपतेः अग्नेः अधि** गार्हपत्याग्नि से लेकर **आदित्यम्** आदित्य को **काष्ठाम् अकुर्वत** (दौड़) समापन का स्थान निश्चित किया। **तस्मात्** इसी कारण 'अग्निर्होता गृहपतिः स राजा' अर्थात् 'अग्नि होता, गृह का पालक और राजा है' **इति** यह **आग्नेयी** अग्नि सम्बन्धी (ऋचा) **आश्विनस्य** आश्विन् (शस्त्र) की **प्रतिपद् भवति** प्रारम्भिक ऋचा होती है।

सा०भा०—'तस्मिन्' आश्विन्शस्त्रे देवाः परस्परं 'न समजानत' संज्ञानं प्रतिपत्तिं नाकुर्वन्। कीदृशी तदीया प्रतिपत्तिः? इति, सोच्यते—'ममैवेदमाश्विनमस्त्विति' सर्वेषामभिगयः। सर्वविषयत्वं द्योतयितुमियं वीप्सा। 'ते' विप्रतिपन्ना देवाः 'संजानानाः' संप्रतिपत्तिं कर्तुमुद्युक्ताः परस्परमिदमब्रुवन्—'अस्य' आश्विन्शस्त्रस्य लाभाय वयं सर्वे कांचिद् 'आजिम् आयामहै' समयबन्धपुरःसरा धावनरूपा गतिः 'आजिः' तां प्राप्नवामः। तस्मिन्नाजिधावने 'नः' अस्माकं मध्ये च यः प्रबलः, यः कोऽपि प्रथममुत्कर्षेण जेष्यति, तस्य 'इन्द्रम्' आश्विनं भविष्यतीति समयबन्धः ते कृतसमया देवाः 'गृहपतेरग्नेरेवाधि' गार्हपत्यस्योपरि द्युलोकवर्तिनमादित्यं 'काष्ठां' धावनसमाप्तिमकुर्वते, गार्हपत्यमारभ्यादित्यपर्यन्तं धावेदिति तदीया मर्यादा। यस्मादग्निराश्विनप्राप्तिहेतोर्धावनस्योपक्रमस्थानम्, तस्मादाग्नेयी काचिदृगाश्विनस्य 'प्रतिपद्भवति' प्रारम्भरूपा कर्तव्या। 'अग्निर्होता'[३] इति तस्याः प्रतीकम्॥

अत्र कंचित्पूर्वपक्षमुद्भावयति—

---

(१) आश्व० श्रौ० ६.५.४। (२) ऋ० ६.१५.१३।
(३) ऋ० ६.१५.१३।

(तत्रपूर्वपक्षः)

तद्धैक आहुः–'अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिम्'[१] इत्येतया प्रतिपद्यत ।।५।।

हिन्दी—(इस विषय में पूर्वपक्ष की उद्भावना कर रहे हैं—) **तद् ह ऐके आहुः** इस विषय में कुछ लोग कहते हैं कि 'अग्नि मन्ये पितरमाग्निमापिम्'—**इति एतया प्रतिपद्येत्** इस ऋचा से प्रारम्भ करना चाहिए।

सा०भा०—प्रारभेतेत्यर्थः।।

तत्रोपपत्तिं पूर्वपक्ष्यभिप्रेतां दर्शयति—

'दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य' इति प्रथमयैव ऋचा काष्ठामाप्नोतीति।।६।।

हिन्दी—(उस विषय में पूर्वपक्ष को अभिप्रेत उपपत्ति को दिखला रहे हैं—) क्योंकि **'दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य' इति प्रथममया एव ऋचा** इस प्रथमा ऋचा के द्वारा ही **कष्ठाम् आप्नोति** (सूर्य की दौड़ रूप) समाप्ति-सीमा प्राप्त हो जाती है।

सा०भा०—तस्याश्चतुर्थपादे 'सूर्यस्य यजतं' यस्मादग्निविशेषणं पठ्यंते, यथा सति प्रथमयैवर्चा सूर्यरूपा काष्ठा धावनाभिरूपाप्ता भवतीति तेषामभिप्रायः।।

तमिमं पक्षं दूषयति—

(पूर्वपक्षदूषणम्)

तत्तन्नादृत्यम्, य एनं तत्र ब्रूयाद् अग्निमिति वै प्रत्यपाद्यग्निमापत्स्यतीति, शश्वत् तथा स्यात् ।।७।।

हिन्दी—(इस पूर्वपक्ष में दोष दिखला रहे हैं—) **तत् तत् न आदृत्यम्** तो वह (कथन) आदरणीय नहीं है; क्योंकि **तत्र** उस (शस्त्र के उपक्रम) में **यः** जो कोई भी **एनम्** इस (होता) से **ब्रूयात्** कहे कि **अग्निम् इति वै प्रतिपादि** (इस होता ने) अग्नि शब्द से ही (शस्त्र का) प्रारम्भ किया है तो (इस कहने से) **अग्निं प्रतिपत्स्यति** होता अग्नि में गिरेगा तो **शश्वत् तथा स्यात्** तो (वह कथन) उसी प्रकार निश्चित रूप से (सत्य) हो जाता है।

सा०भा०—तस्मिन् शस्त्रोपक्रमे 'तत्' 'अग्निं मन्ये पितरम्'[२] इत्यादिकं नादरणीयम्। अनादरणे हेतुरुच्यते—'तत्राग्निं मन्ये'–इत्येतयोपक्रमपक्षे, यः कोऽपि विरोधी समागत्य 'एनं' होतारं 'ब्रूयात्' शपेत्। कथं शाप इति, तदुच्यते—अनेन होत्रा 'अग्निमग्निमिति' एव 'प्रत्यपादि' प्रारब्धम्, तस्यामृचि 'अग्निं पितरमग्निं भ्रातरम्'—इत्येवमसकृदग्निस्वरूपम्' पित्राद्यभिधानादग्निमसौ होता प्राप्नोतीति दग्धो भवष्यितीति यदि शपेत्, तदानीं 'शश्वत्'

(१) ऋ० १०.७.३।   (२) ऋ० १०.७.३।

अवश्यं तथा स्यात्॥

परमतं दूषयित्वा स्वमतं निगमयति—

(सिद्धान्तनिगमनम्)

तस्माद् 'अग्निर्होता गृहपतिः स राजा' इत्येतयैव प्रतिपद्येत, गृहपतिवती प्रजातिमती शान्ता; सर्वायुः सर्वायुत्वाय ।।८।।

हिन्दी—(पूर्वपक्ष को दूषित करके अब सिद्धान्त पक्ष को कह रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण 'अग्निर्होता गृहपतिः स राजा'—**इति एतया एव प्रतिपद्येत** इस (ऋचा) से ही प्रारम्भ करे। (क्योंकि यह ऋचा) **गृहपतिवती प्रजातिमती शान्ताः** गृहपति और प्रजापति शब्द से युक्त और (अनेक बार अग्नि शब्द होने के कारण) शान्त है अतः **सर्वायुः** सम्पूर्ण आयु रूप है और **सर्वायुत्वाय** (यजमान) सम्पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए है।

सा० भा०—अस्यामृचि[१] गृहपतिशब्दः स्पष्टं दृश्यते, तस्मादियं 'गृहपतिवती'। तथा द्वितीयपादे 'विश्वा वेद जनिमा'–इति सर्वप्राणिजननाभिज्ञानकथनादियं 'प्रजापतिमती'। बहुकृत्वोऽग्निशब्दस्याभावादियं 'शान्ता'। तस्मादेतया प्रतिपद्यमानो होता सर्वायुर्भवति, तच्च यजमानस्य सर्वायुत्वाय संपद्यते॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ।।९।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वायुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तदशाध्याये) प्रथमः खण्डः ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—अथाग्नेयकाण्डं विधत्ते—

(आग्नेयकाण्डविधानम्)

तासां वै देवतानामाजिं धावन्तीनामभिसृष्टानामग्निर्मुखं प्रथमः प्रत्यपद्यत,

---

(१) ऋ० ६.१५.१३।

तमश्विनावन्वागच्छतां, तमब्रूतामपोदिह्यावां वा इदं जेष्याव इति; स तथेत्यब्रवीत् तस्य वै ममेहाप्यस्त्विति; तथेति; तस्मा अप्यत्राकुरुताम्; तस्मादाग्नेयमाश्विने शस्यते ।।१।।

हिन्दी—(अब आग्नेय काण्ड का विधान कर रहे हैं—) **तासां धावन्तीनाम् अभिसृष्टानां देवतानां मुखम्** उन दौड़ने में प्रवृत्त हुए देवताओं में प्रमुख **अग्निः प्रथमः प्रत्यपद्यत** अग्नि सबसे पहले पहुँचे **अश्विनौ तम् अन्वागच्छताम्** अश्विन्द्वय उस (अग्नि) से बाद पहुँचे। **तम् अब्रूताम्** (अश्विनों ने) उस (अग्नि) से कहा कि **अपोदिहि** तुम दोनो उत्कर्षपूर्वक दूर हट जाओ। **आवाम् इदं जेष्यावः** हम दोनों इसे जीतेगे। **सः तथा इति अब्रवीत्** उस (अग्नि) में कहा कि ठीक है, किन्तु **तस्यै मम अपि** उस (अपगत हुए)-मेरा भी **इह अस्तु** इसमें भाग होवे। **तथेति** (तब अश्विनों ने कहा कि) ठीक है और **तस्मै अपि** (अग्नि) के लिए भी **अत्र अकुरुताम्** इसमें भाग दिया जाय। **तस्मात्** इस कारण **आश्विने आग्नेयं शस्यते** आश्विन्शस्त्र में अग्नि-सम्बन्धी (ऋचाओं) का शंसन किया जाता है।

सा० भा०—देवताः सर्वा गार्हपत्याग्निसमीपात् निर्गत्य सूर्यपर्यन्तामाजिमुद्दिश्य धावन्त्यो 'अभिसृष्टाः' अभितः प्रवृत्ताः,—एका देवतैकस्यां दिशि धावत्यन्या परस्यां दिशीत्येवं सर्वतो धावन्ति। 'तासां' देवतानां मध्ये अग्निः मुखं यथा भवति तथा, मुख्यो भविष्यामीत्यभिप्रायेण प्रथमः 'प्रत्यपद्यत' पुरोगामी धावनं कृतवान्। 'तम्' अग्निम् 'अनु' पश्चादश्विनावागच्छताम्, समीपं गत्वा 'तम् अग्निम् अब्रूताम्'—हे अग्ने, त्वं शान्तो भविष्यसि, तस्माद् 'अपोदिति' उत्कर्षेणापेहि, दूरेऽपसर। 'आवाम्' उभावेव 'इदम्' आश्विन-मुद्दिश्य जेष्याव इति। सोऽग्निरङ्गीकृत्य 'तस्य' अपगच्छतो ममापि 'इह' शस्त्रे भागोऽस्त्विति अङ्गीकृतवान्। आश्विनावङ्गीकृत्य 'तस्मै' अग्नये विभागं दत्तवन्तौ। यस्मादेवं 'तस्मादाग्नेयं' बहूनामृचां समूहरूपं काण्डम् 'आश्विने' शस्त्रे होत्रा 'शस्यते'। शंसनीयं तच्च काण्डं सर्वं सूत्रे द्रष्टव्यम्[१]।।

अथोषस्यं काण्डं विधत्ते—

(उषस्यकाण्डविधानम्)

ता उषसमन्वागच्छताम्, तामब्रूतामपोदिह्यावां वा इदं जेष्याव इति; सा तथेत्यब्रवीत् तस्यै वै ममेहाप्यस्त्विति; तथेति; तस्या अप्यत्राकुरुतां

---

(१) 'आश्विनं शंसेत्। अग्निर्होता गृहपतिः स राजेति प्रतिपदेकपातिनी पच्छः। एतयाग्नेयं गायत्रमुपसन्तनुयात्। प्रातरनुवाकन्यायेन'-इत्यादि आश्व०श्रौ० ६.५.५.-८। 'प्रातरनुवाकमनुब्रूयान्मन्द्रेण'-इत्यादिः; 'इत्याग्नेयः क्रतुः' इत्यन्तश्च ४.१३.६-८। द्रष्टव्यः। 'त्रीणि षष्टिशतन्याश्विनम्'-इति च ६.६.१०।

तस्मादुषस्यमाश्विने शस्यते ।।२।।

हिन्दी—(अब उषस् काण्ड का विधान कर रहे हैं—) **तौ उषसम् अनु आगच्छताम्** वे (अश्विन्देव) उषा के पीछे आये। **ताम् अब्रूताम्** उस (उषा) से (अश्विनों ने) कहा कि **अपोदिहि** तुम दूर हट जाओं और **आवां वै इदं जेष्यावः** हम दोनों इसको जीतेगे। **सा तथा इति अब्रवीत्** उस (उषा) ने कहा कि ठीक है। **तस्यै मम अपि** उस (अपगत हुए) मेरा भी **इह अस्तु** इसमें भाग होवे। **तथेति** (तब अश्विनों ने कहा कि) ठीक है और **तस्यै अपि** उस (उषा) के लिए भी **अत्र अकुरुताम्** इसमें भाग दिया जाय। **तस्मात्** इसी कारण **आश्विने उषस्यं शस्यते** आश्विन्शस्त्र में उषा-सम्बन्धी ऋचाओं का शंसन करता हैं।

सा०भा०—'तौ' अश्विनौ 'उषसम्' एतन्नामयुक्तां देवताम्। अन्यत् पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

ऐन्द्रं काण्डं विधत्ते—

(ऐन्द्रकाण्डविधानम्)

ताविन्द्रमन्वागच्छताम्, तमब्रूतामावां वा इदं मघवञ्जेष्याव इति, न ह तं दधृषतुरपोदिहीति वक्तुं; स तथेत्यब्रवीत् तस्य वै ममेहाप्यस्त्विति; तथेति, तस्मा अप्यत्राकुरुतां, तस्मादैन्द्रमाश्विने शस्यते ।।३।।

हिन्दी—(अब ऐन्द्र काण्ड का विधान कर रहे हैं—) **तौ इन्द्रमनु अन्वागच्छताम्** वे दोनो (अश्विन्) इन्द्र के पीछे आये। **तम् अब्रूताम्** उस (इन्द्र) से (अश्विनों ने) कहा कि **मघवन् आवां वै इदं जेष्यावः** हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र! हम दोनों इसे जीतेंगे, किन्तु **तम्** उस (इन्द्र) से **'अपोदिहि** दूर हट जाओ—**इति वक्तुम्** यह कहने के लिए **न ह दधृषतुः** धृष्टता नहीं किये। **सः तथा इति अब्रवीत्** तब उस (इन्द्र) ने कहा कि ठीक है किन्तु **तस्य वै मम अपि** उस (अपगत हुए) मेरा भी **इह अस्तु** इस में भाग होवे। **तथेति** (तब अश्विनों ने कहा कि) ठीक है और **तस्मै अपि** इस (इन्द्र) के लिए भी **अत्र अकुरुताम्** यहाँ भाग दिया जाय। **तस्मात्** इसी कारण **आश्विने ऐन्द्रम् शस्यते** आश्विन्शस्त्र में इन्द्र-सम्बन्धी (ऋचाओं का) शंसन करता है।

सा०भा०—हे मघवन्, आवां जेष्याव इत्येव अब्रूताम्; इन्द्रस्य स्वामित्वात् 'तम्' इन्द्रमुदिश्य 'अपेदिहि' इति वक्तुं न दधृषतुः, धाष्ट्र्यं नाकुरुताम्। अन्यत् पूर्ववत्।।

अथाश्विनं काण्डं विधत्ते—

(आश्विन्काण्डविधानम्)

तदश्विना उदजयतामश्विनावाश्नुवाताम्, यदश्विना उदजयतामश्विनावाश्नुवाताम्; तस्मादेतदाश्विनमित्याचक्षते ।।४।।

हिन्दी—(अब आश्विन् काण्ड का विधान कर रहे हैं—) **तद् अश्विनौ उदजयताम्**

इस प्रकार अश्विनों ने जीत लिया और **अश्विनौ अश्नुवाताम्** अश्विनों ने ही इसे व्याप्त कर लिया। **यद् अश्विनौ उदजयताम्** जो अश्विनों ने उसे जीता और **अश्विनौ आश्नुवाताम्** अश्विनों ने उसे व्याप्त किया, **तस्मात्** इसी कारण **एतत्** इस (शस्त्र) को **आश्विनम् इत्याचक्षते** अश्विन् से सम्बन्धित कहा जाता है।

सा० भा०—'तत्' तस्यामाजौ सहसा सूर्यपर्यन्तं गत्वा तावश्विनावुत्कर्षेणाजयताम्। ततस्तावेव शस्त्रम् 'अश्नुवातां' व्याप्तवन्तौ। 'यद्' यस्मादश्विनौ जयपूर्वकं शस्त्रं व्याप्तवन्तौ, तस्माद् 'एतत्' शस्त्रमाश्विनमिति याज्ञिका आचक्षते। आश्विनं काण्डं शंसेदित्यभिप्राय:॥

वेदनं प्रशंसति—

अश्नुते यद् यत्कामयते य एवं वेद ॥५॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **य: एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **यद् यत् कामयते** जो कामना करता है, **अश्नुते** उसको प्राप्त करता है।

प्रश्नोत्तराभ्यां शस्त्रस्याश्विनत्वमुपपादयति—

(शस्त्रस्याश्विनत्वोपपादनम्)

तदाहुर्यच्छस्यत आग्नेयं शस्यत उषस्यं शस्यत ऐन्द्रमथ कस्मादेतदाश्विनमित्याचक्षत इत्यश्विनौ हि तदुदजयतामश्विनावाश्नुवाताम्, यदाश्विना उदजयतामश्विनावाश्नुवाताम्; तस्मादेतदाश्विनमित्याचक्षते ॥६॥

हिन्दी—(प्रश्नोत्तर द्वारा शस्त्र के अश्विन् से सम्बन्धित होने का उपपादन कर रहे हैं—(प्रश्न—) **तदाहु: यत्** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) पूछते हैं कि **आग्नेयं शस्यते उषस्यं शस्यते अथ ऐन्द्रं शस्यते** अग्नि से सम्बन्धित (ऋचाओं) का शंसन किया जाता है, उषा से सम्बन्धित (ऋचाओं) का शंसन किया जाता है और इन्द्र से सम्बन्धित ऋचाओं का शंसन किया जाता है तो **कस्मात्** किस कारण से **एतद् आश्विनम् इत्याचक्षते** इस (शस्त्र) को आश्विन् से ही सम्बन्धित कहा जाता है? (उत्तर—) **यद् अश्विनौ उदजयताम्** जो अश्विनों ने उसे जीता है और **अश्विनौ आश्नुवाताम्** अश्विनों ने उसे व्याप्त किया है **तस्मात्** इसी कारण **एतद् आश्विनम् इत्याचक्षते** यह अश्विनों से सम्बन्धित कहलाता है।

सा० भा०—आश्विनकाण्डवत् आग्नेयोषस्यैन्द्रकाण्डानामपि शस्यमानत्वाच्छस्त्रस्याग्नेयादिनामपरित्यागेनाश्विन्नाम्नि क: पक्षपात इति प्रश्न:? अग्निरूषा इन्द्रश्चैते परतोऽपसृप्ता:, न तु सूर्यपर्यन्तमधावन्, अश्विनौ तु धावन्तौ जयपूर्वकं शस्त्रं प्राप्तवन्ताविति तदीयत्वप्रसिद्धि: शस्त्रस्य युक्ता॥

वेदनं प्रशंसति—

अश्नुते यद् यत्कामयते य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **यद् यत्कामयते** जो कामना करता है, **अश्नुते** उसे प्राप्त करता है।

सा० भा०—पूर्वमाश्विनसंबन्धमात्रवेदनम्, इह त्वग्न्यादिसंबन्धराहित्यवेदनं चेति विशेषः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तदशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ।।२।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—अथाश्विनशस्त्रप्रशंसार्थं देवानामजिधावनकथा पूर्वमुपन्यस्ता; तमेव कथाशेषामाश्विनशस्त्रप्रशंसार्थमेव पुनरप्यनुवर्तयति—

(आश्विनशस्त्रप्रशंसार्थमवशिष्टकथाकथनम्)

(तत्राग्नेराजिधावनकथनम्)

अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावत्, तासां प्राजमानो योनिमकूलयत्; तस्मात् ता न विजायन्ते ।।१।।

हिन्दी—(उस आश्विन् शस्त्र की प्रशंसा के लिए पूर्ववर्ती खण्ड प्रोक्त कथा के शेष भाग का पुनः अनुवर्तन कर रहे हैं—) **अग्नि अश्वतरीरथेन आजिम् अधावत्** अग्नि ने खच्चरियों के रथ से दौड़ में दौड़ लगाया और **प्राजमानः** (तेज दौड़ने के लिए उन्हें) प्रकृष्ट रूप से प्रेरित करते हुए (अग्नि ने) **तासां योनिम् अकूलयत्** उनकी प्रजननाङ्ग (योनि) को जला दिया। **तस्मात्** इस कारण **ताः** वे (खच्चरियाँ) **न विजायन्ते** सन्तानोत्पादन नहीं करती हैं।

सा० भा०—अश्वगर्दभसांकर्येण जाताः स्त्रीव्यक्तयोऽश्वतर्यः। तद्युक्तेन रथेनाय-मग्निराजिमुद्दिश्य धावनं कृतवान्। तदानीं 'प्राजमानः' प्रकर्षेणाश्वतरीः प्रेरयन्। 'अज पशु-प्रेरणे' इति धातुजन्योऽयं शब्दः। तत्प्रेरणकाले तासां पूर्वपुच्छभागमुपस्पृश्य योनिम् 'अकूलयत्' दग्धवान्। तस्माद् दग्धयोनित्वात् 'ताः' अश्वतर्यो 'न विजायन्ते' विजननम् अपत्योत्पादनं न कुर्वन्ति।।

अग्नेराजिधावनमुक्त्वोषसो धावनं दर्शयति—

(उषसोधावनकथनम्)

गोभिररुणैरुषा आजिमधावत्, तस्मादुषस्यागतायामरुणमिवैव प्रभात्युषसो रूपम् ।।२।।

हिन्दी—(अग्नि के दौड़ में भाग लेने का कथन करके उषा के दौड़ने को दिखला रहे हैं—) **उषा अरुणैः गोभिः आजिम् अधावत्** हलके रक्त वर्ण वाले बैलों से युक्त (रथ) से उषा ने दौड़ में धावन किया (दौड़ा)। **तस्मात्** इसी कारण **आगतायाम् उषसि** (रात्रि समाप्त होने बाद) उषा के आने पर **उषसः रूपम्** उषा का रूप (वर्ण) **अरुणमिव एव प्रभाति** थोड़ा लाल सा प्रभायुक्त होता है।

सा० भा०—'अरुणैर्गोभिः' ईषद् रक्तवर्णैर्बलीवर्दैर्युक्तेन रथेन यस्माद् उषसो धावनम्, तस्माल्लोकेऽपि रात्रेरवसाने समागतायामुषसि; तस्या उषसो रूपं प्राच्यां दिशि 'अरुणमिवैव' रक्तवर्णमेव भूत्वा 'प्रभाति' प्रभायुक्तं भवति।।

इन्द्रस्याजिधावनं दर्शयति—

(इन्द्रस्याजिधावनकथनम्)

अश्वरथेनेन्द्र आजिमधावत्; तस्मात् स उच्चैर्घोष उपब्दिमान् क्षत्रस्य रूपमैन्द्रो हि सः ।।३।।

हिन्दी—(अब इन्द्र के दौड़ में भाग लेने को दिखला रहे हैं—) **इन्द्रः अश्वरथेन आजिम् अधावत्** इन्द्र ने अश्वयुक्त रथ से दौड़ में धावन किया। **तस्मात्** इसी कारण (लोक में भी) **सः उच्चैघोषः** वह (दौड़ता हुआ रथ) **उपब्दिमान्** कोलाहल करता हैं; क्योंकि **क्षत्रस्य रूपं हि** वह क्षत्रिय का रूप है और **सः ऐन्द्रम्** वह इन्द्र से सम्बन्धित है।

सा० भा०—यस्मादश्वयुक्तेन रथेनेन्द्रोऽधावत्, तस्माल्लोकेऽपि सोऽश्वयुक्तो रथः 'उच्चैर्घोषः बहुलध्वनिर्दृश्यते, तथा क्षत्रस्य रूपम् 'उपब्दिमान्' शब्दोपेतं दृश्यते। यदा क्षात्रियो निर्गच्छति, तदीया याष्टिका अन्ये सेवकाः अश्वपुरतः शब्दं कुर्वन्त एव गच्छन्ति। स च शब्द 'ऐन्द्रो हि' असुरयुद्धेषु तद्धीत्यर्थमिन्द्रेण कृतत्वाद् ऐन्द्रत्वम् ।।

अश्विनोर्धावनं दर्शयति—

(अश्विनोर्धावनकथनम्)

गर्दभरथेनाश्विना उदजयतामश्विनावाश्नुवानतां; यदश्विना उदजतामश्विनावाश्नुवातां; तस्मात् स सृतजवो दुग्धदोहः सर्वेषामेतर्हि वाहनानामनाशिष्ठो रेतसस्त्वस्य वीर्यं नाहरतां, तस्मात् स द्विरेता वाजी ।।४।।

हिन्दी—(अब अश्विनों के दौड़ने को दिखला रहे हैं—) **अश्विनौ गर्दभरथेन उदजयताम्** अश्विनों ने गर्दभयुक्त रथ से (दौड़ को) जीता और **अश्विनौ आश्नुवाताम्** अश्विनों ने उसे व्याप्त किया। **यद् अश्विनौ उदजयताम्** जो अश्विनों में (दौड़) को जीत लिया और **अश्विनौ आश्नुवाताम्** अश्विनों ने उसे व्याप्त किया, **यदश्विना उदजयताम्** जो अश्विनों ने (दौड़ को) जीता और **अश्विना आश्नुवाताम्** और अश्विनों ने उसे व्याप्त किया, **तस्मात्** इसी कारण **सः सृतजवः दुग्धदोहः** वह (गर्दभ तेज से दौड़ने के कारण) वेगरहित और दुग्धविहीन हो गया। **एतर्हि** इस समय भी **सर्वेषां वाहनानाम्** सभी भार-वाहक पशुओं में **अनाशिष्ठः** अत्यन्त वेगरहित है किन्तु **अस्य तु** इस (गर्दभ) के **रेतसः वीर्यम्** वीर्य की शक्ति को **न आहरताम्** (अश्विनों ने) विनष्ट नहीं किया। **तस्मात्** इसी कारण **सः** वह (गर्दभ) **द्विरेताः** (गर्दभ और खच्चर) दोनों को उत्पन्न करने वाला और **वाजी** गमनशील होता है।

सा० भा०—अश्विनो गर्दभयुक्तेन रथेन शीघ्रं गत्वा जयपूर्वकमश्विनौ व्याप्तवन्तौ। 'यत्' यस्मादुभौ रथमारुह्यातिवेगेन गत्वा व्याप्तवन्तौ; तस्मात् 'सः' गर्दभो भारातिशयेन तीव्रधावनेन च लोके 'सृतजीवः' गतवेगः 'दुग्धदोहः' गतक्षीररसश्चाभवत्। तस्माद् इदानी-मपि गजाश्वादिवाहनानां सर्वेषां मध्ये गर्दभः 'अनाशिष्ठः' अत्यन्तवेगरहितो[१] दृश्यते। तदीयस्य रेतसस्तु 'वीर्यं' सामर्थ्यम् अश्विनौ 'नाहरतां' न विनाशितवन्तौ। तस्माद् वेगेन पानयोग्यक्षीरेण च राहित्येऽपि 'सः' गर्दभो 'द्विरेताः' गर्दभाश्वतरजातिद्वयोत्पादको 'वाजी' गमनवान् दृश्यते॥

एवं शस्त्रप्रशंसार्थमवशिष्टमुपाख्यानशेषमभिधाय सौर्याणां मन्त्रसमूहानां संख्यां विधातुं पूर्वपक्षम् उद्भावयति—

(सौर्याणां मन्त्रसमूहानां संख्याविचारः)

तदाहुः सप्त सौर्याणि च्छन्दांसि शंसेद् यथैवाग्नेयं यथोषस्यं यथा-श्विनम्; सप्त वै देवलोकाः, सर्वेषु देवलोकेषु राध्नोतीति ॥५॥

हिन्दी—(अब सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों की संख्या का विधान करने के लिए पूर्वपक्ष की उद्भावना कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) कहते है कि **यथा वै आग्नेयं यथा उषस्यं यथा आश्विनम्** जिस प्रकार अग्नि, उषा और अश्विन् के लिए गायत्री इत्यादि सातों छन्दों का शंसन होता है, **सप्त सौर्याणि छन्दांसि शंसेत्** उसी प्रकार सूर्य के लिए भी सात छन्दों का शंसन करना चाहिए; क्योंकि **सप्त वै देवलोकाः** सात देवताओं के लोक हैं। (इस शंसन से) **सर्वेषु देवलोकषु** सभी देवलोकों में **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है।

---

(१) 'अनाशिष्ठः अतिशयेनाल्पभक्षी'—इति षड्गुरुशिष्यः।

सा० भा०—आग्नेयोषस्याश्विनकाण्डानि यथा प्रत्येकं गायत्र्यादिभिः सप्तच्छन्दोभिर्युक्तानि,[१] एवमत्र सौर्येऽपि काण्डे सप्त च्छन्दांसि शंसनीयानि। तथा सति भोगस्थानरूपाणां देवलोकानामवान्तरभेदेन सप्तविधत्वात् तत्समृद्धिः सिध्यतीति पूर्वपक्षिण आहुः।।

तं पक्षं निराकृत्य च्छन्दस्त्रयपक्षं विधत्ते—

तत्तन्नादृत्यम्; त्रीण्येव शंसेत्, त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोका एषामेव लोकानामभिजित्यै ।।६।।

हिन्दी—(सातों छन्दों के शंसन वाले पक्ष का निराकरण करके तीन छन्दों वाले पक्ष का विधान कर रहे हैं—) **तत् तद् न आदृत्यम्** तो वह (सातों छन्दों में शंसन करने का पक्ष) आदरणीय नहीं है। **त्रयः वै इमे त्रिवृतः लोकाः** त्रिवृत (सत्व, रजस् और तमस्—इस तीन गुणों से युक्त) ये (पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु) तीन ही लोक हैं। **एषामेव लोकानाम् अभिजित्यै** इन तीनों लोकों की प्राप्ति के लिए **त्रीणि एव शंसेत्** तीन छन्दों का ही शंसन करना चाहिए।

सा० भा०—पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोकास्त्रय एव 'त्रिवृतः' सत्वरजस्तमोगुणैस्त्रिविधः, अतः त्रयाणामभिजयाय त्रीण्येव च्छन्दांसि।।

त्रयाणां छन्दसां प्रारम्भं निश्चेतुं पूर्वपक्षमाह—

(त्रयाणां छन्दसां प्रारम्भविचारः)

तदाहु 'उदुत्यं जातवेदसम्' इति सौर्याणि प्रतिपद्येतेति ।।७।।

हिन्दी—(तीनों छन्दों के प्रारम्भ का निश्चय करने के लिए पूर्वपक्ष को कह रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ याज्ञिक) कहते हैं कि (सूर्य-सम्बन्धी तीन छन्दों में से) **'उदुत्यं जातवेदसम्' इति सौर्याणि प्रतिपद्येत्** इस सूर्य-सम्बन्धी सूक्त से प्रारम्भ करना चाहिए।

सा० भा०—यानि 'सौर्याणि' त्रीणि च्छन्दांसि, तेषां प्रारम्भ 'उदुत्यम्'[२] इति शंसेदिति पूर्वः पक्षः।।

तमेतं दूषयति—

तत्तन्नादृत्यम्; यथैव गत्वा काष्ठामपराध्नुयात्, तादृक् तत्।।८।।

हिन्दी—(उस पूर्वपक्ष में दोष को कह रहे हैं—) **तत् तद् नादृत्यम्** तो वह (उदुत्यं जातवेदसम् से प्रारम्भ करने का पक्ष) आदरणीय नहीं है। **यथा काष्ठां गत्वा** जिस प्रकार सीमा (लक्ष्य) पर पहुँच कर (दौड़ने वाला) **अपराध्नुयात्** (अन्त में गिरकर) अपराध कर

(१) आश्व०श्रौ० ४.१३.१४.१५ कण्डिका द्रष्टव्याः।

(२) ऋ० १.५०.१।

दे **तादृक् तत्** उसी प्रकार वह (उदुत्यं जातवेदसम्' से प्रारम्भ करना भी है)।

सा० भा०—लोके कश्चिद्भाषापूर्वकमप्रमादेत धावनं कृत्वा 'काष्ठाम् अवधिस्थानं प्राप्य 'अपरायध्नुयात्' तत्रावसाने स्खलनपतनादिरूपमपराधं कुर्यात्, तादृगेव तद्भवति। आग्नेयकाण्डमारभ्य सूर्यकाण्डपर्यन्तमस्खलन् होता समाप्तौ सूर्यकाण्डे स्खलति; तस्माद् 'उदु त्यं' न शंसेत्॥

इदानीं सिद्धान्तमाह—

'सूर्यो नो दिवस्पात्वित्येतेनैव[1] प्रतिपद्येत; यथैव गत्वा काष्ठामभिपद्येत तादृक् तत् ।।९।।

हिन्दी—(अब सिद्धान्तपक्ष को कह रहे हैं—) 'सूर्यो नो दिवस्पातु' **इत्येतेनैव प्रतिपद्येत्** इस सूक्त से प्रारम्भ करना चाहिए। **यथा काष्ठामेव गत्वा** जिस प्रकार (धावक) लक्ष्य को प्राप्त करके **अभिपद्येत्** अच्छी प्रकार पहुँच जाय। **तादृक् तत्** उसी प्रकार वह ('सूर्यो नो दिवस्पातु' सूक्त से प्रारम्भ करना भी है)।

सा० भा०—यथा लोके कश्चिद् अवधिं प्राप्य स्खलनरहितः स्वाभीष्टं प्राप्नुयात्, तादृगेव तद् द्रष्टव्यम्। 'सूर्यो नः' इत्यस्मिन् मन्त्रे सूर्यवाय्वग्नीनां लोकत्रयाद्[2] रक्षणं प्रार्थयतो रक्षित (तृ) त्वादेवापराधं न प्राप्नोति; पूर्वत्रैवं नास्तीति विशेषः॥

प्रथमसूक्तं विधाय नवर्च[3] सूक्तान्तरं विधत्ते—

'उदु त्यं जातवेदसम्'[4] इति द्वितीयं शंसति ।।१०।।

हिन्दी—(प्रारम्भ करने वाले सूक्त को कह कर नौ ऋचाओं वाले अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं—) तत्पश्चात् 'उदुत्यं जातवेदसम्' **इति द्वितीयं शंसति** इस द्वितीय सूक्त का शंसन करता है।

सा० भा०—तदेतदुभयं गायत्रीछन्दस्कम्॥

अथ त्रैष्टुभं सूक्तं विधत्ते—

'चित्रं देवानामुदगादनीकम्'[5] इति त्रैष्टभमसौ वाव चित्रं देवानामुदेति, तस्मादेतच्छंसति ।।११।।

हिन्दी—'चित्रं देवानामुदगादनीकम्' **इति त्रैष्टुभम्** यह त्रिष्टुप् छन्द वाला सूक्त है।

---

(१) ऋ० १०.१५८.१-५।

(२) 'सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात्। अग्निनः पार्थिवेभ्यः'—इति।

(३) उदुत्यमिति सूक्तं तु त्रयोदशर्चम्; तत्रादौ नव गायत्र्यः, ता एवेह शंसनीया भवन्ति; 'उदु त्यं जातवेदसम्' इति नव—इति सूत्रकारोक्तेः (आश्व०श्रौ० ६.५.१८)।

(४) ऋ० १.५०.१-९। (५) ऋ० १.११५.१-६।

इसमें जो 'देवानां चित्रमुदगात्' अर्थात् देवताओं में चित्ररूप से उदित होना कहा गया है, तो वह) **देवानाम्** देवताओं में **असौ वाव** यह (सूर्य) ही **चित्रम् उदेति** चित्र रूप से उदित होता है। **तस्मात्** इसी कारण **एतत् शंसति** इस (सूक्त) का शंसन करता है।

सा० भा०—अस्मिन् मन्त्रे देवानां संबन्धि किंचित् 'चित्रं' रूपम् 'उदगात्' उदयं प्राप्नोतीति श्रूयते, असौ वा आदित्य एव देवानां संबन्धि चित्रं रूपमुदेति; कालभेदेन वर्णभेददर्शनात्। तस्मादेतत् सूक्तं प्रशस्तत्वाद् अत्र शंसनीयम्॥

तृतीयं छन्दो विधत्ते—

'नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षते'[1] इति जागतं; तद्वाशीःपदमाशिष-मेवैतेनाशास्त आत्मने च यजमानाय च ॥१२॥

हिन्दी— (अब तृतीय छन्द का विधान कर रहे हैं—) 'नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे' **इति जागतम्** यह जगती छन्द वाला (सूक्त) है। **तद् वाव आशीःपदम्** वह ('नमो मित्रस्य') आशीर्वाद वाचक पद है। **एतेन** इस (सूक्त) से (होता) **आत्मने च यजमानाय च** अपने लिए और यजमान के लिए **आशिषमेव शस्ते** आशीष का ही शंसन करता है।

सा० भा०—'तदु' तदस्य 'नमो मित्रस्य' इत्यादिकम् 'आशीःपदम्' आशिषः प्रति-पादकम्, द्वितीयचतुर्थपादयोः 'सपर्यत शंसत' इत्याशीरर्थस्य लोडन्तस्य पदद्वयस्य प्रयुक्त-त्वात् तच्छंसनेन होता स्वस्य यजमानस्य चाशिषं प्रार्थयते[2]॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तदशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—ऐन्द्रादिप्रगाथान् विधातुं प्रस्तौति—

(ऐन्द्रादिप्रगाथाविधातुं प्रस्तावना)

तदाहुः सूर्यो नातिशस्यो, बृहती नातिशस्या, यत्सूर्यमतिशंसेद्

---

(१) ऋ० १०.३७.१-१२।

(२) 'सूर्यो न', 'उदु त्यं', 'चित्रं', 'नमो मित्रस्य'—इति चत्वारि सूक्तानि सौर्याणि। 'उदिते सौर्याणि प्रतिपद्यते'—इति आश्व० श्रौ० ६.५.१७।

ब्रह्मवर्चसमतिपद्येत; यद्बृहतीमतिशंसेत् प्राणानतिपद्येतेति ।।१।।

हिन्दी—(इन्द्रादि विषयक प्रगाथों का विधान करने के लिए प्रस्तावना दे रहे हैं— **तदाहुः** इस (अश्विन्शस्त्र के) विषय में कहते हैं कि **सूर्यः न अतिशस्यः** (देवताओं में) सूर्य का अतिक्रमण करके शंसन नहीं करना चाहिए और **बृहती नातिशस्या** (छन्दों में) बृहती (छन्द) का अतिक्रमण करके (शंसन) नहीं करना चाहिए। **यत् सूर्यम् अतिशंसेत्** जो सूर्य का उलङ्घन करके शंसन करता है, वह **ब्रह्मवर्चसम् अतिपद्येत्** वह ब्रह्मवर्चस का (उलङ्घन) करता है और **यद् बृहतीम् अतिशंसेत्** जो बृहती का उलङ्घन करके शंसन करता है, वह **प्राणान् अतिपद्येत्** प्राणों को ही विनष्ट कर देता है।

सा० भा०—'तत्' तस्मिन्नाश्विनशस्त्रे केचिदभिज्ञा एवमाहुः। देवानां मध्ये यः सूर्योऽस्ति, सः 'नातिशस्यः' सूर्यमतिलनङ्घ्य शंसनं न कर्तव्यम्। तथा छन्दसां मध्ये बृहतीमतिलङ्घ्य शंसनं न कर्तव्यम्; सूर्यस्योपासकेषु ब्रह्मवर्चसप्रदत्वात् तदभिलङ्घने प्राणान् विनाशयेदिति तेषामभिप्रायः।।

इदानीमेकं प्रगाथं विधत्ते—

(ऐन्द्रप्रगाथशंसनविधानम्)

'इन्दं क्रतुं न आ भर' इत्यैन्द्रं प्रगाथं[१] शंसति ।।२।।

हिन्दी—(अब ऐन्द्र प्रगाथ का विधान कर रहे हैं—) 'इन्द्र क्रतुं न आ भर' अर्थात् हे इन्द्र! हमारे (अतिरात्र) याग का वहन करो—**इति ऐन्द्रं प्रगाथं शंसति** इस इन्द्र देवता वाले प्रगाथ का शंसन करता है।

सा० भा०—हे इन्द्र 'नः' अस्माकं 'क्रतुम्' अतिरात्राख्यम् 'आभर' आनयेति-अस्य पादस्यार्थः।।

द्वितीयमर्धर्चं पठति—

शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहीति ।।३।।

हिन्दी—(द्वितीय अर्धर्च को कह रहे हैं—) **पुरुहूत** हे बहुत से पुरुष वाले यागों में बुलाये जाने वाले (इन्द्र)! **नः अस्मिन् यामनि** हमारे इस (अतिरात्ररूप) नियम-विशेष में **शिक्ष** उपदिष्ट करो। **जीवा** जीवित रहते हुए हम **ज्योतिः अशीमहि** ज्योति को प्राप्त करें।

सा० भा०—'पुरुषु' बहुषु यागेष्वाहूयमान, हे इन्द्र, 'नः' अस्मान् 'अस्मिन्' अतिरात्रयागरूपे 'यामनि' नियमविशेषे 'शिक्षे' उपदेशेन प्रवर्तय। 'जीवाः' त्वत्प्रसादेन जीवन्तो वयं 'ज्योतिः' आदित्यमण्डलरूपम् 'अशीमहि' प्राप्नुयाम।।

(१) ऋ० ७.३२.२६।

अत्र ज्योतिःशब्दस्यादित्यपरत्वात् प्रगाथस्यैन्द्रत्वेऽपि सूर्यमतिक्रम्य शंसने न भविष्यतीत्येतद् दर्शयति—

असौ वाव ज्योतिस्तेन सूर्यं नातिशंसति ।।४।।

हिन्दी— असौ वाव ज्योतिः यह सूर्य ही ज्योति है। **तेन** उस (शंसन) से **सूर्यं न अतिशंसति** सूर्य का उलङ्घन न करके शंसन करता है।

सा० भा०—अस्मिन् प्रगाथे पूर्वस्या ऋचः षट्त्रिंशदक्षरत्वात् पादचतुष्टयोपेतत्वाच्च सा स्वभावत एव बृहती; पुनरपि तस्याश्चतुर्थपादष्टाक्षरं द्विरावर्त्य इतरस्या ऋचः प्रथमार्धेन विंशत्यक्षरेण सह प्रग्रथ्य षट्त्रिंशदक्षरा द्वितीया बृहती संपादनीया; तत्राप्यन्तिमं पादमष्टाक्षरं द्विरावर्त्य उत्तरार्धेन विंशत्यक्षरेण सह प्रग्रथ्य तृतीया बृहती संपादनीया; एवं सति बृहत्या अतिक्रमो न भवति।।

अत्रोत्तरस्या ऋचो विष्टारपङ्क्तित्वेऽपि प्रग्रथनेन बृहतीत्वसंपादनाद् बृहतीमतिलङ्घ्य शंसनं न भविष्यतीत्येतद् दर्शयति—

यदु बार्हतः प्रगाथस्तेन बृहतीं नातिशंसति ।।५।।

हिन्दी—यदु बार्हतः प्रगाथः जो यह बृहती (छन्द) वाला प्रगाथ है, **तेन बृहतीं न अतिशंसति** उस (शंसन) से बृहती का उलङ्घन न करके शंसन करता।

प्रगाथान्तरं विधत्ते—

(आश्विनप्रगाथविधानम्)

'अभि त्वा शूर नोनुम'[1] इति राथंतरीं योनिं शंसति; राथंतरेण वै संधिनाश्विनाय स्तुवते; तद् यद् राथंतरीं योनिं शंसति रथंतरस्यैव सयोनित्वाय ।।६।।

हिन्दी—(अन्य अश्विन् प्रगाथ का विधान कर रहे हैं—) **'अभित्वा शूर नोनुम' इति राथन्तरी योनिम्** इस रथन्तर (साम) में उत्पन्न (प्रगाथ) का **शंसति** शंसन करता है। **रथन्तरेण वै सन्धिना** रथन्तर (नामक साम) की सन्धि से **आश्विनाय स्तुवते** अश्विन (शस्त्र) के लिए **स्तुवते** स्तुति की जाती है। **तद् यद् रथन्तरी योनिं शंसति** तो जो रथन्तरी योनि का शंसन करता है वह **रथन्तरस्य एव सयोनित्वाय** रथन्तर के ही समान स्थानत्वं के लिए (सम्पादित करता है)।

सा० भा०— रथंतराख्यं साम 'अभि त्वा शूर' इत्यत्रोत्पन्न[2] तस्माद् रथंतरयोनित्वम्। उद्गातारो ह्यतिरात्रे रथंतरसामसाध्येनान्तिमेन संधिना स्तोत्रेण आश्विनशस्त्रप्रदर्श-

(१) ऋ० ७.६६.२२।
(२) छ०आ० ३.१.५.१। आर०गा० २.१.२१। आर्षेय ब्रा० ३.१३।

नार्थमेव स्तुवते[1]। अतो रथंतरयोनिशंसने सति स्तोत्रगतस्य रथंतरस्यैव साम्नः 'सयोनित्वं' समानस्थानत्वं संपद्यते।।

अत्र सूर्यातिक्रमाभावं दर्शयति—

ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमित्यसौ वाव स्वर्दृक् तेन सूर्यं नातिशंसति।।७।।

हिन्दी—(इसमें सूर्य के उलङ्घन के अभाव को दिखला रहे हैं—) 'ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशम्' अर्थात् इस जगत् के स्वामी और स्वर्गलोक में दिखलायी देने वाले (सूर्य) के लिए (हम स्तुति करते हैं)—**इति** यह (ऋचा का तृतीय पाद है) यहाँ **असौ वाव स्वर्दृक्** यह (सूर्य) ही स्वर्गलोक में दिखलायी देने वाला है। **तेन** उस (शंसन) से **सूर्यं नातिशंसति** सूर्य का उलङ्घन न करते हुए शंसन करता है।

सा० भा०—ईशानमित्यादिकः प्रथमाया ऋचस्तृतीयपादः। 'अस्य' सर्वस्य जगतः 'ईशानं' स्वामिनं 'स्वर्दृशं' स्वर्गलोके दृश्यमानम् 'अभिनोनुमः' इति प्रथमपादगतेनान्वयः। अत्र स्वर्दृक्शब्देनासावादित्य एवोच्यते। तेन सूर्यातिक्रमो नास्ति।।

पूर्ववद् बृहत्यतिक्रमाभावं दर्शयति—

यदु बार्हतः प्रगाथस्तेन बृहतीं नातिशंसति।।८।।

हिन्दी—(पूर्ववर्ती प्रगाथ वाली ऋचा के समान यहाँ भी बृहती के उलङ्घन के अभाव को दिखला रहे हैं—) **यदु बार्हतः प्रगाथः** जो यह बृहती (छन्द) वाला प्रगाथ है, **तेन** उस (बृहती छन्द वाले प्रगाथ) से **बृहतीं नातिशंसति** बृहती (छन्द) का अतिक्रमण न करके शंसन करता है।

प्रगाथान्तरं विधत्ते—

(मैत्रावरुणप्रगाथविधानम्)

'बहवः सूरचक्षसः'[2] इति मैत्रावरुणं प्रगाथं शंसत्यहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुण उभे वा एषोऽहोरात्रे आरभते योऽतिरात्रमुपैति; तद् यन्मैत्रावरुणं प्रगाथं शंसत्यहोरात्रयोरवैनं तत्प्रतिष्ठापयति।।९।।

हिन्दी—(अन्य मैत्रावरुण प्रगाथ का विधान कर रहे हैं—) 'बहवः सूरचक्षसः' **इति मैत्रा-वरुणं प्रगाथं शंसति** इस मित्र और वरुण युगल देवता वाले (प्रगाथ) का शंसन करता है। **अहः वै मित्रः** मित्र दिनरूप है और **रात्रिः वरुणः** वरुण रात्रिरूप है। **यः अतिरात्रम् उपैति** जो अतिरात्र का सम्पादन करता है **एषः अहो रात्रे उभे आरभते** वह दिन और रात्रि दोनों का प्रारम्भ करता है। **तद् यद् मैत्रावरुणं प्रगाथं शंसति** तो जो मैत्रावरुण प्रगाथ का शंसन करता है, **तत्** इस (शंसन) से **एनम्** इस (यजमान) को

(१) ता०ब्रा० ९.१.२०-३८ द्रष्टव्याणि। (२) ऋ० ७.६६.१०।

अहोरात्रयोः दिन और रात्रि (दोनों) में **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—अह्नो 'मित्रः' स्वामी; रात्रेश्च 'वरुणः' तस्मात् तयोस्तद्रूपत्वम्। 'यः' यजमानः 'अतिरात्रं' क्रतुम् अनुतिष्ठति; 'एषः' पुमान् 'अहोरात्रे' 'उभे' अप्युद्दिश्य क्रतुं प्रारभते; उभयोः कालयोरनुध्येयविशेषसद्भावात्। अतो मैत्रावरुणप्रगाथशंसनेनाहोरात्रयोरेव कालयोः 'एनं' यजमानं प्रतिष्ठितं करोति॥[1]

पूर्ववदनतिक्रमं दर्शयति—

'सूरचक्षसः' इति तेन सूर्यं नातिशंसति; यदु बार्हतः प्रगाथस्तेन बृहती नातिशंसति ॥१०॥

हिन्दी—(पूर्ववर्ती प्रगाथों के समान इस प्रगाथ में भी सूर्य और बृहती के उलङ्घन का अभाव दिखला रहे हैं—) (प्रगाथ में) 'सूर चक्षसः' (पद में सूर्य वाचक) सूर का प्रयोग हुआ है। **तेन** उससे **सूर्यं नातिशंसति** सूर्य का उलङ्घन न करके शंसन करता है और **यदु बार्हतं प्रगाथम्** जो यह बृहती (छन्द) वाला प्रगाथ है **तेन** उससे **बृहती नातिशंसति** बृहती (छन्द) का उलङ्घन न करके शंसन करता है।

सा० भा०—'सूरचक्षसः' इति श्रूयमाणं सूरपदं सूर्यवाचि; अतस्तस्य नातिक्रमः॥

पुनरप्यन्ये द्वे ऋचौ विधत्ते—

(द्यावापृथिवीप्रगाथविधानम्)

'मही द्यौः पृथिवी च नः' ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवेति' द्यावापृथिवीये शंसति द्यावापृथिवी वै प्रतिष्ठे इयमेवेह प्रतिष्ठाऽ-सावमुत्र तद् यद् द्यावापृथिवीये शंसति प्रतिष्ठयोरेवैनं तत्प्रतिष्ठा-पयति ॥११॥

हिन्दी—(उसके बाद द्यावापृथिवी के अन्य दो प्रगाथों का विधान कर रहे हैं—) 'मही द्यौ पृथिवी च नः' और 'ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुवा'—**इति द्यावापृथिवीये शंसति** इन दो द्यावापृथिवी से सम्बन्धित (प्रगाथों) का शंसन करता है। **द्यावापृथिवी वै प्रतिष्ठे** द्यावा और पृथिवी दोनों प्रतिष्ठा (आश्रयस्थान) है। **इयमेव इह प्रतिष्ठा** यह (पृथिवी) इस (लोक) में प्रतिष्ठा है और **असौ अमुत्र** वह (द्युलोक) वहाँ आश्रय है। **तद् यद् द्यावापृथिवीये शंसति** तो जो द्यावापृथिवी से सम्बन्धित दोनों ऋचाओं का शंसन करता है **तत्** उस (शंसन) से **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **प्रतिष्ठयोः** दोनों आश्रयों में **प्रतिष्ठापयति** प्रतिष्ठापित करता है।

---

(१) 'इन्द्र क्रतुं', 'अभि त्वा', 'बहवः सूरचक्षसः'—इति त्रयः प्रगाथाः (आश्व० श्रौ० ६.५.१८)।

सा०भा०—'मही द्यौः'[१] इत्येका 'ते हि'[२]—इति द्वितीया; उभे अप्यृचौ द्यावापृथिवी-देवताके। ते च द्यावापृथिव्यौ सर्वेषां प्राणिनामाधारभूते 'इह' मनुष्यजन्मनि 'इयम्' 'एव' पृथिवी प्राणिनामाश्रयः। 'अमुत्र' जन्मान्तरे 'असौ' द्युलोक आश्रयः। तथा सति द्यावापृथिवी-ययोर्ऋचोः शंसनेनोभयोरपि प्रतिष्ठारूपयोर्लोकयोः 'एनं' यजमानं प्रतिष्ठापयति॥

अत्र सूर्यस्यानतिक्रमं दर्शयति—

'देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः' इति तेन सूर्यं नातिशंसति।।१२।।

हिन्दी—(उन दोनों ऋचाओं में सूर्य के उलङ्घन का अभाव दिखला रहे हैं—) 'देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः'—**इति** इस (उत्तरवर्ती ऋचा) में (सूर्य शब्द प्रयुक्त होने कारण) **सूर्यं नातिशंसति** (सूर्य का उलङ्घन न करते हुए शंसन करता है।

सा०भा०—उत्तरस्यामृचि 'देवी देवो' इत्यस्मिन् पदे सूर्यस्य श्रूयमाणत्वात् तदति-क्रमो नास्ति॥

बृहत्या अनतिक्रमं दर्शयति—

यदु गायत्री च जगती च ते द्वे बृहत्यौ; तेन बृहतीं नातिशंसति।।१३।।

हिन्दी—(अब उनमें बृहती छन्द के अनतिक्रमण को दिखला रहे हैं—) **यदु गायत्री च जगती च** जो (ये दोनों ऋचाएँ क्रमशः) गायत्री और जगती छन्द वाली हैं, **ते द्वे बृहत्यौ** वे दोनों (२४ + ४८ = ७२ अक्षर वाली है अतः) **द्वे बृहत्यौ** दो बृहती छन्द (सम्पादित करती हैं)। **तेन** इस कारण **बृहतीं नातिशंसति** बृहती का उलङ्घन न करके शंसन करता है।

सा०भा०—प्रथमा गायत्रीछन्दस्काचतुर्विंशत्यक्षरा। द्वितीया जगतीच्छन्दस्काऽ-ष्टाचत्वारिंशदक्षरा मिलित्वा द्वासप्ततिरक्षराणि संपद्यन्ते; तेषां द्वेधा विभागे सति षट्त्रिंश-दक्षरे द्वे बृहत्यौ भवतः। तेन बृहत्या अनतिक्रमः॥

अथान्यामेकामृचं विधत्ते—

'विश्वस्य देवी मृचयस्य जन्मनो न या रोषाति न ग्रभत्'—इति द्विपदां शंसति।।१४।।

हिन्दी—(इसके बाद एक अन्य ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **विश्वस्य मृचयस्य जन्मनः** सम्पूर्ण जङ्गम प्राणियों की **देवी** स्वामिनी (निर्ऋतिरूपा मृत्युदेवता) **न रोषाति** क्रोध न करे और **न ग्रभत्** न हमें पकड़े—**इति द्विपदां शंसति** इस दो पादों वाली (ऋचा) का शंसन करता है।

---

(१) ऋ० १.२२.१३। (२) ऋ० १.१६०.१।

सा० भा०—इयमृक्पादद्वयोपेता[१] अस्मिन् ब्राह्मणे एवोक्ता। 'मृचि' धातुर्गत्यर्थः। मर्चयति गच्छतीति गतिमान् प्राणी॥[२] 'विश्वस्य' सर्वस्य 'मृचयस्य' गतिमतः प्राणिनो यज्जन्म, तस्य 'जन्मन:' 'देवी' स्वामिनी काचिन्निर्ऋतिरूपा मृत्युदेवता विद्यते। 'या' मृत्युदेवताऽस्मासु 'न रोषाति' न कुप्यति, 'न ग्रभत्' नैव गृह्णातीति द्विपदाया ऋचोऽर्थः। तामेतां द्विपदां शंसेत्॥

एतामृचं प्रशंसति—

चितैधमुक्थमिति ह स्म वा एतदाचक्षते, यदेतदाश्विनम्; निर्ऋतिर्ह स्म पाशिन्युपास्ते, यदैव होता परिधास्यति; अथ पाशान् प्रतिमोक्ष्यामीति; ततो वा एतां बृहस्पतिर्द्विपदामपश्यन्न या रोषाति न ग्रभदिति; तया निर्ऋत्याः पाशिन्या अधराचः पाशानपास्यत् तद् यदेतां द्विपदां होता शंसति निर्ऋत्या एव तत्पाशिन्या अधराचः पाशानपास्यति स्वस्त्येव होतोन्मुच्यते सर्वायुः सर्वायुत्वाय ॥१५॥

हिन्दी—(इस ऋचा की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् एतद् आश्विनम्** जो यह आश्विन् शस्त्र है **एतत्** यह **चितैधम् उक्थम्** चिता की लकड़ी के समान शस्त्र है–**इति ह स्म आचक्षते** ऐसा अभिजन कहते हैं। (अत: यह श्मशान स्थल के समान भयानक होता है) क्योंकि **पाशिनी निर्ऋतिः ह उपास्ते स्म** पाश को लिए हुए (मृत्यु की देवता) निर्ऋति (होता के) समीप में विद्यमान रहती है कि **यदा वै होता परिधास्यति** जब होता (शस्त्र का) समापन करेगा **अथ पाशान् प्रतिमोक्ष्यामि** तब पाशों को (इस होता के ऊपर) फेंक दूँगी। **ततः वै** उसी समय ही **बृहस्पतिः** बृहस्पति ने (इस निर्ऋति की शान्ति के लिए) **एतां द्विपदाम् अपश्यन्** इस द्विपाद वाली (ऋचा) का दर्शन किया। **या न रोषाति न ग्रभत्** जो न क्रोध करती है और न ग्रहण करती है। **तया** (बृहस्पति ने) इस (ऋचा) द्वारा **पाशिन्या निर्ऋत्याः** पाश धारण करने वाली निऋति के **पाशान्** पाशों को **अधराचः अपास्य** नीचे गिरा दिया। **तद् यद् एतां द्विपदाम्** तो जो इस दो पादों वाली (ऋचा) का **होता शंसति** होता शंसन करता है, **तत्** उस (शंसन) से **पाशिन्याः निऋत्याः** पाशधारिणी (मृत्यु देवता) निर्ऋति के **पाशान् अधराचः अपास्यति** पाशों को नीचे गिरा

---

(१) आश्वलायनेनाप्यनूक्ता—'विश्वस्य ग्रभदिति द्विपदा'—इति ६ ५.१८।

(२) मृचिर्हिंसाकर्मा; 'यत् क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा'—इत्यादिषु '(अथर्व० ८.२.१७; आश्व० गृ० १.१७.१६; पार०गृ० २.१) तथा दृष्टत्वात्'—इति, 'मर्चयात् –मर्चयतिर्हिंसाकर्मा, हिंस्यात्'–इति च ऋग्भाष्ये सायण: (८.६७.९,२.२३.७)। 'मर्च च (शब्दार्थ:)'—इति चु० प ११६। 'मर्च ग्रहणे' सौत्र:; उणा० ३.४३। 'मर्चयतेर्मर्क:' पा० १.१.५८ वा० ३।

देता है। **स्वस्त्या एव होता उन्मुच्यते** स्वस्ति के द्वारा ही होता (निर्ऋति के पाशों से) उन्मुक्त होता है। इस प्रकार **सर्वायुः** (यह ऋचा) सम्पूर्ण आयु रूप है। अतः **सर्वायुत्वाय** सम्पूर्ण आयु की प्राप्ति के लिए (इस ऋचा का शंसन किया जाता है)।

सा० भा०—यदेतत् 'आश्विनं' शस्त्रमस्ति, तदेतच्चितैधमुक्थमिति रहस्याभिज्ञा आचक्षते। चिता एधाः काष्ठसमूहा मनुष्यं दग्धुं यस्मिञ्श्मशाने स्थाने, तत् स्थानं 'चितैधम्'; तत्सदृशमिदम् 'उक्थं' शस्त्रम्, यथा श्मशानं दृष्ट्वा जीवनार्थिनो बिभ्यति, तद्वदाश्विनं शस्त्रं भयहेतुरित्यर्थः। तत्कथमिति? तदेवोच्यते—'निर्ऋतिः मृत्युदेवता, सा च 'पाशिनी' पाशहस्ता सती 'उपास्ते' होतुः समीपे निवसति। केनाभिप्रायेणेति? सोऽभिधीयते,—यदैवायं होता 'परिधास्यति' शस्त्रसमाप्तिं करिष्यति, तदैव बन्धनार्थं पाशान् अस्मिन् होतरि 'प्रतिमोक्ष्यामि' प्रजेष्यामि 'इति' तस्या अभिप्रायः। 'ततो वै' तस्मादेव निर्ऋत्याः परिहरणीयत्वकारणात् तदपाकरणार्थं बृहस्पतिः 'एतां' द्विपदां तत्परिहारहेतुत्वेनापश्यत्। काऽसौ द्विपदेति वीक्षायां तदीयो द्वितीयः पादो 'न या'–इत्यादिकः प्रदर्शनार्थमुपादीयते। 'तया' द्विपदया पाशहस्ताया निर्ऋतया सकाशाद् 'अधराचः' अधो लम्बमानान् पाशान् बृहस्पतिः 'अपास्यत्' द्विपदायां पठ्यमानायां तद्धस्तात् पाशाः पतिता इत्यर्थः। तद्वद्धोताऽपि द्विपदायाः शंसनेन पाशान् 'अपास्यति' निराकरोति। 'स्वस्त्येव' क्षेमेणैवायं होता निर्ऋतिपाशात् मुच्यते। ततः सर्वायुर्भवति, यजमानस्यापि सर्वायुत्वाय शंसनं संपद्यते॥

वेदनं प्रशंसति—

सर्वमायुरेति य एवं वेद ॥१६॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वम् आयुः एति** सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है।

तत्र सूर्यस्यानतिक्रमं दर्शयति—

मृचयस्य जन्मन इत्यसौ वाव मर्चयतीव; तेन सूर्यं नातिशंसति ॥१७॥

हिन्दी—(इस ऋचा में सूर्य की अनतिक्रमता को दिखला रहे हैं—) 'मृचयस्य जन्मनः' इति यहाँ **असौ वाव मर्चयति** वह सूर्य ही गमन करता ह। **तेन** इस (शंसन) से **सूर्यं न अतिशंसति** सूर्य का अतिक्रमण न करके शंसन करता है।

सा० भा०—द्विपदायां गतिवाची 'मृचय' शब्दोऽस्ति 'असौ वाव' आदित्योऽपि मर्चयतीव सर्वदा गच्छत्येव; 'तेन' सूर्याभिधानान्नस्त्यतिक्रमः॥

बृहत्या अनतिक्रमं दर्शयति—

यदु द्विपदा, पुरुषच्छन्दसं सा सर्वाणि च्छन्दांस्यभ्याप्ता; तेन बृहतीं नातिशंसति ॥१८॥

हिन्दी—(अब बृहती के अनतिक्रमण को दिखला रहे हैं—) **यदु द्विपदा** जो यह (ऋचा) दो पादों वाली है अतः **पुरुषच्छन्दसम्** (पुरुष के दो पादों के होने के कारण समानता से) पुरुष सम्बन्धी छन्द वाली है। **सा सर्वाणि छन्दांसि अभ्याप्ताः** (शंसन करने वाले पुरुष द्वारा) वह (द्विपदा) सभी छन्दों को सभी ओर से व्याप्त कर लेती है। **तेन** इस (सभी छन्दों को व्याप्त कर लेने) के कारण **बृहतीम् नातिशंसति** बृहती का अतिक्रमण न करते हुए शंसन करता है।

सा० भा०—'यदु' यस्मादेव कारणादियं द्विपदा, तस्मादेव पुरुषसादृश्यात् पुरुषसम्बन्धच्छन्दो भवति। पुरुषश्च सर्वच्छन्दसां प्रयोक्तेति पुरुषद्वारा 'सा' द्विपदा सर्वाणि च्छन्दांस्यभितो व्याप्नोति। 'तेन' बृहत्या अपि व्याप्तत्वान्नास्त्यतिक्रमः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तदशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—अथाश्विनस्य समाप्त्यर्थमेकामृचं विधत्ते—

(आश्विनशस्त्रपरिधानीया ऋक्)

ब्राह्मणस्पत्यया परिदधाति; ब्रह्म वै बृहस्पतिर्ब्रह्मण्येवैनं तदन्ततः प्रतिष्ठापयति ॥१॥

हिन्दी—(अब आश्विन् शस्त्र की समाप्ति करने के लिए एक ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **ब्राह्मणस्पत्यया परिदधाति** 'बृहस्पते अति यदर्यः' इस ब्रह्मणस्पतिसम्बन्धी (ऋचा) से (आश्विनशस्त्र का) समापन करता है। **ब्रह्म वै बृहस्पतिः** ब्राह्मण ही बृहस्पति है। **तत्** उस (उपसंहार) से **एनम्** इस (यजमान) को **अन्ततः** अन्त में **ब्रह्मणि एव प्रतिष्ठापयति** ब्राह्मणरूप (बृहस्पति) में प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—'बृहस्पते अति यदर्यः'[१] इत्येषा 'ब्राह्मणस्पत्या' बृहस्पतेर्देवेषु ब्राह्मणजातिस्वरूपत्वात्। तेन परिधानेनैतच्छस्त्रं 'ब्रह्मणरूपे बृहस्पतावेव प्रतिष्ठितं भवति॥

नित्यप्रयोगार्थं परिधानीयां विधाय काम्यप्रयोगं विधत्ते—

---

(१) ऋ० २.२३.१५।

(परिधानीयर्चः काम्यप्रयोगः)

'एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णो'[१] इत्येतया परिदध्यात् प्रजाकामः पशुकामः ।।२।।

हिन्दी—(नित्य प्रयोग के लिए परिधानीय ऋचा का विधान करके काम्यप्रयोग को दिखला रहे हैं—) **प्रजाकामः पशुकामः** प्रजा की कामना करने वाला और पशु की कामना करने वाला 'एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे'—**इत्येतया परिदध्यात्** इस (ऋचा) से समापन करे।

तस्या ऋचस्तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तः' इति प्रजया वै सुप्रजा वीरवान् ।।३।।

हिन्दी—('एवा पित्रे' इस ऋचा के तृतीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तः' **इति** यह (ऋचा का तृतीय पाद है)। यहाँ 'प्रजया वै सुप्रजा वीरवान्' में प्रजा शब्द से सुसन्तान और शूर-वीर युक्त होना कहा गया है।

सा० भा०—पुत्रादिरूपया 'प्रजया' पिता 'सुप्रजाः' शोभनापत्यः 'वीरवान्' शूर-भृत्ययुक्तश्च। तेन तृतीयपादोक्तं 'सुप्रजा वीरवन्तः' इत्येतदुपपन्नम्।।

चतुर्थपादमनुवदति—

'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' इति ।।४।।

हिन्दी—(ऋचा के चतुर्थ पाद को कह रहे हैं—) 'वयं स्याम पतयो रणीणाम्' अर्थात् (हे बृहस्पति)! हम लोग धनों के स्वामी बने—**इति** यह (ऋचा का चतुर्थ पाद है)।

सा० भा०—हे बृहस्पते, त्वत्प्रसादाद् वयं 'रयीणां' धनानां पतयः स्याम।।

अस्यार्थस्य स्पष्टत्वाद् व्याख्यानमुपेक्ष्य ज्ञानपूर्वकानुष्ठानं प्रशंसति—

प्रजावान् पशुमान् रयिमान् वीरवान् भवति, यत्रैवं विद्वान् एतया परिदधाति ।।५।।

हिन्दी—(उपर्युक्त कथन की स्पष्टता होने से के कारण व्याख्यान की उपेक्षा करके ज्ञानपूर्वक अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस यज्ञ में **एवं विद्वान्** इस (उपर्युक्त) प्रकार से जानने वाला **एतया परिधाति** इस (ऋचा) से आश्विनशस्त्र) का समापन करता है वह **प्रजावान्, पशुमान् रयिमान् वीरवान् भवति** सन्तान, पशु, धन और वीर सेवकों से सम्पन्न होता है।

फलान्तरार्थम्[२] अन्यामृचं विधत्ते—

---

(१) ऋ० ४.५०.६। (२) द्र० 'नित्यप्रयोगार्थञ्च' आश्व०श्रौ० ६.५.१९।

'बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्' इत्येतया[1] परिदध्यात्, तेजस्कामो ब्रह्मवर्चसकामोऽतीव वाऽन्यान् ब्रह्मवर्चसमर्हति ।।६।।

हिन्दी—(अन्य फल की प्राप्ति के लिए अन्य ऋचा का विधान कर रहे हैं—) **तेजस्कामः ब्रह्मवर्चसकामः** तेज की कामना करने वाला और ब्रह्मवर्चस् की कामना करने वाला 'बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्'—**इत्येतया परिदध्यात्** इस (ऋचा) से समापन करे। इससे **अन्यान् अतीव ब्रह्मवर्चसम् अर्हति** अन्य पुरुषों की अपेक्षा अत्यधिक ब्रह्मवर्चस् को प्राप्त करता है।

सा० भा०—अत्र पादे योऽयमतिशब्दस्तत्प्रसादादनुष्ठाताऽन्यपुरुषान् 'अतीव' अतिक्रम्यैवाधिकं ब्रह्मवर्चसम् 'अर्हति' प्राप्नोतीत्यर्थः।।

द्वितीयपादे प्रथमपदमनूद्य व्याचष्टे—

द्युमदिति द्युमदिव वै ब्रह्मवर्चसं विभातीति, वीव वै ब्रह्मवर्चसं भाति ।।७।।

हिन्दी—(इस ऋचा के द्वितीय पाद में प्रयुक्त प्रथम पद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **द्युमत् इति** (ऋचा के द्वितीय पाद में) 'द्युमत्' शब्द है। **द्युमदिव ब्रह्मवर्चसम्** प्रकाशसम्पन्न के समान ब्रह्मवर्चस् से युक्त (व्यक्ति) **विभाति** (सभी लोगों के मध्य) शोभायमान होता है। (इस पाद के शंसन से) **वीव ब्रह्मवर्चसं भाति** विशेषरूप से ब्रह्मवर्चस् से सम्पन्न होता है।

सा० भा०—'द्युमद् विभाति क्रतुमज्जनेषु'—इति द्वितीयः पादः। ब्रह्मवर्चसविशेषणत्वेन द्युतिमत्पर्यायो 'द्युमदिति' शब्दः प्रयुज्यते। श्रुताध्ययनसंपत्तिरूपं 'ब्रह्मवर्चसं' विद्वत्सभायां 'द्युमदिव वै' प्रकाशयुक्तमेव भूत्वा 'विभाति' सर्वेषामेव भासत 'इति' तस्य पदस्य तात्पर्यम्। एतत्पादशंसने ब्रह्मवर्चसं 'वीव वै' विशेषेणैव भाति।।

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात' इति, दीदायेव वै ब्रह्मवर्चसम् ।।८।।

हिन्दी—(ऋचा के तृतीय पाद को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'यद् दीदयच्छवस ऋतप्रजात'—**इति** यह (ऋचा का तृतीय पाद है)। **दीदाय इव ब्रह्मवर्चसम्** ब्रह्मवर्चस् प्रकाश के समान होता है।

सा० भा०—अस्मिन्नपि पादे ब्रह्मवर्चसविशेषणत्वेन दीप्यमानत्ववाचकं दीदयदिति पदमस्ति; ब्रह्मवर्चसं 'दीदायेव वै' ब्राह्मणेषु दीप्यत एवेति तस्य पादस्यार्थः।।

चतुर्थपादमनूद्य व्याचष्टे—

---

(१) ऋ० २.२३.१५।

'तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्' इति, चित्रमिव वै ब्रह्मवर्चसम्।।९।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्' इति यह (ऋचा का चतुर्थ पाद है)। **चित्रमिव ब्रह्मवर्चसम्** ब्रह्मवर्चस विचित्र के समान होता है।

सा० भा०—अस्मिन् पादे यच्चित्रविशेषणं तद्युक्तमेव ब्रह्मवर्चसस्य वेदेन शास्त्रेणाऽऽचारेण च विचित्रत्वात्।।

वेदनपूर्वकमनुष्ठानं प्रशंसति—

ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवति, यत्रैवं विद्वानेतया परिदधाति ।।१०।।

हिन्दी—(इसके ज्ञानपूर्वक अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (शंसन) में **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतया** इस ('बृहस्पते अति' ऋचा) से **परिदधाति** (आश्विन् शस्त्र का) समापन करता है, वह **ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवति** ब्रह्मवर्चस और ब्रह्मयश से सम्पन्न होता है।

सा० भा०—'ब्रह्मवर्चसी' वृत्तसंपन्नः। 'ब्रह्मयशसी' तन्निमित्तकीर्तियुक्तः।।

उक्तमर्थं निगमयति—

तस्मादेवं विद्वानेतया परिदध्यात् ।।११।।

हिन्दी—(उक्त अर्थ का निगमन कर रहे हैं—) **तस्मात्** इस कारण **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **एतया परिदध्यात्** इस ('बृहस्पते अति' ऋचा) से समापन करें।

सूर्यस्यानतिक्रमं दर्शयति—

ब्राह्मणस्पत्या; तेन सूर्यं नातिशंसति ।।१२।।

हिन्दी—(इस ऋचा के शंसन में सूर्य की अनतिक्रमता को दिखला रहे हैं—) **'ब्राह्मणस्पत्या'** (यह ऋचा) ब्राह्मणस्पति देवता वाली है। अतः **तेन** उस (ब्राह्मणस्पति देवताक होने) से **सूर्यं नातिशंसति** (सन्ध्या इत्यादि में सूर्य के ब्राह्मणों का स्वामी होने के कारण) सूर्य का अतिक्रमण न करते हुए शंसन करता है।

सा० भा०—यस्माद् इयमृक् ब्रह्मणस्पतिदेवताका, सूर्यश्च संध्योपासनादौ ब्राह्मणानां स्वामी, तस्मान्नातिक्रमः।।

बृहत्या अनतिक्रमं दर्शयति—

यदु त्रिष्टुभं त्रिः शंसति; सा सर्वाणि च्छन्दांस्यभ्याप्ता; तेन बृहतीं नातिशंसति ।।१३।।

हिन्दी—(ऋचा के शंसन में बृहती छन्द की अनतिक्रमता को दिखला रहे हैं—) **यदु त्रिष्टभं त्रि शंसति** जो इस त्रिष्टुप् छन्दस्क (ऋचा) का तीन बार शंसन करता है। **सा सर्वाणि छन्दांसि अभ्याप्ता** वह (एक सौ बत्तीस अक्षरों के होने के कारण) सभी छन्दों को व्याप्त कर लेती है। **तेन** इस कारण **बृहतीं नातिशंसति** बृहती (छन्द) का अतिक्रमण न करते हुए शंसन करता है।

सा० भा०—'त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमान्'–इति न्यायेन परिधानीयायास्त्रिरावृत्तिरस्ति; इयं त्रिष्टुप् त्रिरावर्त्यमाना द्वात्रिंशदधिकशताक्षरा संपद्यते। तेष्वक्षरेषु सर्वच्छन्दसामन्तर्भावयितुं शक्यत्वाद् इयं सर्वाणि च्छन्दांस्यभितो व्याप्नोति; अतो बृहत्या अपि तद् व्याप्तत्वान्नास्त्यतिक्रमः। यदुक्तं सूत्रकारेण—'आश्विनेन ग्रहेण सपुरोळाशेन चरन्ति'[१] इति॥

तत्रोभयार्थं द्वे याज्ये विधत्ते—

(आश्विनशस्त्रस्य याज्याद्वयविधानम्)

गायत्र्या च त्रिष्टुभा च वषट्कुर्यात् ॥१४॥

हिन्दी—(दोनों परिधानीय ऋचाओं के लिए दो याज्याओं का विधान कर रहे हैं–) **गायत्र्या च त्रिष्टुभा च** ('इमा पिबतमश्विना' इस) गायत्री और ('अश्विना वायुना' इस) त्रिष्टुप् (छन्द वाली ऋचा) से **वषट्कुर्यात्** वषट्कार (याज्या) करना चाहिए।

सा० भा०—'उभा पिबतमश्विना'[२]—इति गायत्रीः 'अश्विना वायुना'[३]—इति त्रिष्टुप्। ताभ्यां 'वषट्कुर्यात्' याज्यात्वेन तदुभयं पठेद् इत्यर्थः॥

तदेतदुभयं प्रशंसति—

ब्रह्म वै गायत्री, वीर्यं त्रिष्टुब्; ब्रह्मणैव तद्वीर्यं संदधाति ॥१५॥

हिन्दी—(इन दोनों छन्दों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ब्रह्म वै गायत्री** (गायत्री और ब्राह्मण दोनों के प्रजापति के मुख से उत्पत्ति के कारण) गायत्री ब्राह्मण है और **वीर्यं त्रिष्टुप्** त्रिष्टुप् वीर्यरूप है। **तद्** इस (दोनों के शंसन) से **ब्रह्मणा एव वीर्यं सन्दधाति** ब्रह्म के साथ वीर्य (बल) का सन्धान करता (जोड़ता है)।

सा० भा०—गायत्र्या ब्राह्मणस्य च प्रजापतिमुखजत्वसाम्यादेकत्वं त्रिष्टुभो वीर्यहेतुत्वात् तद्रूपत्वम्। तदुभयपाठे सति ब्राह्मण्येन सह वीर्यं संपादयति॥

वेदनपूर्वकमनुष्ठानं प्रशंसति—

ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी वीर्यवान् भवति, यत्रैवं विद्वान् गायत्र्या च त्रिष्टुभा च वषट्करोति ॥१६॥

---

(१) आश्व०श्रौ० ६.५.२३। (२) ऋ० १.४६.१५। (३) ऋ० ३.४८.७।

हिन्दी—(इस ज्ञान के साथ अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (शंसन) में **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) **गायत्र्या च त्रिष्टुभा च** (उपर्युक्त) गायत्री और त्रिष्टुप् दोनों (ऋचाओं) द्वारा **वषट्करोति** वषट्कार (याज्या) करता है, तो (यजमान) **ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी वीर्यवान् भवति** ब्रह्मवर्चस, ब्रह्मयश और बल से सम्पन्न होता है।

तदुक्तयोर्गायत्रीत्रिष्टुभोः प्रतीकद्वयं दर्शयति—

अश्विना वायुना युवं सुदक्षोभा पिबतमश्विनेति ।।१७।।

हिन्दी—(वषट्कार-हेतु गायत्री और त्रिष्टुप् ऋचाओं के प्रतीकद्वय को दिखला रहे हैं—) (वषट्कार-हेतु) 'अश्विना वायुना युवं सुदक्षा' (यह त्रिष्टुप् छन्दस्क) और 'उभा पिबतमश्विना' **इति** यह (गायत्रीछन्दस्क ऋचा है)।

सा० भा०—'अश्विना'—इत्यादिकं त्रिष्टुभः प्रतीकम्, 'उभा पिबतम्'—इत्यादिकं गायत्र्याः प्रतीकम्। एते त्रिष्टुब्गायत्र्यौ याज्ये इत्येकः पक्षः।।

पक्षान्तरं विधत्ते—

गायत्र्या च विराजा च वषट्कुर्याद्, ब्रह्म वै गायत्र्यन्नं विराड्; ब्रह्मणैव तदन्नाद्यं संदधाति ।।१८।।

हिन्दी—(इस विषय में अन्य पक्ष का विधान कर रहे हैं—) **गायत्र्या च विराजा च** गायत्री और विराट् (छन्द) वाली (ऋचा) से **वषट्कुर्यात्** वषट्कार करना चाहिए क्योंकि **ब्रह्म वै गायत्री** गायत्री ब्रह्म-स्वरूप है और **अन्नं विराट्** विराट् अन्न-रूप है। तत् इस (शंसन) से **ब्रह्मणा एव अन्नाद्यं सन्दधाति** ब्रह्म के साथ अन्न को जोड़ता है।

सा० भा०—गायत्र्या ब्रह्मत्वं पूर्वमुक्तम्; विराजोऽन्नसाधनत्वादन्नत्वम्। अतस्तदुभयपाठे सत्यन्नाद्यम्' 'आद्यम्' अन्नं ब्राह्मणजात्या संयोजयति।।

वेदनपूर्वकमनुष्ठानं प्रशंसति—

ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवति, ब्रह्माद्यमन्नमत्ति, यत्रैवं विद्वान् गायत्र्या च विराजा च वषट्करोति ।।१९।।

हिन्दी—(इस ज्ञान के साथ अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र एवं विद्वान्** जिस (शंसन) में इस प्रकार जानने वाला (होता) **गायत्र्या च विराजा च** गायत्री और विराट् (छन्द) वाली (ऋचाओं) से **वषट्करोति** वषट्कार करता है, वह **ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मयशसी भवति** ब्रह्मवर्चस और ब्रह्मयश को प्राप्त करता है तथा **ब्रह्माद्यम् अन्नम् अत्ति** ब्राह्मण के योग्य अन्न को खाता है।

सा० भा०—ब्राह्मणेनात्तुं योग्यं पवित्रीभूतं 'ब्रह्माद्यम्' ।।

तयोर्गायत्रीविराजोः प्रतीकप्रदर्शनपुरःसरमेतं पक्षं निगमयति—

तस्मादेवं विद्वान् गायत्र्या चैव विराजा च वषट्कुर्यात् प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुरुभा पिबतमश्विनेताभ्याम् ।।२०।।

हिन्दी—तस्मात् इस कारण से **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला (होता) 'पिबतमश्विना' **इति गायत्र्या च** इस गायत्री (छन्द) वाली और 'प्र वामन्धासि मद्यान्यस्थुः'—**इति विराजा** इस विराट् (छन्द) वाली—**इति एताभ्यां वषट्कुर्यात्** इन दो (ऋचाओं) से वषट्कार करें।

सा०भा०—'प्र वामन्धांसि'[१]–इति विराट्। 'उभा पिबतम्'[२]–इति गायत्री। गायत्र्या चैव विराजा चैवेत्येवकारेण पूर्वोक्तस्य त्रिष्टुप्पक्षस्य व्यावृत्तिः। तस्मादपि विराट्पक्षः प्रशस्त इत्यर्थः[३]।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तदशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ।।५।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ षष्ठः खण्डः

सा०भा०—अग्निष्टोम उक्थ्यः षोडश्यतिरात्रश्चेत्येवं चतुःसंस्थो ज्योतिष्टोमः सार्धेनाध्यायषोडशकेनाभिहितः। अथैतच्चतुष्टयमुपजीव्य प्रवर्तमानं 'गवामयनं' नामकं संवत्सरसत्रमभिधातव्यम्।[४] संवत्सरगतेषु षष्ट्यधिकशतत्रयदिवसेष्वेकैकस्मिन् दिवसे पूर्वोक्तानां चतसृणां संस्थानां मध्ये कयाचित्संस्थया युक्तः सोमप्रयोगः सर्वोऽप्यनुष्ठेयः। सोऽयमेकैकदिनसाध्यः सोमप्रयोगो वेदेष्वहःशब्देन व्यवह्रियते। संवत्सरसत्रस्याद्ये दिवसे कश्चिदतिरात्रसंस्थः सोमप्रयोगोऽनुष्ठेयः। तदनन्तरभाविनि द्वितीयदिवसेऽनुष्ठेयं सोमप्रयोगं विधत्ते—

---

(१) ऋ० ७ ३८.२। (२) ऋ० १.४६.१५।

(३) 'अहवैं'—इत्यारभ्य एतदन्ता उक्ता अतिरात्रविधयः; आश्व०श्रौ० सूत्रेऽप्येवम् 'अतिरात्रे'–इत्यारभ्य कण्डिकाद्वये (६.४.५); 'अतिरात्रेण प्रजाकामः पशुकामो वा'–इति आपस्तम्बीयविधिसूत्रम् (१४.१.२)। यथोक्तं सायणीयमुपक्रमे 'चतुःसंस्थो ज्योतिष्टोमः प्रथमं विधीयते'–इति०, अग्निष्टोम वक्ष्यन्ते' इति च; तत्सर्वमेतदन्तं ज्ञातव्यम्।

(४) सामब्राह्मणे चैतत् चतुर्थपञ्चमप्रपाठकयोराम्नातम्।

(चतुर्विंशदिनविधानम्)

चतुर्विंशमेतदहरुपयन्त्यारम्भणीयम् ।।१।।

हिन्दी—(अब द्वितीय दिन अनुष्ठेय सोम प्रयोग का विधान कर रहे हैं—) **चतुर्विंशम् एतद् अहः** चतुर्विंश (नामक) इस दिन का **उपयन्ति** अनुष्ठान करते हैं। **आरम्भणीयम्** (यह दिन) आरम्भणीय भी कहलाता है।

विमर्श—(१) चतुर्विंश नामक सोम विशेष है। इस दिन सामगायकों द्वारा तीन ऋचाओं से स्तुति की जाती है। स्तोत्र के आधारभूत इन तीनों ऋचाओं की आवृति-विशेष से ऋचाओं की संख्या चौबीस हो जाती है। इस दिन चौबीस ऋचाओं से समागायकों द्वारा स्तुति की जाती है अतः इस दिन को चतुर्विंश दिन कहा जाता है।

(२) तृच के इन तीनों ऋचाओं की आवृति तीन पर्यायों में होती है। प्रथम पर्याय में प्रथम ऋचा को तीन बार दुहरा कर उन दुहरायी गयी तीन ऋचाओं द्वारा उद्गाता गान करता है तब द्वितीय ऋचा को चार बार दुहरा कर उनसे गान करता है, तदनन्तर तृतीय ऋचा की बिना आवृति किये केवल एक बार गान करता है। इस प्रकार प्रथम पर्याय में गान की गयी ऋचाओं की संख्या आठ हो जाती है। द्वितीय पर्याय में प्रथम ऋचा की एक बार द्वितीय ऋचा की तीन आवृति और तृतीय ऋचा की चार बार आवृति करके गान करता है। इस प्रकार द्वितीय पर्याय में भी आठ ऋचाओं पर गान सम्पन्न होता है। तृतीय पर्याय में प्रथम ऋचा की चार, द्वितीय ऋचा की आवृति के बिना एक बार और तृतीय ऋचा की तीन बार आवृति करके गान करता है। इस प्रकार इस पर्याय में भी आठ ऋचाओं पर गान सम्पन्न होता है। तीनों पर्यायों मे मिलाकर कुल चौबीस ऋचाओं द्वारा स्तुति की जाती है।

सा० भा०—'चतुर्विंश' नामकः कश्चित्सोमविशेषः। स च च्छन्दोगैरेवमाम्नायते—'अष्टाभ्यो हिङ्करोति, स तिसृभिः स चतसृभिः स एकया। अष्टाभ्यो हिङ्करोति, स एकया स तिसृभिः स चतसृभिः। अष्टाभ्यो हिङ्करोति, स चतसृभिः स एकया स तिसृभिः'[१] इति। अस्यायमर्थः—स्तोत्रस्याधारभूते तृचे विद्यमानास्तिस्र ऋच आवृत्तिविशेषेण चतुर्विंशतिसंख्याका ऋचः कर्तव्याः। सा चावृत्तिस्त्रिभिः पर्यायैः संपद्यते। तत्र प्रथमे पर्याये प्रथमामृचं त्रिरभ्यस्य 'सः' उद्गाता ताभिस्तिसृभिर्गायेत्। द्वितीयामृचं चतुर्वारमभ्यस्य ताभिश्चतसृभिर्गायेत्। तृतीयाया ऋचः सकृदेव पाठो न चावृत्तिः एवं प्रथमपर्यायेऽष्टौ ऋचः संपद्यन्ते। ताभिः 'हिङ्करोति' उद्गायेत्। द्वितीयपर्याये प्रथमायाः सकृत्पाठः, द्वितीयायास्त्रिरावृतिः। तृतीयायाश्चतुरावृत्तिः, इत्येवमत्राप्यष्टौ संपद्यन्ते। तृतीयपर्याये प्रथमायाश्चतुरावृत्तिः, द्विती-

---

(१) ता०ब्रा० ३.८। पृष्ठ्यषडहस्य त्रिवृदादयः षट्स्तोमाः, ततश्छन्दोमानां चतुर्विंशादयस्त्रयः स्तोमा आम्नाताः; तेष्वयं प्रथमः।

याया: सकृत्पाठ:, तृतीयायास्त्रिरावृत्ति:, इत्येवमत्राप्यष्टौ संपद्यन्ते। तत्सर्वं मिलित्वा चतुर्विंशतिसंख्या ऋचो भवन्ति। सोऽयं चतुर्विंशतिस्तोमोऽनेन स्तोत्राणि यस्मिन्नहनि निष्पाद्यन्ते, तदहः 'चतुर्विंशम्' तादृशमेतदहः 'उपयन्ति' अनुतिष्ठेयु:। अत्र सत्रेषु सर्वत्रोपयन्त्यासत इति शब्दाननुष्ठानपरौ; एताभ्यां विधानमेव सत्रत्वलिङ्गम्। 'तत्र ये यजमानास्त ऋत्विज:' इति श्रुत्यन्तरादृत्विजां सर्वेषां यजमानत्वेनोपयन्तीति बहुवचनम्। तस्यैतस्याह्न 'आरम्भणीयम्'—इति नामधेयम्।।

तस्यैतस्य नाम्नो निर्वचनं दर्शयति—

(आरम्भणीयनामनिर्वचनम्)

एतेन वै संवत्सरमारभन्ते, एतेनस्तोमांश्च च्छन्दांसि चैतेन सर्वा देवता:; अनारब्धं वै तच्छन्दोऽनारब्धा वा देवता, यदेतस्मिन्नहनि नारभन्ते; तदारम्भणीयस्यारम्भणीयत्वम् ।।२।।

हिन्दी—(अब आरम्भणीय नाम का निर्वचन दिखला रहे हैं—) **एतेन वै संवत्सरम् आरभन्ते** इसी चतुर्विंश दिन से संवत्सर (सत्र प्रारम्भ करते हैं)। **एतेन स्तोमान् च छन्दांसि च** इसी (दिन) से स्तोमों और छन्दों का तथा **एतेन सर्वा: देवता:** इसी से (मन्त्र) में प्रतिपादित ततद् देवताओं का आरम्भ किया जाता है। **यद् एतस्मिन् अहनि न आरभन्ते** जो (मन्त्र और देवता) इस दिन आरम्भ नहीं किये। **तत् छन्दम् अनारब्धं वै** वह छन्द आरम्भ न किये गये के समान है और **सा देवता अनारब्ध** वह देवता भी आरम्भ किये गये के समान है। **तत्** यह **आरम्भणीयस्य आरम्भणीयत्वम्** आरम्भणीय का आरम्भणीय नाम वाला होना है।

सा०भा०—एतेनैव चतुर्विंशेनाह्ना सत्रिण: 'संवत्सरं' सत्रमारभन्ते। तत्र सामगै: प्रयोक्तव्या ये स्तोमा:, बह्वृचै: प्रयोक्तव्यानि यानि च्छन्दांसि, याश्च तत्तन्मन्त्रप्रतिपाद्या: सर्वा देवता:, तत्सर्वमनेनैवाह्नारभन्ते। यदि कथंचिदेतस्मिन्नहनि च्छन्दो वा देवतान्तरं वा नारभेरन्, तदनींमन्यस्मिन्नहन्यारब्धमपि च्छन्दोदेवतादिकमनारब्धसदृशमेव भवति। तस्मात् अस्मिन्नेवाहनि सर्वस्य मुख्य: प्रारम्भ:। तथा सत्यारभ्यते सर्वस्मिन्नहनीति व्युत्पत्त्या 'आरम्भणीयं' नाम संपन्नम्। यद्यप्येतस्मादह्न: पूर्वभाविनी प्रायणीयाख्येऽहनि सत्रं प्रारब्धम्, तथाऽपि तस्य प्रायणीयस्यातिरात्रसंयुक्तस्य संवत्सरोपक्रमसाधारणत्वात् अस्य सत्रस्य विशेषेण प्रारम्भोऽस्मिन्नेव भवतीत्यभिप्रेत्यैतस्यारम्भणीयत्वमेव युक्तम्।।

अस्मिन्नहनि स्तोमविशेषं विधत्त—

(आरम्भणीये स्तोमविशेषविधानम्)

चतुर्विंशस्तोमो भवति; तच्चतुर्विंशस्य चतुर्विंशत्वम् ।।३।।

हिन्दी—(इस दिन स्तोम-विशेष के कथन द्वारा चतुर्विंश का निर्वचन कर रहे

हैं—) **चतुर्विंशः स्तोमः भवति** (इस दिन) चौबीस स्तोम (का गान) होता है। **तत् चतुर्विंशस्य चतुर्विंशत्वम्** वही चतुर्विंश का चतुर्विंश (नाम वाला) होना है।

सा० भा०—यान्यत्र स्तोत्राणि सन्ति, तेषु सर्वेषु यः पूर्वमुदाहृतश्चतुर्विंशत्व संख्यासंपादनरूपः स्तोमः, स एव कर्तव्यः। ईदृशस्तोमयोगादेवाह्नोऽपि चतुर्विंशं नाम संपन्नम्॥

तं स्तोमं प्रशंसति—

(चतुर्विंशस्तोमप्रशंसनम्)

चतुर्विंशतिर्वा अर्धमासा, अर्धमासश एव तत्संवत्सरमारभन्ते ।।४।।

हिन्दी— (उस चतुर्विंशस्तोम की प्रशंसा कर रहे हैं—) **चतुर्विंशतिः वै अर्धमासाः** (संवत्सर में) चौबीस अर्धमास (पक्ष) होते हैं। **अर्धमासशः एवं** अर्धमास से ही **तत् संवत्सरम् आरभन्ते** उस संवत्सर का प्रारम्भ करते हैं।

सा० भा०—द्वादशसु मासेषु विद्यमाना अर्धमासाश्चतुर्विंशतिसंख्याकाः। तथा सत्यर्धमासशब्द एकमर्धमासं समाप्य पुनरप्यपरोऽर्धमास इत्येवं क्रमेण चतुर्विंशतिसंपत्तौ संवत्सरसत्रप्रारम्भो भवति। तस्माच्चतुर्विंशस्तोमः प्रशस्तः॥

एतस्मिन्नहनि सोमयागस्य संस्थाविशेषं विधत्ते—

उक्थ्यो भवति; पशवो वा उक्थानि, पशूनामवरुद्ध्यै ।।५।।

हिन्दी—(उस चतुर्विंश दिन में सोमयाग के संस्थाविशेष का विधान कर रहे हैं–) **उक्थ्यः भवति** (उस दिन) उक्थ्य होता है। **पशवः वै उक्थानि** उक्थ्य पशुरूप है। **पशूनाम् अवरुध्यै** पशुओं की प्राप्ति के लिए (उक्थ्य का सम्पादन होता है)।

सा० भा०—अग्निष्टोमाद् ऊर्ध्वभावी योऽयमुक्थ्योऽस्ति, सोऽस्मिन्नहनि प्रयोक्तव्यः। तत्र द्वादशस्तोत्रेभ्य उत्तराणि त्रीण्युक्थनामकानि स्तोत्राणि; तेषां पशुप्राप्तिहेतुत्वात् पशुत्वम्। अत उक्थ्यानुष्ठानं पशुप्राप्तये भवति॥

तस्मिन्नहनि चोदकप्राप्तस्तोत्रशसंख्या प्रशंसति—

(तस्मिन्नहानि चोदकप्राप्तस्तोत्रसंख्याप्रशंसनम्)

तस्य पञ्चदश स्तोत्राणि भवन्ति, पञ्चदश शस्त्राणि; स मासो मासश एव तत्संवत्सरमारभन्ते ।।६।।

हिन्दी—(उस दिन के स्तोत्र और शस्त्र की संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तस्य** उस (उक्थ्य) के **पञ्चदश स्तोत्राणि** पन्द्रह स्तोत्र और **पञ्चदश शस्त्राणि** पन्द्रह शस्त्र **भवन्ति** होते हैं। (इस प्रकार दोनों की संख्या तीस होती है। **सः मासः** वह (संख्या दिनों की समानता के कारण) मास का रूप है। **मासशः एव तत्संवत्सरम् आरभन्ते** मास

से ही उस संवत्सर को प्रारम्भ करते हैं।

सा० भा०—मासगतानां दिवसानां त्रिंशत्त्वात् स्तोत्रशस्त्रसंख्यायाश्च तथा वान्मासत्व-संपत्तिः। 'मासशः' एकैकमासक्रमेणेत्यर्थः॥

अग्निष्टोम एतदहः स्यादित्याहुरग्निष्टोमो वै संवत्सरो; न वा एतद-न्योऽग्निष्टोमादहर्दाधार; न विव्याचेति ।।७।।

हिन्दी—(अब पक्षान्तर का विधान कर रहे हैं—) **एतद् अहः अग्निष्टोम स्यात्** यह दिन अग्निष्टोम वाला होना चाहिए—**इत्याहुः** इस प्रकार (कुछ लोग) कहते हैं; क्योंकि **अग्निष्टोमः वै संवत्सरः** अग्निष्टोम ही संवत्सर है। **अग्निष्टोमाद् अन्यः** अग्निष्टोम से अन्य (उक्थयादि सत्र) **न वै** ऐसा कोई नहीं है जो **एतद् अहः दाधार** इस (चतुर्विंश) दिन को धारण कर सकते अतः **न विव्याच** (अनुष्ठान) विवेचन करने योग्य नहीं है।

सा० भा०—यदिदं द्वितीयमहः, सोऽग्निष्टोमः कर्तव्यः। अग्निष्टोमस्य संवत्सर-सत्ररूपत्वात्। कथमिति चेत्, तदुच्यते—'अग्निष्टोमादन्यः' उक्थ्यादिरूपः कश्चिदपि क्रतुः संवत्सरसत्रावयवभूतः, एतदहः 'नैव दाधार' नैव धारयितुं शक्तः। अनुपदिष्टान्यङ्गानि सर्वाण्यग्निष्टोमादतिदिश्यन्ते; तदेतदग्निष्टोमस्य धारयितृत्वम्। तस्मादग्निष्टोमव्यतिरिक्तः क्रतुरेतदहः 'न विव्याच' विवेक्तुमनुष्ठापयितुं न शक्तः। 'इति' एवं पक्षान्तरवादिनामभिप्रायः॥

अस्मिन् पक्षे स्तोमविशेषं विधत्ते—

(तत्र स्तोमविशेषविधानम्)

स यद्यग्निष्टोमः स्यादष्टाचत्वारिंशास्त्रयः पवमानाः स्युश्चतुर्विंशा-नीतराणि स्तोत्राणि; तदु षष्टिश्चैव त्रीणि च शतानि स्तोत्रियास्तावन्ति संवत्सरस्याहान्यहःश एव तत्संवत्सरमारभन्ते ।।८।।

हिन्दी—(इस पक्ष में स्तोमविशेष का विधान कर रहे हैं—) **सः यदि अग्निष्टोमः स्यात्** (इस दिन) यदि अग्निष्टोम होवे तो **अष्टाचत्वारिंशाः** अड़तालिस संख्या वाले **त्रयः पवमानाः स्युः** तीनों पवमानों को करना चाहिए तथा **इतराणि चतुर्विंशानि स्तोत्राणि** अन्य नौ चतुर्विंश स्तोत्रों को करना चाहिए। **तदु** वे सभी (४८ × ३ + ९ × २४) **षष्टिः श्चैव त्रीणि शतानि** साठ और तीन सौ (= तीन सौ साठ) **स्तोत्रिया** स्तोत्र वाले होते हैं और **संवत्सरस्य तावन्ति वै अहानि** उतने (तीन सौ साठ) ही संवत्सर के दिन होते हैं। इस प्रकार **अहःशः एव** दिन से ही **तत् संवत्सरम् आरभन्ते** उस संवत्सर को प्रारम्भ करते हैं।

सा० भा०—अग्निष्टोमपक्षे बहिष्पवमानमाध्यंदिनपवमानार्भवपवमानेषु त्रिषु स्तोत्रे-ष्वष्टाचत्वारिंशनामकः स्तोमः कर्तव्यः। स च च्छन्दोगैरेवमाम्नातः—'षोडशभ्यो हिङ्करोति,

स तिसृभिः स द्वादशभिः स एकया, षोडशभ्यो हिङ्करोति, स एकया स तिसृभिः स द्वादशभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति, स द्वादशभिः स एकया स तिसृभिः'[१] इति। प्रथमे पर्याये प्रथमाया ऋचस्त्रिरावृत्तिः द्वितीयाया द्वादशकृत्व आवृत्तिः, तृतीयायाः सकृत्पाठः; द्वितीय-पर्याये प्रथमायाः सकृत्पाठः, द्वितीयायास्त्रिरावृत्तिः, तृतीयाया द्वादशकृत्व आवृत्तिः। तृतीय-पर्याये प्रथमाया द्वादशकृत्व आवृत्तिः, द्वितीयायाः सकृत्पाठः तृतीयायास्त्रिरावृत्तिः, मिलित्वाऽष्टाचत्वारिंशत् स्तोत्रीया संपद्यन्ते। सोऽयमष्टाचत्वारिंशः स्तोमः। तमेतं पवमानेषु त्रिषु कृत्वा शिष्टेषु नवसु स्तोत्रेषु चतुर्विंशस्तोमं कुर्यात्। तथा सति पवमानस्तोत्रेषु चतुश्चत्वारिंशदधिकशतसंख्याकाः स्तोत्रियाः संपद्यन्ते। इतरस्तोत्रेषु षोडशाधिकशतद्वय-संख्याकाः, ततो मिलित्वा षष्ट्यधिकशतत्रयसंख्याका भवन्ति। संवत्सरागतानामह्नामपि तावत्पादहः क्रमेणैव संवत्सरमारभन्ते॥

एवं पक्षद्वयमुपन्यस्य तयोः समविकल्पत्वमभिप्रेत्य पुनरपि पूर्वोक्तम् उक्थ्यम् उपन्य-स्यपि—

उक्थ्य एव स्यात् पशुसमृद्धो यज्ञः, पशुसमृद्धं सत्रं, सर्वाणि चतुर्विंशानि स्तोत्राणि प्रत्यक्षादध्येतदहश्चतुर्विंशं; तस्मादुक्थ्य एव स्यात् ॥९॥

हिन्दी—(इस प्रकार दोनों पक्षों को उपन्यस्त करके समान विकल्पता को जानकर पुनः पूर्वोक्त उक्थ्य को उपन्यसित कर रहे हैं—) **उक्थ्यः एव स्यात्** उक्थ्य को ही करना चाहिए क्योंकि **पशुसमृद्धः यज्ञः** (उक्थ्य स्तोत्र के पशु का साधन होने के कारण) यज्ञ पशु से समृद्ध होता है और **पशुसमृद्धं सत्रम्** पशुयाग से सत्र समृद्ध होता है और **सर्वाणि चतुर्विंशानि स्तोत्राणि** सम्पूर्ण चौबीस स्तोत्र होते हैं। इस प्रकार **एतद् अहः** यह दिन **प्रत्यक्षात् चतुर्विंशं** प्रत्यक्षरूप से चतुर्विंश होता है। **तस्मात्** इसी कारण **उक्थ एव स्यात्** (इस दिन) उक्थ्य ही करना चाहिए।

सा० भा०—उक्थ्यस्तोत्राणां पशुसाधनत्वात् उक्थ्यो यज्ञः पशुसमृद्धः, सत्रं च पशुसमृद्धं कर्तव्यम्। किञ्च उक्थ्यपक्षे सर्वाणि स्तोत्राणि चतुर्विंशस्तोमकानि; स त्वग्नि-ष्टोमपक्षे पवमानव्यतिरिक्तान्येव। तथा सति प्रत्यक्षात् मुख्यवृत्त्यैवैतदहश्चतुर्विंशं भवति; संख्यान्तरस्य कुत्राप्यप्रतिष्टत्वात्। 'तस्मादुक्थ्य एव' कार्यः[२]। एवशब्दो विकल्पार्थः; अग्निष्टोम इदमहरुक्थ्यो वा'—इति सूत्रकारवनात्[३]॥

---

(१) एषाष्टाविंशस्य 'प्रतिष्ठिता' विष्टुतिः (ता०ब्रा० ३.१२) आम्नाता चापरा ततस्तत्रैव 'नेदीयःसङ्क्रमा'-इति (३.१३)।

(२) सामब्राह्मणेऽपि एवं द्रष्टव्यम् (ता०ब्रा० ४.२.१३,१४)।

(३) आश्व०श्रौ० ७.४.१४,१५।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तदशाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—पृष्ठस्तोत्रे चोदकप्राप्तं विकल्पितं[१] सामद्वयमनूद्य प्रशंसति—

(पृष्ठस्तोत्रे चोदकप्राप्तस्य विकल्पितस्य सामद्वयस्य प्रशंसनम्)

बृहद्रथंतरे सामनी भवत; एते वै यज्ञस्य नावौ संपारिण्यौ यद्बृहद्रथंतरे; ताभ्यामेव तत्संवत्सरं तरन्ति ।।१।।

हिन्दी—(पृष्ठस्तोत्र में विकल्पित दो सामों को कहकर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) (संवत्सरसत्र में) **बृहद्रथन्तरे सामनी भवतः** ('त्वामिद्धि हवामहे' इस ऋचा में उत्पन्न) बृहत् (नामक) और ('अभि त्वा शूर नोनुमः' इस ऋचा में उत्पन्न) रथन्तर नामक दो साम होते हैं। **एते वै बृहद्रथन्तरे** ये दोनों बृहद् और रथान्तर नामक साम यज्ञ रूप (समुद्र) को **संपारिण्यौ नावौ** पार करने के लिए नौका का रूप है। **ताभ्यामेव** उन दोनों (बृहत् और रथन्तर रूप नौका) के द्वारा **तत् संवत्सरम्** उस संवत्सर रूप (समुद्र) को **तरन्ति** पार करते (पूर्ण करते हैं)।

सा० भा०—'त्वामिद्धि हवामहे' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं साम 'बृहत्'[२]। 'अभि त्वा शूर नोनुमः' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं 'रथन्तरम्'[३]। एते उभे अपि यज्ञाख्यस्य समुद्रस्य सम्यक्-परतीरप्राप्तिसाधनभूते नावौ। संवत्सरसत्रस्य समुद्ररूपत्वं शाखान्तरे दर्शितम् —'समुद्रं वा एते प्लवन्ते, ये संवत्सरमुपयन्ति'[४] इति। तथा सति तत्पारनयनहेत्वोः साम्नोर्नौरूपत्वं युक्तम्। अतो बृहद्रथंतररूपाभ्यां नौभ्यामेव संवत्सरसत्ररूपं समुद्रं 'तरन्ति' गवामयनस्य पारं गच्छन्तीत्यर्थः॥

प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

(१) 'रथन्तरसाम्ना बृहत्साम्नोभ्यसाम्ना वा प्रथमं यजेत'—इति आप०श्रौ० १०.२.६।

(२) छ०आ० ३.१.५.२ ऋचि आर०ग्रा० १.१.२७ बृहत् (योनिसाम); उ०आ० २.१.१२.१,२ ऋचोः प्रागाथतृचे ऊह्य०ग्रा० १.१.५ बृहम् (स्तोत्रम्)।

(३) छ०आ० ३.१.५.१ ऋचि आर०गा० २.१.२१ रथन्तरं (योनिसाम); उ०आ० १.११.१,२ ऋचोः प्रगाथतृचे ऊह्य०गा० १.१.१ रथन्तरं (स्तोत्रम्)।

(४) तै०सं० ७.५.१.२। एवमेव ता०ब्रा० ५.८.४.६ (प्लवसाम) गे०गा० १४.१.३४।

पादौ वै बृहद्रथंतरे; शिर एतद् अहः, पादाभ्यामेव तच्छ्रियं शिरोऽ-भ्यायन्ति।।२।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) **पादौ एव बृहद्रथन्तरे** ये बृहत् और रथन्तर (नामक दोनों साम इस सत्र के) दो पैर ही हैं तथा **एतद् अहः** यह (आरम्भणीय) दिन **शिरः** (सत्र का) शिर स्थानीय है। **पादाभ्यामेव** दोनों पैरों से ही **शिरः श्रियम्** शिर-स्थानीय श्री को **अभ्यायन्ति** प्राप्त करते है।

सा०भा०—यथा मनुष्यस्य पादौ, तथा सत्रस्य 'बृहद्रथन्तरे' सामनी। 'एतत्' आरम्भणीयमहः शिरःस्थानीयम्। ततो यथा लोके पुरुषाः पादाभ्यामेव देशान्तरात् स्वगृहे गत्वा, तत्र शिरोऽभिलक्ष्याभ्यङ्गकर्णाभरणादिरूपां 'श्रियमायन्ति' प्राप्नुवन्ति, एवमेते सत्रिणः सामभ्यामेतदहः प्राप्नुवन्ति।।

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

पक्षौ वै बृहद्रथंतरे, शिर एतद् अहः, पक्षाभ्यामेव तच्छ्रियं शिरोऽ-भ्यायुवते ।।३।।

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) **पक्षौ एव बृहद्रथन्तरे** बृहत् और रथन्तर (नामक साम सत्ररूपी पक्षी के) दोनों पंख स्थानीय है और **शिरः एतद् अहः** यह (आरम्भणीय) दिन शिर-स्थानीय है। **पक्षाभ्यामेव** बृहत और रथन्तर नामक सामरूप) दोनों पंखों के द्वारा **शिरः श्रियम्** शिर-स्थानीय श्री को **अभ्यायुवते** मिश्रित करते हैं।

सा०भा०—यथा लोके पक्षी पक्षाभ्यामेवाकाशे संचरन्, शिरोऽभिलक्ष्य नानाविध-दिग्दर्शनरूपां 'श्रियं' मिश्रयति; एवमत्रापि सामभ्यामेतस्मिन्नहनि 'श्रियम्' अनुष्ठानरूपां सत्रिणो 'युवते' मिश्रयन्ति।।

सामद्वयस्य परित्यागं निषेधति—

(सामद्वयपरित्यागनिषेधः)

ते उभे न समवसृज्ये; य उभे समवसृजेयुर्यथैव च्छिन्ना नौर्बन्धनात् तीरं तीरम् ऋच्छन्ती प्लवेतैवमेव ते सत्रिणस्तीरं तीरम् ऋच्छन्तः प्लवेरन्, य उभे समवसृजेयुः ।।४।।

हिन्दी—(बृहद् और रथन्तर नामक दोनों सामों के परित्याग करने का निषेध कर रहे हैं—) **ते उभे न समवसृज्ये** वे दोनों (साम) अपरित्यज्य (अवश्यकरणीय) है। **ये** जो **उभे समवसृज्येयुः** जो इन दोनों का परित्याग करते हैं तो **यथा एव** जिस प्रकार (लोक में) **बन्धनात् छिन्ना नौ** बन्ध से विच्छिन्न हुई नौका **तीरं तीरम् ऋच्छन्ती** किनारे-किनारे

जाती हुई **प्लवेत** तैरती है **एवमेव** इसी प्रकार **ये उभे समवसृज्येयुः** जो दोनों का परित्याग करते हैं, **ते सत्रिणः** वे सत्र करने वाले **तीरं तीरम् ऋच्छन्तः** किनारे-किनारे (सत्र का) सम्पादन करते हुए **प्लवेरन्** तैरते रहते हैं।

सा० भा०—'उभे' सामनी 'न समवसृज्ये' न परित्याज्ये; एकस्याप्यननुष्ठानमुभयपरित्यागः। 'ये' सत्रिणोऽनभिज्ञाः सन्त उभयं परित्यजन्ति, तेषां छिन्ननौसादृश्यं प्रसज्येत। लोके हि नाविकः सायंकाले नावं कयाचिद्रज्ज्वा तीरस्थे स्थाणौ बध्नाति; यदा प्रवाहवेगाद् रात्रौ सा रज्जुस्त्रुट्यति, तदानीं बन्धनस्थाणोश्छिन्ना नौः प्रवाहवेगेनेतस्ततो नीयमाना परतीरम् अर्वाक् तीरं च पुनः पुनः प्राप्नुवती रक्षकाभावात् 'प्लवेत' यत्र क्वापि गच्छेत्। एवमेव ते सत्रिणः सामद्वयाभावे तत्तत्तीरसदृशानहर्विशेषान् 'ऋच्छन्तः' अनुतिष्ठन्तोऽपि 'प्लवेरन्' विनश्येयुरित्यर्थः। ये सामद्वयमपि परित्यजन्ति, तेषामेवायं दोष इति 'दर्शयितुं' 'य उभे समवसृजेयुः'—इति पुनरभिधानम्॥

उभयो साम्नोर्विकल्पितत्वादेकपरित्यागे दोषो नास्तीत्येतद् दर्शयति—

तद् यदि रथंतरमवसृजेयुर्बृहतैवोभे अनवसृष्टे; अथ यदि बृहदवसृजेयू रथंतरेणैवोभे अनवसृष्टे॥५॥

हिन्दी—(बृहत् और रथन्तर दोनों सामों के विकल्पित होने के कारण एक के परित्याग में अदोषता को दिखला रहे हैं—) **तद् यदि रथन्तरम् अवसृजेयुः** यदि रथन्तर (साम) को (एक किनारे) छोड़ देते हैं, तो **बृहता एव उभे अनवसृष्टे** बृहत् (साम) द्वारा ही दोनों किनारे अपरित्यक्त होते हैं और **अथ यदि बृहद् अवसृजेयुः** यदि बृहत् को (किनारे पर) छोड़ देते है तो **रथन्तरेणैव उभे अनवसृष्टे** रथन्तर द्वारा ही दोनों किनारे अछूते नहीं रहते।

सा० भा०—'तत्' तयोः साम्नोर्मध्ये यदा रथंतरं परित्यजेयुः,—बृहदेवानुतिष्ठेयुः, तदा बृहतैव प्रयोगसंपूर्तेः फलत उभयमप्यपरित्यक्तमेव भवति। एवं बृहत्परित्यागपक्षेऽपि रथंतरेणैव संपूर्तिः॥

प्रकारान्तरेण सामद्वयं प्रशंसति—

यद्वै रथंतरं तद् वैरूपं, यद्बृहत् तद् वैराजं, यद्रथंतरं तच्छाक्वरं, यद्बृहत् तद् रैवतम्; एवमेते उभे अनवसृष्टे भवतः॥६॥

हिन्दी—(प्रकारान्तर से दोनों सामों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद्वै रथन्तरम्** जो रथन्तर (साम) है **तद् वैरूपम्** वह वैरूप साम है और **यद् बृहत्** जो बृहत् (साम) है, **तद् वैराजम्** वह वैराज साम है। **यद् रथन्तरम्** जो रथन्तर साम है **तत् शाक्वरम्** वह शाक्वर साम है और **यद् बृहत्** जो बृहत् साम है **तद् रैवतम्** वह रैवत साम है। **एवम्** इस प्रकार **एते** ये दोनों (साम) **अनवसृष्टे भवतः** परित्यक्त नहीं होते हैं।

सा॰भा॰—पृष्ठ्यषडहे[१] षट्स्वपि दिवसेषु क्रमेण पृष्ठस्तोत्रनिष्पादकानि षट्-सामानि,—रथंतरं, बृहद्, वैरूपं, वैराजं, शाक्वरं, रैवतमिति। तत्र रथंतरस्य बृहतश्चोत्पत्तिस्थानं पूर्वमुक्तम्।[२] 'यद्द्याव इन्द्र ते शतम्' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं वैरूपं साम[३]। 'पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं वैराजं साम।[४] 'प्रोष्वस्मै पुरोरथम्' इत्यस्यां गीयमानं शाक्वरं साम[५]। 'रेवतीर्नः सधमादे' इत्यस्यां गीयमानं रैवतं साम। तत्र बृहद्रथंतर-योरेवात्रोत्तरस्थानीयत्वादशेषसामफलसिद्ध्यर्थमेते उभे अपरित्यक्ते एव भवतः, उभयपरित्यागः सर्वथा न योग्य इत्यर्थः।।

उक्तस्याह्नोऽनुष्ठानं प्रशंसति—

(अह्नोऽनुष्ठानप्रशंसनम्)

ये वा एवं विद्वांस एतदहरुपयन्त्याप्त्वा वै तेऽहःशः संवत्सरमाप्त्वाऽ-र्धमासश आप्त्वा मासश आप्त्वा स्तोमांश्च च्छन्दांसि च आप्त्वा सर्वा देवतास्तप एव तप्यमानाः सोमपीथं भक्षयन्तः संवत्सरमभिषुण्वन्त आसते ।।७।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त अह्न अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **ये वै एवं विद्वांसः** जो इस प्रकार जानने वाले **एतद् अहः उपयन्ति** इस अहः को सम्पादित करते हैं **ते अहशः संवत्सरम् आप्त्वा** वे अहः द्वारा संवत्सर को प्राप्त करके, **अर्धमासशः आप्त्वा** अर्ध-मासों से (संवत्सर को) प्राप्त करके, **मासशः आप्त्वा** मास से (संवत्सर) को प्राप्त करके, **स्तोमान् च छन्दांसि आप्त्वा** स्तोमों और छन्दों को प्राप्त करके तथा **सर्वाः देवताः आप्त्वा** सभी देवताओं को प्राप्त करके **तपः एव तप्यमानाः** तपस्या को करते हुए ही **सोमपीथं भक्षयन्तः** सोमपान का भक्षण करते हुए तथा **संवत्सरम् अभि-षुण्वन्तः** संवत्सर पर्यन्त सोम का सवन करते हुए **आसते** रहते हैं।

---

(१) 'पृष्ठयः षडहो भवति'—इति तै॰सं॰ ७.२.६.२। पृष्ठानां समूहः पृष्ठयः पा॰सू॰ ४.२.४२ वा॰। 'अभिप्लवं पूर्वं पुरस्ताद् विषुवत उपयन्ति पृष्ठमुत्तरम्'—इति शत॰ब्रा॰ १२.२.३.४।

(२) ऋ॰ ८.७०.५। छ॰आ॰ ३.२.४.६ ऋचि आर॰गा॰ १.१.३; वैरूपं (योनिसाम); उ॰आ॰ २.२.११.१,२ ऋचोः प्रगाथतृचे ऊह्य॰गा॰ १.१.७ वैरूपं (स्तोत्रम्) ।

(३) ऋ॰ ७.२३.१। छ॰आ॰ ५.१.१.८ ऋचि आर॰गा॰ २.१.३१, वैराजं (योनिसाम); उ॰आ॰ ३.१.१३.१-३ तृचे ऊह्य॰गा॰ १.१.१०; वैराजं (स्तोत्रम्) ।

(४) ऋ॰ १०.१३३.१। उ॰आ॰ ९.१.१४.१।

(५) ऋ॰ १.३०.१३। छ॰आ॰ २.२.१.९ ऋचि आर॰गा॰ २.१.१७ रैवतं (योनिसाम); उ॰आ॰ ४.१.१४ १-३ तृचे ऊह्य॰गा॰ २.२.७ रैवतं (स्तोत्रम्)।

सा० भा०—'ये' सत्रिणः पूर्वोक्तप्रकारेणैतस्याह्नो महिमानं विद्वांस एतदहरनुतिष्ठन्ति, ते सत्रिणः संवत्सरसत्रमहद्वारेण, अर्धमासद्वारेण, मासद्वारेण, स्तोमच्छन्दोद्वारेण, सर्वदेवताद्वारेण प्राप्य तपश्चरन्तो निर्विघ्नं सोमपानं कुर्वन्तः संवत्सरमपि नैरन्तर्येण सोममभिषुण्वन्त आसते; विघ्नः कोऽपि न भवतीत्यर्थः॥

अथ सत्रगतस्योत्तरपक्षस्य प्रत्यवरोहं विधत्ते—

(सत्रगतस्योत्तरपक्षस्य प्रत्यवरोहविधानम्)

ये वा अत ऊर्ध्वं संवत्सरमुपयन्ति, गुरु वै ते भारमभिनिदधते; स वै गुरुर्भारः शृणात्यथ य एनं परस्तात् कर्मभिराप्त्वाऽवस्तादुपैति, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते ।।८।।

हिन्दी—(अब सत्रगत उत्तरपक्ष के प्रत्यवरोह का विधान कर रहे हैं—) **ये वै अतः ऊर्ध्वः** जो (सत्र करने वाले) इस (आरम्भणीय चतुर्विंश अहः) से लेकर बाद में (अनुलोमक्रम से) **संवत्सरम् उपयन्ति** संवत्सरसत्र का सम्पादन करते हैं, **ते** वे (सत्र करने वाले) **गुरु भारं वै अभिनिदधते** (अपने ऊपर) भारी भार को स्थापित करते हैं। **सः वै गुरुर्भारः** वह गुरुभार **शृणाति** (भार वहन करने वाले सत्री को) विनष्ट कर देता है। **अथ** अतः **यः** जो (सत्र करने वाला) **एनम्** इस (संवत्सर) को **परस्तात् कर्मभिः** प्रारम्भ से लेकर (विहित) कर्मों द्वारा **आप्त्वा** सम्पादित (प्राप्त) करके **अवस्ताद् उपैति** प्रत्यवरोह क्रमसे सम्पादित करते हैं, **सः वै** वह ही **स्वस्ति** कल्याण के सहित **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर की समाप्ति को प्राप्त करता है।

सा० भा०—'ये वै' केचन मन्द्रबुद्धयः सत्रिणः 'अतः' आरम्भणीयं चतुर्विंशमहः प्रारभ्योर्ध्वमानुलोम्येनैतत् संवत्सरसत्रम् 'उपयन्ति' अनुतिष्ठन्ति, ते सत्रिणो 'गुरु वै' प्रौढमेव भारम् 'अभिनिदधते' स्वस्योपरि स्थापयन्ति; 'स वै' स एव 'गुरुर्भारः' 'शृणाति' भारवाहकान् सत्रिणो विनाशयति। 'अथ' पूर्वोक्तवैलक्षण्येन 'ये' सत्रिणः 'एनं' संवत्सरं 'परस्ताद्' आदित आरभ्य विहितैः 'कर्मभिः' पूर्वपक्षगतैः 'आप्त्वा' अनुष्ठायोत्तरपक्षे 'अवस्तात्' प्रत्यवरोहक्रमेण 'उपैति' उपयन्ति, अनुतिष्ठन्ति। 'स वै' स एव सत्रिणः 'स्वस्ति' क्षेमेण संवत्सरसत्रस्य 'पारं' समाप्तिम् 'अश्नुते' अश्नुवते, प्राप्नुवन्ति॥

अयमर्थः—अस्ति किंचिद् विषुवनामकं संवत्सरसत्रस्य मध्ये प्रधानमहः, तस्याधस्तात् षण्मासाः; सोऽयं प्रथमः पक्षः, उपरिष्टादपि षण्मासाः, सोऽयमुत्तरः पक्षः। यथा लोके कस्याश्चिच्छालायाः स्तम्भयोः पूर्वं दीर्घं वंशं प्रौढं प्रसार्योभयोः पार्श्वयोः पक्षद्वयं कुर्वन्ति, एवं संवत्सरसत्रस्यापि। तथा च शाखान्तरे श्रूयते—'यथा शालायै पक्षसी मध्यमं वंशमभिसमायच्छति, एवं संवत्सरस्य पक्षसी दिवाकीर्त्यभिसंतन्वन्ति'[१] इति। दिवैव मन्त्राणां

(१) तै०सं० १.२.३.१,२।

कीर्तनीयत्वाद् विषुवनामकमेकं दिवाकीर्त्यम्। तत्र पूर्वपक्षरूपे मासषट्के यः प्रयोगक्रमः, एवमुत्तरपक्षे मासषट्केऽपि। तेनैव क्रमेण स प्रयोगे यद्यनुष्ठीयेत, तदानीमतिभारः स्यात्। नूतनानुष्ठानविशेषाभावेनालस्ये सति वैकल्यं भवति; स एव भार इत्युच्यते। अतस्तत्परिहारार्थं पूर्वेषु षटसु मासेषु यानि कर्माणि येनानुपूर्व्येणानुष्ठितानि, तानि कर्माण्युत्तरेषु मासेषु तद् विपरीतक्रमेणानुष्ठेयानि[१]। तथा सत्यालस्याभावाद् अविघ्नेनैव संवत्सरसत्रं समाप्यत इति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयाध्याये (सप्तदशाध्याये) सप्तमः खण्डः ॥७॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ अष्टमः खण्डः

सा० भा०—अथास्मिन्नारम्भणीये चतुर्विंशेऽहनि निष्केवल्यशस्त्रे कंचिद् विशेषं विधत्ते—

(चतुर्विंशेऽहनि निष्केवल्यशस्त्रे कश्चिद्विशेषः)

यद्वै चतुर्विंशं तन्महाव्रतं बृहद्दिवेनात्र होता रेतः सिञ्चति; तददो

---

(१) द्वादशमासनिर्वर्त्यस्य गवामयनस्य प्रायणीयोऽतिरात्रः प्रथममहः, ततश्चतुर्विंश उक्थ आरम्भणीयः। ते उभे अहनी अनुष्ठाय, ज्योतिर्गौरायुर्गौरायुर्ज्योतिरित्याभिप्लविकः षडहः; स चतुर्वारमावर्त्तनीयः' ततस्त्रिवृदादिस्तोमषट्कसाध्यः पृष्ठ्यः षडहः; एवं पञ्चभिः षडहैरेको मासः पूर्यते। एतस्यैवावर्त्तनेन पञ्च मासाः सम्पाद्याः। ततः षष्ठे मास्यादौ त्रयोऽभिप्लवाः षडहाः कार्याः; तत एकः पृष्ठ्यः षडहः, ततोऽभिजिदेकमहः; ततस्त्रयः स्वरसामानः, इत्येवमष्टाविंशत्यहानि। आद्याभ्यां प्रायणीयचतुर्विंशाभ्यां षष्ठमासपूरणम्। इत्थं पूर्वपक्षे अशीत्युत्तरशतसङ्ख्यान्यहानि सम्पन्नानि। चतुर्विंशाभ्यां षष्ठमापूरणम्। इत्थं सत्रस्य प्रधानभूतम्। सप्तमे मास्यादौ त्रयः स्वरसामानः प्रतिलोमाः कार्याः, ततो विश्वजिदावृत्तः पृष्ठ्यः' षडहस्त्रयस्त्रिंशारम्भस्त्रिवृदुत्तमः; ततस्त्रयोऽभिप्लवाः षडहा आवृत्ताः; एवमष्टाविंशत्यहानि स्युः (सर्वान्तेऽनुष्ठीयमानौ महाव्रतातिरात्रौ चास्य मासस्य पूरकौ)। ततः पृष्ठ्यः षडहः; पूर्वकैश्चतुर्भिराभिप्लवकैः प्रतिलोमक्रमेणानुष्ठितैरष्टमो मासः। तथैवावृत्त्या नवमदशमैकादशा अपि मासाः सम्पाद्याः। द्वादशमासस्यादौ त्रयोऽभिप्लवाः षडहा, ततो गोरायुषी द्वे अहनी, द्वादशाहस्य दशाहानि चेति त्रिंशदहानि; स द्वादशो मासः। ततो महाव्रतमुपान्त्यमहः; तेन उदयनीयोऽतिरात्र इत्यपि सप्तममासस्य पूरकाविति। तदेतत् सर्वमिहैव क्रमात् स्फुटीभविष्यति।

महाव्रतीयेनाह्ना प्रजनयति; संवत्सरे संवत्सरे वै रेतः सिक्तं जायते, तस्मात् समानं बृहद्दिवो निष्केवल्यं भवति, एष ह वा एनं परस्तात् कर्मभिराप्त्वाऽवस्तादुपैति य एवं विद्वानेतदहरुपैति ।।१।।

हिन्दी—(इस आरम्भणीय चतुर्विंश दिन के निष्केवल्यशस्त्र में कुछ विशेष विधान कर रहे हैं—) **यद्वै चतुर्विंशम्** जो चतुर्विंश है **तद् महाव्रतम्** वह (संवत्सर का) महाव्रत (नामक अहः) होता है। **अत्र** इस (चतुर्विंश नामक द्वितीय दिन) में **होता बृहद्दिवेन** होता ('तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्' इस) बृहद्दिव (नामक सूक्त) से **रेतः सिञ्चति** वीर्य का सेचन करता है और **तत्** वह (सेचन किया गया वीर्य) **महाव्रतीयेन अ ा** महाव्रत (नामक) दिन (के कर्म) से **प्रजनयति** सन्तानोत्पत्ति करता है। **संवत्सरे सं सरे वै** (लोक में भी) प्रत्येक संवत्सर में **ही रेतः सिक्तं जायते** सिक्त वीर्य (सन्तान रूप में) उत्पन्न होता है। **तस्मात्** इसी कारण **बृहद्दिवः** बृहद्दिव नामक सूक्त (दोनों में) **समानं निष्केवल्यं भवति** समान रूप से निष्केवल्यशस्त्र होता है। **यः एवं विद्वान्** जो इस प्रकार जानने वाला **एतद् अहः उपैति** इस (चतुर्विंश नामक) दिन का सम्पादन करता है, **एषः वै ह** वही **एनम्** इस (संवत्सर) का **परस्तात् कर्मभिः आप्त्वा** (सत्र के) प्रथम भाग में (अनुलोमक्रम से क्रियमाण) कर्मों द्वारा प्राप्त करके **अवस्ताद् उपैति** (प्रतिलोम क्रम से) अपरभाग का सम्पादन करता है।

सा० भा०—यदेतद् द्वितीयं चतुर्विंशमहः तदेव संवत्सरसत्रस्योपान्त्यं महाव्रताख्यमहर्भवति। आरोहक्रमेण चतुर्विंशाख्यं पूर्वपक्षगतं द्वितीयमहः, अवरोहक्रमेण महाव्रताख्यमुपान्त्यत्वाद् द्वितीयमहर्भवति। अनेन द्वितीयत्वसाम्येन तयोः परस्परमैक्यमुपचर्यते। किञ्चोभयत्र बृहद्दिवसाम्यमस्ति। 'तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्' इत्येतत्सूक्तं[१] बृहद्दिवशब्देन विवक्षितम्,प्रौढस्य द्युलोकस्य प्राप्तिहेतुत्वात्। एतदेवोभयत्र निष्केवल्यशस्त्रे क्रियते। तथा सत्यस्मिन् द्वितीयेऽह्नि चतुर्विंशनामके बृहद्दिवनाम्ना तदिदासेत्यादिना निष्केवल्यशस्त्रगतसूक्तेन होता रेतः सिञ्चति। तदहः। 'तत्' एतत् सिक्तं रेतो 'महाव्रतीयेन' उपान्त्येन अह्ना बृहद्दिवाख्यनिष्केवल्यसूक्तयुक्तेन 'प्रजनयति'। अत्र सत्रसंवत्सरमध्य एव रेतःसेकः प्रजननं च द्वितीयोपान्त्यदिवसयोः संपन्नम्। ततो लोकेऽप्येकैकस्मिन् संवत्सरे रेतःसेक उत्पत्तिश्चेत्युभयं संपद्यते। यस्माद् द्वितीयोपान्त्ययोरह्नोरुभयोरपि मिलित्वा प्राणिनो जन्मरूपमेकं कार्यमपेक्षितम्। 'तस्माद्' बृहद्दिवनामकेन सूक्तेनोभयत्र निष्केवल्यं शस्त्रं 'समानम्' एकरूपं कर्तव्यम्। 'यः' पुमान् 'एवं' महाव्रताहः साम्येनात्र सत्रार्थं निष्केवल्यस्य कर्तव्यतां विद्वान् 'एतद्' द्वितीयमहरनुतिष्ठति, स पुमान् परस्तात् सत्रस्य प्रथमभागे आनुलोम्येन क्रियमाणैः कर्मभिः 'आप्त्वा' प्राप्य 'अवस्तात्' अपरभागे प्रातिलोम्येनैव संवत्सरमनुतिष्ठति।।

---

(१) ऋ० १०.१२०.१-९।

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी— (इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **स्वस्ति** क्षेमपूर्वक **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर के पार (समापन) को प्राप्त करता है।

अथ संवत्सरसत्रस्याद्यन्ते द्वे अहनी विधत्ते—

(संवत्सरसत्रस्याद्यन्ते अहःद्वयविधानम्)

यो वै संवत्सरस्यावारं च पारं च वेद, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; अतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयोऽवारमुदयनीयः पारम् ।।३।।

हिन्दी—(अब संवत्सर के आदि और अन्त दोनों दिनों का विधान कर रहे हैं—) **यः वै संवत्सरस्य** जो संवत्सर के **अवारं च पारं च** इस पार वाले (प्रथम दिन) और उस पार वाले (अन्तिम दिन) को **वेद** जानता है, **सः वै** वही **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** वही संवत्सरसत्र के पार (पूर्णता) को प्राप्त करता है। **अस्य** इस (संवत्सर का) **अतिरात्रः प्रायणीयः** प्रायणीय (नामक) अतिरात्र **अवारः** यह पार (आरम्भ) है और **उदयनीयः** उदयनीय (नामक अतिरात्र) **पारम्** वह पार (समापन) है।

सा०भा०—'यः' पुमान् संवत्सरसत्रस्य समुद्रस्थानीयस्य 'अवारम्' अर्वाक् तीर-स्थानीयं प्रथममहः, 'पारं' परतीरस्थानीयमन्तिममहः; 'वेद' तयोरह्नोरनुष्ठेयं कर्तव्यं निश्चि-नोति; 'सः' पुमानविघ्नेनैव संवत्सरसत्रस्य 'पारं' समाप्तिं प्राप्नोति। योऽयमतिरात्रसंस्थः, स एवास्य 'प्रायणीयः' आरम्भेऽनुष्ठेयत्वाद् अर्वाक् तीरस्थानीयः। स एवातिरात्रः पुनः 'उदयनीयः' समाप्तावनुष्ठेयत्वात् परतीरस्थानीयः।।

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद ।।४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **स्वस्ति** क्षेमपूर्वक **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर सत्र के समापन को प्राप्त करता है।

उक्तावाद्यन्तावतिरात्रौ प्रशंसति—

यो वै संवत्सरस्यावरोधनं चोद्रोधनं च वेद, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; अतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयोऽवरोधनमुदयनीय उद्रोधनम् ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त आदि और अन्त वाले अतिरात्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः वै** जो **संवत्सरस्य** संवत्सर सत्र के **अवरोधनं च उद्रोधनं च** प्रारम्भिक कर्म और समापन कर्म को **वेद** जानता है **सः वै** वही **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर की पूर्णता को प्राप्त करता है। **अस्य** इस (संवत्सर) का **प्रायणीयः अतिरात्रः** प्रायणीय (नामक) अतिरात्र **अवरोधनम्** अवरोधन (प्रारम्भ वाला कर्म) तथा **उदयनीयः** उदयनीय (नामक अतिरात्र) **उद्रोधनम्** उद्रोधन (समापन कर्म) है।

सा० भा०—अवरुध्यते स्वाधीनं क्रियते येन प्रारम्भरूपेण कर्मण तत्कर्म 'अवरोधनम्'। उद्रुध्यते समाप्यते येन कर्मणा तत् 'उद्रोधनम्'। अन्यत्पूर्ववत्॥

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद ।।६।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **स्वस्ति** कल्याणपूर्वक **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर की पूर्णता को प्राप्त करता है।

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

यो वै संवत्सरस्य प्राणोदानौ वेद, स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; अतिरात्रो वा अस्य प्रायणीयः प्राण, उदान उदयनीयः ।।७।।

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः वै** जो **संवत्सरस्य** संवत्सर सत्र के **प्राणोदानौ वेद** प्राण और उदान को जानता है **सः वै** वही **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर के समापन को प्राप्त करता है। **अस्य** इस (संवत्सर) का **प्रायणीयः अतिरात्रः प्राणः** प्रायणीय (नामक) अतिरात्र प्राण और **उदयनीयः उदानः** उदयनीय (नामक अतिरात्र) उदान है।

सा० भा०—'प्रायणीयः' अतिरात्रः 'प्र' शब्दसामान्यात् 'प्राणः' इत्युच्यते। उच्छब्दसामान्याद् 'उदयनीयः' अतिरात्रः 'उदानः'॥

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद, य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **स्वस्ति** क्षेमपूर्वक **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर के समापन को प्राप्त करता है।

सा० भा०—अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्ये चतुर्थपञ्चिकायां द्वितीयाध्याये अष्टमः खण्डः ॥८॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय के अष्टम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'-नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य चतुर्थपञ्चिकायाः द्वितीयोऽध्यायः
(सप्तदशोऽध्यायः) समाप्त ॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के सप्तदश अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थपञ्चिकायाम्
तृतीयोऽध्यायः
[अथ अष्टादशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्— आश्विनस्य विधिः प्रातरनुवाक उदीरितः॥
संख्याप्रतिपदावन्ये सौर्यादीन्यधिकानि तु[1] ॥१॥

तत्र गवामयनस्य प्रायणीयोदयनीयावाद्यन्तावतिरात्रावुक्तौ; अत्र मासक्लृप्तिविधानायाभिप्लवषडहे पूर्वभागरूपाणि त्रीण्यहानि विधत्ते—

(अभिप्लवषडहे पूर्वभागरूपाहस्त्रयविधानम्)

ज्योतिर्गौरायुरिति स्तोमेभिर्यन्त्ययं वै लोको ज्योतिरन्तरिक्षं गौरसौ लोक आयुः ॥१॥

हिन्दी—(अब मास क्लृप्ति के विधान के लिए अभिप्लव नामक षडह में पूर्वभागरूप तीन दिनों का विधान कर रहे हैं—) **ज्योतिः गौः आयुः इति स्तोमेभिः** ज्योतिः, गौः और आयुः–इन स्तोमों (अर्थात् ज्योतिष्टोम, गोष्टोम और आयुष्टोम) द्वारा **यन्ति** अनुष्ठान करते हैं; क्योंकि **अयं वै लोकः ज्योतिः** यह (पृथिवी) लोक ज्योति, **अन्तरिक्षं गौः** अन्तरिक्षलोक गौ और **असौ लोकः आयुः** वह (द्यु) लोक आयु है।

सा० भा०—स्तोमशब्दो ज्योतिरादिभिः प्रत्येकमभिसंबध्यते। तथा सति ज्योतिष्टोमः, गोष्टोमः, आयुष्टोम इत्येतैरहोभिः 'यन्ति' अनुतिष्ठेयुरित्यर्थः। तदेतदहस्त्रयं त्रित्वसाम्यात् क्रमेण लोकत्रयरूपम्। शाखान्तरेऽप्येतद्दर्शितम्—'ज्यातिष्टोमं प्रथममुपयन्त्यस्मिन्नेव तेन लोके प्रतितिष्ठन्ति; गोष्टोमं द्वितीयमुपयन्त्यन्तरिक्ष एव तेन प्रतितिष्ठन्ति; आयुष्टोमं तृतीयमुपयन्त्यमुष्मिन्नेव लोके प्रतितिष्ठन्ति'[2] इति॥

षडहे पूर्वभागं त्र्यहमुक्त्वा तदुत्तरभागं विधत्ते—

(अभिप्लवषडहे उत्तरभागस्य विधानम्)

स एवैष उत्तरस्त्र्यहः ॥२॥

---

(१) प्रथमादिषु पञ्चखण्डेष्वित्येव बोध्यम् (५९७-६१७ पृ०)।
(२) तै०सं० ७.४.११.१।

हिन्दी—(षडह में पूर्वभाग त्र्यह को कहकर उत्तर-भाग का विधान कर रहे हैं—) **सः वै एषः उत्तरः त्र्यहः** उत्तरार्ध के तीन दिन भी वह यह (पहले तीन दिन वाला) ही (स्तोम अनुष्ठित होता है)।

सा० भा०—त्रयाणां पूर्वोक्तानामेवाह्नां समूहः पुनरनुष्ठीयमान उत्तरस्त्र्यहो भवति।।

तत्र षडहे षण्णामप्यह्नां क्रमं दर्शयति—

(षडहे षण्णामप्यह्नां क्रमप्रदर्शनम्)

ज्योतिर्गौरायुरिति त्रीण्यहानि, गौरायुर्ज्योतिरिति त्रीणि ।।३।।

हिन्दी—(उस षडह में छवों दिनों के क्रम को दिखला रहे हैं—) **ज्योतिः गौः आयुः** ज्योतिष्टोम, गौष्टोम और आयुष्टोम—**इति त्रीणि अहानि** ये (क्रमशः षडह के पूर्ववर्ती) तीन दिनों वाले (याग) हैं और **गौः आयुः ज्योतिः** गोष्टोम, आयुष्टोम और ज्योतिष्टोम—**इति त्रीणि** ये तीन याग (क्रमशः परवर्ती दिन वाले हैं)।

सा० भा०—ज्योतिष्टोमादीनामेव ज्योतिरित्यादीनि नामानि; तैर्नामभिर्धर्मा अतिदिश्यन्ते। ज्योतिरादिनामकाः ये स्वतन्त्रा एकाहाः सन्ति, तदीयधर्मा अत्रानुष्ठेया इत्यर्थः।।

योऽयमुभयोस्त्र्यहयोः क्रमव्यत्यासस्तमिमं प्रशंसति—

अयं वै लोको ज्योतिरसौ लोको ज्योतिस्ते एते ज्योतिषी उभयतः संलोकेते ।।४।।

हिन्दी—(षडह के दोनों पूर्ववर्ती और परवर्ती दिनों के क्रमव्यत्यास की प्रशंसा कर रहे है–) **अयं वै लोकः ज्योतिः** (इन दोनों भागों में प्रथम और अन्तिम होने के कारण) यह (पृथिवी) लोक भी ज्योति है और **असौ लोकः ज्योतिः** वह (द्यु) लोक भी ज्योति है। **ते एते ज्योतिषी** वे ये दोनों (षडह के आदि और अन्त में विद्यमान) ज्योति **उभयतः संलोकेते** दोनो ओर से परस्पर सम्मुख दिखलायी देते हैं।

सा० भा०—प्रथमस्य त्र्यहस्यादौ ज्योतिर्नामकमहर्यदस्ति, तत्प्राथम्यसाम्याद् भूलोकस्वरूपम्। यच्चोत्तरस्य त्र्यहस्यावसाने ज्योतिर्नामकमहः, तदुत्तमत्वसाम्याद् द्युलोकस्वरूपम्। 'ते एते' षडहस्याद्यन्तयोर्वर्तमाने 'ज्योतिषी' उभयतोऽवस्थाय परस्परं 'संलोकेते' संमुखत्वेनेक्षेते।।

अहर्विशेषांस्तत्क्रमं चोक्त्वा समष्टिरूपं षडहं विधत्ते—

(समष्टिरूपषडहविधानम्)

तेनैतेनोभयतोज्योतिषा षळहेन यन्ति; तद्यदेतेनोभयतोज्योतिषा षळहेन यन्त्यनयोरेव तल्लोकयोरुभयतः प्रतितिष्ठन्तो यन्त्यस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्चोभयोः ।।५।।

हिन्दी—(दिन विशेषों और उनके क्रम को कह कर समष्टिरूप वाले षडह का विधान कर रहे हैं—) **उभयतः ज्योतिषा तेन एतेन षडहेन** दोनो ओर से विद्यमान ज्योति वाले उस षडह से **यन्ति** यजन करते हैं। **तद् यद् एतेन उभयतः ज्योतिषा षडहेन** तो जो इस दोनों ओर विद्यमान ज्योति वाले षडह से **यन्ति** यजन करते हैं **तत्** उस (यजन) से **उभयतः** दोनों ओर से **अस्मिन् च लोके अमुष्मिन् च** इस (पृथिवी) लोक में और उस (द्यु) लोक में–इस प्रकार **उभयोः** दोनों **अनयोः लोकयोः** इन लोकों में **प्रतितिष्ठन्तः** प्रतिष्ठित होते हुए **यन्ति** आगे बढ़ते हैं।

सा० भा०—'उभयतः' आद्यन्तयोर्ज्योतिर्नामकमहर्यस्मिन् षडहे तदेतत् 'उभयतो ज्योतिः' तेनैतेन षडहेनानुतिष्ठेयुः। तदनुष्ठानेनोभयतो वर्तमानयोः प्रतिष्ठां प्रापयन्तो वर्तन्ते। 'लोकयोरुभयतः' इत्यस्यैव विवरणम्—'अस्मिंश्च लोकेऽमुष्मिंश्चोभयोः'–इति। अथ-वोत्तरशेषत्वेनास्मिंश्चेत्यादिकमन्वेतव्यम्॥

अस्मिन्नभिप्लवषडहे संस्थाविशेषान् विधत्ते—

(अभिप्लवषडहे संस्थाविशेषविधानम्)

परियद्वा एतद्देवचक्रं यदभिप्लवः षळहस्तस्य यावभितोऽग्निष्टोमौ तौ प्रधी, ये चत्वारो मध्य उक्थ्यास्तन्नभ्यम् ॥६॥

हिन्दी—(इस अभिप्लव नामक षडह में संस्था-विशेषों का विधान कर रहे हैं—) **यद् अभिप्लवः षडहः** जो अभिप्लव (नामक) षडह है, **एतत् परियद्वै देवचक्रम्** यह परिवर्तमान देवचक्र है। **तस्य अभितः** उस (षडह) के दोनों ओर **यौ अग्निष्टोमौ** जो दो अग्निष्टोम है **तौ** वे दोनों (अग्निष्टोम) **प्रधी** नेमिस्थानीय हैं। **मध्ये** मध्य में **ये चत्वारः उक्थ्याः** जो चार उक्थ्य (संस्था) है, **तद् नभ्यम्** वे नाभिस्थानीय है।

सा० भा०—योऽयमभिप्लवः षडहः, तदेतदस्मिंश्चामुष्मिंश्चोभयोर्लोकयोः 'परियद्वै' परिवर्तमानमेव 'देवचक्रम्',—यथा लोके रथस्य चक्रं पुनः पुनः परिवर्तते, तद्वदिदं देव-चक्रम्; असकृत् षडहं परिवर्तनस्य वक्ष्यमाणत्वात्। रथचक्रस्य हि निष्पादकानि त्रीणि फलकानि; तत्र मध्यमफलकेऽरुं प्रवेशयितुं प्रौढं नाभिच्छिद्रं क्रियते। तस्य फलकस्योभयोः पार्श्वयोर्वर्तुलत्वाय फलकद्वयं कीलितं भवति। एवमस्मिन्नपि षडहे ज्योतिर्यागावा-द्यन्तवर्तिनावग्निष्टोमसंस्थौ 'प्रधी' भवतः, प्रकर्षेणोभयतो धीयेते स्थाप्येते इति प्रधी, फलकद्वयस्थानीयावित्यर्थः। एतस्मिन् 'ये' तु मध्ये 'चत्वारः' अहर्विशेषा उक्थ्यसंस्थाः; तदेतत् 'नभ्यं' नाभियोग्यस्थानम् उक्थ्यसंस्थाः कर्तव्या इत्यर्थः॥

वेदनं प्रशंसति—

गच्छति वै वर्तमानेन यत्र कामयते, तत्स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद॥७॥

हिन्दी—(उक्त ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **यत्र कामयते** वह लोक में जहाँ जाने की कामना करता है, वहाँ **वर्तमानेन वै गच्छति** परिवर्तमान (देवचक्र) द्वारा चला ही जाता है और **तत्** उससे **स्वस्ति** क्षेमपूर्वक **संवत्सरस्य** संवत्सर के **पारम् अश्नुते** समापन को प्राप्त करता है।

सा०भा०—वेदिता 'यत्र' यस्मिँल्लोके गन्तुं कामयते, तत्रानेनैव परिवर्तमानेन देवचक्रेण गच्छति। 'तत्' तेन देवचक्रेण निर्विघ्नमेव संवत्सरसत्रसमाप्तिं गच्छति॥

उक्तस्याभिप्लवषडहस्यैकस्मिन् मासि पञ्चकृत्व आवृत्ति विधत्ते—

(एकस्मिन् मासि अभिप्लवषडहस्य पञ्चवारावृत्तिविधानम्)

यो वै तद्वेद यत्प्रथमः षळहः; स वै स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते; यस्तद्वेद यद्द्वितीयो, यस्तद्वेद यत्तृतीयो, यस्तद्वेद यच्चतुर्थो, यस्तद्वेद यत्पञ्चमः ॥८॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त अभिप्लव नामक षडह के एक महीने में पाँच बार आवृति का विधान कर रहे हैं—) **यः वै प्रथमः षडहः** जो प्रथम षडह है, **तद् यः वै वेद** उसको जो जानता है, **यद् द्वितीयः** जो द्वितीय (षडह) है, जो उसको जानता है, **यः तृतीयः** जो तृतीय षडह है, जो उसको जानता है, **यत् चतुर्थः** जो चतुर्थ षडहः है जो उसको जानता है, और **यत् पञ्चमः** जो पञ्चम षडह है, जो उसको जानता है, **सः वै** वही **स्वस्ति** क्षेमपूर्वक **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सर के समापन को प्राप्त कर लेता है।

सा०भा०—'प्रथम: षडह:' इति यदस्ति, तद् यो वेद, 'स:' पुमान्निर्विघ्नेन सत्र-पारं प्राप्नोति। तथा 'द्वितीय:' षडह इति यदस्ति, तद् यो वेद, स वै स्वस्तीत्यादिकमनु-वर्तनीयम्। एवमुत्तरेष्वपि त्रिषु पर्यायेषु द्रष्टव्यम्। षडहे पञ्चकृत्व आवर्तमाने सति त्रिंश-दहानि भूत्वा मास: संपद्यते॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकाया: तृतीयाध्याये (अष्टादशाध्याये) प्रथम: खण्ड: ॥१॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ द्वितीयः खण्डः

सा०भा०—उक्तेषु पञ्चसु षडहेषु प्रथममनूद्य प्रशंसति—

(प्रथमषडहः प्रशंसनम्)

प्रथमं षळहमुपयन्ति; षळहानि भवन्ति; षड्वा ऋतव ऋतुश एव तत्संवत्सरमाप्नुवन्त्यृतुशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ।।१।।

हिन्दी—(पाँचों षडहों में प्रथम षडह को कह कर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **प्रथमं षडहः उपयन्ति** प्रथम षडह का सम्पादन करते हैं। (इनके सम्पादित होने में) **षडहानि भवन्ति** छः दिन होते हैं। **षड् वै ऋतवः** ऋतुएँ भी छः होती हैं। **ऋतुशः एव** ऋतु से ही **तत् संवत्सरम्** उस संवत्सर को **आप्नुवन्ति** प्राप्त करते हैं और **ऋतुशः** ऋतुओं द्वारा **संवत्सरे** संवत्सर में **प्रतितिष्ठन्तः यन्ति** प्रतिष्ठित होते हुए यजन करते हैं।

सा० भा०—अनुष्ठिते षडहे षट्संख्याकान्यहानि भवन्ति। ततः संख्यासाम्यादृतुद्वारा संवत्सरं प्राप्य तत्र प्रतिष्ठिताः सन्तो वर्तन्ते।।

पूर्वेण षडहेन सहितं द्वितीयं षडहं प्रशंसति—

(सपूर्वेण षडहेन द्वितीयषडहप्रशंसनम्)

द्वितीयं षळहमुपयन्ति; द्वादशाहानि भवन्ति; द्वादश वै मासा, मासश एव तत्संवत्सरमाप्नुवन्ति; मासशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ।।२।।

हिन्दी—(पूर्ववर्ती षडह के सहित द्वितीय षडह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **द्वितीयं षडहम् उपयन्ति** द्वितीय षडह का सम्पादन करते हैं। (द्वितीय षडह के सम्पादन होने पर दोनों षडह मिलकर) **द्वादश अहानि भवन्ति** बारह दिन हो जाते हैं। (संवत्सर में) **द्वादश वै मासा** बारह मास होते हैं इस प्रकार **मासशः एव** मास से ही **तत्संवत्सरम् आप्नुवन्ति** उस (संवत्सर को प्राप्त करते हैं) और **मासशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तः** मास से संवत्सर में प्रतिष्ठित होते हुए **यन्ति** यजन करते हैं।

सा० भा०—पूर्ववद् व्याख्येयम्।।

उक्ताभ्यां षडहाभ्यां सहितं तृतीयं षडहं प्रशंसति—

(प्रथमद्वितीयषडहाभ्यां सहितं तृतीयषडहप्रशंसनम्)

तृतीयं षळहमुपन्त्यष्टादशाहानि भवन्ति; तानि द्वेधा नवान्यानि नवान्यानि; नव वै प्राणा; नव स्वर्गा लोकाः, प्राणांश्चैव तत्स्वर्गांश्च लोकानाप्नुवन्ति, प्राणेषु चैव तत्स्वर्गेषु च लोकेषु प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ।।३।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त दोनों षडहों के सहित तृतीय षडह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तृतीयं षडहम् उपयन्ति** तृतीय षडह का सम्पादन करते हैं। (इस प्रकार तीनों षडह मिलकर) **अष्टादश अहानि भवन्ति** अट्ठारह दिन होते हैं। **तानि** वे (अट्ठारह दिन)

नवान्यानि नवान्यानि नौ और नौ के समूह में **द्वेधा** दो विभाग वाले होते हैं। **नव वै प्राणाः** (शरीर में) नव प्राण होते हैं और **नव स्वर्गा लोकाः** स्वर्गलोक भी नौ होते हैं। इससे **प्राणान् च तत्स्वर्गान् लोकान् च प्राप्नुवन्ति** प्राणों और स्वर्गलोकों को प्राप्त करता है। **प्राणेषु च तत्स्वर्गेषु लोकेषु** प्राणों में और उन स्वर्गलोकों में **प्रतितिष्ठन्तः यन्ति** प्रतिष्ठित होते हुए यजन करते हैं।

सा० भा०—त्रिषु षडहेषु यान्यष्टादशाहानि, तेषां द्वेधा विभागे सति प्रत्येकं 'नव' संख्या संपद्यते। 'प्राणाः' सप्तसु ऊर्ध्वच्छिद्रेषु द्वयोरधश्छिद्रयोर्नवसंख्याकाः,—स्वर्गलोकाश्च नवभोगस्थानभेदेन[1] नवविधाः। अतः संख्यासाम्यात् प्राणान् स्वर्गलोकांश्च प्राप्य तत्र प्रतिष्ठिता वर्तन्ते।।

पूर्वैस्त्रिभिः षडहैश्चतुर्थं षडहं प्रशंसति—

(पूर्वोक्तस्त्रिभिः षडहैश्चतुर्थषडहप्रशंसनम्)

चतुर्थं षळहमुपयन्ति; चतुर्विंशतिरहानि भवन्ति; चतुर्विंशतिर्वा अर्धमासा, अर्धमासश एव तत्संवत्सरमाप्नुवन्त्यर्धमासशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तो यन्ति ।।४।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त तीन षडहों के सहित चतुर्थ षडह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **चतुर्थं षडहम् उपयन्ति** चतुर्थ षडह का सम्पादन करते हैं। **चतुर्विंशति अहानि भवन्ति** (पूर्ववर्ती तीनों षडहों के सहित मिलकर चौबीस दिन होते हैं)। **चतुर्विंशति वै अर्धमासाः** (संवत्सर में) चौबीस अर्धमास (पक्ष) होते हैं। **अर्धमासशः एव** अर्धमास से ही **तत्संवत्सरम् आप्नुवन्ति** उस संवत्सर को प्राप्त करते हैं और **अर्धमासशः संवत्सरे प्रतितिष्ठन्तः** अर्धमास से संवत्सर में प्रतितिष्ठत होते हुए **यन्ति** यजन करते हैं।

सा० भा०—अतः संख्यासाम्याद् अर्धमासद्वारा संवत्सरे प्रतिष्ठिताः।।

पूर्वैश्चतुर्भिः षडहैः सहितं पञ्चमं षडहं प्रशंसति—

(पूर्वैश्चतुर्भिः षडहैः पञ्चमषडहप्रशंसनम्)

पञ्चमं षळहमुपयन्ति; त्रिंशदहानि भवन्ति; त्रिंशदक्षरा वै विराड्; विराळन्नाद्यं, विराजमेव तन्मासि मास्यभिसंपादयन्तो यन्ति ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त चार षडहों के सहित पञ्चम षडह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **पञ्चम षडहम् उपयन्ति** पञ्चम षडह का सम्पादन करते हैं। **त्रिंशद् अहानि भवन्ति** (पूर्ववर्ती चारों षडहों के लेकर) तीस दिन होते हैं। **त्रिशद् अक्षरा वै विराट्** विराट् छन्द तीस

(१) 'अष्टाभिर्लोकपालैः परिपालिता अष्टसंख्याकाः स्वर्गा लोकाः, तेषां मध्ये कश्चिदूर्ध्वगामी स्वर्ग इत्येव नवसंख्याकाः स्वर्गाः' इति तै०सं० १.२.२.१ सा०भा०।

अक्षरों वाला होता है। विराड् **अन्नाद्यम्** विराट् छन्द अन्नाद्य रूप है। **तत्** इससे **विराजमेव** विराट् को ही **मासि मासि सम्पादयन्तः** प्रत्येक मास में सम्पादित करते हुए **यन्ति** यजन करते हैं।

सा०भा०—अहःसंख्याया विराट्साम्याद् विराजश्चान्नाद्यहेतुत्वात् प्रतिमासं विराड्-द्वारा अन्नाद्यं प्राप्नुवन्ति॥

पुनरपि षडहपञ्चकं प्रशंसति—

(पुनरपि षडहपञ्चकप्रशंसनम्)

अन्नाद्यकामाः खलु वै सत्रमासत; तद् यद्विराजं मासि मास्यभि-संपादयन्तो यन्त्यन्नाद्यमेव तन्मासि मास्यवरुन्धाना यन्त्यस्मै च लोकायामुष्मै चोभाभ्याम् ।।६।।

हिन्दी—(पुनः पाँचों षडहों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अन्नाद्यकामाः षडहम् उपयन्ति** खाद्यान्न की कामना से षडह का सम्पादन करते हैं। **तद् यद् विराजम्** तो जो विराट् का **मासि मासि अभिसम्पादयन्तः** प्रत्येक मास में सम्पादन करते हुए **यन्ति** यजन करते हैं **तत्** उससे वे **मासि मासि अन्नाद्यम् अवरुन्धानाः** प्रत्येक महीने में अन्नाद्य को प्राप्त करते हुए **यन्ति** यजन करते हैं। **अस्मै च अमुष्मै च लोकाय** इस (भूलोक) और उस (स्वर्ग) लोक के लिए इस प्रकार **उभाभ्याम्** दोनों लोकों के लिए यजन करते हैं।

स०भा०—ये सत्रस्यानुष्ठातारः, ते हि 'अन्नाद्यकामाः' अनुतिष्ठन्ति। तथा सति पूर्वोक्तरीत्या संख्यासाम्यात् पञ्चसु षडहेषु त्रिंशदक्षररूपां विराजं प्रतिमासं संपादयन्तो वर्तन्ते। प्रतिमासमन्नाद्यं प्राप्नुवन्तो लोकद्वयार्थं गच्छन्ति। प्रतिमासं षडहपञ्चकमनुतिष्ठे-युरिति तात्पर्यार्थः। तत्र चत्वारोऽभिप्लवाः षडहाः, पञ्चमस्तु पृष्ठ्यः षडह इति सूत्रकारैर-भिधानादयं विशेषः शाखान्तरे द्रष्टव्यः[1]॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टादशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) 'चत्वारोऽभिप्लवाः पृष्ठ्यश्च मासः'—इति च कात्या०श्रौ० १३.२.३; तथा 'चतुरभिप्लवान् पृष्ठ्यपञ्चमान् पञ्च मासानुपयन्ति' इति च आश्व०श्रौ० ११.७.२।

अथ तृतीयः खण्डः

सा०भा०—संवत्सरसत्रस्यावयवान् मासानभिधाय सत्रं विधत्ते—

(संवत्सरसत्रविधानम्)

(तत्र गवामयनविधानम्)

गवामयनेन यन्ति; गावो वा आदित्या; आदित्यानामेव तदयनेन यन्ति ।।१।।

हिन्दी—(संवत्सर सत्र के अवयव रूप मासों का कथन करके अब सत्र का विधान कर रहे हैं—) **गवामयनेन यन्ति** (संवत्सर के प्रकृतिभूत) गवामयन (नामक कर्म) का सम्पादन करते हैं। **गावः वै आदित्या** गौ (गमन करने के कारण) आदित्य है। इस प्रकार **तत्** उस (गवामयन) से **आत्यिानामेव अयनेन** आदित्यों के ही अयन से **यन्ति** यजन करते हैं।

सा०भा०—संवत्सरसत्राणां प्रकृतिभूतस्यैतस्य सत्रस्य 'गवामयनम्' इति नामधेयम्। तेन 'यन्ति' अनुतिष्ठेयुः। गमनसाम्याद् गवामादित्यत्वम्। तथा सत्यादित्यानामेवायनेनानुष्ठानं कृतं भवति।।

तदेतद् गवामयनं प्रशंसति—

(गवामयनप्रशंसनम्)

गावो वै सत्रमासत, शफाञ्शृङ्गाणि सिषासत्यस्तासां दशमे मासि शफाः शृङ्गाण्यजायन्त; ता अब्रुवन् यस्मै कामायादीक्षामह्यापाम तमुत्तिष्ठामेति; ता या उदतिष्ठंस्ता एताः शृङ्गिण्यः ।।२।।

हिन्दी—(इस गवामयन की प्रशंसा कर रहे हैं—) **गावः वै** गायों (के अभिमानी देव) ने **शफाञ्शृङ्गाणि सिषासत्यः** खुरों और सींगों को प्राप्त करने की कामना करते हुए **सत्रम् आसत** सत्र का सम्पादन किया। **दशमें मासि** दशम महीने में **तासाम्** उन गायों के **शफाः शृङ्गाणि अजायन्त** खुर और सींगे उत्पन्न हो गयी। तब **ताः अब्रुवन्** उन गायों ने कहा कि **यस्मै कामाय** जिस कामना के लिए **अदीक्षामहि** हम लोगों ने दीक्षा ग्रहण किया था, **तम् अपाम** उसको प्राप्त कर लिया। **उत्तिष्ठाम** अतः हम लोग उठ जाये। **याः ताः उतिष्ठन्** जो वे (गाये) उठ गयीं **ताः एताः शृङ्गिण्यः** वे ये (गायें) सींग से सम्पन्न थीं।

सा०भा०—पुरा कदाचिद् गवाभिमानिन्यो देवताः स्वकीयानां गोदोहानां पादगतान् 'शफान्' शिरोगतानि 'शृङ्गाणि' च 'सिषासत्यः' प्राप्तुमिच्छन्त्यः सत्रमन्वतिष्ठन्। तासां दशमे मासि तदुभयं संपन्नम्। ततः 'ताः' गावः परस्परमिदमब्रुवन्,—यस्मै कामाय

वयम् 'अदीक्षामहि' सत्रदीक्षामाप्तवत्य:, 'तं' कामम् 'आपाम' वयं प्राप्तवत्य:। ततोऽस्मात् सत्रादुत्तिष्ठामेति विचार्योत्थाय गता:। 'ता:' प्रसिद्धा या गाव उदतिष्ठन्; ता इमाः शृङ्गिण्यो दृश्यन्ते। अनेन दशसु मासेष्वनुष्ठेयं गवामयनं प्रशस्तम्।।

द्वादशसु मासेष्वनुष्ठेयं यद् गवामयनमस्ति, तदिदानीं प्रशंसति—

अथ याः समापयिष्यामः संवत्सरमित्यासत, तासामश्रद्धया शृङ्गाणि प्रावर्तन्त; ता एतास्तूपरा ऊर्जं त्वसुन्वंस्तस्मादु ताः सर्वानृतून् प्राप्त्वोत्तरमुत्तिष्ठन्त्यूर्जं ह्यसुन्वन् सर्वस्य वै गावः प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गताः ।।३।।

हिन्दी—(बारह मासों में अनुष्ठेय गवामयन की प्रशंसा कर रहे हैं—) **अथ याः** और जिन (गायों) ने **संव.सरं समापयिष्यामः** (ऊर्जा की प्राप्ति के लिए) संवत्सर को समाप्त कर देंगे—**इति आसत** यह सोचते हुए सत्र का सम्पादन किया **तासाम्** उन (गायों) के **अश्रद्धया** अश्रद्धा के कारण **शृङ्गाणि प्रावर्तन्त** सींगे नहीं उत्पन्न हुई। **ताः एताः तूपराः** वे ये गायें (आज लोक में) सींग से रहित हैं, किन्तु **ऊर्जं तु असुन्वन्** बल को प्राप्त किया। **तस्मादु** इसी कारण **ताः** वे (गायें) **सर्वान् ऋतून् प्राप्त्वा** (उस अनुष्ठान में) सभी ऋतुओं को प्राप्त करके **उत्तरम् उत्तिष्ठन्ति** बाद में (सत्र से) उठीं; क्योंकि **ऊर्जं हि असुन्वन्** (उन्होंने) ऊर्जा को प्राप्त किया। **गावः** वे गायें **सर्वस्य प्रेमाणम्** सभी के प्रेम और **सर्वस्य चारुताम्** सभी की रमणीयता को **गताः** प्राप्त किया।

सा० भा०—सत्रमनुतिष्ठन्तीनां गवां मध्ये शफशृङ्गार्थिनीनां दशभिर्मासैः सिद्धिर्जाता। यासां तु गवां शृङ्गापेक्षा नास्ति, किन्तु ऊर्गपेक्षैव, तादृश्यो या गाव ऊर्जसिद्ध्यर्थं द्वादशमासात्मकं संवत्सरं समापयिष्याम इत्यभिप्रेत्य, तथैवान्वतिष्ठन्। 'तासां' गवां शृङ्गेष्वश्रद्धया शृङ्गाणि 'प्रावर्त्तन्त' नोत्पन्नानीत्यर्थ:। 'ता एता:' गावो लोके 'तूपरा:' शृङ्गरहिता दृश्यन्ते। तास्तु शृङ्गरहिता अपि सत्रानुष्ठानेन 'ऊर्जं' बलाधिक्यम् 'असुन्वन्' संपादितवत्य:। 'तस्मादु' बलाधिक्यलक्षणस्य फलस्य सद्भावादेव 'ता:' गाव: 'सर्वानृतून्' षट्संख्याकानपि तस्मिन् सर्वानुष्ठाने प्राप्य 'उत्तरम्' ऊर्ध्वकाले सत्रादुत्तिष्ठन्ति। 'हि' यस्माद् 'ऊर्जं' बलातिशयम् 'असुन्वन्' प्राप्तवत्य:, तस्माद् द्वादशमासानुष्ठानं युक्तम्। 'ता:' शृङ्गरहिता गाव: प्रहारभयाभावात् 'सर्वस्य' जगत: 'प्रेमाणं' प्रियत्वं गता:। तथा बलाधिक्येन शरीरपुष्ट्या च 'सर्वस्य' भारवहनादिकार्यस्य नेत्रदर्शनस्य चात्यन्तं 'चारुतां' रमणीयतां गता:।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वस्य प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गच्छति य एवं वेद ।।४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वस्य प्रेमाणम्** सभी लोगों के प्रेम को और **सर्वस्य चारुताम्** सभी लोगों की

रमणीयता को **गच्छति** प्राप्त करता है।

अथादित्यानामयनमङ्गिरसामयनं च गवामयनविकृतिरूपमुभयं वक्तुं प्रस्तौति—

आदित्याश्च ह वा अङ्गिरसश्च स्वर्गे लोकेऽस्पर्धन्त वयं पूर्वं एष्यामो वयमिति; ते हादित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः; पश्चेवाङ्गिरसः षष्ट्यां वा वर्षेषु ।।५।।

हिन्दी—(अब आदित्यायन और अङ्गिरसायन को गवामयन की विकृतिरूपता को कहने के लिए प्रस्तावित कर रहे हैं—) **आदित्याः च ह वै अङ्गिरसः च** आदित्यों और अङ्गिरसों ने **वयं पूर्वम् एष्यामः वयम्** हम पहले प्राप्त करें, हम पहले प्राप्त करें—**इति** इस प्रकार **स्वर्गे लोके** स्वर्ग लोग की प्राप्ति के लिए **अस्पर्धन्त** परस्पर स्पर्धा किया। **ते ह आदित्याः** उन आदित्यों ने **पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः** पहले स्वर्गलोक को प्राप्त किया (आदित्यों के) **षष्ठयां वै वर्षेषु पश्च एव** साठ वर्षों बाद **अङ्गिरसः** अङ्गिराओं ने (प्राप्त किया)।

सा० भा०—आदित्याख्याश्च ये देवाः, ये चाङ्गिरस नामका ऋषयः, तदुभये स्वर्गे लोके परस्परं स्वर्गप्राप्तौ 'अस्पर्धन्त' अस्माकमेव प्रथमं गमनमिति आदित्याः, अङ्गिरसोऽपि तथैव; तत्रादित्याः सहसा प्रथमं स्वर्गं प्रापुः। अङ्गिरसस्तु 'पश्चेव' विलम्बेनैव षष्टिसंख्याकेषु वर्षेस्वतीतेषु स्वर्गं प्राप्ताः। 'वा' शब्देन पक्षान्तरं द्योत्यते। अङ्गिरसां मध्ये तत्तच्छक्त्यनुसारेण केचित् षष्टेः पूर्वं वा गता इत्यर्थः।।

अथादित्यानामयनेऽहःक्लृप्ति विधत्ते—

(आदित्यानामयनेऽहःक्लृप्तिविधानम्)

यथा वा प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थ्यः, सर्वेऽभिप्लवाः षळहा, आक्ष्यन्त्यन्याहानि; तदादित्यानामयनम् ।।६।।

हिन्दी—(अब आदित्यायन में अहःक्लृप्ति का विधान कर रहे हैं—) **यथा वा** (गवामयन में) जिस प्रकार **प्रायणीयः** प्रायणीय (नामक प्रथम दिन) और **अतिरात्रः चतुर्विंशः उक्थः** अतिरात्र (संस्था रूप) चतुर्विंश उक्थ्य (नामक द्वितीय दिन) होता है (उसी प्रकार आदित्यायन में भी होता है किन्तु) **सर्वे अभिप्लवाः षडहाः** सभी अभिप्लव (नामक) षडह **अन्यानि अहानि** (प्रथम और द्वितीय दिन से) अन्य दिनों को **आक्ष्यन्ति** व्याप्त कर देते हैं, **तद् आदित्यानाम् अयनम्** यही आदित्यों का अयन है।

सा० भा०—अत्र 'वा' शब्दो न विकल्पार्थः, किंतु गवामयनप्रकारव्यावृत्त्यर्थः। गवामयने प्रायणीयाख्यं प्रथममहः, अतिरात्रसंस्थं चतुर्विंशमुक्थ्यमहर्द्वितीयम्, तदुभयं तत्र 'यथा' तथैव आदित्यानामयनेऽपि; तत् ऊर्ध्वं विशेषोऽस्ति। सर्वेऽभिप्लवाः षडहाः पूर्वोक्ता-

भ्यां प्रथमद्वितीयाभ्यामहोभ्यामन्यानि सर्वाण्यहानि 'आक्ष्यन्ति' व्याप्तिं करिष्यन्ति। गवामयने त्वेकैकस्मिन् मासि चत्वार एवाभिप्लवषडहाः। अत इदं वैषम्यम्। तदिदम् 'आदित्यानामयनम्'॥

अथाङ्गिरसामयनस्य क्लृप्तिं दर्शयति—

(अङ्गिरसामयनेऽहःक्लृप्तिविधानम्)

प्रायणीयोऽतिरात्रश्चतुर्विंश उक्थ्यः, सर्वे पृष्ठ्याः षळहा, आक्ष्यन्त्यन्यान्यहानि; तदङ्गिरसामयनम् ॥७॥

हिन्दी—(अङ्गिरसों के अयन में क्लृप्ति को दिखला रहे हैं—) (अङ्गिरसों के अयन में) **प्रायणीयः अतिरात्रः चतुर्विंशः उक्थ्यः** प्रायणीय, अतिरात्र, चतुर्विंश उक्थ्य और **सर्वे पृष्ठयाः षडहाः** सभी पृष्ठ्य षडह होते हैं। (पृष्ठ्य अभिप्लव से) **अन्यानि अहानि** अन्य दिनों को व्याप्त कर लेते हैं।

विमर्श—(१) गवामयन में एक मास में चार अभिप्लव षडह होते हैं और पाँचवा पृष्ठय षडह होता है। आदित्यों के अयन में पृष्ठ्य षडह नहीं होता और अङ्गिरसों के अयन में अभिप्लव षडह नहीं होता–यही दोनों में भेद है।

सा० भा०—प्रथमद्वितीयव्यतिरिक्तानि सर्वाण्यहानि पृष्ठ्यषडहैर्व्याप्तानि, इत्येतावानत्र विशेषः। अथवा 'आक्ष्यन्ति' शब्दोऽहर्विशेषनामधेयम्। तथा च बौधायन आह—'अभिजिद्विषुवान् विश्वजिद्दशममहर्महाव्रतमुदयनीयोऽतिरात्र इत्येतान्यक्ष्यन्ति भवन्ति' इति। तदेतद् बौधायनस्य मतम्। अन्यदपि यान्यन्यानि पृष्ठ्याभिप्लवेभ्य इति शालिकिराचार्यो मेने। यानि चान्यानि पृष्ठ्याभिप्लवेभ्यो दशमाच्चेत्यौपमन्यव इति। तथा सति प्रायणीयारम्भणीयाभ्यामभिप्लवषडहेभ्यश्चान्यानि यान्यहानि सन्ति, तानि 'आक्ष्यन्ति' एतन्नामकानीत्युभयत्र व्याख्येयम्। सर्वथाऽप्यस्त्येनयोरुभयोरपि गवामयनाद् विशेषः। गवामयने त्वेकस्मिन् मासि चत्वारोऽभिप्लवाः षडहाः, पञ्चमः पृष्ठ्यः षडहः। तथा च आश्वलायन आह—'अथ गवामयनं सर्वकामाः। प्रायणीयचतुर्विंशे उपेत्य चतुरभिप्लवान् पृष्ठ्यपञ्चमान् पञ्च मासानुपयन्ति'[१] इति। आदित्यानामयने पृष्ठ्यः षडहो नास्ति—इति[२] अङ्गिरसामयनेऽभिप्लवः

---

(१) आश्व०श्रौ० ११.७.१,२। आश्वलायनो हि 'अथ गवामयनम्' इत्यारभ्य 'इति गवामयनम्'—इत्यन्तं ग्रन्थमुक्त्वापि पुनरुवाच 'सर्वे वा षडहा अभिप्लवाः स्युः'—इति (११.७.२१)। ततो ज्ञायते केषाञ्चिन्नये गवामयनादित्यानामयनयोर्न षडहकृतं वैषम्यमपि त्वन्यथैवेति। तच्च वैषम्य तत्र तदुत्तरमेव स्फुटीकृतं द्रष्टव्यम्।

(२) 'गवामयनेनादित्यानामयनं व्याख्यातम्। सर्वे त्वभिप्लवास्त्रिवृत्तपञ्चदशाः'—इत्यादि आश्व०श्रौ० १२.१.१-७। तथा च सर्वेऽभिप्लवाः पर्यायतस्त्रिवृत्पञ्चशस्तोमकृता एव तत्र भवन्तीति प्रधानं वैषम्यं द्योतितम्।

षडहो नास्तीति[१] वैषम्यम्॥

अयनद्वयगतमभिप्लवषडहं पृष्ठ्यषडहं च दर्शयति—

सा यथा स्रुतिरञ्जसायन्येवमभिप्लवः षळहः स्वर्गस्य लोकस्याथ यथा महापथः पर्याण एवं पृष्ठ्यः षळहः स्वर्गस्य लोकस्य; तद्यदुभाभ्यां यन्त्युभाभ्यां वै यन्न रिष्यत्युभयोः कामयोरुपाप्त्यै,- यश्चाभिप्लवे षळहे, यश्च पृष्ठ्ये ।।८।।

हिन्दी—(आदित्यों और अङ्गिरसों दोनों के अयन में अभिप्लव षडह और पृष्ठ्य षडह को दिखला रहे हैं—) **यथा** जिस प्रकार (लोक में) **अञ्जसायिनी स्रुतिः** (कण्टक-पत्थरों से रहित अत एव) सम्यक् रूप गमन का साधनभूत राजमार्ग होता है **एवम्** उसी प्रकार **स्वर्गस्य लोकस्य अभिप्लवः षडहः** स्वर्ग लोक जाने के लिए अभिप्लवषडह (सुगममार्ग रूप) है **अथ** और **यथामहापथः पर्याणः** जिस प्रकार (लोक में एक नगर से दूसरे नगर में) जाने के लिए महापथ होता है। **एवं स्वर्गस्य लोकस्य पृष्ठ्य षडहः** उसी प्रकार स्वर्गलोक जाने के लिए पृष्ठ्यषडह (महापथ रूप) है। **तद् यद् उभाभ्यां यन्ति** तो जो (अभिप्लव और पृष्ठ्य) दोनों से यजन करते हैं, वे **उभाभ्यामेव न रिष्यति** दोनों (मार्ग) से जाते हुए अरिष्ट को नहीं प्राप्त करते हैं। अतः **यः च अभिप्लवे षडहे** अभिप्लव नामक षडह में और **यः च पृष्ठ्ये** जो पृष्ठ्य में (कामना होती है) **उभयोः कामयोः उपात्यै** उन दोनों कामनाओं की प्राप्ति के लिए (दोनों षडह किये जाते हैं)।

सा० भा०—यथा लोकस्य प्रसिद्धा 'स्रुतिः' राजमार्गरूपा 'अञ्जसायनी' दुःखहेतूनां कण्टकपाषाणादीनामभावाद् अञ्जसा सम्यगयनस्य गमनस्य साधनभूता, एवमभिप्लवः षडहः स्वर्गस्य लोकस्य अञ्जसा प्राप्तिहेतुः[२]। अथ पृष्ठ्यषडहस्य दृष्टान्त उच्यते,—यथा लोके 'महापथः' प्रौढमार्गः नगरद्वयमध्यवर्ती 'पर्याणः' परितोऽयनस्य गमनस्य साधनभूतः, नगरसमीपेऽरण्यपर्वताद्यभावाद् यस्यां दिशि गन्तुमपेक्षा तत्र गन्तुं शक्यते, एवमयं पृष्ठ्यः षडहः स्वर्गस्य लोकस्य प्राप्तिहेतुः[३]। तथा सत्यनयोरुभयोः 'उभाभ्यां' षडहाभ्यां यन्तीति यदस्ति, तेन 'उभाभ्यां' पादद्वयस्थानीयाभ्यां 'यन्' गच्छन् पुरुषो 'न रिष्यति' न विनश्यति, योऽभिप्लवे कामोऽस्ति, यश्च पृष्ठ्यषडहे; तयोरुभयोः कामयोः प्राप्त्यै षडहद्वयं संपद्यते[४]॥

---

(१) 'आदित्यानामयनेनाङ्गिरसामयनं व्याख्यातम्। त्रिवृतस्त्वभिप्लवाः सर्वे'—इत्यादि आश्व०श्रौ० १२.२.१-६। तथा चात्र सर्व एवाभिप्लवास्त्रिवृदेकसाध्या इति प्रधानं वैषम्यम्।

(२) 'स्वर्ग लोकभ्यप्लवन्त, यदभ्यप्लवन्त तस्मादभिप्लवाः'—इति शत०ब्रा० १२.२.२.१०।

(३) स्वर्ग लोकमस्पृशंस्तस्मात् पृष्ठ्यः'—इति शत०ब्रा० १२.२.२.११।

(४) 'गावो वै सत्रमासत'—इत्याख्यायिका सामयजुषोरपि प्राय एवमेव ता०ब्रा० ४.१; तै०सं० ७.५.१। 'स्तुतयो ह्येताः सत्रस्य'—इत्यादि जै० सू० १.१.३२ शाबरभा०।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टादशाध्याये) तृतीयः खण्डः ।।३।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—इत्थं गवामयनमादित्यानामयनमङ्गिरसामयनं चैते संवत्सरसत्रविशेषा उक्ताः। तत्र सर्वत्र पूर्वोत्तरयोर्मासषट्कयोर्मध्यवर्ति यत्प्रधानमहरस्ति, तदेतत् विधत्ते—

(विषुवन्नामकस्याह्नो विधानम्)

एकविंशमेतदहरुपयन्ति विषुवन्तं मध्ये संवत्सरस्य ।।१।।

हिन्दी—(अब गवामयन, आदित्यों के अयन और अङ्गिरसों के अयन वाले संवत्सर सत्र विशेषों में सर्वत्र पूर्ववर्ती और परवर्ती षड्मासों में प्रधान अहः का विधान कर रहे हैं—) **संवत्सरस्य** संवत्सर सत्र (पहले षड्मास और बाद वाले षड्मास) के मध्य में **विषुवन्तम्** विषुवन्त नामक **एतद् एकविंशम् अहः** इस एकविंश दिन का **उपयन्ति** सम्पादन करते हैं।

सा० भा०—छन्दोगब्राह्मणे—'सप्तभ्यो हिङ्करोति'—इत्यादिना[१] विहितो योऽयमेकविंशः स्तोमः, तेनैव स्तोमेनास्य सर्वस्तोत्रप्रवृत्तोरिदमहः 'एकविंशम्' इत्युच्यते। तत्र विषुवन्नामकम्, संवत्सरसत्रस्य ये पूर्वे षण्मासाः, ये चोत्तरे, तयोर्मासषट्कयोरुभयतो वर्तमानयोर्मध्ये तदेतदहरनुष्ठेयम्। एतच्च नोभयोर्मासषट्कयोरन्तर्भवति। किंत्वतिरिक्तमेकम्। तथा च आश्वलायन आह—'अथ विषुवानेकविंशो न पूर्वस्य पक्षसो नोत्तरस्येति'[२]।।

तदेतदहः प्रशंसति—

(विषुवदह्नप्रशंसनम्)

एतेन वै देवा एकविंशेनादित्यं स्वर्गाय लोकायोदयच्छन् ।।२।।

हिन्दी—(इस दिन की प्रशंसा कर रहे हैं—) **देवाः** देवताओं **एतेन एकविंशेन** इस एकविंश के द्वारा **आदित्यम्** आदित्य को **स्वर्णाय लोकाय** स्वर्ग लोक के लिए **उदयच्छन्** ऊपर उठाया।

सा० भा०—पुरा देवाः 'एतेन' अह्ना स्वर्गलोकाख्यम् 'आदित्यमुदयच्छन्' इत

---

(१) ता०ब्रा० २.१४-१७ ख०। (२) आश्व०श्रौ० ११.७.७.८।

ऊर्ध्वं प्रापितवन्तः। तथा च शाखान्तरे पठ्यते—'एकविंश एष भवति। एतेन वै देवा एकविंशेनादित्यमित उत्तमं सुवर्गं लोकमारोहयन्'[१] इति॥

आदित्यस्य तेनाह्ना साम्यं दर्शयति—

स एष इत एकविंशः ॥३॥

हिन्दी—(आदित्य की उस दिन के साथ समानता को दिखला रहे हैं—) **सः एषः** वह यह (आदित्य) **इतः** इस (पृथिवी) से (आरम्भ करके) **एकविंशः** (बारह मास, पाँच ऋतुओं, तीन लोक और एक सूर्य) एकविंश है।

सा० भा०—योऽयमादित्योऽस्ति, स एष 'इतः' भूलोकादारभ्य गण्यमान एकविंशतिसंख्यापूरको भवति। तथा चान्यत्राम्नायते—'द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः'[२] इति। अथवाऽत्रैव विषुवतः पुरस्तात् पश्चाच्च वक्ष्यमाणमहर्दशकद्वयमपेक्ष्य 'विषुवान्' 'एकविंश' इत्युच्यते। अस्मिन् पक्षे इदं वाक्यमुत्तरशेषत्वेन योजनीयम्॥

इदानीमुभयतो दशकद्वयं विधत्ते—

(उभयतः दशकद्वयविधानम्)

तस्य दशावस्तादहानि दिवाकीर्त्यस्य भवन्ति; दश परस्तान्, मध्य एष एकविंश उभयतो विराजि प्रतिष्ठितः, उभयतो हि वा एष विराजि प्रतिष्ठितः; तस्मादेषोऽन्तरेमाँल्लोकान् यन् न व्यथते ॥४॥

हिन्दी—(अब दोनों ओर से दो दशकों का विधान कर रहे हैं—) **तस्य दिवाकीर्त्यस्य** उस दिवाकीर्त्य (विषुवत के दिन कहे जाने वाले मन्त्र) के **अवस्तात्** अधो भाग में **दश अहानि** दश दिन और **परस्ताद् दश** ऊर्ध्व भाग में दश दिन **भवन्ति** होते हैं। **मध्ये एकविंशः** दोनों (दशक) में मध्य में एकविंश (विषुवान्) होता है। इस प्रकार **उभयतः विराजि प्रतिष्ठितः** यह दोनों ओर से विराट् के मध्य में प्रतिष्ठित होता है; क्योंकि **एषः हि** यह **उभयतः विराजि वै प्रतिष्ठितः** दोनों ओर से विराट् के मध्य में है। **तस्मात्** इसी कारण **इमान् लोकान् अन्तः** इन लोकों के मध्य में **एषः** यह **यन्** गमन करता हुआ (आदित्य) **न व्यथते** व्यथित नहीं होता है।

सा० भा०—दिवैव कीर्तनीयं मन्त्रजातं यस्मिन् विषुवत्यहनि तदहः 'दिवाकीर्त्यम्'। तस्याह्नः 'अवस्तात्' अधोभागे दशाहानि भवन्ति। 'परस्तात्' ऊर्ध्वभागेऽपि दशाहानि भवन्ति। तयोर्दशकयोर्मध्य 'एष एकविंशः' विषुवान् वर्तते। 'तस्य' विषुवतः 'अधस्तात्'

(१) तै०ब्रा० १.२.४.१। 'एष एवैकविंशो च एष तपति'—इति च शत०ब्रा० १.३.५.११।
(२) तै०सं० ५.१.१०.३।

पूर्वपक्षे षष्ठे मासे 'स्वरसामानः' अहर्विशेषास्त्रयः, तेभ्यः पूर्वमभिजिदाख्यमेकाहः, पूर्वं पृष्ठ्यः षडह इति 'दशाहानि। विषुवदूर्ध्वं तु प्रत्यवरोहक्रमेण त्रयः स्वरसामानः, ततो विश्वजिदाख्यमेकाहः, तत ऊर्ध्वं पृष्ठ्यः षडह इति 'दशः' अहानि। एवमुभयोः पार्श्वयोरह्नां दशसंख्योपेतत्वात् विराट्त्वम्, एतस्यामुभयतोऽवस्थितायां 'विराजि' अयमेकविंशः प्रतिष्ठितः। यथोक्तगणनया विराजि प्रतिष्ठामेव 'हि' शब्दोपेतेन वाक्येन स्पष्टीकरोति।[१] 'तस्मात्' उभयतो विराड्द्वयेन रक्षितत्वात् 'एषः' आदित्यो विषुवदहःस्थानीयः। 'इमाँल्लोकानन्तरा' एषां लोकानां सर्वेषां मध्ये 'यन्' गच्छन्नपि 'न व्यथते' व्यथां न प्राप्नोति। विषुवानप्येकविंश आदित्योऽप्येकविंशः, तस्मादुभयोरेकत्वे सति विषुवतो यद्विराड्द्वयोपेतत्वम्' तदेवादित्यस्योभयतोविराट्त्वं भवति। आदित्यस्य व्यथाराहित्ये विषुवतो वैकल्यराहित्यं सिध्यति। अथवा विषुवतो यथा विराड्द्वयमुभयतो रक्षकम्, एवमादित्यस्याप्यधस्तादुपरिष्टाच्च वर्तमानं लोकद्वयम्। एतदेवाभिप्रेत्य शाखान्तरे श्रूयते—'तस्मादन्तरेमौ लोको यन् सर्वेषु सुवर्गेषु लोकेषु अभितपन्नेति'[२] इति॥

अथ विषुवत उभयतः समीपवर्तिनः स्वरसामाख्यानहर्विशेषान् प्रशंसति—

(स्वरसामाख्यहविर्विशेषप्रशंसनम्)

तस्य वै देवा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपातादबिभयुस्तं त्रिभिः स्वर्गैर्लोकैरवस्तात् प्रत्युत्तभ्नुवन् स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकास्तस्य पराचोऽतिपातादबिभयुस्तं त्रिभिः स्वर्गैर्लोकैः परस्तात् प्रत्यस्तभ्नुवन् स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकास्तत्त्रयोऽवस्तात् सप्तदशः भवन्ति, त्रयः परस्तान्मध्य एष एकविंश, उभयतः स्वरसामभिर्धृत, उभयतो हि वा एष स्वरसामभिर्धृतस्तस्मादेषोऽन्तरेमाँल्लोकान् यन्न व्यथते ।।५।।

हिन्दी—(अब विषुवत् के दोनों ओर समीपवर्ती स्वरसाम नामक अह-विशेषों की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तस्य आदित्यस्य** उस आदित्य के **स्वर्गात् लोकाद् अवपातात्** स्वर्ग लोक से गिरने के भय से **देवाः अबिभयुः** देवता लोग भयभीत हो गये। तब **त्रिभिस्वर्गैः लोकैः** तीन स्वर्ग लोकों द्वारा **तम्** उस (आदित्य) को **अवस्तात् प्रत्युत्तभ्नुवन्** नीचे से आधार बना दिया। **स्तोमाः वै त्रयः स्वर्गाः लोकाः** स्तोम ही तीनों स्वर्ग लोक हैं। **तस्य पराचः** उस (आदित्य) के ऊपर की ओर **अतिपातात्** गिरने से भय से **अबिभयुः** वे भयभीत हो गये। **तम्** उस (आदित्य) को **त्रिभिः स्वर्गैः लोकैः** तीन स्वर्ग लोकों से **परस्तात् प्रत्यस्तभ्नुवन्** ऊपर से आधार बना दिया। **स्तोमाः वै त्रयः स्वर्गा**

---

(१) 'विराजि हि वा एष उभयतः प्रतिष्ठितः'—इति तै०ब्रा० पाठः (१.२.४.१)।

(२) तै०ब्रा० १.२.४.१।

लोकाः स्तोम ही तीनों स्वर्गलोक है। इस प्रकार **त्रयः अवस्तात्** तीन अधोवर्ती अहः-विशेष और **त्रयः परस्तात्** तीन उपरिवर्ती अहः-विशेष **सप्तदशः भवन्ति** सप्तदश से युक्त होते हैं। **मध्ये एकविंशः** मध्य में एकविंश होता है जो **उभयतः** दोनों ओर से **स्वरसामभिः धृतः** स्वरसामों द्वारा धृत होता है; क्योंकि **एषः हि** यह (आदित्य) **उभयतः स्वरसामभिः धृतः** दोनों ओर से अवस्थित स्वर (सामों द्वारा) धृत होता है। **तस्मात्** इसी कारण **एषः** यह आदित्य **इमान् लोकान् अन्तः** इन लोकों के मध्य में **यन्** गमन करता हुआ **न व्यथते** व्यथित नहीं होता।

सा० भा०—योऽयमादित्योऽस्ति, 'तस्य' आदित्यस्य स्वर्गलोकात् 'अवपातः' आधाराभावाद् अधःपतनम्, तस्माद्देवा 'अबिभयुः' आदित्योऽधः पतिष्यतीति भीताः सन्तः 'तम्' आदित्यम् 'अवस्तात्' मण्डलस्याधोभागे 'त्रिभिः स्वर्गैर्लोकैः' स्वर्गशब्दोपलक्षितैर्भूरादिभिः 'प्रत्युत्तभ्नुवन्' अधःपातप्रतिबन्धार्थमुत्तम्भनमाधाररूपमकुर्वन्। यथा गृहगतवंशादीनामधःपातनिवारणाय स्तम्भेनोत्तम्भनं कुर्वन्ति, तद्वदिति। वर्तमानस्यादित्यस्य यथा त्रयो लोका उत्तम्भकाः, तथैवादित्यस्थानीयस्य विषुवतोऽह्नः स्वर्गलोकसदृशास्त्रयः स्तोमा एवोत्तम्भकाः। सप्तदशस्तोमयुक्ताः स्वरसामानोऽहर्विशेषाः स्तोमशब्देनात्र विवक्षिताः। पुनरपि देवास्तस्यादित्यस्य 'पराचोऽतिपातात्' मण्डलात् पराभूतेषूर्ध्ववर्तिषु लोकेषु योऽयम् 'अतिपातः' दृष्टिगोचरं देशमुल्लङ्घ्य यत्र क्वापि दूरदेशगमनम्, तस्मादतिपाताद्भीताः सन्तः 'परस्तात्' आदित्यमण्डलस्योपरि त्रिभिर्जनतपःसत्यशब्दाभिधेयैः 'त्रिभिः स्वर्गैर्लोकैः' 'तम्' आदित्यं 'प्रत्यस्तभ्नुवन्'। यथा पूर्वत्राधःपतननिवृत्त्यर्थमुत्तम्भनं कृतम्, एवमुपरिष्टादतिपातनिवृत्त्यर्थं 'प्रतिस्तम्भनं' प्रतिबन्धकस्तम्भमकुर्वन्। आदित्यस्थानीयस्य तु विषुवतोऽह्न उत्तरपक्षगताः स्तोमशब्दोपलक्षिताः स्वरसामाख्यास्त्रयोऽहर्विशेषा एव प्रतिस्तम्भकाः। 'तत्' तथा सति ये विषुवतोऽह्नः 'अवस्तात्' अधोवर्तिनस्त्रयोऽहर्विशेषास्ते सप्तदशस्तोमयुक्ताः कार्याः। ये च 'परस्तात्' उपरिवर्तिनस्त्रयोऽहर्विशेषास्तेऽपि सप्तदशस्तोमयुक्ताः कार्याः। एवं च सति मध्येऽवस्थित एकविंशाख्योऽहर्विशेषः 'उभयतः' अधस्तादुपरिष्टाच्च स्वरसामनामकैस्त्रिभिस्त्रिभिरहोभिर्धृतः। अयमेवार्थः—शाखान्तरप्रसिद्धद्योतकेन 'हि' शब्दयुक्तेन वाक्येन पुनर्दृढीकृतः। यस्मात् विषुवदह स्थानीय आदित्यः, स्वरसामस्थानीयैरुभयतोऽवस्थितैस्त्रिभिस्त्रिभिर्लोकैर्धृतः, 'तस्मात्' कारणादप्यादित्यः 'अन्तरा' मध्येऽवस्थित इमाँल्लोकान् सर्वान् सर्वदा 'यन्' गच्छन्नपि 'न व्यथते' व्यथां न प्राप्नोति। अत्रार्थवादेन पूर्वेषूत्तरेषु च त्रिष्वहसु सप्तदशस्तोमविधिरुन्नेयः। तथा च शाखान्तरे श्रूयते—'उक्थ्या एव सप्तदशाः परःसामानः कार्याः'[१] इति। स्वरसामाख्यानामह्नामेव परःसामेति नामान्तरम्॥

---

(१) तै०सं० १.२.२.१।

अथ विहितानेतान् पूर्वोत्तरान् सप्तदशस्तोमान् प्रकारान्तरेण पुनः प्रशंसति—

तस्य वै देवा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपातादबिभयुस्तं परमैः स्वर्गैर्लोकैरवस्तात् प्रत्युत्तभ्नुवन् स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकास्तस्य पराचोऽतिपातादबिभयुस्तं परमैः स्वर्गैर्लोकैः परस्तात् प्रत्यस्तभ्नुवन् स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकास्तत्त्रयोऽवस्तात् सप्तदशा भवन्ति त्रयः परस्तात् ते द्वौ द्वौ संपद्य त्रयश्चतुस्त्रिंशा[1] भवन्ति, चतुस्त्रिंशो वै स्तोमानामुत्तमस्तेषु वा एष एतदध्याहितस्तपति तेषु हि वा एष एतदध्याहितस्तपति ।।६।।

हिन्दी—(इन विहित पूर्वोक्त सप्तदश स्तोमों की प्रकारान्तर से पुनः प्रशंसा कर रहे हैं—) **तस्य आदित्यस्य** उस अदित्य के **स्वर्गात् लोकाद् अवपातात्** स्वर्ग लोक से गिरने के भय से **देवाः अविभयुः** देवता भयभीत हो गये। **तम्** उस (आदित्य) को **परमैः स्वर्गलोकैः** परम स्वर्गलोक द्वारा **अधस्तात्** नीचे से **प्रत्युत्तभ्नुवन्** आधार बना दिया। **स्तोमाः वै परमाः स्वर्गा लोकाः** स्तोम ही परम स्वर्गलोक हैं। **तस्य पराचः अतिपाताद् अबिभयुः** उस (अदित्य) के ऊपर की ओर पतन के भय से वे भयभीत हो गये। **तम्** उस (आदित्य) को **परस्तात्** ऊपर से **परमैः स्वर्गैर्लोकैः** परम स्वर्गलोक द्वारा **प्रत्यस्तभ्नुवन्** आधार बना दिया। **स्तोमाः वै परमाः स्वर्गाः लोकाः** स्तोम ही परम स्वर्गलोक हैं। इस प्रकार **त्रयः अवस्तात्** तीन अधोवर्ती अहःविशेष और **त्रयः परस्तात्** तीन उपरिवर्ती अहःविशेष **सप्तदशः भवन्ति** सप्तदश से युक्त होते हैं। **ते द्वौ द्वौ सम्पद्य** वे (दोनों ओर विद्यमान) दो मिलकर **त्रयश्चतुस्त्रिंशा भवन्ति** तीन चतुस्त्रिंश (स्तोम) होते हैं। **स्तोमानाम्** स्तोमों में **चतुस्त्रिंशः वै** चतुस्त्रिंश (स्तोम) ही **उत्तमः** उत्तम होता है। **तेषु** उन (स्तोमों) में **अध्याहितः** अवस्थित हुआ **एषः** यह (दृश्यमान सूर्य) **तपति** तपता है; क्योंकि **एषः** यह (दृश्यमान सूर्य) **तेषु अध्याहितः** उन (स्तोमों) में अवस्थित हुआ तपता है।

सा० भा०—तेषु हि लोकेषु वर्तमानो य आदित्यस्तस्य स्वर्गलोकादवपातः स्यादिति देवा भीताः सन्तः, तमित्यादि पूर्ववत्। स्तोमानामादित्यस्य स्तम्भनत्वरूपं परमत्वं; तेनोभयतो वर्तमानाः षट्संख्याकाः सप्तदशस्तोमकाः द्वौ द्वौ एकीभूय त्रिसंख्याकाश्चतुस्त्रिंशस्तोमा भवन्ति। त्रिवृत् पञ्चदश-सप्तदशै-कविंश-त्रिनवत्रयस्त्रिंशाख्याश्छन्दोगैराम्नाता ये स्तोमाः सन्ति,[2] तेषामयं चतुस्त्रिंशस्तोम उत्तमः पूर्वापेक्षया संख्याधिक्यात्। 'तेषु' स्तोमस्थानीये-

---

(१) 'सम्पद्यत्त्रय०'—इत्येव पाठः। तदत्र तकारस्य द्विवर्चनम् 'अनचि च'—इति (पा०सू० ८.४.४७), प्रातिशाख्यसम्मतं वेति।

(२) ता०ब्रा० २.१-७ खण्डेषु क्रमात् द्रष्टव्याः।

षूभयतः स्थितेषु स्वर्गेषु 'एषः' आदित्यो 'अध्याहितः' जगत्स्रष्टा स्थापितः सन् 'एतत्' प्रत्यक्षं यथा भवति तथा 'तपति' संतापं करोति 'तेषु हि'—इति वाक्येन तदेव दृढीक्रियते॥

विषुवत एवं प्रशंसामभिप्रेत्य तद्रूपत्वेनोपचरितमादित्यं पुनः प्रशंसति—

स वा एष उत्तरोऽस्मात् सर्वस्माद् भूताद् भविष्यतः-सर्वमेवेदमति-रोचते यदिदं किंचोत्तरो भवति ।।७।।

हिन्दी—अस्मात् सर्वस्मात् भूताद् भविष्यतः इस सभी भूत और भविष्य वालों से **सः एषः वै** वह यह (दृश्यमान सूर्य) ही **उत्तरः** उत्कृष्ट है। **यद् इदं किञ्च** (इस जगत् में) यह जो भी **उत्तरः भवति** उससे उत्कृष्ट होता है और कुछ भी है **सर्वमेव इदम् अति** इस सभी का अतिक्रमण करके **रोचते** आदित्य देदीप्यमान होता है।

सा० भा०—योऽयमादित्योऽभिहितः, स एवैष भूताद्भविष्यतश्च 'सर्वस्मात्' अस्माज्जगतः, 'उत्तरः' उत्कृष्टः—'यदिदं किञ्च' जगदस्ति, इदं सर्वमेव, 'अति' क्रम्य 'रोचते' दीप्यते; तद्वदयं विषुवानप्यन्येभ्यः सर्वेभ्योऽहोभ्य 'उत्तरः' उत्कृष्टो भवति॥

वेदनं प्रशंसति—

यस्मादुत्तरो बुभूषति, तस्मादुत्तरो भवति य एवं वेद ।।८।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **यस्मात्** जिस कारण से **उत्तरः बुभूषति** उत्कृष्ट होकर शोभायमान होता है **तस्मात्** उसी से **उत्तरः भवति** उत्कृष्ट होता है।

सा० भा०—एतद् वेदनादुत्कृष्टो भूत्वा प्रतिष्ठयाऽधिकं शोभते, तस्मादुत्कृष्टतरो भवति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टादशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—स्वरसामाख्येष्वहस्सु सप्तदशस्तोमाः पूर्वं विहिताः; इदानीं तान्यहानि विधत्ते—

(स्वरसामाख्यानामह्नां विधानम्)

साम्न उपयन्तीमे वै लोकाः स्वरसामान इमान् वै लोकान्

स्वरसामभिरस्पृण्वंस्तत् स्वरसाम्नां स्वरसामत्वम्; तद्यत् स्वरसाम्न उपयन्त्येष्वेवैनं तल्लोकेष्वाभजन्ति ।।१।।

हिन्दी—(स्वरसाम नामक दिनों में सप्तदशस्तोमों का विधान करके अब उन दिनों का विधान कर रहे हैं—) **स्वरसाम्नः उपयन्ति** स्वरसाम से अनुष्ठान करते हैं। **इमे वै लोकाः स्वरसामानः** ये लोक ही स्वरसाम है। **इमान् वै लोकान्** इन्हीं लोकों को **स्वरसामभिः** स्वरसामों द्वारा **अस्पृण्वन्** प्रसन्न किया। **तत्** यही **स्वरसाम्नां स्वरसामत्वम्** स्वरसामों का स्वरसाम नाम वाला होना है। **तद् यत्** तो जो **स्वरसाम्नः उपयन्ति** स्वरसामों का सम्पादन करते हैं **तत्** उस (सम्पादन) से **एषु एव लोकेषु** इन्हीं लोकों में **एनम्** इसको **आभजन्ति** भोग का भागी बनाते हैं।

सा० भा०—स्वरसामाख्यान् षट्संख्याकान् अहर्विशेषाननुतिष्ठेयुः। आदित्यस्याधस्तादुपरिष्टाच्च वर्तमाना इम एव लोकाः स्वरसामरूपाः तस्मादनुष्ठितैरेतैः स्वरसामभिरिमाँल्लोकान् 'अस्पृण्वन्' प्रीतानकुर्वन्। तस्मादेतेषामह्नां स्वरोपेतसामवत् प्रीतिहेतुत्वात् स्वरसामेति नाम संपन्नम्। एतेषामनुष्ठातारो लोकेषु सर्वेषु 'आभजन्ति' भोगभाजो भवन्ति।।

अथ स्वरसामभ्यः सर्वेभ्योऽधस्ताद् उपरिष्टाच्च द्वे अहनी विधत्ते—

(अभिजिदाख्यस्य विश्वजिदाख्यस्य च अह्नो विधानम्)

तेषां वै देवाः सप्तदशानां प्रव्लयादबिभयुः समा इव वै स्तोमा अविगूह्ळा इवेमे ह न प्रव्लियेरन्निति तान् सर्वैः स्तोमैरवस्तात् पर्यार्षन् सर्वैः पृष्ठैः परस्तात् तद्यदभिजित् सर्वस्तोमोऽवस्ताद् भवति विश्वजित् सर्वपृष्ठः परस्तात्, तत्सप्तदशानुभयतः पर्युषन्ति, धृत्या अप्रव्लयाय ।।२।।

हिन्दी—(अब सभी स्वरसामों से अधोवर्ती और उपरिवर्ती दो दिनों का विधान कर रहे हैं—) **तेषां सप्तदशानाम्** उन सप्तदश स्तोमों (से युक्त स्वरसामों) के **प्रव्लयात्** रूप से विशरण के भय से **देवाः अबिभयुः** देवता भयभीत हो गये कि **समाः इव वै स्तोमाः** (छः दिनों में प्रयोग किये जाने वाले ये सप्तदश) स्तोम समान होने के कारण और **अविगूढाः** (अन्य स्तोमों द्वारा) सुरक्षित न किये जाने के कारण **न प्रव्लियेरन्** कहीं विशृत (प्रच्युत) न हो जाँय **तान्** उन (सप्तदश स्तोमों) को **सर्वैः स्तोमैः** सभी स्तोमों द्वारा **अवस्तात्** नीचे से और **सर्वैः पृष्ठैः** सभी पृष्ठों द्वारा **परस्तात्** ऊपर से **पर्यार्षन्** (उनकी रक्षा के लिए) सभी ओर से आवेष्ठित कर दिया। **तद् यत्** तो जो **अवस्तात्** (स्वरसामों के) अधोभाग से **सर्वस्तोमः अभिजित्** सभी स्तोमों से युक्त अभिजित् और **परस्तात्** ऊपरवर्ती भाग में **सर्वपृष्ठः विश्वजित्** सभी पृष्ठों से युक्त अभिजित् **भवन्ति** होता है, **तत्** वह (अभिजित् और विश्वजित्) **उभयतः सप्तदशान्** दोनों ओर से सप्तदशों

को **धृत्यै** दृढ़ता के लिए और **अप्रव्लयाय** प्रच्युत न होने के लिए **पर्यूषन्ति** सुरक्षा प्रदान करते हैं।

सा० भा०—ये स्वरसामानः सप्तदशस्तोमयुक्ताः 'तेषां' 'प्रव्लयात्' प्रकर्षेण विशरणाद् देवा अबिभयुः। 'व्ली विशरणे' इति धातोरिदं रूपम्। विशरणशङ्का कथमिति, तदुच्यते—षट्स्वहस्सु प्रयोक्तव्या एते सप्तदशस्तोमाः 'समा इव वै' सदृश एव; तस्मात् 'अविगूह्ळा इव' गूहस्य गोपनस्याभावाच्छिथिला एव,–एकबन्धत्वे सति नूतनत्वचमत्काराभावादनादरेण विशीर्णा भवन्ति। तस्मादिमे स्तोमाः 'न प्रव्लियेरन्' प्रकर्षेण विशीर्णा मा भुवन्निति विचार्य 'तान्' सप्तदशस्तोमान् 'अवस्तात्' अधोभागे सर्वैः स्तोमैस्त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंशत्रिनवत्रयस्त्रिंशाख्यैः 'पर्यार्षन्' परितो गताः, रक्षणाय परितो वेष्टनं कृतवन्त इत्यर्थः। तथा 'परस्तात्' सप्तदशस्तोमानामुनरिभागे 'सर्वैः पृष्ठेः' रथंतर बृहद्-वैरूप-वैराज-शाक्वर-रैवतसामाख्यैः पृष्ठस्तोत्रैः 'पर्यार्षन्'। तस्मात् स्वरसाम्नाम् 'अधस्तात्' पूर्वस्मिन् दिवसे सर्वस्तोमयुक्तम् 'अभिजिद्' आख्यमहरनुष्ठेयम्। तथा तेषामुपरिष्टात् सर्वपृष्ठस्तोत्रयुक्तं 'विश्वजिद्' आख्यमहरनुष्ठेयम्। यदेतद् द्विविधमनुष्ठानं तेन सप्तदशस्तोमानुभयतः 'पर्यूषन्ति' परिरक्षन्ति तच्च रक्षणं 'धृत्यै' दार्ढ्याय 'अप्रव्लयाय' शैथिल्याभावाय संपद्यते॥

अथ विषुवत्यहनि पञ्च सामानि विधत्ते—

(विषुवत्यहनि सामपञ्चकविधानम्)

तस्य वै देवा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपातादबिभयुस्तं पञ्चभी रश्मिभिरुदवयन्, रश्मयो वै दिवाकीर्त्यानि, महादिवाकीर्त्यं पृष्ठं भवति, विकर्णं ब्रह्मसाम भासमग्निष्टोमसामोभे बृहद्रथंतरं पवमानयोर्भवतस्तदादित्यं पञ्चभी रश्मिभिरुद्वयन्ति धृत्या अनवपाताय ।। ३ ।।

हिन्दी—(अब विषुवत दिन में पाँच सामों को विधान कर रहे हैं—) **तस्य आदित्यस्य** उस आदित्य के **स्वर्गात् लोकाद् अवपातात्** स्वर्गलोक से गिरने के भय से **देवाः अबिभयुः** देवता लोग भयभीत हो गये। तब **तम्** उस (आदित्य) को **पञ्चभिः रश्मिभिः** पाँच रश्मियों से **उदवयन्** बाँध दिया। **रश्मयः वै दिवाकीर्त्यानि** रश्मियाँ दिवाकीर्त्य साम हैं। **महादिवाकीर्त्यं पृष्ठं भवति** महादिवाकीर्त्य पृष्ठ होता है, **विकर्णं ब्रह्मसाम** ब्राह्मणच्छंसी का साम विकर्ण **भासम् अग्निष्टोमसाम** भास नामक अग्निष्टोम का साम होता है। **पवमानयोः बृहद्रथन्तरे भवतः** दोनों बृहद् और रथन्तर साम उन (माध्यन्दिन और आर्भव) पवमानों में होते हैं। **आदित्यम्** आदित्य को **पञ्चभिः रश्मिभिः** पाँच रश्मियों से **धृत्यै** दृढ़ता के लिए और **अनवपाताय** अविशरण के लिए **उद्वयन्ति** बाँध देते हैं।

स० भा०—देवाः पुनरपि 'तस्य' आदित्यस्य स्वर्गलोकादधःपातमाशङ्क्य तस्माद्

भीताः। यद्यपि पृथिव्यादिलोकत्रयमुत्तम्भकमुक्तं, तथाऽप्युपरि रज्जुभिरिव दृढबन्धनस्याभावादिति ततश्चलने सति पार्श्वयोः पतनमाशङ्क्यते तन्मा भूदिति देवाः तमादित्यं 'पञ्चमी रश्मिभिः' प्रग्रहैः 'उदवयन्' ऊर्ध्वमुत्कृष्य वयनं कृतवन्तः, दृढं बद्धवन्त इत्यर्थः। ये बन्धनहेतवो रश्मयः, तत्स्थानीयानि अस्मिन् विषुवति 'दिवाकीर्त्यानि दिवैव पठनीयानि पञ्च सामानि तेषु मध्ये महादिवाकीर्त्यनामकमेकं साम। तच्च 'विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मधु' इत्यस्यामृच्युत्पन्नम्[१]। तत्सामयुक्तं पृष्ठस्तोत्रं कर्तव्यम्। तथा विकर्णाख्यमेकं साम, तच्च 'पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः' इत्यस्यामृच्युत्पन्नम्[२]। तदेतद् ब्रह्मसाम कर्तव्यम्। ब्राह्मणाच्छंसिनमभिलक्ष्य गीयमानं साम 'ब्राह्मसाम'; तथा भासाख्यामपरं साम। तदपि 'पृक्षस्य' इत्यस्यामेवोत्पन्नम्[३]। तच्चाग्निष्टोमसाम कर्तव्यम्। येन साम्नाऽग्निष्टोमसंस्था समाप्यते, 'तत्' 'अग्निष्टोमसाम'। बृहद्रथंतरे प्रसिद्धे भवतः। माध्यंदिनपवमानार्भवपवमानयोः कर्तव्यत्वात्।[४] पञ्चसामप्रयोगेण आदित्यं पञ्चभिः सामरज्जुभिरूर्ध्वं बाध्नन्ति। तच्चादित्यस्य धारणाय भवति। तेन धारणेनाधपातो न भवति।।

अथ प्रातरनुवाकस्य चोदकप्राप्तकालं बाधितुं कालान्तरं विधत्ते—

(प्रातरनुवाकस्य चोदकप्राप्तकालान्तरविधानम्)

उदित आदित्ये प्रातरनुवाकमनुब्रूयात्, सर्वं ह्येवैतदहर्दिवाकीर्त्यं भवति ।।४।।

हिन्दी—उदिते आदित्ये सूर्य के उदित होने पर **प्रातरनुवाकम् अनुब्रूयात्** प्रातरनुवाक का वाचन करना चाहिए क्योंकि **सर्वमेव हि एतत् अहः** यह सभी अहः **दिवाकीर्त्यं भवति** दिवाकीर्त्य (दिन में क्रियमाण) होता है।

सा० भा०—प्रकृतावादित्योदयात् प्रागेव प्रातरनुवाकः पठ्यते।[५] अत्र तु सर्वस्याह्नो

---

(१) ऋ० १०.१७०.१। आर०आ० ५.२; आर०गा० ६.१.१५ महादिवाकीर्त्य (योनिसाम); उ०आ० ६.३.५.१-३ तृचे ऊह्य०गा० २.१.१२ महादिवाकीर्त्यम् (स्तोत्रम्)।

(२) ऋ० ६.८.१; 'पृक्षस्य'—इत्यस्याम् (आर०आ० २.८) ऋचि विकर्णं नावगम्यते, अपि तु 'विभ्राड् बृहत्'—इत्यस्यामेव (आर०आ० ५.२ ऋचि योनिगानमुत्पन्नं आर०गा० ६.१.७ श्रूयते। 'इन्द्र क्रतुं नः'—इत्यत्र (उ०आ० ६.३.६.१,२) प्रगाथे गीतं (ऊह्य० २.१.१७) स्तोत्रमेवेह विहितमिति च गम्यते; ताण्ड्यभाष्युदर्शनादितः (ता०ब्रा० ४.६.१५ सा०भा०)।

(३) आर०आ० ३.८ ऋचि आर०गा० ६.१.८ उ०आ० नास्ति, तस्माद् इदं योनिसामैव स्तोत्रम्। एतदेव दशस्तोममित्युच्यते।

(४) 'दिवाकीर्त्यसामा भवति' इत्यादि (ता०ब्रा० ४.६.१२-१६)।

(५) 'महति रात्र्यामनूच्यः पुरा शकुनिवादात्'—ऐ०ब्रा० ७.५, पृ० २६७; द्र० आश्व० श्रौ० ८.६.२।

कीर्त्यत्वसिद्ध्यर्थमुदयादूर्ध्वमनुब्रूयात्।।

सवनीयपशौ कंचिद् विशेषं विधत्ते—

(सवनीयपशौ कश्चिद्विशेषविधानम्)

सौर्यं पशुमन्यङ्गश्वेतं सवनीयस्योपालम्भ्यमालभेरन् सूर्यदेवत्यं ह्येतदहः ।।५।।

हिन्दी—(सवनीय पशु के विषय में कुछ विशेष विधान कर रहे हैं—) **सवनीयस्य उपालम्भ्यम्** सवनीय स्थान में लाये गये **अन्यङ्गश्वेतम्** अन्यवर्ण वाले चिह्न से रहित और श्वेत वर्ण वाले **सौर्यं पशुम्** सूर्य-सम्बन्धी पशु का **आलभेरन्** आलभन करना चाहिए क्योकि **एतद् अहः** यह दिन **सूर्यदेवत्यम्** सूर्य देवता से सम्बन्धित होता है।

सा० भा०—सूर्यो देवता यस्य पशोः, सोऽयं 'सौर्यः'; 'न्याङ्गं' वर्णान्तरेण संपादितं चिह्नम्, तन्नास्ति यत्र सः 'अन्यङ्गः', तादृशश्चासौ श्वेतश्च सोऽयम् 'अन्यङ्गश्वेतः' वर्णान्तरेणामिश्रितः, सर्वश्वेत इत्यर्थः[१]। तादृशः पशुरत्र सवनीयस्थान उपालम्भ्यः[२], अतस्तमालभेरन्। यस्मादेतदहः सूर्यदेवत्यम्, तस्माद्युक्तः सूर्यदेवत्यः पशुः।।

सामिधेनीषु विशेषं विधत्ते—

(सामिधेनीविषये विशेषविधानम्)

एकविंशति सामिधेनीरनुब्रूयात् प्रत्यक्षाद्ध्येतदहरेकविंशम् ।।६।।

हिन्दी—(सामिधेनियों के विषय में विशेष विधान कर रहे हैं—) **एकविंशति सामिधेनी अनुब्रूयात्** इक्कीस सामिधेनियों का अनुवाचन करना चाहिए; क्योंकि **एतद् अहः एकविंशम्** यह (विषुवत् नामक) अहः एकविंश स्तोम से युक्त होने कारण) **प्रत्यक्षाद् एकविंशः** प्रत्यक्षरूप से एकविंश है।

सा० भा०—'एतद्' विषुवन्नामकमहरेकविंशस्तोमयुक्तत्वात् 'प्रत्यक्षाद्धि' साक्षादेव मुख्यमेवैकविशं तस्मात् सामिधेनीनामेकविंशतिसंख्या युक्ता। अत्र चोदकप्राप्ताः पञ्चदश, धाय्याः षट् संख्याका इत्येकविंशतिः। तथा च आश्वलायन आह—'विषुवान् दिवाकीर्त्यः, उदिते प्रातरनुवाकः, 'पृथुपाजा अमर्त्य' इति षड् धाय्याः सामिधेनीनां, सौर्यः सवनीयस्योपालम्भ्यः'[३] इति।।

---

(१) (i) 'जातवेदोन्यङ्गं' । 'मैत्रावरुणो न्यङ्गः' इति, 'एष वै सोमस्य न्यङ्गो यदरुणपुष्पाणि फाल्गुनानि' इति शत०ब्रा० १.८.१.१७, .४.५.१०.२। (ii) 'न्यङ्गश्चिह्नमन्यवर्णः श्वेतो यस्य न विद्यते। तं सर्वश्वेतमित्यर्थ 'आङो योनेति च नुं लभेः' इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) 'उपात् प्रशंसायाम्'—इति पा०सू० ७.१.६६; नुमि रूपम्।

(३) आश्व०श्रौ० ८.६.१-४।

निष्केवलल्यशस्त्रे निविद्धानं विधत्ते—

(निष्केवल्यशस्त्रे विविद्धानविधानम्)

एकपञ्चाशतं द्विपञ्चाशतं वा शस्त्वा मध्ये निविदं दधाति; तावतीरुत्तराः शंसति; शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्यः शतेन्द्रिय आयुष्येवैनं तद्वीर्यं इन्द्रिये दधाति ।।७।।

हिन्दी—(निष्केवल्यशस्त्र में निविद्धान का विधान कर रहे हैं—) **एकपञ्चाशतं द्विपञ्चाशतं वा शस्त्वा** इक्यावन अथवा बावन (ऋचाओं) का शंसन करके **मध्ये** ('इन्द्र नु वीर्याणि' इत्यादि ऋचा के) मध्य में **निविदं दधाति** निविद को रखता है। **तावती उत्तराः शंसति** (उस निविद के) बाद म उतनी ही ऋचाओं का शंसन करता है। **शतायुः वै पुरुषः** पुरुष सौ वर्षों की आयु वाला है और **शतवीर्यः शतेन्द्रियः** शतवीर्य वाला तथा शतेन्द्रिय है। इस प्रकार **तत्** इस (शंसन) से (होता) **एनम्** इस (यजन करने वाले) को **आयुषि वीर्ये इन्द्रिये** आयु, वीर्य और इन्द्रिय में **दधाति** प्रतिष्ठापित करता है।

सा० भा०—तस्मिन् शस्त्रे स्तोत्रियानुरूपयोस्तृचयोः षड् ऋचः[१] 'यद्वावान'—इत्येका[२] धाय्या बृहद्रथंतरयोर्योनी द्वे,[३] उत्तमसामप्रगाथस्य प्रग्रथनेन तिस्रः,[४] 'नृणामु त्वा नृतमम्'[५]—इति तिस्रः, 'यस्तिग्मशृङ्गः'[६] इत्येकादशर्चः, 'अभित्यम्'[७] इति पञ्चदशर्चः, इत्येवमेकचत्वारिंशत्। तत्र प्रथमया त्रिरभ्यस्तया सह त्रिचत्वारिंशत्। 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि'[८]—इत्यस्मिन् पञ्चदशर्चे सूक्तेऽष्टौ नव वा शंसनीयाः। तत्राष्टत्वपक्षे—एकपञ्चाशद् भवन्ति। नवपक्षे द्विपञ्चाशत्। तच्छंसनादूर्ध्वम् 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि'—इत्यस्य सूक्तस्य मध्य ऐन्द्रीं 'निविदम्' दध्यात्[९]। तत ऊर्ध्वं पुनरपि 'तावतीः' ऋचः शंसेत्। तथा सति शतसंख्यासंपत्त्या पुरुषायुःसाम्यं भवति। इन्द्रियाणि च शतसंख्यासु नाडीषु संचाराच्छतं भवन्ति। तदीयव्यापाराश्च तथा शतसंख्याकाः। एवं सति यजमानं सम्पूर्ण आयुषि वीर्य इन्द्रियेष्ववस्थापयति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टादशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

---

(१) विभ्राड् बृहत् पिबतु, नमो मित्रस्य—ऋ० १०.१७०.१-३७.१-३=६।
(२) ऋ० १०.७४.६।
(३) बृहद् रथन्तरयोर्योनी—ऋ० ६.४६.१, ७.३२.२२=छ०आ० ३.१.५.२;५.१।
(४) इन्दुमिद् देवतातये—ऋ० ८.३.५, ६= उ०आ० ७.३.८.१, २=३।
(५) ऋ० ३.५१.४। (६) ऋ० ७.१९.१-११।
(७) ऋ० १.५१.१-१५। (८) ऋ० १.३२.१-१५।
(९) द्र० आश्व०श्रौ० ८.६.११-१३।

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के पञ्चम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा० भा०—अथ कस्याश्चिदृचः शंसनं विधत्ते—

(दूरोहणनामकसूक्तशंसनविधानम्)

दूरोहणं रोहति; स्वर्गो वै लोको दूरोहणम् ॥१॥

हिन्दी—(अब किसी ऋचा के शंसन का विधान कर रहे हैं—) **दूरोहणं रोहति** आदित्य मण्डल में आरोहण के साधनभूत अथवा उच्चारण में क्लिष्ट मन्त्र का शंसन करता है; क्योंकि **स्वर्गः लोकः दूरोहरणम्** स्वर्ग लोक कठिन चढ़ाई वाला है।

सा० भा०—दुःशकं रोहणं यस्मिन्नादित्यमण्डले तद् 'दूरोहणं' तत्रारोहणस्य साधनत्वान्मन्त्रस्वरूपमपि 'दूरोहणम्'—इत्युच्यते। तद् 'रोहति' आरोहणार्थं शंसेदित्यर्थः। यद्वा, मन्त्रस्य दुःशक उच्चारणविशेषो 'दूरोहणं' स च विशेषः सूत्रेऽवगन्तव्यः।[१] तं 'रोहति' विशिष्टमुच्चारणं कुर्यादित्यर्थः। योऽयं स्वर्गलोकः, तस्यारोहणं दुःशकमिति दूरो-हणत्वम्। तादृश स्वर्गं लोकं प्रापयतीत्यर्थः॥

वेदनं प्रशंसति—

स्वर्गमेवं तल्लोकं रोहति य एवं वेद ॥२॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **स्वर्गमेव लोकं रोहति** वह स्वर्गलोक को चढ़ जाता (प्राप्त करता) है।

विहितमर्थं प्रशंसति—

यदेव दूरोहणा३म् असौ वै दूरोहो योऽसौ तपति; कश्चिद्वा अत्र गच्छति, स यद् दूरोहणं रोहत्येतमेव तद् रोहति ॥३॥

हिन्दी—(उपर्युक्त अर्थ की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यद् एव दूरोहणम्** जो दुरोहरण है वह **यः असौ तपति** जो यह (आदित्य) तपता है **असौ वै दुरोहः** वही दुरोह है। **यत् कश्चिद्वै अत्र गच्छति** कोई ही वहाँ (आदित्य लोक में) जाता है। **सः दूरोहणं रोहति** वह दूरोहण का आरोहण करता है, **तत्** उस (शंसन) से **एतमेव रोहति** इस (आदित्य लोक) को ही प्राप्त करता है।

---

(१) द्र० आश्व०श्रौ० ८.२.१३-१५।

सा० भा०—दूरोहणमिति यदुक्तं तत्किमिति शेषः। प्रश्नार्था प्लुतिः। असावित्यत्रोत्तरमुच्यते। 'योऽसौ' आदित्यस्तपति, असावेव 'दूरोहः' दुःशकारोहणस्थानावस्थितत्वात्। अथवा यः 'कश्चिद्' यजमानः सम्यगनुष्ठायात्रादित्यलोके गच्छति, सोऽपि 'दूरोहः' दुःशकस्थानारोहणत्वात्। एवं सति 'यद्' यदि 'दूरोहणं'[१] मन्त्रं रोहति शंसेत्, 'तत्' तेन शंसनेन 'एतमेव' आदित्यं लोकं 'रोहति' प्राप्नोति।

मन्त्रविशेषं विधत्ते—

(दुरोहणे हंसवतीनामकर्क्शंसनविधानम्)

हंसवत्या रोहति ।।४।।

हिन्दी—(मन्त्र विशेष का विधान कर रहे हैं—) **हंसवत्या रोहति** ('हंसः शुचिषत्'–इस) हंस शब्द से युक्त (ऋचा) का आरोहण (शंसन) करना चाहिए।

सा० भा०—हंसशब्दो यस्यामृच्यस्ति, सेयं 'हंसवती'[२] तया रोहेत्, तामुच्चारयेदित्यर्थः।।

तस्या ऋचः प्रथमपादे पूर्वभागमनूद्य व्याचष्टे—

'हंसः शुचिषद्' इत्येष वै शुचिषत् ।।५।।

हिन्दी—(उस ऋचा के प्रथम पाद के पूर्व भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'हंसः शुचिषत्** पवित्र स्थान में रहने वाला और सर्वदा गमनशील'—**इति एषः वै शुचिषद्** यहाँ यह (सूर्य) ही पवित्र-स्थान (लोक) में रहने वाला और सदा गमनशील है।

सा० भा०— हन्ति सर्वदा गच्छतीति 'हंसः'। शुचौ शुद्धे द्युलोके सीदति तिष्ठतीति 'शुचिषत्'। अस्मिन् भागे यः प्रतिपाद्यते, स 'एष वै' मण्डले दृश्यमान एव,—स च सर्वदा गतिमत्वाद्धंसो भवति, द्युलोकेऽवस्थानाच्छुचिषदपि भवति।।

उत्तरभागमनूद्य व्याचष्टे—

'वसुरन्तरिक्षसद्' इत्येष वै वसुरन्तरिक्षसत् ।।६।।

हिन्दी—(ऋचा के प्रथम पाद के उत्तर भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **वसुरन्तरिक्षसद्** वसु (सर्वदा विद्यमान रहने वाला) और अन्तरिक्षसद् (अन्तरिक्ष में रहने वाला है),—**इति एषः वसुः अन्तरिसद्** यहाँ यह (आदित्य ही सर्वात्मक होने के कारण) सर्वदा विद्यमान और अन्तरिक्ष में रहने वाला वायु है।

---

(१) 'दूरोहणं सप्तरूपं यत्तत्पूज्यमिति प्लुतः'—इति षड्गुरुशिष्यः।

(२) 'हंसः शुचिषद्'—ऋ० ४.४०.५। तै०सं० १.८.१५.२। शत०ब्रा० ६.५.३.१२। निरु० १३.४.१।

सा० भा०—वसति सर्वदेति 'वसुः' वायुः, न हि वायोरहनि रात्रौ वा कदाचिदस्तमयोऽस्ति; तादृशो वायुरन्तरिक्षे सीदति—इति 'अन्तरिक्षसत्'। आदित्यस्य परमात्मरूपत्वेन सर्वात्मकत्वाद् अन्तरिक्षसद् वायुरप्येष एवेत्युच्यते॥

द्वितीयपादस्य पूर्वभागमनूद्य व्याचष्टे—

'होता वेदिषद्' इत्येष वै होता वेदिषत् ॥७॥

हिन्दी—(द्वितीय पाद के पूर्वभाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'होता वेदिषद्** (याग की) वेदि पर रहने वाला होता'—**इति एषः वै होता वेदिषद्** यहाँ यह (आदित्य ही वेदिषद् होता है।

सा० भा०—'होता' होमस्य कर्ता; यागवेद्यां सीदतीति 'वेदिषत्'। आदित्यस्य तद्रूपत्वं पूर्ववत्॥

उत्तरभागमनूद्य व्याचष्टे—

'अतिथिर्दुरोणसद्' इत्येष वा अतिथिर्दुरोणसत् ॥८॥

हिन्दी—(द्वितीय पाद के उत्तरभाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **अतिथिर्दुरोणसद्** गृहों में निवास करने वाला अतिथि है—**इति एषः वै अतिथिः दुरोणसद्** यहाँ यह आदित्य ही दुरोणसद् अतिथि है।

सा० भा०—न विद्यते तिथिविशेषनियमो यात्रार्थे यस्य, सोऽयम् 'अतिथिः' सन् दुरोणेषु तत्तद् गृहेषु सीदति याचितुं प्रविशतीति 'दुरोणसत्'। आदित्यस्य तद्रूपत्वमपि द्रष्टव्यम्॥

तृतीयपादं चतुर्धा विभज्य प्रथमभागमनूद्य व्याचष्टे—

नृषदित्येष वै नृषत् ॥९॥

हिन्दी—(तृतीय पाद को चार भागों में विभाजित करके प्रथम भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'नृषद्** मनुष्यों में (दृष्टि रूप से) रहने वाला'—**इति एषः वै नृषद्** यहाँ यह (आदित्य) ही मनुष्यों में (दृष्टि रूप से) रहने वाला है।

सा० भा०—नृषु मनुष्येषु दृष्टिरूपेण सीदतीति 'नृषत्'। तथा च अरण्यकाण्डे वक्ष्यति—'आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्'[1] इति। तस्मादेष आदित्य एव नृषच्छब्दवाच्यः॥

द्वितीयभागमनूद्य व्याचष्टे—

'वरसद्' इत्येष वै वरसद्, वरं वा एतत् सद्मनां यस्मिन्नेष आसन्न-

---

(१) ऐ०आ० ४.२.४।

स्तपति ।।१०।।

हिन्दी—(तृतीय पाद के द्वितीय भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'वरसद् अर्थात् श्रेष्ठमण्डल में रहने-वाला'**—**इत्येषः वै वरसद्** यहाँ यह (आदित्य) ही श्रेष्ठमण्डल में रहने वाला है। **सद्मनाम् एतद् वरम्** यह मण्डलों के मध्य में श्रेष्ठ है **यस्मिन्** जिस मण्डल में **एषः** यह (आदित्य) **आसन् तपति** रहता हुआ तपता है।

सा०भा०—वरे श्रेष्ठे मण्डले सीदतीति 'वरसत्'। एतस्यादित्यस्य मण्डलेऽवस्थानं प्रसिद्धम्। यानि 'सद्मानि' निवासस्थानानि सन्ति, तेषं मध्ये 'यस्मिन्' मण्डले 'एषः' आदित्यः 'आसन्नः' उपविष्टः सन् तपति 'एतत्' मण्डलं 'वरं' श्रेष्ठं सद्म।।

तृतीयमागमनूद्य व्याचष्टे—

'ऋतसद्' इत्येष वै सत्यसत् ।।११।।

हिन्दी— (तृतीय पाद के तृतीय भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) **'ऋतसद् अर्थात् सत्य (वेदवाणी) में रहने वाला'**—**इति एषः वै सत्यसत्** यहाँ यह (आदित्य) ही सत्य में रहने वाला है।

सा०भा०—ऋतं सत्यवदनं वेदवाक्यं तत्र सीदति प्रतिपाद्यते—इति 'ऋतसत्'। आदित्यस्य सत्येन वेदवाक्येन प्रतिपाद्यत्वमनेकमन्त्रेषु प्रसिद्धम्।।

चतुर्थभागमनूद्य व्याचष्टे—

'व्योमसद्' इत्येष वै व्योमसद्; व्योम वा एतत्सद्मनां यस्मिन्नेष आसन्नस्तपति ।।१२।।

हिन्दी—(तृतीय पाद के चतुर्थभाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'व्योमसद् आकाश मार्ग में रहने वाला'**—**इति एषः वै व्योमसद्** यहाँ यह (आदित्य) ही आकाश मार्ग में रहने वाला है। **सद्मनाम् एतद् व्योम एव** स्थानों में यह आकाश ही है **यस्मिन्** जिसमें **आसन्** निवास करता हुआ **एषः तपति** यह (आदित्य) तपता है।

सा०भा०—व्योम्न्याकाशमार्गे सीदतीति 'व्योमसत्'। आदित्यस्य तथाविधत्वं प्रसिद्धम्। 'यस्मिन्' व्योमस्थाने 'एषः' आदित्यः प्रत्यासन्नस्तपति, तत् 'एतत्' स्थानं 'सद्मानां' निवासस्थानानां मध्ये 'व्योम' गृहाद्यावरणशून्यमाकाशम्।।

चतुर्थ पादं पञ्चधा विभज्य प्रथमभागमनूद्य व्याचष्टे—

'अब्जा' इत्येष वा अब्जा, अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति ।।१३।।

हिन्दी—(ऋचा के चतुर्थ पाद को पाँच भागों में विभाजित करके प्रथमभाग का

विधान कर रहे हैं—) 'अब्जा अर्थात् जल में उत्पन्न'—**इति एष वै अब्जा** यहाँ यह (आदित्य) ही अब्जा है; क्योंकि **अद्भ्य एव एषः प्रातः उदेति** (पूर्व में समुद्र के) जल से ही यह (आदित्य) प्रात:काल उदित होता है और **सायं अपः एव प्रविशति** (पश्चिम समुद्र के) जल में ही सायंकाल प्रवेश करता है।

सा० भा०—अद्भ्यो जायते योऽयं मकरादिः, 'अब्जा' तद्रूपत्वमस्य सर्वात्मकत्वाद् अवगन्तव्यम्। किंचायमादित्योऽस्मद् दृष्ट्या प्रात:काले पूर्वसमुद्रगताभ्योऽद्भ्य उदेति, सायं-काले पश्चिमसमुद्रगता अपः प्रविशतीव लक्ष्यते; तस्माद् अब्जाः॥

द्वितीयभागमनूद्य व्याचष्टे—

'गोजा' इत्येष वै गोजाः ।।१४।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद के द्वितीय भाग को कहकर उसका विधान कर रहे हैं—) **गोजाः** गो (किरणों) से उत्पन्न जीव इत्यादि'—**इत्येष वै गोजाः** यहाँ यह (आदित्य) ही गोजा है (क्योंकि इसी से जीवन की उत्पत्ति होती है)।

सा० भा०—गोभ्यो जायते जीवादिः, स 'गोजाः', अस्य तद्रूपत्वं पूर्ववत्॥

तृतीयभागमनूद्य व्याचष्टे—

'ऋतजा' इत्येष वै सत्यजाः ।।१५।।

हिन्दी— (चतुर्थ पाद के तृतीय भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'ऋतजा सत्य (वैदिक मन्त्र) से उत्पन्न'—**इत्येषः वै ऋतजाः** यहाँ यह (आदित्य) ही **सत्यजा** सत्य से उत्पन्न है।

सा० भा०—ऋतं सत्यं वैदिकमन्त्रजातम्, तस्माज्जायत इति 'ऋतजाः'। वैदिका-नुष्ठानेन हि देवलोकादौ जायत इति प्रसिद्धम्। आदित्यस्य तद्रूपत्वं पूर्ववत्॥

चतुर्थभागमनूद्य व्याचष्टे—

'अद्रिजा' इत्येष वा अद्रिजाः ।।१६।।

हिन्दी— (चतुर्थ पाद के चतुर्थभाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'अद्रिजा उदयाचल से उत्पन्न'—इति एषः वै अद्रिजा** यहाँ यह (आदित्य) ही उदयाचल से प्रतिदिन उदित होता है।

सा० भा०—अद्रावुदयगिरावुत्पद्यत इति 'अद्रिजाः'। आदित्यस्य तथात्वं पुराणादौ प्रसिद्धम्॥

पञ्चमभागमनूद्य व्याचष्टे—

'ऋतम्' इत्येष वै सत्यम् ।।१७।।

हिन्दी—(चतुर्थ पाद के पञ्चमभाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) ऋतम् अर्थात् पारमार्थिक सत्य'—**इति इत्येषः वै सत्यम्** यहाँ यह (आदित्य) ही सत्य है।

सा० भा०—ऋतशब्दः सत्यवाची। सत्यं च द्विविधम्,—व्यावहारिकं पारमार्थिकं च। तत्र 'व्यावहारिकं' वाचा सत्यभाषणम्, 'पारमार्थिकं' परं ब्रह्म। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'[१]—इति श्रुतेः। तदिदमृतशब्देन विवक्षितम्। अयं चादित्यो ब्रह्मरूपं सत्यम्। अत एव शाखान्तरे 'बृहत्'[२]—इति मन्त्रशेषं पठन्ति। मन्त्रान्तरे चैवं श्रूयते—'असौ वा आदित्यो ब्रह्म'[३] इति॥

कृत्स्नस्य मन्त्रस्य तात्पर्यं दर्शयति—

एष एतानि सर्वाण्येषा ह वा अस्य च्छन्दःसु प्रत्यक्षतमादिव रूपम्॥१८॥

हिन्दी—(सम्पूर्ण मन्त्र का तात्पर्य दिखला रहे हैं—) **एतानि सर्वाणि** ('हंस शुचिषद्' मन्त्र में कहे गये) ये सभी रूप **अस्य** (सर्वात्मक होने के कारण) इस (आदित्य) के ही हैं और **छन्दसु एषा** मन्त्रों में यह (ऋचा) 'हंसशुचिषत्' (इसी आदित्य की है) जो **प्रत्यक्षतमाद् इव रूपम्** (आदित्य के) प्रत्यक्ष रूप को अतिशय रूप से (प्रतिपादित करती है)।

सा० भा०—शुचिषदित्यादिशब्दैर्यानि रूपाण्यभिहितानि, तानि सर्वाण्येष एव; अस्य परब्रह्मत्वेन सर्वात्मकत्वात्। 'छन्दःसु' वेदेषु मध्य 'एषा हं वै' हंसवती ऋक्। सैव 'अस्य' आदित्यस्य सर्वात्मकं 'रूपः' 'प्रत्यक्षतमादिव' अतिशयेन प्रत्यक्षं विस्पष्टं यथा भवति तथा प्रतिपादयतीति शेषः॥

मन्त्रतात्पर्यं दर्शयन्नेव विधिं निगमयति—

तस्माद् यत्र क्व च दूरोहणं रोहेद्धंसवत्यैव रोहेत् ॥१९॥

हिन्दी—(मन्त्र का तात्पर्य दिखलाते हुए इस ऋचा की प्रयोग-विधि को दिखला रहे हैं—) **तस्मात्** उस (उपर्युक्त) कारण से **यत्र क्व च** जहाँ कही भी **दुरोहरणं शंसेत्** दुरोहण का शंसन करे वहाँ **हंसवती एव शंसेत्** हंसवती ऋचा का ही शंसन करें।

सा० भा०—यत्र क्वापि कर्मणि दूरोहणविधानमस्ति, तत्र सर्वत्र हंसवत्यैव विज्ञेयम्॥

फलभेदेन सूक्तान्तरं विधत्ते—

---

(१) तै०आ० ८.१।

(२) वा०सं० १०.२४। तै०सं० १.८.१५.२। कात्या०श्रौ० १५.५.२६। कठ० उ० ५.२।

(३) शत०ब्रा० ७.४.१.१४।

(फलभेदेन तार्क्ष्यसूक्तविधानम्)

तार्क्ष्यं स्वर्गकामस्य रोहेत् ।।२०।।

हिन्दी—(दुरोहण के फल के भेद से अन्य सूक्त कर विधान कर रहे हैं—) **स्वर्गकामस्य** स्वर्ग की कामना करने वाले (यजमान) का **तार्क्ष्यम्** तार्क्ष्य ऋषि और देवता वाले (सूक्त) से **रोहेत्** (दुरोहण) शंसन करना चाहिए।

सा० भा०—तार्क्ष्याख्येन महर्षिणा दृष्टं तार्क्ष्यम्'[1]। तस्मिन् सूक्ते स्वर्गकामस्य यजमानस्य दूरोहणं रोहेत् न तु हंसवत्या।।

तदेतत्प्रशंसति—

(तार्क्ष्यसूक्तप्रशंसनम्)

तार्क्ष्यो ह वा एतं पूर्वोऽध्वानमैत्, यत्रादो गायत्री सुपर्णो भूत्वा सोममाहरत्, तद् यथा क्षेत्रज्ञमध्वनः पुर एतारं कुर्वीत, तादृक् तद् यदेव तार्क्ष्ये; अयं वै तार्क्ष्यो योऽयं पवते, एष स्वर्गस्य लोकस्याभिवाह्ला ।।२१।।

हिन्दी—(इस सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) **तार्क्ष्यः ह वै** गरुड़ ने ही **पूर्वः** सर्वप्रथम **एतम् अध्वानम् ऐत्** इस मार्ग में गमन किया था। **यत्र** जब **गायत्री सुपर्णः भूत्वा** गायत्री ने सुपर्ण होकर **सोमम् आहरत्** सोम का आहरण किया **तद्** तब **यथा** जिस प्रकार (लोक में) **क्षेत्रज्ञम्** क्षेत्र के ज्ञाता को **अध्वनः** मार्ग में **पुरः** आगे—आगे **एतारं कुर्वीत** पथप्रदर्शक बनाया जाता है **तादृक् तत्** उसी प्रकार वह **तार्क्ष्ये** तार्क्ष्य (सूक्त में) (दुरोहण का शंसन करना है)। **योऽयं पवते** जो यह (वायु आकाश में) बहता है **अयं वै तार्क्ष्यः** यह तार्क्ष्य ही है। **एषः एव स्वर्गस्य लोकस्य अभि वोह्ला** यह वायु ही स्वर्गलोक को ले जाने वाला है।

सा० भा०—अत्रैव वक्ष्यमाणां कार्यं संपन्नम्। तत्र 'तार्क्ष्यो ह वै' गरुड एव 'पूर्वः' प्रथमगामी सन् 'एतम्' अध्वानम् 'ऐत्' प्राप्तवान्। किं वक्ष्यमाणमिति, तदुच्यते—गायत्री 'सुपर्णः' पक्षी भूत्वा सोममाहरत्। एतच्च पूर्वमेव प्रतिपादितम्। एवं सति 'तार्क्ष्ये' सूक्ते 'यदेव' शंसनं 'तत्' तत्र शंसने दृष्टान्तः कथ्यते—यथा लोके 'क्षेत्रज्ञं' मार्गविशेषाभिज्ञं तद्देशवासिनं कञ्चित्पुरुषम् 'अध्वनः' मार्गस्य 'पुर एतारं' पुरतो गन्तारं मार्गप्रदर्शकं कुर्वीत, तादृक् 'तत्' तार्क्ष्यशंसनम्। यः 'अयं' वायुरन्तरिक्षे पवते अयमेव तार्क्ष्यस्व-

---

(१) ऋ० १०. १७८.१-३। अस्य सूक्तस्य ऋषिस्तार्क्ष्यः, देवोऽपि तार्क्ष्य एव। तत्र ऋषिपक्षे तृक्षस्य गोत्रापत्यमित्येव व्युत्पत्तिः स्यात् साधीयसी, गर्गादिषु तृक्षशब्दस्य पाठात् (पा०सू० ४.१.१०५)। देवपक्षे तु निर्वचनान्तरं निरुक्ते द्रष्टव्यम् (१०.३.३)।

रूपः[१]। एष च स्वर्गस्य लोकस्य 'अभिवोह्ला' नेता भवति। तस्मात् ताक्ष्र्यसूक्तेनैव दूरोहणं रोहेत्॥

तस्य सूक्तस्य प्रथमायामृचि प्रथमपादमनूद्य व्याचष्टे—

'त्य मू षु वाजिनं देवजूतम्' इत्येष वै वाजी देवजूतः ।।२२।।

हिन्दी—(ताक्ष्र्य सूक्त की प्रथम ऋचा के प्रथम पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'त्य मू षु वजिनं देवजूतम्'** यही (वायुरूप ताक्ष्र्य) अन्न-सम्पन्न और देवताओं में वेगसम्पन्न है'—**इति एषः वै वाजी देवजूतः** यहाँ यह (ताक्ष्र्य) ही अन्न-सम्पन्न और देवताओं में वेग-सम्पन्न है।

सा० भा०—चतुर्थपादे ताक्ष्र्यमिति वक्ष्यति। कीदृशं ताक्ष्र्यम्? 'त्य मू षु'। त्यच्छब्दः सर्वनामत्वात् प्रसिद्धवाची। उशब्द एवकारार्थः–पुराणादिषु प्रसिद्धमेव। 'वाजिनम्' अन्नवन्तं, 'देवजूतं' देवानां मध्ये वेगवन्तम्। अस्मिन् पादेऽभिधीयमानः 'एष वै' ताक्ष्र्य एव, तस्यान्नवत्वाद् देवेषु मध्ये वेगवत्त्वाच्च॥

द्वितीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'सहावानं तरुतारं रथानाम्' इत्येष वै सहावांस्तरुतैष हीमाँल्लोकान् सद्यस्तरति ।।२३।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के द्वितीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) **सहावानं तरुतारं रथानाम्** (वायुरूप ताक्ष्र्य) सभी सर्पों के अभिभव करने वाले और रथों को लाँघने वाले हैं"—**इति एषः वै सहावान् तरुता** यहाँ यह (ताक्ष्र्य) ही अभिभव करने वाला और लाँघने वाला हैं; क्योंकि **एषः हि** ये ही **इमान् लोकान्** इन लोकों को **सद्यः तरति** शीघ्र ही लाँघ जाते हैं।

सा० भा०—पुनरपि कीदृशं ताक्ष्र्यम्? 'सहावानं' सहाः सहनं सर्वाहीनामभिभवस्तद्वन्तम्। रथानां 'तरुतारम्' उल्लङ्घयितारम्। 'एष वै' ताक्ष्र्य एवास्मिन् पादेऽभिहितः, 'सहावान्' अभिभवक्षमः, तरुता' उल्लङ्घयिता भवति; यस्माद् 'एष इमाँल्लोकान् सद्यः' तदानीमेव तरितुं क्षमः॥

तृतीयपादमनूद्य व्याचष्टे—

'अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुम्' इत्येष वा अरिष्टनेमिः पृतनाजिदाशुः ।।२४।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के तृतीय पाद को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं–) **'अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुम्'** अर्थात् हिंसारहितों के नेमिरूप, शत्रुसेना को पराजित

(१) 'कमन्यं मध्यम:देवमवक्ष्यत्'—इति निरुक्त १०.३.४। मध्यमः वायुः।

करने वाले तथा शीघ्रगामी'—**इति एषः वै अरिष्टनेमिः पृतनाजिद् आशुः** यह यह (वायुरूप तार्क्ष्य) ही हिंसारहित शत्रुसेना को जीतने वाला और शीघ्र गमन करने वाला हैं।

सा० भा०—पुनरपि कीदृशं तार्क्ष्यम्? 'अरिष्टनेमि रिष्टं हिंसा, तद्राहित्यम् अरिष्टम्। तस्या च नेमिस्थानीयम्—यथा रथचक्रस्य नेमिः परितो रक्षिका भवति तादृशम्। 'पृतना' परकीयसेना, तां जयतीति 'पृतनाजम्'। 'आशुं' वेगवन्तम्। अस्मिन् पादेऽभिहितानां गुणानां तार्क्ष्ये सद्भावादेष एवात्र प्रतिपाद्यः।।

चतुर्थपादे प्रथमभागमनूद्य व्याचष्टे—

स्वस्तय इति स्वस्तितामाशास्ते ।।२५।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा के चतुर्थ पाद के प्रथम भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) '**स्वस्तये** अर्थात् कल्याण के लिए'—**इति स्वस्तिताम् आशास्ते** यहाँ स्वस्ति की आशंसा की गयी है।

सा० भा०—'स्वस्तये' क्षेमार्थमनेन पादेन क्षेमः प्रार्थितो भवति।।

उत्तरभागमनूद्य व्याचष्टे—

तार्क्ष्यमिहा हुवेमेति ह्वयत्येवैनमेतत् ।।२६।।

हिन्दी—(प्रथम ऋचा की चतुर्थ पाद के द्वितीय भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **तार्क्ष्यमिहा हुवेम** अर्थात् यहाँ (इस कर्म में) हम तार्क्ष्य (देव) का आह्वान कर रहे हैं'—**इति एतद् एनम् एव ह्वयति** यहाँ इससे इस (तार्क्ष्य) का ही आह्वान करता है।

सा० भा०—'तार्क्ष्यं' गरुडम् 'इह' कर्मणि 'हुवेम' आह्वयामः।' एतेन भागेन तार्क्ष्यमाह्वयत्येव[1]।।

तार्क्ष्यसूक्ते द्वितीयस्या ऋचः पूर्वार्धे प्रथमभागमनूद्य व्याचष्टे—

'इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये'–इति स्वस्तितामेवाशास्ते ।।२७।।

हिन्दी— ('तार्क्ष्य सूक्त के द्वितीय ऋचा के पूर्वार्ध के प्रथम भाग को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) '**इन्द्रस्येव रातिमाजो हुवानाः स्वस्तये**' अर्थात् इन्द्र के समान तार्क्ष्य के लिए प्रदेय वस्तु को बार-बार देते हुए कल्याण के लिए (हम आरोहण करते हैं)'—**इति स्वस्तितामेव आशास्ते** यहाँ क्षेम के लिए ही आशंसा की गयी है।

स० भा०—यथेन्द्रस्य दातव्यं हविः प्रयच्छामः, तथैवास्य तार्क्ष्यस्य 'रातिं' दातव्यं वसु 'आजोहुवानाः'[1] समन्तात् पुनः पुनर्ददाना वयमारुहेमेति वक्ष्यमाणेन संबन्धः। किम-

---

(१) ऋ० १०.१७८.१। द्र० निरु० १०.३.४।

र्थम्? 'स्वस्तये' क्षेमार्थम् —एतत्पाठेन 'स्वस्तितामेव' क्षेममेव 'आशास्ते' प्रार्थयते।।

उत्तरभागमनूद्य व्याचष्टे—

नावमिवारुहेमेति, समेवैनमेतदधिरोहति, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै, संपत्त्यै संगत्यै।।२८।।

हिन्दी—(द्वितीय ऋचा के पूर्वार्ध के द्वितीय भाग को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) 'नावमिवारुहेम' अर्थात् जिस प्रकार (लोक में नदी पार करने लिए) नौका पर चढ़ते है (उसी प्रकार स्वर्ग की प्राप्ति के लिए दूरोहण पर) चढ़ता हूँ'—**इति एतत्** इस (शंसन) से **स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै** स्वर्ग लोक की प्राप्ति के लिए **संपत्त्यै** भोग के लिए और **संगत्यै** भोग सम्बन्ध के लिए **एनम्** इस (दूरोहण) पर **समेव अधिरोहति** सम्यक् रूप से चढ़ता है।

सा० भा०—यथा लोके नद्युत्तरणाय नावमारोहति, एवं स्वर्गं प्राप्तुं दूरोहणमारुहेम। एतद्भागपाठेन 'एनं' दूरोहणं स्वर्गं 'समेव' सम्यगेव 'अधिरोहति'। अतस्तच्छसनं स्वर्गस्य 'समष्ट्यै' प्राप्त्यै भवति। सा च प्राप्तिः 'संपत्त्यै' भोगाय, भोग्यवस्तुसंपादनाय भवति। संपादनं 'संगत्यै' भोगसंबन्धाय भवति।।

उत्तरार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम'–इतीमे एवैतदनुमन्त्रयत आ च परा च मेष्यन् ।।२९।।

हिन्दी—(द्वितीय ऋचा के उत्तरार्ध को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) '**उर्वी** हे विस्तृत भूमि और **पृथ्वी** हे वितीर्णा द्यौ! तुम दोनों **बहुले गभीरे** अतिदीर्घ और अतिशय गम्भीर हो। **वाम् एतौ परेतौ** तुम दोनों से सम्बन्धित (इस तार्क्ष्य) के आगमन के समय और गमन के समय **मा मा रिषाम** हम लोग हिंसित न होवें'—**इति एतत्** इस (शंसन) से **आमेष्यन् च परा च** आने के समय और जाने के समय **इमे आ अनुमन्त्रयत** इन दोनों (द्यावा और पृथिवी) को अनुमन्त्रित करता है।

सा० भा०—नकारः समुच्चयार्थः। 'उर्वी न' भूतिश्च 'पृथ्वी' विस्तीर्णा द्यौश्च, 'बहुले' उभे अप्यतिदीर्घे, 'गभीरे' अत्यन्तगाम्भीर्येण युक्ते उभयोरियत्ता निश्चेतुमशक्येत्यर्थः। तादृश्यौ हे द्यावापृथिव्यौ, वयम् 'एतौ' आगमनवेलायां 'परेतौ' पुनर्गमनवेलायां च 'वाम्' उभे 'मा रिषाम' हिंसायुक्ते मा करवाम[१]। एतत्पाठेन होता 'आमेष्यंश्च' आगामिष्यन्नपि, 'परामेष्यश्च'[२] पुनरपि परावृत्य गमिष्यन्नपि 'इमे एव' द्यावापृथिव्यावेव अनुमन्त्रयते।।

तृतीयस्या ऋचः पूर्वार्धमनूद्य व्याचष्टे—

(१) ऋ० १०.१७८.२। (२) निघण्टौ गतिकर्मसु 'मिष्यति' २.१४.२३।

'सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषाऽपस्ततान'—इति प्रत्यक्षं सूर्यमभिवदति ।।३०।।

हिन्दी—(तृतीय ऋचा के पूर्वार्ध को कहकर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **'यः'** जिस (तार्क्ष्य) ने **सद्यश्चित** उसी समय **शवसा** अपने बल से **पञ्च कृष्टीः** पाँच प्रकार के पुरुष (देव, मनुष्य, असुर, राक्षस और गन्धर्व) को **अपस्ततान्** उसी प्रकार विस्तृत किया **सूर्यः ज्योतिषा इव** जिस प्रकार सूर्य अपनी रश्मियों से (वृष्टि रूप जल का विस्तार करते हैं'—**इति प्रत्यक्षं सूर्यम् अभि वदति** इस (शंसन) से प्रत्यक्ष रूप से सूर्य की ही प्रशंसा करता है।

सा०भा०—'यः' तार्क्ष्यः 'सद्यश्चित्' तस्मिन्नेव क्षणे 'शवसा' बलेन 'पञ्च कृष्टीः' पञ्चविधान् पुरुषजातिविशेषान् देवमनुष्यासुर-राक्षस-गन्धर्वान् अतिविस्तारितवान्,—यथा सूर्यो 'ज्योतिषा' स्वकीयरश्मिसमूहेन 'अपः' वृष्ट्युदकं 'ततान' विस्तारयति, तद्वत्। एतत्पाठेन तार्क्ष्यदेवं सूर्यं 'प्रत्यक्षं' मुख्यं कृत्वा 'अभिवदति' प्रशंसति।।

उत्तरार्धमनूद्य व्याचष्टे—

'सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवति न शर्याम्'—इत्याशिषमेवैतेनाशास्त आत्मने च यजमानेभ्यश्च ।।३१।।

हिन्दी—(तृतीय ऋचा के उत्तरार्ध को कह कर उसकी प्रशंसा कर रहे हैं—) **अस्य** इस (तार्क्ष्य) की **सहस्राः शतसाः** हजारों और सैकड़ों भेदयुक्त **रंहिः** गति को **न वरन्ते स्म** उसी प्रकार वरण नहीं कर सकते हैं **युवति न शर्याम्** जैसे शूरवीर द्वारा छोड़ा गया बाण नहीं रोका जा सकता'—**इति एतेन** इस (शंसन) से **आत्मने च यजमानेभ्यः च** अपने लिए और यजन करने वालों के लिए **आशिषमेव आशास्ते** आशीष की ही आशंसा करता है।

सा०भा०—'अस्य' तार्क्ष्यस्य 'रंहिः' गतिः 'सहस्रसाः' सहस्रभेदयुक्ताः, 'शतसाः' शतभेदयुक्ताः। 'वन षण संभक्तौ'—इति धातुः। सहस्रं सनुते संभजतीति 'सहस्रसाः' सहस्रभेदयुक्ताः तां गतिं केऽपि 'न स्मा वरन्ते' न वारयन्ति। यथा लोके 'शर्यां' शरकाष्ठ-निर्मितां 'युवतिं' शत्रुशरीर मिश्रणयोग्यां युवतिं न वरते, तद्वत्। नकार उपमार्थः। यथाऽतिशूरेण धानुष्केण प्रयुक्तो बाणः केनाऽपि न निवार्यते, तथा त्वदीयगतिरित्यर्थः।[१] 'एतेन' अर्धर्चपाठेनायं होता 'आत्मने च' स्वार्थमपि 'यजमानेभ्यश्च' सत्रानुष्ठातृबहुयजमानार्थमप्याशिषमेव प्रार्थयते रक्षार्थाय; तार्क्ष्यगतेरनिवार्यत्वाभिधानात्[२]।।

---

(१) ऋ० १०.१७८.३। द्र० निरु० १०.३.५।

(२) अहर्गणेषु द्वितीयादिष्वहस्सु निष्केवल्यसूक्तानां पुरस्तादिदं सूक्तं शंसनीयं भवति; विषुवति तु निष्केवल्यसूक्तानामन्त एव। द्र० आश्व०श्रौ० ७.१.१३; ८.६.१४।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टादशाध्याये) षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के षष्ठ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ सप्तमः खण्डः

सा० भा०—अथ दूरोहणसूक्तशंसनस्य प्रकारान्तरं विधत्ते—

(दुरोहणसूक्तशंसनस्य प्रकारान्तरविधानम्)

आहूय दूरोहणं रोहति, स्वर्गो वै लोको दूरोहणम्, वागाहावो, ब्रह्म वै वाक्, स यदाह्वयते तद् ब्रह्मणाहावेन स्वर्गं लोकं रोहति ॥ १ ॥

हिन्दी—(अब दूरोहण सूक्त के प्रकारान्तर का विधान कर रहे हैं—) **आहूय** (शोंसावोम् रूप) आहाव करके **दूरोहणं रोहति** दूरोहण (सूक्त) का शंसन करता है। **स्वर्गः वै लोकः दूरोहणम्** स्वर्ग लोक ही दूरोहण है, और **वाग् आहावः** वाणी आहाव है। **ब्रह्म वाक्** वाणी ही ब्रह्म है। **सः यद् आह्वयते** वह (होता) जो आहाव करता है वह **ब्रह्मणा आहावेन** ब्रह्मरूप आहाव से **स्वर्गं लोकं रोहति** स्वर्ग लोक पर चढ़ता है।

सा० भा०—'शोंसावोम्' इत्यध्वर्योराह्वानं कृत्वा तदनन्तरं 'त्य मू षु'—इत्यादिकं दूरोहणं सूक्तं 'रोहेत्' रोहणक्रमेण पठेत्। दूरोहणस्य स्वर्गरूपत्वात्, आहावस्य वाग्रूपत्वात्, वाचश्च वेदात्मिकाया ब्रह्मत्वात्, प्रथममाह्वाने सति ब्रह्मरूपेण आहावेन स्वर्गमारोहति॥

अपरं प्रकारविशेषं विधत्ते—

(दूरोहणशंसने आरोहक्रमविधानम्)

स पच्छः प्रथमं रोहतीमं तं लोकमाप्नोत्यथार्धर्चशोऽन्तरिक्षं तदाप्नोत्यथ त्रिपद्याऽमुं तं लोकमाप्नोत्यथ केवल्या; तदेतस्मिन् प्रतितिष्ठति य एष तपति ॥ २ ॥

हिन्दी—(अन्य प्रकार-विशेष का विधान कर रहे हैं—) **सः प्रथमं पच्छः रोहति** वह प्रथम बार पादशः (पाद-पाद पर अवसान करके) आरोहण करता है। उससे **इमं लोकम् आप्नोति** इस (पृथिवी) लोक को प्राप्त करता है। **अथ अर्धर्चशः** इसके बाद आधी-आधी (ऋचा) पर अवसान करके (आरोहण करता है) **तद् अन्तरिक्षम् आप्नोति** उससे अन्तरिक्ष (लोक) को प्राप्त करता है। **अथ त्रिपद्या** पुनः तीन-तीन पादों पर अवसान करके (आरोहण करता है) **तम् अमुं लोकम् आप्नोति** उससे उस (द्यु) लोक को प्राप्त

करता है। **अथ केवल्या** पुनः केवल (अवसान-रहित) सम्पूर्ण (ऋचा) का आरोहण करता है, **तद् यः तपति** उससे जो (सूर्य) तपता है **एतस्मिन् प्रतितिष्ठति** उस (लोक) में प्रतिष्ठित होता है।

सा० भा०—द्वेधा सूक्तस्य शंसनम्, रोहक्रमेणावरोहक्रमेण चेति। तं चारोहे चतुर्वारमावर्तनीयम्। प्रथमावृत्तौ 'पच्छः' पादशः पठेत्। एकैकस्मिन् पादेऽवसानं कृत्वा शंसेत्। द्वितीयस्यामावृत्तौ 'अर्धर्चशः' एकैकस्मिन्नर्धेऽवसानं कृत्वा पठेत्। तृतीयस्यामावृत्तौ 'त्रिपद्या' आवृत्त्या पादत्रयेऽवसानं कृत्वा पठेत्। चतुर्थ्यामावृत्ताववसानरहितया संपूर्णया शंसेत्। 'तत्' एताभिश्चतसृभिरावृत्तिभिर्लोकत्रयं प्राप्य, पश्चात् 'एतस्मिन्' प्रकाशमाने सूर्यमण्डले प्रतितिष्ठति।।

आरोहप्रकारविशेषं विधाय प्रत्यवरोहणं विधत्ते—

(प्रत्यवरोहणविधानम्)

त्रिपद्या प्रत्यवरोहति,—यथा शाखां धारयमाणस्तमुष्मिँल्लोके प्रतितिष्ठत्यर्धर्चशोऽन्तरिक्षे पच्छोऽस्मिँल्लोक आप्त्वैव तत्स्वर्गं लोकं यजमाना अस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठन्ति ।। ३।।

हिन्दी—(आरोह प्रकार विशेष का विधान करके प्रत्यवरोह का विधान कर रहे हैं—) **त्रिपद्या प्रत्यवरोहति** तीन-तीन पादों पर अवसान करके उसी प्रकार प्रत्यवरोहण करता है, **यथा** जिस प्रकार (लोक में) **शाखां धारयमाणः** (वृक्ष पर चढ़ा हुआ व्यक्ति उतरता हुआ) शाखा को पकड़ता हुआ उतरता है। **तत्** उससे **अमुस्मिन् लोके प्रतितिष्ठति** उस (स्वर्गलोक) में प्रतिष्ठित होता है। **अर्धर्चशः** आधी-आधी (ऋचा) से **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्ष (लोक) में तथा **पच्छः अस्मिन् लोके आप्त्वा** पाद-पाद पर अवसान से इस पृथिवी लोक प्राप्त करके (जिस प्रकार प्रतिष्ठित होता है उसी प्रकार) **यजमानाः अस्मिन् लोके प्रतितिष्ठन्ति** यजन करने वाले लोग इस लोक में प्रतिष्ठित होते हैं।

सा० भा०—प्रत्यवरोहक्रमे प्रथमावृत्तौ पादत्रयेऽवसानम्; द्वितीयावृत्तावर्धर्चेऽवसानं; तृतीयावृत्तौ पादेऽवसानम्। तथा सति यथा लोके वृक्षाग्रमारुह्य पुरुषः प्रत्यवरोहन् हस्तेन शाखां दृढमवलम्ब्य स्थिरो भवति, एवमयं प्रथमतः स्वर्गे प्रतिष्ठाय पश्चादन्तरिक्षे भूलोके च प्रतितिष्ठति। यथा होतुः प्रतिष्ठा, तथा यजमानानामपि। ते च स्वर्गं प्राप्य पुनरागत्यास्मिँल्लोके प्रतितिष्ठन्ति। तावेतावारोहप्रत्यवरोहौ हंसवतीपक्षे तार्क्ष्यपक्षेऽपि समानौ। एवमुच्चारणस्य दुःशकत्वाद् अस्य शंसनस्य 'दूरोहणसंज्ञा'।।

कामनाभेदेन प्रकारान्तरं विधत्ते—

(कामनाभेदेन प्रकारान्तरविधानम्)

अथ य एककामाः स्युः, स्वर्गकामाः पराञ्चमेव तेषां रोहेत्, ते

जयेयुर्हैव स्वर्गं लोकम् ।।४।।

हिन्दी—(कामना के भेद से प्रकारान्तर का विधान कर रहे हैं—) **अथ ये एककामाः स्वर्गकामाः स्युः** और जो केवल स्वर्ग की कामना वाले यजमान हों तो **तेषां पराञ्चमेव रोहेत्** उन (प्रत्यावरोहणों) से रहित शंसन करना चाहिए। **ते स्वर्गं लोकं ह एव जयेयुः** वे स्वर्गलोक को ही प्राप्त करते हैं।

सा० भा०—एकस्मिन्नेव लोके कामो येषां त 'एककामाः' स्वर्गं लोकमेव कामयन्ते, न त्वेनं लोकम्, तेषां 'पराञ्चमेव' प्रत्यवरोहरहितमेव 'रोहेत्' शस्त्रं पठेत्। तावता ते स्वर्गं लोकं 'जयेयुर्हैव' प्राप्नुवन्त्येव।।

अस्मिन् पक्षे कंचिद्दोषं दर्शयति—

नेत्त्वेवास्मिँल्लोके ज्योगिव वसेयुः ।।५।।

हिन्दी—(इस पक्ष में कुछ दोष दिखला रहे हैं—) **अस्मिन् लोके ज्योगिव न इद् वसेयुः** वे इस लोक में चिरकाल तक नहीं रह सकेंगे।

सा० भा०—ते स्वर्गं प्राप्नुवन्त्येव, किंत्वत्र दोषोऽस्त्येव;—ते यजमाना अस्मिन्नेव लोके 'ज्योगिव' चिरकालमेव 'नेद्वसेयुः' सर्वथा न तिष्ठेयुः। परिभवद्योतकेन नेदित्य-नेनाऽऽयुःक्षयहेतुरयं पक्षो दूषितः।।

सूक्तान्तराणि विधत्ते—

(सूक्तान्तरविधानम्)

मिथुनानि सूक्तानि शस्यन्ते,-त्रैष्टुभानि च जागतानि च; मिथुनं वै पशवः पशवश्छन्दांसि, पशूनामवरुद्ध्यै ।।६।।

हिन्दी—(सूक्तान्तर का विधान कर रहे हैं—) **त्रैष्टुभानि च जागतानि च** त्रिष्टुप् छन्द वाले और जगती छन्द वाले **मिथुनानि सूक्तानि** मिथुन (युगल) सूक्त **शस्यन्ते** शंसन किये जाते हैं। **मिथुनं वै पशवः** पशु भी मिथुन (जोड़े वाले) होते हैं। **पशवः छन्दांसि** पशु छन्दरूप हैं। **पशूनाम् अवरुद्ध्यै** पशुओं की प्राप्ति के लिए (मिथुन सूक्तों का शंसन होता है)।

सा० भा०—मिथुनशब्द एकत्वनिवारकः; ततो 'बहूनि' इत्युक्तं भवति। 'यस्ति-ग्मशृङ्गः' इत्यादीनि 'त्रैष्टुभानि'[१] 'दिवश्चिदस्य वरिमा' इत्यादीनि 'जागतानि'[२] तदेतच्छन्दोद्वयं

(१) 'तस्य (तार्क्ष्यस्य) एकाम् (ऋचं) शस्त्वाहूय (आहावं पठित्वा) दूरोहणं रोहेत्'—इति आश्व०श्रौ० ८.६.१५।

(२) यस्तिग्मशृङ्गो (ऋ० ७.१९), ऽभित्यं मेषम् (ऋ० १.५१), इन्द्रस्य नु वीर्याणि (ऋ० १.३२) इति''—इति आश्व०श्रौ० ८.६.१२।

मिथुनसदृशम्। पशवोऽपि मिथुनात्मकाः; छन्दांसि च पशुसाधनत्वात् पशवः; अतस्तेषां शंसनं पशुप्राप्त्यै भवति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (अष्टादशाध्याये) सप्तमः खण्डः ॥७॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के सप्तम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ अष्टमः खण्डः

सा० भा०—अथ विषुवन्नामकमहर्विशेषं मनुष्यसाम्येन प्रशंसति—

(मनुष्यसाम्येन विषुवदहः प्रशंसनम्)

यथा वै पुरुष एवं विषुवांस्तस्य यथा दक्षिणोऽर्ध एवं पूर्वोऽर्धो विषुवतो यथोत्तरोऽर्ध एवमुत्तरोऽर्धो विषुवतस्तस्मादुत्तर इत्याचक्षते, प्रबाहुक्सतः शिर एव विषुवान् बिदलसंहित इव वै पुरुषस्तद्धापि स्यूमेव मध्ये शीर्ष्णो विज्ञायते ।।१।।

हिन्दी—(अब विषुवत नामक अहर्विशेष की मनुष्य की समानता से प्रशंसा कर रहे हैं—) **यथा वै पुरुषः** जिस प्रकार पुरुष है **एवं विषुवान्** उसी प्रकार विषुवान् है। **यथा** जिस प्रकार **तस्य** पुरुष की दक्षिणभाग है **एवं विषुवतः पूर्वो अर्ध** उसी प्रकार विषुवान् का पूर्वार्ध है। **यथा उत्तरः अर्धः** जिस प्रकार (मनुष्य का) बाद वाला भाग है **एवं विषुवतः उत्तरः अर्धः** उसी प्रकार विषुवान् का उत्तरार्ध है। **तस्मात्** इसी कारण **उत्तरः इत्याचक्षते** (विषुवान् के उत्तरवर्ती मास के कृत्य को) उत्तर कहा जाता है **प्रबाहुक् सतः** वाम और दक्षिण भाग को समान करके (अवस्थित पुरुष का) **शिरः** जिस प्रकार शिर है **एवं विषुवान्** इसी प्रकार विषुवान् **बिदलसंहितः इव** संयोजित हुए के समान होता है। **तद्धापि** इसी कारण **शीर्ष्णः मध्ये** शिर के मध्य में **स्यूमेव विज्ञायते** सिली हुई सी (सन्धि रेखा) मालूम होती है।

सा० भा०—यथा लोके पुरुषो दक्षिणवामभागाभ्यां भागद्वयमध्ये शिरसा च युक्तः, तस्य विषुवतः षण्मासात्मकः पूर्वभागः, पुरुषसंबन्धिदक्षिणभागस्थानीयः, तत्रावरोहरूपमासषट्कात्मक उत्तरार्धो वामभागस्थानीयः 'तस्माद्' वामभागसादृश्यादुत्तर इत्याचक्षते, न त्वनुष्ठानाधिक्यविवक्षया। 'प्रबाहुक् सतः', वामदक्षिणभागौ समौ कृत्वा अवस्थितस्य पुरुषस्य शिरो यथोन्नतं सन् मध्येऽवतिष्ठते, एवं मासषट्कयोर्मध्ये 'विषुवान्' उत्कृष्टोऽवतिष्ठते। 'बिदलं' भागः, ताभ्यां बिदलाभ्यां दक्षिणवामभागाभ्यां 'संहितः' संयोजित एव

लोके भवति। 'तद्धापि' तस्मादेव भागद्वयसंधानरूपात् कारणात् 'शीर्ष्णो मध्ये स्यूमेव विज्ञायते'। 'स्यूम' स्यूतम्—यथा वस्त्रयोः संधिः सूच्या 'स्यूतः' संयोजितो भवति, एवं शिरसि दक्षिणोत्तरकपालयोः संधौ स्यूतेव काचिद् रेखा दृश्यते। एतच्च भूमौ पतिते शुष्के मांसरहिते शिरः कपालद्वयसमूहरूपेऽस्थिति विस्पष्टमुपलभ्यते। अतः सर्वात्मना पुरुष-सादृश्यात् प्रशस्तोऽयं विषुवान्॥

अत्र कंचित् पूर्वपक्षमुत्थापयति—

तदाहुर्विषुवत्येवैतदहः शंसेत्, विषुवान् वा एतदुक्थानामुक्थम्, विषु-वान् विषुवानिति ह विषुवन्तो भवन्ति, श्रेष्ठतामश्नुवत इति ।।२।।

हिन्दी—(इस विषय में पूर्वपक्ष को उद्भावित कर रहे हैं—) **तदाहुः** इस (विषुवत् शस्त्र के) विषय में (कुछ लोग) पूछते हैं कि **विषुवति एव एतद् अहः शंसेत्** (दक्षिणायन और उत्तरायण के समय) विषुवत (नामक तुला और मेष की सङ्क्रान्तिद्वय रूप काल-विशेष) में इस अहः (के शस्त्रों) का शंसन करना चाहिए; क्योंकि **एतद् विषुवान्** यह विषुवान् **उक्थानाम् उक्थम्** उक्थों (शस्त्रों) का भी उक्थ है। अतः **विषुवान् विषुवान्** विषुवत् (नामक शस्त्र वाला काल) विषुवान् है; क्योंकि **विषुवन्तः हि भवन्ति** (उस काल में यजमान) योग्य शस्त्र से युक्त होते हैं और **श्रेष्ठताम् अश्नुते** श्रेष्ठता को प्राप्त करते हैं।

सा० भा०—विषुवन्नामके मुख्येऽहनि यच्छस्त्रं विहितम्, 'तत्' तस्मिञ्शस्त्रे पूर्व-पक्षिण एवमाहुः—दक्षिणायनस्योत्तरायणस्य च मध्ये विषुवन्नामकः तुलामेषसंक्रान्ति-द्वयरूपो यः कालविशेषः, सोऽयं विषुवच्छब्दाभिधेयः। स च व्यवहारः स्मृतिषु प्रचुरः। अस्मिन्नेव 'विषुवति' काल 'एतदहः' शंसेत्। एतस्मिन्नहनि विहितं शस्त्रमहःशब्देनोप-लक्ष्यते। 'एतत्' संक्रान्तिद्वययुक्तमहः 'उक्थानाम्' अह्नां मध्ये 'उक्थम्' उक्थशस्त्रोपेत-शस्त्रयोग्यमित्यर्थः। अतएव 'विषुवान्' विषुवन्नामकशस्त्रवानेव संक्रान्तिकालविशेषः। तत्कथमित्युच्यते—तं संक्रान्तिकालं विषुवान् विषुवान् इत्येव सर्वे व्यवहरन्ति। अतस्त-स्मिन् काले शस्त्रपाठे सति यजमाना 'विषुवन्तः' योग्यशस्त्रयुक्ता भवन्ति। सर्वेष्वनुष्ठातृषु श्रेष्ठतां प्राप्नुवन्तीति पूर्वपक्षिणामाशयः॥

तं पक्षं निराकरोति—

तत्तन्नादृत्यम्, संवत्सर एव शंसेत्, रेतो वा एतत्संवत्सरं दधतो यन्ति ।।३।।

हिन्दी—(इस पक्ष का निराकरण कर रहे हैं—) **तत्तद् नादृत्यम्** तो वह कथन आदरणीय नहीं है। **संवत्सरे एव शंसेत्** संवत्सर सत्र में ही शंसन करना चाहिए। **एतत्** इस (शंसन) से **संवत्सरं वीर्यं दधतः यन्ति** (यजमान) संवत्सर-पर्यन्त वीर्य को धारण करते हुए जाते हैं।

सा॰भा॰—कर्मान्तरेष्वपि विषुवाख्यसंक्रान्तियुक्ते काले समागते सति शस्त्रमेतच्छंसनीयमिति यत्पूर्वपक्षिणां मतम्, तस्मिञ्शस्त्रे 'तत्' मतं नादरणीयम्। किंतु 'संवत्सरे' सत्रे एव गवामयने तत्पूर्वोक्तं शस्त्रं शंसेत्। एवं सति यजमाना अत्यन्तसंयोगेन संवत्सरकालमेतद् रेतो धारयन्तो 'यन्ति' अनुतिष्ठन्ति॥

विपक्षे बाधकं दर्शयति—

यानि वै पुरा संवत्सराद् रेतांसि जायन्ते, यानि पञ्चमास्यानि, यानि षण्मास्यानि, स्त्रीव्यन्ति वै तानि, न वै तैर्भुञ्जते ।।४।।

हिन्दी—(विपक्ष में बाधा को दिखला रहे हैं—) **संवत्सरात् पुरा** संवत्सर से पहले **यानि रेतांसि जायन्ते** जो भी वीर्य उत्पन्न होते हैं, **यानि पञ्च मास्यानि** जो पाँच महीनों में और **यानि षड्मास्यानि** जो छः महीने मे उत्पन्न होते हैं **तानि स्त्रीव्यन्ति वै** वे (गर्भस्राव के रूप में) स्रवित ही हो जाते हैं। **तैः न वै भुञ्जते** उन (वीर्यों) के द्वारा (पुत्रादि शरीर) नहीं ही प्राप्त होते हैं।

सा॰भा॰—संवत्सरधारणात् पुरैव कतिपयमासधारणेन यानि रेतांसि जायन्ते, पञ्चमाससंबन्धीनि वा, षण्माससंबन्धीनि वा, तानि 'स्त्रीव्यन्ति वै' स्रवन्त्येव, गर्भस्रावो भवति। न तु 'तैः' अल्पमासधृतैः रेतोभिः पुत्रादिशरीरं 'भुञ्जते' अनुभवन्ति॥

गुणकथनपूर्वकं स्वपक्षमुपसंहरति—

अथ यान्येव दशमास्यानि जायन्ते, यानि सांवत्सरिकाणि, तैर्भुञ्जते; तस्मात् संवत्सर एवैतदहः शंसेत् ।।५।।

हिन्दी—(गुणकथन द्वारा अपने पक्ष का उपसंहार कर रहे हैं—) **अथ यानि वै दशमास्यानि जायन्ते** और जो दश महीने में उत्पन्न होते हैं, और **यानि सांवत्सरिकानि** जो संवस्त्सर में उत्पन्न होते हैं, **तैः भुज्यते** उनके द्वारा (पुत्रादि शरीर) उत्पन्न होते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **संवत्सरे एव एतद् अहः शंसेत्** संवत्सर सत्र में ही इस (विषुवत्) का शंसन करना चाहिए।

सा॰भा॰—'अथ' पूर्वोक्तवैपरीत्येन 'यान्येव' रेतांसि 'दशमास्यानि' दशसु मासेषु धृतानि च भूत्वा पश्चाज्जायन्ते, यानि च संवत्सरे धृतानि, तैः सर्वैः पुत्रादिशरीरमनुभवन्ति। 'तस्मात्' गुणसद्भावात् संवत्सरसत्र एव तस्मिन् विषुवत्यह्नि यथोक्तं शस्त्रं शंसेत्॥

पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

संवत्सरो ह्येतदहराप्नोति, संवत्सरं ह्येतदहराप्नुवन्त्येष ह वै संवत्सरेण पाप्मानमपहत एष विषुवताऽङ्गेभ्यो हैव मासैः पाप्मानमपहते शीर्ष्णो विषुवता ।।६।।

हिन्दी—(पुनः प्रकारान्तर से प्रशंसा कर रहे हैं—) क्योंकि **संवत्सरः हि एतद् अहः आप्नोति** संवत्सर ही इस दिन को प्राप्त करता है और **संवत्सरं हि एतद् अहः आप्नुवन्ति** और संवत्सर को हो इस दिन से प्राप्त करते हैं। अतः **संवत्सरेण वै** संवत्सर द्वारा ही **एषः पाप्मानम् अपहते** यह (यजमान) पाप को विनष्ट करता है और **विषुवता अङ्गेभ्यः मासैः** संवत्सर के अङ्गभूत मासों से **पाप्मानम् अपहते** पाप को विनष्ट करता है। **शीर्ष्णः विषुवता** विषुवत् के द्वारा शिर के पापों को विनष्ट करता है।

सा० भा०—योऽयं संवत्सरसत्ररूपः कर्मविशेषः, यच्चैतद्विषुवदाख्यमह उभयोः परस्परं संप्राप्तिरस्ति। तत्र 'संवत्सरः' कर्ता सन् अहराप्नोति। 'अहश्च' कर्तृ भूत्वा संवत्सरामाप्नोति। व्यत्ययेनात्र बहुवचनम्। तयोः परस्परमविनाभावे सति 'एष' यजमानः संवत्सरेण पाप्मानम् 'अपहते' विनाशयति। तथैव 'एष' यजमानो 'विषुवता' संवत्सरामध्यगतेनाह्ना पाप्मानं विनाशयति। तद्विविच्यते, संवत्सरावयवैर्मासैर्हस्तपादाद्यङ्गेभ्यः सकाशात् पाप्मानं नाशयति। 'विषुवता' मुख्येनाह्ना 'शीर्ष्णः' शिरसः सकाशात् पाप्मानं नाशयति।।

वेदनं प्रशंसति—

अप संवत्सरेण पाप्मानं हतेऽप[1] विषुवता य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **संवत्सरेण पाप्मानम् अपहते** संवत्सर के द्वारा पाप को विनष्ट करता है और **विषुवता अप** विषुवत के द्वारा (पाप को विनष्ट करता है)।

सा० भा०—अथ प्रशस्तस्य विषुवतः प्रसङ्गाद् बुद्धिस्थे प्रशस्ते महाव्रताख्येऽहनि कंचित्पशुं विधत्ते—

(महाव्रताख्येऽहनि पशुविधानम्)

वैश्वकर्मणमृषभं सवनीयस्योपालम्भ्यमालभेरन्, द्विरूपमुभयत एतं महाव्रतीयेऽहनि ।।८।।

हिन्दी—(महाव्रत नामक दिन में पशु का विधान कर रहे हैं—) **महाव्रतीये अहनि** महाव्रत नामक प्रयोग के दिन **सवनीयस्य उपालम्भ्यम्** सवनीय पशु के स्थान पर **वैश्वकर्मणम् उभयतः द्विरूपम् वृषभम्** विश्वकर्मा के लिए दोनों ओर से दो रङ्गों वाले (उपालम्भनीय) वृषभ का **आलभेरन्** आलम्भन करना चाहिए।

सा० भा०—'वैश्वकर्मणं' विश्वकर्मदेवताकम् 'ऋषभं' पुंगवं 'सवनीयस्य' चोदकप्राप्तस्य पशोः स्थान[2] उपलम्भनीयं 'द्विरूपं' वर्णद्वयोपेतम् 'उभयत एतं' दक्षिणोत्तर-

(१) विषुवताऽपहते इति वाक्यं संभवेदिति ज्ञेयम्।

(२) 'सुत्याधिकारादेव सवनीयत्वे सिद्धे सवनीयग्रहणं सवनीयस्योपालम्भनं कृत्वा पश्चात् सौर्य आलभ्य इत्येवमर्थम्'—एवं नारायणेन (आश्व०श्रौ० ८.६.४) न विकल्पो दर्शितः।

पार्श्वयोर्विलक्षणवर्णेन लाञ्छितं पशुं महाव्रतप्रयोगयुक्ते सत्रस्योपान्त्येऽहन्यालभेरन्॥

तत्र देवतां प्रशंसति—

इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्माऽभवत्, प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा विश्वकर्माऽभवत्, संवत्सरो विश्वकर्मेन्द्रमेव तदात्मानं प्रजापतिं संवत्सरं विश्वकर्माणमाप्नुवन्तीन्द्र एव तदात्मनि प्रजापतौ संवत्सरे विश्वकर्मण्यन्ततः प्रतितिष्ठन्ति; प्रतितिष्ठति य एवं वेद; य एवं वेद[१] ।।९।।

हिन्दी—(उसमें देवता की प्रशंसा कर रहे हैं—) **इन्द्रः ह** इन्द्र **वृत्रं हत्वा** वृत्र को मार कर **विश्वकर्मा अभवत्** विश्वकर्मा हो गये और **प्रजापतिः** प्रजापति **प्रजाः सृष्ट्वा** प्रजाओं की सृष्टि करके **विश्वकर्मा अभवत्** विश्वकर्मा हो गये। **विश्वकर्मा संवत्सरः** दोनों प्रकार का विश्वकर्मा संवत्सर है। **तत्** उस (द्विरूप पशु के आलम्भन) से **इन्द्रम् एव** इन्द्र के ही **आत्मानम्** अपने ही **प्रजापतिं संवत्सरं विश्वकर्माणम्** विश्वकर्मा, संवत्सर और प्रजापति रूप को (यजमान) **आप्नुवन्ति** प्राप्त करते हैं। **इन्द्रः एव** इन्द्र ही **अन्ततः** अन्त में **आत्मनि** अपने **प्रजापतौ संवत्सरे विश्वकर्मणि** संवत्सर, प्रजापति और विश्वकर्मारूप में **प्रतितिष्ठन्ति** प्रतिष्ठित करते हैं। **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है। (वही प्रतिष्ठित होता है)।

सा०भा०—इन्द्रो वृत्रवधादूर्ध्वं विघ्नकर्तुरभावाद् 'विश्वकर्मा' जगत्पालनरूपकर्मयुक्तोऽभवत्। प्रजापतिश्च 'प्रजाः' सर्वाः 'सृष्ट्वा' उत्पाद्य कृत्स्नं जगत्सृष्टिरूपकर्मयुक्तोऽभवत्। स उभयविधो 'विश्वकर्मा' देवः संवत्सरात्मकः। अतः संवत्सरसत्रे द्विरूपपश्वालम्भनेन 'तदात्मानं' संवत्सरात्मानमिन्द्रमेव, तथा संवसररूपं 'प्रजापतिम्' इत्युभयविधं 'विश्वकर्माणं' यजमानाः प्राप्नुवन्ति। प्राप्य च 'तदात्मनि' संवत्सरात्मनि 'इन्द्रे', संवत्सररूपे 'प्रजापतौ'

---

(१) "चतुर्विंशमेतदहः"—इत्यादभ्य एतदन्ता गवामयनादित्यानामयनाङ्गिरसामयानानां संवत्सरसत्राणां हौत्रविधय उक्ताः। कल्पेऽप्येव 'सत्राणाम्'—इत्यधिकृत्य 'एतावत् सात्र होतृकर्मान्यत्र महाव्रतात्' इत्यन्तैः (७.१.१, ८.१३.३०) सत्रसाधारणविधय उक्ताः। ततस्तत्रैव प्रदर्शितैषा यज्ञगाथेति—"प्रायणीयच्चतुर्विंशः पृष्ठ्योऽभिप्लव एव च। अभिजित् स्वरसामानो विषुवान् विश्वजित्तथा। छन्दोमा दशमं चाह उत्तमं तु महाव्रतम्। अहीनैकाहः सत्राणां प्रकृतिः समुदाहृता'—इत्यादिः। इत उत्तरं यानि त्रीणि सूत्राण्यभिहितानि; तानि विशेषतः सर्वत्र स्मर्त्तव्यानि। तत उत्तरं क्रमात् गवामयनादीनामेषां विशेषविधय उपदिष्टाः (११.७.१—१२.२.६)। शत०ब्रा० १२.१-३। कात्या०श्रौ० १३ अ०। "गावो वा एतत् सत्रमासत"—इत्यादि तै०सं० ७.५.१। सामब्राह्मणे चैवं "गावो वा एतत् सत्रमासत"—इत्यारभ्य प्रपाठकद्वयेन (४.५ प्र०) गवामयनसत्रस्यौद्गात्रं विहितम्, तत उपरिष्टात् (२, ५ प्र०) आदित्यानामयनस्याङ्गिरसामयनस्य च (१,२ ख०)।

द्विविधेऽपि 'विश्वकर्मणि' 'अन्ततः' संवत्सरसत्रस्यान्ते प्रतितिष्ठन्त्येव। यः पुनरेवं वेद, सोऽपि प्रतितिष्ठति। अभ्यासोऽध्यायपरिसमाप्त्यर्थः॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्ये चतुर्थपञ्चिकायां तृतीयाध्याये अष्टमः खण्डः ॥८॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय के अष्टम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयोऽध्यायः
(अष्टादशोऽध्यायः) समाप्त ॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के अष्टादश अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थपञ्चिकायाम्
चतुर्थोऽध्यायः
[अथ एकोनविंशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—अभिप्लवः स्यात् षडहोऽथ मासस्त्र्यहोऽथ पूर्वस्वरसामनामा॥
गवां च शस्त्रस्य ततः प्रशंसा मध्ये दिवाकीर्त्यमहश्च तस्य॥१॥

अथ द्वादशाहो वक्तव्यः। तदर्थमाख्यायिकामाह—

(द्वादशाहविधानार्थमाख्यायिका)

प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान् स्यामिति; स तपोऽतप्यत; स तपस्तप्त्वेमं द्वादशाहमपश्यदात्मन एवाङ्गेषु च प्राणेषु च, तमात्मान एवाङ्गेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च द्वादशधा निरमिमीत; तमाहरत्; तेनायजत; ततो वै सोऽभवदात्मना प्र प्रजया पशुभिरजायत ॥ १ ॥

हिन्दी—(अब द्वादशाह को कहने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **प्रजापतिः अकामयत** प्रजापति ने कामना किया कि **प्रजायेय** मैं प्रजा उत्पन्न करूँ और **भूयान् स्याम** बहुत हो जाऊँ। **सः तपः अतप्यत** उन्होंने तपस्या किया। **सः तपः तप्त्वा** उन्होंने तपस्या करके **आत्मनः एव अङ्गेषु प्राणेषु** अपने ही अङ्गों और प्राणों में **एतद् द्वादशाहम् अपश्यत्** इस द्वादशाह का दर्शन किया। **तम्** उस (द्वादशाह) को **आत्मनः एव अङ्गेभ्यः प्राणेभ्यः च** अपने ही अङ्गों से और प्राणों से **द्वादशधा निरमिमीत** निकाल कर बारह भागों मे विभाजित किया। **तम् आहरत्** उसको प्राप्त किया और **तेन अजयत** उससे याग किया। **ततः वै** तत्पश्चात् ही **सः** उस (प्रजापति) ने **प्रजया पशुभिः प्र अजायत** प्रजा और पशुओं द्वारा प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न हुआ।

सा० भा०—प्रजापतिः प्रजोत्पादनेनातिप्रभूतः स्यामिति कामयत्वा, तत्साधनं निर्णेतुं चित्तैकाग्र्यलक्षणं 'तपः' कृत्वा स्वाभीष्टसाधनत्वेन स्वकीयेषु हस्तपादाद्यङ्गेषु प्राणादिवायुषु चावस्थितं द्वादशाहं दृष्ट्वा तं स्वाङ्गेभ्यः प्राणेभ्यश्च निःसार्य द्वादशधा कृत्वा निर्मितवान्। ततो निर्मितमाहृत्य तेनेष्ट्वा स प्रजापतिः 'अभवत्' भूतिं प्राप्तवान्। 'आत्मना' स्वेनैव रूपेण सर्वाधिको भूत्वा प्रजापशुरूपेण बहुलं प्रजायत॥

वेदनं प्रशंसति—

भवत्यात्मना प्र प्रजया पशुभिर्जायते य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रजया पशुभिः** प्रजा और पशुओं द्वारा **आत्मना प्रजायते** अपने को समृद्ध करता है।

सा० भा०—अनेनार्थवादेन द्वादशाहयागविधिरुन्नेयः। तथा च शाखान्तरे विधिः श्रूयते—'यः कामयेत तत्प्रजायेयेति, स द्वादशरात्रेण यजेत, प्रैव जायते' इति।।

सोऽकामयत,-कथं नु गायत्र्या सर्वतो द्वादशाहं परिभूय सर्वा-मृद्धिमृध्नुयामिति; तं वै तेजसैव पुरस्तात् पर्यभवच्छन्दोभिर्मध्य-तोऽक्षरैरुपरिष्टाद् गायत्र्या सर्वतो, द्वादशाहं परिभूय सर्वामृद्धि-माध्नोंत् ।।३।।

हिन्दी— **सः अकायत्** उस (प्रजापति) ने कामना किया कि **कथं नु** किस प्रकार **गायत्र्या** गायत्री के द्वारा **द्वादशाहं सर्वतः परिभूय** द्वादशाह को सभी ओर से व्याप्त करके **सर्वाम् ऋद्धिम् ऋध्नुयाम्** सम्पूर्ण समृद्धि को प्राप्त करूँ। (तब प्रजापति ने गायत्री को तीन भागों में बाँट कर) **पुरस्तात् तम्** सामने से उस (द्वादशाह) को **तेजसा एव** तेज द्वारा ही **पर्यभवत्** व्याप्त कर दिया तथा **मध्यतः छन्दोभिः** मध्य से छन्दों द्वारा और **उपरिष्टाद् अक्षरैः** अन्त में अक्षरों द्वारा (व्याप्त किया)। इस प्रकार **गायत्र्या** गायत्री के द्वारा **सर्वतः** सभी ओर से **द्वादशाहं परिभूय** द्वादशाह को व्याप्त करके **सर्वाम् ऋद्धिम् आर्ध्नोत्** सभी समृद्धियों को प्राप्त किया।

सा० भा०—'सः' प्रजापतिः पुनरेवमकामयत,—'कथं नु' केन खलु प्रकारेण, गायत्र्या सर्वतो द्वादशाहं व्याप्य, 'सर्वां' भोग्यवस्तुसमृद्धिमाप्नुयामिति? विचार्य, गायत्रीं त्रेधा व्यभजत् —ध्वनिरूपं तेज एको भागः, अक्षरसंख्याऽभिव्यज्यमानं छन्दो द्वितीयो भागः, अक्षराणि तृतीयो भागः। तैस्त्रिभिर्भागैरादिमध्यावसानेषु सर्वतो द्वादशाहं गायत्र्या व्याप्य समृद्धिं प्राप्तवान्। छन्दोभिरिति बहुवचनं पूजार्थम्।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वामृद्धिमृध्नोति य एवं वेद ।।४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वाम् ऋद्धिम् ऋध्नोति** सभी समृद्धि को प्राप्त करता है।

अथ द्वादशाहस्याहःक्लृप्तिमुपकल्पनामुखेन दर्शयति—

(उपकल्पनाद्वारा द्वादशाहःक्लृप्तिकथनम्)

यो वै गायत्रीं पक्षिणीं चक्षुष्मतीं, ज्योतिष्मतीं भास्वतीं वेद, गायत्र्या

पक्षिण्या चक्षुष्मत्या ज्योतिष्मत्या भास्वत्या स्वर्गं लोकमेत्येषा वै गायत्री पक्षिणी चक्षुष्मती ज्योतिष्मती भास्वती; यद् द्वादशाहस्तस्य यावभितोऽतिरात्रौ, तौ पक्षौ; यावन्तराऽग्निष्टोमौ, ते चक्षुषी; येऽष्टौ मध्य उक्थ्याः, स आत्मा ।।५।।

हिन्दी—(अब द्वादशाह की क्लृप्ति को उपकल्पना द्वारा दिखला रहे हैं—) **यः** जो **पक्षिणीं चक्षुमतीं ज्योतिष्मतीं भास्वतीं गायत्रीम्** दो पंखों से युक्त, दो नेत्रों से सम्पन्न, ज्योतिसम्पन्न शरीर वाली, प्रकाशयुक्त गायत्री को **वेद** जानता है, वह **पक्षिण्या चक्षुमत्या ज्योतिष्मत्या भास्वत्या गायत्र्या** पक्षिणी चक्षुष्मती ज्योतिष्मती और भास्वती गायत्री के द्वारा **स्वर्गं लोकम् एति** स्वर्गलोक को प्राप्त करता है। **एषा गायत्री वै** यह गायत्री ही **पक्षिणी चतुष्मती ज्योतिष्मती भास्वती** दो पंखों वाली, दो नेत्रों से सम्पन्न, ज्योतियुक्त शरीर वाली और प्रकाशयुक्त है। **यद् द्वादशाहः** जो द्वादशाह है, **तस्य** उस (द्वादशाह) के **यौ अभितः अतिरात्रौ** जो दोनों ओर अतिरात्र हैं, **तौ पक्षौ** वे दोनों पक्ष स्थानीय हैं, **यौ अन्तरा अग्निष्टोमौ** जो दो अन्तर्भावी अग्निष्टोम है, **ते चक्षुषी** वे (उसके) दोनों नेत्र-स्थानीय है और **मध्ये ये अष्टौ उक्थ्याः** मध्य में जो आठ उक्थ्य हैं **सः आत्मा** वह (द्वादशाह) की आत्मा (मध्यशरीर) स्थानीय है।

सा० भा०—आदिमध्यावसानेषु द्वादशाहस्य गायत्र्या व्याप्तत्वात् अभेदमभिप्रेत्य द्वादशाहमेव गायत्रीशब्देन व्यवहरति। सा च गायत्री पक्षद्वयोपेता, चक्षुर्द्वयोपेता, ज्योतिःशब्दोपलक्षितमध्यशरीरोपेता। तत एव सा 'भास्वती' प्रकाशवती। अहीनसत्राणां सर्वेषां प्रकृतित्वेन भासकत्वाद् भास्वत्त्वम्। ईदृशीं गायत्रीं यो वेद, स तामनुष्ठाय यथोक्तगुणवत्त्वविशिष्टया गायत्र्या स्वर्गं लोकं प्राप्नोति। गूढाभिप्रायेण रूपकं परिकल्प्य 'एषा वै' इत्यादिना स्वाभिप्रायः प्रकटीक्रियते। द्वादशाह एव यथोक्तगुणविशिष्टा गायत्री तस्येत्यादिना द्वादशाहे ते गुणः प्रदर्श्यन्ते। 'तस्य' द्वादशाहस्य आद्यन्तावहर्विशेषावति-रात्रसंस्थौ। तावेव पक्षस्थानीयौ; तयोरन्तर्भाविनौ द्वितीयैकादशाहविशेषावग्निष्टोमसंस्थौ; तौ चक्षुःस्वरूपौ, ये च तृतीयमारभ्य दशमपर्यन्ता अष्टावहर्विशेषा मध्ये वर्तन्ते, ते सर्वेऽप्युक्थ्यसंस्थाः। सोऽष्टाहसमूह 'आत्मा' मध्यशरीरम्॥

वेदनं प्रशंसति—

गायत्र्या पक्षिण्या चक्षुष्मत्या ज्योतिष्मत्या भास्वत्या स्वर्गं लोकमेति य एवं वेद ।।६।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **पक्षिण्या चक्षुमत्या ज्योतिष्मत्या भास्वत्या गायत्र्या** पक्षिणी, चक्षुमती, ज्योतिष्मती और भास्वती गायत्री के द्वारा **स्वर्गं लोकम् एति** स्वर्गलोक की प्राप्त करता है।

सा० भा०—यथोक्ताह:क्लृप्ति: आश्वलायनाचार्यै: दर्शिता—'अथ भरतद्वादशाह इममेवैकाहं पृथक्संस्थाभिरुपेयुरतिरात्रमग्रेऽथाग्निष्टोममथाष्टा उक्थ्यानथाग्निष्टोममथातिरात्रम्'[१] इति।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकाया: तृतीयाध्याये (एकोनविंशाध्याये) प्रथम: खण्ड: ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकोनविंश अध्याय के प्रथम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—भरतद्वादशाहं विधाय व्यूढद्वादशाहं विधत्ते—

(व्यूढद्वादशाहविधानम्)

त्रयश्च वा एते त्र्यहा आदशममहरा द्वावतिरात्रौ यद् द्वादशाहः ।।१।।

हिन्दी—(भरतद्वादशाह का विधान करके व्यूढ द्वादशाह का विधान कर रहे हैं—) **यद् द्वादशाहः** जो (व्यूढ) द्वादशाह है, उसके **द्वौ अतिरात्रौ** (आदि और अन्त वाले दिन) दो अतिरात्र है। **आदशमम् अहः** दशम दिन को छोड़कर (शेष नौ दिनों में) **एते त्रयः च त्र्यहाः** ये तीन त्र्यह होते हैं।

सा० भा०—योऽयं व्यूढद्वादशाहोऽस्ति, सोऽयमेतादृश:,—तत्राद्यन्तौ यौ 'द्वावतिरात्रौ' प्रथमद्वादशौ, यच्च दशममह:, तत्परित्यज्यावशिष्टेष्वह:सु नवसंख्याकेषु 'त्रयस्त्र्यहा:' कर्तव्या:। त्रिरात्र: कश्चित्कर्मविशेष:, सोऽयं त्रिवारमावर्तनीय:। 'आ' दशमम् इत्यत्र योऽयमाकार:, स वर्जनार्थ:, निपातानामनेकार्थत्वात्। यद्वा, मर्यादायामयम् आङ् भविष्यति,—आद्यन्तावतिरात्रौ दशममहश्च मर्यादां कृत्वाऽवशिष्टो नवरात्रस्त्रिरावृत्तस्त्र्यहात्मक इत्यर्थ:।।

तत्र चोदकेन दीक्षादिसंख्याविकल्प: प्राप्त:, 'एका दीक्षा, तिस्रो दीक्षा:' इत्यादिविकल्पस्य प्रकृतौ श्रुतत्वात्[२]। तं विकल्पमपवदितुं नियमविशेषं विधत्ते—

द्वादशाहानि दीक्षितो भवति, यज्ञिय एव तैर्भवति ।।२।।

हिन्दी—**द्वादश अहानि** बारह दिनों तक दीक्षित रहता है, **तैः** उनके द्वारा वह **यज्ञियः एव भवति** यज्ञ के योग्य ही हो जाता है।

---

(१) आश्व०श्रौ० १०.५.८-१०।

(२) "एका तिस्रो वा दीक्षा"—इति आश्व०श्रौ० ४.२.१७।

सा० भा०—द्वादशसु दिनेषु दीक्षाख्यनियमेऽनुष्ठिते सति तैर्द्वादशभिर्दीक्षाविशेषैरयं पुरुषः यज्ञयोग्य एव भवति[१]॥

उपसत्सु विशेषं विधत्ते—

द्वादश रात्रीरुपसद उपैति, शरीरमेव ताभिर्धूनुते ॥३॥

हिन्दी—(उपसदों के विषय में विशेष को कह रहे हैं—) **द्वादशरात्रीः उपसदः उपैति** द्वादश रात्रियों में वह उपसदों का अनुष्ठान करता है। **ताभिः** उनके द्वारा **शरीरमेव धूनुते** शरीर को कपाँता है।

सा० भा०—प्रकृतौ तिस्र एवोपसदः,[२] ताश्चैकैकां चतुर्षु दिनेष्वावर्त्य, द्वादशसु दिनेषुपसदोऽनुष्ठिते सति 'ताभिः' द्वादशभिरुपसद्भिः शरीरमेव 'धूनुते' कम्पयति, शरीर-गतमांसादिधातुशोषणेन पापक्षयो भवति। तथा च सूत्रकारेणोपसंहृतम्—'यदा वै दीक्षितः कृशो भवति, अथ मेध्यो भवति' इति। उपसद्दिनेष्वस्य क्षीरमात्राहारत्वाद् भवत्येव कार्श्यम्, तदिदं सर्वं धूनुत इत्यनेन विवक्षितम्[३]॥

अथ द्वादशसु दिनेषु सोमाभिषवं विधत्ते—

द्वादशाहं प्रसुतः ॥४॥

हिन्दी—(द्वादश दिनों में सोमाभिषव का विधान कर रहे हैं—) **द्वादशाहं प्रसुतः** द्वादशाह में सोमभिषव होना चाहिए।

सा० भा०—भवेदिति शेषः[४]। दीक्षोपसदावङ्गकर्मणी; अभिषवस्तु प्रधानकर्म॥

वेदनं प्रशंसति—

भूत्वा, शरीरं धूत्वा, शुद्धः, पूतो देवता अप्येति य एवं वेद ॥५॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **भूत्वा** (सोमाभिषव से युक्त) होकर, **शरीरं धूत्वा** शरीर को कँपाकर, **शुद्धः** अतः लोक में शुद्ध होकर **पूतः** परलोक में पवित्र होकर **देवताः अप्येति** देवताओं को प्राप्त करता है।

सा० भा०—'द्वादशाहं प्रसुतः' इति पदद्वयमनुवर्तनीयम्। वेदिता द्वादशसु दिनेषु सोमाभिषवयुक्तो भूत्वा पूर्वोक्ताभिरुपसद्भिः 'शरीरं धूत्वा' शरीरगतं पापं परित्यज्य, अत एव

---

(१) "दीक्षणादिरात्रिसंख्यानेन दीक्षाः"—इति च आश्व०श्रौ० ४.२.१३।

(२) "तिस्र उपसदः"—इति आश्व०श्रौ० ४.२.१७।

(३) द्वादशाहतापश्चितेषु यथासुत्योपसदः"—इति आश्व०श्रौ० ४.२.१५।

(४) "सुत्यमहरुत्तमम्"—इति आश्व०श्रौ० ४.२.१७।

शुद्ध इह लोके भूत्वा, परलोकेऽपि पूतः सर्वा देवताः प्राप्नोति। अथवा शुद्ध इत्यन्तो विधिवाक्यशेष पूत इत्यादिका वेदनप्रशंसा द्रष्टव्या।।

यथोक्तदीक्षोपसत्सुत्यादिनसंख्याः प्रशंसति—

षट्त्रिंशदहो वा एष य द्वादशाहः, षट्त्रिंशदक्षरा वै बृहती, बृहत्या वा एतदयनं य द्वादशाहो, बृहत्या वै देवा इमाँल्लोकानाश्नुवत,–ते वै दशभिरेवाक्षरैरिमं लोकमाश्नुवत, दशभिरन्तरिक्षं, दशभिर्दिवं, चतुर्भिश्चतस्रो दिशो, द्वाभ्यामेवास्मिँल्लोके प्रत्यतिष्ठन् ।।६।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त दीक्षा, उपसद् और सोमाभिषव के दिनों की संख्या की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः द्वादशाहः** जो द्वादशाह है, **एषः षट्त्रिंशदहः** यह छतीस दिनों वाला होता है। **षट्त्रिंशदक्षराः वै बृहती** बृहती छत्तीस अक्षरों वाली होती है। **यः द्वादशाहः** जो द्वादशाह है **एतद् बृहत्या अयनम्** यह बृहती का स्थान है। **बृहत्या वै देवाः** बृहती के द्वारा ही देवताओं ने **इमान् लोकान् अश्नुवत्** इन लोकों को प्राप्त किया। **ते वै** उन देवताओं ने **दशभिः अक्षरैः** (बृहती के) दश अक्षरों से **इमं लोकम्** इस लोक को **दशभिः अन्तरिक्षम्** दश अक्षरों से अन्तरिक्ष लोक को, **दशभिः दिवम्** दश (अक्षरों) से द्युलोक को, **चतुर्भिः चतस्रः दिशः** चार (अक्षरों) से चारो दिशाओं को **अश्नुवत** प्राप्त किया तथा **द्वाभ्यामेव अस्मिन् लोके प्रत्यतिष्ठन्** दो (अक्षरों) से इस लोक में स्थान को प्राप्त किया।

सा० भा०—यो द्वादशाहोऽस्ति, एष पूर्वोक्तरीत्या षट्त्रिंशद्दिनात्मकः। बृहतीछन्दश्च षट्त्रिंशदक्षरम्। तस्माद् यो द्वादशाहोऽस्ति, एतद् बृहत्या 'अयनम्' अयनस्थानमित्यर्थः। देवाश्च बृहत्या सर्वाँल्लोकान् 'आश्नुवत' प्राप्नुवन्—दशभिर्दशभिरक्षरैः प्रत्येकं लोकत्रय-प्राप्तिः। चतुर्भिरक्षरैर्दिक्चतुष्टयप्राप्तिः, द्वाभ्यामक्षराभ्यामस्मिँल्लोके प्रतिष्ठां प्राप्तः। तथाविधबृहतीसाम्याद्दिनगता षट्त्रिंशत् संख्या प्रशस्ता।।

वेदनं प्रशंसति—

प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **प्रतितिष्ठति** प्रतिष्ठित हो जाता है।

अत्र किञ्चिच्चोद्यमुद्भावयति—

तदाहुर्यदन्यानि च्छन्दांसि वर्षीयांसि भूयोक्षरतराण्यथ कस्मादेतां बृहतीत्याचक्षत इति ।।८।।

हिन्दी—(इस विषय में प्रश्न उठा रहे हैं—) **तदाहुः** इस विषय में (कुछ लोग)

पूछते हैं कि **अन्यानि अपि भूयोक्षरतराणि छन्दांसि वर्षीयांसि** (बृहती से भी) अन्य अधिक अक्षर वाले बड़े छन्द हैं, **अथ कस्मात्** तो किस कारण से **एतां बृहती इत्याक्षते** इस (छन्द) को बृहती कहा जाता है।

सा० भा०—यस्मात् कारणाद् बृहत्याः 'अन्यान्युत्तराणि' पङ्क्तित्रिष्टुब्जगतीछन्दास्युत्तरोत्तरं चतुरक्षराधिकानि, अतो 'वर्षीयांसि'। तस्यैव व्याख्यानं 'भूयोऽक्षरतराणि' इति। 'अथ' एवं सति पङ्क्त्यादीनि च्छन्दांस्युपेक्ष्य कस्मात् कारणात् 'एतां' षट्त्रिंशदक्षरमात्रयुक्तां वैदिका बृहतीत्याचक्षते? इति चोद्यम्॥

पूर्वोक्तमेवार्थवादमुपजीव्य परिहारमाह—

एतया हि देवा इमाँल्लोकानश्नुवत,—ते वै दशभिरेवाक्षरैरिमं लोकमाश्नुवत, दशभिरन्तरिक्षं, दशभिर्दिवं, चतुर्भिश्चतस्रो दिशो, द्वाभ्यामेवास्मिँल्लोके प्रत्यतिष्ठंस्तस्मादेतां बृहतीत्याचक्षते ॥९॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त अर्थवाद को उपजीव्य बनाकर परिहार को कह रहे हैं—) **एतया हि देवाः** इस (छन्द) के द्वारा ही देवताओं ने **इमान् लोकान् अश्नुवत** इन लोकों को प्राप्त किया। **ते** उन (देवताओं) ने **दशभिः एव अक्षरैः** (इस छन्द के) दश अक्षरों से **इमं लोकम्** इस (पृथिवी) लोक को, **दशभिः अन्तरिक्षम्** दश (अक्षरों) से अन्तरिक्ष को, **दशभिः दिवम्** दश (अक्षरों) से द्युलोक को और **चतुर्भिः चतस्रः दिशः** चार (अक्षरों) से चार दिशाओं को **अश्नुवत** प्राप्त किया तथा **द्वाभ्यामेव** दो (अक्षरों) से **अस्मिन् लोके प्रतितिष्ठन्** इस लोक में प्रतिष्ठित हुए। **तस्मात्** इसी कारण **एताम्** इस (छन्द) को **बृहती इत्याचक्षते** बृहती (नाम से) कहा जाता है।

सा० भा०—अक्षरसंख्यान्यूनत्वेऽपि लोकत्रयप्राप्तिहेतुत्वात् प्रौढत्वमभिप्रेत्य बृहतीत्यभिधानम्॥

उक्तार्थवेदनं प्रशंसति—

अश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद ॥१०॥

हिन्दी—(पूर्वोक्त ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **यद् यत् कामयते** जो जो कामना करता है, उसको **अश्नुते** प्राप्त करता है।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (एकोनविंशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकोनविंश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—अस्मिन् कर्मणि यजनयाजनयोरधिकारिविशेषो दर्शयति—

(व्यूढद्वादशाहप्रशंसितुमाख्यायिका)

प्रजापतियज्ञो वा एष य द्वादशाहः; प्रजापतिर्वा एतेनाग्रेऽयजत द्वादशाहेन; सोऽब्रवीद् ऋतूंश्चमसांश्च,–याजयत मा द्वादशाहेनेति; तं दीक्षयित्वाऽनपक्रमं गमयित्वाऽब्रुवन्–देहि नु नोऽथ त्वा याजयिष्याम इति; तेभ्य इषमूर्जं प्रायच्छत्; सैषोर्गृतुषु च मासेषु च निहिता; ददतं वै ते तमयाजयंस्तस्माद् ददद् याज्यः; प्रतिगृह्णन्तो वै ते तमयाजयं-स्तस्मात्प्रतिगृह्णता याज्यम् ।।१।।

हिन्दी—(इस कर्म में यजन करने वाले और यजन कराने वाले अधिकारी विशेष को दिखला रहे हैं—) **यः** द्वादशाहः जो द्वादशाह है, **एषः प्रजापतियज्ञः** यह प्रजापति का यज्ञ है। **अग्रे** सर्वप्रथम **एतेन द्वादशाहेन** इस द्वादशाह के द्वारा **प्रजापतिः अयजत** प्रजापति ने यजन किया था। **सः ऋतून् च मासान् च अब्रवीत्** उस (प्रजापति) ने ऋतुओं और मासों (के अभिमानी देवों) से कहा कि **द्वादशाहेन मा याजयत** द्वादशाह द्वारा मेरा यजन कराओ। **तं दीक्षयित्वा** (ऋतुओं ने और मासों के अभिमानी देवों ने) उस (प्रजापति) को दीक्षित करा कर और **अनपक्रमं गमयित्वा अब्रुवन्** (यज्ञस्थल से) निकल कर जाने में असमर्थ करके कहा कि **देहि नु नः** (हे प्रजापति) हमें शीघ्र प्रदान करो तब **त्वा याजयिष्यामः** हम लोग तुम्हारा लिए यजन करावेंगे। **तेभ्यः इषम् ऊर्जं प्रायच्छत्** (तब प्रजापति ने) उन (ऋतुओं और मासों) के लिए अन्न और रस प्रदान किया। **सा एषा उर्क्** वही यह रस **ऋतुषु मासेषु** ऋतुओं और मासों में **निहिता** निहित है। **ते** उन (ऋतुओं और महीनों ने) **ददतं तम्** देने वाले उस (प्रजापति) का **अयाजयन्** यजन कराया। **तस्मात्** इसी कारण **ददद् याज्यः** दक्षिणा देने वाले का यजन कराना चाहिए। **प्रतिगृहणन्तः वै ते अयाजन्** क्योंकि दक्षिणा लेते हुए उन (ऋतुओं और मासों ने) **तम् अयाजन्** उस (प्रजापति) का यजन कराया था। **तस्मात्** इसी कारण **प्रतिगृह्णता याज्यम्** दक्षिणा लेने वाले द्वारा ही यजन कराया जाना चाहिए।

सा० भा०—यो द्वादशाहः, स प्रजापतेर्यज्ञः। कथमिति, तदुच्यते। प्रजापतिरेव 'अग्रे' सर्वेभ्यः पूर्वमेतेन द्वादशाहेनायजत, तस्मादयं प्रजापतियज्ञ इति। तद् यजनप्रकार उच्यते— 'सः' प्रजापतिः वसन्ताद्यृतुदेवांश्चैत्रादिमासदेवांश्चाब्रवीत्। हे देवाः, यूयमृत्विजो भूत्वा मां द्वादशाहक्रतुना याजयतेति। ते च मासर्तुदेवा ऋत्विजो भूत्वा 'तं' प्रजापतिं दीक्षयित्वा, तत्राध्वानम् 'अनपक्रमं' निर्गमनरहितं गमयित्वाऽब्रुवन्। न हि यज्ञं संकल्प्य दीक्षां कृत्वा

तदनुष्ठानमन्तरेण देवयजनदेशान्निर्गन्तुं शक्यते। हे प्रजापते, 'नु' क्षिप्रमेव 'नः' अस्माकं 'देहि' अपेक्षितं प्रयच्छ। 'अथ' अनन्तरं त्वां याजयिष्याम इति ऋतुभिर्मासैश्चोक्तः प्रजापतिः 'तेभ्यः' ऋतुभ्यो मासेभ्य 'इषम्' अन्नम् 'ऊर्जं' क्षीरादिरसं प्रायच्छत्। सैषा 'ऊर्ग्' रसरूपा, ऋतुषु च मासेषु चेदानीमपि 'निहिता' अतश्च स्वस्वकालोचितप्रकारेण ऋतुषु मासेषु च प्रवर्तमानेषु गोक्षीरादिबाहुल्यं भवति। ततोऽन्नपाने 'ददतं तं' प्रजापतिं 'ते' ऋतवश्च मासाश्च अयाजयन्। तस्माद् 'ददत्' पुरुषो 'याज्यः' यष्टुं योग्यः। न हि दानहीनस्याधिकारोऽस्ति। तथा 'ते' मासाश्चर्तवश्च 'प्रतिगृह्णन्तो वै' प्रजापतिदत्ते अन्नपाने स्वीकुर्वन्तः सन्तः प्रजापतिमयाजयन्। तस्माद् इदानीमप्यृत्विजा दक्षिणां प्रतिगृह्णता 'याज्यं' यजनं कर्तव्यम्।।

यजमानानामृत्विजां च वेदनं प्रशंसति—

उभये राध्नुवन्ति य एवं विद्वांसो यजन्ते च याजयन्ति च ।।२।।

हिन्दी—(यजमानों और ऋत्वियों के ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं विदान्** जो इस प्रकार जानने वाला **यजन्ते च याजयन्ति** यजन करते हैं और यजन कराते हैं वे **उभये राधनुवन्ति** दोनों समृद्धि को प्राप्त करते हैं।

द्वादशाहे दीक्षां प्राप्नुवत्सु यजमानेषु दीक्षाप्राप्ति प्रशंसति—

(द्वादशाहे दीक्षां प्राप्तवत्सु यजमानेषुं दीक्षाप्राप्तिप्रशंसा)

ते वा इम ऋतवश्च मासाश्च गुरव इवामन्यन्त द्वादशाहे प्रतिगृह्य; तेऽब्रुवन् प्रजापतिं याजाय नो द्वादशाहेनेति; स तथेत्यब्रवीत्; ते वै दीक्षध्वमिति; ते पूर्वपक्षाः पूर्वेऽदीक्षन्त; ते पाप्मानमपाहत[१], तस्मात् ते दिवेव,–दिवेव ह्यपहतपाप्मानोऽपरपक्षा अपरेऽदीक्षन्त, ते न तरां पाप्मानमपाहत तस्मात् ते तम इव,–तम इव ह्यनपहतपाप्मानस्तस्मादेवं विद्वान् दीक्षमाणेषु पूर्वः पूर्व एव दिदीक्षिषेत् ।।३।।

हिन्दी—(द्वादशाह में दीक्षित यजमान के दीक्षा-प्राप्ति की प्रशंसा कर रहे हैं—) **द्वादशाहे प्रतिग्रह्यः** द्वादशाह में (प्रजापति से) दक्षिणा लेकर **ते इमे ऋतवः मासाः च** वे ये ऋतु और महीने (के अभिमानी देवता) **गुरवः इव अमन्यत** (अपने को) बोझिल के समान मानने लगे। **ते प्रजापतिम् अब्रुवन्** उन्होंने प्रजापति से कहा कि **द्वादशाहेन** द्वादशाह के द्वारा **नः** हम लोगों के लिए **याजाय** यजन कराओ। **सः तथा इत्यब्रवीत्** इस (प्रजापति) ने कहा कि ठीक है। **दीक्षध्वम् इति** तुम लोग दीक्षा ग्रहण करो। **ते पूर्वपक्षाः पूर्वे अदीक्षन्त** उन पूर्वपक्षों (शुक्लपक्ष के अभिमानी देवों ने) पहले दीक्षा ग्रहण किया और **ते पाप्मानन् अपाहत** उन्होंने पाप को विनष्ट कर डाला। **तस्मात् ते दिवा इव**

---

(१) अत्र व्यत्ययेनैकवचनम्।

इसी कारण वे दिन के समान होते हैं—**दिवा इव अपहतपक्षाः** (लोक में भी) दिन के समान विनष्ट पाप वाले पुरुष (पुण्यरूप तेज से) चमत्कृत होते हैं। **अपरपक्षाः अपरे अदीक्षन्त** बाद वाले पक्ष (कृष्णपक्ष के अभिमानी देवता) बाद में दीक्षा ग्रहण किये। **किन्तु ते न तरां पाप्मानम् अपाहत** वे सम्पूर्ण पाप को विनष्ट नहीं कर सके। **तस्मात् तमः इव** इसी कारण वे अन्धकार के समान होते हैं। लोक में भी **अनपहतपाप्मानः तमः इव** पाप से सम्पन्न पुरुष अन्धकार के समान होते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **एवं विद्वान्** इस प्रकार जानने वाला **दीक्षमाणेषु** दीक्षा ग्रहण करने वालों में **पूर्वः पूर्वः एव** सबसे पहले ही **दिदीक्षिषेत** दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा करें।

सा० भा०—ये पूर्वमृत्विक्त्वेन व्यवस्थिताः 'ऋतवश्च मासाश्च ते वा इमे' द्विविधा अपि द्वादशाहे दक्षिणां प्रतिगृह्य 'गुरव इव' पापभारगौरवेणाक्रान्ता एव वयमित्यमन्यन्त। ततस्ते पापपरिहाराय 'द्वादशाहेन' क्रतुना 'नः' अस्मान् याजयेति प्रजापतिमब्रुवन्। प्रजापतिरङ्गीकृत्य ते यूयं दीक्षां कुरुध्वमित्यब्रवीत्। तेषु मासेषु 'पूर्वपक्षाः' शुक्लपक्षाभिमानिनो देवा ये सन्ति, ते 'पूर्वे' प्रथमभाविनः सन्तो दीक्षामकुर्वत। तादृशाः 'ते' शुक्लपक्षाः 'दिवेव' दिवसा इव प्रकाशयुक्ताः। लोकेऽपि 'अपहतपाप्मानः' कृष्णपक्षाभिमानिनो देवा ये सन्ति; ते तु 'अपरे' पश्चात् प्रवर्तमाना दीक्षां कृतवन्तः। ते मालिन्यदोषेण पाप्मानं 'न' 'तरां' अतराम् अपाहतातिशयेन विनाशं न कृतवन्तः। 'तस्मात्' कृत्स्नपापविनाशाभावात् 'ते' कृष्णपक्षाः 'तम इव' कृष्णवर्णा दृश्यन्ते; तदीयरात्रिषु चन्द्रप्रकाशस्याभावात्। लोकेऽपि 'अनपहतपाप्मानः' पापविनाशरहिताः पुरुषाः 'तम इव हि' पापरूपान्धकारलिप्तत्वेन निन्द्या भवन्ति। 'तस्मात्' कारणादेव पूर्वापरकालवैषम्यं 'विद्वान्' पुरुषो 'दीक्षमाणेषु' यजमानेष्वेकैकस्मात् 'पूर्वः पूर्व एव' पूर्वपक्षे 'दिदीक्षिषेत' दीक्षितुमिच्छेत्॥

वेदनं प्रशंसति—

अप पाप्मानं हते य एवं वेद ।।४।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **पापानम् अपहते** पाप को विनष्ट कर देता है।

यजमानपापविनाशहेतुत्वाद् ऋत्विजं प्रशंसति—

(यजमानपापविनाशहेतुत्वाद् ऋत्विजः प्रशंसनम्)

स वा अयं प्रजापतिः संवत्सर ऋतुषु च मासेषु च प्रत्यतिष्ठत, ते वा इम ऋतवश्च मासाश्च प्रजापतावेव संवत्सरे प्रत्यतिष्ठंस्त एतेऽन्योऽन्यस्मिन् प्रतिष्ठिताः; एवं ह वाव स ऋत्विजि प्रतितिष्ठति यो द्वादशाहेन यजते; तस्मादाहुर्न पापः पुरुषो याज्यो द्वादशाहेन—नेदयं मयि प्रतितिष्ठादिति ।।५।।

हिन्दी—(यजमान के पाप के विनाश का हेतु होने के कारण ऋत्विक् की प्रशंसा कर रहे हैं—) **सः वै अयं संवत्सरः प्रजापतिः** वह यह संवत्सर रूप प्रजपति **ऋतुषु च मासेषु च** ऋतुओं में और मासों में **प्रत्यतिष्ठत्** प्रतिष्ठित हुए। **ते वै इमं ऋतवः च मासाः च** वे ये ऋतुएँ और मास **संवत्सरं प्रजापतौ** संवत्सररूप प्रजापति में **प्रत्यतिष्ठन्** प्रतिष्ठित हुए। **ते एते** वे ये **अन्योन्यस्मिन्** परस्पर एक दूसरे में **प्रतिष्ठिताः** प्रतिष्ठित हैं। **यः द्वादशाहेन यजते सः** जो द्वादशाह से यजन करता है, वह **एवं हि ऋत्विजि प्रतितिष्ठति** इस प्रकार ऋत्विक् में प्रतिष्ठित होता है। **तस्माद् आहुः** इसी कारण लोग कहते हैं कि **पापः पुरुषः** पापी पुरुष **द्वादशाहेन न याज्यः** द्वादशाह से याग न करे; क्योंकि **अयम्** यह (पापी पुरुष) **मयि** मुझ (ऋत्विक्) में **न प्रतितिष्ठात्** प्रतिष्ठित होने योग्य नहीं है।

सा० भा०—यः प्रजापतिर्द्वादशाहेनायष्ट, 'स प्रजापतिः' संवत्सरकालात्मको भूत्वा ऋतुषु च मासेषु च 'प्रत्यतिष्ठत्' प्रतिष्ठितोऽभवत्। तदार्त्विज्यबलात् प्रजापतेरुत्कर्षात्। 'ते वै इमे' ऋतवश्च मासाश्च प्रजापतिरूपे संवत्सरे प्रतिष्ठिता अभवन्। प्रजापतिप्रसादेन तत्पाप-विनाशात्। 'त एते' प्रजापतिर्ऋतवो मासाश्चान्योन्यपापविनाशाद् अन्योन्यस्मिन् प्रतिष्ठिताः। एवमेवेदानीमपि यो द्वादशाहेन यजते, सोऽयमृत्विजि प्रतितिष्ठति। ऋत्विक्प्रसादेन यज-मानस्य पापविनाशात्। यस्मादेवं 'तस्मात्' अभिज्ञा एवमाहुः,—'पापपुरुषो द्वादशाहेन ऋत्विग्भिर्न याज्यः' तस्य कर्मण्यार्त्विज्यं न कार्यमिति। 'अयं' पापो 'मयि' ऋत्विजि न प्रतितिष्ठात्' सर्वथा मा प्रविशत्वेवमभिजानामीत्यभिप्रायः॥

द्वादशाहं प्रकारान्तरेण प्रशंसति—

(द्वादशाहयागस्य ज्येष्ठत्वेन प्रशंसनम्)

ज्येष्ठयज्ञो वा एष य द्वादशाहः—स वै देवानां ज्येष्ठो य एतेनाग्रेऽयजत; श्रेष्ठयज्ञो वा एष य द्वादशाहः—स वै देवानां श्रेष्ठो य एतेनाग्रेऽयजत ॥६॥

हिन्दी—(प्रकारान्तर से द्वादशाह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः द्वादशाहः** जो द्वादशाह है **एषः वै ज्येष्ठयज्ञः** यह ज्येष्ठ यज्ञ है। अतः **यः एतेन अग्रे अयजत** जिसने इस (द्वादशाह) द्वारा पहले यजन किया किया **सः वै देवानां ज्येष्ठः** वह देवताओं में ज्येष्ठ हो गया। **यः द्वादशाहः** जो द्वादशाह है, **एषः श्रेष्ठयज्ञः** यह श्रेष्ठ यज्ञ है, **यः एतेन अग्रे अयजत** जिसने इस (द्वादशाह) द्वारा पहले यजन किया **सः वै देवानां श्रेष्ठः** वह ही देवताओं में श्रेष्ठ हो गया।

सा० भा०—यो द्वादशाहोऽस्ति, असौ ज्येष्ठस्य यज्ञः। कथमिति, तदुच्यते—यः पुमान् 'एतेन' द्वादशाहेन 'अग्रे' प्रथममयजत, स एव देवानां मध्ये 'ज्येष्ठः' वयसा प्रवृद्धो

भवति। किं चायं द्वादशाहः श्रेष्ठस्य यज्ञः; यः 'एतेन' प्रथममयजत, स देवेषु मध्ये गुणतः श्रेष्ठो भवति।।

एतां द्वादशाहप्रशंसामुपजीव्याधिकारिविशेषं दर्शयति—

ज्येष्ठः श्रेष्ठो यजेत–कल्याणीह समा भवति; न पापः पुरुषो याज्यो द्वादशाहेन–नेदयं मयि प्रतितिष्ठादिति ।।७।।

हिन्दी—(द्वादशाह की उपर्युक्त प्रशंसा के आधार पर अधिकारी विशेष का विधान कर रहे हैं—) **ज्येष्ठः श्रेष्ठः यजेत** (भाइयो में) ज्येष्ठ और (गुणों में) श्रेष्ठ (व्यक्ति) ही (द्वादशाह) से यजन करे। **इह** (जहाँ यजन किया जाता है) वहाँ **समा कल्याणी भवति** संवत्सर कल्याणप्रद (सुखकर) होता है। **द्वादशाहेन पापः पुरुषः न याज्यः** द्वादशाह के द्वारा पापी पुरुष यजन करने योग्य नहीं होता; क्योंकि **अयम्** यह (पापी पुरुष) **मयि** मुझ (ऋत्विक्) में **न इत् प्रतिष्ठात्** प्रतिष्ठित होने योग्य नहीं होता।

सा० भा०—यः पुमान् भ्रातॄणां मध्ये वयसा ज्येष्ठो गुणैः श्रेष्ठश्च, तादृशोऽनेन 'यजेत'। यस्मिन् देशे तथाविधकर्तृको यागः, 'इह' अस्मिन् देशे 'समा कल्याणी भवति' संवत्सरः सर्वोपद्रवरहितः सुखकरो भवति। यस्माज्ज्येष्ठस्य श्रेष्ठस्य चाधिकारः, तस्मात्पापः कनिष्ठो गुणहीनश्च पुरुषो न तेन याजनीयः। 'मयि' ऋत्विजि 'अयं' पापो नैव प्रतितिष्ठत्विति तस्यर्त्विजोऽभिप्रायः।।

प्रकारान्तरेण द्वादशाहं ज्येष्ठ्यहेतुतया प्रशंसति—

इन्द्राय वै देवा ज्यैष्ठ्याय श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त; सोऽब्रवीद् बृहस्पतिं याजय मा द्वादशाहेनेति, तमयाजयत् ततो वै तस्मै देवा ज्यैष्ठ्याय श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त ।।८।।

हिन्दी—(प्रकारान्तर से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ की हेतुता से द्वादशाह की प्रशंसा कर रहे हैं—) **देवाः** देवताओं ने **इन्द्राय ज्यैष्ठयाय श्रैष्ठताय न अतिष्ठन्त** इन्द्र की ज्येष्ठता और श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता। **सः** उस (इन्द्र) ने **बृहस्पतिम् अब्रवीत्** बृहस्पति से कहा कि **मा द्वादशाहेन याजय** मेरा द्वादशाह से यजन कराओ। **तम् अयाजयत्** उस (इन्द्र) के लिए याग करया। **ततो वै** तभी से **देवाः** देवताओं ने **तस्मै** उस (इन्द्र) को **ज्यैष्ठाय श्रैष्ठाय अतिष्ठन्त** ज्येष्ठता और श्रेष्ठता को स्वीकार किया।

सा० भा०—इन्द्रस्य वयसा ज्येष्ठत्वं गुणैः श्रेष्ठत्वं च देवा नाङ्गीकृतवन्तः। ततः सोऽङ्गीकारो द्वादशाहेन लब्धः।।

वेदनं प्रशंसति—

तिष्ठन्तेऽस्मै स्वा ज्यैष्ठ्याय श्रैष्ठ्याय, सम् अस्मिन् स्वाः श्रेष्ठतायां

जानते य एवं वेद ।।९।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्मै** इस (जानने वाले) की **स्वाः** ज्ञाति लोग **ज्यैष्ठाय श्रैष्ठाय तिष्ठन्ते** ज्येष्ठता और श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं और **अस्मिन् श्रेष्ठतायाम्** इसकी श्रेष्ठता के विषय में **स्वाः** ज्ञातिजन **सम् जानते** समान मत होकर जानने वाले होते हैं।

सा०भा०—'अस्मै' अस्य वेदितुः 'स्वाः' ज्ञातयो 'ज्यैष्ठ्याय श्रैष्ठ्याय तिष्ठन्ते' ज्यैष्ठ्यं श्रैष्ठ्यं चाङ्गीकुर्वन्ति। किंच 'अस्मिन् वेदितरि येयं श्रेष्ठता, तस्यां ज्ञातयः 'संजानते' ऐकमत्यं प्राप्नुवन्ति।।

अथ व्यूढे द्वादशाहे प्रथमदशमद्वादशदिनव्यतिरिक्तो यो नवरात्रस्तत्र ये त्रयस्त्र्यहाः पूर्वमुक्ताः, तान् प्रशंसति—

(व्यूढे द्वादशाहे नवरात्रस्य त्रयस्त्र्यहप्रशंसनम्)

ऊर्ध्वो वै प्रथमस्त्र्यहस्तिर्यङ्मध्यमोऽर्वाङुत्तमः; स यदूर्ध्वः। प्रथमस्त्र्यहस्तस्मादयमग्निरूर्ध्व उद्दीप्यत–ऊर्ध्वा ह्येतस्य दिक्; यत्तिर्यङ्मध्यमस्तस्मादयं वायुस्तिर्यङ्पवते–तिरश्चीरापो वहन्ति; तिरश्चीह्येतस्य दिक्; यदर्वाङुत्तमस्तस्मादसावर्वाङ्तपत्यर्वाङ्वर्षत्यर्वाञ्चि नक्षत्राण्यर्वाची ह्येतस्य दिक्; सम्यञ्चो वा इमे लोकाः; सम्यञ्च एते त्र्यहाः ।।१०।।

हिन्दी—**प्रथमः त्र्यहः** (नवरात्र में) प्रथम त्र्यहः (तीन दिन) **ऊर्ध्वः वै** ऊर्ध्व (आरोहण क्रम वाले) हैं। **मध्यमः तिर्यङ्** मध्यम (तीन दिन) तिर्यक् (अनुक्रम और व्यतिक्रम से रहित) हैं और **उत्तमः अर्वाक्** उत्तम 'तीन दिन अर्वाक् (अधोमुख क्रम वाले हैं)। **प्रथमः त्र्यहः** प्रथम तीन दिन (ऊर्ध्व) हैं, **तस्मात्** इसी कारण **अग्निः ऊर्ध्वः उद्दीप्यत** अग्नि ऊपर की ओर जलता है और **ऊर्ध्वा एतस्य दिक्** इस (अग्नि) की दिशा ऊपर की ओर होती है। **यद् मध्यमः तिर्यक्** जो मध्यम (तीन दिन) तिर्यक् होता है **तस्मात्** इसी कारण **अयं वायुः तिर्यक् पवते** यह वायु तिरछे बहती है और **आपः तिरश्ची वहन्ति** जल तिर्यक् बहता है **एतस्य दिक् तिरश्ची** इस (वायु और) की दिशा तिर्यक् होती है। **यद् उत्तमः अर्वाङ्** जो उत्तम (तीन दिन) अधोमुख है **तस्मात्** इसी कारण **असौ अर्वाङ् तपति** यह (सूर्य) अधोमुख तपता है, **अर्वाङ् वर्षति** (मेघ) अधोमुख वर्षण करता है, **अर्वाञ्चि नक्षत्राणि** नक्षत्र नीचे की ओर चमकते हैं। **एतस्य अर्वाची दिक्** इस (सूर्य इत्यादि) की दिशा नीचे की ओर होती है। **सम्यञ्चः वै इमे लोकाः** ये तीनों लोक (सुख का हेतु होने से) परस्पर मिले जुले हैं और **एते त्र्यहाः सम्यञ्च** ये तीनों त्र्यह भी परस्पर मिले जुले हैं।

सा०भा०— योऽयं नवरात्रे प्रथमस्त्र्यहः, सोऽयम् 'ऊर्ध्वो वै' आरोहप्रकार एव।

तद्यथा—गायत्रं प्रातःसवनं, त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनं, जागतं तृतीयसवनमित्ययं स्वभावसिद्धः क्रमः, तस्य व्यत्यासभावादूर्ध्व इत्युच्यते। यस्तु मध्यमस्त्र्यहः सोऽयं 'तिर्यङ्' वर्तते। तद्यथा—जागतं प्रातःसवनं, गायत्रं माध्यंदिनं, त्रैष्टुभं तृतीयमित्यत्र नात्यन्तमनुक्रमो नाप्यत्यन्तं व्युत्क्रमः। तस्मादयं तिर्यङ्। य उत्तमस्त्र्यहः, 'सोऽर्वाङ्' अधोमुखः। तद्यथा—त्रैष्टुभं प्रातःसवनं, जागतं माध्यंदिनं, गायत्रं तृतीयसवनमित्येतदहरर्वाक्त्वम्। प्रथमो जागतान्तो द्वितीयस्त्रैष्टुभान्तस्तृतीयो गायत्रान्त इत्येवमूर्ध्वतिर्यक्त्वादर्वाक्त्वानि त्रिष्वपि त्र्यहेषु द्रष्टव्यानि। यस्मात् 'सः' प्रथमस्त्र्यह ऊर्ध्वस्तस्मात् तदात्मकोऽयमग्निरूर्ध्वाभिमुखो दीप्यते। 'एतस्य' चाग्नेरूर्ध्वादिक् प्रिया। मध्यस्य त्र्यहस्य तिर्यक्त्वात् तद्रूपो वायुस्तिर्यङ् वर्तते—वायुना हि प्रेरिता आपः तिरश्चीः तिर्यग्भूताः प्रवहन्ति। 'एतस्य' वायोस्तिर्यक्त्वारिश्चा दिक् प्रिया। उत्तमस्य त्र्यहस्यार्वाक्त्वात्तद्रूपः 'असौ' आदित्योऽधोमुखस्तपति,—आदित्यप्रेरितः पर्जन्योऽधोमुखो वर्षति,—आदित्यवन्नक्षत्राण्यपि 'अर्वाञ्चि' अधोमुखानि प्रकाशन्ते। 'एतस्य' आदित्यस्यार्वाची दिक् प्रिया। किं चेमे त्रयो लोकास्तत्तद्वासिनां सुखहेतुत्वात् 'सम्यञ्चः'। एते च त्र्यहाः लोकत्रयसाम्येनानुष्ठातॄणां सुखहेतुत्वात् सम्यञ्चः॥

वेदनं प्रशंसति—

सम्यञ्चोऽस्मा इमे लोकाः श्रियै दीद्यति य एवं वेद ॥११॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है **अस्मै** इस (जानने वाले) के लिए **इमे लोकाः** ये तीनों लोक **सम्यञ्चः** समृद्धि के साथ **श्रियै दीद्यति** प्रकाशित होते हैं।

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (एकोनविंशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकोनविंश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा० भा०—अथ द्वादशाहे दीक्षायाः कालविशेषं विधातुं प्रस्तौति—

(द्वादशाहे दीक्षायाः कालविशेषविधानम्)

(तत्र प्रस्तावना)

दीक्षा वै देवेभ्योऽपाक्रामत्, तां वासन्तिकाभ्यां मासाभ्यामन्वयुञ्जत, तां वासन्तिकाभ्यां मासाभ्यां नोदाप्नुवंस्तां ग्रैष्माभ्यां तां वार्षिकाभ्यां

तां शारदाभ्यां तां हैमान्तिकाभ्यां मासाभ्यामन्वयुञ्जत, तां हैमन्तिकाभ्यां मासाभ्यां नोदाप्नुवंस्तां शैशिराभ्यां मासाभ्यामन्वयुञ्जत; तां शैशिराभ्यां मासाभ्यामाप्नुवन् ।।१।।

हिन्दी—(अब द्वादशाह में दीक्षा के काल-विशेष का विधान करने के लिए प्रस्तावित कर रहे हैं—) **दीक्षा वै** (स्त्रीरूपा) दीक्षा **देवेभ्यः अपाक्रामत्** देवताओं से अपरक्त होकर निकल गयी। **वासान्तिकाभ्यां मासाभ्याम्** वसन्त वाले दो महीनों (चैत्र और वैशाख से) अनुगत **ताम्** उस (दीक्षा) को **अयुञ्जत** पुनः प्राप्त करने की इच्छा किया किन्तु **वासन्तिकाभ्यां मासाभ्याम्** वासन्तिक दोनों महीनों से **ताम्** उस (दीक्षा) को **न उद् आप्नुवन्** नहीं प्राप्त सके। तब **ताम् ग्रैष्माभ्याम्** उस (दीक्षा) को ग्रीष्म के दोनों महीनों से, **ताम् वार्षिकाभ्याम्** उसको वर्षा के दोनों महीनों से, **ताम् शारदाभ्याम्** उसको शरद् के दोनों महीने से पुनः **ताम् हैमन्तिकाभ्यां मासाभ्याम्** उसको हेमन्त के दोनों महीनों से **अन्वयुञ्जत** प्राप्त करने की इच्छा किया किन्तु **तां हैमन्तिकाभ्यां मासाभ्याम्** उसको हेमन्त के दोनों महीनों से **न उद् आप्नुवन्** नहीं प्राप्त कर सके। **तां शैशिराभ्यां मासाभ्याम्** तब उस (दीक्षा) को शिशिर के दो महीनों से **अन्वयुञ्जत** जानना चाहा और **तां शैशिराभ्यां मासाभ्याम्** उसको शिशिर के दो महीनों से **आप्नुवन्** प्राप्त कर लिया।

सा॰भा॰—पुरा कदाचिद् 'दीक्षा' स्त्रीमूर्तिरूपा सती देवेष्वपरक्ता, तेभ्यो देवेभ्यो निर्गता। देवाश्च 'वासन्तिकाभ्यां' चैत्रवैशाखमासाभ्यां 'तां' दीक्षामनुगताभ्यां दीक्षाम् 'अनु' गम्य 'अयुञ्जत' तद्युक्ता भवाम इत्येवमपेक्षितवन्तः। ततस्त्वरया गच्छन्तीं 'तां' दीक्षां ताभ्यां मासाभ्यामुत्कर्षेण नोदाप्नुवन्, नाप्तुमशक्नुवन्। एवं ग्रैष्म-वार्षिक-शारदेषु मासेषु यथायोगं पदान्यध्याहृत्य व्याख्येयम्। अध्याहारविवक्षां दर्शयितुमेव हैमन्तिके पर्याये संपूर्ण वाक्यमाम्नातम्। यथोक्तपञ्चर्तुगतैर्मासैस्तत्प्राप्त्यभावेऽपि शैशिरमासाभ्यां तत्प्राप्तिर्जाता।।

वेदनं प्रशंसति—

आप्नोति यमीप्सति; नैनं द्विषन्नाप्नोति य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **यम् ईप्सति** जिसकी कामना करता है, **आप्नोति** (उसको) प्राप्त करता है तथा **एनं द्विषन् न आप्नोति** इसको द्वेष करने वाला (शत्रु) नहीं प्राप्त करता है।

सा॰भा॰—वेदिता पुरुषः 'यं' काममाप्तुमिच्छति, तमाप्नोति। किं च 'एनं' वेदितारं 'द्विषन्' वैरी न प्राप्नोति।।

इदानीं कालं विधत्ते—

(कालविधानम्)

तस्माद् य सत्रिया दीक्षोपनमेदेतयोरेव शैशिरयोर्मासयोरागतयोर्दीक्षेत; साक्षादेव तद्दीक्षायामागतायां दीक्षते,–प्रत्यक्षाद्दीक्षां परिगृह्णाति; तस्मादेतयोरेव शैशिरयोर्मासयोरागतयोर्ये चैव ग्राम्याः पशवो य चारण्या अणिमाणमेव तत्परुषिमाणं नियन्ति; दीक्षारूपमेव तदुपनिप्लवन्ते ।।३।।

हिन्दी—(अब काल का विधान कर रहे हैं—) **तस्मात्** इसी कारण **यम्** जिस (व्यक्ति को) **सत्रिया दीक्षा** सत्र की दीक्षा को **उपनमेत्** ग्रहण करना हो, उसे **एतयोः एव आगतयोः शैशिरयोः मासयोः** इसी शिशिर के दोनों महीनों के आने पर **दीक्षेत** दीक्षा ग्रहण करना चाहिए। **तत्** इससे **साक्षाद् आगतायां दीक्षायाम्** प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त दीक्षा में **दीक्षते** दीक्षित होता है। **प्रत्यक्षाद् दीक्षां परिगृह्णाति** प्रत्यक्षरूप से दीक्षा को ग्रहण करता है। **तस्मात्** इसी कारण **एतयोः एव शैशिरयोः** इन्ही शिशिर के दोनों महीनों के आने पर **ये च ग्राम्याः पशवः ये च आरण्याः** जो ग्रामीण और जो अरण्य पशु हैं वे **अणिमाणमेव तत्परुषिमाणम्** कृशता और रूढ़िता को प्राप्त करते हैं। **तद् दीक्षारूपम् एव उपनिप्लवन्ते** इस प्रकार दीक्षा (ग्रहण करने वाले के) रूप को (प्राप्त करके) विचरण करते हैं।

सा० भा०—यस्माच्छैशिराभ्यां मासाभ्यां देवानां दीक्षाप्राप्तिः, 'तस्माद्' 'यं' पुरुषं द्वादशाहादिसत्रसम्बन्धिनी दीक्षां प्राप्नुयात्। दीक्षां तत्र करिष्यामीति यस्येच्छा जायते, स पुमान् 'एतयोरेव' शिशिरसम्बन्धिमाघफाल्गुनयोर्मासयोः प्राप्तयोः सतोः दीक्षां कुर्यात्। तथा सति दीक्षायां साक्षादेवागतायां बलात्कारमन्तरेण स्वप्रिये काले स्वमेव 'समागतायां' सत्यामयं दीक्षितो भवति। अतः 'प्रत्यक्षात्' प्रत्यक्षेण दृश्यमानामिव मुख्यां दीक्षां परिगृह्णाति। यस्मादुक्तमासद्वयागमे दीक्षां, 'तस्मात्' तयोर्मासयोरागतयोः सतोः ग्राम्यः' गवादिपशवः, 'आरण्याः' द्विखुरादिपशवश्च 'अणिमाणं' कृशत्वं 'परुषिमाणं' पारुष्यं च 'नियन्ति' नितरां प्राप्नुवन्ति। वर्षाशरद्धेमन्तेष्वृतुषु संतापराहित्यात् सर्वत्र हरिततृणं भक्षयित्वा पशवः पुष्टाङ्गाः स्निग्धाश्चावभासन्ते। शैशिरे तु ऋतौ तृणस्य शोषणोपक्रमत्वात् सपूर्णभक्षणाभावेन पशवः कृशा भवन्ति। अत एवास्थिदर्शनात् परुषा दृश्यन्ते। एतच्च युक्तमेव। 'तत्' तस्मिञ्शिशिरर्तौ दीक्षारूपमेवोपेत्य नितरां 'प्लवन्ते' संचरन्ति। दीक्षितोऽपि नियमविशेषे पीडितः कृशः परुषश्च भवति। अतः पशूनां कृशत्वं पारुष्यं च दीक्षाकाललिङ्गम्।।

दीक्षार्थिनः कंचित्पशुं विधत्ते—

(दीक्षार्थिनः प्राजापत्यपश्वालम्भनविधानम्)

स पुरस्ताद्दीक्षायां प्राजापत्यं पशुमालभते ।।४।।

हिन्दी—(दीक्षा के लिए पशुविशेष का विधान कर रहे हैं—) **दीक्षायां पुरस्तात्** दीक्षा में पहले **सः** वह (दीक्षा ग्रहण करने वाला) **प्राजापत्यं पशुम् आलभते** प्रजापति से सम्बन्धित पशु का आलभन करता है।

सा० भा०—यो दीक्षां वाञ्छति, 'सः' पुमान् दीक्षोपक्रमात् पुरा प्रजापतिदेवताकं पशुमालभेत[1]। द्विविधो हि द्वादशाहः,—साग्निचित्यो निरग्निचित्यश्च[2]। तत्राग्निचयनयुक्ते पशुरयमवगन्यव्यः॥

सामिधेनीषु चोदकप्राप्तं पाञ्चदश्यमपवदितुं विशेषं विधत्ते—

तस्य सप्तदश सामिधेनीरनुब्रूयात्–सप्तदशो वै प्रजापतिः, प्रजापतेराप्त्यै ।।५।।

हिन्दी—**तस्य सप्तदश सामिधेनीः अनुब्रूयात्** उसके लिए सत्रह सामिधेनी (ऋचाओं) का अनुवाचन करता है; क्योंकि **सप्तदशः वै प्रजापतिः** सत्रह प्रजापति हैं। यह **प्रजापतेः आप्त्यै** प्रजापति की प्रप्ति के लिए (यह सत्रह संख्या होती है)।

स० भा०—द्वयोर्धाय्यायोः प्रक्षेपेण सप्तदशसंख्या संपद्यते। सप्तदशत्वं 'द्वादश-मासाः' इत्यादिना पूर्वमेवोक्तम्। अतः सप्तदशसंख्या प्रजापतेः प्राप्त्यै संपद्यते॥

आप्रीयाज्यासु विशेषं विधत्ते—

(आप्रीयाज्यासु विशेषविधानम्)

तस्याप्रियो जामदग्न्यो भवति ।।६।।

हिन्दी—(आप्री याज्याओं में विशेष विधान कर रहे हैं—) **तस्य आप्रियः जामदग्यः भवति** उसकी आप्री ऋचाएँ जमदग्नि ऋषि द्वारा दृष्ट होती हैं।

सा० भा०—पशोः प्राप्तिहेतुत्वात् प्रयाजा आप्रिय इत्युच्यन्ते। तदत्र जमदग्निना दृष्टाः 'समिद्धो अद्य मनुषः' इत्यादिसूक्ते[3] समाम्नाताः द्रष्टव्याः[4]॥

अत्र चोद्यमुद्भावयति—

तदाहुर्यदन्येषु पशुषु यथा ऋष्याप्रियो भवन्त्यथ कस्माद् अस्मिन्

---

(१) अथ सप्तदश प्राजापत्यान् पशूनालभते। ते वै सर्वे तूपरा भवन्ति, सर्वे श्यामाः, सर्वे मुष्कराः तूपरोऽविषाण द्वे वै श्यामस्य रूपे शुक्लं चैव लोम कृष्णं च प्रजननं वै मुष्करः—इत्यादि शत०ब्रा० ५.१.३.७-१०। 'प्राजापत्यो वा अश्वः'–इति च शत०ब्रा० ६.५.३.९; तै०ब्रा० २.७.१.३; मै०सं० ११.३८. वा०सं० २४।

(२) 'साग्निचित्यावग्ने स्तोमौ सर्वजिद्दीक्षौ'–इति कात्या०श्रौ० २२.१०.३३। सर्वजित् स महाव्रतः संवत्सरदीक्षः'–इत्यादि च १.४४। आश्व०श्रौ० ४.१.२१; ८.२७;१९१०.१०।

(३) ऋ० १०.११०.१-११। (४) निरु० ८.२.२-८.३.६।

सर्वेषां जामदग्न्य एवेति ।।७।।

हिन्दी—(इस विषय में प्रश्न की उद्भावना कर रहे हैं—) **तदाहुः यत्** इस विषय में कुछ लोग पूछते हैं कि **अन्येषु पशुषु** अन्य पशुयागों में **यथा ऋषिः भवन्ति** (यजमान के गोत्र-प्रवर्तक) ऋषि द्वारा दृष्ट (मन्त्र) के अनुसार होते हैं, **अथ कस्मात्** तो किस कारण से **अस्मिन् सर्वेषां जामदग्न्यः एव** इस (पशुयाग) में जमदग्नि ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्र ही सभी के लिए कहे गये हैं?

सा० भा०—उक्तप्राजापत्यपशुव्यतिरिक्तेषु सर्वेषु पशुषु 'आप्रियो यथा ऋषि भवन्ति' यस्य यजमानस्य गोत्रप्रवर्तको य ऋषिर्भवति, तमनतिक्रम्य तेन दृष्टा एवाप्रियो भवन्ति। एवं सत्यत्रापि जमदग्निगोत्रजानामेव—'समिद्धौ अद्य'—इत्याप्रिय ऋचा युक्ताः न त्वन्येषाम्। अथैवं सति 'कस्मात्' कारणाद् 'अस्मिन्' पशौ 'सर्वेषां' जगदग्निगोत्रजानामन्येषां चैता एवाप्रियः क्रियन्ते इति चोद्यम्।।

तस्योत्तरमाह—

सर्वरूपा वै जामदग्न्यः सर्वसमृद्धा; सर्वरूप एष पशुः सर्वसमृद्धस्तद् यज्जामदग्न्यो भवन्ति सर्वरूपतायै सर्वसमृद्ध्यै ।।८।।

हिन्दी—(प्रश्न का उत्तर कह रहे हैं—) **सर्वरूपाः सर्वसमृद्धाः वै जामदग्न्यः** जमदग्नि ऋषि द्वारा दृष्ट मन्त्र सभी (ऋचाएँ) सर्वरूप और सर्वसमृद्ध हैं। **एषः पशुः सर्वरूपः सर्वसमृद्धः** यह पशु सभी रूपों वाला और सर्वसमृद्ध है। **तद् यद् जामदन्यः भवन्ति** तो जो जमदग्नि ऋषि द्वारा दृष्ट (मन्त्र) हैं वे **सर्वरूपतायै सर्वसमृद्धयै** सर्वरूपता और सर्वसमृद्धि के लिए होती हैं।

सा० भा०—जमदग्निना दृष्टा ऋचो 'जामदग्न्यः' 'सर्वरूपा वै' सर्वासामृचां स्वरूपभूता एव, 'सर्वसमृद्धाः सर्वसमृद्धिफलहेतुत्वात्। 'एषः' प्रजापतिदेवताकः पशुरपि 'सर्वरूपः' प्रजापतेः सर्वदेवतात्मकत्वेन तदीयपशोरपि सर्वपश्वात्मकत्वम्। अतोऽयं पशुरपि सर्वफलसमृद्धिहेतुत्वात् सर्वैः फलैः समृद्धः। 'तत्' तथा सति यज्जामदग्न्यानामनुष्ठानम्, तत्सर्वानुष्ठानसिद्ध्यर्थं सर्वफलसमृद्ध्यर्थं च भवति।।

पश्वङ्गे पशुपुरोडाशे विशेषं विधत्ते—

(पश्वङ्गेः पशुपुरोडाशे विशेषविधानम्)

तस्य वायव्यः पशुपुरोळाशो भवति ।।९।।

हिन्दी—(पशु के अङ्गभूत पशुपुरोडाश के विषय में विशेष का विधान कर रहे हैं—) **तस्य वायव्यः पशुपुरोडाशः भवति** उस (प्राजापत्य) पशु का वायु देवता होता है।

सा० भा०—'तस्य' प्राजापत्यस्य पशोर्वायुर्देवता यस्य पुरोडाशस्य सोऽयं 'वायव्यः'।।

अत्र चोद्यमुद्भावयति—

तदाहुर्यदन्यदेवत्य उत पशुर्भवत्यथ कस्माद् वायव्यः पशुपुरोळाशः क्रियत इति ।।१०।।

हिन्दी—(इस विषय में प्रश्न को उद्भावित कर रहे हैं—) **तदाहुः यत्** इस विषय में (कुछ वैदिक) पूछते हैं कि **अन्यदेवत्यः उत पशुः भवति** जब अन्य (प्रजापति) देवता से सम्बन्धित पशु होता है **अथ कस्मात्** तो किस कारण से **वायव्यः पुरोडाशः भवति** वायु देवता वाला पुरोडाश होता है?

स० भा०—'यद्' यस्मात् कारणात् 'अन्यदेवत्य उत' वायुव्यतिरिक्त प्रजापति-देवताक एवायं पशुर्भवति, तस्मात् पुरोडाशोऽपि प्रजापतिदेवताक एव युक्तः। यद्देवत्यः पशुस्तद्दैवत्यः पुरोडाशः' इत्याभिधानात्। अथैवं सति प्रजापतिं परित्यज्य 'कस्मात्' कारणात् पुरोडाशो वायुदेवताकः क्रियते : इति चोद्यम्।।

तस्योत्तरमाह—

प्रजापतिर्वै यज्ञो, यज्ञस्यायातयामताया इति ब्रूयाद्; यदु वायव्यस्तेन प्रजापतेर्नैति; वायुर्ह्येव प्रजापतिः ।।११।।

हिन्दी—(उस प्रश्न का उत्तर कर रहे हैं—) **प्रजापतिः वै यज्ञः** यज्ञ प्रजापति रूप है। **यज्ञस्य आयातयामतायाः** (पशुरूप यज्ञ के प्रजापति देवतात्मक होने के कारण) यज्ञ के (पशुपुरोडाशरूप हवि के एकत्व से) निःसारत्वरूप आलस्य के परिहार के लिए देवतान्तरयुक्त है—**इति ब्रूयात्** इस प्रकार उत्तर कहना चाहिए। **यदु वायव्यः** तो जो वायु देवता वाला (पशुपुरोडाश) है **तेन प्रजापतेः न इति** उससे (प्रजापति का नहीं है) (ऐसा नही है); क्योंकि **वायुः हि एव प्रजापतिः** वायु ही प्रजापति है।

सा० भा०—पशुरूपस्य यज्ञस्य प्रजापतिदेवतात्मकत्वेन प्रजापतिरूपत्वम्। तादृश-स्यास्य यज्ञस्य पशुर्हविषि पुरोडाशे तद्देवतैक्ये सति 'यातयामत्वम्' असारत्वमालस्यकारणं भवेत्,—सति हि भेदे भिन्नदेवताकं कर्माऽऽलस्यरहितं भवति। तस्माद् 'अयातयामतायै' निःसारत्वरूपालस्यपरिहाराय देवतान्तरं युक्तम् 'इति' उत्तरं ब्रूयात्। न च वायुदेवताकत्वे प्रजापतेः सकाशात् पुरोडाशोऽपगच्छतीति शङ्कनीयम्। वायुप्रजापत्योः कार्यकारणाभावे-नैकत्वे सति वायव्यस्यैव प्राजापत्यत्वात्। तदिदमुच्यते—'यदु वायव्यस्तेन प्रजापते-र्नैति'–इति। नापगच्छतीत्यर्थः।।

वायुप्रजापत्योरेकत्वं मन्त्रसंवादेन दृढयति—

तदुक्तमृषिणा–पवमानः प्रजापतिरिति ।।१२।।

हिन्दी—(वायु और प्रजापति की एकता को मन्त्र द्वारा दृढ़ कर रहे हैं—) **तदुक्तम्**

ऋषिणा ऋषि के द्वारा (इस वायु और प्रजापति की एकता को) कहा गया है—**पवमानः प्रजापतिः** वायु प्रजापति है।

सा० भा०—'त्वष्टारमग्रजां गोपाम्' इत्यस्या ऋचश्चतुर्थपादे यः 'पवमानः' वायुः, स प्रजापतिरिति तादात्म्यं सामानाधिकरण्येन दर्शितम्[१]॥

पूर्वं भरतद्वादशाहो व्यूहळद्वादशाहश्चेति द्वौ द्वादशाहभेदावुक्तौ। प्रकारान्तरेणापि सत्ररूपोऽहीनरूपश्चेत्येवं द्विविधो द्वादशाहः। तत्र सत्रपक्षे विशेषान् विधत्ते—

(सत्रद्वादशाहविषये विशेषः)

सत्रमु चेत् संन्युप्याग्नीन् यजेरन् सर्वे दीक्षेरन् सर्वे सुनुयुर्वसन्तमभ्युदवस्यत्यूर्ग्वै वसन्त इषमेव तदुर्जमभ्युदवस्यति ।।१३।।

हिन्दी—(सत्ररूप द्वादशाह के विशेषों को कह रहे हैं—) **सत्रमु चेत्** यदि सत्र के रूप में (द्वादशाह का सम्पादन करे तो) **अग्नीन् संन्युप्य** (यजमानों की सभी) अग्नियों को एकत्रित करके **सर्वे यजेरन्** सभी मिलकर यजन करें और **सर्वे दीक्षेरन्** सभी मिलकर दीक्षा ग्रहण करें। **सर्वे सुनुयुः** सभी मिलकर सोमाभिषव करें। **वसन्तम् अभ्युदवस्यति** वसन्त को अभिलक्षित करके उदवसानीय (समापन वाली) इष्टि करनी चाहिए; क्योंकि **वसन्तः ऊर्ग्वै इषमेव** वसन्त ही रस और इष (अन्न) रूप है। **तद्** उसके (वसन्त में समापन करने से) **अभ्युदवस्यति** (अन्न और रस से ही) समापन करता है।

सा० भा०—'सत्रमु चेत्' यद्ययं द्वादशाहः सत्ररूपो भवेत्, तदानीं सत्रस्य बहुयजमानत्वात् सर्वेषां यजमानानामग्नीन् 'संन्युप्य' संभूयैकत्वेनावस्थाप्य, तस्मिन् सर्वे यजेरन्। यजमानत्वादेव सर्वेऽपि 'दीक्षेरन्' दीक्षां कुर्युः। 'य एव यजमानास्त एव ऋत्विजः'—इत्युक्तत्वेन 'सर्वे' यजमानाः 'सुनुयुः' ऋत्विक्कार्यमभिषवं कुर्युः। वसन्तर्तुमभिलक्ष्य 'उदवस्यति' उदवसानीयां समाप्तिकालीनामिष्टिमनुतिष्ठेत्, वसन्तर्तौ समापयेदित्यर्थः। वसन्तकाले सति फलानां गृहेष्वागमनेन रसबाहुल्यात् 'ऊर्ग्वै' रस एव वसन्तः। तथा सत्येतस्मिन्ने तत् समापनेन 'इषम्' अन्नम्, 'ऊर्जं' रसं वाऽभिलक्ष्य 'उदवस्यति' यजमानसंघो द्वादशाहं समापयति॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (एकोनविंशाध्याये) चतुर्थः खण्डः ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकोनविंश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) त्वष्टारमग्रजां गोपां पुरोयावान मा हुवे ।
इन्दुरिन्द्रो वृषा हरिः पवमानः प्रजापतिः ॥ (ऋ० ९.५.९)

अथ पञ्चमः खण्डः

सा० भा०—अथ व्यूहळ्द्वाशाहे यदेतद्व्यूहळत्वम्, तदेतत् प्रशंसितुमाख्यायिकामाह—

(व्यूढद्वादशाहे व्यूढत्वप्रशंसनार्थमाख्यायिका)

छन्दांसि वा अन्योन्यस्यायतनमभ्यध्यायन्-गायत्री त्रिष्टुभश्च जगत्यै चायतनमभ्यधायत्, त्रिष्टुब्गायत्र्यै च जगत्यै च, जगती गायत्र्यै च त्रिष्टुभश्च, ततो वा एतं प्रजापतिर्व्यूहळच्छन्दसं द्वादशाहमपश्यत्; तामहरत्, तेनायजत तेन स सर्वान् कामांश्छन्दांस्यगमयत् ।। १ ।।

हिन्दी—(अब व्यूढ द्वादशाह में व्यूढत्व की प्रशंसा कर रहे हैं—) **छन्दांसि वै** छन्दों ने **अन्योन्यस्य आयतनम्** परस्पर एक दूसरे के स्थान को **अभ्यध्यायन्** लेना चाहा। **गायत्री** गायत्री ने **त्रिष्टुभः च जगत्यै च** त्रिष्टुप् और जगती के **आयतनम् अभ्यध्यायत्** स्थान को प्राप्त करना चाहा। **त्रिष्टुब् गायत्र्यै च जगत्यै च** त्रिष्टुप् ने गायत्री और जगती का तथा **जगती गायत्र्यै च त्रिष्टुभः च** जगती ने गायत्री और त्रिष्टुप् का (स्थान प्राप्त करना चाहा)। **ततः प्रजापतिः** तब प्रजापति ने **एतं व्यूढच्छन्दसं द्वादशाहम् अपश्यत्** इस व्यूढच्छन्द वाले द्वादशाह का दर्शन किया। **तमाहरत्** उसको इकट्ठा किया और **तेन अजयत्** उससे यजन किया **तेन** उससे **सः** उस (प्रजापति) ने **सर्वान् कामान्** सभी कामनाओं को **छन्दांसि अगमयत्** छन्दों को प्राप्त कराया।

सा० भा०—गायत्री, त्रिष्टुब्जगतीत्येतानि त्रीणि च्छन्दांसि, अन्योन्यस्यायतनम् 'अभि' आप्तुम् 'अध्यायन्' स्वस्वमनस्यचिन्तयन्। तेषां च त्रयाणां छन्दसां क्रमेण सवनत्रयं स्थानम्। तत्र गायत्री त्रिष्टुब्जगत्योः स्थाने माध्यंदिनसवनतृतीयसवने ध्यातवती। त्रिष्टुप्स्वस्थानव्यतिरिक्तं स्थानद्वयमभ्यध्यायत्। तथा जगत्यपि। 'ततः' प्रजापतिश्छन्दसामभिलाषं दृष्ट्वा, तत्सम्पादनक्रमेण 'एतं व्यूहळच्छन्दसं द्वादशाहमपश्यत्'। स्वस्वस्थानविपरीतत्वेनोढानि स्थानान्तरे प्रक्षिप्तानि च्छन्दांसि यस्मिन् द्वादशाहे, सोऽयं 'व्यूहळच्छन्दाः'। तादृशं द्वादशाहं दृष्ट्वा, तत्साधनान्याहृत्य, तेनेष्ट्वा, 'सः' प्रजापतिस्तेषामपेक्षितान् स्थानविपर्यासलक्षणान् 'सर्वान्' 'कामान्' गायत्र्यादिच्छन्दांसि प्रापितवान्।।

वेदनं प्रशंसति—

सर्वान् कामान् गच्छति य एवं वेद ।। २ ।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **सर्वान् कामान् गच्छति** सभी कामनाओं को प्राप्त करता है।

सा० भा०—इदानीं व्यूहनं विधत्ते—

(व्यूढद्वादशाहे व्यूहनविधानम्)

छन्दांसि व्यूहत्ययातयामतायै ।।३।।

हिन्दी—(अब व्यूहन का विधान कर रहे हैं—) **अयातयामतायै** निःसाररूप आलस्य के परिहार के लिए **छन्दांसि व्यूहति** छन्दों को स्थानविपर्यास पूर्वक रखता है।

सा० भा०—'छन्दांसि' गायत्र्यादीनि 'व्यूहति' तत्तदायतनविपर्यासेनावस्थापयेत्। तच्च व्यूहनम् 'अयातयामतायै' असारत्वप्रयुक्तालस्यपरिहाराय भवति।।

उक्तव्यूहनमनूद्य प्रशंसति—

छन्दांस्येव व्यूहति; तद्यथाऽदोऽश्वैर्वाऽनडुद्भिर्वाऽन्यैरन्यैश्रान्ततरैरश्रान्ततरैरुपविमोकं यान्त्येवमेवैतच्छन्दोभिरन्यैरन्यैरश्रान्ततरैरश्रान्ततरैरुपविमोकं स्वर्गं लोकं यन्ति; यच्छन्दांसि व्यूहति ।।४।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त व्यूहन को कह कर उसका व्याख्यान कर रहे हैं—) **छन्दांसि एव व्यूहति** (गायत्री इत्यादि) छन्दों का (द्वादशाह में) व्यूहन करता है। लोक में **अदः** यह (निदर्शन) है कि **तद्यथा** जिस प्रकार **अश्वैः वा अनडुभिः वा** अश्वों अथवा रथों से (दूर स्थान पर गमन करता हुए राजा) **उपविमोकम्** श्रान्त अश्वों को हटा कर **अन्यैः अन्यैः अश्रान्ततरैः अश्रान्ततरैः** दूसरे-दूसरे अश्रान्त (अश्वों) से **यान्ति** गमन करते हैं। **एवमेव** उसी प्रकार **यत् छन्दांसि व्यूहति** जो छन्दों का व्यूहन करता है वह **उपविमोकम्** (श्रान्त छन्दों को) मुक्त करके **अन्यैः अन्यैः अश्रान्ततरैः अश्रान्ततरैः छन्दोभिः** अश्रान्त अन्य अन्य छन्दों द्वारा **स्वर्गं लोकं यन्ति** स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं।

सा० भा०—गायत्र्यादीनि 'छन्दासि' अस्मिन् द्वादशाहविशेषे 'व्यूहत्येव' न त्वत्र संदेहः कार्यः। 'तत्' तस्मिन् व्यूहने 'यथा' लोके 'अदः' निदर्शनं तन्न्यायो द्रष्टव्यः। किं निदर्शनमिति? तदुच्यते—ये राजानो रथमारुह्य तत्रत्यैरश्वैर्दूरदेशं गच्छन्ति, ते राजानो योजने योजने 'उपविमोकं' श्रान्तानश्वान् उपविमुच्योपविमुच्य 'अन्यैरन्यैः' पुनः पुनर्नूतनैर्दूरदेशं यान्ति। तत्रोपपत्तिः 'अश्रान्ततरैः'—इति, अतिशयेन श्रमरहितैः, पौनःपुन्यं द्योतयितुं वावृत्तिश्च। लाङ्गले घटीयन्त्रे वा तदा तदा श्रान्तानश्वाननडुहो वा विमुच्य विमुच्य नूतनैरनडुद्भिः प्रवर्तन्त एवमेवात्रापि च्छन्दसां स्थानविपर्यासे सति स्वस्वस्थाने श्रान्तानि च्छन्दांसि पुनः पुनरुपविमुच्य, तदा तदा नूतनैश्छन्दोभिः सत्रिणः स्वर्गं लोकं गच्छन्ति। यदा छन्दांसि व्यूहति, तदानीमेतदिति द्रष्टव्यम्।।

अथ बृहद्रथंतरसामनी उपाख्याने प्रशंसति—

(बृहद्रथन्तरसामप्रशंसनम्)

इमौ वै लोकौ सहाऽऽस्ताम्; तौ व्यैताम्, नावर्षन्न समतपत्, ते पञ्चजना न समजानत, तौ देवाः समानयंस्तौ संयन्तावेतं देवविवाहं व्यवहेतां, रथंतरणैवेयममूं जिन्वति, बृहताऽसाविमाम् ।।५।।

हिन्दी—(अब बृहद् और रथन्तर साम की उपाख्यान से प्रशंसा कर रहे हैं—) **इमौ लोकौ सह आस्ताम्** ये दोनों (पृथिवीलोक और स्वर्गलोक) लोक पहले एक साथ अवस्थित थे। पुनः **तौ व्यैताम्** वे दोनों अलग हो गये। तब **न अवर्षत् न समतपत्** (द्युलोक में विद्यमान मेघ) ने न तो वर्षा किया और न (सूर्य) सम्यक् प्रकार से धूप किया। **ते पञ्चजनाः न समजानत** (इससे अन्धकाराच्छादित) ये (मनुष्यादि) पञ्चजन परस्पर (एक दूसरे) को नहीं जान पाये। तब **देवाः** देवताओं ने **तौ** उन दोनों (लोकों) को **समनयन्** परस्पर मिला दिया। **संयन्तौ तौ** परस्पर मिले हुए उन दोनों (लोकों) ने **एतं देवविवाहं व्यवहेताम्** इस देवविवाह (उचित विवाह) को कर लिया। **रथन्तरेण इयम्** रथन्तर द्वारा यह (पृथिवी), **अमूम्** उस (द्यौ) को और **बृहता** बृहद् द्वारा **सा इमाम्** वह (द्युलोक) इस (पृथिवी) को **जिन्वति** प्रसन्न करता है।

सा० भा०—'इमौ' भूलोकस्वर्गलोकौ पूर्वस्मिन् काले 'सहैवास्ताम्' अत्यन्तं प्रीतियुक्तावेकत्रैवावस्थितौ। कदाचित् तावुभौ केनापि निमित्तेन 'व्यैतां' वियोगं प्राप्तवन्तौ परस्परविरोधेन सहवासं परित्यज्य दूरदेशेऽवस्थितौ। तदानीं द्युलोकवर्ती पर्जन्यो 'नावर्षत्' वृष्टिं न संपादितवान्। आदित्यश्च द्युलोकवर्ती 'न समतपत्' आतपरूपं प्रकाशं न कृतवान्। तदानीं 'ते पञ्चजनाः' पूर्वोक्ताः[१] देवमनुष्यादयः पञ्चविधाः प्राणिनः 'न समजामत' अन्धकारग्रस्ताः सन्तः कमपि मार्गमज्ञात्वा परस्परैकमत्यरहिता अभवन्। तदानीं तादृशान्[२] प्रणिनो दृष्ट्वा 'तौ' उभौ लोकौ 'समनयन्' परस्परं संगतिं प्रापितवन्तः। 'तौ' उभौ लोकौ 'संयन्तौ' परस्परं संगमं प्राप्तवन्तौ। 'एतं' परस्परोपकाररूपं 'देवविवाहं' देवानामुचितं विवाहं 'व्यवहेतां' विविधत्वेन कृतवन्तौ। लोकेऽपि व्रिवाहो नाम परस्परविपर्यासेन सम्बन्धप्रापणम्। तथाहि—वरस्य पिता स्वपुत्रं कन्यापितुर्जामातृत्वेन सम्बध्यति। कन्यापिता च स्वपुत्रीं वरपितुः स्नुषात्वेन सम्बन्धयति। तदिदं विपर्यासेन सम्बन्धनयनं 'विवाहः'। तयोश्च विवाहे परस्परं गृहभोजनं वस्त्रप्रदानाद्युपचारं च कुर्वन्ति। एवमेतौ लोकौ परस्परामुपकुरुतः। तत्र 'इयं' भूमिः साम्ना 'रथंतरेण' तन्नामकेनैव 'अमूं' दिवं 'जिन्वति' प्रीणयति। 'असौ' द्यौश्च 'इमां' भूमिं 'बृहता' साम्ना जिन्वति। तत एव सर्वत्रेयं वै रथंतरमसौ बृहदिति लोकद्वयरूपेण सामद्वयं स्तूयते।।

परस्परोपकारान् दर्शयति—

(बृहद्ररन्थरयो परस्परोपकारः)

नौधसेनैवेयममुं जिन्वति, श्यैतेनासाविमां; धूमेनैवेयममूं जिन्वति,

वृष्ट्याऽसाविमां; देवयजनमेवेयममुष्यामदधात्, पशूनसावस्याम् ।।६।।

हिन्दी—(दोनों लोकों के अन्य परस्पर परोपकार को कह रहे हैं—) **नौधसेन इयम् अमूम्** नौधस (साम) द्वारा यह (पृथिवी) उस (द्युलोक) को और **श्यैतेन असौ इमाम्** श्यैत (साम) से वह (द्युलोक) इस (पृथिवी) को **जिन्वति** प्रसन्न करता है। **धूमेन इयम् अमूम्** धूम से यह (पृथिवी) उस (द्युलोक) को और **वृष्ट्या असौ इमाम्** वृष्टि द्वारा वह (द्युलोक) इस (पृथिवी) को **जिन्वति** प्रसन्न करता है। **इयम्** इस (पृथिवी) ने **अमुष्याम्** उस (स्वर्गलोक) में **देवयजनम् अदधात्** देवों के यजन योग्य स्थान को निर्मित किया और **असौ** इस (आदित्य) ने **अस्याम्** इस (पृथिवी) पर **पशून्** पशुओं को (बनाया)।

सा० भा०—'इममिन्द्र सुतं पिब' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं साम 'नौधसम्'[1]। 'त्वामिदा ह्यो नरः' इत्यस्यामृच्युत्पन्नं साम 'श्यैतम्'[2]। ताभ्यां लोकयोः परस्परं प्रीतिः। भूमावग्निजन्यो धूमो दिवि गच्छति। द्युलोकात् समुत्पन्ना वृष्टिरुर्व्यां गच्छति। सोऽयं धूमवृष्टिभ्यां परस्परोपकारः। 'देवयजनं' देवयागयोग्यं कंचिद्देशम् 'इयं' भूमिः 'अमुष्यां' दिवि 'अदधात्'। 'असौ' च द्यौः पशून् 'अस्या' भूमावदधात्। अतो देवयजनपशुभ्यां परस्परोपकारः।।[3]

तत्र देवयजनशब्देन विवक्षितमर्थं व्याचष्टे—

(देवयजनशब्दस्य विवक्षितार्थकथनम्)

एतद्वा इयममुष्यां देवयजनमदधाद् यदेतच्चन्द्रमसि कृष्णमिव ।।७।।

हिन्दी—(देवयजन शब्द से विवक्षित अर्थ का व्याख्यान कर रहे हैं—) **इयम्** इस (पृथिवी) ने **अमुष्यम्** उस (स्वर्ग) में **यद् एतत् चन्द्रमसि कृष्णमिव** जो यह चन्द्रमा में काला धब्बा है, **एतद् देवयजनम् अदधात्** उसको देवों के यजन योग्य स्थान को बनाया।

सा० भा०—चन्द्रमण्डले शशमृगादिशब्देन लोके व्यवह्रियमाणं यदेतत् 'कृष्णमिव' कृष्णवर्णमिव रूपं दृश्यते, एतदेव 'देवयजनं' देवयागयोग्यं वस्तु, 'इयं' भूमिः 'अमुष्यां' दिवि स्थापितवती।।

चन्द्रमसि कृष्णरूपप्रसङ्गाद् यागेषु मुख्यत्वेन शुक्लपक्षं विधत्ते—

तस्मादापूर्यमाणपक्षेषु यजन्त एतदेवोपेप्सन्ते[1] ।।८।।

---

(१) ऋ० १.८४.४। छ०आ० ३.१.५.४ ऋचि गे०गा० ६.१.३७ नौधसं (योनिसाम); उ० आ० १.१.१३.१-२ ऋचोः प्रगाथतृचे ऊ०गा० १.१.६ नौधसं (स्तोत्रम्)।

(२) ऋ० ८.९९.१। 'त्वामिदा'—छ०आ० ४.१.१.१० नात्र श्यैतमुपलभ्यते। अभि प्र वः'—इति छ०आ० ३.१.५.३ ऋचि गे०गा० ६.१.३ श्यैतं (योनिसाम); उ०आ० २.१.५; १३.२ ऋचोः प्रगाथतृचे ऊ०गा० २.१.३ श्यैतं (स्तोत्रम्)। 'मानं त्विहं'—आ०ब्रा० १.२६। ता०ब्रा० ११.९.५ सा०आ० अपि द्रष्टव्यम्।

(३) सामब्राह्मणेऽपि एवमेव। ता०ब्रा० ७.१०.१-४; ११.९५।

हिन्दी—**तस्मात्** इसी कारण **आपूर्यमाणपक्षेषु** शुक्लपक्षों में **यजन्तः** यजन करते हुए (यजमान) **एतदेव** इसी (चन्द्रमण्डल) को **उपेप्सन्ते** प्राप्त करने की कामना करते हैं।

सा०भा०—यस्माद् यागयोग्यं कृष्णं चन्द्रमसि स्थितम्, 'तस्मात्' कारणाच्छुक्लपक्षेषु यागं कुर्वन्तो यजमानाः 'एतदेव' चन्द्रमण्डलमुपाप्तुमिच्छन्ति। दिने दिने वर्धमानया कलया सर्वतः पूर्यमाणं चन्द्रमण्डलमेषु शुक्लपक्षेषु, तेन 'आपूर्यमाणपक्षाः'। कर्मिणां दक्षिणमार्गेण चन्द्रमण्डलप्राप्तिः सर्वासूपनिषत्सु प्रसिद्धा[२]॥

देवयजनशब्दं व्याख्याय पशुशब्दं व्याचष्टे—

(पशुशब्दस्य विवक्षितार्थकथनम्)

ऊषानसावस्यां तद्धापि तुरः कावषेय उवाचोषः पोषो जनमेजय केति; तस्माद्धाप्येतर्हि गव्यं मीमांसमानाः पृच्छन्ति,–सन्ति तत्रोषाः ३ इति। ऊषो हि पोषोऽसौ वै लोक इमं लोकमभिपर्यावर्त्तते ।।९।।

हिन्दी—(देवयजन शब्द का व्याख्यान करके पशु शब्द का व्याख्यान कर रहे हैं—) **असौ** उस (स्वर्गलोक) ने **अस्याम्** इस (पृथिवी) पर **ऊषान्** पशुओं को (बनाया)। **तद् ह अपि** जैसा कि **तुरः कावषेयः** (महर्षि) कवष के पुत्र तुर ने (स्थानविशेष में ऊष शब्द पशु के अर्थ में प्रसिद्ध होने से) **उवाच** (जनमेजय से) कहा कि **जनमेजय** हे जनमेजय! **ऊषः पोषः केति** क्या ऊष शब्द पोष (पुष्टि के हेतुभूत पशु) का वाचक है **तस्मात्** इसी कारण **गव्यं मीमांसमानाः** गोरस की मीमांसा करते हुए **पृच्छन्ति** लोग पूछते हैं कि **सन्ति तत्र ऊषाः** क्या वहाँ गाय है? इसलिए **ऊषः वै पोषः** ऊष शब्द पशु का वाचक है। **असौ वै लोकः** वह (स्वर्ग) लोक **इमं लोकम् अभि** इस (पृथिवी) लोक के प्रति **अभिपर्यावर्तते** पर्यावर्तित होता है।

सा०भा०—'असौ' द्युलोकः 'अस्यां' भूमौ 'ऊषान्'[३] आदधातीत्यध्याहारः। देशान्तरप्रसिद्धिमुपजीव्य पशुशब्दस्योषशब्दो व्याख्यानम्। 'वश कान्तौ'—इत्यस्माद्धातोरूषशब्दो व्याख्यानाम्। 'वश कान्तौ'–इत्यस्माद्धातोरूषशब्दो निष्पन्नः। 'ऊषाः' कमनीयाः, पशूनां चमरादीनां कमनीयत्वं प्रसिद्धम्। ऊषशब्दव्यवहार एव 'तद्धापि'—इत्यादिना प्रदर्श्यते। यस्मादूषः पशुरिति देशविशेषे पर्यायत्वेन प्रसिद्धौ, 'तद्धापि' तस्मादेव कारणात् तुरनामकः कश्चिन्महर्षिः कवषस्य पुत्रः, जनमेजयनामानं राजानं संबोध्यैवमुवाच,—हे जनमेजय क 'ऊषः पोषः' पोषशब्दाभिधेयः, पुष्टिहेतुः पशुरिति। यस्मात्तु ऊषशब्दं पशुषु

(१) यजन्ते उपेप्सन्तः'—इतिं चैतदधिकरणसङ्गृहीतमूलमातृकासु पाठः।

(२) छ०उप० ५.१०.४; बृ०उप० ५.१.९; ६.२.१६।

(३) इति कीथमहोदयः।

व्याजहार, 'तस्माद्धि' तस्मादेव कारणादिदानीमपि 'गव्यं' 'मीमांसमानाः' केचिद्देशविशेषेषु गोरसं क्षीरादिकं विचारयन्त एवं पृच्छन्ति—'तत्र' तेषु देशेषु, 'किमूषा३ः सन्तीति' गोविषयः प्रश्नस्तेषामभिप्रेतः। प्रश्नार्था प्लुतिः। यस्मादूषशब्दवाच्यः पोषहेतुर्गवादिरूपः पशुः, तस्मादूषशब्देन पशुशब्दव्याख्यानमुचितम्। 'असौ' द्युलोकः 'इमं' भूलोकमभिलक्ष्य पर्यावर्त्तते, तेन पशुनोपकृतवानित्यर्थः॥

इत्थं बृहदरथंतरप्रसङ्गेन द्यावापृथिव्योः परस्परमुपकारं बहुधा प्रपञ्च्योपसंहरति—

ततो वै द्यावापृथिवी अभवतां न द्यावाऽन्तरिक्षान्नान्तरिक्षाद् भूमिः॥१०॥

हिन्दी—(अब इस कथन का उपसंहार कर रहे हैं—) **ततः वै** तब (परस्पर उपकार करने के कारण) **द्यावापृथिवी अभवताम्** द्युलोक और पृथिवीलोक (परस्पर अलग-अलग होकर भी प्राणियों का उपकार करने वाले) हुए। **न द्यावा अन्तरिक्षात्** न द्युलोक अन्तरिक्ष से और **न अन्तरिक्षाद् भूमिः** न तो अन्तरिक्ष से भूमि अलग है (अर्थात् अन्तरिक्ष में अन्तर्भाव है)।

सा०भा०—'ततो वै' तस्मादेव परस्परोपकारत्वकारणाद् द्यावापृथिव्यौ वियुक्ते अपि परस्परैकमत्येन प्राण्युपकारिण्यावभवताम्। न च तत्रान्तरिक्षलोकः कुत्र वर्तत इति शङ्कनीयम्। 'द्यावा' द्युलोको नान्तरिक्षलोकादन्य इति शेषः। भूमिर्नान्तरिक्षादन्या। उभयोर्द्यावापृथिव्योरन्तरिक्षेण संबध्यैवावस्थानात्। तस्माद् वर्णितयोर्द्यावापृथिव्योरेवान्तरिक्षस्यान्तर्भाव इत्यभिप्रायः[1]॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः तृतीयाध्याये (एकोनविंशाध्याये) पञ्चमः खण्डः ॥५॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकोनविंश अध्याय के पञ्चम खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ षष्ठः खण्डः

सा०भा०—अथास्मिन् द्वादशाहमध्ये पृष्ठ्यषडहे पृष्ठस्तोत्रोपयुक्तानि[2] सामानि विधातुमाख्यायिकामाह—

(पृष्ठस्तोत्रोपयुक्तसाम्नां विधानम्)

(आख्यायिकाद्वारा वैरूपसाम्न उत्पत्तिकथनम्)

बृहच्च वा इदमग्रे रथंतरं चास्तां; वाक्च वै तन्मनश्चाऽऽस्तां; वाग्वै

(१) न चेत्यादिग्रन्थो मूलाभिप्रायविरुद्ध एव गम्यते।

रथंतरं; मनो बृहत्, तद् बृहत् पूर्वं ससृजानं रथंतरमत्यमन्यत; तद्रथंतरं गर्भमधत्त, तद्वैरूपमसृजत ।।१।।

हिन्दी— (द्वादशाह के मध्य पृष्ठ्यषडह में पृष्ठ्य स्तोत्र के उपयुक्त सामों का विधान करने के लिए आख्यायिका को कह रहे हैं—) **अग्रे** इस (वैरूप इत्यादि साम) से पहले **इदम् बृहत् च रथन्तरं च आस्ताम्** यह बृहत् और रथन्तर (नामक साम) थे। **वाक् च वै तन्मनः च आस्ताम्** (वे दोनों साम) वाक् और मन रूप से उत्पन्न हुए। **वाग् वै रथन्तरम्** वाणी ही रथन्तर रूप है और **मनः बृहत्** मन बृहत् है। **तत्** इनमें **बृहत् पूर्वं ससृजानम्** (नर रूप) बृहत् पहले सृष्टि करने के लिए उद्यत होते हुए **रथन्तरम् अत्यमन्यत्** (स्त्रीरूप) रथन्तर को न्यून समझा। **तत्** उससे (बृहत्साम ने रथन्तर में स्त्रीत्व बुद्धि से संयोग किया)। **रथन्तरं गर्भम् अधत्त** रथन्तर ने गर्भ धारण किया और **तद् वैरूपम् असृजत्** उसने वैरूप (नामक साम) की सर्जना किया।

सा०भा०—ये बृहद्रथंतरे पूर्वम् 'इमौ वै लोकौ' इत्यादिना संस्तुते ते उभे एव 'इदं' वैरूपादि सामजातमन्तर्भाव्य तदुत्पत्तेः पूर्वमास्ताम्। 'इदं' वैरूपादि सामजातमुत्पत्तेः 'अग्रे' पूर्वं नासीत्। ते च सामनी मनोवाग्रूपे अभवताम्। तत्र वागेव रथंतरं साम, मनो बृहत्साम। तदेतन्मनोरूपं बृहत्साम 'ससृजानं' सृष्टिं कर्तुमुद्युक्तम्। 'तत्' तस्मा एव सृष्टिसिद्धये 'पूर्वं' प्रथमं वाग्रूपं 'रथंतर' साम 'अत्यमन्यत'। वाग्रूपत्वादेव स्त्रीरूपत्वम्। मनोरूपत्वात् स्वस्य पुरुषरूपत्वम्। तस्मादतिशयितं तत्स्वरूपम्; तत्र बृहत् साम स्वस्य पुरुषत्वाभिमानेन रथंतरसाम्नि स्त्रीत्वभावनया सङ्गमकरोदित्यर्थः। ततः स्त्रीस्थानीयं 'तद्रथंतरं' साम स्वोदरमध्ये गर्भमधत्त; धृत्वा च वैरूपाख्यं पुत्रस्थानीयं सामान्तरमसृजत।।

वैरूपस्योत्पत्तिमभिधाय वैराजसाम्न उत्पत्तिं दर्शयति—

(वैराजसाम्न उत्पत्तिकथनम्)

ते द्वे भूत्वा रथंतरं च वैरूपं च बृहदत्यमन्येताम्, तद्बृहद्गर्भमधत्त, तद्वैराजमसृजत ।।२।।

हिन्दी—(वैरूप साम की उत्पत्ति को कह कर अब वैराज साम की उत्पत्ति को कह रहे हैं—) **ते रथन्तर च वैरूपं च** वे रथन्तर और वैरूप **द्वे भूत्वा** दो होकर **बृहद् अत्यमन्येताम्** बृहत् को न्यून समझने लगे। **तद् बृहद् गर्भम् अधत** उससे बृहत् ने गर्भ धारण किया। **यद् वैराजम् असृजत** उस (बृहत्) ने वैराज (नामक साम) को उत्पन्न किया।

सा०भा०—मातृस्थानीयं रथंतरं, पुत्रस्थानीयं वैरूपं चेति, 'ते' सामनी 'द्वे भूत्वा' यद्बृहत्सामैकाकित्वेन वर्तमानमस्ति, तदत्यमन्येतां, तस्माद् बृहतोऽप्येकाकिनोऽतिशयेन मन्येतां न्यूनत्वेन बृहत्साम्नि स्त्रीत्वबुद्धिं कृत्वा संयोगमकुरुताम्। तत्र बृहत्साम गर्भं धृत्वा वैराजाख्यं सामान्तरमसृजत।।

शाक्वरसाम्न उत्पत्तिं दर्शयति—

(शाक्वरसाम्न उत्पत्तिकथनम्)

ते द्वे भूत्वा बृहच्च वैराजं च, रथंतरं च वैरूपं चात्यमन्येतां तद्रथंतरं गर्भमधत्त, तच्छाक्वरमसृजत ।।३।।

हिन्दी—(अब शाक्वर साम की उत्पत्ति को दिखला रहे हैं—) **ते बृहत् च वैराजं च** वे बृहत् और वैराज **द्वे भूत्वा** दो होकर **रथन्तरं च वैरूपं च** रथन्तर और वैरूप को **अत्यमन्येताम्** न्यून मानने लगे। (और न्यून समझकर उससे संयोग किया) **तद् रथन्तरं गर्भम् अधत्त** तब रथन्तर ने गर्भ धारण किया। **तत् शाक्वरम् असृजत्** उसने शाक्वर को उत्पन्न किया।

सा० भा०—वैराजसाम्नः सृष्टेरूर्ध्वं तद्युक्तस्य बृहत्साम्नो न्यूनत्वेऽपगते, सति 'ते' सामनी 'द्वे भूत्वा' मिलित्वा वैरूपसहितस्य रथंतरस्य वाग्रूपत्वेन स्त्रीत्वमभिप्रेत्य स्त्रीत्वम् 'अत्यमन्येतां' स्वाधिकारं मत्वा संयोगमकुरुताम्। ततो रथंतरं साम गर्भं धृत्वा शाक्वराख्यं सामान्तरमसृजत।।

रैवतं साम्न उत्पत्तिं दर्शयति—

(रैवतसाम्न उत्पत्तिकथनम्)

तानि त्रीणि भूत्वा रथंतरं व वैरूपं च शाक्वरं च, बृहच्च वैराजं चात्यमन्यन्त तद्, बृहद्गर्भमधत्त, तद्रैवतमसृजत ।।४।।

हिंन्दी—(अब रैवत साम की उत्पत्ति को दिखला रहे हैं—) **रथन्तरं च वैरूपं च शाक्वरं च** रथन्तर, वैरूप और शाक्वर **तानि त्रीणि भूत्वा** वे तीन होकर **बृहत् च वैराजं च** बृहत् और वैराज को **अत्यमन्यन्त** न्यून समझने लगे (और संयोग किया)। **तद् बृहद् गर्भम् अधत** उससे बृहत् ने गर्भ धारण किया। **तद् रैवतम् असृजत्** उस (बृहत्) ने रैवत को उत्पन्न किया।

सा० भा०—मातृस्थानीयं 'रथन्तरं' पुत्रस्थानीये 'वैरूपं' 'शाक्करं' चेति; एवं त्रीणि भूत्वा वैराजेन युक्तस्य बृहत्साम्नो न्यूनत्वबुद्ध्या 'तदत्यमन्यन्त'। तस्मादतिशयं पुरुषस्थानीयं स्वपक्षे मत्वा संयोगमकुर्वत। ततो बृहद्गर्भमधत्त। गर्भं धृत्वा रैवताख्यं सामन्तरमसृजत।।

उक्तानां षण्णां साम्नां पृष्ठस्तोत्रसाधनत्वं दर्शयति—

(वैरूपादिसाम्नां पृष्ठस्तोत्रसाधनत्वकथनम्)

तानि त्रीण्यन्यानि त्रीण्यन्यानि षट्पृष्ठान्यासन् ।।५।।

हिन्दी—(पूर्वोक्त छवों सामों की पृष्ठस्तोत्रसाधनता को दिखला रहे हैं—) **तानि त्रीणि अन्यानि** वे तीन (रथन्तर, वैरूप और शाक्वर) एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी

(पृष्ठ्य षडह विषम संख्यक प्रथम, तृतीय और पञ्चम दिनों में) तथा **त्रीणि अन्यानि** तीन (बृहद्, वैराज और रैवत) अन्य साम (रथन्तरादि से) भिन्न होते हुए भी (पृष्ठ्य षडह के सम संख्यक द्वितीय, चतुर्थ और षष्ठ) दिनों में निष्पादक होने के कारण) **षट् पृष्ठानि आसन्** छः पृष्ठ हुए।

सा० भा०—'तानि' पूर्वोक्तानि रथन्तरवैरूपशाक्वराणि 'त्रीणि' सामानि, 'अन्यानि' इतरेभ्यो विलक्षणानि, पृष्ठ्याख्ये षडहे प्रथमतृतीयपञ्चमेष्वयुग्मेष्वहःसु पृष्ठस्तोत्रनिष्पादकान्यासन्। तथा बृहद्-वैराज-रैवतरूपाणि 'त्रीणि' सामानि, 'अन्यानि' रथन्तरादिभ्यो विलक्षणानि भूत्वा, द्वितीयचतुर्थषष्ठेषु युग्मरूपेष्वहःसु पृष्ठस्तोत्रनिष्पादकान्यासन्[1]॥

अथ षड्विधपृष्ठस्तोत्रसामाधारत्वेन षड्विधानि च्छन्दांसि दर्शयति—

(षड्विधपृष्ठस्तोत्रसामाधारत्वेन षड्विधछन्दकथनम्)

तानि ह तर्हि त्रीणि च्छन्दांसि, षट्पृष्ठानि नोदाप्नुवन् स गायत्री गर्भमधत्त, साऽनुष्टुभमसृजत; त्रिष्टुब् गर्भमधत्त, सा पङ्क्तिमसृजत; जगती गर्भमधत्त, साऽतिच्छन्दसमसृजत, तानि त्रीण्यन्यानि त्रीण्यन्यानि षट् छन्दांस्यासन् षट्पृष्ठानि तानि तथाऽकल्पन्त; कल्पते यज्ञोऽपि॥६॥

हिन्दी—(छः प्रकार के पृष्ठस्तोत्र के आधार से छः प्रकार के छन्दों को दिखला रहे हैं—) **तर्हि** तब **तानि त्रीणि छन्दांसि** (छः सामों के होने पर) वे (गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती) तीन छन्द **षट्पृष्ठानि न उदाप्नुवन्** षट् पृष्ठों को नहीं प्राप्त कर सके। **सा गायत्री गर्भम् अधत्त** उस गायत्री ने गर्भ धारण किया और **सा अनुष्टुभम् असृजत** उसने अनुष्टुप् को उत्पन्न किया, **त्रिष्टुभं गर्भम् अधत्त** त्रिष्टुप् ने गर्भ धारण किया और **सा पंक्तिम् असृजत** उसने पंक्ति को उत्पन्न किया और **जगती गर्भम् अधत्त** जगती ने गर्भ धारण किया और **सा अतिच्छन्दम् असृजत** उसने अतिच्छन्दस् को उत्पन्न किया। **तानि त्रीणि अन्यानि** वे (गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती) तीन तथा **त्रीणि अन्यानि** अन्य (अनुष्टुप्, पंक्ति और अतिछन्दस्) तीन–इस प्रकार **षट् छन्दांसि आसन्** छः छन्द हुए। **तानि** वे छः छन्द **षट्पृष्ठानि** छः पृष्ठों को **तथा अकल्पन्त** उसी क्रमानुसार धारण करने में समर्थ हुए। इस प्रकार **यज्ञः अपि कल्पते** (पृष्ठषडह) यज्ञ भी समर्थ होता है।

सा० भा०—'तर्हि' तस्मिन् षट्सामसम्पत्तिकाले गायत्री-त्रिष्टुब्-जगतीरूपाणि 'च्छन्दांसि' त्रिणि भूत्वा 'तानि' पूर्वोक्तानि षट्पृष्ठसामानि 'नोदाप्नुवन्' पृष्ठानां निष्पत्तिं कर्तुं नाशक्नुवन्। ततो गायत्र्यादीनि त्रीण्यपि गर्भं धृत्वा पुनरन्यान्यनुष्टुप्पङ्क्त्यतिच्छन्दोरूपापि

(१) 'रथन्तरपृष्ठान्ययुजानि। बृहत्पृष्ठानीतराणि। तृतीयादिषु पृष्ठ्यस्यान्वहं द्वितीयानि वैरूपवैराजशाक्वररैवतानि'—इति आश्व०श्रौ० ७.५.२-४।

च्छन्दांस्यसृजन्त। ततः 'तानि' सिद्धानि गायत्र्यादीनि 'त्रीणि', 'अन्यानि' पूर्वसिद्धत्वेनैव पृथग्भावात् तान्यासन्। तथैवानुष्टुबादीनि 'त्रीणि', 'अन्यानि' च्छदांसि तदानीमुत्पन्नानीति मिलित्वा षट्छन्दांस्यासन्। ततः षट्संख्याकानि पृष्ठसामानि धारयितुं 'तानि' षट्छन्दांसि 'तथाऽकल्पन्त' तेनैव क्रमेण समर्थान्यभवन्। प्रथमद्वितीयतृतीयेष्वहःसु गायत्रीत्रिष्टुब्जगत्यः पृष्ठस्तोत्रनिष्पादकाश्चतुर्थपञ्चमषष्ठेष्वहःस्वनुष्टुप्पङ्क्त्यतिच्छन्दांसिस्तोत्रनिष्पादकानि। एवं सति यज्ञोऽपि पृष्ठषडहाख्यः[१] कल्पते स्वप्रयोजनाय समर्थो भवति।।

वेदनपूर्वकमनुष्ठानं प्रशंसति—

(वेदनपूर्वकमनुष्ठानप्रशंसनम्)

तस्यै जनतायै कल्पते, यत्रैवमेतां छन्दसां च पृष्ठानां च क्लृप्तिं विद्वान् दीक्षते, दीक्षते ।।७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान के साथ अनुष्ठान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यत्र** जिस (याग) में **एतां छन्दसां पृष्ठानां च** इन छन्दों और पृष्ठों की **क्लृप्तिम् विद्वान्** कल्पना-प्रकार को जानने वाला **दीक्षते** (अपने को) दीक्षित करता है वह **तस्यै जनतायै कल्पते** उस यज्ञ की सभा में समर्थ होता है।

सा० भा०—'यत्र' यस्यां जनतायाम्, 'एवम्' उक्तप्रकारेण गायत्र्यादि 'च्छन्दसां' रथन्तरादि 'पृष्ठानां' चैतां 'क्लृप्तिं' कल्पनाप्रकारं जानीते, स दीक्षां प्राप्नोति। स पुमान् 'तस्यै जनतायै' तस्यां यज्ञसभायां 'कल्पते' समर्थो भवति। अभ्यासोऽध्यायसमाप्त्यर्थः।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-
भाष्ये चतुर्थपञ्चिकायां चतुर्थाध्याये षष्ठः खण्डः ।।६।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकोनविंश अध्याय के षष्ठ खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वरः ।।

।। इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-
चार्यादेशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'–नामभाष्ये
ऐतरेयब्राह्मणस्य चतुर्थपञ्चिकायाः चतुर्थोऽध्यायः
(एकोनविंशोऽध्यायः) समाप्त ।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के एकोनविंश अध्याय की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

---

(१) जै०सू० २.१.५.१३-२९ सू०।

अथ चतुर्थपञ्चिकायाम्
पञ्चमोऽध्यायः
[अथ विंशोऽध्यायः]
प्रथमः खण्डः

सायणभाष्यम्—ज्योतिष्मत्यो भारतो द्वादशाहो दीक्षाकालो याजनं पाशुकं च।।
व्यूढच्छन्दोद्वादशाहप्रशंसा पृष्ठादीनां छन्दसां तत्र क्लृप्तिः।।१।।

इदानीं द्वादशाहक्रतौ प्रायणीयोदयनीयवतिरात्रौ, यच्च दशममहः, तत त्रितयं वर्जयित्वा मध्यगतो यो नवरात्रः, तं विधातुमुपक्रमते—

(नवानामह्नां प्रथमेऽहनि देवतादीनां विधातुमुपक्रमः)

अग्निर्वै देवता प्रथममहर्वहति त्रिवृत्स्तोमो रथंतरं साम गायत्री छन्दः।।१।।

हिन्दी—(अब द्वादशाह क्रतु में प्रायणीय और उदयनीय अतिरात्र तथा दशम दिन को छोड़ कर मध्य वाले नवरात्र का विधान करने के लिए उपक्रम कर रहे हैं—) **अग्निर्वै देवता** अग्नि देवता **प्रथममहः वहति** (नवरात्र के) प्रथम दिन का निर्वहन करते हैं, **त्रिवृतस्तोमः** त्रिवृत स्तोम, **रथन्तरं साम** रथन्तर (नामक) साम और **गायत्री छन्दः** गायत्री (नामक) छन्द (प्रथम दिन का निर्वाहक है)।

सा०भा०—देवतानामग्र्यो योऽयमग्निरस्ति, सोऽयमत्र देवता भूत्वा नवरात्रस्य प्रथममहः 'वहति' निष्पादयति। तथा स्तोमानां मध्ये त्रिवृत्स्तोमः प्रथमस्याह्नो निर्वाहकः; साम्नां मध्ये रथन्तराख्यं साम प्रथमस्याह्नः पृष्ठसामनिर्वाहकम्, छन्दसां मध्ये गायत्रीछन्दः प्रथमस्याह्नो निर्वाहकम्।।

उक्तार्थवेदनं प्रशंसति—

यथादेवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथाछन्दसं राध्नोति य एवं वेद ।।२।।

हिन्दी—(उक्तार्थ ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है, वह **एनेन** इस (ज्ञान) के द्वारा **यथादेवतम् यथास्तोमं यथासाम यथा-छन्दसम्** देवता, स्तोम, साम और छन्द का अतिक्रमण न करके **राध्नोति** समृद्धि को प्राप्त करता है।

सा०भा०—'यः' पुमान् 'एवम्' अग्नित्रिवृद्रथंतरगायत्रीछन्दसां प्रथमेऽहनि देवतात्वं

स्तोमत्वं पृष्ठसामत्वं छन्दस्त्वं च क्रमेण वेद, स पुमान् 'एनेन' वेदनेन "यथादेवतं' तस्याह्न उचितां देवतामनतिक्रम्य, तथा स्तोमसामच्छन्दांस्यप्युचितान्यनातिक्रम्य समृद्धो भवति।।

प्रथमेऽह्नि विनियोज्यान् मन्त्रविशेषानादौ तावल्लक्षणमुखेन संक्षिप्य दर्शयति—

(प्रथमेऽहनि विनियोज्यमन्त्रविशेषलक्षणकथनम्)

यद्वा एति च प्रेति च, तत्प्रथमस्याह्नो रूपम्; यद्युक्तवद् यद्रथवद् यदाशुमद्, यत्पिबवद् यत्प्रथमे पदे देवता निरुच्यते, यदयं लोकोऽभ्युदितो, तद्राथन्तरं, यद्गायत्रं, यत्करिष्यदेतानि वै प्रथमस्याह्नो रूपाणि ।।३।।

हिन्दी—(प्रथम दिन विनियुक्त मन्त्र-विशेषों को सर्वप्रथम लक्षण द्वारा संक्षेप में दिखला रहे हैं—) **यद्वै** जिस मन्त्र में **एति च प्रेति च** आङ् और प्र उपसर्ग हो, **तत् प्रथमस्य अह्नः रूपम्** तो वह प्रथम दिन का रूप (निरूपक) है। **यद् युक्तवद् यद् रथवद् यद् आशुमद् यत्पिबवत्** जो युक्त शब्द वाला, जो रथ शब्द वाला, जो आशु शब्द वाला और जो पिब शब्द से युक्त है तथा **यत् प्रथमे पदे देवता निरुच्यते** जिसके प्रथम पाद में देवता का कथन हुआ है, **यद् अयं लोकः अभ्युदितः** जिसमें इस (भूलोक) को कहा गया हो, **यद् राथन्तरम्** जो रथन्तर (नामक साम वाला हो), **यद् गायत्रम्** जो गायत्री छन्दस्क है तथा **यत् करिष्यत्** जो कृ धातु के भविष्यत्काल वाले रूप से युक्त हो—**एतानि वै प्रथमस्य अह्नः रूपम्** ये प्रथम दिन के रूप (लक्षक) हैं।

सा०भा०—'यद्वै' यस्मिन्नेव मन्त्रे 'एति च' आकारस्वरनिर्देशार्थमिति चशब्द उपरि प्रयुक्तः। उपसर्गेषु मध्ये योऽयमाङ् अस्ति, सोऽयमेतिपरो निर्दिश्यते। तथा प्रेत्युपसर्गनिर्देशः। आ प्रेत्यनयोरुपसर्गयोरन्यतर उपसर्गो यस्मिन् मन्त्रेऽस्ति, 'तत्' मन्त्रस्वरूपं प्रथमस्याह्नो 'रूपं' लक्षणमित्यर्थः। तथा 'यत्' मन्त्रस्वरूपं 'युक्तवत्' युजिधातूपेतं; 'रथवत्' रथशब्दोपेतम्, 'आशुमत्' आशुशब्दोपेतं, 'पिबवत्' पिबतिधातूपेतम्। तथा यस्य मन्त्रस्य प्रथमे पादे देवता 'निरुच्यते' निर्दिश्यते, तथा 'अयं लोकः' भूलोकः 'अभ्युदितः' कथितो भवति। तथा 'यद्' 'राथंतरं' रथंतरसामसंबन्धि, गायत्रं' गायत्रीछन्दसः संबन्धि, गायत्रं साम वा। 'करिष्यत्' करोतेर्धातोर्भविष्यत्प्रत्ययान्तम्, ईदृशं 'यद्' यस्मिन्। एतानि वै सर्वाण्यपि 'प्रथमस्याह्नो रूपाणि' निरूपकाणि, लक्षणानीत्यर्थः।।

एवं लक्षणमुखेन मन्त्रविशेषान् विधाय प्रतीकोदाहरणेन विस्पष्टं विधत्ते—

(प्रथमेऽनि विनियोज्यमन्त्रप्रतीकानि)

'उप प्रयन्तो अध्वरमिति' प्रथमस्याह्न आज्यं भवति ।।४।।

हिन्दी—(लक्षण द्वारा प्रथम दिन के मन्त्र विशेषों का विधान करके प्रतीकोदाहरण

द्वारा उसको स्पष्ट कर रहे हैं—) 'उप प्रयन्तो अध्वरम्' **इति प्रथमाह्नः आज्यं भवति** यह सूक्त प्रथम दिन में आज्यशस्त्र है।

सा० भा०—प्रकृतौ 'प्र वो देवायाग्नये'—इत्यादिशस्त्रम्, तद् बाधित्वा नवरात्रस्य प्रथमेऽहनि 'उप प्रयन्तः' इति सूक्तेन[1] आज्यशस्त्रं शंसनीयम्।।

तस्मिन् सूक्ते पूर्वोक्तलक्षणेषु एकं लक्षणं योजयित्वा दर्शयति—

प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।५।।

हिन्दी—(उस उपर्युक्त सूक्त में पूर्वोक्त लक्षणों में से एक लक्षण को घटाकर दिखला रहे हैं—) **प्रेति** प्र इस उपसर्ग के **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में (विनियुक्त होने की योग्यता के कारण) यह **प्रथस्य अह्नः रूपम्** यह प्रथम दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—प्रशब्दरूपोऽयमुपसर्गः, सोऽयं सूक्तगते 'प्रयन्त'–इति पदे दृश्यते। अतः प्रथमेऽहनि विनियोक्तुं योग्यत्वात् प्रथमस्याह्नोऽनुकूलम्।।

मन्त्रान्तरे लक्षणान्तरं दर्शयति—

'वायवा याहि दर्शतेति' प्रउगमेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।६।।

हिन्दी—(अन्य लक्षण वाले अन्य मन्त्र को दिखला रहे हैं—) 'वायवा याहि दर्शत'—**इति प्रउगम्** यह (प्रथम दिन में) प्रउगशस्त्र है। **एति प्रथमे अहनि** आङ् (उपसर्ग) से युक्त प्रथम दिन में प्रयुक्त होने से **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप (उपलक्षण) है।

सा० भा०—यद्यपि 'वायवा याहि' इत्यादिकस्य[2] 'प्र' उपसर्गस्य प्राकृतत्वाच्चोदकेनैव तत्प्राप्तिः तथाऽपि लक्षणं दर्शयितुमयमुपन्यासः। एत्याकाररूपं पदमत्रास्ति; आ-याहीति श्रुतत्वात्। अतः प्रथमेऽहनि विनियोक्तुं योग्यत्वात् प्रथमस्याह्नो रूपम्।।

अथ तृचद्वये लक्षणद्वयं दर्शयति—

'आ त्वा रथं यथोतये', 'इदं वसो सुतमन्धः' इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ, रथवच्च पिबवच्च प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।७।।

हिन्दी—(अब दोनों तृचों में दो लक्षणों को दिखला रहे हैं—) 'आ त्वा रथं यथोतये' और 'इदं वसो सुतमन्धः' **इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ** ये दोनों तृच मरुत्वतीय शस्त्र के क्रमशः प्रतिपद् और अनुचर हैं। **रथवच्च पिबवत् च** रथ और पिब शब्द से युक्त **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में (प्रयुक्त) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन के अनुरूप है।

---

(१) ऋ० १.७४। (२) ऋ० १.२।

सा० भा०—'आ त्वा रथम्'[१]—इति तृचो मरुत्वतीयशस्त्रस्य प्रतिपत् तच्च रथशब्दोपेतम्, 'इदंवसो सुतम्'[२] —इति तस्य शस्त्रस्यानुचरः; तच्च पिबवत् पिबासु-पूर्णमिति द्वितीयपादे श्रुतत्वात् प्रथमेऽहनीत्यादिकं पूर्ववत्।।

मन्त्रान्तरं लक्षणान्तरं च दर्शयति—

इन्द्र नेदीय एदिहीतीन्द्रनिहवः प्रगाथः; प्रथमे पदे देवता निरुच्यते प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।८।।

हिन्दी—(अब अन्य लक्षण वाले अन्य मन्त्र को दिखला रहे हैं—) 'इन्द्र नेदीय एदिहि' **इति इन्द्रनिहवः** ये दो ऋचाएँ (प्रथमपाद में) निरन्तर इन्द्र के आह्वान वाला **प्रगाथः** प्रगाथ है। **प्रथमे पदे देवता निरुच्यते** (इस मन्त्र के) प्रथम पाद में देवता का कथन हुआ है अतः **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में (प्रयुक्त यह) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का स्वरूप है।

सा० भा०—'इन्द्र नेदीय' इत्ययमृग्द्वयरूपत्वात् प्रगाथः[३]। इन्द्रो नितरामाहूयते यस्मिन् प्रगाथे सोऽयम् 'इन्द्रनिहवः'। एदिहीत्येवमाह्वानमत्र श्रूयते। अस्य प्रगाथस्य प्रथमे पाद इन्द्रेति च देवता निर्दिश्यते। तदेतत् प्रथमस्याह्नो 'रूपं' लक्षणम्।।

मन्त्रान्तरे लक्षणान्तरं दर्शयति—

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः' इति ब्राह्मणस्पत्यः; प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथम-स्याह्नो रूपम् ।।९।।

हिन्दी—(अन्य लक्षण वाले अन्य मन्त्र को दिखला रहे हैं—) 'प्रैतु ब्राह्मणस्पति' **इति ब्राह्मणस्त्यः** यह बृहस्पति देवता से सम्बन्धित (प्रगाथ) है। **प्रेति** 'प्र' इस (उपसर्ग) से युक्त होने के कारण **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में (प्रयुक्त यह) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—'ब्राह्मणस्पत्यः'[४] प्रगाथ इत्यनुवर्तते। अत्र 'प्र' शब्दो लक्षणम्।।

अथ मन्त्रत्रये लक्षणं दर्शयति—

'अग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वन्त्यपः' इति धाय्याः; प्रथमेषु पदेषु देवता निरुच्यन्ते प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।१०।।

हिन्दी—(अब तीन मन्त्रों में) लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'अग्निर्नेता', 'त्वं सोम क्रतुभिः' और 'पिबन्त्यपः' **इति धाय्याः** ये (तीन) धाय्या (मन्त्र) हैं। **प्रथमेषु पदेषु देवताः**

---

(१) ऋ० ८.६८.१-३।   (२) ऋ० ८.२.१-३।

(३) ऋ० ८.५३.५,६।   (४) ऋ० १.४०.३,४।

निरुच्यन्ते (इन मन्त्रों के) प्रथम पादों में देवता का कथन हुआ है अतः **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में (प्रयुक्त) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन के रूप हैं।

सा० भा०—शस्त्रमध्ये प्रक्षेपणीया ऋचो धाय्यः। 'अग्निर्नेता'[१] इति प्रथमा धाय्या, 'त्वं सोम'[२] इति द्वितीया, 'पिन्वन्त्यपः'[३] इति तृतीया। एतासां तिसृणामृचां प्रथमेषु पादेष्वग्निसोममरुद्देवता निर्दिश्यन्ते। 'पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः' इति श्रवणात्।[४] सोऽयं देवतानिर्देशो लक्षणम्॥

मन्त्रान्तरे 'प्र' शब्दरूपं लक्षणं दर्शयति—

'प्र व इन्द्राय बृहत'[५] इति मरुत्वतीयः प्रगाथः; प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ॥११॥

हिन्दी—(अन्य मन्त्र में 'प्र' शब्द से युक्त लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'प्र व इन्द्राय बृहते' **इति मरुत्वतीयः प्रगाथः** यह मरुद्देवताक प्रगाथ है। **प्रेति** 'प्र' (उपसर्ग) से युक्त **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रुयक्त **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

मन्त्रान्तर आकाररूपं लक्षणं दर्शयति—

'आ यात्विन्द्रो वस उप न'[६] इति सूक्तमेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ॥१२॥

हिन्दी—(अन्य सूक्त मन्त्र में 'आ' से युक्त लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'आ यात्विन्द्रो वस उप न' **इति सूक्तम्** यह सूक्त **एति** 'आ' (उपसर्ग) से युक्त **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

सा० भा०—अथ निष्केवल्यशस्त्रगतस्य मन्त्रस्य रथंतरसम्बन्धरूपं लक्षणं दर्शयति—

'अभि त्वा शूर नोनुमो, ऽभि त्वा पूर्वपीतये' इति रथंतरं पृष्ठं भवति, राथंतरेऽहनि प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ॥१३॥

हिन्दी—(अब निष्केवल्यशस्त्रगत मन्त्र का रथन्तर-साम से सम्बन्ध रूप लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'अभित्वा शूर नोनुमः और 'अभित्वा पूर्वपतीये' **इति** ये (क्रमशः रथन्तर साम के योनिभूत और अनुचर रूप) **रथन्तरं पृष्ठं भवति** रथन्तर साम से साध्य पृष्ठ हैं। (ये दोनों प्रगाथ) **प्रथमे अहनि रथन्तरे अहनि** प्रथम दिन के सूचक रथन्तर दिन

(१) ऋ० ३.२०.१। (२) ऋ० १.९१.२। (३) ऋ० १.६४.६।
(४) प्रथमद्वितीययोस्तु ऋचोः मूले प्रतीकग्रहणमात्रत एव देवताश्रवणं स्फुटम्; तृतीयस्या अपि प्रथमे एव पादे देवताश्रुतिरिति प्रकटयितुं दर्श्यते 'पिन्वन्त्यपः' इत्यादि।
(५) ऋ० ८.८९.३.४। (६) ऋ० ४.२१।

में (प्रयुक्त होने से) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन के अनुरूप है।

सा॰भा॰—'अभि त्वा शूर'[१]—इति रथंतरसाम्ने योनिभूतः। 'अभि त्वा पूर्वपीतये'[२]–इति तस्यानुचरः। अतः 'अभि त्वा शूर' इत्यत्र रथंतरसामसाध्यं पृष्ठं भवति। इदं प्रगाथद्वयं रथंतरसामम्बन्धिन्यहनि योग्यम्। अतो रथंतरसम्बन्धस्य रूपस्य लक्षणस्य सद्भावात् प्रथमेऽहनि प्रयुज्यते॥

मन्त्रान्तरे त्वाकाररूपं लक्षणं दर्शयति—

यद्वावान् पुरुतमं पुराषाळिति धाय्या, आ वृत्रहेन्द्रा नामान्यप्रा इत्येति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ॥१४॥

हिन्दी— (अन्य मन्त्र में आकाररूप लक्षण को दिखला रहे हैं–) 'यद्वावान् पुरतमं पुराषाद्' **इति धाय्या** यह धाय्या है। इसके द्वितीय पाद 'आ वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्रा' एति आ (उपसर्ग) से युक्त है अतः **प्रथमेऽहनि** प्रथम दिन में (प्रयुक्त) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

सा॰भा॰—'यद्वावान्'[३]—इति शस्त्रमध्ये प्रक्षेपणीया। तस्या द्वितीयपादादौ आ वृत्रहेत्याकारः श्रुतः॥

मन्त्रान्तरे पिबतिधातुरूपं लक्षणं दर्शयति—

'पिबा सुतस्य रसिन' इति सामप्रगाथ पिबवान् प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ॥१५॥

हिन्दी—(अन्य मन्त्र में पिब् धातु के रूप वाले लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'पिबा सुतस्य रसिनः' **इति सामप्रगाथः** यह साम का प्रगाथ है। **पिबवान्** पिब् धातु से युक्त यह **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का उपलक्षक है।

सा॰भा॰—'पिबा सुतस्य' इत्ययं कस्यचित्सामविशेषस्य आधारभूतः प्रगाथः[४]॥

अथ निविद्धानीयस्य सूक्तस्यादौ किंचित्सूक्तान्तरं विधत्ते—

'त्यमू षु वाजिनं देवजूतम्'[५] इति ताक्ष्यं पुरस्तात् सूक्तस्य शंसति;

---

(१) ऋ॰ ७.३२.२२,२३। (२) ऋ॰ ८.३.७,८। (३) ऋ॰ १०.७४.६।

(४) ऋ॰ ८.३.१,२। छ॰आ॰ ३.१.५,७ ऋचि गे॰गा॰ ६.२.१२ पृष्ठं (योनिसाम); उ॰आ॰ ६.२.५.१,२ ऋचोः प्रगाथतृचे ऊ॰गा॰ १६.२.१२ पृष्ठं (स्तोत्रम्)। अत्रान्यान्यपि सामानि सन्ति, ततश्च 'केषाञ्चित् साम्नामाधारभूतः प्रगाथः'–इति वक्तव्यं स्यात्।

(५) ऋ॰ १०.१७८।

स्वस्त्ययनं वै तार्क्ष्यः स्वस्तितायै ।।१६।।

हिन्दी—(अब निविद्धानीय सूक्त के आदि में अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं–) 'त्यमू षु वाजिनं देवजूतम्' **इति तार्क्ष्यम्** इस तार्क्ष्य देवता वाले सूक्त का **सूक्तस्य पुरस्तात् शंसति** (निविद्धानीय) सूक्त से पहले शंसन करता है। **स्वस्त्ययनं वै तार्क्ष्यः** तार्क्ष्य देवताक सूक्त स्वस्त्ययन है। **स्वास्तितायै** कल्याण के लिए (इस सूक्त का शंसन करता है)।

सा० भा०—तार्क्ष्यो देवता अस्य 'तार्क्ष्यं' 'स्वस्त्ययनं' क्षेमप्राप्तिरूपम्। अतो निविद्धानीयसूक्तस्य पुरस्तात् तार्क्ष्यसूक्तशंसनं 'स्वस्तितायै' यजमानस्य क्षेमाय भवति।।

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।।१७।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **तत्** उस (ज्ञान) से **स्वस्त्यनमेव कुरुते** स्वस्त्ययन को ही करता है और **संवत्सरस्य स्वस्ति पारम् अश्नुते** संवत्सर के कल्याण की अन्तिम सीमा को प्राप्त करता है।

सा० भा०— वेदिताऽनेन वेदनेन 'स्वस्त्यनमेव' क्षेमप्रप्तिमेव संपादयति। यथा द्वादशाहद्वारा संवत्सरसत्रस्य 'पारमश्नुते' समाप्तिं प्राप्नोति।।

।। इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये
चतुर्थपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (विंशाध्याये) प्रथमः खण्डः ।।१।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के विंश अध्याय के प्रथम खण्ड की
'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

अथ द्वितीयः खण्डः

सा० भा०—यस्य सूक्तस्य पुरस्तात् तार्क्ष्यशंसनं विहितं तस्मिन्निविद्धानसूक्ते आकार-रूपं लक्षणं दर्शयति—

(निविद्धानसूक्ते आकाररूपलक्षणकथनम्)

'आ न इन्द्रो दूरादा न असादिति'[1] सूक्तमेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।१।।

---

(१) ऋ० ४.२०।

हिन्दी—(जिस सूक्त से पहले तार्क्ष्यसूक्त के शंसन का विधान किया गया है उस निविद्धान सूक्त में आकार रूप लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'आ न इन्द्रो दूरादा न आसाद्' **इति सूक्तम्** यह (निष्केवल्यशस्त्र का निवित्) सूक्त है। **एति** आ इस उपसर्ग से युक्त यह **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त **प्रथमस्याह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

इदानीं निष्केवल्यमरुत्वतीययो: शस्त्रयोनिविद्धाने सूक्ते स्तोतुमाह—

(निष्केवल्यमरुत्वतीययोः शस्त्रयोर्निविद्धानसूक्तप्रशंसनम्)

संपातौ भवतो निष्केवल्यमरुत्वतीययोर्निविद्धाने; वामदेवो वा इमाँल्लोकानपश्यत्, तान् संपातैः समपतद्; यत्संपातैः समपतत् तत्संपातानां संपातत्वं, तद्यत्संपातौ प्रथमेऽहनि शंसति, स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै संपत्त्यै संगत्यै ।। २।।

हिन्दी—(अब निष्केवल्य और मरुत्वतीयशस्त्रों के निविद्धान सूक्त की प्रशंसा के लिए कह रहे हैं—) **निष्केवल्यमरुत्वतीययोः निविद्धाने** निष्केवल्यशस्त्र और मरुत्वतीय-शस्त्र के निविद्धान (निवित् पदों के प्रक्षेप वाले सूक्त) में **सम्पातौ भवतः** सम्पात कहे जाते हैं। **वामदेवः वै** वामदेव ने ही **इमान् लोकान् अपश्यत्** इन लोकों का दर्शन किया और **तान्** उन लोकों को **सम्पातैः** सम्पातों द्वारा **समपतत्** प्राप्त किया। **यत्सम्पातैः समपतत्** जो सम्पातों द्वारा प्राप्त किया, **तत्सम्पातानां सम्पातत्वम्** वही सम्पातों का सम्पात नाम वाला होना है। **तद् यत् सम्पातौ प्रथमे अहनि शंसति** तो जो सम्पातों का प्रथम दिन शंसन करता है, वह **स्वर्गस्य लोकस्य** स्वर्गलोक की **समष्ट्यै सम्पत्यै संगत्यै** प्राप्ति के लिए, सम्पत्ति के लिए और सङ्गति के लिए होता है।

सा० भा०—संपत्तिं प्राप्तुवन्त्याभ्यां यजमानाः सर्वांल्लोकानिति 'संपातौ'। निष्के-वल्यमरुत्वतीयनिविद्धानयो: सूक्तयोर्वैकृतयो: संपात इति संज्ञा। 'आ यात्विन्द्रो वसः'[१] इति मरुत्वतीयशस्त्रस्य निविद्धानं सूक्तम्। 'आ न इन्द्रः'[२] इति निष्केवल्यस्य निविद्धानं सूक्तम्। एतयो: संपात इति संज्ञा प्रतिपाद्यते।[३] पुरा कदाचिद्वामदेव: 'इमान्' भूरादील्लोकान् दृष्ट्वा तत्प्राप्त्युपायं विचार्य संपातसूक्तैस्तान् प्राप्तवान्। अत: 'संपतति' सम्यक्प्राप्नोति लोकाने-तैरिति 'संपातत्वं' नाम संपन्नम्। तथा सत्यत्र प्रथमेऽहनि निष्केवल्यमरुत्वतीययो: संपात-नामकसूक्ते यदि शंसेत् तच्छंसनं स्वर्गलोपाति-भोग्यवस्तुसंपत्ति-तद्भोगसम्बन्धार्थं संपद्यते।।

अथ द्वयोस्तृचयो रथन्तरसम्बन्धरूप लक्षणं दर्शयति—

तत्सवितुर्वृणीमहेऽद्या नो देव सवितरिति वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ

---

(१) ऋ० ४.१। (२) ऋ० ४.२०।
(३) 'आ न इन्द्रो दूरादा न आसादिति सम्पातः'—इति ऐ०आर० ५.१.२.३।

राथन्तरेऽहनि प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।३।।

हिन्दी— (अब दोनों तृचों के रथन्तर के सम्बन्ध रूप लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'तत्सवितुर्वृणीमहे' और 'अद्या नो देव सवित:' इति ये दो तृच **वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ** वैश्वदेवशस्त्र के क्रमश: प्रतिपत् और अनुचरें। **राथन्तरे अहनि प्रथमे अहनि** रथन्तर साम से सम्बन्धित प्रथम दिन में (प्रयुक्त यह) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन के रूप हैं।

सा० भा०—'तत्सवितु:'[१] इति तृचो रथन्तरस्साम्ना सह प्रयुज्यमानो वैश्वदेवशस्त्रस्य प्रतिपत्; 'अद्या न'[२] इति तृचस्तस्यानुचर:; अत उभयोरपि रथन्तरसम्बन्धोऽस्ति रथन्तरसम्बद्धेऽहनि योग्यताऽस्ति।।

सूक्तान्तरे युजिधातुरूपं लक्षणं दर्शयति—

'युञ्जते मन उत युञ्जते धिय' इति सावित्रं युक्तवत्प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।४।।

हिन्दी—(अन्य सूक्त में युजि धातु से युक्त लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'युञ्जते मन उत युञ्जते धियम्' **इति सावित्रम्** यह सविता देव से सम्बन्धित सूक्त **युक्तवत्** युज् धातु से युक्त है अत: **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में (प्रयुक्त) **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

सा० भा०—प्रथमाया ऋचोऽवसाने 'देवस्य सवितु: परिष्टुति:'—इति श्रुतत्वात् इदं सवितृदेवताकम्। इह युजिधातुस्तु विस्पष्ट:।।

सूक्तान्तरे प्रशब्दरूपं लक्षणं दर्शयति—

'प्र द्यावा यज्ञः पृथिवी ऋतावृधेति'[३] द्यावापृथिवीयं प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम्।।५।।

हिन्दी—(अन्य सूक्त में प्र उपसर्गयुक्त लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'प्र द्यावा यज्ञः पृथिवी ऋतावृधा' **इति द्यावापृथिवीयम्** यह द्यावापृथिवी से सम्बन्धित सूक्त **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

अस्मिन् वैश्वदेवशस्त्रे सूक्तान्तरं विधत्ते—

इहेह वो मनसा बन्धुता नर इत्यार्भवं, यद्वा एति च प्रेति च तत्प्रथमस्याह्नो रूपं, तद्यत्प्रेति सर्वमभविष्यत् प्रैष्यन्नेवास्माल्लोकाद्

---

(१) ऋ० ५.८२.१-३। 'तत्सवितु: प्रतिपत्'—इति आन० मु० संस्करणे नास्ति।
(२) ऋ० ५.८२.४-६।　(३) ऋ० १.१५९।

यजमाना इति; तद्यद् इहेह वो मनसा बन्धुता नर इत्यार्भवं प्रथमेऽहनि शंसत्ययं वै लोक इहेहास्मिन्नेवैनांस्तल्लोके रमयति ।।६।।

हिन्दी—(इस वैश्वदेवशस्त्र में अन्य सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'इहेव वो मनसा बन्धुता नर' **इत्यार्भवम्** यह ऋभुदेवता वाला सूक्त है। **यद्वै एति च प्रेति च** जो आङ् और प्र उपसर्ग है, **तत् प्रथमस्य अह्नः रूपम्** वह प्रथम दिन का उपलक्षक है। **यत्** जो **प्रेति सर्वम् अभविष्यत्** यदि प्र उपसर्ग से सम्पूर्ण (सूक्त) युक्त होता, **तत्** तो **यजमानाः अस्मात् लोकात् प्रैष्यन्नेव** यजमान इस लोक से चले ही जाते (मृत्यु को प्राप्त कर लेते), **तद् यत्** तो जो 'इहेव मनसा बन्धुता नर' **इत्यार्भवम्** इस ऋभुदेवता वाले सूक्त का **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन **शंसति** शंसन करता है उसमें **अयं लोकः इह** 'इह' इस लोक का वाचक है। अतः **तत्** इस (शंसन से) **एनान्** इस (यजन करने वालों) को **इह अस्मिन् लोके** यहाँ इस (पृथिवी लोक) में **रमयति** रमण कराता है।

सा० भा०—'इहेह वः' इत्येतत् सूक्तम्[१] ऋभुदेवताकम्; द्वितीयाया ऋचोऽन्ते 'तेन देवत्वमृभवः समानश'—इति श्रवणात्। आकार-प्रशब्दादिकं लक्षणं मन्त्रे नास्तीत्याशङ्क्य 'यद्वै' इत्यादिना तत्सद्भावे बाध उपन्यस्यते। येदतदेति च प्रेति चेति, तदेतत्प्रथमस्याह्नो 'रूपं' लक्षणमिति पूर्वमुक्तं; 'तत्' तथा सति यदि प्रेत्यनेन लक्षणेन युक्तं 'सर्वं' सूक्तजातम् अभविष्यत् तदानीं यजमाना अस्माल्लोकात् 'प्रैष्यन्' प्रैष्यन्ति मरिष्यन्त्येवेति बाधोपन्यासः। 'तद्यद्' इत्यादिना समाधानमुपन्यस्ते। यस्मात् प्रशब्दयोगे बाधोऽस्ति, तस्मात् कारणाद् इहेहेति सूक्तं यदि प्रथमेऽहनि शंसेत्, तदानीमिहेहशब्देनास्य भूलोकस्य विवक्षितत्वाद् अस्मिन्नेव' भूलोके एव तत्सूक्तपाठेन 'एनान्' यजमानन् 'रमयति' चिरं क्रीडयति। ततः प्रशब्दप्रयुक्तो मरणबाधोऽपि परिहृतो भवति।।

सूक्तान्तरस्य प्रथमपादे देवताभिधानं लक्षणं दर्शयति—

'देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये' इति वैश्वदेवं प्रथमे पदे देवता निरुच्यन्ते; प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।७।।

हिन्दी—(अन्य सूक्त के प्रथमपाद में देवताभिधान लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये' **इति वैश्वदेवम्** यह विश्वेदेवा से सम्बन्धित सूक्त है। इसके **प्रथमे पदे देवता निरुच्यन्ते** प्रथम पाद में देवता कहे गये हैं अतः **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

सा० भा०—'देवान्'—इत्यादिके सूक्ते बहुचनान्तस्य देवशब्दस्य श्रवणाद् देवताबाहुल्येनेदं सूक्तं वैश्वदेवम्। प्रथमपादे देवशब्दस्तु विस्पष्टः।।

---

(१) ऋ० ३.६०।

तत्र स्वस्तिशब्दस्य तात्पर्यं दर्शयति—

महान्तं वा एतेऽध्वानमेष्यन्तो भवन्ति, ये संवत्सरं वा द्वादशाहं वाऽऽसते तद्यद्देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति वैश्वदेवं प्रथमेऽहनि शंसति, स्वस्तितायै ।।८।।

हिन्दी—(उस सूक्त में प्रयुक्त स्वस्ति शब्द के तात्पर्य को दिखला रहे हैं—) **ये संवत्सरं वा द्वादशाहं वा आसते** जो संवत्सर अथवा द्वादशाह का सम्पादन करते हैं, **एते वे महान्तम् अध्वानम्** दूरवर्ती मार्ग पर **एष्यन्तः भवन्ति** जाने के लिए तैयार रहते हैं। **तद् यत्** तो जो 'देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये' **इति वैश्वदेवम्** इस विश्वेदेवासम्बन्धि (सूक्त) का **प्रथमे अहनि शंसति** प्रथम दिन शंसन करता है, वह **स्वस्तितायै** कल्याण के लिए होता है।

सा० भा०—'ये' यजमानाः संवत्सरसत्रं द्वादशाहं वाऽनुतिष्ठन्ति, दीर्घमध्वानं गन्तुमुद्युक्ता भवन्ति। प्रयोगबाहुल्येनैकाहवत् सहसा समाप्त्यभावात्। अतो देवानित्यादिसूक्ते 'स्वस्तये' इत्येतस्य पदस्य शंसनं 'स्वस्तितायै' क्षेमार्थं भवति।।

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद, येषां चैवं विद्वानेतद्धोता देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तय इति वैश्वदेवं प्रथमेऽहनि शंसति।।९।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है और **येषां च एवं विद्वान् होता** जिन (यजमानों) का इस प्रकार जानने वाला होता 'देवान् हुवे बृहच्छ्रवसः स्तवस्तये' **इति वैश्वदेवम्** इस विश्वे देवों से सम्बन्धित (सूक्त) का **प्रथमे अहनि शंसति** प्रथम दिन शंसन करता है वह **तत्** उस (शंसन) से **स्वस्त्ययनं कुरुते** (यजमान के लिए) स्वस्ति-वाचन करता है और **संवत्सरस्य पारम् अश्नुते** संवत्सरसत्र का समापन करता है।

सा० भा०—उक्तार्थस्य वेदिता तेन 'स्वस्त्ययनमेव' द्वादशाहस्य क्षेमप्राप्तिमेव कुरुते,—क्षेमेणैव संवत्सरसत्रस्य समाप्तिं प्राप्नोति। किञ्च 'येषां' यजमानानामुक्तार्थवेदो, होता शंसति तेऽपि यजमाना द्वादशाहं क्षेमेणैव प्राप्नुवन्ति, संवत्सरसत्रं च समापयन्ति।।

सूक्तान्तरस्य प्रथमे पादे देवताभिधानलक्षणं दर्शयति—

'वैश्वानराय पृथुपाजसे विप' इत्याग्निमारुतस्य प्रतिपद्; प्रथमे पदे देवता निरुच्यते, प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।१०।।

हिन्दी— (अन्य सूक्त के प्रथम पाद में देवताभिधान लक्षण को दिखला रहे हैं–)

'वैश्वानराय पृथुपाजसे विप' **इति अग्निमारुतस्य प्रतिपद्** यह सूक्त अग्निमारुत शस्त्र का प्रतिपद् है। इसके **प्रथमे पदे देवता निरुच्यते** प्रथम पाद में देवता का कथन हुआ है अतः **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

सा० भा०—आग्निमारुतशस्त्रस्य 'वैश्वानराय'[1]—इति सूक्तं प्रतिपत् कर्तव्यम्। स एव शब्दो विस्पष्टं देवतामभिधत्ते॥

सूक्तान्तरे प्रशब्दरूपं लिङ्गं दर्शयति—

'प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिन' इति मारुतम्; प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।११।।

हिन्दी—(अन्य सूक्त में 'प्र' शब्द रूप लक्षण को दिखला रहे हैं—) 'प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिन्' **इति मारुतम्** यह मरुत् से सम्बन्धित सूक्त है। **प्रेति** 'प्र' शब्द से युक्त **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त यह **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

सा० भा०—'प्रत्वक्षसः'[2] इति सूक्ते द्वितीयस्या ऋचो द्वितीयपादे 'वय इव मरुतः' इति श्रवणात् इदं सूक्तं मरुद्देवताकं शंसेत्। अत्र 'प्र' शब्दो विस्पष्टः॥

वक्ष्यमाणस्य जातवेदस्य सूक्तस्य पुरस्तादेतामृचं विधत्ते—

'जातवेदसे सुनवाम सोममिति' जातवेदस्यां पुरस्तात् सूक्तस्य शंसति; स्वस्त्ययनं वै जातवेदस्याः[3] स्वस्तितायै ।।१२।।

हिन्दी—(वक्ष्यमाण जातवेद देवता वाले सूक्त से पहले इस ऋचा के शंसन का विधान कर रहे हैं—) **जातवेदस्यां सूक्तस्य पुरस्तात्** इस जातवेदस् देवता वाले सूक्त से पहले 'जातवेदसे सुनवाम सोमम्' **इति शंसति** इस (ऋचा) का शंसन करता है; क्योंकि **स्वस्त्ययनमेव जातवेदस्या** जातवेदस् देवता वाला मन्त्र क्षेमपूर्वक जाने के लिए होता है अतः यह **स्वस्तियायै** यजमान के कल्याण के लिए होता है।

सा० भा०—जातवेदा देवता यस्या ऋचः सेयं जातवेदस्या[4]। तद्देवताकत्वं प्रथम-पादे देवताभिधानं लिङ्गं च विस्पष्टम्। अस्यामृचि 'अरातीयतो नि दहाति'—इति शत्रुदाह-श्रवणात् 'नावेव सिन्धुम्' इति नौदृष्टान्तेन दुरितात्ययश्रवणाच्च 'स्वस्त्ययनं' क्षेमगमनमत्र विद्यते। तस्मादियं क्षेमप्राप्तये भवति॥

---

(१) ऋ० ३.३। (२) ऋ० १.८७।

(३) 'जातवेदसे सुनवाम सोममित्याग्निमारुते जातवेदस्यानाम्'—इति आश्व०श्रौ० ७.१.१४। 'जातवेदस्य निवित्सम्बन्धिसूक्तसम्भवात् जातवेदस्यानामिति बहुवचनं जात्याभिप्रायम्'—इति च तत्र वृत्तिर्नारायणीया।

(४) ऋ० १.९९.१।

वेदनं प्रशंसति—

स्वस्त्ययनमेव तत्कुरुते, स्वस्ति संवत्सरस्य पारमश्नुते य एवं वेद।।१३।।

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **तत्** इस (ज्ञान) से **स्वस्त्ययनमेव कुरुते** (द्वादशाह को) कल्याण प्राप्त कराता है और **संवत्सरस्य स्वस्ति पारम् अश्नुते** कल्याण पूर्वक संवत्सर का समापन करता है।

सूक्तान्तरे प्रशब्दलिङ्गं दर्शयति—

'प्रतव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नय' इति जातवेदस्यम्; प्रेति प्रथमेऽहनि प्रथमस्याह्नो रूपम् ।।१४।।

हिन्दी—(अन्य सूक्त में 'प्र' शब्द के चिह्न को दिखला रहे हैं—) 'प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नय:' **इति जातवेदस्यम्** यह जातवेदस् देवता वाला (सूक्त) है। जो **प्रेति** 'प्र' उपसर्ग से युक्त है अत: **प्रथमे अहनि** प्रथम दिन में प्रयुक्त यह **प्रथमस्य अह्नः रूपम्** प्रथम दिन का रूप है।

सा०भा०—यद्यप्यस्मिन् सूक्ते जातवेदःशब्दो न श्रुतः; तथाऽऽपि तदर्थवाची शब्दः श्रूयते। जातमुत्पन्नं विश्वं तद्वेत्तीति 'जातवेदाः', तत्पर्यायो विश्ववेदः शब्दः। स च 'यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसम्' इति चतुर्थ्यामृचि श्रूयते। तस्मादिदं सूक्तं[1] 'जातवेदस्यं' निविद्धानीयं शंसेत्। अत्र 'प्रतव्यसीम्' इति प्रशब्दो विस्पष्टः।।

वैश्वानरायेत्यादिकं यदाग्निमारुतं शस्त्रमुक्तं, तदेतत्प्रशंसति—

समानमाग्निमारुतं भवति, यच्चाग्निष्टोमे यद्वै यज्ञे समानं क्रियते, तत्प्रजा अनु समनन्ति; तस्मात् समानमाग्निमारुतं भवति ।।१५।।

हिन्दी—(आग्निमारुत शस्त्र की प्रशंसा कर रहे हैं—) **आग्निमारुतं समानं भवति** (इस प्रथम दिन में और अग्निष्टोम में निरूपित) आग्निमारुत शस्त्र समान होता है। **यत् च अग्निष्टोमे यत् च यज्ञे** जो अग्निष्टोम में और जो यज्ञ में **समानं क्रियते** (आग्निमारुत शस्त्र को) एक समान (अङ्ग वाला) किया जाता है **तत्** उससे **प्रजाः अनु समनन्ति** उस (अङ्ग) के अनुसार (ऋत्विक् और पुत्रादिरूप) प्रजा को सम्यक् रूप से चेष्टा करते हैं। **तस्मात्** इसी कारण **आग्निमारुतं समानं भवति** आग्निमारुत शस्त्र एक समान होता है।

सा०भा०—अस्मिन् प्रथमेऽहनि यदाग्निमारुतं शस्त्रमुक्तं, यच्चाग्निष्टोमे पूर्वं निरूपितमाग्निमारुतं शस्त्रं तदुभयं 'समानम्' एकविधं न्यूनाधिकमन्त्राणामभावात्। यज्ञे यदेवाङ्गं समानं क्रियते, 'तत्' अङ्गम् 'अनु' पश्चात् 'प्रजाः' ऋत्विग्रूपाः पुत्रादिरूपाश्च

(१) ऋ० १.१४३।

'समनन्ति' सम्यक् चेष्टन्ते, सुखेन जीवन्तीत्यर्थः। तस्मात् 'समानं' तुल्यमाग्निमारुतशस्त्रं कर्तव्यम्। अत्र प्रथमस्याह्नो लिङ्गेषु 'आशुमद्', 'गायत्रं', 'करिष्यत्', 'अयं लोकोऽभ्युदितः' इति लिङ्गचतुष्टयमत्र नोदाहृतम्, तद्यथासम्भवमन्वेष्टव्यम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (विंशाध्याये) द्वितीयः खण्डः ॥२॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के विंश अध्याय के द्वितीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ तृतीयः खण्डः

सा० भा०—द्वादशाहगतनवरात्रे प्रथममहर्निरूप्य द्वितीयमहर्निरूपयति—

(द्वादशाहगतनवरात्रे द्वितीयाहर्निरूपणम्)

इन्द्रो वै देवता द्वितीयमहर्वहति, पञ्चदशस्तोमो बृहत्साम त्रिष्टुप्छन्दः॥१॥

हिन्दी—(द्वादशाह के नवरात्र के प्रथम दिन का निरूपण करके द्वितीय दिन का निरूपण कर रहे हैं—) **इन्द्रः वै देवता** इन्द्र देवता **पञ्चदशस्तोमः** पञ्चदशस्तोम, **बृहत्साम्** बृहद् नामक साम और **त्रिष्टुप्छन्दः** त्रिष्टुप् नामक छन्द **द्वितीयम् अहः वहति** द्वितीय दिन का निर्वहन करते हैं।

सा० भा०—देवतानां मध्ये इन्द्रो देवता, स्तोमानां मध्ये पञ्चदशस्तोमः, साम्नां मध्ये बृहत्साम, च्छन्दसां मध्ये त्रिष्टुप्छन्दः, इत्येतच्चतुष्टयं द्वितीयस्याह्नो निर्वाहकम्॥

वेदनं प्रशंसति—

यथादेवतमेनेन यथास्तोमं यथासाम यथा छन्दसं राध्नोति य एवं वेद॥२॥

हिन्दी—(इस ज्ञान की प्रशंसा कर रहे हैं—) **यः एवं वेद** जो इस प्रकार जानता है वह **एनेन** इस (ज्ञान) से **यथादेवतम् यथास्तोमं यथासाम यथाछन्दसम्** उस देवता, स्तोम, साम और छन्द का अतिक्रमण न करके (उनके अनुग्रह से) **राध्नोति** समृद्ध होता है।

सा० भा०—वेदिता स्वकीयवेदनेन यथोक्तदेवतास्तोमसामच्छदांस्यनतिक्रम्य तत्-प्रसादेन समृद्धो भवति॥

अथ द्वितीयस्याह्नो गमकानि मन्त्रगतानि लिङ्गानि निर्दिशति—

(द्वितीयस्याह्नो गमकानि मन्त्रलिङ्गानि)

यद्वै नेति न प्रेति, यत्स्थितं, तद्द्वितीयस्याह्नो रूपम्; यदूर्ध्ववद्य-त्प्रतिवद्यदन्तर्वद्यद्वृषण्वद्यद्वृधन्वद्, यन्मध्यमे पदे देवता निरुच्यते; यदन्तरिक्षमभ्युदितं, यद्बार्हतं, यत्त्रैष्टुभं, यत्कुर्वदेतानि वै द्वितीय-स्याह्नो रूपाणि ।।३।।

हिन्दी—(अब द्वितीय दिन के मन्त्रगत चिह्नों का निर्दिष्ट कर रहे हैं—) **यद्वै** जो (प्रथम दिन में निर्दिष्ट) **नेति न प्रेति** न तो आङ् और न तो प्र (द्वितीय दिन सूचक है)। प्रत्युत **यत् स्थितं तद् द्वितीयस्य अह्नः रूपम्** जो स्था धातु से युक्त है, वह द्वितीय दिन का उपलक्षक है, **यद् ऊर्ध्ववत्** जो ऊर्ध्व शब्द से युक्त, **यत् प्रतिवत्** जो 'प्रति' शब्द से युक्त, **यद् अन्तर्वत्** जो अन्तः शब्द से युक्त, **यद् वृषण्वत्** जो वृषण् शब्द से युक्त और **यद् ऋधन्वत्** जो ऋधन् शब्द से युक्त है तथा **यस्य मध्यमे पदे देवता निरुच्यते** जिसके मध्यम पाद में देवता कहा गया है, **यद् अन्तरिक्षम् अभ्युदितम्** जहाँ अन्तरिक्ष को सङ्केतित किया गया है, **यद् बार्हतम्** जो बृहत् साम से सम्बन्धित है, **यत् त्रैष्टुभम्** जो त्रिष्टुप् छन्द वाला है और **यत् कुर्वत्** जो वर्तमान-कालिक क्रिया वाला है—**एतानि** इन (चिह्नों) वाले (मन्त्र) **द्वितीयस्य अह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के उपलक्षक हैं।

सा० भा०—प्रथमस्याह्न एति प्रेति लिङ्गद्वयं 'यद्वै' यदेवोक्तं, तदत्र द्वितीयस्याह्ने लिङ्गं न भवतीति नकारद्वयेनोभयं निषिध्यते। 'यत्स्थितं' तिष्ठतिधातुरूपवद् बहुषु स्थानेष्वप्रध्युतत्वेनावस्थितं च मन्त्रे दृश्यते, तद्द्वितीयस्याह्नो 'रूपं' लिङ्गम्। तथैवोर्ध्व-शब्दोपेतं, प्रतिशब्दोपेतम्, अन्तःशब्दोपेतं, वृषन्शब्दोपेतं वृधन्शब्दोपेतं च यदाम्नातं, तत्सर्वं द्वितीयस्याह्नो रूपम्। तत्र साक्षाच्छब्दो न श्रूयते, तत्र तदर्थो द्रष्टव्यः। मध्यमे पदे देवताभिधानम्, अन्तरिक्षलोकाभिधानं, बृहत्सामसम्बन्धं, त्रिष्टुप्छन्दःसम्बद्धं, वर्तमानार्थप्रत्यययुंक्तकरोतिधातुरूपमित्येतानि सर्वाणि द्वितीयस्याह्नो 'रूपाणि' निरूपकाणि लिङ्गानि द्रष्टव्यानि।।

अस्मिन् द्वितीयेऽहन् आज्यशस्त्रं विधत्ते—

(द्वितीयेऽहनि आज्यशस्त्रविधानम्)

'अग्निं दूतं वृणीमहे'[1] इति द्वितीयस्याह्न आज्यं भवति; कुर्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ।।४।।

हिन्दी—(इस द्वितीय दिन में प्रयुक्त आज्यशस्त्र का विधान कर रहे हैं—) 'अग्निं

(१) ऋ० १.१२।

दूतं वृणीमहे' **इति द्वितीयस्य अह्नः** यह सूक्त द्वितीय दिन का **आज्यं भवति** आज्यशस्त्र होता है जो **कुर्वत्** वर्तमान कालिक क्रिया से युक्त **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्य अह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—अत्र कुर्वदिति लिङ्गोपन्यासः। यद्यप्यग्निं दूतमित्यादौ साक्षात् कुर्वच्छब्दो न श्रूयते, तथाऽपि करोत्यर्थस्य सर्वधातुगतसामान्यत्वात् वर्तमानार्थवाचिप्रत्ययान्तं धातुमात्रं कुर्वच्छब्देन विवक्षितम्। अत्रापि 'वृणीमहे' इति वर्तमानार्थवाचिप्रत्ययान्तो धातुः श्रूयते। तस्मात् द्वितीयेऽहन्ये-तत्सूक्तं विनियोक्तुं योग्यम्। ततो द्वितीयस्याह्नो लिङ्गम्॥

आज्यशस्त्रं विधाय प्रउगशस्त्रं विधत्ते—

(द्वितीयेऽहनि प्रउगशस्त्रविधानम्)

'वायो ये ते सहस्रिण'[१] इति प्रउगम्; 'सुतः सोम ऋतावृधेति' वृधन्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ॥५॥

हिन्दी—(द्वितीय दिन के आज्यशस्त्र का विधान करके अब प्रउगशस्त्र का विधान कर रहे हैं—) 'वायो ये ते सहस्रिणः' **इति प्रउगम्** यह सूक्त (द्वितीय दिन का) प्रउगशस्त्र होता है। (इस सूक्त की चतुर्थ ऋचा के द्वितीय पाद) 'सुतः सोम ऋतावृधा' **वृधन्वत्** वृधन् शब्द से युक्त है अतः **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप हैं।

सा० भा०—'वायो ये ते' इत्यादिकं शस्त्रं कुर्यात्। एतस्मिन् सूक्ते चतुर्थ्या ऋचो द्वितीयः पादः 'सुतः सोम ऋतावृधेति', अस्य पादस्यान्ते वृधेति श्रवणात् इदं प्रउगं 'वृधन्वद्' वृधिधातुयुक्तम्। द्वितीयेऽहनि—इत्यादिकं पूर्ववत्॥

अथ मरुत्वतीयं शस्त्रं विधत्ते—

(द्वितीयेऽहनि मरुत्वतीयशस्त्रविधानम्)

'विश्वानरस्य वस्पतिम्', 'इन्द्र इत्सोमपा एकः' इति मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ; वृधन्वच्चान्तर्वच्च द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ॥६॥

हिन्दी—(द्वितीय दिन के मरुत्वतीयशस्त्र का विधान कर रहे हैं—) 'विश्वानरस्य वस्पतिम्' और 'इन्द्र इत्सोमपा एकः' **इति मरुत्वतीयस्य** ये (तृच) मरुत्वतीय शस्त्र के **प्रतिपदनुचरौ** क्रमशः प्रतिपत् और अनुचर हैं। (ये तृच) **वृधन्वत् च अन्तःवत् च** वृधन् शब्द से युक्त और 'अन्तः' शब्द से युक्त **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप हैं।

---

(१) ऋ० २.४१।

सा० भा०—'विश्वानरस्य'—इत्ययं तृचः[१] शस्त्रस्य प्रतिपत, तस्मिन् तृचे द्वितीयस्या ऋचः प्रथमपादे 'वृधन्वद्' वृधिधातुयुक्तं लिङ्गमस्ति। 'अभिष्टये सदावृधम्' इति श्रवणात्। 'इन्द्रः' इत्ययं तृचोऽनुरूपः[२]। तत्रान्तः शब्दयुक्तं लिङ्गमस्ति। प्रथमाया ऋचस्तृतीयपादे'—'अन्तर्देवान् —इति श्रवणात्।।

अथ प्रगाथद्वये लिङ्गद्वयं दर्शयति—

(प्रगाथद्वये लिङ्गद्वयकथनम्)

इन्द्र नेदीय एदिहीत्यच्युतः प्रगाथ, उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति ब्राह्मणस्पत्य ऊर्ध्ववान्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ।।७।।

हिन्दी—(अब दो प्रगाथों में दो चिह्नों को दिखला रहे हैं—) 'इन्द्र नेदीय एदिहि' **इति अच्युतः प्रगाथः** यह अच्युत (जो प्रथम दिन में प्रयुक्त और आगे भी प्रयुक्त होने वाला) प्रगाथ है और 'उतिष्ठ ब्राह्मणस्पते' **इति ब्राह्मणस्पत्यः** यह ब्रह्मणस्पति से सम्बन्धित प्रगाथ है जो **ऊर्ध्ववान्** 'ऊर्ध्व' शब्द से युक्त **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्य अह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—'इन्द्र नेदीयः' इत्यादिकः प्रगाथः[३] प्रथमेऽहन्यपि विहितः, उत्तरत्रापि विधास्यते। तस्मादत्र विधीयमानोऽच्युतो भवति, प्रच्युतेरभावात्। तदिदमच्युतत्वं स्थितशब्दार्थत्वात् स्थितवल्लिङ्गम्। 'उत्तिष्ठ' इत्ययं प्रगाथः[४] ऊर्ध्वलिङ्गवान्। ऊर्ध्ववाचिन उच्छब्दस्य श्रवणात्।।

अथ तिसृषु धाय्यास्वच्युतत्वं लिङ्गं दर्शयति—

(तिसृषु धाय्यासु अच्युतलिङ्गत्वम्)

'अग्निर्नेता, त्वं सोम क्रतुभिः, पिन्वन्त्यपः' इति धाय्या अच्युताः।।८।।

हिन्दी—(अब तीन धाय्या में अच्युतत्व लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'अग्निर्होता', 'त्वं सोम क्रतुभिः' और 'पिन्वन्त्यपः' **इति धाय्या अच्युता** ये तीन धाय्या अच्युत (प्रथम दिन में विहित) है (वे द्वितीय दिन में भी प्रयुक्त होती हैं)।

सा० भा०—'अग्निर्नेता'[५] इति प्रथमा धाय्या, 'त्वं सोम'[६] इति द्वितीया, 'पिन्वन्त्यपः'[७] इति तृतीया। प्रथमेऽहन्यप्येतासां विहितत्वात् अच्युतत्वम्।।

प्रगाथान्तरे लिङ्गं दर्शयति—

'बृहदिन्द्राय गायतेति' मरुत्वतीयः प्रगाथो, येन ज्योतिरजनयन्नृ-

---

(१) ऋ० ८.६८.४-६। (२) ऋ० ८.२.४-६। (३) ऋ० ८.५३.५,६।
(४) ऋ० १.४०.१,२। (५) ऋ० ३.२०.४। (६) ऋ० १.९१.२।
(७) ऋ० १.६४.६।

तावृध इति वृधन्वान् द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ।।९।।

हिन्दी—(अन्य प्रगाथ में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'बृहदिन्द्राय गायत' **इति मरुत्वतीयः प्रगाथः** यह मरुत् देवता वाला प्रगाथ है। (इसका तृतीय पाद) 'येन ज्योतिरजयनृतावृधः' **इति बृधन्वान्** 'बृधन्' शब्द से युक्त **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन का रूप है।

सा० भा०—'बृहदिन्द्राय' इत्येष मरुद्देवताकः,[१] 'मरुती वृत्रहन्तमम्' इति द्वितीयपादे मरुतां श्रवणात्। तस्य 'येन ज्योतिः' इति तृतीयः पादः; तत्र 'ऋतावृधः' इति श्रवणात् अयं प्रगाथो वृधिधातुरूपलिङ्गवान्।।

लिङ्गदर्शनद्वारा सूक्तं विधत्ते—

(लिङ्गदर्शनद्वारा सूक्तविधानम्)

'इन्द्रं सोमं सोमपते पिबेममिति' सूक्तं; 'सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्वेति' वृषण्वद् द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ।।१०।।

हिन्दी—(लिङ्ग दर्शन द्वारा सूक्त का विधान कर रहे हैं—) 'इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमम्' **इति सूक्तम्** यह सूक्त है। (इसकी द्वितीय ऋचा का चतुर्थपाद) 'सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व' **इति** यह **वृषण्वत्** 'वृषन्' शब्द से युक्त **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन का रूप है।

सा० भा०—'इन्द्र सोमम्'[२] इत्यस्मिन् सूक्ते 'सजोषाः' इत्यादिको द्वितीयस्या ऋचश्चतुर्थः पादः; तत्र वृषस्वेति श्रवणाद् वृषण्वल्लिङ्गमस्ति।।

अथ निष्केल्यशस्त्रस्य स्तोत्रियानुरूपयोः प्रगाथयोः बृहत्सामसंबन्धरूपं लिङ्गं दर्शयति—

(निष्केवल्यशस्त्रस्य स्तोत्रियानुरूपयोः प्रगाथयोः बृहत्सामसम्बन्धरूपं लिङ्गम्)

'त्वमिद्धि हवामहे' 'त्वं ह्येहि चेरवे' इति बृहत्पृष्ठं भवति; बार्हतेऽहनि द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ।।११।।

हिन्दी—(अब निष्केवल्यशस्त्र के स्तोत्रिय और अनुरूप प्रगाथों के बृहत्साम से सम्बन्ध रूप लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'त्वामिद्धि हवामहे' और 'त्वं ह्येहि चेरवे' **इति** ये (क्रमशः स्तोत्रिय और अनुरूप प्रगाथ) **बृहत्पृष्ठं भवति** बृहत् (नामक) साम से युक्त पृष्ठ (स्तोत्र) होता है। यह **बार्हते अहनि द्वितीये अहनि** बृहत्साम से सम्बन्धित द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्य अह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—'त्वामिद्धि' इति[३] बृहत्साम्न आधारभूतः स्तोत्रियः प्रगाथः; 'त्वं ह्येहि'

(१) ऋ० ८.८९.१,२। (२) ऋ० ३.३२। (३) ऋ० ६.४६.१,२।

इत्यनुचरः प्रगाथः[१]। प्रथमे प्रगाथे बृहत्सामयुक्तं पृष्ठस्तोत्रं भवति। अत्र प्रगाथद्वयस्य बृहत्सामसंबन्धात् 'बार्हते' बृहत्सामसंबन्धिन्यहनि तदुभयं भोग्यम्। द्वितीयस्य चाह्नो बृहत्सामसंबन्धित्वात् तस्मिन्नहनि विनियोक्तव्यम्। अयं च बृहत्सामसंबन्धो द्वितीयस्याह्नो लिङ्गम्।।

अथैकस्यामृच्यच्युतत्वं लिङ्गं दर्शयति—

'यद्वावानेति'[२] धाय्याऽच्युता ।।१२।।

हिन्दी—(अब एक ऋचा में अच्युतत्व लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'यद्वावान' **इति धाय्या अच्युता** यह अच्युत (प्रथम दिन में विहित) धाय्या है।

सा० भा०—प्रथमेऽहन्यप्यस्या ऋचो विहितत्वात् अच्युतत्वम्।।

अथ प्रगाथान्तरे बृहत्सामसम्बन्धिरूपं लिङ्गं दर्शयति—

(प्रगाथान्तरे बृहत्सामसम्बन्धिरूपलिङ्गम्)

उभयं शृणवच्च न इति सामप्रगाथो, यच्चेदमद्य यदु च ह्य आसीदिति बार्हतेऽहनि द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ।।१३।।

हिन्दी—(अब अन्य प्रगाथ में बृहत् साम से सम्बन्ध होने के लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'उभयं शृणवच्च न' **इति सामप्रगाथः** यह सामप्रगाथ है (उभय शब्द का तात्पर्य है—) '**यत् च इदम् अद्य** जो यह आज है और **यदु च ह्यः आसीत्** जो कल था'—**इति बार्हते अहनि द्वितीये अहनि** यह बृहत्साम से सम्बन्धित द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्य अह्नः रूपम्** द्वितीय दिन का रूप है।

सा० भा०—'उभयम्'-इत्यादिको बृहत्साम्ना सह प्रयुज्यमानः प्रगाथः[३]। उभयशब्दस्य कोऽर्थः सोऽभिधीयते—'अद्य' अस्मिन् दिने 'यत्' कार्यमासीन्, 'इदं च' कार्यमेकं, 'यदु च' यदपि 'ह्यः' पूर्वेद्युः कार्यमासीत्, तदपीत्येवं कार्यद्वयम् 'शृणवत्' श्रुतमासीत्। इति मन्त्रगतस्योभयं शृणवदित्यस्यार्थः बार्हते इत्यादि पूर्ववत्।।

सूक्तान्तरे पूर्ववत् अच्युतत्वलिङ्गं दर्शयति—

(सूक्तान्तरेऽच्युतलिङ्गत्वम्)

'त्य मू षु वाजिनं देवजूतम्'[४]-इति ताक्ष्योऽच्युतः ।।१४।।

हिन्दी—(अन्य सूक्त में पूर्ववत् अच्युतत्व लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'त्यमू षु वाजिनं देवजूतम्' **इति ताक्ष्यः अच्युतः** यह ताक्ष्य देवताक (सूक्त) अच्युत (प्रथम दिन में विहित) है।

---

(१) ऋ० ८.६१.७,८। (२) ऋ० १०.७४.६।
(३) ऋ० ८.६१.१,२। (४) ऋ० १०.१७८।

सा०भा०—तार्क्ष्यदेवताकस्य सूक्तविशेषस्य प्रथमेऽहनि विहितत्वाद् उत्तरोत्तरोपयोक्ष्यमाणत्वाद् अच्युतत्वम्॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्यविरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मणभाष्ये चतुर्थपञ्चिकायाः पञ्चमाध्याये (विंशाध्याये) तृतीयः खण्डः ॥३॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के विंश अध्याय के तृतीय खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

अथ चतुर्थः खण्डः

सा०भा०—सूक्तान्तरे वृषन्शब्दोपेतं लिङ्गं दर्शयति—

(मन्त्राणां सलिङ्गं प्रतीकनिर्देशनम्)

'या त ऊतिरवमा या परमेति' सूक्तं 'जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराच' इति वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ॥१॥

हिन्दी—(अन्य सूक्त में वृषन् शब्द से युक्त लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'या त ऊतिरवमा या परमा' **इति सूक्तम्** यह (सूक्त) है। (इस सूक्त की तृतीय ऋचा का चतुर्थ पाद 'जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराच' **इति वृषण्वत्** यह वृषण् शब्द से युक्त **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्य अह्नः रूपम्** द्वितीय दिन का रूप है।

सा०भा०—'या त ऊतिः' इत्यस्मिन् सूक्ते'[१] 'जहि वृष्ण्यानि'–इति तृतीयस्या ऋचश्चतुर्थः पादः तत्र वृषशब्ददुक्तं लिङ्गं दृश्यते॥

अथ वैश्वदेवशस्त्रगतयोस्तृचयोर्बृहत्सामसम्बन्धरूपं लिङ्गं दर्शयति—

(वैश्वदेवशस्त्रगतयोस्तृचयोर्बृहत्सामरूपलिङ्गप्रदर्शनम्)

'विश्वो देवस्य नेतुस्तत्सवितुर्वरेण्यमा विश्वदेवं सत्पतिमिति' वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ बार्हतेऽहनि द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ॥२॥

हिन्दी—(अब वैश्वदेव शस्त्र के दोनों तृचों के बृहत्साम सम्बन्ध रूप लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'विश्वो देवस्य नेतुः' (यह एक ऋचा) और 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' (ये दो ऋचाएँ–इस प्रकार एक तृच) तथा 'आ देवस्य सत्पतिम्' (यह तृच) **इति** इस प्रकार ये (दोनों तृच) **वैश्वदेवस्य प्रतिपदनुचरौ** वैश्वदेवशस्त्र के (क्रमशः) प्रतिपद् और अनुचर हैं। **बार्हते अहनि द्वितीये अहनि** बृहत्साम से सम्बन्धित द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के रूप हैं।

(१) ऋ० ६.२५।

सा० भा०—'विश्वो देवस्य'–इत्येका ऋक्[1] 'तत्सवितुः'–इति द्वे ऋचौ[2]। सोऽयमेकस्तृचो बृहत्सामसम्बन्धभूतो वैश्वदेवशस्त्रस्य प्रतिपद्भवति। 'आ विश्वदेवम्'–इत्येष तृचः[3] तस्यानुचरः। अत उभयोर्बृहत्सामसम्बन्धः॥

सूक्तान्तरे लिङ्गं दर्शयति—

('उदुष्य देव' इति सूक्ते लिङ्गनिर्देशनम्)

'उदु ष्य देवः सविता हिरण्ययेति' सावित्रमूर्ध्ववद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ॥३॥

हिन्दी—('उदुष्य देवः' सूक्त में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'उदुष्य देवः सविता हिरण्यया' **इति सावित्रम्** यह सविता देव वाला सूक्त है जो **ऊर्ध्ववत्** ऊर्ध्व (वाचक 'उद्') शब्द से युक्त है अतः **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—अस्मिन् तृचात्मके सावित्रसूक्ते[4] ऊर्ध्ववाचिन उच्छब्दस्य श्रवणात् ऊर्ध्ववल्लिङ्गमस्ति॥

सूक्तान्तरे लिङ्गं दर्शयति—

('ते हि द्यावापृथिवी' इति सूक्ते लिङ्गनिर्देशनम्)

'ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव'–इति द्यावापृथिवीयम्; 'सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते' इत्यन्तर्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्॥४॥

हिन्दी—(अन्य सूक्त में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव' **इति द्यावापृथिवीयम्** यह द्यावापृथिवी से सम्बन्धित (सूक्त) हैं। (इस सूक्त की प्रथम ऋचा का तृतीय पाद 'सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते' **इति अन्तःवत्** 'अन्तः' शब्द से युक्त है अतः **द्वितीय अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—अस्मिन् द्यावापृथिवीये सूक्ते[5] 'सुजन्मनी' इत्येषः प्रथमाया ऋचस्तृतीयः पादः। तत्रान्तः पदस्य श्रूयमाणत्वादन्तर्वल्लिङ्गम्॥

सूक्तान्तरे लिङ्गं दर्शयति—

('तक्षन् रक्षमिति सूक्ते लिङ्गनिर्देशनम्)

'तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस' इत्यार्भव, 'तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू' इति वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ॥५॥

(१) ऋ० ५.५०.१ (२) ऋ० ३.६२.१०,११। (३) ऋ० ५.८२.६-९।
(४) ऋ० ६.७१। (५) ऋ० १.१६०।

हिन्दी—('तक्षन् रथम्' सूक्त में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापस' **इत्यार्भवम्** यह ऋभु देवता वाला (सूक्त) है। (इसकी प्रथम ऋचा का तृतीय पाद) 'तक्षन् हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू' **इति वृषण्वत्** वृषण् शब्द से युक्त है अतः **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—'तक्षन् रथम्'–इति सूक्तमृभुदेवताकम्[1]। प्रथमाया ऋचस्तृतीयपादे 'तक्षन् पितृभ्यामृभवः' इति श्रवणात्। तत्रैव 'तक्षन् हरी' इत्यादिको द्वितीयः पादः; तस्मिन् वृषण्वसू' इति वृषण्वल्लिङ्गम् दृश्यते॥

सूक्तान्तरे लिङ्गं दर्शयति—

(यज्ञस्य वो रथ्यमिति सूक्ते लिङ्गनिर्देशनम्)

'यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्'–इति वैश्वदेवं वृषाकेतुर्यजतो द्यामशायत इति वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ॥६॥

हिन्दी—('यज्ञस्य वो रथ्यम्' सूक्त में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्' **इति वैश्वदेवम्** यह विश्वे देवाक (सूक्त) है। (उसकी प्रथम ऋचा का चतुर्थ पाद) 'वृषाकेतुर्यजतो द्यामशायत' **इति वृषण्वत्** यह 'वृषा' शब्द से युक्त है अतः **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन के अनुरूप है।

सा० भा०—'यज्ञस्य' इत्यादिसूक्ते 'इन्द्रो मित्रो वरुणः' इत्येवं बहुदेवताश्रवणात् इदं वैश्वदेवम्। 'वृषाकेतुः'–त्येष प्रथमायाश्चतुर्थः पादः। तत्र वृषण्वल्लिङ्गमस्ति॥

तदेतत् सूक्तं प्रशंसति—

(यज्ञस्य वो रथ्यमिति सूक्तप्रशंसनम्)

तदु शार्यातमङ्गिरसो वै स्वर्गाय लोकाय सत्रमासत; ते ह स्म द्वितीयं द्वितीयमेवाहरागत्य मुह्यन्ति; तान् वा एतच्छार्यातो मानवा द्वितीयेऽहनि सूक्तमशंसयत्; ततो वै ते प्र यज्ञमजानन् प्र स्वर्गं लोकम्; यद् यदेतत् सूक्तं द्वितीयेऽहनि शंसति, यज्ञस्य प्रज्ञात्यै, स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै ॥७॥

हिन्दी—('यज्ञस्य वो रथ्यम्' सूक्त की प्रशंसा कर रहे हैं—) तदु वह ('यज्ञस्य वो रथ्यं' सूक्त) **शार्यातम्** शार्यात् (ऋषि) द्वारा दृष्ट है। **अङ्गिरसः स्वर्गाय लोकाय सत्रम् आसत** अङ्गिराओं ने स्वर्गलोक को प्राप्त के लिए सत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया। **ते ह** वे **द्वितीयं द्वितीयमेव अहः आगत्य** (पृष्ठषडह के) प्रत्येक द्वितीय दिन में आकर **मुह्यन्ति** त्रुटि कर दिये। **मानवः शर्यातः** तब मनु के पुत्र शर्यात ने **तान्** उन (अङ्गिरसों) को **द्वितीये-**

(१) ऋ० १.१११।

अहनि द्वितीय दिन में **एतत् सूक्तम्** इस ('यज्ञस्य वो रथ्यं' सूक्त) का **अशंसयत्** शंसन कराया। **ततः** तब **ते** उन (अङ्गिरसों) ने **यज्ञम् प्राजानन्** यज्ञ को जाना। **तद् यद् एतत् सूक्तम्** तो जो इस सूक्त को **द्वितीये अहनि शंसति** द्वितीय दिन में शंसन करता है, वह **यज्ञस्य प्रज्ञाप्त्यै** यज्ञ के प्रकृष्ट ज्ञान के लिए और **स्वर्गस्य लोकस्य अनुख्यात्यै** स्वर्ग लोक के श्रवण-प्राप्ति के लिए होता है।

सा० भा०—तदु 'यज्ञस्य वो रथ्यम्' इत्यादिकं सूक्तं[१] 'शार्यातम्' शार्यातस्य कस्यचिन्महर्षेः सम्बन्धादित्यवगन्तव्यम्। कथं सम्बन्धम् इति, तदुच्यते पुरा कदाचिदङ्गिरसो वै महर्षयः स्वर्गार्थं सत्रमनुष्ठातुमुद्युक्ताः; ते महर्षयो यस्मिन् यस्मिन् सत्रे पृष्ठ्यषडहस्य द्वितीयमहरनुतिष्ठन्ति, तत्र सर्वत्र द्वितीये द्वितीयेऽहनि शस्त्रबाहुल्यात् कुत्र किं शस्त्रं पठितव्यमित्यज्ञात्वा मुह्यन्ति। तदानीं शार्यातनामकः कश्चिन्मानव ऋत्विग्भूत्वा 'तान्' अङ्गिरसो महर्षीन् 'यज्ञस्य वः' इत्यादिकं सूक्तं द्वितीयेऽहन्यशंसयत्। 'ततः' सूक्तप्रभावादेव 'ते' महर्षयो यज्ञं प्रजानम्' यज्ञं प्रकर्षेण ज्ञातवन्तः। तद्यज्ञसाध्यं स्वर्गं लोकं च प्रजानन्। तस्माद् द्वितीयेऽहन्येतस्य सूक्तस्य शंसनेन व्यामोहमन्तरेण यज्ञः प्रज्ञातो भवति, स्वर्गश्चावगम्यते॥

शस्त्रान्तरस्य प्रतिपदि लिङ्गं दर्शयति—

(आग्निमारुतशस्त्रस्य प्रतिपदि लिङ्गनिर्देशनम्)

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सह इत्याग्निमारुतस्य प्रतिपद्; वृषण्वद् द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम् ।।८।।

हिन्दी—(आग्निमारुतशस्त्र के प्रतिपद् में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नु सह' **इति आग्निमारुतस्य प्रतिपत्** यह आग्निमारुत्शस्त्र का प्रतिपद् है जो **वृषण्वत्** वृषण् शब्द से युक्त है अतः **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन कर रूप है।

सा० भा०—तत्र[२] 'वृष्णः' इति श्रवणाद् वृषण्वल्लिङ्गम्॥

मारुतसूक्ते लिङ्गं दर्शयति—

(मारुतसूक्ते लिङ्गनिर्देशनम्)

'वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधस' इति मारुतम्; वृषण्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपम्।।९।।

हिन्दी—(मरुत् सम्बन्धी सूक्त में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधस' **इति मारुतम्** यह मरुत् देवता वाला सूक्त है जो **वृषण्वत्** वृषण् शब्द से युक्त है अतः **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह्नः रूपम्** द्वितीय दिन

(१) ऋ० १०.९२। (२) ऋ० ६.८.१-३।

के अनुरूप है।

स० भा०—अत्र प्रथमाया ऋचो द्वितीयपादे 'प्र भरा मरुद्‌भ्या' इति श्रवणात् इदं सूक्तं मारुतम्। वृषण्वल्लिङ्गं स्पष्टम्॥

जातवेदस्यायामृच्यच्युतत्वलिङ्गं दर्शयति—

'जातवेदसे सुनवाम सोममिति'[1] जातवेदस्याऽच्युता ॥१०॥

हिन्दी—(जातवेदस्-सम्बन्धि ऋचा में अच्युतत्व लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'जातवेदसे सुनवाम सोमम्' **इति जातवेदस्या अच्युता** यह जातवेद देवता वाली (ऋचा) अच्युत (प्रथम दिन में विहित) है।

सा० भा०—प्रथमेऽहन्यस्या ऋचो विहितत्वाद् अच्युतत्वम्॥

सूक्तान्तरे लिङ्गं दर्शयति—

'यज्ञेन वर्धत जातवेदसमिति' जातवेदस्यं, वृधन्वद्, द्वितीयेऽहनि द्वितीयस्याह्नो रूपमह्नो रूपम् ॥११॥

हिन्दी—(अन्य सूक्त में लिङ्ग को दिखला रहे हैं—) 'यज्ञेन वर्धत जातवेदसम्' **इति जातवेदस्यम्** यह जातवेदस देवता वाला (सूक्त) है जो **वृधन्वद्** वृधन् शब्द से युक्त है अत: **द्वितीये अहनि** द्वितीय दिन में प्रयुक्त **द्वितीयस्याह: रूपम्** द्वितीय दिन का रूप है।

सा० भा०—जातवेदोदेवताकत्वं वृधन्वल्लिङ्गं चात्र[2] विस्पष्टम्। अभ्यासोऽध्याय-परिसमाप्त्यर्थ:॥

॥ इति श्रीमत्सायणाचार्य विरचिते माधवीये 'वेदार्थ प्रकाशे' ऐतरेयब्राह्मण-भाष्ये चतुर्थपञ्चिकायां पञ्चमाध्याये चतुर्थ: खण्ड: ॥४॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के विंश अध्याय के चतुर्थ खण्ड की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

वेदार्थस्य प्रकाशेन तमो हार्दं निवारयन्।
पुमर्थांश्चतुरो देयाद् विद्यातीर्थमहेश्वर: ॥

॥ इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकवीरबुक्कभूपालसाम्राज्यधुरंधरमाधवा-चार्यादिशतो सायणाचार्येण विरचिते माधवीये 'वेदार्थप्रकाश'-नामभाष्ये ऐतरेयब्राह्मणस्य चतुर्थपञ्चिकाया: पञ्चमोऽध्याय: (विंशोऽध्याय:) समाप्त ॥

॥ इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के विंश अध्याय की 'शशिप्रभा' नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ॥

---

(१) ऋ० १.६४। (२) ऋ० २.२।

देवा वै षट्। प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे ष्टौ। ज्योतिर्गौरायुरष्टौ। प्रजापतिः षट्। अग्निर्वै चत्वारि।

चतुर्थ पञ्चिका में 'देवा वै' से प्रारम्भ प्रथम अध्याय छः खण्डों वाला, 'प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे' से प्रारम्भ द्वितीय अध्याय आठ खण्डों वाला, 'ज्योतिर्गौरायुः' से प्रारम्भ तृतीय अध्याय आठ खण्डों वाला, 'प्रजापतिः' से प्रारम्भ चतुर्थ अध्याय छः खण्डों वाला तथा 'अग्निर्वै' से प्रारम्भ पञ्चम अध्याय चार खण्डों वाला है।

देवा वै, ब्राह्मणस्पत्यया, आहूय दूरोहणं द्वादश।

चतुर्थ पञ्चिका में 'देवा वै' से प्रारम्भ खण्डों का प्रथम दशक, 'ब्राह्मणस्पत्यया' से प्रारम्भ द्वितीय दशक तथा 'दूरोहणम्' से प्रारम्भ बारह खण्ड हैं। इस प्रकार इस पञ्चिका में कुल ३२ खण्ड हैं।

।। इति ऐतरेयब्राह्मणे चतुर्थी पञ्चिका ।।

।। इस प्रकार ऐतरेयब्राह्मण के चतुर्थ पञ्चिका की 'शशिप्रभा'
नामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।।

वैदिक ग्रन्था :-

ऋग्वेद संहिता । मूलमात्र (गुटका)

ऋग्वेद संहिता । मूलमात्र

ऋग्वेद संहिता । भाषामात्र । रामगोविन्द त्रिवेदी

ऋग्वेद संहिता । सायणाचार्यकृत भाष्य एवं हिन्दी व्याख्या सहित । १-९ भाग सम्पूर्ण

ऋग्वेद संहिता । (प्रथम अध्याय, सूक्त १-१९) । हिन्दी व्याख्या तथा हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद ।
सम्पादक-प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

शुक्लयजुर्वेद संहिता । मूलमात्र (गुटका)। सम्पादक-श्री [illegible]तराम गौड़

शुक्लयजुर्वेद संहिता । मूलमात्र । (निर्णयसागर संस्करण)

शुक्लयजुर्वेद संहिता । पदपाठ-उव्वट-महीधरभाष्य एवं [illegible]बोधिनी हिन्दी व्याख्या सहित।
डॉ. रामकृष्ण शास्त्री

सामवेद संहिता । मूलमात्र (गुटका)

सामवेद संहिता । सायणभाष्य तथा पं. रामस्वरूप शर्मा '[illegible]' कृत हिन्दीभाषानुवाद सहित

अथर्ववेद संहिता । मूलमात्र (गुटका)

पौराणिक ग्रन्था :-

मत्स्यपुराण । भाषाटीका सहित । अनु० पं० कालीचरणजी एवं पं० बस्तीरामजी

मार्कण्डेयपुराण । भाषाटीका सहित

भागवतमहापुराण । भाषाटीका सहित । टीकाकार-पं० रामतेज पाण्डेय

भविष्यमहापुराण । भाषाटीका सहित । टीकाकार-श्री बाबूराम उपाध्याय । १-३ भाग

ब्रह्मपुराण । भाषाटीका सहित । टीकाकार-श्री तारणीश झा

ब्रह्माण्डपुराण । मूलमात्र

ब्रह्मवैवर्तपुराण । भाषाटीका सहित । अनुवादक-श्री तारणीश झा एवं श्री बाबूराम उपाध्याय

विष्णुपुराण । मूलमात्र

वायुपुराण । भाषाटीका सहित । अनुवादक-श्री श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी

वराहपुराण । मूलमात्र

अग्निपुराण । भाषाटीका सहित । अनुवादक-श्री शिवप्रसाद द्विवेदी

नारदीयपुराण । भाषाटीका सहित । अनुवादक-श्री तारणीश झा । १-२ भाग

कूर्मपुराण । भाषाटीका सहित

गरुडपुराण । मूलमात्र

पुराणविमर्श । आचार्य बलदेव उपाध्याय

श्रीमद्देवीभागवतम् । भाषाटीका सहित । डा. शिवप्रसाद द्विवेदी

—— चौखम्बा विद्याभव[न]
वारा[णसी]

email : cvbhawan@yahoo.c[o]